तुलसीकृत

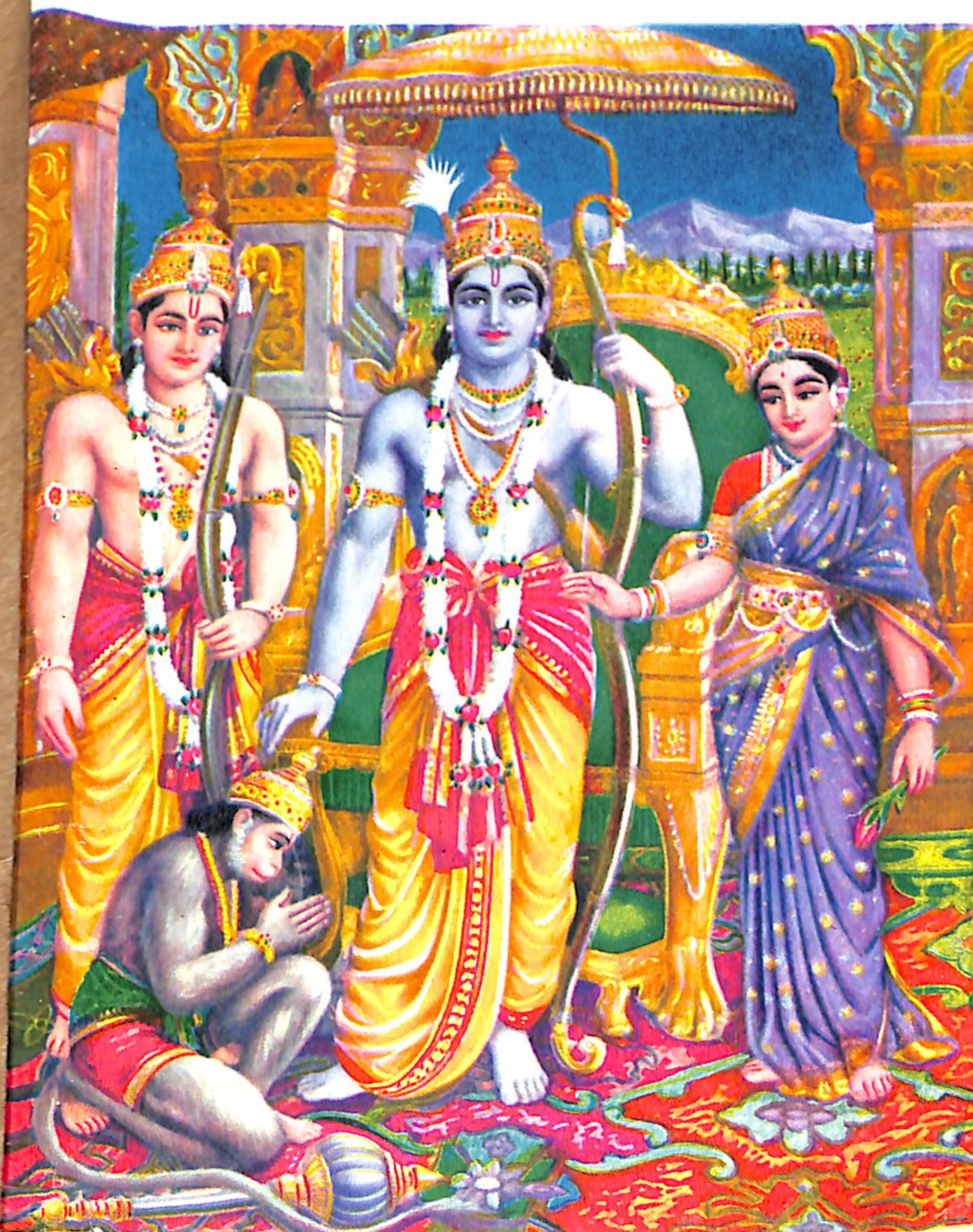
रामचरित मानस

रामायण

आदी काण्ड



जो सुमिरत सिधि होइ
गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुधि
रासि सुभ गुन सदन॥



S. S. BRIJBASI & SONS
32 1, FATEHPURI DELHI

AYODHIA PATI RAM

S. S. BRIJBASI & SONS



रामायण

आठों काण्ड सहित

श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित-मानस

[ज्ञानमोहिनी टीका सहित]

गोस्वामी तुलसीदासजी का जीवन-चरित्र, श्रीरामशलाका-प्रश्नावली, पारायण-विधि, गूढ़ार्थ शब्दकोष, रामायण-माहात्म्य, हनुमान-चालीसा, सप्तवेदों की आरती, राम-कलेवा, श्रवण-चरित्र, हनुमानजी के जन्म की कथा, बानरों द्वारा अपना बल-वर्णन, सुलोचना-सती, अहिरावण-वध, नारान्तक वध, तथा अन्य बहुत-सी क्षेपक कथायें एवं अन्तर्कथायें टीका सहित दी गई हैं।



टीकाकार

विद्यारत्न पं० ज्वालाप्रसादजी पाराशर



रामायण प्रेस

द्वारा

बम्बई

अक्षरों में मुद्रित



सप्तम आवृत्ति]　　सन् १९८७　　[मूल्य ४०) रुपया

प्रकाशकीय

प्रिय पाठकगणो !

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा रचित लोकप्रिय ग्रन्थ "श्रीरामचरित–मानस" मानव समाज के लिए एक अनूठी देन है। इस विश्व-विख्यात ग्रन्थ "रामायण" का गहन अध्ययन हमारी मानवता एवं संस्कृति पर अनन्य प्रभाव डालता है। अतः जिन महापुरुषों को इसके आदर्शों पर चलने का शुभ अवसर मिला है, उनका जीवन परम धन्य है !

अतः हमने इस अलौकिक ग्रन्थ की सारी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इसका सातवाँ संस्करण बहुत ही शुद्धता के साथ छापकर प्रकाशित किया है। इसमें अनेकों क्षेपक–कथाओं तथा अन्तर्कथाओं के साथ-साथ और भी बहुत-सी अन्य उपयोगी बातों का समावेश किया गया है तथा आठों काण्डों में अनेकों बहुरंगे चित्र भी दिये गये हैं, जिससे पाठकों को अधिक रुचिकर उपयोगी तथा ज्ञान-वर्द्धक सिद्ध हो सकें।

आशा है कि इस ग्रन्थ को प्रिय–पाठकगण अवश्य ही अपनायेंगे और पसन्द भी करेंगे। अगर ग्रन्थ में कोई त्रुटि भी होंगी, तो पाठकगण उसे क्षमा करते हुए ठीक कर लेंगे। जिसको अगले संस्करण में ठीक कर दिया जायगा।

— प्रकाशक

श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित-मानस

की

—: विषयानुक्रमणिका :—

❀ मास पारायण विश्राम स्थल ❀

———

❀ नवान्ह पारायण विश्राम स्थल ❀

———

* श्रीरामचन्द्रायनमः *

* श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी का जीवन चरित्र *

—: * :—

कवि-कुल-भूषण भक्त-शिरोमणि 'तुलसीदासजी' का जन्म संवत १५५४ ई० में बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम पं० आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। आप जाति के सरयू पारीण ब्राह्मण थे।

इनका जन्म अभुक्त-मूल नक्षत्र में होने के कारण बालक के अनिष्ट की आशंका से माता-पिता ने इनका परित्याग कर दिया। कुछ काल तक हुलसी की दासी चुनियाँ ने इनका लालन-पालन किया। उनकी मृत्यु हो जाने पर इस अभागे बालक को भगवान शंकर की -प्रेरणा से स्वामी नरहर्यानन्दजी ले आये। वे इन्हें पहले अयोध्याजी और बाद में शूकर-क्षेत्र में ले गये। इनका नाम 'रामबोला' रखा गया तथा सं० १५६१ की माघ-शुक्ला पंचमी को इनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया गया। अत्यन्त प्रखर-बुद्धि होने के कारण 'रामबोला' ने अल्पायु में ही यथेष्ठ विद्यापार्जन कर लिया। इन्होंने गुरुजी को रामचरित-मानस कण्ठस्थ करके सुनाया, तब उन्होंने इनका नाम 'तुलसीदास' रख दिया।

कुछ समय पश्चात आप काशी चले आये और पन्द्रह वर्ष तक वेदाध्यन किया। तत्पश्चात् गुरुजी की आज्ञा लेकर आप अपने गाँव चले गये। यहाँ आपका विवाह पंडित दीनबन्धु पाठक की सुन्दरी कन्या रत्नावली से हुआ। गोस्वामीजी अपनी स्त्री पर अत्यन्त आसक्त रहते थे। एक बार वे अपनी मायके चली गईं तो आप भी उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गये अत्यन्त लज्जित होकर उन्होंने इनकी भर्त्सना की और कहा—

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ। धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति। तैसी जो श्रीराम में, होत न तब भव भीति॥

पत्नी का यह वचन-रूपी तीर मर्म-स्थल में लगा तो श्रीगोस्वामीजी सांसारिक-बन्धन त्यागकर श्रीराम-भक्ति के प्रशस्त मार्ग पर बड़े वेग से दौड़ चले।

चलकर वे प्रयाग होते हुए काशी आये और वहाँ श्रीराम-कथा कहने लगे। उन्हें एक प्रेत मिला, उसने उन्हें हनुमानजी का पता बताया। हनुमानजी से मिलकर तुलसीदासजी ने अपनी श्रीराम-दर्शन की अभिलाषा पूर्ण करने का प्रयत्न किया।

हनुमानजी ने उन्हें चित्रकूट पर भेजा एक दिन उन्होंने मार्ग में दो सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर जाते हुए देखे। वे उनकी सुन्दरता पर मोहित होकर देखते हुए खड़े रह गये। फिर हनुमानजी ने सारा भेद बताया, तब वे बड़े पछिताये। फिर एक दिन चन्दन घिसते समय दो सुन्दर बालक आये और उन्होंने तुलसीदासजी से चन्दन माँगा। उन्हें चन्दन देकर तुलसीदासजी उनके हाथ से अपने मस्तक पर चन्दन लगवाने लगे। उन्हें फिर भी अचेत देखकर हनुमानजी ने तोतें के रूप में यह दोहा पढ़ा—

दोहा—चित्रकूट के घाट पर, भई सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर॥

अब तुलसीदासजी को होश हुआ। उन्होंने भगवान की रूपमाधुरी को छककर पिया। तत्पश्चात भगवान् अन्तर्धान हो गये।

भगवान के आदेशानुसार गोस्वामीजी चलकर पुनः अयोध्या आये और उन्होंने सम्वत् १६३० ई० के मधु-मास को राम-नवमी को 'रामचरित-मानस' की रचना प्रारम्भ की। इस महान् काव्य की रचना में उन्हें समय-२ पर श्रीभगवान शंकरजी तथा हनुमानजी की प्रेरणा मिली। यह ग्रन्थ दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में लिखकर समाप्त हुआ।

समाज में गोस्वामी के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर पण्डितों को बड़ा दाह हुआ। उन्होंने रामायण को चुराने के लिए दो चोर भेजे। चोरों ने सुन्दर धनुषधारी राजकुमारों को गोस्वामी की कुटिया की रक्षा करते हुए देखा तो भयभीत होकर भाग गये। तुलसीदासजी को मालुम हुआ तो भगवान को अपने लिए कष्ट होता जानकर उन्होंने घर का सारा सामान लुटा दिया और पुस्तक को अपने मित्र राजा टोडरमल के यहाँ रख दिया।

अपने समकालीन धर्माचार्यों में गोस्वामीजी का सर्वत्र बड़ा मान था। नाभादासजी ने आपकी प्रशंसा में एक छप्पय लिखा है। ब्रज के 'चोरासी वैष्णवों की वार्ता' में भी आपका उल्लेख है। स्वामी मधुसूधनाचार्य (दण्डीजी) के निम्न श्लोक में गोस्वामीजी का तत्कालीन विद्वत-वर्ग में श्रेष्ठ स्थान स्पष्ट हो जाता है। दण्डीजी ने लिखा है–

आनन्द काने ह्यष्मिञ्जङ्गमस्तुसीतरुः। कविता मञ्जरी भाँति रामभ्रमरभूषिताः।

तुलसीदासजी के विषय में अनेक किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनसे यह स्पष्ट है कि वे एक उच्चकोटि के अनन्य-भक्त थे।

सम्वत् १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी को गोस्वामी तुलसीदासजी अपनी यह लीला समाप्त करके परमधाम को चले गये।

श्रीरामचरित-मानस-श्रीमद्गोस्वामीजी की यह महान् कृति हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अवधी भाषा में दोहे, चौपाई, छन्द, सोरठा, छप्पय आदि में इसकी रचना हुई है। इनकी भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण तथा प्रभावशाली है, इस ग्रन्थ में सभी रसोंका वर्णन देखते ही बनता है। व्याकरण-शास्त्र की पिंगल-पद्धति पर यह ग्रन्थ आधारित है तथा सभी वेद-पुराण और निषदों-उपनिषदों का सार लेकर तुलसीदासजी ने इस अभूतपूर्व महाकाव्य की रचना की। यह प्रबन्ध काव्य है, अतः नायक के जीवन के सभी परिच्छेदों का इसमें विस्तृत चित्रण है। वात्सल्य, श्रृंगार, विरह, शौर्य, श्लेष आदि का रसास्वादन पाठक इसे पढ़कर ही कर सकते हैं, गोस्वामीजी जी के अन्य ग्रन्थों में प्रमुख निम्नांकित हैं–

१–गीतावली, २–दोहावली, ३–कवितावली, ४–विनय-पत्रिका, ५–राम-सतसई, ६–बरवै-रामायण, ७–रामललानहछू, ८–कुण्डलिया-रामायण, ९–संकटमोचन, १०–हनुमान-बाहुक, ११–जानकी-मंगल, १२–पार्वती-मंगल, १३–रामाज्ञा, १४–वैराग्य-संदीपनि, १५–कृष्ण गीतावली, १६–रामशलाका प्रश्नावली, १७–चन्द्रावली, १८–छप्पय रामायण, १९–कड़खारामायण, २०–झूलना रामायण, २१–रोला रामायण आदि।

---

* श्रीरामचन्द्रायनमः *

श्री रामशलाका प्रश्नावली

विधि–इस प्रश्नावली से अपने प्रश्न का उत्तर जानने से पूर्व प्रश्न-कर्ता को पूर्ण शुद्धता से श्रीसीता-रामजी व हनुमानजी का स्मरण करना चाहिये। तत्पश्चात् किसी भी वर्ग में उँगली या शलाका रख देनी चाहिए। उस वर्ग के अक्षर को लिख लेना चाहिए, फिर गिन कर आगे के नवें अक्षर को लिख लेना चाहिए। आगे के अक्षरों को आगे और पीछे के अक्षरों को पीछे रखने पर एक पूरी चौपाई बन जायेगी। उस चौपाई का फल नीचे लिखे अनुसार जान लेना चाहिए।

सु	प्र	उ	बि	हो	मु	ग	ब	सु	नु	बि	घ	धि	इ	द
र	रु	फ	सि	सि	रें	बस	है	मैं	ल	न	ल	य	न	अं
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	म	मं	क	रे	हो	स	स	नि
त	र	त	र	स	इ	ह	ब	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	ही	ा	जू
ता	रा	रे	री	ह्र	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	म	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	जं
सिं	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	ा	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढ़	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	ह	सु	म्ह	रा	र	स	हिं	र	त	न	ष	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	ज	हू	हीं	ष	जू	ई	रा	रे

उदाहरण–मान लीजिए किसी ने पाँचवी पंक्ति के आठवें अक्षर 'म' पर उँगली रखी। 'म' को लिख लेना चाहिए। आगे नवाँ अक्षर 'र' है। 'म' के आगे और पीछे लिखते जाने से निम्न चौपाई बन जायगी–

होइ है सोइ जो राम रच राखा * को करि तर्क बढ़ावै साखा

इसका फल यह है कि कार्य पूर्ण होने में सन्देह है,

इस चौपाई के अतिरिक्त श्रीरामशलाका-प्रश्नावली से जो अन्य चौपाइयाँ बनती हैं, वे फल सहित इस प्रकार हैं।

सुनु सिय सत्य असीस हमारी * पूजिहि मन कामना तुम्हारी

फल–प्रश्न-कर्त्ता का प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा।

प्रबसि नगर कीजै सब काजा * हृदयँ राखि कौशलपुर राजा

फल–ईश्वर का स्मरण करके कार्य करो, सफलता मिलेगी।

उघरें अन्त न होइ निबाहू * कालनेमि जिमि रावन राहू

फल–इस कार्य में भलाई नहीं, सफलता में सन्देह है ।

बिधिबस सुजन कुसङ्गति परहीं * फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं

फल–दुष्टों का संग छोड़ दो, कार्य होने में सन्देह है,

मुद मङ्गलमय संत समाजू * जिमि जग जङ्गम तीरथ राजू

फल–प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा ।

गरल सुधा रिपु करत मिताई * गोपद सिंधु अनल सितलाई

फल–प्रश्न बहुत श्रेष्ठ है, कार्य सफल होगा ।

बरुन कुबेर सुरेस समीरा * रन सन्मुख धरि काहु न धीरा

फल–कार्य पूर्ण होने में सन्देह है ।

सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे * राम लखनु सुनि भए सुखारे

फल–प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा ।

पारायण विधि

श्रीमद्रामचरित-मानस के प्रेमी पाठकों को विधिपूर्वक पाठारम्भ करने के पूर्व श्रीतुलसीदासजी, श्रीबाल्मीकिजी, श्रीमहादेवजी तथा श्रीहनुमानजी का आवाहन-पूजन करके तीनों भाइयों सहित श्रीसीता-रामजी का आवाहन, शोडषोपचार-पूजन और ध्यान करना चाहिए । सबके आवाहन, पूजन और ध्यान के मन्त्र क्रमशः नीचे दिये जाते हैं ।

अथ आवाहन मन्त्रः

तुलसीकं नमस्तुभ्यामिहागच्छ शुचिव्रत । नैऋत्य उपविश्येदं पूजनं प्रतिगृह्यताम् ।। १ ।।

ॐ तुलसीदासाय नमः

श्रीबाल्मीकं नमस्तुभ्यामिहागच्छ शुभप्रद । उत्तर पूर्वयोर्मध्ये तिष्ठ गृहणीष्व मेऽर्चनं ।। २ ।।

ॐ बाल्मीकाय नमः

श्रीगौरीपते नमस्तुभ्यामिहागच्छ महेश्वर । पूर्वदक्षिणोर्मध्ये तिष्ठ पूजां गृहाण मे ।। ३ ।।

ॐ गौरीपतये नमः

श्रीलक्ष्मण नमस्तुभ्यामिहागच्छ सहप्रियः । याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं संगृहाणि मे ।। ४ ।।

ॐ श्रीसपत्नीकाय लक्ष्मणाय नमः

श्रीशत्रुघ्न नमस्तुभ्यामिहागच्छ सहप्रियः । पीठस्य पश्चिमे भागे पूजनं स्वीकुरुश्वमे ।। ५ ।।

ॐ श्रीसपत्नीकाय शत्रुघ्नाय नमः

श्रीभरत नमस्तुभ्यामिहागच्छ सहप्रियः । पीठकस्योत्तरे भागे तिष्ठ पूजां गृहाणि मे ।। ६ ।।

ॐ श्रीसपत्नीकाय भरताय नमः

श्रीहनुमन्त नमस्तुभ्यामिहागच्छ कृपानिधे । पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु प्रभो ।। ७ ।।

ॐ हनुमते नमः

अथ प्रधानपूजा च कर्तव्या विधिपूर्वकम् । पुष्पांजलि गृहीत्वा तु ध्यानं कुर्यात्परस्य च ।। ८ ।। रक्ताम्भोजदलाभिरामनयनं पीताम्बरालंकृतं श्यामाङ्गं द्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया शोभितम् ।। कारुण्यामृतसागरं प्रियगणभ्रात्रादिभिर्भावितं । वन्दे विष्णु शिवादिसेव्यमनिशं भक्तेष्ट सिद्धप्रदम् ।। ९ ।। आगच्छ जानकीनाथ जानक्या एव राघव । गृहाण मम पूजां च वायुपुत्रादिभिर्युतः ।।१०।।

।। इत्यावाहनम् ।।

सुवर्णरचितम् राम दिव्यास्तरणशोभितम् । आसनं हि मया दत्तगृहाणमणिचित्रतम् ।।११।।

इति षोडशोपचारैः पूज्येत्

ॐअस्य श्रीमन्मानस रामायण श्रीरामचरितस्य श्रीशिवकाकभुशुण्डियाज्ञवल्क्यगोस्वामि-तुलसीदासऋषयःश्रीसीता-रामो देवता श्रीरामनाम बीजं भवरोगहारी शक्तिः भक्ति-मम नित्य-न्वितशेष विघ्नतया श्रीसीताराम प्रीतिपूर्वक सकल मनोरथ सिद्धयर्थं पाठे विनियोगः ।।१२।।

अथाचमनम्—श्रीसीतारामाभ्यां नमः । श्रीरामचन्द्रायनम—श्रीरामभद्राय नमः ।। इति मन्त्रित्रितयेनं आचमनं कुर्यात् । श्रीयुगलबीजमन्त्रेण प्राणायामं कुर्यात् ।।

अथ करन्यासः

जग मंगल गुन-ग्राम के । दानि मुकुति धन धरम धाम के ।।

अंगुष्ठाभ्यानमः

राम नाम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं ।।

तर्जनीभ्याँ नमः

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका ।।

मध्यमाभ्याँ नमः

उमा दारु जोषित की नाईं । सबहिं नचावत राम गोसाईं ।।

अनामिकाभ्याँ नमः

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ।।

कनिष्ठकाभ्याँ नमः

मामभिरक्षय रघुकुल नायक । धृत बर चाप रुधिर कर सायक ।।

करतलकरिपृष्ठाभ्याँ नमः

।। इतिकरन्यास ।।

* अथ हृदयादिन्यासः *

जग मंगल गुन ग्राम राम के । दानि मुकुति धन धरम धाम के ।।

हृदयाय नमः ।

राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं ।।

शिरसे स्वाहा ।

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खगगन बधिका ।।

शिखायै वषट्

उमा दारु जोषित की नाई। सबहिं नचावत राम गोसाई ॥

कवचाय हुम्

सन्मुख होई जीव जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

नेत्राभ्यां वौषट्

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत पर चाप रुचिर कर सायक ॥

अस्त्राय फट्

॥ इतिहास हृदयादिन्यासः ॥

* अथ ध्यानम् *

ममलोकय पङ्कज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच विमोचन ॥
नील तामरस स्याम कामअरि। हृदय कञ्च मकरन्द मधुप हरि ॥
जातु धान बरूथ बल भञ्जन। मुनि सज्जन रञ्जन अघ गञ्जन ॥
भूसुर शशि नव वृन्द बलाहक। अशरन शरन दीन जन गाहक ॥
भुजबल विपुलभार महि खण्डित। खर दूषन बिराध बध पण्डित ॥
रावनारि सुखरूप भूपवर। जय दशरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥
सुजसु पुरान विदित निगमागम। गावत सुर मुनि सन्त समागम ॥
कारुनीक व्यलीक मद खण्डन। सब विधि कुशल कौशला मण्डन ॥
कलिमल मथन नाम ममताहन। तुलसीदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥

॥ इति ध्यानम ॥

* श्रीराम-नाम महामन्त्र *

राम रामेति रमेति, रमे रामे मनोरमे।
सहस्त्र नाम तातुल्यं, राम नाम वरानने ॥

* गूढ़ार्थ शब्द कोष *

अवस्था चार हैं–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय। इनके विभु ये हैं–जाग्रत का विश्व, स्वप्न का तेजस, सुषुप्त का प्राज्ञ और तुरीय का ब्रह्मा।

अविद्या–प्राणी की अल्पज्ञता।

अंग–वेद के अंग छः हैं–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, छन्द और ज्योतिष। वेद के पढ़ने की विधि को शिक्षा कहते हैं। कल्प उसे कहते हैं–जिसमें सब कर्मों के करने की रीति है। व्याकरण उसे कहते हैं–जिससे शब्दों की शुद्धता का ज्ञान हो। निरुक्ति उसे कहते हैं–जिसमें वेद के कठिन शब्दों का अर्थ निरुक्ति सहित लिखा हो। जिससे अक्षर, मात्रा व वृत्त का ज्ञान हो–उसे छन्द कहते हैं और जिससे भूत, भविष्य और वर्तमान काल का ज्ञान हो-वह ज्योतिष है।

आश्रम चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास।

आकार चार हैं—देहज, अर्थात्—जो देह के साथ उत्पन्न होते हैं, जैसे मनुष्य, पशु आदि अण्डज—जो अण्डे से होते हैं, जैसे पक्षी, सांप आदि। श्वेदज—जो पानी से उत्पन्न होते हैं, जैसे चीलर, डील आदि। उद्भिज—जो पृथ्वी को फोड़कर उत्पन्न होते हैं, जैसे वृक्ष आदि।

आभरण बारह हैं—नूपुर, किंकिणी, हार, चूड़ी, मुंदरी, कंङ्कण, बाजूबन्द, कण्ठश्री, बेसर, बिछिया, टीका, शिर-फूल।

उपवेद—सामवेद का गन्धर्व-वेद अर्थात्-संगीत-शास्त्र, ऋग्वेद का आयुर्वेद—अर्थात् वैद्यक यजुर्वेद, अथर्ववेद का शिल्प-विद्या और वास्तु।

ऋतु छः हैं—वसन्त-चैत्र, वैसाख। ग्रीष्म-ज्येष्ठ, आषाढ़। वर्षा-श्रावण, भाद्रपद। शरद-क्वार, कार्तिक। हेमन्त-अगहन, पौष। शिशिर-माघ, फाल्गुन।

कल्प—चारों युगों को एक चौकड़ी कहते हैं और हजार चौकड़ी का एक कल्प होता है।

गुण तीन हैं—सत, रज, तम। राजा के चार गुण हैं—साम, दाम दण्ड, भेद।

चतुरगुणी सेना के चार अंग हैं—हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल।

तत्व पांच हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश।

त्रिताप तीन प्रकार के हैं—आध्यात्मिक, आधि-भौतिक, आधि-दैविक।

त्रिविध कर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण।

दिग्पाल—पूर्व दिशा के इन्द्र, आग्नेय के अग्नि, दक्षिण के यम, नैऋृत्य के निऋृति, पश्चिम के वरुण, वायव्य के वायु, उत्तर के कुबेर, ईशान के ईशान।

पुराण अठारह हैं—जिसमें पांच वस्तुओं (सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित्र) का वर्णन हो। जिसमें दस लक्षण हों, वह महापुराण है, जैसे श्रीमद्भागवत।

भक्त चार प्रकार के होते हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञान-निवास।

भक्ति नव प्रकार की होती हैं—संत्सग, श्रावण, कीर्तन, चरण-सेवा, वन्दन, आत्म-निवेदन, दासत्व, सख्य।

युग चार हैं,—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग।

योनि चौरासी लाख हैं—नौ लाख जलचर, सत्ताईस लाख स्थावर, ग्यारह लाख कृमि, दस लाख पक्षी, तेईस लाख चौपाये, चार लाख मनुष्य।

राम तीन हैं—परशुराम, बलराम, श्रीरामचन्द्रजी।

विद्या—ईश्वर की सर्वज्ञता को विद्या कहते हैं।

शास्त्र छः हैं—वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक।

श्रृंगार सोलह प्रकार के हैं—अंगशुचि-मंजन, अमल वस्त्र-पहिनना, यावक-केश संभालना, मांग में सिंदूर लगाना, भाल में तिलक बनाना, मेंहदी लगाना, अरगजा अंग में लगाना, भूषण पहिनना, पुष्प-गन्ध लगाना, मुखराग-दांत रंगना, अधरराग-काजल लगाना।

सप्तऋषि—कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्रजी, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम।

समीर—तीन प्रकार की होती है—शीतल, मन्द, सुगन्ध।

सिद्धि आठ हैं—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकम्प, ईशित्व, वशित्व।

* अथ श्रीरामायण माहात्म्य *

दोहा—गुरुहरिहरगणपति गिरा, सुमिरौं तुलसीदास ।
कहत गोपाल महात्म्य, श्रीरामायण सुखराम ॥ १ ॥

रामायण सुरतरु की छाया * दुख भए दूर निकट जो आया
सप्त काण्ड स्कन्ध सुहाई * दोहा लघु शाखा छबि छाई
शुचि सोरठा सीठिका सोई * पत्र सुभग चौपाई जोई
छन्दन की शोभा अति रूरी * जनु नवीन अंकुर छबि पूरी
अक्षर सुमन रहे गहगाई * अति अद्भुत सुगन्ध कविताई
बिबिध प्रकार अर्थ सोई फल * श्रोता सुमति स्वाद जानै भल
भक्ति ज्ञान वैराग्य सरस रस * बीज दोष निर्गुण सगुण अस
मुनि भुशुण्डिशिवप्रथमहिगाई * सोई गाई जग हेतु गोसाँई

दोहा—तुलसीदास रामायण, नहिं करते परचार ।
कलि कै कुटिल जीव ये, को करतौं निस्तार ॥ २ ॥

रामायण सुरधेनु समाना * दायक अभिमत फल कल्याना
गुण समूह कवि सकै कोन गनि * जासु प्रभाव सरिस चिन्तामनि
राम अयन रामायण आही * वर्णि पार पावै को ताही
रामायण अद्भुत फुलवारी * रामभ्रमर भूषित रुचि भारी
श्रीरामायण जेहि घर माहीं * भूत प्रेत तहँ भूल न जाहीं
नहिं गत तहाँ दरिद्रहु केरी * तहँ श्रीमहावीर की फेरी
यन्त्र मन्त्र सगुनोती जेती * रामायण महँ जानिय तेती
प्रीति करै रामायण माहीं * तेहि सम भाग्यवन्त कोउ नाहीं

दोहा—रामायण सम नहिं कोउ, सब उपमा उपमेय ।
उपमा पुस्तक और की, कैसे कोउ कवि देय ॥ ३ ॥

त्रेता में भए बाल्मीकि मुनि * ते कलियुग भए तुलसीदास पुनि
शत करोड़ रामायण भाषी * इन मतिसार सुसूक्ष्म राखी
प्रथम काण्ड है बाल रसीला * जन्म विवाह राम की लीला

द्वितीय अयोध्या काण्ड प्रकाशा * पितु आज्ञा रघुपति बनवासा
पुनि अरण्य किष्किन्धा भाख्यो * तहँ सुग्रीव शरण महँ राख्यो
सुन्दर सुन्दरकाण्ड सुहावन * युद्धकाण्ड महँ मारेऊ–रावन
सप्तम उत्तर परम अनूपा * उत्सव प्रभु कौशलपुर भूपा
तुलसीकृत रामायण ऐती * विविध प्रकार कथा हैं केती
दोहा–भाव वारिध को पार नहिं, एसौ है फैलाब।
तुलसीदास कृपा करि, रचि रामायण नाव ॥ ४ ॥
श्रीरामायण स्वर्ग निसेनी * भक्त जनन कहँ आनन्द देनी
श्रीरामायण सद्गुण माता * अज्ञ जाहि पढ़ि होंहिं सुज्ञाता
पाप समूह तूल की रासी * रामायण पावक कणिका-सी
मोह पुञ्ज यम किरन तमारी * काम अग्नि कहँ शीतल बारी
रामायण शशि किरन समाना * सन्त चकोर करहि तेहि पाना
धन्य धन्य श्रीतुलसीदास धनि * जग हित रामायण राखि भनि
नीच ऊँच जेते नर नारी * श्रीरामायण सब कहँ प्यारी
रामायण सों नेह लगावै * अधम अपत्य सो चित सुत पावै
दोहा–रामायण सों नेह किय, सिद्ध होत सब काम।
है सबको कल्याणप्रद, पढ़ सुन लेहु विश्राम ॥ ५ ॥
निगमादिक जोइ ब्रह्म कमण्डल * रामायण स्थिति गङ्गा जल
भागीरथ सम तुलसीदास पुनि * भाषा चतुर कीन जनु सुर धुनि
होत रहै इक ठाँव रामायण * तेहि मग आवत पाप परायण
कछुक कान महँ परि गई बाता * चलय पन्थ कहुँ भयौ प्रपाता
गिरते समय छूटि तन गयऊ * तहँ अद्भुत इक अचरज भयऊ
ताहि लेन आये यमदूता * निज पाशन बाँध्यौ मजबूता
अति आतुर हरिजन तहँ आये * छीन लीन्ह बहु त्रास दिखाये
दोहा–रामायण परताप सों, गयौ पार्षदन्ह साथ।
दूत चले यम के सदन, खीजत मींजत हाथ ॥ ६ ॥
निज दूतन्ह देखे बिलखाता * पूछी भानु तनय कुशलाता

किन्ह तुमको दीन्हों दुख भाई * चार चतुर तुम देहु बताई
कहा कहै तुमसे महाराजा * पूछन तुम्हहिं न आवत लाजा
कोउ एक मृत्यु लोक बड़भागो * तुलसीदास भयौ बैरागी
राम कथा रामायण भाखी * सो लोगन घर घर धरि राखी
जे जे विविध भांति के पापी * मांसाहारी और सुरापी
ते सब मिलि रामायण सुनि हैं * कहि हैं लिखि हैं पढ़ि हैं गुनि हैं
ते नहिं ऐहैं सदैव तुम्हारे * सत्य सत्य नृप वचन उचारे
दोहा—लेहु पाश ये आपनो, राखहु अपने पास।
अमल तुम्हारो अब उठौ, सुनि यमभये उदास ॥ ७ ॥
अपनी व्यथा कहन नहिं पाये * तब लगि दूत और तहँ आये
कहन लगे रवि सुत सों रोई * तब चाकरी न हम सो होई
जग में कहुँ न हुकम तिहारो * यह सुन यम चकित रहेउ विचारो
अहौ दूत मोहि कहौ बुझाई * किन्ह दीन्हों मम हुकम उठाई
कहा कहैं कछु कही न जाई * तुलसिदास एक भयो गोसाँई
तिनकी रामायण जग व्यापी * तेहि कीन्हे पवित्र सब पापी
गये हम एक अधम गृह माहीं * अति दुख भयो जाति कह नाहीं
तहँ देखेउ एक कपी बलबाना * उग्ररूप सम सो हनुमाना
दोहा—प्राणन को ग्राहक भयो, तम सों भे अति दीन।
शरण २ तब शरण है, स्तुति बहु बिधि कीन्ह ॥ ८ ॥
तब तौ व्हैं प्रसन्न कपिराई * हम पुनि परतीत कराई
धरी होय रामायण जहँबा * कबहूँ भूलि न जयहुँ तहँबा
जे श्रोता वक्ता रामायण * कबहूँ मत न जायहु तेहि आयन
अस हम सों कपि सपथ कराई * तब छूटन पाये मुनिराई
सुनि यमराज बहुत घबराये * निकट बुलाय दूत समुझाये
नाम रूप गुन कथा राम की * किएउ न फेरी तीन धाम की
अजामिल की सुरति करौ जू * और न कछु चित माँझ धरौ जू
थकि से रहे दूत सुन बानी * धनि श्रीरामायण महारानी
दोहा—रामायण ते जमि ... ...

यमपुर ताकौ शोर है, ममता की नहिं और ॥ ९ ॥
पातक महा लग्यौ किन होई * रामायण सुन रहै न कोई
चाहै चारौं फल कौ साधन * करु रामायण कौ आराधन
रामायण सुनि पाप पराने * जिमि हिमऋतु महँ मशकनशाने
कलियुग तरनि उपाय न होई * राम भजन रामायण दोई
कथा रामायण की जहँ होई * सो गृह घर मति जान न कोई
सो घर तीर्थ रूप सम भासै * तहाँ गये सब पातक नासै
पाप बास देही महँ तब लग * श्रीरामायण सुनै न जब लग
उदय पुरानौ पुण्य होय जब * रामायण महँ मन लाग तब
दोहा–रामायण के सुनत हीं, छूट जाय प्रेतत्व ।
जाके पढ़े सुने ते, समुझत है पर तत्व ॥ १० ॥
को जाने रामायण कौ रस * यह तौ है सन्तन कौ सरबस
बनज सनेही अलिगण जैसे * भक्तन प्रिय रामायण तैसे
त्याग भक्तजन ग्रन्थ अनेकू * धारण किय रामायण एकू
भक्तन कहँ है भक्ति अनूपा * रसिक जनन कहँ है रस रूपा
ज्ञानमयी तिन कहँ जे ज्ञानी * तुलसी तारण तरण बखानो
काम क्रोध रुज बस सँसारा * औषधि रामायण अनुसारा
रामायण महँ नेह न जाकौ * जीवन शव सम जानिय ताकौ
रामायण जा कहँ प्रिय नाहीं * वृथा जनम ताकौ जग माहीं
दोहा–रामायण अमृत कथा, लेत न ताकौ स्वाद ।
तिनको निश्चल जानिये, हैं पूरे मनुजाद ॥ ११ ॥
रामायण विधि कहौं विशारद * सनत्कुमार सों भाषी नारद
सहित विधान सुनै जो कोई * सहज मुक्ति पावै नर सोई
कार्तिक माघ चैत चित लाई * नव दिन सुनै कथा सुखदाई
ब्रह्म मुहूर्त समय हो जबहीं * कर्म करै शौचादिक तबहीं
करै दन्त धावन लट जीरा * मन्जन करै धरै मन धीरा
पुनि रामायण पुस्तक अरचै * प्रेम सहित गन्धादिक चरचै
ॐ नमो रामायण मन्त्र भनीजै * तीन आहुती होम करीजै

मन वचन कर्म पाप तनु केरे * छूटि जात नहिं आवत नेरे
दोहा—या विधि रामायण बिधी, जो करि हैं चितलाय।
रामधाम ते जाय हैं, संसृति दुखहि मिटाय ॥ १२ ॥
जो कछु कारज कहँ कोउ जाई * सुमिरि चले सो यह चौपाई
प्रविशि नगर कीजें सब काजा * हृदय राखि कौशलपुर राजा
जो विदेश चाहै कुशलाई * तो यह सुमिरि चले चौपाई
रथ चढ़ि सिया सहित दोउ भाई * चले वनहि अवधिहि सिर नाई
भूत पिशाच जाहि सब लागै * यह सौरठा पढ़त सो भागै
सो०—वन्दौं पवन कुमार, खलबन पावकज्ञानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं, राम शर चाप धरि ॥ १ ॥
शत्रु निवारन चहौ जो भाई * भाव सहित जपु यह चौपाई
जाके सुमिरन ते रिपु नाशा * नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा
यह चौपाई जपै जो कोई * अन्न आदि दुख ताहि न होई
विश्व भरण पोषण कर जोई * ताकर नाम भरत अस होई
जो उत्सव चह विविध प्रकारा * करु यह चौपाई अनुसारा
जब ते राम ब्याहि घर आये * नित नव मङ्गल मोद बधाये
जो चाहो जग में जय भाई * स्थिर होय जपु यह चौपाई
सखा धर्ममय अस रथ जाके * जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके
हैं बहु भाँति कार्य जग माहीं * रामायण सों सब व्है जाहीं
दोहा—सकल भाँति मन कामना, यह दोहा दातार।
रामायण महँ खोज करि, करू याके अनुसार ॥ १३ ॥
यह शोभा सुसमाज सुख, कहत न बनत खगेश।
वरणौ शारदा शेष मुनि, सो रस जान महेश ॥ १४ ॥
वरणौ एक रुचिर इतिहासा * तुलसिदास जो कीन्ह तमासा
द्राविण अरु काशी महिपाला * कहुँ एकत्र रहे कछु काला
अतिशय प्रीति बढ़ी दोउ माहीं * मन में कपट लेश कछु नाहीं
गर्भवती भई दोऊ नृप नारी * चली बात दोउन कह डारी

द्राविण कही बात सुखरासी * सुनहु नृपति काशी के वासी
जन्मे तब सुत सुता हमारे * अथवा मम सुत सुता तुम्हारे
अस संयोग होय जो नाहू * हम तुम करहि विवाह उछाहू
सुखद समय नायउ जब कोऊ * निज निज भवन गये नृप दोऊ
सो०—कन्या भइँ दुहुँ और, जानी जात न दैव गति ।
कहि पठयो सुत मोर, द्रविड़ दूत काशी गये ॥ २ ॥
यह छल होत भयो जेहिं लाई * सो वह हेतु कहौं मैं गाई
द्राविणपति निज गृह आयो जब * रानी सों अस कहत भयो तब
जो होइ कन्या दोऊ ओरा * तौ मैं प्राण तजब बरजोरा
सुनि रानी राजा मुख बानी * मनमें बहुत भाँति भय मानी
उपरोहि कहँ लिहेसि बुझाई * नृपदुराय यह बात बुझाई
मम अहिवात तुम्हारे हाथा * नाहिं तौ प्रभु मैं होब अनाथा
रानी द्रव्य कीन्ह नहिं थोरी * भय मायावश द्विज मतिभोरी
सेवकसेवकायनि वश कीन्हेसि * आदर दान मान बहु दीन्हेसि
दोहा—सेवक एक दीन्ह तेहि, वाराणसी पठाय ।
तेहिते पायसि खबर सब, तब यह कहेसि उपाय ॥१५॥
पुत्र नाम धरि गुप्त रखायौ * द्वादश वर्ष न द्वार दिखायौ
विदुषन कहेउ न कोउ पेखे * व्याह समय सब कोउ देखे
मित्र मिलनहित चित अनुराग्यो * नेगी पठइ ब्याह पुनि माँग्यो
अति आनन्द चल्यौ मन बेगी * काशी नृप पहँ आयो नेगी
नृप मन मुदित पत्रिका बाँची * लै आबौ बरात रङ्ग राँची
आयौ ब्याहन द्राविण राजा * खुली बात उपजी अति लाजा
क्रोधातुर काशी अवनीशा * कहि कटि हों द्राविण नृप शीशा
यह सुनि द्राविण अधिक डराने * निजखल समुझि-समुझि पछिताने
दोहा—अति सभीत अति दीन व्है, गए जहँ तुलसीदास ।
पाहि पाहि कहि पाँय परि, कहेउ करौ दुख नास ॥ १६ ॥
तब काशी नृप कहँ बुलवायौ * तुलसीदास हित कर समझायौ

सुत कहि सुता जो व्याहन आयौ * होत पुत्र तो होत बधायौ
जो यह पुत्र होय महाराजा * करहिं विवाह साज सब साजा
तुलसीदास वेदि विचराई * तहँ गणेश गौरी पधराई
सिंहासन पर धर रामायण * नव दिन भर कीन्हो पारायण
कन्या कौ वर वेष बनायो * ताही को सन्मुख बैठायो
वक्ता आप सो श्रोता भई * दुनियाँ सब देखन को गई
कथा सकल जब बाँचि सुनाई * तासु शीश कर धरेउ गोसाँई
मन्त्र महामणि विषय व्याल के * मेटत कठिन कुअङ्क भाल के
दोहा–अरु यह चौपाई पढ़ी, रामहि सुमिर प्रसन्न ।
तेहि अवसर वह है गयौ, श्रीरामायण धन्य ॥ १७ ॥
रामायण जब कही गौसाँई * मेंटन हित काशी फिर आई
आदर कीन्ह न पण्डित काऊ * कहैं जो हम सो करौ उपाऊ
जहँ अस्थान कहो तह जाहू * पोथी अब न दिखावहु काहू
श्रीआनन्द कान्ह ब्रह्मचारी * हम शिर मौर सुमहिमा भारी
जो जाको लै आदर करि हैं * तौ हम सब लै सीसहिं धरि हैं
गए आनन्द कान्ह पहिं तत्पर * करत प्रशँस प्रसन्न परस्पर
पोथी की चर्चा पुनि कीन्ही * देखन हेतु सों लै धरि लीन्हो
कछु दिन पढ़ी सहित अनुरागन * गये गोसाँई पोथी माँगन
दोहा–पौथी दइ जब अस कह्यौ, हुई है आदर लोक ।
निज प्रणाम करि लिखि दियौ, यह अद्भुत श्लोक ॥ १८ ॥
श्लोक–आनन्द कानने ह्यस्मिन्जङ्ग मस्तुलसीतरुः ।
कविता मंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता ॥
छन्द–धन्य धन्य तुलसीदास निज जग हेतु रामायण भनी ।
माहात्म्य अतित न कह सकौं रस विषय मह मति सनी ॥
निज बुद्धि के अनुसार कहि गोपाल सद्‌गुरु की कथा ।
रघुवीर यश की अधिकता श्रीसन्तजन कर हैं मथा ॥
* इति श्रीरामायण–माहात्म्य सम्पूर्ण *

※ श्री विघ्नेश्वराय नमः ※



※ अथ मङ्गलाचरणम् ※

—: श्लोक :—

वर्णानामर्थसंघानां रसनां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ।। १ ।।

अक्षरों, अनेक प्रकार के अर्थों, अनेक छन्दों और मंगलों के करने वाली श्रीसरस्वतीजी और गणेशजी की मैं वन्दना करता हूँ ।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरुपिणौ ।
याभ्यां बिनानपश्यन्ति सिद्धाःस्वान्तः स्थमीश्वरम् ।। २ ।।

मैं श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्रीपार्वतीजी और शंकरजी की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा के बिना सिद्ध लोग अपने अन्तकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते ।

बन्दे बोधमंय नित्यं श्रीगुरुम् शङ्कररुपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।। ३ ।।

मैं ज्ञान से परिपूर्ण, नित्य, (सदैव, ब्रह्मनिष्ठ) शिव स्वरूप गुरुदेव की वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होकर ही टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है ।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
बन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ।। ४ ।।

श्रीसीतारामजी के गुण समूह रूपी पवित्र वन में विहार करने वाले तथा परम ज्ञानी कवीश्वर श्रीवाल्मीकिजी और कपीश्वर श्रीहनुमानजी की मैं वन्दना करता हूँ ।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।। ५ ।।

मैं संसार उत्पन्न, पालन, संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली और सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली श्रीरामचन्द्र की प्रिय सीताजी को नमस्कार करता हूँ।

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्वादमृषैव भातिसकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

जिनकी माया के वश में सम्पूर्ण, ब्रह्मादिक देवता असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सब प्रपंच (माया रूपी जगत) सत्य सा प्रतीत होता है, एवं जिनके चरण ही संसार सागर से तर जाने की इच्छा करने वाले प्राणियों को एक मात्र नौका रूप हैं, उन कारणों से परे श्रीराम नामक श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

नानापुराण निगमागमसम्मतं पद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषा निबन्ध मति मन्जुल मातनोति ॥ ७ ॥

अठारहों पुराण, चार वेद और छहों शास्त्रों से समस्त जो बाल्मिकि रामायण को कहा है तथा कुछ अन्यत्र से भी प्राप्त श्रीरघुनाथजी की कथा को अपने अन्तःकरण सुख के लिए तुलसीदास अति मनोहर भाषा-प्रबन्ध में विस्तार से वर्णन करता है।

सो०–जेहि सुमिरतसिधि होई, गणनायन करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि शुभगुण सदन ॥ १ ॥

जिन्हें स्मरण करने से सिद्धि प्राप्त होती है, गुणों के स्वामी, सुन्दर हाथी के मुखवाले हैं, वे बुद्धि के समूह और शुभ गुणों के भण्डार श्रीगणेशजी मेरे ऊपर कृपा करें।

मूक होय बाचाल, पंगु चढ़हिं गिरबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयालु, द्रवहु सकल कलिमल दहन ॥ २ ॥

जिनकी कृपा से गूंगा बहुत बोलने लग जाता है और लंगड़ा दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है, वे कलियुग के सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाले परम दयालु ईश्वर मेरे ऊपर कृपा करें।

नील सरोरुह श्याम, तरुन बारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीरसागर सयन ॥ ३ ॥

नील कमल के समान श्याम वर्ण और खिले हुए लाल कमल के समान नेत्रों वाले, जो सदैव क्षीर सागर में शयन करते हैं, वे श्रीहरि मेरे हृदय में निवास करें।

कुन्दु इन्दु सम देह, उमा रमण करुणा अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन ॥ ४ ॥

कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा के समान देह वाले पार्वती के साथ विहार करने वाले दया के स्थान, दीनों पर स्नेह-कर्ता हैं, ऐसे कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी मेरे ऊपर कृपा करें।

बन्दउँ गुरु पद कञ्ज, कृपासिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुञ्ज, जासु बचन रबिकर निकर ॥ ५ ॥

मैं गुरुदेव के कमल-स्वरूप चरणों की वन्दना करता हूँ, जो दया के समुद्र और मनुष्य-रूप में साक्षात श्रीहरि ही हैं और जिनका वाक्य सदा अज्ञानी रूपी महा अन्धकार को नाश करने में सूर्य की किरणों के समान है।

बन्दउँ गुरु पद पदुम परागा * सुरुचि सुबास सरस अनुरागा
अमिय मूरमय चूरन चारू * समन सकल भव रुज परिवारू

मैं उन गुरुदेव के चर की वन्दना करता हूँ, जो सुन्दर, स्वादिष्ट तथा अनुराग रूपीरस से पूर्ण हैं। वह अमृत बूटीका चूर्ण है,जिससे समस्त संसाररूपी रोगों के परिवारका नाशहो जाता है।

सुकृति सम्भु तनु बिमल बिभूती * मञ्जुल मगंल मोद प्रसूती
जन मनु मंजु मुकुल मल हरनी * किएँ तिलक गुनगन बस करनी

वह चरण-रज सुकृति (पुण्यवान् पुरुषों) रूपी शिवजी के शरीर की उज्जल विभूति है, सुन्दर कल्याण व आनन्द को उत्पन्न करने वाली है, भक्तजनों के मनरूपी दर्पण के मैल को हरने वाली है और धारण करने से सब गुणों को वश में करती है।

श्रीगुरु पद नख मणिगन जोती * सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती
दलन मोह तम सो सुप्रकासू * बड़े भाग्य उर आवइ जासू

श्रीगुरुदेव के चरणों की नख-ज्योति मणि-समूह के प्रकाश के समान है। उनके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य-दृष्टि हो जाती है। वह मोहरूपी अन्धकार को दूर कर सुन्दर प्रकाश करने वाली है, वह बड़ा ही भाग्यशाली है, जिसके हृदय में वह प्रकाश आता है।

उघरहिं बिमल बिलोचन हियके * मिटहिं दोष दुख भव रजनी के
सूझहिं रामचरित मन मानिक * गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक

उस प्रकाश से हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष, दुःख दूर हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजी के माणिक रूपी चरित्र जहां और जिस स्थान में गुप्त तथा प्रगट हैं, वे सब दिखाई देने लगते हैं।

दोहा—यथा सुअञ्जन अञ्जि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

जैसे मन्त्र–सिद्ध अंजन को नेत्र में लगाकर सुजान, साधक और सिद्धजन-पर्वतों, वनों और पृथ्वी में नाना प्रकार के कौतुक करते हैं।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन * नयन अमिय दृग दोष बिभंजन
तेहिं कर बिमल बिबेक बिलोचन * बरनउँ रामचरित भव मोचन

गुरु-चरण-रज कोमल नयनामृत अंजनहै और नेत्रोंके दोषोंको दूर करता है। मैं उसीसे अपने ज्ञानरूपी नेत्रोंको निर्मलकर संसार से मुक्ति देने वाले 'श्रीराम-चरित्र' का वर्णन करता हूँ।

बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना * मोह जनित संसय सब हरना
सुजन समाज सकल गुन खानी * करउँ प्रणाम सप्रेम सुबानी

पहले पृथ्वी के देवता-ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ,जो मोह से उत्पन्न सब संशयों को हर लेते हैं, सब गुणों की खान सन्त-समाज को मैं प्रेम सहित वाणी से प्रणाम करता हूँ।

साधु चरित सुभ चरित कपासू * निरस बिसद गुनमय फल जासू
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा * बन्दनीय जेहिं जग जस पावा

साधुओं का चरित्र कपासके समान है जिनका फल रसरहित होने पर भी स्वच्छ और गुणमय होता है। साधु स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों के दोषछिपाते हैं,इसीसे संसार में वन्दनीययशपाते हैं।

मुद मङ्गलमय सन्त समाजू * जो जग जङ्गम तीरथराजू
राम भगति जहँ सुरसरि धारा * सरसइ ब्रह्म बिचारि प्रचारा

संत–समाज आनंद–मंगल से परिपूर्ण है,जो संसार में चलनेवाला तीर्थराज(प्रयाग)है, जहां (संतसमाजरूपी प्रयाग)में रामभक्ति ही गंगाकी धारा है और ब्रह्मविचारका प्रचार सरस्वती है।

बिधि निषेधमय कलिमल हरनी * करम कथा रबिनन्दन बरनी
हरि हर कथा बिराजति बेनी * सुनत सकल मृदु मङ्गल देनी

विधि तथा निषेधरूपी जो कर्म काण्ड की कथा है, वही कलयुग के पापों को हरने वाली है। सूर्य-पुत्री यमुना, विष्णु और शिवजी की कथा मिलकर सुन्दर त्रिवेणी है,जो सूनने से आनन्द-मंगल को देने वाली है।

बटु बिश्वास अचल निज धरमा * तीरथराज समाज सुकरमा
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा * सेवत सादर समन कलेसा

धर्म में अचल विश्वास अक्षय–वट है और सुकर्म ही तीर्थराज के वासी हैं। वह(भक्त-समाज रूपी प्रयाग) सबको, सब दिन, सब देशों में सुलभ है और आदर पूर्वक सेवन करने से क्लेशों को नाश करने वाला है।

अकथ अलौकिक तीरथराऊ * देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ

यह तीर्थराज अकथनीय और आलौकिक है, यह तुरन्त फल देता है और इसका प्रभाव जगत् प्रसिद्ध है।

दोहा–सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।

लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥ २ ॥

जो इस प्रकार प्रसन्न चित्त हो बड़े प्रेम से उनके उपदेश सुनकर मनन करते हैं और मनमें मग्न हो जाते हैं, वे शरीर के रहते हुए भी चारों फलों को प्राप्त करते हैं।

मज्जन फल देखिय तत्काला * काक होहिं पिक बकउ मराला
सुनि आचरण करै जनि कोई * सतसङ्गति महिमा नहिं गोई

तीर्थराज में स्नान का फल तुरन्त दिखाई देता है कि कौआ कोयल और बगुला हंस हो जाता है। यह सुनकर कोई अचरज न करे, क्योंकि सत्सङ्गति की महिमा छिपी नहीं है।

बालमीक नारद घट जोनी * निजनिज मुखनि कहीनिज होनी
जलचर थलचर नभचर नाना * जे जड़ चेतन जीव जहाना

वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपने २ मुख से अपनी २ होनी कही। जलचर, थलचर व नभचर अनेक प्रकार के जड़ और चेतन-जीव संसार में हैं।

मति कीरति गति भूति भलाई * जब जेहिं जतन जहाँ पहिं पाई
सो जानब सतसङ्ग प्रभाऊ * लोकहुँ बेद न आन उपाऊ

बुद्धि, यश, मोक्ष, ऐश्वर्य भलाई जिस उपाय से जहाँ जिसने पाई है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव है। लोक और वेद में इससे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई * राम कृपा बिनु सुलभ न सोई
सतसंगत मुद मंगल मूला * सोई फल सिधि सब साधन फूला

बिना सत्सङ्ग के ज्ञान नहीं होता, सत्सङ्ग श्रीरामजी की कृपा के बिना मिलना दुर्लभ है। सत्सङ्ग आनन्द-मंगल की जड़ है, सिद्धि उसका फल है और सब साधन उसके फूल हैं।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई * पारस परसि कुधातु सुहाई
बिधि बश सुजन कुसंगति परहीं * फणि मणि सम निजगुण अनुसरहीं

दुष्टजन भी अच्छी संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस को छूने से लोहा कंचन हो जाता है। दैव-योग से यदि—सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो सर्प की मणि के समान अपने गुणों के अनुसार रहते हैं।

बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी * कहत साधु महिमा सकुचानी
सो मो सन कहि जात न कैसे * साक बनिक मणि गुनगन जैसे

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कवि और पण्डितों की वाणी भी साधु-महिमा वर्णन करते सकुचाती है। वह मुझसे कैसे नहीं कही जाती, जैसे कि कुजड़ा मणियों को नहीं जानता।

दोहा—बन्दउँ सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत शुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोइ ॥ ३क ॥

मैं उन समदर्शी संतों की वन्दना करता हूँ, जिनका मित्र और शत्रु कोई नहीं है।

जैसे अंजली में लिए फूल दोनों हाथों को बराबर सुगन्धित करते हैं, वैसे ही सन्त—शत्रु और मित्र दोनों का समान रूप से कल्याण करते हैं।

दोहा—सन्त सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु ॥३ख॥

सन्त—सरल चित्त और जगत हितकारी हैं उनका ऐसा स्वभाव और स्नेह जानकर मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझ बालक की विनती सुन कृपा करके श्रीरामजी के चरणों में प्रीति दें।

बहुरि बन्दि खलगन सति भाएँ * जे बिन काज दाहिनेहु बाएँ
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें * उजरें हरष बिषाद बसेरें

मैं सच्चे भाव से उन दुष्टजनों की वन्दना करता हूँ, जो बिना कार्य ही अपने हितैषियों के शत्रु बन जाते हैं। दूसरों के हित की हानि में ही जिनको लाभ है तथा किसी के उजड़ने में प्रसन्नता और बसने से जिन्हें दुःख होता है।

कहत सुनत पर अघ न अघाहीं * जे पृथु शेष सरिस जग माहा
हरि हर जस राकेश राहु से * पर अकाज भट सहस्त्रबाहु से

जो दूसरे के पापों को कहते—सुनते नहीं अघाते हैं, वे मानो पृथु और शेषजी के समान वृथा ही संसार में आकर प्रकट हुए हैं। जो श्री विष्णु और शिवजी के यशरूपी चन्द्रमा को राहु के समान और दूसरे का काम बिगाड़ने को सहस्रबाहु के समान योद्धा बन जाते हैं।

जे पर दोष लखहिं सहसाखी * परहित घृत जिनके मन माखी
तेज कृसानु रोष महिशेषा * अघ अवगुण धन धनी धनेषा

जो पराये दोषों को हजार नेत्रों से देखते हैं और पराये हितकारी घी को बिगाड़ने में जिनका मन मक्खी के समान है दुष्टों को तेज, अग्नि और क्रोध यमराज के समान है। पाप और अवगुण रूपी धन के लिए तो वे साक्षात् कुबेर ही हैं।

उदय केतु सम हित सबही के * कुम्भकरण सम सोवत नीके
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं * जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं

जैसे केतु के उदय से सबको क्लेश होता है इसी प्रकार दुष्टों की बुद्धि से सबको क्लेश होता है, उनका तो कुम्भकर्ण के समान सोते रहना ही अच्छा है। वे पराये काम बिगाड़ने को अपना शरीर तक त्याग देते हैं, जैसे पाला और औले खेती को नष्टकर आप भी नष्ट हो जाते हैं।

बन्दउँ खल जस शेष सरोषा * सहस बदन बरनइ परदोषा
पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना * पर अघ सुनहिं सहस दस काना

उनदुष्टों को मैं शेषजी के समान जानकर वन्दना करता हूँ, क्रोधावेश में हजार मुखों से पराये दोषों का वर्णन करते हैं। पुनः मैं उन दुष्टजनों को राजा पृथु के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो पराये दोषों को दस हजार कानों से सुनते हैं।

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही * सन्तत सुरानीक हित जेही
बचन वज्र जेहि सदा पियारा * सहस नयन परदोष निहारा

फिर मै उनको इन्द्र के समान नमस्कार करता हूं जिन्हें नीक (अच्छी) सुरा (मदिरा) सर्वंब प्रिय लगती है, जैसे इन्द्र को सुरअनीक (देव-सेना) सदा प्रिय है । जिनको कठोर वचन सदा प्यारा लगता है और जो अपने नेत्रों से हजार नेत्रों के समान पराये दोषों को देखते हैं ।

दोहा–उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खलरीति ।
जानि पानि जुग जोरि जन, बिनती करहुँ सप्रीति ॥ ४ ॥

उदासीन, शत्रु और मित्र का हित सुनते ही वे जल जाते हैं–यह दुष्टों की रीति है । यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर प्रीति सहित मैं उनसे प्रार्थना करता हूं ।

मैं आपन दिसि कीन्ह निहोरा * तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा
बायस पालिहिं अति अनुरागा * होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा

मैंने तो अपनी ओर से विनती करली है, परन्तु वे अपनी ओर निष्कपट–भाव नहीं लावेंगे, चाहे खीर खिलाकर प्रेम से कौए को पालो, तो भी क्या वह बिना माँस खाये रह सकता है ।

बन्दउँ सन्त असज्जन चरना * दुखप्रद उभय बीच कछु बरना
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं * मिलत एकदुख दारुण देहीं

अब मैं सन्त और असन्त दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ, दुःख–दाता दोनों ही हैं परन्तु दोनों के बीच में कुछ भेद हैं । एक (सन्त) तो गुणों से बिछुड़ते समय मानो प्राण हर लेते हैं, और एक अवगुणों से मिलते ही महान दुःख देते हैं ।

उपजहिं एक संग जग माहीं * जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं
सुधा सुरा सम साधु असाधू * जनक एक जग जलधि अगाधू

संसार में दोनों ही एक साथ पैदा होते हैं, परन्तु कमल और जोंक के समान गुण पृथक्-पृथक् होते हैं । अमृत के समान साधु हैं और मदिरा के समान असाधु इन दोनों का पिता संसार अर्थात्–अमृत और मदिरा का पिता अथाह समुद्र है ।

भल अनभल निज निज करतूती * लहत सुजस अपलोक बिभूती
सुधा सुधाकर सुरधरि साधू * गरल अनल कलिमल सरव्याधू
गुण अवगुण जानत सब कोई * जो जेहि भाव नीक तेहि सोई

संत और असंत अपनी २ करतूत से सुयश और अपयश रूपी विभूति को पाते हैं । अमृत, चन्द्रमा, गंगा, साधू, गरल, अग्नि, कर्मनाशा नदी, व्याधि–इन सबके गुण और अवगुण सब कोई जानता है, परन्तु जिसको जो प्रिय लगे–वही अच्छा है ।

दोहा–भलौ भलाई पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु ।
सुधा सराहिय अमरताँ, गरल सराहिअ मीचु ॥ ५ ॥

भले-जन भलाई से बड़ाई पाते हैं और नीच-जन निचाई से, अमृत अपने अमरता के गुण से और विष तत्काल मारने से सराहनीय है ।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा * उभय अपार उदधि अवगाहा
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने * संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने

दुष्ट अवगुण एवं साधु गुण ग्रहण करते हैं, दोनों अपार और अथाह समुद्र हैं । इसी से मैंने उनके कुछ गुण और दोष कहे हैं, क्योंकि बिना पहचाने उनका संग्रह और त्याग नहीं होता ।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए * गनि गुनि दोष बेद बिलगाये
कहहिं बेद इतिहास पुराना * बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना

भले-बुरे सभी ब्रह्मा ने पैदा किए हैं और वेदों ने उनके गुण-दोष विचारकर उनके विभाग किये । वेद,पुराण और इतिहास सब कहते हैं कि ब्रह्मा की सृष्टिमें गुण-अवगुण दोनों मिले हुए हैं ।

दुख सुख पाप पुण्य दिन राती * साधु असाधु सुजाति कुजाति
दानव देव ऊँच अरु नीचू * अमिअ सुजीवन माहुरु मीचू

दुख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाती, कुजाति, देव-दानव, ऊंच-नीच, अमृत-विष, संजीवन-मृत्यु–

माया ब्रह्म जीव जगदीसा * लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा
काशी मग सुरसरि कर्मनासा * मरु मारव महिदेव गवासा
सरग नरक अनुराग विरागा * निगमागम गुण दोष बिभागा

माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, लक्ष्मी-दरिद्रता,रंक-राजा, काशी-मगध देश, गंगा-कर्मनाशा नदी, मारवाड़-मालवा प्रदेश, ब्राह्मण-म्लेच्छ, स्वर्ग-नर्क, प्रेम-वैराग्य ये सब मिले है । वेद-शास्त्रों ने इनके गुण दोषों का विभाग कर दिया है ।

दोहा–जड़ चेतन गुन दोषमय, विश्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥ ६ ॥

ब्रह्मा ने संसार में जड़-चेतन जीवों को गुण-दोषों से युक्त बनाया है,परंतु हंसरूपी सन्त-जन जलरूपी दोष को त्याग कर दुग्धरूपी गुण को ही ग्रहण करते हैं ।

अस बिबेक जब देइ बिधाता * तब तजि दोष गुनहिं मनु राता
काल सुभाउ करम बरिआई * भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई

ऐसा (नीर-क्षीर-न्याय) ज्ञान जब विधाता देता है, तब अवगुणों को छोड़ गुणों में मन लगता है। परन्तु समय, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले पुरुष भी माया के वश भलाई से चूक जाते है ।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं * दलिसुख दोष बिमल जसु देहीं
खलहु करहिं भल पाइ सुसंगू * मिटइ न मलिन सुभाउ भुअंगू

भगवद्भक्त जैसे उस भूल को सुधारकर दुःख और दोष को दूरकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्टजन अच्छी संगति पाकर भलाई करते हैं, परन्तु उनका दुष्ट स्वभाव नहीं जाता ।

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ ※ बेष प्रताप पूजअहिं तेऊ
उघरहिं अन्त न होई निबाहू ※ कालनेमि जिमि रावन राहू

जो सुन्दर वेष बना जगत् को ठगते हैं, वे भी वेष के प्रताप से पूजे जाते हैं। परन्तु बीच में ही वह कपट स्वरूप खुलने से अंत तक उसका निर्वाह नहीं होता, जैसे कालनेमि रावण और राहु का हुआ।

किएहुँ कुवेष साधु सनमानु ※ जिमि जग जामवन्त हनुमानू
हानि कुसंग सुसंगति लाहू ※ लोकहूँ वेद विदित सब काहू

साधु बुरा वेष भी धारण किये हों, तो भी उनका सम्मान ही होता है, जैसे जगत्में जामवंत और हनुमान का हुआ। कुसङ्ग से हानि तथा सुसङ्ग से लाभ होता है, लोक और वेद में यह सबको विदित है।

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा ※ कीचहिं मिलइ नीच जल संगा
साधु असाधु सदन शुक सारीं ※ सुमिरहि राम देहिं गनि गारीं

धूल पवन के साथ आकाश में चढ़ जाती है और वही नीचे जाने वाले जलके साथ कीच में मिलती है। साधु के घर में तोता-मैंनाराम२ रटते हैं और असाधु के घरमें तोता-मैंना गाली देते हैं।

धूमि कुसंगति कालिख होई ※ लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई
सोइ जल अनल अनिल संघाता ※ होइ जलद जग जीवनदाता

कुसङ्ग के कारण धुआँ कालिख कहलाता है और सुसङ्गति से वह अच्छी स्याही बनकर पुराण लिखने के काम आता है। वही धुआँ जल, अग्नि, वायु के सम्बन्ध से भावरूप बादल होकर संसार को जीवन देने वाला हो जाता है।

दोहा—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लहहिं सुलच्छन लोग॥ ७क॥

ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र ये कुयोग और सुयोग पाकर संसार मे भले और बुरे हो जाते हैं यह बात तो चतुर लोग ही जानते हैं।

सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि, जगयश अपयश दीन्ह॥ ७ख॥

यद्यपि महीने के दोनों पक्षों में उजाला और अँधेरा एक समान रहता है तथापि विधाता ने उनके नामों में भेद कर दिया है। एक पक्ष में चन्द्रमा को बढ़ने वाला और दूसरेमें घटने वाला समझ कर यश, अपयश दे दिया है।

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बन्दउँ सबके पद कमल, सदा जोरि जग पानि॥ ७ग॥

जितने भी जड़ और चेतन जीव संसार में हैं, उन सबको राममय जानकर सबके चरण कमलों की मैं बन्दना करता हूँ।

दोहा–देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गन्धर्ब।
बन्दउँ किन्नर रजनीचर, कृपा करहु अब सर्ब ॥ ७घ ॥

देवता, दैत्य, मनुष्य, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और निशाचर इन सबकी मैं वन्दना करता हूँ अब मुझ पर आप सब कृपा करो।

आकर चारि लाख चौरासी * जाति जीव जल थल नभ बासी
सीय राममय सब जग जानी * करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी

चार प्रकार के जीव (स्वेदज, उद्भिज, अण्डज तथा जरायुज) हैं, इनकी चौरासी लाख योनि हैं और यह पृथ्वी, जल तथा आकाश में रहते हैं। इससे जगत को सीताराम मय जानकर दोनों हाथ जोड़कर मैं वन्दना करता हूँ।

जानि कृपा कर किंकर मोहू * सब मिलि करहु छाड़ि छलछोहू
निजबुधिबल भरोस मोहि नाहीं * ताते विनय करहुँ सब पाहीं

मुझे अपना सेवक जानकर आप सब निष्कपट हो मुझ पर दया करो। मुझे अपनी बुद्धि-बल का भरोसा नहीं है इसलिए सबसे विनय करता हूँ।

करन चहउँ रघुपति गुणगाहा * लघुमति मोरि चरित अवगाहा
सूझ न एकउ अङ्ग उपाऊ * मन मति रंक मनोरथ राऊ

मैं श्री रघुनाथजी के गुणों का वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी और चरित्र अथाह है। कविता के अनेक अङ्गों में से मुझे कोई और उपाय नहीं सूझता। मेरा मन और बुद्धि कंगाल हैं, किन्तु मेरा मनोरथ राजा है।

मति अति नीच ऊँच रुचि आछी * चहिअ अमिय जग जुरई न छाछी
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई * सुनिहहिं बाल बचन मन लाई

और बुद्धि तो बहुत नीची और चाह बहुत ऊंची और सुन्दर है। चाहिए तो अमृतपर संसार में छाछ भी नहीं मिलती। मेरी ढिठाई को क्षमा करेंगे और मेरे बाल–वचन मन लगाकर सुनेंगे।

जौं बालक कह तोतरि बाता * सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता
हँसिहहिं क्रूर कुटिल कुविचारी * जे पर दूषन भूषन धारी

जिस प्रकार बालक तोतली बात कहता है, तो माता-पिता प्रसन्न मनसे सुनते हैं, किन्तु निर्दयी कुटिल और खोटे विचार वाले हँसेंगे जो पराये दोषरूपी भूषण को धारण करने वाले हैं।

निज कबित्त केहि लाग न नीका * सरस होउ अथवा अति फीका
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं * ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं

रसीला हो अथवा फीका हो, अपना काव्य किसे अच्छा नहीं लगता? जो दूसरे की रचना को सुनकर प्रसन्न होते हैं, ऐसे श्रेष्ठ संसार में बहुत नहीं हैं।

जग बहु नर सरि सम भाई * ते निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई

सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई * देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई

संसार में तालाबों और नदियों के समान ही मनुष्य अधिक हैं, जो अपनी बाढ़ से ही बढ़ते हैं पुण्यात्मा सज्जन तो कोई-कोई हैं, जो समुद्र के समान पूर्णचन्द्र को देखकर बढ़ते हैं।

दोहा—भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास ॥ ८ ॥

मेरा भाग्य तो छोटा है और अभिलाषा बड़ी है, परन्तु मुझे एक ही बात का विश्वास है कि सन्त-जन उसको सुनकर सुख पावेंगे और दुष्ट-जन उपहास करेंगे।

खल परिहास होइ हित मोरा * काक कहहिं कल कण्ठ कठोरा
हंसहि बक दादुर चातकही * हँसहिं मलिन खल विमल बतकही

दुष्टों के हँसने से मेरा हित होगा, क्योंकि कौए तो कोयल के कण्ठ को कठोर कहते हैं। जैसे हंस को बगुला, पपीहा को मेंढ़क देखकर हंसता है, इसी प्रकार मलिन आत्मा वाले दुष्ट-जन निर्मल वचन को सुनकर हँसते हैं।

कबित रसिक न राम पद नेहू * तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू
भाषा भनिति भोरि मति मोरी * हँसिवे जोग हँसे नहिं खोरी

न तो जो कविता के रसिक हैं और न जिन्हें श्रीरामजी के चरणों में स्नेह है, उनको भी यह कविता हास्य-रस युक्त होकर सुख देने वाली होगी। यह भाषा में है, दूसरे मेरी बुद्धि भोली है, इससे यह हँसने योग्य ही है, अतः हँसने में कोई दोष नहीं है।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी * तिन्हहिं कथा सुन लागिहि फीकी
हरिहर पद रति मति न कुतर की * तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की

जिनकी प्रभु के चरणों में न तो प्रीति है, न बुद्धि अच्छी है, उनको यह कथा सुनकर फीकी लगेगी। जिनका विष्णु और महादेवजी के चरणों में प्रेम है और बुद्धि कुतर्की नहीं है, उनको यह श्रीरामजी की कथा मधुर लगेगी।

राम भगति भूषित जियँ जानी * सुनहहिं सुजन सराहि सुबानी
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू * सकल कला सब विद्या हीनू

श्रीराम—भक्तिरूपी मणि से सुशोभित जानकर श्रेष्ठ—जन सुन्दर वाणी से प्रशंसा करते हुए इसको सुनेंगे। मैं न तो कवि हूँ, और न बोलने में चतुर हूँ, मैं सम्पूर्ण कला तथा सब विद्याओं से रहित हूँ।

आखर अरथ अलंकृति नाना * छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना
भाव भेद रस भेद अपारा * कबित दोष गुण बिबिध प्रकारा
एकउ कवित विवेक न मोरें * सत्य कहहूँ लिख कागद कोरें

अक्षरों के अर्थ, अलंकार, छन्द रचना के विधान भावों और रसों के भेद तथा कविता के दोष गुण अनेक प्रकार के हैं। कविता के ज्ञान से कोई मुझमें नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ।

दोहा—भनिति मोर सब गुण रहित, विश्व बिदित गुण एक ।
सो बिचारि सुनहहिं सुमति, जिन्हकें बिमल बिबेक ॥ ९ ॥

मेरी कविता सब गुणों से रहित है । इसमें केवल एक गुण है, जो संसार में प्रसिद्ध है । उसे विचार कर इसको वही सुनेंगे, जिनकी मति अच्छी और हृदय में निर्मल ज्ञान होगा ।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा * अति पावन पुरान श्रुति सारा
मंगल भवन अमंगल हारी * उमा सहित जेहि जपत पुरारी

इसमें श्रीरघुनाथजी का उदार नाम है जो संसार में प्रसिद्ध, अति पवित्र और वेदों का सार है, मंगल का घर और अमंगल को हरने वाला है, जिसको पार्वती सहित शिवजी भी जपते है।

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ * राम नाम बिनु सोह न सोऊ
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी * सोह न बसन बिना बर नारी

अच्छे कवि की कविता अनौखी हो तो भी श्रीराम-नाम के बिना शोभा नहीं पाती, जैसे चन्द्रमा के समान मुख वाली, सब प्रकार से सुन्दर स्त्री वस्त्रों के बिना शोभा नहीं देती ।

सब गुन रहति कुकबिकृत बानी * राम नाम जस अंकित जानी
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही * मधुकर सरिस सन्तगुन ग्राही

सब गुणों से रहित अनाड़ी कवि की रचना को भी राम-नाम के यशसे अंकित जानकर विद्वान उसको आदर सहित कहते और सुनते है, क्योंकि सत्पुरुष तो भौंरे के समान गुणों के ग्राहक हैं।

जदपि कबित रस एकउ नाहीं * राम प्रताप प्रगट एहि माहीं
सोई भरोस मोरें मन आवा * केहि न सुसंग बड़प्पनु पावा

यद्यपि इसमें कविता का एक भी गुण नहीं है, तथापि इसमें श्रीराम का प्रताप प्रकट है इससे मेरे मन में यही भरोसा है कि अच्छे संग से किसने बड़ाई नहीं पाई है ?

धूमउ तजइ सहज करूआई * अगरू प्रसंग सुगन्ध बसाई
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी * राम कथा जग मंगल करनी

धुआँ भी अगर के साथ सुगन्धित होने से कड़ुवापन छोड़,सुगन्धयुक्त हो जाता है। मेरीकविता तो भद्दी है, परन्तु एक वस्तु राम-कथा उत्तम है, जो संसार में मंगल करने वाली है ।

छन्द—मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की ॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजस मन भावनी ।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ॥

श्रीरघुनाथजी की कथा मंगलकारी और कलियुग के पापों को हरने वाली है। मेरी भद्दी कवितारूपी नदी की गति पवित्र गंगाजी की भाँति टेढ़ी है। परन्तु रघुनाथजी के सुयश के संग से मेरी कविता भी अच्छी और सत्पुरुषों के हृदय को प्रसन्न करने वाली हो जायेगी ।

शिवजी के अंग में लगी चिता की अपवित्र भस्म स्मरण करने में सुहावनी और पवित्र है।

दोहा—प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम जस संग।
दारु विचारु कि करइ कोउ, बन्दिअ मलय प्रसंग ॥१०क॥

श्रीरामजी के यश से मेरी कविता सभी को प्रिय लगेगी। जैसे मलियागिरि के संग से काष्ठ मात्र वन्दनीय हो जाता है तब क्या कोई उसकी तुच्छता विचारता है?

श्यामसुरभि पय बिषद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥१०ख॥

श्यामा गाय काली है, परन्तु उसका दूध बहुत स्वच्छ और गुणदायक है, यह समझकर सभी लोग उसको पीते हैं। इस प्रकार उस राम-कथा को ग्राम्य-भाषा में होने पर भी सीता रामजी का यश जानकर लोग गाते और सुनते हैं।

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी * अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी
नृप किरीट तरुनी तनु पाई * लहहि सकल सोभा अधिकाई

मणि माणिक और मोती जैसी सोभा है, वैसी शोभा-सर्प, पर्वत और हाथी के मस्तक पर नहीं रहती। राज-मुकट और नव-यौवन का शरीर पाकर यह सभी बहुत शोभा पाते हैं।

तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं * उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई * सुमिरत सारद आवति धाई

इसी प्रकार पण्डित कहते हैं कि सुकवि की कविता उपजती अन्य स्थान में है और शोभा अन्यत्र पाती है। भक्ति के कारण, स्मरण करते ही सरस्वती-ब्रह्मलोक को छोड़कर आ जाती है।

रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ * जो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी * गावहिं हरि यश कलि मल हारी

रामचरित्र रूपी सरोवर में स्नान कराये बिना सरस्वतीजी की थकावट करोड़ों उपायों से भी नहीं जाती। कवि और पण्डित ऐसा हृदय में विचार कर कलियुग के पापों को हरने वाले श्रीहरि के ही गुण गाते हैं।

कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना * सिरधुनि गिरा लगत पछिताना
हृदय सिंधु मति सीप समाना * स्वाति सारदा कहहिं सुजाना

साधारण मनुष्यों का गुणगान करने से सरस्वतीजी सिर धुनकर पछताने लगती हैं। कवियों का हृदय समुद्र, बुद्धि सीप और सरस्वतीजी स्वाँति नक्षत्र के समान हैं, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं।

जौं बरषइ बारि बिचारू * होहिं कबित मुकुतामणि चारू

इसमें यदि सदविचार रूपीजल बरसता है तो कविता मुक्तामणि के समान सुन्दर होती है।

दोहा—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं, रामचरित वर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग ॥ ११ ॥

फिर उन कवितारूपी मणियों को युक्तिरूपी सुई छेदकर रामचरित्र रूपी धागे में पिरोकर सज्जन निर्मल हृदय में धारण करते हैं, जिससे अनुरागरूपी शोभा को प्राप्त करते हैं।

जे जनमे कलिकाल कराला * करतब बायस बेष मराला
चलत कुपन्थ बेद मग छाँड़े * कपट कलेवर कलिमल भाँड़े

जो भयंकर कलियुग में जन्मे हैं, जिनके कर्म कौए के समान और भेष हंस का-सा है, जो वेद-मार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर चलते हैं, जो कपट की मूर्ति व कलियुग के पापों के भांड़े हैं।

बंचक भगत कहाय राम के * किंकर कञ्चन कोह काम के
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी * धींग धरमध्वज धन्धक धोरी

जो राम-भक्त कहाकर लोगों को ठगते हैं, कंचन क्रोध और काम के दास हैं जो धींगा-धींगी करने वाले, दम्भी तथा अपने स्वार्थ में सदैव रत हैं, ऐसे लोगों में मेरी गणना सर्व प्रथम है।

जौं अपने अवगुण सब कहऊँ * बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ
ताते मैं अति अलप बखाने * थोरे महुँ जानिहहिं सयाने

जो मैं अपने अवगुण कहूँ कथा बहुत बढ़ जायगी और मैं पार नहीं पाऊँगा। इससे मैंने अपने अवगुण संक्षिप्त ही कहे हैं। क्योंकि चतुर लोग थोड़े में ही जान लेंगे।

समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी * कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी
एतेहु पर करहहिं जे शंका * मोहिते अधिक ते जड़मति रंका

विविध प्रकार की मेरी इस विनती को समझकर कोई भी इस कथा को सुनकर मुझे दोष नहीं देगा। इतने पर भी जो शंका करें, वे मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धिहीन हैं।

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावौं * मति अनुरूप रामगुण गावौं
कहँ रघुपति के चरित अपारा * कहँ मति मोरि निरत संसारा

मैं न कवि हूँ, न चतुर कहाता हूँ, मैं अपनी मति के अनुसार श्रीराम गुणगान करता हूँ। कहाँ तो श्रीरघुनाथजी का अपार चरित्र और कहाँ मेरी बुद्धि, जो संसारी-माया में फँसी है।

जेहिं मारुत गिर मेरु उड़ाहीं * कहहु तूल केहि लेखे माहीं
समुझत अमित राम प्रभुताई * करत कथा मन अति कदराई

जिस प्रचण्ड वायु से सुमेरु के समान पर्वत उड़ जाते हैं, उसके सामने रुई किस गिनती में है श्रीरामजी की अपार महिमा समझकर कथा रचते हुए मेरा मन बहुत हिचकता है।

दोहा—शारद शेष महेश बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुण, करहिं निरन्तर गान ॥ १२ ॥

सरस्वती, शेषजी, शिवजी, ब्रह्माजी, शास्त्र, वेद और पुराण—ये सब 'नेति—नेति' ऐसा कहकर जिनका सदैव गुणगान करते हैं।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई * तदपि कहे बिनु रहा न कोई

तहाँ वेद अस कारण राखा * भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा

यद्यपि प्रभु की ऐसी प्रभुता को सब जानते हैं, तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा। इसमें वेदों ने ऐसा कारण कहा है कि भजन का प्रभाव अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

एक अनीह अरूप अनामा * अज सच्चिदानन्द परधामा
ब्यापक विश्व रूप भगवाना * तेहिं धरि देह चरित कृत नाना

जो अद्वितीय, इच्छा-रहित, निराकार, नामहीन अजन्मा, सम-चित्त, सच्चिदानन्द और परमधाम तथा सर्वव्यापक, विश्वरूप हैं, वही भगवान पृथ्वी पर अवतार लेकर अनेक लीलायें करते हैं।

सो केवल भगतन हित लागी * परम कृपालु प्रणत अनुरागी
जेहिं जन पर ममता अति छोहू * जेहिं करुणा करि कीन्ह न कोहू

वह लीला केवल भक्तों के ही निमित्त है। प्रभु परम दयालु और शरणागत प्रेमी हैं, जिनकी भक्तों पर ममता और प्रीति है, जिस पर एक बार कृपा करदी, उसपर कभी क्रोध नहीं किया।

गई बहोरि गरीब नेवाजू * सरल सबल साहिब रघुराजू
बुध बरनहिं हरिजस अस जानी * करहिं पुनीत सुफल निज बानी

वे श्रीरामजी गईवस्तु को पुनः देने वाले, गरीब-निवाज, सीधे सर्वशक्तिमान सबके स्वामी हैं। ऐसा जानकर विद्वान लोग श्रीहरि-यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र व सफल करते हैं।

तेहिं बल मैं रघुपत गुण गाथा * कहिहउँ नाइ राम पद माथा
मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई * तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई

उस बल से मैं श्रीरामजी के चरणों में मस्तक नवाकर उनके गुणों की कथा कहूँगा। वाल्मीकि आदि कवियों ने पहले हरि-यश गाया है, हे भाई! उसी मार्ग पर चलना सुगम है।

दोहा—अति अपार जे सरति वर, जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं ॥ १३ ॥

अत्यन्त श्रेष्ठ और बड़ी नदियों पर जो राजा लोग पुल बँधवा देते हैं, तो उनपर चढ़कर बहुत-सी छोटी २ चीटियाँ भी बिना परिश्रम के ही नदी पार चली जाती हैं।

एहि प्रकार बल मनहि देखाई * करिहउँ रघुपति कथा सुहाई
ब्यास आदि कबि पुङ्गव नाना * जिन्ह सादर हरि सुजसु बखाना

इस प्रकार के बलसे मनको दृढ़ करके मैं श्रीरामजी की सुन्दर कथा का वर्णन करूँगा व्यास आदि अनेकों कपीश्वर हो चुके हैं, जिन्होंने आदर सहित श्रीहरि का चरित्र वर्णन किया है।

चरण कमल बन्दउँ तिन्ह केरे * पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे
कलि के कविन्ह करउँ परनामा * जिन्ह बरणे रघुपति गुणग्रामा

मैं उनके चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ, वे मेरे सभी मनोरथ पूर्ण करें। कलियुग के कवियों को भी मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने श्रीरघुनाथजी के गुणों का वर्णन किया है।

जे प्राकृत कबि परम सयाने * भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगें * प्रनवउँ सबहि कपट छल त्यागें

जो बड़े चतुर सामान्य कवि हैं, जिन्होंने भाषा में श्रीहरि-चरित्र वर्णन किया है, ऐसे कवि जो पहले हो चुके हैं, तथा होंगे, उन सबको मैं छल-कपट त्यागकर प्रणाम करता हूँ।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू * साधु समाज भनिति सनमानू
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं * सो श्रम बादि बाल कबि करहीं

वे प्रसन्न होकर यह वरदान दें कि साधु-समाज में कविता का सम्मान हो, क्योंकि पंडितजन जिसकी कविता का आदर नहीं करते, बाल-कवि भी उसकी रचना का परिश्रम व्यर्थ करते हैं।

कीरति भनिति भूति भलि सोई * सुरसरि सम सब कहँ हित होई
राम सुकीरति भनिति भदेसा * असमञ्जस अस मोहि अँदेसा

यश, कविता और संपत्ति वही अच्छी होती है, जिससे कि गंगाजी के समान सबका हित हो, श्रीरामजी की कीर्ति अच्छी है और कविता भद्दी है। दोनों में यह असमंजस्य है, यही मुझे चिन्ता है।

तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे * सिअनि सुहावनि टाट पटोरे

आप लोगों की कृपा से यही मुझे सुलभ हो जायगी जैसे टाट में रेशम की सिलाई सुन्दर लगती है।

दोहा—सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयरु बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥१४क॥

कविता सरल हो, जिसमें निर्मल चरित्र का वर्णन किया हो, उसका सज्जन आदर करते हैं। बैरी लोग भी अपना स्वभाव छोड़कर उसको सुनकर सराहना करते हैं।

सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मतिबल अति थोर।
करहु कृपा हरिजस कहउँ, पुनिपुनि करउँ निहोर ॥१४ख॥

ऐसी कविता निर्मल बुद्धि के बिना नहीं होती और मेरा बुद्धि-बल बहुत थोड़ा है। अतः हे कवियो, मुझपर कृपा करो, जिससे मैं श्रीहरि का यश कहूँ। मैं बार बार यही विनय करता हूँ।

कबि कोबिद रघुबर चरित, मानस मञ्जु मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल ॥१४ग॥

हे कवि और पण्डित जनो! आप श्रीरामचरित-मानस के सुन्दर हंस हैं। आप बाल-विनय सुनकर तथा रुचि देखकर मुझ पर कृपा करो।

सो०—बन्दउँ मुनि पद कन्जु, रामायन जेहि निरमयउ।
सखर सुकोमल मन्जु, दोष रहित दूषन सहित ॥१४घ॥

मैं बाल्मीकजी के चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायण की रचना की है जो कि खर-दूषण की कथा युक्त होने पर भी कोमल, सुन्दर और दोष रहित है।

बन्दउँ चारिहु वेद, भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहिंन सपनेहुँ खेद, बरनत रघुवर बिसद जस ॥१४ङ॥

मैं चारों वेदों की वन्दना करता हूँ, जो भवसागर से पार होने के लिए बड़ी नाव के समान हैं जिन्हें श्रीरघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन करते हुए स्वप्न में भी क्लेश नहीं होता।

बन्दउँ बिधि पद रेनु, भवसागर जेहिं कीन्ह जहँ।
सन्त सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल विष बारुनी ॥१४च॥

मैं ब्रह्माजी की चरण-रज की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने यह संसार सागर रचा है, जिसमें से अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु रूपी सन्त और विष-वारुणी रूपी दुष्ट-जन प्रगट हुए हैं।

दोहा—बिबुध विप्र बुध ग्रह चरन, बन्दि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मन्जु मनोरथ मोरि ॥१४छ।

मैं देवता, ब्राह्मण, पण्डित और ग्रहों के चरणों की हाथ जोड़कर वन्दना करके कहता हूँ कि वे सब प्रसन्न होकर मेरा सुन्दर मनोरथ पूर्ण करें।

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता * जुगल पुनीत मनोहर चरिता
मन्जन पान पाप हर ऐका * कहत सुनत हर एक अबिबेका

पुन. मैं सरस्वतीजी तथा गंगाजी की वन्दना करता हूँ, जो पवित्र व मनोहर चरित्र वाली हैं। एक तो स्नान व पान से पाप हर लेती हैं और दूसरी पढ़ने से अविवेक को हर लेती हैं।

गुरु पितु मातु महेश भवानी * प्रवनउँ दीनबन्धु दिन दानी
सेवक स्वामि सखा सिय पीके * हितनिरुपधि सब बिधि तुलसीके

गुरु, माता, पिता एवं शिव-पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो दीनदयालु और नित्य मनोरथ के देने वाले हैं, जो श्रीरामजी के सेवक, स्वामी और सखा हैं और मेरे तो सब प्रकार दोष रहित हित साधक हैं।

कलिबिलोकिजगहितहरगिरिजा * सावर मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा
अनिमल आखर अरथ न जापू * प्रगट प्रभाउ महेश प्रतापू

कलियुग को देख, जगत् के हितार्थ शिव-पार्वती ने जगत् में शावर-मंत्र रचे, जिनमें अन-मेल अक्षर हैं। न अर्थ है न जाप-विधि, परन्तु महेश के प्रताप से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

सो उमेश मोहि पर अनुकूला * करिहिं कथा मुदि मंगल मूला
सुमिरिशिवा शिव पाइ पसाऊ * बरनउँ रामचरित चित चाऊ

वे शिवजी मुझ पर प्रसन्न होकर इस कथा को आनन्द देने वाली करेंगे। शिव पार्वती का स्मरण कर प्रसन्नता पाकर प्रसन्न चित से रामचरित्र का वर्णन करता हूँ।

भनितिभोरिशिवकृपां बिभाती * ससि समाज मिल मनहुँ सुराती

जे एहि कथहि सनेह समेता * कहिहहिं सुनहहिं समुझि सचेता
होइहहिं राम चरण अनुरागी * कलिमल रहित सुमङ्गल भागी

शिवजी की कृपा से यह कविता ऐसी सुशोभित होगी-जैसे तारों सहित चन्द्रमा से रात्री। जो इस कथा को प्रेम सहित कहेंगे, सुनेंगे और ध्यान देकर समझेंगे—श्रीरामजी के चरणों के प्रेमी और कलिकाल के पापों से रहित होकर सुन्दर मंगल के भागी होंगे।

दोहा-सपनेहुँ साँचेहुँ मोहि पर, जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेहुँ सब, भाषा भणिति प्रभाउ ॥ १५ ॥

स्वप्न में भी सचमुच जो मुझ पर श्रीशिव-पार्वतीजी प्रसन्न होंगे तो मेरी इस भाषा कविता का प्रभाव जो मैंने कहा है—वह सब सत्य होगा।

बन्दउँ अवधपुरी अति पावनि * सरयू सरि कलिकलुश नसावनि
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी * ममता जिन्ह पर प्रभुहिं न थोरी

मैं अति पवित्र अयोध्या तथा कलियुग के पापों की नाशक सरयू की वन्दना करता हूँ। नगर के नर-नारियों को प्रणाम करता हूँ, जिन पर प्रभु की बहुत ही ममता थी।

सिय निन्दकअघ ओघ नसाए * लोक विसोक बनाइ बसाए
बन्दउँ कौसल्या दिसि प्राची * कीरति जासु सकल जग माची

जिन्होंने सीताजी के निंदक धोबी के पापों का नाश कर उसे शोक रहित करके बैकुण्ठ में बसा दिया। अब मैं पूर्व दिशा रूपी कौसल्या की वन्दना करता हूँ, जिनकी कीर्ति संसार में फैली है।

प्रगटेउ जहँ रघुपति शशि चारु * विश्व सुखद खल कमल तुषारू
दशरथ राउ सहित सब रानी * सुकृत सुमङ्गल मूरति मानी

जो संसार को दुःख देने वाले चन्द्रमारूपी श्रीरघुनाथजी दुष्टरूपी कमलों के लिए पाले के समान प्रकट हुए। सब रानियों सहित राजा दशरथ को पुण्य और मंगल की मूर्ति मानकर।

करहुँ प्रणाम करम मन बानी * करहु कृपा सुत सेवक जानी
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता * महिमा अवधि राम पितु माता

मैं कर्म, मन, वचन से प्रणाम करता हूँ, मुझ अपने पुत्र को सेवक जानकर कृपा करें। जिनको रचकर विधाता ने भी बड़ाई पाई तथा जो श्रीरामजी के माता-पिता होने के कारण महिमा की सीमा हैं।

सो०—बन्दउँ अवध भूआल, सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृन इव परिहरेउ ॥ १६ ॥

अब मैं अवध-नरेश दशरथजी की वन्दना करता हूँ, जिनका सच्चा प्रेम श्रीरामजी के चरणों में था। जिन्होंने दीनदयालु प्रभु के बिछुड़ते ही अपना शरीर तृण के समान त्याग दिया।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहु * जाहि रमापति गूढ़ सनेहु
जोग भोग महँ राखेउ गोई * राम बिलोकत प्रगटेउ सोई

मैं परिवार सहित विदेहराज को प्रणाम करता हूँ जिनका श्रीरामजी के चरणों में गूढ़-स्नेह था। जो योग उन्होंने भोग में छिपाकर रक्खा था वह श्रीरामजी के दर्शन होते ही प्रगट होगया।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना * जासु नेम ब्रत जाइ न बरना
राम चरन पंकज मन जासू * लुबुध मधुप इव तजइ न पासू

मैं पहले भरतजी के चरणों में प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीरामजी के चरण-कमलों की समीपता को जिनका मन लोभी भौंरे के समान नहीं त्यागता।

बन्दउँ लछिमन पद जलजाता * सीतल सुभग भगत सुखदाता
रघुपति कीरति बिमल पताका * दण्ड समान भयउ जस जाका

लक्ष्मणजी के चरण-कमलों की मैं वन्दना करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तों को सुख दायक हैं। श्रीरघुनाथजी की कीर्ति रूपी पताका में जिनका यश दण्ड के समान हुआ।

सेष सहस्त्र सीस जग कारन * जो अवतरेउ भूमि भय टारन
सदा सो सानुकूल रह मोपर * कृपासिन्धु सौमित्र गुनाकर

हजार सिरोंवाले शेषजी संसार के कारण रूप हैं, जिन्होंने पृथ्वी के भय को दूर करने के लिये अवतार लिया है। वे दयानिधान, गुणों की खान, सुमित्रानन्दन सदैव मुझ पर प्रसन्न रहें।

रिपुसूदन पद कमल नमामी * शूरसुसील भरत अनुगामी
महावीर बिनवउँ हनुमाना * राम जासु जसु आप बखाना

शत्रुघ्न के चरण-कमलों में नमस्कार करता हूँ, जो शूरवीर, सुशील और भरतजी के अनुगामी हैं। हनुमान से विनय करता हूँ, जिनका यश श्रीरघुनाथजी ने स्वयं बखान किया है।

सो०–प्रनवउँ पवनकुमार, खलबन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर ॥ १७ ॥

मैं उन पवनकुमार हनुमानजी को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टरूपी पवन के लिए अग्नि हैं और ज्ञान से परिपूर्ण हैं। जिनके हृदय-मन्दिर में धनुर्धारी श्रीरामजी निवास करते हैं।

कपिपति रीछ निसाचर राजा * अंगदादि जे कपीस समाजा
बन्दउँ सबके चरन सुहाए * अधम सरीर राम जिन्ह पाए

मैं उन सुग्रीव, जामवन्त, विभीषण, अंगद आदि वानरों के सुन्दर चरणों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने अधम-शरीर में श्रीरामजी को पाया।

रघुपति चरन उपासक जेते * खग मृग सुर नर असुर समेते
बन्दउँ पद सरोज सब केरे * जे बिनु काम राम के चेरे

श्रीरघुनाथजी के चरणों की उपासना करने वाले उन पशु-पक्षी, देवता मनुष्य और असुरों आदि के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ, जो बिना काम के ही श्रीरामजी के सेवक हैं।

शुकसनकादि भगतमुनि नारद * जे मुनिवर बिग्यान बिसारद

प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा * करहु कृपा जन जानि मुनीसा

शुकदेवजी, सनकादि, व्यास, नारद और जो परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, उन सबको पृथ्वी पर मस्तक नवाकर मैं प्रणाम करता हूँ। हे मुनीश्वरो! मुझे अपना सेवक जानकर कृपा करो।

जनकसुता जगजननि जानकी * अतिसय प्रिय करुनानिधान की
ताके जुग पद कमल मनावउँ * जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ

मैं जनक नन्दनी जगत्माता और करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजी की प्रियतमा श्रीजानकीजी के चरणों को मनाता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल मति प्राप्त करूँ।

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक * चरन कमल बंदउँ सब लायक
राजिव नयन धरें धनु सायक * भगति विपति भंजन सुखदायक

पुनः मन, वचन, कर्म से सर्व-समर्थ श्रीरघुनाथजी के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ, जो कमल-नयन, धनुषधारी, भक्तों के क्लेश को दूर करने वाले तथा सुखदायक हैं।

दोहा—गिरा अरथ जल बीच सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
बन्दउँ सीताराम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥ १८ ॥

जो वाणी और अर्थ, जल और लहर के समान कहने में तो अलग २ हैं, परन्तु वास्तव में एक ही हैं, ऐसे श्रीसीता-रामजी के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दुःखीजन अतिप्रिय हैं।

बन्दउँ नाम राम रघुवर को * हेतु कृसानु भानु हिमकर को
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो * अगुन अनूपम गुन निधान सो

मैं श्रीरघुनाथजी के नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा-इन तीनों को कारण अर्थात् 'र' 'अ' 'म' रूप से बीज हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप हैं, वेदों का प्राण तथा अनुपम गुणों का भंडार है।

महामन्त्र जोइ जपत महेसू * कासी मुकुति हेतु उपदेसू
महिमा जासु जान गनराऊ * प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ

जिस 'राम-नाम' महामन्त्र को महादेवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश ही काशी में मुक्ति का कारण है। जिसकी महिमा गणेशजी जानते हैं, जो नाम के प्रभाव से ही प्रथम पूज्य हुए हैं।

जानि आदि कबि नाम प्रतापू * भयउ शुद्ध करि उलटा जापू
सहस नाम सम सुनि सिव बानी * जपि जेईं पिय संग भवानी

नाम का प्रताप जानकर आदि कवि वाल्मीकिजी, जो उल्टा नाम जपकर ही सिद्ध हो गये। हजार नामों के समान एक राम-नाम को शिवजी से सुनकर पार्वतीजी, जो अपने पति के साथ जपती रहती हैं।

हरषे हेतु हेरि हर ही को * किय भूषन तिय भूषन ती को
नाम प्रभाऊ जान सिव नीको * कालकूट फलु दीन्ह अमी को

राम-नाम पर पार्वती का ऐसा दृढ़ प्रेम देखकर शिवजी ऐसे प्रसन्न हुए कि स्त्रियों के

आभूषण रूप पार्वती को अपने अंग का भूषण कर लिया (अर्थात् अर्द्धाङ्गिनी बना लिया) नाम के प्रभाव को शिवजी भली-भांति जानते हैं, जिससे कि कालकूट ने शिवजी को अमृत के समान फल दिया।

दोहा—बरषा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी शालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास॥ १९॥

श्री रघुनाथजी की भक्ति वर्षा ऋतु है और अच्छे भक्त धान है तथा राम-नाम के दोनों अक्षर सुन्दर सावन और भादों मास हैं।

आखर मधुर मनोहर दोऊ * बरन बिलोचन जन जिय जोऊ
सुमिरत सुलभ सुखद सब काऊ * लोक लाभु परलोक निभाऊ

यह दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं, सब अक्षरों में नेत्ररूप हैं तथा स्मरण करने में सबको सुलभ और सुखदायक हैं, इस लोक में यश आदि का लाभ और परलोक वास देने वाले हैं।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके * राम लखन प्रिय सम तुलसी के
बरनत बनत प्रीति बिलगाती * ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती

वह कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत अच्छे हैं। तुलसी को राम-लक्ष्मण के समान प्रिय हैं। इन्हें अलग-अलग करने से प्रीति में अन्तर आता है, परन्तु जीव और ब्रह्म के समान यह दोनों स्वाभाविक रूप से सम्बन्धित हैं।

नर नारायन सरिस सुभ्राता * जग पालक बिसेषि जन त्राता
भगति सुतिय कल करन बिभूषन * जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन

यह नर-नारायण के तुल्य सुन्दर भाई हैं, जगत् के पालक और भक्त रक्षक हैं, भक्तिरूपी स्त्री के सुन्दर कर्ण भूषण हैं और जगत् कल्याण के लिए चन्द्रमा के समान निर्मल हैं।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के * कमठ शेष सम धर वसुधा के
जन मन मन्जु कन्ज मधुकर से * जीह जसोमति हरि हलधर से

श्रीराम मुक्तिरूपी अमृत के स्वाद तथा सन्तोष के तुल्य हैं, कच्छप और शेष के समान पृथ्वी को धारण करने वाले हैं। भक्तों के मनरूपी सुन्दर कमलों के भौंरे और यशोदारूपी जीभ तो श्रीकृष्ण और बलराम हैं।

दोहा—एकछत्रु एक मुकुटमणि, सब वरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥ २०॥

तुलसीदासजी कहते हैं—राम-नाम के दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, उनमें एक 'र' कार छत्र होकर 'म' कार मुकुट में हीरा होकर सब वर्णों के ऊपर रहता है।

समुझत सरिस नाम अरु नामी * प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी
नाम रूप दुइ ईश उपाधी * अकथ अनादि सुसामुझि साधी

समझने में नाम और नाम वाला दोनों एक समान हैं, इनकी प्रीति स्वामी और सेवककी-सी

है। नाम और रूप दोनों ईश्वर उपाधि हैं, दोनों अनिर्वचनीय और अनादि हैं। शुद्ध बुद्धि से इनका स्वरूप जानने में आता है।

को बड़ छोट कहत अपराधू * सुनि गुण भेदु समुझिहहिं साधू
देखअहिं रूप नाम आधीना * रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना

नाम और रूप में कौन बड़ा और कौन छोटा–यह कहने में अपराध है, साधु-पुरुष गुणों का भेद सुनकर समझ लेंगे। नाम-रूप के आधीन हैं और बिना नाम के रूप का ज्ञान नहीं होता।

रूप विशेष नाम बिनु जानें * करतल गति न परहिं पहिचानें
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें * आवत हृदयँ सनेह विशेषें

कोई विशेष रूप भी बिना नाम जाने हथेली पर रखा हुआ भी पहचानने में नहीं आता। परन्तु नाम स्मरण करने से बिना पहिचाने हुए भी हृदय में आ जाता है।

नाम रूप गति अकथ कहानी * समुझत सुखद न सकति बखानी
अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी * उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी

नाम और रूप की गति अकथनीय है। यह समझने में सुख देने वाली है, परन्तु कही नहीं जा सकती। अगुण और सगुण इन दोनों के बीच में नाम साक्षी और यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है।

दोहा–राम नाम मणिदीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहूँ, जौं चाहसि उजियार ॥ २१ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं–जो भीतर और बाहर उजाला चाहते हो, राम-नाम रूपी मणि (दीपक) को सुख रूपी द्वार की जीभरूपी देहली पर धरें।

नाम जीहँ जपि जागहिं योगी * बिरति विरंचि प्रपन्च वियोगी
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा * अकथ अनामय नाम न रूपा

योगीजन जीभ से नाम जपकर संसार को वैराग्य से त्यागकर रात्रि में जागते हैं और उसी ब्रह्मानन्द के सुख का अनुभव करते हैं, जो अनुपम, अकथनीय, अनामय नाम व रूपसे हीन है।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ * नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ
साधक नाम जपहिं लय लाएँ * होहिं सिद्ध अणिमादिक पाएँ

जो लोग गूढ़ रहस्य को जानना चाहते हैं, वे जीभ से नाम जपकर उसे जान लेते हैं। जो साधक मन लगाकर नाम जपते हैं, वे अणिमादिक आठ सिद्धियाँ पाकर सिद्ध हो जाते हैं।

जपहिं नामु जन आरत भारी * मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी
राम भगति जग चारि प्रकारा * सुकृति चारिहिं अनघ उदारा

जो मनुष्य दुःख में नाम जपते हैं, उनके महान दुःख भी दूर हो जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। संसार में चारों प्रकार के राम-भक्त पुण्यात्मा, निष्पाप और उदार हैं।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा * ग्यानी प्रभुहिं बिशेषि पिआरा

चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ * कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ

चारों चतुर भक्तों को नामका आधार है, इसमें ज्ञानी भक्त हरि को अधिक प्रिय है। चारों युग व चारों वेदों में नाम का प्रभाव है, कलियुग में तो विशेषकर कोई दूसरा उपाय ही नहीं है।

दोहा—सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिन्हहुँ दिए मन मीन ॥ २२ ॥

जो भक्त सभी कामनाओं से रहित हो श्रीराम-भक्त, रस में लीन हो, जिन्होंने राम-नाम के प्रेमरूपी अमृत के कुण्ड में अपने मनको मछली बना लिया है।

अगुण सगुण दुइ ब्रह्म सरूपा * अकथ अगाध अनादि अनूपा
मोरें मत बड़ नाम दुहूँ तें * किए जेहिं युग निजबस निजबूतें

अगुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप हैं और उन दोनों के ही रूप अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति में दोनों से 'नाम' बड़ा है, जिसने अपने बल से दोनों को अपने वश में कर रखा है।

प्रौढ़ि सुजान जनि जानहिं जनकी * कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी
एक दारुगति देखिअ एकू * पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू

चतुर लोग इसे मेरी ढीठता न समझें, मैं अपने विश्वास, प्रेम और मनकी रुचि से कहता हूँ। एक अग्नि काष्ठ में व्याप्त रहती है और एक प्रत्यक्ष देखने में आती है। इन्हीं दो अग्नियों के समान निर्गुण व सगुण ब्रह्मका ज्ञान होता है, एक गुप्त व दूसरा प्रकट, परन्तु दोनों एकही हैं।

उभय अगम जुग सुगम नाम तें * कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें
व्यापक एकु ब्रह्म अबिनासी * सत चेतन घन आनन्द रासी

दोनों के साधन कठिन हैं, पर नाम दोनों सुगम हैं। इसी से मैं तो निर्गुण से 'राम-नाम' को बड़ा कहता हूँ। एक अविनाशी सच्चिदानन्द परब्रह्म ही सब में व्यापक हैं।

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी * सकल जीव जग दीन दुखारी
नाम निरूपम नाम जतन तें * सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें

ऐसे निर्विकार के हृदय में रहते हुए भी जगत के सब जीव-दीन और दुखी हैं। नाम का निरूपण करके यत्न पूर्वक जपने से ब्रह्म हृदय में ऐसे आ जाता है, जैसे रत्न को जान लेने पर उसका मूल्य मिल जाता है।

दोहा—निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें, निज विचार अनुसार ॥ २३ ॥

इस प्रकार निर्गुण से नाम का प्रभाव अत्यन्त अपार है। अब अपने विचार के अनुसार मैं (सगुण) राम से 'नाम' को बड़ा कहता हूँ।

राम भगत हित नर तनु धारी * सहि संकट किए साधु सुखारी
नामु सप्रेम जपत अनयासा * भगत होहिं मुद मङ्गल बासा

रामजी ने भक्तों के निमित्त मनुष्य देह धारणकर संकट सहकर साधुओं को सुखी किया।

परन्तु नाम को प्रेम सहित जपते ही भक्त बिना प्रयास के ही आनन्द-मंगल के स्थान बन जाते हैं

राम एक तापस तिय तारी * नाम कोटि खल कुमति सुधारी
ऋषि हित राम सुकेतु सुता की * सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी

राम ने तो एक मुनि-पत्नी अहिल्या को ही तारा परन्तु नाम ने तो अनेकों दुष्टों की कुबुद्धि को सुधारा है। विश्वामित्र ऋषि के लिए राम ने ताड़का की सेना और पुत्र सुबाहु सहित समाप्त किया।

सहित दोष दुख दास दुरासा * दलइ नामु जिमि रवि निसि नासा
भंजेउ राम आपु भव चापू * भव भय भन्जन नाम प्रतापू

भक्तों के दोष, दुःख, दुराशा को नाम इस प्रकार कर देता है, जैसे सूर्य रात्रिका, श्रीराम ने तो शिवजी के धनुष को ही तोड़ा, परन्तु नाम का प्रताप संसार के भयों को नाश करने वाला है।

दण्डक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन * जन मन अमित नाम किए पावन
निसिचर निकर दले रघुनन्दन * नामु सकल कलि कलुष निकन्दन

प्रभु ने तो दण्डक-बन को ही सुहावना किया परन्तु नाम ने असंख्य भक्तों के मन पवित्र कर दिये। राम ने तो राक्षस-समूह को ही मारा परन्तु नाम कलियुग के समस्त पापों को नाश करने वाला है।

दोहा—शवरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुण गाथ ॥ २४ ॥

रघुनाथजी ने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ती दी, परन्तु नाम ने तो असंख्य दुष्टों का उद्धार किया। नाम के गुणों की महिमा वेदों में विदित है।

राम सुकण्ठ विभीषण दोऊ * राखे शरन जानु सबु कोऊ
नाम गरीब अनेक नेवाजे * लोक बेद बर बिरद बिराजे

श्रीरामजी ने तो सुग्रीव और विभीषण दो को ही अपनी शरण में रखा, इस बात को सब जानते हैं। परन्तु नाम ने अनेकों दीनों पर कृपा की है, यह सुयश लोकों और वेदों में विदित है।

राम भालु कपि कटकु बटोरा * सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं * करहु बिचारु सुजन मन माहीं

श्रीरामने तो रीछ और बन्दरों का दल इकट्ठा कर समुद्र पर पुल बाँधने के लिए बहुत श्रम किया, परन्तु नाम के लेने से ही भवसागर सूख जाता है, हे सज्जनो ! मनमें विचार करो।

राम सकुल रण रावनु मारा * सीय सहित निजपुर पगु धारा
राजा रामु अवध रजधानी * गावत गुन सुर मुनिवर बानी

श्रीराम सकुटुम्ब रावण को मारकर सीता सहित अपने नगर में आये। श्रीरामजी राजा हुए तथा अयोध्या राजधानी हुई। देवता और मुनि सुन्दर वाणी से जिनके गुण गाते हैं।

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती * बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती
फिरत सनेहु मगन सुख अपने * नाम प्रसाद सोच नहि सपनें

सेवक प्रेम पूर्वक नाम का स्मरण करके, बिना परिश्रम मोहरूपी प्रबल सेना को जीतकर स्नेह से अपने ही सुख में विचरते हैं और नाम के प्रताप से सपने में भी चिंता नहीं करते।

दोहा—ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि॥ २५॥

इस प्रकार (निर्गुण) ब्रह्म, (सगुण) राम-नाम से बड़ा है और वर-दायकों को भी वर देने वाला है। इसको अपने हृदय में जानकर शिवजी ने सौ करोड़ श्रीराम चरित्रों में से श्रीराम नाम को निकाल लिया है।

* मास पारायण—पहला विश्राम *

नाम प्रसाद शम्भु अबिनासी * साजु अमङ्गल मङ्गल रासी
सुख सनकादिक सिद्ध मुनि जोगी * नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी

नाम के प्रसाद से शिवजी अविनाशी है और अमङ्गल वेषधारी होने पर भी मङ्गल की राशि हैं। शुकदेव, सनक आदि सिद्ध मुनि और योगी नाम के प्रसाद से ही ब्रह्म सुख भोगते हैं।

नारद जानेउ नाम प्रतापू * जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू * भगत शिरोमणि भे प्रहलादू

नारदजी ने नाम का प्रताप जाना है, जो संसार को हरि और आप हरि-हर दोनों को प्यारे हैं। नाम के जपने से प्रभु ने कृपा की, जिससे प्रहलाद भक्ति-शिरोमणि हो गये।

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ * पायउ अचल अनूपम ठाऊँ
सुमिरि पवन सुत पावन नामू * अपने बस करि राखेउ रामू

ध्रुव ने निरादर से उदास होकर हरि का नाम जपकर अनुपम और अटल स्थान पाया है। हनुमानजी ने पवित्र नाम का जप करके श्रीराम को अपने वश में कर रक्खा है।

अपतु अजामिलु गजु गनि काऊ * भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई * रामु न सकहिं नाम गुण गाई

नीच अजामिल, गज और वेश्या भी श्रीहरि-नाम के प्रभाव से मुक्त होगये। नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, स्वयं राम भी नाम के गुण नहीं गा सकते।

दोहा—नामु राम को कल्पतरु, कलि कल्यान निवासी।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदास॥ २६॥

कलियुग में राम-नाम कल्पवृक्ष और मङ्गल का धाम है, जिसके सुमिरन करने मात्र से ही भांग-सा निकृष्ट तुलसीदास तुलसी के समान पवित्र हो गया।

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका * भए नाम जपि जीव बिसोका
बेद पुरान सन्त मत एहू * सकल सुकृत फल राम सनेहू

चारों युग, तीनों काल और तीनों लोकों में जपकर अनेक जीव शोक से रहित हुए हैं। पुराण और सन्तजनों का यही मत है कि राम स्नेह होना ही सम्पूर्ण सत्कर्मों का फल है।

ध्यानु प्रथम जुग मख विधु दूजें * द्वापर परितोषत प्रभु पूजें
कलि केवल मल मूल मलीना * पाप पयोनिधि जन मन मीना

सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजन करने से प्रभु प्रसन्न होते हैं। कलियुग तो केवल पाप की जड़ और मलिन है। इस पाप के समुद्र में मनुष्य का मन मछली बना हुआ है।

नाम कामतरु काल कराला * सुमिरत समन सकल जग जाला
राम नाम कलि अभिमत दाता * हित परलोक लोक पितु माता

इस कराल कलि-काल में नाम ही कल्पवृक्ष है, जिसके स्मरण से जग-जाल कट जाता है। राम-नाम ही कलियुग में मनोरथों का दाता, परलोक में हितैषी, इस लोक में माता-पिता है।

नहिं कलि करम न भगति विवेकू * राम नाम अवलम्बन एकू
कालनेमि कलि कपट निधानू * नाम सुमति समरथ हनुमानू

कलियुग में कर्म, भक्ति, ज्ञान नहीं हैं, केवल एक राम-नाम का ही आधार है। कलियुग तो 'कालनेमि रूपी' कपट की खान है और राम-नाम 'सुबुद्धि' तथा सामर्थ्य 'हनुमानजी' हैं।

दोहा—राम नाम नर-केसरी, कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दल सुरसाल ॥ २७ ॥

राम-नाम 'नृसिंह-भगवान' हैं और कलियुग 'हिरण्यकशिपु' है। जप-कर्ता 'भक्त-जन प्रहलाद' है, 'राम-नाम' देवशत्रु—'कलियुग' को मारकर भक्तों का पालन करने वाला है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ * नाम जपत मङ्गल दिशि दसहूँ
सुमिरि सो नाम राम गुणगाथा * करहुँ नाइ रघुनाथहि माथा

प्रेम या वैर, क्रोध या आलस्य—किसी प्रकार से नाम जप करने से दसों दिशाओं में मंगल होता है। उस 'राम-नाम' का स्मरण कर, श्रीरघुनाथजी को मस्तक नवाकर में उनके गुणों की गाथा वर्णन करता हूँ।

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती * जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो * निज दिशि देखि दयानिधि पोसो

वही मेरी सब कथा को सबभाँति से सुधारेंगे, जिनकी कृपा करके कृपा नहीं अघाती है। नाम से सुन्दर स्वामी एवं मुझसा बुरा सेवक! अपनी ओर देखकर दयासागर ने मुझ पर दया की है।

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती * विनय सुनत पहिचानत प्रीती
गनी गरीब ग्राम नर नागर * पण्डित मूढ़ मलिन उजागर

लोक और वेद में भी अच्छे स्वामियों की यही रीत है कि विनती सुनकर प्रेमको पहिचान लेते हैं। धनी-गरीब, गँवार-चतुर, पण्डित-मूर्ख, मलिन-सुकर्मी——

सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी * नृपहि सराहत सब नर नारी
साधु सुजान सुशील नृपाला * ईश अंग भव परम कृपाला

सुकवि-कुकवि, स्त्री-पुरुष सब अपनी २ बुद्धि के अनुसार राजा की सराहना करते हैं।

सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी * भनिति भगति नति गति पहिचानी

लेकिन सज्जन, चतुर, सुशील और ईश्वर के अंग, दयालु राजा सबकी सुनकर और उनकी बोली, भक्ति, विनय और ज्ञान पहिचान कर मीठी वाणी से सभी का आदर करते हैं।

यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ * जानि सिरोमनि कोसलराऊ
रीझत राम सनेह निसोतें * को जग मन्द मलिन मति मोतें

यह साधारण राजाओं का स्वभाव है। फिर श्रीरामजी तो चतुर शिरोमणि हैं,जो केवल प्रेम से ही प्रसन्न होते हैं। संसार में मुझसे अधिक मन्द और मलिन बुद्धिवाला कौन है।

दोहा—सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं, सचिव सुमति कपि भालु ॥२८क॥

मुझ मूर्ख दास की प्रीति और रुचि को दयालु श्रीरामजी रक्खेंगे, जिन्होंने पत्थरों को जहाज और रीछ-बानरों को चतुर मन्त्री बना लिया।

हौंहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥२८ख॥

मैं भी कहता हूँ और सब भी कहते हैं। श्रीरामजी यह निन्दा सहते हैं कि श्रीसीतानाथ से स्वामी हैं और तुलसीदास सा सेवक है।

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी * सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी
समुझि सहमि मोहि अपडर अपनें * सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें

मेरी बहुत बड़ी ढिठाई दोष है, मेरे पापों को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड़ली है यह समझकर मैं सहमकर स्वयं ही अपने डर से डरता हूँ, परन्तु श्रीरामजी ने स्वप्न में भी उस ओर ध्यान नहीं दिया।

सुनि अवलोक सुचित चख चाही * भगति मोर मति स्वामि सराही
कहत नसाइ होय हियँ नीकी * रीझत राम जानि जन जी की

बल्कि प्रभु ने तो इसको सुनकर और दिव्य-दृष्टि से देखकर मेरी भक्ति और बुद्धि की सराहना की है। कहने में अच्छा न हो, परन्तु हृदय निर्मल हो तो श्रीरामजी भक्त के हृदय की प्रीति जानकर प्रसन्न ही होते हैं।

रहति न प्रभु चित चूक किए की * करत सुरति सत बार हिए की
जेहिं अघ बधेउ ब्याधि जिमि बाली * फिरि सुकण्ठ सोइ कीन्हि कुचाली

प्रभु के चित्त में भक्त की चूक नहीं रहती, बल्कि हृदय में भक्त की सौ बार याद रहती है। जिस पाप से व्याध के समान बालि को मारा था, सुग्रीव ने फिर वही कुचाल की।

सोइ करतूति बिभीषन केरी * सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी
तेहि भरतहि भेंटत सनमाने * राज सभाँ रघुबीर बखाने

वही करतूत विभीषण ने भी की, किन्तु श्रीरामजी ने स्वप्न में भी उस पर ध्यान नहीं दिया।

भरत-मिलाप के समय उसका बहुत आदर किया और राज-सभा में बहुत प्रशंसा की ।

दोहा—प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किए आप समान ।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब शील निधान ॥२९क॥

प्रभु वृक्ष के नीचे और बानर वृक्षों पर बैठते थे, उनको भी अपने समान बना लिया । श्रीरामजी के समान शील-निधान स्वामी कहीं नहीं हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—

राम निकाईं रावरी, है सबही को नीक ।
जौं यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥२९ख॥

हे श्रीरामजी ! आपकी भलाई सबको भली है । यदि यह सत्य है, तो मेरा भी सदाही भला होगा ।

एहिबिधि निज गुनदोषकहि, सबहि बहुरि सिरु नाइ ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु, सुनि कलिकलुष नसाइ ॥२९ग॥

इस प्रकार अपने गुण-दोष कहकर फिर सबको मस्तक नवाकर मैं श्रीरघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं ।

याज्ञवल्क्य जो कथा सुहाई * भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई
कहिहउँ सोइ सम्बाद बखानी * सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी

याज्ञवल्क्यजी ने जो सुन्दर कथा मुनिवर भारद्वाज को सुनाई, वही सम्वाद मैं कहता हूँ, सभी सज्जन सुख मानकर सुनो—

शम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा * बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा
सोइ शिवकाकभुशुण्डिहि दीन्हा * राम भगति अधिकारी चीन्हा

प्रथम यह सुहावना चरित्र शिवजी ने रचा फिर कृपा करके पार्वती को सुनाया । वही फिर शिवजी ने काकभुशुण्डिजी को राम-भक्ति का अधिकारी जानकर सुनाया ।

तेहि सन याज्ञवल्क्य मुनि पावा * तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा
ते श्रोता बकता सम शीला * समदरशी जानहिं हरि लीला

काकभुशुण्डिजी ने याज्ञवल्क्य-मुनि को सुनाया, फिर याज्ञवल्क्यजी ने भारद्वाज के लिए वर्णन किया । वे श्रोता और वक्ता समदर्शी हैं, जो श्री हरि की लीलाओं को जानते हैं ।

जानहिं तीनि काल निज ग्याना * करतल गत आमलक समाना
औरउ जे हरि भगत सुजाना * कहहिं सुनहिं समुझहिं विधिनाना

और तीनों कालों को अपने ज्ञान से हथेली पर धरे हुए आँवले के समान जानते हैं तथा और भी जो चतुर हरि-भक्त हैं, वे भी इनको अनेक प्रकार से कहते और समझते हैं ।

दोहा—मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥३०क॥

वही सुन्दर कथा मैंने अपने गुरुजी से सूकर-क्षेत्र में पुनःसुनी, परन्तु बालकपन के कारण यथार्थ समझ में नहीं आई, क्योंकि अज्ञानी था।

दोहा—श्रोता बकता ग्यान निधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समझौं मैं जीव जड़, कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ॥३०ख॥

श्रीराम-कथा के श्रोता और वक्ता-दोनों ज्ञान की निधि होते हैं। मैं कलियुगी पापों में फँसा हुआ अज्ञानी जीव उसको कैसे समझ सकता था?

तदपि कही गुरु बारहिंबारा * समुझि परी कछु मति अनुसारा
भाषाबद्ध करिब मैं सोई * मोरे मन प्रबोध जेहिं होई

यद्यपि गुरुजी ने बारम्बार कथा कही, तब-तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आई। वही मैं अब भाषा में रचूंगा, जिससे मेरे हृदय में ज्ञान हो और गुरुजी के कहे तत्व को न भूल सकूं।

जसु कछु बुधि बिबेक बल मेरें * तसि कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें
निज सन्देह मोह भ्रम हरनी * कहउँ कथा भव सरिता तरनी

जैसा कुछ बुद्धि, ज्ञान का बल मुझमें है, उसी प्रकार हृदय में श्रीहरि की प्रेरणा से कहूँगा। मैं अपने सन्देह,अज्ञान और भ्रमको हरने वाली कथा कहता हूँ,जो संसाररूपी नदी के लिए नौका है।

बुध विश्राम सकल जल रंजनि * राम कथा कलि कलुह विभंजनि
राम कथा कलि पन्नग भरनी * पुनि बिबेक पावक कहुँ करनी

श्रीराम-कथा पण्डितों को शान्ति-दायक और सब मनुष्यों को आनन्ददायक व कलयुग के पापों को दूर करने वाली है। राम-कथा कलियुग-रूपी सर्प को मोरनी और ज्ञानरूपी अग्नि को बढ़ाने के लिए अरनी के समान है।

रामकथा कलि कामद गाई * सुजनि सँजीवनि मूरि सुहाई
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि * भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि

राम-कथा कलियुग में कामधेनु, सज्जनों के लिए सुन्दर संजीवनी जड़ी है। यही कथा पृथ्वी पर अमृत की नदी है, जन्म-मरणरूपी भय का नाश करने वाली और भ्रमरूपी मेंढ़क सर्पिणी के समान है।

असुर सेन सम नरक निकन्दिनि * साधु बिबुध कुलहित गिरनंदिनि
सन्त समाज पयोधि रमा सी * विश्व भार भर अचल छमा सी

राम-कथा असुरों की सेनारूपी नरकों का नाश करने वाली और साधुरूपी देवताओं के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वंश के हित के लिए शिवा है। यह सन्त समाजरूपी समुद्र को लक्ष्मी और संसार का बोझ उठाने के लिए अचल पृथ्वी के समान है।

जगमन मुँह मसि जग जमुनासी * जीवन मुकुति हेतु जनु कासी
शिव प्रिय मेकल सैल सुता सी * सकल सिद्धि सुख संपति रासी

यमदूतों के मुख पर स्याही लगाने को जगत् में यमुना के समान है और जीवन मुक्ति को मानो

काशी है। शिवजी को नर्मदा के समान प्रिय है और सिद्धियों एवं सम्पदाओं की राशि है।

रामहि प्रिय पावनि तुलसी * तुलसीदास हित हियँ हुलसी सी
सदगुन सुरगन अम्ब अदिति सी * रघुबर भगति प्रेम परि मति सी

श्रीराम को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है, तुलसीदास को हुलसी के समान हितकारी है। सद्गुणी देवताओं की माता अदिति-सी है और श्रीरामजी को भक्ति व प्रेम की सीमा सी है।

दोहा—राम कथा मन्दाकिनि, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु ॥३१॥

तुलसीदासजी कहते हैं—रामकथा मन्दाकिनी नदी है, पवित्र हृदय चित्रकूट है, सुन्दर स्नेह ही श्रीसीता-रामजी के विहार का वन (स्थल) है।

रामचरित चिन्ता मनि चारू * सन्त सुमति तिय सुभग सिंगारू
जग मंगल गुन ग्राम राम के * दानि मुकुति धन धरम धाम के

श्रीराम-चरित्र सुन्दर चिंतामणि है,जो संतों की सुबुद्धिरूपी स्त्री के लिए सुन्दर श्रृङ्गार है। श्रीरामजी के गुण जगत में मंगलकारी और मुक्ति, धन, धर्म और परमधाम के देने वाले हैं।

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के * बिबुध बैद भव भीम रोग के
जननि जनक सिय रामप्रेमके * बीज सकल ब्रत धरम नेम के

वे ज्ञान और वैराग्य योग के लिए सद्गुरु हैं, भयंकर भव-व्याधि को अश्वनीकुमार हैं, श्रीसीता-राम के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए माता-पिता हैं और सब व्रत, धर्म तथा नियमों के मूल हैं।

समन पाप सन्ताप शोक के * प्रिय पालक परलोक लोक के
सचिव सुभट भूपति बिचार के * कुम्भज लोभी उदधि अपार के

पाप, संताप और दुःख के नाशक तथा परलोक और इस लोक के प्रिय-पालक हैं। ज्ञान-रूपी राजा वीर-योद्धा मन्त्री हैं लोभरूपी अपार समुद्र के सोखने को मुनि अगस्त्य हैं।

काम कोह कलिमल करिगन के * केहरि सावक जन मन बन के
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के * कामद घन दारिद दवारि के

भक्तों के मन रूपी वन के लिए—बादल,काम,क्रोध आदि और कलियुगके पापरूपी हाथियों के लिए-सिंह, अतिथि, पूज्य और शिव-प्रिय है, दरिद्रतारूपी अग्नि के लिए—कामद धन हैं।

मन्त्र महामणि विषय व्याल के * मेटत कठिन कुअङ्क भाल के
हरन मोह तम दिन कर से * सेवक सालि पाल जलधर से

विषयरूपी सर्प के विषय के लिए—मन्त्र और महामणि हैं जो भाग्य के कुलेखे को मेट देते हैं। मोहरूपी अंधकार को हरने के लिए—सूर्य की किरण और भक्तिरूपी धान को पालने के लिए मेघ के समान हैं।

अभिमत दानि देवतरु वर से * सेवत भुलभ सुखद हरि हर से
सुकबि सरद नभ मन उडगन से * राम भगत जन जीवन धन से

मनोवांछित फल देने को कल्पवृक्ष के समान हैं, और सेवा करने पर हरि-हर के समान सहज ही में सुख देने वाले हैं। सुकवियों के मन रूपी शरद्-कालीन आकाश में तारागण के समान तथा राम-भक्तों के जीवन-धन हैं।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से * जग हित निरुपधि साधु लोग से
सेवक मन मानस मराल से * पावक गंग तरंग माल से

सम्पूर्ण सत्कर्मों के फल-भोगों के समान हैं, जगत का हित करने के लिए-छल रहित साधु लोगों के समान हैं। भक्तों के मनरूपी मानसरोवर के हंस के समान और गंगाजी की लहरों के समान पवित्र हैं।

दोहा—कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखण्ड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचण्ड ॥३२क॥

कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कलह, कपट, दम्भ, पाखण्डरूपी ईंधन को भस्म करने के लिए— श्रीराम-गुण-समूह प्रचण्ड अग्नि के समान हैं।

राम चरित राकेश कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिशेषि बड़ लाहु ॥३२ख॥

राम-चरित्र चन्द्रमा की किरणों के समान सबको सुख देने वाला है, परन्तु कुमुद व चकोर रूपी सज्जनों को विशेष हितकारी और लाभदायक है।

कीन्हि प्रश्न जेहि भाँति भवानी * तेहि विधि शङ्कर कहा बखानी
सो सब हेतु कहब मैं गाई * कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई

जिस प्रकार पार्वतीजी ने प्रश्न किये, और जिस प्रकार श्रीशिवजी ने विस्तारपूर्वक वर्णन किये वे सब कारण मैं विचित्र कथा की रचना करके कहूँगा।

जेहि यह कथा सुनी नहीं होई * जानि आचरजु करहुँ सुनि कोई
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी * नहिं आचरजु करहिं असजानी

जिन्होंने यह कथा नहीं सुनी, वे भविष्य में सुनकर अचरज न करें। जो ज्ञानी पुरुष अद्भुत कथा को सुनते हैं, वे ऐसा जानकर अचरज नहीं करते कि—

राम कथा कै मिति जग नाहीं * असि प्रतीति जिनके मन माहीं
नाना भाँति राम अवतारा * रामायण सत कोटि अपारा

जगत् में राम-कथा अनन्त है। ऐसा विश्वास जिनके हृदय में रहता है कि अनेक प्रकार से श्रीराम के अवतार हुए हैं और रामायण भी सौ-करोड़ अपार है।

कलप भेद हरि चरित सुहाए * भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए
करिअ न संशय अस उर जानी * सुनिअ कथा सादर रति मानी

कल्प-भेद के अनुसार भी हरि के सुहावने चरित्र मुनीश्वरों ने अनेक प्रकार से वर्णन किये हैं। ऐसा मन में विचार कर सन्देह न करें और आदर सहित प्रेम से सुनें।

दोहा—राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार ।
सुनिआचरजु न मानिहहिं, जिन्हकें बिमल बिचार ।। ३३ ।।

श्रीराम अनन्त हैं,तथा उनके गुण भी अनन्त हैं, इसी कारण राम-कथा का विस्तार असीम है । जिनके विचार शुद्ध हैं, वे लोग इसको सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे ।

एहि बिधि सब संशय कर दूरी * सिरि धरि गुरु पद पंकज धूरी
पुनि सबहि विनय कर जोरी * करत कथा जेहिं लागि न खोरी

इस प्रकार सब सन्देह को दूर कर, गुरु-चरणों की रज को शिर पर धारण करके फिर सब ही की हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ जिससे कथा रचना में दोष न आवे ।

सादर शिवहि नाइ अब माथा * बरनउँ बिसद राम गुन गाथा
सम्बत सोलह सौ इकतीसा * करहुँ कथा हरिपद धरि सीसा

अब मैं आदर सहित शिवजी को मस्तक नवाकर रामजी के निर्मल गुणों की कथा कहता हूँ । अब मैं सम्वत् १६३१ में श्रीहरि के चरणों में शिर नवाकर कथा प्रारम्भ करता हूँ ।

नौमी भौम बार मधु मासा * अवधपुरी यह चरित प्रकासा
जेहिदिन रामजन्मश्रुति गावहिं * तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं

चैत्रमास की नवमी तिथि मंगलवार को अयोध्यापुरी में यह राम-चरित्र प्रारम्भ हुआ । जिस दिन श्रीरामजी का जन्म होता है, वेदों में कहा है कि उस दिन सब तीर्थ वहाँ पर चले आते हैं ।

असुर नाग खग नर मुनि देवा * आइ करहिं रघुनायक सेवा
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना * करहिं राम कल कीरति गाना

असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब आकर श्रीरघुनाथजी की सेवा करते हैं । भक्तजन रामजन्म का बड़ा उत्सव मनाते हैं और श्रीरामजी का सुन्दर गुणगान करते हैं ।

दोहा—मज्जहिं सज्जन बृन्द बहु, पावन सरजू नीर ।
जपहिं रामधरि ध्यान उर, सुन्दर श्याम शरीर ।। ३४ ।।

सज्जनों के झुण्ड सरयू के पवित्र जल में स्नान करते हैं और हृदय में सुन्दर श्याम-शरीर श्रीरामजी का ध्यान धरकर राम-नाम जपते हैं ।

दरस परस मज्जन अरु पाना * हरहिं पाप कह वेद पुराना
नदी पुनीतअमित महिमा अति * कहि न सकइ सारदा बिमलमति

दर्शन, स्पर्श, स्नान एवं जलपान करने से श्रीसरयूजी पापों को हर लेती हैं, ऐसा वेद-पुराण कहते हैं । इस पवित्र नदी की भारी महिमा को निर्मल-बुद्धि शारदा भी नहीं कह सकतीं ।

राम धामदा पुरी सुहावनी * लोक समस्त विदित अति पावनी
चारि खानि जग जीव अपारा * अवध तजें तनु नहिं संसारा

श्रीराम-धाम को देने वाली सुहानी अयोध्यापुरी पवित्र और सब लोकों में प्रसिद्ध है ।

चार प्रकार के अनन्त जीव जगत् में हैं. अवधपुरी में शरीर छोड़ने से उन्हें जन्म-मरण का दुःख नहीं होता है।

सब बिधि पुरी मनोहर जानी * सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी
बिमल कथा कर कीन्ह अरम्भा * सुनत नसाहिं काम मद दम्भा

पुरीको सब प्रकार से मनोहर, सब सिद्धियों की दाता एवं मंगल की खान जान मैंने इस सुन्दर राम-कथा का प्रारम्भ किया, जिसके सुनने से काम, मद, दम्भ आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।

रामचरितमानस एहि नामा * सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा
मन करि विषय अनल बन जरई * होइ सुखी जौं एहिं सर परई

इसका 'रामचरित्र-मानस' नाम है, इसको कानों से सुनते ही शान्ति मिलती है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल में जल रहा है, यदि वह इस मान सरोवर में आ पड़े तो सुखी हो जाय।

रामचरितमानस मुनि भावन * बिचरेउ शम्भु सुहावन पावन
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन * कलि कुचालि कलि कलुष नसावन

मुनि-भावन, सुहावने और पवित्र रामचरित-मानस को शिवजी ने रचा है, जो तीनों प्रकार के दोष और दरिद्र को दूर करने वाला व कलियुग के पापों का नाश करने वाला है।

रचि महेश निज मानस राखा * पाइ सुसमय शिवा सन भाखा
तातैं रामचरितमानस वर * धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर
कहउँ कथा सोई सुखद सुहाई * सादर सुनहुँ सुजन मन लाई

शिवजी ने इसको रचकर अपने मनमें रक्खा फिर सुअवसर पाकर पार्वती से कहा। इस लिए शिवजी ने अपने हृदय में विचारकर प्रसन्नतापूर्वक रामचरित-मानस ऐसा सुन्दर नाम रक्खा। वही सुखदायक सुन्दर कथा मैं कहता हूँ, हे सज्जनो! इसे सादर मन लगाकर सुनो।

दोहा—जनमानस जेहि बिधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥ ३५ ॥

'रामचरित-मानस' जैसा है, जिस प्रकार बना है, संसार में इसका प्रचार जिस कारण हुआ। अब वही कथा में श्रीशिव पार्वतीजी का स्मरण करके कहता हूँ।

शम्भु प्रसाद सुमित हियँ हुलसी * रामचरितमानस कबि तुलसी
करइ मनोहर मति अनुहारी * सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी

शिवजी की कृपा से हृदय में सुबुद्धि का प्रकाश हुआ, जिससे मैं रामचरित-मानस का कवि हुआ। बुद्धि के अनुसार मैं इसे मनोहर बनाता हूँ, सज्जन इसे ध्यान से सुनकर सुधार लेंगे।

सुमित भूमि थल हृदय अगाधू * वेद पुरान उदधि घन साधू
बरषहिं राम सुजस बर बारी * मधुर मनोहर मंगलकारी

निर्मल बुद्धि पृथ्वी-तल है, हृदय गहराई है, वेद-पुराण समुद्र हैं, साधु लोग बादल हैं। वे ही रामचरित्र रूपी सुन्दर, मधुर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी * सोइ स्वच्छता करइ मल हानी
प्रेम भगति जो बरनि न जाई * सोई जल मधुर सुसीतलताई

श्रीराम का सगुण-लीला वर्णन ही स्वच्छता है, जो मन के मैल का नाश करती है। प्रेम-भक्ति जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वही जल की मधुरता और सुशीलता है।

जो जल सुकृतिसालि हित होई * राम भगत जन जीवन सोई
मेधा महि गत जो जल पावन * सकिलि श्रवन मगचलेउ सुहावन
भरेउ सुमानस सुथल थिराना * सुखद सीत रुचि चारु चिराना

वह जल पुण्यरूपी धानों को हितकर होता है, वही श्रीरामजी के भक्तजनों का जीवन है। वह पवित्र जल बुद्धि-रूपिणी पृथ्वी पर बरसा और इकट्ठा होकर कानों के मार्ग से भीतर चला फिर सुन्दर मानस रूपी शरद्-ऋतु को पाकर और पुराना होकर सुखदायक हो गया।

दोहा—सुठि सुन्दर सम्वाद वर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥ ३६ ॥

बहुत सुन्दर चार सम्वाद (भुशुण्डि-गरुड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, तुलसी-सन्त) जो बुद्धि से विचार कर रचे गये हैं, वे ही इस पवित्र सुन्दर सरोवर के मनोहर चार घाट हैं।

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना * ग्यान नयन निरखत माना
रघुपति महिमा अगुन अबाधा * बरनव सोइ वर वारि अगाधा

कथा के सात काण्ड ही सात सीढ़ियाँ हैं, जिनको ज्ञानरूपी नेत्रों से देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। श्रीरघुनाथजी की गुणातीत और अपार महिमा का वर्णन ही सुन्दर जल की गहराई है।

रामसीय जससलिल सुधा सम * उपमा बीचि बिलास मनोरम
पुरइनि सघन चारु चौपाई * जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई

श्रीसीता-राम का यश ही अमृत के समान जल है, उपमायें ही मनोहर तरंगों का विलास है। सुन्दर चौपाइयाँ ही घनी कमलकी बेलें हैं और युक्तियाँ ही उज्जवल मोती की सुन्दर सीपियाँ हैं।

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा * सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा
अरथ अनूप सुभाव सुभासा * सोइ पराग मकरन्द सुबासा

सुन्दर छन्द, सोरठा और दोहा ही अनेक रंग वाले कमलों के समूह शोभायमान हैं। अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव और अच्छी भाषा ही पुष्प रज, मकरन्द और सुगन्ध हैं।

सुकृत पुन्ज मंजुल अलि माला * ग्यान बिराग विचार मराला
धुनि अवरेव कवित गुन जाती * मीन मनोहर ते बहु भाँती

पुण्यात्मा भक्तजनों के समूह ही सुन्दर भौंरों के झुण्ड हैं और ज्ञान वैराग्य व विचार-हंस हैं। ध्वनि, कथन, शक्ति, गुण और जाति ही अनेक प्रकार की मनोहर मछलियाँ हैं।

अरथ धरम कामादिक चारी * कहब ग्यान बिग्यान बिचारी
नव रस जप तप जोग बिरागा * ते सब जलचर चारु तड़ागा

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों और ज्ञान, विज्ञान, विचार, नव-रस, जप, योग और वैराग्य ये सब सुन्दर सरोवर के जलचर हैं।

सुकृति साधु नाम गुन गाना * ते बिचित्र जल बिहग समाना
सन्त सभा चहुँ दिसि अँवराई * श्रद्धा ऋतु बसन्त सम गाई

पुण्यात्मा साधुजनों के नाम और गुणों का गान ही विचित्र जल-पक्षी हैं। सन्तजनों की सभा ही सरोवर के चारों ओर लगी हुई अमराईं और श्रद्धा ही बसन्त के समान रितु है।

भगति निरूपन बिबिध बिधाना * छमा दया दम लता बिताना
सम जम नियम फूल फल ग्याना * हरि पद रति रस बेद बखाना
औरउ कथा अनेक प्रसंगा * तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा

विविध प्रकार से भक्ति का वर्णन, क्षमा, दया और दम ही लताओं के चँदोवे हैं। संयम और नियम फूल हैं, ज्ञान फल है, श्रीहरि के चरणों में प्रेम होना ही रस है और जो अनेकों कथा प्रसंग हैं वे ही तोते, कोयल आदि अनेक रंगों के पक्षी हैं।

दोहा—पुलकि बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माला सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥ ३७ ॥

कथा में जो रोमांच होता है, वही वाटिका, बाग और वन हैं। सुख सुन्दर पक्षियों का विहार है। सुन्दर मनरूपी माली स्नेह रूपी जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा उसे सींचता है।

जे गावहिं यह चरित सँभारे * तेइ एहि ताल चतुर रखबारे
सदा सुनहिं सादर नर नारी * तेइ सुरबर मानस अधिकारी

जो इस चरित्र को ध्यान पूर्वक गाते हैं, वही इस सरोवर के चतुर रक्षक हैं। जो नर नारी उस कथा को आदर के साथ सुनते हैं, वे ही देवताओं के श्रेष्ठ मानस के अधिकारी हैं।

अति खल जे बिषयी बक कागा * एहि सर निकट न जाहिं अभागा
सम्बुक भेक सेबार समाना * इहाँ न बिषय कथारस नाना

जो बड़े दुष्ट व विषयी बगुले और कौए हैं वे अभागे इस सरोवर के निकट भी नहीं जाते। क्योंकि इसमें घोंघे, मेंढ़क व सियार के समान अनेक भाँति की विषय-रस से भरी कथायें नहीं हैं।

तेहि कारन आवत हियँ हारे * कामी काक बलाक बिचारे
आवत एहिं सर अति कठिनाई * राम कृपा बिनु आइ न जाई

इसलिए कामीजन-रूपी कौए और बगुले बेचारे यहाँ आते हुए अपने हृदय में हार जाते हैं। सरोवर पर आना कठिन है, श्रीराम की कृपा के बिना किसी से नहीं आया जाता।

कठिन कुसंग कुपन्थ कराला * तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला
गृह कारज नाना जंजाला * ते अति दुर्गम सैल बिसाला

बन बहु विषम मोह मद माना * नदीं कुतर्क भयंकर नाना

यहाँ जाने के लिए सुसंग ही दुर्गम मार्ग है, जिसमें उन दुष्टों के वचन ही सिंह, बाघ और सर्प हैं। घरके काम और अनेक प्रकार के बुरे जंजाल ही मानो बड़े २ दुर्गम पहाड़ हैं। मोह, मद, मान-ये ही बहुत से घने वन हैं और अनेकों प्रकार के बुरे विचार ही भयावनी नदियाँ हैं।

दोहा—जे श्रद्धा सम्बल रहित, नहिं सन्तन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥३८॥

जिनके पास श्रद्धा रूपी सम्बल नहीं है और न सन्तों का साथ ही है तथा श्रीरघुनाथजी जिसको प्रिय नहीं हैं, उनको यह मानस बहुत ही अगम है।

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई * जातहिं नींद जुड़ाई होई
जड़ता जाड़ विषम उर लागा * गएहुँ न मज्जनु पाव अभागा

यदि कोई कष्ट सहकर वहाँ जाय भी, तो पहुँचते ही नींदरूपी जूड़ी घेर लेती है। मूर्खतारूपी असह्य जाड़ा हृदय में ऐसा लगता है कि पहुँचने पर भी वह अभागा उसमें स्नान नहीं करपाता।

करि न जाइ सर मज्जनु पाना * फिरि आवइ समेत अभिमाना
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा * सर निन्दा करि ताहि बुझावा

जब उससे स्नान और जलपान नहीं किया जाता तो, वह अभिमान सहित लौट आता है। फिर जो कोई पूछने आता है, तो उसको सरोवर की निन्दा सुनाकर समझा देता है।

सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही * रामु सुकृपाँ बिलोकहिं जेही
सोइ सादर सर मज्जनु करई * महाघोर त्रयताप न जरई

उसे कोई भी विघ्न-बाधा नहीं व्यापते, जिसको श्रीराम कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदर पूर्वक इस सरोवर में स्नान करता है और महाघोर तीनों तापों से भी नहीं जलता।

ते नर यह सर तजहिं न काऊ * जिन्हकें रामचरन भलि भाऊ
जो नहाइ चह एहिं सर भाई * सो सतसंग करउ मन लाई

वे इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते, जिनके हृदय में श्रीरामजी के चरणों में अच्छा भाव है। हे भाई! जो इस सरोवर में स्नान करना चाहे, वह मन लगाकर सत्संग करे।

अस मानस मानस चख चाही * भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही
भयउ हृदयँ आनन्द उछाहू * उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू

ऐसे, 'मानस-सर' में स्नान करने के लिए हृदय के नेत्र चाहिए, जिसमें स्नान करने से कवि की बुद्धि निर्मल हो गई। हृदय में आनन्द और उत्साह भर आया तथा प्रेम व आनन्द का प्रभाव उमड़ पड़ा।

चली सुभग कविता सरिता सो * राम बिमल जस जल भरिता सो
सरजू नाम सुमंगल मूला * लोक वेद मत मंजुल कूला
नदी पुनीत सुमानस नन्दिनि * कलिमल तृनतरु मल निकन्दिनि

उससे सुन्दर कविता रूपिणी नदी वह निकली, जिसमें श्रीरामजी का निर्मल यश-रूपी जल भरा है उसका नाम 'सरयू' है, जो सब मंगलों की जड़ है। लोक-मत और वेद-मत उसके दो सुन्दर किनारे हैं। रामचरित्र-मानस-सरोवर से उत्पन्न हुई यह पवित्र नदी कलि-युग के पापरूपी तट के वृक्षों को उखाड़ने वाली है।

दोहा—श्रोता त्रिबिधि समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
सन्त सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल ॥ ३९ ॥

उत्तम, मध्यम, लघु तीनों प्रकार के श्रोताओं के समूह ही मानो दोनों किनारों पर गाँव व नगरी हैं। संतों की सभा ही मानो अनुपम अयोध्यापुरी है, जो सुन्दर मंगलों की जड़ है।

राम भगति सुरसरितहि जाई * मिली सुकीरति सरजु सुहाई
सानुज राम समर जसु पावन * मिलेउ महानदु सोन सुहावन

राम-भक्त रूपी गंगाजी में निर्मल यश वाली सुहावनी 'सरयू' जाकर मिली है। छोटे भाई सहित रामजी के युद्ध का पवित्र यश ही मानो उसमें सुहावना सोनभद्र नामक महानद आकर मिला है।

जुग बिच भगति देवधुनि धारा * सोहति सहित सुबिरति बिचारा
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी * राम सरूप सिन्धु समुहानी

दोनों के बीच गंगाजी की धारा ऐसी शोभित है, जैसे ज्ञान और वैराग्य के साथ मुक्ति, तापों को भय देने वाली-तीन मुँह वाली नदी श्रीराम-रूपी समुद्र की ओर चली।

मानस मूल मिली सुरसरिही * सुनत सुजन मन पावन करिही
बिचबिच कथा बिचित्र बिभागा * जनु सरि तीर तीर बन बागा

मानस की जड़ ऐसी सरयू गंगाजी में जा मिली, इसी हेतु श्रोता सज्जनों के हृदय को पवित्र कर देगी। इसके बीच २ में जो विचित्र कथायें हैं, वही किनारे के वन और बाग हैं।

उमा महेश बिबाह बराती * ते जलचर अगनित बहु भाँती
रघुबर जन्म अनन्द बधाई * भँवर तरंग मनोहरताई

शिव-पार्वतीजी के विवाह के जितने बराती हैं, वही इस नदी के बहुत प्रकार के असंख्य जल-चर जीव हैं। श्रीरामचन्द्रजी के जन्म की आनन्द-बधाई इस नदी की मनोहर भँवर-तरंगें हैं।

दोहा—बाल चरित चहु बन्धु के, बनज बिपुल बहु रंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग ॥ ४० ॥

श्रीराम आदि चारों भाइयों के बाल-चरित्र इसमें बहुत-रंग-बिरंगे कमल हैं। राजा दशरथ और उनकी रानियाँ व कुटुम्बी लोगों के पुण्य ही भौंरे और जल पक्षी हैं।

सीय स्वयम्बर कथा सुहाई * सरित सुहावनि सो छबि छाई
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका * केवट कुशल उतर सबिबेका

सीता के स्वयंवर की जो मनोहर कथा है, वही सुहावनी नदी की शोभा छा रही है। इस

नदी में अनेक प्रश्न ही नावें हैं और उन प्रश्नों के विवेक पूर्ण उत्तर ही चतुर केवट हैं।

सुनि अनुकथन परस्पर होई * पथिक समाज सोह सरि सोई
घोर धार भृगुनाथ रिसानी * घाट सुबुद्धि राम बर बानी

कथा सुनकर जो बात-चीत आपस में होती हैं, वही मानो इस नदी के यात्री हैं। परशु-रामजी का कोप तीक्ष्ण धारा व श्रीरामजी के श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर घाट बंधे हुए हैं।

सानुज राम बिबाह उछाहू * सो सुभ उमग सुखद सब काहू
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं * ते सुकृति मन मुदित नहाहीं

भाइयों सहित श्रीरामजी के विवाह का जो उत्सव है, यही मानो इस कथा रूपिणी नदी की सब सुख देने वाली तरंगे हैं। इसको कहते-सुनते हुए जो लोग प्रसन्न होकर रोमांचित होते हैं, वे ही पुण्यात्मा जन मानो प्रसन्न मन से स्नान करते हैं।

राम तिलक हित मंगल साजा * परब जोग जनु जुरे समाजा
काई कुमति केकई केरी * परी जासु फल बिपति घनेरी

श्रीरामजी के तिलक के निमित्त जो मङ्गल-साज सजा है, वही मानो पर्व, योग, समाज जुड़ा है। केकई की कुमति ही मानो इस नदी में काई है, उसी से घोर विपत्ति आ पड़ी है।

दोहा—समन अमित उतपात सब, भरतचरित जप जाग।
कलिअघ खलअवगुन कथन, ते जल मल बक काग ॥ ४१ ॥

सब उपद्रवों को शान्त करने के निमित्त भरतजी का चरित्र ही जप और यज्ञ है। कलि-युग के पाप और दुष्टों के अवगुणों का वर्णन ही जल के मलिन पक्षी बगुले और कौए हैं।

कीरति सरित छहूँ ऋतु रूरी * समय सुहावनि पावनि भूरी
हिम हिम सैलसुता सिव ब्याहू * सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू

वह कीर्तिरूपिणी नदी छहों रितुओं में भरी रहती है और समय पर बहुत सुहावनी और पवित्र हो जाती है। श्रीशिव-पार्वती जी का विवाह हेमन्त रितु है और श्रीरामजी का सुख दायक जन्मोत्सव शिशिर-रितु है।

बरनब राम बिबाह समाजू * सो मुद मंगलमय ऋतुराजू
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू * पन्थ कथा खर आतप पवनू

श्रीराम-विवाह की कथा-आनन्द-मंगलकारी बसंतरितु है और श्रीरामजी के वन गमन की कथा ही दुःखदायी ग्रीष्मरितु है। मार्ग की कथा मानो कड़ी धूप और लू है।

बरषा घोर निसाचर रारी * सुरकुल सालि सुमंगलकारी
राम राज सुख बिनय बड़ाई * बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई

राक्षसों की लड़ाई मानो वर्षा है, जो देव-समूह रूपी धानों को मंगलकारी है। राम-राज्य में जो सुख, सुनीति और बड़ाई है, वही सुख देने वाली शरद् रितु है।

सती सिरोमनि सिय गुननाथा * सोइ गुन अमल अनूपम पाथा

भरत सुभाउ सुसीतलताई * सदा एक रस बरनि न जाई

सती-शिरोमणि सीताजी के गुणों की कथा जल के समान निर्मल और उपमा रहित गुण है। भरत का स्वभाव शीतलता है, जो सदा एक-सी रहती है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दोहा—अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहुँ बन्धु की, जल माधुरी सुबास ॥ ४२ ॥

श्रीराम आदि चारों भाइयों का आपस में देखना, बोलना, मिलना, प्रेम करना, हँसना तथा सुन्दर भ्रातृ-भाव ही जल की मधुरता और सुगन्धि है।

आरति बिनय दीनता मोरी * लघुता ललित सुबारि न थोरी
अद्‌भुत सलिल सुनत गनकारी * आस पिआस मनोमल हारी

अत्यन्त प्रेम के साथ मेरी विनती तथा दीनता ही इस सुन्दर जल का हल्कापन और निर्मलता है। इसमें जल का कुछ दोष ही नहीं है, जल अनोखा है, सुनते ही गुण करता है और वंश्यारूपी प्यास तथा मन के मैल को दूर करता है।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी * हरत सकल कलि कलुष गलानी
भव श्रम सोषक तोषक तोषा * समन दुरित दुख दारिद दोषा

वह जल श्रीरामजी के सुन्दर प्रेम को बढ़ाता है, कलियुग के पापों की ग्लानि को हरता है। यह जन्म-मरण के दुःखों को दूर करने वाला और सन्तोष को भी सन्तोष देने वाला है, कथा कठिन दुःख और दरिद्रता के दोषों का नाश करता है।

काम कोह मद मोह नसावन * बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन
सादर मज्जन पान किए तें * मिटहिं पाप हरिताप हिए तें

यह जल काम, क्रोध, अहंकार और मोह का नाश करने वाला, निर्मल ज्ञान-वैराग्य को बढ़ाता है। आदर सहित स्नान करने और पीने से पाप एवं दुःख हृदय से मिट जाते हैं।

जिन्ह एहिं बार न मानस धोए * ते कायर कलिकाल बिगोए
तृषित निरखि रबिकर भव बारी * फिरहहिं मृग जिमि जीव दुखारी

जिन्होंने इस जल से अपने मन को नहीं धोया उन कायरों को कलिकाल ने बिगाड़ दिया। जैसे प्यासा हिरन—सूर्य की किरणों से (रेती में) उत्पन्न हुए मिथ्या-जल को देखकर भटकता फिरता है।

दोहा—मतिअनुहारि सुबारि गुन, गनगनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी शंकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥४३क॥

अपनी बुद्धि के अनुसार इस निर्मल जल में उत्तम गुण-समूह युक्त मन को स्नान करा कर और श्रीशिव-पार्वती को स्मरण करके मैं यह सुहावनी कथा कहता हूँ।

अब रघुपति पद पंकरुह, हियँ धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर, मिलन सुभग सम्बाद ॥४३ख॥

अब मैं श्रीरघुनाथजी के चरणों को हृदय में धारण कर और उसकी प्रसन्नता पाकर दोनों मुनिश्वरों का मिलन तथा सुन्दर सम्वाद वर्णन करता हूँ।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा * तिन्हहि रामपद अति अनुरागा
तापस सम दम दया निधाना * परमारथ पथ परम सुजाना

प्रयाग में भारद्वाज मुनि रहते हैं, उनका श्रीरामजी के चरणों में अधिक प्रेम है। वह तपस्वी, शान्त-स्वभाव, इन्द्रिय-जित, दया के घर और परमार्थ (धर्म) के मार्ग में बड़े चतुर हैं।

माघ मकरगत रबि जब होई * तीरथपतिहिं आव सब कोई
देव दनुज किन्नर नर श्रेनीं * सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं

माघ मास में मकर-संक्राति को सब कोई तीर्थ राज प्रयाग में आते हैं। देवता, दैत्य किन्नर और मनुष्यों के झुण्ड आदर सहित सभी त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

पूजहिं माधव पद जलजाता * परसि अखयवटु हरषहिं गाता
भरद्वाज आश्रम अति पावन * परम रम्य मुनिवर मन भावन

वेणीमाधव के चरण-कमलों की पूजा करते हैं और अक्षय-वट को छूकर प्रसन्न होते हैं। वहाँ भारद्वाज मुनि का आश्रम अत्यन्त पवित्र, बहुत सुन्दर और मुनिश्वरों के मन को भी मोहित करता है।

तहाँ होय मुनि रिषय समाजा * जाहिं जे मज्जन तीरथराजा
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा * कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा

वहाँ पर ऋषि-मुनियों का समाज होता है, जो प्रयाग में स्नान करने जाते हैं, प्रातःकाल सब लोग बड़े उत्साह से स्नान करते हैं और आपस में श्रीहरि के गुणानुवाद गान करते हैं।

दोहा—ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवन्त कै, संजुत ग्यान बिराग ॥ ४४ ॥

ब्रह्म-निरूपण 'धर्म' तत्वों के विभाग ज्ञान-वैराग्य सहित भगवद्भक्ति का वर्णन करते हैं।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं * पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं
प्रति सम्बत अति होई अनन्दा * मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा

इस तरह माघ-मास भर स्नान करते हैं, फिर सभी अपने२आश्रमों को लौट जाते हैं। प्रत्येक वर्ष इसी प्रकार बहुत ही आनन्द होता है, मकर स्नान करके मुनियों के समूह चले जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए * सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए
जागबलिक मुनि परम बिबेकी * भरद्वाज राखे पद टेकी

एक बार मकर-स्नान कर मुनीश्वर अपने २ आश्रमों को लौट गये। परन्तु परम विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को भरद्वाज मुनि ने चरण पकड़ कर रोक लिया।

सादर चरन सरोज पखारे * अति पुनीत आसन बैठारे
करि पूजा मुनि सुजस बखानी * बोले अति पुनीत मृदु बानी

आदर सहित उनके चरण-कमल धोये और बहुत पवित्र आसन पर बैठाया और पूजा करके मुनि के सुयश को बखान कर अति कोमल वाणी से बोले—

नाथ एक संसय बड़ मोरें * करतल बेदतत्व सबु तोरें
कहत सो मोहि लागत भय लाजा * जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा

हे नाथ! मुझे एक बड़ा संदेह है कि वेदों का तत्व आपकी मुट्ठी में है उसको कहते हुए मुझे भय तथा लाज लगती है और जो नहीं कहता तो बड़ा अनर्थ होता है।

दोहा—सन्त कहहिं असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर, गुरु सन किएँ दुराव ॥ ४५ ॥

हे प्रभो! सन्तजन ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनियों ने भी ऐसा ही कहा है कि गुरू से बात छिपाने से हृदय में निर्मल ज्ञान पैदा नहीं होता।

अस बिचार प्रगटउँ निज मोहू * हरहु नाथ करि जन पर छोहू
राम नाम कर अमित प्रभावा * सन्त पुरान उपनिषद गावा

ऐसा विचारकर मैं अब अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ! दास पर कृपा करके उसे दूर करें। राम-नाम का बड़ा प्रभाव है, उसे सन्तों, पुराणों और उपनिषदों ने गाया है।

सन्तत जपत शम्भु अबिनाशी * शिव भगवान ग्यान गुन रासी
आकर चारि जीव जग अहहीं * काशी मरत परम पद लहहीं

कल्याण स्वरूप, अविनाशी, गुणों की खान, भगवान शिव सदैव 'राम-नाम' जपते हैं। संसार में चार प्रकार के जीव हैं, काशी में मरने से वे सब मोक्ष पाते हैं।

सोहि राम महिमा मुनिराया * शिव उपदेसु करत करि दाया
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही * कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही

हे मुनिराज! यह भी राम की महिमा है, जोकि शिवजी दया करके उपदेश करते हैं। हे प्रभु! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं? कृपासिन्धु! मुझे समझाकर कहिए।

एक राम अवधेस कुमारा * तिन्ह करि चरित बिदित संसारा
नारि बिरहँ दुखु लहे अपारा * भयउँ रोषु रन रावनु मारा

एक राम तो अवधपति दशरथजी के पुत्र हैं जिनका चरित्र संसार में प्रसिद्ध है। स्त्री के वियोग से अपार दुःख सहा और क्रोधित हो रण में रावण को मारा।

दोहा—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्बग्य तुम्ह, कहहु बिबेक बिचारि ॥४६॥

हे प्रभु! वही राम हैं, या कोई दूसरे हैं—जिनको शिवजी जपते हैं? आप सत्य के धाम और सर्वज्ञ हैं, अतः ज्ञान से विचार कर कहिये।

जैसे मिटै मोर भ्रम भारी * कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी

याज्ञवल्क्य बोले मुसुकाई * तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई

जिस प्रकार से मेरा भारी भ्रम मिटे, हे नाथ ! वही कथा विस्तार से कहिए । यह सुनकर याज्ञवल्क्य मुनि हँसकर बोले कि तुम श्रीरघुनाथजी की महिमा जानते हो ।

राम भगत तुम मन क्रम बानी * चतुराई तुम्हारि मैं जानी
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा * कीन्हिउ प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा

मन, वचन, कर्म से तुम श्रीरामभक्त हो, तुम्हारी चतुरता मैंने जान ली—तुम श्रीरामजी के गूढ़ (छिपे हुए) गुणों को सुनने के लिए ऐसे पूछ रहे हो—मानो महामूर्ख हो ।

तात सुनहु सादर मनु लाई * कहउ राम कै कथा सुहाई
महा मोह महिसेषु बिसाला * रामकथा कालिका कराला

हे तात ! आदर के साथ मन लगाकर सुनो—मैं श्रीरघुनाथजी की सुहावनी कथा कहता है । महा अज्ञानरूपी महिषासुर को मारने के लिए राम-कथा भयंकर कालिका है ।

राम कथा शशि किरन समाना * सन्त चकोर करहिं जेहि पाना
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी * महादेव तब कहा बखानी

श्री राम-कथा—चन्द्रकिरण के समान है, जिसे सन्तरूपी चकोर पान करते हैं । इसी प्रकार पार्वती जी ने सन्देह किया था, तब महादेवजी ने विस्तार सहित वर्णन किया था ।

दोहा—कहउँ सो मति अनुहारि अब, उमा शम्भु सम्बाद ।
भयउ सभय जेहि हेतु जेहि, सुनि मुनि मिटहिं विषाद ।।४७।।

अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार शिव-पार्वती का सम्वाद कहता हूं । वह जिस समय और जिन कारणों से हुआ—उसको सुनकर, हे मुनि ! तुम्हारा विषाद मिट जायगा ।

एक बार त्रेता युग माहीं * शम्भु गए कुम्भज ऋषि पाहीं
संग सती जग जननि भवानी * पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी

एक समय त्रेतायुग में शिवजी-अगस्त्य-रिषि के पास गये, साथ में जगत्-जननी भवानी भी थीं । रिषि ने सब संसार के ईश्वर जानकर उनकी पूजा की ।

रामकथा मुनि बर्ज बखानी * सुनी महेश परम सुख सानी
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई * कही शम्भु अधिकारी पाई

मुनिवर अगस्त्यजी ने राम-कथा कही, जिसे शिवजी ने बहुत सुख मानकर सुना । फिर रिषि ने भगवान की सुन्दर भक्ति पूछी, तब शिवजी ने अधिकारी जानकर कही ।

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा * कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी * चले सबन सँग दक्षकुमारी

श्रीरघुनाथजी के गुणों की कथा कहते-सुनते शिवजी कुछ दिन वहाँ रहे । फिर मुनि से विदा माँगकर शिवजी दक्षकुमारी सतीजी के साथ अपने स्थान को चले ।

तेही अवसर भञ्जन महि भारा * हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा
पिता बचन तजि राजू उदासी * दण्डक बन विचरहि अविनासी

उसी समय पृथ्वी का भार उतारने को श्रीहरि ने रघुवंश में अवतार लिया था। पिता का वचन मान, राज्य छोड़ अविनाशी प्रभु उदासीन दण्डक वन में विचरते थे।

दोहा—हृदयँ बिचारत जात हरि, केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गए जानि सबु कोइ ॥४८क॥

शिवजी हृदय में विचार करते हुए जा रहे थे कि किस प्रकार दर्शन हों? प्रभु ने गुप्त रूप से अवतार लिया है, मेरे जाने से सब जान लेंगे।

सो०—शंकर उर अति छोभु, सती न जानइ मरम सोइ।
तुलसी दरसन लोभु, मन डरु लोचन लालची ॥४८ख॥

शिवजी के मन में बड़ा क्षोभ था, सतीजी इस भेद को नहीं जानती थीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनके नेत्रों में—श्रीराम-दर्शन की लोभ-पूर्ण लालसा थी और मन में यह डर था कि इस भेद को कोई जान न जाय।

रावन मरनु मनुज कर जाँचा * प्रभु बिधिवचन कीन्ह चह साँचा
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा * करत बिचारु न बनत बनावा

रावण ने ब्रह्माजी से मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु माँगी थी, सो प्रभु ब्रह्माजी का वचन सत्य करना चाहते हैं। जो मैं श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करने न जाऊँ—तो पछतावा रहेगा, ऐसा विचार करते हुए शिवजी कुछ निश्चय नहीं कर पाये।

एहि विधि भए सोचबस ईसा * तेही समय जाइ दससीसा
लीन्ह नीच मारीचहि संगा * भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा

इस प्रकार शिवजी सोच में पड़े हुए थे कि उसी समय रावण ने जाकर नीच मारीच को संग लिया और वह तुरन्त कपट-मृग बन गया।

करि छलु मूढ़ हरि बैदेही * प्रभु प्रताप तस विदित न तेही
मृगबधि बन्धु सहित हरि आए * आश्रमु देखि नयन जल छाए

छल करके मूर्ख रावण ने वैदेही को हर लिया, क्योंकि वह प्रभु का प्रताप नहीं जानता था। मृग को मारकर भाई सहित जब रामजी आये, तो आश्रम को देखकर नेत्रों में जल भर आया।

विरह बिकल नर इव रघुराई * खोजत विपिन फिरत दोउ भाई
कबहूँ योग वियोग न जाकें * देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें

सीताजी के वियोग में व्याकुल मनुष्यों की भाँति राम-लक्ष्मण दोनों भाई सीताजी को वन में ढूँढ़ते फिरते हैं। जिनके कभी संयोग वियोग नहीं है, उनमें विरह का दुःख प्रत्यक्ष देखा।

दोहा—अति बिचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमन्द विमोह वश, हृदय धरहिं कछु आन ॥ ४९ ॥

श्रीरघुनाथजी के चरित्र अति विचित्र हैं, जो बड़े ज्ञानी हैं—वे ही जानते हैं। जो मन्द-बुद्धि हैं, वे अज्ञान के वश हृदय में कुछ और समझते हैं।

शम्भु समय तेहि रामहि देखा * उपजा हियँ अति हरसु विसेषा
भरि लोचन छबि सिंधु निहारी * कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी

शिवजी ने उस समय श्रीरामजी को देखा, तो उनके हृदय में बहुत आनंद उत्पन्न हुआ। नयन भर कर शोभा के समुद्र श्रीराम को देखा, परन्तु अवसर जानकर परिचय नहीं किया।

जय सच्चिदानन्द जग पावन * अस कहि चले मनोज नसावन
चले जात शिव सती समेता * पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता

'जगत् को पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द की जय हो' इस प्रकार कहकर शिवजी वहाँ से चल दिये। कृपानिधान शिवजी आनन्द से बारम्बार पुलकायमान होकर सतीजी के साथ चले जा रहे थे।

सतीं सो दशा शम्भु कै देखी * उर उपजा सन्देहु विसेषी
शंकर जगत बन्द्य जगदीसा * सुर नर मुनि सब नावत सीसा

शिवजी की दशा को देखकर सतीजी के हृदय में बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ कि शिवजी-सब संसार के बन्दनीय और जगदीश्वर हैं, देवता मनुष्य और मुनि सब इनको सिर नवाते हैं।

तिन्ह नृप सुतहिं कीन्ह परनामा * कहि सच्चिदानन्द परधामा
भए मगन छवि तासु बिलोकी * अजहूँ प्रीति उर रहति न रोकी

उन्होंने राजपुत्रों को 'सच्चिदानन्द और मोक्ष के धाम' कह प्रणाम किया और उनकी शोभा देखकर इतने मग्न हो गये कि अब तक हृदय में प्रीति रोकने से भी नहीं रुकती।

दोहा—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होय नर, जाहि न जानत वेद ॥ ५० ॥

जो ब्रह्म सर्व-व्यापक, माया से रहित, अजन्मा, अदृश्य, इच्छा और भेद रहित है तथा जिसे वेद भी नहीं जानते क्या वह देह धारण कर मनुष्य भी हो सकता है।

विष्नु जो सुर हित नर तनुधारी * सोइ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी
खोजत सो कि अग्य इव नारी * ग्यान धाम श्रीपति असुरारी

जो विष्णु-देवताओं के हित के लिए मनुष्य-देह धारण करते हैं, वे ही सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञान के भण्डार लक्ष्मीपति और असुरों के शत्रु-क्या अज्ञानी के समान स्त्री को ढूँढ़ेंगे ?

शम्भू गिरा पुनिमृषा न होई * शिव सर्वग्य जान सबु कोई
अस संसय मन भयउ अपारा * होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा

फिर शिवजी की वाणी भी झूँठी नहीं हो सकती। शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे सब जानते हैं। इस प्रकार सती के मन में बड़ा सन्देह हुआ, हृदय में ज्ञान उत्पन्न नहीं होता था।

जद्यपि प्रकट न कहेउ भवानी * हर अन्तरयामी सब जानी

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ ※ संसय अस न करिअ उर काऊ

यद्यपि सती ने प्रकट में कुछ नहीं कहा, किन्तु अन्तर्यामी शिवजी ने सब बात जानली। वे बोले सती ! सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। ऐसा सन्देह हृदय में नहीं करना चाहिए।

जासु कथा कुम्भज ऋषि गाई ※ भगति जासू मैं मुनिहि सुनाई
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा ※ सेवत जाहि सदा मुनि धीरा

जिनकी कथा अगस्त्य-ऋषि ने मुझसे कही और जिनकी भक्ति मैंने मुनिको सुनाई—वही श्रीरघुनाथजी मेरे इष्टदेव हैं और मुनी जिनकी सदा सेवा किया करते हैं।

छन्द—मुनि धीर जोगी सिद्ध सन्तन बिमल मन जेहिं ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी ।
अवतरेउ अपने भगतहित निज तन्त्र नित रघुकुलमनी ॥

ज्ञानी, मुनि, योगी, सिद्ध आदि निर्मल मन से सदैव जिनका ध्यान करते हैं। वेद-पुराण नेति-नेति कहकर जिन प्रभु की कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्व-व्यापक, सब भुवनों के स्वामी, माया-पति, स्वतन्त्र, नित्य, ब्रह्म रूप श्रीरामजी ने अपने भक्तों के हित के लिए रघुकुल में मणि समान अवतार लिया है।

सो०—लाग न उर उपदेसु, जदपि कहेउ शिवँ बार बहु ।
बोलेउ बिहँसि महेसु, हरिमाया बलु जान जियँ ॥ ५१ ॥

यद्यपि शिवजी ने बार-बार कहा, फिर भी सतीजी के हृदय पर उपदेश का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तब शिवजी हरिमाया को बलवान जानकर हँसकर बोले—

जौं तुम्हरें मन अति सन्देहू ※ तौ किन जाइ परीक्षा लेहू
तब लगि बैठि अहउँ बट छाँहीं ※ तब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं

जो तुम्हारे मन में अधिक सन्देह है, तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं ? जब तक तुम मेरे पास नहीं लौटोगी, तब तक मैं इस वट-वृक्ष की छाया में बैठा रहूँगा।

जैसे जाइ मोह भ्रम भारी ※ करेहु सो जतनु बिवेक बिचारी
चलीं सती शिव आयसु पाई ※ करहिं विचारु करौं का भाई

जिस प्रकार तुम्हारा मोह व भ्रम दूर हो—वही उपाय अपने मन में विचार कर करना। शिवजी की आज्ञा पाकर सतीजी चलीं और सोचने लगीं कि क्या करूँ—कैसे परीक्षा लूँ ?

इहाँ शम्भु अस मन अनुमाना ※ दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना
मोरेहु कहें न संसय जाहीं ※ विधि बिपरीत भलाई नाहीं

यहाँ शिवजी ने अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि दक्ष-पुत्री सती का कल्याण नहीं है। जब मेरे समझाने से भी संदेह दूर नहीं होता, तब भाग्य ही उल्टा है, भलाई नहीं जान पड़ती।

होइहि सोई जो राम रचि राखा ※ को करि तरक बढ़ावै साखा

अस कहि लगे जपनहरि नामा * गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा

वही होगा जो राम ने रच रक्खा है, तर्क करके कौन विस्तार बढ़ावे ? ऐसे कहकर शिवजी श्रीहरि का नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गईं–जहाँ सुख के धाम श्रीरामचन्द्रजी थे ।

दोहा–पुनिपुनिहृदयँविचारुकरि, धरि सीता करि रूप ।
आगें होइ चलि पन्थ तेहिं, जेहिं आवत नर भूप ।। ५२ ।।

बार-बार मन में विचार कर सीताजी का रूप धारण करके सतीजी–उसी मार्ग से आगे होकर चलीं, जिस मार्ग से श्रीरामजी आ रहे थे ।

लछिमन दीख उमाकृत बेषा * चकित भए भ्रम हृदयँ विशेषा
कहि न सकत कछुअति गम्भीरा * प्रभु प्रभाव जानत मतिधीरा

लक्ष्मणजी सती का बनावटी भेष देखकर चकित हो गये और उनके मनमें सन्देह हुआ। वे बहुत गम्भीर होगये, कुछ कह नहीं सके, वे धीर-बुद्धि श्रीरामजी के प्रभाव को जानते थे।

सती कपटु जानेउ सुर स्वामी * समदरशी सब अन्तरजामी
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना * सोइ सर्वग्य रामु भगवाना

देवताओं के स्वामी श्रीरामजी सतीजी के छल को जान गये, क्योंकि वे सब कुछ देखने वाले और सबके मन को जानने वाले हैं। जिनके स्मरण से अज्ञान दूर हो जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान श्रीरामजी हैं,

सती कीन्ह चह यहहुँ दुराऊ * देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ
निज माया बल हृदयँ बखानी * बोले बिहँसि राम मृदु बानी

सतीजी ने यहाँ भी अपना छिपाव करना चाहा, देखो-यह तो स्त्रियों के स्वभाव का प्रभाव है । अपनी माया का बल हृदय में विचारते हुए श्रीरामजी हँसकर मधुर वाणी से बोले–

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू * पिता समेत लीन्ह निज नामू
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू * विपिन अकेलि फिरहु केहु हेतू

श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम लिया फिर कहा कि महादेवजी कहाँ हैं और आप वन में किस कारण फिर रही हैं ।

दोहा–राम वचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोचु ।
सती सभीत महेश पहिं, चलीं हृदयँ बड़ सोचु ।। ५३ ।।

श्रीरामचन्द्रजी के कोमल और गूढ़ वचनों को सुनकर सतीजी को बहुत संकोच हुआ और डरकर शिवजी के पास चलीं, किन्तु हृदय में बहुत सोच था–

मैं शंकर कर कहा न माना * निज अग्यानु राम पर आना
जाइ उतरु अब देहउँ काहा * उर उपजा अति दारुन दाहा

कि मैंने शिवजी का कहा नहीं माना और अपना अज्ञान श्रीरामचन्द्रजी के सन्मुख प्रकट किया। अब शिवजी को जाकर क्या उत्तर दूँगी ? यह सोचकर हृदय में बड़ी दुस्सह जलन पैदा हुई ।

जाना राम सती दुखु पावा * निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा
सती दीख कौतुक मग जाता * आगें रामु सहित श्री भ्राता

श्रीरामजी ने जान लिया कि सतीजी को दुःख हुआ है, तब अपना कुछ प्रभाव दिखलाया। सतीजी ने मार्ग में यह कौतुहल देखा कि आगे श्रीराम-सीता, लक्ष्मण सहित जारहे हैं।

फिर चितवा पाछें प्रभु देखा * सहित बन्धु सिय सुन्दर वेषा
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना * सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना

पीछे फिरकर देखा, तो भी लक्ष्मण और सीताजी सहित सुन्दर वेष श्रीरामजी दिखाई दिये, जहां देखे वहां प्रभु ही विराजमान हैं और चतुर सिद्ध-मुनीश्वर सेवा कर रहे हैं।

देखे शिव बिधि विष्नु अनेका * अमित प्रभाउ एक तें ऐका
बन्दत चरण करत प्रभु सेवा * बिबिधि बेष देखे सब देवा

ऐसे अनेकों शिव, ब्रह्मा, विष्णु देखे-जिनका प्रभाव एक से एक बढ़कर था, फिर प्रभु श्रीरामजी की चरण बन्दना और सेवा करते अनेक प्रकार के वेष वाले सब देवता देखे।

दोहा—सती विधात्री इन्दिरा, देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं वेष अजादिसुर, तेहि तेहि तनु अनुरूप ॥ २४ ॥

अनेकों सती, सरस्वती और लक्ष्मी बहुत ही सुन्दर और अनुपम रूप वाली देखीं। जिस-जिस रूप में ब्रह्मा आदि देवता थे, उन्ही वेषों के अनुसार वे रूप धारण कर रहीं थीं।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते * शक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते
जीव चराचर जो संसारा * देखे सकल अनेक प्रकारा

सतीजी ने जहाँ-तहाँ जितने श्रीरघुनाथजी देखे, वहाँ उतने ही देवता शक्तियों सहित देखे। संसार में जितने चराचर जीव हैं, वे सब अनेकों प्रकार के देखे।

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा * राम रूप दूसर नहिं देखा
अवलोके रघुपति बहुतेरे * सीता सहित न वेष घनेरे

अनेकों वेष धारण किये देवता-प्रभु श्रीरामजी की पूजा कर रहे थे, परन्तु श्रीरामजी का दूसरा रूप नहीं देखा। सीताजी सहित बहुत-से श्रीरघुनाथजी देखे, परन्तु उनके वेष अनेक नहीं थे।

सोइ रघुपति सोइ लछिमनु सीता * देख सती अति भई सभीता
हृदय कम्प तनु सुधि कछु नाहीं * नयन मूंदि बैठीं मग माहीं

वही श्रीरघुनाथजी, वही लक्ष्मणजी, व सीताजी को देखकर सतीजी बहुत ही डर गईं। हृदय काँपने लगा, देह की कुछ भी सुधि न रही और आँखें बन्द करके मार्ग में बैठ गईं।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी * कछु न दीख महँ दच्छकुमारी
पुनि पुनि नाइ राम पद सीता * चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा

फिर आँख खोलकर देखा तो सतीजी को वहाँ कुछ भी नहीं दीख पड़ा, तब बार-बार

श्रीरामजी के चरणोंमें सिर नवाकर उस ओर चलीं—जहाँ शंकरजी थे ।

दोहा—गईं समीप महेश तब, हँसि पूछी कुशलात ।
लीन्हि परीक्षा कवन विधि, कहहु सत्य सब बात ।। ५५ ।।

जब पास पहुँचीं, तब शिवजी ने हंसकर कुशल पूछी और कहा कि किस प्रकार परीक्षा ली, सो सब बात सत्य २ कहो ?

* मास पारायण—दूसरा विश्राम *

सतीं समुझि रघुवीर प्रभाऊ * भय वश शिव सन कीन्ह दुराऊ
कछु न परीक्षा लीन्हि गोसाईं * कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं

श्रीरामजी के प्रभाव को समझ, मन में डरकर सतीजी ने शिवजी से छिपाव किया और कहा-स्वामी ! मैंने कुछ परीक्षा नहीं ली । केवल आपके समान ही प्रणाम किया ।

जो तुम कहा सो मृषा न होई * मोरें मन प्रतीति अति सोई
तब शंकर देखेऊ धरि ध्याना * सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना

जो आपने कहा, वह झूंठ नहीं हो सकता, यह मेरे मन में पूर्ण विश्वास है तब शिवजी ने ध्यान धरकर देखा और सतीजी ने जो चरित्र किया था, वह सब जान लिया ।

बहुरि राम मायहि सिरु नावा * प्रेरि सतिहि जेहि झूँठ कहावा
हरि इच्छा भावी बलवाना * हृदयँ विचारत शम्भु सुजाना

पुनः रामजी की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा कर सतीजी से भी झूँठ कहलवाया । हरि की इच्छारूपी होनहार बलवान है । बुद्धिमान शिवजी अपने मनमें विचार करने लगे—

सती कीन्ह सीता कर वेषा * शिव उर भयऊ विषाद बिसेषा
जौं अब करउँ सती सन प्रीती * मिटइ भगति पथु होइ अनीती

सतीजी ने सीताजी का रूप धारण किया, यह जानकर शिवजी के हृदय में बहुत दुःख हुआ । जो मैं अब सती से प्रेम करता हूँ, तो भक्ति का मार्ग नष्ट हो जायेगा और अनीति होगी ।

दोहा—परम पुनीत न जाय तजि, किएँ प्रेम बड़ पाप ।
प्रगटि न कहत महेश कछु, हृदयँ अधिक सन्तापु ।। ५६ ।।

परम पवित्र सती त्यागी नहीं जातीं और प्रेम करने में बड़ा पाप है । शिवजी प्रकट में तो कुछ नहीं कहते थे, परन्तु हृदय में बड़ा दुःख था ।

तब शंकर प्रभु पद सिरु नावा * सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा
एहिं तनु सतिहि भेंट मोहि नाहीं * शिव संकलपु कीन्ह मन माहीं

तब शिवजी ने रामजी के चरणों में सिर नवाया । राम का स्मरण करते ही हृदय में यह विचार आया कि इस शरीर से सती के साथ भेंट अब नहीं हो सकती । शिवजी ने यह संकल्प मन में कर लिया ।

अस विचारि शंकरु मति धीरा * चले भवन सुमिरत रघुवीरा

चलत गगन भई गिरा सुहाई ※ जय महेश भलि भगति दृढ़ाई

ऐसा विचार कर धैर्यवान शिवजी-रामजी का स्मरण करते हुए अपने भवन को चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई—हे महादेवजी! आपकी जय हो आपने अच्छी भक्ति दृढ़ की।

अस पन तुम्ह बिनु करई को आना ※ राम भगत समरथ भगवाना
सुनि नभ गिरा सती उर सोचा ※ पूछा शिवहि समेत सकोचा

ऐसा प्रण आपके शिवाय और कोन कर सकता है? आप श्रीराम के परम-भक्त, समर्थ और भगवान हैं। आकाशवाणी सुनकर सती के हृदय में चिन्ता हुई और संकोच सहित वे शिवजी से पूछने लगीं।

कीन्ह कवन पन कहहुं कृपाला ※ सत्यधाम प्रभु दीनदयाला
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती ※ तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती

हे कृपालु आपने कौन-सा प्रण किया है? हे प्रभु! आप सत्य के धाम और दीनदयालु हैं। यद्यपि सतीजी ने अनेक भांति से पूछा तो भी शिवजी ने कुछ नहीं कहा।

दोहा—सतीं हृदयँ अनुमान किय, सबु जानेउ सर्वग्य।
कीन्ह कपटु मैं सम्भु सन, नारि सहज जड़ अग्य ॥५७क॥

सती ने अपने मन में विचार किया कि सर्वज्ञ शिवजी ने वह सब कुछ जान लिया, जो मैंने शिवजी से कपट किया था स्त्रियां स्वभाव से ही मूर्ख व अज्ञानी होती हैं।

सो०—जलु पय सरिस बिकाय, देखहु प्रीतिकि रीतिभलि।
बिलग होई रसु जाय, कपट खटाई परत पुनि ॥५७ख॥

देखो—प्रीति की रीति कैसी अच्छी है कि जल और दूध एक भाव बिकता है, परन्तु कपट रूपी खटाई पड़ते ही दूध अलग हो जाता है।

हृदयँ सोचु समुझत निज करनी ※ चिन्ता अमित जाइ नहिं बरनी
कृपासिन्धु शिव परम अगाधा ※ प्रगट न कहेउ मोर अपराधा

अपनी करतूत को हृदय में स्मरण कर सतीजी को अवर्णनीय चिन्ता हुई। कृपा के समुद्र शिवजी बड़े गम्भीर हैं, उन्होंने मेरे अपराध को प्रकट नहीं कहा।

शंकर रुख अवलोकि भवानी ※ प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई ※ तपइ अवाँ इव उर अधिकाई

शिवजी का रुख देखकर सतीजी ने जान लिया कि प्रभु ने मुझे त्याग दिया, वे यह जानकर अपने मन में व्याकुल हो गई। अपना अपराध समझ कर कुछ कहा नहीं जाता, किन्तु कुम्हार के अवे के समान हृदय तपने लगा।

सतिहि ससोच जानि वृषकेतू ※ कहीं कथा सुन्दर सुख हेतू
बरनत पन्थ बिबिध इतिहासा ※ विश्वनाथ पहुँचे कैलासा

सती को चिन्ता से व्याकुल जानकर शिवजी ने सुख के निमित्त सुन्दर कथायें कहीं। मार्ग में अनेक प्रकार के इतिहास कहते हुए शिवजी कैलाश पर पहुचे।

तहँ पुनि शम्भु समुझि पनु आपन * बैठे बट तर करि कमलासन
शंकर सहज सरूपु तुम्हारा * लागि समाधि अखण्ड अपारा

फिर वहाँ अपने प्रण का स्मरण कर शिवजी वट-वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। शिवजी ने अपना स्वभाविक स्वरूप सँभाला, जिससे अखण्ड और अपार समाधि लग गई।

दोहा–सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोउ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं ॥ ५८ ॥

सतीजी कैलाश पर रहने लगीं परन्तु मन में बहुत सोच था। इस भेद को कोई कुछ नहीं जानता था, युगों के समान दिन बीतने लगे।

नित नव सोचु सती उर भारा * कब जैहउँ दुख सागर पारा
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना * पुनि पति बचनु मृषा करि जाना

नित्य नया सोच सती के मन में बढ़ने लगा कि कब इस दुःख सागर से पार होऊंगी? मैंने जो श्रीरघुनाथजी का अपमान किया है, फिर पति के बचनों को झूठा जाना है।

सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा * जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही * शंकर बिमुख जिआवसि मोही

विधाता ने मुझको उसका फल दिया, जो कुछ उचित था–वही किया, हे विधाता! अब तुमको ऐसा उचित नहीं है कि शंकरजी से अलग करके मुझको जिलाओ।

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी * मन महुँ रामहिं सुमिरि सयानी
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा * आरति हरन बेद जसु गावा

सतीजी के हृदय की ग्लानी कुछ नहीं कही जाती, फिर चतुर सती ने मनमें श्रीरामजी का स्मरण किया-हे प्रभु! जो आप दीनदयालु कहलाते हैं और दुःखों को दूर करने वाले कहकर वेद आपका यश गाते हैं।

तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी * छूटउ बेगि देह यह मोरी
जौं मोरें शिव चरन सनेहू * मन क्रम बचन सत्य ब्रत एहू

तो मैं हाथ जोड़कर आपकी विनती करती हूँ कि मेरा यह शरीर शीघ्र छुट जाय। जो मेरा शिवजी के चरणों में स्नेह है मन, कर्म, वचन से मेरा पतिव्रत-धर्म सच्चा है।

दोहा–तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु, करहु सो बेगि उपाय।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रमु, दुसह बिपति बिहाय ॥ ५९ ॥

तो–हे समदर्शी प्रभु! सुनिये और शीघ्र ऐसा उपाय करिये, जिससे अनायास ही मेरी मृत्यु हो जाय और यह दुस्सह विपत्ति दूर हो जाय।

एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी * अकथनीय दारुन दुखु भारी
बीते सम्बत सहस सतासी * तजी समाधि शम्भु अबिनासी

इस प्रकार दक्ष-कन्या (सती) बहुत दुखित थी, अकथनीय बड़ा ही दारुण दुःख था। सत्तासी हजार वर्ष बीतने पर अविनाशी शिवजी ने समाधि त्यागी।

राम नाम शिव सुमिरन लागे * जानेउ सती जगतपति जागे
जाइ शम्भु पद बन्दनु कीन्हा * सनमुख शङ्कर आसनु दीन्हा

शिवजी राम-नाम का सुमिरन करने लगे, तब सती ने जाना कि अब विश्वनाथ समाधि से जागे हैं। उन्होंने समीप जाकर शिवजी के चरणों में प्रणाम किया तब शिवजी ने उन्हें अपने सामने आसन दिया।

लगे कहन हरि कथा रसाला * दच्छ प्रजेस भए तेहि काला
देखा बिधि बिचार सब लायक * दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक

शिवजी भगवान की रस-युक्त कथा कहने लगे। उसी समय दक्ष-प्रजापति हुए। ब्रह्माजी ने दक्ष को सब प्रकार से योग्य देखकर प्रजापतियों का स्वामी बनाया।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा * अति अभिमानु हृदय तब आवा
नहिं कोऊ अस जन्मा जग माहीं * प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं

जब दक्ष ने बड़ा अधिकार प्राप्त किया, तब हृदय में बड़ा अभिमान आ गया। जगत में ऐसा कोई नहीं जन्मा—जिसको प्रभुता पाकर मद नहीं आता।

दोहा—दच्छ लिए मुनि बोल सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग ॥ ६० ॥

दक्ष सब मुनियों को बुलाकर बड़ा भारी यज्ञ करने लगे। आदर सहित सभी देवताओं को न्यौता दिया, जो यज्ञ में भाग पाते हैं।

किन्नर नाग सिद्ध गन्धर्वा * बधुन्ह समेत चले सुर सर्वा
बिष्नु बिरञ्चि महेश बिहाई * चले सकल सुर जान बनाई

किन्नर, नाग, गन्धर्व आदि सब देवता अपनी स्त्रियों सहित चले। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी को छोड़कर, सब देवता अपने-अपने विमान बनाकर चले।

सती बिलोकेउ ब्योम बिमाना * जात चले सुन्दर बिधि नाना
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना * सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना

सती ने आकाश में अनेक सुन्दर विमान जाते हुए देखे, जिन पर देवांगनायें सुन्दर गान कर रहीं थी। जिसे कानों से सुनते ही मुनियों के ध्यान छुट जाते हैं।

पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी * पिता जग्य सुनि कछु हरिषानी
जौं महेश मोहि आयसु देहीं * कछु दिन जाई रहौं मिस ऐहीं

सती के पूछने पर शिवजी ने सब हाल कहा। पिता का यज्ञ सुनकर सती प्रसन्न हुईं और विचार करने लगीं कि यदि महादेवजी मुझको आज्ञा दें तो कुछ दिन इसी बहाने पिता के घर जाकर रहूँ।

पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी * कहइ न निज अपराध बिचारी

बोली सती मनोहर बानी * भय संकोच प्रेम रस सानी

पति के द्वारा त्यागे जाने का मन में बड़ा दुःख था, परन्तु अपना अपराध समझकर कुछ नहीं कहती थीं। सतीजी भय, संकोच व प्रेम-रस से युक्त मनोहर वाणी से बोलीं–

दोहा–पिता भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥ ६१ ॥

हे प्रभु ! पिता के घर बहुत सुन्दर उत्सव है, हे कृपानिधान ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी आदर पूर्वक उसको देखने जाऊँ।

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा * यह अनुचित नहिं नेवत पठावा
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं * हमरे बयरु तुम्हउ बिसराईं

शिवजी ने कहा–तुमने ठीक कहा है और तुम्हारी बात मुझे भी अच्छी लगी परन्तु अनुचित है कि उन्होंने हमको न्यौता नहीं भेजा। दक्ष ने अपनी सब कन्याओं को बुलाया है किन्तु हमारे डर के कारण तुमको भुला दिया।

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना * तेहिं ते अजहुँ करहिं अपमाना
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी * रहइ न सीलु सनेह न कानी

ब्रह्माजी की सभा में हमसे अप्रसन्न हो गये थे, उसीसे आज तक हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी ! जो बिना बुलाये जाओगी तो शील, स्नेह और मर्यादा न रहेगी।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा * जाइअ बिनु बोलेहुँ न सन्देहा
तदपि बिरोध मान जहँ कोई * तहाँ गएँ कल्यानु न होई

यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये भी निस्संदेह जाना चाहिए, तो भी जहां विरोध हो–वहां जाने में भी कल्याण नहीं है।

भाँति अनेक सम्भु समुझावा * भावी बस न ग्यान उर आवा
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ * नहिं भलि बात हमारे भाएँ

सती को अनेक भांति से शिवजी ने समझाया, पर होनहार वश हृदय में कुछ ज्ञान नहीं आया तब शिवजी ने कहा कि यदि बिना बुलाये जाओगी–तो हमारी समझ से ठीक नहीं है।

दोहा–कहि देखा हर जतन बहु, रहत न दच्छ कुमारि।
दिए मुख्य गन सङ्ग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥ ६२ ॥

शिवजी ने बहुत यत्न से कहकर देख लिया, परन्तु जब सतीजी नहीं मानी तब त्रिपुरारि शिवजी ने अपने मुख्य गणों को साथ में देकर सती को विदा किया।

पिता भवन जब गईं भवानी * दच्छ त्रास काहु न सनमानी
सादर भलेहिं मिली एक माता * भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता

जब सतीजी पिता के घर पहुँची, तो वहां दक्ष के डर से किसी ने आदर नहीं किया।

केवल एक माता ही भली प्रकार से मिली और बहिन तो बहुत ही मुस्कराती हुई मिलीं।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता * सतिहि बिलोकि जरे सब गाता
सतीं जाइ देखेउ तब जागा * कतहुँ न दीख सम्भु कर भागा

दक्ष ने तो कुछ कुशल भी न पूछी और सती को देखकर उनके सब अंग जल उठे। तब सती ने जाकर यज्ञ को देखा तो वहाँ कहीं भी शिवजी का भाग नहीं दीखा।

तब चित चढ़ेउ जो शङ्कर कहेउ * प्रभु अपमानु समुझि उर दहेउ
पाछिल दुख न हृदयँ अस व्यापा * जस यह भयउ महा परितापा

तब जो शिवजी ने कहा था, वह उनके ध्यान में आया एवं स्वामी का अपमान समझ हृदय में जलन हुई। पिछला दुःख हृदय में ऐसा नहीं व्यापा था, जैसा कि यह महान दुःख हुआ।

जद्यपि जग दारुन दुख नाना * सब तें कठिन जाति अपमाना
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा * बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा

यद्यपि संसार में अनेक प्रकार के दारुण दुःख हैं, तो भी सबसे कठिन जाति का अपमान है। यह समझकर सती को बड़ा क्रोध आया, तब माता ने बहुत प्रकार से समझाया।

दोहा—सिव अपमानु न जाइ सहि, हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब, बोलीं बचन सक्रोध ॥ ६३ ॥

सतीजी को शिवजी का अपमान नहीं सहा गया, इससे हृदय में ज्ञान नहीं हुआ। तब वे सारी सभा को छिड़क कर क्रोध के साथ बोलीं—

सुनहु सभासद सकल मुनिन्दा * कही सुनी जिन्ह शङ्कर निन्दा
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ * भली भाँति पछिताब पिताहूँ

हे समस्त सभासदो एवं मुनीश्वरो! सुनो, जिन लोगों ने शिवजी की निन्दा की और सुनी है, उसका फल तुरन्त उन सब लोगों को मिलेगा और मेरे पिता भी भली-भाँति पछतायेंगे।

सन्त सम्भु श्रीपति अपबादा * सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा
काटिअ तासु जीभ जो बसाई * श्रवन मूदि नत चलिअ पराई

साधु, शिवजी और विष्णु की निन्दा जहाँ सुनी जाय, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि जो आपका वश चले तो निन्दक की जीभ काटले, नहीं तो कान मूंद कर वहाँ से दूर चला जावे।

जगदात्मा महेश पुरारी * जगत जनक सबके हितकारी
पिता मन्दमति निन्दत तेही * दच्छ सुक्र सम्भव यह देही

जगत् की आत्मा, त्रिपुरा के मारने वाले, जगत् के पिता और सबके हितकारी शिवजी ही हैं। मेरा मन्द-बुद्धि पिता—उन्हीं की निन्दा करता है और उस पिता (दक्ष) के वीर्य से ही शरीर उत्पन्न हुआ है।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू * उर धरि चन्द्रमौलि बृषकेतू
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा * भयउ सकल मख हाहाकारा

इसी कारण इस देह को चन्द्रमौलि वृषकेतु शिवजी को हृदय में धारण करके इसी समय त्याग दूँगी, ऐसा कहकर सतीजी ने योगाग्नि द्वारा शरीर भस्म कर दिया। तब सारे यज्ञ मण्डप में हा-हाकार मच गया।

दोहा—सती मरनु सुनि शम्भुगन, लगे करन मख खीस।
जग्य विध्वंस बिलोकि भृगु, रक्षा कीन्ह मुनीस ॥ ६४ ॥

सतीजी का मरण सुनकर शिवजी के गण यज्ञ-विध्वंस करने लगे। यज्ञ को विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने यज्ञ की रक्षा की।

समाचार सब शंकर पाए * बीरभद्र करि कोप पठाए
जग्य विध्वंस जाइ तिन्ह कीन्हा * सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा

शिवजी ने जब यह समाचार पाया तो क्रोधित होकर वीरभद्र भेजा। वीरभद्र ने जाकर यज्ञ-विध्वंस कर दिया और सब देवताओं को यथा योग्य दण्ड दिया।

भै जगविदित दच्छ गति सोई * जसि कछु शम्भु बिमुख कै होई
यह इतिहास सकल जग जानी * ताते मैं संक्षेप बखानी

दक्ष की वही जगत्प्रसिद्ध गति हुई जैसे शिवजी के निन्दकों की होती है। यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसीलिए मैंने यह संक्षेप में कहा है।

सतीं मरत हरिसन बरु माँगा * जनम जनम शिव पद अनुरागा
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई * जनमी पारवती तनु पाई

सती ने मरते समय श्रीहरि से यह वर माँगा था कि मेरा जन्मान्तर शिवजी के चरणों में स्नेह हो। इसी कारण हिमाचल के घर पार्वती के रूप उनका जन्म हुआ।

जब तें उमा सैल गृह जाई * सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाई
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे * उचित बास हिम भूधर दीन्हे

जब पार्वती हिमाचल के घर जन्मीं—तब से वहाँ सब सिद्धि और सम्पदा छा गई। जहाँ-तहाँ मुनियों ने आश्रम बना लिये, हिमाचल ने भी उन मुनियों को उचित स्थान दिये।

दोहा—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुन्दर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति ॥ ६५ ॥

उस सुन्दर पर्वत पर सदैव फल-फूलों से युक्त अनेकों प्रकार के नवीन वृक्ष प्रकट होगये और बहुत प्रकार की मणियों की खानें प्रकट हो गईं।

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं * खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा * गिरि पर सकल करहि अनुरागा

सब नदियाँ पवित्र जल से बहने लगीं, पशु-पक्षी और भौंरे आदि सब सुखी रहने लगे। सब जीवों ने स्वाभाविक वैर छोड़ दिया और हिमवान पर स्नेह करने लगे।

सोह सैल गिरिजा गृह आएँ * जिमि जनु रामभगति के पाएँ

नित नूतन मङ्गल गृह तासू * ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू

पार्वती के आने से हिमाचल की ऐसी शोभा हुई जैसे राम-भक्ति पाने पर भक्त की शोभा होती है। घर में नित्य-नये मंगल होने लगे, ब्रह्मादिक भी जिसका यश गाते हैं।

नारद समाचार सब पाए * कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए
सैलराज बड़ आदर कीन्हा * पद पखारि बर आसन दीना

नारदजी ने सब समाचार पाया, तब वे कौतुक से ही हिमाचल के घर आये। शैलराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर सुन्दर आसन पर बैठाया।

नारि सहित मुनिपद सिरु नावा * चरन सलिलु सबु भवन सिंचावा
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना * सुता बोलि मेली मुनि चरना

स्त्री सहित मुनि के चरणों में सिर नवाकर चरणोदक सब घरों में छिड़कवाया। हिमाचल ने अपने भाग्य को बहुत सराहा। फिर कन्या को बुलाकर मुनि के चरणों में डाल दिया।

दोहा—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुण, मुनिवर हृदयँ बिचारि॥ ६६॥

और कहा—आप त्रिकालज्ञ एवं सर्वज्ञ हैं तथा आपकी गति सर्वत्र है। अतः हे मुनिवर! आप अपने हृदय में कन्या के दोष व गुण विचार कर कहिये।

कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदु बानी * सुता तुम्हारि सकल गुन खानी
सुन्दर सहज सुसील सयानी * नाम उमा अम्बिका भवानी

नारद मुनि ने हँसकर गूढ़ और मीठी वाणी से कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह सुन्दर स्वभाव से सुशील और चतुर है, 'उमा, अम्बिका तथा भवानी' इसके नाम हैं।

सब लच्छन सम्पन्न कुमारी * होइहि सन्तत पियहि पियारी
सदा अचल एहि कर अहिवाता * एहि तें जसु पैहहिं पितु माता

यह कन्या—समस्त सुलक्षणों से सम्पन्न और अपने स्वामी को सदैव प्रिय होगी। इसका सोहाग सदैव अचल रहेगा और इससे माता-पिता यश पावेंगे।

होइहि पूज्य सकल जग माहीं * एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं
एहि करि नाम सुमिरि संसारा * त्रिय चढ़हहिं पतिव्रत असिधारा

यह सारे संसार में पूज्य होगी, इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। इसका नाम स्मरण करके स्त्रियाँ संसार में पतिव्रता रूपी तलवार की धार पर चढ़ जायेंगी।

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी * सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी
अगुन अमान मातु पितु हीना * उदासीन सब संसय छीना

हे हिमवान! तुम्हारी कन्या सुलक्षणी है। अब इसके दो-चार अवगुण हैं, इन्हें भी सुनिये निर्गुण, मान रहित, माता-पिता से हीन, उदासीन, संशय-हीन तथा—

दोहा—जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमङ्गल वेष।
असस्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख ॥ ६७ ॥

योगी, जटाधारी, निष्काम-हृदय, नंगा, अमंगल-वेषधारी ऐसा स्वामी इसको मिलेगा, इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी हैं।

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी * दुख दम्पतिहिं उमा हरषानी
नारदहूँ यह भेद न जाना * दशा एक समुझब बिलगाना

मुनि की वाणी सुनकर और उसको सत्य जानकर दम्पति को दुःख हुआ, किन्तु पार्वती प्रसन्न हुईं। नारदजी ने भी यह भेद नहीं जाना, क्योंकि दशा सब की एक-सी थी, परन्तु समझ में भेद था।

सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना * पुलकि शरीर भरे जल नैना
होइ न मृषा देवऋषि भाषा * उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा

सब सखी, पार्वती, राजा, रानी सबका शरीर पुलकायमान हो, नेत्रों में जल भर आया। देवर्षि का वचन मिथ्या नहीं होता, यह समझकर पार्वती ने उनके वचनों को अपने हृदय में रक्खा।

उपजेउ शिव पद कमल सनेहू * मिलन कठिन मन भा सन्देहू
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई * सखीं उछङ्ग बैठि पुनि जाई

उन्हें शिवजी के चरण-कमलों पर स्नेह उत्पन्न हुआ, पर मिलना कठिन समझकर मन में सन्देह हुआ। कुसमय जानकर यह प्रीति छिपाली और सखी की गोद में जा बैठीं।

झूठि न होइ देवऋषि बानी * सोचहिं दम्पति सखीं सयानी
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ * कहहु नाथ का करिअ उपाऊ

देवर्षि नारदजी की वाणी झूठी नहीं होगी, यह राजा-रानी और चतुर सखियाँ सोचने लगीं। फिर मनमें धीरज धरकर राजा हिमाचल ने कहा—हे नाथ! कहिये, क्या उपाय किया जाय?

दोहा—कह मुनीस हिमवन्त सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेंटनिहार ॥ ६८ ॥

मुनि ने कहा—हे हिमवन्त! सुनो, जो ब्रह्मा ने भाग्य में लिख दिया है, उसे—देव, दानव मनुष्य और मुनि कोई भी मेंटने वाला नहीं है।

तदपि एक मैं कहउँ उपाई * होइ करै जौं देव सहाई
जस बरु मैं बरनेउँ तुम पाहीं * मिलिहहि उमहि तस संसय नाहीं

तो भी मैं एक उपाय कहता हूँ, जो देव सहायता करे तो हो जायगा। जैसा वर मैंने तुमसे कहा है, वैसा ही पार्वती को मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

जे जे बर के दोष बखाने * ते सब शिव पहिं मैं अनुमाने
जौं बिबाहु शङ्कर सन होई * दोसउ गुन सम कह सबु कोई

वर के जो-जो दोष मैंने कहे हैं, वे सब दोष मेरे अनुमान से शिवजी में हैं। जो शिवजी के साथ विवाह हो जाय, तो उनके दोषों को भी सब गुण ही कहेंगे।

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं * बुध कछु तिन्हकर दोष न धरहीं
भानु कृसानु सर्व रस खाहीं * तिन्ह जहँ मन्द कहत कोउ नाहीं

जैसे श्रीहरि नाग-शैया पर सोते हैं, परन्तु उनको विद्वान लोग कुछ दोष नहीं लगाते। सूर्य और अग्नि समस्त रसों का भक्षण करते हैं, परन्तु कोई उन्हें अपवित्र नहीं कहता।

शुभअरुअशुभ सलिलसब बहहीं * सुरसरि कोउ अपुनीत न कहहीं
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं * रबि पावक सुरसरि की नाईं

गंगाजी में पवित्र और अपवित्र सभी जल बहता है, परन्तु उन्हें कोई अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि और गंगाजी के समान सामर्थ्य वाले को कुछ दोष नहीं है।

दोहा—जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कल्प भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान ॥ ६९ ॥

जो मूर्ख मनुष्य अज्ञान और अभिमान से ऐसी समता करते हैं, वे कल्प भर नरक में पड़ते हैं। जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है।

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना * कबहुँ न सन्त करहिं तेहि पाना
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें * ईश अनीसहि अन्तरु तैसें

गंगाजल से बनी हुई मदिरा जानकर भी सन्तजन कभी उसे पान नहीं करते पर वही मदिरा गंगा में गिरने से पवित्र हो जाती है, इसी प्रकार जीव और ईश्वर में भेद है।

सम्भु सहज समरथ भगवाना * एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना
दुराराध्य पै अहहिं महेशू * आसुतोष पुनि किएँ कलेशू

भगवान शिवजी स्वभाव से ही समर्थ हैं, इस विवाह के करने से सब प्रकार से भला होगा। परन्तु महेश्वर की आराधना बड़ी कठिन है, फिर भी तप करने से बहुत जल्दी प्रसन्न होजाते हैं।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी * भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी
जद्यपि बर अनेक जग माहीं * एहि कहँ शिव तजि दूसर नाहीं

जो तुम्हारी पुत्री तप करे तो त्रिपुरारी शिवजी होनहार को भी मेंट सकते हैं। यद्यपि संसार में बहुत से वर हैं, परन्तु इसके लिए शिवजी को छोड़कर दूसरा वर नहीं है।

बरदायक प्रणतारित भञ्जन * कृपासिंधु सेवक मन रञ्जन
इच्छित फलु बिनु शिव अपराधें * लहिअ न कोटि जोग जप साधें

शिवजी वरदायक, दीनों का क्लेश हरने वाले, कृपा के समुद्र और सेवकों के मन को आनन्द देने वाले हैं। शिवजी की आराधना किये बिना करोड़ों योग, जप करने पर भी मनवांछित फल नहीं मिलता।

दोहा—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहिं दीन्हि असीस।
होइहि सब कल्यान अब, संसय तजहु गिरीस ॥ ७० ॥

ऐसे कह नारदजी ने श्रीहरि का स्मरण कर पार्वती को आशीर्वाद दिया और कहा—हे हिमवन्त ! सन्देह छोड़ दो, अब कल्याण ही होगा।

अस कहि ब्रह्मभवन मुनि गयऊ * आगिल चरित सुनहु जस भयऊ
पतिहि एकान्त पाइ कहि मैना * नाथ न मैं समुझे मुनि बैना

ऐसा कहकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। आगे जैसा चरित्र हुआ, उसे सुनो—पति को एकान्त में पाकर रानी मैंना ने कहा—नाथ मैंने मुनि की बातें नहीं समझीं।

जौं घरु वरु कुल होय अनूपा * करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा
न त कन्या वरु रहउ कुआरी * कन्त उमा मम प्रान पियारी

जो कन्या के योग्य घर-वर व कुल हो तो विवाह कीजिये, नहीं तो कन्या क्वारी ही रहना भला है। क्योंकि हे स्वामी ! उमा मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है।

जौं न मिलहि वरु गिरिजहु जोगू * गिरि जड़ सहज कहिहि सब लोगू
सोइ विचारि पति करेहु बिबाहू * जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू

जो पार्वती के योग्य वर न मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही मूर्ख होता है। अतः हे स्वामी ! यही विचार कर विवाह करना, जिससे कि फिर हृदय में दुःख न हो।

अस कहि परी चरन धरि सीसा * बोले सहित सनेह गिरीसा
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं * नारद बचनु अन्यथा नाहीं

ऐसा कहकर चरणों में सिर रख दिया। तब हिमवान बड़े स्नेह से बोले—चाहे चन्द्रमा से अग्नि प्रकट हो जाय, परन्तु नारदजी के वचन मिथ्या नहीं हो सकते।

दोहा—प्रिया सोचु परिहरहु सबु, सुमिरहु श्रीभगवान।
पार्वती जेहीं निरमयउ, सोइ करिहि कल्यान॥ ७१॥

हे प्रिय ! सोच त्यागकर श्रीहरि भगवान का स्मरण करो। जिसने पार्वती को रचा है, वही इसका कल्याण करेंगे।

अब जौं तुम्हहिं सुता पर नेहू * तौ अस जाइ सिखावनु देहू
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू * आन उपायँ न मिटिहि कलेसू

अब जो तुमको कन्या पर स्नेह है तो जाकर उसे ऐसा उपदेश दो कि वह तप करे। जिससे महादेवजी मिलें, अन्य दूसरे उपाय से क्लेश नहीं मिटेगा।

नारद वचन सगर्भ सहेतू * सुन्दर सब गुननिधि वृषकेतू
अस विचारि तुम्ह तजहु असंका * सबहि भाँति शङ्कर अकलङ्का

नारदजी के वचन अभिप्राय वाले और कारण सहित हैं। शिवजी की भाँति सुन्दर गुणों के भण्डार हैं, ऐसा विचारकर सब सन्देह त्याग दो। शिवजी सभी प्रकार से निष्कलंक है।

सुन पति वचन हरिषि मन माहीं * गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी * सहित सनेह गोद बैठारी

पति के वचन सुनकर मनमें प्रसन्न हो, मैंना वहां से तुरन्त उठकर पार्वती के पास गईं।

उमा को देख नेत्रों में आंसू भरकर स्नेह से गोद में बैठाया।

बारहिं बार लेत उर लाई * गदगद कण्ठ न कछु कहि जाई
जगत मातु सर्बग्य भवानी * मातु सुखद बोली मृदु बानी

वारम्बार उन्हें हृदय से लगाने लगीं, कण्ठ भर आने के कारण कुछ कहा नहीं जाता था। जगत की माता, सर्वज्ञ पार्वतीजी माता को सुख देने वाली कोमल वाणी बोलीं–

दोहा–सुनहु मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि।
सुन्दर गौर सुबिप्रवर, अस उपदेसेउ मोहि॥ ७२॥

हे माता! मैने ऐसा स्वप्न देखा है, जो मैं तुमको सुनाती हूँ–एक सुन्दर, गौर-वर्ण ब्राह्मण ने मुझे इस प्रकार उपदेश दिया है कि–

करहि जाइ तपु सैलकुमारी * नारद कहा सो सत्य बिचारी
मातु पितहिं पुनि यह मत भावा * तपु सुख प्रद दुख दोष नसावा

पार्वती! तुम जाकर तप करो, नारदजी ने जो कहा है, उसे सत्य समझो। फिर तुम्हारे माता-पिता को भी यह बात भली होगी, क्योंकि तप सुख देने वाला और दुःख-दोषों का नाशक है।

तपु बल रचइ प्रपंचु बिधाता * तपु बल बिष्नु सकल जग त्राता
तपु बल शम्भु करहिं संहारा * तपु बल शेषु धरहिं महि भारा

तप के बल से ही ब्रह्माजी जगत् को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सब जगत् की रक्षा करते हैं। तप के बल से ही शंकरजी संहार करते हैं और तप के बल से ही शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं।

तप अधार सब सृष्टि भवानी * करहि जाइ तपु अस जियँ जानी
सुनत बचन बिसमित महतारी * सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी

हे पार्वती! तप के ही सहारे सारी सृष्टि है, ऐसा मन में जानकर तप करो। यह वचन सुनते ही माता को बड़ा अचरज हुआ, तो उसने हिमवन्त को बुलाकर यह स्वप्न सुनाया।

मातु पितहि बहु बिधि समुझाई * चलीं उमा तप हित हरषाई
प्रिय परिवार पिता अरु माता * भए बिकल मुख आव न बाता

माता-पिता को बहुत प्रकार से समझाकर उमा प्रसन्न होकर तप करने के लिए चलीं। प्रिय कुटुम्बी, माता और पिता सब व्याकुल हुए, फिर किसी के मुख से बात नहीं निकली।

दोहा–बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहि कहा समझाइ।
पारबती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाइ॥ ७३॥

तब वेदशिरा मुनि ने आकर समझा कर सबको पार्वतीजी की महिमा सुनाई। पार्वती की महिमा सुनकर धीरज हुआ।

उर धरि उमा प्राणपति चरना * जाइ बिपिन लागीं तपु करना
अति सुकुमारि न तनु तपु जोगू * पति पद सुमिरि तजे सबु भोगू

वे प्राणपति शिवजी के चरणों को हृदय में धारण कर बनमें जाकर तप करने लगीं। पार्वती का अत्यन्त सुकुमार शरीर तप के योग्य नहीं था, तो भी पति चरणों का स्मरण कर भोग त्याग दिया।

नित नव चरन उपज अनुरागा * बिसरी देह तपहिं मनु लागा
सम्बत सहस मूल फल खाये * सागु खाइ सत बरष गँवाये

शिवजी के चरणों में नित्य-नया अनुराग उत्पन्न होने लगा, देह की सुधि भूल गई, तप में मन लग गया। हजार वर्ष तक फल-फूल खाये और सौ वर्ष साग खाकर बिताये।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा * किए कठिन कछु दिन उपवासा
बेलपाँति महि परइ सुखाई * तीनि सहस सम्बत सोइ खाई

कुछ दिन जल बबूले और वायु का ही सेवन किया, कुछ दिन कठिन उपवास किये फिर जो बेल-पत्र पृथ्वी पर गिर कर सूख जाते थे, उनको खाकर तीस हजार वर्ष व्यतीत किये।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना * उमहि नामु तब भयउ अपरना
देखि उमहि तप खीन शरीरा * ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा

फिर सूखे हुए बेल-पत्र भी छोड़ दिये, तब उमा का नाम–'अपर्णा' हुआ फिर उमा की देह क्षीण होने पर आकाश से गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई—

दोहा–भयउ मनोरथ सुफल तब, सुनु गिरिराज कुमारि।
परिहरु दुसह कलेश सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥७४॥

हे पार्वती ! सुनो, तुम्हारा मनोरथ सफल होगया, अब तुम इन समस्त कठिन तपों को छोड़ दो, अब तुमको शिवजी अवश्य मिलेंगे।

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी * भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी * सत्य सदा सन्तत सुचि जानी

हे भवानी ! जगत् में अनेक पण्डित, मुनि और ज्ञानी हुए परन्तु ऐसा तप किसी ने नहीं किया। अब तुम इस श्रेष्ठब्रह्म-वाणी को सत्य और सदा पवित्र जानकर हृदयमें धैर्य धारण करो।

आवैं पिता बोलावन जबहीं * हठ परिहर घर जाएहु तबहीं
मिलहिं तुम्हहिं जब सप्त रिषीसा * जानेहु तब प्रमान बागीसा

जब तुम्हारे पिता तुम्हें बुलाने आवें, तब तुम हठ को त्याग उनके साथ घर चली जाना। और तुम्हें सप्त-ऋषि मिलें, तब इस ब्रह्म-वाणी को प्रमाणित जान लेना।

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी * पुलकि गात गिरिजा हरषानी
उमा चरित सुन्दर मैं गावा * सुनहु शम्भु करि चरित सुहावा

आकाश से ब्रह्म-वाणी को सुन पार्वती का शरीर पुलकायमान होगया और वे बहुत प्रसन्न हुईं। यह पार्वतीजी का सुन्दर चरित्र मैंने कह सुनाया, अब शिवजी का सुहावना चरित्र सुनो।

जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा * तब तें शिव मन भयउ बिरागा

जपहिं सदा रघुनायक नामा * जहँ तहँ सुनहिं राम गुण ग्रामा

जब से सती ने जाकर शरीर त्याग दिया, तबसे शिवजी के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह सदा श्रीरघुनाथजी का नाम जपने और जहां-तहां उनके गुणों की कथा सुनने लगे।

दोहा—चिदानन्द सुखधाम शिव, बिगत मोह मद काम।
बिचरहिंमहिधरि हृदयँहरि, सकल लोकअभिराम ॥ ७५ ॥

चैतन्त, आनन्दरूप, सुख के धाम, मोह-मद और काम से रहित शिवजी सब लोकों को आनन्द देने वाले-श्रीहरि को हृदय में धारण कर पृथ्वी पर विचरने लगे।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना * कतहुँ राम गुन करहिं बखाना
जदपि अकाम तदपि भगवाना * भगत विरह दुख दुखित सुजाना

वे कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते, तो कहीं श्रीरामजी के गुणों का वर्णन करते। यद्यपि भगवान शंकर निष्काम हैं, तो भी सती के दुःख से दुःखित हैं।

एहि विधि गयउ कालु बहु बीती * नित नइ होइ राम पद प्रीती
नेमु प्रेम शंकर करु देखा * अविचल हृदयँ भगति भै रेखा

इस प्रकार बहुत समय बीत गया और श्रीराम के चरणों में नित्य-नयी प्रीति होने लगी। जब श्रीरामजी ने शिवजी का नियम, प्रेम और हृदय में भक्ति की अविचल रेखा को देखा,

प्रगटे रामु कृतज्ञ कृपाला * रूप शील निधि तेज विशाला
बहु प्रकार शंकरहि सराहा * तुम्ह बिनु अस ब्रत को निरबाहा

तब कृतज्ञ और कृपालु रूप व शील के निधि, महान् तेजस्वी रामजी प्रगट हुए और उनने बहुत प्रकार से शिवजी की बड़ाई की तथा बोले-आपके बिना कौन इस प्रण को निवाहे ?

बहु विधि राम शिवहि समुझावा * पारवती कर जन्मु सुनावा
अति पुनीत गिरिजा कै करनी * विस्तार सहित कृपानिधि बरनी

श्रीरामजी ने बहुत प्रकार से शिवजी को समझाया और पार्वतीजी का जन्म सुनाया। फिर कृपानिधान श्रीरामजी ने पार्वतीजी की अति पवित्र करनी विस्तार सहित वर्णन की।

दोहा—अब विनती मम सुनहु शिव, जौं मोपर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु शैलजहि, यह मोहि माँगें देहु ॥७६॥

(और कहा—) हे शिवजी ! मुझ पर यदि आपका स्नेह है, तो मेरी बिनती सुनिये— आप मुझे यह माँगें दीजिये कि अब आप जाकर पार्वती के साथ विवाह करलें।

कह शिव जदपि उचित अस नाहीं * नाथ वचन पुनि मेटि न जाहीं
सिरधरि आयसु करिअ तुम्हारा * परम धरमु यह नाथ हमारा

शिवजी ने कहा—यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, तो भी प्रभु के वचन मेटे नहीं जा सकते, हे नाथ ! आपकी आज्ञा सिर पर रखकर उसका पालन करना मेरा धर्म है।

मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी * बिनहिं बिचार करिअ शुभ जानी
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी * आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी

माता, पिता, गुरु और स्वामी के वचन शुभ जानकर बिना विचारे ही मानने चाहिए। आप सब प्रकार से मेरे परम हितकारी हैं, हे नाथ ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है।

प्रभु तोषेउ सुनि शङ्कर बचना * भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना
कह प्रभु हर तुम्हार प्रण रहेऊ * अब उर राखेहु जो हम कहेऊ

शिवजी के भक्त, ज्ञान और धर्म से युक्त बचन सुनकर श्रीरामजी सन्तुष्ट होगये। प्रभु ने कहा—हे शंकरजी ! आपका प्रण रहा, अब जो हमने कहा है—उसे अपने हृदय में रखना।

अन्तरधान भए अस भाषी * शङ्कर सोइ मूरति उर राखी
तबहिं सप्तऋषि शिव पहिं आए * बोले प्रभु अति बचन सुहाए

इस प्रकार कह श्रीरामजी अन्तर्ध्यान होगये और शिवजी ने वह मूर्ति हृदय में रखली। उसी समय सप्तऋषि शिवजी के पास आये तब शिवजी उनसे बहुत सुहावने वचन बोले—

दोहा—पारवती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परीक्षा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठवहु भवन, दूरि करेहु सन्देहु ॥ ७७ ॥

हे ऋषियो ! तुम पार्वती के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा लो और हिमवान् को भेज पार्वती को घर भिजवाइये तथा उनके सन्देह दूर कीजिये।

ऋषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी * मूरतिमन्त तपस्या जैसी
बोले मुनि सुनु शैलकुमारी * करहु कवन कारन तपु भारी

ऋषियों ने वहाँ जाकर पार्वतीजी को कैसा देखा-मानो मूर्तिमान् तपस्या ही हो। मुनि बोले—हे पार्वती ! सुनो, तुम किस लिए भारी तप कर रही हो ?

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू * हम सन सत्य मरमु किन कहहू
कहत वचन मनु अति सकुचाई * हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई

किसकी आराधना कर रही हो और क्या चाहती हो ? हमसे सच्चा भेद कहो। (पार्वती बोलीं—) बात कहते हुए संकोच होता है, मेरी मूर्खता पूर्ण बात सुनकर आप हँसेंगे।

मनु हठ परइ न सुनइ सिखावा * चहत बारि पर भीति उठावा
नारद कहा सत्य सोइ जाना * बिनु पङ्खन्हु हम चहहिं उड़ाना
देखउ मुनि अबिबेकु हमारा * चाहति सदा सिवहि भरतारा

मन हठ में पड़ गया है, किसी का उपदेश नहीं सुनता और जल पर दीवाल उठाना चाहता है। नारदजी ने जो कहा है, उसे सत्य जानकर बिना पंखों के मैं उड़ना चाहती हूँ। हे मुनियो ! मेरी मूर्खता तो देखो—मैं सदा शिवजी को ही अपना पति बनाना चाहती हूँ।

दोहा—सुनत बचन बिहँसे रिषय, गिरि सम्भव तव देह।

नारद कर उपदेसु सुनि, कहहु बसेउ किसु गेह ॥ ७८ ॥

पार्वती के वचन सुनकर ऋषिगण हँसे और बोले-पर्वत से उत्पन्न ही तो तुम्हारी देह है। नारद का उपदेश सुनकर कहो-कौन सा घर बसा है ?

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई * तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई
चित्रकेतु कर घरु उन्ह घाला * कनककसिपुकर पुनिअस हाला

नारदजी ने दक्ष-पुत्रों को जाकर उपदेश दिया, तो उन्होंने लौट कर घर ही न देखा। चित्रकेतु का घर भी उन्होंने ही बिगाड़ा और हिरण्यकश्यपु का भी ऐसा ही हाल किया।

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी * अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी
मन कपटी मन सज्जन चीन्हा * आपु सरिस सबही चह कीन्हा

नारद की सीख जो नर-नारी सुनते हैं, वे घर छोड़ अवश्य ही भिखारी होजाते हैं उनका मन कपटी है, शरीर सज्जनों का सा दीख पड़ता है, वे अपने ही समान सबको करना चाहते हैं।

तेहि कें बचन मानि बिस्वासा * तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा
निर्गुन निलज कुबेष कपाली * अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली

उनके वचनों पर विश्वास कर तुम ऐसा पति चाहती हो-जो स्वभाव से ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेष वाला, मुण्ड-मालाधारी, कुलहीन, घरहीन, गङ्गा और साँपों को धारण करने वाला है।

कहहु कवन सुखु अस बरु पाएँ * भल भूलिहु ठग के बौराएँ
पञ्च कहें शिवँ सती बिबाही * पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही

कहो-ऐसा वर पाने में तुम्हें कौन-सा सुख होगा ? ठग के बहकाने से भली-भाँति भूली हो। पंचों के कहने से सती से ब्याह किया, फिर उसे त्याग कर मरवा दिया।

दोहा—अब सुख सोवत सोचु नहिं, भीख माँगि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥७९॥

अब शिवजी सुख से सोते हैं, कुछ सोच नहीं है और भीख माँग कर खाते हैं। ऐसे एकाकी स्वभाव वाले के घर में क्या कभी स्त्रियाँ रह सकती हैं।

अजहूँ मानहू कहा हमारा * कह तुम्ह कहूँ बरुनीक बिचारा
अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला * गावहिं बेद जासु जस लीला

आज भी तुम हमारा कहना मानो, हमने तुम्हारे लिए अच्छा वर विचारा है, वह बहुत ही सुन्दर पवित्र, सुखदायक और सुशील है, जिसकी लीला और यश वेद भी गाते हैं।

दूषन रहित सकल गुन रासी * श्रीपति पुर बैकुण्ठ निवासी
अस बरु तुम्हहिं मिलाउब आनी * सुनत बिहँसि कह बचन भवानी

वे सब दोषों से रहित, सब गुणों के समूह, श्रीपति भगवान् बैकुण्ठ के वासी हैं। ऐसा वर लाकर हम तुम्हें मिला देंगे। यह सुनकर पार्वती हँसकर यह वचन बोलीं।

सत्य कहेहु गिरि भव तनु ऐहा * हठ न छूट छूटै बरु देहा
कनकउ पुनि पषान तें होई * जारेहुँ सहज न परिहरु सोई

आपने सत्य कहा कि यह देह पर्वत से उत्पन्न है, इसका हट नहीं छूटेगा, चाहे देह छूट जाय। सोना भी तो पत्थर से प्रगट होता है, वह तपाने से भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

नारद वचन न मैं परिहरऊँ * बसहु भवनु उजरहु नहि डरऊँ
गुरु कें वचन प्रतीति न जेही * सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही

नारदजी के बचन मैं नहीं छोड़ूंगी, चाहे घर बसे अथवा उजड़े मैं इससे नहीं डरती। गुरु के वचनों पर जिसको विश्वास नहीं, उसको स्वप्न में सुख की सिद्धि सुगम नहीं होती है।

दोहा—महादेव अवगुण भवन, विष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ॥८०॥

शिवजी अवगुणों के घर और विष्णु सब गुणों के धाम हैं, यही सही। परन्तु जिसका मन जिसमें रमे—उसको तो उसी से काम है।

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा * सुनितउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा
अब मैं जन्मु शम्भु हित हारा * को गुन दूषन करै बिचारा

हे मुनीश्वरो! जो तुम पहले मुझसे मिलते,तो मैं आपकी सीख शिरोधार्य कर सुनती। परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिवजी के लिए हार चुकी हूं, गुण और दोषों का विचार कौन करे?

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी * रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी
तौं कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं * बर कन्या अनेक जग माहीं

जो आपके मन में बहुत हट है और बिना वर निश्चित किए नहीं रहा जाता है, तो जगत् में अनेकों वर-कन्या हैं। इस प्रकार के कौतुकी मनुष्यों को आलस्य तो होता ही नहीं।

जन्म कोटि लगि रगर हमारी * बरउँ शम्भु न त रहउँ कुआरी
तजहुँ न नारद कर उपदेशू * आपु कहहिं सत बार महेशू

करोड़ों जन्मों तक हमारी यह हठ है कि या तो शंकरजी को ही अपना पति बनाऊँगी, नहीं तो क्वारी रहूँगी। परन्तु नारदजी के उपदेश को नहीं छोड़ूँगी, चाहे शिवजी स्वयं आकर सौ बार भी क्यों न कहें।

मैं पाँ परउँ कहइ जगदम्बा * तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलम्बा
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी * जय जय जगदम्बिके भवानी

मैं आपके चरणों में पड़कर कहती हूँ—अब आप घर जाइये, यहाँ आये आपको बहुत देर होगई है। तब ज्ञानी मुनि ऐसा अटूट प्रेम देख बोले, हे जगत् जननी भवानी! आपकी जय हो।

दोहा—तुम्ह माया भगवान शिव, सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषित गातु ॥८१॥

आप माया हैं और शिवजी भगवान् हैं, आप दोनों जगत् के माता-पिता हैं—यह कहकर

मुनि चरणों में बारम्बार मस्तक नवाकर प्रसन्न होकर चले।

जाइ मुनिन्ह हिमवन्तु पठाए * करि विनती गिरजहिं गृहल्याए
बहुरि सप्तरिषि शिव पहिं जाई * कथा उमा कै सकल सुनाई

जाकर मुनियों ने हिमाचल को पार्वती के पास भेजा, वह विनती कर पार्वती को घर ले आये। फिर सप्त-ऋषियों ने शिवजी के पास जाकर पार्वतीजी की सब कथा सुनाई।

भए मगनु शिव सुनत सनेहा * हरषि सप्तरिषि गवने गेहा
मनु थिर करि तब शम्भु सुजाना * लगे करन रघुनायक ध्याना

पार्वती का प्रेम सुन शिवजी आनन्द में मग्न हुए और सप्त-ऋषि प्रसन्न हो अपने स्थान को चले गये। तब सुजान शिवजी अपने मन को स्थिर कर श्रीरघुनाथजी का ध्यान करने लगे।

तारकु असुर भयउ तेहि काला * भुज प्रताप बल तेज विशाला
तेंहि सब लोक लोकपति जीते * भए देव सुख सम्पति रीते

उसी समय तारक नायक दैत्य हुआ, उसकी भुजाओं का बल, प्रताप और तेज बहुत था। उसने सब लोक और लोक पालों को जीत लिया और सब देवता सम्पत्ति से हीन होगये।

अजर अमर सो जीति न जाई * हारे सुर करि बिविध लराई
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे * देखे बिधि सब देव दुखारे

वह अजर अमर था, अतः किसी से जीता नहीं जाता था। सब देवता लोग उससे अनेक प्रकार से युद्ध करके हार गये। तब ब्रह्माजी के पास जाकर प्रार्थना की, ब्रह्माजी ने सब देवताओं को दुखी देखा तो—

दोहा—सब सन कहा बुझाइ विधि, दनुज निधन तब होइ।
सम्भु सुक्र सम्भूत सुत, एहि जीतहि रन सोइ॥८२॥

ब्रह्माजी ने सबको समझा कर कहा कि उस दैत्य का मरण तब होगा, जब कि शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो—यही इसको रण में जीत सकेगा।

मोर कहा सुनि करहु उपाई * होइहि ईश्वर करिहि सहाई
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा * जनमी जाइ हिमाचल गेहा

मेरा कहना सुनकर उपाय करो, यदि ईश्वर सहायता करेंगे, तो काम हो जायगा। सतीजी ने दक्ष के यज्ञ में जो देह त्याग दिया था, वही जाकर हिमाचल के घर जन्मी हैं।

तेंहि तपु कीन्ह शम्भु पति लागी * शिव समाधि बैठे सबु त्यागी
जदपि अहइ असमञ्जस भारी * तदपि बात एक सुनहु हमारी

उन्होंने शिवजी को अपना पति होने के निमित्त तप किया है और शिवजी समाधि में बैठे हैं। यद्यपि इसमें बड़ी द्विविधा है, तो भी हमारी एक बात सुनो—

पठवहु कामु जाइ शिव पाहीं * करै क्षोभु शङ्कर मन माहीं
तब हम जाइ शिवहि सिर नाई * करवाउब बिवाहु बरिआई

जाकर शिवजी के पास कामदेव को भेजो, वह शिवजी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे तब हम जाकर शिवजी को समझा कर जबर्दस्ती विवाह करावेंगे ।

एहि विधि भलेहिं देव हित होई * मत अति नीकि कहइ सब कोई
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि निज हेतू * प्रगटेउ बिषमबान झसकेतू

इस प्रकार भले ही देवताओं का हित हो, यह सम्मति बहुत अच्छी है, ऐसा सब कहने लगे । फिर अति प्रेम से देवताओं ने कामदेव की स्तुति की, तब विषम, बाणधारी, मछली की ध्वजा वाला कामदेव प्रकट हुआ ।

दोहा—सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार ।
शम्भु विरोधनकुशल मोहि, बिहँसि कहेउ असमार ।।८३।।

देवताओं ने कामदेव से अपनी सब विपत्ति कही, जिसे सुन कामदेव मन में विचार कर हँसकर ऐसा कहने लगा—कि शिवजी से विरोध करने में भलाई नहीं है ।

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा * श्रुतिकह परम धरम उपकारा
परहित लागि तजइ जो देही * सन्तत सन्त प्रशंसहि तेही

तो भी मैं तुम्हारा काम करूँगा, वेदों में कहा है कि उपकार करना ही परमधर्म है । पराये उपकार के निमित्त जो अपना शरीर त्याग करते हैं, सन्तजन सदा उनकी प्रशंसा करते हैं ।

असकहि चलेउ सबहि सिरुनाई * सुमन धनुष कर सहित सहाई
चलत मार अस हृदयँ विचारा * शिव बिरोध ध्रुव मरन हमारा

ऐसे कहकर सबको सिर नवाकर अपना फूलों का धनुष हाथ में ले, साथियों के सहित कामदेव शिवजी के पास चला । चलते समय कामदेव ने अपने हृदय में विचार किया कि शिवजी से विरोध करने में मेरी मृत्यु निश्चित है ।

तब आपन प्रभाव बिस्तारा * निज बस कीन्ह सकल संसारा
कोपेउ जबहिं बारिचर केतू * छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू

तब उसने अपना प्रभाव फैलाया और संसार को अपने वश में कर लिया, फिर जब कामदेव ने कोप किया, तो क्षणभर में सारी वेद-मर्यादा नष्ट हो गई ।

ब्रह्मचर्य व्रत संयम नाना * धीरज धरम ग्यान बिग्याना
सदाचार जप जोग बिरागा * सभय बिबेकु कटकु सबु भागा

ब्रह्मचर्य, व्रत, अनेक संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, श्रेष्ठ आचार, अष्टाङ्ग-योग, वैराग्य आदि विवेक की सेना डरकर भाग गई ।

छन्द—भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे ।
सद्ग्रन्थ पर्वत कन्दरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे ।।
होनहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा ।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु शरुधरा ।।

कामदेव की सेना के योद्धा रणभूमि की ओर झुके, तब ज्ञान अपने साथियों के साथ भाग चला। वे उस समय धर्म-ग्रन्थ-रूपी पर्वत की कन्दराओं में जा छिपे। हे विधाता! क्या होनहार है? कौन रक्षा करेगा? संसार में यह खलबली मच गई। ऐसा दो सिर वाला कौन है, जिसके लिये कामदेव ने क्रोध करके धनुष-बाण उठाया है?

दोहा—जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम॥ ८४॥

संसार में स्त्री-पुरुष नाम वाले जितने चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी मर्यादा को छोड़कर कामदेव के वश हो गये।

सबके हृदयँ मदन अभिलाषा * लता निहारि नवहिं तरु साखा
नदीं उमँगि अम्बुधि कहुँ धाई * सङ्गम करहिं तलाब तलाई

सबके हृदय में काम की इच्छा हुई, लताओं को देखकर वृक्षों की शाखायें झुकने लगीं। नदियाँ उमड़कर समुद्र की ओर दौड़ीं, ताल-तलैया भी आपस में मिलने लगे।

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी * को कह सकइ सचेतन करनी
पशु पच्छी नभ थल जलचारी * भए कामबस समय बिसारी

जब जड़-जन्तुओं की ऐसी दशा कही गई, तब चेतन जीवों की करनी कौन कह सकता है? आकाश, जल और पृथ्वी पर रहने वाले पशु-पक्षी भी समय भूलकर काम के अधीन हो गये?

मदन अन्ध व्याकुल सब लोका * निसिदिनु नहिं अवलोकहिं कोका
देव दनुज नर किन्नर व्याला * प्रेत पिशाच भूत बेताला

सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल होगये, चकवा-चकवी भी रात-दिन नहीं देखते थे। देवता, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, नाग, प्रेत, पिशाच, भूत, वैताल आदि—

इन्ह कै दशा न कहेउँ बखानी * सदा काम के चेरे जानी
सिद्धि विरक्त महामुनि जोगी * तेउ कामबश भए वियोगी

इनको सदैव कामदेव के दास जानकर इनकी दशा मैंने कुछ नहीं कही है। सिद्ध, विरक्त, महामुनि तथा योगी भी काम के वश हो गये।

छन्द—भए कामबस जोगीस तापस पाँवरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै॥
अबल बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दण्ड भरि ब्रह्माण्ड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

जब योगी और तपस्वी ही काम के वश हो गये तब दुराचारियों की दशा कौन कह सकता है? जो सब चराचर को ब्रह्म-मय देखते थे, वे भी सबको स्त्री-मय देखने लगे। स्त्रियाँ सबको पुरुषमय और पुरुष सबको स्त्री-मय देखने लगे। दो घड़ी तक सारे ब्रह्माण्ड के बीच कामदेव ने यह खेल किया।

सो०—धरी न काहूँ धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि काल महुँ ॥ ८५ ॥

किसी ने धीरज धारण नहीं किया, सबके मन कामदेव ने हर लिये। जिनकी श्रीरघुनाथजी ने रक्षा की, वे ही उस समय बच सके।

उभय घरी अस कौतुक भयऊ * जौ लगि कामु शम्भु पहिं गयऊ
सिवहि विलोक ससंकेउ मारू * भयउ जथाथिति सबु संसारू

दो घड़ी तक ऐसा ही खेल हुआ, जब तक कामदेव शिवजी के पास गया। शिवजी को देखकर कामदेव सकुचाया, तब सब संसार फिर ज्यों का त्यों ठहर गया।

भए तुरत सब जीव सुखारे * जिमि मद उतरि गएँ मतवारे
रुद्रहि देखि मदन भय माना * दुराधरष दुर्गम भगवाना

तब तुरन्त सब प्राणी ऐसे सुखी होगये, जैसे नशा उतर जाने से मतवाले लोग सुखी हो जाते हैं कामदेव-बहुत ही निडर और अजेय रुद्र भगवान को देखकर डर गया।

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई * मरनु ठानि मन रचेसि उपाई
प्रगटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा * कुसुमित नव तरु राजि विराजा

लौटने में लाज उत्पन्न हुई और कुछ कहते नहीं बनता। तब अपना मरण मनमें ठान कर यह उपाय रचा कि तुरन्त ऋतुओं में राजा सुन्दर बसन्त-ऋतु को प्रकट कर दिया और फूलों सहित सुन्दर नये पत्तों के वृक्ष उत्पन्न हो गये।

बन उपबन बाटिका तड़ागा * परम सुभग सब दिसा विभागा
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा * देखि मुए हुँ मन मनसिज जागा

वन, उपवन, बावड़ी, सरोवर और सब दिशायें बहुत सुन्दर हो गये। जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ने लगा जिसको देखकर बूढ़ों के मन में भी कामदेव जाग उठा।

छन्द—जागइ मनोभाव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
शीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुँजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कल हंस पिक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

वन की सुन्दरता कहते नहीं बनती, जिसे देखकर मरे हुओं के मन में भी कामदेव जाग उठा। कामरूपी अग्नि का सच्चा मित्र-शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चलने लगा। सरोवर में अनेकों प्रकार के कमल खिल गये, जिन पर सुन्दर भौंरों के झुण्ड गुञ्जार करने लगे। सुन्दर हंस कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे, अप्सरायें गा-गाकर नाचने लगीं।

दोहा—सकल कला करि कोटिविधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि शिव, कोपेउ हृदय निकेत॥ ८६ ॥

जब करोड़ों प्रकार से सब कलायें करके कामदेव हार गया और शिवजी की अटल समाधि न छूटी, तब कामदेव मन में क्रोधित हो उठा।

देखि रसाल बिटप बर साखा * तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा
सुमन चाप निज कर सन्धाने * अति रिस ताकि श्रवन लगिताने

फिर कामदेव एक आम के वृक्ष की सुन्दर शाखा देखकर उस पर क्रोधित होकर चढ़ गया और अपने फूलों के धनुष को हाथ में ले उस पर बाण चढ़ाकर बहुत क्रोध से निशाना ताक कर कानों तक धनुष तान लिया।

छाँड़े बिषम बिसिख उर लागे * छूटि समाधि सम्भु तब जागे
भयउ ईश मन छोभु बिसेषी * नयन उघारि सकल दिसि देखी

कामदेव के छोड़े हुए कठिन-बाण शिवजी के हृदय में लगे, तब समाधि छूटी और वे जागे। उस समय ईश्वर के मन में बहुत क्षोभ हुआ, उन्होंने आँख खोलकर सब ओर देखा।

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका * भयउ कोपु कम्पेउ त्रैलोका
तब सिवँ तीसर नयन उघारा * चितवत कामु भयउ जरि छारा

तब आम के पत्तों में कामदेव को देखते ही ऐसा क्रोध प्रकट हुआ कि तीनों लोक काँप उठे तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला, जिसके देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

हाहाकार भयउ जग भारी * डरपे सुर भए असुर सुखारी
समुझि कामु सुखु सोचहिं भोगी * भए अकण्टक साधन जोगी

यह देख, संसार में बड़ा हा-हाकार हुआ, देवता डर गये और दैत्य सुखी हुए काम-सुखों को याद कर भोगी-जन सोच करने लगे और साधक-योगी निष्कंटक हो गये।

छन्द—जोगी अकण्टक भए पति गति सुनत रति मुरछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति शङ्कर पहिं गई॥
अति प्रेम करि विनती बिबिध बिधि जोरिकर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपालु शिव अबला निरखि बोले सही॥

योगी निष्कंटक हुए। अपने पति की यह दशा सुनकर कामदेव की स्त्री-रति मूर्छित हो गई। रोती चिल्लाती और बहुत प्रकार से विलाप करती हुई रति शिवजी के पास गई और बहुत ही प्रेम से हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से विनती करके सामने खड़ी होगई। शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले दयालु शिवजी स्त्री को देखकर सुन्दर वचन बोले—

दोहा—अब तें रति तव नाथ कर, होइहहि नामु अनङ्ग।
बिनु वपु व्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसङ्ग॥८७॥

हे रति! आज से तेरे पति का नाम 'अनंग' होगा, वह बिना शरीर ही सबको व्यापेगा। अब अपने पति के पुनः मिलने का प्रसंग सुनो—

जब जदुबंसु कृष्ण अवतारा * होइहि हरन महा महि भारा
कृष्ण तनय होइहि पति तोरा * बचनु अन्यथा होइ न मोरा

जब यदुवंश में श्री कृष्ण-अवतार पृथ्वी के भारी भार को हरने के लिए होगा, तब तुम्हारा पति उनका पुत्र 'प्रद्युम्न' होगा। मेरा बचन झूंठा नहीं होगा।

रति गवनी सुनि संकर बानी * कथा अपर अब कहउँ बखानी
देवन्ह समाचार सब पाए * ब्रह्मादिक बैकुण्ठ सिधाए

शिवजी की बात सुनकर रति चली गयी। अब दूसरी कथा कहता हूँ ब्रह्मादिक देवगणों ने यह समाचार सुने तो वह बैकुण्ठ को चले।

सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता * गए जहाँ सिव कृपानिकेता
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रशंसा * भए प्रसन्न चन्द्र अवतंसा

वहाँ से विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवता वहाँ गये—जहाँ कृपानिधान शिवजी थे। सबने अलग-अलग स्तुति की, तब चन्द्र-भाल शंकरजी प्रसन्न हुए।

बोले कृपासिंधु वृषकेतू * कहहु अमर आए केहि हेतू
कह बिधि तुम्ह प्रभु अन्तरजामी * तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी

कृपा के समुद्र शिवजी बोले—हे देवताओ! किस कार्य हेतु यहाँ आये हो? ब्रह्मा ने कहा—हे प्रभु! आप अन्तर्यामी हैं, तो भी—हे स्वामी! भक्ति वश आपसे विनती करता हूँ—

दोहा—सकल सुरन्ह के हृदयँ अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार बिबाहु ॥ ८८ ॥

हे शंकर! सब देवताओं के हृदय में ऐसा परम उत्साह है कि—हे नाथ आपका विवाह अपने नेत्रों से देखना चाहते हैं।

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन * सोइ कछु करहु मदन मन मोचन
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा * कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा

हे कामदेव के मद को चूर करने वाले! हम लोग यह उत्सव अपने नेत्र भरकर देखें ऐसा उपाय कीजिए। हे कृपासागर! आपने कामदेव को भस्म कर-रति को वरदान दिया सो बहुत अच्छा किया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ * नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ
पारबती तपु कीन्ह अपारा * करहु तासु अब अङ्गीकारा

अपराध का दण्ड देकर फिर कृपा करते हैं हे नाथ! यह तो स्वामियों का सहज-स्वभाव होता है। पार्वती ने भारी तप किया है अतः अब उन्हें अंगीकार करें।

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी * ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी
तब देवन्ह दुन्दुभीं बजाईं * बरषि सुमन जय जय सुर साईं

ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर और श्रीरामजी की बाणी का स्मरण कर शिवजी ने सुख

मानकर कहा– 'ऐसा ही होगा'। तब देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और वे पुष्प-वृष्टि करके बोले–हे देवताओं के स्वामी ! आपकी जय हो।

अवसरु जानि सप्तऋषि आए * तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी * बोले मधुर वचन छल सानी

अवसर जानकर सप्तऋषि वहाँ आये तब ब्रह्माजी ने उन्हें तुरन्त हिमवान के घर भेजा। वे पहले वहाँ गये–जहाँ पार्वती थीं तब वे पार्वतीजी से छल भरे हुए मधुर वचन बोले–

दोहा–कहा हमार न सुनेहु तब, नारद कह उपदेश।
अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ कामु महेश ॥ ८९ ॥

तुमने नारदजी का उपदेश मानकर-हमारा कहा नहीं सुना अब तुम्हारा प्रण झूंठा हो गया। क्योंकि महेश्वर ने कामदेव को भस्म कर दिया है।

* मास पारायण–तीसरा विश्राम *

सुनि बोलीं मुसकाइ भवानी * उचित कहेउ मुनिवर विग्यानी
तुम्हरें जान काम अब जारा * अब लगि शम्भु रहे सबिकारा

यह सुन पार्वती मुस्करा कर बोलीं–हे विज्ञानी मुनीश्वरो ! आपने ठीक कहा। आपकी समझ में शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है क्या अब तक शिवजी विकारयुक्त ही रहे ?

हमरें जान सदा शिव जोगी * अज अनवद्य अकाम अभोगी
जौं मैं शिव सेये अस जानी * प्रीति समेत कर्म मन बानी

मेरी समझ में तो शिवजी-सदा से योगी, अजन्मा, निर्दोष, निष्काम और भोगों से रहित हैं। जो मैंने ऐसा जानकर प्रीतिपूर्वक मन, वचन और कर्म से शिवजी की सेवा की है।

तो हमार प्रण सुनहु मुनीसा * करिहहिं सत्य कृपा निधि ईसा
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा * सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा

तो मुनीश्वरो सुनो मेरे प्रण को कृपासिन्धु शिवजी सत्य करेंगे। आपने जो यह कहा शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया यही आपका बड़ा अविवेक है।

तात अनल कर सहज सुभाऊ * हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ
गएँ समीप सो अवसि नसाई * असि मन्मथ महेश की नाई

हे तात ! अग्नि का यह सहज स्वभाव है कि पाला उसके निकट नहीं जा सकता। क्योंकि समीप जाने से वह अवश्य ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार कामदेव और शिवजी के लिए समझना चाहिए।

दोहा–हियँ हरषे मुनि वचन सुनि, देखि प्रीति विश्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर, गए हिमाचल पास ॥ ९० ॥

पार्वती के वचन सुनकर और उसका प्रेमभाव देखकर मुनीश्वर हृदय में अति प्रसन्न हुए, फिर वे पार्वतीजी को सिर नवाकर चले और हिमाचल के पास गये।

सबु प्रसङ्ग गिरिपतिहि सुनावा * मदन दहन सुनि अति दुखु पावा
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना * सुनि हिमवन्त बहुरि सुखु माना

उन्होंने हिमाचल को सब समाचार सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर वे बहुत दुःखी हुए फिर रति के वरदान की बात सुनकर हिमाचल ने बहुत सुख माना।

हृदय विचारि शम्भु प्रभुताई * सादर मुनिवर लिए बोलाई
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई * बेगि वेद विधि लगन धराई

हृदय में शिवजी की प्रभुता विचारकर हिमाचल ने आदर सहित मुनीश्वरों को बुलाया। शुभ-दिन, शुभ-नक्षत्र, सुन्दर शुभ-घड़ी में तुरन्त वेद की बिधि से शीघ्र ही लगन धरवा दी।

पत्री सप्त ऋषिन्ह सोइ दीन्ही * गहि पद विनय हिमाचल कीन्ही
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्ह सो पाती * बाँचत प्रीति न हृदय समाती

फिर लग्न-पत्रिका हिमाचल ने सप्तऋषियों को दे दी और उनके चरण पकड़कर विनती की। मुनियों ने वह पत्रिका जाकर ब्रह्माजी को दे दी, उसे पढ़ते ही वे मारे प्रेम के हृदय में फूले नहीं समाये।

लगन बाँचि अज सबहि सुनाई * हरषे मुनि सब सुर समुदाई
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे * मङ्गल कलस दसहुँ दिसि साजे

ब्रह्माजी ने लग्न पत्रिका पढ़कर सबको सुनाई, उसे सुनसब देवता-गण प्रसन्न हुए। आकाश से फूलों की वर्षा हुई, बाजे बजने लगे और दशों दिशाओं में मंगल कलश सजा दिये।

दोहा—लगे सँवारन सकल सुर, बाहन बिबिध विमान।
होहिं सगुन मङ्गल सुभग, करहिं अपछरा गान ॥ ९१ ॥

सभी देवता नाना प्रकार के वाहन और विमान सजाने लगे। कल्याण-प्रद सुमंगल होने लगे, अप्सरायें गान करने लगीं।

शिवहि शम्भुगन करहिं सिंगारा * जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा
कुण्डल कङ्कन पहिरे व्याला * तन बिभूति पट केहरि छाला

शिव-गण शिवजी का शृङ्गार करने लगे। जटाओं का मुकुट व सर्पों का मौरु बनाया, सर्पों के ही कुण्डल और कंगन पहिने, देह में विभूति रमाई, वस्त्र के स्थान पर बाघम्बर पहिनाया।

शशि ललाट सुन्दर सिर गङ्गा * नयन तीनि उपवीति भुजङ्गा
गरल कण्ठ उर नर सिर माला * असिव बेष सिवधाम कृपाला

शिवजी के मस्तक पर चन्द्रमा, सिर पर सुन्दर गंगाजी, तीन नेत्र, सर्पों का यज्ञोपवीत, कण्ठ में विष और हृदय पर मुण्डों की माला थी। ऐसा अमंगल वेष होने पर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं।

कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा * चले वृषभ चढ़ि बाजहिं बाजा
देखि शिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं * वर लायक दुलहिनि जग नाहीं

हाथों में त्रिशूल व डमरू लिये, बैल पर चढ़कर शिवजी चले, बाजे बजने लगे। शिवजी को देखकर देवांगनायें मुस्कराने लगीं और बोलीं—वर योग्य दुलहिन संसार में नहीं है।

विष्णु विरंचि आदि सुर ब्राता * चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता
सुर समाज सब भाँति अनूपा * नहिं बरात दूलह अनुरूपा

विष्णु और ब्रह्मादिक देवतागण अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर बरात को चले। देवताओं की मण्डली सब प्रकार से अनुपम थी, परन्तु दूल्हे के समान बरात नहीं थी।

दोहा—बिष्नु कहा तब बिहँसि अस, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग २ होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥९२॥

तब विष्णु भगवान ने सब दिग्पालों को बुलाया और हँस कर कहा—सब लोग अलग-अलग अपने दल के साथ चलो।

बर अनुहारि बरात न भाई * हँसी करैहहु पर पुर जाई
विष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने * निज निज सेन सहित बिलगाने

हे भाइयो ! वर के अनुरूप बरात नहीं है, क्या पराये नगर में जाकर हँसी कराओगे ? विष्णु भगवान के वचन सुनकर सब देवता मुस्कराये और अपनी-अपनी सेना के साथ अलग-अलग हो गये।

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं * हरि के व्यङ्ग वचन नहिं जाहीं
अति प्रिय वचन सुनत हरि केरे * भृङ्गहि प्रेरि सकल गन टेरे

शिवजी मन ही मन मुस्कराने लगे कि हरि के व्यंग वचन नहीं जायेंगे। हरि के अत्यन्त प्रिय वचन सुनते ही शिवजी ने भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बुला भेजा।

शिव अनुसासन सुनि सब आए * प्रभुपद जलज शीश तिन्ह नाए
नाना वाहन नाना बेषा * बिहँसे शिव समाज निज देखा

शिवजी की आज्ञा सुन सब चले आये और प्रभु के चरण-कमलों में सिर नवाया अनेक प्रकार के वाहन तथा अनेक प्रकार के वेष वाले अपने दल को देखकर शिवजी हँसने लगे।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू * बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना * हृष्टपुष्ट कोउ अति तनु खीना

कोई बिना मुख का था, किसी के बहुत से मुख थे, कोई बिना हाथ-पैर और कोई बहुत से हाथ-पाँव वाला था। कोई बहुत सी आँखों वाला, कोई बिना आँखों वाला था। कोई हृष्ट-पुष्ट शरीर का था, तो कोई बहुत ही दुबला-पतला था।

छन्द—तनु क्षीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तनु भरें ॥
खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन वेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेम पिशाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥

कोई दुबला, कोई मोटा, कोई पवित्र, कोई अपवित्र, वेष धारण किये हुए था। वे भयानक भूषण

पहिने हुए हाथ में कपाल लिये, शरीर में ताजा रुधिर लपेटे हुए थे। गदहा, कुत्ता, सूअर सियार के मुख वाले असंख्य भेषों को कौन गिने? बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच, योगनियों का समूह साथ में था, उनका वर्णन करते नहीं बनता।

सो०–नाचहिं गावहिं गीत, परम तरङ्गी भूत सब।
देखत अति विपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र विधि ॥ ९३ ॥

बड़े मौजी सब भूतगण, नाचते और गीत गाते थे। देखने में बेढ़ङ्ग थे, वे अद्भुत वचन बोलते थे।

जस दूलहु तस बनी बराता * कौतुक विधि होहिं मग जाता
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना * अति विचित्र नहिं जाय बखाना

जैसा दूल्हा था वैसी बरात बन गई, मार्ग में जाते हुए भाँति २ के खेल होने लगे। यहाँ हिमाचल ने बहुत विचित्र मण्डप बनवाया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं * लघु विशाल नहिं बरनि सिराहीं
बन सागर सब नदीं तलाबा * हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा

छोटे-बड़े सब पर्वत जो इस संसार में हैं, जिनका वर्णन करना कठिन है। वन, समुद्र, नदियाँ, तालाब सबको हिमाचल ने न्यौता भेजा।

कामरूप सुन्दर तनु धारी * सहित समाज सहित वर नारी
गए सकल तुहिमाचल गेहा * गावहिं मङ्गल सहित सनेहा

इच्छानुसार रूप और सुन्दर शरीर धारण किये, परिवार सहित, सुन्दर स्त्रियों के साथ ये हिमाचल के घर आये और स्नेह सहित मंगल गीत गाने लगे।

प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए * जथा जोगु जहँ तहँ सब छाए
पुर शोभा अवलोकि सुहाई * लागइ लघु विरंचि निपुनाई

हिमाचल ने पहले ही घर सजवा रक्खे थे, उन्हीं में यथायोग्य सब ठहरे, इस पुर की शोभा को देखकर ब्रह्माजी की चतुराई फीकी लगती थी।

छन्द–लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर शोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही ॥
मङ्गल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुन्दर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं ॥

ब्रह्माजी की चतुराई पुरकी सुन्दर शोभा देखकर सचमुच फीकी लगने लगी। तालाब और नदियों की सुन्दरता कौन कह सकता है? घर-घर मंगल, तोरण, पताका और ध्वजा सुशोभित हैं। सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषों की छवि को देखकर मुनियों के भी मन मोहित हो रहे हैं।

दोहा—जगदम्बा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
ऋद्धि सिद्धि सम्पत्ति सुख, नित नूतन अधिकाइ॥ ९४॥

जगदम्बा ने जहां अवतार लिया है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ नित्य ऋद्धि, सिद्धि, सुख और सम्पत्ति बढ़ने लगीं।

नगर निकट बरात सुनि आई * पुर खर भरु शोभा अधिकाई
करि बनाव सजि वाहन नाना * चले लेन सादर अगवाना

नगर समीप जब बरात आई, तब नगर में खलबली मच गई और बड़ी शोभा हुई। सभी लोग बनावट करके अपनी-अपनी सवारी सजाकर आदर से अगवानी के लिए चले।

हियँ हरषे सुर सेन निहारी * हरिहि देख अति भए सुखारी
सिव समाज जब देखन लागे * बिडरि चले वाहन सब भागे

देवताओं की सेना देखकर सब लोग प्रसन्न हुए और हरि भगवान को देखकर बहुत सुखी हुए। जब शिव के समाज को देखने लगे, तब सब वाहन डरकर इधर-उधर भागने लगे।

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने * बालक सब लै जीव पराने
गएँ भवन पूछहिं पितु माता * कहहिं बचन भय कम्पित गाता

चतुर बड़े-बूढे लोग धीरज धरकर ठहरे। बालक तो सब जान बचाकर भाग गये। घर पहुँचने पर माता-पिता पूछते हैं तब भय से काँपते हुए शरीर से बोले—

कहिअ कहा कहि जात न बाता * जमकर धार किधौं बरि आता
बरु बौराह बसहँ असवारा * ब्याल कपाल विभूषन छारा

क्या कहें कहा नहीं जाता, वह यमराज की सेना है या बरात? दूल्हा पागल सा बैल पर सवार है, सांप, मुण्ड, भस्म उसके गहने हैं।

छन्द—तन छोर ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिन विकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुण्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥

शरीर पर भस्म लगाये, सांप और मुण्डमाला आदि भूषण धारण किये नङ्गा, जटाधारी, भयंकर रूप और साथ में भूत, पिशाच और योगिनी, भयानक मुख वाले राक्षस हैं, जो बरात देखकर जीते रहेंगे उनका बड़ा पुण्य होगा और वही पार्वती का विवाह देखेंगे, घर-घर लड़कों ने यही कहा।

दोहा—समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहि।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डरु नाहिं॥ ९५॥

शिवजीके समाज को समझ माता-पिता मुस्कराये और अनेक प्रकारसे बालकों को समझाया।

निडर हो जाओ, कुछ डर नहीं है ।

लै अगवान बरातहि आए * दिए सबहि जनवास सुहाए
मैनाँ शुभ आरती सँवारी * सङ्ग सुमङ्गल गावहिं नारी

अगवान लोग बरात को ले आये और सबको सुन्दर जनवासा दिया । मैंना ने शुभ आरती सजाई तब साथ में स्त्रियाँ सुन्दर मंगल गाने लगीं ।

कंचन थार सोह वर पानी * परिछन चली हरहि हरषानी
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा * अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा

सोने का सुन्दर थाल हाथ में शोभित था, प्रसन्न मन से शिवजी का परिछन करने चलीं जब शिवजी का भयंकर वेष देखा, तब स्त्रियों के हृदय में भारी भय उत्पन्न हुआ ।

भागि भवनु पैठीं अति त्रासा * गये महेसु जहाँ जनवासा
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी * लीन्हीं बोलि गिरीस कुमारी

बड़े डर से भागकर वे घर में घुस कर बैठ गईं और शिवजी जनवासे को चले गये, मैंना के हृदय में भारी दुःख हुआ और उन्होंने पार्वती को अपने पास बुला लिया ।

अधिक सनेहँ गोद बैठारी * स्यामु सरोज नयन भरे बारी
जेहिं बिधि तुम्हहि रूप असदीन्हा * तेहिं जड़ बरुबाउर कस कीन्हा

बड़े प्रेम से गोद में बैठाकर अपने नील कमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर कहा– जिस ब्रह्मा ने तुमको ऐसा रूप दिया है, उस मूर्ख ने वर को बावला क्यों बनाया है ?

छन्द–कस कीन्ह बरु बौराइ बिधि जेहिं तुम्हहिं सुन्दरता दई ।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ।।
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घरु जाइ अपजसु होइ जग जीवित बिबाहु न हौं करौं ।।

जिस ब्रह्माने तुमको सुन्दरता दी, उसने वर को बावला क्यों बनाया ? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिए, वह जबर्दस्ती बबूल में लगा दिया । मैं तुम्हें लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँ, अग्नि में जल मरूँ । अथवा समुद्र में डूब मरूँ । चाहे घर उजड़ जाय और संसार में अपयश हो, परन्तु मैं अपने जीते-जी इस वर के साथ तुम्हारा विवाह नहीं करूँगी ।

दोहा–भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि ।
करि बिलापु रोदति बदति, सुता सनेहुँ सँभारि ।।९६।।

मैंना को दुःखित देखकर सब स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं । रानी अपनी कन्या के स्नेह को याद कर विलाप करके रोने और कहने लगीं–

नारद कर मैं कहा बिगारा * भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा
अस उपदेसु उमहिं जिन्ह दीन्हा * बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा

नारद का मैंने क्या बिगाड़ा था, जो मेरा बसता हुआ घर उन्होंने उजाड़ दिया। नारद ने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि उसने बावले पति के लिए तप किया।

साँचेहुँ उन्ह कें मोह न दाया * उदासीन धन धामु न जाया
पर घर घालकु लाज न भीरा * बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा

सत्य है कि—उनके हृदय में मोह और दया नहीं है, वे तो उदासीन हैं, न उनके धन है, न घर है और न स्त्री है। वे पराये घर को उजाड़ने वाले हैं, उन्हें न लाज है, न किसी का डर है, भला बाँझ स्त्री प्रसव के कष्ट को क्या जाने ?

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी * बोली जुत बिबेक मृदुबानी
अस बिचारि सोचहि मति माता * सो न टरइ जो रचइ बिधाता

माता को व्याकुल देखकर पार्वतीजी ज्ञानयुक्त मीठी वाणी बोलीं—हे माता! विधाता ने जो रच रक्खा है, वह टलता नहीं, ऐसा विचार कर सोच मत करो।

करम लिखा जौं बाउर नाहू * तौ कत दोषु लगाइअ काहू
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अङ्का * मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलङ्का

मेरे भाग्य में जो बावला पति ही लिखा है, तो किसी को दोष क्यों लगाया जाय ? क्या तुमसे विधाता के लिखे अंक मिट सकते हैं ? हे माता ! वृथा कलंक मत लो।

छन्द—जनु लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पावहुँ तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयनबारि बिमोचहीं॥

हे माता ! कलंक मत लो, रोना छोड़ दो, यह समय दुःख का नहीं है। जो दुःख-सुख मेरे भाग्य में लिखा है—वह मैं जहाँ जाऊँगी, वहीं पाऊँगी। ऐसे विनीत भरे कोमल वचन सुनकर स्त्रियाँ सोचने लगीं और ब्रह्मा को दोष लगाकर—आँखों में आँसू बहाने लगीं।

दोहा—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषिसप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत॥ ९७॥

हिमाचल उसी समय समाचार सुनकर नारदजी और सप्त-ऋषियों सहित तुरन्त अपने घर को गये।

तब नारद सबही समुझावा * पूरुब कथा प्रसंगु सुनावा
मयना सुनहु सत्य मम बानी * जगदम्बा तव सुता भवानी

तब नारदजी ने पार्वती के पूर्व-जन्म की कथा कहकर सबको समझाया—हे मैंना ! मेरा सत्य वचन सुनो—तुम्हारी कन्या 'भवानी' जगत्माता है।

अजा अनादि शक्ति अबिनासिनि * सदा शम्भु अरधङ्ग निवासिनि

जग संभव पालन लय कारिनि * निज इच्छा लीला बपु धारिनि

ये अजन्मा अनादि और अविनाशी हैं और सदैव शिवजी के अर्द्धाङ्ग में रहती हैं। यही जगत् को उत्पन्न पालन और संहार करने वाली हैं और अपनी इच्छा से ही लीलादेह धारण करती हैं।

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई * नामु सती सुन्दर तनु पाई
तहँहु सती संकरहि बिबाहीं * कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं

प्रथम दक्ष के घर में जन्म लिया। वहाँ सुन्दर शरीर सती नाम से पाया था। वहाँ भी सती का बिवाह शिवजी के साथ हुआ था, यह कथा संसार में प्रसिद्ध है।

एक बार आवत सिव सङ्गा * देखेउ रघुकुल कमल पतङ्गा
भयउ मोह सिब कंहा न कीन्हा * भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा

एक बार, शिवजी के साथ वनमें आते हुए रघुकुल कमल भास्कर श्रीरामजी को देखा। तब इन्हें मोह हुआ और शिवजी का कहना न मानकर भ्रमवश सीताजी का वेष धारण कर लिया।

छन्द—सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरीं।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया॥

सतीजी ने सीता का वेष बनाया शिव ने इस अपराध से त्याग दिया। तब शिवजीके वियोग से पिता के यज्ञ में योगाग्नि से भस्म होगईं, अब तुम्हारे घर में जन्म लेकर पति के लिए कठिन तप किया है। ऐसा जानकर सन्देह दूर करो, पार्वती सर्वदा शिवजी को प्रिय हैं।

दोहा—सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा विषाद।
छन महुँ व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह सम्वाद॥ ९८॥

नारदजी के वचन सुनकर सबका विशाद मिट गया और क्षण भर में ही सब नगर में घर-घर सम्वाद फैल गया।

तब मयना हिमवन्तु अनन्दे * पुनि पुनि पारवती पद बन्दे
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने * नगर लोग सब अति हरषाने

तब मैंना और हिमवन्त प्रसन्न हुए और बार-बार पार्वती की चरण बन्दना की स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, बृद्ध और नगर के सब लोग अति प्रसन्न हुए।

लगे होन पुर मङ्गल गाना * सजे सबहिं हाटक घट नाना
भाँति अनेक भईं जेवनारा * सूपशास्त्र जसु कछु व्यवहारा

नगर में मङ्गल गीत होने लगे, सबने सोने के भाँति-भाँति के घड़े सजाये। पाक शास्त्र में जैसी कुछ रीति है, उसके अनुसार-अनेक भाँति की ज्यौनार हुईं।

सो जेवनार कि जाइ बखानी * बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी
सादर बोले सकल बराती * बिष्नु बिरंचि देव सब जाती

उस ज्यौनार का क्या वर्णन किया जाय, जिस घर में जगत्माता भवानी बसती हों ? सभी बराती, विष्णु, ब्रह्मा और सब देवता आदर सहित बुलाये गये ।

बिबिध पाँति बैठी जेवनारा * लागे परसन निपुन सुआरा
नारिबृन्द सुर जेवँत जानी * लगीं देन गारीं मृदु बानी

अनेक पाँतों में ज्यौनार बैठी और चतुर रसोइये परोसने लगे । स्त्रियाँ-देवताओं को भोजन करते जानकर मधुर वाणी से गारी गाने लगीं ।

छन्द—गारीं मधुर स्वर देहिं सुन्दरि ब्यङ्ग बचन सुनावहीं ।
भोजन करहिं सुरअति बिलम्बु बिनोदु सुनि सचु पावहीं ॥
जेंवत जो बढ़यौ अनन्दु सो मुख कोटिहुँ न परै कह्यौ ।
अचवाँय दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यौ ॥

सुन्दर स्त्रियाँ मधुर स्वर में गाली गाने लगीं व्यङ्ग-भरे वचन सुनाने लगीं । देवतागण उन्हें सुनकर सुख पाते हुए भोजन करने में देर लगा रहे हैं, भोजन करते समय जो आनन्द हुआ, वह करोड़ों मुखों से भी नहीं कहा जा सकता । भोजन करके सबके हाथ-मुँह धुलाकर पान दिये, तब जहाँ जिसका स्थान था—वहाँ सभी बराती चले गये ।

दोहा—बहुरि मुनिन्ह हिमवन्त कहुँ, लगन सुनाई आय ।
समय बिलोकि बिवाह कर, पठए देव बोलाय ॥ ९९ ॥

फिर जाकर मुनियों ने हिमवन्त को लग्न सुनाई और ब्याह का समय देखकर देवताओं को बुलाया ।

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे * सबहि जथोचित आसन दीन्हे
बेदी बेद बिधान सँवारी * सुभग सुमङ्गल गावहिं नारी

सब देवताओं को सादर बुलाकर यथायोग्य आसन दिये । वेद की विधि से वेदी बनाई और स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गल-गीत गाने लगीं ।

सिंहासनु अति दिब्य सुहावा * जाइ न बरनि बिरंचि बनावा
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई * हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई

एक अत्यन्त दिव्य सिंहासन पर जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, (क्योंकि उसको स्वयं ब्रह्माजी ने रचा था) शिवजी-ब्राह्मणों को प्रणाम कर और अपने प्रभु श्रीरघुनाथजी को स्मरण कर बैठ गए ।

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं * करि सिंगारु सखीं लै आईं
देखत रूप सकल सुर मोहे * बरनै छबि अस जग कबि को है

फिर मुनीश्वरों ने पार्वती को बुलाया, श्रृङ्गार करके सखियाँ उन्हें ले आईं। उनको देखकर सब देवता मोहित होगये, फिर ऐसा कौन कवि है—जो उस छवि का वर्णन करे ?

जगदम्बिका जानि भव भामा * सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा
सुन्दरता मरजाद भवानी * जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी

जगत्माता शिव-प्रिया जानकर देवताओं ने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया। पार्वतीजी सुन्दरता की सीमा हैं। करोड़ों मुखों से भी सुन्दरता वर्णन नहीं की जा सकती।

छन्द—कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि शोभामहा।
सकुचहिं कहत श्रुति शेष शारद मन्दमति तुलसी कहा॥
छबि खानि मातु भवानी गवनीं मध्य मण्डप शिव जहाँ।
अवलोकि सकहि न सकुच पतिपद कमलमनु मधुकर तहाँ॥

जो करोड़ों मुखों से भी कही नहीं जा सकती, पार्वतीजी की ऐसी शोभा का वर्णन करते—वेद, शेषनाग और सरस्वती को भी संकोच होता है। तब मैं मन्द बुद्धि तुलसीदास—किस गिनती में हूँ ? शोभा की खान भवानी मण्डप के बीच गईं, जहाँ शिवजी थे। संकोच के कारण पति के चरण-कमलों के दर्शन नहीं कर सकीं, जहाँ पर उनका मन रूपी भौरा था।

दोहा—मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजउ शम्भु भवानि।
कोउ सुनि संसय करइ जनि, सुर अनादि जियँ जानि॥१००॥

मुनियों की आज्ञा से श्रीशिव-पार्वतीजी ने गणपति का पूजन किया देवताओं को अनादि जानकर कोई यह सुनकर अपने मन में शंका न करे।

जसि बिबाह कै विधि श्रुति गाई * महा मुनिन्ह सो सब करवाई
गहि गिरिजा कुश कन्या पानी * शिवहि समरपीं जानि भवानी

विवाह की जैसी विधि वेद में कही है, महामुनियों ने वह सब कराई। तब हिमवान् ने कुश हाथ में लेकर और कन्या का हाथ पकड़कर उन्हें भवानी जानकर शिवजी को दान दिया।

पाणिग्रहन जब कीन्ह महेसा * हियँ हरषे तब सकल सुरेसा
बेदमन्त्र मुनिबर उच्चरहीं * जय जय जय शंकर सुर करहीं

श्रीमहादेवजी ने पार्वती का पाणि-ग्रहण किया, तब इन्द्रादि सब देवता मन में प्रसन्न हुए। मुनिवर वेद-मन्त्र पढ़ने लगे और देवता लोग शिवजी की जय-जयकार करने लगे।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना * सुमन बृष्टि नभ भै विधि नाना
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू * सकल भुवन भरि रहा उछाहू

भाँति-भाँति के बाजे बजने लगे, आकाश से नाना प्रकार के फूल बरसने लगे। शिव-पार्वती का विवाह होगया, तब सारे भुवनों में आनन्द छा गया।

दासीं दास तुरग रथ नागा * धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा

अन्न कनक भाजन भरि जाना * दाइज दीन्ह न जाइ बखाना

दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, गौ, बर्तन, मणि अनेकों प्रकार के पदार्थ, अन्न और सोने के पात्रों को छकड़ों में भरकर इतना दहेज–दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

छन्द–दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यौ।
का देउँ पूरन काम शंकर चरन पंकज गहि रह्यौ॥
शिवँ कृपासागर ससुर कर सन्तोषु सब भाँतिहि कियौ।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेत परिपूरन हियौ॥

अनेकों भाँति का दहेज दिया, फिर हाथ जोड़कर हिमवान् ने कहा–हे शंकरजी! आप पूर्णकाम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? इस प्रकार कहकर हिमवान् ने शिवजी के चरण पकड़ लिये। तब कृपा के समुद्र शिबजी ने ससुर को सब भाँति से सन्तोष दिया। फिर रानी मैंना ने प्रेम से परिपूर्ण हृदय से चरण छुए और कहा–

दोहा–नाथ उमा मम प्रान सम, गृह किंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न बरु देहु॥१०१॥

हे नाथ! उमा मुझे प्राणों के समान प्रिय है, इसे अपने घर की दासी बनाइये। हमारे सब अपराधों को क्षमा कीजिए और प्रसन्न होकर वर दीजिए।

बहुत बिधि सम्भु सासु समुझाई * गवनी भवन चरन सिरु नाई
जननीं उमा बोलि तब लीन्ही * लै उछङ्ग सुन्दर सिख दीन्ही

शिवजी ने बहुत प्रकार से सास को समझाया, तब वह चरणों में सिर नवाकर चली गई। फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में लेकर सुन्दर शिक्षा दी।

करेहु सदा शंकर पद पूजा * नारि धरमु पति देउ न दूजा
बचन कहत भरे लोचन बारी * बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी

हे पुत्री! तुम सदा शंकरजी के चरणों की पूजा करना, क्योंकि स्त्री-धर्म में पति के सिवाय दूसरा देवता स्त्री के लिए नहीं है। यह बचन कहते २ माता के नेत्रों में आंसू भर आये, तब उन्होंने पुत्री को छाती से लगा लिया और कहा–

कतबिधि सृजीं नार जग माहीं * पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं
भै अति प्रेम बिकल महतारी * धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी

ब्रह्मा ने जगत् में स्त्री को क्यों रचा? पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। प्रेमवश पार्वती की माता बहुत व्याकुल होगई, परन्तु कुसमय विचार कर धीरज धारण किया।

पुनि पुनि मिलत परत गहि चरना * परम प्रेमु कछु जाइ न बरना
सब नारिन्ह मिलि भेट भवानी * जाइ जननि उर पुनि लपटानी

पार्वती बारम्बार मैंना से मिलतीं और चरण पकड़ती थीं, अत्यन्त ही स्नेह है, कुछ कहा नहीं जाता। सब सखियों से मिल-भेंट-कर पार्वती फिर जाकर माता के हृदय से लिपट गईं।

छन्द-जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दई ।
फिरिफिरि बिलोकति मातु तन सब सखीं लै शिव पहिं गईं ॥
जाचक सकल सन्तोषि शङ्कर उमा सहित भवन चले ।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निशान नभ बाजे भले ॥

फिर माता से मिलकर चलीं, उस समय सबने उचित आशीर्वाद दिये। पार्वतीजी-बारम्बार फिरकर माँ की ओर देखती थीं, तब देव-स्त्रियाँ उनको शिवजी के पास ले गईं। शिवजी याचकों को सन्तुष्ट कर पार्वती को साथ ले घर को चले। देवता प्रसन्न हुए और पुष्प बरसा कर बाजे बजाने लगे।

सो०-चले सङ्ग हिमवन्तु तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि, बिदा कीन्ह वृषकेतु ॥१०२॥

हिमवान बड़े प्रेम के साथ पहुँचाने चले, तब शिवजी ने अनेक प्रकार से उनको सन्तोष करके विदा किया।

तुरत भवन आए गिरिराई * सकल सैल सर लिए बोलाई
आदर दान विनय बहु माना * सब कहुँ बिदा कीन्ह हिमवाना

राजा हिमाचल तुरन्त आये और सब पर्वत तथा सरोवरों को बुलाया। आदर पूर्वक विनय और सम्मान करके सबको हिमाचल ने विदा किया।

जबहिं सम्भु कैलासहिं आये * सुर सब निज निज लोक सिधाये
जगत मातु पितु सम्भु भवानी * तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी

जब शिवजी कैलाश पर आगये, तब सब देवता अपने २ लोकों को चले गये। श्रीशिव-पार्वतीजी जगत के माता-पिता हैं, इस कारण मैं उनका श्रृङ्गार वर्णन नहीं करता हूँ।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा * गनन्ह समेत बसहिं कैलासा
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ * एहि बिधि विपुल काल चलि गयऊ

श्रीशिव-पार्वतीजी अनेक भाँति के भोग-बिलास करते हुए गणों के साथ कैलाश पर रहने लगे। वे नित्य-नवीन विहार करने लगे, इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

तब जनमेउ षटबदन कुमारा * तारकु असुर समर जेहिं मारा
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना * सन्मुख जन्मु सकल जग जाना

तब छः मुख वाले पुत्र स्वामी कार्तिकजी का जन्म हुआ, जिन्होंने युद्ध में तारकासुर को मारा। वेद, शास्त्र और पुराणों में स्वामी कार्तिकजी का जन्म प्रसिद्ध है, उन्हें सारा संसार जानता है।

छन्द-जगु जान सन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा ।
तेहिं हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित्र संक्षेपहिं कहा ॥
यह उमा शम्भु बिवाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं ।



SHIV SHANKER

कल्यान काज विवाह मंगल सर्वदा सुख पावहीं ॥

स्वामिकार्तिकजी के जन्म, कर्म, प्रताप और पुरुषार्थ को जगत जानता है, अतः मैंने शिवजी के पुत्र का चरित्र संक्षेप में कहा है। शिव-पार्वती के विवाह की इस कथा को जो नर-नारी सुनेंगे और सुनावेंगे वे शुभ कार्यों और विवाह आदि मंगलों में सदा सुख पावेंगे।

दोहा—चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदास किमि, अति मतिमन्द गँवारु ॥१०३॥

गिरजा-पति श्रीमहादेवजी का चरित्र समुद्र के समान है, उससे वेद भी पार नहीं पाते, फिर अति मन्द-बुद्धि और गँवार तुलसीदास उसको कैसे वर्णन कर सकता है ?

शम्भु चरित्र सुनि सरस सुहावा * भरद्वाज मुनि अति सुख पावा
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी * नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी

शिवजी का रसपूर्ण सुहावना चरित्र सुनकर भरद्वाज-मुनि अति सुखी हुए। कथा सुनने की लालसा बहुत बढ़ी, नेत्रों में आनन्द के आँसू भर आये, देह पर रोमावली खड़ी हो गई।

प्रेम बिबस मुख आव न बानी * दशा देखि हरषे मुनि ग्यानी
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा * तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा

प्रेम-मग्न होने के कारण मुख से बात नहीं निकली, यह दशा देख मुनि याज्ञवल्क्य बड़े खुश हुए और बोले-हे मुनीश्वर ! तुम्हारा जन्म धन्य है, तुम्हें शिवजी प्राणों के समान प्रिय हैं।

शिवपद कमल जिन्हहिं रति नाहीं * रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं
बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू * राम भगति कर लच्छन ऐहू

शिवजी के चरण कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्रीरामजी को स्वप्न में भी नहीं सुहाते। विश्वनाथ शिवजी के चरणों में निष्काम स्नेह हो-यही राम-भक्ती का लक्षण है।

शिव सम को रघुपति व्रतधारी * बिनु अघ तजी सती असि नारी
पनु करि रघुपति भगति देखाई * को शिव सम रामहि प्रिय भाई

शिवजी के समान श्रीरघुनाथजी की भक्ति का व्रत धारण करने वाला कौन है ? जिन्होंने बिना अपराध सती जैसी स्त्री को छोड़ दिया। शिवजी ने ऐसा प्रण करके राम-भक्ति को दृढ़ कर दिया। हे भाई ! श्रीरामजी को शिवजी के समान और कौन प्रिय है।

दोहा—प्रथमहिं मैं कहि शिव चरित, बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के, रहित समस्त बिकार ॥१०४॥

मैंने पहले ही शिवजी का चरित्र कहकर तुम्हारा भेद पा लिया और समझ लिया कि तुम श्रीरामजी के पवित्र सेवक हो और सब विकारों से रहित हो।

मैं जाना तुम्हार गुन शीला * कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला
सुनु मुनि आजु समागम तोरें * कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें

मैंने तुम्हारा गुण और स्वभाव जान लिया। अब श्रीरामजी की लीला कहता हूँ, उसे सुनो–हे मुने ! आज तुम्हारे समागम से जैसा सुख मेरे मन में हुआ है, वह कहा नहीं जाता।

रामचरित अतिअमित मुनीसा * कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा
तदपि जथाश्रुति कहउँ बखानी * सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी

हे मुनीश्वर ! श्रीराम-चरित्र अत्यन्त विस्तृत है, उसे सौ करोड़ शेषजी भी नहीं कह सकते। तो भी जैसा मैंने सुना है, इसे वाणी के पति-धनुर्धारी श्रीराम का स्मरण करके कहता हूँ।

सारद दारुनारि सम स्वामी * राम सूत्रधर अन्तरजामी
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी * कवि उर अजिर नचावहिं बानी

सरस्वतीजी कठपुतली के समान है और अन्तर्यामी श्रीराम सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उसके हृदयांगण में सरस्वतीजी को नचाया करते हैं।

प्रनवउँ सोइ कृपालु रघुनाथा * बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा
परम रम्य गिरिबरु कैलासू * सदा जहाँ शिव उमा निवासू

उन्हीं कृपालु श्रीरामजी को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हीं के उज्जवल चरित्र का वर्णन करता हूँ। पर्वतों में श्रेष्ठ कैलाश बड़ा मनोहर है, जहाँ सदाशिव-पार्वतीजी का निवास है।

दोहा–सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किन्नर मुनिवृन्द ।
बसहिं तहाँ सुकृति सकल, सेवहिं शिव सुखकन्द ॥१०५॥

सिद्ध, तपस्वी, योगी, देवता, किन्नर और मुनिगण सब कैलाश-पर्वत पर वास करते हैं। और आनन्दकन्द शिवजी की सेवा करते हैं।

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं * ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं
तेहिं गिरिपर वट विटप बिसाला * नित नूतन सुन्दर सब काला

श्रीहरि और शिवजी से जो विमुख हैं और जिनकी धर्म में प्रीति नहीं हैं-वे नर वहाँ सपने में भी नहीं जा सकते। उस पर्वत पर एक विशाल वट वृक्ष है, जो नित्य नया व सदैव सुन्दर रहता है।

त्रिबिध समीर सुशीतलि छाया * सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ * तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ

वहाँ तीनों प्रकार की शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चला करती है. उसकी छाया बहुत ही शीतल है। वह वृक्ष शिवजी के विश्राम का स्थल है, यह वेदों में कहा है। एक बार उसके नीचे शिवजी गये तो वृक्ष को देखकर मन में बहुत ही प्रसन्न हुए।

निज कर डासि नागरिपु छाला * बैठे सहजहिं सम्भु कृपाला
कुन्दन इन्दु दर गौर शरीरा * भुज प्रलम्ब परिधन मुनिचीरा

अपने हाथों से बाघम्बर बिछाकर-सहज स्वभाव से कृपानिधान शिवजी वहाँ बैठ गये। कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान उनका गौर शरीर था. लम्बी भुजायें थीं और बल्कल वस्त्र धारण किये थे।

तरुन अरुन अम्बुज सम चरना * नखदुति भगत हृदय तम हरना
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी * आननु सरद चन्द छबिहारी

नवीन लाल कमल के समान चरण थे, नखों की कान्ति भक्ति के हृदयान्धकार को हरती थी। सर्प और भस्म ही त्रिपुरारि-मर्दन शिवजी के गहने थे और सुख शरद्-काल के चन्द्रमा की छवि को हरने वाला था।

दोहा—जटा मुकुट सुरसरित, लोचन नलिन बिसाल।
नीलकण्ठ लावन्य निधि, सोह बालबिधु भाल ॥१०६॥

जटाओं का मुकुट बनाये, सिर पर गंगाजी, विशाल कमल के समान नेत्र, नील-कण्ठ वाले, सुन्दरता की खान, मस्तक पर द्वितिया का चन्द्रमा शोभायमान था।

बैठे सोह कामरिपु कैसे * धरें सरीरु सान्तरसु जैसें
पारबती भल अवसरु जानी * गई सम्भु पहिं मातु भवानी

कामदेव के शत्रु-शिवजी बैठे हुए ऐसे सुशोभित थे, जैसे शान्त-रस शरीर धारण किये बैठा हो। माता पार्वती शुभ अवसर जानकर उनके पास गई।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा * बाम भाग आसनु हर दीन्हा
बैठीं शिव समीप हरषाई * पूरब जन्म कथा चित आई

शिवजी ने अपनी प्रिया जानकर बहुत आदर किया और अपने बायीं ओर आसन दिया। पार्वतीजी प्रसन्न होकर शिवजी के पास बैठ गईं। उन्हें पूर्व-जन्म की कथा स्मरण हो आई।

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी * बिहसि उमा बोली प्रिय बानी
कथा जो सकल लोक हितकारी * सोइ पूछन चह सैलकुमारी

पति के हृदय में बहुत प्रेम समझकर पार्वती-हँसकर मधुर वचन बोलीं-(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि) जो कथा सब लोकों का हित करने वाली है, उसे पार्वतीजी पूछना चाहती हैं।

बिश्वनाथ मम नाथ पुरारी * त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी
चर अरु अचर नाग नर देवा * सकल करहिं पद पंकज सेवा

हे विश्वनाथ ! हे मेरे स्वामी ! हे त्रिपुरारि ! आपकी महिमा को तीनों लोक जानते हैं। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सब आपके चरणों की सेवा करते हैं।

दोहा—प्रभु समरथ सर्बग्य शिव, सकल कला गुनधाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम ॥१०७॥

हे प्रभु ! आप समर्थ, सर्वज्ञ, कल्याण-रूप, सब कलाओं व गुणों के धाम हैं। योग, ज्ञान और वैराग्य की निधि हैं। आपका नाम शरणागत भक्तों के लिए कल्पवृक्ष है।

जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी * जानिअ सत्य मोहि निज दासी
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना * कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना

हे सुख की राशि ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे अपनी सच्ची दासी जानते हैं, तो

हे स्वामिन् ! श्रीरघुनाथजी की नाना प्रकार की कथा कहकर मेरे अज्ञान को दूर कीजिए।

जासु भवनु सुरतरु तर होई * सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई
शशिभूषन अस हृदयँ विचारी * हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी

जिसका घर कल्प-वृक्ष के नीचे हो, क्या वह भी दरिद्रता का दुःख सहे । हे चन्द्रमौलि! ऐसा अपने हृदय में विचार कर, हे नाथ ! मेरी मति का भ्रम दूर कीजिए ।

प्रभु जे मुनि परमारथ वादी * कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी
सेष सारदा वेद पुराना * सकल करहिं रघुपति गुन गाना

हे प्रभु ! जो परमार्थवादी मुनि हैं, वे श्रीरामजी को अनादि-ब्रह्म कहते हैं । शेष, शारदा, वेद, पुराण सभी श्री रघुनाथजी के गुण-गान करते हैं ।

तुम्ह पुनि राम नाम दिन राती * सादर जपहु अनँग आराती
रामु सो अवध नृपति सुत सोई * की अज अगुन अलख गति कोई

हे काम के शत्रु ! आप भी दिन-रात आदर सहित राम-नाम जपा करते हैं । यह राम वही अयोध्या के महाराज के पुत्र हैं, अथवा कोई और अजन्मा, निर्गुण अगोचर राम हैं ।

दोहा—जौं नृप तनय तौ ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ।।१०८।।

यदि वे राज-पुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे ? स्त्री के वियोग से उनकी बुद्ध भ्रमित कैसे होगई ? उनके चरित्र देख और महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अति भ्रम में है ।

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ * कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू * जेहिं बिधि मोह मिटै सोइ करहू

यदि कोई अन्य ही व्यापक समर्थ ब्रह्म हैं तो, हे नाथ ! वह मुझे समझाकर कहिये । आप मुझे मूर्ख जान, हृदय में क्रोध न करके जिस प्रकार मेरा अज्ञान दूर हो वही कीजिए।

मैं बन दीखि राम प्रभुताई * अतिभय विकल न तुम्हहिं सुनाई
तदपि मलिनमन बोधु न आवा * सो फलु भली भाँति हम पावा

मैंने वन में रामजी की प्रभुता देखी और डर से बहुत व्याकुल होकर वह बात आपको नहीं सुनाई, तो भी मलिन मन होने से मुझे बोध न हुआ, सो उसका फल मैंने भली प्रकार पाया।

अजहू कछु संसय मन मोरें * करहू कृपा बिनवउँ कर जोरें
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा * नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा

अब भी मन में कुछ सन्देह है, तो आप मुझ पर कृपा करिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ । हे प्रभु ! आपने उस समय मुझे बहुत प्रकार से समझाया था, यह समझ कर-हे नाथ ! क्रोध न कीजियेगा ।

तब कर जस बिमोह अब नाहीं * राम कथा पर रुचि मन माहीं
कहहु पुनीत राम गुन गाथा * भुजगराज भूषन सुरनाथा

तब जैसा अज्ञान अब मुझको नहीं है और श्रीराम-कथा सुनने की मन में रुचि है। हे नागराज-भूषण ! हे देवताओं के स्वामी ! आप श्रीरामजी के गुणों की पवित्र कथा कहिये।

दोहा—बंदउँ पद धरि धरनि सिरु, बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जस, श्रुति सिद्धान्त निचोरि ॥१०९॥

मैं पृथ्वी पर सिर रखकर आपके चरणों को प्रणाम करती हूँ और हाथ जोड़कर यह विनती करती हूँ कि आप श्रीराम का निर्मल यश वेदों का सारांश लेकर वर्णन कीजिए।

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी * दासी मन क्रम बचन तुम्हारी
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं * आरत अधिकारी जहँ पावहिं

यद्यपि स्त्री को वेद-सिद्धान्त सुनने का अधिकार नहीं है, तथापि मन, कर्म और वाणी से मैं आपकी दासी हूँ। इसलिए साधु लोग जहां आर्त-अधिकारी होते हैं। वहां गूढ़-तत्व को भी नहीं छिपाते हैं।

अति आरति पूजउँ सुरराया * रघुपति कथा कहहु करि दाया
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी * निर्गुण ब्रह्म सगुन बपु धारी

हे देवेश ! बहुत दीन होकर मैं आपसे पूछती हूँ, कृपा करके आप श्रीराम-कथा कहिए। प्रथम वह कारण विचारकर बताइए, जिससे निर्गुण-ब्रह्म सगुण शरीर धारी होता है।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा * बाल चरित पुनि कहहु उदारा
कहहु कथा जानकी बिबाहीं * राज तजा सो दूषन काहीं

हे प्रभु ! फिर रामजी के अवतार की कथा कहिये, फिर उदार बाल-चरित्र को कहिये-जिस प्रकार जानकी से विवाह हुआ। फिर राज्य त्याग दिया, सो क्या दोष था ? सो कहिए।

बन बसि कीन्हे चरित अपारा * कहहु नाथ जिमि रावनु मारा
राजु बैठि कीन्ही बहु लीला * सकल कहहु शंकर सुखशीला

वन में रहकर जो अनेक चरित्र किये, कैसे रावण मारा ? हे नाथ ! वह भी कहिये। फिर हे सुख-स्वरूप शंकर ! श्रीरघुनाथजी ने राज्य पर बैठकर जो अनेक लीलायें कीं, वे सब कहिए।

दोहा—बहुरि कहहु करुना यतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुवंश मणि, किमि गवने निज धाम ॥११०॥

हे कृपानिधान ! फिर जो अद्भुत कार्य श्री रामजी ने किये, वह सब कहिए। फिर रघुवंश शिरोमणी श्रीरामजी प्रजा सहित अपने बैकुण्ठ धाम को कैसे गये वह भी कहिए ?

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी * जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा * पुनि सब सरबनु सहित बिभागा

हे प्रभु ! फिर वह तत्व वर्णन कीजिए, जिसके स्मरण मात्र से मुनि और ज्ञानीजन सदा मग्न रहते हैं। फिर भक्ति और वैराग्य का विभाग सहित वर्णन कीजिए।

औरउ राम रहस्य अनेका * कहहु नाथ अति बिमल बिबेका

जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई * सोउ दयालु राखहु जनि गोई

श्रीराम के और भी जो गूढ़ चरित्र हों, उन्हें भी कहिये। हे नाथ! आपका ज्ञान निर्मल है। हे दयालु मैंने जो न पूछा हो, उसे भी छिपा न रखियेगा।

तुम्ह त्रिभुवन गुरु बेद बखाना * आन जीव पाँवर का जाना
प्रश्न उमा कै सहज सुहाई * छल बिहीन सुनि सिव मन भाई

आपको वेदों ने तीनों लोकों का गुरु कहा है, अन्य तुच्छ जीव इस रहस्य को क्या जानें? पार्वतीजी के स्वाभाविक सुहावने और छल रहित वचन शिवजी के मन को भले लगे।

हर हियँ रामचरित सब आए * प्रेम पुलक लोचन जल छाए
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा * परमानन्द अमित सुख पावा

शिवजी के हृदय में श्रीरामजी के सब चरित्रों का स्मरण हो आया, प्रेम से शरीर पुलकित हो नेत्रों में जल भर आया। श्रीरघुनाथजी का रूप हृदय में आ गया, जिससे शिवजी को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ।

दोहा—मगन ध्यान रस दण्ड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब, हरषित बरनै लीन्ह ॥१११॥

श्रीमहादेवजी दो घड़ी ध्यान के रस में मग्न रहे, फिर मन को ध्यान से हटाया। तब प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजी का चरित्र वर्णन करने लगे।

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें * जिमि भुजङ्ग बिनु रजु पहिचानें
जेहि जानें जग जाइ हेराई * जागें जथा सपन भ्रम जाई

जिनको बिना जाने झूठ भी सत्य जान पड़ता है, जैसे रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है, जिसको जान लेने से संसार छूट जाता है, जैसे जागने से स्वप्न का भ्रम दूर हो जाता है।

बन्दउँ बाल रूप सोइ रामू * सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू
मङ्गल भवन अमङ्गल हारी * द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी

मैं उन्हीं बाल-रूप श्रीरामजी की वन्दना करता हूँ, जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। मंगल के घर और अमंगलों को हरने वाले तथा दशरथजी के आँगन में बिहार करने वाले मुझ पर कृपा करें।

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी * हरषि सुधा सम गिरा उचारी
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी * तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी

श्रीरामचन्द्रजी को प्रणामकर शिवजी प्रसन्न हो अमृत के समान वाणी बोले-हे पार्वती! धन्य है, धन्य है, तुम्हारे समान उपकारी कोई नहीं है।

पूँछेउ रघुपति कथा प्रसङ्गा * सकल लोक जग पावनि गङ्गा
तुम्ह रघुपति चरनन्ह अनुरागी * कीन्हिहु प्रश्न जगहित लागी

तुमने रामजी की कथा का प्रसंग पूछा जो सब लोकों को पवित्र करने वाली गंगा के समान

है । तुम श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करने वाली हो,जगतके हितके लिए तुमने यह प्रश्न किया है ।

दोहा—राम कृपा तें पारबति, सपनेहुँ तव मन माहिं ।
सोक मोह सन्देह भ्रम, मम बिचारि कछु नाहिं ॥११२॥

हे पार्वती ! मेरे विचार से तो श्रीरामजी की कृपासे स्वप्न में भी तुम्हारे मन में शोक, मोह, सन्देह और भ्रम कुछ भी नहीं है ।

तदपि अशंका कीन्हिहु सोई * कहत सुनत सब कर हित होई
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना * श्रवन रन्ध्र अहिभवन समाना

तो भी वही शंका की है, जिसे कहते-सुनते सबका कल्याण होगा । जिन्होंने श्रीहरि-कथा कानों से नहीं सुनी, उनके कान साँप के बिल के समान हैं ।

नयनन्हि सन्त दरस नहिं देखा * लोचन मोरपंख कर लेखा
ते सिर अटु तुम्बरि सम तूला * जे न नमत हरि गुरु पद मूला

जिसने नेत्रों से सन्तों के दर्शन नहीं किये, उनके नेत्र मोर पंखों में लिखे हुए नेत्रों के समान हैं, वे सिर कड़वी तूंबी के समान हैं, जो श्रीहरि और गुरु के चरणों में नहीं झुकते ।

जिन्ह हरि भगति हृदयँ नहिं आनी * जीवत सब समान तेई प्रानी
जो नहिं करहिं राम गुन गाना * जीह सो दादुर जीह समाना

जिन्होंने अपने हृदय में हरि-भक्ति धारण नहीं की, वे प्राणी जीते हुए भी मुर्दों के समान हैं । जो लोग राम-गुणगान नहीं करते, उनकी जीभ मेंढ़क की जीभ के समान है ।

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती * सुनि हरि चरित न जो हरषाती
गिरिजा सुनहु राम कै लीला * सुरहित दनुज बिमोह न सीला

वह छाती वज्र के समान कड़ी और निठुर है, जो हरि-चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं होती । हे पार्वती ! अब श्रीरामजी की वह लीला सुनो, जो देवताओं का हित करने वाली और राक्षसों को मोहित करने वाली है ।

दोहा—राम कथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख दानि ।
सत समाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि ॥११३॥

श्रीराम कथा कामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है, सत्पुरुष की सभा ही समस्त देवलोक है, ऐसा जानकर इसे कौन सुनेगा ?

राम कथा सुन्दर करतारी * संसय बिहग उड़ावनि हारी
राम कथा कलि बिटप कुठारी * सादर सुनु गिरिराज कुमारी

श्रीराम-कथा हाथ की सुन्दर ताली है, जो सन्देह रूपी पक्षी को उड़ा देती है । श्रीराम कथा कलियुग-रूपी वृक्ष को काटने की कुल्हाड़ी है, हे पार्वती ! इसे आदर के साथ सुनो ।

राम नाम गुन चरित सुहाए * जनम करम अगनित श्रुति गाए
कथा अनन्त राम भगवाना * तथा कथा कीरति गुननाना

वेदों ने राम के नाम, गुण, सुन्दर चरित्र, जन्म, कर्म सभी असंख्य कहे हैं। जैसे भगवान श्रीरामजी अनन्त है, वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और अनेक गुणों का भी अन्त नहीं हैं।

तदपि जथा श्रुति जसि मति जोरी * कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी
उमा प्रश्न तव सहज सुहाई * सुखद सन्त सम्मत मोहि भाई

तो भी जैसी मैंने सुनी है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर कहता हूँ। हे पार्वती ! तुम्हारे प्रश्न स्वाभाविक ही सुहावने, सुखदायक और साधु-सम्मत हैं तथा मुझे भी बहुत अच्छे लगे हैं।

एक बात नहिं मोहि सोहानी * जदपि मोह बस कहेहु भवानी
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना * जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना

हे पार्वती ! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि तुमसे अज्ञान वश होकर हो कही है, तुमने जो यह कहा कि वे श्रीराम कोई और हैं, जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं।

दोहा—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जो मोह पिशाच।
पाखण्डी हरिपद बिमुख, जानहिं झूठ न साच ॥११४॥

ऐसी बात वे अधम मनुष्य ही कहते हैं-जो अज्ञानरूपी पिशाच से ग्रस्त, पाखण्डी और श्रीहरि के चरणों से विमुख हैं और झूठ-सच कुछ नहीं जानते हैं।

अग्य अकोबिद अन्ध अभागी * काई बिषय मुकुर मन लागी
लम्पट कपटी कुटिल बिसेषी * सपनेहुँ सन्त सभा नहिं देखी

जो अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे और अभागे हैं तथा जिनके मनरूपी दर्पण पर विषयरूपी काई लग रही है, जो लम्पट, छली और कुटिल हैं, जिन्होंने कभी स्वप्न में भी सन्त-समाज नहीं देखा।

कहहिं ते वेद अस मत बानी * जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना * राम रूप देखहिं किमि दीना

जिन्हें लाभ-हानि नहीं सूझती, वे ही ऐसी वेद विरुद्ध बात कहते है। जिनका मनरूपी दर्पण मैला है और जिनके ज्ञानरूपी नेत्र हैं, वे वेचारे श्रीरामजी के रूप को कैसे देखें ?

जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका * जल्पहिं कल्पित बचन अनेका
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं * तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं

जिनको निर्गुण और सगुण का ज्ञान नहीं है, जो अनेक प्रकार की मनमानी बातें बकते हैं, जो हरि की माया वश जगत् में घूमते हैं, उनको कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है।

बातुल भूत बिबस मतवारे * ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे
जिन्ह कृत महामोह मद पाना * तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना

जो बाल-रोग से बकवाद करने वाले, सन्नपाती, उन्मत्त और मतवाले हैं वे सँभल कर बात नहीं बकते। जिन्होंने भारी अज्ञानरूपी मदरा को पी लिया है, उनके कहे हुए पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

सो०—अस निज हृदयँ विचारि, तजि संसय भजु रामपद।

सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रमतम रबिकरबचन मम ॥११५॥

ऐसा अपने मनमें विचार कर, सन्देह छोड़ श्रीरामजी के चरणों को भजो । हे पार्वती-सन्देहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य की किरणों के समान मेरे वचनों को सुनो—

सगुनहि अगुनहि नहिं कुछ भेदा * गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा
अगुन अरूप अलख अज जोई * भगत प्रेम बस सगुन सो होई

सगुण और निर्गुण में कुछ भेद नहीं है । मुनि, पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि जो निर्गुण—रूप रहित, अव्यक्त और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेम-वश सगुण हो जाता है ।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें * जलु हिमउपल बिलग नहिं जैसें
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा * तेहि किमि कहिअ विमोह प्रसंगा

जो निर्गुण है, सगुण कैसे हो सकता है, जैसे जल व ओलेमें कुछ अंतर नहीं है, जिसका नाम संदेह रूपी अंधकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान है, उनको मोह होना कैसे कहा सकता है ।

राम सच्चिदानन्द दिनेसा * नहिं तहँ मोह निशा लवलेशा
सहज प्रकाश रूप भगवाना * नहिं तहँ पुनि विग्यान बिहाना

जहाँ श्रीरामजी सत्-चित् आनन्दरूपी सूर्य हैं, वहाँ मोहरूपी रात्रि लवलेश-मात्र भी नहीं होती । जहाँ भगवान् स्वभाव से ही प्रकाशरूप हैं, वहाँ ज्ञान रूपी सबेरा नहीं होता ।

हरष विषाद ज्ञान अग्याना * जीव धर्म अहमिति अभिमाना
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना * परमानन्द परेस पुराना

हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार अभिमान ये सब जीव के धर्म हैं । श्रीरामजी तो साक्षात् व्यापक परब्रह्म, परमानन्द स्वरूप सबसे परे और पुराण-पुरुष हैं, इसे संसार जानता है ।

दोहा—पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ ॥११६॥

शास्त्रों में जो पुरुष नाम से प्रसिद्ध हैं, प्रकाश की खान हैं, प्रकट और सबके स्वामी हैं वही रघुवंश-मणि श्रीरामजी मेरे स्वामी हैं, यह कहकर शिवजी ने उनको मस्तक नवाया ।

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी * प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी
जथा गगन घन पटल निहारी * झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी

अज्ञानी लोग अपनी भूल को समझते नहीं, वे जड़ प्रभु पर उसका आरोप करते हैं । जैसे आकाश में सूर्य को बादल से ढका हुआ देखकर लोग कहते हैं कि सूर्य छिप गया है ।

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ * प्रगट जुगल शशि तेहि के भाएँ
उमा राम विषयक अस मोहा * नभ तम धूल धूरि जिमि सोहा

जो आँखों में अंगुली लगाकर देखता है, उसको तो चन्द्रमा प्रत्यक्ष दिखाई देता है । हे पार्वती ! श्रीरामजी के विषय में मोह की बातें ऐसी ही हैं, जैसे आकाश में धुआँ, धूल और अन्धकार का दीखना ।

विषय करन सुर जीव समेता * सकल एक तें एक सचेता
सब कर करम प्रकाशक जोई * राम अनादि अवधपति सोई

विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीव ये सब एक से एक चेतन हैं। इन सबके परम प्रकाश वही अनादि-ब्रह्म अयोध्यापति श्रीरामजी हैं।

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू * मायाधीश ग्यान गुन धामू
जासु सत्यता तें जड़ माया * भास सत्य इव मोह सहाया

जगत् प्रकाश्य है और श्रीरामजी प्रकाशक हैं। वे माया के स्वामी तथा ज्ञान व गुण के धाम हैं, जिनकी सत्यता से जड़ माया भी मोह की सहायता पाकर सत्यसी प्रतीत होती है।

दोहा—रजत सीपमहुँ भास जिमि, जथा भानु करि बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥११७॥

जैसे सीप में चाँदी और सूर्य की किरणों में भ्रम से जल प्रतीत होता है। यद्यपि यह तीनों काल में असत्य है, तो भी इस भ्रम को कोई टाल नहीं सकता।

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई * जदपि असत्य देत दुख अहई
जौं सपने सिर काटै कोई * बिनु जागें दुख दूरि न होई

इसी प्रकार जगत् भगवान के सहारे रहता है। यद्यपि यह असत्य है, तो भी दुःख तो देता ही है। जैसे सपने में कोई सिर काट ले, तो बिना जागे दुःख दूर नहीं होता।

जासु कृपाँ अस भ्रम टरि जाई * गिरिजा सोई कृपालु रघुराई
आदि अन्त कोउ जासु न पावा * मति अनुमानि निगम अस गावा

हे पार्वती! जिसकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु श्रीरघुनाथजी हैं, जिनका आदि अन्त किसी ने नहीं पाया। वेदों ने अपनी बुद्धि से अनुमान करके ऐसा गाया है।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना * कर बिनु करम करइ बिधि नाना
आनन रहित सकल रस भोगी * बिनु बानी बकता बड़ जोगी

वह ब्रह्म बिना पैर के चलता है, बिना कान के सुनता है, बिना हाथ भाँति २ के काम करता है, बिना मुख के सब रसों का स्वाद लेता है, बिना वाणी के योग्य-वक्ता और बड़ा योगी है।

तनु बिनु परस नयन बिनु देखा * ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा
असि सब भाँति अलौकिक करनी * महिमा जासु जाइ नहिं बरनी

यह बिना शरीर के ही स्पर्श करता है, बिना नेत्रों के देखता है, बिना नासिका के सब प्रकार की गन्धों को सूँघता है। उसकी करनी सब प्रकार से अलौकिक है, उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दोहा—जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथसुत भगतहित, कोसलपति भगवान ॥११८॥

जिन श्रीरामजी को वेद और पण्डित इस प्रकार गाते हैं और मुनि जिनका ध्यान करते

हैं, वही दशरथनन्दन भक्त हितकारी अयोध्यापति भगवान् श्रीरामजी हैं।

काशीं मरत जन्तु अवलोकी * जासु नाम बल करउँ बिसोकी
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी * रघुबर सब उर अन्तरजामी

काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं जिनके नाम से केवल उसे जन्म-मरण के दुःख से मुक्त कर देता हूँ वही मेरे प्रभु श्रीरामजी चराचर के स्वामी और सबके हृदय के अन्तर्यामी हैं।

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं * जन्म अनेक रचित अघ दहहीं
सादर सुमिरन जे नर करहीं * भव बारिधि गोपद इव तरहीं

विवश होकर जिनका नाम लेते ही अनेकों जन्मों के संकित पाप भस्म होजाते हैं। जो मनुष्य आदर पूर्वक प्रभु का स्मरण करते हैं, वे संसार-सागर को गाय के खुर के बराबर गड्ढे के समान पार कर जाते हैं।

राम सो परमात्मा भवानी * तहँ भ्रम अति अनुचित तब बानी
अस संसय आनत उर माहीं * ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं

हे भवानी ! वही परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं। उनमें भ्रम है, तुम्हारा यह कहना बहुत ही अनुचित है। हृदय में ऐसा संदेह आते ही ज्ञान-वैराग्य आदि सद्गुण दूर हो जाते हैं।

सुनि शिव के भ्रम भंजन बचना * मिटि गै सब कुतरक कै रचना
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती * दारुन असम्भावना बीती

शिवजी के भ्रमनाशक वचन सुनकर पार्वती के सब कुतर्क मिट गये, श्रीरामजी के चरणों में स्नेह और विश्वास हुआ तथा कठिन असंभावना(रामका परब्रह्म होना संभव नहीं,यह संदेह)जाती रही।

दोहा—पुनि पुनि प्रभु पदकमल गहि, जोरि पंकरुह पानि।
बोली गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेम रस सानि ॥११९॥

बारम्बार प्रभु शिवजी के चरण-कमलों को छूकर, कमलरूपी हाथ जोड़कर, पार्वतीजी मानो प्रेमरूपी रस सानकर सुन्दर वचन बोलीं—

ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी * मिटा मोह सरदातप भारी
तुम्ह कृपालु सबु संसय हरेऊ * राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ

चन्द्रमा की किरणों के समान आपकी शीतल वाणी सुनकर शरद्-ऋतु की धूप के समान मेरा अज्ञान जाता रहा। हे कृपालु ! आपने मेरा सन्देह दूर कर दिया, अब मुझे प्रभु श्रीरामजी का स्वरूप जान पड़ा।

नाथ कृपा अब गयउ बिषादा * सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा
अब मोहि आपनि किंकरि जानी * जदपि सहज जड़ नारि अयानी

हे नाथ ! आपकी कृपा से मेरा सब दुःख जाता रहा और प्रभु के चरणों के प्रसाद से ही सुखी हो गई, यद्यपि मैं स्वाभाविक मूर्ख और नासमझ स्त्री हूँ, तथापि आप मुझे अपनी दासी जानकर—

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू * जौं मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू
राम ब्रह्म चिनमय अविनासी * सर्ब रहित सब उर पुर बासी

हे प्रभु ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं,तो मैंने पहले पूछा था, वही कहिये। श्रीरामजी साक्षात् ब्रह्म, चिन्तमय, अविनाशी, सब प्रपंचों से अलग और सबके हृदयरूपी पुर में वास करते हैं।

नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू * मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतु
उमा बचन सुनि परम बिनीता * राम कथा पर प्रीति पुनीता

हे नाथ ! उन्होंने मनुष्य-शरीर किस कारण से धारण किया ? हे बृषकेतु ! यह आप मुझे समझाकर कहिये। पार्वती के अति बिनम्र बचन सुनकर और श्रीरामजी की कथा पर उनकी पवित्र प्रीति देखकर–

दोहा–हियँ हरषे कामारि तब, शंकर सहज सुजान।
बहु विधि उमहिं प्रशंसि पुनि, बोले कृपानिधान ॥१२०क॥

कामदेव के शत्रु, स्वभाव से ही बड़े चतुर, कृपानिधान शंकरजी हृदय में प्रसन्न हुए। फिर पार्वतीजी की बहुत प्रकार से बड़ाई करते हुए बोले–

नवान्ह पारायण–पहला विश्राम–मास परायण–चौथा विश्राम

सो०–सुनु शुभ कथा भवानि, रामचरित मानसविमल।
कहा भुसुण्डि बखानि, सुना बिहगनायक गरुड़ ॥ ख ॥
सो सम्वाद उदार, जेहिबिधि भाआगें कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ ॥ ग ॥
हरि गुन नाम अपार, कथारूप अबनितअमित।
मैं निज मति अनुसार, कहहुँ उमा सादर सुनहु ॥ घ ॥

हे भवानी ! 'रामचरित-मानस' नामक निर्मल और शुभकारी कथा सुनो, जिसको काकभुशुण्डिजी ने वर्णन किया और पक्षिराज गरुड़जी ने सुना है वह उत्तम सम्वाद जिस प्रकार से हुआ, सो आगे कहूँगा। अब तुम श्रीरामजी के अवतार का बहुत सुन्दर और पाप नाशक चरित्र सुनो–हे भवानी ! श्रीहरि के गुण, नाम, कथाये और रूप-अपार, असंख्य और असीम हैं। तो भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, तुम आदर सहित सुनो–

सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए * बिपुल बिसद निगमागम गाए
हरि अवतार हेतु जेहि होई * इदमित्थं कहि जाइ न सोई

हे पार्वती ! सुनो, वेद-शास्त्रों ने हरि के सुन्दर और पवित्र चरित्र वर्णन किये हैं। हरिका अवतार जिस कारण से होता है,यह कारण ठीक नहीं कहा जा सकता कि यह किस प्रकार से है।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी * मत हमार अस सुनहु सयानी
तदपि सन्त मुनि वेद पुराना * जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना

हे भवानी ! हमारा मत यह है कि श्रीरामजी बुद्धि, मन और वाणी से विचार में नहीं आते हैं। तथापि-सन्त, वेद, पुराण जैसा कुछ अपनी बुद्धि के अनुसार कहते हैं।

तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही * समुझि परइ जस कारन मोही

जब जब होइ धर्म की हानी * बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी

हे सुमुखी ! और जैसा मुझे समझ पड़ा है, वैसा मैं तुम्हें सुनाता हूँ—सुनो, जब-जब धर्म की हानि होती है और पृथ्वी पर नीच अभिमानी असुर बढ़ जाते हैं।

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी * सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी
तब तब प्रभु धरि बिबिध शरीरा * हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा

और वे ऐसी अनीति करते हैं, जो कही नहीं जा सकती। जब ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी—ये सब दुःखी हो जाते हैं, तब-तब कृपानिधान श्रीहरि अनेकों प्रकार के शरीर धारण कर भक्तों के कष्टों को दूर करते हैं।

दोहा—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निजश्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, रामजन्म कर हेतु ॥१२१॥

वे असुरों को मारकर देवताओं को राज्य देकर, अपनी बाँधी हुई वेद-मर्यादा की रक्षा करते हैं और संसार में निर्मल यश का विस्तार करते हैं, रामजी के जन्म लेने का यही कारण है।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं * कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं
रामु जनम के हेतु अनेका * परम बिचित्र एक तें ऐका

उसी यश को गाकर भक्तजन संसार से तर जाते हैं, कृपासिन्धु प्रभु भक्तों के हितार्थ देह धारण करते हैं। श्रीरामजी के जन्म लेनेके अनेक कारण हैं, जो एक से एकअधिकआश्चर्य वाले हैं।

जनम एक दुइ कहउँ बखानी * सावधान सुनि सुमति भवानी
द्वारपाल हरि के प्रिय दोउ * जय अरु बिजय जानि सबु कोऊ

हे सुन्दर बुद्धिवाली भवानी ! मैं रामजी के एक-दो जन्मों का वर्णन कहता हूँ। सावधान हो सुनो-श्रीहरि भगवान के दो प्यारे द्वारपाल जय और विजय हैं, जिनको सब कोई जानता है।

बिप्र श्राप ते दोनोंउ भाई * तामस असुर देह तिन्ह पाई
कनककशिपु अरु हाटक लोचन * जगत बिदित सुरपति मदमोचन

ब्राह्मण के शाप से दोनों भाइयों ने तामसी असुर शरीर पाया। हिरण्यकशिपु, और हिरण्याक्ष यह दोनों राक्षस जगत् में देवराज इन्द्र के गर्व को चूर्ण करने वाले प्रसिद्ध हुए।

विजयी समर बीर बिख्याता * धरि बराह बपु एक निपाता
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा * जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा

युद्ध में विजय पाने वाले दोनों प्रसिद्ध वीर थे। उसमें एक (हिरण्याक्ष) को वाराहरूप धारण करके विष्णु ने मारा। फिर नृसिंह-अवतार लेकर दूसरे (हिरण्यकशिपु) को मारा और अपने भक्त-प्रहलाद का सुयश संसार में फैलाया।

दोहा—भए निशाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।
कुम्भकरन रावन सुभट, सुरविजयी जग जान ॥१२२॥

फिर वे दोनों राक्षस जाकर महावीर भगवान् कुम्भकर्ण और रावण नाम से महान् योद्धा देवताओं को जीतने वाले हुए, जिन्हें सब संसार जानता है।

मुकुत न भए हते भगवाना * तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना
एक बार तिन्ह के हित लागी * धरेउ शरीर भगत अनुरागी

दोनों राक्षस यद्यपि भगवान के हाथों से मारे गये, तो भी उनकी मुक्ति नहीं हुई। तीन जन्मों तक राक्षस होने का उनको श्राप था : एक बार उनके हित के लिए भक्तों पर स्नेह करने वाले प्रभु ने जन्म लिया।

कस्य अदिति तहाँ पितु माता * दशरथ कोसल्या विख्याता
एक कलप एहि विधि अवतारा * चरित पवित्र किए संसारा

उस अवतार में कश्यप और अदिति, माता-पिता-दशरथ और कौशल्या नाम से प्रसिद्ध हुए। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर संसार में बहुत से पवित्र चरित्र किये।

एक कलप सुर देखि दुखारे * समर जलन्धर सन सब हारे
सम्भु कीन्ह संग्राम अपारा * दनुज महाबल मरइ न मारा

एक कल्प में सब देवता जलन्धर दैत्य से युद्ध में हार गये, तब उन्हें दुखी देख शिवजी ने उससे बहुत युद्ध किया। परन्तु वह दैत्य महाबली था, अतः शिवजी के मारे नहीं मरा।

परम सती असुराधिप नारी * तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी

दैत्यराज जलंधर की स्त्री परम सतीथी,उसके पतिब्रत-धर्म के बल से शिवजी उसे न जीत सके।

दोहा–छलकरि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब, श्राप कोप करि दीन्ह ॥१२३॥

प्रभु ने छल से उसका व्रत भङ्ग कर देवताओं का कार्य पूरा किया। जब उसी स्त्री ने भेद जाना, तब क्रोध करके श्रीहरि को श्राप दिया।

तासु श्राप हरि कीन्ह प्रमाना * कौतुक निधि कृपाल भगवाना
तहाँ जलन्धर रावन भयउ * रन हित राम परम पद दयउ

उसका श्राप लीला-निधि कृपालु भगवान् ने अङ्गीकार किया। वही जलन्धर रावण हुआ, उसे श्रीरामजी ने युद्ध में मारकर परम पद दिया।

एक जनम कर कारन एहा * जेहि लगि राम धरी नर देहा
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी * सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी

एक जन्म का कारण यह है, जिसके लिए श्रीरामजी ने मनुष्य शरीर धारण किया। प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा मुनियों से सुनकर कवियों ने विस्तार से कही है।

नारद श्राप दीन्ह एक बारा * कलप एक तेहि लगि अवतारा
गिरिजा चकित भई सुनि बानी * नारद विष्नु भगत पुनि ग्यानी

एक बार नारदजी ने श्राप दिया, सो एक कल्प में उसी कारण से अवतार हुआ। यह सुन आश्चर्य चकित होकर पार्वतीजी बोलीं–नारदजी तो हरि भक्त और ज्ञानी मुनि हैं।

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा * का अपराध रमापति कीन्हा

यह प्रसङ्ग मोहि कहहु पुरारी * मुनि मन मोह अचरज भारी

मुनि ने किस कारण श्राप दिया ? लक्ष्मीपति भगवान् ने क्या अपराध किया ? हे त्रिपुरारि ! यह कथा मुझसे कहिये । नारद मुनि के मन में मोह उत्पन्न हो जाना—बड़े आश्चर्य की बात है।

दोहा—बोले बिहँसि महेश तब, ग्यानी मूढ़ न कोइ ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ ॥१२४ख॥

तब शिवजी हँसकर बोले—संसार में न कोई ज्ञानी है न मूर्ख है । श्रीरघुनाथजी जिसको जब जैसा करदें, वह उस समय वैसे ही हो जाता है ।

सो०—कहउँ राम गुन गाथा, भरद्वाज सादर सुनहु ।
भव भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मानमद ॥१२४क॥

याज्ञवल्क्यजी बोले-हे भरद्वाज ! मैं श्रीरामजी के गुणों की कथा कहता हूँ,आदर से सुनो,तुलसी दासजी कहते हैं-संसारके बंधन छुड़ाने वाले श्रीरघुनाथजी को ममता अभिमान त्यागकर भजो।

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि * बह समीप सुरसरी सुहावनि
आश्रम परम पुनीत सुहावा * देखि देवरिषि अति मन भावा

हिमालय पर्वत की एक अति पवित्र गुफा के पास ही सुहावनी देव-नदी (गङ्गाजी)बह रही हैं। उस परम पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर देवर्षि नारदजी के मन को बहुत प्रिय लगा।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा * भयउ रमापति पद अनुरागा
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाँधी * सहज बिमल मन लागि समाधी

पर्वत,नदी और वनके भागों को देखकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम उत्पन्न हुआ। श्रीहरि भगवान का स्मरण करते ही श्राप की गति रुकगई और स्वभाव से ही निर्मल मन समाधि में लग गया।

मुनि गति देखि सुरेस डराना * कामहि बोलि कीन्ह सनमाना
सहित सहाय जाहु मम हेतू * चलेउ हरषि हियँ जलचर केतू

मुनि की समाधि देखकर इन्द्र डर गया और कामदेव को बुलाकर बोला-अपने साथियों समेत मेरे कल्याण के निमित्त जाओ। यह सुनकर कामदेव मन में प्रसन्न होकर चला।

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा * चहत देवऋषि मम पुर बासा
जे कामी लोलुप जग माहीं * कुटिल काक इव सबहि डराहीं

इन्द्र मन में बड़ा डरा कि देवर्षि नारदजी मेरे पुर में बास करना चाहते हैं। संसार में जो कामी, लोभी और कपटी हैं, वे कौए के समान सबसे डरते हैं।

दोहा—सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१२५॥

जैसे मूर्ख-कुत्ता–सिंह को देखकर सूखी हड्डी को लेकर भागे और वह मूर्ख यह जाने कि मुझसे हड्डी को न छीन ले, वैसे ही इन्द्र को लज्जा नहीं आई।

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ * निज माया बसन्त निरमयऊ

कुसुमित विविध विटप बहुरंगा * कुञ्जहिं कोकिल गुञ्जहिं भृङ्गा

उस आश्रम में कामदेव गया तो वहाँ उसने अपनी माया से वसन्त-ऋतु को प्रकट किया और भाँति-भाँति के वृक्षों पर रङ्ग-बिरंगे फूल खिल गये। उन पर कोयलें मधुर-स्वर से बोलने लगीं भौंरे गुञ्जारने लगे।

चली सुहावनि त्रिबिध बयारी * काम कृषानु बढ़ावनिहारी
रम्भादिक सुरनारि नवीना * सकल असमसर कला प्रवीना

तीनों प्रकार की सुहावनी पवन चलने लगीं, जो कामाग्नि को बढ़ाने वाली हैं। रम्भादिक युवा देवाङ्गनायें जो सब काम-कलाओं में चतुर हैं।

करहिं गान बहु तान तरङ्गा * बहु विधि क्रीड़हिं पानि पतङ्गा
देखि सहाय मदन हरषाना * कीन्हेसि पुनि प्रपंच विधि नाना

वे अनेक प्रकार के गान स्वर से गाने लगीं, हाथ में गेंद लेकर बहुत से खेल करने लगीं। अपने सहायकों को देखकर कामदेव प्रसन्न हुआ और उसने अनेक प्रकार के छल किये।

काम कला कछु मुनिहि न व्यापी * निज भयँ डरेउ मनोभव पापी
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू * बड़ रखवार रमापति जासू

कामदेव की माया का प्रभाव मुनि पर कुछ भी न हुआ, तब वह पापी अपने भय से आप ही मर गया। क्या उसकी सीमा को कोई दबा सकता है, जिसके बड़े रक्षक लक्ष्मीपति भगवान् हों?

दोहा—सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन ॥१२६॥

अपने सहायकों सहित कामदेव ने बहुत ही डरकर मन में हार मानकर दीन वचन कहते हुए नारदजी के चरण पकड़ लिए।

भयउ न नारद मन कछु रोषा * कहि प्रिय वचन काम परितोषा
नाइ चरन सिरु आयसु पाई * गयउ मदन तब सहित सहाई

नारदजी के मन में कुछ बोध न हुआ, मीठे वचन कहकर कामदेव को संतुष्ट किया। तब कामदेव अपने सहायकों सहित मुनि के चरणों में सिर नवाकर, आज्ञा पाकर देवलोक को चला गया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी * सुरपति सभाँ जाइ सब बरनीं
सुनि सबकें मन अचरज आवा * मुनिहि प्रशंसहिं हरिहि सिरु नावा

कामदेव ने नारदजी की सहनशीलता और अपनी करनी इन्द्र की सभा में जाकर कही-सुनकर सबके मनमें अचरज हुआ और मुनि की बड़ाई करके सबने हरि-भगवान् को सिर नवाया।

तब नारद गवने सिव पाहीं * जिता काम अह मिति मनमाहीं
काम चरित शङ्करहिं सुनाए * अति प्रिय जानि महेस सिखाए

तब नारदजी शिवजी के पास गये, कामदेव को जीतने से मनमें अहंकार भरा था कामदेव के चरित्र शिवजी को सुनाये, तब नारदजी को बहुत प्रिय जानकर शिवजी ने शिक्षा दी—

बार बार बिनवउँ मुनि तोही * जिमि यह कहा सुनायहु तोही
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ * चलेहुँ प्रसङ्ग दुराएहु तबहूँ

हे मुनि ! बार-बार तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि जैसे यह कथा तुमने मुझे सुनाई है, वैसे श्रीहरि-भगवान को कभी मत सुनाना प्रसङ्ग भी चले तो भी इस बात को छुपा लेना ।

दोहा—शम्भु दीन्ह उपदेश हित, नहिं नारदहि सोहान ।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान ।।१२७।।

शिवजी ने मुनि के हित के लिये शिक्षा दी, परन्तु नारदजी को अच्छी नहीं लगी । हे भरद्वाज ! अब आगे का कौतुक सुनो—श्रीहरि की इच्छा बलवान है ।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई * करै अन्यथा अस नहिं कोई
सम्भु वचन मुनि मन नहिं भाए * तब बिरंचि के लोक सिधाए

श्रीरामजी जो कुछ करना चाहते हैं वही होता है ऐसा कोई नहीं है-जो उनसे विपरीत करे। शिवजी के वचन मुनि को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहां से बिष्णु लोक को गये ।

एक बार करतल बर बीना * गावत हरिगुन गान प्रवीना
छीर सिन्धु गवने मुनि नाथा * जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा

एक बार गान-विद्या में निपुण नारदजी हाथ में सुन्दर वीणा लिये, हरि गुण-गान करते हुए क्षीर-सागर में गये, जहां वेद-शिरोमणि-श्रीरामजी निवास करते हैं ।

हरष मिले उठ राम निकेता * बैठे आसन रिषिहि समेता
बोले बिहँसि चराचर राया * बहुते दिनन कीन्हि मुनिदाया

लक्ष्मी निवास भगवान प्रसन्न हो, उठकर नारदजी से मिले और ऋषि के साथ आसन पर बैठ गये। चराचर के स्वामी प्रभु हँसकर बोले—हे मुनि ! बहुत दिनों में कृपा की है ।

काम चरित नारद सब भाषे * जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे
अति प्रचण्ड रघुपति कै माया * जेहि न मोह असको जग जाया

यद्यपि शिवजी ने पहले ही मना कर दिया था, तो भी नारदजी ने विष्णु भगवान को कामदेव का सारा चरित्र कह सुनाया । श्रीरघुनाथजी की माया बड़ी प्रवल है, संसार में ऐसा कौन जन्मा है—जिसको माया ने मोहित नहीं किया ?

दोहा—रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्री भगवान ।
तुम्हरें सुमिरन तें मिटहिं, मोह मार मद मान ।।१२८।।

रूखा मुँह करके श्रीपति-भगवान नारदजी से कोमल वचन बोले—हे नारदजी ! आपके तो स्मरण मात्र से ही—मोह, काम, मद, घमण्ड दूर हो जाते हैं ।

सुनि मुनि मोह होइ मन ताकें * ज्ञान बिराग हृदयँ नहिं जाकें
ब्रह्मचरज ब्रत रत मति धीरा * तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा

हे मुनि ! सुनो, मोह तो उसे होता है, जिसके हृदय में वैराग्य नहीं होता । आप तो ब्रह्मचर्य

व्रत पालन करने वाले और धीरबुद्धि हैं। भला, कहीं आपको कामदेव पीड़ित कर सकता है।

नारद कहेउ सहित अभिमाना * कृपा तुम्हारि सकल भगवाना
करुना निधि मन दीख बिचारी * उर अँकुरेउ गरब तरु भारी

नारदजी ने अभिमान के साथ कहा-हे भगवान ! यह आपकी ही कृपा है। कृपानिधान भगवान ने मन में विचार कर देखा कि नारद के हृदय में अब अहंकार-रूपी भारी वृक्ष का अंकुर उत्पन्न हो गया है।

बेगि सो मैं डारिहऊँ उखारी * पन हमार सेवक हितकारी
मुनि कर हित मम कौतुक होई * अवसि उपाय करिब मैं सोई

मैं उसे शीघ्र ही उखाड़ डालूंगा, क्योंकि भक्तों का हित ही हमारा प्रण है। मुनि का हित और मेरा कौतुक हो, मैं अवश्य वही उपाय करूंगा।

तब नारद हरि पद सिर नाई * चले हृदयँ अहमित अधिकाई
श्रीपति निज माया तब प्रेरी * सुनहु कठिन करनी तेहि केरी

तब नारदजी श्रीहरि के चरणों में सिर नवाकर हृदय में अभिमान से भरे हुए चल दिये तब श्रीपति भगवान ने अपनी माया को रचा अब उसने जो कठिन करनी की, उसे सुनो—

दोहा—बिचरेहु मग महुँ नगर तेंहि, सत जोजन विस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक, रचना बिबिध बिस्तार ॥१२९॥

मार्ग में चौरासी कोस का भवन बना दिया। लक्ष्मी-निवास भगवान के बैकुण्ठ से भी अधिक अनेक प्रकार की बनावट उस नगर में थी।

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी * जनु बहु मनसिज रति तनुधारी
तेंहि पुर बसहु सीलनिधि राजा * अगनित हिय गय सेन समाजा

जिसनगर में सुन्दर स्त्री-पुरुष, कामदेव और रतिके समान शरीरधारण किये बास करतेथे। उस नगर में शीतलनिधि राजा रहता था, जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और बहुत-सी सेना थी।

सत सुरेस सम बिभव विलासा * रूप तेज बल नीति निवासा
विश्वमोहिनी तासु कुमारी * श्रीविमोह जिसु रूप निहारी

सौ इन्द्रों के समान उसका ऐश्वर्य, सुख था और वह बलनीति का स्थान था उस राजा के विश्वमोहनी नाम की एक कन्या थी, जिसका रूप देखकर लक्ष्मीजी मोहित हो जांय।

सोइ हरि माया सब गुन खानी * सोभा तासु कि जाइ बखानी
कर स्वयंवर सो नृपवाला * आए तहँ अगनित महिपाला

वह सब गुणों की खान हरि-माया थी। क्या उसकी शोभा बखानी जा सकती है? वह राजकुमारी स्वयम्बर करना चाहती थी, इस कारण वहाँ बहुत से राजा आये हुए थे।

मुनि कौतुकी नगर ते गयऊ * पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ
सुनि सब चरित भूप गृहँ आए * करि पूजा नृप मुनि बैठाए

कौतुकी नारद-मुनि उस नगर में गये और नगर-वासियों से सब हाल पूछा। समाचार सुनकर राजमहल में आये, तब राजा ने मुनि की पूजा करके उन्हें आसन पर बैठाया।

दोहा—आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुनदोष सब, एहि के हृदयँ बिचारि ॥१३०॥

राजा ने राज-कन्या लाकर नारदजी को दिखाई और कहा—हे नाथ ! अपने हृदय में विचार कर राजकुमारी के दोष व गुण कहिए।

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी * बड़ी बारि लगि रहे निहारी
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने * हृदयँ हरष नहिं प्रगटि बखाने

उसके रूपको देखकर मुनि अपना वैराग्य भूल गये,बड़ी देर तक उसकी ओर देखते रहे। उसके लक्षण देखकर अपने को भूल गये,मनमें बहुत प्रसन्नहुए,पर प्रत्यक्ष में उन लक्षणोंको नहीं कहा।

जो एहि बरइ अमर सोइ होई * समर भूमि तेहि जीत न कोई
सेवहिं सकल चराचर ताही * बरइ सीलनिधि कन्या जाही

जो इस कन्या के साथ विवाह करेगा, वह अमर हो जावेगा, रणभूमि में उसे कोई जीत नहीं सकेगा। सब चराचर जीव उसकी सेवा करेंगे, जिसे यह शीलनिधि की कन्या वरेगी।

लच्छन सब विचार उर राखे * कछुक बनाइ भूप सन भाषे
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं * नारद चले सोच मन माहीं

सब लक्षण विचार कर मन में रख लिए, कुछ बनाकर राजा से कहे ! राजा से कन्या को सुलक्षणी कहकर नारदजी मन में सोच करते हुए चले।

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी * जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी
जप तप कछु न होइ तेहि काला * हे बिधि मिलइ कवन बिधिवाला

अब जाकर वही उपाय करूँ, जिससे कन्या मुझे वरले। इस समय जप-तप से तो कुछ नहीं हो सकता। हे विधाता वह कन्या मुझे किस प्रकार मिलेगी ?

दोहा—एहि अवसर चाहिअ परम, शोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल ॥१३१॥

उस समय तो बहुत शोभायमान विशाल रूप चाहिए, जिसे देखकर कन्या रीझ जाय, तब यह जय-माला डालेगी।

हरि सन मागौं सुन्दरताई * होइहि जात गहरु अति भाई
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ * एहि अवसर सहाय सोइ होऊ

श्रीहरि से सुन्दरता माँगूं, तो जाने में बहुत देर हो जायेगी। श्रीहरि के समान मेरा हितैषी और कोई नहीं है, इस समय वे ही मेरे सहायक हो सकते हैं।

बहु बिधि बिनयकीन्ह तेहि काला * प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला

प्रभु बिलोक मुनि नयन जुड़ाने * होइहि काजु हिएँ हरषाने

उस समय नारदजी ने श्रीहरि की बहुत प्रकार से विनती की, तब कौतुकी कृपालु प्रभु वहीं प्रगट हो गये। प्रभु को देखकर नारदजी के नेत्र शीतल होगये और सोचा—अब काम बन जायगा, यह समझकर मन में प्रसन्न हुए।

अति आरति कहि कथा सुनाई * करहु कृपा करि होहु सहाई
आपन रूप देहु प्रभु मोही * आन भाँति नहिं पावौं ओही

बड़ी दीनता से सब कथा सुनादी और कहा—हे प्रभु ! मुझ पर कृपा कीजिए और सहायक बनिये। आप अपना रूप मुझको दीजिए, क्योंकि और किसी प्रकार से मैं उसे नहीं पा सकूंगा।

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा * करहुँ सो बेगि दास मैं तोरा
निज माया बलि देखि बिसाला * हियँ हँसि बोले दीनदयाला

हे नाथ ! जिस प्रकार मेरा भला हो वही शीघ्र कीजिये, मैं आपका दास हूं। अपनी माया का अति प्रभाव देखकर दीनों पर दया करने वाले दीनदयालु मन ही मन हंसकर बोले—

दोहा—जेहि बिधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ॥१३२॥

हे नारदजी ! सुनो-जिस प्रकार से तुम्हारा परम हित होगा, हम वही करेंगे और कुछ नहीं करेंगे, हमारा वचन मिथ्या नहीं है।

कुपथ माँगु रुज ब्याकुल रोगी * बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ * कहि अस अन्त रहित प्रभु भयऊ

हे योगी मुनि ! सुनो-जैसे रोग से पीड़ित रोगी कुपथ्य मांगता है, परन्तु वैद्य नहीं देता। इसी प्रकार मैंने तुम्हारा हित विचारा है ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्ध्यान होगये।

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा * समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा
गवने तुरत तहाँ रिषिराई * जहाँ स्वयम्बर भूमि बनाई

हरि की माया के वश में मुनी ऐसे मोहित होगये कि भगवान की स्पष्ट वाणी को भी नहीं समझ सके। फिर ऋषिराज नारदजी तुरन्त वहाँ गये-जहाँ स्वयम्बर-भूमि बनी थी।

निज निज आसन बैठे राजा * बहु बनाव करि सहित समाजा
मुनि मन हरष रूप अति मोरें * मोहि तजि आनहि बरहि न भोरें

अपने-अपने आसनों पर राजा लोग बन-ठनकर समाज सहित बैठे हुए थे। नारद मुनि के मन में बड़ी प्रसन्नता थी कि मेरा रूप सबसे सुन्दर है, इसलिए यह राजकुमारी मुझे छोड़कर किसी दूसरे को भूल कर भी नहीं वर सकेगी।

मुनि हित कारन कृपानिधाना * दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना
सो चरित्र लखि काहूँ न पावा * नारद जानि सबहिं सिरु नावा

मुनि के हित के लिए कृपानिधान श्रीहरि-भगवान ने उन्हें ऐसा कुरूप दिया था-जो कहा नहीं जाता। यह चरित्र किसी ने नहीं जाना और नारद जानकर सभी ने सिर नवाया

दोहा—रहे तहाँ दुइ रुद्रगन, ते जानहिं सब भेउ।
बिप्र बेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥१३३॥

वहाँ शिवजी के दो गण थे, वे सभी भेद जानते थे। वे भी बड़े खिलवाड़ से ब्राह्मण के वेष में वहाँ का कौतुक देखते फिरते थे।

जेहिं समाज बैठे मुनि जाई * हृदयँ रूप अहमित अधिकाई
तहँ बैठे महेश गन दोऊ * बिप्र बेष गति लखइ न कोऊ

जिस समाज में नारदमुनि मन में अपने रूपका बड़ा घमंड किए जा बैठे थे, वहीं महादेवजी के दो गण बैठे थे। परन्तु ब्राह्मण वेष में होने के कारण उन्हें कोई नहीं पहचानता था।

करहिं कूट नारदहि सुनाई * नीक दीन्हि हरि सुन्दरताई
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी * इन्हहि बरिहि हरि जानि बिशेषी

नारदजी को सुनाकर वे दोनों व्यंग करने लगे कि श्रीहरि ने इनको बड़ी अच्छी सुन्दरता दी है। राजकुमारी इनकी छवि को देखकर रीझ जायँगी, इन्हीं को साक्षात श्रीहरि जानकर वरेंगी।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ * हँसहिं शम्भु गन अति सचुपाएँ
जदपि सुनहिं मुनिअटपटि बानी * समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी

मुनि तो मोह के वश थे, क्योंकि उनका मन पराये हाथ में था और शिवजी के गण उनको देखकर उनकी हँसी उड़ा रहे थे। यद्यपि नारद-मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, तो भी कुछ बात उनकी समझ में नहीं पड़ती थी, क्योंकि बुद्धि भ्रम में पड़ी हुई थी।

काहुँ न लखा सो चरित विसेषा * सो स्वरूप नृपकन्या देखा
मरकट बदन भयंकर देही * देखत हृदयँ क्रोध भा तेही

यह विशेष चरित्र कोई भी नहीं जान सका। जब स्वयं कन्या ने वह स्वरूप देखा तो—बन्दर का मुँह और भयङ्कर शरीर को देखकर उसके हृदय में बड़ा सोच हुआ।

दोहा—सखीं सङ्ग ले कुँवरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखत फिरहि महीप सब, कर सरोज जयमाल॥१३४॥

तब राजकुमारी सखियों को सङ्ग लिये राज-हंसिनी के समान मन्द-गति से चली और कमलरूपी हाथों में जय-माला लिए सब राजाओं को देखती हुई फिरने लगी।

जेहि दिशि बैठे नारद फूली * सो दिशि तेहि न बिलोकी भूली
पुनिपुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं * देखि दशा हरगन मुसुकाहीं

जिस ओर नारदजी अभिमान में फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी न देखा। तब नारद मुनि बारम्बार ऊपर को उचकते और घबड़ाते थे, यह दशा देखकर शिवजी के गण हँसते थे,

धरि नृप तनु तहँ गयउ कृपाला * कुअँरि हरषि मेलिउ जयमाला
दुलहिन लै गए लच्छि निवासा * नृप समाज सब भयउ निरासा

राजा का वेष बनाकर प्रभु भी वहाँ गये, उन्हें देखते ही राजकुमारी ने प्रसन्न हो गले में जय

माला पहनावी। दुलहिन को लक्ष्मी निवास भगवान ले गये सब राज-समाज निराश होगया।

मन अति बिकल मोहँ मति नाँठी * मन गिरि गई छूट जनु गाँठी
तब हरगन बोले मुसुकाई * निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई

नारद मुनि मोह से बुद्धि नष्ट होजाने के कारण बहुत व्याकुल हुए, जैसे कि उनकी गांठ से छूटकर मणि गिर गई हो। तब दोनों रुद्र-गण हँसकर बोले कि अपना मुख तो दर्पण में जाकर देखो।

अस करि दोउ भागे भयँ भारी * बदन दीख मुनि बारि निहारी
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा * तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा

इस प्रकार कहकर वे दोनों बहुत डरकर भागे। मुनि ने जल में झाँककर अपना मुख देखा तो बन्दर का रूप देखकर बहुत ही क्रोध बढ़ा, तब रुद्रगणों को महाघोर शाप दिया–

दोहा–होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेउ हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनिकोउ ॥१३५॥

तुम दोनों छली और पापी हो, जाकर निशाचर हो जाओ। हमको देखकर हँसे हो, उसका फल भोगो, फिर किसी मुनि की हँसी न करना।

पुनि जल दीख रूप निज पावा * तदपि हृदयँ सन्तोष न आवा
फरकत अधर कोप मन माहीं * सपदि चले कमलापति पाहीं

फिर जल में देखा तो अपना स्वरूप पाया। तो भी हृदय में सन्तोष न हुआ। होठ कांपने लगे, मन में क्रोध था, तुरन्त ही कमलापति भगवान के पास चले।

देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई * जगत मोर उपहास कराई
बीचहिं पन्थ मिले दनुजारी * सङ्ग रमा सोइ राजकुमारी

(मन में सोचते थे) जाकर शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने मेरी जगत में हँसी कराई है। बीच मार्ग में ही नारायण मिल गये, साथ में लक्ष्मी और वही राजकुमारी थी।

बोले मधुर बचन सुरसाईं * मुनि कहँ चले बिकल की नाईं
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा * माया बस न रहा मन बोधा

देवताओं के स्वामी भगवान मीठे वचन बोले–हे मुनि! व्याकुल हुए कहाँ को चले? यह सुनते ही मुनि को बड़ा क्रोध आया, माया के वश होने से नारदजी के मनमें ज्ञान न रहा।

पर सम्पदा सकहु नहिं देखी * तुम्हरें इरषा कपट बिसेषी
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायहु * सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु

नारदजी बोले-तुम पराई सम्पदा नहीं देख सकते मनमें द्वेष और छल भरा हुआ है। समुद्र मथते समय शिवजी को पागल बना दिया और देवताओं को भेजकर उन्हें विषपान कराया।

दोहा–असुर सुरा बिष शंकरहिं, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथसाधक कुटिलतुम्ह, सदा कपट व्यवहारु ॥१३६॥

असुरों को मदिरा और शिवजी को विष दिया, लक्ष्मी और कौस्तुभ-मणि अपने लिए रख ली। तुम अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले, सदैव छल का व्यवहार करते हो।

परम स्वतन्त्र न सिरु पर कोई * भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई
भलेहि मन्द मन्दहि भल करहू * बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू

तुम परम स्वतंत्र हो, तुम्हारे सिर पर कोई नहीं है, जो मनमें अच्छा लगता है, वही काम तुम करते हो। भले का बुरा और बुरे का भला करते हो, मन में कुछ विषाद व हर्ष नहीं है।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू * अति असङ्क मन सदा उछाहू
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा * अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा

ठग २ कर सबकी परीक्षा लेते हो, बहुत ही निडर हो, इसी से सदा प्रसन्न रहते हो। अच्छे-बुरे काम में तुम्हें कोई रोक नहीं, क्योंकि अब तक किसी ने तुमको ठीक नहीं किया।

भले भवन अब बायन दीन्हा * पावहुगे फल आपन कीन्हा
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा * सोइ तनु धरहु श्राप मम ऐहा

अब भले घर में बायना दिया है, अपने किये का फल पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझको ठगा है, वही (राजा का) शरीर धारण करोगे—यह मेरा श्राप है।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी * करहहिं कीस सहाय तुम्हारी
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी * नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी

तुमने हमारी आकृति बन्दर की-सी बनाई थी, इसलिए बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे, तुमने हमारा बड़ा अहित किया है, इस कारण स्त्री के वियोग से तुम भी दुखी होओगे।

दोहा—श्राप सीस धरि हरषि हियँ, प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि ॥१३७॥

श्राप को शिरोधार्य कर प्रसन्न मन से प्रभु ने मुनि की बहुत विनती की, फिर कृपा-निधान प्रभु ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली।

जब हरि माया दूरि निवारी * नहिं तहँ रमा न राजकुमारी
तब मुनि अति सभीत हरि चरना * गहे पाहि प्रनतारति हरना

जब श्रीहरि ने माया दूर करदी तो वहाँ न लक्ष्मीजी रहीं न राजकुमारी रही। तब मुनि ने बहुत डरकर श्रीहरिके चरण पकड़ लिये और बोले हे भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले, मेरी रक्षा करो।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला * मम इच्छा कह दीनदयाला
मैं दुर्बचन कहे बहु तेरे * कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे

हे कृपालु! मेरा श्राप मिथ्या हो जाय। दीनदयालु प्रभु ने कहा—यह मेरी इच्छा से ही हुआ है। (नारदजी बोले) मैंने आपको बहुत से दुर्वचन कहे हैं, मेरे यह पाप कैसे दूर होंगे?

जपहु जाइ शङ्कर सत नामा * होइहि हृदय तुरत बिश्रामा

कोउ नहिं शिव समान प्रियमोरें * अस परतीति तजहु जनि भौरें

भगवान ने कहा-हे नारदजी! तुम शिवजी के सौ नाम जपो, जिससे हृदय तुरन्त शांत हो जायगा। शिवजी के समान मुझे कोई भी प्रिय नहीं है, ऐसा विश्वास भूलकर भी न छोड़ना।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी * सो न पाव मुनि भगति हमारी
अस उर धरि महि बिचरहु जाई * अब न तुम्हहिं माया नियराई

जिस पर शिवजी दया नहीं करते, हे मुनि! वह मेरी भक्ति नहीं पा सकता। ऐसा हृदय में रखकर तुम पृथ्वी पर जाकर विचरो, अब तुम्हारे समीप मेरी माया नहीं आयेगी।

दोहा—बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भये अन्तरधान।
सत्यलोक नारद चले, करत रामगुन गान॥१३८॥

मुनि को इस तरह बहुत प्रकार से समझाकर प्रभु अन्तर्ध्यान हो गये और नारदजी भी श्रीराम के गुणों का गान करते हुए सत्य-लोक को चल दिये।

हरगन मुनिहि जात पथ देखी * बिगत मोह मन हरष बिसेषी
अति सभीत नारद पहँ आए * गहि पद आरत बचन सुनाए

शिवजी के गणोंने नारदजी को जब मोह रहित और बहुत प्रसन्न मन से मार्ग में जाते देखा तब वे बहुत डरते हुए उनके पास आए और चरण पकड़कर दुःख से भरे हुए वचन बोले।

हर गन हम न विप्र मुनिराया * बड़ अपराध कीन्ह फल पाया
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला * बोले नारद दीनदयाला

हे मुनिनाथ! हम शिवजी के गण हैं, ब्राह्मण नहीं हमने जो बड़ा अपराध किया उसका फल पा लिया। हे कृपालु! अब श्राप दूर करने की कृपा करिए। दीनदयालु नारदजी बोले-

निसिचर जाइ होउ तुम्ह दोऊ * वैभव विपुल तेज बल होऊ
भुजबल विश्वजितब तुम्ह जबहीं * धरिहहिं विष्नु मनुज तनु तबहीं

तुम दोनों जाकर राक्षस होजाओ, तुम्हारा ऐश्वर्य, तेज, बल बहुत होगा। अपनी भुजाओं के बल से जब तुम संसार को जीतोगे, तब श्रीहरि-भगवान मनुष्य का शरीर धारण करेंगे।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा * होइहउ मुकुत न पुनि संसारा
चले जुगल मुनि पद सिर नाई * भए निसाचर कालहि पाई

तब युद्ध में श्रीहरि के हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी, तब तुम मुक्त हो जाओगे फिर संसार में जन्म न लोगे। तब वे दोनों मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर चले गये और समय पाकर राक्षसहुए।

दोहा—एक कल्प एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन भुवि भार॥१३९॥

देवताओं को आनन्द देने वाले, सत्पुरुषों को सुख देने वाले और भूमि का भार उतारने वाले प्रभु ने एक कल्प में इस कारण से मनुष्य रूप में अवतार लिया था।

एहि बिधि जनम करम हरि केरे * सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं * चारु चरित नाना विधि करहीं

इस प्रकार श्रीहरि के जन्म और कर्म अनेक सुन्दर सुखदायक और बहुत विचित्र हैं प्रत्येक कल्प में जब-जब भगवान् अवतार लेते हैं और अनेक प्रकार सुन्दर चरित्र करते हैं।

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई * परम पुनीत प्रबन्ध बनाई
बिबिध प्रसङ्ग अनूप बखाने * करहिं न सुनि आचरजु सयाने

तब-तब पवित्र काव्य रचकर मुनीश्वरों ने कथाओं का वर्णन किया है। उसमें भाँति२ के अनुपम प्रसङ्ग वर्णन किये हैं, जिन्हें सुनकर चतुर लोग आश्चर्य नहीं करते हैं।

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता * कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब सन्ता
रामचन्द्र के चरित सुहाए * कलप कोटि लगि जाहिं न गाए

श्रीहरि अनन्त हैं और उनकी कथायें भी अनन्त हैं, जिन्हें साधु बहुत प्रकार से कहते और सुनते हैं श्रीरामचन्द्रजी के सुहावने चरित्र करोड़ों कल्पों में भी नहीं गाये जा सकते।

यह प्रसंग मैं कहा भवानी * हरि माया मोहहिं मुनि ग्यानी
प्रभु कौतुकी प्रणत हितकारी * सेवत सुलभ सकल दुखहारी

हे पार्वती! यह प्रसङ्ग मैंने तुमको इसलिए सुनाया है कि श्रीहरि की माया से ज्ञानी मुनि भी मोहित हो जाते हैं। प्रभु कौतुकी और भक्त हितकारी हैं, सेवा करने से सुलभ और सब दुःखों को हरने वाले हैं।

सो०—सुर नर मुनि कोउ नाहि, जेहिं न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहि, भजिअ महामाया पतिहि ॥१४०॥

देवता, मनुष्य और मुनि कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे भगवान की प्रबल माया ने मोहित नहीं किया हो। ऐसा मनमें विचारकर महामाया के स्वामी श्रीभगवान का भजन करना चाहिए।

अपर हेतु सुनु शैलकुमारी * कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी
जेहि कारन अज अगुन अरूपा * ब्रह्म भयउ कोशलपुर भूपा

हे पार्वती! अब दूसरा कारण सुनो—मैं एक अद्भुत कथा विस्तार से कहता हूं, जिस कारण अजन्मा, निर्गुण, रूप रहित, ब्रह्म-अवध-नरेश हुये।

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा * बन्धु समेत धरें मुनिवेषा
जासु चरित अबलोकि भवानी * सती शरीर रहिहु बौरानी

जिस प्रभु को वन में भाई लक्ष्मण सहित मुनि-वेष में फिरते हुए तुमने देखा था और जिनके चरित्र को देखकर, हे भवानी! तुम सती के शरीर में ऐसे मोह को प्राप्त हो गई थीं कि

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी * तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी
लीला कीन्हि जो जेहिं अवतारा * सो सब कहिहउँ मति अनुसारा

अब भी तुम्हारी भ्रमरूपी छाया दूर नहीं होती, अब उन्हीं के चरित्र सुनो, जो भ्रमरूपी रोग दूर

करने वाले हैं। जो-जो लीला उस अवतार में की हैं, सो सब अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

भरद्वाज सुनि शंकर बानी * सुकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी
लगे बहुरि बरनै बृषकेतु * सो अवतार भयउ जेहिं हेतू

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं–हे भरद्वाज ! शिवजी के वचन सुन पार्वतीजी सकुचाईं और स्नेह सहित मुस्कराने लगीं। तब शिवजी–जिस कारण से वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे-

दोहा–सो मैं तुम्हसन कहउँ सबु, सुनु मुनीस मन लाइ।
रामकथा कलिमल हरनि, मंगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

हे मुनीश्वर ! वह सब मैं तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो–श्रीराजी की कथा कलि-युग के पापों को हरने वाली, मङ्गल करने वाली सुहावनी है।

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा * जिन्ह तें भइ नरसृष्टि अनूपा
दम्पति धरम आचरन नीका * अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका

महाराज स्वायम्भू-मनु और रानी सतरूपा–जिनसे मनुष्य की अनौखी सृष्टि हुई है, उनका धर्माचरण बहुत अच्छा था। आज भी वेद जिनकी मर्यादा का गायन करते हैं।

नृप उत्तानपाद सुत तासू * ध्रुवहरि भगत भयउ सुत जासू
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही * बेद पुरान प्रसंसहि जाही

उनके पुत्र–राजा उत्तानपाद थे, जिनके पुत्र–हरि भक्त ध्रुव हुए। मनु के छोटे पुत्र का नाम प्रियव्रत था, जिनकी प्रशंसा वेद पुराण गाते हैं।

देवहुति पुनि तासु कुमारी * जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी
आदिदेव प्रभु दीनदयाला * जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला

देवहती उनकी कन्या थी, जो कर्दम-मुनि की प्रिय स्त्री हुई। जिसने आदिदेव दीनदयालु कपिलजी को गर्भ में धारण किया।

साँख्यशास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना * तत्व बिचार निपुन भगवाना
तेहिं मनुराज कीन्ह बहुकाला * प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला

कपिल भगवान ने संख्य-शास्त्र का प्रकट वर्णन किया, क्योंकि ये तत्व-विचार में निपुण थे। उन स्वायम्भु-मनु ने बहुत समय तक राज्य किया और सब प्रकार से प्रभु की आज्ञा का पालन किया।

सो०–होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपनु।
हृदयँ बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

घर में रहते हुए चौथापन (बुढ़ापा) आ गया, परन्तु विषयों से वैराग्य न हुआ। यह विचार कर मन में बड़ा दुःख हुआ हरि-भक्ति के बिना जन्म यों ही बीत गया।

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा * नारि समेत गवन बन कीन्हा
तीरथ बर नैमिष बिख्याता * अति पुनीत साधक सिधि दाता

तब-मनु जबर्दस्ती पुत्र उत्तान्पाद को राज्य देकर, स्वयं रानी सहित वन को चल दिये। अति पवित्र और साधक-जनों को सिद्धि देने वाला, तीर्थ में श्रेष्ठ नैमिषारण प्रसिद्ध है।

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा * तहँ हियँ हरषि चले मनु राजा
पन्थ जात सोहहिं मति धीरा * ग्यान भगति जनु धरें शरीरा

वहां सिद्धि-मुनि लोग रहते थे, राजा मनु मन में प्रसन्न होकर वहीं चले। मार्ग में जाते हुए वे दोनों धीर-बुद्धि ऐसे शोभायमान लगते थे, मानो ज्ञान व भक्ति देह धारण कर जारहे हों।

पहुँचे जाइ धेनुमति धीरा * हरषि नहाने निर्मल नीरा
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी * धरम धुरन्धर नृप ऋषि जानी

वे दोनों गोमती नदी के किनारे जा पहुँचे, वहाँ प्रसन्न होकर निर्मल जल में स्नान किया। तब फिर उन्हें धर्म धुरन्धर, राजर्षि जानकर-सिद्धि, मुनि, ज्ञानी उनसे मिलने आये।

जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाए * मुनिन्ह सकल सादर करवाए
कृस शरीर मुनिपट परिधाना * सत समाज नित सुनहिं पुराना

जहां २ सुन्दर तीर्थ थे, सभी मुनियोंने आदर सहित करवाये। राजा-रानी का शरीर दुबला हो गया था, मुनियों के समान वस्त्र धारणकर साधु-जनों की सभा में नित्य पुराण सुनते थे।

दोहा—द्वादस अक्षर मन्त्र पुनि, जपहि सहित अनुराग।
वासुदेव पद पङ्करुह, दम्पति मन अति लाग ॥१४३॥

बारह अक्षर का सुन्दर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) स्नेह सहित जपने लगे। भगवान श्रीवासुदेव के चरणों में दोनों राजा-रानी का मन भली-भाँति लग गया।

करहिं अहार शाक फल कन्दा * सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा
पुनि हरि हेतु करन तप लागे * बारि अधार मूल फल त्यागे

वे शाक, फल और कन्द का भोजन कर सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करते थे पुनः वे श्रीहरि के निमित्त तप करने लगे और केवल जल के आधार से रहने लगे। मूल-फल का आधार भी छोड़ दिया।

उर अभिलाष निरन्तर होई * देखिअ नयन परम प्रभु सोई
अगुन अखण्ड अनन्त अनादी * जेहिं चिन्तहिं परमारथवादी

मन में सदैव यह इच्छा होने लगी कि उन परम प्रभु का नेत्रों से साक्षात् दर्शन करें, जो निर्गुण अनन्त और अनादि हैं, परमार्थवादी पुरुष जिनका सदैव ध्यान करते हैं।

नेति नेति जेहिं बेद निरूपा * निजानन्द निरुपाधि अनूपा
शम्भु बिरंचि विष्णु भगवाना * उपजहिं जासु अंश तें नाना

जिन प्रभु को वेदों ने नेति-नेति कहकर निरूपण किया है, जो सर्वदा-आनन्द-स्वरूप, उपाधि रहित व अनुपम हैं। जिनके अंश से अनेक शिव, ब्रह्मा और श्रीहरि-भगवान् उत्पन्न होते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई * भगत हेतु लीला तनु गहई

जौं यह वचन सत्यश्रुति भाषा * तौ हमार पूजहि अभिलाषा

ऐसे प्रभु सेवक के वश में हैं और अपने भक्तों के निमित्त लीला करने के लिए शरीर धारण करते हैं। यदि वेदों का यह बचन सत्य है, तो प्रभु हमारी मनोकामना अवश्य पूरी करेंगे।

दोहा—एहि विधि बीते वरष षट, सहस बारि आहार।
सम्बत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार॥१४४॥

इस प्रकार छः हजार वर्ष जल के आहार से तप करते २ बीत गये, फिर सात हजार वर्ष केवल आयु के ही आधार से रहे।

बरष सहस दस त्यागेऊ सोऊ * ठाढ़े रहे एक पग दोऊ
बिधि हरि हर तप देखिअपारा * मनु समीप आए बहु बारा

दस हजार वर्ष तक वह भी छोड़ दिया। इसी प्रकार एक पैर से दोनों खड़े रहे, उनका अखंड तप देखकर-ब्रह्मा, विष्णु, महेश बहुत बार मनु के पास आये।

माँगहु वर बहु भाँति लोभाए * परम धीर नहिं चलहिं चलाए
अस्थि मात्र होइ रहे शरीरा * तदपि मनाब मनहि नहिं पीरा

'वर मांगो' कहकर बहुत भांति से उन्हें लुभाया, परन्तु ये परम धैर्यवान् विचलित न हुए। दोनों का शरीर केवल अस्थ मात्र रह गया था, तो भी उनके मनमें कुछ भी पीड़ा न हुई।

प्रभु सर्बग्य दास निज जानी * गति अनन्य तापस नृप रानी
मागु मागु वरु भइ नभ वानी * परम गँभीर कृपामृत सानी

सर्वग्य प्रभु ने अनन्य गति वाले उन दोनों तपस्वी (राजा-रानी) को अपना दास जाना तब कृपारूपी अमृत से भरी हुई गम्भीर आकाशवाणी हुई कि 'वर माँगो'।

मृतक जिआवनि गिरा गुहाई * श्रवन रंध्र होइ उर जब आई
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए * मानहुँ अबहिं भवन ते आए

मरे हुए को भी जिलाने वाली सुन्दर वाणी कानों में होकर जब हृदय में आई, तब उनका शरीर ऐसा हृष्ट-पुष्ट हो गया-मानो अभी वे घर से आये हैं।

दोहा—श्रवन सुधा सम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु कर दण्डवत, प्रेम न हृदय समात॥१४५॥

कानों से अमृत के समान वचन सुनकर शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। प्रेम हृदय में नहीं समाता था, तब मनुजी दण्डवत करके बोले—

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू * विधि हरि हर वन्दित पद रेनू
सेवत सुलभ सकल सुखदायक * प्रनतपाल सचराचर नायक

हे भक्तों के कल्पवृक्ष व कामधेनु ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आपके पद-रज की वन्दना करते हैं। आप सेवा से सुलभ सम्पूर्ण सुखों के देने वाले हैं, आप दीनों के पालक व सब चराचर के स्वामी हैं।

जौं अनाथ हित हम पर नेहू * तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू
जो सरूप बस शिव मन माहीं * जेहि कारन मुनि जतन कराहीं

हे अनाथों के हितकारी ! जो हम पर आपका स्नेह है तो प्रसन्न हो यह वरदान दो कि आपका जो स्वरूप शिवजी के मनमें वास करता है और जिसके लिए मुनि लोग उपाय करते हैं।

जो भुशुण्डि मन मानस हंसा * सगुन अगुन जेहिं निगम प्रशंसा
देखहिं हम सो रूपभरिलोचन * कृपा करहु प्रनतारति मोचन

जो स्वरूप काकभुशुण्डिजी के मनरूपी मान सरोवर में हंस के समान बिहार करता है, सगुण निर्गुण कहकर वेदों में जिसकी प्रशंसा की गई है। हे शरणागत के दुःखों का नाश करने वाले प्रभु ! ऐसी कृपा कीजिए कि वह स्वरूप हम नेत्र भरकर देखें।

दम्पति बचन परम प्रिय लागे * मृदुल विनीत प्रेम रस पागे
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना * विश्वबास प्रगटे भगवाना

राजा-रानी के वह कोमल, विनय से पूर्ण, प्रेम भरे वचन भगवान को बहुत प्रिय लगे। तब भक्त-वत्सल, कृपानिधान, विश्व-व्यापी प्रभु प्रकट हो गये।

दोहा—नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर श्याम।
लाजहिं तनु शोभा निरखि, कोटि कोटि सतकाम ॥१४६॥

नील-कमल, नीलमणि, नील-घटा वाले मेघ के समान श्याम शरीर की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाते हैं।

शरद मयङ्क बदन छबि सींवा * चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा
अधर अरुण रद सुन्दर नासा * बिधुकर निकर विनिन्दक हासा

जिनका मुख शरद् के पूर्ण चन्द्रमा की कांति के समान छवि की सीमा स्वरूप था सुन्दर कपोल, शंख के समान तीन रेखा वाली सुन्दर ग्रीवा थी। होठ लाल, दांत और नाक सुन्दर थे। चन्द्रमा की किरणों को नीचा दिखाने वाली मनोहर हँसी थी।

नव अम्बुज अम्बक छबि नीकी * चितवनि ललित भाँवती जीकी
भृकुटी मनोज चाप छबि हारी * तिलक ललाट पटल दुतिकारी

नवीन कमल के समान विशाल नेत्रों की सुन्दर शोभा थी, चितवन ऐसी सुन्दर थी कि मन को हर लेती थी कामदेव के धनुष की शोभा को हरने वाली भृकुटी थी, विशाल मस्तक पर तिलक बहुत शोभायमान और प्रकाशमय हो रहा था।

कुण्डल मकर मुकुट सिर भ्राजा * कुटिल केश जनु मधुप समाजा
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला * पदकि हार भूषन मणिजाला

मकराकृत-कुण्डल, शीश पर रत्न-जड़ित मुकुट शोभायमान था, घूंघर वाले बाल मानो भौंरों के झुण्ड थे, हृदय पर श्रीवत्स का चिन्ह, सुन्दर वन-माला, जड़ाऊ-हार तथा मणियों के आभूषण धारण किये थे।

केहरि कन्धर चारु जनेऊ * बाहु विभूषन सुन्दर तेऊ
करिकर सरिस सुभग भुजदण्डा * कटि निषङ्ग कर सर को दण्डा

सिंह के समान ऊँचे कन्धे, सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किये हुए, भुजाओं में सुन्दर आभूषण बाँधे हुए, हाथी की सूँड़ के समान सुन्दर भुजायें, कमर में तरकस बांधे हुए, हाथ में धनुष-बाण लिये हुए हैं।

दोहा–तड़ित विनिंदक पीतपट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुनु भँवर छबि छीनि ।।१४७।।

बिजली की चमक को भी लजाने वाला पीताम्बर है, उदर पर सुन्दर तीन रेखायें हैं। नाभि ऐसी मनोहर है, मानो यमुनाजी के भँवरों की शोभा को छीन ली हो।

पद राजीव वरनि नहिं जाहीं * मुनिमन मधुप बसहिं जिन्हमाहीं
बाम भाग सोभित अनुकूला * आदिशक्ति छबि निधि जगमूला

जिनमें मुनियों के मनरूपी भौंरे बसते हैं, उन चरणों की शोभा कही नहीं जा सकती। बायीं ओर सदा अनुकूल रहने वाली शोभा की खान, जगत् की मूल कारण श[क्ति] शोभायमान हैं।

जासु अंश उपजहिं गुन खानी * अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी
भृकुटि बिलास जासु जग होई * राम बाम दिशि सीता सोई

जिनके अंश से गुणों की खान असंख्य लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्माणी, उत्पन्न होती हैं तथा जिनके भौंह के संकेत मात्र से जगत् उत्पन्न होता है, वही श्रीसीताजी-श्रीरामजी के बायीं ओर विराजमान हैं।

छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी * एकटक रहे नयन पट रोकी
चितवहिं सादर रूप अनूपा * तृप्ति न मानहिं मनु शतरूपा

महाराज मनु और शतरूपा शोभा के समुद्र भगवान के अनोखे रूप को आदर सहित टकटकी बांधकर देखते हुए नहीं अघाते थे।

हरष बिवश तन दशा भुलानी * परे दण्ड इव गहि पद पानी
सिर परसे प्रभु निजकर कुन्जा * तुरत उठाए करुणा पुँजा

आनन्द के मारे देह की सुधि भूल गए और दण्डवत् करके प्रभु के चरणों को पकड़ लिया। तब कृपानिधान प्रभु ने अपने कर-कमलों से स्पर्श कर दोनों को उठा लिया।

दोहा–बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु वर जो भाव मन, महादानि अनुमानि ।।१४८।।

फिर कृपानिधान भगवान् बोले–मुझको बहुत प्रसन्न जानकर और महादानी मानकर जो मन को भावे–वही वरदान माँग लो।

सुनि प्रभु वचन जोरि जुग पानी * धरि धीरजु बोली मृदु बानी
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे * अब पूरे सब काम हमारे

प्रभु के वचन सुन, हाथ जोड़, धीरज धर, मनु मधुर वाणी से बोले—हे नाथ ! आपके चरणों के दर्शन कर हमारी सब कामनायें सिद्ध हो गईं ।

एक लालसा बड़ि उर माहीं * सुगम अगम कहि जात सो नाहीं
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं * अगमलाग मोहि निज कृपनाईं

परन्तु मेरे मन में एक बड़ी लालसा है, सुगम भी है और कठिन भी, सो कही नहीं जाती । हे स्वामी ! आपके देने में तो सुगम है । परन्तु मुझे अपनो कृपणता से कठिन जान पड़तो है।

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई * बहु सम्पत्ति मागत सकुचाई
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई * तथा हृदयँ मम संसय होई

जैसे दरिद्री मनुष्य कल्पवृक्ष को पाकर भी बहुत-सी सम्पत्ति मांगने में संकोच करता है। क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जान सकता । इसी प्रकार मेरे मन में सन्देह होता है ।

सो तुम्ह जानहु अन्तरजामी * पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी
सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही * मोरें नहिं अदेय कछु तोही

हे स्वामी ! आप अन्तर्यामी हैं, अतः उसे जानते ही हैं, मेरा मनोरथ पूरा करें । भगवान् बोले—हे राजन् ! संकोच छोड़ मुझसे वर मांगो, मेरे पास कोई वस्तु ऐसी नहीं जो तुझे न दे सकूं।

दोहा—दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतिभाउ ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभुसन कवन दुराउ ॥१४६॥

राजा मनु बोले—हे दानियों में शिरोमणि ! हे कृपानिधान स्वामी ! मैं सच्चे भाव से कहता हूँ कि मैं आपके ही समान पुत्र चाहता हूँ । प्रभु से क्या छिपाऊँ ?

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले * एवमस्तु करुनानिधि बोले
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई * नृप तव तनय होब मैं आई

राजा की प्रीति देख और अमूल्य वचन सुन करुणानिधान भगवान् बोले ऐसा ही होगा । मैं अपने समान कहां जाकर खोजूंगा, अतः हे राजन ! मैं ही आकर तुम्हारा पुत्र होऊँगा ।

सतरूपहिं बिलोकि कर जोरें * देबि माँगु वर जो रुचि तोरें
जो बरु नाथ चतुर नृप माँगा * सोइ कृपालु मोहि अति प्रियलागा

शतरूपा को हाथ जोड़े देखकर भगवान् बोले—हे देवी ! तुम्हें अच्छा लगे सो वर माँगलो। शतरूपा ने कहा—हे नाथ जो वर चतुर राजा ने माँगा है, हे कृपालु ! वही मुझे बहुत प्रिय है ।

प्रभु तुरत सुठि होति ढिठाई * जदपि भगति हित तुम्हहि सुहाई
तुम ब्रह्मादिक जनक जग स्वामी * ब्रह्म सकल उर अन्तरजामी

परन्तु, प्रभु ! यह बहुत कठिन है, यद्यपि भक्त के हेतु वह भी आपको अच्छा लगता है, क्योंकि आप ब्रह्मादिकों के उत्पन्न करने वाले, जगत् के स्वामी, साक्षात् ब्रह्म और अन्तर्यामी हैं।

अस समुझत मन संसय होई * कहा जो प्रभु प्रमान पुनि सोई
जे निज भगत नाथ तब अहहीं * जो सुख पावहिं जो गति लहहीं

ऐसा समझने से मन में सन्देह होता है, परन्तु प्रभु ने कहा वही-ठीक है ! हे नाथ ! आपके जो अन्य भक्त हैं, वे जो सुख पाते हैं और जिस गति को प्राप्त होते हैं ।

दोहा—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपाकरि देहु ।।१५०।।

हे प्रभु वही सुख, वही गति, वही अपने चरणों में स्नेह, वही ज्ञान और वही वर्ताव हमारे लिये कृपा करके दीजिए ।

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वर रचना * कृपासिंधु बोले मृदु बचना
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं * मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं

रामजी शतरूपा की कोमल और गूढ़ वाक्य रचना को सुनकर कृपासिंधु प्रभु हँसकर बोले जो कुछ अभिलाषा तुम्हारे मन में है, वह सब तुमको मैंने दिया—इसमें सन्देह नहीं है ।

मातु विवेक अलौकिक तोरें * कबहुँ न मिटहिं अनुग्रह मोरें
बन्दि चरन मनु कहेउ बहोरी * औरउ नाथ विनय एक मोरी

हे माता ! मेरी कृपा से तुम्हारा दिव्य-ज्ञान कभी नहीं मिटेगा । मनु ने प्रभु के चरणों को प्रणाम करके फिर कहा—हे प्रभु ! मेरी एक विनती और है कि—

सुत विषयक तव पद रति होऊ * मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना * मम जीवन प्रभु तुम्हहि अधीना

आपके चरणों में मेरी पुत्र-विषयगणी प्रीति होवे, चाहे मुझे कोई महामूर्ख ही क्यों न कहे जैसे मणि के बिना सांप और जल के बिना मछली जीवित नहीं रहती, इसी प्रकार मेरा जीवन आपके आधीन रहे ।

जस बरु माँगि चरन गहि रहेउ * एवमस्तु करुणानिधि कहेउ
अस तुम्ह मम अनुसासन मानी * बसहु जाइ सुरपति रजधानी

ऐसा वर माँगकर भगवान् के चरण पकड़कर चुप हो रहे, तब करुणानिधि भगवान बोले ऐसा ही हो ! अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इन्द्र की राजधानी (अमरावती) में वास करो ।

सो०—तहँ करि भोग बिलास, तात गएँ कछु काल पुनि ।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होव तुम्हार सुत ।।१४१।।

हे तात ! वहाँ परमानन्द भोग करके फिर कुछ समय बीत जाने पर तुम अवध के राजा होगे, तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा ।

इच्छामय नर वेष सँभारे * होइहउँ प्रकट निकेत तुम्हारे
अंशन्ह सहित देह धरि ताता * करिहउँ चरित भगत सुखदाता

इच्छा के अनुसार मनुष्य-रूप धारण कर तुम्हारे घर में प्रकट होऊँगा । हे तात ! मैं अपने अंशों सहित देह धारण कर भक्तों को सुख देने वाले चरित्र करूँगा ।

जे सुनि सादर नर बड़भागी * भव तरिहहि ममता मद त्यागी

आदिशक्ति जेहिं जग उपजाया * सोउ अवतरिहि मोरि यह माया

जिसको आदर सहित सुन भाग्यवान पुरुष माया-मोह छोड़कर भवसागर से तर जायेंगे। जिस शक्ति ने जगत् को पैदा किया है, वह मेरी माया भी अवतार लेगी।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा * सत्य सत्य पन सत्य हमारा
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना * अन्तरधान भए भगवाना

मैं तुम्हारा मनोरथ पूरा करूंगा, मेरा यह प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। बारम्बार ऐसा कहकर कृपानिधान भगवान अन्तर्ध्यान हो गये।

दम्पत उर धरि भगति कृपाला * तेहिं आश्रम निवसे कछु काला
समय पाइ तनु तजि अनयासा * जाइ कीन्ह अमरावति बासा

राजा-रानी दोनों कृपालु भगवान की भक्ति हृदय में धारण कर कुछ समय तक उसी आश्रम में रहे। समय पाकर-बिना कष्ट देह छोड़, अमरावती में जाकर वास किया।

दोहा—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहा बृषकेसु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

याज्ञवल्क्यजी बोले—हे भरद्वाज ! इस अत्यन्त पवित्र कथा को पार्वतीजी से शिवजी ने कहा। अब राम जन्म के और भी अन्य कारण सुनो।

* मास पारायण—पाँचवाँ विश्राम *

सुनि मुनि कथा पुनीत पुरानी * जो गिरिजा प्रति सम्भु बखानी
बिश्व बिदित कैकय एक देसू * सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू

हे मुनि ! अब पवित्र और प्राचीन कथा सुनो, जो पार्वतीजी से शिवजी ने कही थी। संसार में एक कैकई देश प्रसिद्ध है, वहाँ सत्यकेतु नामक राजा रहता था।

धर्म धुरन्धर नीति निधाना * तेज प्रताप सील बलवाना
तेहि कें भए युगल सुत बीरा * सब गुनधाम महा रनधीरा

वह धर्म में धीर, नीति की खान, प्रतापी, शीलवान व बलवान था। उस राजा के दो वीर-पुत्र सब गुणों के धाम और बड़े रणधीर हुए।

राजधनी जो जेठ सुत आही * नाम प्रतापभानु अस ताही
अपर तुम्हहि अरिमर्दन नामा * भुजबल अतुल अचल संग्रामा

राजगद्दी का अधिकारी बड़ा पुत्र था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था, उसकी भुजाओं में बहुत बल था, वह संग्राम में चलायमान नहीं होता था।

भाइहि भाइहि परम समीती * सकल दोष छल बरजित प्रीती
जेठे सुतहिं राज नृप दीन्हा * हरि हित आपु गवन बन कीन्हा

भाई-भाइयों में परस्पर बहुत मेल और सब दोष व छल रहित प्रीति थी। राजा ने पुत्र प्रतापभानु को राज्य दिया और आप श्रीहरि की आराधना करने के लिए वन को चले गये।

दोहा—जब प्रताप रवि भयउ नृप, फिरी दुहाई देश।
प्रजापाल अति बेद विधि, कतहूँ नहीं अघ लेश ।।१५३।।

जब प्रतापभानु राजा हुआ तो देश में उनकी दुहाई फिर गई। वेद-विधि से वह अपनी प्रजा का भली-भाँति से पालन करने लगा, कहीं भी लेश-मात्र भी पाप नहीं रहा।

नृप हितकारी सचिव सयाना * नाम धरमरुचि सुक्र समाना
सचिव सयान बन्धु बलबीरा * आपु प्रताप पुञ्ज रनधीरा

राजा का हितकारी और चतुर मन्त्री-धर्मरुचि शुक्राचार्य के समान नीतिवान् था। मन्त्री चतुर, भाई-बलवान और स्वयं महा प्रतापी रणधीर था।

सेन सङ्ग चतुरङ्ग अपारा * अमित सुभट सब समर जुझारा
सेन बिलोकि राउ हरषाना * अरु बाजे गहगहे निशाना

साथ में अपार चतुरङ्गिणी सेना थी, जिसमें बहुत से योद्धा थे, जो समर में सभी जूझने वाले थे। सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ, फिर घोर ध्वनि से जुझाऊ बाजे बजने लगे।

विजय हेतु कटकई बनाई * सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई
जहँ तहँ परीं अनेक लराई * जीते सकल भूप बरिआई

दिग्विजय के लिए अपनी सेना सजाकर, शुभ दिन देखकर राजा डंका बजाकर चला। जहाँ-तहाँ बहुत सी लड़ाइयाँ हुईं और सब राजाओं को उसने बलपूर्वक जीत लिया।

सप्त द्वीप भुजबल बस कीन्हे * लै लै दण्ड छाँड़ि नृप दीन्हे
सकल अवनि मण्डल तेहिकाला * एक प्रतापभानु महिपाला

उसने भुजाओं के बल से सातों द्वीपों को अपने आधीन कर लिया और सब राजाओं को कर ले-लेकर छोड़ दिया। उस समय समस्त पृथ्वी का एक चक्रवर्ती राजा प्रतापभानु ही था।

दोहा—स्वबस विश्व करि बाहुबल, निजपुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवइ समयँ नरेसु ।। १५४ ।।

उसने अपनी भुजाओं के बल से विश्व को वश में करके अपने नगर में प्रवेश किया। राजा-अर्थ, धर्म और कामादि के सुख समयनुसार भोगने लगा।

भूप प्रतापभानु बल पाई * कामधेनु भै भूमि सुहाई
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी * धरम शील सुन्दर नर आरी

राजा प्रतापभानु का बल पाकर पृथ्वी कामधेनु हो गई। सब प्रजा सुखी थी, किसी को कोई दुःख नहीं था, स्त्री-पुरुष धर्मात्मा और सुन्दर थे।

सचिव धरमरुचि हरिपद प्रीती * नृप हित हेतु सिखव नित नीती
गुरु सुर सन्त पितर महिदेवा * करइ सदा नृप सब कै सेवा

धर्मरुचि मंत्री की श्रीहरि-चरणोंमें प्रीति थी, वही राजाकी भलाई के लिए उसे नीति सिखाया करता। राजा-गुरु, देवता, साधु, पितर व ब्राह्मण इन सबकी सदा सेवा किया करता था।

भूप धरम जे बेद बखाने * सकल करइ सादर सुख माने
दिन प्रति देइ बिबिध बिधिनाना * सुनइ शास्त्र बर बेद पुराना

वेदों में जो राजधर्म कहे हैं, उन सबको आदर सहित सुख मान राजा करता था। प्रतिदिन अनेकों प्रकार के दान विधिपूर्वक करता था, श्रेष्ठ-शास्त्र व वेद पुराणों को सुनता था।

नाना बापीं कूप तड़ागा * सुमन बाटिका सुन्दर बागा
विप्र भवन सुर भवन सुहाए * सब तीरथन्ह विचित्र बनाए

अनेकों बावड़ी, कुआं, तालाब, फुलवारी, सुन्दर बाग, ब्राह्मणों के घर सुन्दर देव-मन्दिर सब तीर्थों में बनवाये।

दोहा—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्त्र सहस्त्र नृप, किए सहित अनुराग ॥१५५॥

वेद पुराणों में जितने यज्ञ कहे हैं, वे सब राजा ने प्रसन्नता पूर्वक हजार २ बार किये।

हृदयँ न कछु फल अनुसन्धाना * भूप बिबेकी परम सुजाना
करइ जे धरम करम मन बानी * बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी

राजा के मन में उन यज्ञों के फल की इच्छा नहीं थी। ज्ञानी राजा-मन, कर्म और वाणी से जो कुछ करता था, वह सब भगवान वासुदेव के अर्पण कर देता था।

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा * मृगया कर सब साजि समाजा
बिन्ध्याचल गभीर बन गयऊ * मृग पुनीत बहु मारत भयऊ

एक बार राजा सुन्दर घोड़े पर चढ़कर शिकार का सब सामान सजाकर विन्ध्याचल के घने वन में गया, वहाँ बहुत से हिरनों का शिकार किया।

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू * जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं * मनहुँ क्रोध बस उगलित नाहीं

वन में घूमते हुए राजा ने एक सूअर को देखा, जो दाँतों के कारण ऐसा ही दीखता था-मानो चन्द्रमा को पकड़कर राहू वन में आ छिपा हो। परन्तु चन्द्रमा बड़ा होने के कारण मुँह में नहीं समाता और क्रोध के वश उगलता भी नहीं।

कोल कराल दसन छबि गाई * तनु बिसाल पीवर अधिकाई
घुरघुरात हय आरौं पाएँ * चकित बिलोकत कान उठाएँ

यह सूअर की भयानक दाढ़ों की शोभा कही-उसका शरीर भी ऊँचा और बहुत मोटा था। घोड़े का शब्द सुनकर वह घुर-घुराते हुए चौकन्ना हो इधर-उधर कान उठाकर घूमने लगा।

दोहा—नील महीधर सिखर सम, देख बिशाल बराहु।
चपर चलेउ हय सटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाहु ॥१५६॥

नील पर्वत की चोटी के समान बड़े सूअर को देखकर राजा ने घोड़े को चाबुक मारकर

दौड़ाया, क्योंकि साधारण हांकने से निर्वाह नहीं होता था ।

आबत देख अधिक रव बाजी ❋ चलेउ वराह मरुत गति भाजी
तुरत कीन्ह नृप सर सन्धाना ❋ महि मिलि गयउ बिलोकत बाना

अधिक शब्द करते हुए घोड़े को देखकर सूअर पवन-गति से चला । राजा ने तुरन्त वाण चढ़ाया तो वाण देखते ही सूअर पृथ्वी में चिपक गया ।

तकि तकि तीर महीस चलावा ❋ करि छल सुअर शरीर बचावा
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा ❋ रिसिबस भूप चलेउ सँग लागा

राजाने तक २ कर वाण चलाये,पर सूअर ने छल करके अपना शरीर बचा लिया । कभी प्रगट होता, कभी वह छिपता हुआ भागता था, राजा भी मारे क्रोध के उसके पीछे लगा हुआ था ।

गयउ दूरि धन गहन बराहू ❋ जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू
अति अकेल बन बिपुल कलेसू ❋ तदपि न मृग मग तजेउ नरेसू

भागता हुआ सूअर दूर ऐसे वन में चला गया,जहाँ हाथी-घोड़े का निशान नहीं था । राजा अकेला था, वन में कठिनाई बहुत थी, तो भी राजा उस सूअर का पीछा नहीं छोड़ता था ।

कोल विलोकि भूप बड़ धीरा ❋ भागि पैठि गिरि गुहाँ गँभीरा
अगम देखि नृप अति पछिताई ❋ फिरेउ महाबन परेउ भुलाई

सूअर ने राजा को बड़ा धीर देखा तो भागकर पर्वत की एक गहरी गुफा में घुस गया । वहाँ अपनी पहुँच न देखकर राजा पछताकर लौटा और उस घने वन में मार्ग भूल गया ।

दोहा—खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत ।
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत ॥१५७॥

थकावट से उदास राजा घोड़े समेत भूखा-प्यासा व्याकुलता से नदी-तालाब ढूँढ़ते २ बिना पानी के अचेत हो गया ।

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा ❋ तहँ बस नृपति कपट मुनि बेषा
जासु देश नृप लीन्ह छुड़ाई ❋ समर सेन तजि गयउ पराई

फिर वन में फिरते हुए राजा ने एक आश्रम देखा, उसमें एक राजा कपट से मुनि के वेष में रहता था । जिसका देश प्रतापभानु ने छीन लिया था और जो युद्ध में अपनी सेना को छोड़कर भाग गया था ।

समय प्रतापभानु कर जानी ❋ आपन अति कुसमय अनुमानी
गयउ न गृह मन बहुत गलानी ❋ मिला न राजहि नृप अभिमानी

प्रतापभानु का अच्छा समय जानकर और अपना कुसमय जानकर यह घर नहीं गया । उसके मनमें बहुत लज्जा हुई और वह अभिमानी राजा प्रतापभानु को भी नहीं मिला ।

सिर उर मारि रंक जिमि राजा ❋ बिपिन बसइ तापस कै साजा
तासु समीप गवन नृप कीन्हा ❋ यह प्रतापरवि तेहिं तब चीन्हा

क्रोध को हारकर कङ्गाल के समान वन में तपस्वी के वेष में रहता था। उसके पास राजा गया तो उसने पहचान लिया कि यह वही प्रतापभानु है।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना * देखि सुवेष महामुनि जाना
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा * परम चतुर न कहेउ निज नामा

मारे प्यास के राजा ने उसे नहीं पहिचाना और सुन्दर वेष देखकर उसे महामुनि समझा। घोड़े से उतरकर प्रणाम किया, परन्तु परम चतुर राजा ने अपना नाम नहीं बताया।

दोहा—भूपित तृषित बिलोकि तेहिं, सरबरु दीन्ह दिखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ ॥१५८॥

राजा को प्यासा देखकर उस मुनि ने सरोवर दिखला दिया। तब राजा ने प्रसन्न होकर घोड़े सहित स्नान किया और जल-पान किया।

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ * निज आश्रम तापस लै गयऊ
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी * पुनि तापस बोलेउ मृदुबानी

थकावट दूर हुई और राजा सुखी हुआ, जब वह मुनि राजा को अपने आश्रम में ले गया। सूर्यास्त का समय जानकर आसन दिया, फिर कोमल वाणी से वह तपस्वी बोला—

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें * सुन्दर जुबा जीव परहेलें
चक्रवर्ती के लच्छन तोरें * देखत दया लागि अति मोरें

तुम कौन हो? सुन्दर युवा होकर जीवन की परवाह न करके वन में अकेले किस कारण से फिरते हो। चक्रवर्ती के से तुम्हारे लक्षण हैं। तुम्हें देखकर मुझको बहुत दया लगती है।

नाम प्रतापभानु अवनीसा * तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई * बड़े भाग्य पद देखेउँ आई

राजा ने कहा—हे मुनि! प्रतापभानु नामक एक राजा है, मैं उसका मन्त्री हूँ और शिकार खेलता हुआ मार्ग भूल गया हूँ, बड़े भाग्य हैं, जो आपके चरणों के दर्शन हुए।

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा * जानत हौं कछु भल होनिहारा
कहा मुनि तात भयउ अँधियारा * योजन सत्तर नगरु तुम्हारा

मुझे आपका दर्शन दुर्लभ था, मैं इससे जानता हूँ कि कुछ भला होने वाला है। उस मुनि ने कहा—हे तात! अब अँधेरा हो गया है और यहाँ से तुम्हारा नगर सत्तर योजन पर है।

दोहा—निसा घोर गम्भीर बन, पन्थ न सूझ सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह, जाएहु होत बिहान ॥१५९क॥

हे सुजान! रात भयावनी है। रास्ता नहीं सूझता ऐसा जानकर आज यहीं रहो, प्रातःकाल होते ही चले जाना।

तुलसी जसि भवतव्यता, तैसी मिलइ सहाइ।

आपुनु आवइ ताहि पहिं, ताहि तहाँ लै जाई ॥१५९ख॥

तुलसीदासजी कहते हैं जैसी होनहार होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है । या तो वह आप ही उसके आ जाती है, या उसे ही वहाँ ले जाती है ।

भलेहिं नाथ आयसु धरि शीशा * बाँधि तुरग तरु बैठि महीशा
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही * चरन बन्दि निज भाग्य सराही

हे नाथ ! बहुत अच्छा, ऐसा कहकर मुनि की आज्ञा शिरोधार्य कर घोड़े को वृक्ष से बाँध कर राजा वहाँ पर ही बैठ गया । राजा ने बहुत भाँति से मुनि की बड़ाई की और उसके चरणों में प्रणामकर अपने भाग्य की सराहना की ।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई * जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी * नाथ नाम निज कहहु बखानी

फिर कोमल और सुहावनी वाणी से कहा—हे प्रभु ! मैं आपको पिता जानकर ढिठाई करता हूँ । हे मुनीश्वर ! मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम बताइये ?

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना * भूप सुहृदय सो कपट ग्याना
बैरी पुनि क्षत्री पुनि राजा * छलबल कीन्ह चहइ निज काजा

राजाने उसे नहीं जाना,वह राजा को जानता था,राजा का हृदय निर्मल था और वह कपट में चतुर था।एक तो वह शत्रु-क्षत्रीय,जिस पर भी राजा,वह छल-बलसे काम निकालना चाहताथा।

समुझि राजसुख दुखित अराती * अबाँ अनल इव सुलगई छाती
सरल बचन नृप के सुनि काना * बयरु सँभारि हृदयँ हरषाना

अपने राज्य-सुख को यादकर वह शत्रु दुखी था, कुम्हार के अवे की अग्नि के समान छाती जलती रहती थी । राजा के सरल वचन सुनकर वैर को याद कर मन में बहुत प्रसन्न हुआ ।

दोहा—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत ।
नामहमारि भिखारीअब, निर्धन रहित निकेत ॥१६०॥

वह कपट से भरे, कोमल वचन युक्तिपूर्वक बोला-अब हमारा नाम भिखारी है, क्योंकि हम निर्धन हैं और हमारा घर वार नहीं है ।

कहा नृप जे विग्यान निधाना * तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना
सदा रहहिं अपन पौ दुराएँ * सब विधि कुशल कुवेष बनाएँ

राजाने कहा-आप सरीखे जो विशेष ज्ञानकी खान होते हैं और अभिमान से रहित होतेहैं,वे सदैव अपने आपको छिपाते रहते हैं । क्योंकि कुवेष बनाकर रहने में सब प्रकार से भलाई है ।

तेहि तें कहहिं सन्त श्रुति टेरें * परम अकिंचन प्रिय हरि केरें
तुम्हसम अधन भिखारी अगेहा * होत विरञ्चि शिवहि सन्देहा

इसी से सन्त और वेद पुकारकर कहते हैं कि अकिंचन ही भगवान के प्रिय हैं । आपके समान निर्धन, भिखारी और गृह-हीनों पर ब्रह्मा तथा शिवजी को भी सन्देह होता है ।

जोसि सोसि तव चरन नमामी * मो पर कृपा करिअ सब स्वामी
सहज प्रीति भूपति कै देखी * आपु विषय विश्वास बिसेषी

आप जो भी हों-सो हों, आपके चरणों को प्रणाम है। हे स्वामी! आप मुझ पर कृपा कीजिए। कपटी-मुनि राजा का स्वाभाविक प्रेम और अपने में विशेष विश्वास देखकर—

सब प्रकार राजहि अपनाई * बोलेउ अधिक सनेह जनाई
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला * इहाँ बसत बीते बहु काला

सब प्रकार से राजा को अपने वश में करके बोला—हे सुजन! सुनो मैं शुद्ध-भाव से कहता हूँ कि यहाँ रहते मुझको बहुत समय बीत गया।

दोहा—अब लगि मोहि न मिलेउ, मैं न जनायउँ काहु।
लोक मान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु ॥१६१क॥

अब तक न तो कोई मुझे मिला और न मैंने किसी को जनाया। क्योंकि तप-रूपी वन को भस्म करने के लिये लोक-प्रतिष्ठा अग्नि के समान है।

सो०—तुलसी देख सुबेषु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखु, वचन सुधासम असन अहि ॥१६१ख॥

तुलसीदासजी कहते हैं सुन्दर वेष देखकर मूर्ख ही नहीं, चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। मोर देखने में सुन्दर है, अमृत के समान वाणी है। परन्तु भोजन उसका सांप ही है।

तातें गुपुत रहउँ जग माहीं * हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं
प्रभु जानहिं सब बिनहिं जनाएँ * कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ

इसी कारण वन में छिपा रहता हूँ, भगवान को छोड़कर और किसी से मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं है। प्रभु तो बिना जाने ही सब कुछ जानते हैं, फिर लोक को रिझाने से कहो—कौनसी सिद्ध प्राप्त होती है?

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें * प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें
अब जौं तात दुरावहुँ तोही * दारुन दोष लगइ अति मोही

तुम पवित्र व सुन्दर बुद्धि वाले मुझे बहुत ही प्रिय हो, क्योंकि मुझपर तुम्हारी प्रीति और विश्वास है। हे तात! अब तुमसे बात छिपाऊँ, तो मुझको बड़ा भारी दोष लगेगा।

जिमि जिमि तापसु कहइ उदासा * तिमि तिमि नृपहि उपज विश्वासा
देखा स्वबस कर्म मन बानी * तब बोला तापस बक ध्यानी

ज्यों २ वह तपस्वी उदासीन वचन कहता था, त्यों २ राजा को विश्वास बढ़ता जाता था। जब राजा को कर्म, मन और वचन से अपने वश में देखा, तब बगुला-भगत तपस्वी बोला—

नाम हमार एकतनु भाई * सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई
कहहु नाम कर अरथ लखानी * मोहि सेवक अति आपन जानी

हे भाई मेरा नाम 'एकतनु' है यह सुन राजा सिर नवाकर बोला—मुझको अपना सेवक

जानकर अपने नाम का अर्थ समझाकर कहिये ।

दोहा—आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उत्पत्ति भै मोरि ।
नाम एक तनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि ॥१६२॥

कपटी मुनि बोला—जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई, तब ही मेरी उत्पत्ति हुई थी । तब से दूसरी देह धारण नहीं की, इसी से 'एकतनु' नाम हुआ ।

जनु आचरजु करहु मन माहीं * सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं
तपबल तें जग सृजइ बिधाता * तपबल बिष्णु भए जगत्राता

हे पुत्र ! मन में आश्चर्य मत करो, तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, तप के प्रताप से ब्रह्माजी सृष्टि रचते हैं, तप के प्रताप से ही विष्णु जगत की रक्षा करते हैं ।

तपबल शम्भु करहिं संहारा * तप तें अगम न कछु संसारा
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा * कथा पुरातन कहैं सो लागा

तप के प्रताप से ही शङ्करजी संहार करते हैं, तप से संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । यह सुनकर राजा को अत्यन्त स्नेह हुआ, तब वह मुनि पुरानी कथा कहने लगा ।

करम धरम इतिहास अनेका * करइ निरूपन बिरति बिबेका
उद्भव पालन प्रलय कहानी * कहेसि अमित आचरज बखानी

उसमें कर्म, धर्म, अनेक इतिहास, वैराग्य और ज्ञान का वर्णन किया । उत्पत्ति, पालन और प्रलय की अनेक और आश्चर्य से भरी कथायें सुनाईं ।

सुनि महीस तापस बस भयऊ * आपन नाम कहन तब लयऊ
कह तापस नृप जानउँ तोही * कीन्हेउ कपट लाग भल मोही

सुनकर राजा उस तपस्वी के वश में हो गया और तब अपना नाम बताने लगा । तपस्वी ने कहा—हे राजा ! मैं जानता हूं, तुमने कपट किया—सो मुझे अच्छा लगा ।

सो०—सुनु महीस अस नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप ।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, परम चतुरता निरखि तव ॥१५३॥

हे राजन् ! सुनो ऐसी नीति है कि राजा लोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं बताते । तुम्हारी बड़ी चतुराई को देखकर मुझे अत्यन्त स्नेह हो गया है ।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा * सत्यकेतु तव पिता नरेसा
गुरु प्रसाद सब जानउँ राजा * कहि न आपन जानि अकाजा

तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, तुम्हारे पिता राजा सत्यकेतु थे । हे राजन् ! गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूं अपनी हानि जानकर नहीं कहता ।

देखि तात तव सहज सुधाई * प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई
उपजि परी ममता मन मोरें * कहउँ कथा निज पूछें तोरें

हे तात ! तुम्हारा सीधापन, प्रीति, विश्वास, नीति और चतुरता देखकर तुम्हारे प्रति मेरे मन में ममता उत्पन्न हो गई, इसलिए तुम्हारे पूछने पर मैं अपनी कथा सुनाता हूँ ।

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं * माँगु भूप जो बस मन माहीं
सुनि सुवचन भूपति हरषाना * गहिपद विनय कीन्हि विधि नाना

अब मैं निसन्देह प्रसन्न हूँ, हे राजन ! जो मन में इच्छा हो, वही वर मांगलो । ऐसे सुन्दर वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनती करने लगा–

कृपासिन्धु मुनि दरसन तोरें * चारि पदारथ करतल मोरें
प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी * माँगि अगम वर होउँ अशोकी

हे कृपासागर मुनि ! आपके दर्शन से चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मेरी मुट्ठी में आ गये । तथापि प्रभु को प्रसन्न देख कठिन वर माँगकर क्यों न शोक रहित हो जाऊं ?

दोहा–जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनु कोउ ।
एक छत्र रिपुहीन महि, राज कल्पसत होउ ।।१६४।।

बुढ़ापे और मृत्यु के दुःख से रहित शरीर हो जाय, संग्राम में मुझसे कोई न जीत सके और सौ कल्प तक पृथ्वी पर मेरा अखण्ड (एक-छत्र) राज्य रहे ।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ * कारन एक कठिन सुनु सोउ
कालहु तुम्ह पद नाइहि सीसा * एक विप्रकुल छाँड़ि महीस

तपस्वी बोला–हे राजन् ! ऐसा ही होगा, परन्तु एक बात कठिन है, उसे भी सुन लो हे राजन् ! एक ब्राह्मण कुल को छोड़कर, काल भी तुम्हारे चरणों में सिर नवायेगा ।

तप बल विप्र सदा बरिआरा * तिन्हके कोप न कोउ रखवारा
जौं विप्रन्ह वश करहु नरेशा * तो तुम वश विधि विष्नु महेशा

तप के प्रभाव से ब्राह्मण सदैव बलवान् होते हैं, उनके कोप से कोई रक्षा नहीं कर सकता । हे राजन् ! यदि ब्राह्मणों को वश में करलो, तो ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी तुम्हारे वश में हो जायेंगे ।

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई * सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई
विप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला * तोर नाश नहिं कवनेहुँ काला

ब्राह्मण-वंश से किसी की जबर्दस्ती नहीं चलती, मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ । हे राजन् ! सुनो–ब्राह्मणों के श्राप के बिना किसी समय भी तुम्हारा नाश नहीं होगा ।

हरषेउ राउ वचन सुनि तासू * नाथ न होइ मोर अब नासू
तब प्रसाद प्रभु कृपानिधाना * मो कहुँ सर्व काल कल्याना

उस मुनि के वचन सुनकर राजा प्रसन्न होकर बोला–हे नाथ ! अब मेरा नाश नहीं होगा । हे कृपानिधान ! आपकी प्रसन्नता से अब मेरा सदैव कल्याण है ।

दोहा–एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि ।

मिलवहमार भुलाव निज, कहहु तौहमहि न खोरि ।।१६५।।

'एवमस्तु' कहकर कपटी-मुनि फिर बोला—तुम हमारा मिलन और वन में मार्ग भूल जाना-किसी से नहीं कहना और यदि कहोगे तो मेरा दोष नहीं है ।

तातें मैं तोहि बरजउँ राजा * कहें कथा तव परम अकाजा
छठें श्रवन यह परत कहानी * नास तुम्हार सत्य मम बानी

हे राजा ! मैं तुमसे इसलिए मना करता हूँ कि इस बात के कहने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी । छठे कान में यह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा, मेरा यह वचन सत्य जानना ।

यह प्रगटें अथवा द्विज श्रापा * नास तोर सुनु भानुप्रतापा
आन उपाय निधन तव नाहीं * जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं

हे प्रतापभानु ! सुनो, बात प्रकट होने से अथवा ब्राह्मणों के श्राप से तुम्हारा नाश है । अन्य उपाय-से चाहे श्रीहरि व शिवजी ही मन में कोप करें, तो भी—तुम्हारा नाश नहीं है ।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा * द्विज गुरु कोप कहहु को राखा
राखइ गुरु जौं कोप विधाता * गुरुविरोध नहिं कोउ जग त्राता

राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा—हे नाथ ! ब्राह्मण और गुरु के कोप से कौन रक्षा कर सकता है ? जो ब्रह्माजी कोप करें तो गुरु रक्षा कर सकता है, किन्तु गुरु के विरोध से कोई रक्षक नहीं है ।

जौं न चलब हम कहें तुम्हारें * होउ नास नहिं सोच हमारें
एकहिं डर डरपत मन मोरा * प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा

यदि आपके कहने पर मैं चलूं, तो चाहे नाश हो जाय—मुझे इसकी चिंता नहीं है । परन्तु हे प्रभु ! एक ही डर से मेरा मन डरता है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयंकर होता है ।

दोहा—होहिं विप्र बस कवन विधि, कहहुँ कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखउँ कोउ ।।१६६।।

जिस उपाय से ब्राह्मण वश में हों वह कृपा करके कहिये । हे दीनदयालु ! आपको छोड़ और कोई मैं अपना हितैषी नहीं देखता ।

सुनुनृप विविध जतनजग माहीं * कष्टसाध्य पुनि होंहि कि नाहीं
अहइ एक अति सुगम उपाई * तहाँ परन्तु एक कठिनाई

मुनि बोले—हे राजा ! सुनो, संसार में अनेक उपाय हैं, परन्तु कठिनता से होते हैं, फिर भी वह हों न हों । एक उपाय बहुत ही सहज है, परन्तु उसमें भी एक कठिनता है ।

मम आधीन जुगुति नृप सोई * मोर जाब तब नगर न होई
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ * काहू के गृह ग्राम न गयऊँ

यह युक्ति मेरे आधीन है, परन्तु मैं तुम्हारे नगर में नहीं जा सकता । जब से मैं जन्मा हूँ, तब से आज तक किसी के घर अथवा गाँव नहीं गया हूँ ।

जौं न जाउँ तब होइ अकाजू * बना आइ असमञ्जस आजू
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी * नाथ निगम असि नीति बखानी

जो नहीं जाऊँ तो—तुम्हारा काम नहीं बनता, आज यह बड़ा असमंजस आ पड़ा। यह सुन राजा मधुर वाणी से बोला-हे नाथ ! वेद मे ऐसी नीति कही है।

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं * गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं
जलधि अगाध मौलि बह फेनू * सन्तत धरनि धरत सिर रेनू

बड़े लोग छोटों पर स्नेह करते हैं, पर्वत अपने सिर पर सदैव तिनकों को धारण करते हैं, अथाह समुद्र के सिर पर फेन बहता है और पृथ्वी सदा अपने सिर रेणु धारण करती है।

दोहा—अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

ऐसा कहकर राजा ने तपस्वी के चरण पकड़ लिये और कहा-हे स्वामी ! मुझ पर कृपालु हो जाइये। मेरे लिए दुःख सह लीजिए, आप सज्जन एवं दयालु हैं।

जानि नृपहि आपन आधीना * बोलेउ तापस कपट प्रबीना
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही * जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही

राजा को अपने आधीन जानकर कपटी-मुनि बोला—हे राजन् ! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि जगत् में मेरे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा * मन क्रम वचन भगत तैं मोरा
जोग जुगुति तप मन्त्र प्रभाऊ * फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ

मैं अवश्य तुम्हारा काम करूंगा, क्योंकि मन, क्रम और वचन से तुम मेरे भक्त हो। योग की युक्ति, तप और मन्त्र का प्रभाव—ये तभी फल देते हैं, जब छिपाकर किये जायें।

जौं नरेश मैं करौं रसोई * तुम्ह परसहु मोहि जान न कोई
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई * सोइ सोइ तब आयसु अनुसरई

हे राजन् ! जो मैं रसोई बनाऊँ और तुम परसो तो मुझे कोई न जान पावेगा। वह अन्न जो कोई भोजन करेगा—वही तुम्हारे वश में हो जायगा।

पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ * तव बस होइ भूप सुनु सोऊ
जाइ उपाय रचहु नृप ऐहू * सम्वत भरि संकल्प करेहू

फिर उसके घर जो कोई जावेगा—वह भी तुम्हारे वश में हो जायगा। घर जाकर यही उपाय करो और एक वर्ष तक यही संकल्प करो।

दोहा—नित नूतन द्विज सहज सत, बरेउ सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकल्प लगि, दिनहि करबि जेवनार ॥१६८॥

नित्य सौ हजार (एक लाख) नये-नये ब्राह्मणों को परिवार सहित आमन्त्रित करो। संकल्प कर भोजन बनाऊँगा।

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें * होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा * तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा

हे राजन् ! इस विधि से बहुत थोड़े ही कष्ट से सब ब्राह्मण वश में हो जायेंगे। वे ब्राह्मण होम, यज्ञ और पूजा करेंगे, इस प्रसंग से सहज ही में सब देवता वश में हो जायेंगे।

और एक तोहि कहउँ लखाऊ * मैं एहिं बेष न आउब काऊ
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया * हरि आनब मैं करि निज माया

एक बात तुमको और बतलाये देता हूँ कि इस वेष में मैं कभी नहीं जाऊँगा। हे राजन् तुम्हारे पुरोहित को मैं अपनी माया से हर लाऊँगा।

तपबल तेहि करि आपु समाना * रखिहउँ इहाँ बरष परवाना
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा * सब बिधि तोर सँवारब काजा

तपस्या के बल से उसको अपने समान बनाकर यहाँ एक वर्ष तक रक्खूँगा। मैं उसका वेष धारण कर सब भाँति से तुम्हारा कार्य सँभालूँगा।

गै निसि बहुत शयन अब कीजे * मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे
मैं तपबल तोहि तुरग समेता * पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता

बहुत रात्रि व्यतीत हो गई, अब तुम शयन करो। हे राजन् ! अब तुमसे हमारी तीसरे दिन भेंट होगी। तपोबल से मैं तुमको घोड़ा सहित सोते ही घर पहुँचा दूँगा।

दोहा—मैं आउब सोइ बेषु धरि, पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकान्त बुलाइ सब, कथा सुनावौं तोहि ॥१६८॥

मैं वही वेष धारण कर आऊँगा और जब एकान्त में बुलाकर तुमको सब कथा सुनाऊँ, तब तुम मुझे पहिचान लेना।

शयन कीन्ह नृप आयसु मानी * आसन जाइ बैठ छलग्यानी
श्रमित भूप निद्रा अति आई * सो किमि सोव सोच अधिकाई

मुनि की आज्ञा मानकर राजा सो गया। तब वह कपटी-मुनि अपने आसन पर जा बैठा। थके हुए राजा को बहुत जल्दी नींद आ गई, परन्तु वह कपटी कैसे सोता—उसे तो बहुत सोच था ?

कालकेतु निसिचर तहँ आवा * जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा
परम मित्र तापस नृप केरा * जानइ सो अति कपट घनेरा

उसी समय कालकेतु राक्षस वहाँ आया, जिसने सूअर बनकर राजा को भुलाया था। वह तपस्वी राजा का परम मित्र था, जो स्वयं बहुत प्रकार का कपट जानता था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई * खल अति अजय देव दुखदाई

प्रथमहिं भूप समर सब मारे * विप्र सन्त सुर देखि दुखारे

उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, वे दुष्ट, अजेय और सब देवताओं को दुःख देने वाले थे। ब्राह्मण, सन्त और देवताओं को दुःखी देखकर राजा ने पहले ही उनको युद्ध में मार दिया था।

तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा * तापस नृप मिलि मन्त्र विचारा
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ * भावी बस न जान कछु राऊ

उस दुष्ट ने पिछला बैर स्मरण कर उस तपस्वी राजा से मिलकर विचार किया व जिससे शत्रु का नाश हो—वही उपाय रचा, परन्तु होनहार के वश में होने से राजा ने कुछ नहीं जाना।

दोहा—रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि ससिहि, सिर अवसेषित राहु ॥१७०॥

तेजवान् शत्रु अकेला हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। शिर मात्र शेष रह जाने पर भी राहू आज भी सूर्य और चन्द्रमा को दुःख देता है।

तापस नृप निज सखहि निहारी * हरषि मिलेउ उठि भयेउ सुखारी
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई * जातुधान बोला सुख पाई

तपस्वी राजा अपने मित्र को देख, प्रसन्न हो उठकर सुखपूर्वक मिला। मित्र को सब कथा सुनाई, जब राक्षस सुख पाकर बोला—

अब साधेउँ रिपु सुनहुँ नरेशा * जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेशा
परिहर सोच रहहु तुम्ह सोई * बिनु औषधि बिआधि बिधि खोई

हे राजा! सुनो, यदि तुम उपदेश के अनुसार काम करोगे, तो मैं अब इस शत्रु को साध लूँगा। सोच को त्याग कर अब तुम सो जाओ, विधाता ने विना औषधि के ही व्याधि को नष्ट कर दिया।

कुल समेत रिपु मूल बिहाई * चौथें दिवस मिलब मैं आई
तापस नृपहि बहुत परितोषी * चला महा कपटी अति रोषी

कुल सहित शत्रु को जड़ से नष्ट करके चौथे दिन मैं आकर तुमसे मिलूँगा। तपस्वी-राजा को सन्तोष देकर वह महा कपटी और बड़ा क्रोधी राक्षस चला।

भानुप्रतापहि बाजि समेता * पहुँचाएसि छन माँझ निकेता
नृपहि नारि पहिं शयन कराई * हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई

प्रतापभानु को घोड़ा सहित सोते हुए ही घर पहुँचा दिया और राजा को रानी के पास सयन कराकर घोड़े को घुड़साल में बाँध दिया।

दोहा—राजा के उपरोहितहि, हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ, मायाँ करि मति भोरि ॥१७१॥

फिर राजा के उपरोहित को हर ले गया और एक पर्वत की गुफा में लेजाकर अपनी माया से उसकी बुद्धि को भ्रम में डाल दिया।

आपु विरचि उपरोहित रूपा * परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना * देखि भवन अति अचरजु माना

आप पुरोहित का रूप बनाकर उसकी सुन्दर सेज पर सो रहा। प्रातः होने से पहले ही राजा जाग पड़ा और अपने को महल में देखकर आश्चर्य करने लगा—

मुनि महिमा मन महुँ अनमानी * उठेउ गवँहि जेहिं जान न रानी
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं * पुर नर नारि न जानेउ केहीं

मुनि की महिमा स्मरण कर राजा चुपचाप उठा, जिससे रानी को पता न हो। उसी घोड़े पर चढ़कर बन को चला गया, यह बात नगर के किसी नर-नारी ने भी नहीं जानी।

गए जाम जुग भूपति आवा * घर घर उत्सव बाज बधावा
उपरोहित देखि जब राजा * चकितविलोकिसुमिरिसोइकाजा

दोपहर होने पर राजा आया,तब घर-घर उत्सव हुआ, आनंद-बधाई बजने लगीं। पुरोहित को जब राजा ने देखा तो चकित होकर देखने लगा और उसी बात का स्मरण हो आया।

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी * कपटी मुनि पद रहिमति लीनी
समय जानि उपरोहित आवा * नृपहि मते सब कहि समुझावा

राजा को तीन-दिन तीनयुग के समान बीते, क्योंकि उसकी मति कपटी-मुनि के चरणों में लीन हो रही थी। समय जानकर पुरोहित-रूपी राक्षस आया और राजा को एकान्त में लेजाकर सब बातें कहकर समझा दिया।

दोहा—नृप हरषेउ पहिचान गुरु, भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस वर, विप्र कुटुम्ब समेत ॥१७२॥

राजा गुरु को पहिचान कर प्रसन्न हुआ, उसे भ्रम वश कुछ ज्ञान न रहा और तुरन्त एक लाख ब्राह्मणों को सपरिवार न्योता दिया।

उपरोहित जेवनार बनाई * छरस चारि विधि जस श्रुतिगाई
मायामय तेहिं कीन्ह रसोई * व्यञ्जन बहु गनि सकइ न कोई

पुरोहितों ने छहों रसों के चार प्रकारके भोजन,जैसें कि शूप-शास्त्र में कहे हैं,बनावे और अपनी राक्षसी-माया से अगम्य रसोई तैयार की, उन विभिन्न पकवानोंकी गणना कोई नहींकर सकता।

विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा * तेहि महु विप्र माँसु खल साँधा
भोजन कहुँ सब विप्र बोलाए * पद पखारि सादर बैठाए

अनेक प्रकार के पशुओं का माँस पकाया, उसमें उस दुष्टने ब्राह्मणों का माँस भी मिला दिया। भोजन के लिए जब सब ब्राह्मणों को बुलाया और चरण धोकर आदर सहित सबको बैठाया।

परुसन जबहिं लाग महिपाला * भै आकाशवानी तेहि काला
विप्रबृन्द उठि उठि गृह जाहू * है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू

तब राजा के परोसना शुरू करते ही आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मणो! तुम सब उठ-उठ कर अपने घर जाओ। यह अन्न मत खाना क्योंकि इसके खाने में बड़ी हानि है।

भयउ रसोईं भूसुर माँसू * सब द्विज उठे मान विश्वासू
भूप विकल मति मोहँ भुलानी * भावी वश न आव मुख बानी

इसमें ब्राह्मणों का माँस मिला हुआ है, यह सुनकर विश्वास न मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा घबड़ा गया, उसकी बुद्धि मोह से ऐसी भ्रमित होगई कि होनहार के वश मुख से बात भी नहीं निकली।

दोहा–बोले विप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह विचार।
होहु निसाचर जाइ नृप, मूढ़ सहित परिवार ॥१७३॥

तब ब्राह्मणों ने कुछ विचार नहीं किया और कोप करके बोले–हे मूर्ख राजा! तुम अपने कुटुम्ब सहित राक्षस हो जाओ।

छत्र बन्धु तैं विप्र बोलाई * घालै लिए सहित समुदाई
ईश्वर राखा धरम हमारा * जैहसि तैं समेत परिवारा

हे अधम क्षत्रिय! तूने ब्राह्मणों को बुलाकर सपरिवार भ्रष्ट करना चाहा था, परन्तु ईश्वर ने हमारा धर्म बचा लिया, इससे तू परिवार सहित नष्ट होगा।

सम्वत मध्य नाश तव होऊ * जलदाता न रहहि कुल कोऊ
नृप सुनि श्रापविकल अतित्रासा * भै बहोरि बर गिरा अकासा

एक साल के भीतर तेरा नाश हो, तेरे वंश में कोई जल देने वाला भी न रहे। ऐसा घोर श्राप सुनकर राजा डर से व्याकुल हो गया। फिर गम्भीर आकाशवाणी हुई।

बिप्रहु श्राप विचारि न दीन्हा * नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी * भूप गयउ जहँ भोजन खानी

हे विप्रो! तुमने भी विचार कर श्राप नहीं दिया, राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया आकाशवाणी को सुनकर सब ब्राह्मण भौंचक्के हो गये, तब राजा वहाँ गया–जहाँ भोजन बनाया था।

तहँ न असन नहीं विप्र सुआरा * फिरेउ राउ मन सोच अपारा
सब प्रसङ्ग महिसुरन्ह सुनाइ * त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई

वहाँ न भोजन था न रसोइया-ब्राह्मण था, तब राजा लौट आया, मनमें बड़ा सोच हुआ। फिर राजा ने सब वृतान्त ब्राह्मणों को सुनाया और मारे डरके घबडाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दोहा–भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूषन तोर।
किएँ, अन्यथा होइ नहिं, विप्र श्राप अति घोर ॥१७४॥

हे राजन्! होनहार नहीं मिटती, यद्यपि तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है, तो भी–ब्राह्मणों का महाघोर श्राप किसी के किये अन्यथा नहीं हो सकता।

असि कहि सब महिदेव सिधाए * समाचार पुर लोगन्ह पाए
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं * विरचत हंस काग किय जेहीं

ऐसा कहकर ब्राह्मण चले गये। जब यह समाचार नगर के लोगों ने सुना, तो वे

चिन्ता करने और देव को दोष देने लगे—जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ बना दिया, अर्थात्—ऐसे धर्मात्मा राजा को राक्षस बना दिया।

उपरोहितहि भवन पहुँचाई * असुर तापसहि खबरि जनाई
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए * सजि सजि सेन भूप सब धाए

पुरोहित को घर पहुँचा कर उस असुर ने कपटी-मुनि को सब हाल कह सुनाया। तब उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेज दिये, जिससे अपनी २ सेना सजाकर सब राजा लोग चढ़ आये।

घेरन्हि नगर निसान बजाई * बिबिध भाँति नित होइ लराई
जूझे सकल सुभट करि करनी * बन्धु समेत परेउ नृप धरनी

उन्होंने डंका बजाकर नगर को घेर लिया और अनेक प्रकार से नित्य लड़ाई होने लगी। सब योद्धा रण में जूझ गये, तब राजा भाइयों सहित पृथ्वी पर गिर कर मर गया।

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा * बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई * निज पुर गवने जय जसु पाई

सत्यकेतु के वंश में कोई नहीं बचा, ब्राह्मणों का श्राप कैसे झूँठा होसकता? सब राजा शत्रु को जीतकर, फिर से नगर बसाकर, विजय और कीर्ति को पाकर, अपने २ नगर को चले गये।

दोहा—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ विधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम, ताहि व्याल सम दाम ॥१७५॥

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—हे भरद्वाज! सुनो, जब किसी को विधाता विपरीत होता है, तब उसको धूल—सुमेरु-पर्वत के समान, पिता-यम के समान और रस्सी-सर्प के समान हो जाती है।

कालपाइ मुनि सुनु सोइ राजा * भयउ निसाचर सहित समाजा
दस सिर ताहि बीस भुजदण्डा * रावन नाम बीर बरिबण्डा

हे मुनि, सुनो, वही राजा प्रतापभानु समय पाकर परिवार सहित राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजायें हुईं, वह बड़ा शूरवीर और उसका नाम रावण हुआ।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा * भयउ सो कुम्भकरन बलधामा
सचिव जो रहा धर्मरुचि जासू * भयउ बिमात्र बन्धु लघु तासू

राजा का अरिमर्दन नामक छोटा भाई बलवान कुम्भकर्ण हुआ। जो धर्मरुचि नाम का मन्त्री था, वह उसका सौतेला भाई हुआ।

नाम बिभीषन जेहि जग जाना * विष्नु भगत विग्यान निधाना
रहे जे सुत सेवक नृप केरे * भए निसाचर घोर घनेरे

जिसका विभीषण नाम सब संसार जानता है, वह श्रीहरि-भक्त परम ज्ञानी था। जो राजा के पुत्र व सेवक थे, वे सब भयंकर राक्षस हुए।

कामरूप खल जिनस अनेका * कुटिल भयंकर बिगत बिबेका
कृपा रहित हिंसक सब पापी * बरनि न जाहिं बिस्व परितापी

वे सब इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, दुष्ट स्वभाव, अनेक जाति के टेढ़े, डरावने, महा अज्ञानी, दयाहीन, हिंसक, पापी, संसार में सबको दुःख देने वाले थे। उनकी दुष्टता कही नहीं जा सकती।

दोहा—उपजे जदपि पुलस्त्य कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस, भए सकल अघ रूप ॥१७६॥

यद्यपि वे पुलस्त्यजी के पवित्र, शुद्ध और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए थे, तो भी ब्राह्मणों के श्राप के वश वे सब महापापी हुए।

कीन्ह विविध तप तीनहुँ भाई * परम उग्र सो बरनि न जाई
गयउ निकट तप देखि विधाता * माँगहु वर प्रसन्न मैं ताता

तीनों भाइयों ने अनेक प्रकार से महा कठिन तप किया, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। तप को देखकर ब्रह्माजी उनके समीप गये और कहा—हे तात! वर माँगों, मैं प्रसन्न हूँ।

करि विनती गहि पद दससीसा * बोलेउ वचन सुनहु जगदीसा
हम काहू के मरहिं न मारें * बानर मनुज जाति दुइ बारें

तब विनती कर, चरण पकड़कर रावण बोला—हे जगदीश्वर! बानर और मनुष्य दोनों तुच्छ जातियों को छोड़कर हम किसी के मारे न मरें।

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा * मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि वर दीन्हा
पुनि प्रभु कुम्भकरण पहिं गयऊ * तेहि बिलोकि मन बिस्मय भयऊ

(शिवजी कहते हैं कि) मैंने और ब्रह्मा ने मिलकर वरदान दिया कि 'एवमस्तु' तुमने बड़ा तप किया है। फिर ब्रह्माजी कुम्भकर्ण के पास गये, तो उसे देखकर मन में आश्चर्य हुआ।

जौं एहिं खल नित करब अहारू * होइहि सब उजारि संसारू
सारद प्रेरि तासु मति फेरी * माँगेसि नींद मास षट केरी

जो यह दुष्ट नित्य-प्रति भोजन करेगा तो संसार उजाड़ हो जायगा। अतः सरस्वतीजी को भेजकर उसकी मति फेर दी। तब उसने छः महीने की नींद माँगी—

दोहा—गए बिभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र वर माँगु।
तेहि माँगेउ भगवन्त पद, कमल अमल अनुरागु ॥१७७॥

फिर ब्रह्माजी विभीषण के पास गये और कहा-हे पुत्र! वर माँगो, तब उसने भगवान् के चरण-कमलों में प्रीति माँगी।

तिन्हहि देइ वर ब्रह्म सिधाए * हरषित ते अपने गृह आए
मय तनुजा मन्दोदरि नामा * परम सुन्दरी नारि ललामा

उनको वर देकर ब्रह्माजी चले गये, तब वे भी प्रसन्न होकर अपने-अपने घर आये फिर मय-दानव की कन्या मन्दोदरी स्त्रियों में श्रेष्ठ थी।

सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी * होइहि जातुधान पति जानी

हर्षित भयउ नारि भलि पाई * पुनि दोउ बन्धु बिआहेसि जाई

वह कन्या मय-दानव ने रावण को दी, यह समझकर कि यह राक्षसराज की पटरानी होगी। श्रेष्ठ स्त्री को पाकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ फिर दोनों भाइयों का विवाह किया।

गिरित्रिकूट एक सिन्धु मझारी * बिधि निर्मित दुर्गम अतिभारी
सोइ मयदानवँ बहुरि सँवारा * कनक रचित मनि भवन अपारा

समुद्र के बीच टापू पर ब्रह्माजी का बनाया हुआ एक अगम त्रिकुट पर्वत है, उसको मय-दानव ने फिर सुधारा और वहाँ बहुत से मणियों से जटित सुवर्ण के घर बनाये।

भोगावति जस महिकुल बासा * अमरावति जस सक्र निवासा
तिन्ह तें अधिक रम्य मति बंका * जग बिख्यात नाम तेहि लंका

जैसे भोगावती पुरी में सर्प-कुल का वास है अमरावती पुरी में इन्द्र का निवास है, इससे भी अधिक रमणीक और बाँकी वह पुरी हुई, उसका नाम 'लंकापुरी' जगत में प्रसिद्ध है।

दोहा—खाईं सिंधु गँभीर अति, चारिहुँ दिस फिर आव।
कनककोटि मनि खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव ॥१७८क॥

बहुत ही गहरा समुद्र और उसके चारों ओर खाई थी तथा मणि जड़ित सोने का गढ़ ऐसा दृढ़ था कि जिसके बनाव का वर्णन नहीं हो सकता।

हरि प्रेरित जेहिं कल्प जोइ, जातुधान पति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत बस सोइ ॥१७८ख॥

भगवान की इच्छा से जिस कल्प में जो राक्षसों का स्वामी होता है। वह शूर, वीर, प्रतापी और महा पराक्रमी राजा अपनी सेना सहित उस पुरी में रहता है।

रहे तहाँ निसिचर भट मारे * ते सब सुरन्ह समर संहारे
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे * रच्छक कोटि जच्छपति केरे

पहले वहाँ बड़े वीर राक्षस रहते थे, उन सबको देवताओं ने मार डाला। अब वहाँ इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के एक करोड़ रक्षक रहते हैं।

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई * सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई * जच्छ जीव लै गए पराई

रावण ने कहीं यह खबर सुनी, तो सेना सजाकर लंका गढ़ को जा घेरा। उसके भयंकर योद्धाओं की बड़ी भारी सेना देखकर सब यक्ष प्राण बचाकर भाग गये।

फिरि सब नगर दसानन देखा * गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा
सुन्दर सहज अगम अनुमानी * कीन्हि तहाँ रावन रजधानी

रावण ने वहाँ घूमकर सब लंकापुरी को देखा, सब सोच जाता रहा और बहुत सुखी हुआ लंकापुरी को सुन्दर और दुर्गम अनुमान कर रावण ने वहाँ राजधानी नियत की।

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे * सुखी सकल रजनीचर कीन्हे
एक बार कुबेर पहँ धावा * पुष्पक यान जीत लै आवा

योग्यतानुसार सबको रहने के लिए घर बाँट दिये, सभी राक्षसों को सुखी किया। एक बार कुबेर पर धावा करके पुष्पक बिमान को जीतकर ले आया।

दोहा—कौतु कहीं कैलाश पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौल निज बाहुबल, चला बहुत सुख पाइ ॥१७८॥

फिर एक बार खेल में ही जाकर कैलाश पर्वत को उठा लिया और अपनी भुजाओं के बल को तोलकर, बहुत सुख पाकर चला आया।

सुख सम्पति सुत सेन सहाई * जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई
नित नूतन सब बाढ़त जाई * जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई

सुख सम्पदा, पुत्र, सेना, सहायक, विजय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई ये सब नित्य नये बढ़ते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ जाता है।

अतिबल कुम्भकरन असभ्राता * जेहि कहुँ नहिं प्रति भट जग जाता
करइ पान सोवइ षट माषा * जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा

महाबली कुम्भकर्ण ऐसा भाई था, जिसके जोड़ का दूसरा कोई और शूरवीर संसार में नहीं जन्मा। वह मदिरा पीकर छः महीने सोता था, उसके जागने पर तीनों लोक डर जाते थे।

जौं दिन प्रति आहार कर सोई * विश्व बेगि सब चौपट होई
समर धीर नहिं जाइ बखाना * तेहि सम अमित वीर बलवाना

जो वह नित्य प्रति भोजन करता, सम्पूर्ण जगत् जल्दी से ही चौपट हो जाता। वह युद्ध में ऐसा धैर्यवान था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके जैसे अनेक वीर वहाँ और भी थे।

बारिदनाद जेठ सुत तासू * भट महुँ प्रथम लोग जग जासू
जेहि न होइ रन सन्मुख कोई * सुरपुर नितहिं परावन होई

रावण के बड़े पुत्र मेघनाद की जगत के शूरवीरों में पहली गिनती थी। उसके सामने युद्ध में कोई नहीं आ सकता था, इन्द्रलोक में तो नित्य भागा-भाग मची रहती थी।

दोहा—कुमुख अकम्पन कुलसिरद, धूमकेतु अतिकाय।
एकहिं एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥

दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूम्रकेतु, अतिकाय आदि अनेक योद्धा ऐसे थे, जो कि संसार भर को अकेले ही जीत सकते थे।

काम रूप जानहिं सब माया * सपनेहुं जिन्हकें धरम न दाया
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा * देखि अमित आपन परिवारा

सब राक्षस इच्छानुसार रूप बनाने वाले सब प्रकार की माया जानते थे सपने में भी उनके

हृदय में दया धर्म नहीं था। एक बार रावण ने सभा में बैठकर अपना असंख्य परिवार देखा।

सुत समूह जन परिजन नाती * गनै को पार निसाचर जाती
सेन बिलोकि सहज अभिमानी * बोला बचन क्रोध मद सानी

पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और सेवक आदि राक्षसों की जाती कौन गिन सकता है। सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और घमण्ड से भरे वचन बोला–

सुनहु सकल रजनीचर जूथा * हमरे बैरी बिबुध बरूथा
ते सन्मुख नहिं करहिं लराई * देखि सकल रिपु जाहिं पराई

सभी राक्षस लोग सुनो–हमारे बैरी सब देवता हैं, वे सामने होकर लड़ाई नहीं करते और बलवान शत्रु देखकर भाग जाते हैं।

तिन्ह कर मरन एक बिधि होई * कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई
द्विज भोजन मख होम सराधा * सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा

उनका मरण केवल एक ही प्रकार से हो सकता है, मैं समझाकर कहता हूँ, सो सुनो–ब्राह्मण-भोजन, यज्ञ, हवन, श्राद्ध इनमें जाकर तुम बाधा डालो।

दोहा–छुधाछीन बलहीन सुर, सहजहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाँड़िहउँ, भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

फिर भूख से दुर्बल और निर्बल होकर देवता लोग सहज ही आकर हमसे मिलेंगे। तब मैं उनको मार डालूँगा अथवा अच्छी तरह अधीन करके छोड़ दूँगा।

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा * दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा
जे सुर समर धीर बलवाना * जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना

फिर मेघनाथ को बुलाया और शिक्षा देकर उनके बल और देवताओं के प्रति बैर-भाव को बढ़ाबा दिया और कहा जो देवता रणधीर और बलवान हैं जिनको अपने लड़ने का घमण्ड है।

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी * उठि सुत पितु अनुसासन काँधी
एहि बिधि सबही आज्ञा दीन्ही * आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही

उनको युद्ध में जीतकर बाँध लाओ। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा शिरोधार्य की, इस प्रकार रावण ने सभी को आज्ञा दी और आप हाथ में गदा लेकर चला।

चलत दशानन डोलति अबनी * गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सर रवनी
रावन आवत सुनेउ सकोहा * देवन्ह तके मेरुगिरि खोहा

रावण के चलने से पृथ्वी काँपती थी, गर्जन से देवताओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते थे। रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत की कन्दराओं का मार्ग लिया।

दिगपालन्ह के लोक सुहाए * सूने सकल दसानन पाए
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी * देइ देवतन्ह गारि पचारी

रन मद मत्त फिरइ जग धावा * प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा

दिकपालों के सुहावने लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बारम्बार सिंह के समान गर्जना करके देवताओं को ललकार कर गालियाँ देने लगा। युद्ध के मद से मतवाला रावण जगत में दौड़ता फिरा, परन्तु अपने समान योद्धा खोज करने पर भी उसे कहीं नहीं पाया।

रवि ससि पवन बरुन धन धारी * अगिनि कालजम सब अधिकारी
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा * हठि सबही के पन्थहिं लागा

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम आदि सब यज्ञ की आहुति के अधिकारी देवता और किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, नाग-इन सब ही के पीछे हठ पूर्वक पड़ गया।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी * दसमुख बसवर्ती नर नारी
आयसु करहिं सकल भय भीता * नवहिं आइ नित चरन बिनीता

ब्रह्माजी की सृष्टि में जहां तक शरीर धारी नर-नारी थे, सब रावण के आधीन होगये। वे सब रावण की आज्ञा का पालन करते और नित्य आकर नम्रता से चरणों में प्रणाम करते थे।

दोहा—भुजबल विश्व बस्यकरि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मण्डलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ॥१८२॥

रावण ने अपनी भुजाओं के बल से विश्व को वश में कर लिया था, किसी को स्वाधीन नहीं रक्खा। सब राजाओं में चक्रवर्ती होकर अपनी ही सलाह से राज्य करने लगा।

इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ * सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ
प्रथमहिं जिन्ह कहँ आयसु दीन्हा * तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा

रावण ने मेघनाद से जो कुछ कहा, उसने उसे मानो पहले ही कर रक्खा था। पहले ही जिनको आज्ञा दी थी, उन्होंने जो किया, उन राक्षसों के भी चरित्र सुनो—

देखत भीमरूप सब पापी * निसिचर निकर देव परितापी
करहिं उपद्रव असुर निकाया * नाना रूप धरहिं करि माया

देखने में वे सब राक्षस-समूह भयंकर-रूप, पापी और देवताओं को दुःख देने वाले थे। असुर-गण माया से अनेक रूप धरकर यह उपद्रव करने लगे—

जेहि विधि होई धर्म निर्मूला * सो सब करहिं बेद प्रतिकूला
जेहिं जेहिं देश धेनु द्विज पावहिं * नगर गाउँ पुर आग लगावहिं

जिस प्रकार धर्म की जड़ कटे, वही वेद-विरुद्ध सब काम करने लगे। जिस देश में गौ और ब्राह्मण पाते, उसी नगर तथा गाँव में आग लगा देते थे।

शुभ आचरन कतहुँ नहिं होई * देव विप्र गुरु मान न कोई
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना * सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना

शुभ-कर्म कहीं नहीं हो पाते थे, देव, ब्राह्मण और गुरु की कोई नहीं मानता था। हरि-भक्ति, यज्ञ, तप, दान नहीं होते और वेद-पुराण तो कोई स्वप्न में भी नहीं सुनता था।

छन्द–जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा ।
आपुन उठि धावइ रहन न पावइ धरि सब घालइ खीसा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना ।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥

जप, योग, वैराग्य, तप व यज्ञ के भाग–ये जहाँ कहीं अपने कानों से सुनते तो रावण स्वयं ही उठ दौड़ता । तब कुछ नहीं रहने पाता, सबका अपने हाथों से विध्वंस कर देता । ऐसा भ्रष्टाचार संसार में हुआ कि कानों से धर्म कहीं भी सुनाई नहीं पड़ता था । जो कोई वेद-पुराण कहता था उसे बहुत सताया जाता और देश से निकाल देता था ।

सो०–बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्हके पापहि कवनि मिति ॥१८३॥

भयंकर राक्षस-जो अनीति करते थे, वह वर्णन नहीं की जा सकती । हिंसा में ही जिनकी प्रीति थी, उनके पापों की कोई सीमा नहीं थी ।

* मास पारायण–छठवाँ विश्राम *

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा * जे लम्पट परधन परदारा
मानहिं मातु पिता नहिं देवा * साधुन्ह सन्त करवावहिं सेवा

दुष्ट, चोर, जुआरी बहुत बढ़ गये, जो पराये धन और पराई स्त्री पर मन चलाते थे । माता-पिता और देवताओं को नहीं मानते थे साधुओं से सेवा करवाते थे ।

जिन्ह के यह आचरन्ह भवानी * ते जानेहु निसिचर सब प्रानी
अतिसय देखि धर्म कै हानी * परम सभीत धरा अकुलानी

(शिवजी कहते हैं–) हे भवानी ! जिनके ऐसे आचरण हों, उन सब प्राणियों को राक्षस जानों । इस प्रकार धर्म की बहुत हानि देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत होकर घबड़ाई ।

गिरिसरि सिन्धु भार नहिं मोही * जस मोहि गरुअ एक परद्रोही
सकल धर्म देखइ बिपरीता * कहि न सकइ रावन भयभीता

पर्वत, नदी और समुद्र का बोझ मुझे इतना नहीं सताता, जितना कि एक परद्रोही का बोझ । पृथ्वी सब धर्मों को विपरीत देखती, किंतु रावण के डर से कुछ भी नहीं कह सकती थी ।

धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी * गई तहाँ जहाँ सुर मुनि झारी
निज संताप सुनाएसि रोई * काहू तें कछु काज न होई

तब गौ का रूप धर कर बेचारी पृथ्वी वहाँ गई-जहाँ सब देवता और मुनि थे, उन्हें अपना दुःख रोकर सुनाया, परन्तु किसी से कुछ काम न हुआ ।

छन्द–सुर मुनि गन्धर्बा मिलि करि सर्बागे बिरंचि के लोका ।

संग गो तनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ।।
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर न कछु बसाई ।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ।।

तब देवता, मुनि, गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्म-लोक को गये और साथ में गौ रूप धारण करने वाली भय और शोक से व्याकुल बेचारी भूमि भी थी । ब्रह्माजी ने सब जान लिया और मन में अनुमान किया कि मेरा कुछ वश नहीं चलेगा । तब (पृथ्वी से बोले-) जिसकी तुम दासी हो, वही अविनासी भगवान हमारे सहायक हैं ।

सो०-धरनि धरहि मन धीर, कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।
जानत जन की पीर, प्रभु भञ्जहि दारुन बिपति ।।१८४।।

ब्रह्माजी बोले-हे पृथ्वी मन में धीरज धरो और श्रीहरि के चरणों का स्मरण करो । प्रभु अपने भक्तों की पीड़ा को जानते हैं, वही इस कठिन विपत्ति को दूर करेंगे ।

बैठे सुर सब करहिं बिचारा * कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई * कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई

तब सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पावें और पुकार करें कोई बैकुण्ठ-लोक में जाने की कहते, कोई कहते कि वह प्रभु क्षीर सागर में बसते हैं ।

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती * प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ * अवसर पाइ वचन एक कहेऊँ

जिनके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु सदा उसी प्रकार प्रकट होते हैं । हे पार्वती ! उस समाज में मैं भी था, मैंने अवसर पाकर कहा-

हरि व्यापक सर्बत्र समाना * प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना
देश काल दिशि विदिशहु माहीं * कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं

श्रीहरि हर जगह समान रूप से व्यापक हैं और प्रेम से प्रकट हो जाते हैं, यह मैं जानता हूँ । देश, काल, दिशा विदिशा में-कहो, वह स्थान कहाँ है, जहाँ पर प्रभू नहीं हैं ।

अग जगमय सब रहित बिरागी * प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी
मोर वचन सबके मन माना * साधु साधु करि ब्रह्म बखाना

सर्वज्ञ व्यापक, निर्लिप्त, विरक्त प्रभु-प्रेम से अग्नि के समान प्रकट होते हैं । मेरा यह कथन सबके मन को प्रिय लगा और ब्रह्मा ने साधु-साधु कहकर बढ़ाई की ।

दोहा-सुनि बिरंचि मन हरष तनु, पुलकि नयन बह नीर ।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मति धीर ।।१८५।।

यह सुनकर ब्रह्मा मन में बहुत प्रसन्न हुए और देह में रोमावली खड़ी होगई, नेत्रों से आनंद के आँसू बहने लगे । धीर-बुद्धि वाले ब्रह्माजी हाथ जोड़कर सावधान हो स्तुति करने लगे ।

छन्द—जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई ॥

हे देवताओं के स्वामी ! हे भक्तों को सुख देने वाले ! शरणागतों के पालन करने वाले भगवान ! आपकी जय हो ! हे गौ, ब्राह्मणों के हितकारी, असुरों के बैरी और लक्ष्मीजी के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो । हे देवताओं तथा पृथ्वी की रक्षा करने वाले ! आपकी लीला अनोखी है, जिसका भेद कोई नहीं जानता । ऐसे स्वभाव से ही कृपालु और दीन-दयालु प्रभु हमारे ऊपर कृपा करो ।

जय जय अबिनासी सब घटवासी व्यापक परमानंदा ।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकंदा ॥
जेहि लगि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिवृन्दा ।
निसिबासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥

हे अविनाशी, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, परमानन्द-स्वरूप, अजेय, इन्द्रियों से परे, पवित्र चरित्र, माया-रहित भगवान ! आपकी जय हो । वैराग्यवान् मुनिगण अत्यन्तप्रीति के साथ रात-दिन जिनका ध्यान करते हैं, ऐसे सच्चिदानन्द की जय हो ।

जेंहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भवभय भञ्जन मुनिमन रञ्जन गञ्जन बिपति बरूथा ।
मन बच क्रम बानी छाँड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥

जिसने बिना किसी की सहायता से तीनों प्रकार की सृष्टि रची है, वे पाप-नाशक प्रभु हमारी सुधि लें, हम भक्ति और पूजा नहीं जानते । जो संसार के भयको नाश करने वाले, भक्त जनों के मन को आनन्द देने वाले और विपत्ति के समूह को नष्ट करने वाले हैं । मन, वचन, कर्म से चतुराई की वाणी को छोड़कर हम सब देवता-गण उसकी शरण में आये हैं ।

सारद श्रुतिसेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहि जाना ।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव वारिधि मन्दिर सब बिधि सुन्दर गुनमंदिर सुख पुंजा ।
मुनि सिद्धि सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥

सरस्वती, वेद, शेष, सब ऋषियों आदि ने भी जिसको नहीं जाना, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकार कर कहते हैं, वे श्रीभगवान हम पर दया करें । आप संसार रूपी समुद्र के मथने को

मन्दराचल-रूप, सब प्रकार से सुन्दर, गुणों के मन्दिर और सुख के समूह हैं। हे नाथ ! मुनि, सिद्ध और देवता बहुत ही भयातुर होकर आपके चरणारविन्दों को प्रणाम करते हैं।

दोहा—जानि सभय सुर भूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गम्भीर भइ, हरनि शोक सन्देह ॥१८६॥

देवताओं और भूमि को भयभीत जानकर तथा स्नेह-पूर्ण वचनों को सुनकर शोक और सन्देह को हरने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा * तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेषा
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा * लेहउँ दिनकर बंश उदारा

हे मुनि, सिद्ध और इन्द्रादि देवताओ ! डरो मत, मैं तुम्हारे हित के लिए मनुष्य रूप धारण करूंगा। मैं उदार सूर्य वंश में अपने अंशों सहित मनुष्य अवतार लूंगा।

कश्यप अदिति महातप कीन्हा * तिन्ह कहुँ मैं पूरब वर दीन्हा
ते दशरथ कौसल्या रूपा * कौसलपुरी प्रगट नरभूपा

कश्यप और अदिति ने महान् तप किया था, सो मैं उनको पहिले ही एक वरदान दे चुका हूं। वे अयोध्यापुरी में राजा दशरथ और रानी कौशल्या के रूप में प्रकट हुए हैं।

तिन्ह कें घर अवतरिहउँ जाई * रघुकुल तिलक सु चारिउ भाई
नारद वचन सत्य सब करिहउँ * परम शक्ति समेत अवतरिहउँ

उनके घर जाकर रघुवंश में श्रेष्ठ हम चारों भाई अवतार लेंगे और नारदजी के सब वचनों को मैं सत्य करूंगा तथा अपनी परम-शक्ति के सहित अवतार लूंगा।

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई * निर्भय होहु देव समुदाई
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना * तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना

मैं पृथ्वी का सम्पूर्ण भार हरूंगा, अतः हे देवताओ ! तुम सब निर्भय रहो। आकाश-वाणी सुनकर सब देवता तुरन्त लौट आये और उनका हृदय शीतल होगया।

तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा * अभय भई भरोस जियँ आवा

तब ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया, तो वह भी निडर हुई और जी में भरोसा आया।

दोहा—निज लोकहि विरंचि गे, देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरनि महि, हरिपद सेवहु जाइ ॥१८७॥

देवताओं को यह कहकर कि तुम बानर-शरीर धारण कर पृथ्वी पर—जाकर श्रीहरि के चरणों की सेवा करो, ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये।

गए देव सब निज निज धामा * भूमि सहित मन कहुँ विश्रामा
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा * हरषे देव बिलम्ब न कीन्हा

भूमि सहित सब देवता मनमें शांति पाकर अपने २ स्थान को गये और ब्रह्माजीने जो

कुछ आज्ञा दी, देवताओं ने प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र ही उनका पालन किया।

बनचर देह धरी छित माहीं * अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा * हरिमारग चितवहिं मति धीरा

उन्होंने पृथ्वी पर बानर शरीर धारण किया, उनमें अपार बल और प्रताप था। पर्वत वृक्ष और नख ही उनके अस्त्र थे, वे धीर-बुद्धि श्रीहरि भगवान के अवतार की बाट देखने लगे।

गिर कानन जहँ तहँ भरि पूरी * रहे निजनिज अनीक रुचिरूरी
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा * अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा

ये सब बानर पर्वतों और वनों में भरपूर होकर अपने झुण्डों की टोली बनाकर रहने लगे। यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा, अब वह चरित्र सुनो—जो बीच में ही रहने दिया था।

अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ * वेद विदित तेहि दशरथ नाऊ
धरम धुरन्धर गुननिधि ग्यानी * हृदयँ भगति मति सारङ्गपानी

अयोध्यापुरी के रघुवंश-भूषण राजा दशरथ जो वेदों में प्रसिद्ध हैं। जो धर्म-धुरन्धर, गुण-निधान तथा ज्ञानवान थे, उनके हृदय में शारङ्ग मणि भगवान की पूर्ण भक्ति थी और उनकी बुद्धि उसी में लगी रहती थी।

दोहा—कौशल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि पद कमल विनीत ॥१८८॥

कौशल्यादि प्रिय रानियाँ सब पवित्र आचरण वाली थीं, पति की आज्ञा में तत्पर तथा श्रीहरि के चरणों में जिनका विनीत-प्रेम था।

एक बार भूपति मन माहीं * भैं गलानि मोरै सुत नाहीं
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला * चरनलागिकर विनय विसाला

एक बार राजा दशरथ के मन में ग्लानि हुई कि मेरे कोई पुत्र नहीं है। तब वह उसी समय गुरु के घर गये और चरणों में प्रणाम कर बहुत विनती की तथा—

निजदुखसुखसब गुरहि सुनायउ * कहि वसिष्ठ बहुविधि समुझायउ
धरहु धीर होइहि सुत चारी * त्रिभुवन विदित भगत भयहारी

अपना सब दुःख-सुख गुरु को सुनाया, तब गुरु वशिष्ठजी ने राजा को समझाकर कहा—हे राजन्! धैर्य धारण करो, तुम्हारे त्रिलोकी में प्रसिद्ध, भक्त-भयहारी चार पुत्र होंगे।

शृंङ्गी ऋषिहि वशिष्ठ बोलावा * पुत्र काम शुभ जग्य करावा
भगति सहित मुनि आहुत दीन्हें * प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें

तब वशिष्ठजी ने शृङ्गी-ऋषि को बुलाकर कामना के निमित्त पुत्रेष्ठि-यज्ञ करवाया। भक्ति के साथ जब मुनियों ने आहुतियाँ दीं, तब हाथ में चरु (खीर) लिए हुए अग्निदेव प्रकट हुए।

जो वसिष्ठ कछु हृदयँ विचारा * सकल काजु भा सिद्धि तुम्हारा
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई * जथा जोग जेहि भाग बनाई

और बोले—जो कुछ वशिष्ठजी ने हृदय में विचार किया था, वह तुम्हारा कार्य सिद्ध होगया। हे राजन्! यह खीर लेजाकर यथा-योग्य भाग करके रानियों को बांट दो।

दोहा—तब अदृश्य पावक भए, सकल सभहिं समुझाइ।
परमानन्द मगन नृप, हरष न हृदयँ समाइ ॥१८९॥

तब सम्पूर्ण सभा को समझाकर अग्निदेव अन्तर्ध्यान हो गये। महाराज परमानन्द में मग्न हो गये, उनके हृदय में हर्ष नहीं समाता था।

तबहि राम प्रिय नारि बोलाईं ※ कौशल्यादि तहँ चलि आईं
धर्म भाग कौसल्यादि दीन्हा ※ उभय भाग आधे करि कीन्हा

उसी समय राजा ने प्रिय रानियों को बुलाया, तब कौशल्यादि सब रानियां वहां चली आईं, तब खीर का आधा भाग कौशल्या को दिया और आधे भाग के दो भाग किये।

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ ※ रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ
कौसल्या कैकेई हाथ धरि ※ दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि

उनमें से एक भाग कैकयी को दिया, शेष भाग के फिर दो भाग किये, उनको कौशिल्या और कैकई के हाथ पर धरकर, प्रसन्न मन से सुमित्रा को दे दिया।

एहि विधि गर्भसहित सब नारी ※ भईं हृदयँ हर्षित सुख भारी
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए ※ सकल लोक सुख सम्पति छाए

इस प्रकार सब रानियां गर्भवती हुईं, हृदय में प्रसन्नता और बड़ा सुख हुआ। जिस दिन से श्रीहरि गर्भ में आये, तब से सब लोकों में सुख और सम्पत्ति छा गई।

मन्दिर महँ सब राजहिं रानी ※ सोभा सील तेज की खानी
सुखजुत कछुक कालि चलि गयऊ ※ जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ

शोभा, शील और तेज की खान सब रानियां महल में सुशोभित थीं। सुख से कुछ समय व्यतीत हुआ, फिर जब प्रभु प्रकट होने वाले थे, वह अवसर आ पहुंचा।

दोहा—जोग लगुन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत, राम जनम सुख मूल ॥१९०॥

जोग, लग्न, ग्रह, बार और तिथि—सभी अनुकूल हो गये। चर-अचर सभी जीव बहुत ही आनन्दित हुए, क्योंकि श्रीरामजी का जन्म ही समस्त सुखों की जड़ है।

नौमी तिथि मधु मास पुनीता ※ सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता
मध्य दिवस अति सीत न घामा ※ पावन काल लोक बिश्रामा

नौमी तिथि, पवित्र चैत्र-मास, शुक्ल-पक्ष, भगवान का प्रिय अभिजित नक्षत्र मध्यान्ह-काल, न बहुत शीत, न बहुत धूप, संसार को शान्ती देने वाला पवित्र समय था।

सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ ※ हर्षित सुर सन्तन्ह मन चाऊ

वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा * स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा

शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन बहने लगी, देवता और साधु-जन प्रसन्नचित्त एवं उत्साह युक्त थे। वन फूल उठे, पर्वतों में मणियों की खान प्रकट होगई तथा सब नदियों से अमृत के समान धारा बहने लगीं।

सो अवसर विरंचि जब जाना * चले सकल सुर साज विमाना
गगनि विमल संकुल सुर जूथा * गावहिं गुन गन्धर्व बरूथा

वह समय जब ब्रह्माजी ने जाना, तो सब देवता अपने विमान सजाकर चले और निर्मल आकाश में जाकर देवता और गन्धर्व हरि-गुण गान करने लगे।

वरषहिं सुमन सुअंजलि साजी * गहिगहि गगन दुन्दुभी बाजी
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा * बहुविधिलावहिं निज निजसेवा

सुन्दर अंजलियों में फूल भर-भरकर बरसने लगे, आकाश में धमाधम नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने और बहुत प्रकार से अपनी २ भेंट करने लगे।

दोहा–सुर समूह विनती करि, पहुँचे निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम ॥१९१॥

देवताओं के समूह विनती कर अपने २ लोकों में जा पहुँचे, तब समस्त लोकों को सुख देने वाले सर्वव्यापी भगवान प्रकट हुए।

छन्द–भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन विसाला शोभासिंधु खरारी॥

कृपालु, दीनदयालु कौशल्या के हितकारी प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरने वाले, अद्भुत स्वरूप को देखकर माता प्रसन्न हुई। सुन्दर नेत्र, मेघ के समान सुन्दर शरीर, चारों हाथों में अपने आयुध लिये, आभूषण पहिने, गले में वन-माला धारण किये, विशाल नेत्र, शोभा के समुद्र, खर राक्षस के शत्रु 'श्रीहरि' प्रकट हुए।

कह दुइ करजोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता।
माया गुन ग्याना तीत असाना बेद पुरान भनन्ता॥
करुना सुख सागर सब गुनआगर जेहिं गावहिं श्रुति सन्ता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकन्ता॥

तब दोनों हाथ जोड़कर माता ने कहा–हे अनन्त! आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ? वेद और पुराण आपको–माया, गुण और ज्ञान से अतीत कहते हैं। ऐसे जिनको वेद और साधुजन गाते हैं, जो माया और गुणों के समुद्र हैं, वही गुणों के स्थान, लक्ष्मीपति, भक्त-वत्सल प्रभु मेरे हित के लिए प्रकट हुए हैं।

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहैं ।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहैं ।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहैं ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहिं प्रकार सुत प्रेम लहैं ।।

माया से रचे हुए अनेकों ब्रह्माण्ड आपके रोम २ में हैं, ऐसा वे कहते हैं। उन्हीं आपने मेरे गर्भ में वास किया—यह हास्यप्रद बात सुनकर धीर-पुरुषों की बुद्धि स्थिर नहीं रहती। जब माता को ज्ञान हुआ, तब भगवान् मुस्करा गये और पूर्व-जन्म की कथायें कहकर माता को समझा दिया—जिससे पुत्र स्नेह प्राप्त हो।

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै शिशु लीला अति प्रिय शीला यह सुख परम अनूपा ।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ।।

तब माता की बुद्धि पलट गई और बोली—हे तात ! यह रूप त्याग कर, अत्यन्त प्रिय बाल-लीला कीजिये, उसका सुख बहुत ही अनुपम है। यह बचन सुनकर देवताओं के स्वामी चतुर श्रीहरि बालक रूप होकर रोने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं जो मनुष्य इस चरित्र को गावेंगे-वे मोक्ष पावेंगे और संसार रूपी कुए में नहीं गिरेंगे।

दोहा—विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार ।।१९२।।

ब्राह्मण, गौ, देवता तथा सन्त-जनों के हित के लिए अपनी इच्छा से शरीर धारण करने वाले और माया, गुण व इन्द्रियों से परे भगवान ने मनुष्य रूप में अवतार लिया।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी * संभ्रम चलि आईं सब रानी
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी * आनन्द मगन सकल पुरवासी

बालक के रोने की बहुत ही प्यारी वाणी सुनकर सब रानियाँ वहाँ आईं और प्रसन्न होकर दासियाँ जहाँ-तहाँ दौड़ गईं तथा पुरवासी आनन्द में मग्न हो गये।

दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना * मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना
परम प्रेम मन पुलक शरीरा * चाहत उठन करन मति धीरा

पुत्र का जन्म कानों से सुनकर महाराज दशरथ मानो ब्रह्मानन्द में समा गये। मन में अधिक प्रेम के कारण शरीर रोमांचित हो गया, धीर-बुद्धि राजा उठना चाहते हैं।

जाकर नाम सुनत शुभ होई * मोरे गृह आवा प्रभु सोई
परमानन्द पूरि मन राजा * कहा बोलाइ बजावहु बाजा

जिसका नाम सुनते ही कल्याण होता है वही प्रभु मेरे घर आये हैं। यह सोच राजा

का मन परम आनन्द से भर गया और बाजे वालों को बुलाकर कहा कि बाजे—बजाओ।

गुरु वशिष्ठ कहँ गयउ हँकारा * आए द्विजनु सहित नृप द्वारा
अनुपम बालक देखेन्हि जाई * रूप रासि गुन कहि न सिराई

गुरु वशिष्ठजी को बुलाया गया, तो वे ब्राह्मणों सहित राजा के द्वार पर आये। अनुपम बालकों को जाकर देखा, जो रूप की राशि हैं, और जिनके गुण कहने में नहीं आते।

दोहा—तब नन्दीमुख श्राद्ध करि, जाति कर्म सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसनि मणि, नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह॥१९३॥

तब नन्दी-मुख श्राद्ध करके राजा ने सभी जाति-कर्म किया तथा सोना, गौ, वस्त्र और मणि आदि ब्राह्मणों को दान दिया।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा * कहि न जाइ जेहिं भाँति बनावा
सुमन वृष्टि आकाश तें होई * ब्रह्मानन्द मगन सब कोई

नगर—ध्वजा, पताका, बन्दनवार आदि से सजाया, वह सजावट कहते नहीं बनती। आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी, सब कोई ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये।

वृन्द वृन्द मिलि चली सुहाई * सहज सिंगार किएँ उठि धाई
कनक कलस मङ्गल भरि थारा * गावत पैठहिं भूप दुआरा

झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ मिलकर साधारण शृङ्गार किये सहज ही उठ दौड़ीं। सोने के थाल और मङ्गल-कलशों को माङ्गलिक वस्तुओं से भरकर स्त्रियाँ राजद्वार के भीतर गईं।

करि आरति नौछावरि करहीं * बार बार सिसु चरनन्हि परहीं
मागध सूत बन्दिगन गायक * पावन गुन गावहिं रघुनायक

आरती करके न्योछावर करतीं और बारम्बार बालकों के चरणों में गिरती थीं। मागध, सूत, वन्दीजन आदि गायक—श्रीरघुनाथजी के गुणगान करने लगे।

सर्बस दान दीन्ह सब काहू * जेहिं पावा राखा नहिं ताहू
मृगमद चन्दन कुमकुम कीचा * मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा

राजा ने सबको सर्वस्व दान दिया और जिसने जो पाया, उसने भी नहीं रक्खा-(दान कर दिया)। कस्तूरी, चन्दन और केशर से नगर ऐसा सींचा कि सब गलियों में कीच होगई।

दोहा—गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रकटे सुषुमा कन्द।
हरषवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नर बृन्द॥१९४॥

घर-घर आनन्द-बधाई बजने लगीं—सुखधाम श्रीरामजी हुए, नगर के सब स्त्री-पुरुषों के झुण्ड जहाँ-तहाँ बहुत प्रसन्न थे।

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ * सुन्दर सुत जन्मत भैं ओऊ
वह सुख सम्पति समय समाजा * कहि न सकहिं सारद अहिराजा

फिर कैकई और सुमित्रा ने दो सुन्दर पुत्रों को जन्म दिये। उस सुख, सम्पत्ति समय और समाज को सरस्वतीजी और शेषजी भी नहीं कह सकते।

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती * प्रभुहि मिलन आई जनु राती
देखि भानु जनि मन सकुचानी * तदपि बनी संध्या अनुमानी

अयोध्यापुरी इस प्रकार सुशोभित थी, मानो प्रभुसे मिलने के लिये रात्रि आई हो, परन्तु दिन होने से सूर्य को देखकर लज्जित हो गई। इसके संकोच से सन्ध्या का अनुमान हो रहा था।

अगर धूप बहु जनु अँधियारी * उड़ई अबीर मनहुँ अरुनारी
मन्दिर मनि समूह जनु तारा * नृप गृह कलस सो इन्दु उदारा

अगर और धूप का धुआं ही मानो अन्धकार स्वरूप था और अबीर सन्ध्या की अरुणता थी, भवन की मणियां ही मानो तारे और राज-भवन का स्वर्ण-कलश ही मानो चन्द्रमा था।

भवन वेद धुनि अति मृदु बानी * जनु खग मुखर समयँ जनु सानी
कौतुक देखि पतङ्ग भुलाना * एक मास तेइँ जात न जाना

मन्दिर में मधुर स्वर जो वेद-ध्वनि हो रही थी, मानो संध्या के समय पक्षियों का शब्द था। यह कौतुक देख सूर्यदेव अपनी चाल भूल गये, एक मास बीत गया, परन्तु उन्होंने नहीं जाना।

दोहा—मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कवन विधि होइ ॥१९५॥

महीने भर का एक दिन हो गया, यह भेद किसी ने नहीं जाना। क्योंकि जब सूर्य-नारायण ही कौतूहल वश रथ सहित रुके रहे, तो रात्रि किस प्रकार होती?

यह रहस्य काहू नहिं जाना * दिनमनि चले करत गुनगाना
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा * चले भवन बरनत निज भागा

इस रहस्य को किसी ने नहीं जाना, तब सूर्यनारायण स्वयं श्रीरामजी का गुणगान करते हुए चले। इस महोत्सव को देखकर देवता, मुनि, नाग अपने-अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने-अपने स्थानों को चले गये।

औरउ एक कहउँ निज चोरी * सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी
कागभुशुण्डि सङ्ग हम दोऊ * मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ

हे पार्वती! तुम्हारी बुद्धि बहुत दृढ़ है। अतः एक और भी अपनी चोरी कहता हूँ—काकभुशुण्डिजी और मैं दोनों एक साथ मनुष्य-रूप में वहाँ थे, पर हमें कोई जानता नहीं था।

परमानन्द प्रेमसुख फूले * बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले
यह शुभ चरित जानि पै सोई * कृपा राम के जापर होई

परम आनन्द स्वरूप श्रीरामजी के स्नेह में फूले हुए और मन में मग्न होने के कारण भूले हुए गलियों में घूम रहे थे। परन्तु इस उत्तम चरित्र को वही जान सकता है—जिस पर श्रीरामजी की कृपा हो।

तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा * दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा
गज रथ तुरँग हेम गौ हीरा * दीन्हे नृप नाना विधि चीरा

उस समय जो जिस प्रकार आया व जिसको जो भला लगा—राजा ने वही दिया। हाथी

रथ, घोड़े, सोना, गौ, हीरा और अनेक प्रकार के वस्त्र राजा ने याचकों को दिए।

दोहा—मन सन्तोषे सबन्हि के, जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिरजीवहुँ, तुलसीदास के ईस ॥१९६॥

राजा ने सबके मन सन्तुष्ट किये, तब सभी जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देने लगे कि सब राजकुमार चिरञ्जीव रहें, जो तुलसीदास के स्वामी हैं।

कछुक दिवस बीते एहि भाँती * जात न जानिअ दिन अरु राती
नामकरन कर अवसर जानी * भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी

कुछ दिन इस प्रकार बीत गये, दिन और रात जाते हुए नहीं जान पड़ते थे। तब नामकरण का समय जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि वशिष्ठजी को बुलाया।

करि पूजा भूपति अस भाषा * धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा
इन्ह के नाम अनेक अनूपा * मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा

राजा ने मुनि की पूजा करके कहा—हे मुनिनाथ! जो आपने विचार रक्खें हों, वह नाम इन बालकों के रखिये। मुनि ने कहा—हे राजन्! वैसे तो इन बालको के नाम अनेक और उपमा रहित हैं, तो भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, सुनो—

जो आनन्द सिंधु सुख रासी * सीकर तें त्रैलोक सुपासी
जो सुखधाम राम अस नामा * अखिल लोक दायक बिश्रामा

जो आनन्द के समूह, सुख की राशि हैं,जिनकी थोड़ी ही कृपा से तीनों लोक सुखी होजाते हैं, जो सुख के धाम और सब लोकों को विश्राम देने वाले हैं, उनका 'राम' ऐसा नाम है।

बिस्व भरन पोषन कर जोई * ताकर नाम भरत अस होई
जाके सुमिरन तें रिपु नासा * नाम सत्रुहन बेद प्रकासा

जो जगत् का पालन पोषण करने वाले है, उनका नाम 'भरत' ऐसा नाम होगा। जिसके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश हो जाता है, उनका 'शत्रुघ्न' नाम वेदों में प्रकट है।

दोहा—लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहिं राखेऊ, लछिमन नाम उदार ॥१९७॥

जो अच्छे लक्षणों के धाम, राम के प्यारे और जगत् के आधार हैं, उनका नाम गुरु वशिष्ठ ने श्रेष्ठ नाम 'लक्ष्मण' रक्खा।

धरे नाम गुरु हृदयँ बिचारी * बेद तत्व नृप तव सुत चारी
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना * बाल केलि रस तेहिं सुख माना

गुरुजी ने हृदय में विचारकर नाम रक्खे और कहा-हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेदों के तत्व मुनियों के सर्वस्व और शिवजी के प्राण हैं, उन्होंने बाल-लीला के विनोद को ही सुख माना है।

बारेहि ते निज हित पति जानी * लछिमन राम चरन रति मानी
भरत सत्रुहन दूनउ भाई * प्रभु सेवक जसि प्रीति बढ़ाई

बचपन से श्रीरामजी को अपना हितकारी जान लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के चरणों में प्रीति की। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने जैसे स्वामी-सेवक में प्रीति होती है—ऐसी प्रीति बढ़ाई।

श्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी * निरखहिं छबि जननी तृन तोरी
चारिउ सील रूप गुन धामा * तदपि अधिक सुखसागर रामा

सांवले और गोरे रङ्ग की सुन्दर युगल जोड़ी की शोभा को मातायें तिनका तोड़ कर देखती थीं, (जिससे नजर न लग जाय)। चारों भाई शील, रूप व गुणों के धाम थे, तो भी—श्रीरामजी सबसे अधिक सुख के समुद्र थे।

हृदयँ अनुग्रह इन्दु प्रकाशा * सूचत किरन मनोहर हासा
कबहुँ उछङ्ग कबहुँ वर पलना * मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना

रामजी के हृदय में कृपारूपी चंद्रमा का प्रकाश था, जो मनको हरने वाली हंसरूपी किरणों से प्रगट होता था। कभी गोदमें व कभी पालनेमें प्यारे-लाल कहकर सब मातायें प्यार करती थीं।

दोहा—व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत विनोद।
सो अस प्रेम भगति बस, कौशल्या कें गोद ॥१९८॥

जो सर्व व्यापक, ब्रह्म, माया रहित, निर्गुण, हर्ष-शोक से रहित हैं वही प्रभु प्रेम और भक्ति के वश कौशल्याजी की गोद में विहार कर रहे हैं।

काम कोटि छबि स्याम शरीरा * नील कन्ज बारिद गम्भीरा
अरुन चरन पंकज नख जोती * कमल दलन्हि बैंठे जनु मोती

करोड़ों कामदेवों की शोभा वाला, नील-कमल व गम्भीर मेघ के समान श्रीरामजी का साँवला शरीर है। लाल कमल के समान चरणों के नखों की शोभा है, मानो लाल कमल के पत्तों पर मोती आ बैठे हैं।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे * नूपुर ध्वनि सुनि मुनि मन मोहे
कटि किंकनी उदर त्रय रेखा * नाभि गँभीर जानि जेहिं देखा

तालाबों में वज्र, ध्वजा और अंकुश आदि रेखायें शोभित हैं और चरणों के आभूषणों की ध्वनि मुनियों के भी मन को मोहती है। कमर में करधनी, उदर पर तीन रेखायें हैं और गम्भीर नाभि की शोभा को वही जान सकता है, जिसने देखी हो।

भुज विसाल भूषन जुत भूरी * हियँ हरि नख अति सोभा रूरी
उर मनिहार पदिक की शोभा * विप्र चरन देखत मन लोभा

आभूषणों से युक्त विशाल भुजायें एवं हृदय पर बहुतही सुन्दर अघनखाशोभा को बढ़ारहाहै। हृदयपर मणियोंकाहार है, जिसके बीचमें पदिक और भृगुचरण की शोभाको देख मन मोहता है।

कम्बु कण्ठ अति चिबुक सुहाई * आनन अमित मदन छबि छाई
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे * नासा तिलक को बरनै पारे

शंख के समान कण्ठ और सुन्दर ठोढ़ी है, मुख पर असंख्य कामदेवों की छवि छाई है। दो-दो दाँत और लाल होठों तथा नासिका एवं तिलक की उपमा कौन दे सकता है।

सुन्दर श्रवन सुचारु कपोला * अति प्रिय मधुर तोतरे बोला
चिक्कन कच कुँचित गभुआरे * बहु प्रकार रचि मातु सँवारे

सुन्दर कान, बहुत ही सुन्दर कपोल तथा अत्यन्त प्रिय व मधुर तोतली बोली है। जिसके घुंघराले और गभुआरे (गर्भ के जन्मे हुए) बालों को माता ने बहुत प्रकार सँभाला है।

पीत झँगुलिया तनु पहिराई * जानि पानि विचरनि मोहि भाई
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुतिसेषा * सो जानहि सपनेहुँ जेहि देखा

शरीर में पीली झँगुलिया पहिनाई है और घुटनों व हाथों से चलते हुए मुझे सुहावने लगते थे। उस रूप की शोभा को वेद और शेषजी भी नहीं कह सकते, वही जानते हैं– जिन्होंने स्वप्न में कभी उसे देखा हो।

दोहा–सुख सन्दोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत।
दम्पति परम प्रेम बस, करि सिसु चरित पुनीत ॥१९९॥

जो सुख के समूह, मोह रहित, ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे हैं वे दम्पत्ति-दशरथ और कौशिल्या के अत्यन्त प्रेम के वश हो बाल-लीला करते हैं।

एहिविधि राम जगत पितु माता * कौसलपुर बासिन्ह सुखदाता
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी * तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी

इस प्रकार जगत् के माता पिता श्रीरामचन्द्रजी-अयोध्यावासियों को सुख देने लगे। हे पार्वती ! जिन्होंने श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम किया, उनकी गति प्रत्यक्ष प्रगट है।

रघुपति विमुख जतन कर कोरी * कवन सकइ भव बन्धन छोरी
जीव चराचर बस करि राखे * सो माया प्रभु सौं भय भाखे

श्रीरघुनाथजी से विमुख रहकर करोड़ों उपाय करके भी संसार के बन्धन को कौन छुड़ा सकता है ? चराचर के जीवों को अपने वश में करने वाली माया भी प्रभू से डरती है।

भृकुटि विलास नचाइव ताही * अस प्रभु छाँड़ि भजिअ कहु काही
मन क्रम वचन छाँड़ि चतुराई * भजत कृपा करिहहिं रघुराई

जो प्रभु भृकुटी के विलास से उस माया को नचाते हैं,ऐसे प्रभु को छोड़ किसका भजन करना चाहिए ? मन, कर्म, वचन से चतुराई छोड़कर, भजन करने से वे श्रीरघुनाथजी कृपा करेंगे।

एहिविधि सिसुबिनोद प्रभु कीन्हा * सकल नगर बासिन्ह सुख दीन्हा
लै उछङ्ग कबहुँक हलरावै * कबहूँ पालने घालि झुलावै

इस प्रकार प्रभु ने बाल-लीला करके सब अयोध्या-वासियों को सुख दिया। कौशिल्याजी कभी उन्हें दुलारती हैं और कभी पालने में झुलाती हैं।

दोहा–प्रेम मगन कौशल्या, निसदिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान ॥२००॥

प्रेम में मग्न कौशिल्याजी रात-दिन बीतते हुए नहीं जान पाती थीं। पुत्र के स्नेह वश

मातायें उनके बाल-चरित्रों का गान करती थीं।

एक ब्रार जननी अन्हवाए * करि सिंगार पलना पौढ़ाए
निज कुल इष्टदेव भगवाना * पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना

एक बार माता ने श्रीरामजी को स्नान कराया और शृङ्गार करके पालने में लिटा दिया फिर आपने कुल के इष्टदेव भगवान की पूजा के निमित्त स्नान किया।

करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा * आपु गई जहँ पाँक बनावा
बहुरि मातु तहँवा चलि आई * भोजन करत देख सुत जाई

पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया, फिर आप रसोई घर में गई, फिर माता वहां लौटकर आई तो अपने पुत्र को भोजन करते देखा।

गै जननी सिसु पहिं भयभीता * देखा बाल तहाँ पुनि सूता
बहुरि आइ देखा सुत सोई * हृदयँ कम्प मन धीर न होई

डरती हुई माता बालक के पास आई तो वहां बालक को सोते हुए देखा। फिर आकर देखा तो वही बालक (श्रीरामजी) भोजन कर रहा है। तब हृदय कांपने लगा, मन में धीरज न हुआ।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा * मति भ्रममोर कि आन विसेषा
देखि राम जननी अकुलानी * प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी

यहां और वहां दो बालक दिखाई देते हैं, यह मेरा मति भ्रम है या और कोई विशेष कारण है ? प्रभु श्रीरामजी-माता कौशिल्या को घबड़ाई देखकर मधुर मुस्कान से हँस दिये।

दोहा—देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागेउ, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥२०१॥

माता को अपना अद्भुत और अखण्ड (विराट) स्वरूप दिखलाया जिसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड बसे हुए थे।

अगनित रबिससिसिवचतुरानन * बहुगिरि सरित सिंधु महि कानन
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ * सोउ देखा जो सुना न काऊ

अनगिनती-सूर्य, चंद्रमा, शिव, ब्रह्मा, अनेक पर्वत, नदी, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म गुण, ज्ञान और स्वरूप आदि देखे और वह भी देखा-जो किसी ने सुना भी नहीं था।

देखी माया सब बिधि गाढ़ी * अति सभीत जोरैं कर ठाढ़ी
देखा जीव नचावइ जाही * देखी भगति जो छोरइ ताही

सब प्रकार से बलवती माया को देखा, जो बहुत ही डरी हुई हाथ जोड़े खड़ी थी। जीव को देखा-जिसे माया नचाती है, भक्ति को देखा—जो जीव को माया के फन्दे से छुड़ाती है।

तन पुलकित मुख बचन न आवा * नयन मूदि चरनन्हि सिर नावा
बिस्मयवन्त देखि महतारी * भए बहुरि सिसु रूप खरारी

कौशल्याजी का देह पुलकित होगया, मुखसे वचन नहीं आया, नेत्र बंद करके श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाया। माता को अचम्भे में देख श्रीरामजी फिर उसी बालक-रूप में होगये।

अस्तुति करि न जाइ भय माना * जगत पिता मैं सुत करि जाना
हरि जननी बहु विधि समुझाई * यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई

कौशिल्याजी से स्तुति नहीं की गई और भयभीत हो गई कि मैंने जगत के पिता को पुत्र करके जाना है। श्रीहरि ने माता को अनेक भांति से समझाया और कहा–हे माता! सुनो, इस चरित्र को किसी से नहीं कहना।

दोहा–बार बार कौशल्या, विनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहुँ न व्यापै, प्रभु मोहि माया तोरि ॥२०२॥

कौशिल्याजी बारम्बार हाथ जोड़कर विनती करने लगीं कि–हे प्रभु! मुझे तुम्हारी माया कभी न व्यापे।

बालचरित हरि बहुविधि कीन्हा * अति आनन्द दासन्ह कहँ दीन्हा
कछुक काल बीते सब भाई * बड़े भए परिजन सुखदाई

भगवान ने बहुत भांति से बाल-लीलायें की और भक्तों को बहुत ही आनन्दित किया। कुछ समय बीतने पर कुटुम्बियों को सुख देने वाले सब भाई बड़े हुए।

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई * विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई
परम मनोहर चरित अपारा * करत फिरत चारिउ सुकुमारा

तब गुरुजी ने आकर चूड़ाकरण-संस्कार किया ब्राह्मणोंने फिर बहुत-सी दक्षिणा पाई। बहुत ही मनोहर चारों भाई अपार चरित्र करते-फिरते हैं।

मन क्रम बचन अगोचर जोई * दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई
भोजन करत बोल जब राजा * नहिं आवत तजि बाल समाजा

जो प्रभु मन, कर्म वचन से अगोचर हैं, वही प्रभु दशरथजी के आंगन में बिहार करते हैं। जब भोजन करते समय राजा बुलाते हैं, तो बाल-मण्डली को छोड़कर नहीं आते।

कौशल्या जब बोलन जाई * ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई
निगम नेति सिव अन्त न पावा * ताहि धरैं जननी हठि धावा
धूसरि धूरि भरें तनु आए * भूपति विहँसि गोद बैठाए

जब कौशिल्यजी बुलाने जाती हैं, तो प्रभु ठुमकर कर भाग जाते हैं। वेदों ने जिसको 'नेति' (अनन्त) कहा है और शिवजी ने जिनका अन्त नहीं पाया, माता कौशल्या उन्हें दौड़कर हठपूर्वक पकड़ने दौड़ती हैं। वे देह में धूल लपेटे हुए आये और राजा ने हँसकर गोद में बैठा लिया।

दोहा–भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥२०३॥

श्रीरामजी चंचल चित्त से भोजन करते हैं, अवसर पाकर मुंह पर दही-भात लिपटाये किलकारी मारकर भाग जाते हैं।

बालचरित अति सरल सुहाए * सादर सेष सम्भु श्रुति गाए
जिन्हकर मन इन्ह सन नहिं राता * ते जन वंचित किए विधाता

अत्यन्त सरल सुहावने बाल-चरित्र-सरस्वती, शेषजी, शिवजी और वेदों ने सादर गाये हैं। जिनके मन इनमें नहीं रंगे, उन मनुष्यों को विधाता ने भाग्यहीन बनाया है।

भए कुमार जबहिं सब भ्राता * दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता
गुरु गृह पढ़न गए सब भाई * अल्प काल विद्या सब आई

जब सब भाई कुमार हुए, तब गुरु, पिता और माता ने जनेऊ कर दिया। सब भाई गुरु के घर पढ़ने गये, तो थोड़े समय में ही सब विद्यायें आ गईं।

जाकी सहज स्वाँस श्रुति चारी * सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी
विद्या विनय निपुन गुनसीला * खेलहिं खेल सकल नृप लीला

जिन प्रभु की स्वाभाविक श्वाँस ही चारों वेद हैं, वे प्रभु पढ़े—यह बड़े आश्चर्य की बात है। चारों भाई विद्या में निपुण, गुणवान राजाओं की लीला के सब खेल खेलते थे।

करतल बान धनुष अति सोहा * देखत रूप चराचर मोहा
जिन्ह बीथिन्ह विहरहिं सब भाई * थकित होहिं सब लोग लुगाई

हाथों में धनुष-बाण बहुत शोभा देते थे, वह रूप देखकर सब चराचर मोहित हो जाते थे। जिन गलियों में वे सब भाई खेलते थे, उन गलियों के सब स्त्री-पुरुष थकित हो जाते थे।

दोहा—कोसलपुर बासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ ते प्रिय लागत, सब कहुँ राम कृपाल ॥२०४॥

अयोध्यापुरी में रहने वाले पुरुष, स्त्री, बूढ़े और बालक—इन सबको कृपालु श्रीरामचन्द्रजी प्राणों से भी अधिक प्रिय लगते थे।

बन्धु सखा संग लेहिं बोलाई * वन मृगया नित खेलहिं जाई
पावन मृग मारहिं जियँ जानी * प्रतिदिन नृपहिं देखावहिं आनी

श्रीरामजी-भाइयों व इष्ट-मित्रोंको बुलाकर साथ लेकर वन में प्रतिदिन शिकार खेलने जाते थे, हृदयमें जिस हिरन को पवित्र समझते, उसे ही मारते और नित्य-प्रति लाकर राजाकोदिखाते थे।

जे मृग राम बान के मारे * ते तनु तजि सुरलोक सिधारे
अनुज सखा सँग भोजन करहीं * मातु पिता अग्या अनुसरहीं

जो हिरन श्रीरामजी के बाण से मारे जाते, वे शरीर त्यागकर स्वर्ग को जाते थे। छोटे भाई और मित्रों के साथ भोजन करते और माता-पिता की आज्ञानुसार चलते थे।

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा * करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा
बेद पुरान सुनहिं मन लाई * आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई

जिस तरह नगरवासी सुखी होते, कृपानिधान श्रीरामजी वही लीला करते। वेद-पुराण मन

लगाकर सुनते और छोटे भाइयों को समझाकर कहते ।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा * मातु पिता गुरु नावहिं माथा
आयसु माँगि करहिं पुर काजा * देखि चरित हरषइ मन राजा

नित्य प्रातःकाल उठकर श्रीरघुनाथजी माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाकर आज्ञा माँगकर नगर का राज्य-कार्य करते हैं । यह चरित्र देखकर राजा मन में मुदित होते हैं ।

दोहा—व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप ॥२०५॥

जो व्यापक, अकल, इच्छा रहित, अजन्मा, निर्गुण और जिनके न नाम है न रूप है, वही महान् भक्तों के लिये बहुत भाँति की लीलायें करते थे ।

यह सब चरित कहा मैं गाई * आगिल कथा सुनहु मन लाई
विश्वामित्र महामुनि ग्यानी * बसहिं विपिन सुभ आश्रम जानी

यह सब सुन्दर चरित्र मैंने वर्णन किया, अब आगे की कथा मन लगाकर सुनो । ज्ञानी विश्वामित्र मुनि वन में शुभ आश्रम जानकर रहते थे ।

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं * अति मारीच सुबाहुहि डरहीं
देखत जग्य निसाचर धावहिं * करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं

वहाँ मुनिजन-जप,यज्ञ, योग करते थे, किन्तु मारीच और सुबाहु से बहुत डरते थे । यज्ञ को देखते ही राक्षस दौड़ आते और ऐसा उपद्रव करते थे कि जिससे मुनि लोग दुःख पावें ।

गाधि तनय मन चिंता व्यापी * हरि विनु मरहिं न निसिचर पापी
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा * प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा

विश्वामित्र के मन में यह चिन्ता हुई कि श्रीहरि के बिना यह पापी राक्षस नहीं मरेंगे। तब मुनि ने मन में यह विचार किया कि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार लिया है ।

एहि मिस देखौं प्रभु पद जाई * करि विनती आनौं दोउ भाई
ग्यान विराग सकल गुन अयना * सो प्रभु मैं देखब भरि नयना

इस बहाने जाकर प्रभु के चरणों का दर्शन करूँ और विनती कर दोनों भाइयों को ले जाऊँ । जो प्रभु ज्ञान-वैराग्य और सब गुणों के धाम हैं, उन प्रभु को मैं अपने नेत्र भरकर देखूँगा ।

दोहा—बहु विधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार ।
करि मज्जन सरयू जल, गए भूप दरवार ॥२०६॥

इस प्रकार मनोरथ करते हुए जाने में देर नहीं लगी, फिर सरयू नदी के जल में स्नान कर राज-सभा में गये ।

मुनि आगमन सुना जब राजा * मिलन गयउ लै विप्र समाजा
करि दण्डवत मुनिहि सनमानी * निज आसन बैठारेहि आनी

मुनि का आगमन जब राजा ने सुना, तब वे ब्राह्मण-मण्डली को साथ लेकर मिलने गये। राजा ने मुनि को दण्डवत् करके आदर पूर्वक अपने आसन पर बैठाया।

चरन पखारि कीन्ह अति पूजा * मो सम आजु धन्य नहिं दूजा
बिबिध भाँति भोजन करवावा * मुनिवर हृदय हरष अति पावा

चरण धोकर भली-भाँति पूजा की और कहा—आज मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है। फिर अनेक प्रकार के भोजन करवाये, मुनिवर ने हृदय में अत्यन्त आनन्द पाया।

पुनि चरनन्हि मेले सुत चारी * राम देखि मुनि सुरति बिसारी
भए मगन देखत मुख शोभा * जनु चकोर पूरन ससि लोभा

राजा ने चारों पुत्रों को बुलाकर मुनि के चरणों में प्रणाम कराया, तो श्रीरामजी को देखकर मुनि ने देह की सुधि छोड़ दी। मुख की शोभा देखकर ऐसे मुग्ध हुए—जैसे चकोर-पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर लुभा जाता है।

तब मन हरष बचन कह राऊ * मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ
केहि कारन आगमन तुम्हारा * कहहु सो करत न लावउँ बारा

मनमें प्रसन्न होकर राजा ने यह वचन कहे—हे मुनि! मुझ पर ऐसी कृपा कभी नहीं की। आज किस कारण आपका आगमन हुआ, सो कहिये—मैं उसे करने में देर नहीं लगाऊँगा?

असुर समूह सतावहिं मोही * मैं जाचन आयउँ नृप तोही
अनुज समेत देहु रघुनाथा * निसिचर बध मैं होब सनाथा

विश्वामित्रजी बोले—हे राजन्! राक्षस मुझे सताते हैं, इसलिए मैं तुमसे यह माँगने आया हूँ कि भाई सहित श्रीरघुनाथजी को दे दो, मैं निशाचरों के मारे जाने से सनाथ हो जाऊँगा।

दोहा—देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस नृप तुम्ह कौं, इन्ह कहुँ अति कल्यान ॥२०७॥

हे राजन्! मन में प्रसन्न होकर मोह व अज्ञान को त्याग दो, इससे तुम्हारा तो धर्म तथा सुयश बढ़ेगा और इनका भी अत्यन्त कल्याण होगा।

सुनि राजा अति अप्रिय बानी * हृदयँ कम्प मुख दुति कुम्हलानी
चौथेपन पायेउँ सुत चारी * बिप्र बचन नहिं कहेउ बिचारी

बहुत अप्रियवचन सुनकर राजा का हृदय काँपने लगा और मुख का तेज फीका पड़ गया फिर बोले-चौथेपन में चारों पुत्र पाये हैं, हे विप्र! आपने विचार कर वचन नहीं कहा।

माँगहु भूमि धेनु धन कोषा * सर्बस देउँ आजु सहरोषा
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं * सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं

भूमि, गौ, धन, खजाना माँगिये, मैं आज सहर्ष ही सर्वस्व दे दूंगा। देह और प्राण से अधिक प्यारा कुछ भी नहीं है, हे मुनिनाथ! वह भी अभी पलभर में दे दूंगा।

सबसुत प्रियमोहिप्रानकीनाईं * राम देत नहिं बनइ गोसाईं

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा * कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा

सब पुत्र मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं, तो भी-हे स्वामी ! श्रीरामजी को देते तो कैसे भी नहीं बनता। कहां तो बड़े भयंकर कठोर राक्षस और कहाँ मेरे बहुत ही सुकुमार बालक।

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी * हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा * नृप सन्देह नाश कहँ पावा

राजा की प्रेम-रस से सनी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि ने मन में बहुत आनन्द माना। तब वशिष्ठ ने बहुत भांति से समझाया, तो राजा का सब सन्देह दूर हो गया।

अति आदर दोउ तनय बोलाए * हृदयँ लाज बहु भाँति सिखाए
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ * तुम्ह मुनिपिता आन नहिं कोऊ

बड़े आदर से दोनों पुत्रों को बुलाया और छाती से लगाकर बहुत प्रकार से शिक्षा दी और कहा—हे नाथ?यह दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं,हे मुनि ! अब आप ही इनके पिता हैं दूसरा कोई नहीं।

दोहा—सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहु बिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु, चले नाइ पद सीस।२०८क।

राजा ने बहुत भाँति से आशीर्वाद देकर दोनों पुत्र ऋषि को सौंप दिये। तब प्रभु माता के महल में गये और चरणों में सिर नवाकर चले।

सो०—पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मति धीर, अखिल विश्व कारन करन।२०८ख।

पुरुषों में सिंहरूप दोनों वीर जो मुनियों के भय हरने वाले, कृपा के समुद्र, धीर-बुद्धि और सब जगत के कारणों के कर्त्ता हैं, वे चले।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला * नील जलज तनु स्याम तमाला
कटि पट पीत कसें वर भाथा * रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा

श्रीरामजी के लाल नेत्र, चौड़ी छाती, लम्बी भुजायें, नील-कमल और तमाल के समान सुन्दर श्याम शरीर है। कमर में पीताम्बर और सुन्दर तर्कस, दोनों हाथों में सुन्दर धनुष बाण है।

स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई * बिस्वामित्र महानिधि पाई
प्रभु ब्रह्म देव मैं जाना * मो हित पिता तजेउ भगवाना

श्याम और सुन्दर दोनों भाई विश्वामित्रजी को महानिधि-रूप प्राप्त हुए। वे सोचने लगे-मैंने जान लिया कि प्रभु ब्रह्मण्य-देव हैं, भगवान ने मेरे लिए पिता को भी छोड़ दिया।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई * सुनि ताड़का क्रोध करि आई
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा * दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा

मार्ग में जाते हुए मुनि ने ताड़का दिखाई, वह शब्द सुनते ही क्रोध करके दौड़ी तब श्रीरामजी ने एक ही बाण से उसके प्राण हर लिए, दीन जानकर उसे अपना पद (अपना लोक) दिया।

तब मुनि निजनाथहिं जियँ चीन्ही * विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्ही
जाते लागि न क्षुधा पिपासा * अतुलित बल तनु तेज प्रकासा

तब मुनि ने अपने प्रभु को सब विद्याओं की खान समझकर भी ऐसी विद्या दी—जिससे भूख-प्यास न सतावे और शरीर में अतुलित बल और तेज का प्रकाश हो।

दोहा—आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि।
कन्दमूल फल भोजन, दीन्ह भगति हित जानि ॥२०८॥

मुनि प्रभु को सब अस्त्र-शस्त्र दे, अपने आश्रम में ले आये और भक्त-भयहारी जानकर कन्दमूल-फल भोजन के लिए दिए।

प्रात कहा मुनि सन रघुराई * निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई
होम करन लागे मुनि झारी * आपु रहे मख की रखवारी

प्रातः रघुनाथजी ने मुनि से कहा—अब आप जाकर निर्भय होकर यज्ञ कीजिये। तब मुनि हवन करने लगे और आप यज्ञ की रक्षा करने लगे।

सुनि मारीच निसाचर क्रोही * लै सहाय धावा मुनि द्रोही
बिनु फर बान राम तेहि मारा * सत योजन गा सागर पारा

क्रोधी राक्षस मारीच ने सुना तो वह मुनि-द्रोही अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। तब रामजीने विना फनका बाण उसके मारा, जिससे वह सौ-योजन दूर समुद्र के पार जा गिरा।

पावक शर सुबाहु पुनि मारा * अनुज निसाचर कटकु सँघारा
मारि असुर द्विज निर्भयकारी * अस्तुति करहिं देव मुनि झारी

फिर अग्नि-बाण से सुबाहु को भस्म कर दिया और लक्ष्मणजी ने राक्षसों की सेना का नाश किया। तब असुरों को मारकर ब्राह्मणों को निर्भय करने वाले भगवान की सब देवता और मुनि स्तुति करने लगे।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया * रहे कीन्ह विप्रन्ह पर दाया
भगति हेतु बहु कथा पुराना * कहे विप्र जद्यपि प्रभु जाना

फिर श्रीरघुनाथजी ने कुछ दिन वहाँ रहकर ब्राह्मणों पर दया की। भक्तिवश ब्राह्मण अनेकों कथा-पुराण सुनाते थे, यद्यपि प्रभु सब जानते थे।

तब मुनि सादर कहा बुझाई * चरित एक प्रभु देखिअ आई
धनुषजग्य मुनि रघुकुल नाथा * हरषि चले मुनिवर के साथा

तदनन्तर मुनि ने आदर के साथ समझा कर कहा—हे प्रभो! अब चलकर एक चरित्र देखिये। धनुष-यज्ञ सुनकर श्रीरघुनाथजी प्रसन्न होकर मुनिवर के साथ चले।

आश्रम एक दीख मग माहीं * खग मृग जीव जन्तु तहँ नाहीं
पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी * सकल कथा मुनि कही विसेषी

मार्ग में एक आश्रम दीख पड़ा, वहाँ कोई पशु-पक्षी आदि जीव-जन्तु भी नहीं था।

प्रभु ने एक शिला देखकर मुनि से पूछा, तब मुनि ने विस्तार पूर्वक सब कथा सुनाई–

दोहा–गौतम नारि श्राप बस, उपल देह धरि धीर ।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर ॥२१०॥

गौतम-मुनि की स्त्री श्राप के कारण शिला होगई है, वह धीरज धरते हुए आपके चरण-कमलों की रज चाहती है, सो–हे श्रीरघुनाथजी ! आप कृपा कीजिए ।

छन्द–परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सन्मुख होइ कर जोरि रही ॥
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहिं आवइ वचन कही ।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ॥

श्रीरामजीके पवित्र दुःखहारी चरणों का स्पर्श होते ही तपोभूमि अहिल्या सचमुच प्रगट होगई । भक्तों को सुख देने वाले श्रीरामजी को देखते ही उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो, अत्यन्त प्रेम से अधीर हो रोमांचित होगई, मुख से वचन नहीं निकल सके । तब अत्यन्त बड़भागी अहिल्या प्रभु के चरणों में गिर गई और नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगी ।

धीरज मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यान गम्य जय रघुराई ॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई ।
राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ॥

फिर धैर्य धारण कर उसने प्रभु को पहचाना तथा श्रीरघुनाथजी की कृपा से भक्ति पाई । तब बहुत निर्मल वाणी से स्तुति करने लगी-हे ज्ञान से जानने योग्य श्रीरघुनाथजी ! आपकी जय हो । मैं अपवित्र स्त्री हूँ और प्रभु जगत को पवित्र करने वाले, रावण के शत्रु और अपने भक्तों को सुख देने वाले हैं । हे कमल–नयन ! हे संसार के भय को दूर करने वाले ! मैं आपकी शरण हूँ, मेरी रक्षा करो ।

मुनि श्राप जो दीन्हा अतिभल कीन्हा परम अनुग्रह मैं जाना ।
देखउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहहि लाभ शङ्कर जाना ॥
विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ वर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥

मुनि ने जो श्राप दिया तो बहुत भला किया, मैंने उसे बड़ी कृपा समझी, क्योंकि संसार से छुड़ाने वाले-श्रीहरिको नेत्र भर मैंने देखा, इसी को शिवजी सबसे बड़ा लाभ समझते हैं । हे प्रभु ! मैं बुद्धिकी भोली हूँ, हे नाथ ! मैं वर नहीं माँगती । विनती करके केवल यही चाहती हूँ, कि आपके चरणों की रज के रस को मेरा मन भौंरे के समान प्रेम से पान किया करे ।

जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रकट भई सिवसीस धरी ।

सोइ पद पङ्कज जेहिं पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ।।
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बारबार हरिचरन परी ।
जो अति मन भावा सो वरु पावा गै पतिलोक आनन्द भरी ।।

जिन चरणों से परम पवित्र गंगाजी प्रगट हुईं, जिन्हें शिवजी ने अपने सिर पर धारण किया है और जिन चरणों को ब्रह्माजी जपते हैं । हे कृपालु ! वे चरण आपने मेरे सिर पर रक्खे । इस प्रकार स्तुति करके गौतम-पत्नी अहिल्या बारम्बार प्रभु के चरणों में गिर कर मन बाँछित बरदान पाकर, आनन्द से भरी हुई पति-लोक को चली गई ।

दोहा—अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारन रहित दयाल ।
तुलसीदास सठ ताहि भजु, छाँड़ि कपट जंजाल ।।२११।।

जो दीन दयालु भगवान बिना कारण ही सब पर कृपा करते हैं । ऐसे प्रभु को-रे मूर्ख तुलसीदासजी ! तू कपट जंजाल को त्यागकर भज ।

* मास पारायण—सातवाँ विश्राम *

चले राम लछिमन मुनि सङ्गा * गए जहाँ जग पावनि गङ्गा
गाधितनय सब कथा सुनाई * जेहि प्रकार सुरसरि महि आई

फिर श्रीरामजी व लक्ष्मणजी मुनि के साथ वहाँ गये-जहाँ जगत् को पवित्र करने वाली श्रीगंगाजी थीं । विश्वामित्रजी ने सब कथा सुनाई-जिस प्रकार गंगाजी पृथ्वी पर आई थीं ।

तब प्रभु ऋषिन्ह समेत नहाए * विविध दान महिदेवन्ह पाए
हरषि चले मुनि बृन्द सहाया * बेगि विदेह नगर निअराया

तब प्रभू ने वहाँ ऋषियों सहित स्नान किया, अनेक प्रकार के दान ब्राह्मणों ने पाये, फिर प्रसन्न होकर वे मुनि-वृन्दों के साथ चले और शीघ्र ही जनकपुरी के निकट जा पहुँचे ।

पुर रम्यता राम जब देखी * हरषे अनुज समेत विसेषी
बापीं कूप सरित सर नाना * सलिल सुधा सम मनि सोपाना

श्रीरामजी ने जब नगर की शोभा देखी, तो छोटे भाई सहित बहुत प्रसन्न हुए । अनेक बावली, कुएँ, नदी और तालाबों में अमृत के समान जल भरा है और मणियों की सिढ़ियाँ बनी हैं ।

गुँजत मंजु मत्त रस भृङ्गा * कूजत कल बहु बरन बिहङ्गा
बरन बरन बिकसे जलजाता * त्रिविध समीर सदा सुखदाता

सुगन्धित फूलों के रस में मतवाले सुन्दर भौंरे गूँज रहे हैं, बहुत रङ्ग के पक्षी मनोहर बोली बोल रहे हैं । रंग-बिरंगे कमल खिल रहे हैं, तीनों प्रकार की शीतल, मन्द सुगन्धित, पवन सदैव सुख देने वाली वह रही है ।

दोहा—सुमन बाटिका बाग बन, विपुल विहङ्ग निवास ।

फूलत फलत सुपल्लवित, सोहत पुर चहुँ पास ॥२१२॥

फुलवारी, बाग और वन नगर के चारों ओर शोभा दे रहे है। उनमें भाँति २ के पक्षी अपने घोंसले बनाकर बास कर रहे हैं। वृक्षों में फल लटक रहे हैं, सुन्दर कोमल पत्ते निकल रहे हैं।

वनइ न बरनत नगर निकाई * जहाँ जाइ मन तहँई लोभाई
चारु बजारु विचित्र अँबारी * मनिमय विधि जनुस्वकर सँवारी

नगर की शोभा वर्णन करते नहीं बनती, जहाँ मन जाता है, वहीं लुभा जाता है। सुन्दर बाजार और ऐसी विचित्र मणियों से जड़ित अटारियाँ हैं, मानो ब्रह्मा ने हाथों से बनाया हो।

धनिक बनिक वर धनद समाना * बैठे सकल वस्तु लै नाना
चौहट सुन्दर गली सुहाई * सन्तत रहहिं सुगन्ध सिंचाई

कुबेर के समान धनी-व्यापारी सब प्रकार की वस्तुयें लेकर बैठे हैं चौक और सुहावनी गलियाँ सदा सुगन्धित रहती हैं।

मङ्गलमय मन्दिर सब केरे * चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे
पुर नर नारि सुभग सुचि सन्ता * धरमसील ग्यानी गुनवन्ता

सबके घर मंगलमय और ऐसे विचित्र हैं, मानो उन्हें कामदेवरूपी चित्रकारने चित्रित किये हों। नगर के सब स्त्री-पुरुष सुन्दर, पवित्र, बड़े सज्जन, धर्मात्मा, ज्ञानवान और गुणवान हैं।

अति अनूप जहँ जनक निबासू * बिथकहिं बिबुध बिलोक बिलासू
होत चकित छित कोटि बिलोकी * सकल भुवन सोभा जनु रोकी

जहाँ महाराज जनक का निवास था, वह स्थान बहुत ही अनुपम था, जिनके-ऐश्वर्य को देख देवता भी थक जाते थे। किले को देख चित्त चकित होता था, उसने सब भवनों की शोभा रोक रक्खी थी।

दोहा–धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुन्दर सदन, सोभा किमि कहि जाति ॥२१३॥

सफेद महलों में सुन्दर मणि-जड़ित सोने के अनेक भाँति के पर्दे लगे थे और सीताजी का निवास-स्थान तो बहुत ही सुहावना था। उसकी शोभा कैसे कही जा सकती है?

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा * भूप भीर नट मागध भाटा
बनी बिसाल बाजि गज साला * हय गय रथ संकुल सब काला

महलों के सब दरवाजे बहुत ही सुन्दर थे, उनमें हीरे जड़े हुए किवाड़ थे। वहाँ राजा नट, मागध और भाटों की बड़ी अपार भीड़ लगी थी। बहुत बड़ी-बड़ी घुड़सालें, गजशा-लायें बनी हुई थीं, जिनमें सदैव घोड़े, हाथी और रथ भरे रहते थे।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे * नृप गृह सरिस सदन सब केरे
पुर बाहेर सरस सरित समीपा * उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा

बहुत-से शूरवीर, मन्त्री, सेनापति थे, सबके महल भी राज-भवन के समान थे। नगर

के बाहर और तालाब के समीप जहाँ-तहाँ अनेकों राजा लोग उतरे हुए थे।

देखि अनूप एक अँवराई ※ सब सुपास सब भाँति सुहाई
कौसिक कहेउ मोर मनु माना ※ इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना

एक सुन्दर और सब भांति से सुविधा पूर्ण सुहावने आम के बगीचे को देखकर विश्वामित्रजी ने कहा—रामजी ! मेरी इच्छा है कि यहीं रहा जाय।

भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता ※ उतरे तहँ मुनिबृन्द समेता
विश्वामित्र महामुनि आए ※ समाचार मिथिलापति पाए

'बहुत अच्छा' स्वामी ! ऐसा कहकर कृपानिधान श्रीरामजी मुनिगणों सहित वहीं उतर गये। जब राजा जनक ने सुना कि महामुनि विश्वामित्रजी आये हैं, तब—

दोहा—सङ्गसचिवसुचिभूरि भट, भूसुर वर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ एहि भाँति ॥२१४॥

साथ में निर्मल-बुद्धि वाले मन्त्री, अनेकों योद्धा, उत्तम ब्राह्मण, गुरू तथा जाति के लोगों को लेकर—इस भांति प्रसन्न हो राजा जनक—महामुनि से मिलने के लिए चले।

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा ※ दीन्हि असीस मुदित मुनि नाथा
बिप्र वृन्द सब सादर वन्दे ※ जानि भाग्य बड़ राउ अनन्दे

राजा ने चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया, तब मुनि ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया, फिर राजाने सब ब्राह्मणों को आदर से प्रणाम किया और अपने भाग्य को बड़ा जानकर प्रसन्न हुए।

कुशल प्रश्न करि बारहिं बारा ※ विश्वामित्र नृपहि बैठारा
तेहिं अवसर आए दोउ भाई ※ गए रहे देखन फुलवाई

विश्वामित्र ने बार-बार कुशल पूछकर राजा को बैठाया। उसी समय दोनों भाई भी जो फुलवारी देखने गये थे, आगये।

श्याम गौर मृदु बयस किसोरा ※ लोचन सुखद विश्व चितचोरा
उठे सकल जब रघुपति आए ※ विश्वामित्र निकट बैठाए

वे दोनों श्याम और गौर-वर्ण कोमल अङ्ग, किशोर अवस्था वाले—नेत्रों को सुख देने वाले और संसार के चित्त को चुराने वाले थे। जब श्रीरघुनाथजी आये, तब सभी लोग उठ खड़े हुए, फिर मुनि ने उन्हें पास बैठा लिया।

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता ※ बारि बिलोचन पुलकित गाता
मूरति मधुर मनोहर देखी ※ भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी

दोनों भाइयों को देखकर सब सुखी हुए, नेत्रों में जल भर आया, शरीर पुलकायमान होगया। मनोहर माधुरी मूर्ति का दर्शन करके विदेह (जनक) विशेष रूप से देहकी सुधि भूल गये।

दोहा—प्रेम मगन मनु जानि नृप, करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनिपद नाइ सिरु, गद्गद गिरा गंभीर ॥२१५॥

अपने मन को प्रेम में मग्न जानकर, विवेक द्वारा अपनी मति को धीरज देकर राजा मुनि को प्रणाम कर गद्‌गद् और गम्भीर वाणी से बोले—

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक * मुनिकुल तिलक कि नृप कुलपालक
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा * भयउ वेष धरि कि सोइ आवा

हे नाथ! कहो-ये दोनों सुन्दर बालक मुनि-कुल-तिलक हैं या राज-कुल के पालक हैं? अथवा वेद जिस ब्रह्म को 'नेति-नेति' कहकर गाते हैं-क्या वही वो स्वरूप धारण करके आये हैं।

सहज विराग रूप मनु मोरा * थकित होत जिमि चन्द्रचकोरा
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ * कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ

मेरा मन जो स्वभाव से-ही वैराग्यरूप है, वह भी इनके दर्शन कर ऐसा मुग्ध होता है, जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर। इससे-हे प्रभु! मैं सच्चे भाव से पूछता हूँ—हे नाथ!

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा * बरबश ब्रह्म सुखहि मन त्यागा
कह मुनि बिहँसि कहेउ नृपनीका * वचन तुम्हार न होइ अलीका

इन्हें देखते ही मेरे मन ने प्रेम के कारण ब्रह्मानन्द को छोड़ दिया है। मुनि ने हँसकर कहा—हे राजन्! आपने ठीक कहा, आ का वचन झूंठा नहीं हो सकता।

ए प्रिय सबही जहाँ लगि प्रानी * मन मुसुकाहिं राम सनि बानी
रघुकुलमनि दशरथ के जाए * मम हित लागि नरेश पठाए

संसार में जितने भी प्राणी हैं, ये उन सभी को प्रिय हैं। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मन में मुस्कराये। मुनि बोले—हे राजन्! यह रघुवंशमणि महाराज दशरथ के पुत्र हैं, मेरे उपकार के लिए राजा ने इन्हें मेरे साथ भेजा है।

दोहा—रामु लखनु दोउ बन्धु बर, रूप सील बलधाम।
मख राखेउ सब साखि जगु, जिते असुर संग्राम ॥२१६॥

यह राम और लक्ष्मण दोनों भाई श्रेष्ठ, रूप, शील और बल के धाम हैं। सब जगत इस बात का साक्षी है कि इन्होंने मेरे यज्ञ की रक्षा की है और संग्राम में असुरों को जीता है।

मुनि तव चरन देखि कह राऊ * कहि न सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ
सुन्दर श्याम गौर दोउ भ्राता * आनन्द हू के आनन्द दाता

राजा ने कहा-हे मुनि! आपके चरणों के दर्शन करके मैं अपने पुण्य का प्रभाव नहीं कह सकता। सुन्दर सांवले और गोरे दोनों भाई आनन्द को देने वाले हैं।

इन्ह कै प्रीति परस्पर पावनि * कहि न जाइ मन भाव सुहावनि
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू * ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू

उनका आपस में ऐसा पवित्र प्रेम है कि कहा नहीं जा सकता, वह मनको भाता है और सुहावना है। हे नाथ! सुनिये, ब्रह्म और जीव के समान इनके स्वाभाविक स्नेह हैं।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू * पुलकि गात उर अधिक उछाहू
मुनिहि प्रसंसहि नाइ पद सीसू * चले लिवाइ नगर अवनीसू

राजा बारम्बार प्रभु को देखकर रोमांचित होगये और हृदय में अत्यन्त हर्ष हुआ। मुनि की बढ़ाई कर, चरणों में सिर नवाकर, जनकजी उन्हें नगर के अन्दर लिवा ले चले।

सुन्दर सदनु सुखद सब काला * तहाँ बासु लै दीन्हि भुआला
करि पूजा सब विधि सेवकाई * गयउ राउ गृह बिदा कराई

राजा ने उन्हें सदा सुख देने वाले सुन्दर स्थान में ठहराया और सब प्रकार से सेवा-कर विदा माँग, घर आये।

दोहा–ऋषय सङ्ग रघुबंसमनि, करि भोजन बिश्रामु।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि जामु ॥२१७॥

ऋषि के साथ रघुवंशमणि (श्रीरामजी) भोजन और विश्राम कर भाई सहित बैठे, उस समय एक पहर दिन शेष रह गया था।

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी * जाइ जनकपुर आइउ देखी
प्रभुभय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं * प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं

लक्ष्मणजी के मन में बड़ी लालसा हुई कि जनकपुर देख आवें, परन्तु प्रभु श्रीरामजी के डर और मुनि के सङ्कोच से प्रगट में नहीं कह सके, मन ही मन मुस्कराने लगे।

राम अनुज मन की गति जानी * भगत बछलता हियँ हुलसानी
परम विनीत सकुचि मुसुकाई * बोले गुरु अनुसासनु पाई

श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी के मनकी बात जानली, मनमें भक्त-वत्सलता हो आई। तब बड़ी नम्रता से सङ्कोच करते हुए, मुस्कराकर गुरु (विश्वामित्रजी) की आज्ञा पाकर बोले–

नाथ लखनु पुर देखन चहहीं * प्रभु सँकोच डर प्रकट न कहहीं
जौं राउर आयसु मैं पावौं * नगर देखाइ तुरत लै आवौं

हे नाथ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते हैं, परन्तु आपके सङ्कोच से डरकर प्रगट में नहीं कहते। जो मैं आपकी आज्ञा पाऊँ–तो नगर दिखलाकर शीघ्र ही लौटा लाऊँ।

सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती * कस न राम तुम्ह राखहु नीती
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता * प्रेम बिबस सेवक सुखदाता

यह सुनकर मुनि प्रीति सहित बोले–हे राम! तुम नीति की रक्षा क्यों न करोगे? क्योंकि तुम धर्म की मर्यादा के पालक हो और प्रेम के वश सेवकों को सुख देने वाले हो।

दोहा–जाइ देखि आवहु नगरु, सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सबके नयन, सुन्दर बदन देखाइ ॥२१८॥

सुख के निधान दोनों भाई जाकर नगर को देख आओ और अपना सुन्दर मुख दिखला कर सबके नेत्रों को सफल करो।

मुनि पदकमल बन्दि दोउ भ्राता * चले लोक लोचन सुखदाता
बालक वृन्द देखि अति शोभा * लगे सङ्ग लोचन मन लोभा

मुनि के चरण-कमलों की वन्दना करके लोगों के नेत्रों को सुख देने वाले दोनों भाई चले। तब बालकों के झुण्ड उनकी अत्यन्त शोभा को देखकर उनके साथ में हो लिए, क्योंकि उनके नेत्र और मन लुभा गये थे।

पीत बसन परिकर कटि भाथा * चारु चाप शर सोहत हाथा
तनु अनुहरत सुचन्दन खोरी * श्यामल गौर मनोहर जोरी

पीले-वस्त्र पहिने, कमर में तरकस कसे हुए, हाथों में धनुष-बाण शोभित शरीर के योग्य हैं शोभा देने वाली चन्दन की खौर लगाए साँवले और गोरे-रङ्ग की मनोहर जोड़ी है।

केहरि कन्धर बाहु बिसाला * उर अति रुचिर नागमनि माला
सुभग सोन सरसीरुह लोचन * बदन मयङ्क तापमय मोचन

सिंहके समान ऊँचे कंधे, विशाल भुजायें, हृदय पर सुन्दर गज-मुक्ताओं की माला है। लाल कमलके समान नेत्र और चन्द्रमा के समान तीनों तापों को दूर करने वाला मुख है।

कानन्हि कनक फूल छवि देहीं * चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं
चितवनि चारु भृकुटि वर बाँकी * तिलक रेख सोभा जनु चाँकी

कानों में सोने के फूल शोभा दे रहे हैं, जो देखते ही चित्त को चुरा लेते हैं। सुन्दर चितवन है, तिरछी भौंहें और तिलक की रेखा बिजली की शोभा दे रही हैं।

दोहा—रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचत कुंचित केस।
नखसिख सुन्दर बन्धु दोउ, सोभा सकल सुदेश ॥२१९॥

सिर पर सुन्दर चौकोर टोपियाँ, काले-काले घुँघराले बाल हैं। दोनों भाइयों के नख से चोटी तक सब अङ्ग सुन्दर शोभा वाले हैं।

देखन नगरु भूप सुत आए * समाचार पुरवासिन्ह पाए
धाए धाम काम सब त्यागी * मनहुँ रङ्क निधि लूटन लागी

दोनों राज-पुत्र नगर देख आए हैं, जब यह समाचार पुरवासियों ने पाया, तो घर का काम छोड़कर ऐसे दौड़े मानो कङ्गालों को दौलत लुटाई जा रही हो।

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई * होहिं सुखी लोचन फल पाई
जुबतीं भवन झरोखिन्ह लागीं * निरखहिं राम रूप अनुरागी

दोनों भाइयों को स्वभाव से ही सुन्दर देखकर, नेत्रों का लाभ पाकर लोग सुखी होने लगे। स्त्रियाँ-खिड़कियों से झाँक २ कर प्रेम सहित श्रीरामजी के रूप को देख रही हैं।

कहहिं परस्पर बचन सप्रीती * सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं * सोभा असि कहुँ सुनि अति नाहीं

वे आपस में प्रेम से बात कर रही हैं, हे सखी! इन्होंने करोड़ों कामदेवों की शोभा को जीत

लिया है। देवता, मनुष्य, राक्षस, नाग, मुनि-इनमें भी कहीं ऐसी सुन्दरता नहीं सुनी।

विष्नुचारिभुज बिधि मुखचारी * बिकट बेष मुख पंच पुरारी
अपर देउ अस को जग माही * यह छबि मुख पटतरिअ जाही

विष्णु की चार भुजायें, ब्रह्मा के चार मुख, शिवजी का विकट वेष है और उनके पांचमुख हैं। हे सखी! और कौन ऐसा देवता संसार में है, जिससे इसकी छवि की उपमा दी जाय?

दोहा—बय किसोर सुषमा सदन, स्याम गौर सुखधाम।
अङ्ग अङ्ग पर बारिअहिं, कोटि कोटि सत काम ॥२२०॥

किशोर-अवस्था, शोभा के घर, श्याम और गौर-वर्ण, सुख के धाम इन दोनों के एक-एक अङ्ग पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर करने चाहिए।

कहहु सखी अस को तनुधारी * जो न मोह यह रूप निहारी
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी * जो मैं सुना सो सुनहुँ सयानी

हे सखी! कहो, ऐसा कौन-सा देहधारी है, जो इस स्वरूप को देखकर मोहित न हो जाय? कोई सखी प्रेम से कोमल वाणी बोली-हे चतुर सखी! मैंने जो सुना है, सो सुनो।

ए दोऊ दशरथ के ढोटा * बाल मरालन्हि के जल जोटा
मुनि कौसिक मख के रखवारे * जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे

यह दोनों महाराज दशरथजी के पुत्र हैं, बाल-राज हंसों-की सी जोड़ी है। इन्होंने ही विश्वामित्रजी मुनि के यज्ञ की रक्षा की है और रण में अजित राक्षसों को मारा है।

स्याम गात कलकंज बिलोचन * जो मारीच सुभउ मृदु मोचन
कौशल्या सुत सो सुख खानी * नामु रामु धनु सायक पानी

जिनका श्याम शरीर और सुन्दर कमल के समान नेत्र हैं, जो मारीच और सुबाहु के अहंकार को दूर करने वाले हैं, जो धनुष-बाण हाथ में लिए हुए हैं और सुख की खान कौशल्या के पुत्र हैं, इनका नाम 'राम' है।

गौर किसोर वेष वर काछें * कर सर चाप राम के पाछें
लछिमन नाम राम लघु भ्राता * सुनु सखि तासु सुमित्रा माता

जो गौरवर्ण,किशोरावस्था वाले, सुन्दर वेष बनाये, हाथमें धनुषवाण लिए रामके पीछे जा रहे हैं, इनका नाम लक्ष्मण है। हे सखी! सुनो, ये रामजी के छोटे भाई हैं, इनकी माता सुमित्रा है।

दोहा—बिप्र काजु करि बन्धु दोउ, मग मुनि बधू उधारि।
आये देखन चाप मख, सुनि हरषीं सब नारि ॥२२१॥

ये दोनों भाई मुनि का कार्य सिद्ध कर, मार्ग में गौतम-पत्नी अहिल्या का उद्धार करके धनुष-यज्ञ देखने आये हैं। यह सुनकर सब स्त्रियाँ हर्षित हुईं।

देखि रामछवि कोउ एक कहई * जोगु जानकिहि यह बरु अहई
जौं सखि इन्हहि देखि नरनाहू * पन परिहरि हठि करइ बिबाहू

श्रीरामजी की छवि देख कोई एक सखी बोली, जानकीजी के योग्य तो यही वर है। हे सखी ! इन्हें राजा देख लेंगे, तो अपना प्रण छोड़कर हठपूर्वक जानकीजी का विवाह इनके साथ कर देंगे।

कोउ कह ए भूपति पहिचाने * मुनि समेत सादर सनमाने
सखि परन्तु पनु राउ न तजई * बिधिबस हठि अबिवेकहि भजई

कोई सखी कहने लगी—इन्हें राजा ने पहचान लिया है और मुनि सहित आदर पूर्वक इनका सत्कार किया है। परन्तु, हे सखी ! राजा अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेंगे, वह भाग्यवश हठ से अपना विचार ही धारण किये हैं।

कोउकह जौं भल अहइ विधाता * सब कह सुनिअ उचित फलदाता
तौ जानकिहि मिलिहि वरु ऐहू * नाहिंन आलि इहाँ सन्देहू

कोई सखी बोली—यदि विधाता भला है और सुना जाता है कि वह सबको उचित फल देने वाला है, तो सीताजी को अवश्य ही यह वर मिलेगा, हे आली ! इसमें सन्देह नहीं।

जौं विधि बस अस बनै सँजोगू * तौ कृत कृत्य होइ सब लोगू
सखि हमरें आरति अति तातें * कबहुँक ए आवहिं एहि नातें

जो भाग्यवश ऐसा संयोग बन जाय, तो सब लोग कृतार्थ हो जांय। हे सखी ! इसी से हमें बड़ी आतुरता है कि इस नाते यह कभी यहां आया करेंगे।

दोहा—नाहिं तौ हम कहुँ सुनहु सखि, इन्ह कर दरसनु दूरि।
यह संघटु तब होइ जब, पुन्य पुराकृति भूरि ॥२२२॥

हे सखी ! सुनो—नहीं तो, हमको इनका दर्शन दुर्लभ है। यह संयोग तभी होगा—जब हमारे पूर्वजन्म के बहुत से पुण्य उदय होंगे।

बोली अपर कहेउ सखि नीका * एहि विवाह अति हित सबही का
कोउ कह संकर चाप कठोरा * ए श्यामल मृदुगात किसोरा

दूसरी सखी बोली-तुमने ठीक कहा, यह विवाह सभी के लिये बड़ा हितकारी है। कोई कहने लगी-शिवजी का धनुष कठोर है और ये साँवले राजकुमार, कोमल व किशोरावस्था वाले हैं।

सबु असमंजस अहइ सयानी * यह सुनि अपर कहत मृदु बानी
सखिइन्हकहँकोउकोउअसकहहीं * बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं

हे सयानी ! यह बड़ी दुविधा की बात है। यह सुनकर दूसरी सखी कोमल वाणी से कहने लगी—हे सखी ! कोई २ इनके विषय में ऐसा कहते हैं कि यह देखने में तो छोटे हैं, परन्तु इनका प्रभाव बहुत बड़ा है।

परसि जासु पद पंकज धूरी * तरी अहिल्या कृत अघ भूरी
सो कि रहहिं बिनु सिवधनु तोरें * यह प्रतीति परहरिअ न मोरें

जिनके चरण की रज छूकर घोर—पापिनी अहिल्या भी तर गई, क्या वह शंकरजी के धनुष को तोड़े बिना रह सकते हैं ? ऐसा विश्वास भूलकर भी नहीं छोड़ना।

जेंहि बिरंचि रचि सीय सँवारी * तेहि स्यामल बरु रचेउ बिचारी
तासु वचन सुनि सब हरषानी * ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी

जिस ब्रह्माने सीताजी को सँभालकर रचा है, उसीने विचार कर श्यामसुन्दर वर भी रचा है। वह वचन सुनकर सब स्त्रियां प्रसन्न हुईं और मधुर वाणी से कहने लगीं कि ऐसा ही हो।

दोहा—हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि सुलोचन बृन्द ।
जहँ जहँ जाहिं बन्धु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द ॥२२३॥

सुमुखी-सुनयनी स्त्रियों के झुण्ड मन में प्रसन्न हो पुष्पों की वर्षा करते थे। जहाँ-जहाँ दोनों भाई जाते थे, वहाँ-वहाँ परम आनन्द छा जाता था।

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई * जहँ धनु मख हित भूमि बनाई
अति बिस्तार चारु गच ढारी * बिमल वेदिका रुचिर सँवारी

फिर दोनों भाई जनकपुर के पूर्व की ओर गये-जहाँ धनुष-यज्ञ का स्थान बना था। उसके बीच में बहुत लम्बा-चौड़ा, सुन्दर, ढालू आँगन बना था, जिस पर सुन्दर स्वच्छ वेदी सजाई गई थी।

चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला * रचे जहाँ बैठहिं महिपाला
तेहि पाछें समीप चहुँ पासा * अपर मंच मण्डली बिलासा

चारों ओर सोने के सिंहासन राजाओं के बैठने के लिए बने हुए थे। उनके पीछे पास ही चारों ओर दूसरे मन्च मण्डलाकार बने हुए थे।

कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई * बैठहिं नगर लोग जहँ जाई
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए * धवल धाम बहु बरन बनाए

वह स्थान कुछ ऊँचे और सब प्रकार से सुन्दर थे—जहाँ नगर-निवासी बैठेंगे। उन्हीं के पास बड़े सुहावने उज्जवल स्थान रंग-विरंगे बने थे।

जहँ बैठहिं देखहिं सब नारी * जथाजोगु निज कुल अनुहारी
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना * सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना

जहाँ स्त्रियां अपने २ कुल के अनुसार यथायोग्य बैठकर देखेंगीं। नगर के बालक मधुर वचन कहकर आदर सहित प्रभु को रंग-भूमि की रचना दिखा रहे थे।

दोहा—सब सिसु एहिं मिस प्रेमबस, परसि मनोहर गात ।
तनु पुलकहिं अति हरषि हियँ, देखि देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥

सब बालक इसी बहाने से प्रेम वश हो श्रीरामचन्द्रजी के मनोहर शरीर को स्पर्श करते और दोनों भाइयों को देखकर मनमें हर्षित होते थे तथा शरीर पुलकित हो जाते थे।

सिसु सब राम प्रेमबस जाने * प्रीति समेत निकेत बखाने
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई * सहित सनेह जाहिं दोउ भाई

जब सब बालकोंने श्रीरामजी को प्रेमके वशमें जाना, तब स्नेह सहित अपने २ घर बतलाये। अपनी २ रुचि के अनुसार सब बुला लेते, तो स्नेहपूर्वक दोनों भाई उनके साथ चले जाते थे।

राम देखावहिं अनुजहि रचना * कहि मृदु मधुर मनोहर बचना
लव निमेष महुँ भुवन निकाया * रचइ जासु अनुसासन माया

श्रीरामजी-लक्ष्मणजी को रङ्ग-भूमि की रचना कोमल, मधुर और मनोहर वचन कहकर दिखाते थे। जिनकी आज्ञा से माया क्षण-मात्र में अनेकों ब्रह्माण्डों को रच देती है।

भगत हेतु सोइ दीनदयाला * चितवत चकित धनुष मखसाला
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं * जानि बिलम्बु त्रास मन माहीं

भक्तों के लिए वही दीनदयालु भगवान् धनुष-यज्ञशाला को चकित होकर देखते थे। सब रचना देखकर विलम्ब हुआ जानकर मनमें डरते हुए गुरु के पास चले।

जासु त्रास डर कहुँ डर कोई * भजन प्रभाउ देखावत सोई
कहि बातें मृदु मधुर सोहाई * किए बिदा बालक बरिआई

जिन प्रभु के भय से डर को भी डर लगता है, वही प्रभु भजन का प्रभाव दिखाते थे। उन्होंने कोमल, मधुर और सुहावनी बातें कहकर जबरदस्ती सब बालकों को बिदा किया।

दोहा—सभय सप्रेम बिनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरु पदपंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥

फिर भय, नम्रता, प्रेम और सङ्कोच के साथ दोनों भाई चरणारविन्दों में सिर नवाकर प्रणाम कर उनकी आज्ञा पाकर बैठ गये।

निसि प्रवेसु मुनि आयसु दीन्हा * सबहीं सन्ध्यावन्दनु कीन्हा
कहत कथा इतिहास पुरानी * रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी

रात्रि का प्रवेश जानकर मुनि ने आज्ञा दी, तब सबने सन्ध्या-वन्दन किया। पुरानी कथा और इतिहास कहते हुए दो पहर रात्रि बीत गई।

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई * चले चरन चाप दोउ भाई
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी * करत बिबिध जप जोग बिरागी

तब श्रेष्ठ मुनि जाकर सोये और दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे। जिनके चरणारविन्दों की रज के लिए वैराग्यवान् पुरुष भी अनेकों प्रकार से जप और योग करते हैं।

तेइ दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते * गुरु पद कमल पलोटत प्रीते
बार बार मुनि अग्या दीन्ही * रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही

वही दोनों भाई मानो प्रेम से जीते हुए गुरु के 'चरण-कमल' प्रेम से दबा रहे हैं। मुनि ने बारम्बार आज्ञा दी, तब श्रीरघुनाथजी ने शयन की।

चापत चरन लखनु उर लाएँ * सभय सप्रेम परम सचु पाएँ
पुनिपुनि प्रभु कह सोवहु ताता * पौढ़े धरि उर पद जलजाता

लक्ष्मणजी भय और प्रीति सहित मन लगाकर परमानन्द का अनुभव करते हुए प्रभु के चरण दबाने लगे। जब श्रीरामजी ने कहा-हे तात! अब सो जाओ, तब लक्ष्मणजी प्रभु के

चरणकमल हृदय में धारणकर सो गये ।

दोहा—उठे लखन निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा धुनि कान ।
गुरु तें पहिलेहिं जगतपति, जागे राम सुजान ॥२२६॥

रात्रि बीत, अरुणोदय जान, अर्थात् मुर्गे का शब्द कानों से सुनकर लक्ष्मणजी उठे फिर गुरु से पहले ही जगत्पति चतुर श्रीरामजी जागे ।

सकल शौच करि जाइ नहाए * नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए
समय जानु गुरु आयसु पाई * लेन प्रसून चले दोउ भाई

शौचादिक क्रिया करके, जाकर स्नान किया और नित्य-कर्म करके, मुनि को प्रणाम किया । समय जानकर, गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई पुष्प लेने चले ।

भूप बागु बर देखे जाई * जहँ बसन्त ऋतु रही लोभाई
लागे बिटप मनोहर नाना * बरन बरन बर बेलि बिताना

उन्होंने जाकर राजा जनक का सुन्दर बाग देखा, जहाँ बसन्त-ऋतु लुभा रही थी । उसमें अनेक मनोहर वृक्ष लगे हुए थे, रङ्ग-बिरङ्गी लताओं से मण्डप छाये हुए थे ।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए * निज सम्पति सुर रुख लजाए
चातक कोकिल कीर चकोरा * कूजत बिहँग नटत कल मोरा

वृक्षों में सुन्दर नये पत्ते, फल और फूल लगे हुए थे, जो अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को भी लज्जित कर रहे थे । पपीहा, कोयल, तोता, मोर, चकोर आदि पक्षी, बोल रहे थे और मोर भली-भाँति से नाच रहे थे ।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा * मनि सोपान बिचित्र बनावा
बिमल सलिलु सरसिज बहुरङ्गा * जलखग कूजत गुंजत भृङ्गा

बागके बीचमें मणि-जटित विचित्र सीढ़ियों से युक्त एक सरोवर शोभित था । उसके निर्मल जल में अनेक रङ्गके कमल खिल रहे थे, जल के पक्षी बोल रहे थे और भौंरे गुंज रहे थे ।

दोहा—बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत ।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत ॥२२७॥

बाग और सरोवर को देखकर प्रभु श्रीरामजी-लक्ष्मणजी सहित प्रसन्न हुए । यह बाग परम रमणीक था, जो श्रीरामजी को सुख दे रहा था ।

चहुँदिसि चितइ पूँछि मालीगन * लगे लेन दल फूल मुदित मन
तेहि अवसर सीता तहँ आई * गिरिजा पूजन जननि पठाई

चारों ओर देख, मालियों से पूछकर प्रसन्न मन से वे पत्र-पुष्प लेने लगे । उसी समय श्री-पार्वतीजी का पूजन करने के लिये-माता की भेजी हुई सीताजी वहाँ आ गईं ।

सङ्ग सखीं सब सुभग सयानी * गावहिं गीत मनोहर बानी
सर समीप गिरिजा गृह सोहा * बरनि न जाइ देखि मन मोहा

सीताजी के साथ-सौभाग्यवती, चतुर सखियां मनोहर वाणीसे गीत गा रहीं थीं। सरोवर के पासही पार्वतीजी का मन्दिर सुशोभित था,शोभा कही नहीं जाती,देखकर मनमोहित होता था।

मज्जनु करि सरि सखिन्ह समेता * गई मुदित मन गौरि निकेता
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा * निज अनुरूप सुभग बरु माँगा

सीताजी ने सखियों सहित सरोवर में स्नान किया और प्रसन्न मन से श्रीपार्वतीजी के मन्दिर में गईं। वहां बड़े प्रेम से पार्वतीजी की पूजा करके अपने योग्य वर माँगा।

एक सखी सिय संगु बिहाई * गई रही देखन फुलवाई
तेंहि दोउ बन्धु बिलोके जाई * प्रेम बिबस सीता पहिं आई

एक सखी सीताजी का साथ छोड़कर, फुलवारी देखने चली गई। वह दोनों भाइयों को देखकर प्रेम में मग्न होती हुई सीताजी के पास आई।

दोहा—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नैन।
कहु कारन निजहरष कर, पूछहिं सब मृदु बैन ॥२२८॥

उसकी दशा सखियों ने देखी कि शरीर पुलकित है, नेत्रों में जल भरा है। तब सब मधुर वाणी से पूछने लगीं कि अपने आनन्द का कारण कहो?

देखन बाग कुँवर दुइ आए * वय किशोर सब्र भाँति सुहाए
स्याम गौरि किमि कहौं बखानी * गिरा अनयन नयन बिनु बानी

सखी बोली-बाग देखने दो राजकुमार आये हैं, किशोरावस्था के सब प्रकार से सुन्दर हैं, श्याम व गौर-वर्ण हैं। उनका बखान मैं कैसे करूं? वाणी के नेत्र नहीं और नेत्र बिनावाणी के हैं।

सुनि हरषीं सब सखी सयानी * सिय हियँ अति उत्कण्ठा जानी
एक कहहि नृपसुत तेइ आली * सुने जे मुनि सँग आए काली

यह सुनकर सीताजी के हृदय में उत्कंठा जानकर सब चतुर सखियाँ प्रसन्न हुईं। एक सखी बोली-हे आली! ये वही राजकुमार हैं, जिनको सुना है कि कल मुनि के साथ आये हैं।

जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी * कीन्हे स्वबस नगर नर नारी
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू * अवसि देखिअहिं देखन जोगू

जिन्होंने रूपकी मोहनी डालकर जनकपुर के सब स्त्री-पुरुषों को अपने वशमें कर लिया है। उनकी छविका जहाँ-तहाँ सबलोग वर्णन कररहे हैं, उन्हें अवश्य देखिए, वे देखने योग्य हैं।

तासु वचन अति सियहिं सोहाने * दरस लागि लोचन अकुलाने
चली अग्र करि सिय सखि सोई * प्रीति पुरातन लखइ न कोई

उसके वचन सीताजी को बहुत सुन्दर लगे, दर्शन करने के लिए, नेत्र अकुलाने लगे। तब उस सखी को आगे करके सीताजी चलीं। पुरानी प्रीति को कोई नहीं जान सकता।

दोहा—सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।

चकित विलोकत सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ॥२२९॥

नारदजी के वचनों को स्मरण करके सीताजी के हृदय में पवित्र प्रेम उत्पन्न हुआ और चकित होकर चारों ओर देखने लगीं, मानो मृगी डरकर इधर-उधर देख रही हो ।

कङ्कन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि * कहत लखन सन राम हृदयँ गुनि
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्ही * मनसा विश्व विजय चह कीन्ही

सीताजी के कंकन, कर्धनी और पायजेबों की ध्वनि सुनकर श्रीरामजी हृदय में विचार कर लक्ष्मणजी से बोले-ऐसा लगता है, मानो कामदेव ने विश्व-विजय की इच्छा से डंका बजाया है ।

अस कहि फिर चितए तेहिं ओरा * सिय मुख ससि भए नयन चकोरा
भए विलोचन चारु अचंचल * मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल

ऐसे कहकर फिर उस ओर देखा-जिस ओर सीताजी के मुखरूपी चन्द्रमा के लिए उनके नेत्र चकोर बने हुए थे । सुन्दर नेत्र स्थिर रह गये, मानो महाराज निमि ने लजाकर उनके पलकों से अपना निवास छोड़ दिया हो ।

देखि सीय शोभा सुखु पावा * हृदयँ सराहत वचनु न आवा
जनु विरंचि सब निज निपुनाई * विरंचि विश्व कहँ प्रगट देखाई

सीताजी की शोभा देखकर श्रीरामजी ने सुख पाया और मनमें बड़ाई की मुख से कुछ कहते नहीं बना, मानो ब्रह्मा ने अपनी चतुरता रचकर संसार में प्रत्यक्ष दिखाई हो ।

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई * छबि गृह दीप शिखा जनु बरई
सब उपमा कवि रहे जुठारी * केहिं पटतरों विदेह कुमारी

शोभा (सीताजी) सुन्दरता को सुन्दर करती है, मानो कांतिरूपी भवन में दीपक की ज्योति जल रही हो । सब उपमा तो कवियों ने झूँठी कर डाली है, सीताजी की किससे उपमा दें ।

दोहा—सिय सोभा हिय वरनि प्रभु, आपनि दशा विचारि ।
बोले सुचि मन अनुज सन, वचन समय अनुसारि ॥२३०॥

प्रभु श्रीरामजी-सीताजी की शोभा का मन में वर्णनकर अपनी दशा को विचार कर पवित्र मन से लक्ष्मणजी से समयानुसार वचन बोले—

तात जनकतनया तह सोई * धनुषयज्ञ जेहि कारन होई
पूजन गौरि सखीं लै आई * करत प्रकासु फिरइ फुलवाई

हे तात ! वही जनक-सुता है, जिसके कारण धनुष-यज्ञ हो रहा है । पार्वतीजी का पूजन करने के लिए सखियों के साथ यहाँ आई हैं और फुलवारी को प्रकाशित करती फिरती हैं ।

जासु विलोकि अलोकिक सोभा * सहज पुनीत मोर मनु लोभा
सो सबु कारन जानि विधाता * फरकहिं सुभग अङ्ग सुनु भ्राता

जिनकी अलौकिक शोभा को देखकर सहज ही मेरा पवित्र मन क्षुब्ध होगया । इसका पूरा-पूरा कारण तो विधाता ही जाने, परन्तु—हे भाई ! सुनो, मेरे दाहिने अङ्ग फड़क रहे हैं ।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ * मनु कुपन्थ पगु धरइ न काऊ
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी * जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी

रघुवंशियों का तो यह सहज स्वभाव है कि वे मनसे कभी भी बुरे मार्ग में पाँव नहीं रखते। मुझे तो अपने मन पर पूरा भरोसा है कि जिसने स्वप्न में भी कभी पराई स्त्री को नहीं देखा।

जिन्ह कैं लहहिं न रिपु रन पीठी * नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी
मङ्गल लहहिं न जिन्ह कै नाहीं * ते नरवर थोरे जग माहीं

जो शत्रु को रण में पीठ नहीं दिखाते, पराई स्त्री जिनके मन और दृष्टि को नहीं खींचपाती तथा माँगने वाले जिनके यहाँ, 'नाहीं' नहीं पाते-ऐसे उत्तम पुरुष संसार में बहुत थोड़े हैं।

दोहा—करत बतकहीं अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरन्द छबि, करइ मधुप इव पान ॥२३१॥

श्रीरामजी-बातती लक्ष्मणजी से कहरहे थे, किन्तु मन सीताजी के रूपपर लुभाया हुआ था। सीताजी के मुख रूपी कमलके शोभारूपी रसको रामजीकामन भौंरों के समान पानकर रहा था।

चितवत चकित चहूँ दिसि सीता * कहँ गए नृप किसोर तनु चिंता
जहँ बिलोक मृगसावक नैनी * जनु तहँ बरसि कमल सित श्रेनी

सीताजी चकित होकर चारों ओर देखरही हैं, मनमें चिन्ता है कि राजकिशोर कहां गये? यह बाल-मृग-नयनी जिस ओर देखती हैं, मानो सफेद कमलों की पंक्तियों की वर्षा हो जाती है।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए * स्यामल गौर किसोर सुहाए
देखि रूप लोचन ललचाने * हरषे जनु निज निधि पहिचाने

सब सखियों ने लता की ओट में श्याम व गौर-वर्ण सुन्दर राजकुमार दिखाये। उनका रूप देख सीताजी के नेत्र ललचाये, मानो अपनी सम्पत्ति को पहिचान कर प्रसन्न हुए हों।

थके नयन रघुपति छबि देखें * पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषें
अधिक सनेह देह भै भोरी * सरद ससिहि जनु चितव चकोरी

सीताजी के नेत्र श्रीरघुनाथजीकी छवि को देख चकित रह गये, पलकों ने भी लगना छोड़ दिया। अधिक स्नेह के कारण देह विह्वल हो गई, मानो चकोरी शरद्-ऋतु के चन्द्रमा को देखरही हो।

लोचन मग रामहि उर आनी * दीन्हे पलक कपाट सयानी
जब सिय सखिन्ह प्रेम बस जानी * कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी

नेत्रों के मार्ग से श्रीरामजी को हृदय में लाकर चतुर सीताजी ने पलकरूपी किवाड़ बन्द कर लिये जब सखियों ने सीताजी को प्रेम के वश में जाना, तब वे मन में शकुचाईं परन्तु कुछ कह न सकीं।

दोहा—लताभवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ ॥२३२॥

उसी समय लता-भवन में से दोनों भाई प्रकट हुए, मानो निर्मल चन्द्रमा बादलरूपी पट को खोलकर निकल आये हों।

सोभा सीवँ सुभाग दोउ बीरा * नील पीत जलजात सरीरा
मोरपंख सिर सोहत नीके * गुच्छा बिच बिच कुसम कली के

दोनों सुन्दर भाई शोभा की सीमा हैं, नीले-पीले कमल के समान शरीर हैं। सिर पर मोर-पंख सुशोभित हैं, उनके बीच-बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे गुंथे हुए हैं।

भाल तिलक श्रमबिन्दु सुहाए * श्रवन सुभग भूषन छबि छाए
विकट भृकुटि कच घूघर वारे * नाम सरोज लोचन रतनारे

माथे पर तिलक व पसीने की बूंदें सुशोभित है, कानों में सुन्दर आभूषणों की छवि छा रही है। टेढ़ी भौंहें, घुंघराले बाल, कमल के समान अरुण नेत्र हैं।

चारु चिबुक नासिका कपोला * हास विलास लेत मनु मोला
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं * जो बिलोकि बहु काम लजाहीं

सुन्दर ठोढ़ी, नाक और गाल हैं, हँसी की शोभा मन को मोह लिये लेती है। मुख की शोभा तो मुझसे कही ही नहीं जाती, जिसे देखकर बहुत से कामदेव लज्जित हो जाते हैं।

उर मनिमाल कम्बु कल ग्रीवा * काल कलभ कर भुज बल सींवा
सुमत समेत बाम कर दोना * साँवर कुँअर सखी सुठि लोना

हृदय पर मणियों की माला है, शंख के समान सुन्दर कण्ठ है और कामदेव के हाथी के बच्चे की सूंड़ के समान भुजायें हैं, जो बल की सीमा हैं। जिनके बाँये हाथ में फूल से भरा हुआ दोना है, हे सखी ! वह साँवला कुंवर ही सुन्दर है।

दोहा—केहरि कटि पट पीत धरि, सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहि, बिसरा सखिन्ह अपान ॥२३३॥

सिंह की-सी पतली कमर में पीताम्बर धारण किये, शोभा और शील के स्थान, सूर्य-वंश के भूषण श्रीरामजी को देखकर सखियाँ अपने आप को भूल गईं।

धरि धीरजु एक अली सयानी * सीता सन बोली गहि पानी
बहुरि गोरि कर ध्यान करेहू * भूपकिसोर देखि किन लेहू

धीरज धरकर एक चतुर सखी सीताजी का हाथ पकड़कर बोली—पार्वती का ध्यान फिर करती रहना, राजकुमारों को क्यों नहीं देख लेतीं ?

सकुचि सीय तब नयन उघारे * सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे
नख सिख देखि राम कै सोभा * सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा

तब सीताजी ने सकुचाकर आँखें खोलीं और सामने दो रघुवंशी-सिंहों को देखा। नख से चोटी तक श्रीरामजी की शोभा को देखकर और पिता का स्मरण करके मन को बहुत दुःख हुआ।

परबस सखिन्ह लखी जब सीता * भयउ गहरु सब कहहिं सभीता
पुनि आउब एहि बिरिआँ काली * अस कहि मनि बिहँसी एक आली

सखियों ने जब सीताजी को विवश देखा, तब सब डरकर बोलीं—बहुत देर हो गई है, कल इसी समय फिर आवेंगी। ऐसे कहकर एक सखी मन में हँसी।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी * भयउ बिलम्बु मातु भय मानी
धरि बड़ि धीर रामु उर आने * फिरी अपनपउ पितु बस जाने

सखी की गूढ़ वाणी को सुनकर सीताजी लज्जित हुईं और बिलम्ब हुआ जानकर माता का डर माना। फिर भारी धीरज धर श्रीरामजी को हृदय में ले आईं और अपने को पिता के वश में जानकर लौटीं।

दोहा—देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥२३४॥

पशु-पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने से सीताजी बारम्बार लौटती थीं और श्रीरघुनाथजी की छवि देखकर प्रीति बढ़ती जाती थी।

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति * चली राखि उर स्यामल मूरति
प्रभु जब जात जानकी जानी * सुख सनेह शोभा गुन खानी

शिवजी के धनुष को कठोर जानकर सीताजी दुःख पाती हुई श्रीरामजी की साँवली मूर्ति को हृदय में रखकर चलीं। प्रभु ने जब सुख, स्नेह, गुण की खान जानकी को जाते हुए जाना।

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही * चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही
गईं भवानी भवन बहोरी * बन्दि चरन बोलीं कर जोरी

तब परम प्रेमरूपी उत्तम स्याही से अपने हृदय-पट पर उनका स्वरूप चित्रितकर लिया। सीताजी फिर पार्वतीजी के मन्दिर में गईं और चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोलीं—

जय जय गिरिबरराज किसोरी * जय महेश मुख चन्द्र चकोरी
जय गजबदन षडानन माता * जगत जननि दामिनि दुति गाता

हे गिरिराज-किशोरी पार्वतीजी ! आपकी जय हो। हे शिवजी के मुखरूपी चन्द्रमा की चकोरी ! आपकी जय हो। हे हाथी के मुख वाले गणेशजी व छः मुख वाले स्वामी कार्तिकजी की माता ! हे जगदम्बा ! हे बिजली के समान प्रकाशित शरीर वाली आपकी जय हो।

नहिं तब आदि मध्य अवसाना * अमित प्रभाव बेदु नहिं जाना
भव भव विभव पराभव कारिनि * विश्व विमोह स्वबस बिहारिनि

आपका आदि, मध्य, अन्त नहीं है आपकी महिमाको वेद भी नहीं जानते, आप जगतकी उत्पत्ति, पालन, संहार-कर्त्ता हैं। संसार को मोहित करने वाली, इच्छानुसार बिहार करने वाली हैं।

दोहा—पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस सारदा सेष ॥२३५॥

हे माता ! पति को देवता मानने वाली श्रेष्ठ स्त्रियों में आपकी पहली गिनती है। हजारों सरस्वती और शेषजी भी आपकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते हैं।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी ※ बरदायनी पुरारि पिआरी
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे ※ सुर नर मुनि सब होंहि सुखारे

हे वर देने वाली ! हे त्रिपुरारि शिवजी की प्रियतम ! आपकी सेवा करने से चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवी ! आपकी चरण-सेवा से देवता, मनुष्य, मुनि सब सुखी होते हैं।

मोर मनोरथ जानहु नीकें ※ बसहु सदा उर पुर सबही कें
कीन्हेउँ प्रकट नहिं कारन तेहीं ※ अस कहि चरन गहे बैदेहीं

मेरी मनोकामना तो आप भली-भाँति जानती हैं, क्योंकि आप सदा ही सबके हृदय-मन्दिर में बास करती हैं, इसी कारण मैंने उनको प्रगट नहीं किया। ऐसा कहकर जानकीजी ने पार्वतीजी के चरण पकड़ लिये।

विनय प्रेम बस भई भवानी ※ खसी माल मूरति मुसुकानी
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ ※ बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ

श्रीपार्वतीजी-सीताजी की विनती से प्रेम के वश हो गईं। उनकी माला खिसक पड़ी और मूर्ति मुस्कराई। उसको सीताजी ने आदर सहित सिर पर रख लिया। पार्वतीजी का हृदय आनन्द से भर गया और वे बोलीं—

सुनु सिय सत्य असीस हमारी ※ पूजिहि मन कामना तुम्हारी
नारद बचन सदा सुचि साचा ※ सो बरु मिलिहि जाहि मनु राचा

हे सीताजी ! हमारी सच्ची आशीष सुनो, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। नारदजी का वचन सदा पवित्र और सत्य है, वही वर तुम्हें मिलेगा—जो तुम्हारे मन को भाया है।

छन्द—मनु जाहि राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुन्दर साँवरो।
करुनानिधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मन्दिर चली॥

जिनमें तुम्हारा मन लगा है—वही स्वाभाविक ही सुन्दर साँवला वर तुमको मिलेगा। क्योंकि वह करुणानिधान तथा सर्वज्ञ हैं, वे तुम्हारे शील और स्नेह को जानते हैं। इस भाँति पार्वतीजी की आशीष सुनकर सखियों सहित सीताजी हृदय में प्रसन्न हुईं और तुलसी तथा भवानी को बारम्बार पूजकर प्रसन्न मन से अपने घर को चलीं।

सो०—जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरषु न जाहि कहि।
मंजुल मङ्गल मूल, बाम अङ्ग फरकन लगे॥२३६॥

पार्वतीजी को अनुकूल जानकर सीताजी के हृदय में जो आनन्द हुआ, वह नहीं कहा जा सकता। सुन्दर मङ्गल के मूल बाँये अङ्ग फड़कने लगे।

हृदयँ सराहत सीय लोनाई * गुर समीप गवने दोउ भाई
राम कहा सबु कौसिक पाहीं * सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं

सीताजी की सुन्दरता की मनमें प्रशंसा करते हुए दोनों भाई गुरु के पास गये। श्रीरामजी ने सब हाल विश्वामित्र से कह दिया। क्योंकि वे सरल-स्वभाव के हैं, छल तो उन्हें छूता भी नहीं।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही * पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे * रामु लखनु सुनि भए सुखारे

फूल पाकर मुनि ने पूजा की, फिर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे सब मनोरथ सफल हों। यह सुनकर श्रीराम-लक्ष्मणजी सुखी हुए।

करि भोजनु मुनिवर बिग्यानी * लगे कहन कछु कथा पुरानी
बिगत दिवस गुरु आयसु पाई * सन्ध्या करन चले दोउ भाई

भोजन करके ज्ञानी मुनि कुछ प्राचीन-कथा कहने लगे। दिन बीत जाने पर मुनि की आज्ञा पाकर दोनों भाई सन्ध्या करने चले।

प्राची दिसि ससि उदउ सुहावा * सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं * सीय बदन सम हिमकर नाहीं

पूर्वदिशा में सुन्दर चन्द्रमा उदय हुआ, उसको सीताजी के मुख के समान देखकर श्रीरामजी ने सुख पाया। फिर मन में विचार किया कि सीताजी के मुख के समान यह चन्द्रमा नहीं है।

दोहा—जनमु सिंधु पुनि बन्धु बिषु, दिन मलीन सकलङ्क।
सिय मुख समता पाय किमि, चन्द बापुरो रङ्क॥२३७॥

जन्म खारे समुद्र से, फिर विष इसका भाई, दिन में तेज-हीन, सकलङ्क, ऐसा विचारा चन्द्रमा सीताजी के मुख की बराबरी कैसे कर सकता है?

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई * ग्रसइ राहु निज सन्धिहि पाई
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही * अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही

नित्य घटता-बढ़ता है, विरही लोगों को दुःख देता है, राहु अपनी संधि में पाकर इसे ग्रस लेता है, चकवे को दुःख देने वाला और कमलों का बैरी है। चन्द्रमा! तुझमें बहुत-से अवगुण हैं।

बैदेही मुख पटतर दीन्हे * होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे
सियमुख छबि बिधु ब्याज बखानी * गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी

सीताजी के मुख की तुझसे उपमा देने में अनुचित कर्म करनेका बड़ा दोष होगा। इस तरह सीता जी के मुख की शोभा-चन्द्रमा के बहाने वर्णन कर, बहुत रात गई जान, वे गुरुजी के पास चले।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा * आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा
बिगत निसा रघुनायक जागे * बन्धु बिलोकि कहन अस लागे

मुनि के चरण-कमलों को प्रणाम कर, आज्ञा पाकर विश्राम किया। रात्रि बीतने पर श्रीरघुनाथजी जागे और भाई को देखकर इस प्रकार कहने लगे।

उदय अरुन अवलोकहुँ ताता * पंकज कोक लोक सुखदाता
बोले लखनु जोरि जुग पानी * प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी

हे तात देखो, अरुणोदय हो गया—जो कमल, चकवा व संसार को सुख देने वाला है। यह सुनकर लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव को प्रकट करने वाली मधुर वाणी बोले—

दोहा—अरुनोदयँ सकुचु कुमुद, उडुगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भए नृपति बलहीन ॥२३८॥

जैसे अरुणोदय होने से कुमुदनी सकुचा गई हो और तारागणों की ज्योति मन्द पड़ गई हो। इसी प्रकार आपका आगमन सुनकर राजा लोग निर्बल हो गये हैं।

नृप सब नखत करहिं उजियारी * टारि न सकहिं चाप तम भारी
कमल कोक मधुकर खग नाना * हरषे सकल निसा अवसाना

सब राजा लोग तारों के समान उजाला करेंगे, परन्तु धनुषधारी घोर अन्धकार को दूर नहीं कर सकते। कमल, चकवा, भौंरे, अनेकों पक्षी रात बीत जाने पर प्रसन्न हो गये हैं।

ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे * होइहहिं टूटें धनुष सुखारे
भयउ भानु बिनु श्रम तम नासा * दुरे नखत जग तेज प्रकासा

इसी प्रकार—हे प्रभु ! आपके भक्त धनुष टूटने पर सुखी होंगे। सूर्य के उदय होने से बिना परिश्रम ही अन्धकार का नाश हो गया, तारे छिप गये, संसार में प्रकाश फैल गया।

रबि निज उदय ब्याज रघुराया * प्रभु प्रताप सब नृपन्हि दिखाया
तब भुजबल महिमा उदघाटी * प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी

हे नाथ ! सूर्य ने अपने उदय होने के बहाने से आपका प्रताप सब राजाओं को दिखाया है। आपकी भुजाओं के बल को प्रकट करने के लिए ही धनुष-यज्ञ की प्रथा चली है।

बन्धु बचन सुनि प्रभु मुसकाने * होइ सुचि सहज पुनीत नहाने
नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आए * चरन सरोज सुभग सिर नाए

भाई के वचन सुन प्रभु श्रीरामजी मुस्कराये, फिर नित्य-कर्म से निवृत्त होकर स्वभाव से ही पवित्र श्रीरामजी ने स्नान किया। नित्य-कर्मकर गुरु के पास आये और उनके चरणों में मस्तक नवाया।

सतानन्द तब जनक बोलाए * कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए
जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई * हरषे बोलि लिए दोउ भाई

तब राजा जनक ने शतानन्दजी को बुलाया और तुरन्त विश्वामित्र मुनिके पास भेजा, उन्होंने आकर जनक की विनती सुनाई। विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर दोनों भाइयों को बुलाया।

दोहा—सतानन्द पद बन्दि प्रभु, बैठे गुरु पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बोलाइ ॥२३९॥

शतानन्दजी के चरणों में प्रणामकर प्रभु श्रीरामजी गुरु के पास जा बैठे। तब मुनि ने

कहा हे तात ! चलो जनकजी ने बुला भेजा है ।

मास पारायण—आठवाँ विश्राम।नवान्ह पारायण-दूसरा विश्राम

सीय स्वयम्बर देखिअ जाई * ईस काहि धौ देह बड़ाई
लखन कहा जस भाजनु सोई * नाथ कृपा तव जापर होई

अब सीताजी का स्वयंबर जाकर देखना चाहिए, देखें ईश्वर किसको बड़ाई देता है ? लक्ष्मणजी ने कहा—हे नाथ ! वही यश का पात्र होगा, जिस पर आपकी कृपा होगी ।

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी * दीन्ह असीस सबन्हि सुखमानी
पुनि मुनि बृन्द समेत कृपाला * देखन चले धनुष मखशाला

सब मुनि सुन्दर वाणी सुनकर प्रसन्न हुए, सुख मानकर सबने आशीर्वाद दिया । फिर मुनि-मण्डली सहित कृपालु श्रीरामजी धनुष-यज्ञशाला देखने चले ।

रङ्गभूमि आए दोउ भाई * असि सुधि सब पुरवासिन्ह पाई
चले सकल गृह काज बिसारी * बालक जुवा जरठ नर नारी

रङ्ग-भूमि में दोनों भाई आये हैं, यह समाचार जब नगर-वासियों ने पाया तो सब बालक, युवा, बूढ़े, स्त्री-पुरुष घरों का काम छोड़कर चले ।

देखी जनक भीर भै भारी * सुचि सेवक सब लिए हँकारी
तुरत सकल लोगन्ह पहिं काहू * आसन उचित देहु सब काहू

जनकजी ने देखा कि बड़ी भीड़ हो गई है, तब चतुर सेवकों को बुलाकर कहा—तुरन्त सब लोगों के पास जाओ और सबको यथायोग्य आसन दो ।

दोहा—कहि मृदुवचन विनीततिन्ह, बैठारे नर नारि ।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निजथलअनुहारि ।।२४०।।

उन्होंने विनय पूर्वक मधुर वचन कहकर-उत्तम, मध्यम, नीच, लघु सब स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठाया ।

राजकुअँर तेहि अवसर आए * मनहुँ मनोहरता तन छाए
गुनु सागर नागर वर वीरा * सुन्दर स्यामल गौरि सरीरा

उसी समय राजकुमार आ पहुँचे, मानो मनोहरता उनके शरीर पर छाई हो । वे गुणों के समूह, चतुर शूरवीरों में श्रेष्ठ, सुन्दर, साँवले और गोरे शरीर वाले है ।

राज समाज बिराजत रूरे * उडुगन महुँ जनु जुगबिधु पूरे
जिन्ह कें रही भावना जैसी * प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी

वे राजाओं के समाज में ऐसे सुशोभित थे, जैसे तारागणों में दो पूर्ण-चन्द्रमा हों । जिनकी जैसी भावना थी—उन्होंने प्रभु की मूर्ति उसी रूप में देखी ।

देखहिं रूप महा रनधीरा * मनहुँ वीर रस धरें सरीरा

डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी * मनहुँ भयानक मूरति भारी

बड़े रणधीर राजा ऐसा देख रहे हैं, मानो वीर-रस शरीर धारण किये हो। कुटिल राजा प्रभु को देखकर डरे, मानो बड़ी भयानक मूर्ति हो।

रहे असुर नृप जो छल वेषा * तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई * नर भूषन लोचन सुखदाई

जो असुर छल से राजाओं के वेष में बैठे थे, उन्होंने उन्हें प्रत्यक्ष काल के समान देखा। पुरवासियों ने दोनों भाइयों को मनुष्यों में शिरोमणि और नेत्रों में सुख देने वाले रूप में देखा।

दोहा—नारि बिलोकहिं हरष हियँ, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिङ्गार धरि, मूरति परम अनूप॥२४१॥

स्त्रियां हृदय में प्रसन्न होकर अपनी रुचि के अनुसार देख रही हैं, मानो शृंगार-रस बहुत ही सुन्दर मूर्ति धारण किये शोभायमान हो।

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमत दीखा * बहु मुख पर पग लोचन सीसा
जनक जाति अवलोकहिं कैसे * सजन लगे प्रिय लागहिं जैसे

पण्डितों ने प्रभु को विराट-रूप में देखा, जिनके बहुत से मुख, हाथ, चरण, नेत्र और सिर हैं। जनकजी के सजातियों ने अपने सगे-सम्बन्धियों के समान देखा।

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी * सिसु सम प्रीति न जात बखानी
जोगिन्ह परम तत्वमय भाषा * शाँत शुद्ध सम सहज प्रकासा

जनक सहित रानियाँ उनको पुत्र के समान देखने लगीं, जिनकी प्रीति का बखान नहीं हो सकता। योगियों को शांत, शुद्ध, एक रस, स्वभाव से ही प्रकाशित परम तत्व के रूप में दीखे।

हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता * इष्टदेव सब इव सुखदाता
रामहि चितव भायँ जेहि सीया * सौ सनेहँ सुखु नहिं कथनीया

हरि-भक्तों को दोनों भाई इष्टदेव के समान सब सुख देने वाले जान पड़े और सीताजी श्रीरामजी को जिस भाव से देख रही थीं, वह स्नेह और सुख तो कहा ही नहीं जा सकता।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ * कवन प्रकार कहैं कबि कोऊ
एहि बिधि रहा जाहि जसभाऊ * तेहि तस देखेउ कोसलराऊ

उस स्नेह और सुख का वे हृदय में अनुभव करती थीं, परन्तु उसे कह नहीं सकतीं। फिर कोई कवि उसको किस प्रकार कहे? जिसका जैसा भाव था, उसने श्रीरामजी को वैसा ही देखा।

दोहा—राजत राज समाज महुँ, कोसलराज किशोर।
सुन्दर स्याम गौर तनु, विश्व बिलोचन चोर॥२४२॥

साँवले और गोरे शरीर वाले तथा संसार के नेत्रों को चुराने वाले अयोध्या-नरेश के कुमार राज-सभा में सुशोभित हैं।

सहज मनोहर मूरति दोऊ * कोटि काम उपमा लघु सोऊ
सरद चन्द निन्दक मुख नीके * नीरज नयन भावते जीके

दोनों के रूप सहज ही मन को हरने वाले हैं, करोड़ों कामदेवों की उपमा भी उनके आगे तुच्छ है। शरद के पूर्ण-चन्द्र को लजाने वाला सुन्दर मुख, कमल के समान-मन भावने नेत्र हैं।

चितवनि चारु मार मनु हरनी * भावति हृदय जाति नहिं बरनी
कल कपोल श्रुति कुण्डल लोला * चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला

कामदेव के घमण्ड को हरने वाली सुन्दर चितवन मन को भली लगती है, परन्तु वाणी से कही नहीं जा सकती। सुन्दर गालों पर कानों के कुण्डल झूल रहे हैं, सुन्दर ठोड़ी और होठ हैं तथा मधुर वाणी है।

कुमुद बन्धु कर निंदक हासा * भृकुटी विकट मनोहर नासा
भाल विसाल तिलक झलकाहीं * कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं

चन्द्रमा की किरणों को लजाने वाली हँसी, कमान के समान टेढ़ी भौंहें व मनोहर नासिका है। चौड़े मस्तक पर तिलक झलक रहा है, बालों को देखकर भौंरों की पाँति लजा रही है।

पीत चौतनीं सिरन्ह सुहाई * कुसुम कली बिच बीच बनाई
रेखें रुचिर कम्बु कल गीवाँ * जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ

पीली चौकोन टोपी सिरों पर सुशोभित हैं, जिन पर फूलों की कलियाँ बनी हुई हैं शंख के तुल्य सुन्दर कण्ठ में मनोहर तीन रेखायें हैं, जो मानो तीनों लोकों की सुन्दरता की सीमा हैं।

दोहा—कुञ्जर मनि कण्ठा कलित, उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कन्ध केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु विसाल ॥२४३॥

हृदयों पर गज-मुक्ताओं के कण्ठे व तुलसी की माला सुशोभित हो रही हैं। बाघों के से ऊँचे कन्धे, सिंह की-सी चाल और बल की समुद्र जैसी लम्बी भुजायें हैं।

कटि तूनीर पीतपट बाँधे * कर सर धनुष बाम वर काँधे
पीत जग्य उपवीत सुहाए * नख सिख मंजु महाछबि छाए

कमर में तरकस व पीताम्बर बाँधे, हाथों में बाण और कन्धे पर धनुष तथा पीले जनेऊ शोभायमान हैं। नख से चोटी तक सब अङ्ग महान् शोभा से छाये हुए हैं।

देखि लोग सब भए सुखारे * एकटक लोचन चलत न तारे
हरषे जनकु देखि दोउ भाई * मुनिपद कमल गहे तब जाई

उन्हें देखकर सब लोग सुखी हुए। नेत्र एक टक हैं, तारे भी नहीं चलते। राजा जनक दोनों भाइयों को देखकर प्रसन्न हुए। तब उन्होंने मुनि के चरणकमल जाकर पकड़े।

करि विनती निज कथा सुनाई * रङ्ग अबनि सब मुनिहि देखाई
जहँ जहँ जाहि कुअँर वर दोऊ * तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ

विनती करके अपनी कथा सुनाई, रङ्ग-भूमि की रचना मुनि को दिखाई। जहाँ २ दोनों

राजकुमार जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब लोग चकित होकर देखने लग जाते हैं।

निज निज रुख रामहि सब देखा * कोउ न जान कछु मरम बिसेषा
भलि रचना मुनि नृपसन कहेउ * राजा मुदित महासुख लहेऊ

अपनी-अपनी ओर ही मुख किये सब लोगों ने श्रीरामजी को देखा, परन्तु यह भेद किसी ने नहीं जाना। मुनि ने राजा से कहा—रंग भूमि की रचना बहुत सुन्दर है, यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए और बड़ा सुख पाया।

दोहा—सब मञ्चन्ह ते मञ्च एक, सुन्दर बिसद विसाल।
मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ, बैठारे महिपाल ॥२४४॥

सब मंचों से सुन्दर, एक उज्ज्वल और विशाल मंच था, उस पर राजा ने मुनि समेत दोनों भाइयों को बैठाया।

प्रभुहि देखु सब नृप हियँ हारे * जनु राकेस उदय भए तारे
असि प्रतीति सबके मन माहीं * राम चाप तोरव सक नाहीं

प्रभु को देख सब राजा मनमें ऐसे निराश होगये जैसे चन्द्रमा के उदय होने से तारे मन्द होजाते हैं, सबके मनमें ऐसा विश्वास हो गया कि श्रीरामजी धनुष को अवश्य तोड़ेंगे, इसमें संदेह नहीं।

बिनु भंजेहुँ भव धनुष विसाला * मेलेहिं सिय राम उर माला
अस विचारि गवनहु घर भाई * जसु प्रताप बलु तेज गँवाई

शिवजी के इस बड़े धनुष को तोड़े बिना भी सीताजी श्रीरामजी के गले में ही जयमाला डालेंगी। ऐसा विचार कर यश, प्रताप,बल और तेज को गंवाकर अपने-अपने घर को चल दिये।

बिहँसे अपर भूप सुनि बानी * जे अविवेक अन्ध अभिमानी
तोरेहुँ धनुष ब्याहु अवगाहा * बिनु तोरें को कुँवरि विआहा

यह बात सुन दूसरे राजा, जो अज्ञान से अंधे और घमण्डी थे, हँसे और बोले-धनुष तोड़ने पर भी विवाह होना कठिन है, फिर बिना धनुष तोड़े तो राजकुमारी को ब्याह ही कौन सकता?

एक बार कालउ किन होऊ * सियहित समर जितव हमसोऊ
यह सुनि अपर महिप मुसुकाने * धरम सील हरिभगत सयाने

एक बार चाहे काल ही क्यों न हो, हम सीता के लिए उसे भी जीतेंगे। यह सुनकर अन्य धर्मात्मा हरि-भक्त और चतुर राजा हँसकर कहने लगे।

सो०—सीय विआहबि राम, गरब दूरि करि नृपन्हके।
जीति को सक संग्राम, दसरथ के रन बाँकुरे ॥२४५॥

राजाओं के घमण्ड को दूर करके श्रीरामचन्द्रजी-सीताजी को ब्याहेंगे। दशरथ के रण-बाँकुरे पुत्रों को संग्राम में जीत ही कौन सकता है?

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई * मन मोदकन्हि न भूख बुझाई
सिख हमारि सुनि परम पुनीता * जगदम्बा जानहु जिहँ सीता

व्यर्थ ही गाल बजाकर मत मरो, मन के लड्डुओं से भूख शान्त नहीं होती। हमारी परम पवित्र शिक्षा को सुनकर अपने हृदय में सीताजी को जगत्माता जानो।

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी * भरि लोचन छबि लेहु निहारी
सुन्दर सुखद सकल गुनरासी * ए दोउ बन्धु सम्भु उर बासी

श्रीरघुनाथजी को जगत्पिता समझकर नेत्र भरकर इनकी छबि को देखो। सुन्दर सुख देने वाले और सब गुणों के धाम—ये दोनों भाई शिवजी के हृदय में वास करते हैं।

सुधा समुद्र समीप बिहाई * मृग जलु निरखि मरहु कत धाई
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा * हम तौ आजु जनम फलु पावा

पास ही अमृत के समुद्र को छोड़कर, मृग-तृष्णा के जल को देख दौड़कर क्यों मरने जाते हो? जिसे जो अच्छा लगे सो करो, हमने तो आज जन्म लेने का फल प्राप्त कर लिया।

अस कहि चले भूप अनुरागे * रूप अनूप बिलोकन लागे
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना * बरषहिं सुमन करहिं कल गाना

इस प्रकार कहकर साधु-राजा प्रेम-मग्न हो गये और अनुपम रूप को देखने लगे। देवता भी आकाश में विमानों पर चढ़े हुए देख रहे थे और पुष्प बरसाते हुए मधुर गीत गा रहे थे।

दोहा—जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चलीं लिवाइ ॥२४६॥

तब राजा जनक ने शुभ अवसर जानकर सीताजी को बुलवाया, तो सब चतुर और सुन्दर रूप वाली सखियाँ आदर सहित उन्हें लिवाकर ले चलीं।

सिय शोभा नहिं जाइ बखानी * जगदम्बिका रूप गुन खानी
उपमा सकल मोहि लघु लागीं * प्राकृत नारि अङ्ग अनुरागीं

सीताजी की शोभा वर्णन नहीं की जा सकती, क्योंकि वे जगत् की माता और रूप व गुणों की खान हैं। सब उपमायें मुझको तुच्छ जान पड़ती हैं, क्योंकि वे सब संसारी-स्त्रियों के अङ्गों में लग चुकी हैं।

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई * कुकबि कहाइ अजसु को लेई
जौं पटतरिअ तीय सम सीया * जग असि जुवती कहाँ कमनीया

सीताजी के वर्णन में उन उपमाओं को देखकर, 'कुकवि' कहकर कौन अपयश लेगा? जिस किसी स्त्री के साथ सीताजी की उपमा दी भी जाय, तो संसार में ऐसी मनोहर युवती कहाँ है।

गिरा मुखर तनु अरध भवानी * रति अति दुखित अतनु पति जानी
बिष बारुनी बन्धु प्रिय जेही * कहिअ रमा सम किमि बैदेही

सरस्वतीजी बहुत बोलने वाली हैं, पार्वतीजी अर्द्धाङ्गिनी हैं (उनका आधा अंग शिवजी का है), रति-पति को 'अनङ्ग' जानकर बहुत दुःखी रहती हैं। विष तथा वारुणी जिनके प्रिय भाई हैं—उन लक्ष्मीजी को सीताजी के समान कैसे कहा जा सकता है?

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई * परम रूपमय कच्छुप सोई
सोभा रजु मन्दरु सिंगारू * मथै पानि पँकज निज मारू

जो छविरूपी अमृत का समुद्र हो और दिव्य-रूप का कछुआ हो, शोभारूपी रस्सी हो, शृङ्गार-रूपी मन्दराचल हो, और कामदेव स्वयं अपने कर-कमलों से मथे।

दोहा—इहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सँकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल ॥२४७॥

इस प्रकार जब सुन्दरता और सुख की मूल 'श्रीलक्ष्मीजी' उत्पन्न हों, तभी कवि लोग सीताजी को संकोच के साथ लक्ष्मीजी के समान कह सकते हैं।

चली सङ्ग लै सखी सयानी * गावत गीत मनोहर बानी
सोह नवल तन सुन्दर सारी * जगत जननि अतुलित छबि भारी

चतुर सखियाँ सीताजी को साथ लेकर मनोहर वाणी से सुन्दर गीत गाती हुई चलीं। नवल-शरीर पर सुन्दर साड़ी शोभायमान थी, जगत्माता सीताजी की शोभा अतुलनीय है।

भूषन सकल सुदेस सुहाए * अङ्ग अङ्ग छबि सखिन्ह बनाए
रङ्गभूमि जब सिय पगु धारी * देखि रूप मोहे नर नारी

सभी गहने अंगों में सुशोभित हैं, जिन्हें अङ्गों में सजाकर सखियों ने पहिनाये है। रंग-भूमि में सीताजी ने चरण रक्खा, तो रूप को देखकर सब स्त्री-पुरुष मोहित हो गये।

हरषि सुरन्ह दुन्दुभी बजाईं * बरषि प्रसून अप्सरा गाईं
पानि सरोज सोह जयमाला * अवचट चितए सकल भुआला

देवताओं ने हर्षित होकर नगाड़े बजाये, पुष्प बरसाकर अप्सरायें गाने लगीं। सीताजी के कर-कमलों में जयमाला सुशोभित है। सीताजी ने अचानक सभी राजाओं की ओर देखा, (दृष्टि को रोका नहीं)।

सीय चकित चित रामहि चाहा * भए मोह बस सब नर नाहा
मुनि समीप देखे दोउ भाई * लगे ललकि लोचन निधि पाई

सीताजी चकित चित्त से श्रीरामजी को देखने लगीं, सब राजा मोह के वश होगये, फिर मुनि के पास बैठे दोनों भाइयों को देखा। तो दोनों नेत्र मानो अपनी निधि पाकर वहीं स्थिर रह गये।

दोहा—गुरुजन लाज समाजु बड़, देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तनु, रघुबीरहि उर आनि ॥२४८॥

गुरुजनों की लाज से और बड़े समाज को देखकर सीताजी सकुचाईं। वे श्रीरघुनाथजी को हृदय में रखकर सखियों की ओर देखने लगीं।

राम रूप अरि सिय छबि देखें * नर नारिन्ह परिहरी निमेषें
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं * बिधिसन बिनय करहिं मनमाहीं

श्रीरामजी के रूप और सीताजी की शोभा को देखकर नर-नारियों ने पलक मारना छोड़

दिया सब सोचते थे, पर कहते हुए सकुचाते थे, मन में विधाता से प्रार्थना करते थे–

हरु विधि बेग जनय जड़ताई * मति हमारि जसि देहु सुहाई
बिनु बिचारि पनि तजि नरनाहू * सीय राम कर करै बिबाहू

हे विधाता ! जनकजी के हठ को शीघ्र दूर करो, उन्हें हमारी-सी स्वच्छ-निर्मल बुद्धि दो। जिससे बिना विचार किये, अपने प्रण को छोड़कर सीताजी का श्रीरामजी से विवाह कर दें।

जगु भल कहहि भाव सब काहू * हठ कीन्हे अन्तहुँ उर दाहू
एहिं लालसा मगन सब लोगू * बरु साँवरो जानकी जोगू

जगत उन्हें भला कहेगा, क्योंकि यह सबको भला ही लगेगा, हठ करने से अन्त में हृदय में दुःख होगा। इसी लालसा से सब लोग मग्न थे कि साँवला वर ही जानकी जी के योग्य है।

तब बन्दीजन जनक बोलाए * बिरदावली कहत चलि आए
कह नृप जाइ कहहु पनु मोरा * चले भाट हियँ हरषु न थोरा

तब जनकजी ने बन्दीजनों को बुलाया, तो वे पूर्वजों का यश गाते हुए चले आये। राजा ने कहा–जाकर मेरा प्रण सब राजाओं को सुनादो, तब भाट हृदय में प्रसन्न होकर चले।

दोहा–बोले बन्दी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल ॥२४९॥

भाट श्रेष्ठ वचन बोले–हे समस्त राजा लोगो ! सुनो–हम अपनी विशाल-भुजाओं को उठाकर महाराज जनकजी का प्रण तुमको सुनाते हैं–

नृप भुजबलु बिधु शिवधनु राहू * गरुप कठोर बिदित सब काहू
रावनु बानु महाभट भारे * देखि सरासन गँवहि सिधारे

राजाओं की भुजाओं के बलरूपी चंद्रमा के लिए-शिवजी का यह धनुष राहू के समान है। यह जितना भारी और कठोर है–यह सबको भली-भाँति विदित है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुष को देखकर चुपचाप लौट गये।

सोइ पुरारि को दण्डु कठोरा * राज समाज आज सोइ तोरा
त्रिभुवन जय समेत बैदेही * बिनहि बिचारि बरइ हठि तेई

उस शिवजी के कठोर धनुष को जो आज इस राजसमाज में तोड़ेगा, उसे ही तीनों लोक की विजय सहित श्रीजानकीजी बिना विचारे ही हठ पूर्वक बरेंगी।

सुनि पनु सकल भूप अभिलाषे * भट मानी अतिसय तन माखे
परिकर बाँधि उठे अकुलाई * चले इष्टदेवन्ह सिर नाई

प्रण को सुनकर सब राजा ललचा उठे। जो अभिमानी राजा थे, वे क्रोधित होकर कमर कसकर घबड़ाकर उठे। और अपने २ इष्टदेवों को सिर नवाकर चले।

तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं * उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं
जिन्हके कछु बिचारु मनमाहीं * चाप समीप महीप न जाहीं

वे तमक कर शिव धनुष को देखते, पकड़ते और करोड़ों प्रकार से बल करते हैं, तो भी धनुष नहीं उठता। जिन राजाओं के मन में कुछ ज्ञान है, वे धनुष के पास भी नहीं जाते।

दोहा—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु, अधिकु अधिकु गरुआइ ॥२५०॥

मूर्ख राजा झुंझला कर धनुष को पकड़ते हैं, जब नहीं उठता तो लजाकर चल देते हैं। मानों वीरों की भुजाओं का बल पाकर धनुष भारी होता जा रहा है।

भूप सहस दस एकहिं बारा * लगे उठावन टरइ न टारा
डगइ न सम्भु सरासन कैसें * कामी बचन सती मन जैसें

फिर दस हजार राजा एक साथ मिलकर धनुष को उठाने लगे, परन्तु वह टाले नहीं टलता। शिवजी का वह धनुष कैसे नहीं डिगता-जिस प्रकार कामी पुरुष के वचनों से पतिव्रता स्त्री का मन नहीं डिगता।

सब नृप भए जोग उपहासी * जैसें बिनु बिराग सन्यासी
कीरति बिजय बीरता भारी * चले चाप कर बरबस हारी

सब राजा हँसी के योग्य होगये, जिस प्रकार बिना वैराग्य के सन्यासी हँसी के योग्य हो जाता है। वे उस धनुष के हाथों अपना २ यश और शूरवीरता हारकर चले गये।

श्रीहत भए हारि हियँ राजा * बैठे निज निज जाइ समाजा
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने * बोले बचन रोष जनु साने

राजा लोग हृदय में हार मानकर, कान्तहीन होकर अपने २ समाज में जा बैठे। उन राजाओं को असफल देखकर जनकजी घबड़ाये और ऐसे बचन बोले—मानो क्रोध से भरे हैं।

द्वीप द्वीप के भूपति नाना * आए सुनि हम जो पनु ठाना
देव दनुज धरि मनुज सरीरा * बिपुल बीर आए रनधीरा

द्वीप-द्वीप के अनेकों राजा मैंने जो प्रण किया है, उसे सुनकर आये हैं, देवता और दानव भी मनुष्य-शरीर धारण करके आये हैं, तथा बहुत से रणधीर वीर भी आये हैं।

दोहा—कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहारि बिरञ्चि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥२५१॥

परन्तु धनुष को तोड़कर-मनोहर राजकुमारी, महान् विजय और बहुत ही सुन्दर कीर्ति को पाने वाला मानों ब्रह्मा ने रचा ही नहीं।

कहहु काहि यहु लाभु न भावा * काहु न शंकर चाप चढ़ावा
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई * तिलु भरि भूमि न सके छुड़ाई

कहो—किसी को भी यह लाभ अच्छा नहीं लगा, जो किसी ने भी शिव-धनुष को नहीं चढ़ाया? हे भाई! चढ़ाना व तोड़ना तो दूर रहा, कोई तिल भर भी भूमि से अलग न कर सका।

अब जनि कोउ माखै भटमानी * बीर बिहीन मही मैं जानी

तजहु आस निज निज गृह जाहू * लिखा न विधि बैदेही विबाहू

अब कोई भी अपने को योद्धा न कहे, मैंने जान लिया कि पृथ्वी वीरों से खाली होगई। अब आप आशा छोड़कर अपने २ घर जाओ, विधाता ने जानकी का विवाह लिखा ही नहीं।

सुकृत जाइ जौं पुनि हरि हरऊँ * कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ
जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई * तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई

जो अपने प्रणको छोड़ता हूँ, तो पुण्य क्षीण होते हैं, क्या करूँ ? कन्या क्वारी हो रहेगी। हे भाई। जो मैं यह जानता कि पृथ्वी वीरों से हीन होगई है, तो प्रण करके अपनी हँसी न कराता।

जनक बचन सुनि सब नर नारी * देखि जानकिहि भए दुखारी
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें * रदपट फरकत नयन रिसौंहें

जनकजी के वचन सुनकर सब नर-नारी सीताजी को देखकर दुःखी हुए। लक्ष्मणजी को क्रोध हो आया, भौंहे टेढ़ी हो गई, होठ फड़कने लगे और आंखें क्रोध से लाल होगई।

दोहा—कहि न सकत रघुवीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पदकमल सिर, बोले गिरा प्रमान ॥२५२॥

श्रीरामजी के डर से कुछ कह भी न सके, परन्तु जनकजी के वचन उन्हें वाण के समान लगे। श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाकर समयानुकूल वचन बोले—

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई * तेहिं समाजु अस कहइ न कोई
कही जनक असि अनुचित बानी * बिद्यमान रघुकुल मनि जानी

रघुवंशियों में से जहाँ कोई भी होता है, उस समाज में ऐसे कठोर वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन जनकजी ने रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी के उपस्थित होते हुए कहे हैं।

सुनहु भानुकुल पङ्कज भानू * कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू
जौं तुम्हार अनुसासन पावौं * कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं

हे सूर्यकुल-कमल भास्कर ! सुनिये मैं अपने स्वभाव से ही कहता हूँ, कुछ अभिमान से नहीं। जो आपकी आज्ञा पाऊं, तो गेंद के समान ब्रह्माण्ड को उठा लूं।

काचे घट जिमि डारौं फोरी * सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी
तव प्रताप महिमा भगवाना * को बापुरो पिनाक पुराना

और कच्चे घड़े के समान फोड़ डालूं तथा सुमेरु पर्वत को मूली के समान उखाड़ लूँ। हे भगवन् ! आपके प्रताप की महिमा के आगे यह विचारा पुराना धनुष तो चीज ही क्या है?

नाथ जानि अस आयसु होऊ * कौतुक करउँ बिलोकिअ सोऊ
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं * जोजन सत प्रमान लै धावौं

हे नाथ ! ऐसा जानकर यदि आज्ञा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिये कमल की डन्डी के समान धनुष को चढ़ाऊँ और सौ योजन तक लेकर दौड़ा चला जाऊँ।

दोहा—तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तब प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभुपद सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ ॥२५३॥

हे नाथ ! आपके प्रताप के बल से सर्प की छत्री के समान तोड़ डालूं। जो ऐसा न करूँ तो हे प्रभु ! आपके चरणों की शपथ खाकर कहता हुं कि फिर मैं हाथ में धनुष धारण नहीं करूँगा।

लखन सकोप वचन जे बोले * डगमगानि महि दिग्गज डोले
सकल लोक सब भूप डराने * सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने

लक्ष्मणजी ने जब क्रोधित हो यह वचन कहे, तब पृथ्वी हिलने लगी और दिशाओं के हाथी काँप उठे। सबलोक और राजा डर गये सीताजीके मनमें प्रसन्नताहुई और जनकजी सकुचा गये।

गुरु रघुपति सब मुनिमन माहीं * मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे * प्रेम समेत निकट बैठारे

गुरु विश्वामित्रजी, रघुनाथजी और सब मुनिजन मन में प्रसन्न हुए और बारम्बार पुलकित होने लगे। श्रीरामजी ने नेत्रों के संकेत से लक्ष्मणजी को मना किया और प्रेम से अपने पास बैठा लिया।

विश्वामित्र समय शुभ जानी * बोले अति सनेह मय बानी
उठहु राम भँजहु भव चापा * मेटहु तात जनक परितापा

विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर बड़ी प्रेम भरी वाणी से बोले—हे राम ! उठो, शिवजी के धनुष को तोड़ो और जनकजी के सन्ताप को दूर करो।

सुनि गुरु वचन चरन सिरु नावा * हरषु विषादु न कछु उर आवा
ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ * ठवनि जुवाँ मृगराज लजाएँ

गुरु के वचन सुनकर चरणों में सिर नवाया, उनके मनमें हर्ष व शोक कुछ भी न हुआ। वे अपने सहज स्वभाव से खड़े होने की शान से जवान सिंह को लज्जित करते थे।

दोहा—उदित उदयगिरि मञ्च पर, रघुवर बाल पतङ्ग।
बिकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन भृङ्ग ॥२५४॥

उदयाचलरूपी मन्च पर बाल-सूर्य-रूपी श्रीरामचन्द्रजी के उदय होते ही सन्तजन-रूपी कमल खिल गये और भौंरा रूपी नेत्र प्रसन्न हुए।

नृपन्ह केहि आसा निसि नासी * वचन नखत अवली न प्रकासी
मानी महिप कुमुद सकुचाने * कपटी भूप उलूक लुकाने

राजाओं की आशारूपी रात्रि नष्ट होगई, उनके दुर्वचनरूपी नक्षत्रों का प्रकाश नहीं रहा। घमण्डी राजा कमोदनी के समान सिकुड़ गये तथा कपट-वेषधारी उल्लू के समान छिप गये।

भए बिसोक कोक मनि देवा * बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा
गुरु पद बन्दि सहित अनुरागा * राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा

चकवारूपी मुनि और देवता शोक रहित हो, फूल वर्षा कर अपनी सेवा जताने लगे। गुरु

के चरणों की वन्दना कर, प्रेम सहित मुनियों ने आज्ञा माँगी ।

सहजहिं चले सकल जग स्वामी * मत्त मंजु वर कुञ्जर गामी
चलत राम सब पुर नर नारी * पुलक पूरि तन भए सुखारी

जगत के स्वामी श्रीरामजी सुन्दर मतवाले हाथी के समान चाल से स्वाभाविक ही चले । श्रीरामजी के चलते ही सब नगर के नर-नारी रोमांच से भर गये और सुखी हुए ।

बन्दि पितर सुर सुकृति सँवारे * जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे
तौ सिवधनु मनाल को नाईं * तोरहिं रामु गनेश गोसाईं

उन्होंने पितर और देवताओं की वन्दना कर अपने सत्कर्मों को याद किया कि यदि हमारे—पुण्यों का कुछ प्रभाव हो तो—हे गणेश गुसाँई ! श्रीरामजी-शिवजी के धनुष को कमल की डण्डी के समान तोड़ डालें ।

दोहा—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समेत बोलाइ ।
सीता मातु सनेहु बस, वचन कहइ बिलखाइ ॥२५५॥

श्रीराचन्द्रजी को प्रेम सहित देख कर और सखियों को बुला कर सीताजी की माता स्नेह वश बिलख कर यह वचन बोलीं ।

सखि सब कौतुक देखनिहारे * जेउ कहावत हितू हमारे
कोउ न बुझाइ कहइ गुरु पाहीं * ए बालक असि हठ भलिनाहीं

हे सखियो ! ये तमाशा देखने वाले—जो हमारे हितैषी कहलाते हैं, उनमें से कोई भी गुरु से समझाकर यह नहीं कहता कि यह बालक हैं, ऐसा हठ अच्छा नहीं है ।

रावनु बानु छुआ नहिं चापा * हारे सकल भूप करि दापा
सो धनु राजकुवँर कर देहीं * बाल मराल कि मन्दर लेहीं

रावण और बाणासुर—जिन्होंने धनुष को छुआ तक नहीं, सब राजा बल करके हार गये, वही धनुष इन राजकुमारों के हाथों में देते हैं । क्या हंस का बच्चा भी मंदराचल को उठा सकता है ।

भूप सयानप सकल सिरानी * सिख विधि गति कछु जाति न जानी
बोली चतुर सखी मृदुबानी * तेजवन्त लघु गनिअ न रानी

राजा की चतुरता जाती रही, हे सखी ! ब्रह्मा की गति कुछ जानी नहीं जाती । यह सुन चतुर सखी मधुर वाणी से बोलीं—हे रानी ! तेजस्वी लोगों को छोटा नहीं समझना चाहिए ।

कहँ कुम्भज कहँ सिंधु अपारा * सोषेउ सुजसु सकल संसारा
रविमण्डल देखत लघु लागा * उदयँ तासु त्रिभुवन तम भागा

कहां तो छोटे-से अगस्त्य मुनि और कहाँ अपार समुद्र तो भी उन्होंने उसे सोख लिया जिससे सब संसार में उनका सुयश फैल रहा है । सूर्य-मण्डल देखने में छोटा प्रतीत होता है। परन्तु उसके उदय होने पर त्रिलोक का अन्धकार दूर हो जाता है ।

दोहा—मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरिहरि सुर सर्व ।

महामत्त गजराज कहुँ, बस कर अंकुस खर्व ॥२५६॥

मन्त्र बहुत छोटा है, परन्तु उसके आधीन-ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब देवता हैं। महा मतवाले गजराज को छोटा-सा अंकुश वश में कर लेता है।

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे * सकल भुवन अपने बस कीन्हे
देवि तजि संसय अस जानी * भँजव धनुष राम सुनु रानी

कामदेव ने फूलों का ही धनुष लेकर सब भुवनों को अपने वश में कर रक्खा है। हे देवि! ऐसा जानकर संशय त्याग दो। हे रानी! सुनो, वह धनुष श्रीरामजी ही तोड़ेंगे।

सखी वचन सुनि भै परतीती * मिटा विषादु बढ़ी अति प्रीती
तब रामहिं बिलोकि बैदेही * समय हृदयँ बिनवति जेहि तेही

सखी के वचन सुन रानी को विश्वास हुआ, विषाद मिट गया और श्री रामजी के प्रति बहुत प्रेम बढ़ा। उसी समय श्रीरामजी को देखकर सीताजी मन में डरती हुई जिस तिस देवता की विनती करने लगीं–

मन ही मन मनाव अकुलानी * होइ प्रसन्न महेश भवानी
करहु सकल आपनि सेवकाई * करि हितु हरहु चाप गरुआई

वे मन ही मन घबड़ा गईं और बोलीं–हे शिव-पार्वती! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, मैंने जो आपकी सेवा की है, उसे सफल कीजिए। हित करके धनुष का भारीपन हर लीजिए।

गननायक बरदायक देवा * आजु लगें कीन्हिउ तुअँ सेवा
बार बार बिनती सुनि मोरी * करहु चाप गरुता अति थोरी

हे वर देने वाले देवता गणेशजी! आज तक इसी हेतु मैंने आपकी सेवा की है। बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुष का भारीपन बहुत कम कर दीजिये।

दोहा–देखि देख रघुबीर तनु, सुन मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली शरीर ॥२५७॥

श्री रघुनाथ जी को देख-देखकर धीरज धर-वे देवताओं को मनाने लगीं। नेत्रों में जल भर आया और शरीर प्रफुल्लित हो गया।

नीकें निरखि नयन भरि शोभा * पितु पनि सुमिरि बहुरि मनु छोभा
अहह तात दारुन हठ ठानी * समुझत नहिं कछु लाभ न हानी

भली-भांति नेत्रभर निहारकर श्रीरामजीकी शोभा देखी, परन्तु पिताके प्रणको यादकर फिर मन क्षुब्ध हो गया। पिताजी ने कठिन हट ठाना है, ये कुछ लाभ और हानि नहीं समझते हैं।

सचिव सभय सिखु देइ न कोई * बुध समाज बड़ अनुचित होई
कहँ धनु कुलसहु चाहि कठोरा * कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा

मंत्री भी भयके कारण कोई सीख नहीं देते, विद्वजनों की सभामें यह बड़ा अनुचित हो रहाहै। कहाँ तो यह वज्र से कठोर धनुष और कहाँ यह श्यामसुन्दर कोमल अङ्ग के किशोर हैं?

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा * सिरस सुमन कत बेधिअ हीरा
सकल सभा कै मति भइ भोरी * अब मोहि सम्भु चाप गति तोरी

हे विधाता ! मैं किस प्रकार मन में धैर्य धरूँ, सिरस के फूल से कैसे हीरा वेधा जायगा। सारी सभा की बुद्धि भूल गई है, हे शिव धनुष ! अब मैं तेरी शरण में हूं ।

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी * होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी
अति परिताप सीय मन माहीं * लव निमेष जुग सत सम जाहीं

अपनी कठोरता लोगों पर डालकर श्रीरामचन्द्रजी की ओर देखकर हल्के हो जाओ। सीताजी के मनमें बहुत दुःख हुआ, तब लव-निमेष मात्र भी सौ युगों के समान बीतने लगा।

दोहा—प्रभुहि चितइ पुनि चितब महि, राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुगु, जनु बिधिमण्डलडोल ॥२५८॥

प्रभु श्रीरामजी की ओर देख, फिर पृथ्वी की ओर देखती हुई जानकीजी के चंचल नेत्र ऐसे सुशोभित होरहे हैं, मानो चन्द्र-मंडल रूपी डोल में कामदेवरूपी मछलियाँ खेल रही हों।

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी * प्रगट न लाज निसा अवलोकी
लोचन जल रह लोचन कोना * जैसें परम कृपन कर सोना

सीताजी के मुखरूपी कमल ने लाजरूपी रात को देख वाणीरूपी भ्रम को रोक लिया है। नेत्रों का जल नेत्र के कोनों में ही रहगया, जैसे किसी कंजूसका सोना कानों में गढ़ा रहजाता है।

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी * धरि धीरज प्रतीति उन आनी
तन मन वचन मोर पन साँचा * रघुपति पद सरोज चितु राँचा

सीताजी अपनी व्याकुलता जान सकुचाई फिर मनमें धैर्यधर विश्वास लाई कि यदितन,मन वचन से मेरा प्रण सच्चा है और श्रीरघुनाथजी के चरणारविंदों में मेरा मन वास्तव में लगा है।

तौ भगवानु सकल उर बासी * करिहि मोहि रघुपति कै दासी
जेहि कैं जेहि पर सत्य सनेहू * सो तेहि मिलन न कछु सन्देहू

तो सबके हृदय में वास करने वाले प्रभु, मुझे श्रीरघुनाथजी की दासी बनायेंगे। जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसको मिलता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।

प्रभु तन चितइ प्रेम पनु ठाना * कृपानिधान राम सबु जाना
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें * चितव गरुण लघु व्यालहि जैसें

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की ओर देखकर प्रेम का प्रण ठान लिया। कृपानिधान श्रीरामचन्द्र जी ने सब जान लिया और सीताजी की तरफ देखकर धनुष को ऐसे देखा—जैसे गरुण छोटे सांप को देखता है ।

दोहा—लखन लखेउ रघुवंसमनि, ताकेउ हर को दण्डु ।
पुलकि गात बोले वचन, चरन चापु ब्रह्माण्डु ॥२५९॥

जब लक्ष्मणजी ने देखा कि श्रीरामजी ने शिवजी के धनुष की ओर ताका है, तब

पुलकित हो पृथ्वी को चरणों से दबाकर इस प्रकार बोले—

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला * धरहु धरनि धरि धीर न डोला
राम चहहि शंकर धनु तोरा * होहु सजग सुनि आयसु मोरा

रे दिग्गजो, कच्छप, शेषनाग, बाराह, ! तुम धैर्य धरकर पृथ्वी को धारण किये रहना, कहीं हिल न जाय। श्रीरामजी शिव-धनुष तोड़ना चाहते हैं,मेरी आज्ञा सुन तुम सावधान हो जाओ।

चाप समीप रामु जब आए * नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए
सब कर संसय अरु अग्यानू * मन्द महीपन्ह कर अभिमानू

धनुष के पास जब श्रीरामचन्द्रजी आये, तब सब स्त्री-पुरुषों ने देवताओं और पुण्योंको मनाया। तब स्त्री-पुरुषों का सन्देह और अज्ञान एवं मूर्ख राजाओं का अभिमान तथा—

भृगुपति केरि गरब गरुआई * सुर मुनिवृन्द केरि कदराई
सिय कर सोचु जनक पछितावा * रानिन्ह कर दारुन दुख पावा

परशुरामजी के अहंकार की गरुता, देवताओं और मुनिवरों की घबराहट, सीताजी का सोच, जनकजी का पछतावा, रानियों का कठिन दुःखरूपी दावानल आदि—

सम्भु चाप बड़ बोहित पाई * चढ़े जाइ सब संगु बनाई,
राम बाहुबल सिंधु अपारू * चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू

यह सब शिवजी के धनुषरूपी जहाज को पाकर एक साथ उस पर जा चढ़े। वे श्रीराम की भुजाओं के बलरूपी अपार समुद्र के पार जाना चाहते हैं पर कोई मल्लाह नहीं।

दोहा—राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेषि ॥२६०॥

श्रीरामचन्द्रजी ने सब लोगों को देखा तो उन्हें चित्र-लिखे से दीखे। जब कृपानिधान प्रभु ने सीताजी की ओर देखा तो उन्हें बहुत बिकल जाना।

देखी विपुल विकल बैदेही * निमिष बिहात कल्प सम तेही
तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा * मुएँ करइ का सुधा तड़ागा

उन्होंने सीताजी को बहुत ही बिकल देखा, उनका एक २ छण कल्प के समान बीत रहा था। प्यासेने यदि बिना जल पिये शरीर त्याग दिया तो मर जाने पर अमृत का तालाब क्या करेगा?

का बरषा जब कृषी सुखाने * समय चूकि पुनि का पछिताने
अस जियँ जानि जानकी देखी * प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेषी

जब खेती सूख जाय, तब वर्षा से क्या लाभ और समय बीत जाने पर पछताने से क्या होता है? ऐसा हृदय में जानकर जानकीजी को देखा और उनकी अधिक प्रीति समझ प्रभु श्रीरामजी बहुत ही प्रसन्न हुए।

गुरहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा * अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ * पुनि धनु नभ मण्डल सम भयऊ

गुरु को मन ही मन प्रणाम किया और बहुत फुर्ती से धनुष को उठा लिया। जब उसे उठा लिया तो वह बिजली के समान चमका, फिर धनुष आकाश में मण्डलाकार हो गया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े * काहू न लखा देखि सब ठाढ़े
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा * भरें भुवन धुनि घोर कठोरा

धनुष को लेते, चढ़ाते और दृढ़ता से खींचते हुए किसी ने नहीं देखा, सबने श्रीरामजी को खड़े ही देखा। उसी क्षण श्रीरामजी ने धनुष को तोड़ दिया और उसकी घोर कठोर ध्वनि संसार भर में फैल गई।

छन्द—भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलुमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदण्ड खण्डेउ राम तुलसी वचन उचारहीं॥

संसार भर में घोर कठोर शब्द भर गया, सूर्य के घोड़े मार्ग छोड़कर चलने लगे। दिग्गज चिंघाड़ने लगे, पृथ्वी हिलने लगी, शेष, कच्छप और बाराह कलमलाने लगे। देवता असुर, मुनिजन सब कानों पर हाथ दे बेचैन होकर विचारने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि जब श्रीरामजी ने धनुष तोड़ डाला तो सभी जय-जयकार करने लगे।

सो०—सङ्कर चापु जहाजु, सागर रघुवर बाहुवल।
बूढ़यौ सकल समाजु, चढ़े जें प्रथमहिं मोहबस॥२६१॥

शिवजी का धनुष जहाज है और श्रीरघुनाथजी की भुजाओं का बल समुद्र है। धनुष के टूटने से यह समाज डूब गया—जो मोह वश पहले उस जहाज पर चढ़ा था।

प्रभु दोउ चाप खण्ड महि डारे * देखि लोग सब भए सुखारे
कौसिक रूप पयोनिधि पावन * प्रेम बारि अवगाहु सुहावन

प्रभु ने धनुष के दोनों खण्ड पृथ्वी पर डाल दिये, यह देखकर सब लोग सुखी हुए। विश्वामित्र-रूपी पवित्र समुद्र में प्रेमरूपी अथाह जल भरा है।

राम रूप राकेसु निहारी * बढ़त बीचि पुलकावलि भारी
बाजे नभ गहगहे निसाना * देवबधू नाचहिं करि गाना

श्रीरामजी-रूपी चन्द्रमा को निहारकर पुलकावली-रूपी तीनों तरंगे बढ़ने लगीं, आकाश में आनन्द के नगाड़े बजने लगे और देवांगनायें गीत गाकर नाचने लगीं।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा * प्रभुहि प्रसंसहि देहि असीसा
बरिसहिं सुमन रङ्ग बहु माला * गावहिं किन्नर गीत रसाला

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वर प्रभु की बड़ाई करने और आशीर्वाद देने लगे तथा अनेक रङ्ग के पुष्पों की मालायें बरसाने लगे, किन्नर गण रसीले गीत गाने लगे।

रही भुवन भरि जय जय बानी * धनुष भङ्ग धुनि जात न जानी

मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी * भंजेउ राम सम्भु धनु भारी

संसार में जय-ध्वनि छा गई, जिससे धनुष-भङ्ग की ध्वनि नहीं जाती। आनन्दित होकर जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष कहने लगे कि रामचन्द्रजी ने भारी शिव-धनुष तोड़ दिया है।

दोहा—बन्दी मागध सूतगन, बिरद कहहिं मति धीर।
करहिं निछावर लोग सब, हय गय धन मनि चीर ॥२६२॥

चतुर भाट, मागध, सूत कीर्ति बखानने लगे और सभी लोग घोड़ा, हाथी, मणि, धन और वस्त्र न्यौछावर करने लगे।

झाँझि मृदङ्ग शंख शहनाई * भेरि ढोलक दुन्दुभि सुहाई
बाजहिं बहु बाजने सुहाए * जहँ तहँ जुबतिन्ह मङ्गल गाए

झाँझ, मृदङ्ग, शंख, नफीरी, तुरही, ढोल, नगाड़े, दुन्दुभी आदि सुन्दर २ बाजे बजने लगे और जहाँ-तहाँ युवतियों ने मंगल-गीत गाये।

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी * सूखत धानु परा जनु पानी
जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई * पैरत थकें थाह जनु पाई

सखियों सहित रानी प्रसन्न हुईं, मानो सूखे हुए धान पर पानी पड़ गया हो। राजा-जनक ने शोक छोड़कर ऐसा सुख पाया, मानो थके हुए तैरने वाले ने थाह पा ली हो।

श्रीहत भए भूप धनु टूटे * जैसे दिवस दीप छवि छूटे
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती * जनु चातकी पाइ जलु स्वाँती

धनुष टूटनेपर राजालोग ऐसे कांतिहीन हुए,जैसे दिन में दीपक की शोभा जाती रहती है। सीताजी का सुख किस प्रकार वर्णन किया जाय? जैसे चातकी-स्वाँती का जल पा गई हो।

रामहि लखनु बिलोकत कैसें * ससिहि चकोर किसोरकु जैसें
सतानन्द तब आयसु दीन्हा * सीता गवनु राम पहिं कीन्हा

श्रीरामचन्द्रजी को लक्ष्मण ऐसे देखने लगे, जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देखता है। तब शतानन्दजी ने आज्ञा दी तो सीताजी श्रीरामजी के पास चलीं।

दोहा—संग सखी सुन्दर चतुर, गावहिं मङ्गलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुषमा अंग अपार ॥२६३॥

सङ्ग में सुन्दर सखियाँ मङ्गल-गीत गाती हुई जा रही हैं। सीताजी बाल-हंसिनी की चाल से चलीं, उनके अङ्गों में अपार शोभा थी।

सखिन्ह मध्य सिय सोहत कैसें * छबिगन मध्य महाछबि जैसें
कर सरोज जयमाल सोहाई * बिश्व बिजय सोभा जेहिं छाई

सखियों के बीच में सीताजी ऐसे शोभित हैं जैसे सुन्दरताओं के बीच में महा-सुन्दरता शोभित हो। कर-कमलों में सुन्दर जयमाला थी, जिसमें विश्व-विजय की शोभा छारही थी।

तन सँकोचु मन परम उछाहू * गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू

जाइ समीप राम छबि देखी * रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी

शरीर में लाज तथा मनमें बहुत उमङ्ग थी, यह गुप्त प्रेम किसी को जान नहीं पड़ता। पास जाकर श्रीरामजीकी शोभा देखकर राजकुमारी जानकीजी चित्र में लिखी-सी रह गई।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई * पहिरावहु जयमाल सुहाई
सुनत जुगल कर माल उठाई * प्रेम बिबस पहिराइ न जाई

यह दशा देखकर चतुर सखी ने समझकर कहा सुन्दर जयमाला पहिना दो। सुनते ही दोनों हाथों से माला उठाई परन्तु प्रेम के वश पहनाई नहीं जाती।

सोहत जनु जुग जलज सनाला * ससिहि सभीत देत जयमाला
गावहिं छबि अवलोकि सहेली * सियँ जयमाल राम उर मेली

ऐसी शोभा हुई, मानो डण्डियों सहित दो कमल संकुचित होकर चन्द्रमा को जयमाला दे रहे हों। ऐसी शोभा देखकर सखियाँ गाने लगीं, तब सीताजी ने जयमाला श्रीरामचन्द्रजी के गले में पहिना दी।

सो०–रघुवर उर जयमाल, देखि देव वरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुदगन ॥२६४॥

श्री रघुनाथजी के हृदय पर जयमाला देखकर देवता पुष्प बरसाने लगे और राजा लोग ऐसे सकुचाये, जैसे सूर्य को देखकर नलिनियों का समूह मुरझा जाता है।

पुरु अरु व्योम बाजने बाजे * खल भए मलिन साधु सब साजे
सुरु किन्नर नर नाग मुनीसा * जय जय जय कह देहिं असीसा

नगर और आकाश में बाजे बजने लगे और दुष्ट उदास तथा सब सज्जन प्रसन्न हुए। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय-जयकार कर आशीर्वाद देने लगे।

नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं * बार बार कुसुमांजलि छूटीं
जहँ तहँ बिप्र वेद धुनि करहीं * बन्दी बिरिदाबलि उच्चरहीं

गन्धर्वों की छोटी अवस्था की बधुयें नाचने लगीं और बारम्बार पुष्पों की वर्षा करने लगीं। जहाँ-तहाँ ब्राह्मण वेद-ध्वनि करने लगे तथा भाट वंश की कीर्ति बखानने लगे।

महि पाताल नाक जसु व्यापा * राम वरी सिय भंजेउ चापा
करहिं आरती पुर नर नारी * देहिं निछावरि बित्त बिसारी

भूमि पाताल और स्वर्ग में यश छा गया कि श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष को तोड़ा और सीताजी को वर लिया। नगरके स्त्री-पुरुष आरती करने लगे और अपनी सामर्थ्य से अधिक न्यौछावर करने लगे।

सोहत सिय राम कै जोरीं * छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी
सखी कहहि प्रभु पद गहु सीता * करति न चरन परस अति भीता

श्रीसीता-रामजी की जोड़ी ऐसी सुहाती थी, मानो शोभा और शृंङ्गार एकत्र हों। सखियों ने कहा-हे सीता! प्रभु के चरण छुओ, परन्तु सीताजी बहुत डरकर चरण नहीं छूतीं।

दोहा—गौतमतियगतिसुरतिकर, नहिं परसति पग पानि ।
मन बिहँसे रघुबंसमनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥२६५॥

गौतम-ऋषि की स्त्री अहिल्या की गति का स्मरण करके वे श्रीरघुनाथजी के चरणों को स्पर्श नहीं करतीं, इस अनोखी प्रीति को जानकर रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी मन में हँसे ।

तब सिय देखि भूप अभिलाषे * कूर कपूत मूढ़ मन माखे
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे * जहँ तहँ गाल बजावन लागे

उस समय सीताजी को देखकर कुछ राजा ललचा उठे, वे कुटिल व मूर्ख राजा मन में डाह करने लगे । वे अभागे उठकर कवच आदि पहन कर जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे ।

लेहु छुड़ाय सीय कह कोऊ * धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ
तोरें धनुष चाड़ नहिं सरई * जीवत हमहि कुअँर को बरई

कोई बोला-सीता को छीन लो और दोनों राजकुमारों को पकड़कर बाँध लो । धनुष तोड़ देने से ही इच्छा पूरी नहीं होगी । हमारे जीते-जी राजकुमारी को कौन व्याह सकता है ?

जौं बिदेह कछु करै सहाई * जीतहु समर सहित दोउ भाई
साधु भूप बोले सुनि बानी * राजसमाजहि लाज लजानी

यदि राजा जनक कुछ सहायता करें तो दोनों भाइयों सहित युद्ध में उन्हें भी जीत लो । यह सुनकर साधु राजा बोले—इस समाज ने तो लाज को भी लजा दिया ।

बलु प्रतापु बीरता बड़ाई * नाक पिनाकहिं सँग सिधाई
सोइ सूरता कि अब कहँ पाई * असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई

बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई और मर्यादा—ये धनुष के साथ ही चले गये । वही शूरता थी अथवा अब कहाँ से पा गये हो ? ऐसी दुष्टि बुद्धि है-तभी तो ब्रह्मा ने तुम्हारे मुंह पर स्याही लगादी है ।

दोहा—देखहु रामहि नयन भरि, तजि इरिषा मदु कोहु ।
लखन रोषु पाबुक प्रबल, जानि सलभ जनि होहु ॥२६६॥

बैर, घमण्ड और क्रोध को छोड़कर, नेत्रभर श्रीरामचन्द्रजी को देख लो । लक्ष्मणजी के क्रोध को प्रचंड अग्नि जानकर उसमें पतंगा मत बनो ।

बैंनुतेह बलि जिमि चह कागू * जिमि ससु चहै नाग अरि भागू
जिमि चह कुशल अकारन कोही * सुख सम्पदा चहै शिव द्रोही

जिस प्रकार गरुड़ के भाग को कौआ चाहे, सिंह के भाग को खरहा चाहे, बिना कारण क्रोध करने वाला कुशलता चाहे, शिवजी का द्रोही सुखसम्पदा चाहे तथा—

लोभी लोलुप कीरति चहई * अकलङ्कता कि कामी लहई
हरि पद बिमुख परम गति चाहा * तस तुम्हार लालच नरनाहा

लोभी लालची बड़ाई चाहे. कामी निष्कलंता चाहे और श्रीहरि के चरणों से विमुख

मुक्ति चाहे, राजाओं ! वैसा ही तुम्हारा लालच है ।

कोलाहलु सुनि सीय सकानी * सखीं लिवाइ गईं जहँ रानी
राम सुभायँ चले गुरु पाहीं * सिय सनेहु बरनत मन माहीं

राजाओं का कोलाहल सुन सीताजी डर गईं, तब सखियाँ वहाँ लिवा लेगईं जहाँ रानीं थीं। श्रीरामजी सीधे स्वभाव से सीताजी के प्रेम की मनमें बड़ाई करते हुए गुरुजी के पास चले।

रानिन्ह सहित सोचबस सीया * अब धौं बिधिहि काह करनीया
भूप वचन सुन इत उत तकहीं * लखनु राम डर बोल न सकहीं

रानियों सहित सीताजी सोच-विचार में पड़ गईं कि न जाने विधाताको अब क्या करना है ? राजाओं की बात-चीत सुनकर लक्ष्मणजी इधर-उधर देखने लगे, किन्तु श्रीरामजी के डर से कुछ कह नहीं सकते ।

दोहा—अरुन नयन भृकुटि कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप ।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहि चोप ।।२६७।।

लक्ष्मणजी के नेत्र लाल और भौंहें टेढ़ी हो गईं, वे राजाओं को क्रोध से देखने लगे। मानो मतवाले हाथियों के झुण्ड को देखकर सिंह के बच्चे को जोश आ गया हो ।

खरभरु देखि बिकल पुर नारीं * सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी
तेहिं अवसर सुनि सिबधनु भंगा * आयउ भृगुकुल कमल पतंगा

हलचलको देख नगर की स्त्रियाँ बेचैन हो गईं सब मिलकर राजाओं को गालियाँ देने लगीं। उसी समय शिव-धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुलरूपी कमल के सूर्य परशुरामजी वहाँ आये।

देखि महीप सकल सकुचाने * बाज झपट जनु लवा लुकाने
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा * भाल बिसाल त्रिपुण्ड विराजा

उन्हें देखकर राजालोग सकुचा गये, जैसे बाज की झपट से बटेर छिप जाते हैं । गोरे शरीर पर सुन्दर विभूति शोभायमान थी, चौड़े मस्तक पर त्रिपुण्ड विराजमान था ।

सीस जटा ससि बदनु सुहावा * रिस बस कछुक अरुन होइ आवा
भृकुटि कुटिल नयन रिस राते * सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते

सिर पर जटाजूट है और चन्द्रमुख क्रोध से लाल हो गया है, भौंहें टेढ़ी और नेत्र क्रोध से लाल हो रहे हैं । सहज ही देखते हैं, तो भी जान पड़ता है कि मानो क्रोध में भरे हैं ।

वृषभ कन्ध उर बाहु बिसाला * चरु जनेउ माल मृगछाला
कटि मुनि बसन तून दुई बाँधे * धनु सरि कर कुठार कल काँधे

वृषभ के-से ऊँचे कन्धे, चौड़ी छाती, लम्बी भुजायें सुन्दर जनेऊ और माला पहिने हैं। तथा मृगछाला लिए हैं । कमर में मुनिवस्त्र पहिने, दो तर्कस बाँधे, धनुषवाण हाथ में लिए और सुन्दर फरसा कन्धे पर है ।

दोहा—शान्त वेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप ।
धरि मुनि तनु जनु बीररस, आयउ जहँ सब भूप ।।२६८।।

शान्त वेष है. परन्तु करनी कठिन है, स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। जहाँ राजा थे, वहां मानो वीर-रस ही मुनि का रूप धारण करके आया हो।

देखत भृगुपति वेष कराला * उठे सकल भय विकल भुआला
पितु समेत कहि कहि निज नामा * लगे करन सब दण्ड प्रनामा

परशुरामजी का भयानक रूप देखकर सब राजा घबड़ा उठे और पिता समेत अपना-अपना नाम कहकर सब उनको दण्डवत्-प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी * सोइ जानई जनु आइ खुटानी
जनक बहोरि आइ सिरु नावा * सीय बुलाय प्रनामु करावा

जिसे हितू जानकर भी साधारण दृष्टि से देखते, वही जानता कि अब मेरी आयु समाप्त हुई। फिर जनकजी ने आकर मस्तक नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया।

आसिष दीन्हि सखी हरषानी * निज समाज लै गई सयानी
विश्वामित्र मिले पुनि आई * पद सरोज मेले दोउ भाई

परशुरामजी ने आर्शीवाद दिया तो चतुर सखी प्रसन्न हो,सीताजी को अपने समाज में लेगईं। फिर विश्वामित्रजी आकर मिले और दोनों भाइयों से मुनिके चरण कमलों में प्रणाम कराया।

राम लखनु दशरथ के ढोटा * दीन्हि असीस देखि भल जोटा
रामहि चितइ रहे थकि लोचन * रूप अपार मार मद मोचन

ये राम-लक्ष्मण-महाराज दशरथजी के पुत्र हैं। उनकी सुन्दर जोड़ी को देखकर परशु-रामजी ने आर्शीवाद दिया और कामदेव के अभिमान को भी दूर करने वाले श्रीरामजी के रूप को देखकर नेत्र स्तम्भित रह गये।

दोहा—बहुरि बिलोकि विदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोपु शरीर ।।२६८।।

फिर राजा जनक की ओर देखकर बोले—हे राजा जनक! कहो यह भारी भीड़ क्यों हो रही है? जानते हुए भी अनजान की तरह पूछते हुए शरीर में क्रोध भर आया।

समाचार कहि जनक सुनाए * जेहि कारन महीप सब आए
सुनत बचन फिरि अनत निहारे * देखे चाप खण्ड महि डारे

तब राजा जनक ने वह शुभ समाचार कह सुनाया—जिस कारण सब राजा इकट्ठे हुए थे उनके वचन सुनकर फिर दूसरी ओर देखा तो धनुष के दो खण्ड पृथ्वी पर पड़े हुए देखे।

अतिरिस बोले बचन कठोरा * कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा
बेगि देखाइ मूढ़ न त आजू * उलटउँ महि जहँ लहि तवराजू

अति क्रोध से कठोर वचन बोले-हे मूर्ख-जनक! कहो धनुष किसने तोड़ा है। हे मूर्ख! उसे जल्दी दिखा, नहीं—तो आज मैं जहाँ तक तेरा राज्य है, वहाँ तक की पृथ्वी उलट दूंगा।

अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं * कुटिल भूप हरषे मन माहीं

सुर मुनि नाग नगर नर नारी * सोचहिं सकल त्रास उर भारी

बड़े डर से राजा जनक उत्तर नहीं देते। यह देख कुटिल राजा अपने मन में प्रसन्न हुए और देवता, मुनि, नाग, नगर के नर-नारी अपने मन में डरकर सोचने लगे।

मन पछिताति सिय महतारी * विधि अब सँवरी बात बिगारी
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता * अधर निमेष कलप सम बीता

सीताजी की माता मनमें पछताने लगीं, ब्रह्माने बनी बनाई सब बात बिगाड़ दी। परशुरामजी का स्वभाव सुनकर सीताजी को आधा क्षण भी कल्प के समान बीतने लगा।

दोहा—सभय विलोके लोग सब, जान जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु विषादु कछु, बोले श्रीरघुबीरु ॥२७०॥

सब लोगों को डरे हुए देख और सीताजी को बेचैन जानकर, जिनके मनमें हर्ष-विषाद कुछ नहीं है, वे श्रीरघुनाथजी बोले—

* मास पारायण—नवाँ विश्राम *

नाथ सम्भु धनु भंजनिहारा * होएहि कोउ एक दास तुम्हारा
आयसु कहा कहिअ किन मोही * सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही

हे नाथ ! शिवजी का धनुष तोड़ने वाला—कोई आपका एक दास ही होगा। क्या आज्ञा है, सो मुझसे क्यों नहीं कहते ? क्रोधी मुनि रिसाकर बोले—

सेवकु सोइ जो करै सेवकाई * अरि करनी करि करिअ लराई
सुनहुँ राम जेहिं सिवधनु तोरा * सहसबाहु सम सो रिपु मोरा

सेवक वह है, जो सेवकाई करे और शत्रुता का काम करे, उससे तो लड़ाई ही करनी चाहिये। हे राम ! सुनो, जिसने शिव-धनुष को तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा * न त मारे जैहहिं सब राजा
सुनि मुनि बचन लषन मुसुकाने * बोले परसु धरहि अपमाने

वह इस समाज को छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो—धोके में सारे राजा मारे जायेंगे। मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये और परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले—

बहु धनुहीं तोरी लरकाईं * कबहुँ न अस रिस कीन्हि गोसाईं

(१) पूर्वकी कथा है कि परशुरामजी ने सब राजाओं को जीतकर उनके धनुष लाकर इकट्ठे किये, साथ में अनेक देवताओं के धनुष भी थे। उस बोझ के भार से पृथ्वी और शेषजी दबने लगे। वे दोनों क्रमशः स्त्री और बालक का वेष बनाकर परशुरामजी के पास गये। उन्होंने यह भी विचारा कि यह धनुष राक्षसों के हाथ लग गये तो बड़ा अनर्थ होगा। पृथ्वी ने कहा कि महाराज मैं और यह मेरा बालक बड़े दुःखी हैं। हमें कोई आश्रय नहीं देता, क्योंकि यह बालक बड़ा चंचल है, अतः मुझे अपने यहाँ आश्रय दीजिये। परशुरामजी ने कहा—रह, हम तेरे

एहि धनु पर ममता केहि हेतू * सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू

बालकपन में हमने बहुत सी धनुहीं तोड़ीं, हे गोसाईं ! आपने तब ऐसी रिस कभी नहीं की इसी धनुष पर इतनी ममता किस कारण है ? यह सुन, परशुरामजी क्रोधित होकर कहने लगे—

दोहा—रे नृपु बालक कालबस, बोलत तोहि न सम्हार ।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार ॥२७१॥

हे राज-पुत्र ! काल के आधीन हो सँभाल कर क्यों नहीं बोलता ? जगत प्रसिद्ध शिवजी का धनुष अन्य धनुषियों के समान था ?

लखन कहा हँसि हमरे जाना * सुनहुँ देव सब धनुष समाना
का क्षति लाभु जून धनु तोरें * देखा राम नयन के भोरें

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा—हे देव ! सुनिये, हमारे जाने तो सब धनुष बराबर हैं। पुराने धनुष को तोड़ने से क्या हानि व लाभ है ? श्रीरामचन्द्रजी ने तो नया जानकर इसे देखा था।

छुअत टूट रघुपतिहि न दोषू * मुनि बिनुकाज करिअ कत रोषू
बोले चितइ परशु की ओरा * रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा

यह छूते ही टूट गया, इसमें श्रीरघुनाथजी का दोष नहीं है। हे मुनि ! बिना ही कार्य क्यों क्रोध करते हैं ? तब परशुरामजी अपने फरसे की ओर देखकर बोले—रे मूर्ख ! क्या तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना है ?

बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही * केवल मुनि जड़ जानहि मोही
बाल ब्रह्मचारी अति कोही * विश्व विदित क्षत्रिय कुल द्रोही

बालक जानकर मैं तुझे नहीं मारता हूँ। रे मूर्ख ! तूने मुझे केवल मुनि ही जाना है। मैं बाल-ब्रह्मचारी और बड़ा क्रोधी हूँ, और संसार में क्षत्रिय-कुल का बैरी प्रसिद्ध हूँ।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही * बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही
सहसबाहु भुज छेदनि हारा * परशु बिलोकि महिप कुमारा

बालक के अपराध को क्षमा करेंगे। एक दिन परशुरामजी कहीं गये तो बालक-रूपी शेषजी ने सारे धनुष तोड़ डाले, केवल एक शिवजी का धनुष रह गया। परशुरामजी घर आने पर बड़े विस्मित हुए। परन्तु क्रोध नहीं किया। तब शेषजी ने अपना रूप दिखाया और कहाकि इस शिव-धनुष को त्रेता—युग में श्रीरामचन्द्रजी तोड़ेंगे, तब तो आपसे वार्ता होगी। इसलिए लक्ष्मणजी कहते हैं, कि बालकपन में बहुत—से धनुष तोड़े, तब तो आपने कभी क्रोध नहीं किया।

(१) परशुरामजी के पिता जमदग्नि-ऋषि की कामधेनु को उनका साहू राजा सहस्रार्जुन चुरा ले गया। जब जमदग्नि ने परशुरामजी को कामधेनु लेने भेजा तो उन्होंने क्रोध करके सहस्रार्जुनकी सब भुजाओं को फरसे से काटकर उसे मार डाला। राजा को मारने के अपराध में जमदग्निने उन्हें प्रायश्चितके लिए पृथ्वी की परिक्रमाके लिए भेज दिया। फरसेसे सहस्रार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि को मार डाला। लौटकर आने पर परशुराम ने अत्यन्त क्रोधित होकर पृथ्वी की इक्कीस बार परिक्रमा करके उसे क्षत्रियों से रहित कर दिया, कुरुक्षेत्र में नौ रक्तके कुण्ड भरे। तब ब्राह्मणोंको पृथ्वी का राज्य देकर परशुरामजी महेन्द्राचल पर तपस्या करने चले गये।

मैंने अपनी भुजाओं के बल से पृथ्वी को राजाओं से हीन करके अनेकों बार ब्राह्मणों को दे दिया है। हे राजकुमार! तू मेरे इस सहस्त्रबाहु की भुजाओं को काटने वाले इस फरसे को देख।

दोहा—मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीप किसोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ॥२७२॥

हे र. किशोर! तू अपने माता-पिताको सोच के वश में मत कर, मेरा यह कठोर फरसा गर्भों के बालकों को मारने वाला बड़ा भयंकर है, इसके शब्द से गर्भ के बालक मर जाते हैं।

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी * अहो मुनीस महा भटमानी
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारू * चहत उड़ावन फूँक पहारू

तब लक्ष्मणजी हँसकर मधुर बाणी से बोले—अहो, आप मुनि होकर अपने को बड़ा शूर-वीर मानते हैं। इसीसे मुझे बारम्बार कुठार दिखलाकर, फूँक से पहाड़ को उड़ाना चाहते हैं।

इहाँ कुम्हड़ बतियाँ कोउ नाहीं * जे तरजनी देखि मरि जाहीं
देखि कुठारु सरासन बाना * मैं कछु कहा सहित अभिमाना

हे मुनिनाथ! यहां कोई छुई-मुई का पेड़ नहीं है, जो तर्जनी उँगली से देखते ही मुरझा जाता है। आपको धनुषबाण व फरसा धारण किये देखकर ही मैंने अभिमान से कुछ कहा है।

भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी * जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई * हमरे कुल इन्ह पर न सुराई

भृगुवंशी-ब्राह्मण समझ, जनेऊ देखकर ही जो कुछ आपने कहा, वह मैंने रिस रोककर सहा है। देवता, ब्राह्मण, हरिभक्त और गाय-इन पर हमारे वंश में शूरता नहीं दिखाई जाती।

बधें पाप अपकीरति हारें * मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा * व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा

क्योंकि इनको मारने में पाप और हारने में अपयश होता है। आप मारेंगे, तो भी मैं आपके चरणों में ही गिरूंगा। करोड़ों वज्रों के समान तो आपके बचन ही हैं, फिर धनुष बाण और कुठार तो वृथा ही धारण कर रक्खे हैं।

दोहा—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुवंश मनि, बोले गिरा गम्भीर ॥२७३॥

हे धीर-महामुनि! इनको देखकर मैंने जो अनुचित कहा है, उसे क्षमा करें। यह सुनकर परशुरामजी क्रोधित होकर गम्भीर वाणी बोले—

कौसिक सुनहु मन्द यह बालक * कुटिल काल बस निज कुल घालक
भानु बंश राकेस कलंकू * निपट निरंकुस अबुध असंकू

हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक-कुबुद्धि और कुटिल, कालवश अपने कुल का नाशक बन रहा है। यह सूर्यवंश रूप पूर्ण-चन्द्रमा को कलंक है। बहुत ही स्वतन्त्र, मूर्ख और निडर है।

कालु कवलु होइहि छिन माहीं * कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं

तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा * कहि प्रताप बल रोषु हमारा

क्षणमात्र में काल का ग्रास हो जायगा, मैं पुकार कर कहता हूँ—फिर मुझे दोष नहीं देना। जो इसे बचाना चाहते हो तो मेरा प्रताप, बल और क्रोध बताकर इससे मना करदो।

लखनु कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा * तुम्हहि अछत को बरनै पारा
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी * बार अनेक भाँति बहु बरनी

लक्ष्मणजी ने कहा—हे मुनि ! आपका सुयश आपके रहते कौन वर्णन कर सकता है ? आपने अपने मुख से अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकार से वर्णन की है।

नहिं सन्तोषु तौ पुनि कछु कहहू * जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा * गारी देत न पावहु सोभा

जो सन्तोष नहीं हुआ हो तो फिर कुछ कह डालिये, रिसको रोककर असह्य दुःख न सहिये। आपकी वीरवृत्ति है, आप धैर्यवान् और क्षोभ रहित हैं, आप गाली देते शोभा नहीं पाते।

दोहा—सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रतापु ॥२७४॥

शूरवीर युद्ध-क्षेत्र में अपनी वीरता दिखाते हैं, अपने आपको स्वयं कहकर नहीं जताते। रण में अपने शत्रु को देखकर कायर-पुरुष ही बकवास करते हैं।

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा * बार बार मोहि लागि बोलावा
सुनत लखन के बचन कठोरा * परसु सुधारि धरेउ कर घोरा

मानो आप तो काल को हाँककर ले आये हैं, जो बारम्बार मुझे बुला रहे हैं। लक्ष्मणजी के ऐसे कठोर वचन सुनकर परशुरामजी ने अपना भयंकर कुठार सुधार कर हाथ में पकड़ा।

अब जनि देहिं दोषु मोहि लोगू * कटुबादी बालकु बध जोगू
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा * अब यह मरनिहार भा साँचा

और बोले—अब लोग मुझे दोष न दें, वह कटु बचन बोलने वाला बालक मारने ही योग्य है। बालक जानकर मैंने इसे बहुत बचाया, परन्तु अब यह सचमुच ही मरना चाहता है।

कौसिक कहा छमिअ अपराधू * बाल दोष गुन गनहिं न साधू
खर कुठार मैं अकरुन कोही * आगें अपराधी गुरु द्रोही

विश्वामित्र बोले—अपराध क्षमा करिये, बालक के दोष और गुण साधु लोग नहीं गिनते। परशुरामजी बोले—मेरे हाथ में तीक्ष्ण कुठार है और मैं बिना कारण ही क्रोधी हूँ, इस पर भी मेरे सामने यह गुरु-द्रोही है।

उत्तर देत छोड़उँ बिनु मारें * केवल कौसिक सील तुम्हारें
न त एहि काटि कुठार कठोरें * गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें

सो उत्तर दे रहा है, (इतने पर भी) इसको मैं बिना मारे छोड़ देता हूँ, हे कौशिक ! केवल तुम्हारे शील से ही, नहीं तो इसे कुठार से काटकर थोड़ेही श्रमसे गुरुके ऋणसे उऋण होजाता।

दोहा—गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि, मुनिहि हरिअरिह सूझ ।
अयमय खाँडेउ ऊख मय, अजहुँ न बूझ अबूझ ॥२७५॥

विश्वामित्र मनमें हँसकर कहने लगे मुनि को हरा ही हरा सूझता है। जिन्होंने वज्र के समान धनुष को गन्ने की तरह तोड़ दिया, मुनि अब भी उनके प्रभाव को नहीं समझ रहे हैं।

कहेउ लखनु सुनि सील तुम्हारा * को नहिं जान बिदित संसारा
मात पितहि उरिन भए नीके * गुरु रिनु रहा सोच बड़ जीके

लक्ष्मणजी ने कहा—हे मुनि ! आपके स्वभाव को कौन नहीं जानता,वह संसार में प्रसिद्ध है। माता-पिताके ऋणसे भली-भाँति उऋण होचुके अब गुरुका ऋण रहा है-सो मनमें बड़ा सोच है।

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा * दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली * तुरत देउँ मैं थैली खोली

वह क्षण मानो हमारे ही माथे काढ़ा है। बहुत दिन बीत गये, ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब किसी हिसाब करने वाले को बुलवा लीजिये, जिससे मैं तुरन्त थैली खोलकर देदूँ।

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा * हाय हाय सब सभा पुकारा
भृगुबर परसु दिखावहु मोही * बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही

लक्ष्मणजी के कटु वचन सुनकर परशुरामजी ने कुठार सुधारा, तब सारी सभा हाय ! हाय ! पुकाने लगी। (लक्ष्मणजी बोले—) हे भृगु श्रेष्ठ ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं और राजद्रोही ! मैं आपको ब्राह्मण समझकर आपसे बचा हूँ।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े * द्विज देवता घरहि के बाढ़े
अनुचित कहि सब लोग पुकारे * रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे

आपको कभी रणधीर योद्धा नहीं मिले, ब्राह्मण और देवता अपने घर के ही बड़े हैं। सब लोग पुकार उठे—यह बात अनुचित है, तब श्रीरामजी ने लक्ष्मण को संकेत से मना कर दिया।

दोहा—लखन उतरआहुतिसरिस, भृगुबर कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जलसम बचन, बोले रघुकुल भानु ॥२७६॥

लक्ष्मणजी का उत्तर आहुति समान और परशुराम का क्रोध अग्नि के समान बढ़ते देखकर श्रीरघुनाथजी जल के समान शीतल बचन बोले—

---

(३) एक बार परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि ने अपनी पत्नी रेणुका को जल भरने नदी पार भेजा। रेणुका ने वहाँ एक 'गन्धर्व-गन्धर्वी को बिहार करते देखने में देर लगादी।' इसी पर जमदग्नि क्रोधित हो गये कि उनकी पत्नी ने पर-पुरुष को बिहार करते देखा। उन्होंने अपने सब पुत्रों से माता का बध करने को कहा। पुत्रों ने अस्वीकार कर दिया। केवल परशुरामजी ने पिता के कहने से माता और भाइयों का फरसे से बध कर डाला। पिता के अत्यन्त प्रसन्न होने पर उनको वर माँगने को कहा। परशुरामजी ने उनका जीवन-दान माँगकर उनको जीवित करवा लिया और आप पृथ्वी की परिक्रमा देने चले गये।

नाथ करहु बालक पर छोहू * सूध दूध मुख करिअ न कोहू
जो पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना * तौ कि बराबरि करत अयाना

हे नाथ ! बालक पर कृपा करिये, इस सीधे और दूध—मुंहे बच्चे पर क्रोध न करिये। यदि यह आपके प्रभाव को कुछ नहीं जानता तो क्या यह अनजान आपकी बराबरी करता ?

जौं लरिका कछु अनुचित करहीं * गु॰ पितु मात मोद मन भरहीं
करिअ कृपा सिसु सेबक जानी * तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी

यदि बालक कुछ अनुचित भी करते हैं तो गुरु-माता-पिता मनमें प्रसन्न हो जाते हैं। आप बालक को अपना सेवक जानकर कृपाकरिये,क्योंकि आपसमदर्शी,शीलवान् धीर व ज्ञानी मुनि हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने * कहि कछु लखन बहुरिमुसुकाने
हँसतिदेखि नख सिखरिस व्यापी * राम तोर भ्राता बड़ पापी

श्रीरामजी के वचन सुन वे कुछ शीतल हुए कि कुछ कहकर लक्ष्मणजी फिर मुस्कराये। हंसते देख परशुरामके नख से चोटी तक क्रोध छागया, वे बोले—हे राम ! तुम्हारा भाई बड़ा पापी है।

गौर सरीर स्याम मन माहीं * काल कूट मुख पय मुख नाहीं
सहज टेड़ अनुहरई न तोही * नीचु मीचु सम देख न मोही

शरीर तो गोरा है, पर मनका काला है। यह विष मुख है, दूध-मुंहा नहीं। यह स्वभाव से ही टेढ़ा है, तुम्हारे स्वभाव के अनुसार नहीं है। यह नीच मुझको मृत्यु के समान नहीं देखता।

दोहा—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहिंबस जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्व प्रतिकूल ॥२७७॥

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा—हे मुनि ! सुनो, क्रोध पाप की जड़ है, जिसके वश में होकर लोग अनुचित कर्म करते हैं और विश्व के प्रतिकूल चाल चलते हैं।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया * परिहरि कोप करिय अब दाया
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने * बैठिअ होइहिं पाँय पिराने

हे मुनिराज ! मैं आपका सेवक हूं, क्रोध को दूर कर अब मुझ पर दया करो। टूटा धनुष रिसाने से नहीं जुड़ सकता, बैठ जाइये पाँव दूखते होंगे।

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई * जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई
बोलत लखनहिं जनक डेराहीं * मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं

जो यह धनुष आपको अत्यन्त ही प्रिय है तो उपाय कीजिए, कोई बड़ा कारीकर बुलवा कर इसे जुड़वा लीजिए लक्ष्मणजी के बोलने से राजा जनकजी ने डर कर कहा—बस करो, अनुचित बात कहना ठीक नहीं है।

थर थर काँपहि पुर नर नारी * छोट कुमार खोट बड़ भारी
भृगुपति सुनिसुनि निर्भय बानी * रिस तन जरइ होइ बल हानी

नगर के सब नर-नारी थर २ कांपने लगे और कहने लगे, छोटा राजकुमार बहुत खोटा है।

शरीर लक्ष्मणजी की निर्भय वाणी सुनकर क्रोध से जलता था और उनका बल घटता था।

बोले रामहिं देत निहोरा * बचउँ विचारि बन्धु लघु तोरा
मनु मलीन तनु सुन्दर कैसें * विष रस भरा कनक घटु जैसें

परशुरामजी-श्रीरामजी को निहोरा देकर बोले–हे राम! तेरा छोटा भाई समझमें इसे बचाता हूं। यह मनका मलिन और तनका कैसा सुन्दर है–जैसे सोने के घड़े में विष-रस भरा हो।

दोहा–सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥२७८॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी हंसे, तो श्रीरामजी ने नेत्रों के संकेत से मना कर दिया। तब लक्ष्मणजी सकुचाकर विरुद्ध वचन बोलना छोड़ गुरु के पास चले गये।

अति बिनीत मृदु सीतल बानी * बोले रामु जोरि जुग पानी
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना * बालक बचनु करिअ नहिं काना

श्रीरामजी दोनों हाथ जोड़ कोमल और शीतल वचन बोले–हे नाथ सुनिये, आप तो स्वभाव से ही चतुर हैं, बालक के वचनों पर ध्यान न दीजिये।

बररै बालक एक सुभाऊ * इन्हहि न सन्त बिदूषहिं काऊ
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा * अपराधी मैं नाथ तुम्हारा

बर्रै और बालक का एक ही स्वभाव है, सन्तजन इन्हें कोई दोष नहीं देते है फिर इसने तो आपका कोई काम भी नहीं बिगाड़ा है, हे नाथ आपका अपराधी तो मैं हूं।

कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं * मो पर करिअ दास की नाईं
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई * मुनिनायक सोइ करौं उपाई

हे गुसाईं! कृपा, कोप, बल और बन्धन जो कुछ करना हो, अपना दास जानकर मुझ पर कीजिये। जिस प्रकार आपका क्रोध जाय–वह शीघ्र ही कहिये, हे मुनिनाथ! जिससे मैं वही उपाय करूं।

कह मुनि राम जाइ रिस कैसें * अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें
एहि के कण्ठ कुठारु न दीन्हा * तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा

मुनि बोले–हे राम! क्रोध कैसे जाय? देख तेरा छोटा भाई तो अब भी टेढ़ी दृष्टि से ही देख रहा है। यदि इसके कण्ठ में कुठार न मारा तो मैंने क्रोध करके ही क्या किया?

दोहा–गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउँ जिअत, बैरी भूप किसोर ॥२७९॥

जिस कुठार की भयंकर ध्वनि को सुनकर राजाओं की रानियों के गर्भ गिर जाते है, ऐसे कठोर फरसे के होते हुए भी मैं बैरी राज-पुत्र को जीवित देख रहा हूं।

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती * भा कुठारु कुण्ठित नृप घाती
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ * मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ

हाथ नहीं चलता, क्रोध से छाती जलती है, राजाओं का घातक फरसा भी भोंतरा होगया है। विधाता विपरीत होगया, इससे मेरा स्वभाव बदल गया, नहीं तो मेरे हृदय में किसी पर दया कैसी ?

आजु दया दुख दुसह सहावा * सुनि सौमित्र बिहँसि सिरु नावा
बाउ कृपा मूरति अनुकूला * बोलत बचन झरत जनु फूला

आज दया दुसह-दुःख सहा रही है। यह सुनते ही लक्ष्मणजीने हँसकर सिर नवाया और कहा-हे नाथ! आपकी कृपारूपी वायु आपकी मूर्ति के अनुकूल है, वचन बोलते ही फूल झड़ते हैं।

जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता * क्रोध भएँ तनु राख बिधाता
देखु जनक हठि बालक ऐहू * कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू

हे मुनिनाथ! जो कृपा करने से आपका शरीर जलता है, तो क्रोध करने पर तो विधाता ही शरीर की रक्षा करेंगे। यह सुनकर परशुरामजी ने कहा—हे जनक! देख, यह मूर्ख बालक हठ करके यमपुर में जाना चाहता है।

बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा * देखत छोट खोट नृप ढोटा
बिहँसे लखनु कहा मन माहीं * मूदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं

उसे शीघ्र ही आँखों की ओट क्यों नहीं करते, यह राजपुत्र देखने में छोटा है, पर बड़ा ही खोटा है। वह सुन लक्ष्मणजी हँसे और बोले—आँखें बन्द करने पर तो कोई नहीं है।

दोहा—परशुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु।
सम्भु सरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोधु ॥२८०॥

परशुरामजी क्रोध सहित तब श्रीरामजी से बोले—रे शठ! शिवजी का धनुष तोड़कर हमको ही ज्ञान सिखाता है।

बन्धु कहइ कटु सम्मत तोरें * तू छल बिनय करसि कर जोरें
करि परितोषु मोर संग्रामा * नाहिं त छाँड़ि कहाउब रामा

तेरा भाई तेरी ही सलाह से कटु वचन कहता है और तू छल से हाथ जोड़कर विनती करता है। युद्ध में मुझे सन्तुष्ट कर, नहीं तो राम कहलवाना छोड़ दे।

छल तजि करहु समर सिवद्रोही * बन्धु सहित न त मारउँ तोही
भृगुपति बकहिं कुठारु उठाएँ * मन मुसुकाहिं रामु सिरु नाएँ

रे शिवद्रोही! छल छोड़कर मुझसे युद्ध कर, नहीं तो भाई सहित तुझे मारूँगा। परशुरामजी इस प्रकार कुठार उठाकर कह रहे हैं और श्रीरामजी सिर नवाये मनमें मुस्करा रहे हैं।

गुनहु लखन कर हम पर रोषू * कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू
टेढ़ जानि शंका सब काहू * बक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू

अपराध तो लक्ष्मण का है और क्रोध हम पर करते हैं, कहीं २ सीधेपन में भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा जानकर सबको शंका होती है, टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा * कर कुठारु आगें यह सीसा

जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी * मोहि आनिअ आपन अनुगामी

श्रीरामजी बोले-हे मुनिनाथ ! क्रोध को त्याग दो, आपके हाथमें फरसा है और आगे मेरा यह सिर है। जिस तरह रिस जाय, वही उपाय कीजिए, हे स्वामी ! मुझे अपना सेवक जानिये।

दोहा-प्रभुहि सेवकहि समरु कस, तजहु विप्रवर रोषु।
वेष विलोकें कहेसि कछु, बालकहु नहिं दोषु ॥२८१॥

स्वामी और सेवक का युद्ध कैसा ? हे विप्रवर ! क्रोध का त्याग करिये। क्षत्रिय वेष देखकर ही बालक ने कुछ कहा है, वो इस बालक का भी दोष नहीं है।

देखि कुठारु बान धनु धारी * भै लरकहिं रिस बीरु बिचारी
नामु जानिपै तुम्हहि न चीन्हा * बंस सुभाउँ उतरु तेहि दीन्हा

आपको फरसा एवं धनुषवाण लिए देख और वीर समझकर बालक को क्रोध हो आया। आपका नामसुना था,परन्तु पहिचाना नहीं, इसीसे वंश के स्वभाव के अनुसार इसने उत्तरदिया।

जौं तुम्ह आतेउ मुनि की नाईं * पदरजु सिर सिसु धरत गोसाईं
छमहु चूक अनजानत केरी * चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी

हे नाथ ! यदि आप मुनियों के समान वेष में आते तो यही बालक आपकी चरण-रज को सिर पर धारण करता।अब अनजाने की चूकको क्षमा करिये,ब्राह्मण के हृदयमें बहुत ही दया चाहिए।

हमहि तुम्हहि सरबरि कस नाथा * कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा
राम मात्र लघु नाम हमारा * परशु सहित बड़ नाम तुम्हारा

हे नाथ ! हमारी आपकी कैसी बराबरी ? कहो, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक ? कहाँ तो 'राम' मात्र मेरा छोटा सा नाम और कहाँ 'परशु' सहित आपका बड़ा नाम।

देव एकु गुनु धनुष हमारे * नव गुन परम पुनीत तुम्हारे
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे * छमहु विप्र अपराध हमारे

हे देव ! हमारे तो केवल एक धनुष ही गुण हैं और आपके परम पवित्र नव-गुण हैं। हे विप्र ! सब प्रकार हम आपसे हारे हैं, हमारे अपराध क्षमा करिये।

दोहा-बार बार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हँसि, तहूँ बन्धु सम बाम ॥२८२॥

श्रीरामजी ने परशुरामजी से बारम्बार 'मुनि' 'विप्रवर' कहा तो वे क्रोधित होकर बोले-तू भी भाई के समान टेढ़ा है।

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही * मैं जस विप्र सुनावहुँ तोही
चाप श्रुवा सर आहुति जानू * कोप मोर अति घोर कृसानु

तूने मुझे निरा ब्राह्मण ही जान लिया। मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, वैसा ही तुझे सुनाता हूँ। मेरे धनुष को श्रुवा, वाण को आहुति और मेरे क्रोध को प्रचण्ड अग्नि जानो।

समिधि सेन चतुरङ्ग सुहाई * महा महीप भए पशु आई
मैं एहि परसु काटि बलि दीन्हे * समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे

सुहावनी चतुरङ्गिनी सेना समिधा है, उसमें बड़े २ राजा आकर बलि के पशु हुए हैं। मैंने इसी फरसे से काट २ कर उनका बलिदान किया है, ऐसे समर-यज्ञ मैंने करोड़ों किये हैं।

मोर प्रभाउ विदित नहिं तोरें * बोलसि निदरि विप्र के भोरें
भंजेउ चाप दापु बड़ बाढ़ा * अहमिति मनहुँ जीतिजग ठाढ़ा

मेरा प्रभाव तुझे मालुम नहीं,इसीसे ब्राह्मण के धोखे निरादर करते बात कर रहा है। धनुष तोड़ने से तेरा अहंकार बहुत बढ़ गया है कि 'मैं ही हूँ' मानो जगत् को जीतकर सामने खड़ा है।

राम कहा मुनि कहहु बिचारी * रस अति बड़ि लघु चूकहमारी
छुअतिहि टूट पिनाक पुराना * मैं कहि हेतु करौं अभिमाना

श्रीरामजी ने कहा—हे मुनि ! विचार कर कहिए, आपकी रिस बहुत है और हमारी चूक छोटी-सी है। हाथ से छूते ही पुराना धनुष टूट गया, फिर मैं किसलिए अभिमान करूँ।

दोहा—जौं हम निदरहिं विप्रबदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौअसको जग सुभटजेहि, भय बस नावहिं माथ ॥२८३॥

हे भृगुनाथ ! हम जो आपको ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, सो सुनिये—संसार में ऐसा कौन योद्धा है जिसके भय से हम सिर झुकावें ?

देव दनुज भूपति भट नाना * समबल अधिक होउ बलवाना
जौं रन हमहि पचारै कोऊ * लरहिं सुखेन काल किन होऊ

देवता, दानव, राजा, अनेकों योद्धा-वे हमारे समान बलवान् अथवा हमसे अधिक हों, यदि हमको रणमें कोई सुलावे, तो वह काल ही क्यों न हो, हम उससे भी सुख पूर्वक युद्ध करेंगे।

क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना * कुल कलंकु तेहि पाँवरि जाना
कहहुँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी * कालहु डरहिं न रन रघुबंशी

क्षत्रिय-शरीर धारणकर जो युद्ध में डर गया, उसे कुल-कलङ्की और नीच जानना चाहिए। अपना स्वभाव कहता हूँ, कुलकी प्रशंसा नहीं करता, रघुवंशी रण में कालसे भी नहीं डरते हैं।

विप्रवंश कै असि प्रभुताई * अभय होइ जो तुम्हहि डेराई
सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपति के * उघरे पटल परसुधर मति के

ब्राह्मण-वंश की ऐसी प्रभुता है कि जो आपसे डरता है, वह अभय हो जाता है। श्रीरघुनाथजी के ऐसे कोमल व गूढ़ वचन सुन परशुरामजी की बुद्धि के कपाट खुल गये। वे बोले—

राम रमापति कर धनु लेहू * खैंचहु मिटै मोर सन्देहू
देत चाप आपुहिं चढ़ि गयऊ * परसुराम मन विस्मय भयऊ

हे रमापति-राम ! हाथ में यह धनुष लीजिए और इसे चढ़ाइए, जिससे मेरा संदेह मिट

जाय । धनुष देते ही वह आप ही चढ़ गया, तब परशुरामजी के मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ।

दोहा—जाना राम प्रभाउ तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदयँ न प्रेम समात ।।२८४।।

तब परशुरामजी ने श्रीरामजी का प्रभाव जान लिया, शरीर पुलकायमान और अङ्ग प्रफुल्लित होगये । उनके हृदय में प्रेम नहीं समाता था, वे हाथ जोड़कर यह वचन बोले—

जय रघुवंश बनज बन भानू * गहन दनुज कुल दहन कृपानू
जय सुर प्रिय धेनु हितकारी * जय मद मोह कोह भ्रम हारी

हे रघुकुल-कमल-भास्कर ! हे दानव-कुलरूपी सघन वन के लिए दावाग्नि ! आपकी जय हो । हे देवता, ब्राह्मण व गौओं के हितकारी ! आपकी जय हो । हे अभिमान, ममता क्रोध और भ्रम को हरने वाले ! आपकी जय हो ।

विनय सील करुना गुनसागर * जयति बचन रचना अति नागर
सेवक सुखद सुभग सब अङ्गा * जय शरीर छबि कोटि अनङ्गा

हे विनयशील,दया,गुणोंके समुद्र और बचनों की रचना में बड़े चतुर ! आपकी जयहो । हे भक्त सुखदायक,हे सब अङ्ग से सुन्दर और शरीर में करोड़ों कामदेवों की शोभा वाले ! आपकी जयहो

करौं काह मुख एक प्रसंसा * जय महेस मन मानस हंसा
अनुचित बहुत कहउँ अजाता * छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता

एक मुख से मैं आपकी क्या प्रशंसा करूँ ? हे शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के हंस आपकी जय हो । बिना जाने मैंने (अज्ञान से) बहुत अनुचित वचन कहे हैं, सो हे क्षमा के मन्दिर दोनों भाई ! क्षमा करिये ।

कहि जय जय जय रघुकुल केतू * भृगुपति गए बनहिं तप हेतू
अप भयँ कुटिल महीप डेराने * जहँ तहँ कायर गवहिं पराने

हे रघुवंश में ध्वजारूपी श्रीरामजी ! आपकी बारम्बार जय हो । ऐसा कहकर परशुरामजी तप करने के लिए वन को चले गये । तब अपने ही अनुचित वर्ताव के डर से कुटिल राजा डर गये और वे कायर जहां-तहां भाग गये ।

दोहा—देवन्ह दीन्ही दुन्दुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटी मोहमय सूल ।।२८५।।

देवताओं ने नगाड़े बजाये और प्रभु पर पुष्प-वृष्टि की । नगर के स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए और मोह, भय एवं दुःख मिट गये ।

अति गह गहे बाजने बाजे * सबहिं मनोहर मङ्गल साजे
जूथ जूथ मिलि सुमुख सुनयनीं * करहिं गान कल कोकिल बयनीं

बड़े आनन्द के बाजे बजने लगे और सबने मनोहर मङ्गलमय साज सजाये । सुमुखी, सुनयनी, कोकिल-वयनी स्त्रियां झुण्ड की झुण्ड मिलकर गीत गाने लगीं ।

सुख बिदेह कर बरनि न जाई * जन्म दरिद्र मनहुँ निधि पाई

विगत त्रास भइ सीख सुखारी * जनु बिधु उदयँ चकोर कुमारी

विदेहराज के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो जन्म के दरिद्री ने सम्पदा पाई हो। भय दूर हो जाने से सीताजी ऐसी सुखी हुईं, जैसे चन्द्रमा के उदय होने से चकोर की बच्ची सुखी होती है।

जनक कीन्ह कौसिकहिं प्रनामा * प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई * अबजो उचित सो कहिइ गोसाँई

जनकजी ने मुनि विश्वामित्रजी को प्रणाम किया और कहा–हे प्रभु! आपकी दया से श्रीरामजी ने धनुष तोड़ा है। मुझे दोनों भाइयों ने कृतार्थ कर दिया। हे नाथ! अब जो उचित हो सो कहिये।

कह मुनि सुन नरनाथ प्रवीना * रहा बिबाहु चाप आधीना
टूटत ही धनु भयउ बिबाहू * सुर नर नाग विदित सब काहू

मुनि ने कहा–हे चतुर राजा! सुनो, विवाह तो धनुष के आधीन था, सो धनुष के टूटते ही हो गया। यह देवता, मनुष्य, नाग सबको विदित है।

दोहा–तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथावंश व्यवहारु।
बूझि विप्र कुल बृद्ध गुरु, वेद विदित आचारु॥२८६॥

तो भी तुम जाकर जैसा वंश के व्यवहार के अनुसार ब्राह्मण, कुल के वयोवृद्ध तथा गुरु से पूछकर वेदों में वर्णित आचार के अनुसार कार्य करो।

दूत अवधपुर पठवहु जाई * आनहिं नृप दशरथहि बोलाई
मुदित राजकहि भलेहि कृपाला * पठए दूत बोलि तेहि काला

जाकर अयोध्या को दूत भेजो, वे जाकर महाराज दशरथ को बुला लावें तथा प्रसन्न होकर राजा ने कहा–हे कृपालु! बहुत अच्छा, और उसी समय दूत बुलाकर भेज दिए।

बहुरि महाजन सकल बोलाए * आए सबन्हि सादर सिरु नाए
हाट बाट मन्दिर सुर बासा * नगरु सँवारहु चारिहुँ पासा

फिर महाजन बुलवाये, सबने आकर आदर के साथ सिर नवाये। उनको आज्ञा दी कि बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगर को चारों तरफ से सजाओ।

हरषि चले निज निज गृह आए * पुनि परिचारक बोलि पठाए
रचहु विचित्र बितान बनाई * सिर धरि वचन चले सचु पाई

तब आज्ञा सुनकर सब चले और अपने २ घर आये, फिर राजा जनकजी ने सेवकों को बुलावा भेजा और कहा-अनोखा मण्डप सजाओ। वे आज्ञा को शिरोधार्य करके चले गये।

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना * जे बितान बिधि कुसल सुजाना
बिधिहि बन्दि तिन्ह कीन्ह अरम्भा * बिरचे कनक कदलि के खम्भा

उन्होंने अनेक कारीगरों को बुलावा भेजा, जो मण्डप बनाने में बड़े चतुर थे। उन्होंने ब्रह्माजी की वन्दना करके कार्य को आरम्भ किया, पहले सोने के केले के खम्भे बनाये।

दोहा—हरित मनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल ॥२८७॥

हरी मणियों (पन्नों) के फल, पत्ते बनाये और पदमराग के फूल बनाये। अनोखी रचना को देखकर ब्रह्मा का मन भूल गया।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें * सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे
कनक कलित अहिबेल बनाई * लखि नहिं परइ सपरन सुहाई

हरी मणियों के सब बाँस ऐसे सीधे और गाँठ समेत बनाये, जो पहिचाने नहीं जाते। उन पर सोने की सुन्दर नागवेलि पानों समेत ऐसी सुहावनी बनाई, जो पहिचानी नहीं जाती थी।

जेहि के रचि पचि बन्ध बनाए * बिच बिच मुकुता दाम सुहाए
मानिक मरकत कुलिस पिरौजा * चीरु कोरि पचि रचे सरोजा

उसीके लिए सँभालकर गूँथ कर बन्धन बनाए, उनके बीच २ में मोतियों की झालरें लटका दी। माणिक, नीलम, हीरा, पिरोजा—इनको चीरकर और कोरों को मिलाकर कमल बनाए।

किए भृङ्ग बहुरङ्ग बिहङ्गा * गुँजहिं कूजहिं पवन प्रसङ्गा
सुर प्रतिमा खम्भन्ह गढ़ि काढ़ीं * मङ्गल द्रव्य लिएँ सब ठाढ़ीं
चौकें भाँति अनेक पुराई * सिन्धुर मनिमय सहज सुहाई

भौंरे और रंग-बिरंगे पक्षी बनाए, जो वायु के लगने से गूँजते तथा बोलते थे। देवताओं की मूर्तियाँ खम्भों में गढ़ाकर बनाई, जो सब मंगल-द्रव्य लिए खड़ी थीं। अनेक प्रकार के स्वाभाविक सुहावने चौक-गज मुक्ताओं से पूरकर बनाये।

दोहा—सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि ॥२८८॥

नील-मणि को कोर कर सुन्दर आम के पत्ते बनाये, उसमें सोने के बौर, हरी मणियों की अम्बियों के गुच्छे रेशम के धागों से लटके हुए शोभा दे रहे थे।

रचे रुचिर बर बन्दनिहारे * मनहुँ मनोभवँ फन्द सँवारे
मङ्गल कलस अनेक बनाए * ध्वजा पताक पट चमर सुहाए

श्रेष्ठ बन्दनवार बनाये, मानो कामदेव ने अपने हाथों से बाँधे हों। अनेकों मंगलकलश, ध्वजा पताका, वस्त्र और चँवर बनाये।

दीप मनोहर मनिमय नाना * जाइ न बरनि बिचित्र बिताना
जेहि मण्डप दुलिहिन बैदेही * सो बरनै असि मति कबि केही

जिनमें मणि के मनोहर दीपक हैं, ऐसे विचित्र मण्डप का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस मण्डप में श्रीजानकीजी दुलहिन हों उस मण्डप का वर्णन कर सके, ऐसी मति किस कवि की हो सकती है।

दूलह राम रूप गुन सागर * सो बितानु तिहुँ लोक उजागर

जनक भवन कै सोभा जैसी * गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी

सब गुणोंके समुद्र श्रीरामजी जिसमें दूलह होंगे, वह मंडप तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। जनक जी के राज-भवन की जैसी शोभा है, वैसी ही शोभा जनकपुर में घर-घर देखने में आती है।

जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी * तेहिं लघु लगहिं भुवन दस चारी
जो सम्पदा नीच गृह सोहा * सो बिलोकि सुरनायक मोहा

जिसने उस समय जनकपुर को देखा, उसे चौदहों भवन फीके लगे। जो सम्पदा नीच के घर भी शोभित थी, इसको देखकर इन्द्र भी मोहित होगया।

दोहा—बसहि नगर जेहिं लच्छि, कर कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत, सकुचहिं सारद सेषु॥२८८॥

जिस नगर में लक्ष्मीजी कपट से सुन्दर स्त्री का वेष धारण कर बसती हैं। उस नगर की शोभा कहने में सरस्वतीजी और शेषजी सकुचाते हैं।

पहुँचे दूत रामपुर पावन * हरषे नगर बिलोकि सुहावन
भूप द्वार तिन्ह खबर जनाई * दशरथ नृप सुनि लिये बोलाई

जनकपुर के दूत श्रीरामजी की पवित्रपुरी अयोध्या में पहुँचे, तो सुहावने नगर को देखकर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने राजद्वार पर खबर दी, राजा दशरथजी ने सुनते ही उन्हें बुला लिया।

करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही * मुदित महीप आपु उठि लीन्ही
बारि बिलोचन बाँचत पाती * पुलक गात आई भरि छाती

प्रणाम करके उन्होंने पत्रिका दी, प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं उठकर पत्रिका ली। पत्रिका बाँचते ही नेत्रों में जल भर आया, शरीर पुलकायमान हो गया और हृदय भर आया।

राम लखनु उर कर बर चीठी * रहि गए कहत न खाटी मीठी
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची * हरषी सभा बात सुनि साँची

राम-लक्ष्मण हृदय में और श्रेष्ठ पत्रिका हाथ में लिये रह गये, बुरी भली कुछ भी कहते न बनी। फिर धीरज धरकर पत्रिका बाँची, तो सच्ची बात को सुनकर सभा प्रसन्न हुई।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई * आए भरतु सहित हितु भाई
पूछत अति सनेहँ सकुचाई * तात कहाँ ते पाती आई

भरतजी छोटे भाई शत्रुघ्न सहित खेल रहे थे, वहाँ यह पत्री का समाचार पाकर दोनों भाई आए और बड़े स्नेह से सकुचाकर पूछने लगे—हे पिताजी ! पत्रिका कहाँ से आई है।

दोहा—कुसल प्रान प्रिय बन्धु दोउ, अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेहँ साने बचन, बाँची बहुरि नरेस॥२९०॥

हमारे प्राण-प्रिय दोनों भाई कहिये, किस देश में हैं ? यह स्नेह भरे वचन सुनकर राजा फिर वह पत्रिका पढ़कर सुनाई—

अनन्त श्रीमहाराज अपराजिताधिराज, सकल महाराजानां शिरताज जगलाज को जहाज गरीबन-नेवाज, महिमण्डल महेन्द्र के उपेन्द्र सम कारण काज, यश जगत जहान ते भान, समान प्रतापवान दान मान सम्मान सुजान, ज्ञान प्रेम निधान, दशरथ भूप को शौरकेतु भूप की जयजीव ! आप अनूप कुशल स्वरूप हैं, वहाँ आपकी कृपा हो कुशल है। भुवन हितकारी मुनि सङ्ग, अङ्ग-भङ्ग आभा उमंग, अनंग आभा मंगल करनहार, आपके युगल-कुमार आये हमने लोचन लाभ पाये। रामचन्द्रजी ने महीपन मद मोरि, महेश धनुष तोरि कीर्ति जग छाई, महिमा पाई। सजि बरात आइये, व्याहि ले जाइये। आपका——जनकराज

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता * अधिक सनेहु समात न गाता
प्रीति पुनीत भरत कै देखी * सकल सभाँ सुखु लहेउ विशेषी

पत्री सुनकर दोनों भाई पुलकित होगये और अधिक स्नेह से फूले न समाये। भरतजी का पवित्र प्रेम देखकर सभा ने विशेष सुख माना।

तब नृप दूत निकट बैठारे * मधुर मनोहर बचन उघारे
भैया कहहु कुसल दोउ बारे * तुम्ह नीके निज नयन निहारे

तब राजा ने दूतों को पास बिठाया और मधुर व मनोहर बचन कहे–हे भैया ! कहो, दोनों पुत्र कुशल से तो हैं ? क्या तुमने भली-भाँति उन्हें अपनी आँखों से देखे हैं।

स्यामल गौर धरें धनु भाथा * वय किसोर कौसिक मुनि साथा
पहिचानहुँ तुम्ह कहहु सुभाऊ * प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ

साँवले और गोरे शरीर वाले वे धनुष-बाण लिए किशोर अवस्था वाले हैं, विश्वामित्र मुनि के साथ हैं। उनको पहिचानते हो तो उनका स्वभाव कहो ? प्रेम के विवश ही राजा ने बारम्बार यही कहा।

जा दिन तें मुनि गए लिवाई * तब तें आजु साँचि सुधि पाई
कहहु विदेह कवन विधि जाने * सुनि प्रिय वचन दूत मुसुकाने

जिस दिन से मुनि ले गए हैं, तब से आज सच्ची खबर पाई है। कहो, राजा जनकजी ने उनको किस प्रकार पहिचाना ? राजा के प्रिय वचन सुनकर दूत मुसकराने लगे।

दोहा–सुनहु महीपति मुकुटमनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लखनु जिन्हके तनय, विश्व विभूषन दोउ ॥२९१॥

और बोले–हे राजाओं में शिरोमणि ! सुनो, आपके समान धन्य कोई नहीं हैं, जिनके श्रीराम-लक्ष्मण जैसे पुत्र हैं, जो दोनों विश्व के भूषण हैं।

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे * पुरुषसिंह तिहु पुर उजियारे
जिन्ह के जस प्रताप के आगें * ससि मलीन रवि सीतल लागें

आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं। वे पुरुष-सिंह और त्रिलोकी के प्रकाश स्वरूप हैं। जिनके यश और प्रताप के आगे चन्द्रमा मलिन और सूर्य शीतल लगता है।

तिन्ह कहँ नाथ कहिअ किमि चीन्हे * देखिअ रवि कि दीप कर लीन्हे
सीय स्वयम्बर भूप अनेका * समिटे सुभट एक तें ऐका

हे नाथ ! उन्हें आप कहते हैं कि कैसे पहिचाना ? क्या सूर्य को कोई हाथ में दीपक लेकर देखता है ? सीता स्वयम्बर में अनेक राजा, एक से एक बड़े योद्धा एकत्र हुए थे।

सम्भु सरासन काहुँ न टारा * हारे सकल वीर बरिआरा
तीन लोक महँ जे भटमानी * सब कै सकति शम्भु धनु भानी

परन्तु शिवजी का धनुष किसी से न उठा, सब बलवान वीर हार गये। तीनों लोकों में जो अभिमानी योद्धा हैं, शिव-धनुष ने उन सबको शक्ति हरण करली थी।

सकइ उठाइ सुरासर मेरू * सोउ हियँ हारि गयउ करि फेरू
जेहि कौतुक सिवसैलु उठावा * सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा

वाणासुर–जो सुमेरु-पर्वत को उठा सकता है, वह भी मन में हार मानकर धनुष की परिक्रमा करके लौट गया। जिसने कैलाश-पर्वत को खेल में ही उठा लिया, वह रावण भी उस समाज में हार गया।

दोहा–तहाँ राम रघुबंशमनि, सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पङ्कज नाल ॥२८२॥

हे महाराज ! सुनिये, वहाँ रघुवंश मणि श्रीरामजी ने बिना प्रयास ही धनुष को ऐसे तोड़ डाला, जैसे हाथी कमल की डण्डी को तोड़ देता है।

सुन सरोष भृगुनायक आए * बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा * करि बहु विनय गवनु वन कीन्हा

यह सुनकर क्रोध से भरे हुए परशुरामजी आये, उन्होंने बहुत प्रकार से आँखें दिखाईं फिर श्रीरामजी का बल देखकर उन्हें अपना धनुष दे दिया और विनय करके वन को चले गये।

राजन राम अतुल बल जैसें * तेज निधान लखनु पुनि तैसें
कम्पहिं भूप विलोकत जाकें * जिमि गज हरि किशोर के ताकें

हे राजन् ! जैसे श्रीरामजी अत्यन्त बली हैं, वैसे ही लक्ष्मणजी भी तेज-निधान हैं। जिन्हें देखते ही राजा लोग कांपते हैं, जैसे हाथी सिंह के बच्चे को देखकर कांपते हैं।

देवि देखि तव बालक दोऊ * अब न आँखि तर आवत कोऊ
दूत वचन रचना प्रिय लागी * प्रेम प्रताप वीर रस पागी

हे देव ! आपके दोनों राजकुमारों को देखकर अब हमारी दृष्टि में कोई दूसरा नहीं आता। दूतों की वचन-रचना सबको प्रिय लगी, जो प्रेम और वीर-रस से भरी हुई है।

सभा समेत राउ अनुरागे * दूतन्ह देन निछावर लागे
कहि अनीति ते मँदहिं काना * धरमु विचारि सबहिं सुखु माना

सभा सहित राजा-प्रेम-मग्न हो गये और दूतों को न्योछावर देने लगे। यह अनीति है।

यह कहकर दूत ने अपने कान बन्द कर लिये, यह धर्मयुक्त बात समझकर सबने सुख माना।

दोहा—तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ, दीन्ह पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरुहि सब, सादर दूत बोलाइ ॥२९३॥

तब राजा ने वशिष्ठजी के पास जाकर उनको पत्रिका दी और दूतों को आदर सहित बुलाकर गुरुदेव को सब कथा सुनाई।

सुनि बोले गुरु अति सुखु पाई * पुण्य पुरुष कहूँ महि सुख छाई
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं * जद्यपि ताहि कामना नाहीं

सुनकर गुरु बहुत प्रसन्न हुए और बोले-पुण्यवान पुरुष के लिए सब पृथ्वी सुखों से भरी है। जैसे नदियाँ समुद्र में जाकर मिलती हैं, यद्यपि समुद्र को नदियों की कुछ चाह नहीं रहती।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ * धरमशील पहिं जाहिं सुभाएँ
तुम्ह गुरु विप्र धेनु सुर सेवी * तसि पुनीत कौशल्या देवी

उसी प्रकार सुख और सम्पत्ति बिना बुलाये, स्वभाव से ही धर्मात्मा पुरुष के पास आ जाती हैं। जैसे आप—गुरु, ब्राह्मण, गौ और देवताओं की सेवा करने वाले हैं, वैसे ही पवित्र कौशिल्या देवी भी हैं।

सुकृति तुम्ह समान जग माहीं * भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं
तुम्ह ते अधिक पुण्य बड़ काके * राजन राम सरिस सुत जाके

तुम्हारे समान पुण्यात्मा संसार में कोई नहीं है और न हुआ है, न आगे होगा। हे राजन्! तुमसे अधिक बड़ा पुण्य किसका है? जिसके श्रीरामजी सरीखे पुत्र हैं।

बीर विनीत धरम ब्रत धारी * गुनसागर वर बालक चारी
तुम्ह कहँ सर्ब काल कल्याना * सजहु बरात बजाइ निसाना

वीर, विनय-शील, धर्म-व्रती और गुणों के समुद्र जिसके चारों पुत्र हैं। तुम्हारा सर्वदा कल्याण है, अब निशान बजाकर बरात सजाओ।

दोहा—चलहु बेगि सुनि गुरु बचन, भलेहिं नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बासु देवाइ ॥२९४॥

गुरु के वचन सुनकर 'हे नाथ! बहुत अच्छा' ऐसा कहकर, सिर नवाकर और दूतों को वास दिलवाकर राम-महल में गये।

राजा सबु रनिवास बोलाई * जनक पत्रिका बाँचि सुनाई
सुनि सन्देसु सकल हरषानीं * अपर कथा सब भूप बखानीं

राजा ने सारे रनिवास को बुलाकर जनकजी का पत्र बाँचकर सबको सुना दिया। सन्देश सुनकर सब रानियाँ प्रसन्न हुईं, तब राजा ने सब कथा ब्यौरे-वार कही, जो दूतों से सुनी थी।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी * मनहुँ सिखिन्ह सुनि बारिदबानी
मुदित असीस देहिं गुरु नारी * अति आनन्द मगन महतारी

रानियाँ प्रेम से प्रफुल्लित हो ऐसी सुशोभित हुईं—जैसे मोरनी मेघों की गर्जना सुनकर प्रसन्न होती हैं। गुरु-कुल की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद देने लगीं, मातायें अत्यन्त आनन्द में मग्न हुईं।

लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती * हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती
राम लखन कै कीरति करनी * बारहिं बार भूपवर बरनी

और आपस में उस बहुत प्रिय पत्र को हृदय से लगाकर छाती ठण्डी करने लगीं। श्री-राम-लक्ष्मणजी की कीर्ति और करनी का महाराज दशरथजी ने बारम्बार वर्णन किया।

मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए * रानिन्ह तब महिदेव बोलाए
दिए दान आनन्द समेता * चले विप्रवर आषिस देता

'यह सब मुनि की कृपा है' ऐसा कहकर वे बाहर चले गये। रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया और आनन्द सहित अनेकों दान दिये, सब श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले।

सो०—जाचक लिए हँकारि, दीन्हि निछावर कोटि विधि।
चिरुजीवहुँ सुतचारि, चक्रबर्ति दसरत्थ के ॥२९५॥

फिर याचकों को बुलाकर करोड़ों भाँति की वस्तुयें न्यौछावर में दीं। तब उन्होंने कहा-'चक्रवर्ती महाराज दशरथजी के चारों पुत्र चिरंजीवी हों।'

कहत चले पहिरें पट नाना * हरषि हने गहगहे निसाना
समाचार सब लोगन्ह पाए * लागे घर घर होन बधाए

इस तरह कहते हुए वे अनेक प्रकार के वस्त्र पहन२कर चले और प्रसन्न होकर आनन्द के नगाड़े बजने लगे। यह समाचार जब पुर के लोगों ने पाये, तब घर-घर बधाये होने लगे।

भुवन चारि दस भरा उछाहू * जनक सुता रघुवीर विवाहू
मुनि सुभ कथा लोग अनुरागे * मग गृह गली सँवारन लागे

चौदहों भुवनों में आनन्दोत्सव छा गया कि श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथ का विवाह है। यह शुभ समाचार सुन सब लोग प्रसन्न हुए और बाजार, घर तथा गलियाँ सजाने लगे।

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि * रामपुरी मङ्गलमय पावनि
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई * मङ्गल रचना रची बनाई

यद्यपि अयोध्या सदैव ही सुहावनी है, क्योंकि वह श्रीरामजी की मङ्गलमयी पवित्र पुरी है। तथापि प्रीति की सुन्दर रीति दिखाने के लिए मङ्गल-रचना से रचकर सजाई गई।

ध्वजा पताक पट चामर चारू * छावा परम विचित्र बजारू
कनक कलस तोरन मनि जाला * हरद दूब दधि अच्छत माला

सुन्दर ध्वजा, पताका, वस्त्र और चँवरों से बाजार बहुत विचित्र रीति से सजाया गया। सोने के कलश, बन्दनवार, मणियों की झालरें, हल्दी, दूब, दही अक्षत और मालाओं से—

दोहा—मङ्गलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।

बीथीं सींचीं चतुर सम, चौकें चारु पुराइ ॥२९६॥

अपने-अपने घर लोगों ने मङ्गलमय बनाकर सजाये, गलियों को चतुर-रस से सींचा और अपने आँगनों में सुन्दर चौक पुराए।

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि * सजि नवसप्त सकल दुतिदामिनि
बिधु बदनी मृगसावकलोचनि * निज स्वरूप रति मानु बिमोचनि

बिजली की-सी कान्ति वाली, चन्द्रमुखी, मृग-नयनी और अपने स्वरूप से रति के मान को हरने वाली स्त्रियाँ सोलह-शृङ्गार सजाकर यहाँ-तहाँ झुण्ड बनाकर—

गावहिं मङ्गल मञ्जुल बानी * सुनि कलरव कलकण्ठ लजानी
भूप भवन किमि जाइ बखाना * विश्व विमोहन रचेउ बिताना

मधुर वाणी से मङ्गल-गान गाने लगीं, उनके मनोहर गान को सुनकर कोयल भी लज्जित होगई। राज-भवन की शोभा का वर्णन कैसे किया जाय ? जहाँ जगत् को मोहित करने वाला मण्डप रचाया गया था।

मंगल द्रव्य मनोहर नाना * राजत बाजत बिपुल निसाना
कतहुँ बिरिद बन्दी उच्चरहीं * कतहूँ बेद धुनि भूसुर करहीं

अनेक प्रकार की मनोहर वस्तुयें सुशोभित थीं और बहुत प्रकार से बाजे बज रहे थे। कहीं बन्दीजन वंशाबली सुना रहे थे। और ब्राह्मण उस क्षण बड़ी वेद ध्वनि कर रहे थे।

गावहिं सुन्दरि मंगल गीता * लै लै नामु रामु अरु सीता
बहुत उछाह भवन अति थोरा * मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा

सुन्दर स्त्रियाँ श्रीरामजी और सीताजी का नाम ले-लेकर मङ्गल-गीत गारही थीं। राज-भवन बहुत छोटा और उसमें उत्सव बहुत बड़ा था, अतः मानो उमड़कर चारों ओर फैल गया हो।

दोहा—सोभा दसरथ भवन कइ, को कवि बरनै पार।
जहाँ सकलसुरसिमनि, राम लीन्ह अवतार ॥२९७॥

दशरथजी के भवन की शोभा का वर्णन भला कौन कवि कर सकता है ? जहाँ सब देवताओं के शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी ने अवतार लिया है।

भूप भरत पुनि लिए बोलाई * हय गय स्यनन्द साजहु जाई
चलेहु बेगि रघुवीर बराता * सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता

फिर राजा ने भरतजी को बुलाकर आज्ञा दी कि जाकर घोड़े, हाथी और रथों को सजाओ और शीघ्र ही रघुनाथजी की बरात को चलाओ। यह सुनकर दोनों भाई पुलकित होगये।

भरत सकल साहनीं बोलाए * आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए
रुचि रुचि जीन तुरंग तिन्ह साजे * बरन बरन बर बाजि बिराजे

भरतजी ने सेनापतियों को बुलाया और आज्ञा दी वे प्रसन्न होकर उठ दौड़े। उन्होंने सुन्दर जीन कसकर घोड़ों को सजाया, रङ्ग-बिरंगे उत्तम घोड़े सजाकर सुशोभित किये।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी * अय इव जरत धरत पग धरनी
नाना जाति न जाहिं बखाने * निदरि पवन जनु चहत उड़ाने

सब घोड़े सुन्दर व चंचल चाल वाले थे, पृथ्वी पर ऐसे पैर रखते मानो जलते हुए लोहे पर रखते हों। अनेक जाति के अवर्णनीय घोड़े मानो पवन का निरादर कर उड़ना चाहते हैं।

तिन्ह सब छयल भए असवारा * भरत सरिस वय राजकुमारा
सब सुन्दर सब भूषनधारी * कर सर चाप तून कटि भारी

उन घोड़ों पर भरतजी के समान सब छैल-छबीले राजकुमार सवार हुए। सभी सुन्दर तथा आभूषण धारण किये, हाथों में धनुष-बाण लिये, कमरों में भारी तरकस कसे हुए थे।

दोहा—छरे छबीले छयल सब, सूर सुजान नवीन।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असि कला प्रवीन ॥२९८॥

सब छँटे हुए, सुन्दर, बांके, शूरवीर, चतुर और नवीन थे। प्रत्येक के साथ दो-दो पैदल सिपाही थे, जो तलवार चलाने में निपुण थे।

बाँधे विरद वीर रन गाढ़े * निकसि भए पुर बाहर ठाढ़े
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना * हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना

शूरता का बाना बाँधे हुए, रण-बाँकुरे वीर नगर से निकल बाहर जा खड़े हुए। वे चतुर अनेकों प्रकार की गति से घोड़ों को फेरने लगे, दुन्दुभी की ध्वनि सुनकर प्रसन्न होने लगे।

रथ सारथिन्ह विचित्र बनाए * ध्वज पताक मनि भूषनि लाए
चँवर चारु किंकिन धुनि करहीं * भानु जान सोभा अपहरहीं

सारथियों ने ध्वजा, पताका मणि और गहनों से रथों को भली प्रकार सजाया। उसमें सुन्दर चँवर लगे हुए थे और घण्टियों की मनोहर ध्वनि हो रही थी, वे मानो सूर्य के रथ की शोभा को छीन रहे थे।

सावँकरन अगनित हय होते * ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे * जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे

अगणित श्यामवर्ण घोड़े थे, वे सारथियों ने उन रथों में जोत दिये—जो सुन्दर गहनों से सजे हुए शोभायमान थे। जिन्हें देखकर मुनियों के भी मन मोहित हो जाते थे।

जे जल चलहिं थलहिं की नाईं * टाप न बूढ़ बेग अधिकाईं
अस्त्र शस्त्र सबु साजु बनाई * रथी सारथिन्ह लिए बोलाई

जो जल पर भी थल के समान चलते और वेग के कारण जल में उनकी टापें भी नहीं डूबती थीं, अस्त्र शस्त्र आदि सब साज सजाकर सारथियों को बुला लिया।

दोहा—चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुन्दर सबहिं, जो जेहि कारज जात ॥२९९॥

रथों पर चढ़कर नगर के बाहर बरात एकत्र होने लगी। जो जिस काम को जाता था, उन सबको ही सुन्दर सगुन होते थे।

कलितकरिबरन्हिपरीं अँबारी * कहि न जाहिं जेहि भाँतिसँवारी
चले मत्त गज घण्ट बिराजी * मनहुँ सुभग सावन घन राजी

सुन्दर हाथियों पर अम्बारी रखकर ऐसी सुन्दर सजाई कि कहा नहीं जा सकता। मतवाले हाथी जब चलते, तब उनके गलों में बजते हुए घण्टों की ऐसी शोभा हुई, मानो सावन के सुन्दर मेघ गरज रहे हैं।

बाहन अपर अनेक बिधाना * सिबिका सुभग सुखासन जाना
जिन्ह चढ़ि चले बिप्रवर बृन्दा * जनु तनु धरें सकल श्रुति छन्दा

और भी अनेक भाँति की सवारियाँ जैसे पालकी, सुख से बैठने योग्यसुखपाल, रथ आदि हैं। उन पर चढ़कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों के झुण्ड चले, मानो वेदों के छन्द शरीर धारण किये हैं।

मागध सूत बन्दि गुन गायक * चले जानि चढ़ि जो जेहि लायक
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती * चले बस्तु भरि अगनित भाँती

मागध, सूत, बन्दीजन, गुण गाने वाले, जो जिस योग्य थे, वे वैसी ही सवारी पर चढ़कर चले। अनेकों प्रकार के खच्चर, ऊँट और बैल अनगिनती भाँति की वस्तुयें लादकर चले।

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा * बिबिध बस्तु को बरनै पारा
चले सकल सेवक समुदाई * निज निज साजु समाजु बनाई

करोड़ों बहँगी लेकर कहार चले, उनमें अनेक प्रकार की वस्तुयें थीं, जिन्हें कौन वर्णन कर सकता है? सब सेवकों के झुण्ड अपने २ समाज के साथ सजकर चले।

दोहा—सबकें उर निर्भर हरष, पूरित पुलक शरीर।
कबहिं देखिहैं नयन भरि, राम लखनु दोउ बीर ॥३००॥

सबके हृदय में पूर्ण हर्ष है और शरीर पुलकित हैं। (सबको यही लालसा लगी है कि) हम श्रीराम लक्ष्मण दोनों वीर भाई को कब नेत्र भरकर देखेंगे?

गरजहिं गजघण्टा धुनि घोरा * रथ रव बाज हिंस चहुँ ओरा
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना * निज पराइ कछु सुनिअ न काना

हाथी गरजने लगे, उनके घन्टों की ध्वनि, रथों की गड़गड़ाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट चारों ओर होने लगी। मेघों का निरादर करते हुए नगाड़े बजने लगे, अपनी-पराई कुछ भी कानों से सुनाई नहीं देती।

महा भीर भूपति के द्वारे * रज होइ जाइ पषान पँवारे
चढ़ीं अटारिन्ह देखहिं नारी * लिएँ आरती मङ्गल थारी

राजा के दरवाजे पर ऐसी भारी भीड़ हुई कि यदि पत्थर भी फेंक दें तो पाँवों से पिस कर रेत हो जाय। अटारियों पर चढ़कर स्त्रियाँ थालों में मङ्गल-आरती लिए देख रही हैं।

गावहिं गीत मनोहर गाना * अति आनन्द न जाइ बखाना
तब सुमन्त्र दुइ स्यन्दनसाजी * जोते रबि हय निन्दक बाजी

और भाँति २ के मनोहर गीत गा रही हैं, उनका अत्यन्त आनन्द कहा नहीं जा सकता। तब मन्त्री सुमन्तजी ने दो रथ सजाये, उनमें ऐसे घोड़े जोते, जो सूर्य के घोड़ों को भी लजाते थे।

दोउ रथ रुचिर भूप पहँ आने * नहिं सारद पहँ जाहिं बखाने
राम समाजु एक रथ साजा * दूसर तेजपुञ्ज अति भ्राजा

दोनों सुन्दर रथ वे राजा के पास लाये, उनका वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। एक रथ राजसी-चिन्हों से सुशोभित था और दूसरा तेज के समूह से बहुत ही शोभित था।

दोहा—तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ, हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आप चढ़ेउ स्यनन्द सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु ॥३०१॥

उस सुन्दर रथ पर राजा ने हर्ष के साथ वशिष्ठजी को चढ़ाया और आप शिव, गुरु, पार्वती और गणेशजी का स्मरण करके दूसरे रथ पर चढ़े।

सहित बशिष्ठ सोह नृप कैसें * सुर गुरु सङ्ग पुरन्दर जैसें
करि कुलरीति वेद विधि राऊ * देखि सबहिं सब भाँति बनाऊ

वशिष्ठजी सहित राजा दशरथ कैसे शोभित हुए, जैसे बृहस्पतिजी के साथ इन्द्र हों, कुलकी रीति और वेद की विधि के अनुसार कार्य करके, सबको इस प्रकार से सजे हुए देखकर—

सुमिर राम गुरु आयसु पाई * चले महीपति शंख बजाई
हरषे विबुध विलोकि बराता * बरषहिं सुमन सुमङ्गल दाता

श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर, गुरुजी की आज्ञा पाकर दशरथजी शंख बजाकर चले। तब देवता बरात को देखकर प्रसन्न हुए और मङ्गलदायक फूल बरसाने लगे।

भयउ कोलाहल हय गय गाजे * व्योम बरात बाजने बाजे
सुर नर नारि सुमंगल गाई * सरस रागु बाजहिं सहनाई

बड़ा शब्द हुआ, घोड़े हिनहिनाने, हाथी चिघाड़ने लगे, आकाश में बरात के बाजे बजने लगे। देवताओं व मनुष्यों की स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गल गान करने लगीं, रसीले स्वर से शहनाई बजने लगी।

घण्ट घण्टि धुनि बरनि न जाही * सरव करहिं पाइक फहराही
करहिं विदूषक कौतिक नाना * हास कुसल कल गान सुजाना

घंटा और घंटियों की ध्वनि वर्णन नहीं की जा सकती, सेवकलोग हाथ में झंडियाँ लेकर फहराते हुए चले आ रहे थे। हँसाने और गाने में चतुर विदूषक अनेक प्रकार के खेलकर रहे थे।

दोहा—तुरँग नचावहिं कुँवर वर, अकिन मृदङ्ग निसान।
नागरनट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल बँधान ॥३०२॥

सुन्दर राजकुमार मृदङ्ग नगाड़े के शब्द सुनकर उनकी गति पर घोड़ों को ऐसे नचाने लगे कि वे ताल के बँधान से जरा भी नहीं डिगते, चतुर नट चकित होकर यह देख रहे हैं।

बनइ न बरनत बनी बराता * होहिं सगुन सुन्दर सुभदाता
चारा चाषु वाम दिसि लेई * मनहुँ सकल मङ्गल कहि देई

बरात की बनावट कहते नहीं बनती, सुन्दर मङ्गलदायक सगुन हो रहे हैं। नीलकण्ठ बायीं ओर चारा ले रहे हैं, मानो सब मङ्गल कहे देते हैं।

दाहिन काग सुखेत सुहावा * नकुल दरसु सब काहू पावा
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी * सुघट सबाल आव वर नारी

दाहिनी ओर सुन्दर खेतों में कौआ शोभा दे रहा है और न्यौले का दर्शन सबको हुआ। अनुकूल तीनों प्रकार की पवन चलने लगी, जल से भरा हुआ घड़ा और बालक सहित सुन्दर स्त्री सामने आई।

लोवा फिरि फिरि दरसु दिखावा * सुरभी सन्मुख सिसुहि पिआवा
मृगमाला फिर दाहिन आई * मङ्गल गनु जनु दीन्ह दिखाई

लोमड़ी बारम्बार दिखाई देती है, गाय सामने बछड़े को दूध पिला रही है। हिरनों का झुण्ड दाहिनी ओर आ गया, मानो मङ्गलों का समूह दिखाई पड़ा हो।

छेमकरी कह छेम बिसेषी * स्यामा बाम सुतरु पर देखी
सनमुख आयउ दधि अरु मीना * कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना

सगुन-चिरैया विशेष कुशल-क्षेम कह रही है और श्यामा बायीं ओर सुन्दर वृक्ष पर दीख पड़ी। दही, मछली और हाथों में पुस्तक लिए दो चतुर ब्राह्मण दीख पड़े।

दोहा—मङ्गलमय कल्यान मय, अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भए सगुन एक बार ॥३०३॥

मङ्गल और कल्याण को देने वाले तथा इच्छानुसार फल देने वाले सब सगुन मानो सत्य होने के लिए एक ही साथ हुए।

मङ्गल सगुन सुगम सब ताकें * सगुन ब्रह्म सुन्दर सुत जाकें
राम सरिस बरु दुलहिन सीता * समधी दशरथ जनक पुनीता

उसको मङ्गल और सगुन सब सहज हैं-जिसके स्वयं सगुण-ब्रह्म सुन्दर पुत्र हैं। श्रीरामजी सरीखे दूल्हा और सीताजी सरीखी दुलहिन तथा दशरथ व जनक सरीखे पवित्र समधी हैं।

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे * अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना * हय गय गाजहिं हने निसाना

ऐसा विवाह सुनकर सब सगुन नाचने लगे कि अब हमको ब्रह्माने सच्चाकर दिया, इसप्रकार बरात ने कूँच किया। घोड़े हिनहिना रहे हैं, हाथी चिघाड़ रहे हैं और नगाड़े बज रहे हैं।

आवत जानि भानुकुल केतू * सरितन्ह जनक बँधाए सेतू
बीच बीच वर बास बनाए * सुरपुर सरिस सम्पदा छाए

दशरथजी को आते जानकर जनकजी ने नदियों पर पुल बँधवा दिये। बीच-बीच में सुन्दर विश्राम-गृह बनवा दिये, जिनमें देव-लोक के समान सम्पदा छा रही थी।

असन सयन बर बसन सोहाए * पावहिं सब निज निज मन भाए

नित नूतन सुख लखि अनुकूले * सकल बरातिन्ह मन्दिर भूले

उत्तम-उत्तम भोजन पदार्थ, शयन-स्थान और सुन्दर वस्त्र सभी ने अपनी २ इच्छानुसार प्राप्त किये। नित्य-नये प्रकार के सुख मन में अनुकुल पाकर सब बराती अपने घर भूल गये।

दोहा—आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरंग, चले लेन अगवान ॥३०४॥

नगाड़ों का शब्द सुन, सुन्दर बरात का आगमन जानकर हाथी, रथ, घोड़ा और पैदलों को सजाकर अगवान लोग बरात को लेने चले।

* मास पारायण—दसवाँ विश्राम *

कनक कलस भरि कोपर थारा * भाजन ललित अनेक प्रकारा
भरे सुधा सम सब पकवाने * नाना भाँति न जाहिं बखाने

भरे हुए स्वर्ण के कलश, कटोरे, थाल, अनेकों प्रकार के सुन्दर पात्र यह सब भाँति २ के अमृत के समान पकवानों से भरे हैं, जिनके स्वाद का वर्णन नहीं किया जा सकता।

फल अनेक बर वस्तु सुहाई * हरिषि भेंट हित भूप पठाई
भूषन बसन महामनि नाना * खग मृग हय गय बहु बिधिजाना

उत्तम फल तथा सुहावनी वस्तुयें राजा ने प्रसन्न होकर भेंट के लिए भेजीं। गहने, वस्त्र बहुत सी बड़ी २ मणियाँ, पशु, पक्षी, घोड़े, हाथी और बहुत प्रकार की सवारियाँ भेजीं।

मंगल सगुन सुगन्ध सुहाए * बहुत भाँति महिपाल पठाए
दधि चिउरा उपहार अपारा * भरि भरि काँवरि चले कहारा

बहुत प्रकार के मंगल और सगुन-दायक सुगन्ध से भरे सुन्दर पदार्थ राजा ने भिजवाये। दही-चिबड़ा और अनेक प्रकार की भेंट की वस्तुयें बहंगियों में भर-भरकर कहार ले चले।

अगवानिन्ह जब दीखि बराता * उर आनन्दु पुलक भर गाता
देखि बनाव सहित अगवाना * मुदित बरातिन्ह हने निसाना

अगवानियों ने जब बरात को आती देखा तो हृदय में आनन्द होगया, शरीर प्रफुल्लित होगये। अगवानियों को ठाट सहित देखकर बरातियों ने प्रसन्न होकर नगाड़े को बजवाया।

दोहा—हरषि परस्पर मिलन हित, कछुक चले बगमेल।
मनु आनन्द समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल ॥३०५॥

प्रसन्नता से आपस में मिलने के लिए कुछ लोग घोड़ों की बागें ढीलीकर दौड़ चले मानो आनन्द के दो समुद्र अपनी सुबेल नाम मर्यादा के पर्वत को तोड़कर मिलने जारहे हों।

बरषि सुमनसुर सुन्दर गावहिं * मुदित देव दुन्दुभी बजावहिं
वस्तु सकल राखीं नृप आगे * बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागे

देवों द्वारा वृष्टि देख अप्सरायें गाने लगीं, देवता प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजाने लगे।

अगवानियों ने सब वस्तुयें राजा दशरथ के आगे रक्खीं और प्रेम से विनती की।

प्रेम समेत राय सब लीन्हा * भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा
करि पूजा मान्यता बढ़ाई * जनवासे कहुँ चले लवाई

राजा ने प्रेम सहित सब वस्तुयें ले लीं और याचकों को बकसीस दी। फिर अगवानियों ने बरातियों की बहुत सेवा और बड़ाई की तथा जनवासे को लिवा ले चले।

बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं * देखि धनदु धन मदु परहरहीं
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा * जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा

रंग-बिरंगे वस्त्रों के पाँवड़े बिछाये गये, जिन्हें देखकर कुवेर भी अपनी सम्पत्ति का घमण्ड भूल गये। बहुत ही सुन्दर जनवासा दिया, जहाँ सबको सब प्रकारका आनन्द था।

जानी सियँ बरात पुर आई * कछु निज महिमा प्रकट जनाई
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं * भूप पहुनई करन पठाईं

सीताजी ने जनकपुर में बरात आई जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखाई। हृदय में स्मरण कर सब सिद्धियाँ बुलाईं और राजा की पहुँनाई करने के लिए भेज दिया-

दोहा—सिधि सब सिय आयसु सुनत, गईं जहाँ जनवास।
लिए सम्पदा सकल सुख, सुरपुर भोग विलास ॥३०६॥

सब सिद्धियाँ-सीताजी की आज्ञा सुनते ही जनवासे में गईं और यह माया की कि देवलोक का सब भोग-विलास और सुख सम्पदा लेकर उपस्थित कर दिया।

निज निज बास बिलोकि बराती * सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती
बिभव भेद कछु कोउ न जाना * सकल जनक कर करहिं बखाना

बरातियों ने अपने २ रहने के स्थान देखे तो देवताओं के सब प्रकार के सुखों को वहाँ सुलभ पाया। इस ऐश्वर्य का भेद किसी को नहीं जान पड़ा, सब जनक की बड़ाई करने लगे।

सिय महिमा रघुनायक जानी * हरषे हृदय हेतु पहिचानी
पितु आगमनु सुनत दोउ भाई * हृदयँ न अति आनन्द समाई

श्रीरघुनाथजी-सीताजी की महिमा को जानकर और प्रेम पहिचानकर हृदय से प्रसन्न हुए। पिताजी का आगमन सुनते ही दोनों भाइयों के हृदय में महान् आनन्द न समाता था।

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं * पितु दरसन लालच मन माहीं
विश्वामित्र विनय बड़ि देखी * उपजा उर सन्तोषु बिसेषी

पिताजी को देखने की मन में बड़ी लालसा थी, परन्तु गुरु के सङ्कोच वश कह नहीं सकते—विश्वामित्रजी ने जब बड़ी नम्रता देखी, तब उनके हृदय में अधिक सन्तोष हुआ।

हरषि बन्धु दोउ हृदय लगाए * पुलक अंग अम्बक जल छाए
चले जहाँ दसरथ जनवासे * मनहुँ सरोवर तकेउ पियासे

प्रसन्न होकर दोनों भाइयों को छाती से लगाया, शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया। फिर जहाँ जनवासे में दशरथजी थे, वहाँ ऐसे चले—मानो प्यासे को लक्ष्य करके सरोवर बहने लगा हो।

दोहा—भूप विलोकेउ जबहि मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुखसिंधु महुँ, चले थाह सी लेत ॥३०७॥

राजा ने मुनि को दोनों पुत्रों सहित आते देखा, तब प्रसन्न होकर उठे और सुख के समुद्र में मानो थाह सी लेते, हुए चले शरीर की सुधि न रही।

मुनिहि दण्डवत कीन्ह महीसा * बार बार पद रज धरि सीसा
कौसिक राउ लिए उर लाई * कहि असीस पूछी कुसलाई

मुनि को राजा ने दण्डवत् की और बार-बाहर चरणों की रज सिर पर धरी। विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल-क्षेम पूछी।

पुनि दण्डवत करत दोउ भाई * देखि नृपति उर सुख न समाई
सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेंटे * मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे

फिर दोनों भाइयों को दण्डवत् करते हुए देख राजा के मनमें सुख नहीं समाया। पुत्रों को हृदय से लगाकर कठिन दुःख मिट गया, मानो मृतक शरीर में प्राण आगये हों।

पुनि बशिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए * प्रेम मुदित मुनिवर उर लाए
बिप्रबृन्द बन्दे दुहुँ भाईं * मन भावती असीसें पाईं

फिर वशिष्ठजी के चरणों में दोनों भाइयों ने प्रणाम किया, मुनिवर ने प्रेम में मग्न होकर उन्हें हृदय से लगाया। दोनों भाइयों ने ब्राह्मण-समूह को प्रणाम किया और उनसे मनभाया आशीर्वाद प्राप्त किया।

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा * लिए उठाइ लाइ उर रामा
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता * मिले प्रेम परि पूरित गाता

भरतजी ने शत्रुघ्न सहित प्रणाम किया, उन्हें श्रीरामजी ने उठाकर हृदय से लगा लिया। लक्ष्मणजी दोनों भाइयों को देखकर प्रसन्न हुए और प्रेम से परिपूर्ण हुए शरीर से उनसे मिले।

दोहा—पुरजन परिजन जाति जन, जाचक मन्त्री मीत।
मिले जथा विधि सबहिं प्रभु, परम कृपाल विनीत ॥३०८॥

अयोध्यावासी लोग, कुटुम्बी-जन, जाति के लोग, याचक और मन्त्री—इन सबसे परम कृपालु श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त नम्रता से यथायोग्य मिले।

रामहि देखि बरात जुड़ानी * प्रीति कि रीत न जाइ बखानी
नृप समीप सोहहिं सुत चारी * जनु धन धरमादिक तनुधारी

श्रीरामजी को देख बरात शीतल हुई, प्रीति की रीति कही नहीं जा सकती। राजा के पास बैठे चारों भाई ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ही शरीर धारण किये हों।

सुतन्ह समेत दशरथहि देखी * मुदित नगर नर नारि विसेषी

सुमन बरषि सुर हनहिं निसाना * नाटकटी नाचहिं करि गाना

पुत्रों समेत दशरथजी को देखकर नगर के नर-नारी बहुत प्रसन्न हुए। देवता पुष्प-वृष्टि कर बाजे बजाने लगे और स्वर्ग की नटी (अप्सरायें) गान करती हुई नाचने लगीं।

सतानन्द अरु बिप्र सचिव गन * मागध सूत बिदुष बन्दीजन
सहित बरात राउ सनमाना * आयस माँगि फिरे अगवाना

शतानंदजी, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और बन्दीजन—यह सब लोग बरात समेत राजा का सम्मान कर आज्ञा पाकर लोट चले।

प्रथम बरात लगन तें आई * जातें पुर प्रमोद अधिकाई
ब्रह्मानन्दु लोग सब लहहीं * बढ़हुँ दिवस निधि बिधि सन कहहीं

बरात लग्न से पूर्व आगई इस कारण जनकपुर में अधिक आनन्द हुआ। सब लोग ब्रह्मानन्द का अनुभव करने लगे और ब्रह्मा से प्रार्थना करने लगे कि दिन-रात बढ़ जायें।

दोहा—रामु सीय सोभा अवधि, सुकृति अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुर जन कहहिं अस, मिलि नरनारि समाज ॥३०९॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी तो शोभा की सीमा हैं, और दोनों राजा पुण्य की सीमा हैं। जनकपुर वासी नर-नारियों के समूह मिलकर वहाँ यही कह रहे हैं—

जनक सुकृत मूरति बैदेही * दशरथ सुकृत राम धरें देही
इन्ह सम काहुँ न सिब अवराधे * काहुँ न इन्ह समान फल साधे

जनकजी के पुण्य की मूर्ति-सीताजी और दशरथजी के पुण्यों की मूर्ति-देह धारण किये श्रीरामजी हैं। इनके समान किसी ने शिवजी की आराधना नहीं की और न किसी ने इनके समान फल पाया है।

इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं * है नहिं कबहुँ अब होनेउ नाहीं
हम सब सकल सुकृत कै रासी * भए जग जनमि जनकपुर बासी

इनके समान संसार में कोई नहीं हुआ, न कोई है और न होने वाला है। हम सब भी पुण्य की राशि हैं, जो जगत् में जन्म लेकर जनकपुर के वासी हुए।

जिन्ह जानकी राम छबि देखी * को सुकृति हम सरिस बिसेषी
पुनि देखब रघुबर बिवाहू * लेब भली बिधि लोचन लाहू

जिन्होंने श्रीजानकीजी और श्रीरामजी की छवि देखी है, हमारे समान पुण्यवान् कौन है? फिर हम श्रीरघुनाथजी का विवाह देखेंगे और भली-भाँति नेत्रों का फल पावेंगे।

कहहिं परस्पर कोकिल बयनी * एहि बिआहँ बड़ लाभु सुनयनी
बड़े भाग्य बिधि बात बनाई * नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई

कोयल के समान बोलने वाली स्त्रियाँ आपस में कहने लगीं-हे सुनयनी! इस विवाह से बड़ा लाभ होगा। बड़े भाग्य से विधाता ने यह बात बनाई है, यह दोनों भाई हमारी आँखों के अतिथि होंगे।

दोहा—बारहिं बार सनेह बस, जनक बुलाबउ सीय ।
लेन आइहहिं बन्धु दोउ, कोटि काम कमनीय ॥३१०॥

राजा जनक स्नेह के वश बारम्बार सीताजी को बुलायेंगे, तब करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर दोनों भाई सीताजी को लिवाने के लिए आया करेंगे ।

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई * प्रिय न काहि अस सासुर होई
तब तब राम लखनहि निहारी * होइहहिं सब पुर लोग सुखारी

तब उनकी अनेक भाँति से पहुनाई हुआ करेगी, कहो—ऐसा ससुराल किसको प्यारी नहीं लगती ? तब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी को देखकर सब पुरवासी लोग सुख पायेंगे ।

सखिजस रामलखनकर जोटा * तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा
श्याम गौर सब अंग सुहाए * ते सब कहहिं देखि जे आए

हे सखी ! जैसी श्रीराम-लक्ष्मणजी की जोड़ी है, ऐसे ही दो राजकुमार राजा के पास हैं । साँवले और सब अङ्ग सुहावने हैं, सब यही कहते हैं—जो उन्हें देख आये हैं ।

कहा एक मैं आजु निहारे * अनु बिरञ्चि निज हाथ सँवारे
भरत रामही की अनुहारी * सहसा लखि न सकहिं नर नारी

एक सखी कहने लगी—मैंने आज ही देखे हैं । इतने सुन्दर हैं—मानो ब्रह्मा ने अपने हाथों ही बनाये हैं। भरत और श्रीरामजी की मूर्ति-एक-सी मिलती है, कोई नर-नारी उन्हें सहज से पहचान नहीं सकते ।

लखनु सत्रुसूदन एक रूपा * नख सिख ते सब अंग अनूपा
मन भावहिं मुखबरनि न जाहीं * उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं

लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी का एक-सा रूप है नख से चोटी तक सब-अङ्ग उपमा रहित है । मन में तो भले लगते हैं, परन्तु मुख से कहे नहीं जाते, उनकी उपमा के लिए तीनों लोकों में कोई नहीं है ।

छन्द—उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं ।
बल बिनय बिद्या सील सोभासिंधु इन्ह सम एइ अहैं ॥
पुर नारि सकल पसारि अञ्चल बिधिहि बचन सुनावहीं ।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि इनकी उपमा कोई नहीं है, तो कवि-पण्डित कैसे कह सकते हैं ? यह बल, विनय, विद्या, शील और शोभा के समुद्र हैं, इनके समान यह ही हैं । जनकपुर की स्त्रियाँ-आँचल पसार कर ब्रह्मा से यह प्रार्थना करने लगीं कि यह चारों भाई इसी नगर में ब्याहे जाँय और हम सुन्दर-मंगल-गीत गावें ।

सो०—कहहिं परस्पर नारि, बारि बिलोचन पुलक तन ।
सखि सब करब पुरारि, पुण्य पयोनिधि भूप दोउ ॥३११॥

स्त्रियां आपस में नेत्रों में जल भरकर रोमांचित होकर कहने लगीं—हे सखी ! हमारे सब मनोरथ शिवजी पूर्ण करेंगे, क्योंकि दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं ।

एहि विधि सकल मनोरथ करहीं * आनंद उमँगि उमँगि उर भरहिं
जे नृप सीय स्वयम्बर आये * देखि बन्धु सब तिन्ह सुख पाये

इस प्रकार सभी मनोरथ करती हैं और आनन्द से उमंग कर मनको प्रसन्न करती हैं। जो राजा सीता-स्वयम्बर में आये थे, उन्होंने भी चारों भाइयों को देखकर बहुत सुख पाया ।

कहत राम जसु बिसद विसाला * निज निज भवन गए महिपाला
गए बीत कछु दिन एहि भाँति * प्रमुदित पुरजन सकल बराती

श्रीरघुनाथजी के निर्मल और भारी यश को कहते हुए सब राजा लोग अपने २ घर चले गये । इस भाँति नगर-वासियों और बरातियों के कुछ दिन आनन्द से बीत गये ।

मङ्गल मूल लगन दिनु आवा * हिम ऋतु अगहनु मास सुहावा
ग्रह तिथि नखतु जोगुबर बारू * लगन सोधि विधि कीन्ह विचारू

सब मंगलों की जड़ लग्न का दिन आगया, हेमन्त ऋतु में सुहावना अगहन का महीना था । शुभ-ग्रह, नक्षत्र, योग-उत्तम बार, लग्न शोध कर ब्रह्माजी ने विचार किया—

पठै दीन्हि नारद सन सोई * गनी जनक के गनकन्ह जोई
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता * कहहिं ज्योतिषी अहहीं विधाता

नारदजी के हाथ वह लग्न-पत्रिका भेज दी । जनकजी के ज्योतिषियों ने भी वही लग्न विचार रक्खी थी । जब सब लोगों ने यह बात सुनी तो वह बोले कि ज्योतिषी तो दूसरे विधाता हैं ।

दोहा—धेनु धूरि बेला विमल, सकल सुमङ्गल मूल ।
विप्रन्ह कहेउ विदेह सन, जानि सगुन अनुकूल ।।३१२।।

सभी सुमंगलों की मूल गो-धूल बेला आई और रघुकूल सगुन होने लगे, तब ब्राह्मणों ने राजा जनक से कहा—

उपरोहित कहेउ नर नाहा * अब विलम्ब कर कारन काहा
सतानन्द तब सचिव बोलाए * मङ्गल सकल साजि सब ल्याए

राजा जनक ने पुरोहित शतानन्दजी से कहा कि अब विलम्ब करने का क्या कारण है ? शतानन्दजी ने मन्त्रियों को बुलाया, तो वे सब माङ्गलिक वस्तुयें सजाकर ले आये।

शंख निसान पनव बहु बाजे * मंगल कलस सगुन सुभ साजे
सुभग सुआसिन गावहिं गीता * करहिं वेद ध्वनि बिप्र पुनीता

शंख, नगाड़े, ढोल आदि बहुत-से बाजे बजने लगे, सब लोग शुभ-सगुन के लिए मंगल-कलश सजाने लगे । सुहागिन-स्त्रियाँ गीत गाने लगीं, पवित्र ब्राह्मण वेद-ध्वनि करने लगे ।

चले लेन सादर एहि भाँती * गए जहाँ जनवास बराती

कोसलपति कर देखि समाजू * अतिलघु लाग तिन्हहिं सुरराजू

इस प्रकार आदर से बरात को लेने चले और जनवासे में जहाँ बराती थे, वहाँ गये। राजा दशरथ का समाज देखकर उनको इन्द्र भी तुच्छ लगा।

भयउ समय अब धारिअ पाऊ * यह सुनि परा निसानहिं घाऊ
गुरहि पूछि करि कुलबिधि राजा * चले संग मुनि साधु समाजा

वे बोले-समय होगया, अब पधारिये! यह सुनकर नगाड़े पर चोटें लगीं। राजा दशरथजी—गुरु वशिष्ठजी से पूछकर अपने कुल की रीति करके मुनियों और समाज के साथ चले।

दोहा—भाग्य बिभव अवधेष कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख, जानि जनम निजवादि ॥३१३॥

महाराज दशरथ का भाग्य और ऐश्वर्य देखकर ब्रह्मा आदि देवता अपने जन्म को तुच्छ जानकर हजारों मुखों से उनकी प्रशंसा करने लगे।

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना * बरषहिं सुमन बजाइ निसाना
सिव ब्रह्मादिक बिबिध बरूथा * चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा

देवताओं ने जब सुन्दर मंगल का समय जाना, तब नगाड़े बजाकर पुष्प बरसाने लगे। शिव और ब्रह्मा आदि देवगणों के झुण्ड अपने २ विमानों पर जा चढ़े।

प्रेम पुलक मन हृदयँ उछाहू * चले बिलोकन राम बिबाहू
देखि जनकपुर सुर अनुरागे * निज निज लोक सबहिं लघुलागे

प्रेम से पुलकित हो, हृदय में उत्साह भरकर सब देवता श्रीरामजी के विवाह को देखने लगे। जनकपुर को देखकर देवता लोग बहुत प्रसन्न हुए, उन सबको अपने २ लोक तुच्छ लगने लगे।

चितवहिं चकित बिचित्र बिताना * रचना सकल अलौकिक नाना
नगर नारि नर रूप निधाना * सुघर सुधरम सुसील सुजाना

मण्डप की अनेक प्रकार से अद्भुत रचना देखकर देवता चकित होकर देखने लगे। जनकपुर के सब स्त्री-पुरुष रूप-निधान, सुडौल, धर्मात्मा, सुशील और चतुर थे।

तिन्हहिं देख सब सुर नर नारी * भए नखत जनु बिधु उजियारी
बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी * निज करनी कछु कतहुँ न देखी

उन्हें देखकर सब देवी-देवताओं का तेज ऐसा फीका होगया—जैसे चन्द्रमा के उजाले से तारों का तेज मन्द पड़ जाता है। ब्रह्माजी को बहुत आश्चर्य हुआ, उन्हें अपना बनाया हुआ कहीं कुछ भी न दीख पड़ा।

दोहा—सिवँ समुझाए देव सब, जनि आचरजु भुलाहु।
हृदयँ बिचारहु धीर धरि, सिय रघुबीर बिबाहु ॥३१४॥

महादेवजी ने सब देवताओं को समझाया कि आश्चर्य में मत भूलो। धीरज धरकर अपने २ मन में विचार करो कि यह श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजी का विवाह है।

जिन्ह करि नामु लेत जग माहीं * सकल अमंगल मूल नसाहीं
करतल होहिं पदारथ चारी * तेइ सिय रामु कहेउ कामारी

संसार में जिनका नाम लेते ही सब अमंगलों की जड़ नष्ट होजाती हैं और चारों पदार्थ हथेली पर आ जाते हैं। शिवजी कहते हैं कि वही श्रीसीतारामजी हैं।

एहि विधि सम्भु सुरन्ह समुझावा * पुनि आगे वर बसह चलावा
देवन्ह देखे दशरथु जाता * महामोद मन पुलकित गाता

इस प्रकार शिवजी ने देवताओं को समझाया फिर अपने नन्दीश्वर को आगे चलाया। देवताओं ने देखा कि दशरथजी मन प्रसन्न और पुलकित शरीर चले आ रहे हैं।

साधु समाज सँग महिदेवा * जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा
सोहत नाथ सुभग सुत चारी * जनु अपबरग सकल तनुधारी

संत-समाज व ब्राह्मण संग में ऐसे शोभित हैं मानो सुख देह धारण किये हुए उनकी सेवाकर रहे हैं। चारों सुन्दर पुत्र ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, मानो चारों मोक्ष शरीर धारण किये हैं।

मरकत कनक बरन बर जोरी * देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी
पुनि रामहि विलोकि हियँ हरषे * नृपहिं सराहि सुमन तिन्ह बरषे

मरकत-मणि व सुवर्ण के समान कांतिमान जोड़ी देखकर देवताओं को प्रीति हुई, फ़िर श्रीरामचन्द्रजी को देखकर हृदय में बहुत ही हर्षित हुए और राजा की बढ़ाई करते हुए फूल बरसाये।

दोहा—राम रूप नख सिख सुभग, बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि ॥३१५॥

श्रीरघुनाथजी का नख से चोटी तक सुन्दर रूप बारम्बार निहार कर पार्वतीजी सहित शिवजी पुलकित शरीर हो नेत्रों में जल भर लाये।

केकि कण्ठ दुति श्यामलि अंगा * तड़ित बिनिन्दक बसन सुरंगा
ब्याह विभूषन विविध बनाए * मंगल सब सब भाँति सोहाए

मोर के कण्ठ के समान कान्ति वाला साँवला शरीर और शिवजी की चमक को भी लज्जित करने वाले सुन्दर पीले रंग के वस्त्र हैं। ब्याह के गहने अनेक प्रकार के मंगलमय और सब भाँति से सुहावने बने हुए हैं।

सपद विमल बिधु बदनु सुहावनु * नयन नवल राजीव लजावन
सकल अलोकिक सुन्दरताई * कहि न जाइ मन ही मन भाई

शरद्-पूर्णिमा के उज्ज्वल चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख और नवीन-कमल को भी लजाने वाले नेत्र हैं। अब अनोखी सुन्दरता कही नहीं जा सकती, मन ही मन बहुत भाती है।

बन्धु मनोहर सोहहिं संगा * जात नचावत चपल तुरङ्गा
राजकुअँर बर बाज देखावहिं * वंश प्रसंसक विरिद सुनावहिं

मनोहर भाई साथ में शोभायमान चंचल घोड़ों को नचाते हुए जाते हैं। राजकुमार उत्तम

घोड़ों को नचा रहे हैं। और वंश की बड़ाई करने वाले भाट लोग विरुदावली सुना रहे हैं।

जेहिं तुरङ्ग पर राम बिराजे * गति बिलोकि खगनायकु लाजे
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा * बाजि बेषु जनु काम बनावा

जिस घोड़े पर श्रीरामजी विराजमान हैं, उसकी चाल को देखकर गरुड़जी भी लजा गये। वह सब प्रकार से सुन्दर है जो कहा नहीं जा सकता मानो घोड़ों का वेष बनाये हुए, कामदेव ही हैं।

छन्द—जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु रामहित अति सोहई।
आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिन ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

मानो श्रीरामचन्द्रजी के लिए घोड़े का वेष बनाकर कामदेव ही अत्यन्त सुशोभित है। अपनी सुन्दर अवस्था, बल, रूप, गुण और चाल से सब लोगों को मोहित कर रहा है। जिस पर सुन्दर मोतियों की मणि-मणिकों आदि से जड़ी हुई जीन जगमगा रही है। सुन्दर घुंघरू लगी लगाम देखकर देवता, मनुष्य और मुनि ठगे से रह गये।

दोहा—प्रभु मनसहिं लयलीन मनु, चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु, जनु बरबाजि नचाव॥३१६॥

प्रभु के मन से मन लगाये चलता हुआ घोड़ा ऐसी सुन्दर शोभा पा रहा है—मानो तारों और बिजली से शोभित मेघ उत्तम मोर नचा रहे हैं।

जेहिं बर बाजि रामु असवारा * तेहि सारदउ न बरनै पारा
सङ्करु राम रूप अनुरागे * नयन पंचदस अति प्रिय लागे

जिस उत्तम घोड़े पर श्रीरामचन्द्रजी सवार हैं, उसका वर्णन कर सरस्वती भी पार नहीं पा सकती हैं। शिवजी—श्रीरामचन्द्रजी के रूप पर ऐसे मोहित हुए कि उन्हें अपने पन्द्रहों नेत्र बहुत ही प्रिय लगने लगे।

हरि हित सहित रामु जब सोहे * रमा समेत रमापति मोहे
निरखि रामछबि बिधि हरषाने * आठइ नयन जानि पछिताने

भगवान श्रीहरि ने स्नेह के साथ श्रीरामजी को देखा तो वे रमा सहित मोह गये। श्रीरामजी की छवि देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और अपने आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू * बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू
रामहि चितव सुरेस सुजाना * गौतम श्रापु परम हित माना

देवताओं के सेनापति कार्तिकजी के मन में बड़ा आनन्द हुआ, क्योंकि उन्हें ब्रह्माजी से ड्योढ़े (बारह) नेत्रों से दर्शन प्राप्त हुआ। चतुर इन्द्र ने अपने हजारों नेत्रों से दर्शन करके गौतम के श्राप को परम हित माना।

देव सकल सुरपतहि सिहाहीं * आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं

मुदित देवगन रामहि देखी * नृप समाज दुहुँ हरष बिसेषी

सब देवता इन्द्र से ईर्षा करने लगे कि आज इन्द्र के बराबर कोई नहीं है। देवतागण श्रीरामजी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और राजाओं के समाज में विशेष आनन्द छागया।

छन्द—अति हरषु रामसमाज दुहु दिसि दुन्दुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिन बोलि परिछिन हेतु मंगल साजहीं॥

दोनों ओर के राज-समाजों में बड़ा आनन्द छा रहा है, बहुत से नगाड़े बज रहे हैं। देवता प्रसन्न हो रघुवंश-मणि श्रीरामजी की जय बोलकर पुष्प बरषा कर रहे हैं। इस भाँति बरात को आती जानकर बहुत से बाजे बजने लगे और रानी सुहागिन स्त्रियों को बुलाकर परिछन के लिए मङ्गल वस्तुयें सजाने लगीं।

दोहा—सजि आरती अनेक विधि, मंगल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछिन करन, गज गामिन वरनारि॥३१७॥

अनेक प्रकार से आरती सजा सब मङ्गल वस्तुयें सँभाल कर गजगामिनी सुन्दर स्त्रियाँ प्रसन्न हो परिछन करने चलीं।

बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि * सब निज तनु छबि रति मदु मोचनि
पहिरें बरन बरन बर चीरा * सकल बिभूषन सजें सरीरा

सब स्त्रियाँ चन्द्रमुखी, मृगनयनी हैं और अपने शरीर की शोभा से रति के गर्व को भी घटाने वाली हैं। रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र पहने हैं, उनके शरीर में सब आभूषण सजे हुए हैं।

सकल सुमंगल अंग बनाएँ * करहिं गान कलकण्ठ लजाएँ
कङ्कन किंकिनी नूपुर बाजहिं * चालि बिलोकि काम गज लाजहिं

सब अङ्गों को सुन्दर मङ्गलमय बनाये ऐसा मधुर गान कर रही हैं कि जिसे सुन-कर कोयल भी लज्जित हो रही हैं कंकण, करधनी और बिछुआ बज रहे हैं, उनकी चाल को देखकर कामदेव के हाथी लज्जित हो रहे हैं।

बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा * नभ अरु नगर सुमंगलचारा
सची शारदा रमा भवानी * जे सुर तिय सुचि सहज सयानी

अनेकों प्रकारके बाजे बज रहे हैं, आकाश और नगर में चारों ओर सुन्दर मंगलाचार हो रहा है। इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और जो स्वभाव से ही चतुर व पवित्र देवांगनायें हैं।

कपट नारि बर वेष बनाई * मिलि सकल रनिवासहि जाई
करहिं गान कल मंगल बानीं * हरष बिवस सब काहुँ न जानीं

वे सब बनावटी स्त्रियों का सुन्दर वेष बनाकर रनिवासमें जा मिलीं व मनोहर बाणी से मङ्गल गान करने लगीं स्त्रियाँ आनन्द में ऐसी बेसुध हो रही थीं कि उन्हें किसी ने नहीं जाना।

छन्द—को जान केहि आनन्द बस सब ब्रह्म वर परिछन लगीं ।
कल गान मधुर निसान वरषहिं सुमन सुर शोभा भलीं ॥
आनन्दकन्द विलोकि दूलह सकल हियँ हरषित भई ।
अम्भोज अम्बुक अम्ब उमँगि सुअंग पुलकावलि छई ॥

आनन्द के वश कौन किसको जाने, सब श्रीरामजी का परिछन करने लगीं । मनोहर गान हो रहा है, बाजे बज रहे हैं देवता पुष्प बरसा रहे हैं । आनन्दकन्द दूलह को देख सब हृदय में प्रसन्न हुईं, उनके कमल नेत्रों से जल वह चला और सुन्दर अङ्गों पर पुलकावलि छा गई ।

दोहा—जो सुख भा सिय मातु मन, देखि राम वर वेषु ।
सो कहि सकहिं न कल्प सत, सहस शारदा सेषु ॥३१८॥

श्रीरामजी के दूलह-वेष को देखकर सीताजी की माताजी के मन में जो सुख हुआ, उस सुख को हजारों सरस्वती और शेषजी सौ कल्पों में भी नहीं कह सकते ।

नयन नीर हटि मंगल जानी * परिछन करहिं मुदित मन रानी
वेद विदित अरु कुल आचारू * कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू

नेत्रों के जल को मंगल-समय जानकर प्रसन्न मन से रानी परिछन करने लगीं । वेद की रीति और कुल के आचार के अनुसार भली-भाँति से सभी व्यवहार विधि पूर्वक किये ।

पंच सबद धुनि मंगल गाना * पट पाँवड़े परहिं विधि नाना
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा * राम गमनु मण्डप तब कीन्हा

पंच-शब्द, पंच-ध्वनि और मंगल-गान हो रहे हैं । अनेक प्रकार के वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे हैं । रानी ने आरती करके अर्घ्य दिया, तब श्रीरामजी ने मण्डप में गमन किया ।

दसरथ सहित समाज विराजे * बिभव विलोकि लोकपति लाजे
समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला * शाँति पढ़हिं महिसुर अनुकूला

महाराज दशरथजी अपने समाज सहित विराजमान हुए । उनके ऐश्वर्य को देखकर लोकपाल लज्जित हो गये । समय-समय पर देवता पुष्प बरसा रहे हैं और ब्राह्मण समयानुकूल शाँति-पाठ कर रहे हैं ।

नभ अरु नगर कोलाहल होई * आपनि पर कछु सुनइ न कोई
एहि विधि रामु मण्डपहिं आए * अरघु देइ आसन बैठाए

आकाश और नगर में धूम-धाम हो रही है, अपनी-पराई कोई कुछ भी नहीं सुनता । इस प्रकार श्रीरामजी मण्डप में आये और अर्घ्य देकर आसन पर बैठाये ।

छन्द—बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुख पावहीं ।
मनि बसन भूषन भूरि बारहिं नारि मंगल गावहीं ।
ब्रह्मादि सुरवर विप्र वेष बनाइ कौतुक देखहीं ।

अवलोकि रघुकुल कमल रवि, छवि सुफल जीवन लेखही ॥

आसन पर बैठाकर, आरती कर, दूल्हे को देखकर सब स्त्रियाँ सुख पाने लगीं। वे मणि वस्त्र आदि बहुत-सी वस्तुयें न्यौछावर करके मंगल गाने लगीं। ब्रह्मादिक देवता ब्राह्मण का वेष बनाकर तमाशा देखने लगे और रघुकुल-कमल-भास्कर श्रीरामजी की छबि को देखकर अपना जन्म सफल मानने लगे।

दोहा–नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरषु न हृदय समाइ ॥३१९॥

नाऊ, बारी, भट, नट आदि श्रीरामजी की न्यौछावर पाकर प्रसन्न हो सिर नवाकर आशीर्वाद देने लगे और हृदय में हर्ष से फुले नहीं समाते।

मिले जनकु दसरथु अति प्रीती * करि बैदिक लौकिक सब रीती
मिलत महा दोउ राज बिराजे * उपमा खोजि खोजि कवि लागे

राजा जनक और दशरथजी बड़े प्रेम से वैदिक-लौकिक आदि सब रीति करके मिले। मिलते समय दोनों महाराजाओं की जो शोभा हुई, उसकी उपमा खोजकर कवि लज्जित हो गये।

लही न कतहुँ हारि हियँ मानी * इन्ह सम एह उपमा उर आनी
समधि देखि देव अनुरागे * सुमन बरषि जसु गावन लागे

जब कहीं उपमा न पाई, तब मन में हार मानली और मन में यह मान लिया कि इनके समान यही हैं। दोनों समधियों को देखकर देवता प्रसन्न हुए और पुष्प वृष्टि कर यश गाने लगे।

जगु बिरंचि उपजावा जब तें * देखे सुने ब्याह बहु तब तें
सकल भाँति सम साजु समाजू * सम समधी देखे हम आजू

ब्रह्माजी ने जब से जगत् को उत्पन्न किया है तब से बहुत-से व्याह–देखे और सुने, परन्तु सब भाँति से समान साज-समाज और बराबर के समधी हमने आज ही देखे।

देव गिरा सुनि सुन्दर साँची * प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माची
देत पाँवड़े अरघु सोहाए * सादर जनक मण्डपहि लाए

देवताओं की सुन्दर और सच्ची वाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छागई। सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए राजा जनक आदर सहित महाराज दशरथजी को मण्डप में लाये।

छन्द–मंडपु बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरताँ मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंहासन धरे ॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिस लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ॥

मण्डप की अनोखी रचना और सुन्दरता देख मुनियों के मन हार गये। सुजान जनक लिये अपने हाथों से सिंहासन लाकर रक्खे। फिर कुल-गुरु इष्टदेव के समान

वशिष्ठ मुनि का पूजन किया। विनती करके आशीर्वाद पाया। विश्वामित्र की पूजा करते समय की परम प्रीति कही नहीं जाती।

दोहा—बामदेव आदिक ऋषय, पूजे मुदित महीस।
दिये दिव्य आसन सबहिं, सब सन लही असीस ॥३२०॥

बामदेव आदि ऋषियों का पूजन राजा ने बड़ी प्रसन्नता से किया और सबको दिव्य आसन देकर सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

बहुरि कीन्ह कौसलपति पूजा * जानि ईस सम भाउ न दूजा।
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई * कहि निज भाग्य बिभव बहुताई

फिर राजा ने दशरथजी की ईश्वर-भाव से पूजा की, दूसरा कोई भाव नहीं था। अपने भाग्य से वैभव की सराहना करके हाथ जोड़कर विनती और बड़ाई की।

पूजे भूपति सकल बराती * समधी सम सादर सब भाँती
आसन उदित दिए सब काहू * कहौ कहा मुख एक उछाहू

फिर राजा ने सभी बरातियों का समधी के समान आदर कर पूजन किया। सबको उचित आसन दिये, उस उत्साह को मैं एक मुख से क्या कहूँ।

सकल बरात जनक सनमानी * दान मान बिनती बर बानी
बिधिहरिहरुदिसिपति दिन राऊ * जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ

राजा जनकजी ने दान, मान, विनय और मधुर वाणी से सब बरातियों का सम्मान किया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, लोकपाल, सूर्य देवता—जो श्रीरामजी के प्रभाव जानते हैं।

कपट बिप्रबर बेष बनाएँ * कौतुक देखहिं अति सुख पाएँ
पूजे जनक देव सम जानें * दिए सुआसन बिनु पहिचानें

वे बनावटी ब्राह्मणों का श्रेष्ठ भेष बना कर बहुत ही सुख प्राप्त करते तमाशा देख रहे थे। जनकजी ने देवताओंके समान जान उनका भी पूजन किया, बिना पहचाने ही उत्तम आसन दिये।

छन्द—पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनन्दकन्द बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनन्द मई ॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मनु प्रमुदित भए ॥

कौन किसको जाने-पहिचाने ? सबको अपनी ही सुधि भूल गई। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर दोनों ओर आनन्द छा गया। चतुर श्रीरामजी ने देवताओं को देखकर मानसिक पूजन करके मानसिक आसन दिये। प्रभु का शील स्वभाव देखकर देवता मन में बहुत प्रसन्न हुए।

दोहा—रामचन्द्र मुख छबिचन्द्र, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोदु न थोर ॥३२१॥

श्रीरामचन्द्रजी के मुख की शोभा को नेत्ररूपी चकोर आदर सहित पान कर रहे हैं। प्रेम और आनन्द थोड़ा नहीं है।

समउ बिलोकि बशिष्ठ बोलाए * सादर सतानन्दु मुनि आए
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई * चले मुदित मुनि आयसु पाई

समय जानकर वशिष्ठजी ने सतानंदजी को बुलाया। वे सुनकर आदर सहित आये (वशिष्ठजी ने कहा—)अब जाकर जल्दी राजकुमारीको ले आइये। यह आज्ञा सुनकर वे प्रसन्न मनसे चले।

रानी सुनि उपरोहित बानी * प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी
विप्रबधू कुलबृद्ध बोलाई * करि कुलरीति सुमङ्गल गाई

पुरोहित की बात सुनकर सखियों सहित चतुर रानी बड़ी प्रसन्न हुईं। ब्राह्मणियों एवं कुल की वृद्धि स्त्रियों को बुलाकर कुल की रीति करके सुन्दर मङ्गल-गीत गाने लगीं।

नारि वेष जे सुरवर बामा * सकल सुभायँ सुन्दरी स्यामा
तिन्हहि देखि सुख पावनि नारी * बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारी

श्रेष्ठ देवांगनायें जो स्त्री-वेष में वहाँ थीं, वे सब स्वभाव से ही सुन्दर और षोडशी थीं। उनको देखकर स्त्रियाँ प्रसन्न होतीं और सुख पाती थीं। बिना पहिचाने ही सबको प्राणों से अधिक प्रिय लगती थीं।

बार बार सनमानहिं रानी * उमा रमा सारद सम जानी
सीय सँवारि समाजु बनाई * मुदित मण्डपहिं चली लवाई

रानी उनको पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती के समान जानकर उनका बारम्बार सम्मान करती थीं। वे सब जानकीजी का भली-भाँति शृङ्गार करके प्रसन्नता पूर्वक मण्डप में लिवा ले चलीं।

छन्द—चलि ल्वाइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नव सप्त साजहिं सुन्दरी सब मत्त कुँजर गामिनीं॥
कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नुपुर कलित कङ्कन ताल गति बर बाजहीं॥

सुन्दर सखियाँ और स्त्रियाँ—सोलह शृंगार किये मतवाले हाथी की चाल वाली सुन्दर मंगल-साज सजाकर आदर के साथ सीताजी को लिवा ले चलीं। उनका मनोहर गान सुनकर मुनियों के भी ध्यान छूट जाते हैं और कामदेव की कोयल लज्जित हो जाती है। मंजरी, नूपुर और सुन्दर कङ्कन ताल और गति के अनुसार बजने लगे।

दोहा—सोहत बनिता बृन्द महुँ, सहज सुहावन सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु, सुषमा तिय कमनीय॥३२२॥

स्त्री-समुदाय में सहज ही सुन्दरी श्रीसीताजी ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो कांतिरूपी स्त्रियों के झुण्ड के बीच सुन्दर शोभा स्त्री-रूप धारण किये सुशोभित हो।

सिय सुन्दरता बरनि न जाई * लघु मति बहुत मनोहरताई

आवत देखि बरातिन्ह सीता * रूप रासि सब भाँति पुनीता

श्रीसीताजी की सुन्दरता वर्णन नहीं की जा सकती, क्योंकि मेरी बुद्धि छोटी है और सुन्दरता अधिक है। रूप की राशि और सब भांति से पवित्र सीताजी को बरातियों ने आती हुई देखा।

सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रनामा * देखि राम भए पूरन कामा

हरषे दशरथ सुतन्ह समेता * कहि न जाइ उर आनँदु जेता

सबने मन ही मन प्रणाम किया श्रीरामचन्द्रजी को देख सब काम पूर्ण होगये। राजा दशरथ पुत्रों सहित प्रसन्न हुए, उनके हृदय में इतना आनन्द हुआ कि वह कहा नहीं जा सकता।

सुर प्रनामु करि बरसहिं फूला * मुनि असीस धुनि मङ्गल मूला

गान निसान कोलाहल भारी * प्रेम प्रमोद मगन नर नारी

देवता प्रणाम करके पुष्प बरसाने लगे मङ्गल के मूल मुनियों के आशीर्वाद की ध्वनि गूंज उठी। गानों व बाजों का कोलाहल हो रहा है, नर नारी सब प्रेम और आनन्द में मग्न हैं।

एहि विधि सीय मण्डपहिं आई * प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई

तेहि अवसर करि बिधि ब्यवहारू * दुहुँ कुलगुरु सब कीन्ह अचारू

इस प्रकार सीताजी मण्डप में आई तब मुनि प्रसन्नतापूर्वक स्वस्ति वाचन करने लगे। उस समय दोनों कुल गुरुओं ने वेद की विधि और कुल के व्यवहार के अनुसार सब रीति कीं।

छन्द—आचारु करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं ।
　　सुर प्रगटहिं पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावहीं ॥
　　मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं ।
　　भरे कनक कोपर कलस सो सब लिएहिं परिचारक रहैं ॥

ब्राह्मण प्रसन्नता पूर्वक सब रीति करके गुरु, गौरी, गणेश की पूजा कराने लगे। देवता प्रकट होकर पूजा लेकर, आशीर्वाद देकर सुख पाने लगे। मधुपर्क व मंगल-द्रव्य जो जिस समय मुनि मन में इच्छा करते हैं, वह सब सोने के कटोरों व कलशों में भरकर सेवक लोग लिए खड़े रहते हैं।

　　कुलरीति प्रीति समेत रवि कहि देत सब सादर कियौ ।
　　एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियौ ॥
　　सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै ।
　　मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगटि कवि कैसें करै ॥

स्वयं सूर्यदेव ने जो कुल रीति प्रेम सहित कही, वह सब उसे आदर सहित करने लगे और इस प्रकार देव-पूजन कराकर सीताजी को मुनियों ने सिंहासन दिया। सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी के परस्पर देखने के प्रेम को कोई भी न जान सका। जो मन, बुद्धि और वाणी से परे है, उसे कवि कैसे प्रकट करे।

दोहा—होम समय तनु धरि अनल, अति सुख आहुति लेहिं ।

विप्र वेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहि ॥३२३॥

होम के समय शरीर धारण कर अग्निदेव अत्यन्त सुख पूर्वक आहुति लेने लगे और ब्राह्मण का रूप धारण कर सब वेद-विवाह की विधि बतलाने लगे।

जनक पाटमहिषी जग जानी * सीय मातु किमि जाइ बखानी
सुजसु सुकृत सुख सुन्दरताई * सब समेटि विधि रची बनाई

जनकजी की जगत् प्रसिद्ध पटरानी जो सीताजी की माता हैं उनका वर्णन कैसे किया जाय? मानो ब्रह्माजी ने सुन्दर कीर्ति, सत्कर्म,सुख,सुन्दरता—इन सबको इकट्ठा करके उनको रचा है?

समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं * सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं
जनक बाम दिसि सोह सुनयना * हिमगिरि सङ्ग बनी जनु मयना

समय जानकर मुनिवरों ने उनको बुलाया, सुनते ही सुहागिन स्त्रियां आदर सहित उन्हें ले आईं। जनक की बायीं ओर रानी सुनयना ऐसे सुशोभित हुईं—मानो हिमाचल के साथ मयना सुशोभित हो।

कनक कलस मनि कोपर रूरे * सुचि सुगन्ध मङ्गल जल पूरे
निज कर मुदित रायँ अरु रानी * धरें राम के आगे आनी

पवित्र, सुगन्धित और माङ्गलिक जल से भरे हुए सोने के कलश और मणियों की सुन्दर परात—राजा और रानी ने प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथों से श्रीरामचन्द्रजी के आगे रखी।

पढ़हिं वेद मुनि मंगल बानी * गगन सुमन झरि अवसरु जानी
बरु बिलोकि दम्पति अनुरागे * पायँ पुनीत पखारन लागे

मुनि मङ्गल वाणी से वेद पढ़ने लगे, सुअवसर जानकर आकाश से पुष्पों की झड़ी लग गई। दूलह को देखकर राजा-रानी प्रेम में मग्न हो गये और पवित्र चरणों को धोने लगे।

छन्द—लागे पखारन पायँ पङ्कज प्रेम मनु पुलकावली ।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमँगि चहुँदिसि ते चली ॥
जे पद सरोज मनोज अरि सर सदैव बिराजहीं ।
जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीं ॥

वे चरणकमलों को धोने लगे, तो दोनों के शरीर में प्रेम से रोमांच हो गया। आकाश और नगर में गानों तथा बाजों की जय-जयकार की ध्वनि चारों ओर फैल गई। जो चरण-कमल शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर में सदैव विराजते हैं और जिनका स्मरण करते ही मन निर्मल हो जाता है तथा कलियुग के सब पाप दूर हो जाते हैं।

जे परसि मुनि बनिता लही गति रही जो पातक मई ।
मकरन्द जिन्ह को सम्भु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं ।

ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहैं ।।

जिनको छूकर गौतम-ऋषि की स्त्री अहिल्या ने जो पापमती थी, उत्तम गति प्राप्त की। जिन चरणारविन्दों की मकरन्द श्रीगंगाजी को शिवजी ने अपने मस्तक पर धारण किया है, जिसे देवताओं ने पतिव्रता की सीमा कहा है, जिन चरणकमलों को मुनिजन अपने मन का भौंरा बनाकर सेवन करके इच्छानुसार गति पाते हैं, बड़े भाग्यवान् जनकजी उन्हीं चरणों का प्रक्षालन करने लगे, तब सब लोग जय-जयकार करने लगे।

वर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुरु करै ।
भयौ पानिगहनु विलोकि विधि सुर मनुज मन आनँद भरैं ।।
सुखमूल दूलह देखि सम्पति पुलक तनु हुलस्यो हियौ ।
करि लोक वेद विधानु कन्यादानु नृप भूषन कियौ ।।

वर और कन्या के हाथ मिलाकर दोनों कुल-गुरु शाखोच्चार करने लगे। पाणि-ग्रहण हुआ देखकर सब देवता, मनुष्य और मुनिजन आनन्द में भर गये। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर राजा-रानी का शरीर पुलकायमान हुआ और हृदय उमड़ने लगा। तदनन्तर राज-शिरोमणि जनकजी ने लोक और वेद की विधि से कन्यादान किया।

हिमवन्त जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी विश्व कल कीरति नई ।।
क्यों करै विनय विदेहु कियौ विदेहु मूरति साँवरी ।
करि होम विधिवत गाँठि जोरि होन लागीं भाँवरी ।।

जैसे हिमाचल ने पार्वती-शिवजी को और समुद्र ने लक्ष्मी-श्रीहरि को दीं, वैसे ही जनक ने सीताजी-श्रीरामजी को समर्पण कीं। यह सुनकर नई कीर्ति संसार में फैल गई। विदेह विनती कैसे करें, क्योंकि साँवली मूर्ति ने तो उन्हें विदेह कर दिया है? फिर विधिपूर्वक हवन करके गाँठ जोड़ी गई और भाँवरें होने लगीं।

दोहा—जय धुनि बन्दी वेद धुनि, मङ्गल गान निसान ।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध, सुरतरु सुमन सुजान ।।३२४।।

जय-ध्वनि, बन्दी-ध्वनि, वेद-ध्वनि, मंगल-गान और बाजों का शब्द सुनकर चतुर देवता बहुत प्रसन्न हुए और कल्पवृक्ष के पुष्प बरसाने लगे।

कुअँरि कुअँर कल भाँवरि देहीं * नयन लाभु सब सादर लेहीं
जाइ न बरनि मनोहर जोरी * जो उपमा कछु कहौं सो थोरी

वर और कन्या सुन्दर भाँवरें दे रहे हैं और सब लोग आदर सहित नेत्रों का लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जाता, जो भी उपमा दी जाय-वह थोड़ी है।

राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं * जगमगात मन खम्भन माहीं
मनहुँ मदन रति धरि बहुरूपा * देखत राम बिआहु अनूपा

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी की सुन्दर परछाही मणियों के खम्भों में जगमगाने लगी, मानो कामदेव और रति बहुत-से रूप धारण कर श्रीरामजी का अनुपम विवाह देख रहे हैं।

दरस लालसा सकुच न थोरी * प्रगटति दुरत बहोरि बहोरी
भए मगन सब देखनिहारे * जनक समान अपान बिसारे

दर्शन की अभिलाषा और संकोच दोनों ही कम नहीं हैं, इसलिये वे बारम्बार प्रगट होते व छिपते हैं। देखने वाले उस समय मग्न हो गये, जनकजी के समान सुध-बुध बिसार गये।

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरीं * नेग सहित जब रीति निवेरीं
राम सीय सिरु सेंदुर देहीं * सोभा कहि न जात बिधि केहीं

मुनियों ने प्रसन्न हो भाँवरें फिराईं, नेग सहित सब रीति पूर्ण की, श्रीरामजी ने सीताजी के मस्तक पर सिंदूर लगाया, उस समय की शोभा किसी प्रकार नहीं कही जाती।

अरुन पराग जलजु भरि नीके * ससिहि भूषअहि लोभु अमीके
बहुरि बसिष्ठ दीन्ह अनुसासन * बरु दुलहिन बैठे एक आसन

मानो सर्प अमृत के लोभ से लाल पुष्पराज को कमल में भली-भाँति भरकर चन्द्रमा को भूषित कर रहा हो। फिर वशिष्ठजी ने आज्ञा दी, तो वर और दुलहिन दोनों एक आसन पर बैठे।

छन्द—बैठे बरासन रामु जानकी मुदित मन दशरथु भए।
तनु पुलकि पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिवाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिराति रसना एक तहँ मङ्गल महा॥

श्रीरामजी और सीताजी को श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे देखकर दशरथजी मनमें बड़े आनन्दित हुए और अपने पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के नवीन फल को देखकर बारम्बार उनका शरीर पुलकित होने लगा। संसार में आनन्द छा रहा है, 'श्रीरामजी का विवाह होगया' यह सबने कहा। उनका वर्णन कैसे समाप्त किया जाय, क्योंकि जिह्वा एक है और आनन्द-मंगल अधिक हैं।

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
माण्डवीं श्रुति कीरति उर्मिला कुअँरि लइ हँकारि कै॥
कुशकेतु कन्या प्रथम जो गुन शील सुख शोभामई।
सत रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥

तब जनकजी ने वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर विवाह का सामान सजाकर माँडवी, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला इन तीनों कुमारियों को बुला लिया। कुशध्वज की बड़ी कन्या—माँडवी, जो गुण, शील, सुख और शोभा की मूर्ति थी, सब रीति करके भरतजी को ब्याह दी।

जानकी लघु भगिनी सकल सुन्दर शिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्हीं ब्याहि लखनहिं सकल बिधि सनमानि कै॥

जेहि नाम श्रुति कीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी ।
सोइ दई रिपुसूदनहि भूपति रूप शील उजागरी ॥

जानकीजी की छोटी बहिन उर्मिला सब सुन्दरियों में शिरोमणि जानकर सब प्रकार सम्मान करके लक्ष्मणजी को ब्याह दीं । जिसका नाम श्रुतिकीर्ति था और जो सुन्दर नेत्र और सुन्दर मुखबाली, सब गुणों की खान, रूप और शील में प्रसिद्ध थी, वह राजा ने शत्रुघ्न को ब्याह दी ।

अनुरूप वर दुलहिन परस्पर लखि सकुचि हियँ हरषहीं ।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सरगन वरषहीं ॥
सुन्दरी सुन्दर बरन सह सब एक मण्डप राजहीं ।
जनु जीव धरि चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं ॥

समान रूप वाले दुलह और दुलहिन एक दूसरे को देखकर सकुचाते हुए मन में प्रसन्न होने लगे । सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुन्दरता की बड़ाई करने लगे और देवता पुष्प-वर्षा करने लगे । सब सुन्दर दुलहिनें—दुल्हों के साथ एक ही मण्डप में शोभायमान हुई, मानो चारों अवस्थायें अपने-स्वामियों के सहित विराजमान हों ।

दोहा—मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहार ।
जनु पाए महिपाल मनि, क्रियन्ह सहित फल चारि ॥३२५॥

अयोध्यापति महाराज दशरथजी सब पुत्रों को बहुओं सहित देखकर ऐसे प्रसन्न हुए, मानो नृप-श्रेष्ठ ने क्रियाओं के सहित चारों फल प्राप्त किये हों ।

जस रघुवीर ब्याह विधि करनी * सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी * रहा कनक मनि मण्डप पूरी

जैसे श्रीरामजा के विबाह की विधि कही है, उसी रीति से सब राजकुमारों का विवाह हुआ । दहेज इतना अधिक था, जो कुछ कहा नहीं जाता, सुवर्ण और मणियों से मण्डप भर गया ।

कम्बल बसन बिचित्र पटोरे * भाँति भाँति बहु मोल न थोरे
रथ गज तुरँग दास अरु दासी * धेनु अलंकृत काम दुहासी

कम्बल, वस्त्र, रंग-बिरंगे कपड़े, भाँति २ के, बहुमूल्य और बहुत-से थे । हाथी, रथ, घोड़े, दास और दासियाँ, अलंकारों से सजी-कामधेनु के समान गौयें आदि—

बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा * कहि न जाय जानहिं जिन्ह देखा
लोकपाल अवलोकि सिहाने * लीन्ह अवधपति सबु सुख माने

बहुत-सी वस्तुयें थीं, जिनकी गिनती कहाँ तक की जाय ? कही नहीं जा सकतीं, क्योंकि जिन्होंने देखा हो-वही जानें । लोकपाल उन्हें देखकर प्रसन्न हुए, अयोध्यापति दशरथजी ने वह सब वस्तुयें सुख मानकर लीं ।

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा * बरा सोउ जनवासेहिं आवा

तब करजोरि जनकु मृदुबानी * बोले सब बरात सनमानी

उसमें जो जिसको भला लगा, वह याचकों को दिया और जो बच रहा-वह जनवासे आया। तब हाथ जोड़कर राजा जनकजी मधुर-वाणी से सब बरात का सम्मान करके बोले-

छन्द—सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनि बृन्द बन्दे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥
सिरु नाइ देव मनाइ सब कहत कर सम्पुट किएँ।
सुर साधु चाहत भाव सिन्धु कि तोष जल अँजलि दिएँ॥

सब बरात का मान, विनय और बड़ाई करके सम्मान किया, फिर आनन्दित होकर बड़े-बड़े मुनियों को प्रणाम करके प्रेम सहित पूजन किया। फिर सब देवताओं को सिर नवाकर और सम्मान कर, हाथ जोड़ सबसे कहा कि देवता और साधुजन तो प्रेम चाहते हैं।

करि जोरि जनकु बहोरि बन्धु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर वचन सानि सनेह शील सुभाय सों॥
सम्बन्ध राजनु रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साजु समेत विवेक जानिये बिनु गथ लए॥

फिर जनकजी भाई सहित हाथ जोड़कर महाराज दशरथजी से स्नेहयुक्त शील-स्वभाव से मनोहर वचन बोले—हे राजन् आपके साथ सम्बन्ध करके हम अब सब प्रकार से बड़े हो गये। आप हमको इस वैभव समेत बिना मोल का अपना दास जानिए।

ए दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई।
अपराध छमिबोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यौ कई॥
पुनि भानुभूषन नृप सकल सनमान निज समधीं किए।
कहि जात नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥

इन कन्याओं को अपनी टहलनी समझकर इनका पालन करना। आपको जो हमने बुला भेजा, सो हमारा अपराध क्षमा करना, क्योंकि हमने बहुत ढिठाई की। सूर्यकुल-भूषण दशरथजी ने अपने समधी (जनक) का सब प्रकार से सम्मान किया। आपस में प्रेम भरे हृदय से जो विनती की, वह कही नहीं जा सकती है।

वृन्दारका गन सुमन वरषहि राउ जनवासेहि चले।
दुन्दुभी जय धुनि वेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब नारि मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुन्दरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

महाराज दशरथजी जनवासे को चले, उस समय देवतागण पुष्प बरसाने लगे। नगाड़े बजने लगे, जय-जयकार और वेद-ध्वनि होने लगी, आकाश और नगर में आनन्दमय खेल-तमाशे भली प्रकार होने लगे। वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर सखियाँ मंगल गान करती हुईं दुलहिनों सहित दुल्हों को लिवाकर कोहवर को ले चलीं।

दोहा–पुनि पुनि रामहिं चितवसिय, सकुचत मन सकुचैन।
हरत मनोहर मीन छवि, प्रेम पियासे नैन ॥३२६॥

श्रीसीताजी बारम्बार श्रीरामचन्द्रजी को देखकर सकुचाती हैं, पर मन नहीं सकुचाता। प्रेम प्यारे नेत्र मनोहर मछली की शोभा को हर लेते हैं।

✳ मास पारायण—ग्यारहवाँ विश्राम ✳

स्याम सरीर सुभायँ सुहावन ✳ सोभा कोटि मनोज लजावन
जावक जुत पद कमल सुहाए ✳ मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए

सांवला शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है और शोभा करोड़ों कामदेवों को लजाने वाली है। मुहावर लगे हुए चरणकमल बड़े सुहावने हैं, उन पर मुनियों के मनरूपी भौंरे छाये रहते हैं।

पीत पुनीत मनोहर धोती ✳ हरति बालरबि दामिनि जोती
कल किंकिनि कटिसूत्र मनोहर ✳ बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर

पीली पवित्र धोती सवेरे के सूर्य और बिजली की ज्योति को हरने वाली है। कमर में सुन्दर तगड़ी और कटि-सूत्र हैं, लम्बी भुजाओं में आभूषण शोभायमान हैं।

पीत जनेउ महाछबि देई ✳ कर मुद्रिका चोर चितु लेई
सोहत ब्याह साज सब साजे ✳ उर आयत सब भूषन राजे

पीला जनेऊ बड़ी शोभा दे रहा है, हाथ की अँगूठी चित्त को चुराये लेती है। विवाह का सब शृंगार सजे हुए शोभायमान हो रहे हैं, चौड़ी छाती पर सब आभूषण शोभा दे रहे हैं।

पियर उपरना काखा सोती ✳ दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती
नयन कमल कल कुण्डल काना ✳ बदनु सकल सौंदर्य निधाना

जनेऊ की भाँति पीला दुपट्टा कन्धे पर शोभित है, जिसके दोनों छोरों पर मणि और मोती लगे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, कानों में सुन्दर कुण्डल पड़े हैं और मुख सब सुन्दरताओं का निधान है।

सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा ✳ भाल तिलकु रुचिरता निवासा
सोहत मौरु मनोहर माथे ✳ मङ्गलमय मुकुता मनि गाथे

सुन्दर भौंहें, मनोहर नासिका और मस्तक पर तिलक तो सुन्दरता का घर ही है। माथे पर मनको हरने वाला मौर शोभायमान है, जो मांगलिक मोती और मणियों से गुथा है।

छन्द–गाथे महामनि मौरु मञ्जुल अंग सब चित चोरहीं।
पुरनारि सुर सुन्दर बरहि बिलोकि सब तृन तोरहीं ॥

मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं ।
सुनि सुमन बरषहिं सूत मागध बन्दि सुजस सुनावहीं ॥

बहुमूल्य मणियों से गुंथा हुआ सुन्दर मौर है, सभी अंग चित्त को चुरा रहे हैं। नगर की स्त्रियां देवङ्गनायें दूल्हों को देखकर तिनके तोड़ रही हैं । मणि, वस्त्र, गहने न्यौछावर करके आरती कर रही हैं और मङ्गल गा रही हैं । देवता पुष्प बरसा रहे हैं, और सूत, मागध व भाट यश सुना रहे हैं ।

कोहबरहिं आने कुअँरि कुअँर सुआसिनन्ह सुख पाइ कें ।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइ कें ॥
लहुकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं ।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म कौ फलु सब लहैं ॥

सुहागिन स्त्रियाँ प्रसन्न होकर दुलह और दुलहनों को कोहबर में लाईं और बड़े प्रेम से मंगल-गीत गाकर लौकिक रीति कराने लगीं । पार्वतीजी-श्रीरामजी को लहकौर (ग्रास लेना) सिखा रही हैं और सरस्वतीजी-सीताजी को लहकौर सिखाती हैं । रनिवास हास-विलास में मग्न है, सभी जन्म लेने का फल पाने लगीं ।

निज पानि मनि महुँ देखियत मूरति सुरूप निधान की ।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरहँ भय बस जानकी ॥
कौतुक बिनोदु प्रमोदु न जाइ कहि जानहिं अलीं ।
वर कुअँरि सुन्दर सकल सखीं लिवाइ जनवासेहि चलीं ॥

अपने हाथ की मणि में सुन्दर रूप-निधान श्रीरामचन्द्रजी की परछाहीं देखकर सीताजी दर्शन–वियोग होने के भय से अपने हाथ को नहीं हिलातीं । उस समय का आमोद-प्रमोद और प्रेम कहा नहीं जा सकता, इसे तो वे सखियाँ ही जानें । सब सखियाँ दूलह और दुलहिन को जनवासे लिवा ले चलीं ।

तेहि समय सुनिय असीष जहँ तहँ नगर नभ आनन्दु महा ।
चिरु जिअहुँ जोरीं चारु चारिहु मुदित मन सबहीं कहा ॥
जोगीन्द्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुन्दुभि हनी ।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय भनी ॥

उस समय आशीर्वाद की ध्वनि जहाँ-तहाँ सुनाई दे रही थी, नगर व आकाश में महा-आनन्द हो रहा था । प्रसन्न मन से सब यही कह रहे थे कि सुन्दर चारों जोड़ी चिरंजीवी रहें । योगीराज, सिद्ध, मुनीश्वर देवताओं ने प्रभु श्रीरामजी के दर्शन कर नगाड़े बजाये और आनन्द पूर्वक पुष्प बरसाये, फिर वे 'जय-जय' बोलते हुए अपने २ लोकों को चले ।

दोहा–सहित बधूटिन्ह कुअँर सब, तब आए पितु पास ।

सोभा मङ्गल मोद भरि, उमँगेउ जनु जनवास ॥३२७॥

तब सब राजकुमार बहुओं सहित अपने पिता के पास आये। उस समय शोभा, मङ्गल और आनन्द से भरकर जनवासा मानो उमड़ चला।

पुनि जेबनार भई बहु भाँती * पठए जनक बोलाइ बराती
परत पाँवड़े बसन अनूपा * सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा

फिर बहुत प्रकार के भोजन बने, जनकजी ने बरातियों को बुलावा भेजा। तब अनुपम वस्त्रों के पाँवड़ों पर अपने पुत्रों सहित दशरथजी चले।

सादर सबके पाँव पखारे * जथा जोग पीढ़न्हि बैठारे
धोए जनक अवधपति चरना * सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना

आदर सहित सबके पाँव धोये और यथोचित पीढ़ों पर बैठाया। जनकजी ने दशरथजी के पाँव धोये, उनका शील और स्नेह कहा नहीं जाता।

बहुरि राम पद पङ्कज धोए * जे हरि हृदय कमल महुँ गोए
तीनिउ भाइ राम सम जानी * धोए चरन जनक निज पानी

फिर श्रीरामजी के चरणकमल धोये, जो शिवजी के हृदय-कमल में छिपे रहते हैं। तीनों भाइयों को श्रीरघुनाथजी के समान जानकर जनकजी ने उनके चरण अपने हाथों से धोये।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे * बोलि सूपकारी सब लीन्हे
सादर लगे परन पनवारे * कनक कील मनि पान सँवारे

राजा जनक ने सबको उचित आसन दिये, फिर सब परोसने वालों को बुलाया। आदर के साथ पत्तलें पड़ने लगीं, जो पत्तल सोने की कीलों से गढ़ी हुई व मणियों के पत्तों की थीं।

दोहा—सूपोदन सुरभी सरपि, सुन्दर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सबकें परसि गे, चतुर सुआर बिनीत ॥३२८॥

अच्छा, स्वादिष्ट, निर्मल दाल—भात और गाय का घी—चतुर, विनीत रसोइये सबके आगे क्षण भर में परोस गये।

पंच कवल करि जेंवन लागे * गारि गान सुनि अति अनुरागे
भाँति अनेक परे पकवाने * सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने

पंच-ग्रासी करके, सब लोग भोजन करने लगे, गारियाँ सुनकर सब बहुत प्रसन्न हुए। अनेकों प्रकार के अमृत के समान पकवान परोसे गये, जिनका बखान नहीं हो सकता।

परुसन लगे सुआर सुजाना * ब्यंजन बिबिध नाम को जाना
चारि पाँति भोजन बिधि गाई * एक एक बिधि बरनि न जाई

चतुर रसोइए अनेकों प्रकार के व्यञ्जन परोसने लगे, जिनका नाम कौन जान सकता है? चार प्रकार के भोजन की विधि कही गई है, जिनमें एक-एक विधि के अनेकों पदार्थों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

छरस रुचिर बिजनु बहु जाती * एक एक रस अगनित भाँती
जैंवत देहिं मधुर धुनि गारी * लै लै नाम पुरुष अरु नारी

सुन्दर षटरस व्यंजन हैं, एक-एक रस अनगिनती प्रकार के हैं । भोजन करते समय पुरुष और स्त्रियों के नाम ले-लेकर स्त्रियां मधुर स्वर से गारी देने लगीं ।

समय सुहावनि गारि बिराजा * हँसउ राउ सुनि सहित समाजा
एहि बिधि सबहीं भोजन कीन्हा * आदर सहित आचवनु लीन्हा

समय की सुहावनी गारी ऐसी शोभा दे रही हैं कि उनको सुनकर महाराज दशरथजी समाज सहित हँसने लगे । इस तरह सबने भोजन किया और आदर सहित आचमन किया ।

दोहा—देइ पान पूजे जनकु, दशरथु सहित समाज ।
जनवासेहि गवने मुदित, सकल भूप सिर ताज ।।३२९।।

जनकजी ने पान देकर दशरथजी को समाज सहित पूजा, तब चक्रवती दशरथजी प्रसन्न होकर जनवासे को चले ।

* अथ राम-कलेवा—क्षेपक *

भोरु भये अपने कुमार को जनक बेगि बुलवाये ।
सुनि पितु के सन्देश लक्ष्मीनिधि सखन सहित तहँ आये ।।

प्रातः होने पर राजा जनकजी ने अपने पुत्र को बुलाया, पिता का सन्देश सुनकर लक्ष्मीनिधि सखाओं सहित वहाँ आये ।

सादर किये प्रणाम चरण छुइ लखि बोले मिथिलेशू ।
गवनहु तात तुरत जनबासे जहँ श्री अवध नरेसू ।।

आकर चरण छूकर सादर प्रणाम किया । यह देखकर जनकजी बोले—हे तात ! शीघ्र ही जनवासे जाओ, जहाँ अयोध्यापति महाराज दशरथजी हैं ।

विनय सुनाय राय दशरथ सौं पाय रजाय सचेतू ।
आनिहु चारहु राजकुमारन करन कलेऊ हेतू ।।

राजा दशरथजी को विनय सुनाकर और उनकी आज्ञा पाकर चारों राजकुमारों को कलेऊ करने के लिए बुला लाओ ।

यह सुनि शीश नाइ लक्ष्मीनिधि भरि उर मोद उमङ्गा ।
लखन समेत मन्द हँसि गवने चढ़ि चढ़ि चपल तुरङ्गा ।।

यह सुनकर शिर नवाकर लक्ष्मीनिधि सखाओं सहित हृदय में आनन्द की उमंग भरकर मुस्करा कर चंचल घोड़ों पर चढ़कर चल दिये ।

कलन दिखावत हय थिरकावत करत अनेक तमासे ।
मृदु मुसुकात बरात परस्पर पहुँच गये जनवासे ।।

वे अनेकों कलायें दिखाते, घोड़े नचाते, मधुर २ मुस्कराते और परस्पर बात-चीत करते हुए जनवासे में पहुँच गये।

सखन सहित तहँ उतरि तुरँग ते मिथिलापति के बारे।
चारिहु पुलक अवधराज को सादर जाय जुहारे॥

मिथिलेशकुमार (लक्ष्मीनिधि) ने सखाओं सहित घोड़ों से उतर कर चारों पुत्रों सहित अयोध्या पति दशरथ को प्रणाम किया।

अति सुखनिधि लखि लक्ष्मीनिधि को सखन सहित सत्कारे।
रघुकुलदीप महीप हाथ गहि निज समीप बैठारे॥

अत्यन्त आनन्द की खान लक्ष्मीनिधि को देखकर रघुकुल-दीपक महराज दशरथ ने सखाओं सहित उनका सम्मान किया और पकड़कर अपने पास बैठाया।

तेहि छिन सानुज निरखि रामछबि सखन सहित सुखमाने।
लक्ष्मीनिधि सुख दरस पाय कै रामहु नयन जुड़ाने॥

उस समय भाइयों सहित श्रीरामजी की शोभा देखकर सखाओं सहित लक्ष्मीनिधि ने बड़ा सुख माना और लक्ष्मीनिधि के दर्शन पाकर श्रीरामजी के नेत्र भी शीतल हो गये।

तब श्रीनिधि कर जोरि भूप सों कोमल बैन उचारे।
करन कलेऊ हेतु पठावहु चारिहु राजदुलारे॥

तब लक्ष्मीनिधि ने हाथ जोड़कर महराज से कोमल वचन कहे कि चारों राजकुमारों को कलेऊ करने के लिए भेजिये।

सुनि मृदु वचन प्रेम रस साने दशरथ मृदु मुसकाने।
चारिहुँ कुँवर बुलाए बेगि ही विदा किये सुख माने॥

दशरथजी प्रेम से सने हुए कोमल वचन सुनकर मन्द-मन्द मुस्कराये और उन्होंने चारों कुमारों को शीघ्र ही बुलाकर सुख मानकर भेजा।

जनक नगर की जानि तैयारी सेवक सब सुख पागे।
निज निज प्रभुहि सँवारन लागे लै भूषण वर वागे॥

जनकपुर जाने की तैयारी जानकर सब सेवक प्रसन्न हुए और श्रेष्ठ वस्त्राभूषण लेकर अपने-अपने स्वामियों को सजाने लगे।

रघुनन्दन सिर पाग जरकसी लसी त्रिभंगी बाँधी।
जिमि नौरंगी झुकी कलंगी रुचि रुचि पेचिन साँधी॥

श्रीरघुनाथजी के सिर पर तीन लट वाली जरकसी पाग साजकर बाँधी, उसमें नौ रङ्ग की कलङ्गी झुकाकर सजाई और सिर-पेची को सँभाल कर बाँधा।

दोहा—वरनि सकै को राम कौ, अनुपम दूलह वेष।
जेहिलखि सिवसनकादि को, रहत न तनुहि सरेख॥ १॥

श्रीरामजी के अनुपम दूलह-वेष का वर्णन कौन कर सकता है ? जिसे देखकर शिवजी और सनकादिकों को भी अपने शरीर की सुधि नहीं रहती ।

इमि सजि अनुज सहित रघुनन्दन चारिहुँ राजदुलारे ।
बढ़े उमंगन चढ़े तुरंगन अंगन बसन सँभारे ॥

इस प्रकार छोटे भाइयों सहित श्रीरघुनाथजी सजकर चारों राजकुमार अपने-अपने अङ्ग और वस्त्रों को सँभालते हुए घोड़ों पर चढ़कर उमङ्ग में भरकर चले ।

जो रघुवंशी कुँवर लाड़िले प्रभु कहँ प्राण पियारे ।
चढ़े तुरंगन संग तेउ गमने राम रंग मतवारे ॥

जो रघुवंश के कुँवर-प्रभु श्रीरामजी के प्राण-प्रिय थे, वे भी श्रीरामजी के प्रेम में मतवाले होकर घोड़ों पर चढ़कर साथ चले ।

राम बाम दिसि श्रीलक्ष्मीनिधि सखन सहित तेउ सोहैं ।
चंचल बागें किये तुरग की बातें करत हँसोहैं ॥

श्रीरामजी की बायीं ओर लक्ष्मीनिधि भी अपने सखाओं सहित शोभायमान हैं । घोड़ों की बागें ढीली किये, ठठोली करते हुए सब चले जा रहे हैं ।

जग बन्दन जेहि नाम जाहिरौं रघुनन्दन कौ बाजी ।
ताकी गुण छबि कहँ लौं वरणौं जेहि होत मन राजी ॥

श्रीरामजी के जगत-प्रसिद्ध 'जगवन्दन' नामक घोड़े की छवि और गुण कहाँ तक कहूँ, उसे देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है ।

निज रुख पावै नित पहुँचावै क्षण आवै क्षण जावै ।
जमि जमि थमि थमि थिरकि भूमि पर गति न तनिक दरसावै ॥

वह जिधर का रुख पाता है, उधर ही तत्क्षण पहुँच जाता है और थम-थमकर, नाच-नाचकर पृथ्वी पर अनेक प्रकार की गति दिखलाता है।

फाँदत चंचल चारु चौकड़ी चपलहु के चख झाँपै ।
भरत कुँवर कौ तुरत रंगीला वरणि जाइ कहु काँपै ॥

फाँदने में चंचल और चौकड़ी भरने में बिजली को भी आँख झपाने वाला भरतजी का रंगीला घोड़ा है । कहो उसका वर्णन कौन कर सकता है ?

चम्पा नाम चाल चटकीला जेहि पर रिपुहन भाये ।
सङ्ग समाज के आगें निरतै मोर कुरंग लजाये ॥

जिस घोड़े पर शत्रुघ्नजी चढ़े हैं, उसका नाम 'चम्पा' और उसकी चाल चटकीली है । वह हिरन और मोर को भी लजाता हुआ सारे समाज के सामने नाचता हुआ चलता है ।

जो कहुँ नेंकहु हाथ उठावत कई हाथ उठि जातौ ।
बार बार पुचुकार दुलारत ताहू पै ना जुड़ातौ ॥

यदि कहीं तनिक भी हाथ उठाते हैं, तो वह कई हाथ उठ जाता है और फिर बार-बार पुचकारने पर भी नहीं मानता है ।

लक्खी घोड़ा लखनलाल कौ बाँको निपट चलाकौ ।
उड़ उड़ जात वायुमण्डल को परत न पग महि ताकौ ।।

श्रीलखनलाल का बाँका घोड़ा 'लक्खी' बड़ा चालाक है । उसका पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ता और बारम्बार वायु-मण्डल में उड़ जाता है ।

तरफराय उड़ि जाय परत है लक्ष्मीनिधि हय पाहीं ।
उचित विचारि हँसे रघुवंशी रामहुँ मृदु मुसुकाहीं ।।

वह कुछ तड़फड़ा कर लक्ष्मीनिधि के घोड़े के पास जा पड़ता है, इसे उचित विचार कर रघुवंशी हँसते और श्रीरामजी भी मुस्कराते हैं ।

तकि तुरङ्ग की चंचलताई लखन की देख चढ़ाई ।
निमिवंशी रघुवंशी सिगरे उठि से रहि बिकाई ।।

घोड़े की चंचलता और लखनलालजी का चढ़ना देखकर सब निमिवंशी और रघुवंशी ठगे से बिक गये ।

राम आदि जे कुँवर लाड़िले तेउ लखि भरें उछाहैं ।
रीझि रीझि तहँ लखनलाल को बारहिं बार सराहैं ।।

श्रीरामचन्द्रजी आदि लाड़ले कुँवर भी देखकर उत्साह भरते और प्रसन्न हो-होकर लखनलालजी की सराहना करते हैं ।

इमि मस होत विलास विविध विधि विपुल वाजने बाजै ।
सुनत नकीब पुकारि नगर तिय चलि बैठी दरवाजै ।।

इस भाँति मार्ग में अनेक प्रकार के आनन्द होते हैं और तरह २ के बाजे बजते हैं । नफीरी की ध्वनि सुनकर नगर की स्त्रियाँ घर से निकलकर अपने-अपने द्वारों पर आ बैठीं ।

कोउ तिय निरखि बदन की सुषमा अति सुख महँ सोपागी ।
भरी सनेह देह सुधि नाहीं राम रूप अनुरागी ।।

कोई स्त्री मुख की शोभा देखकर अत्यन्त सुख में ऐसी भर गई कि अपनी देह की भी सुध न रही और रामचन्द्रजी के रूप की अनुरागी हो गई ।

कोउ तिय देखि अतूला दूल्हा अति सनेहु तन भूला ।
फूला नैन मैन मन भूला लागि प्रीति की हूला ।।

कोई स्त्री उपमा रहित दूल्हे को देखकर अत्यन्त प्रेम से शरीर की सुधि भूल गई और नेत्र खुले रह गये, मन में काम जागा, प्रीति की लाठी हृदय में आ लगी ।

कोउ घूँघट पट खोलि सुन्दरी मणि मुदरो लै पानी ।
देखत दूलह रूप राम को आनन्द सिन्धु समानी ।।

कोई सुन्दरी घूँघट खोलकर और हाथ में मणि-जड़ित अँगूठी लेकर उसमें श्रीरघुनाथजी का दूलह रूप देखकर आनन्द के समुद्र में समा गई ।

दोहा—कोउ मूरति नखि साँवरी, तोरत तृन सुख पाग ॥
माधुरी मूरति में पगी, निज मूरति सुख त्याग ॥ २ ॥

कोई साँवली मूर्ति को देखकर आनन्द में मग्न होकर तृण तोड़ती है । उसकी माधुरी-मूर्ति में मग्न होकर अपने मूर्ति-सुख को भूल गई ।

कोउ रघुनन्दन छबि बिलोकि कै बोली सुन सखी बैना ।
राजकुँवर ये करन कलेऊ जात जनक के ऐना ॥

कोई रघुनाथजी की शोभा देखकर बोली-हे सखी ! सुनो ये राजकुमार कलेउ करने के लिए राजा जनक के घर जाते हैं ।

इनको श्रीनिधि गये लिवावन आये चारिहु बेटा ।
रंग भीने रघुवंशी छैला दशरथराज—दुलहेटा ॥

इनको लक्ष्मीनिधि लिवाने गये थे । ये रङ्ग भरे दुल्हे रघुवंश के छैला, राजा दशरथजी के चारों बेटा आये हैं ।

धनि यह भाग हमारो प्यारी निज भरि नयन निहारे ।
तनु दर्शन दुर्लभ दूल्हे के रवि कुल प्राण पियारे ॥

हे प्यारी ! हमारा भाग्य धन्य है, जो कि इन्हें नेत्र भरकर देखा, नहीं तो सूर्यकुल के प्राण-प्रिय इन दूल्हों के दर्शन दुर्लभ थे ।

भाग सुहाग आज फल पायौ श्रीमिथिलेश की बेटी ।
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति निज निज भुज भरि भेंटी ॥

मिथिलेशकुमारी (श्रीसीताजी) ने बड़ा भाग्य और सुहाग पाया है, जिन्होंने इन सुन्दर श्याम माधुरी-मूर्ति को अपनी भुजाओं से भरकर भेंटा है ।

बोली अपर सखी सुनु सजनी भली बात बनि आई ।
हमहुँ चलैं सब जनक महल को हँसिये और हँसाई ॥

दूसरी बोली—हे सजनी ! सुनो, यह सुन्दर अवसर आ बना है, हम सब भी जनकजी के महलों को चलें और स्वयं हँस कर इनको हँसावें ।

इमि सब बातें करत परस्पर भईं प्रेम वश बामा ।
सुनत जात मुसुकात अनुजयुत कृपासिंधु श्रीरामा ॥

वे सब स्त्रियाँ इस प्रकार बातें करते हुए प्रेम के वश होगईं । कृपा के समुद्र श्रीरामजी भी भाइयों सहित सुनते और मुस्कराते जाते हैं ।

द्वार समीप देखि अति सुन्दर मणिमय चौक सँवारे ।

राजकुँवर रघुवंशिन्ह के तहँ भये ठाढ़े मतवारे ॥

द्वार के निकट अत्यन्त सुन्दर मणिमय चौक पुरे हुए देखकर वे रघुवंश के मतवाले राजकुमार वहां खड़े हो गये ।

उत रजाय लहि सिया मातु की नगर सुआसिन नारी ॥

कञ्चन कलश सजे सिर ऊपर पल्लव दीप सँवारी ।

उधर श्रीसीताजी की माता की आज्ञा लेकर नगर की सुहागिन स्त्रियों ने पल्लव-दीपों सहित कंचन के घड़े सजाकर सिरों पर रक्खे ।

गावत मंगल गीत मनोहर कर लै कंचन थारी ।

परिछन चलीं हेतु रघुवर के बहु आरती सँवारी ॥

हाथों में सोने के थाल लेकर, आरती सँभालकर वे मनोहर मंगल-गीत गाती हुई श्रीरघुनाथजी के परिछन हेतु चलीं ।

जाइ समीप निहारि छवि दृग आनन्द जल बाढ़ो ।

छकित रही वर बदन विलोकति चकित रहीं तहँ ठाढ़ी ॥

समीप जाकर श्रीरामजी की सुन्दरता को देखकर नेत्रों में आनन्दाश्रु भर आये । वे उनकी अनुपम सुन्दरता को देखकर छक गईं और चकित होकर खड़ी रह गईं ।

राम रूप रंग गईं रंगीली लखि दूलह सुखसारा ।

तन मन रह्यो न सरेख काहु को करैं को मंगलचारा ॥

सुख के मूल दूलह को देखकर वे रँगीली श्रीरामजी के रूप में रंग गईं । किसी को तन-मन की सुधि न रही । तो फिर मंगलाचार कौन करे ?

प्रेम पयोधि मगन सब प्यारीं धरि पुनि धीरज भारी ।

परिछन चलीं भली विधि कीन्हीं रोकि विलोचन बारी ॥

सब प्यारी सखियाँ प्रेम-सागर में मग्न हो गईं, फिर भारी धैर्य धारण कर और नेत्रों का जल रोक सब भली-भाँति से परिछन करने चलीं ।

लक्ष्मीनिधि तब उतरि तुरँग ते चारिअ कुँवर उतारे ।

पाणि पकरि रघुनन्दनजी को भीतर महल सिधारे ॥

तब लक्ष्मीनिधि ने घोड़ों से उतरकर चारों राजकुमारों को उतारा और श्रीरामचन्द्रजी को हाथ पकड़कर भीतर महल में ले चले ।

जहँ पिकबैनी सब सुख ऐनी बैठी सुनैना रानी ।

इन्द्रानी की कौन चलावैं लखि रति रूप लुभानी ॥

जहाँ समस्त सुखों की खान, मधुर-भाषिणी रानी सुनयना बैठी थीं । उनके रूप को देखकर इन्द्राणी तो क्या, स्वयं रति भी रूप को देखकर मोहित हो जाती थीं ।

चन्द्रमुखी चहुँ ओर विराजैं कोउ कर चमर ढुलावैं ।

कोउ सखि देखि राम की शोभा आरति मंगल गावै ।

चारों ओर चन्द्रमुखी स्त्रियाँ सुशोभित थीं । कोई चँवर ढुला रही थीं, तो कोई श्री-रामचन्द्रजी की शोभा देख आरती-मङ्गल गा रही थीं ।

तेहि छिन तहाँ गये रघुनन्दन मन फन्दन कर वेषा ।
देखत उठीं सकल रनिवासैं रह्यौ न तनुहिं सरेखा ॥

उस समय सुन्दर वेषधारी, कामदेवों को भी लज्जित करने वाले श्रीरघुनाथजी वहाँ गये। उन्हें देखते ही सारा-रनिवास प्रेम-मग्न हो उठा, किसी को भी देह की सुध न रही ।

करि आरती वारि मणि भूषन सादर पाँय पखारे ।
चारि रंग के चार सिंहासन चारिहु वर बैठारे ॥

आरती करके, मणि और आभूषण न्यौछावर करके आदर सहित पैर धोये और चार रंगों के चार सिंहासनों पर चारों दूल्हों को बैठाया ।

लखि छबि ऐना सासु सुनैना नेंकहु पलक तजै ना ।
भूली चैना बोलि सकैं ना कहत बनै ना बैना ॥

सौन्दर्य के स्थान—श्रीरामचन्द्रजी को सुनयना रानी पलक विसार कर देखने लगीं । वे सुधि भूल गईं, बोल नहीं सकतीं, मुख से बात कहते नहीं बनती ।

तकि तकि रही तनक नहिं डोलै मगन महामुद माहीं ।
राम रूप रंग गईं रँगीली आँसू बहे दृग जाहीं ॥

देखकर वे स्थिर रह गईं, जरा भी नहीं हिलीं और अत्यन्त आनन्द से मग्न हो गईं। वे रंगीली—श्रीरामजी के रूप में ऐसी रंग गईं कि आँखों से आँसू बहने लगे ।

इमि तहँ दसा विलोकि सासु की राम गुनत मन माहीं ।
काह भयौ यह आजु रानि को पूछत में सकुचाहीं ॥

सास की यह दशा देख श्रीरामजी मन में विचार करने लगे कि रानी को क्या होगया है ? परन्तु पूछने में सकुचाते हैं ।

चतुर सखी चित चरित राम सौं बोली मधुर बानी ।
यह तुम्हार गुण हैं सब लालन और न कछु उर आनी ॥

तब एक चतुर सखी श्रीराम के मन की बात जानकर बोली—हे लालन ! यह सब तुम्हारे ही गुण हैं, और मन में नहीं आता है ।

सुनत वचन यह तुरत धीर धरि जगी सुनैना रानी ।
बार बार बहु लीन्ह बलैयाँ चूमि कपोलन पानी ॥

यह वचन सुनते ही तुरन्त धीरज धरकर सुनयना रानी जागीं और कपोलों को चूमकर बारम्बार हाथों से बलैयाँ लेने लगीं ।

माधुरी मूरति साँवरी सूरत की तन तोरति रानी ।

रीझि रीझि तहँ राम रूप पे बिन ही मोल बिकानी ॥

रानी उस साँवली सूरत को देखकर तिनका तोड़ने लगीं और श्रीरामजी के रूप पर रीझ कर बिना मोल ही बिक गईं।

पुनि कर जोरि निहारि राम सो बोली अति मृदु सोई ।
उठहु लाल अब करहु कलेउ जो जो रुचि हिय होई ॥

फिर हाथ जोड़कर अति मधुर वाणी बोलीं—हे लालन ! अब उठो, और मन में जो इच्छा हो, सो कलेऊ करो।

यह सुनि लखनु समेत उठे तहँ चारिहु राजदुलारे ।
भरी भाग्य अनुराग सुनैना निज कर पाँय पखारे ॥

यह सुनकर चारों राजकुमार सखाओं सहित उठे और भाग्यवान सुनयना रानी ने प्रेम पूर्वक अपने हाथों से चरण धोये।

रचना अधिक पदक के पीढ़न्ह बैठारे सब भाई ।
कंचन थारी मृदुल सुहारी परसीं बिबिध मिठाई ॥

विचित्र रचना युक्त सिंहासनों पर सब भाई बैठाये और सोने की थालियों में अनेक प्रकार की पूड़ी व मिठाइयाँ परोसीं।

रुचि अनुरूप भूपसुत जेंवत पवन ढुलावैं सासू ।
बूझि बूझि रुचि व्यंजन परसैं वरनि न जाइ हुलासू ॥

रुचि के अनुसार राजकुमार जीमते हैं, सास पंखा करती हैं और रुचि पूछ-पूछ कर पकवान परोसती हैं। उस समय का आनन्द कहा नहीं जा सकता।

स्वाद सराहि पाथ पुन अँचय सखियन पान खवाये ।
बैठे पहिरि पोशाक सखनयत विविध सुगन्ध लगाये ॥

स्वाद की सराहना करके राजकुमार जीमते हैं, फिर आचमन किया, सखियों ने पान खिलाये। तब वे सखों सहित पोशाक पहनकर बैठे, (सखियों ने) अनेक इत्र वस्त्रों में लगाये।

दोहा—राज ऐन सब चैन युत, राजत राजकुमार ।
जिनको हास विलास लखि, लाजहि लाखन मार ॥ ३ ॥

राजकुमार इस प्रकार राज-भवन में आनन्द पूर्वक विराजते हैं जिनका हास-विलास देखकर लाखों कामदेव लज्जित हो जाते हैं।

तेहि औसर सुधि पाय सखी मुख लक्ष्मीनिधि नारी ।
नामु सिद्धि परसिद्ध जासु गुण रूप शील उजियारी ॥

उस समय गुण, रूप, शील में प्रसिद्ध लक्ष्मीनिधि की स्त्री (सिद्धि) की एक सखी के मुख से समाचार पाया।

भाग सुहाग भरी सुठि सुन्दरि नव यौवन मतवारी ।
रसिकन रीति प्रीत परवीनी रतिहि लजावनिहारी ॥

वह भाग्यवान और सोहाग से भरी, श्रेष्ठ सुन्दरी, नव-यौवन में मतवाली, रसिकों की रीति और प्रीति में चतुर रति को भी लजाने वालीं—

अति गुणवान निधान रूप की सब विधि सुभग स्यानो ।
लक्ष्मीनिधि की प्राण पियारी निमि कुल की महारानी ॥

अत्यन्त गुणवान्, रूप की राशि, सब प्रकार मे सुन्दर और चतुर, लक्ष्मीनिधि की प्राण प्रिया और निमि-कुल की महारानी—

अलबेली सरहज रघुवर की बड़ी सनेह शृङ्गारी ।
प्रीतम प्रीत निवाहनिहारी राम रूप रिझवारी ॥

श्रीरघुनाथजी की अलबेली सरहज बड़े प्रेम से शृङ्गार किये, अपने प्रियतम से प्रीति को निवाहने वाली और श्रीरामजी के रूप पर मुग्ध—

चंचल चपल चहूँ दिशि चितवति देखन को चतुराई ।
भरी उमंग संग सखियन लै तुरत राम ढिग आई ॥

चंचल नेत्रों से चारों ओर देखती हुई दर्शन के लिए आतुर और उमंग से भरी सखियं को लेकर तुरन्त श्रीरामचन्द्रजी के पास आई ।

बदन चन्द अरविन्द लिये कर बिहँसि मन्द सरसोहैं ।
राजकुँवर कर पकरि लाड़िली बोली तकि तिरछोहैं ॥

चन्द्रमा का-सा मुख, हाथ में कमल लिए, मन्द-मन्द मुस्कराती हुई वह लाड़की तिरछे नेत्रों से देखती हुई राजकुमारों का हाथ पकड़ कर बोलीं—

होत चितचोर किशोर भूप के बड़े चोर तुम प्यारे ।
सुरति हमारि भुलाय साँवरे सासु समीप सिधारे ॥

हे प्यारे ! तुम चित्त को चुराने में बड़े चतुर हो । हे साँवरे ! हमारी याद भुलाकर सास के पास चले गये ।

उल्टी बात कहौ निज प्यारी आपन दोष दुराई ।
तुमहीं रहिउँ छिपाय छबीली सुनत हमारि अबाई ॥

(तब रघुनाथजी बोले–) हे प्रिय ! अपना दोष छिपा कर उल्टी बात कहती हो । हे छबीली ! हमारा आना सुनकर तुम छिप रही थीं ।

हम आये तुम महलन भीतर तुम्हिं न परयौ जनाई ।
भलो सदन तुम्हारौ है प्यारी जहँ सब जाहिं समाई ॥

हम तुम्हारे महलों में आये और तुम्हे मालूम भी न पड़ा । हे प्यारी ! तुम्हारा घर अच्छा है, जहां सब समा जाते है ।

सुनत राम के वचन लाड़िली बोली मृदु मुसुकाई ।
तुम्हारे घर की रीति लालजू यहाँ न चलहि चलाई ॥

श्रीरघुनाथजी के वचन सुनकर मधुर वाणी से मुस्कराकर बोलीं—हे लालजी ! तुम्हारे घर की रीति यहां चलाये नहीं चलेगी ।

सासु सुनयना के समीप महँ देत जबाव बनै ना ।
पाणि पकरि रघुनन्दनजी कौ गई लिवाय निज ऐंना ॥

सासु सुनयना रानी के सामने उत्तर देते नहीं बनता, इसलिए वह श्रीरघुनाथजी का हाथ पकड़ कर अपने महलों में लिवा लेगई ।

चारि सिंहासन दै तहँ आसन भरी हुलासन प्यारी ।
बारहिं बार निहार बदन छबि बहु आरती उतारी ॥

वहां चार सिंहासनों के आसन देकर आनन्दोल्हास से भर गई और बारम्बार उनके मुख की छबि देख २ कर अनेक प्रकार से आरती उतारीं ।

मेलि सुकण्ठ मालती माला वसननि अतर लगायौ ।
आँचर सों मुख पौंछ राम कौ निज कर पान खवायौ ॥

सुन्दर गले में मालती की माला डालकर, कपड़ों में इत्र लगाया और श्रीरघुनाथजी का मुख अञ्चल से पोंछ कर अपने हाथों से पान खिलाया ।

ललित लवङ्ग कपूर संग धरि कोउ सखी पान लगावै ।
कोउ कर पीक-दान लिए ठाढ़ी कोउ सखि चँवर ढुलावै ॥

कोई सखी सुन्दर लौंग, कपूर और कस्तूरी रखकर पान लगाती है, कोई पीक-दान हाथ में लिए खड़ी है और कोई सखी चँवर ढुलाती है ।

जे निमिराज निवत सुनि आईं कोटिन्ह राजकुमारी ।
राम मिलन की बड़ी लालसा कहि न सकें सकुचारी ॥

राजा निमिराज के यहां राजकुमारियां न्यौते में आई थीं, उनको श्रीरामचन्द्रजो से मिलने की इच्छा थी, पर संकोच के कारण कह नहीं सकती थीं ।

तिन्ह यह सुन्यौ कि सिद्धि सदन में आये चारिहु भाई ।
तुरतहि पहुँच गईं सब प्यारी जानि सबैं सुखदाई ॥

उन्होंने जब यह सुना कि सिद्धि के महल में चारों भाई आये हैं तो सबके लिए सुख दायक जानकर तुरन्त हो सब वहां पहुँच गईं ।

देखीं राजकुँवरि सब आईं राम दरस की प्यासी ।
अति सम्मान कियौ सब ही कौ सिद्धि सदन सुखरासी ॥

सिद्धि ने श्रीराम-दर्शन की प्यासी सब राजकुमारियों को आई देखा तो सभी का बहुत आदर किया, सिद्धि का महल सुख का भण्डार होगया ।

मणिन मोरु पर मोतिन कलंगी अलबेली अति सोहै ।
राज-तियन की कौन चलावै मुनियन कौ मन मोहै ॥

श्रीरामचन्द्रजी के मस्तक पर मणियों की मौर, मोतियों की अनोखी कलङ्गी ऐसी अत्यन्त शोभित है कि राजकुमारियों की तो क्या चले, मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं।

दोहा—मन लोभा शोभा निरखि, भईं विवश सुकुमारि।
चकित छकित सब रह गईं, तन मन दिसा बिसारि॥ ३॥

सभी सुकुमारियों के मन शोभा को देखकर क्षुब्ध हो गये। वे विवश हो गईं और तन-मन की दशा भुलाकर चकित होकर छकी-सी रह गईं।

जो तिय मान अनूप रूप निज रही स्वरूप गुमानी।
तेउ लखि राम बदन की शोभा बिन ही मोल बिकानी॥

जो स्त्रियाँ अपना रूप अनुपम मानकर स्वयं घमण्ड में भरी रहती थीं वे श्रीरामजी के मुख का सौन्दर्य देखकर बिना मोल ही बिक गईं।

अति सुकुमारी राजकुमारी सिद्धि सहित अनुरागीं।
तहँ प्यारी गारी रघुवर को देन दिलावन लागीं॥

वे अत्यन्त सुकुमारी सिद्धि सहित प्रेम से भर गईं, उस समय सिद्धि श्री रघुनाथजी को गारी देने और दिलवाने लगीं।

एक सखी कह सुनहु लालजी यह स्वरूप कहँ पायौ।
कानन सुन्यौ काम अति सुन्दर की तुमको सोइ जायौ॥

एक सखी कहने लगी—हे लालजी! सुनो, तुमने यह स्वरूप कहाँ से पाया? हमने कामदेव को अत्यन्त सुन्दर सुना है, क्या तुम उसी से उत्पन्न हुए हो?

बोली सिद्धि सुनहु रघुनन्दन तुम हमार नन्दोई।
एक बात तुम सौं हम पूछें लाल न राखहु गोई॥

सिद्धि बोली—हे रघुनन्दन! सुनो, तुम हमारे नन्दोई हो, इससे एक बात हम तुमसे पूछती हैं, सो—हे लालजी! छिपाना मत।

होत ब्याह सम्बन्ध सबन कौं अपनी ही जातिहि माहीं।
निज बहिनी शृंगी ऋषि को तुम कैसे दियौ विवाहीं॥

सभी का ब्याह अपनी जाति में होता है, तो फिर तुमने अपनी बहिन को *भृङ्गी-ऋषि को कैसे ब्याह दिया?

की उनको मुनीश लै भाग्यौ की बौई संग लागी।
ऐसी बात बताबहु लालन तुम रघुवंश अदागी॥

क्या उनको वे मुनि ले भागे, या वे स्वयं ही उनके साथ लग गईं? हे लालन! बस इतनी ही बता दो? क्योंकि तुम्हारा वंश तो निष्कलङ्क है।

लषन कह्यौ यह सुनहु लाड़िली जेहिं विधि जहँ लिखि दीना।

---

* राजा दशरथजी की कन्या 'राम-पाद' को अनंग-देश के राजा ने गोद लेकर भृङ्गी-ऋषि को ब्याह दी थी।

तहँ संजोग होत है ताको ब्याह तौ कर्म अधीना ॥

लक्ष्मणजी ने कहा–हे लाड़िली ! सुनो, जिस विधि से–जहाँ ब्रह्मा ने लिख दिया है, वहाँ ही उसका संयोग होता है, और विवाह तो कर्म के अधीन है।

कहँ हम राजकुँवर रघुवंशी कहँ विदेह वैरागी।
भयो हमारौ ब्याह तुम्हारें विधि गति गनै को भागी ॥

देखो, कहाँ तो हम रघुवंशी राजकुमार और कहाँ वैराग्यवान् जनकजी ! तुम वैरागियों के यहाँ हमारा ब्याह हुआ है, विधाता की गति कौन जाने ?

औरौ एक हास उर आवै अचरज है सब काहू।
तुम तौ हो सिद्धि वे लक्ष्मीनिधि नारि नारि भौ ब्याहू ॥

और भी एक हँसी हृदय में आती है और सबको आश्चर्य भी है कि तुम 'सिद्धि' और तुम्हारे पति 'लक्ष्मीनिधि' दोनों स्त्री-वाचक हैं, सो स्त्री का विवाह स्त्री से कैसे हुआ ?

एक सखी कह सुनहु लालजी तुमहिं सकै को जीती।
जाहिर अहै सकल जग माहीं तुम्हरे घर की रीती ॥

एक सखी बोली–हे लालजी ! सुनो, तुमको कौन जीत सकता है ? सारे संसार में तुम्हारे घर की रीति प्रकट है।

अति उदार करतूतिदार सब अवधपुरी की बामा।
खीर खात पैदा सुत करतीं पति कर कछु नहिं कामा ॥

अयोध्या की स्त्रियाँ बड़ी उदार करतूत वाली हैं, जो खीर खाकर ही पुत्र पैदा कर देतीं हैं, पति का तो कुछ भी काम नहीं है।

सखी बचन सुनि तब रघुनन्दन बोले मृदु मुसुकातैं।
आपिन चाल छिपावहु प्यारी कहहु आन की बातैं ॥

तब सखी के वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी बोले–हे प्रिये ! अपनी चाल छिपाकर औरों की बात कहती हो।

कोउ नहिं जन्में मातु पिता बिनु बँधी वेद की रीती।
तुम्हरें तौ महि ते सब उपजें अस हमरें नहिं रीती ॥

वेदों में यह रीति बँधी है कि माता-पिता के बिना कोई जन्म नहीं लेता। लेकिन तुम्हारे यहाँ तो सब पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं। हमारे यहाँ ऐसी रीति नहीं है।

बोली चन्द्रकला तेहि औसर परम चतुर सुकुमारी।
सिद्धि कुँवरि की लहुरी भगिनी लक्ष्मीनिधि की सारी ॥

उस समय परम चतुर सुकुमारी 'चन्द्रकला' जो रानी सिद्धि की छोटी बहिन और लक्ष्मीनिधि की साली थी, वह बोली–

लरकाई ते रहे लालजी तुम तपसिन्ह सँग माहीं।
ये छल छन्द फन्द कह पायो सत्य कहौ हम पाहीं ॥

हे लालजी ! तुम बचपन से ही तपस्वियों के सङ्ग में रहे हो, सो हमसे सत्य कहो कि यह छल-छन्द कहाँ से प्राप्त किये हैं ?

की मुनि नारिन के सँग सीखे की निज भगनि पासै ।
मीठौ सीठौ स्वाद लालजी बिन चाखे नहीं भासै ।।

क्या मुनियों की स्त्रियों के साथ से अथवा अपनी बहिन से सीखे हो ? हे कुंवरजी ! मीठे-सीठे का स्वाद तो बिना चाखे नहीं जाना जा सकता ?

बोले भरत भली कह सजनी तुमहुँ तौ सबै कुमारी ।
वरणहु पुरुष संग की बातें सो कहँ सीखेउ प्यारी ।।

भरतजी बोले—हे प्रिये ! तुम ठीक कहती हो, परन्तु तुम भी तो अभी कुआरी ही हो और पुरुषों के सङ्ग की बात कहती हो, सो—हे प्रिये ! कहाँ से सीखी हैं ?

रहे मुनिन सँग ज्ञान सिखन को सो सब सुनै सुनाए ।
कामिनी काम-कला अब सीखन हम तुम्हरे ढिग आए ।

हे कामिनी ! हम ज्ञान सीखने के लिये मुनि के संग रहे, सो सभी जानते हैं परन्तु अब हम काम कला सीखने को तुम्हारे पास आये हैं ।

सिद्ध कह्यौ तब सुनहु भरतजी ऐसे तुम न बखानौ ।
तुम्हरी तौ गिनती साधुन में लोक-बात का जानौ ।

तब सिद्धि बोली—हे भरतजी । सुनो, तुम ऐसी बातें मत कहो । क्योंकि तुम्हारी तो गिनती साधुओं में है, तुम सांसारिक बातें क्या जानो ?

भरत कह्यौ तुम साँच कहत हौ हम साधू पर—काजी ।
ऐसी सेवा करौ कामिनी जाते होय मन राजी ।।

भरतजी बोले—तुम सत्य कहती हो, हम तो पराया काम करने वाले साधु हैं । इसलिए, हे भामिनी ! ऐसी सेवा करो जिससे कि हमारा मन खुश होजाय ।

आये ऐन अपूरव योगी अस निज मन गुनि लीजै ।
अधर सुधारस कौ दै भोजन अतिथि—पूजन कीजै ।।

तुम्हारे घर में अपूर्व योगी आये हैं, यह अपने मन में जान लीजिए और अपने अधरामृत रूपी रस का भोजन देकर हम अतिथियों का पूजन कीजिए ।

एक सखी कह सुनौ सबै मिलि इनकी एक बड़ाई ।
ऋषि मख राखन गये कुँवर ये तहँ हम अस सुधि पाई ।।

एक सखी बोली—सब मिलकर इनकी एक बड़ाई सुनो—ये मुनि के यज्ञ की रक्षा करने गये थे, हमने ऐसी खबर पाई है कि वहाँ—

इनको सुन्दर देख कामवश त्रिया ताड़का आई ।
सो करतूति न भई लाल सों मारेहु तेहि खिसिआई ।।

इनको सुन्दर देखकर 'ताड़का' नाम की स्त्री कामोन्मत्त होकर आई, सो लाल से जब वह करतूत न हो सकी, तो खिसयाकर मार दिया।

बोले रिपुहन सुनहु भामिनी नाहक दोष न दीजै।
जो करतूति बनी नहिं उनसे सो हमसे भरि लीजै।।

शत्रुघ्नजी बोले—हे भवानी ! सुनो वृथा दोष मत दो। यदि उनसे वह करतूत न हुई हो तो तुम हमारी परीक्षा ले लीजिए।

बिन जाने करतूति सबन कौ तुम्हरे घर भो व्याहु।
सोउ पछिताउ न रहै पियारी अब करि लेहु समाहु।।

बिना करतूत जाने ही तुम्हारे घर हम सबका विवाह हुआ है। अतः हे प्यारी ! अब करतूत की परीक्षा करलो, जिससे बाद में पछतावा न रहे।

जाके हित तुम्ह रोष बढ़ावहु सो मति करहु उपाई।
बैसिन सेवा में तुम्हरे हम हाजिर चारिउ भाई।।

जिसके कारण तुम रोष बढ़ाती हो, उसका उपाय मत करो। हम चारों भाई वैसे ही तुम्हारी सेवा में उपस्थित हैं।

सुनि वाणी रिपुदमनलाल की बोली कोउ कुमारी।
कहँ पाई ऐसी चतुराई कहिये लाल विचारी।।

शत्रुघ्नजी की वाणी सुनकर कोई सुकुमारी बोली—हे लालजी ! इतनी चतुराई कहाँ से प्राप्त की है, सो विचार कर कहो ?

की कहुँ मिलि नारि गुण आगरि की गणिकन सँग कीनौ।
तीनों भाइन्ह तें तुम्हरे महँ लखियत चिन्ह नवीनौ।।

क्या तुम्हें कोई गुणों की खान स्त्री मिली है अथवा किसी गणिका का साथ किया है ? क्योंकि तीनों भाइयों में से तुममें नये चिन्ह पाये जाते है ?

रिपुहन कहन भलि कह्यौ भामिनी भेदया भेदहि जानै।
गणिका नारिन हूँ तें सौ गुन अधिक तुम्हें हम मानै।।

शत्रुघ्नजी बोले-हे भामिनी ! भली कहती हो, भेदिया ही भेद की बात जानता है। तुम में गणिकाओं से सौगुनी अधिक बात हैं ऐसा हम मानते हैं।

हमरौ तुम्हरौ चिन्ह लाड़िली एकहिं भाँति लखाई।
ताते सखी हमारी तुम्हारी चाहिए अवसि सगाई।।

हे लाड़ली ! हमारे-तुम्हारे चिन्ह एक ही भाँति के दिखाई पड़ते हैं। इसलिए हे सखी ! हमारी-तुम्हारी सगाई अवश्य होनी चाहिए।

सुनि नव उक्ति युक्ति की बातें बोली सिद्ध सुकुमारी।

सुनिए रसिकराय रघुनन्दन आनन्दकन्द बिहारी ॥

श्रीशत्रुघ्नजी की यह नई युक्ति की बातें सुनकर सुकुमारी सिद्धि बोली—हे रसिकराय आनन्दकन्द, विहरणशील श्रीरघुनन्दन ! सुनो—

अति अभिराम कामहू मोहत मूरत देखि तुम्हारी ।
कैसे बची होयँगी तुमसे अवधपुरी की नारी ॥

कामदेव भी तुम्हारी अत्यन्त शोभायमान मूर्ति देखकर मोहित हो जाता है, इसलिए तुमसे अवधपुरी की स्त्रियां कैसे बची होंगी ?

यों कहि रही चुपचाप सुन्दरी सिद्धि कुँवर सुख सैना ।
ताकौ हाथ पकरि रघुनन्दन बोले अति मृदु बैना ॥

यह सुनकर सुन्दरी और सब सुखों की राशि सुकुमारी सिद्धि चुप हो पई । तब उसका हाथ पकड़कर श्रीरामचन्द्रजी कोमल वचन बोले—

दोहा—जसि मर्यादा जगत की, बाँधि दई करतार ।
राजा रङ्क यती सती, करत सोइ व्यवहार ॥ ५ ॥

विधाता ने जगत् की जैसी मर्यादा बाँध दी है, उसी के अनुसार—राजा, रंक, यती, सती आदि सभी व्यवहार करते हैं ।

अनुचित उचित विचारि लोग सब तहँ तस राखत भावा ।
तुम तौ अपने जसि जानतिहौ सबही के रस चावा ॥

अनुचित-उचित विचार कर लोग वहाँ वैसा ही भाव रखते हैं । तुम तो अपने ही समान सब में रस का चाव समझती हो ।

यह सुनि भरत लषन रिपुसूदन हँसे सकल तै तारी ।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी तेउ अति भईं सुखारी ॥

यह सुनकर भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी सभी तालियां बजाकर हँसे और सिद्धि आदि जो राजकुमारियां थीं--वे भी अत्यन्त सुखी हुईं ।

ते तुम सबै प्रेम की मूरति सूरति को बलिहारी ।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी मोहि प्राणहु ते प्यारी ॥

(फिर श्रीरामचन्द्रजी बोले) वे तुम सब प्रेम की मूर्ति हो, तुम्हारी सूरत पर बलिहारी जाइये । सिद्धि आदि तुम सब राजकुमारी मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हो ।

तुम्हरे हिय अभिलाष आजु जो सो सब भाँति पुरे हौं ।
लोक की लाज बचात लाड़िलो तुमसे विलग न होइ हौं ॥

हे प्रिय ! तुम्हारे हृदय में जो अभिलाषा है, सो सब आज पूरी करूँगा । हे लाड़िली ! लोक की लाज बचाकर मैं तुमसे रहूँगा । (अर्थात् लोक-लाज तो बचानी ही पड़ेगी ।)

हम सब भाँति तुम्हारे प्यारी तुम सब भाँति हमारी ।
सत्य सत्य ये सत्य वचन मम मानहु राजकुमारी ॥

हे प्यारी ! हम सब प्रकार से तुम्हारे हैं और तुम हमारी हो । हे राजकुमारी ! हमारा यह वचन तीन बार—सत्य मानो ।

दोहा—रघुनन्दन के वचन सुनि, खुल गये हृदय किवार ।
बढयौ प्रेम सब त्रियन्ह कें, तनिकहु नहीं सँभार ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी के ये वचन सुनकर सबके हृदय के कपाट खुल गये । और सब स्त्रियों के हृदय में प्रेम बढ़ा, तनिक भी होश न रहा ।

पुनि धरि धीरज अली भली विधि जोरि पंकरुह पानी ।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी बोली अति मृदु बानी ॥

फिर धीरज धरकर, भली भाँति से हाथ जोड़कर सिद्धि आदि सब राजकुमारियाँ और सखियाँ अत्यन्त कोमल वाणी बोलीं ।

धन्य भाग्य हमारे रघुनन्दन हमते बड़ कोउ नाहीं ।
डूबत रहीं जगत सागर में राखि लीन्ह गहि बाहीं ॥

हे रघुनन्दन ! हमारे धन्य भाग्य हैं, हम से बढ़कर कोई नहीं । हम संसार-सागर में डूबी जाती थीं, सो आपने बाँह पकड़कर रख लिया ।

प्रति उपकार होत नहिं हमते जस तुम्ह कीन्हेउ प्यारे ।
चन्द्र समान होयँ नहिं कबहूँ जुरहिं हजारन तारे ॥

हे प्यारे ! जैसे आपने किया है, इसका प्रत्युपकार हमसे नहीं हो सकता । क्योंकि चाहे हजारों तारे चमकें, परन्तु चन्द्रमा के समान नहीं हो सकते ।

जेहि जेहि योनि कर्म बस हमको जन्म विधाता देही ।
तहँ तहँ रसिकराय रघुनन्दन तुम्हीं मिलहु सनेही ॥

हमारे कर्मों के अनुसार विधाता हमें जिस-जिस योनि में भी जन्म दे, वहाँ—हे रसिकराय रघुनन्दन ! हमें आप ही स्नेही मिलें ।

वरु विधि कोटिन्ह करै यातना या तनु क्षण छूटै ।
हमरी तुम्हरी लगन लाड़िले कौनौ जनम न टूटै ॥

चाहे विधाता हमें अनेकों प्रकार के दुःख दे, या पल—में शरीर छूटे । परन्तु हे लाड़िले ! हमारा-आपका प्रेम कभी नहीं छूटे ।

सुनि बानी करुणारस सानी रघुवर अन्तर जानी ।
सनमान्यौ सब राजकुमारिन कहि कहि कोमल बानी ॥

अन्तर्यामी श्रीरामचन्द्रजी ने उनकी यह करुणा-रस से सनी हुई वाणी सुनकर कोमल वचन कह-कहकर सब राजकुमारियों का सम्मान किया ।

सब सों बिदा माँगि रघुनन्दन अनुज सहित पगु धारे ।
निकसे मानहुँ सिद्धि सदन ते चारु चन्द्र छबि वारे ॥

फिर सबसे विदा मांग कर श्रीरघुनाथजी भाइयों सहित चले, मानो सिद्धि के महल से कला-पूर्ण चार चन्द्रमा निकले हों ।

दोहा—बिदा सासु तें होय पुनि, आये सब जनवास ।
बढ़त छिनहि छिन जनकपुर, आनन्द परम हुलास ॥

फिर सासु से विदा होकर सभी राजकुमार जनवासे आये । जनकपुर में प्रति क्षण आनन्दोल्हास बढ़ता है ।

* इति क्षेपक *

नित नूतन मङ्गल पुर माहीं * निमिषसरिसदिन जामिनि जाहीं
बड़े भोर भूपति मनि जागे * जाचक गुन गन गावन लागे

जनकपुर में नित्य-नये मंगल होते थे, एक पल के समान दिन-रात बीत जाते थे । प्रातःकाल ही राजमुकुट-मणि राजा दशरथजी जागे, याचक राजा की गुणावली गाने लगे ।

देखि कुअँरि बर बधुन्ह समेता * किमि कहि जात मोद मन जेता
प्राति क्रिया करि गए गुर पाहीं * महाप्रमोद प्रेम मन माहीं

चारों पुत्रों को बहुओं समेत देखकर महाराज दशरथकी के मन में जो आनन्द हुआ, वह कैसे कहा जा सकता ? वे प्रातः क्रिया करके गुरु के पास गये, उस समय मन में उनके बड़ा आनन्द और प्रेम था ।

करि प्रनामु पूजा कर जोरी * बोले गिरा अमिअँ जनु बोरी
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा * भयउँ आजु मैं पूरन काजा

हाथ जोड़कर प्रणाम कर और पूजा करके मानो अमृत से भरी हुई बाणी बोले—हे मुनिराज ! सुनिये, आपकी कृपा से मैं आज पूर्ण काम हो गया ।

अब सब विप्र बोलाइ गोसाँई * देहु धेनु सब भाँति बनाई
सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई * पुनि पठये मुनिवृन्द बोलाई

हे गोसाईं ! अब सब ब्राह्मणों को बुलाकर सब भाँति से सजाकर गौयें दीजिये । यह सुनकर गुरु ने राजा की बड़ाई की, फिर सब मुनिगणों को बुला भेजा ।

दोहा—वामदेव अरु देवऋषि, बालमीकि जावालि ।
आये मुनिवर निकर तब, कोसिकादि तपसालि ॥३३०॥

तब वामदेव, नारद, बालमीकि, जाबालि और महा—तपस्वी विश्वामित्रजो आदि श्रेष्ठ मुनियों का समूह वहाँ आया ।

दण्ड प्रनाम सबहिं नृप कीन्हे * पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे

चारि लच्छ बर धेनु मंगाई * काम सुरभि सम सील सोहाई

राजा ने सबको दण्डवत्-प्रणाम किया और प्रेम सहित पूजा करके उत्तम आसनों पर बैठाया और चार लाख गौयें कामधेनु के समान सीधी तथा सुन्दर मंगाई।

सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं * मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू * लहेउँ आजु जग जीवन लाहू

सब प्रकार से गौओं को सजाकर प्रसन्नता से राजा ने ऋषियों को दान में दीं, फिर राजा ने बहुत भाँति से विनती करते हुए कहा कि आज हमने संसार के जीवन का लाभ पाया।

पाई असीसु महीसु अनन्दा * लिए बोलि पुनि जातक बृन्दा
कनक बसन मनि हय गय स्यन्दन * दिए बूझि रुचि रविकुलनन्दन

आशीर्वाद पाकर राजा प्रसन्न हुए, फिर याचकों को बुला लिया और सोना, वस्त्र, मणि घोड़े, हाथी, रथ आदि रुचि के अनुसार पूछकर सूर्यवंशी महाराज ने सबको दिये।

चले पढ़त गावत गुन गाथा * जय जय जय दिनकर कुलनाथा
एहि बिधि राम बिआह उछाहू * सकइ न बरनि सहस मुख जाहू

गुणानुवाद गाते हुए याचक लोग बोले-सूर्यवंशियों के स्वामी की जय हो, जय हो। इस भाँति श्रीरामजी के विवाह का उत्सव वे शेषजी भी नहीं कह सकते, जिनके हजार मुख हैं।

दोहा—बार बार कौसिक चरन, सीस नाइ कह राउ।
यह सब सुखु मुनिराज तब, कृपा कटाक्ष प्रभाउ ॥३३१॥

बारम्बार विश्वामित्रजी के चरणों में सिर नवाकर राजा दशरथजी बोले—हे मुनिराज! यह सब सुख आपके कृपा-कटाक्ष का ही प्रभाव है।

जनक सनेहु सीलु करतूती * नृप सब भाँति सराह बिभूती
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा * राखहिं जनकु सहित अनुरागा

जनकजी के स्नेहशील, करतूति और ऐश्वर्य की बड़ाई महाराज दशरथजी सभी प्रकार से करने लगे। अयोध्यापति दशरथजी नित्यप्रति उठकर विदा माँगते, परन्तु महाराज जनकजी प्रीति सहित रोक लेते।

नित नूतन आदरु अधिकाई * दिनप्रति सहस भाँति पहुँनाई
नित नव नगर अनन्द उछाहू * दसरथ गवनु सोहाइ न काहू

नित्य-नये ढंग से आदर बढ़ता था, प्रतिदिन हजारों प्रकार से पहुनाई होती थी। नगर में नित्य-नया आनन्दोत्साह होता है और दशरथजी का जाना किसी को नहीं सुहाता है।

बहुत दिवस बीते एहि भाँती * जनु सनेह रजु बँधे बराती
कौसिक सतानन्द तब जाई * कहा बिदेह नृपति समुझाई

इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये, मानो स्नेह की रस्सी में बराती बँध गये हैं। तब विश्वामित्रजी और शतानन्दजी ने जाकर महाराज जनकजी से समझाकर कहा—

अब दशरथ कहँ आयसु देहू * जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए * कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए

अब दशरथ को आज्ञा दीजिये, यद्यपि स्नेह नहीं छोड़ सकते। जनकजी ने कहा हे नाथ! बहुत अच्छा, यह कह मन्त्रियों को बुलाया। उन्होंने आकर 'जयजीव' कहकर सिर नवाया।

दोहा–अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेम बस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ ॥३३२॥

अवधपति दशरथजी जाना चाहते हैं, भीतर रनिवास में खबर करदो। जनकजी की यह बात सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभासद और स्वयं राजा स्नेह वश हो गये।

पुरवासी सुनि चलिहि बराता * बूझत बिकल परस्पर बाता
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने * मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने

जनकपुर-वासियों ने जब सुना कि बरात चली जायगी, तब बिकल होकर आपस में बात पूछने लगे। जाना निश्चय सुना, तब सब ऐसे दुखी हुए, मानो सन्ध्या होने से कमल मुरझा गये हों।

जहँ जहँ आवत बसे बराती * तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती
बिबिध भाँति मेवा पकवाना * भोजन साजु न जाय बखाना

जहाँ २ आते समय बराती ठहरे थे, वहाँ बहुत भाँति का सीधा भेजा गया। अनेकों भाँति की मेवा, पकवान और भोजन का सामान जो वर्णन नहीं किया जा सकता।

भरि भरि बसहँ अपार कहारा * पठईं जनक अनेक सुआरा
तुरग लाख रथ सहस पचीसा * सकल सँवारे नख अरु सीसा

बहुत से बैल लादकर उनमें अपार सामग्री और अनेकों पलङ्ग जनकजी ने भेज दिये। फिर एक लाख घोड़े, पच्चीस हजार रथ नख-शिख से सजाकर तैयार किये।

मत्त सहस दस सिंधुर साजे * जिन्हहि देखि दिसि कुंजर लाजे
कनक बसन मनि भरि भरि जाना * महषीं धेनु वस्तु बिधि नाना

दस हजार मतवाले हाथी सजाये, जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लजा गये। सोना, वस्त्र और मणियों को छकड़ों में भर २ कर तथा भैंसे, गायें व अनेक प्रकार की वस्तुयें भेजीं।

दोहा–दाइज अमित न सकित कहि, दीन्ह बिदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोक सम्पदा थोरि ॥३३३॥

अपरमित दहेज जनकजी ने दिया, जिसका वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर लोकपालों के लोक की सम्पदा भी थोड़ी जँचने लगी।

सबु समाजु एहि भाँति बनाई * जनक अवधपुर दीन्ह पठाई
चलिहि बरात सुनत सब रानीं * बिकल मीनगन जनु लघु पानीं

राजा जनकजी ने दहेज की सामग्री इस प्रकार सजाकर अयोध्या भेज दी। बरात का

विदा होना सुनकर रानियाँ ऐसो व्याकुल हुई, जैसे मछलियाँ थोड़े पानी में विकल हो जाती हैं।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं * देइ असीस सिखावनु देहीं
होएहु सन्तत पियहि पियारी * चिरु अहिवात असीस हमारी

वे बारम्बार सीता को गोद में बैठाकर आशीष देकर शिक्षा देने लगीं—सदैव अपने पति को प्यारी होओ, तुम्हारा सुहाग अचल रहे, यही हमारी आशीष है।

सासु ससुर गुर सेवा करेहू * पतिरुख लखि आयसु अनुसरेहू
अति सनेह बस सखीं सयानी * नारिधरम सिखावहिं मृदुबानी

सास, ससुर और बड़ों की सेवा करना, पति का रुख देखकर उनकी आज्ञा मानकर कार्य करना। अत्यन्त स्नेह के वश चतुर सखियाँ मधुर वाणी से स्त्री धर्म सिखा रही हैं।

सादर सकल कुअँरि समुझाई * रानिन्ह बार बार उर लाई
बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारी * कहहि विरंचि रची कत नारी

आदर के साथ सब पुत्रियों को समझाकर रानियों ने बारम्बार हृदय से लगाया। फिरकर मातायें भेंटने और कहने लगीं कि ब्रह्मा ने स्त्री को क्यों बनाया?

दोहा—तेहि अवसर भाइन्ह सहित, राम भानुकुल केतु।
चले जनकमन्दिर मुदित, विदा करावन हेतु॥३३४॥

उसी समय भाइयों सहित श्रीरामचन्द्रजी-जनकजी के महल को प्रसन्नता पूर्वक बिदा कराने चले।

चारिउ भाइ सुभायँ सोहाए * नगर नारि नर देखन आए
कोउ कह चलन चहत हहिं आजू * कीन्ह विदेह विदा कर साजू

चारों भाइयों की स्वाभाविक सुन्दरता को नगर के स्त्री-पुरुष देखने को दौड़े। कोई कहने लगे कि आज ये जाना चाहते हैं, अतः राजा जनक ने विदा का सामान सजाया है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी * प्रिय पाहुने भूप सुत चारी
को जानै केहि सुकृत सयानी * नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी

नेत्र भरकर इनके रूप के दर्शन करलो, यह चारों राजकुमार प्रिय-पाहुने हैं। हे सयानी! कौन जानता है कि किस पुण्य के प्रभाव से ब्रह्मा ने इन्हें लाकर हमारे नेत्रों का अतिथि किया है?

मरनसीलु जिमि पाव पियूषा * सुरतरु लहै जनम कर भूखा
पाव नारकी हरिपदु जैसें * इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसें

मरने वाला जैसे अमृत पा जाय, जन्म का भूखा कल्पवृक्ष पा जाय, नरक वासी को मोक्ष मिल जाय, वैसे ही हमको इनके दर्शन थे।

निरखि राम सोभा उर धरहू * निजमनि फनि मूरति मन करहू
एहि विधि सबहि नयन फलु देता * गए कुअँर सब राज निकेता

श्रीरामचन्द्रजी की शोभा देखकर हृदय में धरलो, अपने मनरूपी सर्प में इनकी मूर्तिरूपी मणि को धारण करो। इस प्रकार सबके नेत्रों को फल देते सब राजकुमार राज-भवन में गये।

दोहा–रूप सिंधु सब बन्धु लखि, हरषि उठा रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सासु ॥३३५॥

रूप के समुद्र सब भाइयों को देखकर सारा रनिवास प्रसन्न होकर उठा। सासु मन में बहुत ही प्रसन्न हो न्यौछावर और आरती करने लगीं।

देखि राम छवि अति अनुरागी * प्रेम विवश पुनि पुनि पद लागी
रही न लाज प्रीति उर छाई * सहज सनेहु बरनि किमि जाई

वे श्रीरामजी की छवि देखकर बहुत प्रसन्न हुईं, मारे प्रेम के बारम्बार चरण छूने लगीं। लाज छूट गई, हृदय में प्रेम भर गया। उस स्वाभाविक प्रेम का वर्णन कैसे किया जाय?

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए * छरस असन अति हेतु जेवाए
बोले रामु सुअवसरु जानी * सील सनेह सकुचमय बानी

भाइयों सहित श्रीरामजी को उबटन लगाकर स्नान कराया। छहों रस संयुक्त भोजन अधिक स्नेह के साथ जिमाये श्रीरामजी सुअवसर जानकर शील, स्नेह और संकोच भरी वाणी बोले–

राउ अवधपुर चहत सिधाए * बिदा होन हम इहाँ पठाए
मातु मुदित मन आयसु देहू * बालक जानि करब नित नेहू

महाराज अयोध्यापुरी को जाना चाहते हैं, उन्होंने विदा होने के लिए हमको यहाँ भेजा है। हे माता! प्रसन्न मन से आज्ञा दो, बालक जानकर हम पर नित्य स्नेह करती रहना।

सुनत वचन बिलखेउ रनिवासू * बोलि न सकहि प्रेम बस सासू
हृदयँ लगाइ कुअँरि सब लीन्हीं * पतिन्ह सौंपि विनती अति कीन्हीं

यह वचन सुनते ही रनिवास उदास हो गया, सासु स्नेह वश बोल न सकीं। फिर सब पुत्रियों को हृदय से लगाया और पतियों को सौंपकर बहुत विनय की।

छन्द–करि विनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ विदित गति सबकी अहै॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसी सुसील सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥

रानी विनती कर, सीताजी को श्रीरामजी को समर्पण कर हाथ जोड़कर बारम्बार विनय करने लगीं, हे सुजान! मैं बलिहारी जाऊँ, आपको सबकी गति मालूम है। यह सीता सब कुटुम्बियों को नगर-वासियों को मुझको और राजा को प्राणों के समान प्रिय है, ऐसा जानना। हे तुलसी के स्वामी! इसका शील और स्नेह समझकर इसे अपनी दासी मानना।

सो०–तुम्ह परि पूरन काम, जानि सिरोमनि भाव प्रिय।

जन गुनगाहक राम, दोष दलन करुनायतन ॥३३६॥

तुम पूर्ण काम हो, ज्ञान शिरोमणि हो, स्नेह तुमको प्यारा है, सज्जनों के गुण ग्रहण करने वाले हो, दोषों को दूर करने वाले और दया के स्थान हो।

अस कहि रही चरन गहि रानी ※ प्रेम पंक जनु गिरा समानी
सुनि सनेह सानी बर बानी ※ बहु विधि राम सासु सनमानी

इस प्रकार कहकर रानी चरण पकड़ कर रह गई, उनकी वाणी मानो प्रेम की कीच में फँस गई। ऐसी स्नेह भरी मधुर वाणी सुनकर श्रीरघुनाथजी ने बहुत भाँति से सासु का सम्मान किया।

राम बिदा माँगत कर जोरी ※ कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई ※ भाइन्ह सहित चले रघुराई

श्रीरामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर विदा माँगी और बारम्बार प्रणाम किया, फिर आशीर्वाद पाकर सिर नवाकर श्रीरघुनाथजी भाइयों सहित चले।

मञ्जु मधुर मूरत उर आनी ※ भईं सनेह सिथिल सब रानी
पुनि धीरजधरिकुअँरि हँकारी ※ बार बार भेंटहिं महतारी

सुन्दर माधुरी मूर्ति को हृदय में धारण कर सब रानी स्नेह के मारे शिथिल हो गईं। फिर धीरज धरकर माताओं ने कुमारियों को बुलाया और बारम्बार भेंटने लगीं।

पहुँचावहिं फिर मिलहिं बहोरी ※ बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी
पुनिपुनिमिलत सखिन्ह बिलगाई ※ बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई

बारम्बार पहुँचाती और फिर मिलती हैं, इस प्रकार आपस में बहुत प्रेम बढ़ा। सखियों को अलग कर मातायें ऐसे मिल रही हैं जैसे हाल की ब्याही हुई गाय अपने बच्चे से मिलती है।

दोहा—प्रेम बिबस नर नारि सब, सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह विदेहपुर, करुना विरह निवासु ॥३३७॥

सखियों सहित सब स्त्री-पुरुष रनिवास में स्नेह के मारे ऐसे अधीर होगये, मानो जनकपुर में करुणा और विरह ने निवास कर लिया हो।

शुक सारिका जानकी ज्याए ※ कनक पींजरन्हि राखि पढ़ाए
व्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही ※ सुनि धीरजु परिहरइ न केही

जिन तोता-मैना को जानकीजी ने पाला और सोने के पिंजड़ों में रखकर पढ़ाया था। वे व्याकुल हो कहने लगे—जानकी कहाँ हैं? यह सुनकर कौन धीरज नहीं छोड़ देगा?

भए विकल खग मृग एहि भाँती ※ मनुज दसा कैसें कहि जाती
बन्धु समेत जनकु तब आए ※ प्रेम उमँगि लोचन जल छाए

इस प्रकार जब पक्षी और पशु बेचैन होगये, तब मनुष्यों की दशा कैसे कही जा सकती है? उसी समय भाई सहित जनकजी आये तो स्नेह से उमड़कर नेत्रों में जल भर आया।

सीय बिलोकि धीरता भागी * रहे कहावत परम बिरागी।
लीन्ह रायँ उर लाइ जानकी * मिटी महा मरजाद ग्यान की

जो बड़े विरक्त कहलाते थे, सीताजी को देखकर उनका धीरज छूट गया। राजा ने जानकीजी को हृदय से लगा लिया, ज्ञान की बड़ी मर्यादा मिट गई।

समुझावत सब सचिब सयाने * कीन्ह बिचारु न अवसरु जाने
बारहिं बार सुता उर लाई * सजि सुन्दर पालकी मँगाई

सब चतुर मन्त्री राजा को समझाने लगे। अधिक प्रीति का समय न जानकर विचार किया। बारम्बार हृदय से पुत्रियों को लगाया, फिर सुन्दर पालकी सजवाकर मँगाई।

दोहा—प्रेम बिबस परिवारु सबु, जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्धि गनेस ॥३३८॥

सब परिवार को प्रेम में विकल देखकर और शुभ-लग्न जानकर तथा सिद्धि के दाता गणेशजी का स्मरण करके राजा ने राजकुमारियों को पालकी में बैठाया।

बहु बिधि भूप सुता समुझाई * नारि धरमु कुलरीति सिखाई
दासी दास दिए बहुतेरे * सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे

राजा ने बहुत भाँति से पुत्रियों को समझाया और स्त्री-धर्म तथा कुल रीति की शिक्षा दी। फिर बहुत से दास दासी जो सीताजी के प्रिय और विश्वास-पात्र सेवक थे, वे दिये।

सीय चलत ब्याकुल पुरबासी * होहिं सगुन सुभ मङ्गल रासी
भूसुर सचिव समेत समाजा * संग चले पहुँचावन राजा

सीताजी के चलते समय जनकपुरवासी बेचैन होगये, और शुभ-मङ्गलदायक शगुन होने लगे। राजा जनक-ब्राह्मण, मन्त्री और समाज सहित पहुँचाने चले।

समय बिलोकि बाजने बाजे * रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे * दान मान परिपूरन कीन्हे

समय देखकर बाजे बजने लगे और बरातियों ने रथ, हाथी, घोड़े सजाये। महाराज दशरथजी ने सब ब्राह्मण बुला लिये और दान-मान से उनको सन्तुष्ट कर दिया।

चरन सरोज धूरि धरि सीसा * मुदित महीपति पाइ असीसा
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना * मंगल मूल सगुन भए नाना

उनके चरण-कमलों की रज को मस्तक पर चढ़ाकर और आशीर्वाद पाकर राजा प्रसन्न हुए। गणेशजी का स्मरण करके प्रस्थान किया, उस समय अनेक मङ्गलदायक शकुन हुए।

दोहा—सुर प्रसून बरषहिं हरषि, करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाइ निसान ॥३३९॥

देवता प्रसन्न होकर पुष्प बरसाने लगे, अप्सरा गान करने लगीं, तब अवधपति दशरथ जी प्रसन्नता पूर्वक निशान बजाकर अयोध्या को चले।

नृप करि विनय महाजन फेरे * सादर सकल माँगने टेरे
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे * प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे

राजा ने विनती करके महाजनों को लौटा दिया, फिर आदर से सब याचकों को बुलाया और सबको गहने, वस्त्र, घोड़े, हाथी देकर प्रेम से सन्तुष्ट किया।

बार बार बिरदावलि भाषी * फिरे सकल रामहिं उर राखी
बहुरि बहुरि कौसलपति कहहीं * जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं

उन लोगों ने बारम्बार वंश की बड़ाई बखान की और श्रीरामजी को हृदय में रखकर लौटे। राजा दशरथजी ने जनकजी से बार-बार लौटने को कहा, परन्तु वे प्रेम के वश हो लौटना नहीं चाहते।

पुनि कह भूपति बचन सोहाए * फिरिअ महीस दूरि बढ़ि आए
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े * प्रेम प्रवाह बिलोचन बाढ़े

फिर राजा दशरथ ने बहुत ही सुहावने वचन कहे—हे राजन्! अब आप लौट जाइये, बहुत दूर आगये। फिर राजा दशरथजी रथ से उतरकर खड़े होगये और मारे प्रेम के नेत्रों से जल की धारा बहने लगी।

तब बिदेह बोले कर जोरी * बचन सनेह सुधाँ जनु बोरी
करौं कवन बिधि बिनय बनाई * महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई

तब जनकजी हाथ जोड़कर मानो स्नेह-रूपी अमृत से भरे हुए वचन बोले—हे महाराज! मैं किस प्रकार से आपकी विनती करूँ? आपने ही मुझे बड़ाई दी है।

दोहा—कोसलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलनि परस्पर बिनय अति, प्रीति न हृदयँ समाति ॥३४०॥

महाराज दशरथ ने समधी का सब प्रकार से आदर किया। आपस में मिलते समय जो अत्यन्त विनय और प्रीति थी, हृदय में नहीं समाती।

मुनिमण्डलिहि जनक सिरु नावा * आसिरबादु सबहि सन पावा
सादर पुनि भेंटे जामाता * रूप सील गुन निधि सब भ्राता

मुनियों की मण्डली को जनकजी ने सिर नवाया और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर आदर सहित दामादों से मिले, जो रूप, शील और गुणों के निधान सब भाई हैं।

जोरि पङ्करुह पानि सोहाए * बोले बचन प्रेम जनु जाए
राम करौं केहि भाँति प्रशंसा * मुनि महेस मन मानस हंसा

कमल के समान हाथ जोड़कर मानो प्रेम से उत्पन्न हुए वचन बोले—हे राम! किस-प्रकार से मैं आपकी प्रशंसा करूँ? क्योंकि आप मुनियों और महादेवजी के मनरूपी मान-सरोवर के हंस हैं।

करहिं जोग जोगी जेहि लागी * कोहु मोहु ममता मदु त्यागी
ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी * चिदानन्दु निरगुन गुन रासी

जिसके लिए योगीश्वर क्रोध, मोह, ममता और अभिमान छोड़कर योग करते हैं। जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अलख, अविनाशी, सच्चिदानन्द, निर्गुण और गुणों की राशि हैं।

मन समेत जेहि जान न बानी * तरकि न सकहिं सकल अनुमानी
महिमा निगमु नेति कहि कहई * जो तिहुँ काल एक रस रहई

मन सहित वाणी जिसको जान नहीं सकती, सब अनुमान से ही जिसको नचाते हैं कोई तर्क नहीं कर सकते, जिनकी महिमा को वेद 'नेति' कहते हैं और जो तीनों कालों में एक रस रहते हैं।

दोहा—नयन विषय जा कहँ भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ, भएँ ईस अनुकूल ॥३४१॥

वही सब सुखों के मूल आप मेरे नेत्रों के आगे प्रत्यक्ष हुए, ईश्वर अनुकूल होने से जगत् में जीवों को सभी लाभ सुलभ हैं।

सबहि भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई * निज जनि जानि लीन्ह अपनाई
होंहि सहस दस सादर सेषा * करहिं कलप भरि कोटिक लेखा

आपने मुझे सब प्रकार से बड़ाई दी और अपना दास जानकर अपना लिया। जो दस हजार सरस्वती और शेषजी मिलकर करोड़ो कल्पों तक लेखा करें।

मोर भाग्य राउर गुन गाथा * कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें * तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें

तो भी हे रघुनाथजी ! सुनो मेरे भाग्य व आपके गुणों की कथा को कहकर अंत नहीं पा सकते। मैं जो कुछ कहता हूँ, सो इसी बल पर कि आप थोड़े से ही निष्कपट स्नेह से प्रसन्न हो जाते हैं।

बार बार माँगउँ कर जोरें * मनु परिहरें चरन जनि भोरें
सुनि वर वचन प्रेम जनु पोषे * पूरन काम रामु परितोषे

बारम्बार हाथ जोड़कर मैं यही मांगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणोंको न छोड़े। इस प्रकार जनकजी के मानो स्नेह से पुष्ट किये हुए श्रेष्ठ वचन सुनकर श्रीरामजी संतुष्ट हुए।

करि वरविनय ससुर सनमाने * पितु कौशिक वशिष्ठ सम जाने
विनती बहुरि भरत सन कीन्ही * मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही

उन्होंने ससुर जनकजी को पिता, विश्वामित्रजी व वशिष्ठजी के समान जानकर विनती करके सम्मान किया, फिर राजा ने भरतजी की विनती की और स्नेह के साथ मिलकर आशीर्वाद दिया।

दोहा—मिले लखन रिपुसूदनहिं, दीन्हि असीष महीस।
मिले परस्पर प्रेम बस, फिर फिर नावहिं सीस ॥३४२॥

फिर राजा ने लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी से मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया। वे आपस में ऐसे प्रेम के वश हुए कि बारम्बार प्रणाम करने लगे।

बार बार करि विनय बड़ाई * रघुपति चले संग सब भाई

जनक गहे कौसिक पद जाई * चरन रेनु सिर नयनन्ह लाई

श्रीरामजी बारम्बार बिनती और बड़ाई करके सब भाइयों को लेकर चले, फिर जनकजी ने जाकर विश्वामित्रजी के चरण पकड़े और चरण-रज को सिर और नेत्रों से लगाकर बोले-

सुनु मुनीस वर दरसनु तोरे * अगमु न कछु प्रतीत मन मोरे

जो सुखु सुजसु लोकपति कहहीं * करत मनोरथ सकुचत अहहीं

हे मुनिश्वर ! सुनिये,आपके सुन्दर दर्शन से मुझे कुछभी दुर्लभ नहीं हैं, मेरे मन में यह विश्वास है। जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं । और जिनका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं।

जो सुखसुजससुलभमोहिस्वामी * सब सिधि तव दरसन अनुगामी

कीन्ह विनयपुनिपुनि सिरनाई * फिरे महीसु आसिषा पाई

हे स्वामी ! वही सुख और सुयश मुझे सुलभ होगया, क्योंकि सब सिद्धियाँ अपने दर्शन के पीछे चलने वाली हैं । जैसे बिनती कर बारम्बार प्रणामकर, आशीर्वाद पाकर राजा जनकजी लौटे ।

चली बरात निसान बजाई * मुदित छोट बड़ सबु समुदाई

रामहि निरख ग्राम नरनारी * पाय नयन फल होहिं सुखारी

निशान बजाकर बरात चली, छोटे-बड़े सभी प्रसन्न हुए । मार्ग में गाँवों के नर-नारी श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन पाकर सुखी होने लगे ।

दोहा—बीच बीच वर बास करि, मग लोगन्ह सुख देत ।

अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ।।३४३।।

बीच-बीच में अच्छे मुकामों पर बरात ठहरती हुई और मार्ग के लोगों को सुख देती हुई अयोध्यापुरी के निकट शुभ दिन आ पहुँची ।

हने निसान पवन वर बाजे * भेरि शंख धुनि हय गय गाजे

झाँझि विरव डिमडिमी सुहाई * सरस राग बाजहिं सहनाई

नगाड़ों पर चोटें पड़ने लगीं, सुन्दर ढोल बजने लगे, तुरही बजने और शंख-ध्वनि होने लगी, घोड़े-हाथी गरजने लगे । झांझ, मृदङ्ग और सुहावनी डुगडुगी तथा रसीले राग में शहनाई बजने लगी ।

पुरजन आवति अकनि बराता * मुदित सकल पुलकावलि गाता

निज निज सुन्दर सदन सँवारे * हाट बाट चौहट पुर द्वारे

अवधपुरवासी-बरात आई जानकर प्रसन्न होगये, सबके शरीर में रोमांच हो आया । वे अपने-अपने घर, बाजार, सड़कें, चौराहे और फाटकों को सुन्दर रीति से सजाने लगे ।

गली सकल अरगजा सिंचाई * जहँ तहँ चौकें चारु पुराई

बना बजारु न जाइ बखाना * तोरन केतु पताक बिताना

सब गलियों में गुलाब-जलका छिड़काव हुआ, जहाँ-तहाँ चौक पुराये गये । बाजार ऐसा बना जो कहा नहीं जा सकता । वन्दनवार झण्डे, झण्डियों तथा चंदोवे आदि लगाये गये ।

सफल पूगफल कदलि रसाला * रोपे बकुल कदम्ब तमाला
लगे सुभग तरु परसत धरनी * मनिमय आलबाल कल करनी

सुपारी, केला, आम, मौलश्री, कदम्ब और तमाल के वृक्ष फल सहित रोपे। वृक्ष ऐसे लगाये गये कि फलों के बोझ से पृथ्वी को छूने लगे, उनके मणियों के थामे कारीगरी के साथ बनाये गये थे।

दोहा—बिबिध भाँति मङ्गल कलस, गृह गृह रचे सँभारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुबर पुरी निहारि ॥३४४॥

नाना प्रकार के मंगल-कलश सजा कर घर-घर रक्खे गये। ब्रह्मादिक सब देवता—श्रीरघुनाथजी की पुरी देखकर प्रसन्न होने लगे।

भूप भवन तेहि अवसर सोहा * रचना देखि मदन मन मोहा
मङ्गल सगुन मनोहरताई * रिधसिधि सुख सम्पदा सुहाई

उस समय राज-भवन ऐसा शोभायमान था कि उसकी रचना देखकर कामदेव का मन मोहित हो गया। मंगल-सकुन, मनोहरता, ऋद्धि-सिद्धि, सुख सम्पदा-ये सब विराजमान थे।

जनु उछाहु सब सहज सुहाए * तनु धरि धरि दसरथ गृहँ आए
देखन हेतु राम बैदेही * कहहु लालसा होहि न केही

मानो यह सब उत्साह सहित स्वभाव से ही सुन्दर शरीर धर-धरकर राजा दशरथ के घर आये हों। श्रीरामजी और सीताजी को देखने के लिए कहिये किसकी लालसा नहीं होती?

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि * निजछबि निदरहिं मदन बिलासिनि
सकल सुमंगल सजें आरती * गावहिं जनु बहु बेष भारती

झुण्ड के झुण्ड मिलकर सुहागिन स्त्रियाँ ऐसे चलीं, मानो अपनी छबि से रति का निरादर कर रही हों। सब सुमङ्गलों से आरती सजाकर गा रही हैं, मानो सरस्वती बहुत से रूप धारण किये गा रही हों।

भूपति भवन कोलाहल होई * जाइ न बरनि समय सुख सोई
कौशल्यादि राम महतारी * प्रेम बिबस तनु दसा बिसारी

राज-महल में शोर मच रहा है, उस समय का सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। कौशल्यादि श्रीरामचन्द्रजी की माताओं ने प्रेम के कारण देह की सुधि बिसार दी।

दोहा—दिए दान बिप्रन्ह बिपुल, पूजि गनेश पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि ॥३४५॥

फिर गणेशजी और शिवजी का पूजन कर, ब्राह्मणों को बहुत दान दिये। वे सभी प्रसन्न हुए, मानो महादरिद्री चारों पदार्थ पा गये हों।

मोद प्रमोद बिबस सब माता * चलहिं न चरन सिथिल भए गाता
राम दरस हित अति अनुरागी * परिछिन साजु सजन सब लागी

प्रेम और आनन्द के वश सब मातायें बेसुध होगईं, आगे पाँव नहीं पड़ते, सब अंग शिथिल हो गये। श्रीरामजी के दर्शन के लिए बड़ी आतुर होकर परिछन का साज सजाने लगीं।

विविध विधान बाजने बाजे * मंगल मुदित सुमित्रा साजे
हरद दूध दधि पल्लव फूला * पान पूगफल मङ्गल मूला

अनेक बाजे बजने लगे, सुमित्राजी ने प्रसन्न होकर मङ्गल-साज सजाये। हल्दी, दूध, दही, आम के पत्ते, फूल, पान, सुपारी आदि मङ्गल वस्तुयें तथा—

अच्छत अँकुर लोचन लाजा * मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा
छुहे पुरट घट सहज सुहाए * मदन सकुन जनु नीड़ बनाए

चावल, अंकुर, गोरोचन, खील, मंजरी सहित तुलसी आदि मांगलिक वस्तुयें सजाईं, रंगे हुए सहज ही सुन्दर सोने के कलश ऐसे लगते, मानो कामदेव ने पक्षियों के घोंसले बनाये हैं।

सगुन सुगन्ध न जाहि बखानी * मंगल सकल सजहिं सब रानी
रची आरती बहुत बिधाना * मुदित करहिं कल मंगल नाना

सगुन के सुगंधित पदार्थों का वर्णन नहीं किया जा सकता, सब रानियाँ सब मंगल वस्तुओं को सजा रही हैं। बहुत प्रकार से सजाकर प्रसन्न मन हो सुन्दर मंगल गान करने लगीं।

दोहा—कनक थार भरि मंगलन्हि, कमल करन्हि लिएँ मात।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक पल्लवित गात ॥३४६॥

सोने के थालों में अनेक मंगल पदार्थ भरकर हाथों में लिए हुए सब माता प्रसन्नता-पूर्वक पुलकित होने के कारण प्रफुल्लित शरीर होकर श्रीरामजी का परिछन करने लगीं।

धूप धूम नभु मेचक भयऊ * सावन घन घमण्डु जनु ठहऊ
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं * मनहुँ बाल अवलि मनु करषहिं

अगर के धुएँ से आकाश ऐसा श्याम वर्ण होगया, मानो सावन के घने बादल छागये हों। देवता कल्पवृक्ष के पुष्पों की मालायें बरसाने लगे, मानो बगुलों की पंक्ति मन को खींच रही हों।

मंजुल मनिमय बन्दनिवारे * मनहुँ पाक रिपु चाप सँवारे
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि * चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि

सुन्दर मणियों से जड़ी हुई बन्दनवार ऐसी सुशोभित हुईं, मानो इन्द्र-धनुष ही हों। अटारियों पर चढ़ी चतुर और चंचल स्त्रियाँ-कभी प्रकट होतीं और कभी छिपती हुई ऐसी जान पड़ती थीं मानो बिजलियाँ चमक रही हों।

दुन्दुभि धुनि घन गरजनि घोरा * जाचक चातक दादुर मोरा
सुर सुगन्ध सुचि बरषहिं बारी * सुखी सकल कृषि पुर नर नारी

नगाड़ों की ध्वनि मानो बादलों की गर्जना है। याचकगण-पपीहा, मेंढक और मोर हैं। देवता आकाश से स्वच्छ, सुगन्धित जल बरसा रहे हैं। सब स्त्री-पुरुष सुखी हो रहे हैं।

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा * पुर प्रवेसु रघुकुलमनि कीन्हा
सुमरि सम्भु गिरिजा गनराजा * मुदित महीपति सहित समाजा

समय जानकर गुरु वशिष्ठ ने आज्ञा दी, तब महाराज दशरथजी ने शिव-पार्वती व गणेश का स्मरण कर प्रसन्नता पूर्वक समाज सहित नगर में प्रवेश किया।

दोहा—होंहिं सगुन बरषहिं सुमन, सुर दुन्दुभी बजाइ।
बिबिध बधू नाचहिं मुदित, मञ्जुल मङ्गल गाइ ॥३४७॥

शकुन होने लगे, देवता दुन्दुभी बजाकर पुष्प वर्षा करने लगे। देवाङ्गनायें प्रसन्नता से सुन्दर मङ्गल-गीत गाकर नाचने लगीं।

मागध सूत बन्दि नटनागर * गावहिं जसु तिहुँलोक उजागर
जय धुनि विमल वेद वर बानी * दस दिसि सुनिअ सुमङ्गल सानी

भाट, सूत, मागध, चतुर नट-तीनों लोकों में प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी का यश गाने लगे। सुन्दर मंगल से युक्त निर्मल जय-ध्वनि वेद की श्रेष्ठ वाणी दसों दिशाओं में सुनाई देने लगी।

विपुल बाजने बाजन लागे * नभ सुर नगर लोग अनुरागे
बने बराती बरनि न जाहीं * महा मुदित मन सुख न समाहीं

बहुत से बाजे बजने लगे, आकाश में देवता, नगर में लोग प्रेम में मग्न होगये। बराती सब ऐसे सजे कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। बहुत ही प्रसन्न थे मन में सुख नहीं समाता था।

पुरबासिन्ह तब राय जोहारे * देखत रामहिं भए सुखारे
करहिं निछावरि मनिगन चीरा * बारि बिलोचन पुलक शरीरा

अयोध्या-वासियों ने दशरथजी को नमस्कार किया और श्रीरामजी का दर्शन करके सुखी हुए। मणियां और वस्त्र न्यौछावर कर रहे हैं, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे हैं और तन पुलकित हैं।

आरति करहि मुदित नरनारी * हरषहिं निरखि कुँवर बरचारी
सिविका सुभग ओहार अघारी * देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी

नगर की स्त्रियां प्रसन्न हो आरती करने और सुन्दर कुमारों को देखकर आनन्द में मग्न होने लगीं। पालकी के सुन्दर परदे खोलकर चारों दुल्हिनों को देखकर सुखी होने लगीं।

दोहा—एहि विधि सबही देत सुख, आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार ॥३४८॥

इस प्रकार सबको सुख देते हुए राज-द्वार पर आये। मातायें प्रसन्न होकर दुल्हिनों समेत कुमारों को परिछन करने लगीं।

करहिं आरती बारहिं बारा * प्रेम प्रमोद कहै को पारा
भूषन मणि पट नाना जाती * करहिं निछावरि अगनित भाँती

बारम्बार आरती करने लगीं, उस समय के प्रेम और आनन्द को कौन कह सकता है। आरती करके अनेक प्रकार के गहने, मणि, वस्त्र न्यौछावर करने लगीं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।

बधुन्ह समेत देखि सुत चारी * परमानन्द मगन महतारी

पुनि पुनि सिय राम छबि देखी * मुदित सफल जग जीवन लेखी

बहुओं समेत चारों पुत्रों को देखकर मातायें परम आनन्द में मग्न हो गईं। बारम्बार श्रीरामजी तथा सीताजी की छवि को देख जगत में सब अपना जीवन सफल गिनने लगीं।

सखी सिय मुख पुनि पुनि चाहीं * गान करहिं निज सुकृत सराहीं
वरषहिं सुमन छनहि छन देवा * नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा

सखियाँ-सीताजी के मुख को बारम्बार देखकर अपने पुण्यों की सराहना कर गीत गाने लगीं। देवता क्षण २ में फूल बरसाने, नाचने-गाने तथा सेवा जताने लगे।

देखि मनोहर चारिउ जोरी * सारद उपमा सकल ढँढोरी
देत न बनहिं निपट लघु लागी * एकटक रही रूप अनुरागी

चारों मनोहर जोड़ियों को देख सब उपमा ढूँढ़ डाली किन्तु कोई उपमा देते नहीं बनीं और सब छोटी जान पड़ी, तब अनुरक्त सरस्वती टकटकी लगाये देखती ही रह गईं।

दोहा—निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लिवाइ निकेत ॥३४९॥

वेद की विधि और कुल की रीति करके अर्घ्य-पावड़े देती हुई बधुओं सहित सब पुत्रों को मातायें महल में लिवाकर ले गईं।

चारि सिंहासन सहज सोहाए * जनु मनोज नित हाथ बनाए
तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे * सादर पायँ पुनीत पखारे

चार सिंहासन स्वाभाविक ही सुहावने मानो कामदेव ने अपने हाथों से बनाये थे, उन पर राजकुमारियों सहित कुँवरों को बैठाया और आदर सहित पवित्र चरण धोये।

धूप दीप नैवेद्य वेद विधि * पूजे वर दुलहिन मङ्गलनिधि
बारहिं बार आरती करहीं * ब्यञ्जन चारु चमर सिर ढरहीं

फिर वेद के अनुसार धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा मंगलों की खान वर-दुल्हिनों की पूजा की और बारम्बार आरती करने लगीं। सिर पर सुन्दर पंखे और चँवर ढुर रहे हैं।

वस्तु अनेक निछावरि होहीं * भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं
पावा परम तत्व जनु जोगी * अमृत लहेउ जनु सन्तत रोगी

अनेक वस्तुयें न्यौछावर हो रही हैं, सब मातायें आनन्द में भरी हुई ऐसी शोभायमान हुईं, मानो योगी ने परम तत्व पाया हो, सदा के रोगी को मानो अमृत मिल गया हो।

जनम रङ्क जनु पारस पावा * अन्धहि लोचन लाभु सुहावा
मूक बदन जनु सारद छाई * मानहुँ समर सूर जय पाई

जन्म के कंगाल ने मानो पारस पाया हो, अन्धे को मानो आँखें मिल गई हों, गूंगे के मुख में जैसे सरस्वतीजी आ विराजी हों और मानो युद्ध में शूरवीर ने विजय पाई हो।

दोहा–एहि सुखते सत कोटि गुन, पावहिं मातु अनन्दु ।
भाइन्ह सहित बिआहि घर, आए रघुकुल चन्दु ।३५०क।

इन सुखों से भी करोड़ गुना आनन्द माताओं को प्राप्त हुआ, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी भाइयों सहित व्याह कर घर आये हैं ।

लोकरीति जननी करहिं, बर दुलहिन सकुचाहिं ।
मोदु बिनोद बिलोकि बड़, रामु मनहिं मुसुकाहिं ।३५०ख।

मातायें लोक-रीति कर रही हैं और वर दुलहिनें सकुचाते हैं । विनोद और आनन्द को देखकर श्रीरामचन्द्रजी मन ही मन मुस्कराने लगे ।

देव पितर पूजे विधि नीकी * पूजी सकल बासना जी की
सबहि बन्दि माँगहिं बरदाना * भाइन्ह सहित राम कल्याना

अच्छी विधि से देवताओं और पितरों की पूजा की, मन की सब इच्छा पूरी हुई । सब वन्दना कर मातायें यही वर माँगने लगीं कि भाइयों सहित श्रीरामजी का कल्याण हो ।

अन्तरहित सुर आसिष देहीं * मुदित मातु अंचल भरि लेहीं
भूपति बोलि बराती लीन्हे * जान बसन मनि भूषन दीन्हे

अंतरिक्ष में छिपे हुए देवता आशीर्वाद देते और मातायें अंचल फैलाकर प्रसन्नता पूर्वक लेती हैं । राजा दशरथ ने बरातियों को बुलाया और सवारी, वस्त्र, रत्न, आभूषण दिये ।

आयसु पाइ राखि उर रामहि * मुदित गए सब निज निज धामहि
पुर नर नारि सकल पहिराए * घर घर बाजन लगे बधाए

राजा की आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में रख सब बराती प्रसन्न होकर अपने अपने घर को गये । फिर नगर के सब स्त्री-पुरुषों को राजा ने पहिरावनी की । घर-घर में आनन्द बधाई बजने लगी ।

जाचक जन जाचहिं जोइ जोई * प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई
सेवक सकल बजनिआ नाना * पूरन किए दान सनमाना

याचक लोग जो कुछ माँगते राजा प्रसन्न होकर वही देते । सब नौकरों और बाजे वालों को दान सम्मान से सन्तुष्ट किया ।

दोहा–देहिं असीस जोहारि सब, गावहिं गुन गन गाथ ।
तब गुर भूसुर सहित गृहँ, गवन कीन्ह रघुनाथ ।।३५१।।

वे सब राजा को जुहार कर आशीर्वाद देने और गुणगान करने लगे । तब राजा-गुरु और ब्राह्मणों सहित महल में गये ।

जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्हा * लोक वेद विधि सादर कीन्हा
भूसुर भीर देखि सब रानी * सादर उठीं भाग्य बड़ जानी

वशिष्ठजी ने आज्ञा दी उसी के अनुसार लोक और वेद की विधि को आदर सहित राजा

ने किया। ब्राह्मणों की भीड़ देख सब रानियाँ अपने अहोभाग्य जानकर आदर के साथ उठीं।

पाँय पखार सकल अन्हवाए * पूजि भली विधि भूप जेवाए
आदर दान प्रेम परितोषे * देत असीष चले मन तोषे

चरण धोकर सबको स्नान कराया और भली प्रकार पूजाकर राजाने उनको जिमाया। आदर दान और प्रेम से सन्तुष्ट किया, वे सब आशीर्वाद देते हुए चले गये।

बहुबिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा * नाथ मोहि सम धन्य न दूजा
कीन्ह प्रसंसा भूपति भूरी * रानिन्ह सहित लीन्ह पग धूरी

फिर महाराज ने विश्वामित्रजी की पूजा की और बोले—हे नाथ ! मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। राजा ने उनकी बहुत बड़ाई की और रानियों सहित उनकी चरण रज ली।

भीतर भवन दीन्ह बर बासू * मन जोगवत रह नृप रनिवासू
पूजे गुरु पद कमल बहोरी * कीन्ह विनय उर प्रीति न थोरी

महल के भीतर ही रहने का सुन्दर स्थान दिया, जिससे राजा व रनिवास मुनि का मन परखते रहें फिर गुरु वशिष्ठजी के चरणों का पूजन और विनती की, उस समय राजा के हृदय में प्रीति थोड़ी नहीं थी।

दोहा—बधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीसु।
पुनिपुनि बन्दत गुरुचरन, देत असीष मुनीसु ॥३५२॥

बहुओं सहित सब राजकुमारों ने और रानियों सहित राजा ने गुरु के चरणों में बार-म्बार प्रणाम किया और मुनीश्वर ने आशीर्वाद दिया।

विनय कीन्हि उरअतिअनुरागें * सुख सम्पदा राखि सब आगें
नेगु माँगि मुनि नायक लीन्हा * आसिरवाद बहुत बिधि दीन्हा

राजा ने पुत्र और सब सम्पदा आगे रखकर बड़े प्रेम के साथ हृदय से विनय की, तब मुनीश्वर ने अपना नेग माँग लिया और बहुत विधि से आशीर्वाद दिया।

उर धरि रामहि सीय समेता * हरषि कीन्ह गुरु गवनु निकेता
विप्र बधू सब भूप बोलाईं * चैल चारु भूषन पहिराईं

सीताजी सहित श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में धारण कर गुरु वशिष्ठजी प्रसन्न होकर अपने स्थान को चले गये। फिर राजा ने ब्राह्मण स्त्रियों को बुलाकर सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनाये।

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं * रुचि बिचारि पहिरावन दीन्हीं
नेगी नेग जोग सब लेहीं * रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं

फिर सुहागिन स्त्रियों को बुला लिया और उनकी रुचि के अनुसार पहिरावनी दी, नेगियों ने सब नेग-जोग लिए, महाराज ने सबको उनकी रुचि के अनुसार नेग दिया।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने * भूपति भली भाँति सनमाने
देव देखि रघुबीर बिबाहू * बरषि प्रसन प्रसंसि उछाहू

जो प्रिय अतिथि पूज्यनीय थे, उनका राजा ने भली-भाँति सम्मान किया। देवता-श्रीरामचन्द्रजी का विवाह देख फूलों की वर्षा करके उत्सव की बढ़ाई करते।

दोहा—चले निसान बजाई सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परस्पर रामु जस, प्रेम न हृदयँ समाइ ॥३५३॥

नगाड़े बजाकर और सुख पाकर देवता अपने-अपने लोकों को चले गये। वे आपस में श्रीरामचन्द्रजी का यश गाते थे, आनन्द हृदय में नहीं समाता था।

सब विधि सबहिं समदि नरनाहू * रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे * सहित बधूटिन्ह कुअँरि निहारे

महाराज दशरथजी ने सबका सब भाँति से सम्मान किया, उनके हृदय में बहुत उत्साह भर गया। फिर वे जहाँ रनिवास था वहाँ बधुओं सहित पुत्रों को देखा।

लिए गोद करि मोद समेता * को कहि सकइ भयउ सुखु जेता
बधू सप्रेम गोद बैठारी * बार बार हियँ हरषि दुलारी

और प्रसन्नता पूर्वक गोद में ले लिया, उस समय जितना सुख था, उस सुख को कौन कह सकता है। फिर बधुओं को गोद में बैठाकर बार-बार हृदय में प्रसन्न होकर लाड़-चाव किया।

देखि समाजु मुदित रनिवासू * सबके उर आनन्द कियो बासू
कहेउ भूपजिमि भयउ विवाहू * सुनि सुनि हरिषु होत सब काहू

समाज को देखकर रनिवास प्रसन्न हुआ और सबके मन में आनन्द भर गया। फिर दशरथजी ने जिस प्रकार विवाह हुआ, सो सब हाल कहा। उसे सुनकर सबको प्रसन्नता हुई।

जनकराज गुन सीलु बड़ाई * प्रीति रीति सम्पदा सोहाई
बहुविधि भूपभाट जिमि वरनी * रानी सब प्रमुदित सुनि करनी

राजा जनकजी के गुण, शील, बड़ाई, प्रीति की रीति, सुहावनी सम्पत्ति बहुत विधि से महाराज ने भाट की भाँति वर्णन की, सब रानियाँ-जनकजी की ऐसी करनी सुन बड़ी प्रसन्न हुईं।

दोहा—सुतन्ह समेत नहाइ नृप, बोलि लिए गुरु ग्याति।
भोजन कीन्हअनेक विधि, घरी पञ्च गइ राति ॥३५४॥

राजा ने पुत्रों सहित स्नान कर ब्राह्मण, गुरु और जाति के लोगों को बुला कर नाना प्रकार के भोजन कराये, पाँच घड़ी रात व्यतीत हो गई।

मङ्गल गान करहिंवर भामिनि * भै सुखमूल मनोहर जामिनि
अँचइ पान सब काहूँ पाए * स्रग सुगन्ध भूषित छवि छाए

शोभाग्यवती स्त्रियाँ गीत गाने लगीं, यह रात सुख की मूल और मनोहर हुई। भोजन के बाद आचमन कर सबने पान लिए और माला तथा इत्र आदि की सुगन्ध से सुशोभित होकर कान्तिमान हुए।

रामहि देखि रजायसु पाई * निज निज भवन चले सिर नाई

प्रेम प्रमोद बिनोदु बड़ाई * समउ समाजु मनोहरताई

श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन कर आज्ञा पाकर, सिर नवाकर सब अपने-अपने घर गये। उस समय का प्रेम, आनन्द, उत्साह, बड़ाई समय और समाज की सुन्दरता—

कहि न सकहिं सत सारद सेसू * सेष बिरञ्चि महेस गनेसू

सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी * भूमि नागु सिर धरइ कि धरनी

सैकड़ों सरस्वती, शेष, ब्रह्मा, शिव और गणेश भी नहीं कह सकते। उसका मैं किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ? क्या केंचुआ भी पृथ्वी को सिर पर धारण कर सकता है?

नृप सब भाँति सबहि सनमानी * कहि मृदु बचन बोलाईं रानी

बधू लरकिनी पर घर आईं * राखेउ नयन पलक की नाईं

राजा दशरथ ने सब भाँतिसे सबका आदर किया, फिर रानियों को बुलाकर मधुरवाणी से कहा—ये बहुएँ अभी लड़की हैं, पराये घर आई हैं, इनको नेत्रों और पलकों की भाँति रखना।

दोहा—लरिका श्रमित उनींद बस, सयन करावहु जाय।

अस कहि गे बिश्राम गृहँ, राम चरन चितलाय ॥३५५॥

लड़के मार्ग की थकावट से नींद के वश हो रहे हैं, सो जाकर इनको शयन कराओ। यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में चित्त लगाकर विश्राम गृह में चले गये।

भूप बचन सुनि सहज सुहाए * जटित कनक मनि पलँग डसाए

सुभग सुरभि पय फेन समाना * कोमल कलित सुपेतीं नाना

राजा के सुहावने वचन सुनकर रानियों ने मणियों से जड़े हुए सोने के पलँग बिछाये उनपर सुन्दर गौ के दूध के फेन के समान उज्ज्वल और कोमल अनेक मनोहर चादरें बिछायीं।

उपबरहन बर बरनि न जाहीं * स्रग सुगन्ध मनि मन्दर माहीं

रतनदीप सुठि चारु चँदोवा * कहत न बनइ जान जेहिं जोवा

सुन्दर तकियों का वर्णन नहीं किया जा सकता, उस मणिमय मन्दिर में सुगन्धित फूल-माला सजे हैं। रत्नों के दीपक और सुन्दर चँदोवों की शोभा कहते हुए नहीं बनती, जिन्होंने देखा है, वे ही जानें।

सेज रुचिर रचि रामु उठाए * प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए

अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्हीं * निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्हीं

उत्तम रीति से सेज सजाकर श्रीरामजी को उठाया और स्नेह सहित पलँगपर लिटा दिया। श्रीरामजी ने भाइयों को बारम्बार आज्ञा दी, तब उन्होंने भी अपनी २ सेजों पर शयन की।

देखि श्याम मृदु मंजुल गाता * कहहिं सप्रेम बचन सब माता

मारग जात भयावनि भारी * केहि बिधि तात ताड़का मारी

श्रीरामचन्द्रजी के श्यामसुन्दर कोमल शरीर को देख सब मातायें स्नेह सहित कहने लगीं—हे पुत्र! मार्ग में जाते हुए डरावनी ताड़का राक्षसी को तुमने किस प्रकार मारा?

दोहा—घोर निसाचर बिकट भट, समरगनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

भयंकर राक्षस जो विकट योद्धा थे, और युद्ध में किसी को नहीं गिनते थे। ऐसे दुष्ट मारीच और सुबाहु को सहायकों समेत कैसे मारा?

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी * ईस अनेक करबरें टारी
मख रखवारी करि दुहुँ भाईं * गुरु प्रसाद सब बिद्या पाईं

हे पुत्र मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, मुनि की कृपा से ईश्वर ने अनेकों विघ्न टाल दिये। दोनों भाइयों ने यज्ञ की रक्षा कर गुरु की कृपा से सब विद्या पाईं।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी * कीरति रही भुवन भरि पूरी
कमठ पीठ पबि कूट कठोरा * नृप समाज महुँ सिवधनु तोरा

मुनि-पत्नी चरण-रज लगते ही तर गई, यह कीर्ति जगत् में फैल रही है। कछुए की पीठ, वज्र तथा पर्वत से कठोर-शिव धनुष को राजाओं की सभा में तुमने तोड़ डाला।

बिस्व बिजय जसु जानकी पाई * आए भवन ब्याहि सब भाई
सकल अमानुष करम तुम्हारे * केवल कौसिक कृपाँ सुधारे

विश्व विजय का यश और जानकीजी को पाया तथा सब भाइयों को ब्याह कर घर आये। तुम्हारे सब कर्म अमानुषी हैं, केवल विश्वामित्रजी की कृपा से ही सिद्ध हुए हैं।

आजु सुफल जग जनमु हमारा * देखि तात बिधुबदन तुम्हारा
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें * ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें

हे पुत्र! तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर जगत में आज हमारा जन्म सफल हुआ। जितने दिन तुम्हें बिना देखे हुए हमारे बीत गये हैं, वे दिन विधाता हमारी मृत्यु के लेखे में न डालें।

दोहा—राम प्रतोषी मातु सब, कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि सम्भु गुरु बिप्र पद, किए नींदबस नैन ॥३५७॥

श्रीरामजी ने नम्रता से मधुर वचन कहकर माताओं को सन्तुष्ट किया, फिर शिवजी, गुरु और ब्राह्मणों के चरणों को स्मरणकर नेत्रों को नींद के वश किया।

नीदउँ बदन सोह सठि लोना * मनहुँ साझ सरसीरुह सोना
घर घर करहिं जागरन नारी * देहिं परस्पर मङ्गल गारी

नींद में भी सलोना मुख ऐसा शोभित है, मानो संध्या के समय लाल कमल सुशोभित हो। रात में घर-घर स्त्रियाँ जागरण कर रही हैं, और आपस में मङ्गल-गीत गा रही हैं।

पुरी बिराजत राजति रजनी * रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी
सुन्दर बन्धु सासु लै सोईं * फनिकन्ह जनु सिर मनि उरगोईं

रानियाँ कहने लगीं—हे सखियो! अयोध्यापुरी की शोभा को देखो, आज की रात कैसी सुहा-

लगी लगती है। बहुओं को लेकर सासुयें सोईं, जैसे नागिन मणियों को हृदय में छिपा लेती हैं।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे * अरुन चूड़ बर बोलन लागे
बन्दि मागधिन्ह गुन गन गाए * पुरजन द्वार जोहारन आए

प्रातःकाल पवित्र मुहूर्त में प्रभु जागे, सुन्दर मुर्गे बोलने लगे। भाट व मागध गुणावली गाने लगे, नगर-निवासी जुहार करके राज-द्वार पर आये।

बन्दि बिप्र सुर गुरु पितु माता * पाइ असीस मुदित सब भ्राता
जननिन्ह सादर बदन निहारे * भूपति सङ्ग द्वार पगु धारे

ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता, माताओं को प्रणाम कर आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओं ने आदर से सब पुत्रों के मुख देखे, फिर चारों भाई राजा के संग द्वार पर आये।

दोहा—कीन्ह सौच सब सहज सुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहिं, आए चारिउ भाइ ॥३५८॥

स्वभाव से ही पवित्र-शौचादि से निवृत्त हो पवित्र सरयू में स्नान कर प्रातः क्रिया करके चारों भाई पिता के पास आए।

* नवान्ह पारायण—तीसरा विश्राम *

भूप बिलोकि लिए उर लाई * बैठे हरषि रजायसु पाई
देखि राम सब सभा जुड़ानी * लोचन लाभ अवधि अनुमानी

राजा ने उन्हें देखते ही हृदय से लगा लिया। फिर आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर बैठ गये श्रीरामजी के दर्शन करके सब सभा शीतल हो गई। सबने यह मान लिया कि नेत्र के लाभ की सीमा यहीं तक है।

पुनि बशिष्ठ मुनि कौसिकु आए * सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे * निरखि रामु दोउ गुरु अनुरागे

फिर वशिष्ठ मुनि और विश्वामित्रजी आए, राजा ने उत्तम आसनों पर बैठाया, फिर पुत्रोंसमेत मुनियों की पूजा करके चरण छुए। श्रीरामजी के दर्शन करके दोनों गुरु प्रेम में मग्न होगये।

कहहिं बशिष्ठु धरम इतिहासा * सुनहिं महीसु सहित रनवासा
मुनिमन अगम गाधिसुत करनी * मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी

वशिष्ठमुनि धर्म के इतिहास कहने लगे और राजा रनिवास समेत सुनने लगे, फिर मुनियों के मन को भी अगम्य विश्वामित्रजी की करनी को वशिष्ठजी ने प्रसन्नता पूर्वक बहुत भाँति से वर्णन किया।

बोले बामदेव सब साँची * कीरति कलित लोक तिहुँ माँची
सुनि आनन्दु भयउ सब काहू * राम लखन उर अधिक उछाहू

वामदेव बोले-ये सब बातें सत्य हैं, विश्वामित्रजी की कीर्ति तीनों लोकों में फैल रही है। यह सुनकर सबको आनन्द हुआ, श्रीराम-लक्ष्मणजी के हृदय में अधिक उत्साह हुआ।

दोहा—मङ्गल मोद उछाह नित, जाहिं दिवस एहि भाँति।

उमगी अवध अनन्द भरि, अधिक अधिक अधिकात ॥३५९॥

आनन्द, मङ्गल और उत्साह में दिन व्यतीत होने लगे। अयोध्यापुरी आनन्द में भर कर उमड़ पड़ी, वह आनन्द अधिकाधिक बढ़ता गया।

सुदिन सोधि कर कङ्कन छोरे * मङ्गल मोद विनोद न थोरे
नित नव सुखु सुन देखि सिहाहीं * अवध जन्म नाचहिं विधि पाहीं

शुभदिन विचारकर कंकण खोले गये, मंगल,आनन्द और विनोदथोड़ेनहीं हुए। देवता नित्यनये सुख देखकर प्रसन्न हो ब्रह्माजी से यही प्रार्थना करते थे कि अयोध्या में हमारा भी जन्म होवे।

विश्वामित्र चलन नित चहहीं * राम सनेह विनय बस रहहीं
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ * देखि सराह महामुनि राऊ

विश्वामित्रजी नित्य चलना चाहते हैं, परन्तु श्रीरामजी के स्नेह और विनय के वश हो रुक जाते हैं। राजा का दिन पर दिन सौ-गुना प्रेम देखकर महामुनि विश्वामित्रजी ने उनकी बहुत बढ़ाई की।

माँगत बिदा राऊ अनुरागे * सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे
नाथ सकल सम्पदा तुम्हारी * मैं सेवकु समेत सुत नारी

निदान जब विश्वामित्रजीने विदा माँगी, तब राजा मग्नहो पुत्रों सहित आगे खड़े होगयेऔर बोले—हे नाथ ! यह सब सम्पत्ति आपकी है, पुत्रों व स्त्रियों सहित मैं तो आपका सेवक हूँ।

करव सदा लरिकन्ह पर छोहू * दरसनु देत रहव मुनि मोहू
अस कहि राउ सहित सुत रानी * परेउ चरन मुख आव न बानी

हे मुनि ! लड़कों पर सदैव दया करते रहियेगा, मुझे भी दर्शन देते रहियेगा। ऐसा कहकर राजा पुत्रों व रानियों सहित-मुनि के चरणों पर गिर पड़े, उनके मुख से बात नहीं निकलती।

दीन्हि असीस विप्र बहु भाँती * चले न प्रीति रीति कहि जाती
राम सप्रेम संग सब भाई * आयसु पाइ फिरे पहुँचाई

प्रियवर विश्वामित्रने बहुत भाँति से आशीर्वाद दिये और वे चल दिये, प्रीति को रीति कही नहीं जाती। श्रीरामजी सब भाइयों सहित बड़े प्रेम से पहुँचाने गये और आज्ञा पाकर लौटआये।

दोहा—राम रूप भूपति भगति, व्याहु उछाह अनन्दु।
जात सराहत मनहि मन, मुदित गाधिकुल चन्दु ॥३६०॥

श्रीरघुनाथ के स्वरूप, राजा दशरथजी की भक्ति और विवाहोत्सव के आनन्द की बड़ाई मन ही मन करते हुए प्रसन्नता पूर्वक विश्वामित्रजी चले जाते थे।

बामदेव रघुकुल गुरु ग्यानी * बहुरि गाधि सुत कथा बखानी
मुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राऊ * बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ

ज्ञानी वामदेवजी और रघुवंश के गुरु वशिष्ठजी ने फिर विश्वामित्रजी की कथा बखानकर कही। मुनि का सुन्दर यश सुनकर राजा मन ही मन अपने पुण्य के प्रभाव का वर्णन करने लगे।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ * सुतन्ह समेत नृपति गृह गयऊ
जहँ तहँ राम ब्याहु सबु गावा * सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा

राजा की आज्ञा हुई तब लोग लौटे, महाराज पुत्रों सहित महलों में गये। जहाँ तहाँ राम के विवाह का यश सबने गाया और पवित्र यश तीनों लोकों में छा गया।

आए ब्याहि राम घर जब तें * बसइ अनन्द अवध सब तब तें
प्रभु बिबाहँ जस भयउ उछाहू * सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू

जब से श्रीरामजी विवाह करके आये, तबसे अयोध्या में सब आनन्द बस गये। प्रभु के विवाह में जैसा आनन्दोत्सव हुआ, उसको सरस्वतीजी और शेषजी भी वर्णन नहीं कर सकते?

कबिकुल जीवनु पावन जानी * राम सीय जसु मङ्गल खानी
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी * करन पुनीत हेतु निज बानी

श्रीसीता-रामजी के यश को कवि-कुल के जीवन को पवित्र करने वाला और मंगल की खान जानकर, मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कुछ वर्णन किया है।

छन्द—निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥
उपबीत ब्याह उछाह मङ्गल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुख पावहीं॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए 'राम-यश' वर्णन किया है। श्रीरामजी के चरित्र अपार समुद्र हैं, किस कवि ने उसका पार पाया है? जो लोग यज्ञोपवीत और विवाह के मङ्गलमय उत्सव को आदर से सुनकर गावेंगे, वे श्रीसीता-रामजी की कृपा से सदा सुख पावेंगे।

दोहा—सिय रघुबीर बिबाहु, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु, मङ्गलायतन रामु जसु॥३६१॥

जो श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजी का विवाह प्रेम से गावेंगे और सुनेंगे, उनका सदा आनन्द ही आनन्द है। क्योंकि श्रीरामजी का यश मङ्गल का धाम है।

* मास पारायण—बारहवाँ विश्राम *

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुष विध्वंसे प्रथम सोपान समाप्त ॥
कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का

यह प्रथम सोपान समाप्त हुआ॥



* अथ मङ्गलाचरणम् *

—:: * श्लोक *::—

यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके ।
भाले बालबिधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा ।
सर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातुमाम् ।।१।।

जिन शिवजी की गोद में पार्वतीजी, मस्तक पर गंगाजी, माथे पर नवीन चन्द्रमा, कण्ठ में हलाहल विष, हृदय पर सर्पराज शोभायमान हैं, ऐसे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सभी के स्वामी, संहार कर्त्ता, सर्वव्यापी, कल्याणरूप, चन्द्रमा के समान गौर-वर्ण श्रीशंकरजी सर्वदा मेरी रक्षा करें ।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः ।
मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुल मङ्गलप्रदा ।।२।।

श्रीरामजी के मुखारविन्दकी शोभा-जो न कभी राज्याभिषेक सेप्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुःख से मलिन हुई वह छवि मेरे लिए सदा ही सुन्दर मङ्गल देने वाली हो ।

नीलाम्बुज श्यामलकोमलांगं सीता समारो पितवाम भागम् ।
पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ।।३।।

नील कमल के समान श्यामवर्ण और कोमल अङ्ग वाले, सीताजी को वाम भाग में विराजमान किये हुए और हाथ में अमोघ बाण और सुन्दर धनुष लिए रघुवंश के स्वामी श्रीरघुनाथजी को प्रणाम करता हूं ।

दोहा—श्री गुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जसु, जो दायक फल चारि ।।

गुरुजी के चरणकमलों की धूलि से अपने मनरूपी दर्पण को साफ करके श्रीरामजी का उज्ज्वल यश वर्णन करता हूँ, जो चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देने वाला है।

जब तें राम ब्याहि घर आए * नित नव मङ्गल मोद बधाए
भुवन चारि दस भूधर भारी * सुकृत मेघ बरषहिं सुखवारी

जबसे श्रीरामजी विवाह करके घर आये, तब से वहाँ नित्य-नये मंगल और आनन्द बधाये होने लगे। चौदहों भुवनरूपी बड़े २ पर्वतों पर पुष्परूपी मेघ सुखरूपी जल की वर्षा करने लगे।

रिधिसिधि सम्पति नदी सुहाई * उमगि अवध अम्बुधि कहुँ आई
मनिगन पुर नर नारि सुजाती * सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती

ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी नदियाँ उमड़कर अयोध्या रूपी समुद्र में आ मिलीं। पुरी के स्त्री-पुरुष ही मणियों के समूह हैं। जो सब प्रकार से निर्मल, अमोल और सुन्दर हैं।

कहि न जाय कछु नगर विभूती * जनु एतनिअ बिरंचि करतूती
सब विधि सब पुर लोग सुखारी * रामचन्द्र मुख-चन्दु निहारी

पुरी का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता, मानो ब्रह्माजी की कारीगरी इतनी ही है। नगर-निवासी श्रीरामजी के चन्द्रमुख के दर्शन करके सब प्रकार से सुखी हैं।

मुदित मातु सब सखीं सहेली * फलित विलोकि मनोहर बेली
राम रूप गुन सीलु सुभाऊ * प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ

सब मातायें, सखी-सहेलियाँ अपनी मनोरथरूपी बेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं श्रीरामजी के गुण, रूप, उत्तम-स्वभाव को देख व सुनकर राजा दशरथजी बहुत प्रसन्न हैं।

* नारद विनय क्षेपक *

दोहा—इक दिन विश्वावसु तहाँ, कियो गान गन्धर्व।
सुनि प्रसन्न व्है स्वसुर तेहि, कह्यौ रहन हित सर्व ॥ १ ॥

एक दिन विश्वावसु गन्धर्व ने वहाँ आकर गायन किया। गाने को सुनकर सबने प्रसन्न होकर उनसे अपने नगर में ही रहने के लिये कहा।

सो कह इन्द्र निदेश बिन, मैं रहि सकत न अन्त।
कह्यौ कैकई बसत है, हमरे बल सुर कन्त ॥ २ ॥

उसने कहा कि इन्द्र की आज्ञा के बिना किसी अन्य स्थान पर नहीं रह सकता। तब कैकई ने कहा कि इन्द्र तो हमारे ही बल पर अपने लोक में बसता है।

हमरें आवत रिस करत, अस तुम्ह गए मुटाइ।
पठइ पत्रिका बाँचि कर, सुनि नृप रहे चुपाइ ॥ ३ ॥

हमारे यहाँ आने में इन्द्र क्रोध करे। ऐसे तुम अभिमान में फूल गये हो? तब एक

पत्री को लिखकर भेज दी, जिसे पढ़कर राजा चुप रह गये।

मन में समझे कैकइ, लिख पठये वच अंक।
हमरिउ लागै घात तब, दहहूँ देव कलंक ॥ ४॥

मन में विचार किया कि कैकई ने कठोर वचन लिख कर भेजे हैं। अब हमारी घात लगेगी। तब हम भी उसे कलङ्क देंगे।

लिख पठयो विश्वावसुहि, करहु कहैं नृप जोइ।
विदा करैं तब आइयो, समुझि बूझ मत सोइ ॥ ५॥

(यह सोचकर) इन्द्र ने विश्वावसु को लिख भेजा कि महाराज जैसा दशरथ कहें वैसा ही करो। जब वे विदा करें, तब तुम समझ-बूझकर यहाँ आ जाना।

वर्ष अठारह की सिया, सत्ताइस के राम।
कीन्हौ मन अभिलाष यह, करनौ है सुरकाम ॥ ६॥

जब सीताजी अठारहसाल की और श्रीरामजी सत्ताईस साल के हुए, तब मन में अभिलाषा की कि अब देवताओं का कार्य करना चाहिए।

अति आनन्द अवधपुर बासी * भ्रातन्ह सहित देखि सुखरासी
एक बार जानकी समेता * बैठे प्रभु निज रुचिर निकेता

भाइयों सहित सुख की राशि भगवान श्रीरामचन्द्रजी को देखकर अयोध्यावासी बड़े प्रसन्न हैं। एक बार प्रभु सीताजी समेत महल में विराजमान थे।

भुज प्रलम्ब उर नयन विशाला * पीत बसन तनु श्याम तमाला
कोटि मनोज देखि छबि मोहा * सीता कर चमर वर सोहा

जिनकी भुजायें लम्बी, छाती तथा नेत्र विशाल, जिनके वस्त्र पीले और श्यामवर्ण हैं। छवि को देखकर करोड़ों कामदेव भी मोहित हो जाते हैं। श्रीसीताजी के हाथ में सुन्दर चंवर सुशोभित है।

तेहिं अवसर मुनि नारद आये * सुर हित लागि विरञ्चि पठाए
तेज पुञ्ज करतल शुभ बीना * हरि गुण गन गावत लयलीना

उसी समय ब्रह्माजी द्वारा देव-कार्य के लिए भेजे हुए नारदजी वहाँ आये। वे बड़े ही तेजस्वी, हाथ में सुन्दर वीणा लिए तथा श्रीहरि के गुणगान में मग्न थे।

देखि राम सहसा उठि धाये * करत दण्डवत मुनि उर लाए
सादर निज आसन बैठारे * जनकसुता तब चरण पखारे

उनको देखते ही श्रीरामजी शीघ्र उठकर चले, दण्डवत करते ही मुनि ने हृदय से लगा लिया। आदर पूर्वक अपने आसन पर बैठाया तब सीताजी ने नारदजी के चरण धोये।

तेहिं चरणोदक भवन सिंचावा * जग पावन हरि शीश चढ़ावा

सुनि मुनि विषय बिरत जे प्रानी * हम सारीखे देह अभिमानी

चरणामृत घर में छिड़कवाया और जगत् को पवित्र करने वाले श्रीरामजी ने अपने सिर पर धारण किया वे बोले—हेमुनि!जो प्राणी विषयों में लगे रहते हैं वह हमारे समान देहाभिमानी हैं।

तिन्ह कहँ सतसङ्गति जब होई * करहिं कृपा जापर प्रभु सोई
ताको मुनि नाहिंन भव आगे * जेहिं बिनु हेतु सन्त प्रियलागे

उनको तभी सत्संगति होती है, जब प्रभु कृपा करते हैं। हे मुनि ! उनको संसार नहीं व्यापता, जिन्हें बिना किसी कारण ही सन्त न्यारे लगते हैं।

ताते नारद में बड़भागी * जद्यपि गृह कुटुम्ब अनुरागी

इससे, हे नारदजी ! मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ। यद्यपि गृहस्थी और कुटुम्ब में अनुरक्त हूँ, तो भी आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गया।

दोहा—सुनि प्रभु वचन मधुर प्रिय, करि विचारि मुनिधीर।
परम कृपालु लोकहित, कस न कहो रघुवीर ॥ ७ ॥

प्रभु के मधुर और प्रिय वचनों को सुन, धीर-मुनि विचार कर बोले—हे श्रीराम! आप परम कृपालु और लोक-हितकारी हैं, आप ऐसा क्यों न कहेंगे ?

कह मुनि तब महिमा रघुराया * मैं जानी कछु तुम्हरी दाया
वचन कह्यौ प्राकृत की नाईं * यामें नहिं कछु घटेउ गोसाईं

नारदजी बोले—हे श्रीरघुनाथजी ! आपकी दया से आपकी महिमा को मैं कुछ जानता हूँ। आपने जो सामान्य की तरह वचन कहे हैं, हे नाथ ! इसमें कुछ घटा नहीं है।

प्रभु यह तुम्हहि सदा बनिआई * निज लघुता जन केरि बड़ाई
सहज स्वभाव प्रणत अनुरागी * नर तनु धरेउ दास हितलागी

हे प्रभु ! आपको सदैव ही शोभा देता है कि आप अपनी लघुता और भक्तों की बड़ाई करते हैं। आप स्वभाव में ही शरणागत प्रेमी और सेवकों के हेतु मनुष्य-देह धारण करने वाले हैं।

माया गन गो ग्यान अतीता * अजित नाम सो दासन्ह जीता
जेहिं प्रभु सम अतिसय कोउ नाहीं * व्यापक अज समान सब माहीं

आप माया, गुण, इन्द्रियों और ज्ञान से परे हैं, आपका अजित नाम ही दासों ने जीत लिया है। जिस स्वामी के समान कोई नहीं है जो व्यापक, अजन्मा और सब में समान है।

उदर चराचर मेलि जो सोवा * अस्तन पान लागि सोइ रोवा
नाम रूप बपु वर्ण न भेदा * अविगत अकल नेति कह वेदा

जो चराचर को उदर में रखकर सो जाता है, जो माता का दूध पीने के लिए रोता है, वह आप ही हैं। आपके नाम, रूप, शरीर, वर्ण-भेद कोई नहीं जानता, आप गति और काल से रहित हैं, वेद आपको 'नेति-नेति' कहते हैं।

निर्भय मुक्त निरामय जोई * दशरथ सुत कहि गाइअ सोई

जप तप योग यज्ञ व्रत दाना * विमल विराग ग्यान विज्ञाना

जो ममता रहित, मुदित और कल्याण-युक्त हैं, वे ही दशरथजी के सुत के नाम से गाये जाते हैं। जप, योग, यज्ञ, व्रत, दान, निर्मल वैराग्य, विज्ञान आदि–

करहिं यत्न मुनि पावहिं कोई * देखा प्रकट भक्त वश सोई
हठ बश शठ बहु साधन करहीं * भक्ति हीन भवसिन्धु न तरहीं

यत्न करके कोई २ मुनि जिसे पाते हैं, उन्हें भक्तों के वश प्रकट होते देखा। मूर्ख हठ करके बहुत से साधन करते हैं, परन्तु भक्ति हीन मनुष्य संसार-सागर से नहीं तर सकते।

दोहा–जानि सकइ ते जानहुँ, निर्गुन सगुन स्वरूप।
मम हिय पंकज भृङ्ग इव, बसहु राम नररूप॥ ८॥

जो आपके निर्गुण और सगुण स्वरूप को जानने में असमर्थ हों, वे ही जानें, परन्तु–हे श्रीरामजी! आपका यह मनुष्य रूप मेरे हृदय रूपी कमल में भौंरे के समान वास करे।

ब्रह्म भवन मैं रह्यौ कृपाला * गावत तव गुण दीनदयाला
अस इच्छा उपजी मन माहीं * बहु दिन गये लखे पद नाहीं

हे कृपालु! मैं ब्रह्मलोक में आपके गुणगान करते हुए रहता था, उस समय मेरे मन में ऐसी इच्छा प्रकट हुई कि बहुत दिन से आपके चरण-कमलों के दर्शन नहीं किये।

यद्यपि प्रभु सर्वत्र समाना * गुण रूप मोरे मन माना
अवधचलत विरञ्चि मोहि जाना * कीन्हि विनय लागि मम काना

यद्यपि प्रभु सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हैं, तो भी मेरे मन को तो सगुणरूप ही अच्छा लगता है। ब्रह्माजी ने मुझे अयोध्यापुरी को जाते हुए जाना तो, मुझसे धीरे से विनती करके आपके प्रति कहा है कि–

प्रभु जानत सब अन्तर्यामी * भक्त बछल विनती यह स्वामी
जेहि हित लीन्ह मनुज अवतारा * नाथ ताहि अब करिहु सँभारा

प्रभु अन्तर्यामी हैं और सब जानते हैं। हे भक्तवत्सल स्वामी! मेरी यह विनती है कि जिस कारण आपने मनुष्य अवतार लिया है, हे नाथ! उस पर अब विचार करिये।

सुनत बचन रघुपति मुसुकाने * मुनि अजहूँ बिरञ्चि भय माने
कहेउ तात ब्रह्महि समुझाई * कछु दिन गये देखिहौं आई

यह बचन सुनकर प्रभु मुस्कराये और बोले–हे मुनि! ब्रह्माजी आज भी भय मानते हैं। हे तात! ब्रह्माजी से यह समझाकर कहना कि कुछ दिन बाद मैं आपको आकर देखूंगा।

बार बार चरणन सिर नाई * ब्रह्मानन्द न हृदय समाई
रामरूप उर धरि मुनि नारद * चले करत गुणगान विशारद

नारदजी ने बार-बार चरणों में सिर नवाया, उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता था। नारदजी–श्रीरामजी के रूप को हृदय में रखकर गुणगान करते हुए चले।

तब रघुपति सीतहिं समुझाई * पूर्व कथा सब हेतु सुनाई
सुरहित लागि सो करिअ उपाई * चलिए बन परिहरि ठकुराई

तब श्रीरामजी ने सीताजी से समझाकर पूर्व कथा का कारण (रावण को मारने के हेतु अवतार लेने का वृतान्त) कहा। श्रीजानकीजी ने कहा—जिसमें देवताओं का हित हो, वही उपाय करिये, राज्य को त्याग वन को चलिये।

दोहा—जग सम्भव स्थिति प्रलय, जाकें भृकुटि बिलास।
सो प्रभु यत्न विचारत, केहिविधि निसिचर नास ॥ ९ ॥

जिनके भौंह के फेरने मात्र से ही जगत् की स्थिति, पालन और प्रलय हो जाती है, वही प्रभु उपाय विचारने लगे कि राक्षसों का नाश किस प्रकार से हो?

* इति क्षेपक *

दोहा—सबकें उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाय महेसु।
आप अछत जुबराज पद, रामहिं देउ नरेसु ॥ १ ॥

सबके मन में यही अभिलाषा थी और शिवजी को मनाकर यही कह रहे थे कि राजा अपने जीते-जी श्रीरामजी को युवराज पद दे दें।

एक समय सब सहित समाजा * राज सभाँ रघुराज बिराजा
सकल सुकृत मूरत नरनाहू * राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू

एक समय सब सभासदों के सहित राज-सभा में महाराज दशरथजी विराजमान थे, सब सुकर्मों की मूर्ति महाराज—श्रीरामजी के सुयश को सुनकर मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें * लोकप करहिं प्रीति रुख राखें
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं * भूरि भाग्य दशरथ सम नाहीं

सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपाल-गण भी उनके रुख को प्राप्तकर प्रीति करते हैं। तीनों लोक और तीनों कालों में दशरथजी के समान बड़भागी कोई नहीं हुआ।

मङ्गल मूल राम सुत जासू * जो कछु कहिअ थोर सबु तासू
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा * बदनु बिलोकि मुकट सम कीन्हा

जिनके पुत्र मंगल के मूल-श्रीरामजी हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाय, वही थोड़ा है। महाराज ने सहज स्वभाव से दर्पण हाथ में ले, मुख देखकर मुकुट को ठीक किया।

श्रवन समीप भए सित केसा * मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा
नृप जुबराज राम कहुँ देहू * जीवन जनम लाहु किन लेहू

(और देखा कि) कान के पास के बाल सफेद होगये हैं मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश करता है कि हे राजन्! रामजी को राजतिलक करके अपने जीवन और जन्मको सफल क्यों नहीं करते?

दोहा—यह विचारु उर आनि नृप, सुदिन सुअवसरु पाइ।

प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायउ जाय ॥ २ ॥

यह विचार कर मनमें शुभ-दिन और सुअवसर पाकर राजा दशरथ ने प्रेम से पुलकित शरीर हो, प्रसन्न मन से गुरु वशिष्ठजी से कहा।

कहइ भुआल सुनिअ मुनिनायक * भए राम सब बिधि सब लायक
सेवक सचिव सकल पुरवासी * जे हमार अरि मित्र उदासी

राजा ने कहा—हे मुनिनाथ ! सुनिये, अब श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकार से योग्य हो गये हैं और मन्त्री व सब अयोध्यावासी, हमारे शत्रु-मित्र अथवा उदासीन हैं।

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही * प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही
बिप्र सहित परिवार गोसाईं * करहि छोहु सब रौरिहि नाईं

सभी को श्रीरामजी ऐसे प्रिय हैं-जैसे मुझे हैं, आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारणकर सुशोभित हो रहा है। हे स्वामी ! सभी ब्राह्मण-परिवार आप ही के समान स्नेह करते हैं।

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं * ते तनु सकल बिभव बस करहीं
मोहि सम यहु अनुभव उन दूजें * सबु पायउँ रज पावनि पूजें

श्रीगुरु की चरण-रज को शिरोधार्य करते हैं, वे सब सम्पदाओं को वश में कर लेते हैं। मेरे समान इसका अनुभव दूसरे ने नहीं किया, क्योंकि प्रभु के चरण-रज की पूजा करके मैंने सब कुछ पाया है।

अब अभिलाषु एकु मन मोरें * पूजहि नाथ अनुग्रह तोरें
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू * कहेउ नरेस रजायसु देहू

अब मेरे मन में एक और कामना रह गई है सो हे नाथ ! बस आपकी ही कृपा से पूर्ण होगी। हे मुनि को सहज स्नेह से प्रसन्न देखकर राजा ने कहा—आज्ञा दें तो कहूँ ?

दोहा—राजन राउर नाम जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मन, मन अभिलाषु तुम्हार ॥ ३ ॥

वशिष्ठजी बोले—हे राजन् ! तुम्हारा नाम और यश सब मनोकामनाओं को देने वाला है। राज-शिरोमणि ! तुम्हारी अभिलाषा के पीछे-पीछे सभी चलते हैं।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी * बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी
नाथु रामु करिअहिं जुबराजू * कहिअ कृपाकरि करिअ समाजू

राजा अपने मनमें सब प्रकार से गुरुदेव को प्रसन्न जानकर मधुर वचन बोले-हे नाथ ! रामजी को युवराज कीजिये। कृपा करके आज्ञा दीजिए, जिससे राजतिलक की तैयारी की जाय।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू * लहहिं लोग सब लोचन लाहू
प्रभु प्रसाद सिव सबहि निबाहीं * यह लालसा एक मन माहीं

मेरे जीतेजी वह उत्सव हो जाय, तो सब लोग अपने-अपने नेत्रों का लाभ पायें। प्रभु के प्रसाद से शिवजी ने सब मनोरथ पूरे किये हैं, केवल यही अभिलाषा मन में रह गई है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ * जेहि न होइ पाछें पछिताऊ
सुनि मुनि दशरथ बचन सुहाए * मङ्गल मोद मूद मन भाए

फिर कुछ चिन्ता नहीं, शरीर रहे या छूट जाय-जिससे पीछे पछतावा न रहे। दशरथजी के आनन्द और मङ्गल के मूल वचन मुनि को बहुत भले लगे।

सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं * जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं
भयउ तुम्हारि तनय सोइ स्वामी * राम पुनीत प्रेम अनुगामी

वे बोले-हे राजन् ! सुनो, जिसके विमुख होने से लोग पछताते हैं और जिसके भजन किये बिना हृदय की जलन नहीं जाती, वही प्रभु श्रीरामजी तुम्हारे पुत्र हुए हैं, जो पवित्र प्रेम के अनुगामी हैं।

दोहा-बेगि बिलम्बु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु।
　　सुदिन सुमङ्गल तबहि जब, रामु होंहि जुबराजु॥ ४॥

हे राजन् जल्दी से सब सामान सजबाइये, बिलम्ब न कीजिए। शुभ दिन और सुन्दर मङ्गल तब ही है, जब श्रीरामजी युवराज हो जावें।

मुदित महीपति मन्दिर आए * सेवक सचिव सुमन्त बुलाए
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए * भूप सुमङ्गल बचन सुनाए

राजा आनन्दित होकर महल में आये और अपने सेवकों व मंत्री सुमन्त को बुलाया। उन्होंने 'जय-जीव' कहकर सिर नवाये, तब राजा ने मंगलमय बचन सुनाये।

जौं पाँचहि मत लागइ नीका * करहु हरषि हियँ रामहि टीका

यदि पंचों को यह विचार भला लगे तो प्रसन्न हृदय से श्रीरामचन्द्रजी का तिलक कीजिए।

मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी * अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी
बिनती सचिव करहिं कर जोरी * जिअहु जगत पति बरिस करोरी

यह प्रिय वाणी सुनते ही मंत्री आनन्दित हो गये, मानो उनके मनोरथरूपी पौधे पर पानी पड़ गया हो, और हाथ जोड़कर विनती करने लगे-हे जगत्पति ! आप करोड़ों वर्ष जियें।

जग मङ्गल भल काजु विचारा * बेगिअ नाथ न लाइअ बारा
नृपहिं मोदु सुनि सचिव सुभाषा * बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा

आपने जगत् के मंगल के लिए शुभ काम सोचा है। हे नाथ ! जल्दी कीजिए, बिलम्ब न करिये। मंत्री के यह वचन सुन राजा को ऐसा आनन्द हुआ, मानो वेल सुन्दर शाखा का सहारा पा गई हो।

दोहा-कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
　　राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ॥ ५॥

राजा ने कहा-मुनिराज की जो-जो आज्ञा हो श्रीरामजी के राज्याभिषेक के लिए वही-वही तैयारी तुरन्त करो।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी * आनहु सकल सुतीरथ पानी

औषधि मूल फूल फल पाना * कहे नाम गनि मङ्गल नाना।

हर्षित होकर मुनि मधुर वाणी से बोले—पहले तो संपूर्ण प्रसिद्ध तीर्थों का जल ले आओ औषधि, जड़, फूल और पत्ते आदि अनेक मङ्गल पदार्थों के नाम गिनकर बताये।

चामर चमर बसन बहु भाँती * रोम पाट पट अगनित जाती
मनिमय मङ्गल वस्तु अनेका * जो जग जोगु भूप अभिषेका

चँवर, मृग-चर्म बहुत प्रकार के वस्त्र, अनेक प्रकार के ऊनी और रेशमी वस्त्र, मणि तथा और भी अनेक माँगलिक वस्तुयें जो संसार में राजतिलक के योग्य होती हैं।

बेद बिदित कह सकल विधाना * कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना
सफल रसाल पूग फल केरा * रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा

वेद में कहे अनुसार सब सामग्री बतलाकर कहा कि नगर में अनेक मण्डप बनाओ और फल सहित आम, सुपारी और केले के वृक्ष सड़कों पर नगर के चारों ओर लगावो।

रचहुँ मञ्जु मनि चौकें चारू * कहहु बनावन बेगि बजारू
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा * सब विधि करहु भूप सुर सेवा

सुन्दर मणियों के मनोहर चौक पुराओ, बाजार सजाने को शीघ्र कहो। श्रीगणेशजी, गुरु व कुल देवता का पूजन करो तथा सब भाँति से ब्राह्मणों की सेवा करो।

दोहा—ध्वज पातक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिरधरि मुनिवर बचन सब, निज निज काजहिं लाग॥ ६॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ, हाथी सजाओ। मुनिवर की आज्ञा शिरोधार्य कर, सब अपने-अपने कामों में लग गये।

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा * सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा
बिप्र साधु सुर पूजत राजा * करत राम हित मङ्गल काजा

मुनिवर ने जिसको जिस काम की आज्ञा दी, उसने वह मानो पहले से ही कर रक्खा था। राजा-ब्राह्मण, साधु और देवताओं का पूजन करने लगे और श्रीरामजी के हेतु मङ्गल कार्य करने लगे।

सुनत राम अभिषेक सुहावा * बर्जाहिं गहागह अवध बधावा
राम सीय तनु सगुन जनाए * फरकहिं मङ्गल अंग सुहाए

श्रीरामजी का सुहावना राज्याभिषेक सुनते ही अयोध्या भर में बड़ी धूम-धाम से बधाये बजने लगे। श्रीरामजी और सीताजी के शरीर में शकुन प्रकट हुए, मंगल-सूचक शुभ अङ्ग फड़कने लगे।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं * भरत आगमनु सूचक अहहीं
भए बहुत दिन अति अवसेरी * सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी

पुलकित होकर दोनों स्नेह पूर्वक कहने लगे—यह शकुन भरतजी के आने की सूचना देने वाले हैं। बहुत दिन होगये, बारम्बार मिलने की मनमें आती है। शकुन से निश्चय होता

है कि किसी प्रिय से भेंट होगी ।

भरत सरिस प्रियको जगमाहीं * इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं
रामहि बन्धु सोच दिन राती * अण्डन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती

भरतजी के समान जगत् में हमें कौन प्यारा है ? अर्थात्—(कोई नहीं) इस शकुन का यही फल है, दूसरा नहीं । श्रीरामजी को भाई (भरत) का दिन-रात ऐसा सोच रहता है । जैसे कछुए का मन अण्डों में रहता है ।

दोहा—एहि अवसर मङ्गल परम, सुनि रहँसेउ रनिवासु ।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिध बीच बिलासु ॥ ७ ॥

उसी समय यह मङ्गल समाचार सुनकर सारा रनिवास ऐसा प्रसन्न हुआ, जैसे चन्द्रमा को बढ़ते हुए देखकर समुद्र की लहरों का आनन्द सुशोभित होता है ।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए * भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए
प्रेम पुलकि तनु मन अनुरागी * मङ्गल कलस सजन सब लागी

सबसे पहले जाकर जिन्होंने समाचार सुनाया, उन्होंने वस्त्राभूषण पाये । रानी प्रेम से प्रफुल्लित होगई और मन प्रेम में मग्न होगया, सब मंगल-कलश सजाने लगीं ।

चौकें चारु सुमित्राँ पूरी * मनिमय बिबिध भाँतिअतिरूरी
आनन्द मगन राम महतारी * दिए दान बहु बिप्र हँकारी

सुमित्रा रानी ने अनेक प्रकार की बहुत-सी मणियों से मनोहर चौक पूरे । श्रीरामजी की माता कौशिल्याजी ने आनन्द-मग्न हो ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत से दान किये ।

पूजी ग्रामदेबि सुर नागा * कहेउ बहोरि देन बलि भागा
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू * देहु दया करि सो बरदानू

ग्राम-देवी, देवता, नागों की पूजा की, फिर बलि का भाग देने की मनौती की । अन्त में यही प्रार्थना की जिस प्रकार श्रीरामजी का कल्याण हो, दया करके वही वरदान दो ।

गावहिं मङ्गल कोकिल बयनीं * बिधु बदनी मृगसावक नयनी

कोकिल-बयनी, चन्द्रमुखी, मृग-नयनी स्त्रियां मङ्गल-गान करने लगीं ।

दोहा—राम राज अभिषेकु सुनि, हियँ हरषे नर नारि ।
लागे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी का राजतिलक सुनकर नर-नारी मन में बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्माजी को अनुकूल समझकर सब सुन्दर मङ्गल-साज सजाने लगे ।

तब नरनाहँ बसिष्ठ बोलाए * राम धाम सिख देन पठाए
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा * द्वार आइ पद नायउ माथा

तब राजा ने वशिष्ठजी को बुलाया और श्रीरामजी के महल में शिक्षा देने के लिए भेजा । गुरु का आगमन सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी ने द्वार पर आकर उनके चरणों में सिर नवाया ।

सादर अरघ देइ घर आने * सोरह भाँति पूजि सनमाने
गहे चरन सिय सहित बहोरी * बोले रामु कमल कर जोरी

सादर अर्घ्य देकर घर में आये और षोडशोपचार से पूजा करके उनका सत्कार किया, फिर सीता सहित उनके चरण स्पर्श किये और कमल के समान दोनों हाथ जोड़कर श्रीराम बोले–

सेवक सदन स्वामि आगमनू * मङ्गल मूल अमङ्गल दमनू
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती * पठइअ काज नाथ असि नीती

यद्यपि सेवक के घर स्वामी का आगमन मङ्गलदायक और अमङ्गल नाशक है, तो भी हे नाथ ! उचित तो यह था कि दास को प्रीति पूर्वक बुलाकर कार्य के निमित्त भेज देते–ऐसी नीति है।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू * भयउ पुनीति आजु यह गेहू
आयसु होइ सो करौं गोसाईं * सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं

हे प्रभु ! आपने प्रभुता को त्यागकर जो स्नेह किया है–इससे आज यह घर पवित्र हो गया। हे गोसाँईं ! जो आज्ञा हो, मैं वही करूँ, स्वामी की सेवा में ही सेवक का लाभ है।

दोहा–सुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु, अस हंस बंस अवतंस ॥ ९ ॥

मुनि ने ऐसे प्रेम भरे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी की बड़ाई की और कहा–हे राम ! आप ऐसा क्यों न कहेंगे, क्योंकि आप तो सूर्यवंश के भूषण हैं।

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ * बोले प्रेम पुलकि मुनि राऊ
भूप सजेउ अभिषेक समाजू * चाहत देन तुम्हहि जुवराऊ

श्रीरामजी के गुण, शील और स्वभाव की बड़ाई कर प्रेम से पुलकित होकर मुनिराज बोले–हे राम ! राजा ने राज्याभिषेक की तैयारी की है, वे आपको युवराज बनाना चाहते हैं।

राम करहु सब संयम आजू * जौं बिधि कुशल निबाहै काजू
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ * राम हृदय अस बिसमय भयऊ

हे राम ! आज आप सब संयम करिये, जिससे विधाता कुशलपूर्वक इस काम को पूर्ण करे। गुरु वशिष्ठ तो शिक्षा देकर राजा के पास गये और श्रीरामचन्द्रजी के मन में विस्मय हुआ।

जनमे एक संग सब भाई * भोजन सयन केलि लरिकाई
कर्णवेध उपवीत बिवाहू * संग संग सब भए उछाहू

सभी भाई एक साथ जन्मे और भोजन, शयन, लड़कपन के खेल-कूद, कर्णछेदन, यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि सब उत्सव एक साथ ही हुए।

बिमल बंस यहु अनुचित एकू * बन्धु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई * हरउ भगत मन कै कुटिलाई

पर इस निर्मल बंशमें यही एक अनुचित बात है कि सब भाइयों को छोड़, बड़े भाई को राज-

तिलक हो रहा है। स्नेह सहित प्रभु श्रीरामजी का पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता दूर करे।

दोहा—तेहि अवसर आए लखन, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव चन्द ॥ १० ॥

उसी समय प्रेम और आनन्द में मग्न लक्ष्मणजी वहां आये। रघुवंशरूपी कुमुद को खिलाने वाले चन्द्रमा श्रीरामजी ने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया।

बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना * पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना
भरत आगमनु सकल मनावहिं * आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं

अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगर का आनन्द वर्णन नहीं किया जा सकता। भरतजी का आगमन सब मना रहे हैं, भरतजी जल्दी आवें और नेत्रों का लाभ प्राप्त करें।

हाट बाट घर गली अथाईं * कहहिं परस्पर लोग लुगाईं
कालि लगन भलि केतिक बारा * पूजहि बिधि अभिलाषु हमारा

बाजार, राह, घर, गली और अथाइयों में सब नर-नारी आपसमें यही चर्चा करके लगे कि शुभ लग्न किस समय होगा? जब विधाता हमारे मनोरथ पूरे करेंगे।

कनक सिंहासन सीय समेता * बैठहिं रामु होइ चित चेता
सकल कहहिं कब होइहि काली * बिघन मनावहिं देव कुचाली

अब सोने के सिंहासन पर सीताजी सहित श्रीरामजी बैठेंगे, तब हमारा मन चाहा होगा। सब यही कह रहे हैं कि कब सबेरा होगा? परन्तु कुचाली देवता विघ्न मना रहे हैं।

तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा * चोरहि चन्दिनि राति न भावा
सादर बोलि विनय सुर करहीं * बारहिं बार पायँ लै परहीं

उनको अवध की बधाई ऐसे नहीं सुहाती, जैसे चोर को चांदनी रात नहीं सुहाती। देवताओं ने सरस्वतीजी को बुलाकर विनती की, बार २ उनके चरणों पर मस्तक रक्खा।

दोहा—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर काजु ॥ ११ ॥

हे माता! हमारी बड़ी विपत्ति को देखकर आज वही उपाय करें, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी राज्य को त्याग वन को जायें और देवताओं के सभी कार्य सिद्ध हों।

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछितानी * भयउँ सरोज बिपिन हिमराती
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी * मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी

देवताओं की विनती सुन सरस्वतीजी खड़ी २ पछताने लगीं कि मैं कमल वन के लिए हेमन्त-ऋतु की रात्रि हुई, देवता सरस्वती को पछताते देखकर फिर प्रार्थना करके बोले— हे माता! इसमें आपको तनिक भी दोष नहीं लगेगा।

बिसमय हरष रहित रघुराऊ * तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ
जीव करम बस दुख सुख भागी * जाइअ अवध देव हित लागी

श्रीरामजी को न विषाद है, न हर्ष, उनके प्रभाव को आप जानती हैं। जीव अपने कर्म के अनुसार दुःख का भागी होता है, अतः आप देवताओं के हित के लिए अयोध्या जाइये।

बार बार गहि चरन संकोची * चली बिचारि बिबुध मति पोची
ऊँच निवास नीचि करतूती * देखि न सकहिं पराइ बिभूती

बारम्बार चरण पकड़कर जब देवताओं ने सङ्कोच में डाला, तब सरस्वतीजी यह विचार कर चलीं कि देवताओं की बुद्धि छोटी है। इनका निवास तो ऊँचा है, परन्तु काम नीचा है, वे पराये वैभव को नहीं जान सकते।

आगिल काजु बिचारि बहोरी * करिहहिं चाह कुशल कबि मोरी
हरषि हृदयँ दशरथ पुर आई * जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई

परन्तु आगे कार्य विचारकर चतुर कवि मेरी चाहना करेंगे, यह विचारकर प्रसन्न मन से सरस्वतीजी अयोध्या में इस प्रकार आईं, मानो कठिन दुःख देने वाली ग्रह दशा आई हो।

दोहा—नामु मन्थरा मन्दमति, चेरी कैकई केरि।
अजस पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥ १२ ॥

मन्द बुद्धि वाली मन्थरा नाम की रानी कैकई की एक दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वतीजी उसकी मति फेर कर चली गईं।

दीख मन्थरा नगरु बनावा * मञ्जुल मङ्गल बाज बधावा
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू * राम तिलकु सुनि भा उर दाहू

मंथरा ने नगर की सजावट देखी, सुन्दर मंगलमय बधाई बज रही हैं। उसने लोगों से पूछा कि यह कैसा उत्सव है? श्रीरामचन्द्रजी का राजतिलक सुनकर उसका हृदय जल उठा।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती * होइ अकाजु कवनि बिधि राती
देखि लागि मधु कुटिल किराती * जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती

वह कुबुद्धि, कुजाति दासी विचार करने लगी कि किस तरह रात में ही काम बिगाड़ा जाय? जैसे खोटी भीलनी शहद का छत्ता देखकर ताकती है कि किस प्रकार से इसे उखाड़ लूँ?

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी * का अनमनि हँसि हँसि कह रानी
उतरु न देइ न लेइ उसासू * नारि चरित करि ढारइ आँसू

भरतजी की माता के पास उदास होकर गई, तब रानी कैकई ने हँसकर पूछा-तू उदास क्यों है? वह उत्तर न देकर उसास लेती है और त्रिया चरित्र करके आँसू बहाती है।

हँसि कह रानि गालु बड़ि तोरे * दीन्ह लखन सिय अस मन मोरे
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिनि * छाँड़इ स्वाँस करि जनु साँपिनि

तब रानी ने हँसकर कहा तू बहुत बोलती है, इससे ऐसा ज्ञात होता है कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ शिक्षा दी है। फिर भी वह महा पापिनी नहीं बोली और ऐसे श्वाँस छोड़ने लगी, मानो नागिन फुसकारती हो।

दोहा—सभय रानि कह कहसि किन, कुशल रामु महिपाल।
लखन भरत रिपुदमनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥ १३ ॥

तब रानी ने डरकर कहा-अरी बोलती क्यों नहीं ? श्रीरामजी, राजा, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं ? यह सुनकर कुबड़ी के हृदय में बड़ा ही दुःख हुआ।

कत सिख देइ हमहि कोउ माई * गालु करब केहि कर बलु पाई
रामहि छाँड़ि कुशल केहि आजू * जेहि जनेसु देइ जुबराजू

मंथरा बोली—हे माई ! हमको कोई क्या शिक्षा देगा और हम किसका बल पाकर गाल बजावेंगी ? श्रीरामजी को छोड़कर-आज और किसकी कुशल हो सकती है, जिन्हें कि राजा युवराज पद दे रहे हैं ?

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन * देखत गरब रहत उर नाहिन
देखहु कस न जाइ सब शोभा * जो अवलोकि मोर मनु छोभा

कौशल्या को विधाता आज बहुत ही अनुकूल है, यह देखकर उनके हृदय में घमण्ड नहीं समाता, स्वयं ही जाकर सब शोभा को क्यों न देख लो, जिसे देख मेरे मन में क्षोभ होता है।

पूत विदेस न सोच तुम्हारें * जानति हहु बस नाहु हमारें
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई * लखहु न भूप कपट चतुराई

तुम्हारा पुत्र परदेशमें है,इसका कुछ सोच नहीं यह जानती हो कि राजा मेरे वशमेंहैं। तुम्हें तो तोषक सेज पर नींद लेना बहुत प्रिय लगता है, राजाकी कपट भरी चतुराई को तुम नहीं देखतीं।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी * झुकी रानि अब रहु अरगानी
पुनि अस कबहु कहसि घर फोरी * तौ धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी

प्रिय वचन सुनकर और उसका मन मलिन जानकर रानी झुककर बोली अब चुप रह फिर कभी घर में फूट डालने वाली बात कहेगी तो पकड़कर तेरी जीभ निकाल लूंगी।

दोहा—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि ॥ १४ ॥

काने, लँगड़े, कुबड़े-यह बड़े कुटिल और कुकर्मी माने हैं, उनमें भी स्त्री और खास कर दासी। यह कहकर भरतजी की माता मुस्कराईं।

बिप्रवादिनि सिख दीन्हिउँ तोही * सपनेहुँ तो पर कोपु न मोहि
सुदिन सुमङ्गल दायकु सोई * तोर कहा फुर जेहि दिन होई

हे मधुर-भाषिणी ! मैंने तुझे शिक्षा दी है, मेरा स्वप्न में भी तुझ पर क्रोध नहीं है। वही शुभदिन मंगलदायक होगा, जिस दिन तेरा कहा सत्य होगा।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई * यह दिनकर कुलरीति सुहाई
राम तिलक जौं साँचेहुँ काली * देउँ माँगु मन भावत आली

बड़ा भाई स्वामी व छोटा भाई सेवक-यह तो सूर्यवंश की सुहावनी रीति है। जो कल सचमुच ही राम का राजतिलक है, तो हे सखी ! अपनी मन-चाही वस्तु मांगले, मैं वही दूंगी।

कौशल्या राम सब महतारी * रामहि सहज सुभायँ पियारी
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी * मैं करि प्रीति परीछा देखी

श्रीरामजी को तो स्वाभाविक ही सब मातायें कौशल्या के समान प्यारी हैं, फिर मुझ पर तो श्रीरामजी अधिक स्नेह करते हैं, मैंने अपने प्रेम की परिक्षा करके देख ली है।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू * होहिं राम सिय पूत पुतोहू
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे * तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरे

जो विधाता कृपा करके जन्म दे यह भी दे कि रामजी पुत्र और सीता पुत्रवधु होवे। अपने प्राणों से भी अधिक मुझे श्रीरामजी प्यारे है, उनके तिलक से तुझे क्यों दुःख हो रहा है?

दोहा-भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ॥ १५॥

तुझे भरत की सौगन्ध है, छल कपट को त्यागकर सत्य कह। आनन्द के समय तू जो शोक करती है, इसका कारण मुझे सुना।

एकहिं बार आस सब पूजी * अब कछु कहब जीभ करि दूजी
फोरै जोगु कपारु अभागा * भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा

मंथरा बोली एक ही बार कहने से मेरी सब आशा पूर्ण होगई, अब तो दूसरी जीभ लगाकर ही कुछ कहूंगी। मेरा अभागा भाग्य फोड़ने योग्य है, जो भली बात कहते हुए भी तुमको दुःख लगा।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई * ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती * नाहिं त मौन रहब दिनु राती

हे माई ! जो बनाकर झूंठ-सच कहे-वही तुम्हें प्यारा लगता है, मैं तो कड़वी बात करती हूँ अब मैं भी मुंह-देखी बात कहूंगी, नहीं तो दिन रात चुप रहूंगी।

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा * बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा
कोउ नृप होउ हमहि का हानी * चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी

बिधाता ने कुरूप बनाकर मुझे पराधीन कर दिया है। मैंने जो बोया, सो काटा और जो दिया, वही पाया। कोई भी राजा हो, हमारी क्या हानि है? क्योंकि मैं दासीपन छोड़कर, रानी तो होने से रही।

जारै जोगु सुभाउ हमारा * अनभल देखि न जाइ तुम्हारा
ताकें कछुक बात अनुसारी * छमिअ देखि बड़ि चूक हमारी

हमारा तो स्वभाव जलाने के योग्य है, क्योंकि हमसे तुम्हारी बुराई नहीं देखी जाती। इसी से कुछ बात छेड़ी थी, क्षमा करो, मेरी भूल हुई।

दोहा-गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधर बुधि रानि।

सुरमाया बस बैरिनिहि, सुहृदय जानि पति आनि ॥१६॥

स्थिर बुद्धिकी स्त्री कैकई ने देवताओं की माया के वश में होने के कारण मन्थरा के गुप्त, कपट-भरे प्रिय वचन सुनकर बैरिन मन्थरा को अपनी सुहृद जानकर उस पर विश्वास कर लिया।

सादर पुनि पुनि पूँछत ओही * सबरी गान मृगी जनु मोही
तसिमति फिरी अहइ जसि भाबी * रहसी चेहि घात जनु फाबी

रानी आदर से बार २ पूछने लगी, मानो हिरनी भीलनी का गान सुनकर मोहित होगई है। जैसी होनहार है, वैसी ही मति होगई है। दासी अपना तीर लगा जानकर प्रसन्न हुई।

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ * धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ
सजिप्रतीति बहुविधि गढ़ि छोली * अवध साढ़साती तब बोली

(मन्थरा बोली—) तुम पूछती हो, परन्तु मुझे कहने में डर लगता है, क्योंकि तुमने ही मेरा 'घर फोड़ी' नाम रख दिया है। बात बनाकर और विश्वास जमाकर अवध की साढ़-साती (साढ़े-सात वर्ष की शनि-दशा-रूपी) मन्थरा बोली—

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी * रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी
रहा प्रथम अब ते दिन बीते * समय फिरें रिपु होहिं पिरीते

हे रानी! तुमने जो कहा कि श्रीसीता-राम मुझे प्रिय हैं और राम को तुम प्रिय हो, यह ठीक है। परन्तु जो दिन पहले थे वे अब बीत गये, समय पलट जाने से मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल पोषनिहारा * बिनु जल जारि करइ सोइ छारा
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी * रुँधहु करि उपाय बर बारी

सूर्य-कमलका पोषण करने वाला है, परन्तु बिना जल के वही सूर्य उनको जलाकर राखकर देता है। तुम्हारी जड़ को सौत कौशल्या उखाड़ना चाहती है, उसे तुम सुन्दर बाड़ से रोक दो।

दोहा—तुम्हहि न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुख मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥ १७ ॥

तुमको अपने सुहाग के बल से कुछ सोच नहीं है, राजा को अपने वश में जानती हो। परन्तु राजा मन के मलिन और मुंह के मीठे है, राजा का स्वभाव सीधा है।

चतुर गँभीर राम महतारी * बीचु पाइ निज बात सँभारी
पठए भूप भरतु ननिअउरें * राम मातु मत जानब रउरें

श्रीरामजी की माता बड़ी चतुर और गम्भीर हैं, समय पाकर उसने अपनी बात बना ली। राजा ने भरतजी को ननिहाल भेज दिया, इसमें राम की सलाह समझिये।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें * गरबित भरतु मातु बल पी कें
सालु तुम्हार कौसलहि माई * कपट चतुर नहिं होइ जनाई

जब सौतें तो भली-भाँतिसे मेरी सेवा करती हैं, परन्तु भरतकी माता पतिके घमंडमें रहती है। हे माई ! तुम कौशल्या को खटकती हो, परन्तु चतुर लोगों का कपट समझ में नहीं आता।

राजहि तुम्ह पर प्रीति बिसेषी * सवित सुभाउ सकइ नहिं देखी
रचि प्रपञ्च भूपहि अपनाई * राम तिलक हित लगन धराई

राजा का तुम पर विशेष प्रेम है, उसे कौशल्या सौत-स्वभाव के कारण देख नहीं सकती व इस लिए जाल रचकर और राजाको वशमें करके रामके राजतिलकके लिए मुहूर्त ठहरा लिया है।

यह कुल उचित राम कहुँ टीका * सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका
आगिल बात समुझि डर मोही * दैउ देव फिरि सो फलु ओही

इस सूर्यवंश में उचित है कि श्रीरामजी का राजतिलक हो और यह सबको सुहाता है, और मुझे तो बहुत ही अच्छा लगता है, परन्तु आगे की बात को विचारकर डर लगता है, बिधाता वह फल उसी को दे।

दोहा—रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ विरोधु ।। १८ ।।

इस प्रकार से कुटिलपन की करोड़ों बातें बनाकर कैकई को कपट सिखा दिया और सौतों की सैकड़ों कथायें सुनाईं—जिससे विरोध बढ़ें।

भावी बस प्रतीति उर आई * पूँछि रानि निज सपथ देवाई
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना * निज हित अनहित पसु पहिचाना

होनहार वश कैकईके मनमें विश्वास होगया, रानी अपनी सौगंध दिलाकर पूछने लगी। मंथरा बोली पूछती क्या हो,तुमने अब भी नहीं जाना ? अपना हित-अनहित तो पशु भी पहिचानताहै।

भयउ पाखु दिन सजत समाजू * तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू
खाइअ पहिरिअ राजु तुम्हारें * सत्य कहें नहिं दोषु हमारें

राजतिलक का साज सजते हुए पन्द्रह दिन होगये, और तुमने आज मुझसे खबर पाई है। तुम्हारे राज में खाती पहनती हूँ, अतः तुमसे सच कह देने में मुझ को कोई दोष नहीं।

जौं असत्य कछु कहब बनाई * तौ बिधि देइहि हमहि सजाई
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ * तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ

जो मैं कुछ झूठ बनाकर कहूँ तो विधाता मुझको दण्ड दे। श्रीरामजी को जो कल राज-तिलक हो गया, तो समझ लेना तुम्हारे लिए ब्रह्मा ने विपत्ति का बीज बो दिया।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी * भामिनि भइहु दूध कइ माखी
जौं सुत सहित करहु सेवकाई * तौ घर रहहु न आन उपाई

हे रानी मैं निश्चय पूर्वक कहती हूँ कि तुम दूध में गिरी हुई मक्खी हो जाओगी। जो तुम पुत्र सहित सौत की सेवा करोगी तो घर में रह सकोगी, दूसरा अन्य उपाय नहीं।

दोहा—कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख, तुम्हहि कौसिलाँ देब ।
भरत बन्दिगृह सेइहहिं, लखनु राम कें नेब ॥ १९ ॥

जैसे कद्रू ने विनिता को दुःख दिया था, वैसे ही तुमको कौशल्या देगी । भरत बन्दी गृह का सेवन करेंगे और लक्ष्मण-राम के मुख्याधिकारी होंगे ।

कैकयसुता सुनत कटु बानी * कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी
तन पसेउ कदली जिमि काँपी * कुबरी दसन जीभ तब चाँपी

कैकई-मंथरा की कठोर बात सुन डरकर ऐसी मुरझा गई कि कुछ भी बोल न सकीं । शरीर पसीने से भीग गया और केले के वृक्ष की भाँति काँपने लगी । तब कुबड़ी ने दाँतों-तले जीभ दबा ली ।

कहि कहि कोटि कपट कहानी * धीरज धरहु प्रबोधसि रानी
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली * बकिहि सराहइ मानि मराली

कुबड़ी ने करोड़ों कपट भरी कहानियाँ कहकर रानी को समझाया कि धीरज धरो । कैकई का भाग्य पलट गया, कुचाल उसे प्रिय लगी । बगुली को हँसिनी मानकर सराहने लगी ।

सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी * दाहिन आँखि नित फरकइ मोरी
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने * कहउँ न तोहि मोहबस अपने

सुन, मन्थरा ! तेरी बात ठीक है, मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़कती है । मैं रात्रि को नित्य बुरे सपने देखती हूँ, परन्तु अपने मोहवश तुमसे नहीं कहती ।

कहा करौं सखि सूध सुभाऊ * दाहिन बाम न जानउँ काऊ

हे सखी ! क्या करूँ, मेरा तो सीधा स्वभाव है मैं मित्र व शत्रु कुछ भी नहीं जानती ।

दोहा—अपने जानि न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह ।
केहिं अघ एकहिं बार मोहि, देव दैयँ दुसह दुखु दीन्ह ॥२०॥

मैंने तो अपने जाने आज तक किसी का कुछ बिगाड़ नहीं किया, फिर जाने किस पाप के कारण विधाता ने मुझे अचानक यह दुःसह दुःख दिया ?

नैहर जनमु भरब बरु जाई * जिअय न करबि सवित सेवकाई
अरि बस दैव जिआवत जाही * मरनु नीक तेहि जीवन चाही

नैहर में जाकर भले ही जन्म बिता दूंगी, परन्तु जीते-जी सौत की सेवा नहीं करूँगी । शत्रु के वश में रह कर विधाता जिसको जिलाता है, उसका तो मरना ही भला है ।

दीन बचन कह बहुविधि रानी * सुनि कुबरी तियमाया ठानी
अस कह कहहु मानि मन ऊना * सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना

रानी कैकई ने बहुत प्रकार दीन वचन कहे उन्हें सुनकर मन्थरा ने त्रिया-चरित्र फैलाया । मंथरा ने कहा—हे स्वामिनी ! मन में ओछापन लाकर ऐसा क्यों कहती हो ?

तुम्हारा सुख-सुहाग दिन-दूना बढ़ता रहे।

जेहिं राउर अति अनभल ताका * सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका।
जब तें कुमति सुना मैं स्वामिनि * भूख न बासर नींद न जामिनि

जिसने तुम्हारा ऐसा बुरा बिचारा है, वही इसके अन्तिम फल को प्राप्त करेगी। हे स्वामिनी। जब से मैंने इस कुमति को सुना है, तब से मुझे न दिन को भूख लगती है और न रात को नींद।

पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची * भरत भुआल होहिं यह साँची
भामिनि करहु तो कहौं उपाऊ * है तुम्हरी सेवा बस राऊ

मैंने ज्योतिषियों से पूछा तो उन्होंने रेखा खींचकर कहा कि भरतजी राजा होंगे, यह सत्य है। हे भामिनी! तुम करो तो उपाय बताऊँ? राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं ही।

दोहा—परउँ कूप तुअ बचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि जड़, कस न करब हित लागि॥ २१॥

कैकई बोली—तेरे कहने से कुएँ में भी कूद सकती हूँ, पुत्र और पति को त्याग सकती हूँ। ..रा बड़ा दुःख देखकर तू मुझसे कह रही है तो अपनी भलाई के लिए उसे क्यों न करूँगी?

कुबरीं करि कबुली कैकई * कपट छुरी उर पाहन टेई
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें * चरइ हरित तृन बलि पसु जैसें

मन्थरा ने कैकई को (बलि-पशु बनाकर) कबूल करवाकर कपट-छुरी को अपने हृदय-रूपी पत्थर पर पेनी की, रानी कैकई अपने निकट आने वाले दुःख को कैसे नहीं देखती जैसे बलि का पशु हरी-हरी घास चरता है।

सुनत बात मृदु अन्त कठोरी * देति मनहुँ मधु माहुर घोरी
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं * स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं

मन्थरा की बात सुनने में मीठी है, परन्तु अन्त में कठोर है मानो शहद में विष घोलकर देती है। दासी कहती है—हे स्वामिनी! वह याद है कि नहीं? तुमने जो कथा मुझसे कही थी।

दुइ बरदान भूप सन थाती * माँगहु आजु जुड़ावहु छाती
सुतहि राजु रामहि बनबासू * देहु लेहु सब सवति हुलासू

जो वरदान राजा के पास धरोहर हैं, उन्हें माँगकर आप हृदय को शान्त करो। पुत्र को राजतिलक और राम को वनवास देकर सौत का सब आनन्द छीन लो।

भूपति राम सपथ जब करई * तब माँगेउ जेहिं बचनु न टरई
होइ अकाजु आजु निसि बीतें * बचनु मोर प्रिय मानहु जीतें

राजा जब श्रीरामजी की सौगंध खावें तब वरदान माँगना जिससे वचन न टले। आज की रात व्यतीत होजाने पर काम बिगड़ जायगा, यह मेरी बात प्राणों से प्यारी मानना।

दोहा—बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोप गृहँ जाहु।

काजु सँवारेहु सजगु सब, सहसा जनि पति आहु ॥ २२ ॥

पापिनी कुबड़ी ने बड़ा कुघात कर कहा—कोप—भवन में जाओ और सावधानी से सब काम बनाओ। एकाएक राजा का विश्वास मत करना।

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी * बार बार बड़ि बुद्धि बखानी
तोहि सम हित न मोर संसारा * बहे जात कइ भइसि अधारा

रानी ने कुबड़ी को प्राणों से प्यारी जानकर बार २ उसकी बुद्धि की बड़ाई की और कहा- तेरे समान मेरा हितैषी संसार में कोई नहीं है। दुःखसागर में मुझ बहती हुई को तू सहारा हुई।

जौं बिधि पुरब मनोरथ काली * करौं तोहि चख पूतरि आली
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई * कोप भवन गवनी कैकई

हे सखी! जो ब्रह्मा कल मेरी इच्छा पूरी करदे तो मैं तुझे आंखों की पुतली की तरह रखूँगी। इस प्रकार चेरी का आदर कर कैकई-कोप-भवन में गई।

बिपति बीजु बरषा ऋतु चेरी * भइ भुइँ कुमति कैकई केरी
पाइ कपट जलु अँकुर जामा * बर दोउ दल दुख फल परिनामा

विपत्ति बीज है, वर्षा ऋतु पत्थर है, कैकई की कुमति पृथ्वी हुई, कपटरूपी जल पाकर अंकुर जमा, दोनों वरदान पत्ते हैं, अन्त में सबको दुःख रूपी फल परिणाम होगा।

कोपु समाजु साजि सब सोई * राजु करत निज कुमति बिगोई
राउर नगर कोलाहलु होई * यह कुचालि कछु जान न कोई

कोप का सब साज सजा कैकई जा सोई, राज करते हुए उसे कुबुद्धि ने नष्ट कर दिया। राजमहल और नगर में धूम हो रही थी, इस कुचाल को कोई भी नहीं जानता था।

दोहा—प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगल चार।
एक प्रविसहि एक निर्गमहि, भीर भूप दरबार ॥२३॥

अयोध्यापुरी में सब नर-नारियों ने आनन्द पूर्वक सुन्दर-मंगलमय साज सजाये। कोई अन्दर जाता है, कोई बाहर आता है, इस प्रकार से राजदरबार में बड़ी भीड़ होगई।

बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं * मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी * पूछहिं कुसल खेम मृदु बानी

श्रीरामजी के बाल-सखा राजतिलक सुन मन में बहुत प्रसन्न होते दस-पांच मिलकर श्रीरामजी के पास जाते। प्रभु उनका प्रेम पहिचानकर आदर करते और कुशल-क्षेम पूछते।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई * करत परसपर राम बड़ाई
को रघुबीर सरिस संसारा * सीलु सनेह निबाहनिहारा

अपने प्रिय सखा श्रीरामजी की आज्ञा पाकर लौटते और आपस में श्रीरामजी की बड़ाई करते कि संसार में श्रीरघुनाथजी के समान शील और स्नेह का निवाहने वाला कौन है?

जेहिं जेहिं जोनि करमबस भ्रमहीं * तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं

सेवक हम स्वामी सियनाहू * होउ नात यह और निवाहू

ईश्वर हमको यही दें कि हम कर्मवश जिस २ यौनि-में जन्म लें, वहाँ-वहाँ हम सेवक हों और सीतापति श्रीरामजी हमारे स्वामी हों और अन्त तक यह नाता निभ जाय।

अस अभिलाषु नगर सब काहू * कैकयसुता हृदयँ अति दाहू
को न कुसंगति पाइ नसाई * रहइ न नीच मतें चतुराई

नगर में सबकी ऐसी ही इच्छा थी, परन्तु कैकई के मन में अति जलन थी। कुसङ्गति से कौन नहीं बिगड़ता ? ओछे की सलाह से चतुराई नहीं रहती।

दोहा–साँझ समय सानन्द नृप, गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेहँ॥ २४॥

सन्ध्या समय महाराज दशरथजी आनन्दपूर्वक कैकई के महल में गये, मानो स्नेह ही देह धारण कर निठुरता के पास गया हो।

कोप भवन सुनि सकचेउ राउ * भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ
सुरपति बसइ बाहँबल जाके * नरपति सकल रहहिं रुख ताके

कोप-भवन सुनकर राजा सहम गये, डर के मारे पैर आगे नहीं बढ़ते। इन्द्र भी जिसके बाहु-बल से निर्भय बसता है, सब राजा लोग जिसके रुख पर चलते हैं।

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई * देखहु काम प्रताप बड़ाई
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे * ते रतिनाथ सुमन सर मारे

ऐसे राजा दशरथजी स्त्रीका क्रोध सुनकर सूख गये, कामदेव का प्रताप और बढ़ाई तो देखो। जो त्रिशूल, वज्र, तलवार को भी सहने वाले हैं, वे भी रतिनाथ के पुष्प-वाणों से मारे जाते हैं।

सभय नरेश प्रिया पहिं गयऊ * देखि दशा दुखु दारुन भयऊ
भूमि सयन पटु मोट पुराना * दिए डारि तनु भूषन नाना

महाराज डरते २ प्रिया के पास गये, उसकी दशा देख उन्हें घोर दुःख हुआ। वह पृथ्वी पर पड़ी मोटा व पुराने कपड़े पहने थी। अनेक प्रकार के गहने उतारकर फेंक दिये थे।

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी * अन अहिवातु सूच जनु भावी
जाइ निकट नृप कह मृदु बानी * प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी

दुर्बुद्धि कैकई का कुवेष कैसा सजा, मानो भावी विधवापन की सूचना दे रही हो। निकट जाकर राजा कोमल वाणी से बोले–हे प्राण प्यारी ! तुम किस कारण क्रोधित हो ?

छन्द–केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरमु ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतव्यता बस काम कौतुक लेखई॥

रानी ! किस प्रकार ... कैकई की ... किया,

त्यों ही उसने झपटकर क्रोध सहित हटा दिया और ऐसे देखने लगी, मानो नागिन क्रूर-दृष्टि से देख रही है। दोनों वरों की वासना उस नागिन की दो जीभें हैं दोनों बरदान दांत हैं, जो काटने के लिए मर्म-स्थल देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि होनहार के वश होकर महाराज दशरथ इसे काम-क्रीड़ा ही समझ रहे हैं।

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक बचनि ;
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ।।२५।।

राजा ने बार-बार कहा—हे सुमुखी ! हे सुलोचनी ! हे पिक-बयनी ! हे गज-गामिनी ! अपने क्रोध का कारण तो मुझे सुनाओ।

अनहित तोर प्रिया केहिं कीन्हा * केहिदुइसिर केहिजमु चहलीन्हा
कहु केहि रङ्कहि करौं नरेसू * कहु केहि नृपहि निकासौं देसू

हे प्रिये ! किसने तुम्हारा अनहित किया है ? किसके दो सिर हैं ? किसको यमराज लेना चाहता है ? कहो किस कंगाल को राजा बना दूं, किस राजा को देश से निकाल दूं।

सकहुँ तोहि अरि अमरउमारी * काह कीट बपुरे नर नारी
जानसि मोर सुभाउ बरोरू * मनु तब आनन चन्द्र चकोरू

तुम्हारा बैरी यदि कोई देवता भी हो तो मैं उसे भी मार सकता हूं, फिर कीड़े के तुल्य स्त्री-पुरुष क्या चीज हैं? प्रिय ! तुम मेरा स्वभाव जानती हो, मेरा मन तुम्हारे चन्द्रमुख का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सुरबस मोरें * परिजन प्रजा सकल बस तोरें
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही * भामिनी राम सपथ सत मोही

हे प्रिये ! मेरे प्राण पुत्र, धन, कुटुम्ब, प्रजा सब तुम्हारे अधीन हैं। हे कामिनी ! यदि मैं तुमसे कुछ कपट करके कहता होऊं तो मुझे श्रीरामजी की सौ बार सौगन्ध है।

बिहसि मागु मन भावति बाता * भूषन सजहु मनोहर गाता
घरी कुघरी समुझि जिय देखु * बेगि प्रिया परिहरहु कुबेषू

अपनी मनचाही बात हँसकर माँगलो और अपने सुन्दर अङ्गों को आभूषणों से सजाओ। हे प्रिय ! समय-कुसमय को तो मनमें समझकर देखो और शीघ्र ही इस कुवेश को दूर करो।

दोहा—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिफन्द ।
भूषन सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फन्द ।।२६।।

यह सुनकर मन्द-बुद्धि कैकई सौगन्ध को बड़ी जान-हँसकर उठी और गहने पहिनने लगी। मानो हिरन को देखकर भीलनी फन्दा डाल रही हो।

पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी * प्रेम पुलकि मृदु मञ्जुल बानी
भामिनि भयउ तोर मन भावा * घर घर नगर अनन्द बधावा

फिर राजा अपने मन में उसको सुहृदय जानकर प्रेम से पुलकायमान होकर कोमल और मधुर वाणी से बोले—हे भामिनी ! तुम्हारा मन-चाहा होगया, नगर में घर-घर आनन्द मंगल हो रहा।

रामहि देउँ काल जुबराजू * सजहि सुलोचनि मङ्गलसाजू
धधकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू * जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू

हे सुनयनी ! श्रीरामजी को काल मैं युवराज-पद दूंगा, तुम मङ्गल साज सजाओ। यह सुनते ही उसका कठोर हृदय धधक उठा, मानो पका हुआ बाल-तोड़ छू गया हो।

ऐसिउ पीर बिहँसि तेहिं गोई * चोर नारि जिमि प्रकट न रोई
लखहिं न भूप कपट चतुराई * कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई

इस प्रकार की पीड़ा को भी हँसकर छिपा लिया, जैसे चोरकी स्त्री प्रकट में नहीं रोती, राजा ने उसका यह कपट नहीं समझा, क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की गुरु-मन्थरा की सिखाई थी।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू * नारि चरित जलनिधि अवगाहू
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी * बोली बिहँसि नयन मुहु मोरी

यद्यपि राजा नीति में निपुण थे, परन्तु स्त्री-चरित्र रूपी समुद्र भी अथाह है। फिर कपट से स्नेह बढ़ाकर कैकई मुस्कराकर कटाक्ष फेंक कर मुँह मटकाकर बोली।

दोहा–मागु मागु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
दैन कहेउ बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु ॥ २७ ॥

हे प्राणनाथ ! आप 'माँग माँग' तो कहा करते हैं, परन्तु कभी कुछ देते-लेते नहीं। दो बरदान देने को कहे थे, उनके मिलने में भी सन्देह है।

जानेउँ मरमु राउ हँस कहई * तुम्हहि कोहाब परमप्रिय अहई
थाती राखि न मागेउ काऊ * बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ

राजा हँसकर बोले–अब मैंने तुम्हारा भेद जाना तुम्हें तो रूठना ही बहुत प्रिय है। जो बरदान तुमने धरोहर रक्खे थे, उनको कभी माँगा नहीं, मैं भोले स्वभाव के कारण भूल गया।

झूँठेहुँ दोष हमहिं जनि देहू * दुइ कै चारि माँगि किन लेहू
रघुकुल रीति सदा चलि आई * प्रान जाहुँ पर बचनु न जाई

हमको झूँठा दोष मत दो, चाहे दो के बदले चार माँग लो। हे प्रिये ! रघुबंसियों की तो सदा से यह रीति चली आई है कि प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु वचन नहीं जाते।

नहिं असत्य सम पातक पुञ्जा * गिरि सम होहिं कि कोटिक गुञ्जा
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए * बेद पुरान बिदित मुनि गाए

झूँठ के बराबर-पाप के समूह भी नहीं होते, करोड़ों घुघचियाँ क्या पहाड़ के समान हो सकती हैं ? सत्य ही सब सुकृत की जड़ है, यह बात वेद-पुराणों में विदित है और मुनि भी ऐसा कहते हैं।

तेहि पर राम शपथ करि आई * सुकृत सनेह अवधि रघुराई
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली * कुमति कुबिहँग कुलह जनु खोली

इतने पर भी मैंने श्रीरामजी की सौगन्ध खाई है, जो सब सुकर्म और स्नेह की सीमा है। इस प्रकार बात को दृढ़ करके दुष्ट-बुद्धि कैकई हँस कर कहने लगी—मानो कुमति-रूपी बाज की टोपी खोल दी हो।

दोहा—भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहङ्ग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाँड़न चहत, बचन भयङ्करु बाजु ॥२८॥

राजा का मनोरथ सुन्दर बन है और सुख-मनोहर पक्षियों का झुण्ड है, उस पर कैकई रूपी भीलनी अपना बचन रूपी भयङ्कर बाज छोड़ना चाहती है।

※ मास पारायण—तेरहवाँ विश्राम ※

सुनहु प्रानपति भावत जी का ※ देहु एक बर भरतहि टीका
माँगउँ दूसर बर कर जोरी ※ पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी

हेप्राणनाथ!सुनिये,मेरा मन-चाहा एक वरदान तो यह दीजिये कि भरतजी को राजतिलक हो और दूसरा वरदान मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ सो-हे नाथ! मेरे उस मनोरथ को पूरा करिये।

तापस बेष बिसेषि उदासी ※ चौदह बरस रामु बनवासी
सुनि कटु बचन भूप हिय सोकू ※ ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू

तपस्वी का वेष धारण कर, विशेष उदासीन भाव से चौदह वर्ष पर्यन्त श्रीरामजी वन में वास करें। ऐसे बचन सुनकर राजा के मन में ऐसा दुःख हुआ, जैसे चकवा चन्द्रमा की किरणों को छूते ही व्याकुल हो जाता है।

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा ※ जनु सचान बन झपटेउ लावा
बिबरन भयउ निपट नरपालू ※ दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू

राजा ऐसे सहम गये कि कुछभी कह न सके,जिस प्रकार बाजके झपटने से वनमें बटेर सहम जाता है। राजा का रङ्ग बिलकुल बिगड़ गया, मानो बिजली का मारा ताड़ का वृक्ष हो।

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन ※ तनु धरि सोचु लागि जनु सोचन
मोर मनोरथ सुरतरु फूला ※ फरत करिनि जिमि हतेउ समूला
अवध उजारि कीन्हि कैकई ※ दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई

हाथ माथे पर रखकर, आँखें मूंदकर राजा ऐसे सोचने लगे—मानो सोच ही शरीर धारण कर सोच रहा है, वे सोचने लगे—हाय! मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परन्तु फल लगते ही कैकई ने उसे हथिनी की तरह जड़ सहित उखाड़कर फेंक दिया। कैकई ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और अचल विपत्ति की नींव जमा दी।

दोहा—कवनें अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास ॥२९॥

क्या होने वाला था, क्या हो गया—इससे स्त्री का विश्वास ही जाता रहा। जैसे योग की सिद्धि के फल के समय अविद्या-योगी का नाश कर देती है।

एहि विधि राम मनहि मन झाँखा * देखि कुभाँति कुमति मन माखा
भरत कि राउर पूत न होही * आनेहु मोल बेसाहि कि मोही

इस प्रकार राजा मन ही मन दुःखी हुए, तब बुरी भाँति देखकर दुर्बुद्धि कैकई मनमें क्रोध करके बोली-क्या भरत आपका पुत्र नहीं, क्या आपने मूल्य देकर मुझे खरीदा था ?

जो सुनिसरु अस लाग तुम्हारें * काहे न बोलहु बचनु सँभारे
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं * सत्यसिंधु तुम्ह रघुकुल माहीं

जो सुनते ही आपके बाण-सा लगा तो आप सोच-विचार कर वचन क्यों नहीं बोले ? उत्तर दीजिये और 'हाँ' या 'ना' कीजिये, आप तो रघुवंश में सत्य के समुद्र हैं।

देन कहेहु अब जनि बर देहू * तजहु सत्य जग अपजस लेहू
सत्य सराहि कहेहु बरु देना * जानेहु लेइहि माँगि चबेना

आपने वरदान देने को कहा था,अब मत दीजिए,सत्य को त्यागकर जगत में अपयश लीजिए। सत्य की प्रशंसा करके वर देने को कहा था, जाना था-यह कोई चना-चबैना माँग लेगी।

सिव दधीचि बलि जो कछु भाषा * तनु धन तजेउ बचनु पनु राखा
अति कटु बचनु कहत कैकई * मानहुँ लौन जरे पर देई

राजा शिवि, दधीचि व बलि ने जो कहा, तन और धन को त्यागकर वचन को पाला। इस प्रकार बहुत से कटु वचन कहने लगी मानो जले पर नमक छिड़क रही है।

दोहा—धरम धुरन्धर धीर धरि, नयन उघारे रायँ।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि, मारेसि मोहि कुठायँ ॥३०॥

धर्म धुरन्धर दशरथजी ने धैर्य-धारणकर नेत्र खोले और सिर धुनकर, लम्बी-साँस लेते हुए बोले तूने मुझे कुठौर मारा है।

आगें दीखि जरत रिस मारी * मनहुँ रोष तरवारि उघारी
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई * धरी कूबरी सान बनाई

क्रोधसे जलती हुई कैकई इस प्रकार दिखाई पड़ी-मानो क्रोधरूपी नङ्गी तलवार खड़ी हो। कुमति तलवार की मूंठ है, निष्ठुरता धार है, जिसे कुबड़ी रूपी सान पर तेज किया गया है।

लखी महीप कराल कठोरा * सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा
बोले राउ कठिन कर छाती * बानी सबिनय तासु सोहाती

राजा ने उसे भयङ्कर और कठोर देखकर सोचा कि क्या यह सचमुच मेरा जीवन लेगी ? राजा कठोर छाती कर नम्रता से कैकई को प्रिय लगने वाली वाणी बोले—

प्रिय बचन कस कहसि कुभाँती * भीर प्रतीति प्रीति कर हाँती
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी * सत्य कहउँ करि शंकर साखी

हे प्रिये ! वृथा विश्वास और प्रेम को नष्ट करके बुरी भाँति से वचन क्यों कहती हो ? मेरे तो भरत और श्रीराम दोनों नेत्र (समान) हैं, शिवजी को साक्षी करके सत्य कहता हूँ।

अवसि दूत मैं पठइब प्राता * ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता
सुदिन सोधि सबु साज सजाई * देउँ भरत कहुँ राजु बजाई

कल प्रातः मैं अवश्य दूत भेजूंगा, सुनते ही तुरन्त दोनों भाई आ जावेंगे फिर अच्छा दिन विचार कर सब साज सजाकर धूम-धाम के साथ भरत को राज-गद्दी दे दूंगा।

दोहा—लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट विचारि जियँ, करत रहेउँ नृप नीति ॥३१॥

श्रीरामजी को राज्य का लालच नहीं है और भरत के ऊपर उनका बड़ा प्रेम है। यह तो मैं ही अपने मन में छोटे-बड़े का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ * राम मातु कछु कहेउ न काऊ
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछें * तेंहि तें परेउ मनोरथ छूछें

मैं श्रीरामजी की सौबार सौगंध खाकर सच्चे भाव से कहता हूं कि श्रीरामकी माता ने कभी कुछ नहीं कहा। मैंने सब काम तुमसे बिना पूछे किये, इसी से मेरा मनोरथ खाली गया।

रिसि परिहरु अब मङ्गल साजू * कछु दिन गएँ भरत जुबराजू
एकहि बात मोहि दुख लागा * बर दूसर असमंजस मागा

अब क्रोध को त्यागकर मंगल-साज सजाओ, कुछ दिन बाद भरत युवराज होंगे, पर तुम्हारी एक ही बात से मुझे बड़ा दुःख हुआ कि तुमने दूसरा वर बड़ा ही द्विविधा वाला मांगा है।

अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा * रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा
कहु तजि रोषु राम अपराधू * सब कोउ कहइ राम सुठि साधू

अभी तक उसकी आग से हृदय जल रहा है, क्या यह क्रोध में, हँसी में या सचमुच में सत्य है? क्रोध को त्यागकर राम का अपराध तो बताओ, राम को तो सब कहते हैं कि बहुत ही सीधे हैं।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू * अब सुनि मोहि भयउ संदेहू
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला * सो किमि करइ मातु प्रतिकूला

तुमभी तो रामजी की बड़ाई कर, स्नेह करती थीं, परन्तु अब सुनकर मुझे संदेह हुआ। जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल हो, वह माता के विरुद्ध कोई बात कैसे कर सकता है।

दोहा—प्रिया हास रिस परिहरहु, माँगि विचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि, भरत राजअभिषेकु ॥३२॥

हे प्रिये! हंसी और क्रोध का त्याग करो और ज्ञान से विचार कर-वर मांगो, जिससे अब मैं भरत का राज्याभिषेक नेत्र भरकर देख सकूं।

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना * मनि बिनु फनिकु जिए दुख दीना
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं * जीवनु मोर राम बिनु नाहीं

मछली चाहें जलके बिना जीती रहे, मणि के बिना सर्प भले ही दीन-दुःखी होकर जीता रहे। परंतु मैं स्वभाव से निष्कपट होकर कहता हूँ कि मेरा जीवन राम के बिना नहीं है।

समुझि देखु जियँ प्रिय प्रवीना * जीवनु राम दरस आधीना
सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई * मनहुँ अनल आहुति घृत परई

हे चतुर प्रिये ! अपने जी में समझ देखो, मेरा जीवन श्रीराम-दर्शन के आधीन है। राजा के कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकई जल उठी, मानो आग में घी की आहुति पड़ी हो।

कहइ करहु किन कोटि उपाया * इहाँ न लागहि राउरि माया
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं * मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं

कैकई बोली—हे राजन् करोड़ों उपाय क्यों न करो, पर यहां आपकी माया न चलेगी, या तो मेरा मांगा वरदान दो, अथवा 'नाहीं' करके अपयश लो मुझे बहुत प्रपंच नहीं सुहाता।

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने * राम मातु भलि सब पहिचाने
जस कौसिला मोर भल ताका * तस फलु उन्हहि देउँ करि साका

श्रीरामचन्द्रजी सीधे हैं, आप भी सीधे और चतुर हैं तथा राम की माता भी बहुत भोली है मैंने सबको पहिचान लिया। कौशल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है, मैं भी उसी प्रकार उसे फल दूंगी—जो याद रहेगा।

दोहा—होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस, नृप समुझिअ मन माहिं ॥ ३३ ॥

प्रातःकाल होते ही मुनि वेष धारण कर जो श्रीराम वन को नहीं जायेंगे तो, हे राजन! मेरा मरना और आपका अपयश होगा, ऐसा मनमें समझ लें।

असकहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी * मानहुँ रोष तरङ्गिनि बाढ़ी
पाप पहार प्रगट भइ सोई * भरी क्रोध जल जाइ न जोई

ऐसा कहकर कुटिल-कैकई उठकर खड़ी होगई, मानो क्रोध रूपी नदी उमड़ी हो। वह पापरूपी पहाड़ से उत्पन्न हुई, क्रोधरूपी जल से भरी है। जो देखी नहीं जाती।

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा * भँवर कूबरी बचन प्रचारा
ढाहत भूप रूप तरु मूला * चली बिपति बारिध अनुकूला

दोनों 'वर' उस नदी के दो किनारे हैं, कैकई का कठोर हठ उसकी धारा है, कुबड़ी के वचनों की प्रेरणा उसकी तरंगें हैं। वह दशरथरूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ती हुई विपत्ति-रूपी समुद्र की ओर चली।

लखि नरेस बात फुरि साँची * तिय मिस मीचु सीस पर नाची
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी * जनि दिनकर कुल होसि कुठारी

राजा ने समझ लिया कि बात सच्ची है, स्त्री के बहाने से मेरी मृत्यु सिर पर नाच रही है। चरण पकड़ कैकई को बैठाया और विनती करके बोले कि सूर्यवंश के लिए कुल्हाड़ी मत बन।

मागु माथ अबहीं देउँ तोही * राम बिरहँ जनि मारेसि मोही
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती * नाहित जरिहि जनम भरि छाती

यदि मेरा मस्तक माँगे तो अभी दे दूं, पर श्रीरामजी के वियोग से मुझे मत मार। जिस प्रकार बने—श्रीराम को रख ले, नहीं तो जन्म भर दुःख से तेरा हृदय जलता रहेगा।

दोहा—देखी ब्याधिअ साधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ॥ ३४॥

जब राजा ने देखा कि रोग असाध्य है, तब माथा धुनकर पृथ्वी पर गिर पड़े और अत्यन्त दीन वाणी से हा राम! हा रघुनाथ! कहने लगे।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता * करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता
कण्ठु सूख मुख आव न बानी * जनु पाठीनु दीन बिनु पानी

व्याकुल होने से राजा के सब अङ्ग शिथिल पड़ गये, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ दिया। गला सूख गया, मुंह से बात नहीं निकलती, जैसे बिना जल के मछली दुःखी होगई हो।

पुनि कह कटु कठोर कँकई * मनहुँ धाय महुँ माहुर देई
जौं अन्तहुँ अस करतबु रहेऊ * माँगु माँगु तुम्ह केहिं बल कहेऊ

कैकई फिर कड़ुवे और कठोर वचन बोली-मानो घाव में विष लगा रही हो। जो अन्त में ऐसा ही करना था, तो आपने 'माँग-माँग' किस बल पर कहा था?

दुइ कि होइ इक समय भुआला * हँसब ठठाइ फुलउब गाला
दानि कहावउ अरु कृपनाई * होइ कि खेम कुशल रौताई

हे राजन्! दोनों काम क्या एक ही समय में हो सकते हैं-खिलखिलाकर हँसना व गाल फुलाना, दानी कहलाना और कंजूसी करना? क्या वीरता के साथ कुशलता भी हो सकती है?

छाँड़हु वचन कि धीरज धरहू * जनि अबला जिमि करुना करहू
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी * सत्यसंध कहुँ तृन समु बरनी

या तो वचन छोड़ दीजिये या धीरज धरिये, स्त्रियों की तरह करुना न करिये। देह, स्त्री, पुत्र, मकान, धन और पृथ्वी-यह सभी सत्य-प्रतिज्ञों को तिनके के समान कहे हैं।

दोहा—मरम वचन सुनि राउ कह, कछुक दोष नहिं तोर।
लागेउ तोहि पिशाच जिमि, काल कहावत मोर॥ ३५॥

ऐसे धर्म-पूर्ण वचन सुनकर राजा ने कहा—तुम्हारा कुछ दोष नहीं है, तुम्हें तो मानो काल-रूपी पिशाच लगा है, वही तुमसे यह सब कहलवा रहा है।

चहत न भरत भूपतहिं भोरें * विधि बस कुमति बसी जिय तोरें
सो सबु मोर पाप परिनामू * भयउ कुठाहर जेहिं विधि बामू

भरतजी भूलकर भी राज-तिलक नहीं चाहते, होनहार वश ही यह कुबुद्धि तुम्हारे हृदय में बसी है। यह सब मेरे पापों का ही फल, है जिससे कुसमय में विधाता विपरीत होगया।

सुबस बसहि फिर अवध सुहाई * सब गुनधाम राम प्रभुताई
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई * होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई

सुहावनी अयोध्या फिर सुन्दर रीति से बसेगी और सब गुणों के धाम श्रीरामजी की प्रभुता भी होगी। सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोकों में रामजी की बड़ाई होगी।

तोर कलंक मोर पछिताऊ * मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ
अब तोहि नीक लाग करु सोई * लोचन ओट बैठु मुह गोई

परन्तु तेरा कलङ्क व मेरा पछितावा मरने पर भी नहीं मिटेगा, न कभी दूर होगा। अब तुझे जो कुछ अच्छा लगे, सो कर। परन्तु मुंह छिपाकर मेरी आँखों के आगे से हटकर बैठ।

जब लगि जिऔं कहउँ करजोरी * तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी
फिर पछितैहसि अन्त अभागी * मारसि गाय नहारू लागी

मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता रहूँ, तब तक फिर कुछ भी मत कहना। अरी अभागिन! अन्त में फिर तू ऐसे पछतावेगी, जैसे ताँत के लिए कोई गाय मारे।

दोहा—परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु, जागत मनहुँ मसानु ॥ ३६ ॥

राजा ने करोड़ों भाँति से समझाकर कहा कि बना हुआ काम क्यों बिगाड़ती है? फिर थककर पृथ्वी पर गिर पड़े, पर कपट में चतुर कैकई ने कुछ नहीं कहा-मानो श्मशान जगा रही हो।

राम राम रट बिकल भुआलू * जनु बिनु पंख विहँगि बेहालू
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई * रामहि जाइ कहैं जनि कोई

राम-राम रटते हुए राजा ऐसे व्याकुल हुए, जैसे बिना पंख के पक्षी बेचैन हो जाता है। अपने हृदय में मनाने लगे कि सबेरा न हो और जाकर श्रीरामजी से कोई यह समाचार न कहे।

उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुर * अवध विलोकि सूल होइहि उर
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई * उभय अवधि विधि रची बनाई

हे रघुवंश के सूर्यदेव! आप उदय न हों, क्योंकि अयोध्या की दशा देखकर हृदय में दुःख होगा। राजा की प्रीति और कैकई की निष्ठुरता दोनों को ब्रह्मा ने सीमा पर्यन्त बनाया है।

बिलपति नृपहि भयउ भिनुसारा * बीना बेनु शंख धुनि द्वारा
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक * सुनत नृपहि लागहिं जनु सायक

राजा को इस प्रकार विलाप करते हुए सबेरा हो गया। वीणा, बाँसुरी शंख आदि की ध्वनि राज-द्वार पर होने लगी। भाट लोग यश बखानने लगे, गवैया गाने लगे, उनका स्वर राजा को बाण के समान लगता।

मङ्गल सकल सोहाहिं न कैसें * सह गामिनिहि विभूषन जैसें
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू * राम दरस लालसा उछाहू

राजा को सम्पूर्ण मङ्गल कैसे अच्छे नहीं लगते-जैसे पति के साथ सती होने वाली स्त्री को गहने अच्छे नहीं लगते, उस रात किसी को नींद नहीं आई, उनके हृदय में श्रीरामजी के दर्शन की इच्छा और उमङ्ग थी।

दोहा—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रवि देखि।

जागे अजहुँ न अवधपति, कारनु कवन बिसेसि ॥ ३७ ॥

राजद्वार पर सेवकों और मन्त्रियों की भीड़ लगगई, सूर्य को उदय हुआ देख सब कहने लगे कि अवधपति महाराज दशरथजी आज अभी तक नहीं जागे, इसका क्या विशेष कारण है ?

पिछले पहर भूप नित जागा ※ आजु हमहि बड़ अचरजु लागा
जाहु सुमन्त जगावहु जाई ※ कीजिअ काजु रजायसु पाई

नित्य तो पिछले पहर ही महाराज जगते थे, आज हमको बड़ा आश्चर्य है। हे सुमन्तजी जाओ और जाकर राजा को जगाओ, जिससे आज्ञा पाकर हम कार्य आरम्भ करें।

गए सुमन्त तब मन्दिर माहीं ※ देखि भयावनु जात डेराहीं
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा ※ मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा

यह सुन, सुमन्त राज-मन्दिर में गये, उसे भयावना देखकर जाते हुए डरते हैं। मानो वह खाने के लिए दौड़ता है, जो देखा नहीं जाता, मानो विपत्ति ने अपना डेरा डाल लिया हो।

पूँछें कोउ न उतरु देई ※ गए जेहिं भवन भूप कैकई
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई ※ देखि भूप गति गयउ सुखाई

पूछने पर कोई उत्तर नहीं देता, तब वे वहाँ गये-जिस महल में महाराज और कैकई थे। 'जय-जीव' कहकर सिर नवाकर सुमन्तजी बैठे और महाराज की दशा देखकर सूख गये।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ ※ मानहु कमल मूल परिहरेऊ
सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी ※ बोली असुभ भरी सुभ छूछी

राजा चिन्ता से व्याकुल विदीर्ण हुए पृथ्वी पर पड़े थे, मानो कमल-जड़ से उखड़ पड़ा हो। मन्त्री मारे डरके कुछ पूछ नहीं सकते, इतने में ही अशुभ भरी और शुभ से छूँछी कैकई बोली-

दोहा—परी न राजहि नींद निसि, हेतु जानि जगदीसु ।
रामु रामु रट भोर किया, मरमु न कहेऊ महीसु ॥ ३८ ॥

महाराज को रात भर नींद नहीं आई इसका कारण भगवान ही जानता है। राजा ने राम-राम रटकर सवेरा कर दिया, परन्तु इसका भेद महाराज ने कुछ नहीं बताया।

आनहु रामहि बेगि बोलाई ※ समाचार तब पूँछेहु आई
चलेउ सुमन्त राय रुख जानी ※ लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी

श्रीरामजी को शीघ्र बुला लाओ, तब आकर हाल पूछ लेना, सुमन्त राजा की अनुमति जानकर चले और मन में समझ लिया कि रानी ने कुछ खोटाई की है।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ ※ रामहि बोलि कहहि का राऊ
उर धरि धीरजु गयउ दुआरे ※ पूँछहिं सकल देखि मनु मारे

सोच के कारण सुमन्त के पाँव आगे नहीं बढ़ते, श्रीरामजी को बुला कर महाराज न जाने क्या कहेंगे ? यह सोचते जाते थे। फिर मन में धैर्य धरकर द्वार पर गये तो सुमन्त को मन मारे देखकर सब लोग पूछने लगे।

समाधानु करि सो सबही का * गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका
रामु सुमन्त्रहि आवत देखा * आदर कीन्ह पिता सम लेखा

सब लोगों को समझाकर सुमन्त फिर वहाँ गए जहाँ सूर्यवंश में श्रेष्ठ श्रीरामजी थे। श्रीरामजी ने सुमन्तजी को आते देखा तो पिता के समान जानकर आदर किया।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई * रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई
रामु कुभाँति सचिवसँग जाहीं * देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं

उन्होंने श्रीरामजी के मुख की ओर देखकर राजा की आज्ञा सुनाई, फिर रघुकुल के दीपक श्रीरामजी को अपने साथ लिवाकर चले। श्रीरामजी बुरी तरह सुमन्तजी के साथ जा रहे हैं, यह देखकर सब लोग जहाँ-तहाँ दुःखी हो गये।

दोहा–जाइ दीख रघुबंस मनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमिपरेउ लखि सिंघनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥ ३९ ॥

रघुवंश-मणि श्रीरामचन्द्रजी ने जाकर देखा कि महाराज बुरी तरह से पड़े हैं, जैसे बूढ़ा हाथी सिंहनी को देखकर सहम कर गिर जाता है,

सूखहिं अधर जरहि सबु अंगू * मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू
सरूप समीप देखि कैकेई * मानहुँ मीचु घरी गनि लेई

देखा कि राजा के होठ सूख रहे हैं और सब अङ्ग जल रहे हैं, मानो मणि के बिना सर्प दुखी हो रहा है। पास ही क्रोध से भरी हुई कैकई बैठी देखी, मानो राजा की मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही है।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ * प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ
तदपि धीर धरि समय बिचारी * पूँछी मधुर बचन महतारी

श्रीरामजी का दयामय कोमल स्वभाव है, उन्होंने प्रथम ही दुःख देखा, इससे पहले दुःख सुना भी न था। तो भी धीरज धर और विचार कर मीठे वचनों से माता कैकई से पूछा-

मोहि कहु मातु तात दुख कारन * करिअ जतन जेहि होइ निवारन
सुनहु राम सबु कारन एहू * राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू

हे माता! पिता के दुःख का कारण तो मुझसे कहो, जिससे उसे दूर करने का उपाय किया जाय? कैकई बोली–सुनो, राम! सब कारण यही है कि राजा का तुम पर अधिक स्नेह है।

देन कहेउ मोहि दुइ बरदाना * माँगेउ जो कछु मोहि सुहाना
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू * छाँड़ि न सकहि तुम्हार सँकोचू

उन्होंने मुझे दो वरदान देने को कहा था, सो जो कुछ मुझे अच्छा लगा, वह मैंने माँगा। उसे सुनकर राजा के हृदय में सोच हुआ है। क्योंकि यह तुम्हारा संकोच छोड़ नहीं सकते।

दोहा–सुत सनेह इत बचन उत, सङ्कट परेउ नरेसु।
सकहु तौ आयसु धरहु सिर, मिटइ कठिन कलेसु ॥ ४० ॥

एक ओर पुत्र का स्नेह और दूसरी ओर प्रतिज्ञा, इससे राजा धर्म-सङ्कट में पड़ गये हैं। हो सके तो पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर राजा का कठिन क्लेश मेट दो।

निधरक बैठि कहइ कटु बानी * सुनत कठिनता अति अकुलानी
जीभ कमान बचन सर नाना * मनहुँ महीप मृदु लच्छ समाना

निधड़क बैठी हुई कैकई कठोर बचन कहती है, जिन्हें सुनकर निठुरता भी व्याकुल होगई। जीभ कमान के समान है, कटु-वचन अनेक बाण हैं और राजा का कोमल हृदय निशान के समान है।

जनु कठोरपनु धरें सरीरू * सिखइ धनुष बिद्या बर बीरू
सबु प्रसँग रघुपतिहि सुनाई * बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई

मानो कठोरपन वीर योद्धा का शरीर धारण कर धनुष-विद्या सीख रहा है। सब प्रसङ्ग रामजी को सुनाकर ऐसे बैठी है, मानो साक्षात् निठुरता शरीर धारण किये बैठी हो।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू * रामु सहज आनन्द निधानू
बोले बचन बिगत सब दूषन * मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन

सूर्यबंश के सूर्य,स्वभाव से ही आनन्द निधान श्रीरामजी मन में मुस्कराकर सब दोषों से रहित ऐसे कोमल और मनोहर वचम बोले–जो मानो वाणी को भली-भाँति भूषित कर रहे हैं।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी * जो पितु मातु बचन अनुरागी
तनय मातु पितु तोष निहारा * दुर्लभ जननि सकल संसारा

हे माताजी ! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है–जो मात-पिता के वचनों में अनुराग रखता हो। ऐसा माता-पिता को प्रसन्न करने वाला पुत्र संसार में दुर्लभ है।

दोहा–मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ हितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर॥ ४१॥

मुनि-मण्डली से मिलाप होने के कारण वन में सब प्रकार मेरा विशेष हित होगा। उसमें पिताजी की आज्ञा और हे माता ! तुम्हारी सम्मति है।

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू * बिधिसब बिधि मोहि सन्मुखआजू
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा * प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा

प्राण-प्रिय भरतजी राज्य पावेंगे, आज विधाता सब प्रकार से मुझ पर प्रसन्न है। यदि मैं ऐसे कार्य के लिए भी बन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में मेरी प्रथम गणना होगी।

सेवहिं अरण्डु कलपतरु त्यागी * परिहरि अमृत लेहि बिषु माँगी
तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं * देखु बिचारि मातु मन माहीं

जो कल्पवृक्ष को छोड़कर, अरण्ड की सेवा करते हैं,जो अमृत को छोड़कर विष माँगते हैं, वे भी ऐसा सुअवसर पाकर नहीं चूकते। हे माता ! मन में विचार कर देख लो।

अम्ब एक दुख मोहि बिसेषी * निपट बिकल नरनायकु देखी

थोरिहिं बात पितहि दुखु भारी * होति प्रतीति न मोहि अवतारी

हे माता ! एक ही बात का मुझे विशेष दुःख है कि महाराज को मैं बहुत व्याकुल देख रहा हूँ । हे माता ! बात तो छोटी-सी है, परन्तु पिताजी को भारी दुःख हो रहा है, इसलिए मुझे विश्वास नहीं होता ।

राउ धीर गुन उदधि अगाधू * भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू
जातें कछु न कहत मोहि राऊ * मोरि सपथ तोहि कहु सति भाऊ

महाराज तो धैर्यवान् और गुणों के अथाह समुद्र हैं, मुझसे कोई बड़ा अपराध हुआ है । इसीलिए मुझसे राजा कुछ नहीं कहते । हे माता ! तुम्हें मेरी सौगन्ध है, तुम सत्य कहो ।

दोहा—सहज सरल रघुबर वचन, कुमति कुटिल कर जान ।
चलइ जोंक जल बक्रगति, जद्यपि सलिलु समान ॥ ४२ ॥

श्रीराम के वचन स्वभाव से ही सीधे थे, तो भी दुर्बुद्धि-कैकई को टेढ़े ही जान पड़े, जिस प्रकार पानी एक समान होने पर भी जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है ।

रहसी रानि राम रुख पाई * बोली कपट सनेहु जनाई
सपथ तुम्हार भरत कै आना * हेतु न दूसर मैं कछु जाना

रानी कैकई श्रीरामजी की इच्छा समझकर प्रसन्न हुई और ऊपर से स्नेह जताकर बोली-हे श्रीराम ! तुम्हारी और भरत की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि दूसरा कोई कारण नहीं जानती ।

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता * जननी जनक बन्धु सुखदाता
राम सत्य सबु जो कछु कहहू * तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू

हे तात ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो वरन् माता-पिता के वचनों में तुम सदैव तत्पर हो । हे राम ! तुम जो कहते हो सो सब ठीक है, माता-पिता के वचनों में तुम सदैव तत्पर हो ।

पितहि बुझाइ कहहु बल सोई * चौथेपन जेहिं अजसु न होई
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे * उचित न तासु निरादरु कीन्हे

मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, तुम अपने पिता को समझाकर वही बात कहो—जिससे बुढ़ापे में अपयश न हो । जिस उत्तम कर्म ने तुम सरीखे पुत्र दिये—उस सत्कर्म का निरादर करना उचित नहीं है ।

लागहिं कुमुख वचन सुभ कैसें * मगध गयादिक तीरथ जैसें
रामहि मातु बचन सब भाए * जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए

कैकई के मुख से वे शुभ-वचन कैसे लगते थे जैसे मगध—देश में गयादिक तीर्थ थे । श्रीरामजी को माता कैकई के वचन ऐसे अच्छे लगे-जैसे अपवित्र जल भी गङ्गाजी में पवित्र हो जाता है ।

दोहा—गइ मूरछा रामहि सुमिर, नृप फिरि करवट कीन्ह ।
सचिव राम आगमन कहि, विनय समय सम कीन्ह ॥ ४३ ॥

उसी समय राजा की मूर्छा दूर हुई और उन्होंने श्रीरामजी का स्मरण कर फिर करवट बदली तब मन्त्री ने श्रीरामचन्द्रजी का आगमन सुनाकर समय के अनुसार विनती की ।

अवनिप अकनि रामु पगु धारे * धरि धीरजु तब नयन उघारे
सचिव सँभारि राउ बैठारे * चरन परत नृप राम निहारे

राजा ने श्रीरामजी का आना सुना, तब धीरज धरकर नेत्र खोल दिये मन्त्री ने राजा को उठाकर भली-भाँति बैठा दिया, राजा ने श्रीरामजी को अपने चरणों में गिरते देखा तो

लिए सनेह बिकल उर लाई * गै मनि मनहुँ फनिक फिर पाई
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू * चला विलोचनि बारि प्रबाहु

स्नेह से विकल राजा ने श्रीरामजी को देखते ही हृदय से लगा लिया मानो, खोई मणि सर्प ने फिर पाई हो। श्रीरामजी की ओर देखते ही रह गये, नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

सोक बिबस कछु कहै न पारा * हृदयँ लगावत बारहिं बारा
बिधिहि मनाव राउ मनमाहीं * जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं

मारे दुःख के राजा कुछ कह नहीं सकते, बारम्बार श्रीरामजी को हृदय से लगाते थे। राजा अपने मन ही मन विधाता को मनाने लगे, जिससे कि रघुनाथजी वन को न जायें।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी * बिनती सुनहु सदाशिव मोरी
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी * आरति हरहु दीन जनु जानी

शिवजी का स्मरणकर प्रार्थना करने लगे-हे सदाशिव! मेरी विनती सुनिये। शीघ्र प्रसन्न होने वाले आप औघड़-दानी हैं। मुझको अपना दीन-सेवक जानकर मेरा सङ्कट दूर कीजिए।

दोहा—तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ, सो मति रामहि देहु।
बचनु मोरि तजि रहहिं घर, परिहरि सीलु सनेहु ॥ ४४ ॥

आप सभी के अन्तःकरण के प्रेरक हैं, आप श्रीरामजी को ऐसी बुद्धि दीजिए कि वह मेरे वचन को न मानकर, घर में ही रह जांय और शील व स्नेह को त्याग दें।

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ * नरक परौं वरु सुरपुर जाऊ
सब दुखु दुसह सहाबहु मोही * लोचन ओट रामु जनि होही

इससे चाहे जगत् में अपयश हो, सुयश का नाश हो जाय, चाहे मैं नरक में गिरूँ, चाहे स्वर्ग छूट जाय व सब दुख मुझे सहने को मिलें, परन्तु श्रीराम मेरी आँखों से अलग न हों।

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला * पीपर पात सरिस मन डोला
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी * पुनि कछु कहि न मातु अनुमानी

राजा इस प्रकार मन में सोच रहे थे, इसी से नहीं बोले। उनका हृदय पीपल के पत्ते के समान हिल रहा था। श्रीरघुनाथजी ने पिता को प्रेम के वश में जानकर और मनमें यह अनुमान कर कि माता कुछ कह न बैठे।

देश काल अवसर अनुसारी * बोले वचन विनीत बिचारी
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई * अनुचित छमबि जानि लरिकाई

देश, काल और समय के अनुसार विचार कर नम्र वचन बोले—हे पिताजी! मैं ढिठाई

करके कुछ कहता हूँ, उसमें जो अनुचित हो, सो लड़कपन जानकर मुझे क्षमा करना।

अति लघु बात लागि दुखु पावा * काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा
देखि गोसाइँहि पूँछिउ माता * सुनि प्रसंग भए शीतल गाता

बहुत छोटी-सी बात के लिए आपने दुःख पाया, यह बात मुझे कहीं किसी ने पहिले नहीं बताई। स्वामी को देखकर माता से मैंने पूछा, उनसे ठीक बात सुनकर मेरे अङ्ग शीतल हुए।

दोहा—मङ्गल समय सनेह बस, सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ, कहि पुलके प्रभु गात॥ ४५॥

हे पिताजी! मङ्गल के समय प्रेम के वश न होकर, इस सोच को त्यागकर, प्रसन्न हृदय से मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पुलकित होगये।

धन्य जनमु जगतीतल तासू * पितहू प्रमोदु चरित सुनि जासू
चारि पदारथ करतल ताकें * प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें

इस पृथ्वी पर उसी का जन्म धन्य है, जिसके चरित्र को सुनकर पिता को परम आनंद हो। चारों पदार्थ उसकी मुट्ठी में हैं जिसे माता-पिता प्राणों के समान प्यारे हैं।

आयसु पालि जनम फलु पाई * ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई
बिदा मातु सन आवउँ माँगी * चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी

आपकी आज्ञा का पालन कर, जन्म का फल पाकर मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा, मुझको आज्ञा दीजिए। मैं माता से विदा माँग आऊँ, फिर आपके चरण छूकर वन को जाऊँगा।

अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा * भूप सोक बस उतरु न दीन्हा
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी * छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी

ऐसे कहकर श्रीरामजी वहाँसे चल दिये, राजाने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया। यह तीखी बात नगर में ऐसी जल्दी फैल गई, जैसे बिच्छू के डंक मारते ही शरीर में विष चढ़ जाता है।

सुनि भए बिकल सकल नरनारी * बेलि बिटप जिमि देखि दवारी
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई * बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई

यह सुनकर सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हुए, मानो आग को देखकर बेलि और वृक्ष कुम्हला गये हों। जो जहाँ सुनता है, वहीं सिर धुनने लगता है, सबको महान् दुःख हुआ मन में धैर्य नहीं होता है।

दोहा—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, सोक न हृदयँ समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई, उतरी अवध बजाइ॥ ४६॥

सबके मुख सूखने लगे आँखों से आँसू बहने लगे, हृदय में शोक नहीं समाता। मानो करुण-रस रूपी राजा की सेना अयोध्या में डङ्का बजाकर उतरी हो।

मिलेहि माझ बिधि बात बिगारी * जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ * छाइ भवन पर पावक धरेऊ

विधाता ने बात बनाकर बिगाड़ दी, जहाँ-तहाँ लोग कैकई को गाली देने लगे कि इस पापिनी को क्या सूझी, जो इसने बने हुए घर पर अग्नि रख दी।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा * डारि सुधा बिष चाहत चीखा
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी * भइ रघुबंस बेनु बन आगी

वह अपने हाथ से अपनी आँखें निकालकर देखना चाहती है, अमृत को फेंककर विष चखना चाहती है। कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि, अभागी कैकई रघुवंशरूपी बाँस के वन के लिए अग्नि होगई।

पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा * सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा
सदा राम एहि प्रान समाना * कारन कवन कुटिलपन ठाना

पत्ते पर बैठकर इसने पेड़ को काट डाला, सुख में दु:ख का ठाट रच दिया। इसे तो श्रीरामचन्द्रजी सदा ही प्राणों के समान प्यारे थे, अब किस कारण से खोटापन ठाना है।

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ * सब बिधि अगम अगाध दुराऊ
निज प्रतिबिम्ब बरुकु गहि जाई * जानि न जाइ नारि गति भाई

कवि सत्य कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार दुर्गम, अथाह और गुप्त होता है। अपनी परछाई चाहे कोई भले ही पकड़ले, परन्तु हे भाई! स्त्री की गति नहीं जानी जाती।

दोहा—काह न पावकु जारि सक, काह न समुद्र समाइ।
काह न करै अबला प्रबल, केहि जगु काल न खाइ ॥४७॥

अग्नि किसको नहीं जला सकती, समुद्र में क्या नहीं समा सकता और प्रबल स्त्री क्या नहीं कर सकती तथा संसार में काल किसको नहीं खाता?

काह सुनाइ बिधि काह सुनावा * काह देखाइ चह काह देखावा
एक कहइ भल भूप न कीन्हा * बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा

क्या सुनाकर, ब्रह्मा ने क्या सुना दिया और क्या दिखाकर क्या दिखाना चाहता है? कोई बोले-राजा ने अच्छा नहीं किया, जो विचारकर दुर्बुद्धि कैकई को वर नहीं दिया।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु * अबला बिबस ग्यानु गुन गा जनु
एक धरम परिमिति पहचाने * नृपहि दोषु नहिं देहिं सयाने

जो हठ के कारण सब दु:खों के पात्र हुए, स्त्री के वश में होकर राजा का ज्ञान और गुण जाता रहा। जो धर्म-मर्यादा जानते थे, वे चतुर लोग राजा को दोष नहीं देते थे।

सिबि दधीचि हरिचन्द्र कहानी * एक एक सन कहहिं बखानी
एक भरत कर सम्मत कहहीं * एक उदास भायँ सुनि रहहीं

वे एक दूसरे से—राजा शिव, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कहानी कहते थे। कोई कहने लगे कि इसमें भरत की सलाह है, कोई यह सुनकर उदास होकर रह जाते थे।

कान मूदि कर रद गहि जीहा * एक कहहिं यह बात अलीहा

सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे * रामु भरत कहुँ प्रान पिआरे

कोई हाथों से कान मूंदकर और दांतों से जीभ दबाकर कहने लगे कि यह बात झूंठी है। ऐसा कहने से तुम्हारे सत्कर्म नष्ट हो जायेंगे, श्रीरामजी तो भरतजी को प्राणों से अधिक प्यारे हैं।

दोहा—चन्दु चवै बरु अनल कन, सुधा होइ विष तूल।
सपनेहुँ कबहूँ न करहिं कछु, भरत राम प्रतिकूल ॥४८॥

चाहे चन्द्रमा से आग की चिनगारियां गिरने लगें, चाहे अमृत विष के समान हो जाय परन्तु भरतजी—श्रीरामजी के विरुद्ध स्वप्न में भी कुछ नहीं कह सकते।

एक विधातहिं दुषनु देहीं * सुधा देखाइ दीन्ह विषु जेहीं
खरभरु नगर सोचु सब काहू * दुसह दाहु उर मिटा उछाहू

कोई विधाता को दोष देने लगे कि उसने अमृत दिखाकर विष दे दिया है। नगर भर में खलबली मच गई सबको सोच हुआ, हृदय में दुःसह जलन होने लगी उत्साह भंग होगया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी * जे प्रिय परम कैकई केरी
लगी देन सिख सीलु सराही * बचन बान सम लागहिं ताही

ब्राह्मण स्त्रियां; कुलमें मान्य बूढ़ी स्त्रियां-जो कैकई को बहुत प्यारी थीं, वे उसके स्वभाव की बड़ाई करके उसे समझाने लगीं, परन्तु उनके वचन उसको बाण के समान लगते थे।

भरत न प्रिय मोहि राम समाना * सदा कहहु यह सबु जगु जाना
करहु राम पर सहज सनेहू * केहि अपराध आजु बन देहू

वे कहने लगीं-तुम तो सदा कहती थीं कि मुझे श्रीराम के समान भरत भी प्रिय नहीं,यह सब संसार जानता है। रामजी पर तो सहज स्नेह था,फिर आज उन्हें वन किस अपराध से देती हो?

कबहुँ न कियहु सवति आरेसू * प्रीति प्रतीति जान सबु देसू
कौसल्या अब कहा बिगारा * तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर मारा

तुमने तो कभी सौतिया-दाह नहीं किया,तुम्हारे परस्पर प्रेम-विश्वासको सारा देश जानता है। अब कौशल्या ने क्या बिगाड़ा है,जिसके कारण तुमने सब नगर पर बज्र गिरा दिया?

दोहा—सीय कि पिय सँगु परिहरिहि, लखनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर, नृप कि जिअहिं बिनु राम ॥४९॥

क्या सीताजी पति का संग छोड़ सकेंगी, क्या लक्ष्मणजी घर में रह सकेंगे, क्या भरतजी अयोध्यापुरी का राज्य करेंगे और राजा बिना रामजी के जीवित रह सकेंगे?

अस विचारि उर छाँड़हु कोहू * सोक कलङ्क कोठि जनि होहू
भरतहि अवसि देहु जुबराजू * कानन काह राम कर काजू

ऐसा विचारकर हृदय से क्रोध को दूर करो और शोक व कलंक की खान मत बनो। भरतजी को अवश्य युवराज बनाओ, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी का वन में क्या काम है?

नाहिन रामु राज के भूखे * धरम धुरीन विषय रस रूखे
गुरु गृह वसहिं राम तजि गेहू * नृप सन अस बरु दूसर लेहू

श्रीरामचन्द्रजी राज्य के भूखे नहीं हैं, वह तो धर्म-धुरन्धर और साँसारिक सुखों से उदासीन हैं। इस पर भी तुम्हारी शंका दूर न हो तो, श्रीरामजी घर छोड़कर गुरु के घर में वास करें—यह दूसरा वरदान राजा से माँग लो।

राम सरिस सुत कानन जोगू * काह कहहिं सुन तुम्ह कहँ लोगू
जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे * नहिं लागहिं कछु हाथ तुम्हारे

क्या श्रीरामजी सरीखे पुत्र वन के योग्य हैं, सुनकर लोग तुमको क्या कहेंगे ? हमारा कहना न मानोगी, तो तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा।

जौं परिहास कीन्ह कछु होई * तो कहि प्रगट जनावहु सोई
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई * जेहि विधि सोक कलंकु नसाई

यदि इस समय तुमने कुछ हँसी की हो, तो उसे प्रकट में कह दो। अब शीघ्र उठो, और वही उपाय करो, जिससे कि सबका शोक और तुम्हारा कलंक दूर हो जाय।

छन्द—जेहि भाँति सोकु कलंकु जाई उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जाति बन जानि बात दूसर चालहीं॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रानबिनु तनु चन्द बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवधतुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी॥

जिस तरह दुःख और कलंक दूरहो वही उपाय करके कुल की रक्षा करो। हठ करके श्रीरामजी को वनमें जाने से लौटाओ और दूसरी बात मत चलाओ। जैसे सूर्यके बिना दिन, प्राणों के बिना देह और चन्द्रमा के बिना रात होती है, तुलसीदासजी कहते हैं कि इसी प्रकार प्रभु श्रीरामजी के बिना अयोध्या सूनी हो जायेगी। हे रानी ! तुम अपने हृदय में निश्चय जानो।

सो०—सखिन्ह सिखावन दीन्ह, सुनतमधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥५०॥

सखियों ने ऐसी शिक्षा दी-जो सुनने में मीठी और परिणाम में हितकारी थी। परन्तु कैकई ने उस पर कुछ ध्यान न दिया, क्योंकि वह खोटी कुबड़ी-मंथरा की सिखाई हुई थी।

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी * मृगन्हि चितवजनिबाघिनि भूखी
ब्याधिअसाधिजानितिन्हत्यागी * चलीं कहत मतिमन्द अभागी

कैकई कुछ उत्तर नहीं देती, दुःसह क्रोध से रूखी होगई और ऐसे देख रही है—जैसे भूखी सिंहनी-हिरणियों को देखती हो। तब सखियों ने रोग को असाध्य जानकर छोड़ दिया और वह उसे मन्द-बुद्धि अभागिनी कहती हुई चल दीं।

राजु करत यह दैअँ बिगोई * कीन्हेसि अस जस करइ न कोई
एहिविधि बिलपहिं पुर नरनारी * देहिं कुचालिहि कोटिक गारी

इस देव की मारी हुई कैकई ने राज्य करते हुए ऐसा किया—जैसा कि कोई भी न करेगा। इस तरह अयोध्या के सब स्त्री-पुरुष विलाप करने लगे और उस कुचालिनी को करोड़ों गालियाँ देने लगे।

जरहिं विषम ज्वर लेहिं उसासा * कवनि राम बिनु जीवन आसा
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी * जनु जलचर गन सूखत पानी

वे सब विषम ज्वरसे जलने लगे और लम्बी साँस लेते हुए बोले-श्रीरामजीके बिना जीने की क्या आशा है? भारी वियोगसे प्रजा घबड़ा उठी, मानो जल सूखने से सब जलचर घबड़ा उठे हों।

अति बिषाद बस लोग लोगाईं * गए मातु पहिं रामु गोसाईं
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ * मिटा सोचु जनि राखै राऊ

अयोध्यापुरी के सब नर-नारी बड़े दुःखी होगये, स्वामी श्रीरामजी माता कौशिल्या के पास गये। उनका मुखप्रसन्न था, मनमें चौगुना चाव था, राजा रोक न लें-यह सोच भी मिट गया था।

दोहा—नव गयन्द रघुबीर मनि, राजु अलानि समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि, उर आनन्द अधिकान ॥५१॥

श्रीरामचन्द्रजी नवीन हाथों के समान हैं और राज जंजीर के समान है। बनको जाना बन्धन से छूट जाने के समान उनके हृदय में अधिक आनन्द छा गया।

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा * मुदित मातु पद नायउ माथा
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे * भूषन बसन निछावर कीन्हे

रघुवंश-भूषण श्रीरामजी ने दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नता से माता के चरणों में सिर नवाया, माता ने आशीर्वाद दिया और हृदयसे लगाकर गहने और वस्त्र न्योछावर किये।

बार बार मुख चुम्बति माता * नयन नेह जलु पुलकित गाता
गोद राखि पुनि हृदय लगाए * स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए

माता बार २ मुँह चूमने लगी, आँखों में प्रेमाश्रु भर आये, शरीर पुलकित हो गया। गोद में बैठाया फिर हृदय से लगाया। प्रेम के मारे माता के स्तनों से दूध टपकने लगा।

प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई * रङ्क धनद पदबी जनु पाई
सादर सुन्दर बदनु निहारी * बोली मधुर बचन महतारी

जिनका प्रेम और आनन्द कुछ कहा नहीं जाता, मानो कङ्गाल ने कुबेर की पदवी पा ली हो। फिर आदर सहित मुख देखकर माता मधुर वचन बोली—

कहहु तात जननी बलिहारी * कबहिं लगन मुद मङ्गलकारी
सुकृत सील सुख सीवँ सोहाई * जनम लाभु कइ अवधि अघाई

हे पुत्र! माता बलैयाँ लेती है, वह आनन्द की मंगलकारी घड़ी कब है, जो मेरे पुण्य शील और सुख की सुन्दर सीमा है और संसार में जन्म पाने की पूर्ण अवधि है?

दोहा—जेहि चाहत नरनारि सब, अति आरत एहि भाँति।

जिमिचातकि चातक तृषित, वृष्टि सरदऋतु स्वाँति ॥५२॥

जिस शुभ घड़ी को सब स्त्री-पुरुष बड़ी दीनता के साथ इस प्रकार चाहते हैं, जिस प्रकार से प्यासे चकवा-चकवी को शरद् काल में स्वाँति नक्षत्र की वर्षा की बूंद की चाहना होती है।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू * जो मन भाव मधुर फल खाहू
पितु समीप जब जाएहु भैया * भइ बड़ि बारि जाइ बलि मैया

हे पुत्र ! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, जल्दी स्नान करके जो कुछ मनमें भावे, वह मधुर फल खालो। हे तात ! तब पिता के पास जाना, बड़ी देर होगई, मैया तुम्हारी बलिहारी जाती है।

मातु बचन सुनिअति अनुकूला * जनु सनेह सतगुरु के फूला
सुख मकरन्द भरे श्रियमूला * निरखि राम मनु भँवर न भूला

माता के अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर—जो मानो स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल थे। जो सुखरूपी पुष्प-रस से भरे हुए थे और राज-लक्ष्मी जिनकी जड़ थी। ऐसे पुष्प को देखकर भी श्रीरामचन्द्रजी का मनरूपी भौंरा उन पर नहीं लुभाया।

धरम-धुरीन धरमगति जानी * कहेउ मातु सन अति मृदुबानी
पिता दीन्ह मोरि कानन राजू * जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू

धर्म-धुरन्धर श्रीरामजी धर्म की गति को जानकर माता से मधुर वाणी बोले—हे माता ! पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा कार्य बनेगा।

आयसु देहि मुदित मन माता * जेहि मुद मङ्गल कानन जाता
जनि सनेह बस डरपथ भोरें * आनन्दु अम्ब अनुग्रह तोरें

हे माता ! प्रसन्न चित्त होकर आज्ञा दो, जिससे वन में मुझे आनन्द-मङ्गल हों। स्नेह वश भूलकर भी मत डरना, हे मैया ! तुम्हारी कृपा से आनन्द ही होगा।

दोहा—बरसचारिदसविपिनबसि, करि पितु वचन प्रमान।
आइ पाँय पुनि देखिहौं, मनु जनु करसि मलान ॥५३॥

चौदह वर्ष वनमें वास कर पिताजी का वचन पालन करके लौटकर आऊँगा, तब फिर आपके चरणों के दर्शन करूँगा, अपना मन उदास मत करना।

वचन विनीत मधुर रघुबर के * सर सम लगे मातु उर करके
सहमि सूखि सुनिसीतल बानी * जिमि जवास परें पावस पानी

श्रीरामजी के नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगकर कसकने लगे। उस शीतल वाणी को सुनकर भी कौशिल्याजी सहम कर ऐसी सूख गईं, जैसे वर्षा पड़ने पर जवासा सूख जाता है।

कहि न जाइ कछु हृदय विषादू * मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू
नयन सजल तन थरथर काँपी * माजहिं खाइ मीन जनु माँपी

हृदय का दुःख कुछ कहा नहीं जाता, मानो हिरणी सिंह का नाद सुन, व्याकुल हो गई हो।

नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर २ कांपने लगा, मानो माजा खाने से मछली तड़फ रही हो।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी * गदगद बचन कहति महतारी
ताँत पितहि तुम्ह प्रान पिआरे * देखि मुदित नित चरित तुम्हारे

फिर धीरज धरकर पुत्र का मुख देख माता गद्-गद् वाणी से बोली–हे बेटा ! तुम तो पिता को प्राणों के समान प्यारे हो, वे सर्वेव तुम्हारे आचरणों को देखकर प्रसन्न होते हैं।

राजु देन कहुँ शुभ दिन साधा * कहेउ जान बन केहिं अपराधा
तात सुनावहु मोहि निदानू * को दिनकर कुल भयउ कृपानू

तुमको राज्य देने के लिए अच्छा दिन निश्चय किया था, अब किस अपराध से बन जाने को कहा है ? हे पुत्र ! मुझे इसका कारण सुनाओ, सूर्यवंश को जलाने के लिए कौन अग्नि बना ?

दोहा–निरखि राम रुख सचिवसुत, कारनु कहेउ बुझाइ ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥५४॥

श्रीरामजी का रुख समझकर मंत्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसङ्ग को सुन कौशल्याजी गूंगी के समान चुप रह गईं, उनकी दशा कही नहीं जा सकती।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू * दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू
लिखत सुधाकरु गा लिखि राहू * बिधिगति बाम दसा सब काहू

वे न तो रख ही सकती हैं और न यह कह सकती हैं कि जाओ। दोनों प्रकार से उनके हृदय में बड़ा दुःख हुआ। ब्रह्मा की गति सबके लिए उल्टी है, चन्द्रमा लिखते २ राहु लिख दिया।

धरम सनेह उभय मति घेरी * भइ गति साँप छछूँदर केरी
राखहुँ सुतहि करउँ अनुरोधू * धरमु जाइ अरु बन्धु बिरोधू

धर्म व स्नेह दोनों ने कौशल्याजी की बुद्धि को घेर लिया। उनकी गति सांप-छछूंदर की-सी हो गई यदि हठ पूर्वक पुत्र को रोक लूं तो धर्म जाता है। और भाइयों में विरोध बढ़ता है, वे ऐसे सोचने लगीं।

कहउँ जान बन तौ बड़ हानी * सङ्कट सोच बिबस भई रानी
बहु समुझि तिय धरमु सयानी * राम भरतु दोउ सुत सम जानी

वन में जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि है, इस प्रकार संकट और सोच में पड़कर रानी व्याकुल होगई। फिर रानीने स्त्री धर्म समझ तथा श्रीराम और भरत दोनों को समान जाना।

सरल सुभाउ राम महतारी * बोली बचनु धीर धरि भारी
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका * पितु आयसु सब धरमक टीका

श्रीरामजी की माता सीधे स्वभावसे बड़े धीरज के साथ बोली-हे पुत्र ! मैं तुम्हारी बलैयां लेती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा पालन करना सब धर्मों में बड़ा धर्म है।

दोहा–राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुखु लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचण्ड कलेसु ॥५५॥

राज्य देने को कहकर तुम्हें वन दिया, इस बात का मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। परन्तु तुम्हारे बिना भरत, महाराज तथा प्रजा को बड़ा क्लेश होगा।

जौं केवल पितु आयसु ताता * तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना * तौ कानन सत अवध समाना

हे तात! जो केवल पिताजी की आज्ञा हो तो माता को बड़ी जान वनको मत जाओ। किन्तु माता-पिता दोनोंने वन जाने की आज्ञा दी हो तो वन भी तुम्हारे लिए सौ अयोध्याके समान है।

पितु बनदेव मातु बनदेवी * खग मृग चरन सरोरुह सेवी
अन्तहुँ उचित नृपहि बनवासू * बय बिलोकि हियँ होइ हरासू

वन के देवी-देवता माता-पिता होंगे, पशु-पक्षी तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा करेंगे। राजाओं को अन्त में वनवास तो उचित ही है, परन्तु तुम्हारी अवस्था देखकर दुःख होता है।

बड़भागी बनु अवध अभागी * जो रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी
जौं सुत कहौं सङ्ग मोहि लेहू * तुम्हरे हृदयँ होइ सन्देहू

वन बड़भागी है और अयोध्या भाग्यहीन है, जो रघुवंश-भूषण (तुमने) ने त्याग दी। हे पुत्र! जो मैं कहूँ कि मुझको भी अपने साथ ले चलो, तो तुम्हारे मन में सन्देह होगा।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के * प्रान प्रान के जीवन जी के
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ * मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ

हे पुत्र! तुम सब ही के बहुत प्रिय हो, तो तुम प्राणों के भी प्राण और जीवन के भी जीवन हो। ऐसे तुम कहते हो कि हे माता! वन को जाता हूँ, मैं यह सुनकर बैठी पछताती हूँ।

दोहा—यह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूँठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५६॥

मैं यह विचार कर झूठा स्नेह बढ़ाकर हठ नहीं करती। मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुधि मत भूल जाना।

देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं * राखहिं नयन पलक की नाईं
अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना * तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना

हे पुत्र! देवता, पितर सब तुम्हारी ऐसे रक्षा करें, जैसे पलकें नेत्रों की रक्षा करती हैं। वनवास की अवधि जल है और प्रिय-परिजन मछलियाँ हैं। तुम दया की खान, धर्म-धुरन्धर हो।

अस बिचारि सोइ करहु उपाई * सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ * करि अनाथ जन परिजन गाऊँ

ऐसा विचारकर वही उपाय करो, जिससे सबके जीते-जी आकर मिल सको, हे पुत्र! मैं बलिहारी जाऊँ, तुम सेवक, कुटुम्बी और पुरजनों को अनाथ करके सुख से वन को जाओ।

सबकर आजु सुकृत फल बीता * भयउ कराल कालु बिपरीता
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी * परम अभागिनि आपुहि जानी

आज सबका पुण्य-फल बीत गया, भयंकर काल विपरीत हो गया। इस प्रकार बहुत विलाप कर अपने को बहुत भाग्यहीन जानकर माता श्रीरामजी के चरणों में लिपट गईं।

दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा * बरनि न जाहिं बिलाप कलापा
राम उठाइ मातु उर लाई * कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई

कठिन और दुःसह जलन हृदय में छा गई, उस समय के विलापों का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीरामजी ने माता को उठा हृदय से लगा लिया और उन्हें कोमल वाणी से समझाया।

दोहा—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठीं अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग, बन्दि बैठि सिरु नाइ ॥५७॥

उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुला उठीं और जाकर सासु के चरण-कमलों में प्रणाम कर नीचा सिर करके बैठ गईं।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी * अति सुकुमारि देखि अकुलानी
बैठि नमित मुख सोचति सीता * रूप रासि पति प्रेम पुनीता

सासु ने मधुर वाणी से आशीर्वाद दिया। सीताको अत्यंत सुकुमारी देख वे व्याकुल होगईं, परम रूपवती व पति से सदा प्रेम करने वाली सीताजी नीचा मुंह किये बैठी सोच रही हैं।

चलन चहत बन जीवननाथू * केहि सुकृति सन होइहिं साथू
की तनु प्रान कि केवल प्राना * बिधि करतबु कछु जाइ न जाना

जीवन-नाथ (श्रीरामजी) वन को जाना चाहते हैं, न जाने किस पुण्य के प्रभाव से उनका साथ होगा? शरीर और प्राण दोनों ही साथ जायेंगे या केवल प्राण ही साथ जायेंगे? विधाता की गति जानी नहीं जाती।

चारु चरन नख लेखति धरनी * नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं * हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं

सीताजी अपने सुन्दर चरण के नख से भूमि को कुरेद रही हैं उस समय उनके नूपुरों का जो मधुर शब्द हुआ, उसका वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं कि—नूपुर मानो प्रेम के वश होकर प्रार्थना कर रहे हैं कि सीताजी के चरण हमें छोड़ न दें।

मंजु बिलोचन मोचति बारी * बोली देखि राम महतारी
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी * सासु ससुर परिजनहि पिआरी

सीताजी सुन्दर नेत्रों से आंसू बहा रही हैं, उनकी दशा देख श्रीरामजी की माता कौशल्याजी बोलीं-हे पुत्र! सुनो सीताजी अति सुकुमारी हैं तथा सास-ससुर और कुटम्बी-जनों को प्रिय हैं।

दोहा—पिता जनक भूपालमणि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रविकुल कैरव बिपिन, बिधुगन रूप निधानु ॥५८॥

इनके पिता जनकजी-राजाओं में श्रेष्ठ हैं, ससुर-सूर्यवंश के सूर्य और पति-सूर्यकुल रूपी कुमुदनी के वन को खिलाने वाले चन्द्रमा के समान और गुण व रूप के निधान हैं।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई * रूपरासि गुन सील सुहाई

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई * राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई

फिर मैंने रूपकी राशि, गुणवती और शीलवती प्यारी पुत्र-वधू पाई है। इसे मैं नेत्रों की पुतली मानकर, प्रीति बढ़ाकर प्राणों के समान रखती हूँ।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली * सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली

फूलत फलत भयउ बिधि बामा * जानि न जाइ काह परनामा

कल्प बेलि के समान बहुत विधि से मैंने इसे स्नेहरूपी जल से सींचकर पाला है, अब इस बेलि के फलने फूलने के समय विधाता विपरीत होगया, जाना नहीं जाता कि क्या परिणाम होगा ?

पलँग पीढ़ि तजि गोद हिंडोरा * सियँ न दीन्हि पग अवनि कठोरा

जिअन मूरि जिमि जोगवत रहउँ * दीप बात नहिं टारन कहउँ

पलंग, गोद, हिंडोला को छोड़ सीता ने कठोर भूमि पर कभी पाँव नहीं रक्खा। संजीवनी बूँटी के समान सँभालकर मैं इसे रखती हूँ और दीपक की बत्ती उकसाने को भी नहीं कहती।

सोइ सिय चलन चहति वन साथा * आयसु काह होइ रघुनाथा

चन्द्रकिरन रस रसिक चकोरी * रविरुख नयन सकइ किमि जोरी

वही सीता तुम्हारे संग वनको जाना चाहती है। हे राम ! क्या आज्ञा हैं? चन्द्रमाकी किरणों के रस का स्वाद लेने वाली चकोरी सूर्य के सामने टकटकी लगाकर देख सकती है ?

दोहा—करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जन्तु वन भूरि।
विष वाटिका कि सोह सुत, सुभव सँजीवन मूरि ॥५९॥

वन में हाथी, सिंह, राक्षस आदि बहुत से दुष्ट जीव फिरा करते हैं। हे पुत्र ! विषकी वाटिका में सुहावनी-संजीवनी बूँटी क्या शोभा देती है ?

वन हित कोल किरात किसोरी * रची विरंचि विषय रसु भोरी

पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ * तिन्हहि कलेसू न कानन काऊ

ब्रह्माने वनमें रहने के लिए तो भील-भीलों की कन्याओं को बनाया है, जो विषय सुख जानती ही नहीं। पत्थर के कीड़ों की भाँति जिनका कठोर स्वभाव है, उनको वनमें कष्ट नहीं होता।

कै तापस तिय कानन जोगू * जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू

सिय वन बसिहि तात केहि भाँती * चित्रलिखित कपि देखि डेराती

अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिए सब भोगों को त्याग दिया है। हे तात ! वह सीता किस प्रकार वन में रह सकती है, जो चित्र में लिखे बन्दर को देखकर ही डर जाती है।

सुरसर सुभग बनज बन चारी * ढावर जोगु कि हंसकुमारी

अस बिचार जस आयसु होई * मैं सिख देउँ जानकिहि सोई

मानसरोवर के कमल-वन में बिहार करने वाली राजहंसिनी, क्या तलैया के योग्य है ? ऐसा विचार कर जैसी आज्ञा हो, वैसी ही सीख मैं सीता को दूँ।

जौं सिय भवन रहै कह अम्बा * मोहि कहँ होइ बहुत अवलम्बा
सुनि रघुवीर मातु प्रिय बानी * सील सनेह सुधाँ जनु सानी

माता कहती हैं–जो सीता घर में रहे, तो मुझे बहुत सहारा हो जाय। श्रीरघुनाथजी ने मानो शील, स्नेह-रूपी अमृत से सने हुए वचन सुनकर–

दोहा–कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्हि मातु परतोष।
लगे प्रबोधन जानिकिहि, प्रगट बिपिन गुनदोष ॥६०॥

ज्ञानमय प्रिय वचन कहकर माता को सन्तुष्ट किया, वन के गुण व दोष प्रकट करके जानकीजी को समझाने लगे।

* मास पारायण–चौदहवाँ विश्राम *

मातु समीप कहत सकुचाहीं * बोले समय समुझि मन माहीं
राजकुमारि सिखावनु सुनहू * आनभाँति जियँ जनि कछु गुनहू

वे माता के आगे जानकी से कहते हुए सकुचाते हैं, फिर ऐसा ही समय मनमें जानकर बोले-हे राजकुमारी! मेरी सुन्दर शिक्षा को सुनो, मनमें दूसरी भाँति कुछ मत समझना।

आपन मोर नीक जौं चहहू * बचनु हमार मानि गृह रहहू
आयसु मोर सासु सेवकाई * सबबिधि भामिनि भवन भलाई

जो तुम अपनी और मेरी भलाई चाहती हो,तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी! मेरी आज्ञा का पालन, सासु की सेवा तथा सब प्रकार से भलाई घर पर रहने से ही है।

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा * सादर सासु ससुर पद पूजा
जब जब मातु करहिं सुधि मोरी * होइहि प्रेम बिकल मति भोरी

इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है कि आदर से सास-ससुर के चरणों की सेवा करना और जब-जब माता मेरी सुधि करके प्रेम से व्याकुल होकर भोली मति से घबड़ा उठें–

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी * सुन्दरि समुझाएहु मृदु बानी
कहउँ सुभाउ सपथ सत मोही * सुमुखि मातु हित राखउँ तोही

तब-तब तुम पुरानी कथायें कहकर, हे सुन्दरी! कोमल वाणी से माताजी को समझाना! हे सुमुखी! मुझे सैकड़ों सौगन्ध हैं, अपने निष्कपट भाव से कहता हूँ कि मैं तुमको यहाँ माता के हित के लिए रखता हूँ।

दोहा–गुरुश्रुति सम्मत धरम फलु, पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ वश सब सङ्कट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६१॥

तुम गुरु और वेद से सम्मत धर्म-फल को बिना क्लेश ही पा जाओगी। हठ के वश होकर गालव मुनि और नहुष ने भी अनेक कष्ट सहे थे।

मैं पुनि करि प्रवानपितु बानी * बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी
दिवस जात नहिं लागिहि बारा * सुन्दरि सिखवनु सुनहु हमारा

हे सुमुखि ! हे मृगनयनी ! सुनो, मैं पिता के वचनों को प्रमाणित कर शीघ्र लौट आऊँगा। दिन जाते देर नहीं लगती। हे सुन्दरी ! मेरी सुन्दर शिक्षा सुनो—

जौं हठ करहु प्रेम बस बामा * तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा
कानन कठिन भयङ्कर भारी * घोर घाम हिम बारि बयारी

हे प्रिये ! जो प्रेम वश हठ करोगी, तो दुःख पाओगी। वन कठिन और भयंकर होता है। वहाँ धूप, सरदी और पवन-ये बहुत क्लेशदायक हैं।

कुस कण्टक मग काँकर नाना * चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे * मारग अगम भूमिधर भारे

मार्ग में कुश, काँटे और बहुत से कङ्कण हैं, उनमें बिना जूतियों के पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरण-कमल कोमल और सुन्दर हैं, रास्ते में अति दुर्गम पहाड़ हैं।

कन्दर खोह नदी नद नारे * अगम अगाध न जाहिं निहारे
भालु बाघ बृक केहरि नागा * करहिं नाद सुनि धीरजु भागा

पहाड़ों की गुफायें, खोहें, नदी एवं नाले ऐसे अगम और गहरे हैं कि देखे नहीं जाते। रीछ, बाघ, भेड़िया, सिंह, हाथी ऐसा घोर शब्द करते हैं कि जिसे सुनकर धीरज छूट जाता है।

दोहा—भूमि सयन बल्कल बसन, असन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल ॥६२॥

भूमि पर सोना, वृक्षों की छाल पहिनना और कन्दमूल फल का भोजन मिलेगा वह भी क्या सदा और दिनभर मिलते हैं ? अर्थात् समय-समय के अनुसार ही मिलते हैं।

नर अहार रजनीचर चरहीं * कपट बेष बिधि कोटि धरहीं
लागइ अति पहार कर पानी * बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी

मनुष्यों का आहार करने वाले राक्षस घूमा करते हैं, वे करोड़ों भाँति के बनावटी रूप धारण करते हैं। पहाड़ का पानी बहुत लगता है, वन की विपत्ति कही नहीं जा सकती।

ब्याल कराल बिहँग बन घोरा * निसिचर निकर नारिनर चोरा
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ * मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ

भयंकर सर्प एवं पक्षी घोर बनमें रहते हैं, स्त्री पुरुषों को चुराने वाले बहुत से राक्षस रहते हैं ऐसे बनकी सुधि आने पर धीरजनभी डर जाते हैं। हे मृगनयनी! फिर तुमतो स्वभावसे ही भीरहो

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू * सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली * जिअइ कि लवन पयोधि मराली

हे हंस-गामिनी ! तुम वनके योग्य नहीं हो, तुम्हारा वनमें जाना सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे। मानसरोवर के अमृत-तुल्य जल से पाली हुई हंसिनी क्या खारे समुद्र में जी सकती है।

नव रसाल बन बिहरन सीला * सोह कि कोकिल बिपिन करीला
रहहु भवन अस हृदय बिचारी * चन्द्र बदनि दुख कानन भारी

नये आमों के बाग में बिहार करने वाली कोयल-क्या करील के वनमें शोभा पा सकती

है ? ऐसा हृदय में विचारकर घर पर ही रहो। हे चन्द्रमुखी ! वन में भारी दुःख हैं।

दोहा—सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिरमानि।
जो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥६३॥

स्वभाव से ही अपने हितैषी गुरु और स्वामी की शिक्षा को जो सिर पर चढ़ाकर नहीं मानता, वह पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है।

सुनि मृदु वचन मनोहर प्रियके * लोचन ललित भरे जल सिय के
सीतल सिख दाहक भइ कैसें * चकइहि सरदचन्द निसि जैसें

पतिके मधुर व मनोहर वचन सुन सीताजी के सुन्दर नेत्रों में जल भर आया। शीतल सीख भी उन्हें किस प्रकार जलाने वाली हुई जैसे कि चकवी को शरद्-ऋतु की चाँदनी होती है।

उतरु न आव विकल बैदेही * तजन चहत सुचि स्वामि सनेही
बरबस रोकि बिलोचन बारी * धरि धीरजु उर अवनि कुमारी

सीताजी दुखित हो गईं, कुछ उत्तर नहीं आया और सोचने लगीं कि पवित्र स्नेह करने वाले स्वामी मुझे छोड़कर वन को जाना चाहते हैं। भूमि सुता जानकीजी नेत्रों के आँसुओं को रोककर और धैर्य धारण कर—

लागि सासु पद कह कर जोरी * छमबि देव बड़ि अविनय मोरी
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई * जेहि विधि मोर परम हित होई

सासु के पाँव लगकर, हाथ जोड़कर बोलीं—हे माता ! मेरी इस बड़ी ढिठाई को क्षमा करना। प्राणनाथ ने मुझे वही शिक्षा दी है, जिससे मेरा परम हित हो।

मैं पुनि समुझि दीखि मन ताहीं * पिय वियोग सम दुख जग नाहीं

परन्तु मैंने अपने मन में समझकर देख लिया है कि पति के वियोग के समान स्त्री को संसार में दूसरा दुःख नहीं है।

दोहा—प्राणनाथ करुणा यतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥६४॥

हे प्राणनाथ ! हे करुणा के धाम ! हे सुन्दर सुख देने वाले, चतुर रामजी ! हे रघुवंश रूपी-कमल के खिलाने वाले चन्द्रमा ! आपके बिना मुझे स्वर्ग-लोक भी नरक के समान है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई * प्रिय परिवार सुहृद समुदाई
सासु ससुर गुरु सजन सुहाई * सुत सुन्दर सुशील सुखदाई

माता, पिता, बहिन, प्यारे कुटुम्बी, मित्रगण, सासु, ससुर, गुरु, स्वजन, सहायक, सुन्दर, सुशील और सुखदायक पुत्र आदि—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते * पिय बिनु तियहि तरनिहुते ताते
तनु धनु धाम धरनि पुर राजू * पति बिहीन सबु सोक समाजू

हे स्वामी ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, ये सब पति के बिना स्त्री को सूर्य से भी अधिक तपाने वाले हैं। देह, धन, घर, भूमि, नगर और राज्य ये सब पति के बिना दुःख के समूह हैं।

भोग रोग सम भूषन भारू * जम जातना सरिस सँसारू
प्रान नाथ तुम्ह बिनु जग माहीं * मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं

भोग-रोग के समान, गहने-बोझ के समान और संसार-यम यातना के समान है। हे प्राणनाथ ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायक नहीं है।

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी * तैसेइ नाथ पुरुष बिनु नारी
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें * सरद विमल बिधु वदनु निहारें

हे नाथ ! जैसे जीवन के बिना देह और जल के बिना नदी हो, वैसे ही पति के बिना स्त्री। हे नाथ ! आपके साथ में शरद्-ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान आपके मुख को देखने से मुझे सब सुख होंगे।

दोहा—खग मृग परिजन नगर वन, बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल ॥६५॥

हे नाथ ! आपके साथ पशु-पक्षी मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर होगा, वृक्षों की छाल ही उज्ज्वल वस्त्र होंगे और पर्ण-कुटी ही स्वर्ग के समान सुख देने वाली होगी।

बनदेबी बनदेव उदारा * करिहहिं सासु ससुर सम सारा
कुस किसलय साँथरी सुहाई * प्रभु संग मञ्जु मनोज तुराई

बनदेवी एवं वन देवता जो उदार हैं, वे ही सास-ससुर के समान सार सँभाल करेंगी। प्रभु के साथ कुश और पत्तों का सुहावना बिछौना ही कामदेव की तोषक-सेज के समान होगा।

कन्दमूल फल अमिअ अहारू * अवध सौध सत सरिस पहारू
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी * रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी

कन्द-मूल फलही अमृतके समान भोजन होगा, पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों महलों के तुल्य होंगे। क्षण २ प्रभु के चरणकमल देख मैं ऐसी प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन में चकवी रहती है।

वन दुख नाथ कहे बहुतेरे * भय विषाद परिताप घनेरे
प्रभु वियोग लवलेश समाना * सब मिलि होंहि न कृपानिधाना

हे स्वामी ! आपने वन के बहुत-से दुख, भय, शोक और बहुत—से सन्ताप कहे। परन्तु हे कृपानिधान ! ये सब मिलकर भी प्रभु के बहुत थोड़े समय के लिए होने वाले वियोग के बराबर नहीं हैं।

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि * लेइअ सङ्ग मोहि छाँड़िय जनि
बिनती बहुत करौं का स्वामी * करुनामय उर अन्तरजामी

हे चतुर-शिरोमणि ! ऐसा मन में जानकर मुझे अपने साथले लीजिए, यहां न छोड़िए। हे प्रभु ! मैं अधिक विनती क्या करूं, आप तो दया के रूप और हृदय की बात जानने वाले हैं।

दोहा—राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत न जनिअहिं प्रान ।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान ॥६६॥

हे दीनबंधु ! हे सुन्दर सुख देने वाले ! हे शील और स्नेह के निधान ! जो अवधि तक मुझे अयोध्या में रक्खेंगे, तो मेरे प्राण नहीं रहेंगे यह जान लीजिए।

मोहि मग चलत न होइहि हारी * छिनु छिनु चरन सरोज निहारी
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं * मारग जनित सकल श्रम हरिहौं

क्षण-क्षण में आपके चरणारविन्दोंका दर्शन करने से मुझे मार्ग की थकावट नहीं व्यापेगी। मैं सब प्रकार से स्वामीकी सेवा करूँगी और मार्ग की सारी थकावट को दूर किया करूँगी।

पाँय पखारि बैठि तरु छाहीं * करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं
श्रमकन सहित स्याम तनु देखें * कहँ दुख समय प्रानपति लेखें

मैं चरण धोकर वृक्षकी छाया में बैठकर, मनमें प्रसन्न हो आपकी हवा किया करूँगी। पसीने की बूँदों सहित आपके श्याम शरीर को देखने से अर्थात् प्राणनाथ के दर्शन करने से दुःख के लिए मुझे अवकाश कहाँ मिलेगा ?

सम महि तृन तरु पल्लव डासी * पाँव पलोटिहि सब निसि दासी
बार बार मृदु मूरति जोही * लागहि तात बयारि न मोही

समतल भूमि पर घास और वृक्षों के पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर आपके चरण दबाया करेगी। बारम्बार आपकी मधुर मूर्ति को देखने से मुझको गरम हवा नहीं लगेगी।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा * सिंहबधुहि जिमि ससक सियारा
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू * तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू

प्रभु के साथ रहते हुए मेरी ओर देखने वाला कौन है ? जैसे सिंहनी को खरहा, सियार आदि नहीं देख सकते। हे नाथ ! क्या मैं सुकुमारी और आप वन के योग्य हैं ? क्या आपको तपस्या और मुझको भोग-विलास उचित है।

दोहा—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुखु, सहहहिं पाँवर प्रान ॥६७॥

हे प्रभु ! जो ऐसे कठोर वचन सुनकर भी मेरा कठोर हृदय नहीं फटा, तो ये नीच प्राण आपके वियोग के कठिन दुःख को भी सह लेंगे।

अस कहि सिय बिकल भइ भारी * बचन बियोग न सकी सँभारी
देखि दसा रघुपति जियँ जाना * हठि राखें नहिं राखिहि प्राना

ऐसे कहकर सीताजी बहुत व्याकुल होगईं, वियोग के वचनों को भी न सँभाल सकी। ऐसी दशा देखकर रघुनाथजी ने अपने हृदय में जाना कि यहाँ रहने से यह प्राण नहीं रक्खेंगी।

कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा * परिहरि सोचु चलहु बन साथा
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू * बेगि करहु बन गवन समाजू

तब सूर्यवंश के स्वामी दयालु श्रीरामजी ने कहाकि सोच को छोड़कर हमारे साथ वनको चलो। आज दुःख करने का अवसर नहीं, शीघ्र ही वनको चलने का सामान इकट्ठा करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई * लगे मातु पद आसिष पाई

बेगि प्रजा दुख मेटब आई * जननी निठुर बिसरि जनि जाई

ऐसे प्रिय वचन कहकर प्रिया जानकीजी को समझाया, फिर माता के चरण छुए और आशीर्वाद प्राप्त किया। माता बोली-हे बेटा! जल्दी लौटकर प्रजा का दुख दूर करना तथा निष्ठुर माता को भूल न जाना।

फिरहि दसाविधि बहुरि कि मोरी * देखिहउँ नयन मनोहर जोरी
सुदिन सुघरी तात कब होइहि * जननी जियत बदन बिधु जोइहि

हे विधाता! क्या फिर कभी मेरी दशा फिरेगी, जो मैं नेत्र भरकर मनोहर जोड़ी देखूँगी। हे पुत्र! वह शुभ दिन व शुभ घड़ी कब होगी, जबकि माता जीतेजी तुम्हारे चन्द्रमुख को देखेगी?

दोहा–बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ उर, हरहि निरखहउँ गात ॥६८॥

हे पुत्र! फिर हे 'वत्स' 'लाल' 'रघुपति' 'रघुवर' कहकर कब तुमको बुलाकर हृदय से लगाऊँगी और प्रसन्न होकर शरीर को देखूँगी।

लखि सनेह कातिर महतारी * बचनु न आव बिकल भइ भारी
राम प्रबोधु कीन्ह विधि नाना * समय सनेहु न जाइ बखाना

माता मारे स्नेह के अधीर होगईं, मुख से वचन नहीं आता, बड़ी व्याकुल हो गई हैं। ऐसी दशा देखकर श्रीरामजी ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया, उस समय का स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी * सुनिअ मातु मैं परम अभागी
सेवा समय देव बनु दीन्हा * मोर मनोरथ सफल न कीन्हा

तब जानकीजी सास के पावों में पड़कर बोलीं-हे माता! मैं बड़ी अभागिनी हूँ। विधाता ने आपकी सेवा के समय मुझे वन दे दिया, मेरी मनोकामना सफल नहीं की।

तजब छोभु जनि छाँड़िअ छोहू * करमु कठिन कछु दोषु न मोहू
सुनि सिय वचनु सासु अकुलानी * दसा कवनि विधि कहो बखानी

अब दुःख त्याग दीजिये, परन्तु स्नेहको न छोड़ना। कर्मकी गति कठिन है, मेरा भी कुछ दोष नहीं। सीताजी के यह वचन सुन सास बहुत व्याकुल हुई, उसकी दशा किस विधि से वर्णन करूँ?

बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं * धरि धीरजु सिख आसिष दीन्हीं
अचलहोउ अहिवातु तुम्हारा * जब लगि गंग जमुन जलधारा

उन्होंने सीताजी को बारम्बार हृदयसे लगाया और धैर्य धरकर शिक्षा दी तथा यह आशीर्वाद दिया कि जब तक गङ्गा-जमुना की जल-धारा रहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

दोहा–सीतहि सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार।
चलीं नाइ पद पदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥६९॥

सास ने सीताजी को अनेक प्रकार से शिक्षा और आशीर्वाद दिया। वे बारम्बार प्रेम

से सासु के चरण कमलों में सिर नवाकर चलीं।

समाचार जब लछिमनु पाए * व्याकुल बिलख बदनु उठि धाए
कम्प पुलक तनु नयन सरीरा * गहे चरन अति प्रेम अधीरा

जब लक्ष्मणजी ने यह नया समाचार पाया, तब वे भी व्याकुल हो उदास मुँह उठ दौड़े। शरीर कांप रहा है, रोमांच खड़े हो गये हैं नेत्रों में जल भरा है। उन्होंने अत्यन्त प्रेम से अधीर होकर श्रीरामजी के चरण पकड़ लिये।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े * मीनु दीन जनु जल तें काढ़े
सोचु हृदय बिध का होनिहारा * सबु सुख सुकृत सिरान हमारा

कुछ कह नहीं सकते, खड़े ही देखते रह गये, मानो जलसे निकली हुई मछली दुःखी होगई हो? वे सोचने लगे-हे विधाता ! अब क्या होने वालाहै? क्या हमारा सब सुख व पुण्य समाप्त होचुका?

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा * रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा
राम बिलोकि बन्धु कर जोरें * देह गेह सब सन तृनु तोरें

मेरे लिए श्रीरघुनाथजी क्या कहेंगे? घर ही रक्खेंगे अथवा साथ ले जावेंगे। श्रीरामजी ने देखा कि भाई लक्ष्मण हाथ जोड़े खड़े हैं और देह तथा घर सबसे नाता तोड़ दिया है।

बोले बचनु राम नय नागर * सील सनेह सरल सुखसागर
तात प्रेम बस जानि कदराहू * समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू

तब नीति में निपुण, शील, स्नेह, सरल और सुख के समुद्र श्रीरामजी यह वचन बोले-हे तात ! अपने हृदय में अन्त में आनन्द समझ कर, प्रेम के वश होकर दुखी मत होओ।

दोहा—मातु पितु गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, नतरु जनमु जग जायँ ॥७०॥

जो माता-पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को शिरोधार्य कर स्वभाव से ही उसका पालन करते हैं, वे जन्म लेने का लाभ पाते हैं—नहीं तो संसार में जन्म वृथा ही है।

अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई * करहु मातु पितु पद सेवकाई
भवन भरतु रिपुसूदन नाहीं * राउ वृद्ध मम दुखु मन माहीं

हे भाई ! जी में ऐसा जानकर मेरी शिक्षा सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। घर पर भरत और शत्रुघ्न नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं, उनके मनमें मेरे वन जाने का दुःख है।

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा * होइ सबहि बिधि अवध अनाथा
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू * सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू

यदि तुम्हें साथ लेकर वन को जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जायगी। गुरु, माता-पिता और कुटुम्बी-इन सबको भारी दुसह दुःख सहना पड़ेगा।

रहहु करहु सब कर परितोषू * नतरु तात होइहि बड़ दोषू
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी * सो नृप अवसि नरक अधिकारी

तुम घर पर रहकर सबको सन्तुष्ट करते रहना, नहीं तो-हे तात ! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्रिय-प्रजा दुखारी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है।

रहहु तात अस नीति बिचारी * सुनत लखन भए ब्याकुल भारी
सियरे बचन सूखि गए कैसें * परसत तुहिन तामरसु जैसें

हे तात ऐसी नीति विचारकर यहीं रहो। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत व्याकुल हो गये। इन शीतल वचनों से लक्ष्मणजी ऐसे सूख गये, जैसे पाला पड़ने से कमल सूख जाता है।

दोहा—उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह, तजहु तौ कहा बसाइ ॥ ७१ ॥

प्रेम के मारे लक्ष्मणजी से उत्तर देते नहीं बनता, घबड़ाकर श्रीरामकी के चरण पकड़ लिये और कहा हे नाथ ! मैं सेवक हूं और आप स्वामी हैं, यदि आप छोड़ ही दें, तो मेरा क्या वश है ?

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाँई * लागि अगम आपनि कदराई
नरबर धीर धरम धुर धारी * निगम नीति कहुँ ते अधिकारी

हे प्रभु ! आपने मुझे बहुत अच्छी सीख दी, परन्तु मुझे अपनी कायरता से कठिन जान पड़ती है। जो श्रेष्ठ पुरुष धीर व धर्म-धुरन्धर हैं, वे ही नीति और शास्त्र के अधिकारी हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला * मन्दरु मेरु कि लेहिं मराला
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू * कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू

मैं तो प्रभु के स्नेह से पाला हुआ बालक हूं। कहीं हंस भी मन्दराचल व सुमेरु पर्वत को उठा सकता है ? मैं गुरु व माता-पिता किसी को नहीं जानता, हे नाथ ! मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें।

जहँ लगि जगत सनेह सगाई * प्रीति प्रतीति निगम निज गाई
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी * दीनबन्धु उर अन्तरजामी

संसार में जहां तक स्नेह व सम्बन्ध है, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेदों ने गाया है, हे दीनबन्धु ! हे अन्तर्यामी प्रभो। मेरे तो सब कुछ एक आप ही हैं।

धरम नीति उपदेसिअ ताही * कीरति भूति सुगति प्रिय जाही
मन क्रम बचन चरन रत होई * कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई

धर्म व नीति का उपदेश तो उसी को देना चाहिए-जिसे यश, ऐश्वर्य और मुक्ति प्रियहो। हे कृपासिंधु ! जो मन, कर्म, वचन से आपके चरणों में प्रेम करता हो-क्या वह भी छोड़ने योग्य है ?

दोहा—करुनासिंधु सुबन्धु के, सुनि मृदु बचन पुनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेहँ सभीत ॥ ७२ ॥

कृपासिंधु श्रीरामजी ने अपने प्रिय भाई के विनय-युक्त वचन सुनकर उन्हें स्नेह से डरा हुआ जानकर, हृदय से लगाकर समझाया।

माँगहु बिदा मातु सन जाई * आवहु बेगि चलहु बन भाई

मुदित भए सुनि रघुवर बानी * भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी

हे भाई ! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी से वन को चलो । श्रीरघुनाथजी की यह बात सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुए कि बड़ा लाभ हुआ और बड़ी हानि दूर हुई ।

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए * मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए
जाइ जननि पग नायउ माथा * मन रघुनन्दन जानकि साथा

लक्ष्मणजी-माता सुमित्रा के पास ऐसे प्रसन्न होते हुए आये, मानो अन्धे को फिर नेत्र मिल गये हों । जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया, परन्तु मन—श्रीरघुनाथजी और जानकीजी के साथ में था ।

पूँछे मातु मलिन मन देखी * लखन कही सब कथा बिसेषी
गई सहमि सुनि बचन कठोरा * मृगी देखि दब जनु चहुँ ओरा

उदास मन देख माताने कारण पूछा, लक्ष्मणजी ने विस्तार से सब कथा सुनाई । ऐसे कठोर वचन सुनकर माता ऐसे घबड़ाई, जैसे वनमें चारों ओर आग लगी देखकर हिरणी सहम जाती है ।

लखन कहउ भा अनरथ आजू * एहिं सनेह बस करब अकाजू
माँगत बिदा भयउ सुखचाहीं * जाउँ सङ्ग बिधि कहहि कि नाहीं

लक्ष्मणजी ने कहा आज अनर्थ हुआ यह स्नेह के वश काम बिगाड़ देगी । इस कारण डर के मारे विदा माँगते हुए सकुचाने लगे-हे विधाता ! सङ्ग जाने को माता कहेगी या नहीं ?

दोहा—समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुसील सुभाउ ।
नृप सनेह लखि धुनेऊ सिर, पापिन्ह कीन्ह कुदाउ ॥ ७३ ॥

सुमित्रा ने श्रीरामजी व सीताजी के सुन्दर रूप, शील और स्वभाव को समझ व राजा के स्नेह को देखकर सिर धुना और कहा—पापिनी कैकई ने बुरा दाव किया ।

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी * सहज सुहृद बोली मृदुबानी
तात तुम्हारि मातु बैदेही * पिता रामु सब भाँति सनेही

स्वाभाविक सुन्दर हृदयवाली सुमित्रा ने कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और कोमलवाणी से बोली-हे पुत्र! जानकी तुम्हारी माता हैं, सब भाँतिसे स्नेह करने वाले श्रीरामजी तुम्हारे पिता हैं

अवध तहाँ जहँ राम निवासू * तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू
जौ पै सीय रामु वन जाहीं * अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं

वहीं अयोध्यापुरी है, जहाँ श्रीरामजी का निवासहै । वहीं दिनहोता है जहाँ सूर्य का प्रकाश हो। यदि सीता और श्रीरामजी निश्चय ही वन जाते हैं, तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ काम नहीं है ।

गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं * सेइय सकल प्रान की नाईं
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के * स्वारथ रहित सखा सबही के

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी—इन सबकी प्राणों के समान सेवा करनी चाहिये । श्रीरामचन्द्रजी तो सब ही के प्राणप्रिय, जीवन के जीवन और बिना स्वार्थ के सखा हैं ।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें * सब मानिअहिं राम के नातें
अस जियँ जानि सङ्ग बन जाहू * लेहु तात जग जीवन लाहू

जहाँ तक पूजनीय व प्रियजन हैं,वे सबही श्रीरामचन्द्रजी के संबंध से ही माने जाते हैं । हे पुत्र ! ऐसा मनमें जानकर श्रीरामजी के साथ वन जाओ और जगत में जीवन का लाभ लो ।

दोहा—भूरि भाग्य भाजन भयउ, मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ ॥ ७४ ॥

मैं बलैया लेती हूँ । मुझ समेत तुम बड़े ही भाग्यवान हो,जो छल,कपट छोड़कर तुम्हारे मन ने श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में स्थान प्राप्त किया है ।

पुत्रवती जुबती जग सोई * रघुपति भगतु जासु सुत होई
न तरु बाँझि भलि बादि बिआनी * राम बिमुख सुत ते हित हानी

संसार में वही स्त्री पुत्रवती है-जिसका पुत्र 'राम-भक्त' हो, नहीं तो बाँझ ही भली है, उसका ब्याना व्यर्थ है । श्रीरामजी से विमुख पुत्र होने में तो हित की हानि ही होती है ।

तुम्हरेहिं भाग्य रामु बन जाहीं * दूसर हेतु तात कछु नाहीं
सकल सुकृत कर बड़ फल ऐहू * राम सीय पद सहज सनेहू

हे पुत्र ! तुम्हारे ही भाग्य से श्रीरामजी वन को जारहे हैं, दूसरा कुछ कारण नहीं है । सब पुण्यों का फल यही है कि सीताजी रामजी के चरणों में स्वाभाविक स्नेह हो ।

रागु रोषु इरिषा मद मोहू * जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू
सकल प्रकार बिकार बिहाई * मन क्रम बचन करेहु सेवकाई

राग, रोष, ईर्षा, मद व मोह-इनके वश में स्वप्न में भी न होना और सब प्रकार के विकारों को त्यागकर-मन, कर्म, वचन से श्रीरामजी की सेवा करना ।

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू * सँग पितु मातु रामु सिय जासू
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू * सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू

तुमको वन में सब प्रकार का आराम है, जिसके साथ पिता-श्रीरामजी और माता-सीताजी हैं । जिस प्रकार श्रीरामजी को वन में क्लेश न हो—हे पुत्र ! तुम वही उपाय करना—यही उपदेश है ।

छन्द—उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरें राम सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी सुतहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई ।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नई ॥

हे तात ! मेरा यही उपदेश है कि तुमसे जिस प्रकार श्रीसीता-रामजी सुख-पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार और पुरी के सुख की सुधि न करें, तुम वही करना । तुलसीदासजी कहते हैं कि इस प्रकार पुत्र को शिक्षा देकर माता ने आज्ञा दे दी,फिर आशीर्वाद दिया कि

श्रीसीता-रामजी के चरणों में तुम्हारी अटल और पवित्र प्रीति नित्य-नवीन हो।

सो०—मातु चरन सिर नाइ, तुरत चले संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृगु भाग्य बस ॥ ७५ ॥

माता के चरणों में सिर नवाकर मन में शङ्का करते हुए लक्ष्मणजी ऐसे जल्दी चले-जैसे भाग्यवश मृग कठिन जाल को छोड़कर भाग चला हो।

गए लखनु जहँ जानकी नाथू * भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू
बन्दि राम सिय चरन सुहाए * चले सङ्ग नृप मन्दिर आए

लक्ष्मणजी वहाँ गये-जहाँ श्रीरामजी थे, प्रिय का साथ पाकर मन में बहुत प्रसन्न हुए। श्रीसीता-रामजी के सुन्दर चरणों में प्रणाम करके उनके साथ चले और राज-मंदिर में आये।

कहहिं परस्पर पुर नर नारी * भलि बनाइ बिधि बात बिगारी
तनु कृस मन दुखु बदन मलीने * बिकल मनहुँ माखी मधु छीने

नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कहने लगे कि विधाता ने बात बनाकर बिगाड़ दी। उनके शरीर दुबले, मन दुखी और मुख उदास हो गये हैं। ऐसे दुखी हैं—जैसे शहद के छिन जाने से मधु-मक्खियाँ दुखी हो जाती हैं।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं * जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा * बरनि न जाइ बिषादु अपारा

सब हाथ मलने और शिर धुनकर पछताने लगे, मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हैं राज द्वार पर बड़ी भीड़ हो गई, उनका अपार दुःख कहा नहीं जाता।

सचिवँ उठाइ राउ बैठारे * कहि प्रिय बचन रामु पगुधारे
सिय समेत दोउ तनय निहारी * ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी

मन्त्री ने महाराज दशरथ को यह मधुर वचन कहकर कि 'श्रीरामजी आये हैं' उठा कर बैठाया। सीताजी समेत दोनों भाइयों को देखकर राजा बड़े व्याकुल हुए।

दोहा—सिय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ ॥ ७६ ॥

सीताजी सहित दोनों सुन्दर पुत्रों को देख-देखकर घबड़ा कर महाराज दशरथजी बार-म्बार स्नेह के वश होकर उन्हें हृदय से लगाने लगे।

सकल न बोलि बिकल नरनाहू * सोक जनित उर दारुन दाहू
नाइ सीस पद अति अनुरागा * उठि रघुबीर बिदा तब माँगा

राजा व्याकुल थे, बोल नहीं सकते, शोक से उत्पन्न कठिन जलन हृदय में है। उसी समय श्रीरामचन्द्रजी ने उठकर बड़े प्रेम से चरणों में मस्तक नवाकर वन जाने के लिए विदा माँगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै * हरष समय बिसमय कत कीजै
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू * जसु जग जाइ होइ अपबादू

और बोले-हे पिताजी! मुझे आशीर्वाद देकर आज्ञा दीजिये। आनन्दके समय आपदुख क्योंकरते हैं? हे तात! प्रिय के प्रेम में मोह करने से जगत में यश जाता रहेगा व आपकी निन्दा होगी।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ * बैठारे रघुपति गहि बाँहा
सुनत तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं * रामु चराचर नायक अहहीं

यह सुनकर स्नेह वश राजा ने उठकर श्रीरामजी की बाँह पकड़ कर उन्हें बिठा लिया। (और बोले) हे राम! सुनो, मुनिजन कहते हैं कि श्रीरामजी चराचर के स्वामी हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी * ईसु देइ भलु हृदयँ बिचारी
करइ जो करम पाव फल सोई * निगम नीति अस कह सबु कोई

भले और बुरे कर्मों के अनुसार मन में विचार कर ईश्वर फल देता है। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है। ऐसी वेदों की नीति है और सब यही कहते हैं।

दोहा—औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवन्त गति, को जग जानैं जोगु॥ ७७॥

अपराध तो कोई और करे और उसका फल कोई और पावे। ईश्वर की यह बड़ी विचित्र गति है, उसे जानने योग्य जगत में कौन है?

रायँ राम राखत हित लागी * बहुत उपाय किए छलु त्यागी
लखा राम रुख रहत न जाने * धरम धुरन्धर धीर सयाने

राजा ने श्रीरामचन्द्रजी को रखने के लिए-छल-छोड़कर बहुत से उपाय किये। परन्तु जब श्रीरामजी का रुख देखा तो जान लिया कि ये धर्म-धुरन्धर, धीर और चतुर हैं, किसी भी प्रकार से नहीं रुक सकेंगे।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही * अतिहित बहुत भाँति सिख दीन्ही
कहि बन के दुख दुसह सुनाए * सासु ससुर पितु सुख समुझाए

तब राजा ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और उन्हें प्रेम से बहुत-सी हितकारी शिक्षा दी। फिर वन के कठिन दुःख कह सुनाये और सासु-ससुर व पिता के द्वारा मिलने वाले सुख भी समझाये।

सिय मनु राम चरन अनुरागा * घरु न सुगम बनु बिषमु न लागा
औरउ सबहिं सीय समुझाई * कहिकहि बिपिन बिपति अधिकाई

सीताजी का मन श्रीरामजी के चरणों में लगा था इसलिए घर पर रहना भला नहीं लगा। वन कठिन नहीं लगा, और भी सब लोगों ने वन की घोर विपत्तियों को कहकर समझाया।

सचिव नारि गुर नारि सयानी * सहित सनेह कहहिं मृदु बानी
तुम्ह कहुँ तो न दीन्ह बनबासू * करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू

मन्त्री की स्त्री और चतुर गुरु पत्नी स्नेह के साथ मधुर वाणी से बोलीं—तुमको तो और वनवास नहीं दिया है, इसी कारण जो सास-ससुर और गुरु कहें—वही करो।

दोहा—सिख सीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।

सरद चन्द चाँदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥ ७८ ॥

वह शीतल, हितकारी, मधुर कोमल सीख भी सीताजी को ऐसे नहीं सुहाई, जिस प्रकार-शरद-ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगने से चकवी व्याकुल हो जाती है।

सीय सकुच बस उतरु न देई * सो सुनि तमकि उठी कैकई
मुनि पट भूषन भाजन आनी * आगें धरि बोली मृदु बानी

सङ्कोच वश सीताजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। यह सुनकर कैकई तुनक कर उठी और मुनियों के-से वस्त्र, आभूषण और पात्र लाकर आगे रखकर कोमल वाणी से बोली-

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा * सील सनेह न छाँड़िहि भीरा
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ * तुम्हहि जान बन कहहि न काऊ

हे श्रीराम ! तुम राजा को प्राणों के समान प्रिय हो, दुर्बल राजा शील व स्नेह नहीं छोड़ेंगे चाहे पुण्य, उत्तम यश और परलोक नष्ट हो जाय,पर राजा तुमसे वन जाने के लिए नहीं कहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा * राम जननि सिख सुनि सुख पावा
भूपहि वचन बान सम लागे * करहिं न प्रान पयान अभागे

ऐसा बिचारकर वही करो, जो तुम्हें भला लगे। श्रीरामजी ने माताकी सीखसुन सुख पाया, राजा को यह वचन बाण के समान लगे। वे बोले--हाय ! अभागे प्राण अब भी नहीं निकलते।

सोक बिकल मूरछित नरनाहू * काह करिअ कछु सूझ न काहू
राम तुरत मुनि वेष बनाई * चले जनक जननिहि सिरु नाई

शोक से व्याकुल हो राजा मूर्छित हो गये। किसी को कुछ नहीं सूझ पड़ा कि क्या करें। श्रीरामजी तुरन्त मुनियों का-सा वेष बनाकर माता-पिता को सिर नवाकर चल दिये।

दोहा—सजि बन साजु समाजु सबु, बनिता बन्धु समेत।
बन्दि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहिं अचेत ॥ ७९ ॥

पत्नी और भ्राता सहित प्रभु श्रीरामजी वन का सब सामान सजाकर, ब्राह्मण और गुरुजनों के चरणों में प्रणाम करके सबको अचेत करके चले।

निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े * देखे लोग बिरह दव दाढ़े
कहि बिप्र बचन सकल समुझाए * बिप्र बृन्द रघुबीर बोलाए

राज-भवन से निकलकर श्रीरामजी—वसिष्ठजी के द्वार पर आ खड़े हुए। वहाँ देखा कि लोग विहाग्नि से दग्ध हो रहे हैं। तब श्रीरघुनाथजी ने सबको प्रिय वचन कहकर समझा दिया और ब्राह्मणों की मण्डली को बुलाया।

गुरु सन करि बरषासन दीन्हे * आदर दान बिनय बस कीन्हे
जाचक दान मान सन्तोषे * मीत पुनीत प्रेम परितोषे

गुरुजी से कहकर उन्हें चौदह वर्ष के लिऐ भोजन दिए और आदर, दान,विनयसे सबको प्रसन्न किया। याचकों को दान व मान से सन्तुष्ट किया और मित्रों को सच्चे प्रेम से प्रसन्न किया !

दासी दास बोलाए बहोरी * गुरहि सौंपि बोले कर जोरी
सब कै सार सँभार गोसाईं * करबि जनक जननी की नाईं

फिर दासी और सेवकों को बुलाकर गुरुजी को सौंप, हाथ जोड़कर बोले—हे स्वामी ! इन सबकी देख-भाल आप माता-पिता के समान करते रहियेगा ।

बारहिं बार जोरि जुग पानी * कहत रामु सब सन मृदुबानी
सोइ सब भाँति मोर हितकारी * जेहिं तें रहैं भुआल सुखारी

फिर बारम्बार हाथ जोड़कर श्रीरामजी सबसे मधुर वाणी से कहने लगे कि सब प्रकार से मेरा हितकारी वही होगा—जिससे राजा सुखी रहेंगे ।

दोहा—मातु सकल मोरे बिरहँ, जेहिं होहिं दुख दीन ।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब, पुरजन परम प्रबीन ॥ ८० ॥

हे परम चतुर अयोध्यावासियो ! सब लोग मिलकर वही प्रयत्न करना-जिससे मेरी सब मातायें मेरे वियोग के दुःखी तथा दीन न हों ।

एहि बिधि राम सबहि समुझावा * गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा
गनपति गौरि गिरीसु मनाई * चले असीस पाइ रघुराई

श्रीरामजी ने इस प्रकार सबको समझाया और आनन्दपूर्वक गुरुजी के चरण-कमलों में सिर नवाया फिर गणेश, गौरी और शिवजी को मनाकर और आशीर्वाद पाकर श्रीरामजी चले ।

रामु चलत अति भयउ बिषादू * सुनि न जाइ पुर आरत नादू
कुसगुन लङ्क अवध अति सोकू * हरष बिषाद बिबस सुरलोकू

श्रीरामजी के चलते ही सबको बड़ा दुःख हुआ, हाहाकार सुना नहीं जाता । लंकामें अशकुनहुए और अयोध्या में अति शोक छागया । देवलोक में देवता हर्ष और विशाद के वश हो गये ।

गइ मूरछा तब भूपति जागे * बोलि सुमन्त कहन अस लागे
राम चले बन प्रान न जाहीं * केहि सुख लागि रहत तनु माहीं

मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमन्त को बुलाकर ऐसे बोले-श्रीरामजी तो वनको जा रहे हैं, परन्तु मेरे प्राण नहीं जाते । न जाने किस सुख के लिए शरीर में अटक रहे हैं ?

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना * जो दुखु पाइ तजहि तनु प्राना
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू * लै रथ सङ्ग सखा तुम्ह जाहू

इससे अधिक बलवान और कौनसी व्यथा होगी-जिस दुखको पाकर प्राण इस शरीरको छोड़ेंगे । फिर धैर्य धरकर राजा ने मन्त्री से कहा-तुम रथ लेकर श्रीरामजी के साथ जाओ ।

दोहा—सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु, फिरेहु गएँ दिन चारि ॥ ८१ ॥

दोनों सुन्दर पुत्र सुकुमार हैं और जानकीजी तो बहुत ही सुकुमारी हैं । तुम उन्हें रथ पर चढ़ाकर वन दिखलाकर चार दिन बाद लौट आना ।

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई * सत्यसिंधु दृढ़ व्रत रघुराई
तौ तुम्ह विनय करहु कर जोरी * फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी

यदि धैर्यधारी दोनों भाई न लौटें, क्योंकि श्रीरघुनाथजी सत्य के समुद्र और दृढ़प्रतिज्ञ हैं, तो तुम हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करना कि हे प्रभु ! जानकीजी को तो लौटा दीजिये।

जब सिय कानन देखि डेराई * कहेहु मोर सिख अवसर पाई
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू * पुत्रि फिरिह बन बहुत कलेसू

जब सीताजी वन को देखकर डरें-तब अवसर पाकर मेरी सीख कहना कि तुम्हारी सासु और ससुर ने यह सन्देश कहा है कि हे पुत्री ! तुम लौट आओ, वन में बहुत क्लेश है।

पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी * रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी
एहि विधिकरहु उपाय कदम्बा * फिरइ तौ होइ प्रान अवलम्बा

कभी पिता के घर, कभी ससुराल में जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ रहना। इस प्रकार बहुत से उपाय करना, जो सीता लौट आवे तो प्राणों को सहारा हो जायगा।

नाहिं तौ मोर मरनु परिनामा * कछु न बसाइ भएँ विधि बामा
अस कह मूर्छित परामहि राऊ * रामु लखनु सिय आनि देखाऊ

नहीं तो अन्त में मेरा मरण है। कुछ बश नहीं, भाग्य उल्टा होगया। श्रीराम-लक्ष्मण सीता को लाकर दिखाओ, ऐसा कहकर राजा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

दोहा—पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथ अति बेगि बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ ॥ ८२ ॥

राजा की आज्ञा पा, सिर नवाकर, शीघ्र ही रथ तैयार कर सुमन्त वहाँ गये-जहाँ नगर के बाहर सीता समेत दोनों भाई थे।

तब सुमन्त्र नृप वचन सुनाए * करि विनती रथु राम चढ़ाए
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई * चले हृदयँ अवधहिं सिरु नाई

तब सुमन्त ने राजा के वचन सुनाये और प्रार्थना करके श्रीरामजी को रथ पर चढ़ाया। सीता समेत दोनों भाई रथ पर चढ़कर मन में अयोध्यापुरी को प्रणाम कर वन को चले।

चलत रामु लखि अवध अनाथा * विकल लोग सब लागे साथा
कृपासिंधु बहु विधि समुझावहिं * फिरहिं प्रेम बस पुनि फिर आवहिं

श्रीरामजी के चलते ही अवधपुरी को अनाथ देखकर सब लोग दुखित होकर साथ चलने लगे। कृपा के समुद्र श्रीरामजी उन्हें बहुत भाँति से समझाते हैं, समझने पर लौटने लगते हैं, किन्तु प्रेम के वश हो वे फिर लौट आते हैं।

लागति अवधि भयावनि भारी * मनहुँ कालराति अँधियारी
घोर जन्तु सम पुर नर नारी * डरपहिं एकहिं एक निहारी

अयोध्यापुरी बहुत डरावनी प्रतीत होने लगी, मानो अँधेरी काल-रात्रि हो। नगर के सब नर-नारी भयंकर जीवों के समान एक दूसरे को देखकर डरने लगे।

घर मसान परिजन जनु भूता * सुत हित मीत मनहुँ जमदूता
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हलाहीं * सरित सरोवर देखि न जाहीं

घर-मरघट, कुटुम्बी, भूत-प्रेत, पुत्र, हितू व मित्र-मानो यमदूत हैं। बागों में वृक्ष व लतायें मुरझा गईं, नदी और तालाब देखे नहीं जाते।

दोहा—हय गय कोटिन्ह केलि मृग, पुर पसु चातक मोर।
पिक रथाङ्ग सुक सारिका, सारस हंस चकोर॥ ८३॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के हिरन, नगर के पशु, पपीहा, मोर, कोयल, चकवा, तोता, मैना सारस, हंस, चकोर आदि जीव—

राम वियोग बिकल सब ठाड़े * जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े
नगरु सफल बनु गहबर भारी * खग मृग बिपुल सकल नरनारी

श्रीरामजी के वियोग में व्याकुल जहाँ-तहाँ सब ऐसे खड़े रह गये, मानो चित्र में लिख दिये हों। सम्पूर्ण संसार मानो भारी सघन-वन होगया, उसमें सब नर-नारी ही मानो बहुत से पशु-पक्षी हैं।

बिधि कैकई किरातिन कीन्ही * जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही
सहि न सके रघुबीर बिरहागी * चलै लोग सब व्याकुल भागी

विधाताने कैकईको भीलनी बनाया, जिसने वन की दशों दिशाओं में दुःसह दावाग्नि लगादी। जब श्रीरामजी की विरहरूपी अग्नि को न सह सके, तब सब लोग घबड़ाकर भाग चले।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं * राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं
जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू * बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू

सबने अपने २ मन में विचार किया कि श्रीरामजी, लक्ष्मणजी व सीताजी के बिना सुख नहीं है। जहाँ श्रीरामजी हैं—वहाँ ही सारा समाज रहेगा, बिना रघुनाथजी के अयोध्या में क्या काम है?

चले साथ सब मन्तु दृढ़ाई * सुर दुर्लभ सुखु सदन बिहाई
राम चरन पङ्कज प्रिय जिन्हही * विषय भोगबस करहिं कि तिन्हही

इस तरह पक्का विचार करके देवताओं को भी दुर्लभ ऐसे सुखदायक घरों को त्याग कर श्रीरामजी के साथ चले। जिन्हें श्रीरामजी के चरणारविन्द प्यारे हैं, उन्हें क्या विषय-भोग वश में कर सकते हैं?

दोहा—बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥ ८४॥

बालकों और बूढ़ों को घर में छोड़कर सब लोग श्रीरामचन्द्रजी के साथ चले। पहले दिन श्रीरामजी ने तमसा-नदी के किनारे निवास किया।

रघुपति प्रजा प्रेम बस देखी * सदय हृदय दुख भयउ विशेषी
करुनामय रघुनाथ गोसाँई * बेगि पाइअहिं पीर पराई

प्रजा को प्रेम के वश देखकर श्रीरामजी के दयालु हृदय में बहुत दुःख हुआ। दया से परिपूर्ण स्वामी श्रीरघुनाथजी पराये दुःख को जल्दी समझ लेते हैं।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए * बहुविधि राम लोग समुझाए
किए धरम उपदेश घनेरे * लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे

श्रीरामजीने प्रेम भरे मधुर और सुहावने वचन कहकर बहुत प्रकार से लोगोंको समझाया। और धर्म-सम्बन्धी अनेक उपदेश सुनाये, परन्तु प्रेम के मारे लोग लौटाने से भी नहीं लौटते।

सीलु सनेहु छाँड़ि नहिं जाई * असमंजस बस भे रघुराई
लोग सोक श्रम बस गए सोई * कछुक देवमायाँ मति मोई

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता, श्रीरघुनाथजी दुविधा में पड़ गये। रात में लोग दुःख और थकावट के मारे सो गये और कुछ देवमाया ने भी उन्हें मोहित कर दिया।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती * राम सचिव सन कहेउ सप्रीती
खोजि मारि रथु हाँकहु ताता * आन उपायँ बनिहि नहिं बाता

दो पहर रात बीत गई, तब श्रीरामजी ने मन्त्री सुमन्त से प्रेम के साथ कहा—हे तात! रथ को इस प्रकार हाँकिये कि चिन्ह दिखाई न पड़ें, क्योंकि अन्य उपाय से बात नहीं बनेगी।

दोहा—रामलखन सियजानिचढ़ि, सम्भु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथु, इत उत खोज दुराइ॥ ८५॥

श्रीरामजी-लक्ष्मणजी और सीताजी-शिवजी के चरणों में नमस्कार कर रथ पर चढ़े। तब सुमन्त ने इधर-उधर खोज छिपाकर रथ हांक दिया।

जागे सकल लोग भएँ भोरू * गे रघुनाथ भयउ अति सोरू
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं * राम राम कहि चहुँदिसि धावहिं

सबेरा होने पर सब लोग जागे, तो बहुत शोर मचाकि 'श्रीरघुनाथजी चले गये।' रथ की खोज कहीं न मिली, तब-सब 'राम-नाम' कहकर चारों ओर दौड़ने लगे।

मनहुँ बारिनिधि बूढ़ जहाजू * भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू
एकहि एक देहिं उपदेसू * तजे राम हम जानि कलेसू

मानो समुद्र में जहाज डूब जाने से बणिकों का समाज व्याकुल हो गया हो। एक दूसरे को उपदेश देने लगे कि श्रीरामजी ने हमें 'क्लेश' जानकर त्याग दिया।

निन्दहिं आह सराहहिं मीना * धिक जीवनु रघुबीर बिहीना
जौं पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा * तो कस मरनु न माँगें दीन्हा

वे सब अपनी निन्दा और मछलियों की बड़ाई करने लगे कि—श्रीरघुनाथजी के बिना हमारे जीवन को धिक्कार है। जो विधाता ने प्रिय का वियोग ही दिया तो माँगने से हमको

मरण ही क्यों नहीं देता ?

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा * आए अवध भरे परितापा
बिषम बियोगु न जाइ बखाना * अवधि आस सब राखिहिं प्राना

इस प्रकार बहुत से विलाप करते हैं, दुःख से भरे हुए वे सब अयोध्या में आये। उनका कठिन वियोग दुःख कहा नहीं जाता, अवधि की आशा से ही सब अपने प्राणों को रख रहे हैं।

दोहा—राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि॥ ८६॥

श्रीरामजी के दर्शन के निमित्त सब नर-नारी नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दीन हो गये, मानो चकवा-चकवी और कमल सूर्य के बिना दीन हो गये हों।

सीता सचिव सहित दोउ भाई * शृङ्गवेरपुर पहुँचे जाई
उतरे राम देवसरि देखी * कीन्ह दण्डवत हरषु बिसेषी

दोनों भाई सीता और मन्त्री सुमन्त सहित शृङ्गवेरपुर पहुँचे। गङ्गाजी को देखकर श्रीरामजी रथ से उतर पड़े आनन्द के साथ दण्डवत की।

लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा * सबहि सहित सुखु पायउ रामा
गङ्ग सकल मुद मङ्गल मूला * सब सुखु करनि हरनि सब सूला

लक्ष्मणजी, सुमन्त व सीताजी ने भी प्रणाम किया। सबके साथ श्रीरामजी ने सुख पाया। गङ्गाजी सम्पूर्ण मङ्गलों की जड़ हैं, वे सब सुखों को करने वाली और सब दुःखों को हरने वाली हैं।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसङ्गा * रामु बिलोकहिं गंग तरंगा
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई * बिबुध नदी महिमा अधिकाई

करोड़ों कथाओं के प्रसङ्ग कहकर श्रीरामजी गङ्गाजी की तरङ्गों को देखने लगे। उन्होंने सुमन्त, लक्ष्मणजी व सीताजी को देव-नदी (गङ्गाजी) की बड़ी महिमा सुनाई।

मज्जनु कीन्ह पन्थ श्रम गयउ * सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू * तेहि श्रम यह लौकिक व्यवहारू

फिर उन्होंने स्नान किया, तो मार्ग का श्रम जाता रहा और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया जिसके स्मरण मात्र से संसार का श्रम मिट जाता है, उनके लिए 'श्रम' कहना यह सांसारिक रीति है।

दोहा—शुद्ध सच्चिदानन्द मय, कुन्द भानुकूल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु॥ ८७॥

श्रीरामजी तो शुद्ध सत्-चित-आनन्द से परिपूर्ण और सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ हैं। उनके मनुष्यों के अनुसार चरित्र भवसागर को पार करने के लिए पुल के समान हैं।

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई * मुदित लिए प्रिय बन्धु बोलाई
लिए फल मूल भेंट भरि भारा * मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा

जब यह समाचार निषादराज ने पाया-तब उसने प्रसन्न होकर अपने बन्धुओं को बुलाया। भेंट के लिए फल और कंद-मूलबहँगियों में भरकर चला, उसके हृदय में अपार आनन्द था।

करि दण्डवत भेंट धरि आगें * प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें
सहज सनेह बिबस रघुराई * पूँछी कुसल निकट बैठाई

दण्डवत कर भेंट आगे रखकर बड़ी प्रीति के साथ प्रभु की ओर देखने लगा। स्वाभाविक प्रेम के वश में होकर श्रीरघुनाथजी ने गुह निषाद को अपने निकट बैठाकर कुशल पूँछी।

नाथ कुसल पद पङ्कज देखें * भयउँ भाग्य भाजन जन लेखें
देवि धरनु धनु धामु तुम्हारा * मैं जनु नीचु सहित परिवारा

(गुह बोला-) हे नाथ! आपके चरणकमलों के दर्शन से सब कुशल है। आज मैं भाग्यवान् मनुष्यों में गिने जाने योग्य होगया। हे देव! यह भूमि और धन-धाम सब आपका ही है। मैं परिवार सहित आपका नीच दास हूँ।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊँ * थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊँ
कहेउ सत्य सबु सखा सुजाना * मोहि दीन्हि पितु आयसु आना

मुझ पर कृपा करके पुर में पधारिये और मुझे अपना भक्त बनाइये। जिससे सब लोग प्रसन्न होकर मेरे भाग्य की सराहना करें। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—हे चतुर सखा! तुमने यह सब ठीक कहा है, परन्तु पिताजी ने मुझे और ही आज्ञा दी है।

दोहा—बरष चारिदस बासु बन, मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्रामबासु नहिं उचित सुनि, गुहहि भयउ दुखु भारु ॥ ८८ ॥

मुझे मुनियों के समान नियम, वेष और आहार करते हुए चौदह वर्ष वन में निवास करना है। इस कारण गांव में वास करना उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बड़ा दुःख हुआ।

राम लखन सिय रूप निहारी * कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे * जिन्ह पठए बन बालक ऐसे

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर गांवके सब स्त्री-पुरुष प्रेम सहित कहने लगे—हे सखी! कहो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे बालक वन में भेज दिये?

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा * लोचनु लाभु हमहि बिधि दीन्हा
तब निषादपति उर अनुमाना * तरु सिंसुपा मनोहर जाना

कोई बोले—महराज ने अच्छा किया, जो ब्रह्मा ने हम लोगों को नेत्रों का लाभ दिया। तब निषादराज ने अपने मन में एक शीशम के वृक्ष को मनोहर जानकर—

लै रघुनाथहिं ठाउँ देखावा * कहेउ राम सब भाँति सोहावा
पुरजन करि जोहारु घर आए * रघुबर सन्ध्या करन सिधाए

वहाँ श्रीरघुनाथजी को ले जाकर स्थान दिखाया, श्रीरामजी ने उसे सब प्रकार से सुन्दर बताया। गाँव के लोग जुहार करके अपने २ घर चले गये, तब श्रीरामजी संध्या करने पधारे।

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई * कुस किसलय मय मृदुल सुहाई

शुचि फलफूल मधुर मृदु जानी * दोना भरि भरि राखेसि आनी

गुह ने भली-भाँति सँभालकर कुश और नये पत्तों की कोमल और बहुत सुन्दर सेज बनाई और पवित्र फल-फूल और पानी, मीठे और कोमल देखकर दोना भर-भरकर लाकर रख दिये।

दोहा–सिय सुमन्त्र भ्राता सहित, कन्दमूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुवंसमनि, पायँ पलोटत भाइ॥ ८९॥

सीताजी, सुमन्त और भाई (लक्ष्मण) सहित कन्द-मूल-फल खाकर श्रीरामचन्द्रजी ने शयन की, तब भाई लक्ष्मण उनके चरण दबाने लगे।

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी * कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी
कछुक दूरि सजि बानसरासन * जागन लगे बैठि बीरासन

प्रभु को सोते हुए जानकर लक्ष्मणजी उठे और मन्त्री सुमन्त को सोने के लिए मधुर वाणी से कहकर कुछ दूर पर धनुष-बाण सजाकर और वीरासन से बैठकर जागने लगे।

गुहँ बोलाइ पहारू प्रतीती * ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती
आपुन लखन पहिं बैठेउ जाई * कटि भाथी सर चाप चढ़ाई

गुह ने विश्वासी पहरेदार बुलाकर बड़े प्रेम से जगह २ पर खड़े कर दिये और आप भी कमर में तरकस, धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्मणजी के पास जाकर बैठ गया।

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू * भयउ प्रेम बस हृदय बिषादू
तन पुलकित जलु लोचन बहई * बचन सप्रेम लखन सन कहई

निषादराज–प्रभु श्रीरामजी को सोते हुए देखकर स्नेह वश अपने मन में बहुत दुःखी हुआ। शरीर में रोमांच हो आया, नेत्रों में आंसु बहने लगे और प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से यह वचन कहने लगा–

भूपति भवन सुभायँ सुहावा * सुरपति सदनु न पटतर आवा
मनिमय रचित चारु चौबारे * जनु रतिपति निज हाथ सँवारे

दशरथजी का राजमहल तो स्वभाव से ही ऐसा सुन्दर है कि इन्द्र-भवन भी उसकी समता नहीं कर सकता। मणियों से जड़े हुए उसके चौबारे हैं, मानो कामदेव ने अपने हाथों से सजाये हों।

दोहा–सुचि सुबिचित्र सुभोगमय, सुमन सुगन्ध सुबास।
पलङ्ग मंजु मनिदीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास॥ ९०॥

स्वच्छ, विचित्र, सुन्दर, भोग्य-पदार्थ से परिपूर्ण, सुन्दर पुष्पों से सुगन्धित, जहां सुन्दर पलंग बिछे हुए हैं और मणियों के दीपक हैं तथा हर प्रकार का आराम है।

बिबिध बसन उपधान तुराईं * छीर फेन मृदु बिषद सुहाईं
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं * निज छबि रति मनोज मदु हरहीं

जहाँ अनेक प्रकार के वस्त्र, मधुर तकिये और तोषक, दूध के फेन के समान सफेद, कोमल और सुन्दर शैया हैं, उन पर श्रीसीता-रामजी रात्रि को शयन करते हुए अपनी शोभा से रति और कामदेव के अभिमान को भी हरते हैं।

ते सिय राम साँथरीं सोए * श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए
मातु पिता परिजन पुरवासी * सखा सुसील दास अरु दासी

वही श्रीसीता-रामजी थकित हो, विना बिछौने के कुश और पत्तोंकी सेज पर सो रहे हैं, जो देखे नहीं जाते। माता-पिता, कुटुम्बी, नगर-निवासी, सखा, सुन्दर स्वभाव वाले दास और दासियां–

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं * महि सोवत सोइ राम गोसाईं
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ * ससुर सुरेश सखा रघुराऊ

ये सब प्राणों के समान जिनकी रक्षा करते थे, वही प्रभु श्रीरामजी पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिनके पिता जनकजी हैं, जिसका प्रभाव संसारमें प्रगट है व ससुर दशरथजीहैं, जो इन्द्रके सखाहैं।

रामचन्दु पति सो बैदेही * सोवत महि विधि बाम न केही
सिय रघुवीर कि कानन जोगू * करम प्रधान सत्य कहँ लोगू

श्रीरामचन्द्रजी जिनके पति हैं, वह जानकीजी पृथ्वी पर सो रही हैं। विधाता किसके विपरीत नहीं होता ? श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजी क्या वन के योग्य हैं ? कर्म ही प्रधान हैं, ऐसा लोग कहते हैं—ठीक है।

दोहा—कैकयनन्दिनि मन्द, मति, कठिन कुटिल पनु कीन्ह।
जेहिं रघुनन्दन जानिकिहि, सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥९१॥

मन्द-मति कैकई ने बड़ा कठिन-प्रण किया, जिसने श्रीरघुनाथजी व जानकीजी को सुख के समय दुःख दिया।

भइ दिनकर कुल विटप कुठारी * कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी
भयउ बिषाद निषादहि भारी * राम सिय महि सयन निहारी

वह सूर्यवंश-रूपी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी हुई, उस दुर्बुद्धि ने सब संसार को दुःखी कर दिया। श्रीरामजी और सीताजी को पृथ्वी पर शयन करते हुए देखकर निषाद को बड़ा दु.ख हुआ।

बोले लखन मधुर मृदु बानी * ग्यान बिराग भगति रस सानी
काह कोउ सुख सुखकर दाता * निजकृत करम भोग सबु भ्राता

तब लक्ष्मणजी ज्ञान-वैराग्य और भक्ति रस से युक्त मधर व कोमल वाणी से बोले-हे भैया! कोई किसी को सुख-दुःख देने वाला नहीं है, सब अपने २ किये कर्मों का फल भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मन्दा * हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा
जनमु मरमु जहँ लगि जग जालू * सम्पति बिपति करमु अरु कालू

मिलना-बिछुड़ना, भले-बुरे भोग, मित्र व शत्रु—यह सब भ्रम रूपी अज्ञान के फन्दे हैं। जन्म से मरण पर्यन्त जितने संसार के जाल, सम्पत्ति, विपत्ति कर्म और काल–

धरनि धामु धनु पुर परिवारू * सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं * माया कृत्य यथारथु नाहीं

भूमि, घर, द्रव्य, कुटुम्ब, स्वर्ग-नरक आदि जहाँ तक व्यवहार हैं। वे सब देखे-सुने और मन में विचारे जाते हैं, यह सब माया की रचना है—वास्तव में कुछ नहीं।

दोहा—सपने होइ भिखारि नृप, रङ्कु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥ ९२ ॥

जिस प्रकार स्वप्न में राजा भिखारी हो जाय और कंगाल—इन्द्र हो जाय, परन्तु जागने पर लाभ-हानि कुछ नहीं होती। इसी प्रकार माया-कृत विस्तार को हृदय में देखना चाहिए।

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोषू * काहुहि बादि न देइअ दोषू
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा * देखिअ सपन अनेक प्रकारा

ऐसा विचार कर क्रोध नहीं करना चाहिये और किसी को व्यर्थ में दोष भी नहीं देना चाहिए। सब मोहरूपी रात्रि में सोने वाले हैं, उसी में भाँति-भाँति के स्वप्न देखते हैं।

एहिं जगजामिनि जागहिं जोगी * परमारथी प्रपञ्च बियोगी
जानिअ तबहिं जीव जग जागा * जब सब बिषय बिलास बिरागा

इस जगतरूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थ और प्रपंच के त्यागे हुए हैं। जगत में जीव को तब ही जागता हुआ जानना चाहिए, जब वह विषयों से विरक्त हो जाय।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा * तब रघुनाथ चरन अनुरागा
सखा परम परमारथु एहू * मन क्रम बचन राम पद नेहू

ज्ञानी होने से मोह और भ्रम जाता रहता है तब श्रीरघुनाथजी के चरणों में अनुराग होता है। हे सखा! परमार्थ यही है कि मन, कर्म और वचन से श्रीरामजी के चरणों में स्नेह हो।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा * अबिगत अलख अनादि अनूपा
सकल बिकार रहित गत भेदी * कहि नित नेति निरूपहिं बेदी

श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्म और मोक्ष-स्वरूप हैं। वे अविगत, अदृश्य, अनुपम सभी विकारों से रहित और भेद शून्य हैं। वेद 'नेति-नेति' कहकर उनका निरूपण करते हैं।

दोहा—भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिं जग जाल ॥ ९३ ॥

भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवता-इनके निमित्त कृपालु भगवान मनुष्य-देह धारण कर लीला करते हैं। जिनके चरित्र सुनने से संसार के बन्धन दूर हो जाते हैं।

* मास पारायण—पन्द्रहवाँ विश्राम *

सखा समुझि अस परिहरि मोहू * सिय रघुबीर चरन रत होहू
कहत राम गुन भा भिनुसारा * जागे जग मङ्गल सुखदारा

हे सखा ऐसा समझ, मोह को त्यागकर श्रीसीता-रामजीके चरणों में मन लगाओ इसप्रकार श्रीरामजी के गुण-गान करते हुए सबेरा हुआ और जगत के मंगल-दाता श्रीरामजी जागे।

सकल शौच करि राम नहावा * शुचि सुजान बट क्षीर मँगावा
अनुज सहित सिर जटा बनाए * देखि सुमन्त्र नयन जल छाए

परम पवित्र श्रीरामजी ने शौच क्रिया करके स्नान किया, फिर वट-वृक्ष का दूध मँगाया और लक्ष्मण सहित सिर पर जटा बनाई, यह देखकर सुमन्तजी के नेत्रों में जल भर आया।

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना * कह कर जोरि वचन अति दीना
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा * लै रथु जाहु राम कें साथा

हृदय में बड़ी जलन हुई, मुख मलीन हो गया। वे हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन वचन बोले–हे नाथ! कौशलाधीश दशरथजी ने मुझसे ऐसा कहा कि तुम रथ लेकर श्रीरामजी के साथ जाओ।

बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई * आनेहु फेरि बेग दोउ भाई
लखनु राम सिय आनेहु फेरी * संसय सकल सँकोच निबेरी

वन दिखाकर व गंगा-स्नान कराकर दोनों भाइयों को जल्दी से लौटा लाना। सब संशय और संकोच को त्याग लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी को फिरा लाना।

दोहा–नृप अस कहेउ गोसाँई जस, कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पाँयन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥ ९४ ॥

महाराजने ऐसा कहा था,हे स्वामी! अबआप जैसा कहें,वही करूं-मैं आपकी बलिहारीहूं।इस प्रकार विनती करके वे श्रीरामजी के चरणों पर गिर पड़े और बालक की भांति रोने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई * जाते अवध अनाथ न होई
मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा * तात धरम मतु तुम्ह सब सोधा

(फिर कहा-) हे तात! कृपा करके वही उपाय कीजिये-जिससे-अयोध्या अनाथ न हो। मन्त्री सुमन्त को उठाकर श्रीरामजी ने समझाया कि हे तात! आपने तो धर्म के सभी मार्ग को जाना है।

शिव दधीचि हरिशचन्द नरेसा * सहे धरमु हित कोटि कलेसा
रन्तिदेव बलि भूप सुजाना * धरम धरेउ सहि सङ्कट नाना

राजा शिव,दधीचि व हरिचन्द्र ने धर्म की रक्षा के लिए करोड़ों क्लेश सहे थे। परम चतुर राजा रतिदेव और बलि ने अनेकों प्रकार संकट सहकर भी धर्म को धारण किया था।

धरमु न दूसर सत्य समाना * आगम निगम पुरान बखाना
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा * तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा

सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है-यह वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा है। मैंने यह धर्म सहज ही में पा लिया है, उसे छोड़ देने में तीनों लोकों में अपयश छा जायगा।

सम्भावित कहुँ अपजसु लाहू * मरन कोटि सम दारुन दाहू
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ * दिएँ उतरु फिरि पातक लहऊँ

सत्पुरुष को अपयश प्राप्त होना करोड़ों मृत्यु के समान दारुण दुःख उत्पन्न करता है। हे तात ! आपसे अधिक क्या कहूँ, उत्तर देने में पाप का भागी होऊँगा ।

दोहा—पितु पद गहि कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि ।
चिंता कवनिहु बात कै, तात करिअ जनि मोरि ।। ९५ ।।

आप पिताजी के चरण छूकर करोड़ों प्रणाम कह करके हाथ जोड़कर विनती करना कि पिताजी आप मेरी किसी बात की चिन्ता न करें ।

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें * विनती करउँ तात कर जोरें
सब विधि सोइ कर्तब्य तुम्हारें * दुख न पाव पितु सोच हमारें

फिर आप भी पिताजी के समान बड़े हितैषी हैं । हे तात ! आप से भी हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि सब प्रकार से आपका भी कर्तव्य है कि जिससे पिताजी हमारे सोच में दुःख न पावें।

सुनि रघुनाथ सचिव सम्वादा * भयउ सपरिजन विकल निषादा
पुनि कछु लखन कही कटु बानी * प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी

श्रीरामजी और सुमन्त का सम्वाद सुन कुटुम्ब सहित निषाद व्याकुल हो गया । फिर लक्ष्मणजी ने कछु कटु वचन कहे, तो प्रभु ने बहुत ही अनुचित जानकर उन्हें रोक दिया ।

सकुचि राम निज सपथ देवाई * लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई
कह सुमन्त पुनि भूप सँदेसू * सहि न सकिय सिय विपिन कलेसू

श्रीरामजी ने सकुचाकर सुमन्त को अपनी सौगन्ध दिलाई कि लक्ष्मण का सन्देश वहाँ जाकर नहीं कहना । सुमन्त ने फिर राजा का सन्देश कहा कि सीताजी वन के कष्टों को न सह सकेंगी ।

जेहि विधि अवध आव फिरि सीया * सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया
नतरु निपट अवलम्ब बिहीना * मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना

अतः जिस तरह सीता पुरीको लौट आवें, वही तुमको और श्रीरामजी को करना चाहिए । नहीं तो कुछ भी सहारा न होने से मैं ऐसे नहीं जीऊँगा जैसे जल के बिना मछली नहीं जीती ।

दोहा—मइकें ससुरें सकल सुख, जबहिं जहाँ मनु मान ।
तब तहँ रहहि सुखेन सिय, जब लगि विपति बिहान ।। ९६ ।।

श्रीसीताजी के मायकें और ससुराल में सब प्रकार से सुख हैं, अतः जब जहाँ मन करे, वहाँ सुख पूर्वक रहें—जब तक विपत्ति का समय निकल जायेगा ।

विनती भूप कीन्ह जेहि भाँती * आरति प्रीति न सो कहि जाती
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना * सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना

राजा ने जिस दुःख और प्रेम के साथ प्रार्थना की है, हे रामजी वह कही नहीं जाती ।

पिता का सन्देश सुनकर कृपानिधान श्रीरामजी ने जानकी को करोड़ों प्रकार से शिक्षा दी।

सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू * फिरहु तौ सब कर मिटै खभारू
सुनि पति बचन कहत बैदेही * सुनहु प्रानपति परम सनेही

यदि तुम घर को लौट जाओ तो सास, ससुर, गुरु और प्रिय कुटुम्बी-इन सबका दुःख दूर हो जाय। पति के वचन सुन सीताजी कहने लगीं, हे प्राणनाथ। हे परम स्नेही! सुनिये-

प्रभु करुनामय परम विवेकी * तनु तजि रहित छाँह किमि छेंकी
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई * कहँ चन्द्रिका चन्दु तजि जाई

आप दयामय और परम ज्ञानवान हैं। परन्तु हे प्रभो! छाया शरीर को छोड़कर कैसे अलग रह सकती है? सूर्य को छोड़कर प्रभा कहाँ जा सकती है? चंद्रिका चंद्रमा को छोड़कर कहाँ जा सकती है?

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई * कहति सचिव सन गिरा सहाई
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी * उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी

इस प्रकार पति को प्रेमभरी विनय सुनाकर, मन्त्री सुमन्त से सुहावनी वाणी से बोलीं- आप मेरे पिता व ससुर के समान हितैषी हैं आपको उत्तर दूं तो बहुत अनुचित होगा।

दोहा—आरति बस सन्मुख भइउँ, बिलगु न मानव तात।
आरज सुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥ ९७॥

मैं विपत्ति वश आपके सन्मुख हुई अतः हे तात! बुरा न मानना। आर्य-पुत्र के चरण-कमलों के बिना-जहाँ तक जितने भी नाते हैं वे सब व्यर्थ हैं।

पितु बैभव बिलास मैं डीठा * नृप मनि मुकुट मिलत पद पीठा
सुख निधान अस पितु गृह मोरें * पिय बिहीन मन भाव न भोरें

मैंने पिताजी के ऐश्वर्य का सुख देखा है जिनके चरणों से बड़े२ राजाओंके मुकुट लग जाते हैं। ऐसा सब सुखों का धाम, पितृ-गृह भी पति के बिना भूलकर भी मेरे मन को नहीं सुहाता।

ससुर चक्कवइ कोसलराऊ * भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ
आगें होइ जेहि सुरपति लेई * अरध सिंहासन आसनु देई

मेरे ससुर चक्रवर्ती महाराज कौशलाधीश हैं, जिनका प्रभाव चौदहों भुवनों में विख्यात। जिनका इन्द्र भी आगे आकर स्वागत करते हैं और अपने आधे सिंहासन पर आसन देते हैं।

ससुर एतादृस अवध निवासू * प्रिय परिवार मातु सम सासू
बिनु रघुपति पदुम परागा * मोहि कोउ सपनेहुँ सुखद न लागा

ऐसे ससुर, अयोध्यापुरी का वास, प्रिय कुटुम्ब और माता के समान सासुयें यह सब श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलों की रज के बिना मुझे कोई स्वप्न में भी सुखदायी नहीं लगते।

अगम पन्थ वन भूमि पहारा * करि केहरि सरि सरित अपारा
कोल किरात कुरङ्ग बिहंगा * मोहि सब सुखद प्रानपति संगा

कठिन मार्ग वन-भूमि, पहाड़, हाथी, सिंह, सरोवर, नदियाँ, कोल, भील हिरन एवं पक्षी-यह सब प्राणपति के साथ सुख देने वाले होंगे।

दोहा—सासु ससुर सन मोरि हुँति, विनय करवि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु, मैं बनु सुखी सुभायँ॥ ९८॥

मेरी ओर से सासु और ससुर के चरणों में गिरकर प्रार्थना करना कि वे मेरे लिए कुछ भी चिन्ता न करें, मैं बन में स्वभावतः सुखी हूँ।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा * वीर धुरीन धरें धनु भाथा
नहिं मग श्रमु भ्रम दुख मन मोरें * मोहलगि सोचु करिअ जनि भोरें

इस पर भी प्राणनाथ और प्रिय देवर मेरे साथ हैं, जो वीरों में श्रेष्ठ और धनुष-वाण धारण किये हैं। मार्ग की थकावट का सन्देह और दुःख मेरे मन में कुछ भी नहीं है, इससे मेरे लिए भूलकर भी चिन्ता न कीजिए।

सुनि सुमन्त सिय सीतल बानी * भयउ विकल जनु फनु मनि हानी
नयन सूझि नहिं सुनइ न काना * कहि न सकइ कछु अति अकुलाना

सीताजी की शीतल वाणी सुनसुमन्त ऐसे घबड़ा गये,जैसे मणिखोजाने से सर्प घबड़ा जाता है। आँखों से दीखता नहीं कानों से सुनाई नहीं देता, कुछ कह नहीं सकते, बहुत दुःखी होगये।

राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती * तदपि होति नहिं सीतल छाती
जतन अनेक साथ हित कीन्हे * उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे

श्रीरामजी ने बहुत समझाया, तो भी सुमन्त की छाती ठण्डी न हुई। सुमन्त ने साथ ले जाने के लिए अनेक उपाय किए, परन्तु श्रीरघुनाथजी ने सबके उचित उत्तर दिये।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई * कठिन करम गति कछु न बसाई
राम लखन सिय पद सिरु नाई * फिरेउ बनिक जिमि मूरि गँवाई

श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा टाली नहीं जाती। कर्म की गति बड़ी प्रबल है, उससे कोई वश नहीं चलता। वे श्रीराम-लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर इस प्रकार लौटे-जैसे कोई वणिक अपना धन गँवाकर लौटता है।

दोहा—रथ हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषाद बस, धुनहिं सीस पछिताहिं॥ ९९॥

सुमन्त ने रथ हाँका—तब घोड़े श्रीरामजी की ओर देख-देखकर हिनहिनाने लगे। यह देखकर निषाद दुःखी हो सिर धुनकर पछताने लगे।

जासु बियोग बिकल पशु ऐसें * प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें
बरबस राम सुमन्त पठाए * सुरसरि तीर आपु तब आए

जिनके वियोग में पशु ऐसे व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा और माता-पिता कैसे जियेंगे? श्रीरामजी ने जैसे-तैसे सुमन्त को लौटाया और आप गङ्गाजी के तट पर आये।

माँगी नाव न केवटु आना * कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना

चरनकमल रज कहुँ सब कहई * मानुष करनि मूरि कछु अहई

उन्होंने केवट से नाव लाने को कहा, पर वह नहीं लाया और बोला-मैं आपके भेदको जानता हूँ आपके चरण-कमलों की रज को सब लोग कहते हैं कि यह मनुष्य बनाने वाली बूंटी है।

छुअत सिला भइ नारि सोहाई * पाहन ते न काठ कठिनाई
तरनिउ मुनि घरनि होइ जाई * बाट परइ मोरि नाव उड़ाई

इनके छूते ही शिला सुन्दर स्त्री होगई। पत्थर से कठोर तो काठ नहीं होता, नाव भी मुनि की स्त्री हो जायगी। यदि मेरी नाव उड़ गई तो मेरी जीविका की राह मारी जायगी।

एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू * नहिं जानव कछु अउर कबारू
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू * मोहि पद पदुम पखारन कहहू

इसी नाव से मैं सारे कुटुम्ब का पालन करता हूँ। दूसरा हुनर कुछ नहीं जानता। हे प्रभु! यदि आप अवश्य ही गङ्गाजी के पार जाना चाहते हैं, तो मुझको अपने चरण-कमलों को धोने की आज्ञा दीजिये।

छन्द–पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दशरथ शपथ सब साची कहौं॥
वरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहौं॥

हे नाथ! चरण-कमल धोकर नाव पर चढ़ा लूंगा, उतराई मैं नहीं चाहता। हे श्रीरामचन्द्रजी! मुझको आपकी दुहाई और दशरथ की सौगन्ध है, मैं सत्य कहता हूँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि केवट बोला–चाहे लक्ष्मणजी मुझे बाण ही क्यों न मारें, परन्तु जब तक मैं आपके चरण नहीं धो लूंगा, तब तक हे कृपालु! पार नहीं उतारूँगा।

सो०–सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी लखनु तनु॥१००॥

लणक्ष्मजी केवट के प्रेम भरे अटपटे बचन सुनकर करुणानिधान श्रीरामजी–जानकी और की ओर देखकर हँसे।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई * सोइ करु जेहि तव नाव न जाई
बेगि आनु जल पाँय पखारू * होत बिलम्बु उतारहि पारू

कृपानिधान (श्रीराम) मुस्कराकर बोले-अच्छा-भाई! वही कार्य करो, जिससे तुम्हारी नाव न जाय। शीघ्र ही जल लाकर पांव धो लो, देर हो रही है–शीघ्र पार उतार दो।

जासु नाम सुमिरत एक बारा * उतरहिं नर भवसिंधु अपारा
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा * जेहि जगु किय तिहुँ पगहुँ ते थोरा

जिनका एक बार ही नाम स्मरण करने से मनुष्य अथाह संसार-सागर से पार हो जाते हैं। जिन प्रभु ने तीन पग से भी जगत को छोटा कर दिया–वही कृपालु प्रभु केवट से निहोरा कर रहे हैं।

पद नख निरखि देवसरि हरषी * सुनि प्रभु वचन मोहँ मतिकरषी
केवट राम रजायसु पावा * पानि कठवता भरि लेई आवा

राम के वचन सुनकर गङ्गाजी बुद्धि मोह से खिच गई थीं, परन्तु (समीप आने पर) के नख देखकर गंगाजी प्रसन्न हो गईं। केवट ने जब श्रीरामजी की आज्ञा पाई, तो ..ठता में जल भरकर ले आया।

अति आनन्द उमँगि अनुरागा * चरन सरोज पखारन लागा
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं * एहि सम पुन्यपुञ्ज कोउ नाहीं

परम आनन्द के साथ प्रेम में मग्न होकर चरण-कमल धोने लगा। उस समय पुष्प वर्षा करके सभी देवता सिहाने लगे कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नहीं हैं।

दोहा—पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लेइ पार ॥१०१॥

केवट चरण धोकर अपने कुटुम्ब सहित चरणामृत पान कर, उसके प्रभाव से अपने पितरों का उद्धार कर, प्रसन्न होकर प्रभु को गङ्गाजी के पार ले गया।

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता * सीय राम गुह लखन समेता
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा * प्रभुहि सकुचि एहि नहिं कछु दीन्हा

नावसे उतरकर सीताजी-रामजी, गुह व लक्ष्मणजी सहित गंगाजी की रेती में खड़े हो गये। तब केवट ने उतरकर दण्डवत की तो श्रीरामजी को बड़ा संकोच हुआ कि इसको कुछ नहीं दिया।

पिय हियकी सिय जाननिहारी * मनि मुदरी मन मुदित उतारी
कहेउ कृपाल लेहु उतराई * केवट चरन गहे अकुलाई

तब पति के हृदय को जानने वाली-सीताजी ने मणि-जड़ित अँगूठी प्रसन्न मन से अपनी उँगली में से उतार कर दी। तब कृपालु प्रभु श्रीरामजी ने केवट से कहा-उतराई लो। तब केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए।

नाथ आजु मैं काह न पावा * मिटे दोष दुख दारिद दावा
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी * आजु दीन्हि बिधि बनि भरपूरी

केवट बोला-हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया। मेरे पाप, दुख व दरिद्रता की अग्नि शान्त हो गई। बहुत दिनों तक मैंने मजूरी की, सो आज विधाता ने मेरी सब मजूरी भरपूर दे दी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें * दीनदयालु अनुग्रह तोरें
फिरती बार नाथ मोहि जो देवा * सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा

हे नाथ! दीनदयालु! आपकी दया से अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटते समय मुझे जो कुछ आप देंगे—वह प्रसाद मैं मस्तक चढ़ाकर लूंगा।

दोहा—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ, नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुना यतन, भगति बिमल बरु देइ ॥१०२॥

प्रभु श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी ने बहुत कहा, परन्तु केवट ने कुछ नहीं लिया। तब करुणानिधान श्रीरामजी ने उसे निर्मल भक्ति का वर देकर विदा किया।

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा * पूजि पारथवि नायउ माथा
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी * मातु मनोरथ पुरउबि मोरी

तब श्रीरघुनाथजी ने स्नान कर, पार्थिव (शिवजी) का पूजन करके नमस्कार किया। सीताजी ने गङ्गाजी से हाथ जोड़कर कहा–हे माता मेरा मनोरथ पूर्ण करना।

पति देवर सँग कुशल बहोरी * आई करौं जेहिं पूजा तोरी
सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी * भइ तब बिमल बारि बरबानी

जिससे मैं पति और देवर के साथ सकुशल लौटकर फिर तुम्हारा पूजन करूँ। सीताजी की ऐसी प्रेम-रस भरी प्रार्थना सुनकर निर्मल जल में से श्रेष्ठी वाणी हुई–

सुनु रघुवीर प्रिय बैदेही * तव प्रभाव जग विदित न केही
लोकप होहिं विलोकत तोरें * तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें

हे श्रीरामकी प्रियतमा सीताजी ! सुनो, जगत में तुम्हारा प्रभाव किसे मालूम नहीं है ? तुम्हारी कृपा दृष्टिसे लोग लोकपाल हो जाते, सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं।

तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई * कृपा कीन्ह मोहि दीन्हि बड़ाई
तदपि देवि मैं देव असीसा * सफल होन हित निज बागीसा

तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनाई है, यह मुझ पर कृपा करके मुझे बड़ाई दी है। तो भी-हे देवी ! अपनी वाणी सफल होने के लिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ।

दोहा–प्राणनाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजहिं सब मन कामना, सुजस रहहि जगु छाइ ।।१०३।।

तुम अपने प्राणनाथ तथा देवर के सहित कुशल पूर्वक अयोध्या में लौटोगी। तुम्हारी मनोकामनायें पूरी होंगी और संसार में तुम्हारा यश छा जायगा।

गंग बचन सुनि मङ्गल मूला * मुदित सीय सुरसरि अनुकूला
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू * सुनत सूख मुख भा उर दाहू

गङ्गाजी के मङ्गलमय वचन सुनकर और गङ्गाजी को अपने अनुकूल जानकर सीताजी बहुत प्रसन्न हुई। तब प्रभु ने गुह से कहा–अब तुम घर लौट जाओ। यह वचन सुनते ही उसका मुँह सूख गया और मन में दुःख हुआ।

दीन बचन गुह कर कर जोरी * विनय सुनहुँ रघुकुल मनि मोरी
नाथ साथ रहि पन्थ देखाई * करि दिन चारि चरन सेवकाई

गुह हाथ जोड़कर दीन वचन कहने लगा–हे रघुवंश-भूषण ! मेरी विनय सुनिये, मैं स्वामी के साथ रहकर, मार्ग दिखलाता हुआ चार दिन आपकी सेवा करूँगा।

जेहिं बन जाइ रहब रघुराई * परनकुटी मैं करबि सोहाई

तब मोहि कहँ जसि देब रजाई * सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई

हे श्रीरघुनाथजी ! जिस वन में जाकर आप रहेंगे, वहाँ मैं सुहावनी पर्णकुटी बनाऊँगा। तब मुझे आप जो आज्ञा देंगे, मैं वही करूँगा। हे श्रीरघुनाथजी मुझे आपकी दुहाई है।

सहज सनेहँ राम लखि तासू * संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू
पुनि गुहँ ग्याति बोल सब लीन्हे * करि परितोषु बिदा तब कीन्हे

श्रीरामजी ने उसका स्वाभाविक स्नेह देखकर उसे साथ ले लिया, तब गुह हृदय में बहुत प्रसन्न हुआ। फिर उसने सब जाति वालों को बुलाकर उन्हें समझा बुझाकर विदा किया।

दोहा—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

तब प्रभु श्रीरामजी ने गनेशजी और शिवजी का स्मरणकर गंगाजी को मस्तक नवाकर सखा गुह, भाई लक्ष्मण और जानकी सहित प्रस्थान किया।

तेहि दिन भयउ बिटपतर बासू * लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू
प्रात प्रातकृत करि रघुराई * तीरथराजु दीख प्रभु जाई

उस दिन एक वृक्ष के नीचे निवास हुआ, वहाँ लक्ष्मणजी व सखा गुह ने सब सुभीता कर दिया। प्रातःकाल प्रातः कर्म करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज प्रयाग के दर्शन किये।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी * माधव सरिस मातु हितकारी
चारि पदारथ भरा भँडारू * पुन्य प्रदेश देश अति चारू

तीर्थराज का सत्य मन्त्री है, श्रद्धा प्यारी स्त्री है तथा वेणीमाधव सरीखे हितैषी हैं। चारों पदार्थों से भरा हुआ भण्डार है और पुण्य-प्रदेश ही बहुत सुन्दर देश है।

क्षेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा * सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा
सेन सकल तीरथ बर बीरा * कलुष अनीक दलन रनधीरा

जिसका क्षेत्र ही अगम, दृढ़ और सुन्दर किला है, जिसे (पापरूपी) स्वप्न में नहीं जीत सकते, वह तीर्थ ही उत्तम वीरों की सेना है, जो पाप की सेना को नाश करने के लिए रणधीर हैं।

सङ्गमु सिंहासन सुठि सोहा * छत्रु अखय बटु मुनि मनु मोहा
चँवर जमुन अरु गङ्ग तरङ्गा * देखि होहिं दुख दारिद भङ्गा

सङ्गम ही उनका श्रेष्ठ सिंहासन है, अक्षयवट ही छत्र है, जो मुनियों के मन को मोहित करता है। यमुनाजी और गङ्गाजी की लहरें ही उनके चँवर हैं, जिनके दर्शन से दुःख का नाश नहीं होता है।

दोहा—सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन काम।
बन्दी बेद पुरान गन, कहहिं बिमल गुन ग्राम ॥१०५॥

पुण्यात्मा, पवित्र, साधु-सन्त उनकी सेवा करते हैं और कामनाओं को प्राप्त करते हैं। वेद और पुराण ही बन्दीजन हैं, जो तीर्थराज के निर्मल गुणों का गान करते हैं।

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ * कलुष पुञ्ज कुञ्जर मृगराऊ
अस तीरथपति देखि सुहावा * सुखसागर रघुबर सुख पावा

प्रयाग के स्वभाव को कौन कह सकता है ? जो पाप-समूह-रूपी हाथियों को नष्ट करने के लिए सिंह के समान है। मनोहर तीर्थराज का वर्णन करके सुख के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी ने सुखपाया।

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई * श्रीमुख तीरथराज बड़ाई
करि प्रनामु देखत बन बागा * कहत महातम अति अनुरागा

सीताजी, लक्ष्मणजी तथा गुह को श्रीरामजी ने अपने मुखसे तीर्थराज की बड़ाई सुनाई। फिर प्रणाम कर वहाँ के वन और बाग देखते और बड़े प्रेम से महात्म्य कहते हुए चले।

एहि विधि आइ बिलोकी बैनी * सुमिरत सकल सुमङ्गल देनी
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा * पूजि जथा बिधि तीरथ देवा

इस प्रकार आकर त्रिवेणी का दर्शन किया, जो स्मरण करने से सब आनन्द-मंगलों को देने वाली है। वहाँ आनन्दपूर्वक स्नानकर, शिवजी का पूजन किया व यथायोग्य तीर्थ-देवोंकी पूजाकी।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए * करत दण्डवत मुनि उर लाए
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई * ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई

तब प्रभु श्रीरामजी भरद्वाज के पास आये, उनको दण्वडत् करते हुए मुनि ने हृदय से लगा लिया। मुनिके मनका आनन्द कुछ कहा नहीं जाता मानो उन्हें ब्रह्मानन्दकी राशि मिल गई हो।

दोहा—दीन्हि असीस मुनीस उर, अति अनंदु असजानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किए बिधि आनि ॥१०६॥

मुनिश्वर ने आशीर्वाद दिया ऐसा जानकर अपने मनमें आनन्दित हुए। मानो आज सब सत्कर्मों का फल ब्रह्माजी ने लाकर आँखों के सामने रख दिया।

कुशल प्रश्न करि आसन दीन्हे * पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे
कन्द मूल फल अंकुर नीके * दिए आनि मुनि मनहुँ अमीके

मुनि ने कुशल पूछकर उनको आसन दिये, और प्रेम से पूजन करके परिपूर्ण किया। फिर मानों अमृत के ही समान बने हुए-कन्द, मूल और अंकुर लाकर मुनि ने दिये।

सीय लखन जन सहित सुहाए * अति रुचि राम मूल फल खाए
भइ बिगतश्रम रामु सुखारे * भरद्वाज मृदु बचन उचारे

सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह सहित श्रीरामजीने सुन्दर फल बड़ी रुचिसे खाये। थकावट दूर होने से श्रीरामजी सुखी होगये, तब भरद्वाजजी कोमल वचन बोले—

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू * आजु सुफल जप जोग बिरागू
सफल सकल सुभ साधन साजू * राम तुम्हहि अवलोकत आजू

आज मेरा तप, तीर्थ-सेवन, यज्ञ, जप, योग और वैराग्य सफल होगया। हे श्रीरामजी! आज मेरे सब शुभ कर्मों के समूह भी आपके दर्शन करके ही सफल होगये।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी * तुम्हरें दरस आस सब पूजी
अब करि कृपा देहु बर ऐहू * निज पद सरसिज सहज सनेहू

इससे बढ़कर कोई दूसरा लाभ और सुख की सीमा नहीं है। आपके दर्शन से मेरी सब आशायें पूरी होगईं। अब आप कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरणारविंदों में मेरा स्वाभाविक स्नेह हो।

दोहा–करम बचन मन छाँड़ि छलु, जबलगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किए कोटि उपचार ॥१०७॥

कर्म, वचन और मन से कपट को त्यागकर प्राणी जब तक आपका भक्त नहीं होता–तब तक करोड़ों उपाय करने पर भी सुख नहीं पाता।

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने * भाव भगति आनन्द अघाने
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा * कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा

मुनि के वचन सुनकर श्रीरामजी सकुचाये तथा मुनि की भाव-भक्ति से सन्तुष्ट हुए। तब श्रीरघुनाथजी ने मुनि का सुन्दर सुयश करोड़ों भाँति से कहकर सबको सुनाया।

सो बड़ सो सब गुनगन गेहू * जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू
मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं * बचन अगोचर सुख अनुभवहीं

हे मुनिवर! वही बड़ा और गुणों का स्थान है, जिसका आप आदर करें। भरद्वाज मुनि और रघुनाथजी आपस में नम्र होने लगे और सुख का अनुभव करने लगे, जो कहा नहीं जाता।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी * बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी
भरद्वाज आश्रम सब आए * देखन दशरथ सुअन सुहाए

प्रयाग-निवासी, ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्धि व उदासियों ने जब यह समाचार पाया, तो वे सब दशरथ-नन्दन आनन्दकंद श्रीरामजी के दर्शन के लिये भरद्वाज मुनि के आश्रम पर आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू * मुदित भए लहि लोचन लाहू
देहिं असीस परम सुखु पाई * फिरे सराहत सुन्दरताई

श्रीरामजी ने सबको प्रणाम किया। वे सब नेत्रों का फल पाकर प्रसन्न हुए और परम सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे फिर श्रीरामजी के रूप की बड़ाई करते हुए वे लौट गये।

दोहा–राम कीन्ह विश्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखनु जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥१०८॥

श्रीरामजी ने रात्रि को वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयाग में स्नानकर, प्रसन्नता पूर्वक मुनि को नमस्कार कर, सीता-लक्ष्मण और निषादराज सहित वे आगे को चले।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं * नाथ कहिअ हम केहि मगु जाहीं
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं * सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं

(चलते समय) श्रीरामजी ने मुनि से सप्रेम पूछा—हे नाथ ! कहिये, हम किस मार्ग से जांय ? मुनि ने मन में हँसकर श्रीरामचन्द्रजी से कहा—आपको तो सभी मार्ग सुगम हैं।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए * सुनि मन मुदित पचासक आए
सबहिं राम पर प्रेम अपारा * सकल कहहिं मगु दीख हमारा

फिर मुनि ने शिष्यों को साथ के लिये बुलाया, तो सुनकर मन में आनंदित हो पचास शिष्य आ गये। सबका श्रीरामजी में अपार प्रेम है, वे सब कहने लगे कि मार्ग हमारा देखा हुआ है।

मुनि बटु चारि सङ्ग तब दीन्हे * जिन्ह बहु जन्म सुकृत सब कीन्हे
करि प्रनाम ऋषि आयसु पाई * प्रमुदित हृदयँ चले रघुराई

जब मुनि ने उनमें से चार ब्रह्मचारियों को श्रीरामजी के साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत जन्मों तक सुकृत किये थे। ऋषि को प्रणाम कर आज्ञा पाकर, आनन्दित हो श्रीरघुनाथजी चले।

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई * देखहिं दरसु नारि नर धाई
होहिं सनाथ जन्म फलु पाई * फिरहिं दुखित मनु सङ्ग पठाई

जब वे किसी गांव के निकट होकर निकलते थे, तो स्त्री-पुरुष दौड़कर इनके दर्शन करने लगते थे। जन्म लेने का फल पाकर वे सनाथ हो जाते थे, और मनको उन्हीं के साथ भेज-कर, दुःखी होकर लौट आते थे।

दोहा—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मनु काम।
उतरि नहाए जमुन जल, सो सरीर सम श्याम ॥१०९॥

फिर श्रीरामजी ने ब्रह्मचारियों को विनती करके लौटा दिया, वे मन-चाहा फल पाकर लौट आये। फिर सबने यमुनाजी के जल में उतरकर स्नान किया, जो श्रीरामजी के शरीर के समान ही श्याम-रङ्ग का था।

सुनत तीरबासी नर नारी * धाए निज निज काज बिसारी
लखनु राम सिय सुन्दरताई * देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई

यह सुनकर यमुना-तट वासी स्त्री-पुरुष अपने-अपने काम-काज छोड़कर दौड़ पड़े और लक्ष्मणजी, श्रीरामजी व सीताजी की सुन्दरता को देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करने लगे।

अति लालसा बसहिं मन माहीं * नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं
जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने * तिन्ह कर जुगति राम पहिचाने

सबके ही मनमें परिचय पाने की बड़ी लालसा थी, परन्तु नाम-गांव पूछने में सकुचाते थे। उनमें जो बड़े और चतुर थे, उन्होंने युक्ति से श्रीरामजी को पहचान लिया।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई * बनहि चले पितु आयसु पाई
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं * रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं

तब सब कथा उन्होंने सबको कह सुनाई कि ये पिता की आज्ञा से वन को जा रहे हैं। यह सुनकर वे सब दुःखी हो पछताने लगे कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया।

तेहि अवसर एक तापसु आवा * तेजपुंज लघुबयस सुहावा

कब अलखित गति बेषु बिरागी * मन क्रम बचन राम अनुरागी

उसी अवसर पर एक तपस्वी आया जो बड़ा तेजस्वी और सुन्दर, थोड़ी अवस्था वाला था। उसकी गति कवि नहीं जानते, वैरागी वेष और मन, वचन, कर्म से रघुनाथजी का प्रेमी था।

दोहा-सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

नेत्रों में जल भरे शरीर से पुलकित हो अपने इष्टदेव को पहिचान कर पृथ्वी में दण्ड के समान पड़ गया, उसकी दशा बखानी नहीं जाती।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा * परम रंक जनु पारसु पावा
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ * मिलत धरें तन कह सबु कोऊ

रघुनाथजी ने प्रेम से पुलकायमान हो उसे हृदय से लगाया। तपस्वी ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे परम दरिद्री को पारस मिल जाय। सब कोई ऐसे कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ शरीर धरकर मिले हों।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा * लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा * जननि जानिसि सुदीन्हि असीसा

फिर वह लक्ष्मण के चरणों में पड़ा और उन्होंने प्रेम से उठाकर हृदय से लगाया। फिर जानकीजी के चरणों की धूल सिर पर धरी और माता ने बालक जानकर आशीष दी।

कीन्ह निषाद दंडवत देही * मिलेउ मुदित लखि राम सनेही
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा * मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा

फिर निषादने दण्डवत की और वह उसको रघुनाथजी का स्नेही जानकर मिला। नयनों के द्वारा रूपामृत का पान करने लगा, जैसे भूखा सुन्दर भोजन पाकर प्रसन्न हो, (फिर गांव की स्त्रियों का सम्वाद कहते हैं)।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे * जिन्ह पठए बनु बालक ऐसे
राम लखनु सिय रूप निहारी * होहिं सनेहँ बिकल नर नारी

(स्त्रियां बोली-)हे सखी ! वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे बालक वन में भेज दिये ? रामजी लक्ष्मणजी व सीताजी के रूप को देखकर स्त्री-पुरुष-सोच व स्नेह से व्याकुल हो रहे थे।

दोहा-तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइँ कीन्ह ॥१११॥

तब श्रीरामचन्द्रजी ने सखा निषादराज को बहुत प्रकार से शिक्षा दी। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा शिरोधार्य कर वह अपने घर को चला गया।

पुनि सियँ रामु लखन कर जोरी * जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी
चले ससीय मुदित दोउ भाई * रबितनुजा कइ करत बड़ाई

फिर सीताजी, श्रीरामजी व लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर यमुनाजी को बारम्बार प्रणाम किया।

और सीताजी समेत दोनों भाई प्रसन्न होकर सूर्य-पुत्री यमुनाजी की बड़ाई करते हुए चले।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता * कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता
राजा लखन सब अङ्ग तुम्हारें * देखि सोच अति हृदय हमारें

मार्ग में जाते हुए बहुत-से यात्री उन्हें मिलते हैं वे दोनों भाइयों को देखकर स्नेह सहित कहते है कि तुम्हारे अङ्गों में राज-चिन्ह देखकर हृदय में बड़ा सोच है।

मारग चलहु पयादेहि पाएँ * ज्योतिषु झूठ हमारे भाएँ
अगमु पन्थु गिरि कानन भारी * तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी

तुम मार्गमें नंगे पांव चल रहे हो, इसे देखकर हमारी समझमें आता है कि ज्योतिष-शास्त्र-झूठा है। भारी वन एवं पहाड़ों के मार्ग दुर्गम हैं, उस पर भी तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है।

कर केहरि वनु जाइ न जोई * हम सँग चलहिं जो आयसु होई
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई * फिरब बहोरि तुम्हहि सिरुनाई

हाथी और सिंहों से भरा यह वन देखा नहीं जाता, जो आपकी आज्ञा हो तो हम साथ चलें? जहाँ तक आप और जावेंगे, वहाँ तक पहुँचाकर सिर नवाकर हम लौट आवेंगे।

दोहा—एहि बिधि पूँछहिं प्रेमबस, पुलकगात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि, कहि बिनीत मृदुबैन ।।११२।।

इस प्रकार प्रेम से पुलकित हो, जल भरे नेत्रों से लोग पूछते हैं, तो कृपासिंधु श्रीरामचन्द्रजी उन्हें नम्र और कोमल वचन कहकर लौटा देते हैं।

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं * तिन्हहि नागसुर नगर सिहाहीं
केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए * धन्य पुन्यमय परम सुहाए

मार्ग में जो गाँव नगर बसे हैं,उनकी बड़ाई नागलोक व देवलोक भी करके सिहाते हैं कि ये किस पुण्यात्माने किस घड़ी में बसाये हैं, जो यह आज इतने पुण्यरूप व सुहावने हो रहे हैं?

जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं * तिन्ह समान अमरावति नाहीं
पुन्य पुँज मग निकट निवासी * तिन्हहि सराहहिं सुरपुर बासी

जहाँ-जहाँ श्रीरामजी के चरण जाते हैं, वहाँ के बराबर अमरावती भी नहीं है। उस मार्ग के समीप रहने वाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं, उनकी बड़ाई-देवलोक-वासी भी करते हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि * सीता लखनु सहित घनश्यामहि
जे सर सरित राम अवगाहहिं * तिन्हहि देवसर सरित सराहहिं

जो लोग सीताजी व लक्ष्मणजी सहित घनश्याम श्रीरामजी को नेत्र भरकर देखते हैं। जिन तालाबों व नदियों में श्रीरामजी स्नान करते हैं, उनकी मानसरोवर और गंगाजी भी बड़ाई करते हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई * करहि कलपतरु तासु बड़ाई
परसि राम पद पदुम परागा * मानसि भूमि भूरि निज भागा

जिस वृक्ष के नीचे प्रभु ! जाकर बैठते हैं—कल्पवृक्ष भी उस वृक्ष की बड़ाई करते हैं। श्रीरामजी के चरणारविन्दों की रज को छूकर भूमि अपना बड़ा भाग्य मानती है।

दोहा—छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मग जाहिं ॥११३॥

मार्ग में मेघ छाया करते जाते हैं, देवता पुष्प बरसाते और सराहना करते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियों को देखते हुए श्रीरामजी मार्ग में चले जा रहे हैं।

सीता लखन सहित रघुराई * गाँव निकट जब निकसहिं जाई
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी * चलहिं तुरग गृहकाजु बिसारी

सीताजी और लक्ष्मणजी सहित श्रीरघुनाथजी जब गाँवके पास निकलते हैं, तब सुनकर सब बालक-बूढ़े, नर-नारी घर का काम छोड़कर देखने चले आते हैं।

राम लखन सिय रूप निहारी * पाइ नयनफलु होहिं सुखारी
सजल बिलोचन पुलक सरीरा * सब भए मगन देखि दोउ बीरा

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप देखकर, नेत्रों का फल पाकर वे सुखी होते हैं नेत्रों में जल भर आया, शरीर पुलकित हो गये। दोनों भाइयों को देखकर सब परमानन्द में मग्न हो गये।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी * लहि जनु रङ्कन्ह सुरमनि ढेरी
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं * लोचन लाहु लेहु छन ऐहीं

उन सबकी दशा कही नहीं जाती, मानो कंगालों को चिंतामणि की ढेरी मिल गई हो एक-दूसरे को बुलाकर सीख दे रहे हैं कि इसी क्षण नेत्रों के पाने का लाभ ले लो।

रामहि देखि एक अनुरागे * चितवत चले जाहिं सँग लागे
एक नयन मग छबि उर आनी * होहिं सिथिल तन मन बरबानी

कोई श्रीरामजीको देखकर ऐसे प्रेम-मग्न होगये कि देखते हुए साथ ही चले जा रहे हैं और नेत्रों के मार्ग से उनको हृदय में लाकर—तन, मन और श्रेष्ठ वाणी से शिथिल हो जाते हैं।

दोहा—एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गँवाइअ छिनकु श्रम, गवनब अबहिं कि प्रात ॥११४॥

कोई वट-वृक्ष की घनी छाया देखकर वहाँ पर कोमल घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि कुछ समय यहाँ बैठकर थकावट दूर कर लीजिये फिर अभी या प्रातः चले जाना।

एक कलस भरि आनहिं पानी * अँचइअ नाथ कहिअ मृदु बानी
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी * परम कृपालु सुसील बिसेषी

कोई घड़ा भरकर जल ले आते हैं और मधुर वाणी से कहते हैं-हे नाथ ! आचमन तो करिये बड़े दयालु और सुशील श्रीरामजी ने उनके प्रिय वचन सुनकर और उनकी प्रीति देखकर—

जानी श्रमित सीय मन माहीं * घरिक बिलम्ब कीन्ह बट छाहीं

मुदित नारि नर देखहिं सोभा * रूप अनूप नयन मनु लोभा

मनमें सीताजी को थकी हुई जानकर घड़ी भर वट की छाया में विश्राम किया। स्त्री पुरुष प्रसन्न होकर शोभा देखते है, अनुपम रूप ने सबके नेत्र और मन लुभा लिये हैं।

एक टक सब सोहहिं चहुँ ओरा * रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरा
तरुन तमाल बरन तनु सोहा * देखत कोटि मदन मन मोहा

श्रीरामजी के चन्द्र-मुख को चकोर के समान देखते हुए वे सब चारों ओर शोभायमान होरहे हैं। नवीन तमाल के समान शरीर ऐसा शोभित हो रहा है कि देखते ही करोड़ों कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं।

दामिनि बरन लखनु सुठि नीके * नख सिख सुभग भावते जी के
मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा * सोहहिं कर कमलन्ह तनुधीरा

बिजली के सुन्दर रंगके लक्ष्मणजी-जो नखसे शिख तक सुन्दर हैं,मनको बहुत भाते हैं मुनियोंके वस्त्र पहने,दोनों भाई कमर में तरकस कसे कमलरूपी हाथोंमें धनुष-बाण लिए शोभायमान हैं।

दोहा—जटामुकुट सीसन्ह सुभग, उर भुज नयनविशाल।
सरद परव बिधुबदन बर, लखत स्वेद कन जाल ॥११५॥

सिरों पर जटा-मुकुट है, छाती, भुजायें व नेत्र विशाल हैं और शरद्-पूर्णिमा के चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर मुखों पर पसीने की बूंदें शोभा को प्राप्त हो रही हैं।

बरनि न जाइ मनोहर जोरी * शोभा बहुत थोरि मति मोरी
राम लखन सिय सुन्दरताई * सब चितवहिं चित मन मतिलाई

मनोहर जोड़ी की शोभा वर्णन नहीं की जा सकती, क्योंकि शोभा बहुत है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। श्रीरामजी-लक्ष्मणजी और सीताजी की सुन्दरता को सब मन, चित्त और बुद्धि लगाये देख रहे हैं।

थके नारि नर प्रेम पिआसे * मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं * पूछत अति सनेह सकुचाहीं

प्रेमके प्यासे स्त्री-पुरुष थककर ऐसे खड़े हो गये, मानो मृगी-मृग दीपकको देख स्तब्ध खड़े हों। सीताजी के पास गाँव की स्त्रियाँ जाती हैं, परन्तु अधिक स्नेह के कारण पूछने में सकुचाती हैं।

बार बार सिय लागहिं पाएँ * कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ
राजकुमारि बिनय हम करहीं * तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं

वे बारम्बार सीताजी के पाँव लगती और कोमल, सरल तथा सुहावने वचन कहती हैं। हे राजकुमारी! हम विनती करती हैं, किन्तु-स्वभाव के कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं।

स्वामिनि अविनय छमबि हमारी * बिलगु न मानब जानि गँवारी
राजकुअँर दोउ सहज सलोने * इन्ह तें लही दुति मरकत सोने

हे स्वामिनी! हमारी ढिठाई क्षमा करना और हमें गँवारी जानकर बुरा न मानना। यह

दोनों राजकुमार स्वाभाविक सुन्दर हैं, मरकत-मणि और सोने ने कान्ति इनसे ही पाई है।

दोहा–स्यामल गौर किशोर वर, सुन्दर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु, सरद सरोरुह नैन ॥११६॥

ये श्याम और गौर वर्ण हैं, सुन्दर और किशोर-अवस्था वाले हैं और दोनों ही सुन्दर शोभा के स्थान हैं। शरद-पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाले हैं और शरद के कमल के समान इनके नेत्र हैं।

* मॉस पारायण–सोलहवाँ विश्राम । नवान्ह पारायण–चौथा विश्राम *

कोटि मनोज लजावनिहारे * सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे
सुनि सनेहमय मञ्जुल बानी * सकुची सिय मन महु मुसुकानी

ये दोनों राजकुमार करोड़ों कामदेवों को लजाने वाले है। हे सुमुखी ! कहो यह तुम्हारे कौन हैं ? ऐसी प्रेम भरी मधुर वाणी सुनकर सीताजी सकुचाकर मन में मुस्कराईं।

तिन्हहि बिलोकि बिलोकत धरनी * दुहुँ सँकोच सकुचित बरबरनी
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी * बोलीं मधुर बचन पिकबयनी

सुन्दरी सीताजी दोनों ओर सङ्कोच से सकुचाकर उनकी ओर देखकर पृथ्वी की ओर देखने लगीं। हिरन के बच्चे के समान नेत्रों वाली, कोयल के समान वाणी वाली सीताजी सकुचाकर मधुर वचन बोलीं–

सहज सुभाय सुभग तनु गोरे * नामु लखनु लघु देवर मोरे
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी * पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी

जो सरल स्वभाव के गोरे शरीर वाले हैं, जिनका नाम लक्ष्मण है-ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर अपने चन्द्रमुख को आँचल से ढककर टेढ़ी भौंहें करके पति की ओर देखकर–

खंजन मंजु तिरीछे नयननि * निजपति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि
भईं मुदित सब ग्राम बधूटीं * रङ्कन्ह राय रासि जनु लूटीं

खंजन के समान सुन्दर नेत्रों की तिरछी चितवन से सीताजी ने उन्हें इशारा करके अपना पति बतलाया। तब गाँव की सब स्त्रियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं,मानो कंगालों न धन-राशि लूटली हो।

दोहा–अति सप्रेम सिय पायँ परि, बहु बिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिन होऊ तुम्ह, जब लगि महि अहि सीस ॥११७॥

वे बड़े प्रेम से सीताजी के पाँव पकड़ बहुत प्रकार से आशीर्वाद देने लगीं कि जब तक शेषजी के मस्तक पर पृथ्वी है, तब तक सुहागिन रहो।

पारवती सम पति प्रिय होहू * देवि न हम पर छाँड़ब छोहू
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी * जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी

पार्वती के समान अपने पति को प्यारी होओ। परन्तु, हे देवी ! हम पर कृपा करती रहना हम बारम्बार हाथ जोड़कर आपसे विनती करती हैं कि ...

दरसनु देब जानि निज दासो * लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी
मधुर बचन कहि कहि परतोषीं * जनु कुमुदनीं कौमुदीं पोषीं

हमें अपनी दासी जानकर दर्शन देना। सीताजी ने सबको प्रेम की प्यासी देखा तो मधुर वचन कहकर उन्हें सन्तुष्ट किया, मानो चाँदनी ने कमलनी को प्रफुल्लित किया हो।

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी * पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी
सुनत नारि नर भए सुखारी * पुलकित गात बिलोचन बारी

उसी क्षण लक्ष्मणजीने श्रीरामजी का रुख देखकर कोमल वाणीसे लोगों से रास्ता पूछा। यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुखी हो गये, उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों में आँसू भर आये।

मिटा मोदु मन भए मलीने * बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा * सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा

आनन्द जाता रहा, मन में उदास हो गये, मानो दी हुई सम्पदा विधाता ने छीन ली हो। कर्म की गति को समझकर धैर्य-धारण किया और विचारकर सीधा मार्ग उन्हें बतला दिया।

दोहा—लखन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ ॥११८॥

तब लक्ष्मणजी और सीताजी समेत श्रीरघुनाथजी चले और मधुर वचन कहकर सबको लौटा दिया, परन्तु उनके मन अपने साथ ही लगा लिये।

फिरत नारि नर अति पछिताहीं * दैवहिं दोषु देहिं मन माहीं
सहित विषाद परस्पर कहहीं * बिधि करतब उलटे सब अहहीं

लौटते हुए स्त्री-पुरुष बहुत पछताने लगे और मन में विधाता को दोष देने लगे। दुखी होकर परस्पर कहने लगे कि विधाता के सभी कार्य उलटे हैं।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू * जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू
रूख कलपतरु सागर खारा * तेहिं पठए बन राजकुमारा

वह बिल्कुल स्वतन्त्र, निठुर और निडर हैं, जिसने चन्द्रमा को क्षय-रोगी और कलङ्की बनाया, कल्पवृक्ष को पेड़ एवं समुद्र को खारी बनाया, उसीने इन राजकुमारों को वनमें भेजा है।

जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू * कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना * रचे बादि बिधि बाहन नाना

जो इनको ही वनवास दिया तो ब्रह्मा ने भोग-विलास वृथा ही बनाये। जब यही मार्ग में बिना जूतों के पैदल जा रहे हैं, तो ब्रह्मा ने अनेक प्रकार की सवारियों को व्यर्थ ही रचा।

ए महि परहिं डासि कुस पाता * सुभग सेज कत सृजत बिधाता
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा * धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा

जब यही भूमि पर कुश एवं पत्ते बिछाकर सोते है, तो ब्रह्माने सेज क्यों बनाई? विधाताने

इन्हें ही वृक्ष के नीचे वास दिया, तो फिर सुन्दर भवन बनाकर क्यों परिश्रम किया ?

दोहा—जौं ए मुनिपट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार ॥११९॥

जो ये सुन्दर और सुकुमार हो मुनियों के वस्त्र धारण किये और जटाओं को रखाये हैं तो फिर ब्रह्मा ने भाँति-भाँति के आभूषण और वस्त्र वृथा ही बनाये।

जौं ऐ कन्द मूल फल खाहीं * बादि सुधादि असन जग माहीं
एक कहहिं ए सहज सुहाए * आपु प्रकट भए विधि न बनाए

जो यह कन्द-मूल-फल खाते हैं, तो जगत में अमृत आदि के भोजन व्यर्थ हैं। एक कहने लगे कि ये स्वाभाविक ही सुहावने हैं, ये स्वयं प्रकट हुए हैं, इन्हें ब्रह्मा ने नहीं बनाया।

जहँ लगि वेद कही बिधि करनी * श्रवन नयन मन गोचर बरनी
देखहु खोजि भवन दस चारी * कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी

जहाँ तक वेदों ने ब्रह्मा की करनी कही है, जो कानों, नेत्रों और मन के अनुभव में आने वाली है, वहाँ तक चौदहों भुवनों में ढूढ़कर देखो, ऐसे पुरुष और स्त्री कहाँ हैं ?

इन्हहि देखि बिधिमनु अनुरागा * पटतर जोगु बनावै लागा
कीन्ह बहुत श्रम एक न आए * तेहि इरिषा बन आनि दुराए

इनको देखकर ब्रह्मा का मन मोह गया, तो इनकी उपमा के समान दूसरा जोड़ा बनाने लगा। बहुत परिश्रम करने पर भी ऐसे न बने, तब उसने ईर्षा से इन्हें वन में लाकर छिपा दिया।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं * आपुनि परम धन्य करि मानहिं
ते पुनि पुन्य पुञ्ज हम लेखे * जे देखिहहिं देखहिं जिन्ह देखे

कोई कहने लगे कि हम बहुत नहीं जानते हैं, परन्तु अपने को परम धन्य मानते हैं। हमारी समझ में तो वे बड़े पुण्यवान हैं, जो इनको देखते हैं, देखेंगे और देख चुके हैं।

दोहा—एहि विधि कहि कहि प्रिय बचन, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार शरीर॥१२०॥

इस प्रकार प्रिय वचन कहकर वे आँखों में आँसू भर लाये और बोले कि यह सुन्दर कोमल अङ्ग वाले राजकुमार कठिन रास्ते में कैसे चलेंगे।

नारि सनेह बिकल बस होहीं * चकई साँझ समय जनु सोहीं
मृदु पदकमल कठिन मगु जानी * गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी

स्त्रियां स्नेह वश व्याकुल हो गई, जैसे सन्ध्या के समय चकवी हो जाती है। चरण-कमलों को कोमल और मार्ग को कठिन जानकर गद्गद् हृदय से मधुर वाणी से बोलीं—

परसत मृदुल चरन अरुनारे * सकुचित महि जिमि हृदयँ हमारे
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा * कस न सुमनमय मारग कीन्हा

इनके कोमल तथा लाल चरणों को छूनेसे पृथ्वी ऐसे सकुचाती है, जैसे हमारे हृदय सकुचाते हैं। जो जगदीश्वर ने इनको बनवास दिया तो मार्ग को फूलों का ही क्यों न बना दिया ?

जौं माँगा पाइअ बिधि पाहीं * ए राखिअहिं सखि आँखिन्ह माँही
जे नर नारि न अवसर आए * तिन्ह सिय राम न देखन पाए

जो ब्रह्मा से माँगा जाय और वही पावें तो इनको अपनी आँखों में ही रक्खें। जो नर-नारी अवसर पर नहीं आ सके, उन्होंने श्रीसीता-रामजी को नहीं देखा।

सुनि सुरूपु बूझहिं अकुलाई * अब लगि गए कहाँ लगि भाई
समरथ धाई बिलोकहिं जाई * प्रमुदित फिरहिं जनम फल पाई

वे सब रूप की बड़ाई सुनते ही घबड़ा कर पूछने लगे कि भाई! अब वे कहाँ तक गये होंगे ? जो उनमें से समर्थ लोग हैं, वे दौड़कर दर्शन कर लेते हैं और प्रसन्न होकर जन्म का फल पा लौट आते हैं।

दोहा—अबला बालक बृद्धजन, कर मीजहिं पछिताहि।
होहिं प्रेमबस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहिं ॥१२१॥

अबला, स्त्री, बालक और वृद्ध लोग हाथ मलकर पछताने लगे। इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्रीरामजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेम में मग्न हो जाते हैं।

गाँव गाँव अस होइ अनन्दू * देखि भानुकुल कैरव चन्दू
जे कछु समाचार सुनि पावहिं * ते नृप रानिहि दोषु लगावहिं

सूर्यवंश रूपी कुमुदनी के लिए चन्द्रमा के समान श्रीरामजी का दर्शन करके गाँव में इसी प्रकार आनन्द होता है, जो लोग कुछ समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी को दोष लगाते हैं।

कहहिं एक अति भल नरनाहू * दीन्ह हमहि जे लोचन लाहू
कहहिं परस्पर लोग लुगाईं * बातें सरल सनेह सुहाईं

कोई कहने लगे—राजा बहुत अच्छे है, जिन्होंने हमारे नेत्रों को लाभ दिया। नर-नारी आपस में सीधी स्नेह भरी सुहावनी बात कहते हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए * धन्य सो नगरु जहाँ तें आए
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ * जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ

वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर भी धन्य है, जहाँ से यह आये हैं। वह देश, पर्वत, वन, गाँव जहाँ-जहाँ यह जाते हैं, वह स्थान धन्य हैं।

सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही * ए जेहि के सब भाँति सनेही
राम लखन पथ कथा सुहाई * रही सकल मग कानन छाई

उसको रचकर ब्रह्मा ने सुख प्राप्त किया, जिसके ये सब स्नेही हैं। श्रीरामजी और लक्ष्मणजी तथा जानकीजी की सुन्दर कथा वन के सब मार्ग में फैल गई।

दोहा—एहि बिधि रघुपति कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।

जाहिं चले देखत बिपिन, सिय सौमित्र समेत ॥१२२॥

इस प्रकार रघुवंशरूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य श्रीरामजी मार्ग में लोगों को सुख देते हुए और वन को देखते हुए सीताजी और सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी सहित चले जा रहे है।

आगें रामु लखनु पुनि पाछें * तापस बेष बिराजत काछें
उभय बीच सिय सोभति कैसें * ब्रह्म जीव बिच माया जैसें

आगे श्रीरामजी व पीछे लक्ष्मण तपस्वी का वेष बनाये हुए शोभायमान हैं। दोनों के बीच में सीताजी कैसी शोभा दे रही हैं जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया शोभित होती है।

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई * जनु मधु मदन मध्य रति लसई
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही * जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही

मैं उस छवि को कहता हूँ जैसी मेरे मनमें बसी है, मानो वसंत और कामदेव के बीच में रति ही शोभित हो। ममनमें खोजकर उपमा कहता हूँ, मानो बुध व चंद्रमा के बीचमें रोहिणी शोभितहो।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता * धरति चरन मग चलति सभीता
सीय राम पद अङ्क बराएँ * लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ

प्रभु श्रीरामजी के चरण-चिन्हों के बीच–बीच में सीताजी अपने पाँव रखती हैं और डरती हुई मार्ग में चल रही हैं, श्रीसीता-रामजी के चरण-चिन्हों को बचाते हुए, दाहिने रखते हुए लक्ष्मणजी चलते हैं।

राम लखन सिय प्रीति सोहाई * बचन अगोचर किमि कहि जाई
खग मृग मगन देखि छबि होहीं * लिए चोर चित राम बटोहीं

श्रीराम, लक्ष्मण व सीताजी की सुन्दर प्रीति कैसे कही जाय, वाणी नेत्र-हीन है। पशु-पक्षी भी उनकी छबि देख प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि बटोही श्रीरामजीने उनके चित्त चुरा लिए हैं।

दोहा–जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाई।
भव मगु अगमु अनन्दु तेइ, बिनु श्रम रहे सिराई ॥१२२॥

जिन-जिन प्यारे पथिकों ने सीताजी समेत दोनों भाइयों को देखा, वे संसार के कठिन मार्ग को आनन्द पूर्वक बिना परिश्रम ही पार हो गये।

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ * बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ
राम धाम पद पाइहि सोई * जो पथ पाव कबहु मुनि कोई

अब भी जिनके हृदय में कभी स्वप्न में बटोही श्रीराम-सीता व लक्ष्मणजी वास करते हैं। वह श्रीरामजी के परमधाम के उपमार्ग को पाता है, जिसको बिरले मुनिजन ही कभी पाते हैं।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी * देखि निकट बटु सीतल पानी
तहँ बसि कन्द मूल फल खाई * प्रात नहाय चले रघुराई

श्रीरामजी ने सीताजीको थकी हुई जाना, तब पास ही वटवृक्ष और ठंडा पानी देखकर वहाँ ठहर गये। वहाँ कंद मूल फल का भोजन करके प्रातःकाल स्नानकर श्रीरघुनाथजी वहाँ से चले।

देखत बन सर सैल सुहाए * बालमीकि आश्रम प्रभु आए
राम दीख मुनि बास सुहावन * सुन्दर गिरि काननु जलु पावन

प्रभु श्रीरामजी वन में सुहावने सरोवर और पर्वतों को देखते हुए वाल्मीकिजी के आश्रम में आये। श्रीरामजी ने देखा कि मुनि का स्थान सुन्दर है, वहाँ सुन्दर पर्वत, वन और निर्मल जल है।

सरनि सरोज बिटप वन फूले * गुञ्जत मञ्जु मधुप रस भूले
खग मृग विपुल कोलाहल करहीं * बिरहित बैर मुदित मन चरहीं

तालाबों में कमल और वन में पुष्प खिल रहे हैं, उनके रसमें भूले हुए सुन्दर भौंरे गूँज रहे हैं। बहुत से पक्षी कोलाहल कर रहे हैं, बैर को छोड़कर प्रसन्नता पूर्वक घूम रहे हैं।

दोहा–सुनि सुन्दर आश्रम निरखि, हरषे राजिव नैन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि, आगें आयउ लैन ॥१२४॥

पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर कमल-नयन श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए। बाल्मीकिजी–श्रीरामजी का आगमन सुनकर उन्हें लेने के लिए आगे आये।

मुनि कहुँ राम दण्डवत कीन्हा * आसिरबादु बिप्रवर दीन्हा
देखि राम छबि नयन जुड़ाने * करि सनमानु आश्रमहिं आने

श्रीरामजीने मुनि को प्रणाम किया ब्राह्मण श्रेष्ठ मुनि ने आशीर्वाद दिया। श्रीरामजी की शोभा को देखकर मुनिके नेत्र शीतल होगये और आदर पूर्वक उन्हें आश्रम में लिवा लाये।

मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाए * कन्द मूल फल मधुर मँगाए
सिय सौमित्रि राम फल खाए * तब मुनि आश्रम दिए सुहाए

मुनिवर ने प्राण-प्रिय अतिथि पाकर मीठे कन्द-मूल-फल मँगवाये। सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामजी ने फल खा लिए, तब मुनि ने उनको सुन्दर विश्राम-स्थल बता दिये।

बाल्मीकि मन आनँदु भारी * मङ्गल मूरति नयन निहारी
तब कर कमल जोरि रघुराई * बोले वचन श्रवन सुखदाई

श्रीरामजी का मङ्गल-मूर्ति को नेत्रों से देख बाल्मीकि के मन में बड़ा ही आनन्द हुआ तब कमल स्वरूप हाथों को जोड़कर श्रीरघुनाथजी कानों को सुख देने वाले वचन बोले–

तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा * विश्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी * जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी

हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं, यह संसार आपको हाथ पर रखे बेर के समान है। ऐसा कहकर प्रभु को जिस प्रकार रानी कैकई ने बनवास दिया, वह सब कथा मुनि से कही।

दोहा–तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य प्रभाउ ॥१२५॥

हे प्रभो! पिता की आज्ञा, माता का हित, भरत सरीखे भाई को राज्य और मझे आपके

दर्शन होना-यह सब मेरे पुण्यों का सभाव है।

देखि पाँय मुनिराज तुम्हारे * भए सुकृत सब सुफल हमारे
अब जहँ मुनिवर आयसु होई * मुनि उदबेगु न पावै कोई

हे मुनिनाथ! आपके चरणों के दर्शन करने से हमारे सब पुण्य सफल हो गये। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेग न पावें।

मुनि तापस जिन्हतें दुखु लहहीं * ते नरेश बिनु पावक दहहीं
मङ्गल मूल बिप्र परितोषू * दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू

क्योंकि जिन राजाओं से मुनि और तपस्वी लोग दुःख पाते हैं, वे बिना आग ही जल जाते हैं, ब्राह्मण का प्रसन्न होना ही सब मङ्गलों की जड़ है, और ब्राह्मणों का कोप करोड़ों कुलों को जला देता है।

असजियँजानि कहिअ सोइ ठाऊँ * सिय सोमित्र सहित जहँ जाऊँ
तहँ रचि रुचिर परई तृनशाला * बासु करौं कछु काल कृपाला

ऐसा मन में जानकर वही स्थान बतलाइये, जहाँ मैं जानकी और लक्ष्मण सहित जाऊँ और वहाँ पत्तों व घास से सुन्दर कुटी बनाकर, हे कृपालु मुनि! कुछ समय तक वास करूँ।

सहज सरलसुनि रघुबर बानी * साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी
कस न कहहुँ अस रघुकुल केतू * तुम्ह पालक सन्तति श्रुतिसेतू

श्रीरामजी की सहज व सीधी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि बाल्मीकिजी बोले-धन्य है, धन्य है! हे रघुवंश में ध्वजा! आप ऐसा क्यों न कहेंगे? आप सदैव वेद की मर्यादा के रक्षक हैं।

छन्द—श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुरकाजु धरि नरराजु तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

हे श्रीरामजी! आप वेदों की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं, जानकीजी माया हैं। वह आप कृपानिधान की इच्छा पाकर जगत को रचती, पालती और संहार करती हैं। जो हजार मस्तक वाले शेषनाग रूप से पृथ्वी को धारण किये हुए हैं, वही चराचर के स्वामी लक्ष्मणजी हैं। ऐसे आप देव-कार्य के लिए राजा का शरीर धारण कर, दुष्ट राक्षसों की सेना का विध्वंस करने के लिए चले हैं।

सो०—राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबगति अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥१२६॥

हे रामजी! आपका स्वरूप अनिर्वचनीय बुद्धि से परे अविगत, अकथनीय और अपार है। वेद उसे 'नेति-नेति' कहते हैं।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे * बिधि हरि संभु नचावनिहारे

तेउ न जानत मरमु तुम्हारा * और तुम्हहि को जाननिहारा

संसार अदृश्य है और आप देखने वाले हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी नचाने वाले हैं वे भी आपका मरम नहीं जानते, तब तो आपको जानने वाला कौन है ?

सोइ जानइ देहि देहु जनाई * जानत तुम्हहि तुम्हउ होउ जाई
तुम्हरिह कृपा तुम्हहि रघुनंदन * जानहिं भगत भगत उर चंदन

वही जान सकता है, जिसको आप जनादें और जानते ही वह आपके समान हो जाता है। भक्त के हृदय को चंदन के समान शीतल करने वाली आपकी कृपा से ही भक्त आपको जानते हैं।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी * बिगत बिकार जान अधिकारी
नर तनु धरेहु सन्त सुर काजा * कहहु करहु जस प्राकृत राजा

जो चिदानन्दमय आपका शरीर है, वह विकार रहित है, यह अधिकारी ही जानते हैं। आपने मनुष्य शरीर तो सन्त और देवताओं के कार्य के लिए धारण किया है, और आप प्राकृत राजाओं की तरह करते और कहते हैं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे * जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे
तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा * जस काछिअ तस चाहिअ नाचा

हे श्रीराम ! आपके चरित्र देख व सुनकर मूर्खजन तो मोहित होजाते हैं और ज्ञानी सुखी होते हैं, आप जो कुछ कहते और करते हैं, वह सब ठीक है, जैसा स्वाँग बने, वैसा ही नाचना चाहिये।

दोहा—पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि देखावौं ठाउँ ॥१२७॥

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ ? परन्तु मैं यह पूछते हुए सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए—मैं वही स्थान आपको दिखा दूं।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने * सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने
बालमीकि हँसि कहहि बहोरी * बानी मधुर अमिअ रस बोरी

मुनि के प्रेम-रस से सने हुए वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी मन में सकुचाकर मुस्कराये। तब बालमीकिजी हँसकर अमृत-रस से भरी हुई वाणी से बोले—

सुनहु राम अब कहउँ निकेता * जहाँ बसहु सिय लखन समेता
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना * कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे * तिन्ह के उर तुम्ह कहुँ गृह रूरे

हे श्रीरामजी ! सुनिये, अब मैं आपको वह स्थान बताता हूँ—जहाँ आप सीताजी और लक्ष्मणजी सहित वास करिये। जिनके 'कान' समुद्र के समान आपकी सुन्दर कथारूपी अनेक नदियों से भरते हैं, परन्तु तृप्त नहीं होते—उनके हृदय में आपके सुन्दर घर हैं।

लोचन चातक जिन्ह करि राखे * रहहिं दरस जलधर अभिलाषे
निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी * रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी

तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक * बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक

तथा जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रक्खा है और आपके दर्शनरूपी मेघ की इच्छा किये रहते हैं तथा समुद्र, नदी और सरोवर का निरादर कर आपके रूप के बिन्दु को पाकर सुखी होते हैं, उनके दुखदाई 'हृदय-मन्दिर' में—हे श्रीरघुनाथजी ! आप लक्ष्मण और सीताजी सहित वास कीजिए ।

दोहा—जसु तुम्हार मानस बिमल, हँसिनि जीहा जासु ।
मुक्ताहल गुन गन चुगइ, राम बसहु हियँ तासु ॥१२८॥

आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवर में जिनकी जीव हंसिनी बनकर—आपके गुण-समूह रूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे श्रीरामजी ! आप उनके हृदय में वास करिये ।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा * सादर जासु लहइ नित नासा
तुम्हहिं निबेदित भोजन करहीं * प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं

आपके पवित्र सुन्दर प्रसाद की सुगंध को आदर सहित प्रतिदिन जिनकी नासिका सूँघती है, एवं जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं तथा आपके ही प्रसादी कपड़े-गहने पहिनते हैं ।

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी * प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी
कर नित करहिं राम पद पूजा * राम भरोस हृदय नहिं दूजा

जिनके सिर देवता, गुरु, ब्राह्मणों को देख प्रीतिपूर्वक नम्रता से झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य आपके चरणों का पूजन करते हैं और मन में आपका ही भरोसा करते हैं, दूसरों का नहीं ।

चरन राम तीरथ चलि जाहीं * राम बसहु तिन्ह के मन माहीं
मन्त्र राजु नित जपहिं तुम्हारा * पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा

तथा जिनके चरण आपके तीर्थों में चलकर जाते हैं—हे श्रीरामजी ! आप उनके मन में बास करिये । जो आपका मन्त्र-राज (राम-नाम) नित्य जपते हैं और परिवार समेत आपकी पूजा करते हैं, तथा—

तरपन होम करहिं बिधि नाना * बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी * सकल भायँ सेवहिं सनमानी

जो अनेक प्रकार से तर्पण व हवन करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत-सा दान देते हैं और आपसे भी अधिक गुरु को हृदय में जानकर सब प्रकार से आदर करके सेवा करते हैं ।

दोहा—सबु कर माँगहिं एक फलु, रामचरन रति होउ ।
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ ॥१२९॥

जो इन सब कर्मों का एक ही फल माँगते हैं कि श्रीरामजी के चरणों में हमारा प्रेम हो । उनके 'मन-मन्दिर' में सीताजी और रघुकुल के आनन्दरूप आप दोनों वास कीजिए ।

काम कोह मद मान न मोहा * लोभ न छोभ न राग न द्रोहा
तिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया * तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया

जिनके हृदय में काम, क्रोध, अहंकार मोह नहीं है और न लोभ, न क्षोभ, न राग है न द्वेष है, न कपट है, न दम्भ व माया ही है, हे श्रीरघुनाथजी ! आप उनके हृदय में बास करें।

सबके प्रिय सबके हितकारी * दुख सुख सरिस प्रसंसा भारी
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी * जागत सोवत सरन तुम्हारी

जो सबको प्रिय और सबका हित करने वाले हैं, दुःख-सुख और बड़ाई तथा गाली जिन्हें एक समान हैं, जो सच्चे एवं प्रिय वचन विचार कर बोलते हैं तथा जो सोते जागते आपकी शरण हैं।

तुम्हहि छाँड़ि गति दूसर नाहीं * राम बसहु तिन्हके मन माहीं
जननी सम जानहिं पर नारी * धनु पराव बिष तें बिष भारी

आपको छोड़कर जिनकी दूसरी गति नहीं है, हे रामजी ! आप उनके हृदय में वासकरें। जो पराई स्त्री को माता के समान मानते हैं तथा पराया धन-विष से भी बढ़कर विष समझते हैं।

जे हरषहिं पर सम्पति देखी * दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे * तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे

जो दूसरे के वैभव को देखकर प्रसन्न और दूसरे की विपत्ति को देख कर बहुत दुःखी होते हैं। जिन्हें आप प्राणों के तुल्य हैं। हे श्रीरामजी ! उनके हृदय आपके सुन्दर घर हैं।

दोहा—स्वामी सखा मातुगुरु, जिन्हके सब तुम्ह तात।
मनमन्दिर तिन्हके बसहुँ, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

हे तात ! जिनके स्वामी, सखा, माता, पिता, गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मनरूपी मन्दिर में सीता सहित आप दोनों निवास कीजिये।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं * विप्र धेनु हित सङ्कट सहहीं
नीति निपुन जिन्ह कहँ जगलीका * घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका

जो सबके अवगुण छोड़कर गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण व गौ के लिए संकट सहते हैं, नीति--निपुणता में जिनकी जगत् में मर्यादा है—उनका मन आपका उत्तम घर है।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा * जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा
राम भगति प्रिय लागहिं जेहि * तेहि उर बसइ सहित बैदेही

जो आपके गुण और अपने दोष समझते हैं, जिन्हें सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और जिन्हें श्रीराम-भक्त प्रिय लगते हैं, उनके मन में सीता सहित आप वास कीजिए।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई * प्रिय परिवार सदन सुखदाई
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई * तेहि के हृदय रहहु रघुराई

जाति, पाति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा कुटुम्ब, सुख देने वाला घर-इन सबको छोड़कर जो आप ही का हृदय में ध्यान करते हैं, हे रघुनाथजी ! आप उनके हृदय में रहिये।

सरगु नरकु अपबरगु समाना * जहँ तहँ देख धरें धनु बाना

करम बचन मन राउर चेरा * राम करहु तेहि कें उर डेरा

जिन्हें स्वर्ग, नरक अथवा मोक्ष एक समान हैं,जो जहाँ-तहाँ धनुष धारण किये आपकोही देखते हैं और मन, कर्म, वचन से आपके सेवक हैं, हे रामजी ! आप उनके हृदय में डेरा करिये।

दोहा—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥१३१॥

जिन्हें कभी कुछ नहीं चाहिए और आपसे जिनका स्वाभाविक स्नेह है, उनके हृदय में आप वास कीजिए—वह आपका ही घर है।

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाए * बचत सप्रेम राम मन भाए
कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक * आश्रम कहउँ समय सुखदायक

इस प्रकार मुनि बाल्मीकिजी ने स्थान दिखाये उनके प्रेमपूर्ण वचन श्रीरामजी के मन को भाये। फिर मुनि बोले-हे स्वामी ! सुनिए, अब इस समय के लिए सुखदायक आश्रम बताता हूँ।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू * तहँ तुम्हारि सब भाँति सुपासू
सैल सुहावन कानन चारू * करि केहरि मृग बिहँग बिहारू

चित्रकूट पर्वत पर आप निवास कीजिए, वहाँ आपको सभी प्रकार का सुभीता होगा, वह पर्वत सुहावना और वन सुन्दर है। उसमें हाथी, सिंह, हिरण आदि पशु-पक्षी बिहार करते हैं।

नदी पुनीत पुरान बखानी * अत्रिप्रिया निज तपबल आनी
सुरसरि धार नाउँ मन्दाकिनि * सौ सब पातक पोतक डाकिनी

वहाँ की पवित्र नदी पुराणों ने बखानी है, उसे अत्रि ऋषि की पत्नी 'अनुसूइयाजी' अपने तपोबल से लाई थीं। उस धारा का नाम 'मन्दाकिनी' है, जो पापरूपी पातकों को खाने के लिये डाकिनी रूप है।

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं * करहिं जोग तप तन कसहीं
चलहु सफल श्रम सबकर करहू * राम देहु गौरव गिरिबरहू

अत्रि आदि मुनिवर वहाँ रहते हैं और योग, जप, करते हुए शरीर को कसते हैं। हे श्रीरामजी! वहाँ चलिये और सब ऋषियों के परिश्रम को सफल करिये तथा पर्वत श्रेष्ठ को गौरव दीजिए।

दोहा—चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाए सरित बर, सिय समेत दोउ भाइ ॥१३२॥

इस प्रकार श्रेष्ठ महामुनि बाल्मीकिजी ने चित्रकूट की महिमा बखानी, तब सीताजी समेत दोनों भाई आकर पवित्र नदी में नहाए।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू * करहू कतहुँ अब ठाहर ठाटू
लखन दीख पय उतर करारा * चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा

श्रीरामजीने कहा-हे लक्ष्मण! बड़ा सुन्दर घाट है,यहीं कहीं रहनेकी व्यवस्था करो,तब लक्ष्मण ने जल के उत्तर की ओर किनारे को देखा कि उसके चारों ओर धनुष के समान नाला फिरा है।

ही पनच सर सम दम दाना * सकल कलुषु कलिसाउज नाना
त्रकूट जनु अचल अहेरी * चुकइ न घात मार मुठभेरी
नदी मानो उस धनुष की डोरी है, शम-दम व दान उसके बाण हैं, कलियुग के सब
प अनेक निशाने हैं और चित्रकूट अचल शिकारी है। उसका निशाना कभी नहीं चूकता
में सामने से मारता है।

असकहि लखन ठाउँ देखरावा * थलु बिलोकि रघुबर सुख पावा
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना * चले सहित सुर थपति प्रधाना
ऐसा कहकर लक्ष्मणजीने स्थान दिखलाया,स्थान देखकर श्रीरामजीने सुखपाया। तब देवताओं
ने जाना कि यहाँ श्रीरामजी का मन रम गया, तब अपने प्रधान थवई के साथ चले।

कोल किरात बेष सब आए * रचे परन तृन सदन सोहाए
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला * एक ललित लघु एक बिसाला
वे कोल-भील के रूप में आये और सुन्दर पत्तों तथा घास से सुहावने घर बनाये। दो
ऐसी सुन्दर कुटिया बनाईं, जिनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसमें एक छोटी
और एक बड़ी थी।

दोहा–लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि वेष जनु, रति रितुराज समेत ॥१३३॥
प्रभु श्रीरामजी-लक्ष्मणजी और सीताजी समेत उस स्थान में ऐसे शोभायमान हुए–
मानो कामदेव-रति और ऋतुराज बसंत सहित मुनि के वेश में शोभायमान हों।

* मास पारायण–सत्रहवाँ बिश्राम *

अमर नाग किन्नर दिसिपाला * चित्रकूट आए तेहि काला
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू * मुदित देव लहि लोचन लाहू
उस समय देवता, नाग, किन्नर, दिग्पाल आदि सब चित्रकूट पर आये, श्रीरामचन्द्रजी
ने सबको प्रणाम किया। देवता नेत्रों का लाभ पाकर प्रसन्न हुए।

बरषि सुमन कह देव समाजू * नाथ सनाथ भए हम आजू
करि बिनती दुख दुसह सुनाए * हरषित निज निज सदन सिधाए
देवतागण पुष्प बरसाकर बोले-हे नाथ! आज हम सनाथ हो गये। फिर प्रार्थना करके
अपने दुःसह दुःख सुनाकर प्रसन्न हो अपने २ स्थानों को चले गये।

चित्रकूट रघुनन्दन छाए * समाचार सुनि सुनि मुनि आए
आवत देखि मुदित मुनिबृन्दा * कीन्ह दण्डवत रघुकुल चन्दा
श्रीरघुनाथजी चित्रकूट में आकर बसे हैं,यह सुन-सुनकर मुनि लोग आए। मुनि-समूह को
आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने प्रसन्नता से दण्डवत् प्रणाम किया।

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं * सुफल होन हित आसिष देहीं
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं * साधन सकल सफल करि लेखहिं

मुनिजन श्रीरामचन्द्रजी को हृदय से लगा लेते हैं और सफल होने के निमित्त आशीर्वाद देते हैं। वे सीताजी, लक्ष्मणजी तथा श्रीरामजी की छवि को देख अपने सब साधनों को सफल समझने लगे।

दोहा—जथा जोग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनिबृन्द।
करहिं जोग जप जाग तप, निज आश्रमहिं सुछन्द ॥१३४॥

यथायोग्य सम्मान कर प्रभु ने मुनिगणों को विदा किया। अपने आश्रमों में इच्छानुसार योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई * हरषे जनु नव निधि घर आई
कन्द मूल फल भरि भरि दोना * चले रङ्क जनु लूटन सोना

जब यह खबर कोल-भीलों ने पाई तो वे ऐसे प्रसन्न हुए, मानो नवों निधियाँ उनके ही घर में आ गई हों। वे दोनों में कन्द, मूल, फल भर-करकर इस प्रकार चले, मानो कङ्गाल सोना लूटने जाते हैं।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता * अपर तिन्हहिं पूँछहि मगु जाता
कहत सुनत रघुबीर निकाई * जाइ सबन्हि देखे रघुराई

उनमें से जिन्होंने दोनों भाइयों के दर्शन किये थे, उनसे दूसरे लोग राह में पूछने लगे। वे श्रीरामजी की शोभा कहते-सुनते आये और सभी ने श्रीरघुनाथजी के दर्शन किये।

करहिं जोहारु भेंटि धरि आगे * प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े * पुलक शरीर नयन जल बाढ़े

आगे भेंट रखकर प्रणाम किया और बड़े प्रेम से प्रभु को देखने लगे, मानो चित्रलिखे-से जहाँ के तहाँ खड़े रह गये। उनके शरीर पुलकित हो गये और आँखों में जल भर आया।

राम सनेह मगन सब जाने * कहि प्रिय वचन सकल सनमाने
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी * बचन बिनीत कहहि कर जोरी

श्रीरामजी ने उन सबको प्रेम से मग्न जाना तो प्रिय वचन कह कर सबका सम्मान किया। वे प्रभु श्रीरामजी को बारम्बार प्रणाम कर हाथ जोड़कर नम्र बचनों में बोले—

दोहा—अब हम नाथ सनाथ सब, भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारें आगमनु, राउर कोसलराय ॥१३५॥

हे नाथ! अब हम सब प्रभु के दर्शन करके सनाथ हो गये। हे कौशलपति! हमारे भाग्य से ही आपका आगमन हुआ है।

धन्य भूमि वन पन्थ पहारा * जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम्ह धारा
धन्य बिहग मृग कानन चारी * सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी

हे स्वामी! वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य है, जहाँ जहाँ आपने आपने चरण रक्खे हैं। वे पक्षी और वनबासी धन्य हैं, जो आपके दर्शन करके सफल जन्म हो गये हैं।

हम सब धन्य सहित परिवारा * दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा

कीन्ह बासु भल ठाऊँ बिचारी * इहाँ सकल रितु रहब सुखारी

हम सब परिवार सहित धन्य हैं, जो नेत्र भरकर आपका दर्शन किया। आपने अच्छा स्थान विचार कर वास किया है, यहाँ सभी ऋतुओं में आप सुखी रहेंगे।

हम सब भाँति करब सेवकाई * करि केहरि अहि बाघ बराई
बन बेहड़ गिरि कन्दर खोहा * सब हमारि प्रभु पग पग जोहा

हम हाथी, सिंह और बाघों से बचकर सब प्रकार से आपकी सेवा करेंगे। हे प्रभु! यहाँ के वन, ऊँची-नीची भूमि, पहाड़, गुफायें और खोहें सब पग-पग हमारे देखे हुए हैं।

जहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलावउ * सर निरझर जल ठाऊँ देखाउब
हम सेवक परिवार समेता * नाथ न सकुचब आयसु देता

हम आपको जहाँ-तहाँ शिकार खिलावेंगे और सरोवर, झरने आदि जलाशय दिखावेंगे। हे नाथ! हम सब परिवार सहित आपके सेवक हैं, अतः आज्ञा देते संकोच न करिये।

दोहा—बेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बैन ॥१३६॥

जो वेद-वाणी और मुनियों के मन को भी अगम हैं, वे करुणाधाम प्रभु श्रीरामजी भीलों के वचन इस प्रकार सुनते हैं, जैसे पिता बालकों के वचनों को सुनता है।

रामहि केवल प्रेम पियारा * जानि लेउ जो जाननिहारा
राम सकल बनचर तब तोषे * कहि मृदु बचन प्रेम परितोषे

श्रीरामजी को केवल प्रेम प्रिय है, जो जानने वाला हो—वह जान ले। श्रीरामजी ने कोमल वचन कहकर उन सब वन-वासियों को सन्तुष्ट किया।

बिदा किए सिर नाइ सिधाए * प्रभु गुन कहत सुनत घर आए
ऐहि बिधि सिय समेत दोउ भाई * बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई

उनको विदा किया तो वे सिर नवाकर चले और प्रभुके गुणानुवाद कहते हुए घर आये इस प्रकार देवता और मुनियोंको सुख देने वाले दोनों भाई सीता समेत वन में निवास करने लगे।

जब तें आई रहे रघुनायक * तब तें भयउ बनु मङ्गलदायक
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना * मंजु बलित बर बेलि बिताना

जब से श्री रघुनाथजी वन में आकर रहे वह वन मंगलदायक हो गया। अनेक प्रकार के वृक्ष फलने-फूलने लगे, उन पर लिपटी हुई वेलों के मंडप तने हैं।

सुरतरु सरित सुभायँ सुहाऐ * मनहुँ बिबुध वन परिहरि आऐ
गुञ्ज मंजु तरु मधुकर श्रेनी * त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी

ये कल्पवृक्ष के समान स्वभाव से ही सुन्दर हैं, मानो नन्दन-वन को छोड़कर आगए हों। सुन्दर भौंरों की पंक्तियाँ मधुर शब्द से गुंजार रही है और सुख देने वाली शीतल, मन्द सुगन्धित पवन बहती है।

दोहा—नीलकण्ठ कलकण्ठ सुक, चातक चक्क चकोर ।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, श्रवन सुखद चितचोर ॥१३७॥

नीलकण्ठ, कोकिल, तोते, पपीहे, चकवा, चकोर आदि पक्षी कानों को सुख देने वाली, और चित्त को चुराने वाली-भाँति २ की सुन्दर बोली बोल रहे हैं।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा * बिगत बैर बिचरहिं सब सङ्गा
फिरत अहेर राम छबि देखी * होहिं मुदित मृगबृन्द बिसेषी

हाथी, सिंह, बन्दर, सूअर, हिरण आदि पशु सब वैर छोड़कर एक साथ घूमते हैं शिकार के लिए वन में घूमते हुए श्रीरामजी की छवि देकर हिरनों के झुण्ड बहुत प्रसन्न होते हैं।

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं * देखि राम बनु सकल सिहाहीं
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या * मेकलसुता गोदावरि धन्या

संसार में जितने देव-वन हैं वे श्रीरामचन्द्रजी के वन को देखकर ईर्षा करते हैं। गंगा, सरस्वती, यमुना, नर्वदा, गोदावरी आदि धन्य नदियाँ—

सब सर सिन्धु नदी नद नाना * मन्दाकिनि कर करहिं बखाना
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू * मन्दर मेरु सकल सुरबासू

सब सरोवर, समुद्र-नदियाँ अनेकों नाले यह सब मन्दाकिनी की प्रशंसा करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मन्दराचल और सुमेरु आदि पर्वत जो देवताओं के निवास स्थान हैं।

सैल हिमाचल आदिक जेते * चित्रकूट जसु गावहिं तेते
बिन्ध्य मुदित मन सुखु न समाई * श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई

और हिमालय आदि जितने पहाड़ हैं वे सभी चित्रकूट का यश गाते हैं। विन्ध्याचल बड़ा प्रसन्न हुआ. उसके मन में सुख नहीं समाता, क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ाई पाली है।

दोहा—चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति ।
पुन्य पुञ्ज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥

देवता दिन-रात यही कहते हैं कि चित्रकूट के पशु, पक्षी, लता, वृक्ष और घास आदि सब पुण्य के समूह और धन्य हैं।

नयनवन्त रघुबरहिं बिलोकी * पाइ जनम फल होहिं बिसोकी
परसि चरनरज अचर सुखारी * भए परम पद के अधिकारी

नेत्र वाले जीव श्रीरामजी के दर्शन कर जन्म का फल पाकर शोक रहित हो जाते हैं और अचर श्रीरामजी के चरणों की रज को छूकर सुखी होते हैं, सभी मोक्ष के अधिकारी हो गये हैं।

सो बन सैल सुभायँ सुहावन * मङ्गलमय अति पावनि पावन

महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू * सुख सागर जहँ कीन्ह निवासू

वह वन और पहाड़ स्वाभाविक सुहावना, मंगलरूप, पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है, उसकी महिमा किस प्रकार कही जाय, वहाँ सुख के समुद्र श्रीरामजी ने निवास किया।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई * जहँ सिय लखनु राम रहे आई
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन * जौं सत सहस होहिं सहसानन

क्षीर-सागर को त्यागकर और पुरी को छोड़कर श्रीसीता-रामजी व लक्ष्मणजी जहाँ आकर रहे, उस वन की जैसी परम शोभा है, उसको हजारों मुख वाले एक लाख शेषजी भी नहीं कह सकते।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केही * डाबर कमठ कि मन्दर लेही
सेवहिं लखनु करम मन बानी * जाइ न सीलु सनेहु बखानी

मैं उसे किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ ? क्या गड्ढ़े का कछुआ मन्दराचल को उठा सकता है? लक्ष्मणजी, मन, कर्म, वचन से रामजी की सेवा करते हैं, उनका शील व प्रेम कहा नहीं जाता।

दोहा—छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु ।
करत न सपनेहुँ लखनु चित, बन्धु मातु पितु गेहु ॥१३९॥

क्षण-क्षण में श्रीसीता-रामजी के चरणों को देखकर और अपने ऊपर उनके स्नेह को जानकर लक्ष्मणजी-स्वप्न में भी भाई, माता-पिता और घर की याद नहीं करते।

राम सङ्ग सिय रहित सुखारी * पुर परिजन गृह सुरति बिसारी
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी * प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी

श्रीरामजी के साथ सीताजी-अवधपुरी, कुटुम्बी और घर की सुधि भुलाकर रहने लगीं। क्षण२ में पति के चन्द्रमुख को देख वे ऐसी प्रसन्न रहती हैं, जैसे चकोरी चन्द्रमा को देख प्रसन्न होती है।

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी * हरषित रहित दिवस जिमि कोकी
सिय मनु राम चरन अनुरागा * अवध सहस सम बिनु प्रिय लागा

सीताजी अपने ऊपर स्वामी का स्नेह नित्य बढ़ता हुआ देखकर ऐसी प्रसन्न रहती हैं, जैसे दिन में चकवी। सीताजी का मन श्रीरामजी के चरणों का ऐसा प्रेमी होगया कि वन उन्हें हजारों अयोध्या के समान प्यारा लगता है।

परनकुटी प्रिय प्रियतम सङ्गा * प्रिय परिवारु कुरङ्ग बिहङ्गा
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर * असनु अमिअ सम कन्दमूल फर

पर्णकुटी पति के साथ प्रिय लगती है। पशु व पक्षी कुटुम्बीजनों के समान प्रिय लगते हैं, मुनियों की स्त्रियाँ व मुनिवर सास-ससुर के समान और कंद-मूल-फल के भोजन अमृत जैसे लगते हैं।

नाथ साथ साँथरी सुहाई * मयन सयन सय सम सुखदाई
लोकप होहिं बिलोकत जासू * तेहि कि मोह सक बिषय बिलासू

पति के साथ सुन्दर साथरी ही कामदेव की सैकड़ों सेजों के समान सुखदायक है, जिनको

कृपा-दृष्टि से मनुष्य लोकपाल हो जाते हैं। क्या उनके भोग-विलास मोहित कर सकता है?

दोहा—सुमिरति रामहि तजहिं जन, तृनसम विषय बिलासु।

रामप्रिया जगजननि सिय, कछु न आचरजु तासु ॥१४०॥

श्रीरामजी का स्मरण करने से भक्त-जन विषयभोग को तृण के समान त्याग देते हैं। श्रीरामजी की प्रिया और जगत्माता सीताजी के लिए इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

सीयलखन जेहि बिधि सुखु लहहीं * सोई रघुनाथ करहिं सो कहहीं

कहहिं पुरातन कथा कहानी * सुनहिं लखनु सिय अतिसुख मानी

सीताजी व लक्ष्मणजी जिस भाँति से सुख पावें, श्रीरामजी वही करते और वही कहते हैं। पुरातन कथा-कहानी विस्तार से कहते हैं और लक्ष्मणजी व सीताजी बड़ा सुख मानकर सुनते हैं।

जब जब राम अवध सुधि करहीं * तब तब बारि बिलोचन भरहीं

सुमिरि मातु पितु परिजन भाई * भरत सनेहु सीलु सेवकाई

श्रीरामजी जब-जब अयोध्याजी की सुधि करते हैं, तब-तब उनके नेत्रों में जल भर आत हैं। माता, कुटुम्बी और भाई भरत के स्नेह, शील व सेवा-भाव को स्मरण करके—

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी * धीरजु धरहिं कुसमय बिचारी

लखिसिय लखनु बिकल होइ जाहीं * जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं

कृपासिन्धु प्रभु दुःखी होते हैं. परन्तु कुसमय विचार कर धीरज धर लेते हैं। प्रभु क दशा देख लक्ष्मणजी और सीताजी ऐसे व्याकुल हो जाते हैं, जैसे मनुष्य की छाया उसी के अनुसार चलती है।

प्रिया बन्धु गति लखि रघुनन्दनु * धीर कृपालु भगत उर चन्दनु

लगे कहन कछु कथा पुनीता * सुनि सुखु लहहिं लखनु अरुसीता

सीताजी और लक्ष्मणजी की दशा देखकर धीर, दयालु तथा भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चन्दनरूपी श्रीरामचन्द्रजी कोई पवित्र कथा कहने लगते हैं, जिसे सुन वे दोनो सुख पाते हैं।

दोहा—राम लखन सीता सहित, सोहत परम निकेत।

जिमि बासव बस अमर पुर, सची जयन्त समेत ॥१४१॥

श्रीरामजी-लक्ष्मणजी और सीताजी के सहित पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हैं जैसे इन्द्र-शची और पुत्र जयन्त के सहित अमरावती में वास करता है।

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें * पलक बिलोचन गोलक जैसें

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि * जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि

प्रभु—सीताजी और लक्ष्मणजी की कैसे रक्षा करते हैं, जैसे पलक आँखों की पुतलियों की। लक्ष्मण व सीता-श्रीरामजी की ऐसी सेवा करते हैं: जैसे अज्ञानी पुरुष शरीर की करते हैं।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी * खग मृग सुर तापस हितकारी

कहेउ राम बन गवनु सुहावा * सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा

इस प्रकार पशु-पक्षी,देवता व तपस्वियोंके हितकारी प्रभु वनमें सुख से रहने लगे। (तुलसीदास जी कहते है) सुन्दर श्रीराम-वनगमन मैंने कहा,अब जिस प्रकार सुमन्तजी पुरी में आये,सो सुनो-

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई * सचिव सहित रथ देखेसि आई
मन्त्री बिकल बिलोकि निषादू * कहि न जाइ जस भयउ बिषादू

प्रभु को पहुँचाकर निषादराज लौटा, तब आकर उसने सुमन्त सहित रथ को वहीं देखा। मन्त्री को व्याकुल देखकर निषादराज को जो दुःख हुआ, वह कहा नहीं जा सकता।

राम राम सिय लखन पुकारी * परेउ धरनि तन व्याकुल भारी
देखि दखिनदिसि हय हिहिनाहीं * जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं

सुमन्त-राम २ ! लक्ष्मण ! पुकारकर बहुत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। घोड़े दक्षिण दिशा की ओर देख ऐसे हिनहिनाने लगे, जैसे बिना पंख के पक्षी दुःखी होते हैं।

दोहा—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु, मोचहिं लोचन बारि।
व्याकुल भयउ निषाद तव, रघुबर बाजि निहारि ॥१४२॥

न तो वे घास चरते हैं, न पानी पीते हैं, आँखों से आंसू बहा रहे हैं। श्रीरघुनाथजी के घोड़ों की दशा देख निषाद व्याकुल हो गया।

धरि धीरजु तब कहइ निषादू * अब सुमन्त्र परिहरहु बिषादू
तुम्ह पण्डित परमारथ ग्याता * धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता

तब निषाद ने धीरज धरकर कहा—हे सुमन्त ! शोक को त्याग दो, क्योंकि आप पंडित और परमार्थ के ज्ञाता हो। विधाता को विमुख जानकर धीरज धरो।

बिबिध कथा कहि कहि मृदुबानी * रथ बैठारेउ बरबस आनी
सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी * रघुबर बिरह पीर उर बाँकी

निषाद ने मधुर वाणी से अनेक कथायें कहकर सुमन्त को बरबस लाकर रथ में बैठाया परन्तु वे शोक के कारण शिथिल हो जाने से रथ को नहीं हांक सके, श्रीराम-विरह की उनके हृदय में बड़ी पीड़ा थी।

तरफराहिं मग चलहिं न घोरे * बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें * राम बियोग बिकल दुख तीछें

घोड़े तड़फड़ाते हैं, सीधे मार्ग पर नहीं चलते, मानो जंगली हिरन लाकर रथ में जोत दिये हों कभी अटक जाते और पीछे को घूमकर देखते हैं। श्रीराम के विरह से बड़े ही व्याकुल होगये।

जो कह रामु लखनु बैदेही * हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही
बाजि बिरह गति किमि कहि जाती * बिनु मनि फनिक बिकल जेहिं भाँती

जो कोई राम-लक्ष्मण व सीता का नाम लेता है, तो हींस-हींस करके उसकी ओर देखने लगते हैं। घोड़ों की विरह दशा कैसे कही जाय ? ऐसे व्याकुल हैं-जैसे मणि के बिना सर्प।

दोहा—भयउ निषादु बिषादबस, देखत सचिव तुरङ्ग।

बोहिं सुसेवक चारि तब, दिये सारथी सङ्ग ॥१४३॥

सुमन्त व घोड़ों की दशा देख निषादराज दुखित हो गया। तब उसने अपने चार अच्छे सेवक बुलाकर सारथी सुमन्त के साथ कर दिये।

गुहँ सारथिहि फिरेउ पहुँचाई * बिरहुँ विषादु बरनि नहिं जाई
चले अवध लेइ रथहि निषादा * होहिं छनहिं छन मगन विषादा

सारथी (सुमन्त) को पहुँचाकर निषादराज लौटा, उस समय की विरह व्यथा कही नहीं जाती। चारों निषाद-सेवक रथ लेकर अयोध्या को चले, वे भी क्षण-क्षण में दुःखी हो जाते हैं।

सोच सुमन्त्र बिकल दुख दीना * धिग जीवन रघुवीर बिहीना
रहहि न अन्तहुँ अधम सरीरू * जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू

व्याकुल और दुःख से दीन सुमन्त सोचने लगे कि श्रीरघुनाथजी के बिना जीवन को धिक्कार है। यह अधम शरीर तो अन्त में भी न रहेगा, फिर श्रीरघुनाथजी के बिछुड़ते ही इसने यश क्यों न ले लिया?

भए अजस अघ भाजन प्राना * कवन हेतु नहिं करत पयाना
अहह मन्द मनु अवसर चूका * अजहुँ न हृदयँ होत दुइ टूका

यह प्राण अपयश और पाप के पात्र हुए। किस कारण ये शरीर से नहीं निकलते? अहा! यह मूर्ख मन अवसर चूक गया, आज भी तो हृदय के दो टुकड़े नहीं होते।

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई * मनहुँ कृपन धन राशि गवाँई
बिरिदि बाँधि बर बीरु कहाई * चलेउ समर जनु सुभट पराई

सुमन्त हाथ मलकर और सिर धुनकर पछता रहे हैं, मानो कंजूस धन की ढेरी गवाँ बैठा हो। वे ऐसे चले, जैसे कोई अच्छा योद्धा बाना बाँधकर वह शूरवीर कहलाकर रण से भाग चला हो।

दोहा—बिप्र बिबेकी बेदबिद, सम्मत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मदपान करि, सचिवसोच तेहि भाँति ॥१४४॥

जिस प्रकार कोई ज्ञानवान् वेद का ज्ञाता, साधुओं के अनुकूल ब्राह्मण धोके से मदिरा-पान करके पछतावा करे, इसी प्रकार सुमन्त सोच रहे हैं।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी * पति देवता करम मन बानी
रहे करम बस परिहरि नाहू * सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाहू

जैसे कोई कुलीन, साध्वी, चतुर और मन व वाणी से पति को देवता मानने वाली स्त्री कर्म-गति से पति को छोड़कर दुःखी रहे, इसी प्रकार सुमन्त के हृदय में कठिन दुःख था।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी * सुनई न श्रवन विकलमति भोरी
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी * जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी

नेत्रों में आँसू भरे हैं, दृष्टि मन्द हो गई, कानों से कुछ सुनाई नहीं देता, व्याकुलता के कारण बुद्धि ठिकाने नहीं है, होंठ सूख गये हैं, मुँह उतर गया है, किन्तु प्राण नहीं निकलते।

क्योंकि अवधरूपी किवाड़ हृदय में लगे हैं।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी * मारेसि मनहुँ पिता महतारी
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी * जमपुर पन्थ सोच जिमि पापी

मुखका रंग बदल गया, जो देखा नहीं जाता, मानो माता-पिता को मारा हो। मन के वियोगरूपी हानि से बहुत ही उदासी छाई, जैसे पापी यमपुरी के मार्ग में मारे सोच के उदास हो जाते हैं।

बचनु न आव हृदयँ पछिताई * अबध काह मैं देखब जाई
राम रहित रथ देखहि जोई * सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई

मुँह से वचन नहीं निकलते, हृदय में पछता रहे हैं कि मैं अयोध्या में जाकर क्या देखूँगा? जो लोग बिना श्रीरामजी के रथ को देखेंगे, वे मुझे देखने में भी संकोच करेंगे।

दोहा—धाइ पूछिहहिं मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहिं तब, हृदय बज्र बैठारि ॥१४५॥

नगर के व्याकुल स्त्री-पुरुष दौड़कर जब मुझसे श्रीरामजी के समाचार पूछेंगे, तब मैं हृदय पर वज्र रखकर सबको क्या उत्तर दूँगा?

पूछिहहिं दीन दुखित सब माता * कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता
पूछिहहिं जबहिं लखन महतारी * कहिहउँ कवन सँदेश सुखारी

हे विधाता! जब दीन-दुःखी सब मातायें मुझसे समाचार पूछेंगी तब मैं उनको क्या कहूँगा? जब लक्ष्मणजी की माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं कौनसा सुख सन्देश उनसे कहूँगा?

राम जननि जब आइहि धाई * सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई
पूछत उतरु देब मैं तेही * गे बनु राम लखन बैदेही

श्रीरामजी की माता जब दौड़कर मेरे पास आयेंगी, जैसे हाल की ब्याही हुई गाय बछड़े को याद करके दौड़ आती है। तब उनके पूछने पर मैं उन्हें यही उत्तर दूँगा कि श्रीराम-लक्ष्मण व जानकीजी वन को गये।

जोइ पूछिहि तेहि उतरु देवा * जाइ अवध अब यहु सुखु लेवा
पूछहि जबहिं राउ दुखु दीना * जिवनु जासु रघुनाथ अधीना

जो मुझसे पूछेगा, उसको यही उत्तर दूँगा, अयोध्या जाकर अब यही सुख लेना है। परन्तु जब दीन-दुःखी राजा-जिनका जीवन श्रीरामजी के ही अधीन है, मुझसे पूछेंगे।

देहउँ उतरु कवन मुहु लाई * आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई
सुनत लखन सिय राम सँदेसू * तृन जिमि तनु परिहरहिं नरेसू

तो मैं राजा से कौन-सा मुँह लेकर उत्तर दूँगा कि कुमारों को सकुशल पहुँचाकर लौट आया हूँ। श्रीराम-लक्ष्मण व सीता का समाचार सुनकर महाराज तिनके की भाँति देह को त्याग देंगे।

दोहा—हृदयँ न बिदरेउ पङ्क जिमि, बिछुरत प्रीतमु नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि, यम जातना शरीर ॥१४६॥

प्रियतम (राम) रूपी जन के बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़ की भाँति क्यों न फट गया। इससे मैं जानता हूँ कि बिधाता ने मुझे कठोर 'यम-दण्ड' भोगने को ही शरीर दिया है।

एहि विधि करत पन्थ पछितावा * तमसा तीर तुरत रथ आवा
विदा किये करि विनय निषादा * फिरे पायँ परि विकल विषादा

इस भाँति मार्गमें पछतावा करते हुए सुमन्त रथ समेत तुरन्त तमसा नदी के तट पर पहुँचे। सुमन्तने चारों निषादों को नम्रतासे विदा किया, तो वे सुमन्तके पाँव पकड़कर दुखितहोलौट चले।

पैठत नगर सचिव सकुचाई * जनु मारेसि गुरु बाँमन गाई
बैठि बिटप तर दिवस गँवावा * साँझ समय तब अवसर पावा

अयोध्या में घुसते हुए मंत्री ऐसे सकुचाये, मानो गुरु, ब्राह्मण व गौ को मारकर आये हों। एक पेड़ के नीचे बैठकर दिन बिता दिया, तब संध्या-समय पुरी में घुसने का अवसर पाया।

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारें * पैठि भवन रथु राखि दुआरें
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए * भूप द्वार रथु देखन आए

सुमन्त ने अवध में अँधेरा होते ही प्रवेश किया और रथ को द्वार पर खड़ाकर आप भीतर चले गये। जिन २ लोगों ने यह समाचार पाया, वे राजद्वार पर रथ को देखने आये।

रथु पहिचान बिकल लखि घोरे * गरहिं बात जिमि आतप ओरे
नगर नारि नर व्याकुल कैसें * निघटत नीर मीनगन जैसें

रथ को पहिचान तथा घोड़ों को व्याकुल देख, इनके अंग इस प्रकार गलने लगे, जैसे धूपमें ओले। नगरके स्त्री-पुरुष ऐसे घबड़ाये, जैसे पानी घट जाने से मछलियाँ तड़फने लगती हैं।

दोहा—सचिव आगमनु सुनत सब, बिकल भयउ रनिवासु।
भवन भयङ्कर लाग तेहि, मानहुँ प्रेत निवासु ॥१४७॥

मंत्री का अकेला आना सुनकर सब रनिवास व्याकुल हो गया। उन्हें राज-भवन ऐसा भयानक लगा, मानो प्रेतों का निवास-स्थान हो।

अति आरति सब पूछहिं रानी * उतरु न आव बिकल भइ बानी
सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा * कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा

सब रानियाँ बड़े दुःख से पूछने लगीं, परन्तु सुमन्त के मुख से कोई उत्तर नहीं आता। उनकी वाणी रुक गई, कानों से सुनाई नहीं देता और आँखों से दीखता नहीं। वे प्रत्येक से यह पूछते हैं 'महाराज कहाँ हैं ?'

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई * कौसल्या गृहँ गईं लवाई
जाइ सुमन्त्र दीख कस राजा * अमिअ रहित जनु चन्दु बिराजा

दासियाँ सुमन्त को बहुत व्याकुल देखकर कौशल्याजी के भवन में लिवा ले गईं। वहाँ जाकर सुमन्त ने महाराज को कैसा देखा—मानो अमृत का चन्द्रमा हो।

आसन सयन बिभूषन हीना * परेउ भूमितल निपट मलीना

लेउ उसासु सोच एहि भाँती * सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती

राजा-आसन, शैय्या और आभूषणों से हीन, बहुत उदास मुख हुए भूमि पर पड़े हैं। वे दीर्घ-श्वास ले-लेकर इस प्रकार सोच कर रहे हैं, मानो राजा ययाति देवलोक से गिरने पर पछता रहे हों।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती * जनु जरि पंख परेउ सम्पाती
राम राम कह राम सनेही * पुनि कह राम लखन बैदेही

सोच के कारण क्षण-क्षण में छाती भर आती है। राजा ऐसे व्याकुल पड़े हैं मानो पंखों के जल जाने से सम्पाती गिर पड़ा हो। बारम्बार—हे राम, हे राम, हे स्नेही राम! कहते हैं, फिर हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीता! कहकर पुकारते हैं।

दोहा—देखि सचिवँ जयजीव कहि, कीन्हेउ दण्ड प्रनामु।
सुनत उठत व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त कहँ रामु ॥१४८॥

सुमन्त ने राजा को देख, 'जय-जीव' कहकर दण्डवत प्रणाम किया। तब सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और बोले हे सुमन्त! कहो राम कहाँ हैं?

भूप सुमन्त्र लीन्ह उर लाई * बूढ़त कछु अधार जनु पाई
सहित सनेह पास बैठारी * पूँछत राउ नयन भरि बारी

राजा ने सुमन्त को हृदय से लगा लिया, मानो डूबते हुए ने कुछ सहारा पा लिया हो। सप्रेम अपने पास बैठाकर आँखों में आँसू भरकर राजा ने पूछा।

राम कुशल कहु सखा सनेही * कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही
आने फेरि कि बनहि सिधाए * सुनत सचिव लोचन जल छाए

हे स्नेही-सखा! राम की कुशल कहो, बताओ रघुनाथ, लक्ष्मण और सीता कहाँ हैं? तुम उन्हें लौटा लाये हो, या वे वन को चले गये। यह सुन मंत्री के नेत्रों में जल भर आया।

सोक विकल पुनि पूँछ नरेसू * कहु सिय राम लखन सन्देसू
राम रूप गुन सील सुभाऊ * सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ

शोक से व्याकुल हो राजा ने फिर पूछा—सीता, राम, लक्ष्मण का सन्देश तो कहो। राजा-राम के रूप, गुण, शील और स्वभाव को याद करके मन में सोच करते हैं।

राउ सुनाइ दीन्ह बनवासू * सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू
सो सुत बिछुरत गए न प्राना * को पापी बड़ मोहि समाना

राज-तिलक सुनाकर वनवास दिया। यह सुनकर भी जिनके मन में न हर्ष हुआ और न शोक ही, उस पुत्र के बिछुड़ने पर भी ये प्राण नहीं गये। मेरे समान महापापी कौन है?

दोहा—सखा राम सिय लखनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहि त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥

हे सखा! जहाँ राम, सीता और लक्ष्मण हैं, वहाँ मुझे पहुँचा दो, नहीं तो मेरे प्राण अब

निकलना चाहते हैं। यह मैं सत्य भाव से कहता हूँ।

पुनि पुनि पूँछत मन्त्रिहि राऊ * प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ
कहहु सखा सोइ बेग उपाऊ * राम लखन सिय नयन देखाऊ

मंत्री से राजा बारम्बार पूछते हैं—मेरे परम प्रिय पुत्रों का समाचार सुनाओ? हे सखा! जल्दी से उपाय करो, जिससे राम, लक्ष्मण और सीता को मैं नेत्रों से देखूं।

सचिव धीर धरि कह मृदुबानी * महाराज तुम्ह पण्डित ज्ञानी
वीर सुधीर धुरन्धर देवा * साधु समाज सदा तुम्ह सेवा

सुमन्त ने धैर्य धरकर मधुर वाणी से कहा-हे महाराज! आप विद्वान और ज्ञानी हैं। हे देव! आप शूरवीर और धीर-धुरन्धर हैं, आपने सदैव ही साधुओं की सेवा की है।

जनम मरन सब दुख सुख भोगा * हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा
कालि करम बस होहिं गोसाईं * बरबस राति दिवस की नाईं

संसार में जन्म-मरण, सब दुःख-सुखों के भोग हानि-लाभ व प्रियों का मिलना-बिछुड़ना हे गुसाईं! यह सब काल और कर्म के अनुसार रात-दिन की तरह बरबस होते रहते है।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं * दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी * छाँड़िअ सोच सकल हितकारी

मूर्ख लोग सुख में प्रसन्न होते हैं और दुःख में रोते हैं, परन्तु धीर पुरुष दोनों को एक समान समझते हैं। आप सबके हितकारी हैं, इसलिए ज्ञान से विचार कर धैर्य धारण कीजिये और शोक त्याग दीजिए।

दोहा—प्रथम बास तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलुपान करि, सिय समेत दोउ बीर ॥१५०॥

श्रीरामजी का पहला निवास-तमसा नदी के तट पर और गङ्गाजी के किनारे हुआ, वहां सीताजी सहित दोनों भाई स्नान कर, केवल जल-पान करके ही रह गये।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई * सो जामिनि सिंगरौर गँवाई
होत प्रात वट क्षीरु मँगावा * जटा मुकुट निज सीस बनावा

वहाँ केवट ने बहुत सेवा की और वह रात्रि शृंगवेरपुर में ही बिताई, फिर प्रातःकाल होते ही बड़ का दूध मँगाकर अपने शिर पर जटाओं का मुकट बनाया।

राम सखा तब नाव मँगाई * प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई
लखन बानु धनु धरे बनाई * आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई

तब रामजी के सखा निषाद ने नाव मँगाई, उस पर सीताजी को चढ़ाकर श्रीरामजी चढ़े, फिर लक्ष्मणजी ने धनुष-बाण सँभालकर हाथोंमें लिया और प्रभु की आज्ञा पा आप भी नाव पर चढ़े।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा * बोले मधुर बचन धरि धीरा
तात प्रनामु तात सन कहेउ * बार बार पद पङ्कज गहेउ

फिर मुझे विकल देखकर श्रीरामजी धीरज धरकर मधुर वचन बोले—हे तात ! मेरा प्रणाम पिताजी से कहना और मेरी ओर से बारम्बार उनके चरण कमल छूना ।

करबि पाँय परि विनय बहोरी * तात करिअ जनि चिन्ता मोरी
बन मग मङ्गल कुशल हमारें * कृपा अनुग्रह पुण्य तुम्हारें

फिर पाँव पकड़कर विनती करना कि हे तात ! आप मेरी चिन्ता न करें । आपकी कृपा अनुग्रह तथा पुण्य के प्रभाव से हमारे लिये वन का मार्ग मङ्गल और कुशलदायक ही होगा।

छन्द—तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सबु सुखु पाइहौं ।
प्रतिपाल आयसु कुसल देखन पाँय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि विनती घनी ।
तुलसी करेहु सोइ यत्न जेहिं विधि कुसल रहिं कोशलधनी ॥

हे पिताजी ! आपके अनुग्रह से मैं बन में जाकर सुख पाऊँगा । आज्ञा का पालन कर फिर आपके चरणों के दर्शन करके सकुशल लौट आऊँगा । फिर सब माताओं के चरणों में गिरकर उन्हें सन्तुष्ट करके बहुत प्रकार से विनती करना । तुलसीदासजी कहते हैं—आप वही उपाय करना, जिससे कौशलपति महाराज सकुशल रहें ।

सो०—गुरुसन कहब सँदेसु, बार बार पद पदुम गहि ।
करब सोइ उपदेसु जेहिं, न सोच मोह अवधपति ॥१५१॥

गुरु वशिष्ठजी के चरणारविंदों को बारम्बार छूकर मेरा संदेश कहना कि आप वही उपदेश अवधपति को देते रहें—जिससे पिताजी मेरा सोच न करें ।

पुरजन परिजन सकल निहोरी * तात सुनाएहु बिनती मोरी
सोइ सब भाँति मोर हितकारी * जातें रह नरनाहु सुखारी

हे तात ! सब पुरवासियों और कुटुम्बियों से प्रार्थना करके मेरी विनती सुनाना कि वही सब प्रकार से मेरा हितकारी है, जिससे महाराज सुखी रहें ।

कहब सँदेसु भरत के आएँ * नीति न तजिअ राजपदु पाएँ
पालेहु प्रजहि करम मन बानी * सेवहु मातु सकल सम जानी

भरत के आने पर उनसे यह सन्देश कहना कि वे राज्य को पाकर नीति को न त्याग दें । मनसा, वाचा, कर्मणा—तीनों से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को समान जानकर उनकी सेवा करना ।

और निबाहेउ भायप भाई * करि पितु मातु सुजन सेवकाई
तात भाँति तेहि राखब राऊ * सोच मोर जेहिं करै न काऊ

और हे भाई ! माता-पिता तथा बड़ों की सेवा करके भाईपन को निभाना, हे तात ! महाराज का भी उसी प्रकार ध्यान रखना—जिससे वे भी मेरा सोच न करें ।

लखन कहे कछु बचन कठोरा * बरजि राम पुनि मोहि निहोरा

बार बार निज शपथ दिवाई * कहबि न तात लखन लरिकाई

लक्ष्मणजी ने कुछ कड़े वचन कहे तो उन्हें रोककर श्रीरामजी ने फिर मुझे समझाया और बारम्बार अपनी शपथ दिलाकर कहा—हे तात ! लक्ष्मण का लड़कपन वहाँ न कहना।

दोहा—करि प्रनामु कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥

सीताजी भी प्रणाम करके कुछ कहने को हुईं, किन्तु स्नेह वश शिथिल होगईं। मुख से वचन नहीं निकले, नेत्रों में जल भर आया तथा शरीर रोमांचित हो गया।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई * केवट पारहि नाव चलाई
रघुकुल तिलक चले एहि भाँती * देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती

उसी समय श्रीरघुनाथजी का रुख पाकर केवट ने उस पार ले जाने के लिये नाव चला दी। इस प्रकार श्रीरघुनाथजी चले और मैं छाती पर वज्र रखकर खड़ा देखता ही रहा।

मैं आपन किमि कहौं कलेसू * जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ * हानि गलानि सोच बस भयऊ

मैं अपना क्लेश कैसे कहूँ ? श्रीरामजी का सन्देश लेकर जीता ही लौट आया। ऐसा कहकर वे चुप रह गये और विरह की अग्नि वश सोच में डूब गये।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू * परेउ धरनि उर दारुन दाहू
तलफत बिषम मोह मन मापा * माँजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा

राजा सुमन्त के वचन सुनते ही भूमि पर गिर पड़े और उनके हृदय में बड़ी पीड़ा हुई। मन में मोह बढ़ जाने के कारण व्याकुल होकर ऐसे तड़फने लगे, मानो मछली को माँजा व्याप गया हो।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी * महा बिपति किमि जाइ बखानी
सुनि बिलाप दुखहूँ दुखु लागा * धीरजहू करि धीरजु भागा

सब रानियाँ विलाप करके रोने लगीं। वह विपत्ति किस प्रकार कही जाय ? उस विलाप को सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का भी धीरज छूट गया।

दोहा—भयउ कोलाहलु अवधपति, सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहंग बन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोरु ॥१५३॥

राज-महल में रोने का शोर सुनकर, अयोध्या में ऐसा कुहराम मच गया, मानो पक्षियों के बन में रात के समय कठोर वज्र आ गिरा हो।

प्रान कण्ठगत भयउ भुआलू * मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू
इन्द्री सकल बिबस भईं भारी * जनु सरसिज बनु बिनु बारी

महाराज के प्राण कण्ठ में आ गये, मानो मणि के बिना सर्प विकल हो गया हो। तब इन्द्रियाँ ऐसी शिथिल हो गईं, जैसे सरोवर में जल रहने से कमलों का बन सूख गया हो।

कौसल्या नृप दीख मलाना * रविकुल रबि अंथयउ जियँ जाना
उर धरि धीर राम महतारी * बोली बचन समय अनुसारी

कौशल्याजी ने राजा को उदास देखकर जान लिया कि सूर्यकुल का सूर्य अब अस्त हो चला। तब श्रीरामजी की माता मन में धीरज धरकर समय के अनुकूल वचन बोलीं–

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू * राम बियोग पयोधि अपारू
करन धार तुम्ह अवध जहाजू * चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू

हे नाथ ! आप मन में समझकर ऐसा विचार कीजिए कि राम का वियोग को अपार समुद्र है और अवध जहाज है, उसके आप ही कर्णधार हैं और सब प्रियजन उस पर स्त्रियों के झुण्ड के समान चढ़े हैं।

धीरजु धरिअ तो पाइअ पारू * नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू
जौं जियँ धरिअ बिनय प्रभु मोरी * राम लखन सिय मिलहिं बहोरी

आप धीरज धरेंगे, तो पार उतर जायेंगे, नहीं तो-सभी परिवार डूब जायगा। हे नाथ! जो आप मेरी विनती को मन में धारण करेंगे, तो राम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे।

दोहा–प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि ॥१५४॥

प्रिय रानी कौशल्या के मधुर वचन सुनकर राजा ने आंखें खोल कर देखा, मानो तड़फती हुई दीन मछली पर ठण्डा पानी छिड़क दिया हो।

धरि धीरजु उठि बैठि भुआलू * कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू
कहाँ लखन कहँ राम सनेही * कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही

राजा धैर्य धरकर उठ बैठे और बोले–हे सुमन्त ! कहो कृपालु स्नेही-राम कहाँ है? लक्ष्मणजी कहाँ है और प्यारी पुत्र-वधू जानकीजी कहाँ है ?

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती * भइ जुग सरिस सिराति न राती
तापस अन्ध साप सुधि आई * कौसल्यहि सब कथा सुनाई

राजा बेचैन होकर बहुत प्रकार से विलाप करने लगे, वह रात युग के समान होगई, पूरी नहीं होती। राजा को अन्धे तपस्वी के श्राप की याद आई, तब कौशल्या को वह कथा सुनाई–

* अथ क्षेपक–श्रवणकुमार की कथा *

एक समय सुनि प्रिये सयानी * मृगया को मेरे मन आनी
तब मृगया कर साज सजाई * गयउँ वनहि सँग सेन सुहाई

हे चतुर प्रिये ! सुनो, एक समय मेरे मन में शिकार खेलने की इच्छा हुई। तब मैं वन-मृगया का साज सजाकर सुन्दर सेना के साथ वन को गया।

रात समय बेतस वन तीरा * बैठो सरवर तट मति धीरा
ताही समय लिए घट कर में * सरवन आयो जल हित सर में

रात्रि के समय बेंतों के वन के समीप सुन्दर सरोवर के किनारे में बैठा था। उसी समय हाथ में घड़ा लिए श्रवणकुमार पानी लेने को सरोवर पर आया।

तूबाँ जल जबहिं डुबायो * भयो शब्द मेरे मन आयो
ज्ञान्यो मृग तब धनुष सँवारो * लक्ष्य बेधि सर तेहि उर मारो

उसने तूंबे को ज्यों ही जल में डुबोया तो शब्द हुआ। मैंने उसे मन में मृग जान कर धनुष संभाल कर लक्ष्य-वेधी वाण उसके हृदय में मारा।

लाग्यो हिये शब्द हा कीन्हों * यह मानुष तब मैंने चीन्हों
गयो निकट तब अति दुख पायो * सरवन मोसे बचन सुनायो

हृदय में बाण लगते ही उसने हाय शब्द किया, तब मैंने उसे पहिचाना कि वह मनुष्य है। उसके निकट जाने पर उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, तब श्रवण ने मुझसे यह बचन कहे-

सोच करहु मत नृपति हमारा * जो मैं कहउँ करहु यदि बारा
मैं सरवन सेवहुँ पितु माता * नयन विहीन दोउ सुखदाता

हे राजन ! मेरा सोच मत करो, बल्कि जो कहता हूँ, उसे करो। मैं श्रवण हूँ, अपने माता-पिता की सेवा करता हूँ, जो दोनों सुखदायी और नेत्र हीन हैं।

तिन्हहिं तृषा नेअधिक सतायो * लैन हेतु जल कौ यहाँ आयो

उनको प्यास ने अधिक सताया था, सो मैं उनके लिए जल लेने आया था।

दोहा—सो तुमने अज्ञान वश, नृप मम मारेउ बान।
याहि खैंचिए देह सो, निकसन चाहत प्रान ॥ १ ॥

हे राजन् ! आपने जो अनजाने में मेरे-बाण मारा है, इसको मेरी देह से निकाल लीजिए। क्योंकि अब प्राण निकलना ही चाहते हैं।

अब तुम मन शंका मत मानो * मेरी कही सत्य ही जानो
पर इक बात हिये मम लावहु * ममपितु मातु निकट तुम्हजावहु

अब आप अपने मन में सन्देह न करो, मेरी कही-बात सत्य मानिये। परन्तु आप मेरी एक बात अपने हृदय में मानिए कि आप मेरे माता-पिता के पास जाइये।

तिन्ह को हित से नीर पिबाई * पाछें कहिअ मम समुझाई
करहिं न सोच करहु उपदेसा * सत्यसिंधु रघुवंश नरेसा

पहले उनको प्रेम से जल पिलाना, फिर बाद में मेरा हाल सुना देना और उन्हें ऐसा उपदेश देना—जिससे वे मेरा सोच न करें। हे रघुवंश-मणि ! आप सत्य के समुद्र हैं।

अब तुम दीजै बान निकारी * सुनि व्याकुल भए दशरथ भारी
हिय से जबहिं निकासो बाना * ओंकार कहि छोड़यो प्राना

अब आप बाण निकाल लीजिये, यह सुनकर दशरथजी बड़े दुःखी हुए। ज्यों ही

छाती से बाण निकाला, त्यों ही उसने 'ओंकार' कहकर प्राण त्याग दिये।

नृप दसरथ घट लियो उठाई * तेहि के मातु पिता ढिग जाई
प्यावन लगे नीर बिनु बानी * तब बोले दम्पति दुख मानी

(शिवजी बोले) राजा दशरथ ने घड़ा उठा लिया, और उसके माता पिता के पास जाकर बिना बोले पानी पिलाने लगे, तब दुःख मानकर वे दम्पत्ति बोले—

दोहा—पुत्र न बोलत आज तुम, हमसे सुन्दर बैन।
कारन कबनसो कहहु तुम, जासो होइ जिय चैन ॥ २॥

हे पुत्र! आज तुम हमसे सुन्दर वचन नहीं बोलते इसका क्या कारण है सो कहो? जिससे हृदय में चैन हो।

बिनु बोले हम पियहिं न नीरा * सुनि भए दसरथ अधिक अधीरा
समाचार सब दिए सुनाई * परे धरणि दोऊ अकुलाई

हम बिना बोले—पानी नहीं पियेंगे—यह सुनकर दशरथ अत्यन्त व्याकुल हुए। तब (दशरथजी बोले-) मैंने सब समाचार सुना दिये, तो वे दोनों अकुलाकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

पुत्र पुत्र कहि रोवन लागे * सो सन कहन लगे सो अभागे
जहाँ पुत्र तहँ देहु दिखाई * तब मैं तिन्ह कहँ गयउँ लिवाई

वे दोनों 'पुत्र-पुत्र' कह कर रोने लगे और मुझसे बोले—अरे अभागे! जहाँ हमारा पुत्र है—वह स्थान हमें दिखा दे, तब मैं उनको वहाँ ले गया।

पुत्र उठाय गोद महतारी * रोवन लगीं शब्द करि भारी
पुनि दोउन यह बात सुनाई * दीजै नृपति चिता बनवाई

माता-पुत्र को गोद में उठाकर भारी शब्द करके रोने लगी, फिर उन दोनों ने यह बात कही कि—हे राजन्! चिता बनवा दीजिए।

पुनि मैंने रचि चिता बनाई * बैठे पुत्र सहित दोउ भाई
योग अग्नि में निज तनु जारा * मरण समय अस वचन उचारा

यह सुनकर मैंने चिता बना दी, तब वे दोनों पुत्र सहित उस पर जा बैठे और उन्होंने योगाग्नि द्वारा अपने शरीर भस्म कर दिये तथा मरते समय मुझसे यह वचन कहे—

दोहा—जिमि हम पुत्र वियोग में, दशरथ त्यागहिं प्रान।
ऐसे ही तनु तजहु तुम, मानहुँ वचन प्रमान ॥ ३॥

हे दशरथ! जैसे हम पुत्र के वियोग में अपने प्राण त्याग रहे हैं, वैसे ही तुम भी अपना शरीर छोड़ोगे, हमारा यह वचन सत्य मानना।

अस कहि तापस गे सुरलोका * मेरे मन छायो अति सोका
पुनि मैं निजमन कीन्ह विचारा * बिनु समझें ऋषि वचन उचारा

ऐसे कहकर वे तपस्वी स्वर्ग को चले गये, तब मेरे मन में अत्यन्त शोक हुआ। फिर मैंने अपने मन में विचारा कि तपस्वी ने बिना समझे मुझे श्राप दिया है।

पुत्र नहीं कोउ गेह हमारे * किमि त्यागहिं तनु वचन तुम्हारे
सोच विहाय गेह मैं आयौं * अब तक तुमको नहीं सुनायौं

हमारे घर में तो कोई पुत्र नहीं है, फिर आपके वचन से यह शरीर कैसे छूटेगा ? यह सोचकर शोक दूर करके घर को आया, यह वृतांत अब तक मैंने तुम्हें नहीं सुनाया था।

साँच भई बस अब सब बाता * गए वनु सीय राम दोउ भ्राता
प्रानपियारे बनहिं सिधारे * अब तक प्रान न गए हमारे

अब वह सब बातें सत्य हुई। सीता सहित श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वन को गये। प्राण-प्यारे तो वन को गये, किन्तु हमारे प्राण अभी तक नहीं गये।

अबसुख कौन मिलसि जगु माहीं * जेहि ते प्रान न तनु ते जाहीं
राम लखन सिय कानन जाहीं * अब लगि प्रान रहे तनु माहीं

अब जगत में कौन-सा सुख मिलेगा, जिसके कारण प्राण शरीर से नहीं निकलते ? राम-लक्ष्मण और सीता तो वन को गये और प्राण अभी तक शरीर में रह रहे हैं।

दोहा—प्रिय सरबन की कथा ते, अबमोहि रह्यौ न धीर।
पुत्र बिना जे नहिं जिये, धन धन ते नर वीर ॥ ४ ॥

हे प्रिय ! श्रवण की कथा से अब मुझे धैर्य नहीं रहा। जो पुत्र के बिना नहीं जिये, उन प्राणियों को धन्य है ! धन्य है !!

॥ इति क्षेपक ॥

भयउ बिकल बरनत इतिहासा * राम रहित धिग जीवन आसा
सो तनु राखि करब मैं नाहा * जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा

उस इतिहास का वर्णन करते हुए राजा व्याकुल होगये और बोले कि अब बिना राम के जीने की आशा को धिक्कार है। इस शरीर को रखकर क्या करूँगा ? जिसने मेरी प्रतिज्ञा को नहीं निवाहा।

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते * तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते
हा जानकी हा लखन हा रघुवर * हा पितु हितचित चातक जलधर

हा प्राण-प्रिय रघुनाथ ! तुम्हारे बिना देखे जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा रघुबीर ! हा पिता के चित्तरूपी पपीहे को हित करने वाले मेघ !

दोहा—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर विरहँ, राउ गयउ सुरधाम ॥१५५॥

राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, राम-राम और पुनः राम कह कर श्रीरामजी के विरह में देह त्याग कर महाराज दशरथ देव-लोक को चले गये।

जिअन मरन फलु दशरथु पावा * अण्ड अनेक बिकल जसु छावा
जिअत राम बिधु बदनु निहारा * रामु बिरहँ करि मरनु सँभारा

दशरथजी ने अपने जीवन-मरण का फल पा लिया, अनेकों ब्रह्माण्डों में उनका यश छा गया। जीते जी तो-श्रीरामजी के चन्द्रमुख के दर्शन किये और श्रीरामजी के विरह में मर कर मरण सुधार लिया।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी * रूप शीलु बलु तेजु बखानी
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा * परहिं भूमितल बारहिं बारा

सब रानियां शोक से व्याकुल होकर राजा के रूप, शील, बल और तेज का बखान करके रोने लगीं। वे अनेक प्रकार से बिलाप करने और बारम्बार पृथ्वी पर गिरने लगीं।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी * घर घर रुदनु करहिं पुरबासी
अँथयउ आज भानुकुल भानू * धरम अवधि गुन रूप निधानू

दास और दासियां व्याकुल होकर विलाप करने लगे, सब पुरवासी घर-घर में रोने लगे कि आज धर्म के ध्वजा, सूर्यवंश के सूर्य और रूप व गुण के स्थान अस्त हो गये।

गारी सकल कैकेइहि देहीं * नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं
एहि विधि बिलपत रैनि बिहानी * आए सकल महामुनि ग्यानी

सभी उस कैकई को गालियां देते हैं-जिसने समस्त संसार को नेत्र-हीन कर दिया। इस प्रकार विलाप करते रात्रि व्यतीत होगई, प्रातःकाल होते ही महा-ज्ञानी मुनि आये।

दोहा—तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहि कर, निज बिग्यान प्रकास ॥१५६॥

उस समय मुनिवर बशिष्ठजी ने समय के अनुसार बहुत सी कथायें कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सब दुःख दूर किया।

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा * दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू * नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू

बशिष्ठजी ने नाव में तेल भरकर उसमें महाराज दशरथजी के शरीर को रखवा दिया, फिर दूतों को बुलाकर उनसे कहा कि तुम लोग दौड़कर भरतजी के पास जाओ, परन्तु राजा के मरने का समाचार किसी से नहीं कहना।

एतनाहु कहेइ भरत सन जाई * गुरु बोलाइ पठयउ दोउ भाई
सुनि मुनि आयसु धावन धाए * चले बेग वर बाजि लजाए

भरतजी से जाकर इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनों भाइयों को बुलाया है। मुनि की आज्ञा सुनकर दूत दौड़े, उन्होंने वेग से श्रेष्ठ घोड़ों को भी लजा दिया।

अनरथु अवध अरम्भेउ जब तें * कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें
देखहिं राति भयानक सपना * जागि करहिं कटु कोटि कलपना

अयोध्या में जब से अनर्थ प्रारम्भ हुए, तभी से भरतजी को अशकुन होने लगे। वे रात के समय भयङ्कर स्वप्न देखते थे, जागने पर मन में अनेकों दुष्कल्पनायें करते थे।

बिप्र जेवाँइ देहि बहु दाना * सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना
माँगहि हृदयँ महेस मनाई * कुशल मातु पितु परिजन भाई

ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देते और नाना प्रकार की विधि से रुद्राभिषेक करते थे। शिवजी से प्रार्थनाकर हृदयमें माता, पिता, कुटुम्बी और भाइयों की कुशलता माँगते थे।

दोहा—एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु अनुसासन श्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ ॥१५७॥

भरतजी मन में ऐसा सोच ही रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा कानों से सुनते ही दोनों भाई गणेशजी को मनाकर चले।

चले समीर बेग हय हाँके * नाघत सरित सैल बन बाँके
हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई * अस जानिअ जियँ जाउँ उड़ाई

वायु के समान वेग से घोड़ों को हाँकते हुए वे नदी, पहाड़, दुर्गम वनों में लाँघते हुए चले। मन में बड़ा सोच था कुछ अच्छा नहीं लगता था, मनमें ऐसा आता कि उड़कर चले जायें।

एक निमेष बरष सम जाई * एहि बिधि भरत नगर निअराई
असगुन होहिं नगर पैठारा * रटहिं कुभाँती कुखेत करारा

एक पल-एक वर्ष के समान बीतता था, इसी प्रकार चलते हुए भरतजी नगर के समीप आये। नगर में घुसते ही अपशकुन होने लगे—कौए बुरे स्थान में बैठकर बुरी भाँति से शब्द करने लगे।

अस सिआर बोलहिं प्रतिकूला * सुनि सुनि तोइ भरत मन सूला
श्रीहत सत सरिता बन बागा * नगरु बिसेषि भयावनु लागा

गधे व सियार अशुभ-सूचक शब्द बोलने लगे, यह सुनकर भरत के मन में दुःख हुआ। तालाब, नदी, वन व बाग सब शोभाहीन हो गये हैं, अयोध्या बहुत ही डरावनी लगती है।

खग मृग हय गय जाहिं न जोए * राम बियोग कुरोग बिगोए
नगर नारि नर निपट दुखारी * मनहुँ सबन्हि सब सम्पति हारी

श्रीरामजी के वियोगरूपी रोग से सताये हुए, पशु, पक्षी, हाथी, घोड़े देखे नहीं जाते। अयोध्या के सब स्त्री-पुरुष बड़े ही दुःखी हो रहे हैं, मानो सबने अपनी सम्पत्ति हारदी हो।

दोहा—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गँवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुशल पाछि न सकहिं, भय बिषाद मन माहिं ॥१५८॥

अयोध्यावासी मार्ग में मिलते हैं, परन्तु वे कुछ कहते नहीं, चुपचाप प्रणाम करके चले जाते हैं। मन में भय और दुःख के कारण भरतजी किसी से कुशल नहीं पूछते।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी * जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी

आवत सुत सुनि कैकेयनन्दिनि * हरषी रविकुल जलरुह चन्दिनि

बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते, मानो नगर में दशों दिशाओं में आग लगी हो। पुत्र को आते सुनकर सूर्यवंशरूपी कमल की चाँदनी रूपी कैकई प्रसन्न हुई।

सजि आरती मुदित उठि धाई * द्वारेंहि भेंटि भवन लेइ आई
भरत दुखित परिवारु निहारा * मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा

प्रसन्न हो आरती सजाकर उठ दौड़ी और द्वार पर ही मिलकर राज-भवन में ले आई भरतजी ने कुटुम्बियों को ऐसा दुःखी देखा, मानों कमलों के वन को पाला मार गया हो।

कैकई हरषित एहि भाँती * मनहुँ मुदित दव लाइ किराती
सुतहि ससोच देखि मनु मारें * पूँछत नैहर कुशल हमारें

कैकई ऐसी प्रसन्न दिखाई देती थी मानो भीलनी वन में आग लगाकर प्रसन्न हुई हो। पुत्र भरत को सोच के कारण मलिन देखकर रानी पूछने लगी-हमारे नैहर में कुशल तो है ?

सकल कुसल कहि भरत सुनाई * पूछी निज कुल कुसल भलाई
कहु कहँ तात कहाँ सब माता * कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता

भरतजी ने सभी कुशल-क्षेम सुनाई। फिर अपने कुल की कुशल पूछी-कहो, पिताजी कहाँ है ? सब मातायें कहाँ हैं ? सीताजी और प्रिय भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं ?

दोहा—सुनि सुत बचन सनेह मय, कपट नीर भर नैन।
भरत श्रवन मन सूलसम, पापिन बोली बैन ।।१५९।।

पुत्र के प्रेम भरे वचन सुनकर, कपट के आँसू आँखों में भरकर भरतजी के कानों और मन को शूल के समान चुभने वाले वचन पापिनी कैकई बोली—

तात बात मैं सकल सँभारी * भै मन्थरा सहाय बिचारी
कछुक काल बिधि बीच बिगारेउ * भूपति सुरपति पुर पग धारेउ

हे पुत्र ! मैंने सारी बात-बनाली थी, बेचारी मन्थरा भी सहायक हुई। परन्तु बीच में ही विधाता ने कुछ बात बिगाड़ दी, वह यह है कि राजा देवलोक को सिधार गये।

सुनत भरत भए बिबस विषादा * जनु सहमेउ करि केहरि नादा
तात तात हा तात पुकारी * परेउ भूमितल ब्याकुल भारी

भरतजी सुनते ही मारे दुःख के घबड़ा गये मानो किसी सिंह की गर्जना सुनते ही हाथी सहम गया हो। तात-तात हा तात ! पुकार कर, व्याकुल हो भूमि पर गिर पड़े।

चलत न देखन पायउँ तोहीं * तात न रामहि सौंपहु मोहीं
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी * कहु पितु मरन हेतु महतारी

हा पिताजी ! चलते समय भी मैं आपको न देख सका और न आप मुझे श्रीरामजी को ही सौंप गये। फिर वे धैर्य धर सँभलकर उठे और बोले—हे माता ! पिताजी के मरने का कारण तो कहो ?

सुनि सुत बचन कहित कैकेई * मरमु पाँछि जनु माहुर देई
आदिहुँ तै सब आपनि करनी * कुटिल कठोर मुदित मन बरनी

पुत्र के वचन सुनकर कैकई ऐसे कहने लगी, मानो मर्म-स्थल को काटकर उसमें विष भर रही हो। आदि से ही अपनी सब करतूत कुटिल कैकई ने प्रसन्न मन से भरत को सुनायी।

दोहा—भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपन पउ जानि जियँ, थकित रहे धरि मौनु ॥१६०॥

श्रीरामचन्द्रजी का वन में जाना सुनकर भरतजी पिता का मरण भूल गये। हृदय में अपने को ही कारण जानकर वे स्तम्भित होकर चुप हो गये।

बिकल बिलोकत सुतहि समुझावति * मनहुँ जरे पर लोनु लगावति
तात राउ नहिं सोचन जोगू * बढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू

पुत्र को व्याकुल देखकर वह ऐसे समझाने लगी, मानो जले पर नमक लगा रही हो। हे पुत्र! महाराज सोच करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने पुण्य और यश संचय करके उनका पर्याप्त भोग किया था।

जीवत सकल जनम फल पाए * अन्त अमरपति सदन सिधाए
अस अनुमानि सोच परिहरहू * सहित समाज राज पुर करहू

जीते-जी जन्म के सभी फल पाये और अन्त में (मरकर) इन्द्रलोक को गये। ऐसा मन में विचार कर सोच का परित्याग कीजिए और समाज सहित अयोध्या का राज्य कीजिए।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू * पाकें छत जनु लाग अँगारू
धर धीरज भरि लेहिं उसासा * पापिन सबहि भाँति कुल नासा

यह सुनकर राजकुमार बहुत ही सहम गये, मानो पके घाव पर अँगारा लगा हो, फिर धैर्य धरकर लम्बी श्वाँस लेकर कहने लगे-हे पापिनी! तूने सब प्रकार से वंश का नाश कर दिया।

जौं पे कुरुचि रही अति तोही * जनमत काहे न मारेउ मोही
पेड़ काटि तैं पल्लव सीचा * मीन जिअत हित बार उलीचा

जो तेरे हृदय में ऐसी बुरी इच्छा थी, तो तूने मुझे जन्मते ही क्यों न मार डाला? वृक्ष को काटकर तूने पत्तों को सींचा और मछली के जीने के लिए पानी को उलीच डाला।

दोहा—हंस बंसु दशरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ ॥१६१॥

हंस के समान उज्ज्वल सूर्यवंश में तो मैं जन्मा व श्रीराम-लक्ष्मण जैसे भाई मिले। परन्तु हे माता! तुझ जैसी मेरी जन्म-दात्री हुई, (सो क्या करूँ) विधाता से कुछ पेश नहीं चलती।

जबतैं कुमति सुमति जियँ ठयउ * खण्ड खण्ड होइ हृदय न गयऊ
बर माँगत मन भयउ न पीरा * गरि न जीहँ मुँह परेउ न कीरा

अरी कुबुद्धे! जब तूने यह कुविचार ठाना, तभी तेरे हृदय के टुकड़े २ क्यों न होगये?

ऐसे बर माँगते हुए तेरे मन में कुछ भी दु:ख न हुआ, जीभ भी न जली व मुँह में कीड़े भी न पड़े?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही * मरन काल बिधि मति हरलीन्ही
बिधहुँन नारि हृदयँ गतिजानी * सकल कपट अघ अवगुन खानी

राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया? विधाता ने मरते समय उनकी बुद्धि हरली। स्त्रीके हृदय की गति (चाल) ब्रह्माजी भी नहीं जान सकते। स्त्री-छल, पाप और दोषों की खान है।

सरल सुशील धरम रत राऊ * सो किमि जानै तीय सुभाऊ
अस को जीव जन्तु जग माहीं * जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं

महाराज तो सीधे सुशील और धर्मात्मा थे, वे स्त्री के स्वभाव को किस प्रकार नहीं जानते? संसार में ऐसा कौन शरीर धारी है, जिसे श्रीरघुनाथजी 'प्राण-प्रिय' नहीं हैं।

भे अति अहित रामु तेउ तोही * को तू अहसि सत्य कहु मोही
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई * आँखि ओटि उठि बैठहि जाई

ऐसे श्रीरामजी भी तेरे शत्रु हो गये, तू कौन है-मुझसे सत्य कह? तू जो भी है, सो है, परन्तु अब मुंह पर स्याही लगाकर मेरी आँखों की ओट में जाकर बैठ जा।

दोहा–राम बिरोधी हृदयँ तें, प्रकट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहेउँ कछु तोहि ॥१६२॥

श्रीरामजी के विरोधी-हृदय से विधाता ने मुझे प्रगट किया है, इससे मेरे समान पापी कौन है? मैं तुमसे व्यर्थ ही कुछ कह रहा हूँ।

सुनि शत्रुघ्नु मातु कुटिलाई * जरहिं गात रिस कछु न बसाई
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई * बसन बिभूषन बिबिध बनाई

माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजी के अङ्ग-क्रोध के मारे जलने लगे, परन्तु कुछ वश नहीं चलता। उसी समय अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषण से अपने को सजाकर कुबड़ी मन्थरा वहाँ आई।

लखि रिस भरेउ लखनु लघु भाई * बरत अनल घृत आहुति पाई
हुमगि लात तकि कूबरि मारा * परि मुँह भर महि करत पुकारा

उसे देखते ही क्रोध में भरे हुए शत्रुघ्न ने जलती हुई आग में घी की आहुति पाकर, एक लात तमक कर उसके कूबड़ पर मारी, तब वह मुंह के बल भूमि पर गिरकर चिल्लाने लगी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू * दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू
आइ दइअ मैं काह नसावा * करत नीक भल अनइस पावा

उसका कूबड़ टूट गया, माथा फूट गया, दांत टूट जाने से मुँह से खून बहने लगा। वह बोली-हाय विधाता मैंने क्या बिगाड़ा था-जो भलाई करते हुए बुरा फल प्राप्त हुआ।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी * लगे घसीटन धरि धरि झोंटी
भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई * कोशल्या पहिं गे दोउ भाई

यह सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख-शिख से खोटी समझकर उसका झोंटा पकड़कर घसीटने लगे, तब दयासागर भरतजी ने उसे छुड़ा दिया। दोनों भाई कौशल्या माता के पास गये।

दोहा—मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलिबन, मानहुँ हनी तुषार ॥१६३॥

कौशिल्याजी के वस्त्र मलीन हैं, चेहरा उतरा हुआ है, बहुत व्याकुल है, दुःख के भार से शरीर दुबला होगया है, मानो सोने की सुन्दर कल्प-लता को वन में पाला मार गया हो।

भरतहि देखि मातु उठि धाई * मुरछित अवनि परी झइँ आई
देखत भरत बिकल भइ भारी * परे चरन तनु दसा बिसारी

भरतजी को आते देख कौशल्याजी उठ दौड़ी, परन्तु बीच में ही चक्कर आजाने से अचेत हो भूमि पर गिर पड़ीं। यह देख भरतजी घबड़ाये, देह की सुधि भुलाकर चरणों में गिर पड़े।

मातु तात कहँ देहु दिखाई * कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई
कैकइ कत जनमी जग माँझा * जौं जनमति भइ काहे न बाँझा

वे बोले-हे माता! पिताजी कहाँ हैं? मुझे दिखाओ। सीताजी तथा दोनों भाई श्रीराम लक्ष्मण कहाँ हैं? कैकई संसार में क्यों जन्मी और जन्मी भी तो निपुत्री ही क्यों न हुई?

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही * अपजस भाजन प्रियजन द्रोही
को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी * गति असि तोरि मातु जेहि लागी

जिसने कुल कलंकी,अपयश के पात्र,प्रियजन-द्रोही 'मुझ' जैसे पुत्र को जन्म दिया। तीनों लोकों में मेरे समान अभागा कौन है? जिसके कारण, हे माता! तुम्हारी ऐसी दशा हुई।

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू * मैं केवल सब अनरथ हेतू
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी * दुसह दाह दुख दूषन भागी

पिता स्वर्ग को एवं श्रीरामजी वनको गये, इस अनर्थों का कारण मैं ही हूँ, मुझे धिक्कार है। मैं बाँस के वन को जलाने के लिए अग्नि हुआ, मैं कठिन दाह, दुःख और दोष का भागी हूँ।

दोहा—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचित बारि ॥१६४॥

भरतजी के मधुर वचन सुनकर कौशिल्या फिर सम्हल कर उठीं और भरतजी को उठाकर हृदय से लगा लिया, आँखों से जल बहाने लगीं।

सरल सुभायँ मातु हियँ लाए * अति हित मनहुँ राम फिरि आए
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई * सोकु सनेह न हृदयँ समाई

माता ने सरल स्वभाव से भरतजी को बड़े स्नेह से छाती से लगा लिया, मानो श्रीरामजी वन से लौट आये हों। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी से मिली। उनका दुःख और स्नेह हृदय में नहीं समाता।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई * राम मातु अस काहे न होई

माताँ भरतु गोद बैठारे * आँसु पौंछि मृदु बचन उचारे

कौशल्याजी का स्वभाव देख सब लोग बोले कि श्रीरामजी की माता ऐसी क्यों न हों ? माता ने भरतजी को गोद में बैठा लिया और आँसू पोंछकर मधुर बचन बोलीं—

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू * कुसमय समुझि सोक परिहरहू
जनि मानहु हियँ हानि गलानी * काल करमगति अघटित जानी

हे पुत्र ! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, अब धीरज धारण करो । कुशमय जान शोक त्याग दो । मन में काल और कर्म की गति को अमिट जानकर हानि और ग्लानि मत मानो ।

काहुहि दोषु देहु जनि ताता * भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता
जो एतहुँ दुख मोहि जिआवा * अजहुँ को जानइ का तेहि भावा

हे तात ! किसी को दोष मत दो, मुझे तो विधाता सब भाँति से उल्टा हो गया, जो इतने दुःख पर मुझे जीवित रख रहा है । अब भी कौन जान सकता है कि उसे क्या भा रहा है ?

दोहा—पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बल्कल चीर ॥१६५॥

हे तात ! पिता की आज्ञा से श्रीरघुनाथजी ने वस्त्राभूषण उतार डाले और मन में कुछ भी विस्मय एवं हर्ष न करके बल्कल वस्त्र पहिन लिये ।

मुख प्रसन्न मन रङ्ग न रोषू * सब कर सब बिधि करि परितोषू
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी * रहइ न राम चरन अनुरागी

उनका मुख प्रसन्न था, मन में राग-द्वेष कुछ भी न था । वे सबको सब प्रकार से संतुष्ट करके वन को चले । सुनकर सीताजी भी सङ्ग लग गईं, श्रीरामजी के चरणों में अनुरक्त वे किसी प्रकार यहाँ न रहीं ।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा * रहहिं न जतन किए रघुनाथा
तब रघुपति सबही सिरु नाई * चले सङ्ग सिय अरु लघु भाई

सुनते ही लक्ष्मणजी भी उठकर साथ चल दिये, वे रामजी के यत्न करने पर भी न रहे तब श्रीरघुनाथजी सबको मस्तक नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले ।

राम लखन सिय बनहि सिधाए * गइउँ न सङ्ग न प्रान पठाए
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे * तउ न तजा तनु जीव अभागे

राम, लक्ष्मण, सीता वन को चले गये, पर मैं न तो उनके साथ गई और न प्राण ही साथ भेजे । यह सब इन आँखों के आगे हुआ, तो भी इस अभागे शरीर को प्राण नहीं त्यागते ।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी * राम सरिस सुत मैं महतारी
जिअन मरन भल भूपति जाना * मोर हृदय सत कुलिस समाना

अपना स्नेह देख मुझे लाज नहीं आती कि राम सरीखे पुत्र की मैं माता हूँ । जीना और मरना तो राजा ने ही भलीभाँति जाना, मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रों के समान कठोर है ।

दोहा—कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु ।
व्याकुल विलपत राजगृह, मानहुँ सोक निवासु ॥१६६॥

कौशल्याजी के वचन सुनकर भरत सहित रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा राज-भवन मानो शोक का निवास-स्थान बन गया ।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई * कौशल्याँ लिए हृदयँ लगाई
भाँति अनेक भरतु समुझाए * कहि बिबेकमय बचन सुनाए

भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई व्याकुल होकर बिलाप करने लगे, तो कौशल्याजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया । अनेक भाँति से भरतजी को समझाया और ज्ञान से भरे बचन कहे ।

भरतहुँ मातु सकल समुझाई * कहि पुरान श्रुति कथा सोहाई
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी * बोले भरत जोरि जुग पानी

भरतजी ने भी पुराण और वेदों की सुन्दर कथाएँ कहकर सब माताओं को समझाया फिर छल रहित, पवित्र, सीधी और मधुर बाणी से भरतजी दोनों हाथ जोड़कर बोले—

जे अघ मातु पिता सुत मारें * गाइ गोठ महिसुर पुर जारें
जे अघ तिय बालक बधु कीन्हें * मीत महीपति माहुर दीन्हें

जो पाप माता-पिता और पुत्र को मारने,गौशाला व ब्राह्मणों के नगर जलाने से होता है, जो पाप स्त्री और बालक को बध करने से तथा मित्र व राजा को विष देने से होता है ।

जे पातक उपपातक अहहीं * करम बचन मन भव कवि कहहीं
जे पातक मोहि होहुँ विधाता * जौं यहु होइ मोर मत माता

जितने भी पातक व उपातक—कर्म, वचन और मन से उपजे हुए संसार के कवि लोग कहते हैं वे पातक—जो इस काम में मेरा मत हो तो हे माता ! विधाता मुझे लगादे ।

दोहा—जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर ।
तेहि कै गति मोहि देइ विधि, जौं जननी मत मोर ॥१६७॥

जो श्रीहरि के चरणों को छोड़कर, भयङ्कर भूतगणों को भजते हैं, हे माता ! जो इसमें मेरी सम्मति हो तो, उनकी गति विधाता मुझे दें ।

बेचहिं वेदु धरम दुहि लेहीं * सुनहि पराय पाप कहि देहीं
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी * वेद बिदूसक बिश्व विरोधी

जो लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं, चुगल-खोर हैं और दूसरे के पाप को कह देते हैं, तथा जो-छली, खोटे, कलह-प्रिय, क्रोधी, वेदों के निंदक और जगत के बिरोधी हैं ।

लोभी लम्पट लोलुपचारा * जे ताकहिं परधनु परदारा
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा * जौं जननी यहु सम्मतु मोरा

जो लोभी, विषयी, लालची, पराया धन व पराई-स्त्री को ताकने वाले हैं, हे माता ! जो

इस काम में मेरी सलाह हो तो मैं उनकी भयानक गति पाऊँ।

जे नहिं साधु सङ्ग अनुरागे * परमारथ पथ बिमुख अभागे
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई * जिन्हहिं न हरिहर सुजसु सोहाई

जो सत्सङ्ग में अनुरक्त नहीं हैं, जो अभागे परमार्थ-पथ से विमुख हैं, जो मनुष्य देह पाकर हरि-भजन नहीं करते तथा जिन्हें श्रीहरि-हर का सुयश नहीं सुहाता।

तजि श्रुतिपन्थु बाम पथ चलहीं * बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं
तिन्ह कै गति मोहि शङ्कर देऊ * जौं जननी यहु जानौं भेऊ

जो वेद-मार्ग को छोड़कर बाम-मार्ग पर चलते हैं, ठगों का-सा वेष बनाकर संसार को छलते हैं। शङ्करजी उनकी गति मुझे दें। हे माता! जो मैं यह भेद जानता होऊँ।

दोहा—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभायँ।
कहत रामप्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन कायँ ॥१६८॥

माता भरत के सच्चे और स्वभाव से ही सीधे वचनों को सुनकर कहने लगीं—हे तात! तुम तो वचन, मन और शरीर से सदैव श्रीरामजी के प्रिय हो।

राम प्रानहुँ तें प्रान तुम्हारे * तुम्ह रघुपतिहि प्रानहुँ तें प्यारे
बिधु बिष चवै स्त्रवै हिमु आगी * होइ बारिचर बारि बिरागी

श्रीराम तुम्हारे प्राणों के प्राण हैं, और तुम श्रीराम को प्राणों से प्रिय हो। चन्द्रमा चाहे विष टपकाने लगे, बर्फ़ से चाहे आग बरसने लगे और जलचर चाहे जल छोड़ दें।

भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू * तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं * सो सपनेहुँ सुखु सुगति न लहहीं

ज्ञान होने पर भी चाहे मोह न मिटे, परन्तु तुम श्रीरामजीके विरुद्ध कभी नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारा मत है, ऐसा जो कोई जगत में कहते हैं, वे स्वप्न में भी सुख व उत्तम गति नहीं पावेंगे।

अस कहि मातु भरत हियँ लाए * थन पय स्त्रवहिं नयन जल छाए
करत बिलाप बहुत यहि भाँती * बैठेहिं बीति गई सब राती

ऐसा कहकर कौशल्या माताने भरतजी को हृदय से लगा लिया, उनके स्तनों से दूध टपकने लगा, नेत्रों में जल भर आया। इस तरह बहुत विलाप करते हुए बैठे सब रात बीत गई।

बामदेव बसिष्ठ तब आए * सचिव महाजन सकल बोलाए
मुनि बहुत भाँति भरत उपदेसे * कहि परमारथ बचन सुदेसे

तब वामदेवजी व वशिष्ठजी, उन्होंने सब मंत्रियों और महाजनों को बुलाया। मुनियों ने भरतजी को समयानुसार परमार्थ के सुन्दर वचन कहकर बहुत प्रकार से उपदेश दिया।

दोहा—तात हृदयँ धीरजु धरहु, करहु सो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि, करन कहेउ सबु काजु ॥१६९॥

हे पुत्र ! मन में धीरज धरो और आज जो अवसर है—वह कार्य करो । गुरुजी के वचन सुनकर भरतजी उठे और उन्होंने तैयारी करने की आज्ञा दी ।

नृप तनु वेद विदित अन्हवावा * परम बिचित्र बिमान बनावा
गहि पद भरत मात सब राखी * रहीं रानु दरसनु अभिलाषी

राजा के शरीर को वेदों में कही हुई रीति से स्नान कराया और बहुत ही अद्भुत विमान बनाया गया । भरतजी ने सब माताओं के पाँव पकड़ कर उन्हें (सती होने से) रोका, तब वे श्रीरामजी के दर्शनों की इच्छा से रह गईं ।

चन्दन अगर भार बहु आए * अमित अनेक सुगन्ध सुहाए
सरजु तीर रचि चिता बनाई * जनु सुरपुर सोपान सुहाई

चन्दन और अगर के बहुत से बोझ आये तथा अनेकों प्रकार के सुन्दर, सुगन्धित पदार्थ भी मँगाये । सरयू के किनारे रचकर ऐसी चिता बनाई, मानो देवलोक की सीढ़ियाँ ही हों ।

एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही * बिधिवत न्हाइ तिलाँजुलि दीन्ही
सोधि सुमृति सब वेद पुराना * कीन्ह भरत दसगात बिधाना

इस प्रकार भरतजी ने सब दाह-क्रिया की, फिर विधि पूर्वक स्नान करके तिलांजलि दी । फिर सब वेद-पुराण और स्मृतियों को शोधकर भरतजी ने दश-गात्र कर्मविधान से किया ।

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा * तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा
भए बिशुद्ध दिए सब दाना * धेनु बाजि गज वाहन नाना

जहाँ जैसी आज्ञा मुनिवर ने दी, वहाँ वैसा ही हजारों भाँति से सब कर्म किया और शुद्ध होने पर यह सब प्रकार के दान दिए गाय, घोड़े, हाथी और अनेकों सवारियाँ आदि ।

दोहा—सिंहासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम ।
दिए भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥१७०॥

सिंहासन,गहने, वस्त्र,अन्न,धन,घर भरत ने विप्रों को दान दिये, ब्राह्मण पाकर संतुष्ट हुए ।

पितुहितु भरत कीन्ह जस करनी * सो मुख लाख जाइ नहीं बरनी
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए * सचिव महाजन सकल बोलाए

पिता के निमित्त भरतजी ने जैसी करनी की उसका लाख मुखों से भी वर्णन नहीं हो सकता । फिर शुभ दिन शोधकर मुनिवर वशिष्ठजी ने मन्त्री और सब महाजनों को बुलाया ।

बैठे राजसभाँ सब जाई * पठए बोलि भरत दोउ भाई
भरत बसिष्ठ निकट बैठारे * नीति धरममय बचन उचारे

वे सब राज-सभा में जाकर बैठे, तब मुनि ने भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयों को भी बुलवा लिया । भरतजी को वशिष्ठजी ने पास बैठाया और नीति तथा धर्म सम्बन्धी वचन कहे—

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी * कैकइ कुटिल कीन्हि जस करनी
भूप धरमब्रत सत्य सराहा * जेहिं तनु परिहरि प्रेम निबाहा

मुनिवर ने प्रथम तो वह सब कथा सुनाई, जिस प्रकार कंकई ने खोटी करनी की थी। फिर महाराज के धर्म, सत्य और ब्रत की बढ़ाई की, जिन्होंने देह त्यागकर प्रेम को निभाया।

कहत राम गुन सील सुभाऊ * सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी * सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी

श्रीरामजी के गुण और स्वभाव का वर्णन करते २ मुनिराज के नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित होगया। फिर लक्ष्मणजी एवं सीताजी की प्रीति का वर्णन करते हुए ज्ञानी-मुनि शोक व स्नेह में मग्न हो गये।

दोहा–सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु, जस अपजस बिधि हाथ ॥१७१॥

मुनिनाथ ने विलख कर कहा–हे भरत! सुनो, भावी (होनहार) प्रबल है। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश–ये सब विधाता के हाथ में हैं।

अस बिचारि केहि देइअ दोषू * ब्यर्थ काहि पर कीजिअ रोषू
तात बिचारु करहु मन माहीं * सोचु जोगु दसरथु नृप नाहीं

ऐसा विचार कर किसको दोष दिया जाय और किस पर व्यर्थ क्रोध किया जाय? हे तात! मन में विचार करो, महाराज दशरथजी सोच करने योग्य नहीं हैं।

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना * तजि निज धरमु बिषय लयलीना
सोचिअ नृप जो नीति न जाना * जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना

सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिए, जो वेद नहीं पढ़ा हो और अपना धर्म छोड़कर विषयों में फँसा हो। उस राजा का सोच करना चाहिये, जो नीति नहीं जानता और जिसे प्रजा प्राणप्रिय न हो।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू * जो न अतिथि सिव भगति सुजानू
सोचिअ सूद्र बिप्र अपमानी * मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी

उस वैश्य का सोच करना चाहिए, जो धनवान होकर भी कंजूस हो और अतिथि-सेवा व शिव-भक्ति करने में चतुर न हो, वह शूद्र सोच करने योग्य है, जो ब्राह्मणों का आदर न करता हो, बहुत बोलता हो, जिसे मान बढ़ाई प्रिय हो और जो ज्ञान का घमण्डी हो।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी * कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई * जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई

फिर वह स्त्री सोच करने योग्य है, जो अपने पति को छलने वाली, खोटी कलह-प्रिय और स्वेच्छाचारिणी हो उस ब्रह्मचारी का सोच करना चाहिए, जिसने अपने ब्रत को छोड़ दिया हो और गुरु की आज्ञानुसार न चलता हो।

दोहा–सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपञ्च रत, बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥

उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए, जो मोहवश धर्म-मार्ग को त्याग देता है। उस सन्यासी

का सोच करना चाहिए, जो सांसारिक झगड़ों में फंसकर ज्ञान-वैराग्य से हीन हो जाता है।

वैखानस सोइ सोचन जोगू * तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू
सोचिअ पिसनु अकारन क्रोधी * जननि जनक गुरु बन्धु बिरोधी

वही वानप्रस्थ सोच करने योग्य है, जिसे तप छोड़कर भोग अच्छा लगे। सोच करने योग्य वह भी होता है—जो चुगलखोर, बिना कारण ही क्रोधी, माता-पिता, गुरु और अपने बन्धुओं का विरोधी हो।

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी * निज तनु पोषक निरदय भारी
सोचनीय सबहीं बिधि सोई * जौं न छाँड़ि छलु हरिजनु होई

वह सब भाँति से सोचनीय है—जो पराया अनिष्ट करता हो, अपने ही शरीर का पोषक व निर्दयी हो। वही सब भाँति से सोच करने योग्य है, जो छल छोड़कर हरि-भक्त नहीं हो।

सोचनीय नहिं कौसलराऊ * भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ
भयउ न अहइ न अब होनिहारा * भूप भरत जस पिता तुम्हारा
बिधि हरि हरु सुरपति दिसनाथा * बरनहिं सब दशरथ गुनगाथा

कौशलपति महाराज सोच करने योग्य नहीं हैं, जिनका प्रताप चौदहों लोकों में प्रसिद्ध है। हे भरत! तुम्हारे पिता के समान राजा न कोई हुआ है, न अब है न आगे होने वाला है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और दिग्पाल सब दशरथजी के गुणों की कथा कहते हैं।

दोहा—कहहु तात केहि भाँति कोउ, करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु ॥१७३॥

हे तात! कहो किस प्रकार कोई उनकी बड़ाई कर सकता है—जिनके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी, तुम और शत्रुघ्न सरीखे पुत्र हैं?

सब प्रकार भूपति बड़भागी * बादि बिषादु करिअ तेहिं लागी
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू * सिर धरि राय रजायसु करहू

महाराज सब प्रकार से बड़भागी थे, उनके लिए सोच करना व्यर्थ है। यह सुन और समझकर सोच त्याग करदो और राजा की आज्ञा शिरोधार्य कर तदनुसार करो।

रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा * पिता बचन फुर चाहिअ कीन्हा
तजे रामु जेहि बचनहि लागी * तनु परिहरेउ राम बिरहागी

महाराज ने राजगद्दी तुमको दी है, इससे पिता का वचन तुम्हें सत्य करना चाहिये। जिनके हेतु उन्होंने श्रीरामजी को त्याग दिया और उनकी विरहाग्नि से अपना देह भस्म कर दिया।

नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना * करहु तात पितु बचन प्रमाना
करहु सीस धरि भूप रजाई * हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई

राजा को अपने प्रिय वचन प्रिय थे, प्राण नहीं। अतः हे तात! पिता के वचनों को प्रमाणित दो। [illegible] ई है

परसुराम पितु अग्या राखी * मारी मातु लोक सब साखी
तनय जजातिहि यौवन दयऊ * पितु अग्या अघ अजसु न भयऊ

परशुरामजी ने पिता की आज्ञा का पालन किया (अर्थात्-माता को मार डाला) इसके सब लोग साक्षी हैं। ययाति के पुत्र ने पिता को अपना यौवन दे दिया, पिता की आज्ञा के कारण उन्हें पाप व अपयश नहीं हुआ।

दोहा—अनुचित उचित बिचारि तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ॥१७४॥

उचित व अनुचित का विचार त्याग कर, जो पिता की आज्ञा का पालन करते हैं, वे सुख और यश-सुयश के भागी होकर स्वर्ग-लोक में वास करते हैं।

अवसि नरेस बचन फुर करहू * पालहु प्रजा सोकु परिहरहू
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू * तुम्ह कहुँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू

राजा के वचन को अवश्य सत्य करो, प्रजा का पालन करो, शोक का परित्याग करो। राजा को देवलोक में सन्तोष होगा और तुमको सुयश या पुण्य मिलेगा, दोष नहीं लगेगा।

बेद बिदित सम्मत सबही का * जेहि पितु देइ सो पावइ टीका
करहु राजु परिहरहु गलानी * मानहु मोर बचन हित जानी

यह वेद के अनुसार है और इसमें सबकी सम्पति भी है कि जिसे पिता दे, वह राजतिलक प्राप्त करता है। अतः तुम राज्य करो, ग्लानि त्याग दो और हित जानकर मेरे वचन मानो।

सुनि सुख लहब राम बैदेहीं * अनुचित कहब न पण्डित केहीं
कौसल्यादि सकल महतारी * तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी

श्रीरामजी और सीताजी भी इस बात को सुनकर सुख पावेंगे, कोई भी पण्डित इसको अनुचित न कहेगा। कौशिल्यादि सब मातायें भी प्रजा के सुख से सुखी होगीं।

प्रेम तुम्हार राम करि जानहिं * सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानहिं
सौंपेहु राजु राम के आएँ * सेवा करेहु सनेहँ सोहाएँ

जो तुम्हारा और श्रीरामजी का स्नेह जानता है, वह सब प्रकार से तुमसे भला मानेगा। श्रीरामजी के आने पर उन्हें राज्य सौंप देना और आदर प्रेम से उनकी सेवा करना।

दोहा—कीजिअ गुरु आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस, तस तब करब बहोरि ॥१७५॥

मन्त्री हाथ जोड़कर कहने लगे—गुरुजी की आज्ञा का अवश्य पालन करिये। श्रीरघुनाथजी के लौट आने पर जैसा उचित हो, तब वैसा ही करना।

कौसल्या धरि धीरजु कहई * पूत पथ्य गुरु आयसु अहई
सो आदरिअ करिअ हित मानी * तजिअ बिषादु कालगति जानी

कौशिल्याजी धैर्य धरकर बोलीं—हे पुत्र! गुरुजी की आज्ञा हितकारी है, उसका सम्मान

करो और हित मानकर वैसा ही करो। काल की गति जानकर दुःख को दूर कर दो।

वन रघुपति सुरपुर नरनाहू * तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू
परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा * तुम्हही सुत सब कहँ अवलम्बा

हे पुत्र! श्रीराम वन में हैं, राजा स्वर्ग में हैं और तुम इस भाँति कायर हो रहे हो। हे पुत्र! कुटुम्बी, मन्त्री और सब माताओं के तुम ही हितैषी हो।

लखि विधि बाम कालु कठिनाई * धीरजु धरहु मातु बलि जाई
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू * प्रजा पालि परिजन दुख हरहू

विधाता को उलटा और काल की कठिनता को समझकर धीरज धरो, माता तुम्हारी बलैया लेती है। गुरु की आज्ञा मान कर उसी के अनुसार प्रजा का पालन करना नगर-वासियों के दुःख को दूर करो।

गुरु के बचन सचिव अभिनन्दनु * सुने भरत हिय हित जनु चन्दनु
सुनि बहोरि मातु मृदु बानी * सील सनेह सरल रस सानी

भरतजीने गुरुके वचन और मंत्रियों के अनुमोदन को सुना। जो हृदय के लिए चन्दन के तुल्य शीतल हैं। फिर माता की कोमल वाणी सुनी, जो शील,स्नेह तथा सरलता के रस से भरी हुई है।

छन्द–सानी सरल रस मातु बानी सुन भरत व्याकुल भए।
लोचन सरोरुह श्रवत सींचत बिरहँ उर अंकुल नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की॥

माता की सरलता के रस से भरी हुई वाणी सुनकर भरतजी विकल हो गये। उनके कमल नेत्र से बहता जल मानो हृदय के विरहरूपी नये पौधों को सींचने लगा। भरतजी की ऐसी दशा देखकर उस समय सबको अपनी देह की सुध-बुध न रही। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग स्वाभाविक स्नेह की सीमा को सादर सराहने लगे।

सो०–भरत कमल कर जोरि, धीर धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिअँ जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि॥१७६॥

धैर्य की धुरी को धारण करने वाले भरतजी धीरज धारण और कमल-स्वरूप हाथों को जोड़कर मानो अमृत से भरे हुए वचनों से सबको उचित उत्तर देने लगे।

* मास पारायण–अठारहवाँ विश्राम *

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका * प्रजा सचिव सम्मत सबही का।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा * अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा

गुरुजी ने मुझे सुन्दर उपदेश दिया, जो प्रजा, मंत्री आदि सब ही से सम्मत है। फिर माता जी ने भी उचित आज्ञा दी है, उसे सिर पर अवश्य धारण करके मैं वैसा ही करना चाहता हूँ।

गुरु पितु मातु स्बामि हित बानी * सुनिमन मुदित करिअ फलजानी
उचित किअनुचित किएँ बिचारू * धरमु जाइ सिर पातक भारू

गुरु,पिता,माता,स्त्री,मित्र की वाणी सुनकर उसे अच्छी तरह जानकर प्रसन्न मन से करना चाहिए। उचित व अनुचित विचार करने से धर्म जाता और सिर पर पापों का बोझ होता है।

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई * जो आचरन मोर भल होई
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें * तदपि होत परितोषु न जीकें

आप तो सब मुझे वही सरल सीख दे रहे हैं, जिनके आचरण करने से मेरा भला हो। यद्यपि मैं भली प्रकार समझता हूं, परन्तु मेरे जी में सन्तोष नहीं होता।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुन लेहू * मोहि अनुहरत सिखावनु देहू
उतरु देउँ छमब अपराधू * दुखित दोष गुन गनहिं न साधू

अब आप लोग मेरी प्रार्थना सुनिए, फिर मुझे उचित शिक्षा दीजिए। मैं उत्तर देता हूं इस अपराध को क्षमा करें, क्योंकि साधु-पुरुष दुखियों के दोष और गुणों को नहीं गिनते।

दोहा–पितु सुरपुर सिय रामबन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

पिताजी स्वर्ग में हैं श्रीराम-सीताजी वन में हैं और आप मुझे राज करने के लिए कह रहे हैं। क्या इसी में आप मेरा कल्याण समझते हैं, अथवा बड़ा काम ?

हित हमार सियपति सेवकाई * सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई
मैं अनुमानि दीख मन माहीं * आन उपायँ मोर हित नाहीं

मेरा भला तो सीतापति श्रीरामजी की सेवा में है, उसे माता की कुटिलता ने छीन लिया। मैंने अपने मन में भली प्रकार समझ लिया है कि दूसरे अन्य उपाय से मेरा भला नहीं है।

सोक समाजु राजु केहि लेखें * लखन राम सिय बिनु पद देखें
बादि बसन बिनु भूषन भारू * बादि बिरत बिनु ब्रह्म बिचारू

लक्ष्मणजी और श्रीरामजी तथा सीताजी के चरणों के देखे बिना शोक-समाज रूप यह राज्य किस गिनती में है ? जैसे वस्त्रों के बिना गहनों का बोझ वृथा है, ब्रह्म-ज्ञान के बिना वैराग्य वृथा है।

सरुज सरीर बादि बहु भोगा * बिनु हरि भगति वृथा जगजोगा
वृथा जीव बिनु देइ सुहाई * बादि मोर सब बिन रघुराई

रोगी शरीर के लिए बहुत से भोग व्यर्थ हैं श्रीहरि-भक्त के बिना जप और योग वृथा हैं, जीवन के बिना सुन्दर देह वृथा है, वैसे ही श्रीरामजी के बिना तो मेरा सब व्यर्थ है।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू * एकहि आँक मोर हित ऐहू
मोहि नृप करि भलआपन चहहू * सोउ सनेह जड़ता बस कहहू

आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं श्रीरामजी के पास जाऊँ। इस एक ही बात में मेरा कल्याण

है। मुझे राजा बनाकर अपना भला चाहते हैं, सो आप स्नेह और अज्ञान के वश कह रहे हैं।

दोहा—कैकई सुत कुटिल मति, राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोर बस, मोहि से अधमकें राज ॥१७८॥

कैकई के पुत्र, कुटिल बुद्धि, श्रीराम बिमुख और लज्जाहीन मुझ जैसे अधम के राज्य में आप सुख की इच्छा मोह वश ही करते हैं।

कहउँ साँचु सब सुनि पति आहू * चाहिअ धरमसील नर नाहू
मोहि राजु हठि देहहु जबहीं * रसा रसातल जाइहि तबहीं

मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर उसका विश्वास करें कि राजा धर्मात्मा ही होना चाहिए। मुझे हठपूर्वक ज्यों ही राज्य देंगे, त्यों ही पृथ्वी रसातल को चली जायगी।

मोहि समान को पाप निवासू * जेहि जगि राम सीय बनवासू
रायँ राम कहुँ काननु दीन्हा * बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा

मेरे समान पापात्मा कौन-सा है जिसके कारण श्रीराम, सीता वनवासी हुए? राजा ने श्रीरामजी को बनवास दिया और उनके बिछुड़ते ही स्वर्ग को सिधार गये।

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू * बैठ बात सब सुनउँ सचेतू
बिनु रघुबर बिलोकि अबासू * रहे प्रान सहि जग उपहासू

और मैं सठ जो सब अनर्थों का कारण हूँ, सावधान बैठा सब बातें सुन रहा हूँ। श्री रघुनाथजी के बिना घर को देखकर भी यह प्राण संसार की हँसी सहते हुए ठहरे हुए हैं।

राम पुनीत बिषय रस रूखे * लोलुप भूमि भोग के भूखे
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई * निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई

यह श्रीरामजी के विषय-रस से उदासीन हैं, यह लोभी भूमि और भोग के भूखे हैं। मैं अपने हृदय की कठोरता कहाँ तक कहूँ जिसने वज्र की कठोरता का भी निरादर कर बड़ाई पाई है।

दोहा—कारन तें कारजु कठिन, होइ दोषु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१७९॥

कारण से कार्य कठोर होता है, इसमें मेरा दोष नहीं है। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा—अधिक भयंकर और कठोर है।

कैकई भवन तनु अनुरागे * पाँवर प्रान अघाइ अभागे
जौं प्रिय बिरहँ प्रानप्रिय लागे * देखत सुनब बहुत अब आगे

कैकई से उत्पन्न शरीर है अनुराग करने वाले यह नीच प्राण पूर्ण अभागे हैं। जो प्रिय का वियोग भी प्राणों को प्यारा लगा तो यह आगे अभी बहुत कुछ देखेंगे और सुनेंगे।

लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा * पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू * दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू

श्रीराम-लक्ष्मण और सीताजी को वन दिया, पति को देवलोक भेज कर उनका हित किया और स्वयं ने वैधव्य एवं अपयश लिया तथा प्रजा को शोक व दुःख दिया।

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू * कीन्ह कैकई सब कर काजू
एहिं तें मोर काह अब नीका * तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका

मुझे सुख, सुन्दर यश और उत्तम राज्य दिया। कैकई ने सबका कार्य कर दिया। इससे बढ़कर मेरा भला अब और क्या होगा ? उस पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देने की कह रहे हैं।

कैकई जठर जनमि जग माहीं * यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं
मोरि बात सब बिधिहि बनाई * प्रजा पाँच कत करहु सहाई

कैकई के गर्भ से जन्म लेकर संसार में यह मेरे लिए कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बात तो ब्रह्मा ने ही बनादी है, फिर उसमें प्रजा और पंच (आप) क्यों कर सहायता करते हैं।

दोहा—ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥१८०॥

जो बुरे ग्रहों वश, बात रोगी और बिच्छू के डंक का मारा हो, और फिर उसे मदिरा पिलावी जाय, तो कहो—कैसा उपचार होगा ?

कैकई सुअन जोगु जग जोई * चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई
दशरथ तनय रामु लघु भाई * दीन्ह मोहि बिधि बादि बड़ाई

संसार में कैकई के पुत्र के योग्य जो था, वही चतुर ब्रह्मा ने 'मुझे' दिया। परन्तु दशरथजी का पुत्र व 'श्रीराम का छोटा भाई' होने की बड़ाई मुझे वृथा ही दी।

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका * राज रजायसु सब कहँ नीका
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही * कहहु सुखेन जथा रुचि जेही

आप सब राजतिलक कराने को कहते हैं, राजा की आज्ञा सबको भली है। मैं किस प्रकार से किस-किस को उत्तर दूं ? जैसी जिसकी रुचि हो, वह सुख पूर्वक कहे।

मोहि कुमातु समेत बिहाई * कहहु कहिहि को कीन्ह भलाई
मोहि बिनु को सचराचर माहीं * जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं

मुझे कुमाता समेत छोड़ कर कहो कौन कहेगा कि यह भला किया गया ? चर और अचर जीवों में मेरे सिवा ऐसा कौन है जिसे श्रीसीता-रामजी प्राणप्यारे नहीं हैं।

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू * अदिनु मोर नहिं दूषन काहू
संसय सील प्रेम बस अहहू * सबुइ उचित सब जो कछु कहहू

जो बड़ी हानि है, उसी में सबको बड़ा लाभ जान पड़ता है। यह मेरा कुभाग्य है, इसमें किसी का दोष नहीं है। आप लोग संसय, शील और स्नेह के वश में हैं, जो कुछ भी कहें सो सब उचित है।

दोहा—राम मातु सुठि सरल चित, मो पर प्रेम बिसेषि।

कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि ॥१८१॥

श्रीरामजी की माता बड़ी सरल हृदय हैं, इनकी मुझ पर विशेष प्रीति है, अतः स्वाभाविक स्नेह वश मेरी दीनता देखकर वे ऐसा कहते हैं ।

गुरु बिबेक सागर जगु जाना * जिन्हहि बिश्व करबदर समाना
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ * भएँ बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ

गुरुजी ज्ञान के समुद्र हैं, यह संसार जानता है, जिन्हें सब जगत हाथ में लिए बेर के समान है । वे भी राजतिलक के लिए साज सजा रहे हैं । विधाता विमुख होने से सब विमुख हो जाते हैं ।

परिहरि रामु सीय जग माहीं * कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी * अन्तहुँ कीच तहाँ जहँ पानी

जगत में श्रीसीता-रामजी को छोड़कर और कोई यह नहीं कहेगा कि इसमें मेरी सलाह नहीं है । मैं उसे सुख पूर्वक सुनूंगा, क्योंकि अन्त में कीच वहीं होती है, जहां पानी होता है ।

डरुन मोहि जग कहिअ कि पोचू * परलोकहु कर नाहि न सोचू
एकइ उर बस दुसह दवारी * मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी

इस बात का मुझे डर नहीं कि संसार मुझे नीच कहेगा और परलोक की भी मुझे चिंता नहीं है । केवल एक यही भारी जलन मेरे हृदय में है कि मेरे कारण सीता-रामजी दुःखी हुए ।

जीवन लाहु लखन भल पावा * सबु तजि राम चरन मन लावा
मोर जनम रघुबर बन लागी * झूठ काह पछिताउँ अभागी

जीवन का उत्तम लाभ तो लक्ष्मणजी ने ही पाया जिन्होंने सबको त्यागकर श्रीरामजी के चरणों में मन को लगाया । मेरा जन्म तो श्रीरघुनाथजी के वन जाने के निमित्त ही हुआ! मैं अभागा मिथ्या ही पछताता हूँ ।

दोहा—आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहि सिर नाइ ।
देखें बिनु रघुबीर पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥१८२॥

सबको सिर नवाकर मैं अपनी दारुण दीनता कहता हूँ कि श्रीरघुनाथजी के चरणों के देखे बिना मेरे हृदय की जलन नहीं जायेगी ।

आन उपाय मोहि नहिं सूझा * को जिय कै रघुबर बिनु बूझा
एकहिं आँक इहइ मन माहीं * प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं

दूसरा उपाय मुझे नहीं सूझता । श्रीरामजी के बिना और कौन मेरे जी की बात को जान सकता है ? मेरे मन में एक यही निश्चय है कि प्रातःकाल प्रभु श्रीरामजी के पास चल दूंगा ।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी * भै मोहि कारन सकल उपाधी
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी * छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी

यद्यपि मैं छोटा हूँ, और अपराधी हूँ, मेरे ही कारण सब उपद्रव हुए हैं, तो भी शरण जाने पर सन्मुख देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझ पर श्रीरामजी विशेष दया करेंगे ।

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ * कृपा सनेह सदन रघुराऊ
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा * मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा

क्योंकि श्रीरामजी शील, संकोच, सुन्दर सीधे स्वभाव व स्नेह के स्थान हैं। श्रीरामजी ने शत्रु के साथ भी बुराई नहीं की, मैं तो उनका बालक और सेवक हूँ, यद्यपि उनके प्रतिकूल हूँ।

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी * आयसु आसिष देहु सुबानी
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी * आवहिं बहुरि रामु रजधानी

आप भी मेरी भलाई मानकर मधुर वाणी से आज्ञा देकर आशीर्वाद दीजिये। जिससे वे मेरी प्रार्थना सुन और मुझे अपना दास जानकर फिर अपनी राजधानी को लौट आयें।

दोहा–जद्यपि जन्मु कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहिं, मोहि रघुबीर भरोस ॥१८३॥

यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं सदा दुष्ट तथा दोषयुक्त भी हूँ, तो भी श्री रघुनाथजी मुझे अपना दास जानकर नहीं त्यागेंगे, यह मुझे रघुवीर पर भरोसा है।

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे * राम सनेहँ सुधाँ जनु पागे
लोग बियोग बिषम बिष दागे * मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे

भरत के वचन सबको ऐसे प्रिय लगे, मानो श्रीरामजी के प्रेमरूपी अमृत में डूबे हुए हैं। सब लोग श्रीरामजी के वियोगरूपी कठिन विष से जले हुए थे, सो मानो बीज सहित मन्त्र सुनते ही जाग उठे हैं।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी * सकल सनेहँ बिकल भए भारी
भरतहि कहहिं सराहि सराही * राम प्रेम मूरति तनु आही

माता, मन्त्री, गुरु, और नगर के स्त्री-पुरुष सब स्नेह-विह्वल होगये। भरतजी की बड़ाई वे सब करने लगे कि भरतजी का शरीर मानो श्रीराम-प्रेम की साक्षात मूर्ति ही है।

तात भरत अस काहे न कहहू * प्रान समान राम प्रिय अहहू
जो पाँवरु आपन जड़ताई * तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई

हे प्रिय भरतजी ! आप ऐसा क्यों न कहेंगे ? आप श्रीरामजी के प्राण प्यारे हैं ! जो नीच मूर्खता से माता की कुटिलता का तुम पर सन्देह करेगा।

सो सठ कोटिक पुरुष समेता * बसिहि कलप सत नरक निकेता
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई * हरउ गरल दुख दारिद दहई

वह मूर्ख करोड़ों पुरखों समेत सौ कल्प तक नरक कुण्ड में वास करेगा। सर्प की मणि सर्प के विष और पाप को ग्रहण नहीं करती, वरन् वह विष दुःख व दरिद्र को दूर करती है।

दोहा–अवसि चलिअ बन रामु जहँ, भरत मन्त्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि, तुम्ह अवलम्बनु दीन्ह ॥१८४॥

हे भरत ! श्रीरामजी के पास वन को अवश्य चलिये। आपने अच्छा विचार किया, जो

शोक-समुद्र में डूबते हुए हम सबको अपना सहारा दिया।

भा सब कें मन मोदु न थोरा * जनु घनधुनि सुनि चातकमोरा
चलत प्रात लखि निरनिउ नीके * भरतु प्रानप्रिय भे सबही के

सबके मन में बड़ा संदेह हुआ, जैसे मेघ की गर्जना सुनकर पपीहा और भौरों का मन आनंदित होता है। प्रातःकाल चलने का सुन्दर निश्चय सुन भरतजी सब ही को प्राण-प्रिय होगये।

मुनिहि बन्दि भरतहि सिरुनाई * चले सकल घर बिदा कराई
धन्य भरत जीवनु जग माहीं * सील सनेहु सराहत जाहीं

मुनि की वन्दना कर और भरतजी को सिर नवाकर सब लोग विदा माँग अपने २ घर चले। संसार में भरतजी का जीवन धन्य है, इस प्रकार से भरतजी के शील व स्नेह की सराहना करते हुए वे जा रहे हैं।

कहहिं परस्पर भा बड़ काजू * सकल चलै कर साजहिं साजू
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी * सो जानइ जनु गरदनि मारी

वे परस्पर कहते हैं कि बड़ा कार्य होगया। सब चलने की तैयारी करने लगे। घर की रखवाली के लिए जिसे रखना चाहते हैं, वही यही जानता है कि मेरी गर्दन मारी गई।

कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू * को न चहइ जग जीवन लाहू

और कहते हैं कि किसी से रहने की मत कहो, संसार में जन्म लेने के फल को कौन नहीं चाहता ?

दोहा—जरउ सोसम्पतिसदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद, करै न सहस सहाइ ॥१८५॥

वह सम्पदा, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई जल जायँ, जो श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के सम्मुख होने में हँसते हुए सहायता न करें।

घर घर साजहिं बाहन नाना * हरषु हृदय परभात पयाना
भरत जाइ घर कीन्ह विचारू * नगरु बाजि गज भवन भँडारू

लोग घर-घर अनेक प्रकार की सवारियाँ सजाने लगे, मन में प्रसन्न हैं कि सबेरे चलेंगे। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि, नगर, घोड़े, महल, खजाना आदि—

सम्पति सब रघुपति कै आही * जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही
तौ परिनाम न मोर भलाई * पाप सिरोमनि साइँ दोहाई

सब संपदा श्रीरघुनाथजी की है। यदि मैं इनकी व्यवस्था किये बिना छोड़कर चला जाऊँ तो अन्त में मेरे लिए भलाई नहीं है, क्योंकि स्वामी का द्रोह सब पापों में शिरोमणि है।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई * दूषन कोटि देइ किन कोई
अस बिचारि सुचि सेवक बोले * जे सपनेहुँ निज धरम न डोले

सेवक वही है, जो स्वामी का हित करे, चाहे कोई करोड़ दोष ही दे। भरतजी के मन में

ऐसा विचार कर विश्वासी सेवकों को बुलाया, जो सपने में अपने धर्म से नहीं डिगे थे।

कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा * जो जेहि लायक सो तेहिं राखा
करि सबु जतनु राखि रखवारे * राम मातु पहिं भरतु सिधारे

भरतजी ने उन सबको सब भेद समझा कर धर्म का उपदेश दिया, और जो जिस लायक था उसे वहीं रख दिया। सब प्रकार से प्रबन्धकर रखवालों को रख कर भरतजी श्रीरामजी की माता के पास गये।

दोहा—आरत जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं, सजन सुखासन जान॥१८६॥

स्नेह के सुजान भरतजी ने सब माताओं को दुखित जानकर पालकी तैयार करने और सुखपाल सजाने के लिए कहा।

चक्क चक्कि जिमि पुर नरनारी * चहत प्रात उर आरत भारी
जागत सब निसि भयउ बिहाना * भरत बोलाए सचिव सुजाना

नगर के स्त्री-पुरुष चकवे-चकवी की भाँति व्याकुल होकर चाहने लगेकि सबेरा हो जाय। सबको रात भर जागते सबेरा होगया, तब भरतजी ने चतुर मन्त्रियों को बुलाया।

कहेहु लेहु सब तिलक समाजू * बनहिं देब मुनि रामहि राजू
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे * तुरत तुरग रथ नाग सँवारे

और बोले राजतिलक का सब सामान ले चलो, वनमें ही मुनि श्रीरामजी को राज्य देंगे, शीघ्र चलो। यह सुनकर मन्त्रियों को प्रणाम किया,और तुरन्त घोड़े,रथ,हाथी सजाकर तैयार किये।

अरुन्धती और अगिनि समाऊ * रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ
विप्र बृन्द चढ़ि बाहन नाना * चले सकल तप तेज निधाना

सबसे पहले अरुन्धती और अग्निहोत्र की सामग्री लेकर मुनिराज वशिष्ठजी रथ पर चढ़कर चले। फिर तप और तेज के निधान सब ब्राह्मणों के समूह अनेक सवारियों पर चढ़ कर चले।

नगर लोग सब सजि सजि जाना * चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी * चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी

नगर के लोग सवारियाँ सजा २ कर चित्रकूट के लिए चले। जिनकी सुन्दरता का बखान नहीं किया जा सकता ऐसी सुन्दर पालकियों में चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं।

दोहा—सौंपि नगर सुचि सेवकनि, सादर सकल चलाइ।
सुमिरि रामसिय चरन तब, चले भरत दोउ भाइ॥१८७॥

नगर को पवित्र सेवकों को सौंपकर, आदर सहित सबको आगे करके, भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई श्रीसीता-रामजी के चरणों का स्मरण करके चले।

राम दरस बस सब नर नारी * जनु करि करिनि चले तकि बारी
बन सिय रामु समुझि मन माहीं * सानुज भरत पयादेहिं जाहीं

श्रीरामजी के दर्शन के लिए सब लोग ऐसे चले, जैसे जल देखकर हाथी और हथिनी दौड़ते हैं। श्रीसीता-रामजी वन में हैं, ऐसा सोचकर भरत और शत्रुघ्न पैदल ही जाते हैं।

देखि सनेहु लोग अनुरागे * उतरि चले हय गज रथ त्यागे
जाइ समीप राखि निज डोली * राम मातु मृदु बानी बोली

ऐसी प्रीति को देखकर लोग प्रेम-मग्न होगये और हाथी, घोड़े, रथों को त्याग पैदल चलने लगे। यह देख, अपनी पालकी भरतजी के पास ठहराकर कौशल्याजी मीठी वाणी से बोलीं।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी * होइहि प्रिय परिवारु दुखारी
तुम्हरें चलत चलहिं सबु लोगू * सकल शोक कृष नहिं मग जोगू

हे पुत्र! माता बलिहारी जाती हैं, रथ पर चढ़ो क्योंकि प्यारा परिवार दुःखी होता है। तुम्हारे पैदल चलने से सब लोग पैदल ही चलेंगे सब लोग शोक से दुबले हो रहे हैं।

सिर धरि बचन चरण सिरु नाई * रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई
तमसा प्रथम दिवस कर बासू * दूसर गोमति तीर निबासू

माता के वचन शिरोधार्य कर, उनके चरणों में शीश नवाकर दोनों भाई रथ पर चढ़कर चले। पहले दिन तमसा नदी पर रहे और दूसरे दिन गौमती के तट पर वास किया।

दोहा–पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत, परिहर भूषन भोग ॥१८८॥

कोई लोग दूध का आहार और कोई फल का भोजन करते थे, तो कोई केवल रात को एक बार खाते थे। आभूषण एवं सुख-भोग छोड़कर राम के निमित्त नेम व्रत करते थे।

सई तीर बसि चले बिहाने * शृङ्गवेरपुर सब नियराने
समाचार सब सुने निषादा * हृदय बिचारि करे सविषादा

फिर सई नदी के तट पर रहकर सबेरे चले और शृङ्गवेरपुर के निकट सब लोग जा पहुँचे। जब यह समाचार निषाद ने सुना, तब दुःखी हो मन में विचार करने लगा–

कारन कवन भरत वन जाहीं * है कछु कपट भाव मन माहीं
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई * तौ कत लीन्ह संग कटकाई

क्या कारण है–जो भरतजी वन को जाते हैं? मन में कुछ कपट-भाव है क्या? यदि हृदय में कुटिलता न होती, तो सेना लेकर क्यों चलते?

जानहिं सानुज रामहि मारी * करहुँ अकण्टक राज सुखारी
भरत न राजनीति उर आनी * तब कलङ्क अब जीवन हानी

यह समझते हैं कि भाई सहित श्रीरामजी को मार, सुखपूर्वक निष्कंटक राज्य करूँगा। भरत ने हृदय में राजनीति को नहीं विचारा है, क्योंकि तब तो इनको कलंक ही लगा था, परन्तु अब जीवन की भी हानि होगी।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा * रामहि समर न जीतन हारा
का आचरजु भरत अस करहीं * नहिं विषबेलि अमिय फल फरहीं

सब देवता व राक्षस मिलकर लड़ें,तो भी युद्ध में श्रीरामजी को जीतने वाला कोई नहीं है। भरतजी ऐसा-करें तो आश्चर्य ही क्या है, विष की बेल में अमृत के फल कभी नहीं लगते।

दोहा—अस बिचारि गुहँ ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु ।
हथबाँसहु बोरेहु तरनि, कीजिअ घाटा रोहु ॥१८९॥

ऐसा विचार कर गुह ने अपनी जाति वालों से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। नावों को हथ-बाँसों सहित डुबो दो और घाट बन्द कर दो ।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा * साजहु सकल मरन कर ठाटा
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ * जिअत न सुरसरि उतरन देउँ

सुसज्जित होकर सब घाटों को रोक लो और मरने का साज साज लो । मुकाबिला करके भरत से मैं लोहा लूंगा और जीते जी गङ्गाजी पार नहीं होने दूंगा ।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा * राम काजु छनभंगु सरीरा
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू * बड़े भागु असि पाइअ मीचू

युद्ध में मरना फिर गंगाजी के किनारे, रामकाज के निमित्त,क्षण-भंगुर शरीर,भरत राजा व श्रीरामचन्द्रजी के भाई और मैं नीच-सेवक इस प्रकार की मृत्यु बड़े भाग्य से मिलती है।

स्वामि काजु करिहउँ रन रारी * जस धवलिहउँ भुवन दसचारी
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें * दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें

स्वामी के कार्य के लिए रण में युद्ध करूंगा, चौदह भुवनों को धवल यश से उज्ज्वल करूंगा । श्रीरघुनाथजी के निमित्त प्राण त्यागूंगा, मेरे दोनों हाथों में आनन्ददायक लड्डू हैं।

साधु समाज न जाकर लेखा * राम भगत महुँ जासु न रेखा
जायँ जिअत जग सो महि भारू * जननी यौवन बिटप कुठारू

साधु-समाज में जिसका सम्मान नहीं है और श्रीरामजी के भक्तों में जिसकी गिनती नहीं है, वह संसार में पृथ्वी का भार होकर व्यर्थ ही जीता है । वह माता के यौवन को काटने के लिए कुल्हाड़ी ही है।

दोहा—बिगत बिषाद निषाद पति, सबहि बढ़ाइ उछाहु ।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु ॥१९०॥

फिर शोक को दूर कर निषाद ने सभी का उत्साह बढ़ाया और श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर अपना तरकस, धनुष और बख्तर मांगा ।

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ * सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहर्षा * एकहिं एक बढ़ावहिं हर्षा

और कहा—हे भाइयो ! शीघ्र ही युद्ध का साज सजाओ, मेरी आज्ञा सुनकर कोई भी मन में डरना नहीं । वे सब प्रसन्न होकर बोले—हे नाथ ! बहुत अच्छा, ऐसा कहकर आपस में एक दूसरे का उत्साह बढ़ाने लगे ।

चले निषाद जौहारि जोहारी * शूर सकल नर रूचइ रारी
सुमिरि राम पद पङ्कज पनहीं * भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनुहीं

प्रणाम कर-करके सब निषाद चले,सब शूर हैं,युद्ध में लड़ना अच्छा लगता है। श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्दों की पादुकाओं को स्मरणकर वे सब तरकस बाँधकर धनुष चढ़ाने लगे ।

अँगरी पहिरि कूड़ि सिर धरहीं * फरसा बाँस खेल सम करहीं
एक कुशल अति ओड़न खाँड़े * कूदहिं गगन मनहुँ छित छाँड़े

कवच पहनकर,सिर पर लोहे के टोप रखलिए, फरसा, बर्छी, बल्लम आदि को सँभालने लगे। उनमें कोई तलावर चलाने में बड़े ही निपुण हैं, मानो पृथ्वी छोड़कर आकाश में कूदते हैं।

निज निज साजु समाजु बनाई * गुह राउतहि जोहारे जाई
देखि सुभट सब लायक जाने * लै लै नाम सकल सनमाने

अपना २ साज और समाज बनाकर सबने जाकर निषादराज को जुहार की। योद्धाओं को देख, सेवकों को सब योग्य जानकर, उनका नाम ले-लेकर गुह ने सबका सम्मान किया।

दोहा—भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहि ॥१८९॥

और कहा—हे भाइयो ! धोखा न खाना, आज मेरा बहुत बड़ा काम है। यह सुनकर वे योद्धा बड़े रोष के साथ बोले—हे वीर ! अधीर मत होओ ।

राम प्रताप नाथ बल तोरे * करहिं कटक बिनभट बिनु घोरे
जीवन पाउँ न पाछें धरहीं * रुण्ड मुण्डमय मेदिन करहीं

हे नाथ ! श्रीरामजी के प्रताप और आपके बल से हम लोग भरतजी की सेना की बिना योद्धा और बिना घोड़ों की कर देंगे। जीते-जी पाँव पीछे नहीं धरेंगे और रणभूमि को नर-मुण्डों से भर देंगे।

दीख निषादनाथ भल टोलू * कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू
एतना कहत छींक भइ बाँऐ * कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए

निषादराज ने वीरों की सुन्दर टोली देखकर कहा—जुझाऊ ढोल बजाओ। इतना कहते ही बायीं ओर छींक हुई, तब शकुनियों ने कहा छींक शुभ स्थान में हुई है।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी * भरतहि मिलिअ न होइहि रारी
रामहि भरतु मनावन जाहीं * सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं

एक बूढ़ा शकुन विचारकर कहने लगा—भरतजी से मिलिए, लड़ाई नहीं होगी। भरतजी श्रीरामजी को मनाने जा रहे हैं। शकुन ऐसा कहता है कि विरोध नहीं है।

सुनि गुह कहेउ नीक कह बूढ़ा * सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा
भरतु सुभाउ सील बिन बूझें * बड़ि हित हानि जानि बिन जूझें

यह सुन गुह बोला-बूढ़ा ठीक कहता है, मूर्ख लोग बिना सोचे यकायक काम करके पछताते

है। भरतजी के शील स्वभाव को बिना सोचे-समझे लड़ाई करने से हित की बड़ी हानि होगी।

दोहा—गहहु घाट भट सिमिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तस तब करिहउँ आइ ॥१९२॥

अतः तुम सब मिलकर घाटों को जाकर रोको और मैं भरतजी से मिलकर, उनका भेद लेता हूँ। शत्रु, मित्र और उदासीन भाव से पूछकर, तब वैसा ही उपाय करूँगा।

लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ * बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ
अस कहि भेंट सँजोवन लागे * कन्द मूल फल खग मृग मागे

मैं भरत के भले स्वभाव से ही उनके प्रेम को पहिचान लूँगा, क्योंकि वैर व प्रीति छिपानेसे नहीं छिपती ऐसा कहकर गुहभेंटके लिये साज सजाने लगा, उसने कंदमूल, फल, पक्षी व मृग मँगवाये।

मीन पीन पाठीन पुराने * भरि भरि भार कहारन्ह आने
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए * मङ्गल मूल सगुन सुभ पाए

मोटी और पुरानी 'पाठीन' नामक मछलियों के भार भर-भरकर कहार ले आये। सब मिलने का समान सजाकर मिलने के लिये चले, तो मङ्गलदायक शकुन हुए।

देखि दूर ते करि निज नामू * कीन्ह मुनिसहिं दण्ड प्रनामू
जानि राम प्रिय दीन्ह असीसा * भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा

गुह ने मुनिराज को देखकर दूर से ही अपना नाम बतलाकर दण्डवत प्रणाम किया। उसे श्रीराम-प्रिय जानकर मुनीश्वर ने आशीर्वाद दिया और भरतजी से समझाकर कहाकि वह श्रीरामजी का मित्र है।

रामसखा सुनि सन्दनु त्यागा * चले उतरि उमगत अनुरागा
गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई * कीन्ह जोहारु माथ महि लाई

भरत उसे श्रीराम का सखा सुन, रथसे उतर पड़े और प्रेम से उमँगते हुए चले। निषाद पति गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर सिर नवाकर प्रणाम किया

दोहा—करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ, प्रेमु न हृदयँ समाइ ॥१९३॥

भरतजी ने उसे दण्डवत् करते देख, उठाकर हृदय से लगा लिया प्रेम हृदय में नहीं समाता, मानो लक्ष्मणजी से भेंट होगई हो।

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती * लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती
धन्य धन्य धुनि मङ्गल मूला * सुर सराहहि तेहि बरसहिं फूला

भरतजी उससे बड़े प्रेमसे मिले, प्रीतिकी रीति को देख सब लोग बड़ाई करने लगे, मंगल की मूल 'धन्य-धन्य' की ध्वनि होने लगी, सब देवता उनकी प्रशंसा करके पुष्प बरसाने लगे।

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा * जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा
तेहि भरि अङ्क राम लघु भ्राता * मिलत पुलक परिपूरत गाता

जो लोक और वेद में सब प्रकार से नीच है,जिसकी छाया छू जाने से भी स्नान करना चाहिए। उससे गोद भरकर श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई भरतजी पुलकित शरीर से मिले।

राम राम कहि जे जमुहाहीं * तिन्हहिं न पाप पुन्ज समुहाहीं
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा * कुल समेत जगु पावन कीन्हा

जो लोग 'राम-राम' कहकर जँभाई लेते हैं, पापों के समूह उनके सामने भी नहीं आ पाते। इसे तो श्रीरामजी ने छाती से लगा लिया और संसार में कुल समेत पवित्र कर दिया।

करमनाश जलु सुरसरि परई * तेहि को कहहु सीस नहिं धरई
उलटा नामु जपत जग जाना * बालमीकि भए ब्रह्म समाना

कर्मनाशा नदीका जल भी यदि गंगाजी में पड़ जायतो कहो-कौन उसे सिर पर नहीं चढ़ाता। उल्टा नाम'मरा-मरा' जपने से बाल्मीकि मुनि ब्रह्मा के समान हो गये, इसे सब संसार जानताहै।

दोहा—स्वपच सबर खस जनम जड़, पाँवर कोल किरात।
रासु कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात ॥१९४॥

मूर्ख, चाण्डाल, शबर, खग, यवन, नीच कोल-भील आदि भी श्रीराम-नाम कहते ही परम पवित्र हो जाते हैं और जगत प्रसिद्ध हो जाते हैं।

नहिं अचिरजु जुगजुग चलिआई * केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई
राम नाम महिमा सुर कहहीं * सुनि सुनि अवध लोग सुखलहहीं

इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, युग-युग से यही रीति चली आई है। श्रीरघुनाथजी ने किसे बड़ाई नहीं दी ? इस प्रकार देवता—'राम-नाम' का महात्म्य कहने लगे और अवध-वासी सुनकर सुख पाने लगे।

राम सखहि मिलि भरत सप्रेमा * पूँछी कुशल सुमङ्गल खेमा
देखि भरतु कर सील सनेहू * भा निषाद तेहि समय बिदेहू

राम-सखा गुह से सप्रेम मिलकर भरतजी ने कुशल-क्षेम पूछी। भरतजी का शील एवं स्नेह देखकर निषादराज उस समय विदेह हो गया—(अपने देह की सुधि-बुधि भूल गया)।

सकुच सनेहु मोद मन बाड़ा * भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा
धरि धीरजु पद बन्दि बहोरी * विनय सप्रेम करत कर जोरी

मन में संकोच, स्नेह और आनन्द इतना बढ़ गया कि टकटकी लगाकर भरतजी को देखता हुआ खड़ा रहा। फिर धीरज धारण कर भरतजी के चरणों में प्रणाम कर स्नेह के साथ हाथ जोड़कर विनय करने लगा।

कुशल मूल पद पङ्कज पेखी * मैं तिहूँ काल कुशल निज लेखी
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें * सहित कोटि कुल मङ्गल मोरें

कुशल के मूल आपके चरणारविन्दों के दर्शन कर मैंने तीनों काल में अपनी कुशल समझ ली। हे प्रभु ! अब आपके पूर्ण अनुग्रह से करोड़ों कुलों सहित मेरा कल्याण है।

दोहा—समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जियँ सोइ ।
जो न भजइ रघुबीर पद, जग बिधि बंचित होइ ॥१९५॥

अपना वंश व कर्म देख और प्रभु की महिमा को हृदय में विचारकर मैंने समझ लिया कि जो श्रीरामजी के चरणों का भजन नहीं करता, वह संसार में ब्रह्माजी द्वारा ठगा गया है।

कपटी कायर कुटिल कुजाती * लोक बेद बाहेर सब भाँती
राम कीन्ह आपन जबही तें * भयउँ भुवन भूषन तबहीं तें

मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि, कुजाति हूँ और सब प्रकार से लोक तथा वेद से बाहर हूँ। परन्तु जब से मुझे श्रीरामजी ने अपनाया है, तभी से मैं लोक का भूषण होगया हूँ।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई * मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई
कहि निषाद निज नाम सुबानीं * सादर सकल जोहारीं रानीं

निषाद का स्नेह देख व सुन्दर विनती सुन, भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्न उससे मिले, फिर निषादराज ने अपना नाम कहकर मधुर वाणी से आदर सब रानियों को प्रणाम किया।

जानि लखन सम देहिं असीसा * जिअहु सुखी सय लाख बरीसा
निरखि निषादु नगर नर नारी * भए सुखी जनु लखनु निहारी

वे उसे लक्ष्मण के समान जानकर आशीष देने लगींकि तुम सुख से सौ लाख वर्षों तक जिओ। नगर के स्त्री-पुरुष निषादराज को देख ऐसे सुखी हुए, मानो लक्ष्मणजी को देख लिया हो।

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू * भेंटेउ रामचन्द्र भरि बाहू
सुनि निषादु निज भाग्य बड़ाई * प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई

सब कहतेहैं कि जीवनका लाभतो इसीने पाया है, जिसे मंगलमय श्रीरामजी ने भुजा पसार गले से लगाया है निषादराज अपने भाग्य की बड़ाई सुन, आनन्दित हो सबको साथ लिवा ले चला।

दोहा—सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

उसने सेवकों को इशारा कर दिया, वे स्वामी का रुख पाकर चले और उन्होंने ठहरने के लिये-घरों में वृक्षों के नीचे, तालावों के किनारे, बगीचों में स्थान बना दिये।

शृङ्गबेरपुर भरत दीख जब * भे सनेहँ बस अङ्ग सिथिल तब
सोहत दिएँ निषादहि लागू * जनु तनु धरें बिनय अनुरागू

भरतजी ने शृङ्गबेरपुर को जब देखा तो प्रेम के मारे उनके सब अङ्ग शिथिल होगये। निषादराजके कन्धे पर हाथ रक्खे हुए वे ऐसे शोभा दे रहे हैं, मानो विजय और प्रेम शरीर धारण किये जा रहे हैं।

एहि बिधि भरत सेनु सब सङ्गा * दीखि जाइ जग पावनि गङ्गा
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू * भा मनु मगन मिले जनु रामू

[illegible] गंगाजी के दर्शन किये।

श्रीराम-घाट को प्रणाम किया। उनका मन ऐसा प्रसन्न हुआ, मानो श्रीरामजी मिल गये हों।

करहिं प्रनामु नगर नर नारी * मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी
करि मज्जनु मागहिं कर जोरी * रामचन्द्र पद प्रीति न थोरी

नगरके नर-नारी प्रणाम कर रहे हैं और उस ब्रह्ममय जल को देखकर बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। स्नानकर, हाथ जोड़ यही वर माँग रहे हैं कि श्रीरामजी के चरणों में हमारी प्रीति कम न हो।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू * सकल सुखद सेवक सुरधेनु
जोरि पानि बर माँगउँ एहू * सीय राम पद सहज सनेहू

भरतजी बोले—हे गङ्गाजी ! आपकी रेणु सबको सुख देने वाली है और सेवकों को तो कामधेनु के समान है। मैं हाथ जोड़कर यही वर माँगता हूँ कि श्रीसीता-रामजी के चरणों में मेरा सहज स्नेह हो।

दोहा—एहि बिधि मज्जनु भरतु करि, गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब, डेरा चले लवाइ ॥१९७॥

इस प्रकार भरतजी स्नान कर व सब मातायें स्नान कर चुकी हैं, ऐसा जानकर और गुरुजी की आज्ञा पाकर सब डेरे को लिवाकर ले चले।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा * भरत सोधु सबही कर लीन्हा
गुरु सेवा करि आयसु पाई * राम मातु पहिं गे दोउ भाई

लोगों ने जहाँ-तहाँ डेरे डाल दिये, भरतजी ने सभी की संभाल की। फिर गुरु-सेवा करके आज्ञा पाकर दोनों भाई श्रीरामजी की माता के पास गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी * जननीं सकल भरत सनमानी
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई * आपु निषादहि लीन्ह बोलाई

भरतजी ने चरण दबाकर एवं मधुर वचन कहकर सब माताओं का आदर किया। फिर भाई शत्रुघ्नजी को माताओं की सेवा सौंप कर आपने निषादराज को अपने पास बुलाया।

चले सखा कर सों कर जोरें * सिथिल सरीर सनेह न थोरें
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ * नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ

भरतजी सखा के हाथ में हाथ मिलाये चले, अधिक स्नेह के कारण उनका शरीर शिथिल होगया, फिर निषादराज से पूछा—वह स्थान तो दिखाओ, जिससे कुछ नेत्र और मन की जलन को ठण्डी करूँ।

जहँ सिय राम लखनु निसि सोए * कहत भरे जल लोचन कोए
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू * तुरत तहाँ लै गयउ निषादू

जहाँ श्रीसीता, रामजी व लक्ष्मणजी रात में सोते थे, यह कहते ही उनके नेत्रोंके कोयोंमें जल भर आया, भरतजी के वचन सुन निषादराज को बड़ा दुःख हुआ, वह तुरन्त वहाँ ले गया—

दोहा—जहँ सिंसुपा पुनीत तर, रघुबर किय बिश्रामु।

दोहा–अति सनेहँ सादर भरत, कीन्हेउ दण्ड प्रनामु ॥१९८॥

जहाँ पवित्र अशोक के वृक्ष की छाया में श्रीरघुनाथजी ने विश्राम किया था, वहाँ पर भरतजी ने बड़े प्रेम से साष्टांग प्रणाम किया।

कुश साँथरी निहारि सुहाई * कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई * बनइ न कहत प्रीति अधिकाई

फिर कुश की सुन्दर आसनी देख परिक्रमा करके प्रणाम किया और चरण-चिन्हों की रज लेकर नेत्रों से लगाई। उस समय की प्रीति की अधिकता कहते नहीं बनती।

कनक बिन्दु दुइ चारिक देखे * राखे सीस सीय सम लेखे
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी * कहत सखा सन बचन सुबानी

सोने के दो-चार सितारे पड़े देख, उन्हें श्रीसीताजी के समान जानकर मस्तक पर रख लिया और नेत्रों में जल भरकर मन में दुखित हो सखा से मधुर वाणी से बोले–

श्रीहत सीय बिरहँ दुतिहीना * जथा अवध नर नारि बिलीना
पिता जनक देउँ पटतर केही * करतल भोगु जोगु जग जेही

हाय ! यह सोने के सितारे भी सीताजी के वियोग से कान्तिहीन और मलीन होगये हैं जैसे अयोध्या के स्त्री-पुरुष छवि-क्षीण हो रहे हैं। जिन सीताजी के पिता राजा जनकजी हैं उनकी उपमा मैं किससे दूं ? जिनकी मुट्ठी में जगत् के सब भोग और योग दोनों हैं।

ससुर भानुकुल भानु भुआलू * जेहि सिहात अमरावति पालू
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं * जो बड़ होत सो राम बड़ाईं

जिनके सूर्यवंश के सूर्य महाराज दशरथजी ससुर थे, जिन्हें अमरावती के स्वामी इन्द्र भी सराहते हैं। श्रीरघुनाथजी जिनके प्राणनाथ हैं, संसार में जो बड़ा होता है, वह श्रीरामजी के ही देने से बड़प्पन पाता है।

दोहा–पति देवता सुतीयमनि, सीयँ साँथरी देखि।
बिदरत हृदय न हहरि हर, पबि तें कठिन बिसेखि ॥१९९॥

उन पतिव्रताओं में शिरोमणि सीताजी की कुश-शैया 'साँथरी' को देख दहलकर मेरा हृदय भी नहीं फट जाता। हे शंकर ! यह वज्र से भी कठोर है।

लालन जोगु लखन लघु लोने * भे न भाइ अस अहहिं न होने
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे * सिय रघुबीरहिं प्रानपिआरे

छोटे और सलौने भाई लक्ष्मणजी प्यार करने योग्य हैं, ऐसे भाई न हुए न होंगे और न होने वाले ही हैं। जो लक्ष्मणजी–अयोध्या वासियों को प्रिय, माता-पिता के दुलारे और श्रीसीता-रामजी को प्राणों से प्रिय हैं।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ * तात बाउ तन लाग न काऊ
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती * निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती

लक्ष्मणजी का कोमल शरीर और सुकुमार स्वभाव है, गरम वायु भी जिनके शरीर में कभी नहीं लगी, वे सब प्रकार के कष्ट वन में सह रहे हैं, हाय ! यह छाती करोड़ों वज्रों का निरादर कर रही है ।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर * रूप सील सुख सब गुनसागर
पुरजन परिजन गुर पितु माता * राम सुभाय सबहि सुखदाता

श्रीरामजी ने जन्म लेकर संसार को प्रकाशित कर दिया। वे रूप, शील, सुख व गुणों के समुद्र हैं। पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता, माता-सबको ही श्रीरामजी का स्वभाव सुख देने वाला है ।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं * बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं
सादर कोटि कोटि सत सेषा * करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा

शत्रु भी श्रीरामजी की बड़ाई करते हैं वे बोल-चालसे मिलनेसे एवं नम्रतासे मन हरलेते हैं। करोड़ों सरस्वती व अरबों शेषजी भी प्रभु श्रीरामजी के गुणों की गिनती नहीं कर सकते ।

दोहा—सुख स्वरूप रघुबंस मनि, मङ्गल मोद निधान ।
ते सोवत कुस डासि महि, बिधिगत अति बलवान ॥२००॥

रघुवंश-भूषण, सुख-स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी आनन्द व मङ्गल के स्थान हैं। वे कुश बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं, ब्रह्मा की गति बड़ी ही बलवान है ।

राम सुना दुखु कान न काऊ * जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती * जोगवहिं जननि सकल दिन राती

श्रीरामजी ने दुःख कभी कानों से भी नहीं सुना। महाराज स्वयं जीवन-वृक्ष की तरह उनकी सँभाल करते थे, सब मातायें रात-दिन उनकी रखवाली करती थीं। जिस प्रकार पलक नेत्रों की और सांप मणि की रखवाली करता है ।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी * कन्द मूल फल फूल अहारी
धिग कैकई अमङ्गल मूला * भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला

वे अब वन में पैदल घूमते हैं और कन्द-मूल, फल-फूलों का भोजन करते हैं। अमङ्गल की जड़ कैकई को धिक्कार है, जो प्राणप्रिय के लिए भी विरुद्ध होगई ।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी * सबु उतपातु भयउ जेहि लागी
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाताँ * साइँ द्रोहि मोहि कीन्ह कुमाताँ

मुझ पापोंके समूह एवं अभागे को धिक्कार है, जिसके कि कारण सब उपद्रव हुए। ब्रह्मा ने मुझे कुल में कलंक लगाने को पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामी का विरोधी बना दिया ।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू * नाथ करिअ कत बादि बिषादू
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि * यहि निरदोषु दोषु बिधि बामहि

यह सुनकर निषाद प्रेम सहित समझाने लगा—हे नाथ! आप वृथा दुःख क्यों करते हैं श्रीरामजी आपको प्रिय हैं एवं आप श्रीरामजी को प्रिय हैं। यही तत्व है, दोष तो विधाता का है ।

छन्द—बिधि बाम को करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर प्रशंसा रावरी ॥
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहत हौं सौंहें किएँ ।
परिनाम मङ्गल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ ॥

प्रतिकूल विधाता का कार्य कठिन है, जिसने माता को बावरी बना दिया । उस रातको प्रभु श्रीरामचन्द्रजी यहाँ आदर पूर्वक आपकी बड़ी प्रशंसा करते थे । तुलसीदासजी कहते हैं—(निषादराज बोला—) श्रीरामचन्द्रजी को आप अत्यन्त प्रिय हैं, यह मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ। अन्त में मङ्गल जानकर मन में धैर्य धारण करिये ।

सो०—अन्तरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिअ करिअ बिश्रामु, यह विचारि दृढ़ आनि मन ॥२०१॥

श्रीरामजी अन्तर्यामी, संकोच, प्रेम और दया के धाम हैं, ऐसा मन में पक्का विचार करके चलिये और आराम कीजिये ।

सखा बचन सुनि उरि धरि धीरा * बास चले सुमिरत रघुबीरा
यह सुधि पाइ नगर नर नारी * चले बिलोकन आरत भारी

भरतजी सखा के वचन सुनकर और मनमें धैर्य धरकर श्रीरघुनाथजी का स्मरण करते हुए डेरे को चले । यह सुधि पाकर सब नर-नारी बहुत दुःखी होकर उस स्थान को देखने चले ।

परदखिना करि करहिं प्रनामा * देहिं केकइहि खोरि निकामा
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं * बाम बिधातहि दूषन देहीं

वे सब परिक्रमा करके प्रणाम करने लगे और कैकई को दोष देने लगे । आँखों में आँसू भरकर विपरीत विधाता को दोष देने लगे ।

एक सराहहिं भरत सनेहू * कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू
निन्दहिं आपु सराहि निषादहि * कोकहि सकइ बिमोह बिषादहि

कोई भरतजी के प्रेम की बड़ाई करते हैं और कोई कहते हैं कि राजा ने स्नेह को पूरा निबाहा । वे सब अपनी निन्दा करके निषाद की बड़ाई करने लगे उस समय के मोह तथा दुःख को कौन कह सकता है ?

एहि बिधि राति लोगु सब जागा * भा भिनुसार गुदारा लागा
गुरहि सुनावँ चढ़ाइ सोहाईं * नई नाव सब मातु चढ़ाईं
दण्ड चारि महँ भा सबु पारा * उतरि भरत तब सबहि सँभारा

इस प्रकार सब लोग रात भर जागे, सबेरा होते ही खेवा लगा । गुरू को सुन्दर नाव पर चढ़ाकर, फिर नई नाव में सब माताओं को चढ़ाया । चार घड़ी में सब गङ्गाजी के पार होगये तब उतर कर भरतजी ने सबको सँभाला ।

दोहा—प्रातक्रिया करि मातु पद, बन्दि गुरहि सिर नाइ।
आगें किए निषादगन, दीन्हेउ कटुक चलाइ ॥२०२॥

प्रातः कर्म कर माताओं के चरणों में प्रणाम कर, गुरुदेव को सिर नवाकर भरतजी ने निषादों के झुण्ड को आगे किया और कटक को ले कर चल दिये।

कियउ निषादनाथ अगुआई * मातु पालकी सकल चलाई
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा * बिप्रन्ह सहित गवनु गुरु कीन्हा

निषादराज को आगे करके, पीछे माताओं की सब पालकियां चलाईं। छोटे भाई शत्रुघ्न को बुलाकर उनके साथ कर दिया, तब ब्राह्मणों सहित, गुरूजी ने गमन किया।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू * सुमिरे लखन सहित सिय रामू
गवने भरत पयोदेहिं पाए * कोतल सँग जाहिं डोरि बँधाए

फिर आप (भरतजी) ने गङ्गाजी को प्रणाम किया और लक्ष्मण सहित श्रीसीता-रामजी को स्मरण किया। भरतजी पैदल ही चले, घोड़े बागडोर से बंधे हुए उनके साथ जारहे थे।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा * होइअ नाथ अश्व असवारा
रामु पयोदेहि पायँ सिधाए * हम कहँ रथ गज बाजि बनाए

अच्छे सेवक बारम्बार कहते हैं कि हे नाथ ! आप घोड़े पर सवार हो जाइए। भरतजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी तो पैदल ही गये, हमारे लिए-रथ, हाथी, घोड़े बनाये हैं।

सिर बलि जाउँ उचित अस मोरा * सब तें सेवक धरमु कठोरा
देखि भरत गति सुनि मृदुबानी * सब सेवकगन करहिं गलानी

मुझे तो उचित है कि मैं सिर के बल जाऊँ क्योंकि सबसे कठिन सेवक का धर्म होताहै, भरत जी की यह दशा देख और मधुर वाणी सुनकर सेवक ग्लानि के मारे मरे जारहे हैं।

दोहा—भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत रामसिय रामसिय, उमँगि उमँगि अनुराग ॥२०३॥

भरतजी तीसरे पहर प्रयाग पहुँचे, वे प्रेम में उमँग २ कर सीताराम २ कहते जाते हैं।

झलका झलकत पायन्ह कैसें * पंकज कोस ओस कन जैसें
भरत पयोदेहिं आए आजू * भयउ दुखित सुनि सकल समाजू

उनके पावों में फफोले ऐसे चमकते हैं,जैसे कमलकी कलियों पर ओस की बूंद चमकती हों। आज भरतजी पैदल ही चलकर आये हैं, यह बात सुनकर सब समाज दुःखी हुआ।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए * कीन्ह प्रनामु त्रिबेनहिं आये
सबिधि सितासित नीर नहाने * दिए दान महिसुर सनमाने

भरतजी ने जब यह खबर पाली कि, सब लोग स्नानकर चुके, तब आप भी यहां आये और त्रिवेणी को [illegible] दान

देकर ब्राह्मणों का सम्मान किया ।

देखत श्यामल धवल हिलोरे * पुलकि सरीर भरत कर जोरे
सकल कामप्रद तीरथराऊ * वेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ

श्याम-श्वेत लहरें देखते ही उनका देह पुलकित होगया हाथ जोड़कर बोले-तीर्थराज! आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं आपका प्रभाव वेदों में और संसार में प्रसिद्ध है ।

माँगउँ भीख त्याग निज धरमू * आरत काह न करइ कुकरमू
अस जियँ जानि सुजान सुदानी * सफल करहिं जग जाचक बानी

अपना धर्म छोड़कर मैं भीख माँगता हूँ । दु:खी पुरुष कौनसा कुकर्म नहीं करते ? ऐसा हृदय में जानकर चतुर सुदानी लोग संसार में याचकों की प्रार्थना को सफल करते हैं ।

दोहा—अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ॥२०४॥

न तो मुझे धन की इच्छा है, न धर्म की, न काम की और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ । मेरा जन्म-जन्म में श्रीरामजी के चरणों में प्रेम हो, यही वरदान चाहता हूँ-दूसरा नहीं ।

जानहुँ राम कुटिल करि मोही * लोग कहउ गुर साहिब द्रोही
सीता राम चरन रति मोरें * अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें

श्रीरामजी मुझे चाहें खोटा समझें और लोग चाहे गुरु व स्वामी का द्रोही कहें । परन्तु मुझमें सीताजी-रामजी के चरणों की प्रीति आपकी कृपा से दिन-दिन बढ़े ।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ * जाचत जलु पबि पाहन डारउ
चातकु रटनि घटें घटि जाई * बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई

चाहे मेघ-चातक की सुधि जन्म भर भुलादे और जल माँगने पर बिजली गिरावे, चाहे ओले बरसावे । परन्तु चातक की रटना घट जाने से तो उसकी प्रतिष्ठा ही कम होजावेगी। उसको तो प्रेम बढ़ाने में ही सब प्रकार से भलाई है ।

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें * तिमि प्रियतम पदनेम निबाहें
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी * भइ मृदु बानि सुमङ्गल देनी

जैसे सोने को तपाने से रंग चढ़ता है, वैसे ही परम प्रिय रामजी के चरणोंमें प्रेम करनेसे निबाह होता है । भरतजी के वचन सुनकर त्रिवेणी में जो आनन्द-मङ्गल देने वाली मधुर वाणी हुई-

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू * राम चरन अनुराग अगाधू
बादि गलानि करहु मन माहीं * तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं

हे तात भरत! तुम सब प्रकारसे साधुही हो, श्रीरामजीके चरणोंमें तुम्हारा अथाह प्रेमहै । तुम अपने मन में व्यर्थ ही ग्लानि मत करो, श्रीरामजी को तुम्हारे समान कोई प्रिय नहीं है ।

दोहा—तन पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल ।

भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल ॥२०५॥

त्रिवेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित होगया। हृदय में आनन्द हुआ। भरतजी को धन्य-धन्य ! कहकर देवता आकाश से पुष्पों की वरषा करने लगे।

प्रमुदित तीरथराजु निवासी * बैखानस बटु गृही उदासी
कहहिं परस्पर मिलि दस पाँचा * भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा

तीर्थराज प्रयाग के निवासी, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और दस-पाँच मिलकर आपस में प्रसन्न होकर कहते हैं कि भरतजी का स्नेह और शील सच्चा है।

सुनत राम गुन ग्राम सोहाए * भरद्वाज मुनिवर पहिं आए
दण्ड प्रनामु करत मुनि देखे * मूरतिमन्त भाग्य निज लेखे

श्रीरामजी के सुन्दर गुणों कोसुनाते हुए भरतजी-मुनिवर भरद्वाजी के पास आये। भरत जी को दण्डवत-प्रणाम करते हुए देखकर मुनि ने उन्हें अपना मूर्तिमान सौभाग्य समझा।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे * दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे
आसनु दीन्हि नाइ सिरु बैठे * चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे

उन्होंने दौड़कर भरतजीको उठाकर छातीसे लगालिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया, फिर आसन दिया, तो वे सिर नवाकर बैठे,मानो भागकर संकोचसे घरमें छिपना चाहते हों।

मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू * बोले रिषि लखि सील सँकोचू
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई * बिधि करतब पर कछु न बसाई

मनमें यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे, ऋषि भरतजी के शील और संकोच को देखकर बोले–हे भरत ! सुनो,हमने सब हाल सुनलिया है, विधाता की करतूत पर कुछ वश नहीं चलता।

दोहा–तुम्ह गलानि जियँ जानि करहु, समुझि मातु करतूत।
तात कैकइहि दोषु नहिं, गई गिरा मति धूत ॥२०६॥

माता की करनी समझ अपने जी में ग्लानी मत करो। हे तात ! इसमें कैकई का कुछ दोष नहीं है, उसको बुद्धि को तो सरस्वती बिगाड़ गयी थीं।

यहउ कहत भल कहहि न कोऊ * लोकु बेदु बुध सम्मत दोऊ
तात तुम्हार बिमल जसु गाई * पाइहि लोकहु बेदु बड़ाई

यह कहते भी कोई भला नहीं कहेगा, क्योंकि विद्वान-लोक और वेद दोनों को हीं मानते हैं। हे तात ! तुम्हारा निर्मल यश गाकर लोक और वेद दोनों ही बड़ाई पावेंगे।

लोक बेद सम्मत सबु कहई * जेहि पितु देइ राजु सो लहई
राउ सत्यव्रत तुम्हहिं बोलाई * देत राजु सुखु धरमु बड़ाई

लोक और वेद दोनों के मत से सब कहते हैं कि जिसे पिता राज्य दे, वही पाता है। राजा सत्य-प्रतिज्ञ थे, वे तुम्हें बुलाकर राज्य देते तो सुख मिलता, धर्म रहता और बड़ाई होती।

राम गवनु बन अनरथ मूला * जे सुनि सकल विश्व भइ सूला
सो भावी बस रानि सयानी * करि कुचालि अन्तहुँ पछितानी

श्रीरामजी का वन-गमन ही अनर्थ को जड़ है, जिसे सुनकर सारे विश्व को दुःख हुआ। भावी-वश वे-समझ रानी भी कुचाल करके अन्त में पछताई।

तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू * कहै सो अधम अयान असाधू
करतेउ राजु त तुम्हहि न दोषू * रामहि होत सुनत सन्तोषू

उसमें कोई तनिक भी तुम्हारा अपराध बतावे तो वह नीच, मूर्ख और दुष्ट है। जो तुम राज्य करते, तो भी तुम्हें दोष न था श्रीरामचन्द्रजी को भी सुनकर सन्तोष होता।

दोहा—अबि अति कीन्हेहु भरत भल, तुम्हहि उचित मत ऐहू।
सकल सुमङ्गल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु ॥२०७॥

हे भरतजी! अब तुमने बहुत ही अच्छा किया, तुमको ऐसा करना ही उचित था। संसार में श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम होना ही सम्पूर्ण आनन्द-मङ्गलों की जड़ है।

सो तुम्हार धनु जीवन प्राना * भूरि भागु को तुम्हहि समाना
यह तुम्हार आचरजु न ताता * दशरथ सुअन राम प्रिय भ्राता

वे श्रीरामजी तुम्हारे धन, जीवन और प्राण हैं, तुम्हारे समान बड़भागी कौन है? हे तात! यह तुम्हारे लिए अचरज की बात नहीं है, क्योंकि तुम दशरथजी के पुत्र और श्री-रामचन्द्रजी के प्यारे भाई हो।

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं * प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं
लखन राम सीतहि अति प्रीती * निसि सबु तुम्हहि सराहत बीती

हे भरत! सुनो श्रीरामजीके मनमें तुम्हारे समान प्रेम-पात्र दूसरा कोई नहीं है। लक्ष्मणजी श्री-रामजी व सीताजी को सब रात उस दिन अत्यन्त प्रेमसे तुम्हारी बड़ाई करते बीती थी।

जाना मरमु नहात प्रयागा * मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें * सुख जीवन जग जस जड़ नरकें

प्रयाग स्नान करते समय मैंने उनका मर्म जाना, वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। श्रीरघुनाथजी का तुम पर ऐसा प्रेम है, जैसे मूर्ख मनुष्य संसार में सुख पूर्वक जीने में प्रेम रखता है।

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई * प्रनत कुटुम्ब पाल रघुराई
तुम्ह तौ भरत मोर मत ऐहू * धरें देह जनु राम सनेहू

श्रीरामजी की यह बहुत बड़ाई नहीं है, क्योंकि वे शरणागत के कुटुम्ब पालन करने वाले हैं, हे भरत! मेरा यह मत है कि तुम मानो साक्षात् शरीरधारी 'श्रीराम-स्नेह' ही हो।

दोहा—तुम्ह कहँ भरत कलङ्क यह, हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित, भा यह समउ गनेसु ॥२०८॥

हे भरतजी! तुम्हारे लिए तो यह कलंक है और हमारे लिए उपदेश है श्रीराम

भक्ति रूपी सिद्धि के लिए यह समय बड़ा शुभ है।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा * रघुबर किङ्कर कुमुद चकोरा
उदित सदाँ अँथइहि कबहुँ ना * घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना

हे तात! तुम्हारा निर्मल-यश नवीन चन्द्रमा के समान है और श्रीरघुनाथजी के भक्त कुमुद एवं चकोर हैं। यह चन्द्रमा सर्वंव उदय रहेगा कभी अस्त न होगा। जगत रूपी आकाश में वह घटेगा नहीं वरन् दिनों-दिन दूना होगा।

कोक तिलोक प्रीति अति करही * प्रभु प्रताप रवि छबिहि न हरही
निसदिन सुखद सदा सब काहू * ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू

त्रैलोक्यरूपी चकवा इस यशरूपी चन्द्रमा को देखकर बहुत प्रेम करेगा और प्रभु श्रीरामजी का प्रताप रूपी सूर्य भी उनकी शोभा को नहीं घटायेगा। यह चन्द्रमा रात-दिन कब किसी को सुख देने वाला होगा और कैकई का कुकर्म रूपी राहु भी उसे नहीं ग्रसेगा।

पूरन राम सुप्रेम पियूषा * गुरु अपमान दोष नहिं दूषा
राम भगत अब अमिअँ उघाहूँ * कीन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहूँ

यह श्रीरामजी के सुन्दर प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण है और गुरु के निरादर रूपी कलंक से दूषित नहीं है। श्रीरामजी के भक्त उस अमृत से तृप्त हो जायेंगे। हे भरतजी! तुमने पृथ्वी पर अमृत को सुलभ कर दिया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी * सुमिरत सकल सुमङ्गल खानी
दशरथ गुनगन बरनि न जाहीं * अधिकु कहा तेहि सम जग नाहीं

राजा भगीरथ यहाँ गङ्गाजी को लाये, जिनका स्मरण ही सब सुमंगलों की खान है। दशरथजी के गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता, अधिक क्या कहूँ उनके समान जगत् में कोई नहीं है।

दोहा—जासु सनेह सँकोच बस, राम प्रकट भए आइ।
जे हर हियँ नयननि कबहुँ, निरखे नहीं अघाइ ॥२०६॥

जिनके प्रेम और संकोच के वश होकर स्वयं श्रीरामजी आकर प्रकट हुए हैं। जिन्हें शिवजी अपने हृदय के नेत्रों में देखकर कभी तृप्त नहीं हुए।

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा * जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा
तात गलानि करहु जिएँ जाएँ * डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ

तुमने यशरूपी अनोखा चंद्रमा बनाया, जिसमें श्रीराम का प्रेम मृगरूप धारण कर वास कर रहा है। हे तात! तुम अपने जी में खेद मत करो, पारस मिल जाने से भी दरिद्रता से डरते हो।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं * उदासीन तापस बन रहहीं
सब साधन कर सुफल सोहावा * लखन राम सिय दरसनु पावा

हे भरत! सुनो हम झूंठ नहीं कहते, हम उदासीन हो, तपस्या करते हुए वन में रह रहे हैं। सब साधनों [illegible]।

तेहि फलकर फलु दरस तुम्हारा * सहित प्रयाग सुभाग हमारा
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ * कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ

उस महान् दर्शनका परम फल ही तुम्हारा दर्शन है, प्रयाग सहित हमारा धन्य भाग्य, हे भरत ! तुम धन्य हो, जगत् को तुमने अपने यश से जीत लिया, इतना कहकर मुनि प्रेम-मग्न होगये।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे * साधु सराहि सुमन सुर बरषे
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा * सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा

मुनि के वचनों को सुनकर सभासद बहुत प्रसन्न हुए और साधुवाद कहकर सराहना करके देवताओं ने पुष्प बरसाये। आकाश और प्रयाग में 'धन्य-धन्य' की ध्वनि सुन भरतजी स्नेह मग्न होगये।

दोहा—पुलक गात हियँ राम सिय, सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मण्डलिहि, बोले गद्गद् बैन ॥२१०॥

भरतजी का शरीर पुलकित है, हृदय में सीता रामजी हैं, कमल नेत्र छल से भरे हैं। वे मुनि-मण्डली को प्रणाम कर गदगद वाणी से बोले—

मुनि समाजु अरु तीरथ राजू * साँचिहुँ सपथ अघाइ अकाजू
एहिं थल जौं कछु कहिअ बनाई * एहि सम अधिक न अघ अधमाई

यहाँ पर मुनियों का समाज है और तीर्थराज है, सत्य सौगन्ध खाने से भी यहाँ बड़ी हानि है। इस स्थान में यदि कुछ बनाकर कहा जाय तो इसके समान पाप और नीचता न होगी।

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सति भाऊ * उर अन्तरजामी रघुराऊ
मोहि न मातु करतब कर सोचू * नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू

मैं सत्य-भाव से कहता हूँ, आप सर्वज्ञ हैं, हृदय में अन्तर्यामी श्रीरामजी हैं। आपको अपनी माता की करतूत का सोच नहीं है, न जी में इस बात का दुःख है कि लोग मुझे नीच समझेंगे।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू * पितहु मरन कर मोहि न सोकू
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए * लछिमन राम सरिस सुत पाए

मुझे यह भी डर नहीं है कि परलोक बिगड़ जायगा, पिताजी के मरने का मुझे शोक नहीं है। क्योंकि उनके उत्तम कर्मों का सुन्दर सुयश सब लोकों में छा रहा है और लक्ष्मण तथा श्रीरामजी के समान पुत्र उन्होंने पाये।

राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू * भूप सोच कर कवन प्रसंगू
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं * करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं

श्रीरामजी के विरह में उन्होंने क्षण-भंगुर शरीर को त्याग दिया। ऐसे महाराज के लिए शोक का कौन-सा प्रसङ्ग है ? परन्तु श्रीरामजी, लक्ष्मण और सीताजी बिना ही जूतियों के नंगे पाँव मुनियों का वेश बनाये वन-वन में फिर रहे हैं।

दोहा—अजिन बसन फल असन महि, सयन डासि कुस पात।

बसि तरुतर नित सहम हिम, आतप बरषा बात ।।२११।।

मृगछाला उनके वस्त्र हैं फल उनका भोजन है, वे कुश के पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर शयन करते हैं। वृक्षों के नीचे रहकर नित्य सर्दी, धूप, वर्षा और वायु को सहते हैं।

एहि दुख दाँह दहइ दिन छाती * भूख न बासर नींद न राती
एहि कुरोग कर औषधि नाहीं * सोधेउँ सकल विश्व मन माहीं

इसी दुःख के दाह से मेरी छाती नित्य जलती है, दिन में भूख नहीं लगती और रात में नींद नहीं आती। इस रोग की दवा नहीं है, मैंने सब संसार को मन में खोज डाला है।

मातु कुमति बढ़ई अघ मूला * तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला
कुलि कुकाठ कर कीन्ह कुजन्त्रू * गाढ़ि अवध पढ़ि कठिन कुमन्त्रू

पापों की जड़ कैकई की कुमति बढ़ई है, उसने मेरा हित बसूला बनाया है। कलह रूपी कुकाठ का कुयन्त्र बनाकर अवधरूपी कुमन्त्र से पढ़कर उसे गाढ़ दिया।

मोहि लगि यह कुठाटु तेहिं ठाटा * घालेसि सब जगु बारहबाटा
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ * बसहिं अवध नहीं आन उपाएँ

उसने मेरे लिए यह कुठाट रचा और जगत् को बारह-बाट (नष्ट) कर दिया। श्रीरामजीके लौटने से ही यह कुयोग मिटेगा और अयोध्यापुरी बसेगी, दूसरे उपाय से पुरी नहीं बसेगी।

भरत बचन सुनि मुनि सुखपाई * सबहिं कीन्ह बहु भाँति बड़ाई
तात करहु जनि सोचु बिसेषी * सब दुखु मिटहिं राम पग देखी

भरतजी के वचन सुनकर मुनि ने सुख पाया और सभी ने उनकी बहुत प्रकार से बड़ाई की। मुनि बोले-हे तात! बहुत सोच मत करो, श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के दर्शन से सब पाप दूर हो जायेंगे।

दोहा—करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु।
कन्द मूल फल फूल हम, देहिं लहु करि छोहु ।।२१२।।

फिर मुनिवर ने समझाकर कहा—अब आप हमारे प्रेम-प्रिय अतिथि बनिये और कन्द-मूल, फल-फूल आदि कुछ हम दें, उसे प्रीतिपूर्वक अंगीकार करिये।

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू * भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी * चरन बन्दि बोले कर जोरी

मुनि के वचन सुनकर भरतजी के मन में चिंता हुई कि बड़े बे-मौके संकोच आ पड़ा, फिर गुरुजनों की वाणी का महत्व समझकर चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोले—

सिरधरि आयसु करिअ तुम्हारा * परम धरम यह नाथ हमारा
भरत बचन मुनिबर मन भाए * सुचि सेवक सिष निकट बोलाए

हे नाथ! आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर कार्य करना चाहिये, यह हमारा परम धर्म है। भरत के वचन मुनिवर के मन को भले लगे, तब उन्होंने सेवकों और शिष्यों को बुलाया।

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई * कन्द मूल फल आनहु जाई

भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए * प्रमुदित निज निज काजु सिधाए

और कहा-भरतजी की पहुँनाई करनी चाहिए, जाकर कंद, मूल, फल ले आओ। हे नाथ 'बहुत अच्छा' कहकर उन्होंने मुनि को सिर नवाया और आनन्दपूर्वक अपना२ काम करने चले।

मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता * तसि पूजा चाहिअ जसि देवता
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं * आयसु होइ सो करहिं गोसाईं

मुनि को चिन्ता हुई कि बड़े पाहुने को न्यौता दिया है, जैसा देवता हो—वैसी ही पूजा होनी चाहिए। यह सुनकर आठों अणिमादिक ऋद्धि-सिद्धि आईं, और बोलीं—हे स्वामी! जो आज्ञा हो—सो करें।

दोहा—रामबिरहँ व्याकुल भरत, सानुज सहित समाज।
पहुँनाई करि हरहु श्रम, कहा मुदित मुनिराज ॥२१३॥

मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा—शत्रुघ्न और समाज सहित भरतजी-श्रीरामजी के वियोग से व्याकुल हो रहे हैं, आतिथ्य-सत्कार करके इनकी थकावट दूर करो।

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी * बड़ भागिनि आपुहि अनुमानी
कहहिं परस्पर सिधि समुदाई * अतुलित अतिथि राम लघु भाई

ऋद्धि-सिद्धियों ने मुनि की आज्ञा शिरोधार्य कर अपने को-बड़भागिनी माना। सब सिद्धियाँ आपस में कहने लगीं कि श्रीरामजी के छोटे भाई भरतजी ऐसे पाहुँने हैं कि इनके समान दूसरा नहीं।

मुनिपद बन्दि करिअ सोइ आजू * होइ सुखी सब राज समाजू
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना * जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना

अतः मुनि के चरणों की बंदना कर आज वही करना चाहिए, जिससे सब राज-समाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन्होंने बहुत से सुन्दर घर बनाये, जिन्हें देखकर विमान भी लजाते थे।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे * देखत जिन्हहिं अमर अभिलाषे
दासीं दास साजु सब लीन्हें * जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें

भोग व ऐश्वर्य के बहुत से पदार्थ उन घरों में भर दिये, जिन्हें देखकर देवता भी अभिलाषा करने लगते हैं। दास-दासियाँ मन के अनुसार सब सामिग्री लिए मन लगाकर ताकते थे।

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं * जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं
प्रथमहिं बास दिये सब केहीं * सुन्दर सुखद जथा रुचि जेहीं

जो सुख-सामिग्री स्वर्ग में स्वप्न में भी नहीं हैं, वह सिद्धियों ने पल भर में वहाँ सजादीं। पहले सबको सुन्दर व सुखदायक, जिसको जैसी रुचि थी, उसको वैसे ही निवास-स्थान दिये।

दोहा—बहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिस्मय दायकु बिभव, मुनिबर तपबल कीन्ह ॥२१४॥

फिर कुटुम्ब समेत भरतजी को निवास दिया, जैसे कि ऋषिराज की आज्ञा थी। ब्रह्मा

को भी आश्चर्य में डालने वाला ऐश्वर्य मुनि ने अपने तपोबल से प्रगट कर दिया ।

मुनि प्रभाव जब भरत बिलोका * सब लघु लगे लोकपति लोका
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी * देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी

अब भरतजी ने मुनि के प्रभाव को देखा, तब सब लोकपालों के लोक उन्हें छोटे लगे । वहाँ की सुख-सामिग्री कही नहीं जा सकती, जिसके देखने से ज्ञानी लोग भी वैराग्य भूल जाते हैं ।

आसन सयन सुबसन बिताना * वन बाटिका बिहँग मृगनाना
सुरभि फूल फल अमिअ समाना * विमल जलाशय बिबिध बिधाना

आसन, सेज, सुन्दर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भाँति-भाँति के पक्षी और पशु, सुगन्धित पुष्प, अमृत के समान फल, विविधि प्रकार के सुन्दर जलाशय--

असन पान सुचि अमिअ अमी से * देखि लोग सकुचात जमी से
सुर सुरभी सुरतरु सबही कें * लखि अभिलाषु सुरेस सची कें

शुद्ध, अमृत-तुल्य खाद्य-पदार्थ जिन्हें देखकर लोग संयमियों के समान संकोच करते हैं । सभी के घरों में कामधेनु व कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र व शची की भी इच्छा होती है ।

रितु बसन्त बह त्रिबिधबयारी * सब कहँ सुलभ पदारथ चारी
स्त्रक चन्दन बनितादिक भोगा * देखि हरष विस्मय बस लोगा

बसन्त ऋतु है, शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन बह रही है, सबको चारों पदार्थ सुलभ हैं । माला, चन्दन और स्त्री आदि के भोग देखकर लोग हर्ष और विस्मय के वश होगये ।

दोहा--सम्पति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ, राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

सम्पत्ति चकवी और भरतजी चकवा हैं, मुनि की आज्ञा बहेलिया है; जिसने रात में आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को बन्द कर रक्खा है । ऐसे ही प्रातः काल हो गया ।

* मास पारायण--उन्नीस विश्राम *

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा * नाइ मुनिहि सिर सहित समाजा
रिष आयसु असीस सिर राखी * करि दण्डवत विनय बहु भाषी

सवेरे भरतजी ने तीर्थराज में स्नान किया और समाज सहित मुनियों को सिर नवा कर आज्ञा पाकर आशीर्वाद सिर चढ़ाकर दण्डवत-प्रणाम करके बहुत विनय की ।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें * चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें
राम सखा कर दीन्हें लागू * चलत देह धरि जनु अनुरागू

फिर चतुर पथ-प्रदर्शकों को साथ लेकर चित्रकूट की ओर मन लगाकर चले । श्रीराम-जी के सखा (गुह) के हाथ में हाथ दिये-भरतजी ऐसे चले जा रहे हैं, मानो प्रेम ही देह धारण कर चला जा रहा हो ।

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया * नेम प्रेम ब्रत धरमु अमाया
लखन राम सिय पन्थ कहानी * पूछत सखहि कहत मृदु बानी

भरतजी के पैरों में जूते हैं, न सिर पर छाया है,प्रेम नियम, व्रत व धर्म निष्कपट है। लक्ष्मण व श्रीसीता-रामजीकी पथ-कहानी निषादराज से पूछते हैं और वह मृदु वाणी से कहता है।

राम बास थल बिटप बिलोकें * उर अनुराग रहत नहिं रोकें
देखि दशा सुर बरषहिं फूला * भइ मृदु महि मगु मंगल मूला

श्रीरामजी के निवास-स्थान व वृक्षों को देख कर भरतजी के हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। यह दशा देखकर देवता पुष्प बरसाने लगे, मार्ग की भूमि कोमल हो गई और मार्ग आनन्ददायक हो गया।

दोहा—किएँ जाहिं छायाँ जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥२१६॥

मेघ छाया किये जाते हैं, सुखदायक सुन्दर पवन बह रही है। श्रीरामचन्द्रजी को भी मार्ग वैसे सुखदायक नहीं हुआ, जैसा कि भरतजी को जाते समय हुआ।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे * जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे
ते सब भए परम पद जोगू * भरत दरस मेटा भव रोगू

मार्ग में बहुत से जड़-चेतन जीव जिन्होंने प्रभु को देखा और जिन्हें प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने देखा था, मोह के हितकारी हो गये थे। परन्तु भरतजी के दर्शन से तो उनका संसार-रूपी रोग ही मिट गया, अर्थात् वे मोक्ष पा गये।

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं * सुमिरत जिन्हहि रामु मनमाहीं
बारक राम कहत जग जेऊ * होत तरन तारन नर तेऊ

भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्रीरामजी स्वयं अपने मन में स्मरण करते हैं। जो जगत् में एक बार भी राम कह लेते हैं, वे तरने तारने वाले हो जाते हैं।

भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता * कस न होइ मगु मंगलदाता
सिद्धि साधु मुनिवर अस कहहीं * भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं

'भरतजी' श्रीरामजी के प्रिय और फिर छोटे भाई हैं, उनको मार्ग आनन्ददायक क्यों न हो? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनिजन ऐसा कहते हुए भरतजी को देखकर मन में प्रसन्न होने लगे।

देखि प्रभाउ सुरसहि सोचू * जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई * रामहि भरतहि भेंट न होई

यह प्रभाव देख इन्द्र को सोच हुआ,संसार भले को भला और बुरे को बुरा है उसने वृहस्पति जी से कहा-हे प्रभु ! वही यत्न कीजिए, जिससे श्रीरामजी और भरतजी का मिलाप न हो।

दोहा—रामु संकोची प्रेमबस, भरतहि सपेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहति, करिअ जतनु जल सोधि ॥२१७॥

श्रीरामजी तो संकोच और प्रेम के वश हैं और भरतजी प्रेम के अथाह समुद्र हैं। बनी बात बिगड़ना चाहती है, अतः कोई हल खोज कर उपाय कीजिए।

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने * सहस नयन बिनु लोचन जाने
मायापति सेवक सन माया * करइ तौ उलटि परइ सुरराया

वह वचन सुनते ही देव-गुरु मुस्कराये । उन्होंने हजार नेत्रों वाले इन्द्र को नेत्रहीन (मूर्ख) ही समझा और बोले–हे देवराज ! मायापति श्रीरामचन्द्रजी के सेवक के साथ जो कोई माया करता है, तो माया उल्टी अपने ही ऊपर पड़ती है ।

तब कछु दीन्ह राम रुख जानी * अब कुचालि कर होइहि हानी
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ * निज अपराध रिसाहिं न काऊ

तव तो श्रीरामचन्द्रजी की इच्छा समझकर कुछ किया था, परन्तु अब कुचाल करने से हानि होगी । हे इन्द्र ! सुनो, श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव ऐसा है कि वे अपने प्रति किसी अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते ।

जो अपराधु भगत कर करई * राम रोष पावक सो जरई
लोकहुँ वेद बिदित इतिहासा * यह महिमा जानत दुरबासा

परन्तु जो भक्त का अपराध करता है–वह श्रीरामजी की क्रोधाग्नि से जल जाता है। लोक और वेद में यह कथा प्रसिद्ध है, इस महिमा को दुर्वासा ऋषि जानते हैं ।

भरत सरिस को राम सनेही * जगु जपु राम रामु जप जेही

श्रीरामजी का प्रेमी भरतजी के बराबर कौन है ? संसार में सभी श्रीरामजी को जपते हैं और श्रीरामजी जिनको जपते हैं ।

दोहा–मनहुँ न आनिअ अमरपति, रघुबर भगत अकाजु ।
अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन लोक समाजु ॥२१८॥

हे इन्द्र ! श्रीराम-भक्त के काम को बिगाड़ने का विचार कभी मन में न लाना । ऐसा करने से लोक में अपयश व परलोक में दुःख होता है तथा रात-दिन शोक समूह की वृद्धि होती है ।

सुनु सुरेश उपदेश हमारा * रामहि सेवकु परम पियारा
मानत सुख सेबक सेवकाई * सेवक बैर बैरु अधिकाई

हे इन्द्र ! मेरा उपदेश सुनो, श्रीरामजी को अपना भक्त बहुत ही प्रिय है । सेवक की सेवा से वे बहुत सुख मानते हैं और सेवक से बैर करने से बड़ा भारी बैर मानते है ।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू * गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू
करम प्रधान विश्व करि राखा * जो जस करइ सो तस फल चाखा

यद्यपि वे समदर्शी हैं–उनमें न राग है, न क्रोध है और न वे किसी का पाप-पुण्य व गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं । उन्होंने संसार में कर्म को ही प्रधान कर रक्खा है, जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है ।

तदपि करहिं सम विषम बिहारा * भगत अभगत हृदय अनुसारा
अगुन अलेप अमान एक रस * रामु सगुन भए भगत प्रेम बस

यद्यपि वे भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार सम व विषम बर्ताव करते हैं। गुण रहित, निर्लिप्त, मान रहित, सदा एक-से रहने वाले श्रीरामजी भक्तों के प्रेम वश सगुण प्रकट हुए हैं।

राम सदा सेवक रुचि राखी * वेद पुरान साधु सुर साखी
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई * करहु भरत पद प्रीति सुहाई

श्रीरामजी तो सदा भक्तों की रुचि को रखते आये है,वेद,पुराण,साधु,देवता यह सब साक्षी हैं। ऐसा जी में जान कपट भाव को दूर करदो और भरतजी के चरणों में निष्कपट प्रीति करो।

दोहा—राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें, जनि डरपहु सुरपाल ॥२१९॥

भरतजी-श्रीरामजी के भक्त हैं, पराया भला चाहने वाले, पराये दुःख से दुःखी और दयालु हैं भरत-भक्तों में शिरोमणि हैं। हे इन्द्र ! उनसे भय मत करो।

सत्यसिन्धु प्रभु सुर हितकारी * भरत राम आयसु अनुसारी
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू * भरत दोषु नहिं राउर मोहू

श्रीरामचन्द्रजी-सत्य-प्रतिज्ञ और देवों का हित करने वाले हैं तथा भरतजी-श्रीरामजी की आज्ञानुसार कार्य करने वाले हैं। तुम अपने स्वार्थ के वश व्याकुल हो रहे हो, भरतजी का दोष नहीं हैं, तुम्हारा ही अज्ञान है।

सुनि सुरबर सुरगुरु बर बानी * भा प्रमोदु मन मिटी गलानी
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ * लगे सराहन भरत सुभाऊ

देवगुरु (बृहस्पति) की सुन्दर वाणी सुन इन्द्र का मन प्रसन्न हो गया और सब चिंता मिट गई। तब इन्द्र भी आनन्दपूर्वक पुष्प वर्षा करके भरतजी के स्वभाव की सराहना करने लगे।

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं * दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं
जबहिं राम कहि लेहिं उसासा * उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा

इस प्रकार भरतजी मार्ग में चले जा रहे है। उनकी दशा देख मुनि और सिद्धजन प्रसन्न होते हैं। भरतजी जब 'राम' कहकर लम्बी साँस लेते हैं, तब मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है।

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना * पुरजन प्रेम न जाइ बखाना
बीच बास करि जमुनहिं आए * निरखि नीरु लोचन जल छाए

उनके वचन सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं, अयोध्यावासियों के प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता। बीच में मुकाम करके यमुनाजी के तट पर आ पहुँचे और जल को देखकर भरतजी के नेत्रों में जल भर आया।

दोहा—रघुबर बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढ़े बिबेक जहाज ॥२२०॥

श्रीरामजी के रङ्ग के समान यमुनाजी के सुन्दर जल को देखकर समाज सहित भरतजी श्रीरामजी के वियोगरूपी समुद्र में डूबते हुए विवेकरूपी जहाज पर चढ़ गये।

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू * भयउ समय सम सबहिं सुपासू
रातहिं घाट घाट की तरनी * आईं अगनित जाहिं न बरनी

उसी दिन यमुना के किनारे वास किया, उस समय वहाँ सबको आराम मिला। रात ही रात में सब घाटों की नावें आ गईं, जोकि अनगिनती थीं, उनका वर्णन नहीं हो सकता।

प्रात पार भए एकहि खेवाँ * तोषे रामसखाँ की सेवाँ
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई * साथ निषादराज दोउ भाई

सबेरे एक खेवे में सब पार होगये, श्रीरामजी के सखा निषादराज की इस सेवा से सब प्रसन्न हुए,फिर स्नान कर, यमुनाजी को सिर नवा निषादराज के सहित दोनों भाई आगे चले।

आगे मुनिबर बाहन आछें * राजसमाज जाइ सबु पाछें
तेहि पाछें दोउ बन्धु पयादें * भूषन बसन बेष सुठि सादें

सबसे आगे मुनिवर वशिष्ठजी की सवारी है, उनके पीछे सब राज-परिवार जा रहा है। उनके पीछे २ दोनों भाई सादा वस्त्राभूषण और सादा वेष में पैदल जा रहे हैं।

सेवक सुहृद सचिव सुत साथा * सुमिरत लखन सीय रघुनाथा
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा * तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा

सेवक, मित्र और मन्त्री के पुत्र साथ हैं, राम-लक्ष्मण और सीताजी का स्मरण करते हुए जा रहे हैं। जहाँ२ श्रीरामजी ने ठहरकर विश्राम किया था, वहाँ २ प्रेम सहित प्रणाम करते हैं।

दोहा—मगवासी नर नारि सुनि, धाम काज तजि धाइ।
　　देखि सरूप सनेहँ बस, मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

मार्ग-वासी नर-नारी सुनकर, घर का काम छोड़कर दौड़ आते हैं और इनके स्वरूप तथा प्रेम को देख अपने जन्म लेने का यह फल पाकर प्रसन्न होते हैं।

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं * रामलखनु सखि होहिं कि नाहीं
बय बपु बरन रूप सोइ आली * सीलु सनेहु सरिस सम चाली

स्त्रियाँ आपस में एक दूसरों से कहती हैं—हे सखी ! क्या यही राम और लक्ष्मण हैं या नहीं ! हे आली ! देह, अवस्था, रंग व रूप तो वैसा ही है और वैसा ही शील, स्नेह तथा चाल भी वैसी ही मिलती है।

बेषु न सो सखि सीय न सङ्गा * आगे अनी चली चतुरङ्गा
नहिं प्रसन्न मन मानस खेदा * सखि सन्देहु होइ एहिं भेदा

परन्तु, हे सखी ! इनका वह वेष नहीं हैं, न सीताजी साथ हैं, इनके आगे तो चतुरंगिणी सेना चली जा रही है। इनके मुख भी प्रसन्न नहीं है, हे सखी ! इस भेद से सन्देह होता है।

तासु तरक तियगन मन मानी * कहहिं सकल तोहि सम न सयानी
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी * बोली मधुर बचन तिय दूजी

उन[illegible] है।

उसकी बड़ाई कर और सच्ची वाणी का आदर कर दूसरी स्त्री मधुर वचन बोली–

कहि सपेम सब कथा प्रसंगू * जेहि बिधि रामरज रस भंगू
भरतहि बहुरि सराहन लागी * सील सनेह सुभाय सुभागी

उसने स्नेह सहित जिस प्रकार श्रीराम के राजतिलक में विघ्न हुआ था, उस कथा का सब प्रसंग सुनाया। फिर सब भरतजी के शील, स्नेह, स्वभाव और सौभाग्य की सराहना करने लगीं-

दोहा–चलत पयादें खात फल, पिता दीन्हि तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि, भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

ये पैदल ही फल खाते हुए, पिता के दिये राज्य को त्यागकर-श्रीरामजी को मनाने के लिए जाते हैं। अतः आज इन भरत के समान धन्य कौन है ?

भायप भगति भरत आचरनू * कहत सुनत दुख दूषन हरनू
जो कछु कहब थोरि सखि सोई * राम बन्धु अस काहे न होई

भाईपन, भक्ति और भरतजी का आचरण कहने–सुनने से दुःख व दोष दूर हो जाते हैं। हे सखी ! जो कुछ कहा जाय–वही थोड़ा है, श्रीरामजी के भाई ऐसे क्यों न हों ?

हम सब सानुज भरतहि देखें * भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं * कैकई जननि जोगु सुत नाहीं

शत्रुघ्न सहित भरतजी के दर्शन करने से हम सब स्त्रियों की गिनती धन्य-पात्रों में हो गई। भरतजी के गुणों को सुनकर और उनकी दशा देखकर सब पछताने लगीं कि कैकई जैसी माता के योग्य यह पुत्र नहीं हैं।

कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन * बिधि सब कीन्ह हमहि जो दाहिन
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी * लघु तिय कुल करतूति मलीनी

कोई कहने लगी-इसमें रानी का कुछ दोष नहीं है, यह सब विधाता ने किया, जो हमसे प्रसन्न है। हम सब लोक और वेद की रीति से अनजान छोटी, कुल और करनी से मलिन स्त्रियाँ-

बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा * कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा
अस अनन्दु अचरजु प्रतिग्रामा * जनु मरु भूमि कलपतरु जामा

जो बुरे देश एवं गाँव में कुठौर रहती हैं और कहाँ यह दर्शन-जो कि हमारे पुण्यों का फल है। ऐसा आनंद व आश्चर्य गाँव२ में हो रहा है, मानो रेतीली भूमि में कल्पवृक्ष जमा हो।

दोहा–भरत दरसु देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२२३॥

भरतजी के दर्शन करने से मार्ग में रहने वाले लोगों के भाग्य खुल गये–मानो सिंहल-द्वीप के रहने वालों को भाग्यवश प्रयागराज सुलभ हो गया हो।

निज गुन सहित राम गुन गाथा * सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा * निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा

अपने गुणों सहित श्रीरामजी के गुणों की कथा सुनते ही श्रीरघुनाथजी का स्मरण करते हुए जारहे हैं। तीर्थ, मुनि-आश्रम और देव-मंदिरों को देखकर स्नान और प्रणाम करते हैं।

मन ही मन माँगहिं बर ऐहू * सीय राम पद पदुम सनेहू
मिलहिं किरात कोल बनबासी * बैखानस बटु जती उदासी

और मन ही मन वह वरदान माँगते हैं कि श्रीसीता-रामजी के चरणकमलों में स्नेह हो। मार्ग में भील, कोल, वनवासी, ब्रह्मचारी, सन्यासी और वैरागी मिलते हैं।

करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही * केहि बन लखनु राम बैदेही
ते प्रभु समाचार सब कहहीं * भरतहि देखि जनम फलु लहहीं

उन्हें प्रणामकर जिस-जिससे पूछते हैं कि लक्ष्मण, सीता व श्रीरामजी किस वन में हैं? वे प्रभु के सब समाचार कह देते हैं और भरतजी के दर्शन कर अपने जन्म का फल पाते हैं।

जे जन कहहिं कुशल हम देखे * ते प्रिय राम लखन सम लेखे
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी * सुनत राम बनवास कहानी

जो लोग कहते हैं कि हमने उनको सकुशल देखा है वे भरतजी को श्रीराम-लक्ष्मण के समान प्यारे लगते हैं। इस प्रकार वे सबसे मधुर वाणी से पूछते और राम वनवास की कथा सुनते जाते हैं।

दोहा—तेहि बासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
रामदरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

उस दिन वहाँ वास करके सवेरे ही श्रीरघुनाथजी का स्मरण करके चले। श्रीरामजी के दर्शन की लालसा सब लोगों को भी भरतजी के ही समान थी।

मङ्गल सगुन होहिं सब काहू * फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू
भरतहि सहित समाज उछाहू * मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू

सबको शुभ-शकुन होने लगे—सुखदायक नेत्र व भुजायें फड़कने लगीं। भरतजी को समाज सहित उत्साह हुआ कि श्रीरामजी मिलेंगे और दुःख का दाह मिट जायगा।

करत मनोरथ जस जियँ जाके * जाहिं सनेह सुधा सब छाके
सिथिल अङ्ग पग डगमग डोलहिं * बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं

जिसके जी में जैसा है, वैसा ही मनोरथ करता है, सब स्नेह रूपी अमृत से छके हुए चले जाते हैं। अंग शिथिल हैं, चलते समय पाँव डगमगाते हैं और प्रेम के कारण अटपटे वचन बोलते हैं।

रामसखाँ तेहि समय देखावा * सैल सिरोमनि सहज सुहावा
जासु समीप सरित पय तीरा * सीय समेत बसहिं दोउ बीरा

उसी समय राम-सखा गुह ने पर्वतों में शिरोमणि स्वाभाविक सुहावना चित्रकूट-पर्वत दिखलाया। उसके समीप मंदाकिनी नदी के किनारे सीता सहित दोनों भाई निवास करते हैं।

देखि करहिं सब दण्ड प्रनामा * कहि जय जानकि जीवन रामा

प्रेम मगन अस राज समाजू * जनु फिरि अवध चले रघुराजू

उस पर्वत का दर्शन कर सब लोग 'जानकी-जीवन श्रीरामजी की जय हो' यह करकर दंडवत करने लगे । सब अयोध्यावासी प्रेम में मग्न हैं, मानो श्रीरामजी अयोध्या को लौट चले हों।

दोहा—भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु ।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु ॥२२५॥

भरतजी का उस समय जैसा प्रेम था, उसे शेषजी भी नहीं कह सकते, फिर कवि के लिए तो अगम ही है । जैसे अहंकार और ममता के मलिन मनुष्य को ब्रह्म-सुख ।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें * गए कोस दुइ दिनकर ढरकें
जलु थलु देखि बसे निसि बीते * कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते

श्रीराम-प्रेम में सब ऐसे शिथिल थे कि सूर्यास्त होने तक दो ही कोस चल पाये फिर जल व अच्छा स्थान देखकर वहाँ ठहर गये, रात बीत जाने पर श्रीरघुनाथजी के प्रेमी वहाँ से चले।

उहाँ राम रजनी अवसेषा * जागे सीयँ सपन अस देखा
सहित समाज भरत जनु आए * नाथ बियोग ताप तनु ताए

उधर श्रीरामजी कुछ रात शेष रहने पर जागे और सीताजी ने ऐसा स्वप्न देखा कि स्वामी के वियोग से देह तपाये सब समाज सहित भरतजी आये हैं।

सकल मलिन मन दीख दुखारी * देखीं सासु आन अनुहारी
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन * भए सोचबस सोच बिमोचन

सब लोग मलिन, दीन और दुःखी हैं, सासुओं को और ही रूप में देखा। सीता का स्वप्न सुनकर श्रीरामजी के नेत्रों में जल भर आया और सोच का नाश करने वाले प्रभु सोच के वश हो गये ।

लखन सपन यह नीक न होई * कठिन कुचाल सुनाइहि कोई
अस कहि बन्धु समेत नहाने * पूजि पुरारि साधु सनमाने

और बोले--हे लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं है, कोई बड़ा कुसमाचार सुनावेगा। इस प्रकार कह कर स्नान किया और शिवजी की पूजा करके साधुओं का सम्मान किया ।

छन्द—सनमानि सुर मुनि बन्दि बैठे उतर दिसि देखत भए ।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए ॥
तुलसी उठे अबलोकि कारनु काह चित सोचत रहे ।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

देवता व मुनियों का सम्मान कर उन्हें प्रणाम करके बैठे और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे । आकाश में धूल उड़ रही है,बहुत से पशु-पक्षी भागते हुए घबड़ा कर प्रभु के आश्रम पर जा रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह देख कर श्रीरामजी उठे और सोचा कि क्या कारण है ? मन में आश्चर्य युक्त हुए, उसी समय कोल-भीलों ने आकर सब समाचार कहा।

सो०–सुनत सुमङ्गल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर ।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर मंगल-वचन सुनते ही श्रीरामजी के मन में प्रसन्नता छा गई, शरीर में रोमांच हो आया, शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र प्रेमाश्रुओं में भर गये ।

बहुरि सोचबस भे सियरवनू * कारन कवन भरत आगवनू
एक आइ अस कहा बहोरी * सेन संग चतुरंग न थोरी

फिर श्रीरघुनाथजी सोच में पड़ गये कि भरतजी के यहां आने का क्या कारण है ? फिर एक ने आकर कहा कि भरतजी के साथ में बहुत-सी चतुरङ्गिनी सेना है ।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू * इत पितु बचन उत बंधु सँकोचू
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं * प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं

यह सुनकर श्रीरामजी को बहुत सोच हुआ कि इधर तो पिताजी का वचन, उधर भाई का संकोच। भरत के स्वभाव को समझकर प्रभुके जी में और कोई कारण स्थिरता नहीं पाता ।

समाधान तब भा यह जाने * भरतु कहे महुँ साधु सयाने
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू * कहत समय सम नीति बिचारू

तब यह जानकर समाधान हुआ कि भरत मेरे कहने में और सीधे व चतुर हैं । लक्ष्मणजी ने प्रभु के हृदय में चिन्ता देखी, तब समयानुसार नीति का विचार कर कहने लगे–

बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं * सेवकु समय न ढीठ ढिठाई
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी * आपनि समुझि कहउँ अनुगामी

हे गोसाईं ! आपसे बिना पूछे कुछ कहता हूं, समय पर ढिठाई करने से सेवक ढीठ नहीं समझा जाता । हे स्वामी ! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं, मैं सेवक तो अपनी समझ के अनुसार कहता हूं ।

दोहा–नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ, जानिअ आपु समान ॥२२७॥

हे नाथ ! आप स्वच्छ-हृदय, कोमल स्वभाव के हैं, शील और स्नेह से परिपूर्ण हैं । आप सभी लोगों पर प्रेम और विश्वास रखते हैं और अपने हृदय में सबको अपने समान जानते हैं ।

विषयी जीव पाइ प्रभुताई * मूढ़ मोह बस होहिं जनाई
भरतु नीति रत साधु सुजाना * प्रभु पद प्रेम सकल जगु जाना

परन्तु विषयी-जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने को प्रकट कर देते हैं । भरतजी तो नीतिज्ञ, साधु और ज्ञानवान हैं तथा प्रभु के चरणों में प्रेम करने वाले हैं, यह सब जगत् जानता है ।

तेऊ आजु राज पद पाई * चले धरम मरजाद मेटाई
कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी * जानि राम बनबास एकाकी

वह भरतजी आज राजपद पाकर धर्म की मर्यादा को मिटाकर चले हैं । कपटी व खोटे भाई

भरतजी ने बुरा समय देखकर श्रीरामचन्द्रजी को वन में अकेला जानकर—

करि कुमन्त्र मन साजि समाजू * आए करन अकण्टक राजू
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई * आए दल बटोरि दोउ भाई

कुविचार करके, सेना सजा कर राज्य निष्कण्टक करने आये हैं। दोनों भाई करोड़ों भाँति की कुटिलता करके सेना एकत्रित करके आये हैं।

जौं जियँ होति न कपट कुचाली * केहि सोहाति रथ बाजि गजाली
भरतहि दोषु देइ को जाएँ * जग बौराइ राजु पद पाएँ

जो मन में कपट और कुचाल न होती तो रथ, घोड़े व हाथियों की पंक्ति किसे अच्छी लगती? भरत को वृथा दोष कौन दे? राज-पाट पा जाने पर संसार बौरा जाता है।

दोहा—ससि गुरुतिय गामी नहुष, चलेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा, अधम न बेन समान ॥२२८॥

चन्द्रमा गुरु-पत्नी गामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी में चढ़ा। वेणु के समान अधम कौन है, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हुआ?

सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू * केहि न राजमद दीन्ह कलंकू
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ * रिपु रिन रंच न राखब काऊ

सहस्त्रबाहु, इन्द्र और त्रिशंकू, किसको राज-मद ने कलङ्क नहीं लगाया? भरत ने यह अच्छा उपाय सोचा है, क्योंकि शत्रु और ऋण कभी थोड़ा भी नहीं रखना चाहिए।

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई * निदरे रामु जानि असहाई
समुझिपरिहि सोउ आजु बिसेषी * समर सरोष राम मुखु पेखी

भरत ने एक ही काम भला नहीं किया कि असहाय जानकर आपका निरादर किया। समर में श्रीरामजी का क्रोधित मुख देखेंगे तब आज भली प्रकार इन्हें समझ पड़ेगा।

इतना कहत नीति रस भूला * रन रस बिटपु पुलक मिस फूला
प्रभु पद बन्दि सीस रज राखी * बोले सत्य सहज बलु भाषी

इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीति भूल गये और वीर-रस का वृक्ष देह में पुलकावली के बहाने से फूल उठा। श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की वन्दना करके, चरण-रज मस्तक पर रखकर अपने सच्चे स्वाभाविक बल से बोले—

अनुचित नाथ न मानव मोरा * भरत हमहि उपचार न थोरा
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारें * नाथ साथ धनु हाथ हमारें

हे नाथ! मेरे कहने को अनुचित न मानियेगा, भरत ने हम लोगों से थोड़ी छेड़-छाड़ नहीं की है। कहाँ तक सहा जाय और मन मारे रहा जाय? जब साथ हमारे नाथ हैं और फिर धनुष हमारे हाथ में है।

दोहा—छत्रि जाति रघुकुल जनमु, राम अनुज जगु जान।

लातहुँ मारें चढ़त सिर, नीच को धूरि समान ॥२२९॥

क्षत्रिय जाति, रघुवंश में जन्म और फिर श्रीरामचन्द्रजी का अनुगामी हूँ, यह संसार जानता है। धूल के समान नीच कौन है, जो लात मारने पर भी सिर पर चढ़ती है?

उठि करि जोरि रजायसु भागा * मनहुँ बीररस सोवत जागा
बाँधि जटासिर कसि कटि भाथा * साजि सरासनु सायकु हाथा

ऐसा कहकर लक्ष्मणजी उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी, मानो वीर-रस सोते से जगा हो। सिर पर जटा बाँध कर, कमर में तरकस कसकर, धनुष चढ़ाकर, हाथ में वाण लेकर बोले—

आजु राम सेवक जसु लेऊँ * भरतुहि समर सिखावन देऊँ
राम निरादर कर फलु पाई * सोवहूँ समर सेज दोउ भाई

आज मैं श्रीरामजी के सेवक होने का यश लूंगा और युद्ध में भरतजी को शिक्षा दूंगा। श्रीरामजी का निरादर करने का फल प्राप्त कर दोनों भाई रण-सेज पर सोवेंगे।

आइ बना भल सकल समाजू * प्रगट करउँ रिसि पाछिल आजू
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू * लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू

सब समाज एकत्र होकर आया है, यह अच्छा संयोग बन पड़ा है, पिछला क्रोध आज प्रगट करूंगा। जिस प्रकार से हाथियों के झुण्ड को सिंह अकेला ही संहार करता है और बाज बटेर को लपट लेता है।

तैसेहिं भरतहि सेन समेता * सादर निदरि निपातउँ खेता
जौं सहाय कर शङ्कर आई * तौ मारउँ रन राम दोहाई

उसी तरह सेना समेत भरत और शत्रुघ्न को निरादर कर रणभूमि में गिरा दूंगा। जो शिवजी भी आकर सहायता करेंगे तो श्रीरामजी की सौगन्ध है, उन्हें भी मार डालूंगा।

दोहा—अति सरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहति भँभरि भगान ॥२३०॥

अत्यन्त क्रोध में लक्ष्मणजी को देखकर और प्रमाणिक शपथ सुनकर सब लोक और लोकपाल डर गये, वे घबड़ाकर भागना चाहते हैं।

जगु भय मगन गगन भइ बानी * लखन बाहुबल बिपुल बखानी
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा * को कहि सकइ को जाननिहारा

जगत् में डर छा गया, तब लक्ष्मणजी के बाहुबल की बहुत बड़ाई करती हुई आकाशवाणी हुई कि हे तात! तुम्हारे तेज और प्रताप को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है?

अनुचित उचित काजु किछु होऊ * समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ
सहसा करि पाछें पछिताहीं * कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं

अनुचित उचित कोई भी काम समझकर करने से सब लोग भला कहते हैं और सहसा बिना

विचारे जो कार्य करते हैं, वे पीछे पछताते हैं। वेद पंडित कहते हैं कि वे बुद्धिमान नहीं हैं।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने * राम सीयँ सादर सनमाने
कही तात तुम्ह नीति सोहाई * सब तें कठिन राजमदु भाई

वेद-वाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये, तब श्रीरामजी व सीताजी ने आदर सहित उनका सम्मान किया और कहा-हे तात ! तुमने सुन्दर नीति कही। हे भाई ! राज-मद सबसे कठिन है।

जो अचवँत नृप मातहिं तेई * नाहिन साधुसभा जेहिं सेई
सुनहु लखन भल भरत सरीखा * बिधि प्रपञ्च महँ सुना न दीखा

उस राज्य को पाने से वे ही मतवाले हो जाते हैं, जिन्होंने साधु-समाज का सेवन नहीं किया। हे लक्ष्मण ! सुनो, ब्रह्माजी की सृष्टि में भरत के समान उत्तम पुरुष न सुना है, न देखा है।

दोहा–भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँकि काँजी सीकरन्ह, क्षीरसिन्धु बिनसाइ ॥२३१॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी का पद पाने पर भी भरत को राज्य-मद नहीं हो सकता। क्या काँजी की बूँदों से भी क्षीर-सागर फट सकता है ?

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई * गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी * सहज छमा बरु छाँड़ै छोनी

अंधकार चाहे दोपहर के सूर्य को छिपा दे, आकाश चाहे मेघों में समा जाय, गाय के खुर के बराबर जल में चाहे अगस्त्यजी डूब जायँ, पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमता को छोड़ दे।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई * होइ न नृपमदु भरतहि भाई
लखन तुम्हार शपथ पितु आना * सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना

मच्छर की फूँक से चाहे सुमेरु पर्वत उड़ जाय, परन्तु भरत को राज्य-मद नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शपथ और पिताजी की आन करके कहता हूँ कि भरत के समान पवित्र और भला भाई संसार में नहीं है।

सगुनु छीरु अवगुन जलु ताता * मिलइ रचइ परपंच बिधाता
भरत हंस रबिबंस तड़ागा * जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा

गुणरूपी दूध और अवगुणरूपी जल को मिलाकर, हे भाई ! ब्रह्मा ने सृष्टि को रचा है। रघुवंशरूपी तालाब में हँस रूपी भरतजी ने जन्म लेकर गुण और दोष को अलग २ कर दिया है।

गहि गुनपय तजि अवगुन बारी * निजजस जगत कीन्हि उजियारी
कहत भरत गुन सील सुभाऊ * प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ

भरत ने गुणरूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुण रूपी जल को त्यागकर, जगत में अपने यश का प्रकाश कर दिया। भरत के गुण तथा शील स्वभाव को कहते-कहते श्रीरघुनाथजी प्रेम में मग्न हो गये।

दोहा–सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।

सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु ॥२३२॥

देवता-श्रीरघुनाथजी की वाणी सुन और उनका भरतजी पर स्नेह देखकर सभी बड़ाई करने लगे कि श्रीरामजी के समान दया का स्थान और कौन है ?

जौं न होत जग जनम भरत को * सकल धरम धुरि धरनि धरत को
कबिकुल अगम भरत गुनगाथा * को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा

यदि संसार में भरत का जन्म न होता तो पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्म की धुरी को कौन धारण करता ? भरतजी के गुणों की कथा कविजनों को अगम्य है । हे प्रभु ! उसे आपके सिवाय और कौन जान सकता है ?

लखन रामसियँ सुनि सुरबानी * अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी
इहाँ भरतु सब सहित सुहाए * मन्दाकिनी पुनीत नहाए

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी तथा सीताजी ने देवताओं की वाणी सुनकर बहुत सुख प्राप्त किया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इधर भरतजी ने सबके साथ सुहावनी मंदाकिनी नदी के पवित्र जल में स्नान किया ।

सरित समीप राखि सब लोगा * मागि मातु गुरु सचिव नियोगा
चले भरतु जहँ सिय रघुराई * साथ निषादनाथु लघु भाई

नदी के निकट सब लोगों को छोड़ कर माता, गुरु व मन्त्री की आज्ञा लेकर भरतजी–निषादराज गुह और शत्रुघ्न को साथ ले जहाँ सीताजी तथा रघुनाथजी थे–वहाँ चले ।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं * करत कुतरक कोटि मन माहीं
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ * उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ

भरत माता की करनी को समझकर सकुचाते हैं और मन में अनेकों तरह के विचार करते हैं । श्रीरामजी लक्ष्मणजी, सीताजी-मेरा नाम सुन, स्थान छोड़कर दूसरे स्थान को न चले जायँ ।

दोहा–मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

मुझे माता के मत में मानकर श्रीरामजी जो कुछ करें सो थोड़ा है । परन्तु वे मेरे दोष व अवगुण को क्षमा कर, अपनी ओर समझकर मेरा आदर ही करेंगे ।

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी * जौं सनमानहिं सेवकु मानी
मोरें सरन रामहि की पनही * राम सुस्वामि दोषु सब जनही

चाहे मुझे मलिन जानकर त्याग दें, चाहे अपना दास मानकर आदर करें, मैं तो श्रीरामजी की जूतियों की शरण में हूँ । श्रीरामजी तो अच्छे स्वामी हैं, सब दोष तो मुझ सेवक का ही है ।

जग जस भाजन चातक मीना * नेम प्रेम निज निपुन नवीना
अस मन गुनत चले मग जाता * सकुच सनेहँ सिथिल सब गाता

जगत में पपीहा व मछली यश के पात्र हैं, जो नेम व प्रेम को नया बनाये रखने में निपुण

है ! ऐसा सोचते हुए भरतजी मार्ग में चल रहे हैं, संकोच और स्नेह से अंग शिथिल हो गये हैं।

फेरत मनहुँ मातु कृत खोरी * चलत भगति बल धीरज धोरी
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ * तब पथ परत उताइल पाँऊ

माता की बुराई मानो उन्हें पीछे लोटाती है, परन्तु भक्ति-बल से धीरज धर आगे चलते हैं। जब श्रीरघुनाथजी के स्वभाव को विचारते हैं, तब उनके पाँव जल्दी २ मार्ग में पड़ते हैं।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी * जल प्रवाहँ जल अलगति जैसी
देखि भरत कर सोचु सनेहू * भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू

भरतजी की दशा उस समय कैसी है, जैसे पानी के प्रवाह में जल के भँवर की गति होती है। भरतजी का सोच और स्नेह देखकर निषादराज गुह उस समय विदेह हो गया।

दोहा—लगे होन मङ्गल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु ॥२३४॥

सुन्दर मङ्गल शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर व समझकर निषाद ने कहा-सोच मिटेगा, आनन्द होगा, परन्तु फिर अन्त में दुःख होगा।

सेवक बचन सत्य सब जाने * आश्रम निकट जाइ निअराने
भरत दीख बन सैल समाजू * मुदित क्षुदित जनु पाइ सुनाजू

सेवक के सब वचन भरतजी ने सत्य जाने, इतने में आश्रम के समीप जा पहुँचे। भरतजी वन और पर्वत के समूह को देख ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे भूखा अन्न को पाकर होता है।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी * त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी
जाइ सुराज सुदेस सुखारी * होंहिं भरत गति तेहि अनुहारी

जिस प्रकार प्रजा इन, तीनों प्रकार के दुःख और कुग्रहों से पीड़ित होकर अच्छे देश में जाकर सुखी हो जाय, ठीक उसी के अनुसार भरतजी की गति हुई।

राम बास बन सम्पति भ्राजा * सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा
सचिव बिरागु बिबेक नरेशू * बिपिन सुहावन पावन देसू

श्रीरघुनाथजी के रहने से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है, जैसे अच्छे राजा की प्रजा सुखी होती है। वैराग्य मन्त्री है और सुन्दर वन ही पवित्र देश है।

भट जम नियम सैल रजधानी * शान्ति सुमति सुचि सुन्दर रानी
सकल अङ्ग सम्पन्न सुराऊ * राम चरन आश्रित चितु चाऊ

यम व नियम, योद्धा, पर्वत राजधानी, शांति और सुबुद्धि—सुन्दर पवित्र रानियाँ हैं। सब अंगों से परिपूर्ण वह राजा श्रीरामजी के चरणों के आसरे रहने से मन में आनन्दित रहता है।

दोहा—जीति मोह महिपाल दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकण्टक राजपुर, सुख सम्पदा सुकालु ॥२३५॥

विवेकरूपी राजा मोहरूपी राजा को उसके दल-बल सहित जीतकर निष्कण्टक राज्य करता है। उसके नगर में सदा सुख-शांति और सुकाल रहता है।

वन प्रदेश मुनि बास घनेरे * जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना * प्रजा समाजु न जाइ बखाना

वन के बीच मुनियों के बहुत से आश्रम ही मानो शहर, कस्बा, गाँव व खेरे हैं और बहुत से रङ्ग-बिरंगे पक्षी व हिरन आदि ही प्रजागण हैं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

खगहा करि हरि बाघ बराहा * देखि महिष वृष साजु सराहा
बयरु बिहाइ चरहिं एक सङ्गा * जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरङ्गा

गैंडा,हाथी,सिंह,बाघ,सूअर, बैल,भैंसे और भेड़िये इनके समूह देखने और सराहने योग्य हैं। ये वैर को छोड़कर एक साथ जहां-तहां बिचरते हैं, यही मानो चतुरंगिनी सेना है।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं * मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं
चक चकोर चातक शुक पिकगन * कूजत मंजु मराल मुदित मन

पानी के झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं ये मानो अनेक प्रकार के नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता व कोयलों के समूह तथा हंस प्रसन्न मन से गूंज रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा * जनु सुराज मङ्गल चहुँ ओरा
बेलि बिटप तृन सफल सफूला * सब समाज मुद मङ्गल मूला

भौंरों के झुण्ड गुञ्जार रहे हैं, मानो स्वराज्य में चारों ओर आनन्द हो रहा है लतायें वृक्ष और घास सब फल-फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनन्द-मङ्गल से पूर्ण है।

दोहा—राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेमु।
तापस तपफल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

श्रीरामजी के पर्वत की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हुआ, जैसे तपस्वी नियम समाप्त होने पर तपस्या का फल पाकर सुखी होता है।

* मास पारायण—बीसवां विश्राम, नवान्ह पारायण—पांचवां विश्राम *

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई * कहेउ भरत सन भुजा उठाई
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला * पाकरि जम्बु रसाल तमाला

तब केवट ऊंचे पर चढ़ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा—हे नाथ! देखो ये जो पाकर, जामुन, आम और तमाल आदि के विशाल वृक्ष दीखते हैं—

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य वटु सोहा * मञ्जु बिसाल देखि मनु मोहा
नील सघन पल्लव फल लाला * अबिरल छाँह सुखद सबकाला

इन सुन्दर वृक्षों के बीच में एक बड़ा शोभायमान बड़ का वृक्ष है, जिसे देखकर मन मोह जाता है। उसमें नीले रंग के घने पत्ते, लाल फल और सब ऋतुओं में सुखदायी घनी छाया है।

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी * बिरची बिधि सँकेलि सुखमासी

ए तरु सरित समीप गोसाँई * रघुबर परन कुटी जहँ छाई

मानो शोभा को एकत्रित करके विधाता ने अन्धकार और ललाई का सुन्दर ढेर रच दिया हो। हे गुसाई! यह वृक्ष नदी के समीप है जहाँ श्रीरघुनाथजी की पर्णकुटी छाई है।

तुलसी तरुवर बिबिध सोहाए * कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए
बट छायाँ बेदिका बनाई * सियँ निज पानि सरोज सुहाई

वहाँ तुलसी के बहुत से सुन्दर वृक्ष कहीं सीताजी ने और कहीं लक्ष्मणजी ने लगाये हैं। वट-वृक्ष की छाया में सीताजी ने अपने कर-कमलों से सुहावनी वेदी बनाई है।

दोहा–जहाँ बैठि मुनिगन सहित, नित सियरामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥२३७॥

जहाँ नित्य मुनिगणों सहित सुजान श्रीसीता-रामजी बैठकर इतिहास, वेदशास्त्र और पुराणों की सब कथायें सुना करते हैं।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी * उमगे भरत बिलोचन बारी
करत प्रनाम चले दोउ भाई * कहत प्रीति सारद सकुचाई

सखा के वचन सुन और उस वृक्ष को देखकर भरतजी के नेत्रों में जल भर आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले, उनके स्नेह का वर्णन करते हुए सरस्वतीजी भी सकुचाती हैं।

हरषहिं निरखि राम पद अङ्का * मानहुँ पारसु पायउ रङ्का
रजसिरधरि हियँ नयनन्हि लावहिं * रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं

श्रीरामजी के चरण-चिन्ह देखकर दोनों ऐसे प्रसन्न होते हैं–मानो कंगाल ने पारस पा लिया हो। चरण-रज मस्तक पर चढ़ाकर हृदय और नेत्रों से लगाकर ऐसे सुख पाते हैं–मानो श्रीरामचन्द्रजी से मिलाप होगया हो।

देखि भरत गति अकथ अतीवा * प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा
सखहि सनेह बिबस मग भूला * कहि सुपन्थ सुर बरषहिं फूला

भरतजी की अकथनीय दशा देख पशु,पक्षी,जड़जीव प्रेम-मग्न होगये। सखा निषादराज भी प्रेम से विवश होकर मार्ग भूल गया, तब देवता-उत्तम मार्ग बतलाकर पुष्प बरसाने लगे।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे * सहज सनेहु सराहन लागे
होत न भूतल भाउ भरत को * अचर सचर चर अचर करत को

यह देख सिद्ध और साधक लोग भी प्रेम-मग्न होगये,उस प्रेम की बड़ाई करने लगे कि यदि पृथ्वी पर भरतजी का प्रेम न होता तो जड़ को चैतन्य व चैतन्य को जड़ कौन करता?

दोहा–प्रेम अमिय मन्दरु बिरहु, भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥२३८॥

वियोगरूपी मन्दराचल मथकर भरतरूपी गहरे समुद्र से देवता और साधजनों के निमित्त स्वयं श्रीरघुनाथजी ने प्रेमरूपी अमृत को उत्पन्न किया।

सखा समेत मनोहर जोटा * लखेउ न लखन सघन बट ओटा
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन * सकल सुमङ्गल सदनु सुहावन

सखा निषादराज समेत इस मनोहर जोड़ी को सघन-वन की आड़ के कारण लक्ष्मणजी नहीं देख पाये। भरतजी ने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के पवित्र तथा सम्पूर्ण आनन्द-मंगलों के धाम (आश्रम) को देखा।

करत प्रबेस मिटे दुख दावा * जनु जोगी परमारथु पावा
देखे भरत लखन प्रभु आगे * पूँछे बचन कहत अनुरागे

आश्रम में पहुँचते ही भरतजी का दुःख-दाह शांत हो गया, मानो योगी ने परम तत्व प्राप्त किया हो। भरतजी ने लक्ष्मणजी को प्रभु के समक्ष खड़े प्रेम से पूछे हुए वचन कहते हुए देखा।

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे * तून कसें कर सर धनु काँधे
बेदी पर मुनि साधु समाजू * सीय सहित राजत रघुराजू

सिर पर जटा हैं, कमर में मुनियों के से वस्त्र बँधे हैं, तर्कस कसे, हाथ में बाण और कन्धे पर धनुष है। वेदी पर मुनि व साधु-मण्डली और सीताजी सहित श्रीरघुनाथजी विराजमान हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा * जनु मुनि बेष कीन्ह रति कामा
कर कमलन्हि धनु सायकु फेरत * जिय की जरनि हरत हँसि हेरत

बल्कल वस्त्र पहिने, जटा धारण किये, श्याम शरीर वाले श्रीसीता-रामजी ऐसे शोभायमान थे, मानो रति और कामदेव ने मुनि रूप धारण किया हो। कर-कमल को धनुष-बाण पर फेरते हुए हँसकर देखते ही वे हृदय की जलन को हर लेते हैं।

दोहा—लसत मंजु मुनि मण्डली, मध्य सीय रघुचन्दु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें, भगति सच्चिदानन्दु ॥२३९॥

उस सुन्दर मुनि मण्डली के बीच श्रीसीता और श्रीरघुनाथजी ऐसे सुशोभित हैं, मानो भक्ति और सच्चिदानन्द साक्षात् शरीर धारण किये, ज्ञान की सभा में विराजमान हैं।

सानुज सखा समेत मगन मन * बिसरे हरष सोक सुख दुख गन
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं * भूतल परे लकुट की नाईं

भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज सहित भरतजी प्रेम मग्न हो गये। हर्ष, शोक, सुख, दुःख सब भूल गये। 'हे नाथ! हे गुसाईं! रक्षा करिये, रक्षा करिये।' ऐसा कहकर वे पृथ्वी पर दण्ड की तरह गिर पड़े।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने * करत प्रनामु भरत जियँ जाने
बन्धु सनेह सरिस एहि ओरा * उत साहिब सेवा बस जोरा

स्नेहपूर्ण वचनों से लक्ष्मणजी ने पहिचान लिया और भरतजी को प्रणाम करते हुए मन में जान लिया। इधर तो भरतजी का सुन्दर स्नेह और स्वामी-सेवा की प्रबल परवशता।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई * सुकबि लखन मन की गति भनई
रहे राखि सेवा पर भारू * चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू

न मिलते ही बनता है, न छोड़ते ही। कोई श्रेष्ठकवि ही लक्ष्मणजी के मनकी गतिको वर्णनकर सकता है। वे सेवा पर भार रखकर रह गये, जैसे चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी खींच रहा हो।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा * भरत प्रनाम करत रघुनाथा
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा * कहुँ पट कहुँ निषङ्ग तनु तीरा

वे श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाकर प्रेम सहित बोले—हे श्रीरघुनाथजी। भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनकर प्रेम में अधीर हो श्रीरामजी उठे तो-कहीं वस्त्र, कहीं तर्कस कहीं धनुष और कहीं तीर गिरा।

दोहा—बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान।
भरत रामकी मिलनि लखि, बिसरे सबहि अपान ॥२४०॥

दयानिधान श्रीरामजी ने उनको बरजोरी उठाकर हृदय से लगा लिया। भरतजी और श्रीरामजी के उस मिलाप को देखकर सब अपने आपको भूल गये।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी * कबिकुल अगम करम मन बानी
परम प्रेम पूरन दोउ भाई * मन बुधि चित अहमिति बिसराई

मिलाप का प्रेम कैसे बखाना जाय ? वह मन, कर्म और वाणी से कवियों को अगम है। मन, बुद्धि, चिता और अहंकार को भुलाकर दोनों परम प्रेम में मग्न हो गये।

कहहु सप्रेम प्रगट को करई * केहि छाया कबि मति अनुसरई
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा * अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा

कहिये, उस उत्तम प्रीति को कौन प्रकट करे, कविकी मति किसकी छाया का अनुसरण करे ? कवि को तो अक्षरों के अर्थ का सच्चा बल है, नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है ?

अगम सनेह भरत रघुबर को * जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती * बाज सुराग कि गाँडर ताँती

भरत और श्रीरामजीका स्नेह अगम्य है, जहां ब्रह्मा, विष्णु, महेश का भी मन नहीं जा सकता, उस प्रेम को मैं कुमति किस प्रकार कहूँ ? क्या गांडर की तांत से सुन्दर राग बज सकता है ?

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की * सुरगन सभय धकधकी धरकी
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे * बरषि प्रसून प्रसंसन लागे

भरतजी व श्रीरामचन्द्रजी का मिलन देखकर देवगणों की छाती भय के मारे धड़कने लगी। जब देवगुरु बृहस्पतिजी ने समझाया, तब वे जड़-मति जागे और पुष्प बरसाकर प्रशंसा करने लगे।

दोहा—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

फिर प्रेम के साथ शत्रुघ्नजी से मिलकर श्रीरामजी ने केवट से भेंट की। प्रणाम करते हुए लक्ष्मणजी से भरतजी बड़े प्रेम से मिले।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई * बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई

पुनि मुनिगन दोउ भाइन्ह बन्दे * अभिमत आसिष पाइ अनन्दे

तब लक्ष्मणजी लपककर छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले, फिर निषाद को हृदय से लगा लिया। फिर दोनों भाइयों ने मुनि को प्रणाम किया और मन-माना आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए।

सानुज भरत उमँगि अनुरागा * धरि सिर सियपद पदुम परागा
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए * सिर कर कमल परसि बैठाए

शत्रुघ्न समेत भरतजी स्नेह से उमङ्गकर सीताजीके चरणारविंदोंकी रजको सिरपर चढ़ाकर बारम्बार प्रणाम करने लगे! सीताजी ने उन्हें अपने कर-कमल से स्पर्श कर दोनों को बैठाया।

सीय असीष दीन्हि मन माँही * मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं
सब बिधि सानुकूल लखि सीता * भे निसोच उर अपडर बीता

सीताजी ने मनही मन आशीर्वाद दिया, क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें देह की सुध नहींहै। सब प्रकार से सीताजी को अनुकूल देख भरतजी के हृदय का सोच व कल्पित डर नष्ट होगया।

कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूँछा * प्रेम भरा मन निज गति छूँछा
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि * जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि

उस समय न तो कोई कुछ कहता है और न कोई कुछ पूछता है। मनमें प्रेम होने के कारण वह अपनी गति से खाली है। उस समय गुह ने धैर्य धरकर हाथ जोड़ प्रणाम करके विनती की-

दोहा—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुरलोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये बिकल बियोग ॥२४२॥

हे नाथ! मुनिनाथ के साथ सब मातायें, सब नगरवासी, सेवक, सेनापति, मन्त्री आदि सब लोग विरह से व्याकुल होकर आये हैं।

सील सिन्धु सुनि गुर आगवनू * सिय समीप राखे रिपुदवनू
चले सबेग राम तेहि काला * धीर धरमधुर दीनदयाला

शील के समुद्र श्रीरामजी ने गुरु का आगमन सुनकर सीताजी के निकट शत्रुघ्नजी को रख दिया और उसी क्षण बड़ी शीघ्रता से—धीर, धर्म धुरन्धर, दीनदयालु श्रीरामजी चले।

गुरहि देखि सानुज अनुरागे * दण्ड प्रनाम करन प्रभु लागे
मुनिवर धाइ लिए उर लाई * प्रेमु उमँगि भैंटे दोउ भाई

गुरुदेव को देख लक्ष्मण सहित श्रीरामजी स्नेह में मग्न हो, साष्टांग प्रणाम करने लगे। मुनि ने दौड़कर उन्हें उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और प्रेम मग्न होकर दोनों भाइयों से मिले।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू * कीन्ह दूरि तें दण्ड प्रनामू
रामसखा लखि बसबस भेंटा * जनु महि लुटत सनेह समेटा

प्रेम से पुलकित हो निषाद ने अपना नाम बतलाकर दूर से ही दण्डवत-प्रणाम किया। राम-सखा जानकर मुनि ने उसे बरवस हृदय से लगा लिया, मानो पृथ्वी पर लौटते हुए स्नेह को समेट लिया हो।

रघुपति भगति सुमंगल मूला * नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं * बड़ वशिष्ठ सम को जग माहीं

श्रीराम-भक्ति आनन्द मंगल मूल है, इस भाँति बड़ाई करके देवता पुष्प बरसाने लगे, वे कहने लगे-इस निषाद से नीच कोई नहीं है और वशिष्ठजी के समान बड़ा जगत में कौन है?

दोहा–जेहि लखि लखनहु तें अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥२४३॥

जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनि-लक्ष्मणजी से अधिक प्रसन्नता पूर्वक मिले ! यह सब सीतापति श्रीरामचन्द्रजी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप व प्रभाव है।

आरत लोग राम सबु जाना * करुनाकर सुजान भगवाना
जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी * तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी

दया के धाम, सुजान भगवान श्रीरामजी ने सब लोगों को दुखित जाना, तब जो जिस भाव से मिलने की इच्छा करता था, उससे वैसे ही रुचि रखकर मिले।

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू * कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू
यह बड़ि बात राम कै नाहीं * जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं

वे लक्ष्मणजी सहित सब किसी से पलभर में मिल लिए और उनके दुःख तथा कठिन सन्ताप को दूर किया। श्रीरामजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं, जैसे करोड़ों घरों में एक सूर्य की छाया पड़ती है।

मिलि केवटहि उमँगि अनुरागा * पुरजन सकल सराहहिं भागा
देखी राम दुखित महतारी * जनु सुबेलि अवलीं हिम मारी

स्नेह-मग्न हो फिर केवट से मिले, पुरवासी उसके भाग्य की सराहना करने लगे। श्रीराम जी ने सब माताओं को दुःखी देखा, जैसे सुन्दर बेलि की पंक्तियों को पाला मार गया हो।

प्रथम राम भेंटी कैकई * सरल सुभायँ भगति मन भेई
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी * काल करम बिधि सिर धरि खोरी

पहले श्रीरामजी कैकई से मिले और स्वाभाविक भक्ति से उसकी बुद्धि को शीतल कर दिया, फिर चरणों में गिरकर और विधाता के सिर दोष धरकर उसको बहुत सान्त्वना दी।

दोहा–भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु।
अम्बु ईस आधीन लगु, काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

फिर श्रीरघुनाथजी सब माताओं से मिले और समझा-बुझाकर उन्हें सन्तुष्ट किया कि हे माताओ ! संसार ईश्वर के आधीन है, किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

गुरतिय पद बन्दे दुहुँ भाई * सहित बिप्रतिय जे सँग आई
गङ्ग गौरि सम सब सनमानी * देहिं असीस मुदित मृदु बानी

फिर दोनों भाइयोंने उसके साथ जो ब्राह्मण-स्त्रियाँ आई थीं उनके सहित गुरु-पत्नी को प्रणाम

किया। गंगा व गौरी के समान सम्मान किया, तब वे प्रसन्न हो आशीर्वाद देने लगीं।

गहि पद लगे सुमित्रा अङ्का * जनु भेंटी सम्पति अति रङ्का
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता * परे प्रेम व्याकुल सब गाता

सुमित्राजी के पांव पकड़कर उनकी गोद में ऐसे लिपटे, मानो अति दरिद्री को सम्पति मिल गई हो। फिर कौशल्या माता के चरणों में दोनों भाई जा पड़े, मारे प्रेम के सब देह शिथिल है।

अति अनुराग अम्ब उर लाए * नयन सनेह सलिल अन्हवाए
तेहि अवसर कर हरष विषादू * किमि कवि कहैं मूक जिमि स्वादू

बड़े स्नेह के साथ, कौशल्या माता ने हृदय से लगाया और नेत्रों के प्रेम-जल से स्नान कराया। उस समय के हर्ष व शोक को कवि किस प्रकार कहे, जैसे गूंगा स्वाद को नहीं कह सकता।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ * गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू * जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू

माताओं से मिलकर लक्ष्मणजी समेत श्रीरामजी गुरुदेव से कहने लगे कि आप पधारिये। तब अयोध्यावासी मुनिश्वर की आज्ञा पाकर जल तथा स्थल का आराम देखकर जा ठहरे।

दोहा—महिसुर मन्त्री मातु गुर, गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय, भरत लखनु रघुनाथ ॥२४५॥

ब्राह्मण, मन्त्री, मातायें और गुरु आदि गिने हुए लोगों को साथ लेकर भरत, लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी अपने पवित्र आश्रम को चले।

सीय आइ मुनिबर पग लागी * उचित असीस लही मन माँगी
गुरुपतिनिहि मुनितियन्हि समेता * मिलत प्रेम कहि जाय न जेता

सीताजी ने आकर मुनिवर के चरणों में प्रणाम किया और मन-मांगा आशीर्वाद पाया, फिर गुरु-पत्नी सहित मुनि-पत्नियों से मिलीं। जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता।

बन्दि बन्दि पग सिय सबही के * आसिष बचन लहे प्रिय जी के
सासु सकल जब सीय निहारीं * मूँदे नयन सहमि सुकुमारीं

सभी के चरणारविंदों की वन्दना करके, जानकीजी ने अपने हृदय को प्रिय आशीर्वाद पाये। जब सुकुमारी सीताजी ने सब सासुओं की ओर देखा तो सहम कर नेत्र बन्द कर लिये।

परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं * कहा कीन्ह करतार कुचालीं
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा * सो सबु सहिअ जो दैउ सुहावा

मानो हंसिनियां बधिक के वश में पड़ी हों। हे विधाता! यह क्या कुचाल की? उन्होंने भी सीता को देखकर बहुत दुःख पाया। जो देव सहावे, वह सब सहना पड़ता है।

जनकसुता तब उरि धरि धीरा * नील नलिन लोचन भरि नीरा
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई * तेहि अवसर करुना महि छाई

तब सीताजी हृदय में धीरज धरकर, नील-कमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर, सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय, पृथ्वी पर करुणा-रस भर गया।

दोहा—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदयँ असीसहिं प्रेम बस, रहिअहु भरी सुहाग ॥२४६॥

सीताजी सबके चरण छूकर बड़े प्रेम से मिलीं। सब स्नेह वश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि सदा सौभाग्यवती रहो।

बिकल सनेहँ सीय सब रानी * बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी
कहि जगगति मायिक मुनि नाथा * कही कछुक परमारथ गाथा

सीताजी तथा सब रानियाँ-स्नेह के कारण दुःखी हैं। ज्ञानी गुरुजी ने सबको बैठने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ ने संसार की गति को माया से रची हुई कहकर कुछ परमार्थ सम्बन्धी कथायें कहीं।

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा * सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा
मरन हेतु निज नेहु बिचारी * भे अति बिकल धीरधुर धारी

मुनि ने राजाका स्वर्गलोक का जाना सुनाया, जिसे सुन श्रीरामजी ने असह्य दुःख पाया। अपने प्रति उनके स्नेहको पिता के मरने का कारण समझ, धीर धुरन्धर श्रीरामजी बहुत दुःखी हुए।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी * बिलपत लखन सीय सब रानी
सोक बिकल अति सकल समाजू * मानहुँ राजु अकाजेउ आजू

वज्र के समान कठोर और कटु वाणी सुनते ही लक्ष्मण, सीता और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से व्याकुल हो उठा, मानो राजा आज ही मरे हों।

मुनिबर बहुरि राम समझाए * सहित समाज सुसरित नहाए
ब्रत निरम्बु तेहि दिन प्रभु कीन्हा * मुनिहु कहें जलु काहुँ न लीन्हा

फिर मुनिवर ने श्रीरामजी को समझाया, तब सब लोगों समेत श्रीरामजीने मंदाकिनी में स्नान किया। उस दिन प्रभु ने निर्जल व्रत किया, मुनि के कहने पर भी किसी ने जलपान नहीं किया।

दोहा—भोर भएँ रघुनन्दनहि, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सब सादरु कीन्ह ॥२४७॥

दूसरे दिन सवेरा होने पर श्रीरघुनाथजी को मुनि ने जो आज्ञा दी, उसी के अनुसार-श्रद्धा-भक्ति के साथ सब कर्म प्रभु ने आदर सहित किया।

करि पितुक्रिया बेद जसि बरनी * भे पुनीत पातक तम तरनी
जासु नाम पावक अघ तूला * सुमिरत सकल सुमङ्गल मूला

वेद में जैसे कहा है वैसे ही पिता की क्रिया करके, पातकी रूपी अंधकार को सूर्यरूपी श्रीरामजी शुद्ध हुए। जिनका नाम पापरूपी रुई की अग्नि है, जिनका स्मरण संपूर्ण मंगलों की जड़ है।

शुद्ध सो भयउ साधुसम्मत अस * तीरथ आवाहन सुरसरि जस

शुद्ध भएँ दुइ बासर बीते * बोले गुर सन राम पिरीते

ऐसे श्रीरामजी शुद्ध हुए इसमें साधुओं की ऐसी सम्मति है, जैसे गंगाजी में तीर्थों का आवाहन कर उन्हें पवित्र माना जाय। शुद्ध हुए जब दो दिन बीत गये, तब श्रीरामजी प्रेम के साथ गुरुजी से बोले–

नाथ लोग सब निपट दुखारी * कन्द मूल फल अम्बु अहारी
सानुज भरतु सचिव सब माता * देखि मोहि पल जुगु सम जाता

हे नाथ! सब लोग बहुत दुःखी हैं,कंद-मूल,फल व जल का आहार करते हैं। शत्रुघ्न सहित भरतजी, मंत्री व सब माताओं को देख मुझे एक २ पल युग के समान व्यतीत होरहा है।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ * आप इहाँ अमरावति राऊ
बहुत करेउँ सब कियउँ ढिठाई * उचित होइ तस करिअ गोसाँई

अत. आप सबके साथ अयोध्यापुरी को पधारिये। आप यहां है, महाराज स्वर्ग में हैं, (अर्थात्-अयोध्यापुरी सूनी है।) मैंने बहुत कह दिया, यह बहुत ढिठाई की है। हे स्वामी! जैसा उचित हो वैसा करें।

दोहा–धर्म सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोगदुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहिं बिश्राम ॥२४८॥

वशिष्ठजी बोले–हे राम! आप ऐसा क्यों न कहेंगे? क्योंकि आप धर्म के सेतु और दया के धाम हैं। सब लोग दुःखी हैं, दो दिन आपके दर्शन करके शान्ति लाभ पालें।

राम बचन सुनि डरा समाजू * जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला * भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला

श्रीरामजी के वचन सुनकर समाज डर गया, जैसे समुद्र में जहाज डगमगाया हो। मुनि की सुन्दर मंगलमय वाणी सुनकर मानो उस जहाज के लिए वायु अनुकूल होगई हो।

पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं * जेहि बिलोकि अघ ओघ नसाहीं
मंगल मूरति लोचन भरि भरि * निरखहिं हरषि दंडवत करिकरि

तीन समय सब उस पवित्र जल में स्नान करते हैं, जिसके दर्शन से ही सब पाप नष्ट होजाते हैं। मंगल की मूर्ति श्रीरामजी के नेत्र भरकर दर्शन करके सब बारम्बार दण्डवत करते हैं।

रामसैल बन देखन जाहीं * जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं
झरना झरहिं सुधा सम बारी * त्रिविध ताप हर त्रिबिध बयारी

सब श्रीरामजी के पर्वत और वन के दर्शन को जा रहे हैं, जहाँ सब सुख हैं और कोई दुःख नहीं है। जहाँ झरनों से अमृत के तुल्य जल झर रहा है और तीनों प्रकार के तापों को हरने वाली-शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन बह रही है।

बिटप बेलि तृन अगनित जाती * फल प्रसून पल्लव बहु भाँती
सुन्दर शिला सुखद तरु छाहीं * जाइ बरनि बनछबि केहि पाहीं

अनेक जाति के वृक्ष, लतायें, घास तथा बहुत भाँति के फूल और पत्ते हैं सुन्दर शिलायें हैं, वृक्षों को सुख देने वाली घनी छाया है। वन की सुन्दरता किससे वर्णन की जा सकती है?

दोहा—सरन्हि सरोरुह जल बिहँग, कूजत गुञ्जत भृङ्ग ।
बैर बिगत ब्रिहँरत बिपिन, मृग विहङ्ग बहु रङ्ग ॥२४९॥

सरोवर में कमल खिल रहे हैं, जल-पक्षी बोल रहे हैं, फूलों पर भौरे गुंजार रहे हैं। बैर को छोड़कर-वन में पशु-मृग और बहुत रंगों के पक्षी बिहार कर रहे हैं।

कोल किरात भिल्ल बनवासी * मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी
भरि भरि परनपुटी रुचि रूरी * कन्द मूल फल अंकुर जूरी

वनवासी कोल-भील मीठे, पवित्र एवं अमृत के तुल्य स्वादिष्ट महव और कन्द-मूल, फल अँखुए आदि एकत्रित कर, सुन्दर पत्तों के दोनों में भर-भरकर—

सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा * कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं * फेरत राम दोहाई देहीं

सबको बिनती और प्रणाम करके उनका स्वाद, भेद, गुण और नाम कहकर देते हैं। लोग उनका मोल देते हैं, सो न लेकर और मोल लौटाकर वे श्रीरामजी की दुहाई देते हैं।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी * मानस साधु प्रेम पहिचानी
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा * पावा दरसनु राम प्रसादा

और स्नेह में मग्न हो मीठी वाणी से कहते हैं कि साधु लोग प्रेम को पहिचान कर मानते हैं। आप पुण्यात्मा हैं और हम लोग-नीच हैं, आप लोगों के दर्शन हमको श्रीरामजी की कृपा से मिले हैं।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा * जस मरु धरनि देवधुनि धारा
राम कृपालु निषाद नेवाजा * परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा

हम लोगों को आपके दर्शन बहुत दुर्लभ हैं, जैसे मरु-भूमि में गंगाजी की धारा दुर्लभ है। कृपानिधान श्रीरामजी ने निषादराज को अपनाया है। जैसा राजा हो, वैसे ही कुटुम्बी और प्रजा भी होनी चाहिए।

दोहा—यह जियँ जानि सँकोचु तजि, करिअ छोहु लखि नेहु ।
हमहि कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु ॥२५०॥

यह अपने हृदय में जानकर, संकोच त्याग कर और हमारा स्नेह देखकर दया कीजिए तथा हमें कृतार्थ करने के लिए फल, तृण और अंकुर लीजिए।

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे * सेवा जोगु न भाग हमारे
देब कहा हम तुम्हहि गोसाँई * ईंधनु पात किरात मिताई

आप प्रिय पाहुने वन में पधारे हो, आपकी सेवा करने योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे गुसाई ! हम आपको क्या देंगे ? किरातों की मित्रता में तो ईंधन और पत्ते ही हैं।

यहि हमारि अति बड़ि सेवकाई * लेहिं न बासन बसन चुराई
हम जड़ जीव जीवगन घाती * कुटिल कुचाली कुमति कुजाती

हमारी तो यही बड़ी सेवा है कि हम आपका कोई सामान नहीं चुराते । हम मूर्ख जीव-हिंसक, खोटे कुकर्मी और कुजाति हैं ।

पाप करत निसि बासर जाहीं * नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ * यह रघुनन्दन दरस प्रभाऊ

पाप-कर्म करते हुए रात-दिन व्यतीत होते हैं, न कमर में फेंटा है और न पेट ही भरते हैं । सपने में भी धर्म-बुद्धि किसी को कैसी हो ? यह सब तो श्रीरघुनाथजी के दर्शन का प्रभाव है ।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे * मिटे दुसह दुख दोष हमारे
वचन सुनत पुरजन अनुरागे * तिन्ह के भागु सराहन लागे

जब से प्रभु के चरणारविंदों के दर्शन पाये, तब से हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गये । उनके वचन सुन अयोध्यावासी अनुरक्त होकर उसके भाग्य की बड़ाई करने लगे ।

छन्द—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं ।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेह लखि सुख पावहीं ॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।
तुलसी कृपा रघुवंसमनि की लोहु लै नौका तिरा ॥

सब उनके भाग्य की बड़ाई करते और प्रेम भरे वचन सुनते हैं । उनका बोलना, मिलना और श्रीसीता-रामजी के चरणों में स्नेह देखकर सब सुख पाते हैं । कोल भीलों की वाणी सुनकर सब नर-नारी अपने स्नेह का निरादर करते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि यह सब रघुवंशमणि श्रीरामजी की कृपा है कि लोहा को लेकर नाव पार हो जाती है ।

सो०—बिचरहिं वन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर मोर, भए पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

सब लोग वन में चारों ओर विचरते हैं, जैसे पहली वर्षा से मेंढ़क व मोर पुष्ट हो जाते हैं ।

पुर नर नारि मगन अति प्रीती * बासर जाहिं पलक सम बीती
सीय सासु प्रति बेष बनाई * सादर करहि सकल सेवकाई

स्त्री-पुरुष सब अत्यन्त स्नेह में मग्न हैं, उनके दिन पलक-गति के समान बीतने लगे । जितनी सासुएँ हैं, उतने ही वेश बनाकर सीताजी ने सबकी एक-सी सेवा की ।

लखा न मरमु राम बिन काहूँ * माया सब सिय माया माहूँ
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं * तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं

श्रीरामजी के सिवाय और किसी ने भी यह भेद नहीं जाना । सब मातायें सीताजी की महामाया के अन्तर्गत हैं । सीताजी ने सासुओं को सेवा से वश में कर लिया, तब उन्होंने सुख पाकर शिक्षा और आशीर्वाद दिया ।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई * कुटिल रानि पछितानि अघाई
अवनि जमहि जाचति कैकई * महि न बीच बिधि मीच न देई

सीताजी समेत कुटिल भाइयों के सरल स्वभाव को देख कुटिल कैकई बहुत पछताई । वह पृथ्वी

और विधाता से याचना करती है, परन्तु पृथ्वी के बीच विधाता मौत नहीं देता ।

लोकहुँ बेद बिदित कवि कहहीं * राम बिमुख थलु नरक न लहहीं
थह संसय सबके मन माहीं * राम गवनु बिधि अबध कि नाहीं

लोक तथा वेदों में प्रसिद्ध है और कवि कहते हैं कि श्रीरामजी से विमुख को नरक में भी स्थान नहीं मिलता । सबके मनमें यह सन्देह है कि हे विधाता ! श्रीरामजी अयोध्यापुरी को चलेंगे या नहीं ?

दोहा—निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुचि सोच ।
नीच कीच बिच मीन जस, मीनहि सलिल सँकोच ॥२५२॥

भरतजी को न रात में नींद है, न दिन में भूख है वे पवित्र सोच में ऐसे व्याकुल हैं, जैसे नीचे (तल) की कीच में मछली जल के संकोच से तड़फने लगती है ।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली * इति भीति जस पातक साली
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू * मोहि अब लखत उपाय न ऐकू

भरतजी सोचते हैं-काल ने माता के बहाने कुचाल की है, जैसे पकी खेतीमें ईति-बाधा पैदा हो जाय । अब श्रीरामजी का राजतिलक कैसे हो ? मुझे तो अब कोई उपाय भी नहीं सूझता ।

अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी * मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ * राम जननि हठि करबि कि काऊ

गुरुजी की आज्ञा मानकर तो अवश्य लौट चलेंगे, परन्तु मुनि तो श्रीरामजी की रुचि जानकर उन्हीं के अनुसार कहेंगे । माता के कहने से भी लौट सकते हैं, परन्तु श्रीरामजी की माता-क्या कभी हठ करेंगी ?

मोहि अनुचर कहुँ केतिक बाता * तेहि महँ कुसमउ बात बिधाता
जौं हठ करउँ तो निपट कुकरमू * हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू

मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है ? उस पर भी समय खोटा है और विधाता विरुद्ध है, हठ करूँ तो घोर पाप है, क्योंकि सेवक का धर्म कैलाश-पर्वत से भी अधिक भारी है ।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी * सोचत भरतहि रैन बिहानी
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई * बैठत पठए रिषयँ बोलाई

एक भी युक्ति भरतजी के मन में न ठहरी, सोच करते ही सब रात बीत गई । प्रातःकाल स्नान कर प्रभु श्रीरामजी को सिर नवाकर बैठे ही थे कि वशिष्ठजी ने उन्हें बुला भेजा ।

दोहा—गुरु पदकमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

गुरु के चरणकमलों में प्रणाम कर आज्ञा पाकर भरतजी बैठे । उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री आदि सभासद आकर इकट्ठे हुए ।

बोले मुनिबरु समय समाना * सुनहु सभासद भरत सुजाना
धरमधुरीन भानुकुल भानू * राजा राम स्वयं भगवानू

मुनिवर वशिष्ठजी समयानुसार वचन बोले–हे सभासदो ! हे बुद्धिमान भरत ! सुनो, धर्म धुरन्धर और सूर्यवंश के सूर्य-महाराज श्रीरामचन्द्रजी स्वयं भगवान ही हैं।

सत्यसिंधु पालक श्रुति सेतू * राम जनम जग मंगल हेतू
गुरु पितु मातु बचन अनुसारी * खल दलु दलन देव हितकारी

सत्य-प्रतिज्ञ व वेदकी मर्यादा के रक्षक-श्रीरामजी का जन्म जगतके मंगल के हेतु हुआ है। वे गुरु, पिता, माता, के आज्ञाकारी दुष्टों के समूह के नाशक और देवताओं के हितकारी हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु * कोउ न राम सम जान जथारथु
बिधि हरि हरु ससि रबि दिकपाला * माया जीव करम कुलि काला

नीति, प्रीति, परमार्थ, स्वार्थ-इनको श्रीरामजी के समान मूलतः कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्र, सूर्य, दिकपाल, माया, जीव, कर्म और काल–

अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई * जोग सिद्धि निगमागम गाई
करि बिचारि जियँ देखहु नीकें * राम रजाइ सीस सबही कें

शेषजी और राजा आदि जहाँ तक प्रभु की माया है और योग की सिद्धि जो वेद-शास्त्रों में गाई है। अपने मनमें अच्छी तरह विचारकर देखो तो श्रीरामजी की आज्ञा सबके सिर पर है।

दोहा–राखें राम रजाई रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि सम्मत सोइ ॥२५४॥

श्रीरामजी की आज्ञा और इच्छा को रखने से हम सबका हित होगा। अब सब चतुर लोग वही करो, जो सबकी सम्मति हो।

सब कहँ सुखद राम अभिषेकू * मंगल मोद मूल मग एकू
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ * कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ

श्रीरामजी का राजतिलक सबको सुखदायक है, यही एक मार्ग आनन्द-मंगल का मूल है किस प्रकार से श्रीरघुनाथजी अयोध्या को चलेंगे। विचार कर कहो, जिससे वही उपाय किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिवर बानी * नय परमारथ स्वारथ सानी
उतरु न आव लोग भए भोरे * तब सिरु नाइ भरत कर जोरे

मुनि वशिष्ठजी की न्याय, परमार्थ और स्वार्थ-मिश्रित वाणी सबने आदर से सुनी। किसी को उत्तर नहीं आया सब लोग भोले होगये तब हाथ जोड़कर, सिर नवाकर भरतजी बोले-

भानुबंस भए भूप घनेरे * अधिक एक ते एक बड़ेरे
जनम हेतु सब कहँ पितु माता * करम सुभासुभ देइ बिधाता

सूर्यवंश में एक से एक अधिक बड़े बहुत से राजा हुए हैं। माता-पिता तो सब ही जन्म के कारण होते हैं और विधाता शुभ-अशुभ कर्मों का फल देते हैं।

दलि दुख सृजइ सकल कल्याना * अस असीस राउरि जगु जाना
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी * सकइ को टारि टेक जो टेकी

आपका आशीर्वाद ही ऐसा है, जो दुःखों को दूर करके समस्त कल्याणों का देने वाला है, यह सब संसार जानता है। हे स्वामी ! आप वही हैं, जिन्होंने विधाता की गति को रोक दिया। आपने जो निश्चय कर दिया, उसे कौन टाल सकता है ?

दोहा–बूझिअ मोहि उपाय अब, सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहँ मय बचन गुरु, उर उमगा अनुरागु ॥२५५॥

अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं–सो सब मेरा अभाग्य है। भरतजी के ऐसे स्नेह भरे वचन सुनकर गुरुजी के हृदय में प्रेम उमड़ आया।

तात बात फुरि राम कृपाहीं * राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं
सकुचउँ तात कहत एक बाता * अरध तजहिं बुध सरबस जाता

हे तात ! बात तो ठीक है, परन्तु श्रीरामजी की कृपा से ही, श्रीरामजी के विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती है। हे तात ! एक बात कहते हुए मैं सकुचाता हूँ–यदि सर्वस्व जाता है तो बुद्धिमान उसमें से आधा त्याग देते है।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई * फेरिअहिं लखन सीय रघुराई
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता * भे प्रमोद परिपूरन गाता

तुम दोनों भाई वनको जाओ, श्रीराम-लक्ष्मण व सीता को लौटा दिया जाय। गुरुजी के ऐसे सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हुए और उनका देह आनन्द से परिपूर्ण होगया।

मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा * जनु जियँ राउ रामु भए राजा
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी * सम सुख दुख सब रोवहिं रानी

मन में प्रसन्न होगये तथा शरीर पर तेज चमकने लगा, मानो राजा जीवित हो गये हों और श्रीरामजी राजा हो गये हों। लोगों को हानि कम और लाभ अधिक जान पड़ा, परन्तु रानियों को दुःख सुख समान मालूम पड़ा इस कारण वे रोने लगीं।

कहहिं भरत मुनि कहा सो कीन्हे * फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे
कानन करउँ जन्म भरि बासू * एहि तें अधिक न मोर सुपासू

भरतजी ने कहा–मुनि ने जो कहा है, उसे करने में संसार के जीवों को इच्छित वस्तु देने का फल होगा। मैं वन में जन्मभर वास करूँगा, इससे बढ़कर मेरे लिए कोई सुख नहीं है।

दोहा–अन्तरजामी रामु सिय, तुम्ह सर्बग्य सुजान।
जौं फुर कहहु तौ नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रवान ॥२५६॥

श्रीसीता-रामजी अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ तथा परम चतुर हैं। जो आप ठीक कहते हैं तो, हे नाथ ! अपना वचन प्रमाणित कीजिए।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू * सभा सहित मुनि भए बिदेहू
भरत महा महिमा जल रासी * मुनि मति ठाढ़ि तीर अबलासी

भरतजी के वचन सुनकर और स्नेह देखकर सभा समेत मुनि वशिष्ठजी विदेह हो गये।

भरतजी की महान महिमा समुद्र है और मुनि की बुद्धि उसके किनारे खड़ी हुई अबला स्त्री के समान है।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा ✻ पावति नाव न बोहितु बेरा
औरु करिहि को भरत बड़ाई ✻ सरसी सीपि कि सिंधु समाई

वह समुद्र पार जाना चाहती है। अतः बहुत से उपाय भी किये, परन्तु नाव, जहाज या बेड़ा कुछ नहीं पाया। भरतजी की बड़ाई और कौन कर सकता है ? तालाब की सीपी में क्या समुद्र समा सकता है ?

भरत मुनिहि मन भीतर भाए ✻ सहित समाज राम पहिं आए
प्रभु प्रनामु कर दीन्ह सुआसन ✻ बैठे सब सुनि मुनि अनुसासन

भरतजी-मुनि को हृदय में अत्यन्त अच्छे लगे और वे समाज सहित श्रीरामजी के पास आये। प्रभु ने मुनि को प्रणाम कर सुन्दर आसन दिया, मुनि की आज्ञा सुनकर सब बैठ गये।

बोले मुनिबर बचन बिचारी ✻ देश काल अवसर अनुसारी
सुनहु राम सर्बग्य सुजाना ✻ धरम नीति गुन ग्यान निधाना

मुनिवर-देश, काल और अवसर के अनुसार विचार कर बचन बोले—हे श्रीरामजी ! सुनो, आप सर्वज्ञ, बुद्धिमान और धर्म, नीति, गुण व ज्ञान के भण्डार हो।

दोहा—सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाय।
पुरजन जननी भरत हित, सो कहिअ उपाय ॥२५७॥

आप सबके अन्तःकरण में बसते हैं और भले-बुरे भाव को जानते हैं जिसमें नगर-वासियों, माताओं और भरत का भला हो, वही उपाय कहिये।

आरत कहहिं बिचार न काऊ ✻ सूझ जुआरिहि आपन दाऊ
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ ✻ नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ

दुःखी लोग कभी विचार कर बात नहीं कहते,क्योंकि ज्वारी को तो अपना दाव ही सूझता है। मुनि के बचन सुनकर श्रीरामजी ने कहा हे नाथ ! उपाय तो आपके ही हाथ है।

सब कर हित राउर रुख राखें ✻ आयसु किएँ मुदित फुर भाखें
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई ✻ माथें मानि करौं सिख सोई

आपकी इच्छा रखने से सबका हित है आपकी आज्ञानुसार काम करने और सत्य कहने से सब प्रसन्न होंगे। पहले मुझको जो आज्ञा हो वही शिक्षा मैं मस्तक पर चढ़ाकर करूँ।

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाँई ✻ सो सब भाँति करिहिं सेवकाई
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा ✻ भरत सनेहँ बिचारि न राखा

हे गोसाईं ! जिसको जैसा कहेंगे, वह उसी प्रकार से सेवा करेगा। मुनि कहने लगे—हे श्रीराम ! आपने यह सत्य कहा, परन्तु भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया।

तेहि ते कहौं बहोरि बहोरी ✻ [illegible]री

मोरें जान भरत रुचि राखी ✻ जो कीजिअ सो शुभ सिव साखी

इसलिए मैं बार २ कहता हूँ कि मेरी बुद्धि भरतजी की भक्ति के वशमें होगई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि देखकर ही जो कुछ आप करें–वही शुभ होगा, इसमें शिवजी साक्षी हैं।

दोहा–भरत बिनय सादर सुनिअ, करिअ बिचार बहोरि।
करव साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

पहले भरतजी की विनय सादर सुनिये, फिर विचार करिये। साधु-मत, लोक-मत, राजनीति और शास्त्र के अनुसार कार्य कीजिये।

गुरु अनुराग भरत पर देखी * राम हृदयँ आनन्दु बिसेषी
भरतहि धरम धुरन्धर जानी * निज सेवक तन मानस बानी

भरतजी पर गुरु का प्रेम देखकर-श्रीरामजी के हृदय में बड़ा आनन्द हुआ। भरत को धर्म-धुरन्धर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जाना।

बोले गुरु आयसु अनुकूला * बचन मंजु मृदु मंगल मूला
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई * भयउ न भुअन भरत सम भाई

गुरुजी की आज्ञा के अनुसार श्रीरामजी मधुर, कोमल और मंगलमय वचन बोले-हे नाथ! आपकी शपथ और पिताजी के चरणों की दुहाई है, जगत में भरत के समान भाई नहीं हुआ।

जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी * ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी
राउर जा पर अस अनुरागू * को कहि सकइ भरत कर भागू

जो गुरुके चरणकमलों के प्रेमी हैं वे लोक और वेद के अनुसार बड़े ही भाग्यवान् होते हैं। फिर जिस पर आपका स्नेह है, उस भरत के भाग्य की बड़ाई कौन कर सकता है।

लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई * करत बदन पर भरत बड़ाई
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई * अस कहि राम रहे अरगाई

छोटा भाई जानकर, मुंह पर बढ़ाई करते हुए मेरी बुद्धि सकुचाती है। जो कुछ भरत कहें–वही करने में भलाई है। ऐसा कहकर श्रीरामजी चुप होगये।

दोहा–तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बन्धु सन, कहहु हृदयँ की बात ॥२५९॥

तब मुनिवर भरतजी से बोले–हे तात! सब सङ्कोच त्यागकर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो।

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई * गुरु साहिब अनुकूल अघाई
लखि अपने सिर सब कर भारू * कहि न सकइ कछु करहिं बिचारू

मुनि के बचन सुन और श्रीरामजी का रुख पाकर गुरु और स्वामी को अपने अनुकूल जानकर भरत सन्तुष्ट हुए। परन्तु सारा भार अपने ही ऊपर जानकर कुछ कह न सके। विचारने लगे–

पुलक शरीर सभा भए ठाढ़ * नीरज नयन नेह जल बाढ़े

कहब मोर मुनिनाथ निबाहा * एहि तें अधिक कहौं मैं काहा

पुलकित शरीर हो सभा में खड़े होगये । कमल-नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये और वे बोले—मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निवाह दिया । इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ * अपराधिहु पर कोह न काऊ
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी * खेलत खुनिस न कबहुँ देखी

मैं अपने नाथ का स्वभाव जानता हूँ । वे किसी अपराधी पर क्रोध नहीं करते, फिर मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है । खेलते समय भी क्रोध नहीं देखा ।

शिशुपन तें परिहरेउँ न संगू * कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही * हारेहूँ खेल जितावहिं मोही

मैंने बचपन से ही उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने कभी मेरा मन नहीं तोड़ा । प्रभु की कृपा की रीति को मैंने हृदय में पहिचाना है, खेल में हार जाने पर भी वे मुझे जिता देते थे ।

दोहा—महूँ सनेह सँकोच बस, सनमुख कही न बैन ।
दरसनु तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ।।२६०।।

मैंने भी स्नेह और संकोचवश कभी इनके सामने मुंह नहीं खोला । प्रेम के प्यासे ये नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए ।

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा * नीच बीचु जननी मिस पारा
यहउ कहत मोहि आजु न शोभा * अपनी समुझि साधु सुचि कोभा

विधाता मेरे दुलार को नहीं सह सका, उसने नीच माता के बहाने से भेद डाल दिया । परन्तु यह कहना आज शोभा नहीं देता, क्योंकि अपनी समझ में श्रेष्ठ और पवित्र कौन हुआ है ?

मातु मन्दि मैं साधु सुचाली * उर अस आनत कोटि कुचाली
फरइ कि कोदव बालि सुसाली * मुकता प्रसव कि सम्बुक काली

माता 'मन्द-मति' और मैं 'साधु-सुकर्मी' हूं, ऐसा मन में लाना भी करोड़ों कुचालों के समान है । क्या कोदों की बालि में भी अच्छे चावल पक सकते हैं ? क्या काली घोंघी में मोती पैदा हो सकते हैं ?

सपनेहुँ दोषक लेसु न काहू * मोर अभागु उदधि अवगाहू
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू * जारेउँ जियँ जननि कहि काकू

स्वप्न में भी किसी का लेशमात्र दोष नहीं है, मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है । मैंने अपने पापों का परिणाम समझे बिना माता को टेढ़े-मेढ़े वचन कहकर जलाया ।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा * एकहिं भाँति भलेहिं भल मोरा
गुरु गोसाइँ साहिब सिय रामू * लागत मोहि नीक परिनामू

मैं अपने हृदय में सब ओर खोजकर थक गया । एक प्रकार ही मेरा भला है, वह ऐसे कि गुरुदेव सर्व-समर्थ हैं और श्रीसीता-रामजी मेरे स्वामी हैं, इससे मुझे परिणाम भला जान पड़ता है ।

दोहा—साधु सभाँ गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपञ्च कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१॥

मैं सत्पुरुषों की सभा में, स्वामी और गुरु के समीप, पवित्र स्थान में अपने सच्चे भाव से कहता हूँ। प्रेम है या बनावट, झूठ है या सच यह मुनि और श्रीरघुनाथजी ही जानते हैं।

भूपति मरन प्रेम पनु राखी * जननी कुमति जगतु सब साखी
देखि न जाहिं बिकल महतारी * जरहिं दुसह ज्वर पुर नर नारी

प्रेम और प्रण की रक्षा के लिए महाराज के मरण और माता की कुमति का सब संसार साक्षी है। व्याकुल माताओं की ओर देखा नहीं जाता, अयोध्या के नर-नारी कठिन ताप से जल रहे हैं।

महीं सकल अनरथ कर मूला * सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा * करि मुनिबेस लखन सिय साथा
बिनु पानहिन्ह पयादेहिं पाएँ * शङ्करु साखि रहेउँ एहि घाएँ
बहुरि निहारि निषाद सनेहू * कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू

सब अनर्थों की जड़ मैं हूँ, यह सुन और समझकर भी सब दुःख सह रहा हूँ। प्रभु श्रीरघुनाथजी मुनि-वेष धारणकर लक्ष्मण व सीताजी के साथ-साथ बिना जूतों के पैदल ही बन को गये हैं। यह सुनकर—शिवजी साक्षी हैं, मैं इस घाव से भी जीता रहा हूँ। फिर निषादराज का स्नेह देखकर भी वज्र के समान इस कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ।

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई * जिअत जीव जड़ सबइ सहाई
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी * तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी

अब यहाँ आकर सब आँखों से देख लिया, यह जड़-जीव जीते-जी सब कुछ सहावेगा। जिन्हें देखकर मार्ग के साँप-बिच्छू भी अपने कठिन विष और तामसी-स्वभाव को त्याग देते हैं।

दोहा—तेइ रघुनन्दन लखनु सियँ, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

वही श्रीरघुनाथजी, लक्ष्मणजी और सीताजी—जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकई पुत्र 'मुझको' छोड़कर विधाता और किसको कठिन दुःख सहावेगा?

सुनि अति बिकल भरत बरबानी * आरति प्रीति बिनय नय सानी
सोक मगन सब सभाँ खभारू * मनहुँ कमल बन परेउ तुषारू

बहुत विकल तथा दुःख, प्रीति, विनय और नीति से भरी हुई भरतजी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब सभा शोक में डूब गई, मानो कमल-वन में पाला पड़ गया हो।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी * भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी
बोले उचित बचन रघुनन्दू * दिनकर कुल कैरव बन चन्दू

ज्ञानी मुनिने अनेक प्रकारकी पुरानी कथायें कहकर भरतजी को [illegible]

रूपी कुमुद-वन के खिलाने के लिए चंद्रमा के समान श्रीरामचन्द्रजी समयानुसार वचन बोले-

तात जायँ जियँ करहु गलानी * ईस अधीन जीव गति जानी
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरें * पुन्यसिलोक तात तर तोरें

हे तात! जीव की गति ईश्वर के अधीन है, ऐसा जानकर तुम अपने मनमें वृथा ग्लानि मत करो। मेरे मन से तीनों काल और तीनों लोकों में पुण्यात्मा पुरुष हैं, वे सब तुमसे नीचे हैं।

उर आनत तुम्ह पर कुटलाई * जाइ लोकु परलोकु नसाई
दोषु देहिं जननिहि जड़ देई * जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई

हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप लाते ही लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जायेंगे। वही मूर्ख माता कैकई को दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधु-समाज का सेवन नहीं किया।

दोहा—मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमङ्गल हार।
लोक सुजसु परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥२६३॥

हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही जगत में सब पाप प्रपंच तथा अमंगलों के समूह नष्ट हो जायेंगे और इस लोक में सुयश और परलोक में सुख प्राप्त होगा।

कहउँ सुभाउ सत्य शिव साखी * भरत भूमि रह राउरि राखी
तात कुतरक करहु जनि जाएँ * बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ

हे भरत! मैं अपने स्वभाव से ही सच कहता हूँ—शिवजी साक्षी हैं, पृथ्वी तुम्हारे ही रक्खे रह रही है। हे तात! व्यर्थ ही कुतर्क मत करो, बैर और प्रीति छिपाने से नहीं छिपती।

मुनिगन निकट बिहँग मृग जाहीं * बाधक बधिक बिलोकि पराहीं
हित अनहित पशु पच्छिउ जाना * मानुष तनु गुन ग्यान निधाना

मुनिगणों के पास पक्षी-मृग स्वयं चले जाते हैं और बधिक को देखकर सिंह भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी जानते हैं, फिर मनुष्य-शरीर तो गुण और ज्ञान से भरा है।

तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके * करौं काह असमञ्जस जी के
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी * तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी

हे तात! मैं तुम्हें भली प्रकार जानता हूँ। परन्तु क्या करूँ? जी में बड़ी दुविधा है। राजा ने मुझे त्यागकर सत्य को रक्खा और प्रेम प्रण के लिए शरीर को छोड़ दिया।

तासु बचन मेटत मन सोचू * तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू
तापर गुर मोहि आयसु दीना * अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा

उनके बचनों को मिटाते हुए मन में सोच होता है। उससे भी अधिक तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरुजी ने मुझे आज्ञा दी है, इसलिए जो कुछ कहो—वही मैं अवश्य करना चाहता हूँ।

दोहा—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसिंध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाजु ॥२६४॥

मन को प्रसन्न कर और संकोच को छोड़कर तुम जो कहो, आज मैं वही करूँ। सत्य प्रतिज्ञ, रघुकुल-श्रेष्ठ श्रीरघुनाथजी के यह वचन सुनकर सब समाज प्रसन्न हो गया।

सुरगन सहित सभय सुरराजू * सोचहिं चाहत होन अकाजू
बनत उपाय करत कछु नाहीं * राम सरन सब गे मन माहीं

देवगणों समेत इन्द्र बहुत डरे और सोचने लगे कि अब काम बिगड़ना चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बन पड़ता, तब सब मन ही मन श्रीरामचन्द्रजी की शरण में गये।

बहुरि बिचारु परस्पर करहीं * रघुपतिभगत भगति बस अहहीं
सुधि करि अम्बरीष दुरबासा * भे सुर सुरपति निपट निरासा

फिर आपस में विचार कर कहने लगे कि श्रीरामजी अपने भक्तों की भक्ति के वश में हैं। अम्बरीष और दुर्वासा ऋषि की सुधि करके देवता और इन्द्र बहुत ही निराश हो गये।

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा * नरहरि किए प्रगट प्रहलादा
लगिलगिकान कहहिंधुनि माथा * अब सुरकाज भरत के हाथा

देवों ने बहुत समय तक दुःख सहे, तब भक्त प्रह्लादने नृसिंह भगवान को प्रकट कराया। काना फूसी करके देवता लोग माथा धुनने लगे कि अब देवताओं का कार्य भरतजी के हाथ में है।

आन उपाय न देखिअ देवा * मानत रामु सुसेवक सेवा
हियँ सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि * निजगुन शील रामबस करतहि

दूसरा और कोई भी उपाय देवों को नहीं सूझ पड़ा। श्रीरामजी तो सुसेवक की सेवा को मानते हैं। अतः हृदय में प्रेम सहित अपने सब गुण व शील से श्रीरामचन्द्रजी को वश में करने वाले भरतजी का स्मरण करो।

दोहा—सुनि सुरमति सुरगुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़भागु।
सकल सुमङ्गल मूल जग, भरत चरन अनुराग ॥२६५॥

देवताओं की मति सुनकर देव-गुरु बृहस्पतिजी ने कहा—तुम्हारा बहुत अच्छा भाग्य है, संसार में भरतजी के चरणों में प्रेम ही सम्पूर्ण मंगलों की जड़ है।

सीतापति सेवक सेवकाई * कामधेनु सत सरिस सोहाई
भरत भगति तुम्हरें मन आई * तजहु सोचु बिधि बात बनाई

सीतापति श्रीरामजी के सेवक की सेवा-सौ कामदेव के समान सुन्दर है। भरतजी की भक्ति तुम्हारे मन में आई है, तो अब चिंता त्याग दो-ब्रह्मा ने तुम्हारी बात बना दी है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ * सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ
मन थिर करहु देव डरु नाहीं * भरतहि जानि राम परिछाहीं

हे इन्द्र! भरतजी का प्रभाव तो देखो कि उनके सहज-स्वभाव के वश श्रीरघुनाथजी हो रहे हैं। हे देवताओ! भरतजी को-श्रीरामजी की छाया जानकर मनको स्थिर करो, अब डर नहीं है।

सुनि सुरगुरु सुर सम्मत सोचू * अन्तरजामी प्रभुहि सकोचू
निज सिर भारु भरत जियँ जाना * करत कोटि बिधि उर अनुमाना

देवगुरु और देवताओं की सलाह तथा सोच सुनकर अन्तर्यामी श्रीरामजी को संकोच हुआ। भरतजी ने अपने ही सिर पर बोझ जाना तो हृदय में अनेक प्रकार के अनुमान करने लगे।

करि बिचारु मन दीन्ही ठीका * राम रजायसु आपन नीका
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा * छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा

फिर विचार करते २ मनमें यह निश्चय किया कि श्रीरामजी की आज्ञा मानने में ही भलाई है। उन्होंने अपना प्रण छोड़कर—मेरा प्रण रक्खा, यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं है।

दोहा—कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरत, जोरि जलज जगु हाथ ॥२६६॥

श्रीसीतापति ने मुझ पर सब प्रकार से अतिशय कृपा की है। तदन्तर भरतजी कर-कमलों को जोड़कर प्रणाम करके बोले—

कहौं कहावौं का अब स्वामी * कृपा अम्बुनिधि अन्तरजामी
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला * मिटी मलिन मन कलिपत शूला

हे स्वामी ! अब मैं क्या कहूँ और कहाऊँ? आप दयाके समुद्र और अन्तर्यामी हैं। गुरुदेव को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे पापी मन का कल्पित दुःख मिट गया।

अपडर डरेउँ न सोच समूलें * रबिहि न दोष देव दिसि भूलें
मोर अभागु मातु कुटिलाई * बिधिगति बिषम काल कठिनाई

मैं झूठे डर से ही डर गया, सोच करने की कोई जड़ही नहीं थी। दिशा भूलने पर सूर्यका दोष नहीं है। मेरा कुभाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की उलटी गति और समय की कठिनता-

पाँउ रोपि सब मिलि मोहि घाला * प्रनतपाल पन आपन पाला
यह नइ रीति न राउरि होई * लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई

इन सबने पाँव रोपकर मुझे मारना चाहा, परन्तु हे शरणागत-रक्षक प्रणतपाल ! आपने अपना प्रण निवाहा। यह आपकी नई रीति नहीं है, यह लोक तथा वेदों में प्रकट है, छिपी नहीं है।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं * कहिअ होइ भल कासु भलाईं
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ * सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ

हे प्रभु ! संसार बुरा कहे, केवल आप ही अनुकूल हों, फिर कहिये—किसकी भलाई से भला हो सकता है? देव ! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के तुल्य है, किसी के अनुकूल तथा प्रतिकूल नहीं है।

दोहा—जाइ निकट पहिचान तरु, छाँह समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंकु भल पोच ॥२६७॥

जो कल्पवृक्ष को पहिचान कर उसके पास जाता है, तो उसकी छाया से ही सब सोच दूर हो जाते हैं। राजा-रङ्क, भला-बुरा सभी उससे माँगते ही मन-चाही वस्तु पाते हैं।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू * मिटेउ छोभु नहिं मन सन्देहू

अब करुना करि कीजिअ सोई * जनु हित प्रभु चित छोभु न होई

सब प्रकार से गुरु और स्वामी का प्रेम देखकर दुःख दूर होगया, मनमें संदेह नहीं रहा। हे कृपानिधान ! अब वही कीजिये, जिससे दास के लिए प्रभु के मनमें किसी प्रकार का दुःखन हो।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची * निज हित चहइ तासु मति पोची
सेवक हित साहिब सेवकाई * करै सकल सुख लोभ बिहाई

जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपनी भलाई चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवक की भलाई तो इसी में है कि स्वामी की सेवा सब प्रकार के सुख व लोभ को त्यागकर करे।

स्वारथु नाथ फिरें सबही का * जिये रजाइ कोटि बिधि नीका
यह स्वारथु परमारथ सारू * सकल सुकृत फल सुगत सिंगारू

हे नाथ ! आपके लौटनेमें ही सबका स्वार्थ है और आपकी आज्ञा पालने में हर प्रकारसे भलाई हैं। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार, सब पुण्यों का फल और उत्तम गति का सिंगार है।

देव एक बिनती सुनि मोरी * उचित होइ तस करब बहोरी
तिलक समाजु साजि सबु आना * करिअ सुफल प्रभुजौं मनु माना

हे देव ! मेरी एक विनय सुनकर आप जैसे उचित समझें, वैसा करें। राजतिलक की सब सामिग्री सजाकर लाई गई है, जो प्रभु के मन में मान्य हो तो उसे सफल कीजिए।

दोहा—सानुज पठइअ मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ ॥२६८॥

शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेजकर सबको सनाथ कीजिए। अथवा दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूंगा।

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई * बहुरिअ सीय सहित रघुराई
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई * करुनासागर कीजिअ सोई

अथवा हम तीनों भाई वन को चले जाँय और आप सीताजी सहित अयोध्या को लौट जाइये। जिस प्रकार प्रभु का मन हो, हे कृपासिंधु ! वही कीजिए।

देवँ दीन्ह सब मोहिअ भारू * मोरें नीति न धरम विचारू
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू * रहत न आरत कें चित चेतू

हे देव ! आपने सब बोझ मुझ पर डाल दिया, पर मुझमें न नीति है, न धर्म का विचार, मैं सब बातें अपने स्वार्थ के निमित्त ही कहता हूं, क्योंकि दुखियों के मन में कुछ ज्ञान नहीं रहता।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई * सो सेवकु लखि लाज लजाई
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू * स्वामि सनेहँ सराहत साधू

स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे तो उस सेवक को देखकर लाज को भी लाज आ जाती है। मैं अवगुण का ऐसा अथाह समुद्र हूँ, तो भी स्वामी स्नेह वश मेरे साधुपन की ही सराहना करते हैं।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा * सकुचि स्वामिमन जाइँ न पावा
प्रभु पद शपथ कहउँ सतिभाऊ * जग मङ्गल हित एक उपाऊ

अब तो मुझे यहः विचार श्रेष्ठ लगता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे। प्रभुके चरणों की शपथ खाकर मैं सत्य-भावसे कहता हूँ कि संसार में मंगल के लिए यही एक उपाय है।

दोहा—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिरधरि धरि करहिं सबु, मिटहि अनिट अवरेव ॥२६९॥

हे प्रभु! आप प्रसन्न मन हो, संकोच को त्यागकर जिसे जो आज्ञा देंगे—उसे सब सिर चढ़ा-चढ़ाकर करेंगे और सब झंझट दूर हो जायगा।

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे * साधु सराहि सुमन बहु बरषे
असमँजस बस अवध निवासी * प्रमुदित मन तापस बनबासी

भरतजी के शुद्ध वचन सुन प्रसन्न होकर देवताओं ने साधुवाद कहकर सराहना करके फूल बरसाये। अयोध्यावासी सब दुविधा में पड़ गये, तपस्वी और वनवासी मनमें बहुत प्रसन्न हुए।

चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची * प्रभु गति देखि सभा सब सोची
जनक दूत तेहि अवसर आए * मुनि बसिष्ठ सुनि बेग बोलाए

किन्तु संकोची श्रीरघुनाथजी चुप हो रहे, प्रभु की उस मौन स्थिति को देख कर सब सभा सोच में पड़ गई। उसी समय 'जनकजी के दूत आये हैं' यह सुनकर मुनि वशिष्ठजी ने उन्हें तुरन्त बुला लिया।

करि प्रनाम जिन्ह रामु निहारे * बेषु देखि भए निपट दुखारे
दूतन्ह मुनिवर बूझी बाता * कहहु बिदेह भूप कुसलाता

उन्होंने प्रणाम करके श्रीरामजी को देखा, तो उनका वेश देखकर वे बहुत दुःखी हुए। मुनिवर वशिष्ठजी ने उनसे कुशल पूछी कि कहो—'महाराज जनकजी कुशलपूर्वक तो हैं?'

सुनि सकुचाय नाय महि माथा * बोले चर वर जोरें हाथा
बूझब राउर सादर साईं * कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं

यह सुनकर वे श्रेष्ठ दूत सकुचाकर हाथ जोड़, पृथ्वी पर मस्तक नवाकर बोले-हे प्रभो! आपका प्रश्न ही कुशल का कारण होगया।

दोहा—नाहिं त कौशलनाथ कें, साथ कुशल गई नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें, जगु सब भयउ अनाथ ॥२७०॥

नहीं तो—हे नाथ! कुशल तो कौशलनाथ के साथ ही गई। वैसे तो सब संसार ही अनाथ हो गया है, परन्तु मिथिला और अवध तो विशेष करके अनाथ होगई।

कोशलपति गति सुनि जनकौरा * भे सब लोक सोक बस बौरा
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू * नामु सत्य अस लाग न केहू

कौशलनाथ की गति सुनकर जनकपुर वासी दुःख के मारे पागल हो गये। उसने उस समय विदेहराज जनकजी को देखा, ऐसा कौन है जिसको उनका 'विदेह' नाम सत्य न लगा हो?

रानि कुचालि सुनत नरपालहि * सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि
भरत राज रघुबर बनवासू * भा मिथिलेसहि हृदयँ हरासू

रानी की कुचाल सुनकर जनकजी को कुछ नहीं सूझा, जैसे मणि के बिना सर्प को नहीं सूझता। फिर भरतजी को राज्य और श्रीरघुनाथजी को वन-वास सुनकर मिथलेश्वर के हृदय में बहुत दुःख हुआ।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू * कहहु बिचारि उचित का आजू
समुझि अवध असमंजस दोऊ * चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ

राजा ने पण्डितों और मंत्रियों के समाज से पूछा कि विचार कर कहिये–आज क्या करना चाहिए ? अवध में दोनों प्रकार से असमंजस समझकर 'चलिये या रहिये' किसी ने कुछ नहीं कहा।

नृपहि धीर धरि हृदयँ बिचारी * पठए अवध चतुर चर चारी
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ * आएहु बेगि न होइ लखाऊ

तब राजा ने धैर्य धरकर हृदयसे विचारकर अयोध्यापुरी को चतुरदूत भेजे कि भरतजी का भला-बुरा विचार जानकर शीघ्र लौट आओ, पर तुम्हारा पता किसी को न लगने पावे।

दोहा–गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तेरहूति ॥२७१॥

दूत अवधपुरी में गये और भरत का हाल जानकर तथा करनी देखकर, जब भरतजी चित्रकूट की ओर चले, तब वे चारों जनकपुर को लौट आये।

दूतन्ह आइ भरत कै करनी * जनक समाज जथामति बरनी
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति * भे सब सोच सनेहँ बिकल अति

दूतों ने आकर जनकजी की सभा में भरतजी की करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। उसे सुनकर गुरु, कुटुम्बी, मंत्री और राजा सब सोच तथा प्रेम के मारे व्याकुल होगये।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई * लिए सुभट साहनी बोलाई
घर पुर देश राखि रखवारे * हय गय रथ बहु जान सँवारे

फिर महाराज ने धैर्य धरकर भरतजी की बड़ाई करके अच्छे योद्धा व सेनापति बुलाये राजमहल, नगर तथा देश में रक्षक रखकर, घोड़े-हाथी बहुत सी सवारियाँ सजवाईं।

दुघरी साधि चले ततकाला * किए बिश्रामु न मग महिपाला
भोरहिं आजु नहाए प्रयागा * चले जमुन उतरन सब लागा

और दुघड़िया मुहूर्त साधकर तुरन्त चल दिये, महाराज ने मार्ग में कहीं विश्राम नहीं किया। आज प्रातः प्रयाग में स्नान कर चले हैं और सब लोग यमुना के पार उतरने लगे।

खबरि लेन पठए हम नाथा * तिन्हकहि असमहि नायउ माथा
साथ किरात छ सातक दीन्हे * मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे

हे नाथ ! 'हमको खबर लेने भेजा है', दूतों ने इस प्रकार कहकर पृथ्वी पर मस्तक नवाया

मुनिवर वशिष्ठजी ने छः-सात भीलों को साथ में लेकर तुरन्त उन दूतों को विदा किया।

दोहा–सुनत जनक आगमनु सब, हरषेउ अवध समाजु।
रघुनन्दनहि सँकोचु बड़, सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥

जनकजी का आना सुनते ही अयोध्यावासी प्रसन्न हुए, श्रीरामजी को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र सोच में डूब गये।

गरइ गलानि कुटिल कैकई * काहि कहै केहि दूषनु देई
अस मन आनि मुदित नरनारी * भयउ बहोरि रहब दिन चारी

कुटिल कैकई लाज व दुःख के मारे गली जाती है, क्या कहे और किसे दोष दे? नर-नारी सब अपने २ मन में यह जानकर प्रसन्न हुए कि अब चार दिन और रहना हो जायगा।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ * प्रात नहान लाग सब कोऊ
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी * गनपति गौरि तिपुरारि तमारी

इस तरह वह दिन भी व्यतीत होगया, दूसरे दिन प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे। सब स्त्री पुरुष स्नान करके गणेश, पार्वती, महादेव और सूर्यनारायण की पूजा करने लगे।

रमा रमनि पद बन्दि बहोरी * बिनवहिं अंजुलि अंजल जोरी
राजा रामु जानकी रानी * आनँद अवधि अवध रजधानी

फिर लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरि के चरणों में प्रणामकर, हाथ जोड़, आँचल पसारकर प्रार्थना करने लगे कि श्रीरामजी राजा हों और जानकीजी महारानी हों तथा आनन्द की सीमा अयोध्या राजधानी हो।

सुबस बसउ फिर सहित समाजा * भरतहि रामु करएे जुबराजा
एहि सुख सुधा सींचि सब काहू * देव देहु जग जीवन लाहू

फिर समाज सहित सुख पूर्वक बसे और भरतजी को श्रीरामजी युवराज बनावें। हे देव! इसे सुखरूपी अमृत से सींचकर सबको संसार में जन्म पाने का लाभ दीजिये।

दोहा–गुरु समाज भाइन्ह सहित, राज राजु पुर होउ।
अजत राम राजा अवध, मरिअ माँगु सब कोउ ॥२७३॥

गुरु समाज और भाइयों सहित अयोध्यापुरी में श्रीरामचन्द्रजी का राज्य हो। उनके राजा रहते हुए ही हम मरें–सब यही फल माँगते हैं।

सुनि सनेहँमय पुरजन बानी * निंदहिं जोग बिरति मुनिग्यानी
एहि बिधि नित्य कर्म करि पुरजन * रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तनु

अयोध्यावासियों की प्रेममयी वाणी सुन ज्ञानी मुनि अपने योग वैराग्य की निन्दा करते हैं। इस प्रकार नित्य कर्म करके अयोध्यावासी प्रसन्न मन से श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नर नारी * लहहिं दरसु निज निज अनुहारी
सावधान सबही सनमानहिं * सकल सराहत कृपानिधानहिं

ऊँच-नीच, मध्यम श्रेणीके नर-नारी सब अपने२भाव के अनुसार श्रीरामजीका दर्शन पाते हैं। कृपानिधान श्रीरामजी सबका यथोचित सत्कार करते हैं और सब लोग उनकी बड़ाई करते हैं।

लरिकाइहि तें रघुवर बानी * पालत नीति प्रीति पहिचानी
सील सँकोच सिंधु रघुराऊ * सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ

श्रीरामजी को बचपन से ही यही टेव है कि प्रेमको पहिचानकर नीति का पालन करते हैं। शील व संकोच के समुद्र श्रीरामजी सुन्दर मुख, मनोहर नेत्र व सीधे स्वभाव वाले हैं।

कहत राम गुनगन अनुरागे * सब निज भाग्य सराहन लागे
हम सम पुन्य पुँज जग थोरे * जिन्हहि राम जानत करि मोरे

इस तरह श्रीरामजी के गुण-समूह प्रसन्नता से कहते हुए सब अपने२भाग्य की बड़ाई करने लगे कि हमारे समान पुण्यवान जगत् में थोड़े हैं, जिन्हें श्रीरामजी अपना सेवक मानते हैं।

दोहा—प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रविकुल कमल दिनेसु ॥२७४॥

जनकजी को आते हुए सुनकर सब लोग प्रेम-मग्न हैं। सूर्यकुल-कमल-दिवाकर श्रीरघुनाथजी सभा समेत उनके स्वागत के लिए उठ खड़े हुए।

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा * आगें गवन कीन्ह रघुनाथा
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं * करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं

भाई, मन्त्री, गुरु और अवधपुरवासियों समेत श्रीरामजी आगे चले। उधर राजा जनकजी ने ज्यों ही गिरिराज 'चित्रकूट' को देखा, त्योंही वे उसे प्रणाम करके रथ से उतर पड़े।

राम दरस लालसा उछाहू * पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू
मन जहँ तहँ रघुवर बैदेही * बिनु तनमन दुख सुखसुधि केही

श्रीराम-दर्शन की लालसा व उमङ्ग में किसी को मार्ग में थकावट तथा क्लेश नहीं हुआ। मन तो वहां हैं—जहां श्रीसीता-रामजी हैं, बिना मन के देह में दुःख-सुख का ज्ञान किसको हो?

आवत जनकु चले एहि भाँती * सहित समाज प्रेम मति माती
आए निकट देखि अनुरागे * सादर मिलन परस्पर लागे

इस प्रकार से प्रेम के मद में मतवाले होकर समाज सहित महाराज जनकजी आरहे हैं निकट आये देखकर प्रेम में मग्न हो सब आदर सहित मिलने लगे।

लगे जनक मुनिजन पद बन्दन * रिषिन्हि प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि * चले लवाइ समेत समाजहि

महाराज जनकजी मुनिगणों के चरणों की वन्दना करने लगे और श्रीरघुनाथजी ने ऋषियों को प्रणाम किया। भाइयों सहित श्रीरामजी राजा से मिलकर समाज समेत उन्हें अपने आश्रमों को ले चले।

दोहा—आश्रम सागर शान्त रस, पूरन पावन पाथु।

सेन मनहुँ करुना सरित, लिएँ जाहिं रघुनाथु ॥२७५॥

श्रीरामजी का आश्रम-शान्त-रसरूपी निर्मल जल से भरा हुआ है। जनकजी की सेना मानो करुणा की नदी है, उसे श्रीरघुनाथजी लिये जाते हैं।

बोरति ग्यान बिराग करारे * बचन ससोक मिलत नद नारे
सोक उसास समीर तरङ्गा * धीरज तट तरुवर कर भङ्गा

वही नदी ज्ञान-वैराग्यरूपी दोनों किनारों को डुबोती जाती है। उसमें दुःख भरे वचन रूपी नदी व नाले मिलते हैं शोक की आहें—पवन की लहरें हैं, जो धीरजरूपी किनारे के सुन्दर वृक्षों को उखाड़ती हैं।

बिषम बिषाद तोरावति धारा * भय भ्रम भँवर अबर्त अपारा
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा * सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा

असहय दुःख की नदी की तेज धारा है, भय व मोह असंख्य भँवर व चक्र है। बन्धुजन केवट है, विद्या ही बड़ी नाव है, पर वे इसे 'खे' नहीं सकते, नाव को खेना एक को भी नहीं आता।

बनचर कोल किरात बिचारे * थके बिलोकि पथिक हियँ हारे
आश्रम उदधि मिली जब आई * मनहुँ उठेउ अम्बुधि अकुलाई

बन के रहने वाले 'भील' दीन-यात्री हैं, जो नदी को देखकर हारकर थक गये हैं। वह करुणारूपी—नदी आश्रमरूपी समुद्र में जा मिली, तब मानो वह समुद्र व्याकुल हो उठा।

सोक बिकल दोउ राज समाजा * रहा न ग्यान न धीरज लाजा
भूप रूप गुन सील सराही * रोवहिं सोक सिंधु अवगाही

दोनों राज-समाज दुःख से व्याकुल हो गये, उनमें न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज सब जाते रहे। महाराज दशरथजी के रूप, गुण, शील की बड़ाई करते हुए सब रो-रोकर सोक-सागर में डुबकी लेने लगे।

छन्द—अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि शोक-सागर में डुबकी लेते हुए सब स्त्री पुरुष बड़े व्याकुल होकर सोचने लगे और विधाता को दोष देकर क्रोध से कहने लगे कि प्रतिकूल विधाता ने यह क्या किया? देवता, सिद्धि, तपस्वी, योगीजन, मुनि, विदेहराज जनकजी की दशा देखकर कोई भी ऐसा सामर्थ्य वाला नहीं है, जो प्रेम की नदी के पास जा सके।

सो०—किए अमित उपदेश, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह ॥२७६॥

श्रेष्ठ मुनीश्वरों ने जहाँ-तहाँ लोगों को उपदेश दिया और महर्षि वशिष्ठजी ने विदेहराज जनकजी से कहा—हे राजन् ! धैर्य धारण कीजिये ।

जासु ग्यानु रबि भवनिसि नासा * बचनकिरन मुनि कमल बिकासा
तेहि के मोह ममता निअराई * यह सिय राम सनेहँ बड़ाई

जिसके ज्ञानरूपी सूर्य से भवरूपी रात्रि का नाश हो जाता है और वचनरूपी किरणों से मुनिरूपी कमल खिल जाते हैं । उनके निकट क्या मोह-ममता आ सकते हैं ? यह श्रीसीता-रामजी के प्रेम की महिमा है ।

बिषयी साधक सिद्ध सयाने * त्रिबिध जीव जग बेद बखाने
राम सनेह सरस मन जासू * साधु सभाँ बड़ आदर तासू

विषयी, साधक, ज्ञानवान, सिद्धि-संसार में यह तीन प्रकार के जीव वेदों में कहे हैं । उन तीनों में से जिनके तन में श्रीरामजी का सुन्दर स्नेह है, उनका साधु समाज में बड़ा आदर होता है ।

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू * करनधार बिनु जिमि जलजानू
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए * रामघाट सब लोग नहाए

रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं पाता, जैसे मल्लाह के बिना नाव । वशिष्ठजीने बहुत प्रकार से जनकजी को समझाया, फिर राम-घाट पर जाकर सब लोगों ने स्नान किया ।

सकल सोक संकुल नर नारी * सो बासरु बीतेउ बिनु बारी
पशु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू * प्रिय परिजन कर कौन बिचारू

शोक-ग्रस्त सब स्त्री-पुरुषों का वह दिन बिना जल पिये ही बीत गया । पशु-पक्षी व मृगों ने भी जब भोजन नहीं किया, तो प्रियजन और कुटुम्बीजनों का विचार ही क्या किया जाय?

दोहा—दोउ समाजु निमिराजु, रघुराजु नहाने प्रात ।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृस गात ।।२७७।।

जनकजी और श्रीरामजी तथा दोनों समाजों ने प्रातःकाल स्नान किया और सब बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठे, सबके मन मलीन और शरीर क्षीण थे ।

जे महिसुर दशरथ पुरबासी * जे मिथलापति नगर निवासी
हंस बंस गुर जनक पुरोधा * जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा

जो ब्राह्मण अयोध्यापुरी और जनकपुर-वासी थे तथा सूर्यवंश के गुरुजी और जनकजी के पुरोहित—जिन्होंने जगत में परमार्थ का मार्ग ढूंढ़ लिया था ।

लगे कहन उपदेस अनेका * सहित धर्म नय बिरति बिबेका
कौसिक कहि कहि कथा पुरानीं * समुझाई सब सभा सुबानीं

वे सब धर्म, नीति, वैराग्य और ज्ञान युक्त अनेक उपदेश देने लगे । विश्वामित्रजी ने पुरानी कथायें कहकर सब सभा को मधुर वाणी से समझाया ।

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ * नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ

मुनि कह उचित कहत रघुराई * गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई

तब श्रीरघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा—कल सब लोग निर्जल ही रहे हैं। यह सुनकर मुनि ने कहा—श्रीरघुनाथजी ठीक कहते हैं, आज भी ढाई पहर दिन बीत गया है।

ऋषि रुख लखि कह तेरहुति राजू * इहाँ उचित नहिं असन अनाजू
कहा भूप भल सबहि सोहाना * पाइ रजायसु चले नहाना

ऋषि विश्वामित्रजी का रुख देखकर राजा जनकजी कहने लगे कि यहाँ अन्न का भोजन ठीक नहीं है। राजा का यह कथन सबको भला लगा, तब आज्ञा पाकर स्नान करने चले।

दोहा—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लइ आए बनचर बिपुल, भरिभरि काँवरि भार ॥२७८॥

उसी समय वन के रहने वाले कोल-भील अनेकों प्रकार के फल, पत्ते और कंद-मूल बड़ी-बड़ी काँवरों में भर-भरकर ले आये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा * अवलोकत अपहरत बिषादा
सर सरिता वन भूमि बिभागा * जनु उमँगत आनँद अनुरागा

पर्वत श्रीरामजी की कृपा से मन-चाही वस्तु देने वाला होगया। वह दर्शन मात्र से ही सब दुःख दूर करने लगा और वहाँ के सरोवर नदियाँ वन और भूमि में मानो प्रेम और आनन्द उमड़ रहा है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला * बोलत खग मृग अलि अनुकूला
तेहि अवसर वन अधिक उछाहू * त्रिबिध समीर सुखद सब काहू

लतायें और वृक्ष-फल-फूलों से लदे हैं, पक्षी, मृग और भौंरे अनुकूल बोलते हैं। उस समय वन में आनन्द होगया, सबको सुखदायक, शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन बहने लगी।

जाइ न बरनि मनोहरताई * जनु महि करत जनक पहुनाई
तब सब लोग नहाइ नहाई * राम जनक मुनि आयसु पाई
देखि देखि तरुबर अनुरागे * जहँ तहँ पुरजन ठहरन लागे
दल फल मूलकन्द बिधि नाना * पावन सुन्दर सुधा समाना

वहाँ की उस समय की सुन्दरता कही नहीं जा सकती, मानो भूमि जनकजी की पहुँनाई कर रही हो। तब सब लोग स्नान करके श्रीरामचन्द्रजी, जनकजी और मुनि की आज्ञा पाकर सुन्दर वृक्षों को देखकर प्रेमपूर्वक जहाँ-तहाँ ठहरने लगे। सुन्दर, पवित्र और अमृत के तुल्य अनेक प्रकार के पत्ते, फल और कन्द-मूल आदि—

दोहा—सादर सब कहँ रामगुर, पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर, लगे करन फलहार ॥२७९॥

श्रीराम-गुरु वशिष्ठजी ने सामान डलियों में भर-भरकर आदर सहित सबके पास भेजे। तब वे पितर, देवता, गुरु और अतिथि का पूजन करके फलाहार करने लगे।

एहि बिधि बासर बीते चारी * रामु निरखि नर नारि सुखारी
दुहु समाज अस रुचि मन माहीं * बिनु सियराम फिरब भल नाहीं

इस प्रकार चार दिन बीत गये,सब नर-नारी श्रीरामजी को देखकर सुखी हुए। दोनों समाजके मन में इच्छा हुई थी कि सीता श्रीरामचन्द्रजी के बिना घर लौटना ठीक नहीं है।

सीता राम सङ्ग बनवासू * कोटि अमरपुर सरिस सुपासू
परिहरि लखन रामु बैदेही * जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही

सीताजी और रामजी के साथ वन में बास करना भी करोड़ों स्वर्ग-लोकों के समान सुख देने वाला है। श्रीराम-लक्ष्मण और सीताजी को छोड़कर, जिसे घर भला लगे—उसका तो भाग्य ही उसके विपरीत है।

दाहिन दइउ होइ जब सबहीं * राम समीप बसिअ बन तबहीं
मन्दाकिनि मज्जनु तिहुँ काला * राम दरसु मुद मङ्गल माला

जब सभी पर विधाता की कृपा हो, तभी वन में श्रीरामजी के निकट वास हो सकता है। जहां तीनों काल मन्दाकिनी में स्नान, आनन्द मंगल की मालारूप श्रीरामजी के दर्शन—

अटनु रामगिरि बन तापस थल * असनु अमिअ सम कन्दमूल फल
सुख समेत सम्बत दुइ साता * पल सम होहि न जनिअहिं जाता

रामजी के पर्वत, वन व तपस्वियों के आश्रमों में विचरण और अमृत के तुल्य कन्द मूल-फलों का भोजन, चौदह-वर्ष सुख से पल के समान बीत जायेंगे, जाते हुए मालुम नहीं पड़ेंगे।

दोहा—एहि सुख जोग न लोग सब, कहहिं कहाँ असु भागु।
सहज सुभायँ समाज दुहू, राम चरन अनुरागु ॥२८०॥

सब लोग बोले कि इस सुख के योग्य हम लोग नहीं हैं, हम सबके ऐसे भाग्य कहाँ हैं? दोनों समाजों का सहज स्वभाव से श्रीरामजी के चरणों में प्रेम है।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं * बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं
सीय मातु तेहि समय पठाईं * दासीं देखि सुअवसरु आईं

इसी प्रकार सब मनोरथ करते हैं। ऐसे प्रेम-युक्त वचन सुनते ही मनों को हर लेते हैं। उसी समय सीताजी की माता सुनयनाजी की दासी शुभ अवसर देखकर आईं।

सावकास सुनि सब सिय सासू * आयउ जनकराज रनिवासू
कौसल्या सादर सनमानी * आसन दिए समय सम आनी

सीताजी की सब सासुओं को फुरसत में सुनकर महाराज जनकजी का रनिवास वहाँ आया तब कौशल्याजी ने आदर के साथ उन सबका सम्मान किया और समयानुसार सबको आसन लाकर दिये।

सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा * द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा
पुलकसिथिलतनुबारि बिलोचन * महिनखलिखन लगीं सब सोचन

दोनों ओर के शील व स्नेह को देखकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। देह पुलकित

और शिथिल है, नेत्रों में आँसू हैं, सब पाँवों के नखों से पृथ्वी पर लिखने व सोचने लगीं।

सब सिय राम प्रेम किसि मूरति * जनु करुना बहु वेष बिसूरति
सीय मातु कह बुध बिधि बाँकी * जो पय फेनु फोरि पबि टाँकी

वे सब श्रीसीता-रामजी के प्रेम की सी मूर्तियाँ हैं, मानो करुणा अनेक रूप धारण कर चिन्ता कर रही हैं। सीताजी की माता ने कहा—विधाता की मति टेढ़ी है, जो दूध के फेन को वज्र की टांकी से फोड़ रहा है।

दोहा—सुनिअ सुधा देखिअ हि गरल, बिधि करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सरित मराल ॥२८१॥

अमृत केवल सुना ही जाता है और विष देखने में आता है, विधाता की करतूत भयङ्कर है। कौए, उल्लू और बगुला तो जहां-तहां मिलते हैं, पर हंस तो मानसरोवर पर ही मिलते हैं।

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा * बिधिगत बड़ि बिपरीत बिचित्रा
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी * बालकेलि समबिधि मति भोरी

यह सुनकर सुमित्राजी दुःख के साथ बोलीं—विधाता की गति बड़ी उल्टी और अनोखी है, जो संसार को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालक के खेल के समान भोली है।

कौशल्या कह दोषु न काहू * करम बिबस दुख सुख छति लाहू
कठिन करमगति जान विधाता * सो सुभ असुभ सकल फल दाता

कौशल्या ने कहा—दोष किसी का नहीं है, दुःख-सुख, हानि-लाभ कर्म के अधीन हैं। कर्म की कठिन गति को विधाता ही जानता है और वही भले-बुरे कर्मों का फल देता है।

ईस रजाइ शीश सबही कें * उत्पत्ति थितिलय बिषहु अमीकें
देवि मोह बस सोचिअ बादी * बिधि प्रपंच अस अटल अनादी

ईश्वर की आज्ञा सभीके सिर पर है, उत्पत्ति,पालन,संहार-विष या अमृत के भी सिर पर है।हे देवि! मोहवश सोच करना वृथा है, क्योंकि विधाता का प्रपंच ऐसा ही अटल व अनादि है।

भूपति जिअब मरब उर आनी * सोचिअ सखि लख निज हित हानी
सीय मातु कह सत्य सुबानी * सुकृति अवधि अवधपति रानी

हे सखी! महाराज के जीने व मरने को हृदय में लाकर सोचें, तो हम अपने हित की हानि को समझ सकती हैं। सीताजी की माता ने कहा—आपका कहना श्रेष्ठ और सत्य है, आप पुण्यात्माओं की सीमारूपी अयोध्या की रानी ही तो हैं;

दोहा—लखनु राम सिय जाहुँ बन, भल परिनाम न पोचु।
गहबरिहियँ कह कौसिला, मोहि भरत कर सोचु ॥२८२॥

कौशल्याजी भरे हृदय से बोलीं—श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी वन को जायें, इसका परिणाम अच्छा ही होगा—बुरा नहीं। परन्तु मेरे लिए तो भरत का सोच है।

ईस प्रसाद असीष तुम्हारी * सुत सुतबधू देवसरि बारी

राम शपथ मैं कीन्ह न काऊ * सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ

ईश्वर की कृपा व आपके आशीर्वाद से मेरे पुत्र व पुत्रवधू गंगाजी के समान पवित्र हैं। श्रीरामजी की शपथ मैंने कभी नहीं खाई, सो खाकर हे सखी ! मैं सत्य-भाव से कहती हूं कि-

भरत शील गुन बिनय बड़ाई * भायप भगति भरोस भलाई
कहत सारदहु करि मति हीचे * सागर सीप कि जाहिं उलीचे

भरत का शील-स्वभाव, गुण, नम्रता, बड़ाई, भाईपन, भक्ति, भरोसा और भलाई कहते सरस्वती की बुद्धि हिचकती है। क्या सीप से समुद्र का जल उलीचा जा सकता है ?

जानउँ सदा भरत कुलदीपा * बार बार मोहि कहेउ महीपा
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ * पुरुष परिख अहिं समयँ सुभाएँ

मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूं, महाराज ने यह बात मुझसे बार-बार कही थी। सोना कसौटी पर कसने से तथा मणि जौहरी के परखने से ही परखी जाती है और पुरुष का स्वभाव समय पड़ने पर ही जाना जाता है।

अनुचित आजु कहब अस मोरा * सोक सनेहँ सयानप थोरा
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी * भईं सनेहँ बिकल सब रानी

आज मेरा ऐसा कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि शोक व स्नेह के कारण विवेक कम होगया है। कौशिल्याजी की गङ्गाजी के समान निर्मल वाणी सुनकर सब रानियाँ प्रेम-मग्न हो गईं।

दोहा—कौशल्या कह धीर धरि, सुनहु देव मिथिलेसि ।
को बिबेकनिधि बल्लभहि, तुम्हहि सकइ उपदेसि ॥२८३॥

फिर कौशिल्याजी ने धीरज धरकर कहा—हे देवी मिथलेश्वरी ! ज्ञान के भण्डार जनकजी की प्रिया। आपको कौन उपदेश दे सकता है।

रानि राय सन अबसरु पाई * आपनि भाँति कहब समुझाई
रखिअहिं लखनु भरत गवनहिं बन * जौं यह मत मानै महीप मन

हे रानी ! अवसर पाकर आप राजा से अपनी ओर से समझाकर कहना कि लक्ष्मण को रख लें और भरत वन को चले जांय, यदि यह सलाह महाराज के मन को अच्छी लगे—

तौ भल जतनु करब सुबिचारी * मोरें सोचु भरत कर भारी
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं * रहें नीक मोहि लागत नाहीं

तो भली-भांति विचार कर यही उपाय करें। मुझे तो भरत का विशेष सोच है, क्योंकि भरतजी के मन में गूढ़ स्नेह है, इसलिए भरतजी के रहने से मुझे भलाई नहीं लगती।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी * सब भइँ मगन करुनरस सानी
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि * सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि

उनका स्वभाव देख व मीठी वाणी सुनकर सब रानियां करुणा-रस में मग्न होगईं। आकाश से फूलों की वर्षा और 'धन्य-धन्य' की ध्वनि होने लगी, सिद्ध व मुनि स्नेह में मग्न होगये।

सब रनिवास बिथकि लखि रहेऊ * तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ
देवि दण्ड जुग जामिनि बीती * राम मातु सुनि उठी सप्रीती

रानियाँ थकित होकर देखती रह गईं, तब सुमित्राजी धीरज धरकर कहने लगीं-हे देवि ! दो घड़ी रात बीत गई । यह सुनकर श्रीराम-माता कौशल्याजी प्रेम सहित उठीं ।

दोहा—बेगि पाउ धारिअ थलहि, कह सनेहँ सतिभाय ।
हमरें तौं अब ईस गति, कै मिथिलेस सहाय ॥२८४॥

और स्नेह के साथ सद्भाव से बोलीं—आप शीघ्र डेरें को पधारिये । हमको तो ईश्वर की गति है अथवा महाराज जनकजी सहायक हैं ।

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता * जनक प्रिया गहे पाय पुनीता
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी * दशरथ घरिनि राम महतारी

उनका प्रेम देखकर व विनम्र वचन सुनकर रानी सुनयना ने उनके पवित्र चरणों को पकड़ कर कहा—हे देवि ! आपकी ऐसी नम्रता ही उचित है, क्योंकि आप महाराज दशरथ जी की रानी तथा श्रीरामजी की माता हैं ।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं * अगनिधूम गिरि सिर तिनु धरहीं
सेवकु राउ करम मन बानी * सदा सहाय महेसु भवानी

प्रभुअपने नीचजनोंका आदर करते हैं,जैसे अग्नि धुयेंको व पर्वत घास को सिर पर धारणकरते हैं। हमारे राजा तो मन, कर्म, वचन से आपके सेवक हैं, सहायक तो श्रीशिव-पार्वतीजी हैं ।

रउरे अङ्ग जोगु जग कोहै * दीप सहाय कि दिनकर सोहै
राम जाइ बनु करि सुरकाजू * अचल अबधपुर करिहहिं राजू

आपकी सहायता करने योग्य जगतमें कौन है? क्या दीपक सूर्यकी सहायता करने जाकर शोभा पा सकता है। श्रीरामजी देव-कार्य करके, बनसे लौटकर अवधपुरी में आ अटल राज्य करेंगे ।

अमर नाग नर राम बाहुबल * सुख बसिहहिंअ पनें अपनें थल
यह सब जागबलिक कहि राखा * देवि न होइ मुधा मुनि भाखा

देवता,नाग और मनुष्य सब श्रीरामजी की भुजाओं के बल से अपने २ स्थलों में सुख पूर्वक निवास करेंगे—यह याज्ञवल्क्य-मुनि ने पहले ही कह रक्खा है । हे देवि ! ऋषि का वचन मिथ्या नहीं हो सकता ।

दोहा—अस कहि पग परि प्रेम अति, सियहित बिनय सुनाय ।
सिय समेत सिय मातु तब, चली सुआयसु पाय ॥२८५॥

इस प्रकार कहकर बड़े प्रेम से पांवों में पड़ गईं और सीताजी के हित के लिए विनती करके आज्ञा पाकर सीताजी सहित सुनयना अपने डेरे को चलीं ।

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही * जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही
तापस बेष जानकी देखी * भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी

जानकीजी [illegible] को

तपस्विनी के वेष में देखकर अत्यन्त व्याकुल हुए।

जनक राम गुरु आयसु पाई * चले थलहि सिय देखीं आई
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी * पाहुनि पावन प्रेम प्रान की

जानकीजी-श्रीरामजी व गुरुकी आज्ञा पाकर डेरे को चले और उन्होंने जाकर सीताजी को देखा। जनकजी ने अपने प्रेम व प्राणोंकी पवित्र-पाहुनी जानकीजी को हृदय से लगा लिया।

उर उमगेउ अम्बुधि अनुरागू * भयउ भूप मनु मनहुँ प्रयागू
सिय सनेह वटु बाढ़त जोहा * तापर राम प्रेम शिशु सोहा

हृदय में प्रेम का सागर उमड़ पड़ा, राजा का मन प्रयाग होगया, उसमें उन्होंने सीताजी का स्नेहरूपी वृक्ष बढ़ते देखा, उस पर श्रीरामजी का स्नेहरूपी बालक शोभायमान है।

चिरजीवी मनि ग्यान बिकलजनु * बूड़त लहेउ बाल अवलम्बनु
मोह मगन मति नहिं बिदेह की * महिमा सिय रघुबर सनेह की

जनकजी का ज्ञानरूपी मार्कण्डेय-मुनि, मानो, विकल होकर डूबते हुए उस बालक का सहारा पाकर बच गया। जनकजी की बुद्धि कभी मोह में मग्न नहीं है, यह तो श्रीसीता-रामजी के स्नेह की महिमा है।

दोहा–सिय पितु मातु सनेह बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनि सुताँ धीरजु धरेउ, समउ सुधरम विचारि ॥२८६॥

पिता-माता के स्नेह वश सीताजी विकल होकर अपने को सँभाल नहीं सकीं तो भी भूमि-सुता सीताजी ने समय और श्रेष्ठ धर्म को विचार कर धीरज धारण किया।

तापस वेष जनक सिय देखी * भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ * सुजसु धवल जगु कह सबु कोऊ

तपस्विनी के वेष में सीताजी को देख जनकजी को बड़ा प्रेम व संतोष हुआ। वे बोले पुत्री! तुमने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया, तुम्हारा निर्मल यश जगत में सब कोई वर्णन करेंगे।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी * गवनु कीन्ह बिधि अण्ड करोरी
गङ्ग अवनि थल तीनि बडेरे * एहिं किए साधु समाज घनेरे

तुम्हारी कीर्तिरूपी नदी गङ्गाजी को भी जीत कर करोड़ों ब्रह्माण्डों में बह चली। गङ्गाजी ने तो पृथ्वी पर तीन ही प्रमुख स्थान बनाये हैं, परन्तु तुम्हारी कीर्ति का तो अनेकों साधुजनों के समाज में स्थान है।

पितु कह सत्य सनेहँ सुबानी * सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई * सिय आसिष हित दीन्हि सुहाई

पिता जनक ने तो सच्चे स्नेह से सही वाणी कही परन्तु सीताजी सकुचाकर मानो संकोच में समा गईं। फिर माता-पिता ने हृदय से लगाकर हितकारी शिक्षा और सुन्दर आशीष दी।

कहति न सीय सकुचि मन माहीं * इहाँ बसब रजनी भल नाहीं

लखि रुख रानि जनायउ राऊ * हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ

सीताजी मनमें सकुचाकर यह नहीं कहतीं कि रात में यहाँ रहना ठीक नहीं है। रानी ने सीताजी का रुख जानकर महाराज को जता दिया। तब वे मन में सीताजी के शील-स्वभाव की बड़ाई करने लगे।

दोहा—बार बार मिलिभेंट सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कहीसमय सिरभरतगति, रानि सुबानि सयानि ।।२८७।।

बारम्बार मिलकर राजा-रानी ने सीताजी को आदर सहित विदा किया, फिर चतुर रानी ने समय पाकर राजा से भरतजी की दशा मधुर वाणी से कही।

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू * सोन सुगन्ध सुधा शशि सारू
मूदे सजल नयन पुलके तन * सुजसु सराहन लगे मुदित मन

सोने में सुगन्ध चन्द्रमा के साररूप अमृत के समान भरतजी का व्यवहार सुन राजा ने अपने सजल-नेत्र बन्द कर लिये, शरीर पुलकित होगया और मुदित मन से उनकी बड़ाई करने लगे।

सावधानसुनिसुमुखिसुलोचनि * भरत कथा भव बन्ध बिमोचनि
धरम रामनय ब्रह्म बिचारू * इहाँ जथामति मोर प्रचारू

हे सुमुखी ! हे सुनयनी ! सावधान होकर सुनो, भरतजी की कथा संसार-बन्धन को छुड़ाने वाली है। धर्म, राजनीति व ब्रह्म-विचार इन तीनों में मेरी बुद्धि की जैसी गति है—

सोमति मोर भरत महिमाहीं * कहै काह छल छुअति न छाहीं
बिधिगनपतिअहिपतिसिवसारद * कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद

वह मेरी बुद्धि भरतजी की महिमा को वर्णन करना तो क्या, छल से उसकी छाया को भी नहीं छू सकती। ब्रह्मा, गणेश, सरस्वतीजी, शिवजी, कवि चतुर पण्डित और बुद्धिमान।

भरत चरित कीरति करतूती * धरम सील गुन बिमल बिभूती
समुझत सुनत सुखदसब काहू * सुचिसर सरि रुचि निदरसुधाहू

सबको भरतजी के चरित्र, सुयश, सुकर्म, धर्मशील, निर्मल, गुण व ऐश्वर्य, समझने व सुनने में सुख देने वाले हैं और पवित्रता में गङ्गाजी के समान व रुचि में अमृत से भी बढ़कर हैं।

दोहा—निरवधि गुन निरुपमपुरुष, भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेरसम, कबिकुलमति सकुचानि ।।२८८।।

भरतजी असीम गुण-संपन्न व उपमा रहित पुरुष हैं भरतजी के समान भरतजी ही हैं। सुमेरु पर्वत क्या शेर के बराबर कहा जा सकता है? यह समझकर कवियों की बुद्धि भी सकुचागई।

अगम सबहि बरनत बर बरनी * जिमि जलहीन मीन गमु धरनी
भरत अमित महिमा सुनु रानी * जानहिं राम न सकहिं बखानी

हे उत्तम वर्णवाली ! भरतजी की महिमा वर्णन करना सबको ऐसा कठिन है-जैसे जल हीन पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी ! सुनो, भरतजी की अपरम्पार महिमा को श्रीरामजी ही जानते हैं, परन्तु वे भी वर्णन नहीं कर सकते।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ * तिलजियका रुचिलखिकहराऊ
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं * सबकर भल सबके मन माहीं

भरतजी के उत्तम भाव प्रेम के साथ वर्णन करके महारानी के मनकी रुचि देख, राजा बोले—लक्ष्मणजी लौटें, भरतजी वन को जायें, इसीमें सबका भला है और यही सबके मन में है

देवि परन्तु भरत रघुबर की * प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी
भरतु अवधि सनेह ममता की * जद्यपि राम सीम समता की

परन्तु, हे देव ! भरत और श्रीरामजी की प्रीति और प्रतीति में तर्क नहीं किया जा सकता। यद्यपि श्रीरामजी समता की सीमा हैं, तो—भरतजी भी प्रेम और स्नेह की सीमा हैं।

परमारथ स्वारथ सुख मारे * भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे
साधन सिद्धि राम पद नेहू * मोहि लखि परत भरतमत ऐहू

भरतजी ने परमार्थ, स्वार्थ और सुख स्वप्न में भी नहीं देखे। श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम ही उनके साधन और सिद्धि हैं। भरतजी का एक यही मत मुझे समझ पड़ता है।

दोहा—भोरेहुँ भरत न पेलिअहिं, मन सहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोच सनेहँ बस, कहेउ भूप बिलखाइ ॥२८९॥

राजा ने बिलखकर कहा—हे रानी ! भरतजी भूलकर स्वप्न में श्रीरामजी की आज्ञा को नहीं टालेंगे। अतः स्नेह के वश कुछ भी सोच मत करो।

राम भरत गुन गनत सप्रीती * निसि दम्पतिहि पलकसमबीती
राम समाज प्रात जुग जागे * न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे

श्रीरामजी व भरतजी के गुणों को प्रेम पूर्वक कहते-सुनते राजा-रानी को यह रात पल के समान बीत गई। प्रातःकाल दोनों राज-समाज जागे और स्नान करके देवताओं की पूजा की।

गे नहाय गुरु पहिं रघुराई * बन्दि चरन बोले रुख पाई
नाथ भरत पुरजन महतारी * सोक बिकल बनवास दुखारी

श्रीरघुनाथजी स्नान करके गुरु के पास गये और उनके चरणों में प्रणाम करके उनका रुख पालकर बोले-हे नाथ ! भरतजी, अयोध्यावासी और सब मातायें शोक से व्याकुल एवं वनबास से दुःखी हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू * बहुत दिवस भए सहत कलेसू
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा * हित सबही कर रौरें हाथा

राजा जनकजी को भी अपने समाज सहित क्लेशित रहते हुए बहुत दिन होगये। अतः हे नाथ ! जैसा उचित हो—वैसा ही कीजिए, क्योंकि सबका हित आपके ही हाथ में है।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ * मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ
तुम्ह बिनु राम सकलसुखसाजा * नरकसरिस दुहु राज समाजा

ऐसा कह श्रीरघुनाथजी बहुत सकुचाये, तब मुनि उनके शील स्वभाव को देखकर पुलकित हो

गये और बोले—हे श्रीराम ! तुम्हारे बिना सब सुखके साज दोनों समाजों को नरक के समान हैं।

दोहा—प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुखधाम।
तुम्हतजि तात सुहात गृह, जिन्हहि तिन्हहि बिधिबाम॥२९०॥

हे श्रीरामजी ! तुम प्राणों के भी प्राण, जीव के भी जीव तथा सुखों के भी सुखधाम हो। तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर सुहाता हो, उन्हें विधाता विपरीत है।

सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ * जहँ न राम पदपङ्कज भाऊ
जोगु कुजोगु ग्यान अग्यानू * जहँ नहिं राम प्रेम परिधानू

वह सुख, कर्म तथा धर्म जल जायँ, जिनमें श्रीरामजी के चरणारविंदों की भक्ति न हो वह योग-कुयोग है और ज्ञान-अज्ञान है, जिसमें-श्रीराम-प्रेम प्रधान न हो।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं * तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं
राउर आयसु सिर सबही कें * बिदित कृपालहि गति सब नीकें

सब तुम्हारे बिना दुखी और तुमसे ही सुखी हैं। जिनके मन में जो बात होती है, उसे आप जानते हो। आपकी आज्ञा सब ही के सिर पर है। हे दयालु ! सबकी दशा आपको भली-भाँति विदित है।

आपु आश्रमहि धारिअ पाउँ * भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ
करि प्रनामु तब रामु सिधाए * ऋषि धरि धीर जनक पहिं आए

आप आश्रम में पधारिये। इतना कहकर मुनिराज प्रेम में मग्न हो गये, तब श्रीरामजी उन्हें प्रणाम करके चले गये और मुनि धैर्य धारण करके जनकजी के पास आये।

राम बचन गुरु नृपहि सुनाए * सील सनेह सुभायँ सुहाए
महाराज अब कीजिअ सोई * सब कर धरम सहित हित होई

गुरुजी ने श्रीरामजी के शील, स्नेह और स्वाभाविक ही सुहावने वचन जनकजी को सुनाये और बोले—हे महाराज! इस समय वही कीजिये, जिसमें धर्म सहित सबका हित हो।

दोहा—ग्यान निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरिपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल॥२९१॥

हे राजन् ! आप ज्ञान के भंडार, चतुर, शुद्ध और धर्मधुरन्धर हो। आपके बिना इस समय इस दुविधा को दूर करने में कौन समर्थ है ?

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे * लखि गति ग्यानु बिराग बिरागे
सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं * आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं

मुनि के वचन सुन राजा प्रेम-मग्न होगये, उनकी दशा देख ज्ञान तथा वैराग्य को भी वैराग्य हो गया। स्नेह मग्न हो,मनमें विचार करने लगे कि यहाँ हम आये, यह हमने ठीक नहीं किया।

रामहि रायँ कहेउ बन जाना * कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना
हम अब बन तें बनहि पठाई * प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई

राजा ने रामजी को तो वन में जाने को कहा और अपने प्रिय स्नेह को प्रमाणित सत्य कर दिया। परन्तु अब हम इन्हें वन को भेजकर अपने ज्ञान की बड़ाई में आनन्दित हुए लौटेंगे।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी * भए प्रेम बस विकल विसेषी
समउ समुझि धरि धीरजु राजा * चले भरत पहिं सहित समाजा

तपस्वी मुनि और ब्राह्मण यह देख और सुनकर स्नेह के वश बहुत व्याकुल हुए। राजा समय विचार धीरज ग्रहण कर समाज सहित भरतजी के पास चले।

भरत आइ आगें होइ लीन्हे * अवसर सरिस सुआसन दीन्हे
तात भरत कह तेरहुति राऊ * तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुभाऊ

भरतजी ने उन्हें आगे आकर लिया और समयानुसार सुन्दर आसन दिये। राजा जनक जो बोले—हे तात भरत! तुमको श्रीरामजी का स्वभाव मालूम ही है।

दोहा—राम सत्यब्रत धरम रत, सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत सँकोच बस, कहिअ जो आयसु देहु ॥ २९२॥

श्रीरामजी सत्यब्रती और धर्म-परायण हैं, वे सबके शील तथा स्नेह से संकोचवश संकट सहते हैं। अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाय।

सुन तनु पुलकि नयन भरि बारी * बोले भरतु धीर धरि भारी
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू * कुलगुरु समहित माय न बापू

यह सुन भरतजी पुलकितदेह हो, नेत्रोंमें जल भरकर धैर्य धरकर बोले—हे प्रभु! आप हमारे पिता के समान प्रिय व पूज्यनीय हैं और कुलगुरु वशिष्ठजीके समान हितकारी माता-पिताभी नहीं हैं।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू * ग्यान अम्बुनिधि आपुन आजू
शिशु सेवक आयसु अनुगामी * जानि मोहि सिख देइअ स्वामी

विश्वामित्रजी आदि मुनि और मंत्री लोगों का समाज है और ज्ञानके समुद्र आपभी आज यहाँ विद्यमान हैं, हे स्वामी! मुझे अपना बालक, सेवक और आज्ञाकारी जानकर शिक्षा दीजिये।

एहिं समाज थल बूझब राउर * मौन मलिन मैं बोलव बाउर
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता * छमब तात लखि बाम विधाता

इस समाज में ऐसे स्थान पर आपका पूछना। मौन रहने पर मैं मलिन मन एवं बोलने पर पागल समझा जाऊँगा। हे तात! छोटे मुँह से बड़ी बात कहूँ तो विधाता को उल्टा जानकर क्षमा कीजियेगा।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना * सेवा धरमु कठिन जगु जाना
स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू * बैरु अन्धु प्रेमहि न प्रबोधू

यह शास्त्र, वेद तथा पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है कि सेवा धर्म कठिन है स्वामी-धर्म और स्वार्थ में विरोध है, बैर अन्धा है और प्रेम में प्रबोध नहीं रहता।

दोहा—राखि रामरुख धरम ब्रत, पराधीन मोहि जानि।

सब कें सम्मत सर्वहित, करिअ प्रेमु पहिचानि ॥२८३॥

श्रीरामजी का रुख देखकर, उनके धर्म और व्रत को रखकर मुझे पराधीन जान सबकी सम्मति के अनुसार, जिसमें सबका हित हो, प्रेम पहिचान कर वही काम कीजिए।

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ * सहित समाज सराहत राऊ
सुगम अगम मृदु मञ्जु कठोरे * अरथु अमित अति आँखर थोरे

भरतजी के वचन सुन और उनका स्वभाव देख जनकजी समाज सहित बड़ाई करने लगे। उनके वचन सुगम, अगम, कोमल, मनोहर तथा कठोर हैं जिनके अर्थ बहुत तथा अक्षर कम थे।

ज्यों मुख मुकुर मुकुरु निज पानी * गहि न जाइ अस अदभुत बानी
भूप भरतु मुनि सरिस समाजू * गे जहँ बिबिध कुमुद सुरराजू

जैसे दर्पण में मुख दीखता है और दर्पण अपने हाथमें होने पर भी वह पकड़ा नहीं जाता ऐसे ही भरतजी की अद्‌भुत वाणी पकड़ी नहीं जा सकती। महाराज जनक, भरतजी, मुनिजन व समाज सहित वहाँ गये, जहाँ देवतारूपी कुमुदों को खिलाने वाले चन्द्रमा श्रीरामजी थे।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा * मनहुँ मीनगन नव जल जोगा
देवँ प्रथम कुलगुरु गति देखी * निरखि बिदेह सनेह बिसेषी

यह सुनकर सब सोच से व्याकुल हो गये जैसे मछलियाँ पहली वर्षा के जल के संयोग से हो जाती हैं। देवताओं ने पहले वशिष्ठजी की दशा देखी फिर जानकीजी का स्नेह देखा।

राम भगतिमय भरतु निहारे * सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे
सब कोउ राम प्रेममय देखा * भए अलेख सोचबस लेखा

भरतजी को राम-भक्ति में लवलीन देखकर स्वार्थी देवता घबड़ाकर अपने जी में हार गये। सबको राम-स्नेह में मग्न देखकर देवता लोग ऐसे सोच के बस हुए कि कहा नहीं जा सकता।

दोहा—रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहिं त भयउ अकाजु ॥२८४॥

देवराज इन्द्र ने सोच में भरकर कहा कि श्रीरामचन्द्रजी तो प्रेम के संकोच के वश में हैं। सब मिलकर प्रपञ्च रचो, नहीं तो अकाज हुआ जानो।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही * देबि देव सरनागत पाही
फेरि भरतमति करि निज माया * पालु बिबुधकुल करि छलछाया

देवताओं ने सरस्वतीजी का स्मरण कर स्तुति की—देवता शरणागत हैं, रक्षा करिये! अपनी माया करके भरतजी की मति फेर दीजिए और छल की माया करके देव-कुलकी रक्षा कीजिए।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी * बोली सुर स्वारथ जड़ जानी
मो सन कहहु भरत मति फेरू * लोचन सहस न सूझ सुमेरू

देवों की विनती सुन बुद्धिमति सरस्वतीजी देवों को स्वार्थी व मूर्ख जानकर बोलीं—मुझसे

भरतजी की मति फेरने को कहते हो, क्या हजार नेत्र होने पर भी तुम्हें सुमेरु नहीं सूझता?

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी * सोउ न भरतमति सकइ निहारी
सो मति मोहि कहत करु भोरी * चन्दिनि कर कि चण्डकरि चोरी

ब्रह्मा, विष्णु, महेश की माया बड़ी प्रबल है, वह भी भरतजी की बुद्धि की ओर नहीं देख सकती। उस मति को मुझसे कहते हो कि फेर दो, क्या चाँदनी सूर्य को चुरा सकती है।

भरत हृदयँ सिय राम निवासू * तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू
अस कहि सारद गइ बिधि लोका * बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका

भरतजी के हृदय में श्रीसीता-रामजी वास करते हैं। जहाँ सूर्य का प्रकाश है-वहाँ क्या अँधेरा रह सकता है? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक को चली गईं। तब देवता ऐसे व्याकुल हुए, जैसे रात को चकवा।

दोहा—सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमन्त्त कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल, भय भ्रम करम उचाटु ॥२९५॥

स्वार्थी और मलिन-मन देवों ने कुमन्त्र करके षडयन्त्र रचा। प्रबल माया रचकर भय भ्रम, दुःख और उच्चाटन फैला दिया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू * भरत हाथ सबु काजु अकाजू
गए जनक रघुनाथ समीपा * सनमाने सब रबिकुल दीपा

उपद्रव करके इन्द्र सोचने लगे कि अब भरतजी के हाथ में ही सब कामों का सुधारना और बिगाड़ना है। महाराज जनकजी रघुनाथजी के पास आये, तब सूर्यकुल के दीपक श्रीरामचन्द्रजी ने उनका सम्मान किया।

समय समाज धरम अबिरोधा * बोले तब रघुबंस पुरोधा
जनक भरत सम्बादु सुनाई * भरत कहाउति कही सुहाई

तब रघुवंशियों के पुरोहित वशिष्ठजी—समय, समाज एवं धर्म के अनुसार वचन बोले-उन्होंने प्रथम जनक और भरतजी का सम्वाद सुनकर, भरतजी को सुन्दर बातें कह सुनाईं।

तात राम जस आयसु देहू * सो सबु करै मोर मत एहू
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी * बोले सत्य सरल मृदु बानी

वे बोले—हे तात रामजी ! आप जो आज्ञा दें—वही सब करें, मेरा तो यही मत है। यह सुनकर रघुनाथजी हाथ जोड़कर सत्य, सरल और मधुर वाणी बोले—

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू * मोर कहब सब भाँति भदेसू
राउर राय रजायसु होई * राउरि सपथ सही सिर सोई

आप एवं महराज जनकजी के उपस्थित रहते, मेरा कहना सब भाँति से अयोग्य है। आप और राजाकी जो आज्ञा होगी, आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं उसे ही शिरोधार्य करूँगा।

दोहा—राम सपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकित भरत मुख, बन न उतरु देत ॥२९६॥

श्रीरामचन्द्र की शपथ सुनकर मुनि वशिष्ठजी और जनकजी सभा समेत सकुचा गये सब भरतजी के मुख की ओर देखने लगे, किसी से उत्तर देते नहीं बना।

सभा सकुच बस भरत निहारी * रामबन्धु धरि धीरजु भारी
कुसमय देखि सनेह सँभारा * बढ़त बिंधि जिमि घटजनिवारा

भरतजी ने सब लोगों को संकोच में देखा, तब राम बन्धु भरतजी ने धैर्य धरकर कुसमय जानकर अपने बढ़ते हुए प्रेम को रोका, जैसे बढ़ते हुए विंध्याचल को अगस्त्य मुनि ने रोका था।

सोक कनक जोचन मति छोनी * हरी बिमल गुनगन जग जोनी
भरत बिबेक बराहँ बिसाला * अनायास उधरी तेहि काला

शोकरूपी हिरण्याक्ष ने बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया, जो निर्मल गुणरूपी जगत् को उत्पन्न करने वाली थी। भरत के विवेकरूपी विशाल-बराह ने बिना परिश्रम ही उसका उद्धार किया।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे * रामु राउ गुर साधु निहोरे
छमब आजु अति अनुचित मोरा * कहउँ मृदुल मुख बचन कठोरा

भरतजी हाथ जोड़कर सबको प्रणाम करके—श्रीरामजी, राजा जनक, गुरु और साधुजनों की विनती करके बोले—आज मेरी इस अनुचित वार्ता को क्षमा करियेगा कि मैं कोमल मुख से कठोर वचन कहता हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई * मानस तें मुख पंकज आई
बिमल बिबेक धाम नय साली * भरत भारती मञ्जु मराली

भरतजी ने हृदय में सुन्दर सरस्वती का स्मरण किया, वे मनरूपी मानसरोवर से मुख कमल में आगई। वैराग्य, ज्ञान, धर्म और नीति से भरी हुई भरतजी की वाणी सुन्दर हंसिनी है।

दोहा—निरख बिबेक बिलोचनन्हि, सिथिल सनेहँ समाजु।
करि प्रनामु बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९७॥

अपने ज्ञान-नेत्रों से सब समाज को स्नेह मग्न देखकर। उन्हें प्रणाम करके श्रीसीतारामजी का स्मरण करके भरतजी बोले—

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी * पूज्य परम हित अन्तरजामी
सील सुसाहिबु सील निधानू * प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू

हे प्रभु! आप माता-पिता, मित्र, गुरू, स्वामी, पूज्य, परम हितैषी और अन्तर्यामी हैं। आप सरल हृदय, उत्तम स्वामी, शील-निधान, शरणागत-रक्षक, सर्वज्ञ, चतुर—

समरथ सरनागत हितकारी * गुनगाहकु अबगुन अघ हारी
स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँई * मोहि समान मैं साँइ दोहाई

समर्थ, शरणागत और भक्तजनों के हितैषी, गुण-ग्राहक और पापों का नाश करने वाले हैं। हे स्वामी! आपके समान प्रभु 'आप' ही हैं और मेरे समान स्वामि-द्रोही 'मैं' ही हूँ।

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली * आयउँ इहाँ समाजु सकेली

जग भल पोच ऊँच अरु नोचू * अमिअ अमरपद माहुरु मीचू

मैं, प्रभु और पिताजी के वचनों का मोह के वश उल्लंघन कर समाज को इकट्ठा करके यहाँ आया हूँ। जगत् में भले-बुरे, ऊँच-नोच, अमृत और स्वर्ग, विषय तथा मृत्यु आदि–

राम रजाइ मेट मन माहीं * देखा सुना कतहुँ कोऊ नाहीं
सौ मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई * प्रभु मानी सनेह सेवकाई

कोई भी ऐसा नहीं देखा-सुना, जो श्रीरामजी की आज्ञा को मेटने वाला हो। मैंने हर प्रकार की ढिठाई की, परन्तु प्रभु ने उसे सेवकाई मान लिया।

दोहा–कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९८॥

हे नाथ ! आपने अपनी कृपा और भलाई से मेरा भला किया, जिससे मेरे दोष भी भूषण हो गये और सुयश भी चारों ओर फैल गया।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई * जगत बिदित निगमागम गाई
कूर कुटिल खल कुमति कलङ्की * नीच निसील निरीस निसङ्की

आपकी रीति और सुन्दर वाणी की बड़ाई जगत् में प्रसिद्ध है, जो वेद-शास्त्रों ने भी गाई है और जो महा निर्दयी, खोटे, दुष्ट, दुर्बुद्धि, दोषी, शीलरहित, नास्तिक और विदुर हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए * सुकृत प्रनामु किहें अपनाए
देखि दोष कबहुँ न उर आने * सुनि गुन साधु समाज बखाने

वे भी अपने सम्मुख शरण में आये सुनकर कई बार प्रणाम करने पर भी आपने अपना लिये उनके दोष देख आप कभी मनमें नहीं लाये और उनके गुण सुन साधुजनों के समाज में कहे।

को साहिब सेवकहि नेवाजी * आप समान साज सब साजी
निज करतूति न समुझिअ सपनें * सेवक सकुच सोच उर अपनें

ऐसा स्वामी कौन है, जो अपने सेवक की रक्षा कर अपने समान उसके साज सजादे। आप अपनी करनी का स्वप्न में भी विचार न कर, सेवक के संकोच का सोच अपने हृदय में रखते हैं।

सो गोसाईं नहिं दूसर कोपी * भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी
पशु नाचत शुक पाठ प्रबीना * गुन गति नट पाठक आधीना

ऐसा स्वामी आपके सिवाय कोई नहीं है, मैं यह भुजा उठाकर कहता हूँ। पशु नाचने और पक्षी पाठ में प्रवीण हो जाते हैं। इनके व गुण व गति पढ़ाने नचाने वाले के आधीन हैं।

दोहा–यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमौर।
को कृपाल बिनु पालि है, बिरदावलि बरजोर ॥२९९॥

ऐसे आपने सेवक को सुधार कर उसका सम्मान करके साधुओं का शिर मौर बना दिया। आप जैसे दयालु के बिना हठ पूर्वक सुयश का पालन कौन करेगा ?

सोक सनेहँ कि बाल सुभाएँ * आयउँ लाइ रजायसु बाएँ

तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा * सबहि भाँति भल मानेउ मोरा

मैं शोक से प्रेम से अथवा स्वभाव वश आज्ञा न मानकर यहाँ आया, तो भी दयालु ने अपनी ओर देखकर मेरा भला ही माना।

देखेऊँ पाउँ सुमङ्गल मूला * जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू * बड़ी चूक साहिब अनुरागू

मङ्गल के मूल 'चरणों' के दर्शन किये और यह जान लिया कि स्वामी सहज ही मेरे अनुकूल हैं। इसे बड़े समाज में अपने भाग्यको भी देखा कि बड़ी चूक होने पर भी स्वामी का मुझ पर प्रेम है।

कृपा अनुगृह अंगु अघाई * कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई
राखा मोर दुलार गोसाईं * अपनें सील सुभायँ भलाई

आपकी कृपा और अनुग्रह से मेरे सब अङ्ग अघा गये। कृपानिधान ने सब अधिक ही किया। हे स्वामी! शील, स्वभाव और भलाई से मेरा प्रण रक्खा।

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई * स्वामि समाज सकोच बिहाई
अबिनय बिनय जथारुचि बानी * छमिहि देउ अति आरति जानी

हे नाथ! आपका और समाज का संकोच छोड़ मैंने बहुत ढिठाई की है। विनय रहित अथवा विनय सहित जैसी रुचि हुई, वैसी ही वाणी मैंने कही है अतः हे देव! मुझे अति दुःखी जानकर क्षमा करना।

दोहा–सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब, सबइ सुधारी मोरि ॥३००॥

सुहृदय, चतुर और अच्छे स्वामी से बहुत कहना–बड़ा दोष है अतः हे देव! आज्ञा कीजिये। मेरी सब बात आपने सुधार दी।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई * सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई
सो करि कहउँ हिये अपने की * रुचि जागत सोवत सपने की

प्रभु के चरणारविन्दों की रज जो सत्य, पुण्य और सुख की सुन्दर सीमा है, दुहाई करके मैं अपने हृदय को जागते, सोते और स्वप्न में भी बनी रहने वाली रुचि कहता हूँ–

सहज सनेहँ स्वामी सेवकाई * स्वारथ छल फल चारि विहाई
अग्या सम न सुसाहिब सेवा * सो प्रसादु जन पावै देवा

कि स्वार्थ, कपट, दम्भ, पाखण्ड-इन चारों को छोड़कर स्वाभाविक प्रेम से स्वामी की सेवा करनी चाहिए। भले स्वामी की आज्ञा पालने के समान दूसरी सेवा नहीं है। हे देव! अब यह सेवक वही प्रसाद (आज्ञा) पावे।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी * पुलक सरीर बिलोचन बारी
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई * समय सनेहु न सो कहि जाई

ऐसा कहकर भरतजी प्रेम के वश हो गये शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों में जल भर आया। घबड़ाकर प्रभु के चरण कमल पकड़ लिये, उस समय का स्नेह कहा नहीं जाता।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी * बैठाए समीप गहि पानी
भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ * सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ

कृपासिंधु श्रीरामजी ने मीठी वाणी से सत्कार कर हाथ पकड़ उन्हें अपने पास बिठाया। भरतजी के वचन सुन और स्वभाव को देख सब सभा व श्रीरामजी प्रेम में शिथिल होगये।

छन्द—रघुराउसिथिल सनेहँ साधु समाज मुनि मिथिलाधनी।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा धनी॥
भरतहि प्रशंसहि बिबुध बरसत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी विकल सब लोग मुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

श्रीरामजी,साधु-समाज,मुनि व मिथिलेश स्नेह से शिथिल होगये,मनमें भरतजी के भ्रातृ-भाव और भक्ति की महिमा को सराहने लगे। देवता भी प्रशंसा करते हुए मलिन मन से पुष्प बरसाने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग ऐसे व्याकुल होगये, जैसे रात में कमल।

सो०—देखि दुखारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुएहुँ मारि मंगल चहत॥३०१॥

दोनों समाजों के सब स्त्री-पुरुषों को दीन-दुःखी देखकर भी महामलिन इन्द्र मरे हुओं को मारकर मङ्गल चाहता है।

कपट कुचालि सीवँ सुरराजू * पर अकाजु प्रिय आपन काजू
काक समान पाक रिपु रीती * छली मलीन कतहुँ न प्रतीती

देवराज इन्द्र कपट और कुचालकी सीमा है,पराई हानि और अपना लाभ उन्हें प्रिय लगता है इन्द्र की रीति कौए के समान है, वह छली और मलिन है,उसे कहीं किसी का विश्वास नहींहै।

प्रथम कुमति करि कपटु सँकेला * सो उचाटु सब कें सिर मेला
सुर मायाँ सब लोग बिमोहे * राम प्रेम अतिसय न बिछोहे

पहले कुमति करके कपट को इकट्ठा किया था,फिर वह उचाट सबके सिर पर डाल दिया। देव माया ने सब लोगों को मोहित कर दिया,तो भी वे श्रीरामजी के प्रेम से बहुत दूर नहीं हुए।

भए उचाटु बस मन थिर नाहीं * छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी * सरित सिंधु सङ्गम जनु बारी

उचाट के वश किसी का मन स्थिर नहीं रहा, क्षण भर में तो वन में रहने की इच्छा होती है और क्षणभर में घर सुन्दर लगने लगता है। मन की दुविधा से प्रजा दुःखी है, जैसे नदी तथा समुद्र के सङ्गम का जल क्षुब्ध हो।

दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं * एक एक सन मरमु न कहहीं
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू * सरिस स्वाँन मघवान जुवानू

दुविधा में कहीं भी संतोष नहीं पाते और एक दूसरे से अपना भेद नहीं कहते। यह देखकर कृपानिधान श्रीरामजी मन में हँसकर बोले कि कुत्ता, इन्द्र और युवा पुरुष एक समान है।

दोहा—भरत जनकु मुनिजन सचिव, साधु समेत बिहाय।
लागि देवमाया सबहि, जथाजोगु जन पाय ॥३०२॥

भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्री, साधु और ज्ञानी-इनको छोड़कर, देव-माया सबको जो जिस योग्य था—उसे वैसे ही लग गई।

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे * निज सनेहँ सुरपति छल भारे
सभा राउ गुर महिसुर मन्त्री * भरत भगति सब कै मति जन्त्री

कृपासिंधु श्रीरामजी ने अपने स्नेह व इन्द्र के भारी छलसे लोगों को दुःखी देखा। सभा-सब, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण तथा मन्त्री—इन सबकी बुद्धि भरतजी की भक्ति से बँध गई।

रामहि चितवत चित्र लिखे से * सकुचत बोलत बचन सिखे से
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई * सुनत सुखद बरनत कठिनाई

सब श्रीरामजी की ओर चित्र-लिखे से देख रहे हैं, सकुचाते हुए सिखाये से बोल रहे है। भरतजी का प्रेम, नम्रता, विनय और बड़ाई—सुख देने वाली और कहने में कठिन है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू * प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू
महिमा तासु कहै किमि तुलसी * भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी

जिनकी भक्ति का अंश देखकर मुनिगण व मिथिलेश प्रेम-मग्न होगये, उनकी महिमा को तुलसीदास कैसे कहें? उसी भक्ति के प्रताप से (कवि के) हृदय में सुबुद्धि का उदय हुआ है।

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी * कबिकुल कानि मानि सकुचानी
कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई * मति गति बाल बचन की नाँई

वह बुद्धि अपने को छोटी और महिमा को बड़ी जानकर, कवि-वंश की मर्यादा को मानकर सकुचा गये। गुणों में रुचि तो है, परन्तु बुद्धि कह नहीं सकती। क्योंकि बुद्धि की गति बालक के वचनों के समान है।

दोहा—भगत बिमल जसु बिमल बुधि, सुमति चकोरकुमारि।
उदित बिमल जन हृदयँ नभ, एकटक रही निहारि ॥३०३॥

भरतजी का सुयश निर्मल चन्द्रमा है और बुद्धि चकोर है जो भक्तों के निर्मल हृदयरूपी आकाश में उसे उदित देखकर एक टक देख रही है।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ * लघुमति चापलता कबि छमहूँ
कहत सुनत सतिभाउ भरत को * सीय राम पद होइ न रत को

भरतजी का स्वभाव तो वेदों को भी सुगम नहीं है, इसलिये मेरी बुद्धि की चंचलता को कवि गण क्षमा करें। भरतजी का स्वभाव कहते-सुनते ऐसा कौन है—जो श्रीसीता-रामजी के चरणों के अनुरक्त न होगा?

सुमिरत भरतहि प्रेम राम को * जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को
देखि दयाल दसा सब ही की * राम सुजान जान जन जी की

भरतजी के प्रेम का स्मरण करते ही श्रीरामजी का प्रेम जिसे सुलभ न हो, उसके समान भाग्य

हीन कौन है? दयालु व सुजान श्रीरामजीने सबकी दशा देखकर, भक्तके हृदय की बात जानकर-

धरम धुरीन धीर नय नागर * सत्य सनेह शील सुखसागर
देश कालु लखि समउ समाजू * नीति प्रीति पालक रघुराजू

धर्म धुरन्धर, धीर, सत्य, स्नेह, शील और सुख के समुद्र—देश, काल, समय और सभा को देखकर नीति और प्रीति के पालक श्रीरघुनाथजी—

बोले बचन बानि सरबसु से * हित परिनाम सुनत राशि रसु से
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना * लोक वेद विद प्रेम प्रबीना

वाणी के सर्वस्व के समान वचन बोले, जो परिणाम में हितकारी व सुनने में अमृत के तुल्य हैं। हे तात भरत! तुम धर्म धुरन्धर हो, लोक-रीति और वेद जानने वाले तथा प्रेम में चतुर हो।

दोहा—करम वचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरुसमाज लघुबन्धु गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥३०४॥

हे तात! कर्म, वचन, तथा मन से निर्मल—तुम्हारे समान तुम्हीं हो। गुरुजनों की सभा में छोटे भाई के गुण-इस कुसमय में कहे जा सकते हैं?

जानहु तात तरनि कुल रीती * सत्यसिंधु पितु कीरति प्रीती
समउ समाजु लाज गुरजन की * उदासीन हित अनहित मन की

हे तात! सूर्यकुल की रीति व सत्य-प्रतिज्ञा पिताजी के सुयश तथा स्नेह को भी तुम जानते हो। समय, समाज, गुरुजनों की लाज, उदासीन, मित्र व शत्रु के मन की बात भी तुम जानते हो।

तुम्हहि विदित सबही कर करमू * आपन मोर परम हित धरमू
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा * तदपि कहउँ अवसर अनुसारा

तुमको सभी का कर्तव्य मालूम है, अपना तथा मेरा परमहित और धर्म भी ज्ञात है। मुझे सब तरह से तुम्हारा भरोसा है, तो भी समय के अनुसार जो कुछ मैं कहता हूं, उसे सुनो—

तात तात बिनु बात हमारी * केवल गुरुकुल कृपाँ सँभारी
नतरु प्रजा परिजन परिवारू * हमहि सहित सब होत खुआरू

हे तात! पिताजी के न रहने पर हमारी बात केवल कुल-गुरु वशिष्ठजी ने कृपा करके सँभाल ली। नहीं तो प्रजा, पुरबासी, कुटुम्बी और हम समेत सब दुःखी होते।

जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू * जग केहि कहहु न होइ कलेसू
तात उतपातु तात बिधि कीन्हा * मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा

जो बिना समय के सूर्य अस्त हो जाय तो बताओ—संसार में किसको क्लेश न होगा? हे तात! विधाता ने ऐसा ही उपद्रव किया, पर गुरुजी और जनकजी ने सबको बचा लिया।

दोहा—राजकाज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरु प्रभाव पालिहि सबहि, भल होइहि परिनाम ॥३०५॥

राज कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, धाम और गुरुजी का प्रताप इन सबकी

रक्षा करेंगा और परिणाम भला होगा ।

सहित समाज तुम्हार हमारा * घर वन गुरु प्रसाद रखवारा
मातु पिता गुर स्वामि दिनेसू * सकल धरम धरनीधर सेसू

घर में अथवा वन में समाज सहित हमारी और तुम्हारी रक्षा करने वाला गुरु-प्रसाद ही है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा समस्त धर्मरूपी, पृथ्वी को धारण करने में शेषजी के समान है ।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू * तात तरनिकुल पालक होहू
साधन एक सकल सिधि देनी * कीरति सुचति भूतिमय बेनी

हे तात ! तुम वही करो और मुझसे कराओ, जिससे सूर्यवंश की रक्षा हो । यही एक साधन सब सिद्धियों का देने वाला है, जो कीर्ति, सुन्दर गति व सम्पत्ति रूपी त्रिवेणी है ।

सो विचारि सहि संकटु भारी * करहु प्रजा परिवारु सुखारी
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई * तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई

यह विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी करो । हे भाई ! सभी ने मिलकर मेरी विपत्ति बांट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि भर बड़ी कठिनाई है ।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा * कुसमउँ तात न अनुचित मोरा
होहिं कुठायँ सुबन्धु सुहाए * ओड़िअहि हाथ असनिहु के घाए

तुम्हें कोमल जानकर भी मैं कठोर वचन कहता हूँ, सो इस कुसमय में अनुचित नहीं है । कुसमय में अच्छे भाई ही सहायता करते हैं, वज्र की चोट को हाथ ही रोकते हैं ।

दोहा—सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनु, सुकवि सराहहिं सोइ ॥३०६॥

सेवक—हाथ, पाँव और नेत्रों के समान तथा मुख के समान—स्वामी होना चाहिए । तुलसीदास कहते हैं कि प्रीति में रीति सुनकर सुकवि बड़ाई करते हैं ।

सभा सकल सुचि रघुबर बानी * प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी
सिथिल समाज सनेह समाधी * देखि दसा चुप शारद साधी

श्रीरामजी की वाणी सुनकर, जो प्रेमरूपी अमृत के समुद्र से भरी हुई है, सभा के लोग प्रेम में ऐसे मग्न होगये, मानो समाधि लग गई हो । दशा देखकर सरस्वती मौन रह गई ।

भरतहि भयउ परम सन्तोषू * सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू
मुख प्रसन्न मन मिटा विषादू * भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू

भरतजी को बड़ा आनन्द हुआ, स्वामी के अनुकूल होते ही दुःख-दोष दूर होगये । मुख प्रसन्न हो गया, मन का दुःख जाता रहा, मानो गूंगे पर सरस्वती प्रसन्न हो गई हों ।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी * बोले पानि पंकरुह जोरी
नाथ भयउ सुखु साथ गए को * लहेउँ लाभु जग जनमु भए को

पुनः सप्रेम प्रणाम कर कर-कमलों को जोड़कर वे बोले—हे नाथ ! मुझे आपके साथ

जाने का सुख प्राप्त ही गया जगत में जन्म लेने का फल मिल गया।

अब कृपालु जसु आयसु होई * करौं सीस धरि सादर सोई
सो अवलम्ब देव मोहि देई * अवधि पारु पावौं जेहि सेई

हे कृपालु ! अब आपकी जैसी आज्ञा हो, वही आदर सहित अपने सिर पर धारण करूँ। हे देव ! अब आप मुझे आधार दीजिए, जिसके कि सहारे मैं अवधि का पार पा जाऊँ।

दोहा—देव देव अभिषेकु हित, गुर अनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु, तेहि कहँ काह रजाइ ॥२०७॥

हे देव ! आपके राजतिलक के अभिषेक के लिए गुरुजी की आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थों का जल लेकर आया हूँ—जिसके लिए क्या आज्ञा है ?

एक मनोरथु बड़ मन माहीं * सभयँ सकोच जात कहि नाहीं
कहहु तात प्रभु आयसु पाई * बोले बानि सनेहँ सुहाई

मेरे मनमें एक बड़ा मनोरथ और भी है, परन्तु भय व संकोच के कारण कहा नहीं जाता। (श्रीरामजी बोले) हे तात ! कहो-प्रभु की आज्ञा पाकर भरतजी प्रेम पूर्ण सुन्दर वाणी से बोले-

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन * खगमृग सरसरि निर्झर गिरिगन
प्रभु पद अङ्कित अवनि बिसेषी * आयसु होइ तो आवौं देखी

चित्रकूट के पवित्र आश्रम, तीर्थ, वन, पक्षी, पशु, सरोवर, नदी, झरने, पर्वतों के समूह और विशेष कर 'आपके चरण-चिन्हों से अङ्कित भूमि'—आज्ञा हो तो देख आऊँ ?

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू * तात बिगत भय कानन चरहू
मुनि प्रसादु बनु मंगल दाता * पावन परत सुहावन भ्राता

(श्रीरामजी बोले) हे तात ! अत्रि मुनि की आज्ञा शिरोधार्य कर तुम निर्भय हो, अवश्य ही वन में भ्रमण करो। हे तात ! अत्रि मुनि की कृपा से यह वन—मङ्गलदायक, पवित्र और बहुत ही सुहावना है।

ऋषिनायक जहँ आयसु देहीं * राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा * मुनि पदकमल मुदित सिरुनावा

ऋषियों में श्रेष्ठ अत्रिजी जहाँ आज्ञा दें, वहीं सब तीर्थों का जल रख देना। प्रभु के वचन सुनकर भरतजी ने सुख प्राप्त किया और प्रसन्नता पूर्वक मुनि के चरण कमलों में सिर नवाया।

दोहा—भरत राम सम्वादु सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथ सराहिं कुल, बरषत सुरतरु फूल ॥२०८॥

समस्त सुमंगलों के मूल श्रीराम-भरत-सम्वाद को सुनकर स्वार्थी देवता सूर्य-वंश की सराहना करके कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा करने लगे।

धन्य भरत जय राम गोसाईं * कहत देव हरषत बरिआईं
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू * भरत बचन सुनि भयउ उछाहू

भरतजी धन्य हैं, स्वामी श्रीरामजी की जय हो, देवता प्रसन्न होकर बारम्बार कहने लगे। मुनि वशिष्ठजी, राजा जनक और सभा के सब लोगोंको भरतजीके वचन सुनकर बड़ा आनन्द हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू * पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन * नेमु प्रेम पावन अति पावन

राजा जनक रोमांचित होकर भरतजी और रामजी के गुण समूह और स्नेह की बड़ाई करने लगे-सेवक और स्वामी दोनों का सुन्दर स्वभाव है, दोनों का नियम और प्रेम पवित्र से भी अति पवित्र है।

मति अनुसार सराहन लागे * सचिव सभासद सब अनुरागे
सुनि सुनि राम भरत सम्बादू * दुहु समाज हियँ हरष बिषादू

मन्त्री और सब सभासद अनुरक्त होकर अपनी २ बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे। श्रीराम-भरत सम्वाद सुन २ कर दोनों समाजों के हृदय में आनन्द और विषाद दोनों हुए।

राम मातु दुखु सुखु सम जानी * कहि गुन राम प्रबोधी रानी
एक करहिं रघुबीर बड़ाई * एक सराहत भरत भलाई

श्रीराम ने माता कौशल्या के दुःख सुख को समान जानकर गुण व दोष कहकर रानियों को समझाया। कोई लक्ष्मणजी के बड़प्पन और कोई भरतजी की भलाई की चर्चा करते हैं।

दोहा—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ॥३०८॥

अब अत्रिजी ने भरतजी से कहा-हे भरतजी! इस पर्वत के पास ही एक सुन्दर कुआँ है। उसमें यह तीर्थों का पवित्र, अनुपम और अमृतरूपी जल रखिए।

भरत अत्रि अनुसासन पाई * जल भाजन सब दिए चलाई
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू * सहित गए जहँ कूप अगाधू

अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर भरतजी ने तीर्थों के जल के पात्र आगे भेज दिए और शत्रुघ्न सहित आप मुनि तथा साधुजनों को साथ ले वहाँ गये, जहाँ वह अथाह कुआँ था।

पावन पाथ पुन्यथल राखा * प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा
तात अनादि सिद्ध थल ऐहू * लोपेउ काल बिदित नहिं केहू

और पवित्र जल उस पुण्य-स्थल में रख दिया। तब प्रसन्न होकर अत्रि मुनि बोले—हे तात! यह अनादि सिद्ध-स्थल है, काल—चक्र से लोप होने से किसी को मालुम नहीं है।

जब सेवकन्ह सरस थलु देखा * कीन्ह सुजल हित कूप बिशेषा
विधिबस भयउ विश्व उपकारू * सुगम अगम अति धरम बिचारू

जब सेवकों ने जलमय श्रेष्ठ स्थान देखा, तब सुन्दर जल के लिए एक विशेष कुआँ बना लिया। दैव-योग से विश्व का उपकार हो गया और धर्म का अगम विचार सुगम होगया।

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा * अति पावन तीरथ सँजोगा
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी * होइहहिं बिमल करम मन बानी

अब इसे लोग भरत-कूप कहेंगे, तीर्थों के संयोग से यह अत्यन्त पवित्र होगया। प्रेम से नियम पूर्वक जो प्राणी इसमें स्नान करेंगे, मन और वाणी से पवित्र हो जायेंगे।

दोहा—कहत कूप महिमा सकल, गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि, तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥३१०॥

कूप की महिमा कहते हुए वहाँ गये, जहाँ रघुवंश के स्वामी श्रीरामजी थे। अत्रिजी ने श्रीरघुनाथजी को तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया।

कहत धरम इतिहास सप्रीती * भयउ भोरु निसि सो सुख बीती
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई * राम अत्रि गुरु आयसु पाई

प्रीति के साथ धर्म-इतिहास कहते हुए भोर हो गया और वह रात्रि सुख से बीत गई। तब भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्य-कर्म से निवृत होकर श्रीरामजी, अत्रिजी तथा गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर—

सहित समाज साज सब सादें * चले राम बन अटन पयादें
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं * भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं

समाज समेत सादे साज से श्रीराम-वनमें भ्रमण करने के लिए पैदल चले। कोमल चरण वाले भरतजी जब बिना जूते पहिने चलने लगे, तब मन ही मन सकुचाकर पृथ्वी कोमल होगई।

कुस कण्टक काँकरीं कुराईं * कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे * बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे

कुश, काँटे, कंकरी, गड्ढे आदि कड़वी और कठोर बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने मार्ग सुन्दर और कोमल कर दिये। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन सुखपूर्वक बहने लगी।

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं * बिटप फूल फलि तृन मृदु ताहीं
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी * सेवहिं सकल राम प्रिय जानी

देवता पुष्प बरसाकर, मेघ छाया करके, फल-फूलकर, घास कोमल होकर, मृग देखकर और पक्षी मीठी बोली बोलकर सभी इन्हें श्रीरामजी के प्रिय जानकर सेवा करने लगे।

दोहा—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ि बात ॥३११॥

साधारण मनुष्य को भी जब जँभाई लेकर 'राम' कहते ही सब सिद्धियाँ सुगमहोजाती हैं। तो फिर श्रीरामजी के प्राण-प्यारे भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माहीं * नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं
पुन्य जलाशय भूमि बिभागा * खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा

इस प्रकार वन में भ्रमण करते हुए भरतजी का नेम और प्रेम देखकर मुनि सकुचाते हैं। पवित्र जलाशय, पृथ्वी के पवित्र भाग, खग, मृग, वृक्ष, घास, पर्वत, वन तथा बगीचे—

चारु बिचित्र पवित्र बिसेषी * बूझत भरतु दिव्य सब देखी

सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ * हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ

सभी को सुन्दर, अनोखे, पवित्र तथा दिव्य देखकर भरतजी पूछते और सुनकर ऋषिराज अत्रिजी प्रसन्न मन से सबकी उत्पत्ति, गुण, पुण्य और प्रभाव कहते हैं।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा * कतहुँ बिलोकत बन अभिरामा
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई * सुमिरत सीय सहित दोउ भाई

भरतजी कहीं स्नान करते, कहीं प्रणाम करते, कहीं वन की शोभा देखते और कहीं मुनि की आज्ञा पाकर बैठकर सीताजी समेत श्रीराम-लक्ष्मणजी का स्मरण करते हैं।

देखि सुभाउ सनेह सुसेवा * देहिं असीस मुदित बनदेवा
फिरहिं गएँ दिन पहर अढ़ाई * प्रभु पदकमल बिलोकहिं आई

भरतजी के स्वभाव, स्नेह व सुन्दर सेवा को देखकर वन के देवता प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं। इस प्रकार ढाई पहर बीतने पर लौटते हैं और आकर प्रभु के चरणकमलों के दर्शन करते हैं।

दोहा—देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवस भइ साँझ ॥३१२॥

पाँच दिन में भरतजी ने चित्रकूट के सब तीर्थ-स्थान देख लिये। श्रीहरि और शिवजी का सुयश कहते-सुनते वह दिन बीत गया और सन्ध्या हो गई।

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू * भरत भूमिसुर तेरहुति राजू
भल दिन आजु जानि मन माहीं * राम कृपाल कहत सकुचाहीं

प्रातःकाल स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण व राजा जनकजी आदि सारा समाज आ जुटा। आज बिदा का दिन अच्छा है, यह मन में जानकर, कृपालु श्रीरामजी कहते हुए सकुचाते हैं।

गुरु नृप भरत सभा अवलोकी * सकुचि राम फिर अवनि बिलोकी
सील सराहि सभा सब सोची * कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची

गुरुदेव, राजा जनक, भरत व सभा की ओर देख श्रीरामजी फिर सकुचाकर पृथ्वी की ओर देखने लगे। सारी सभा उनके शील की सराहना करके सोचती है कि श्रीरामचन्द्रजी के समान सङ्कोची स्वामी कहीं नहीं है।

भरत सुजान राम रुख देखी * उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी
करि दण्डवत कहत कर जोरी * राखीं नाथ सकल रुचि मोरी

सुजान-भरतजी-श्रीरामजी का रुख देख, प्रेम सहित उठकर, विशेष धीरज धरकर दण्डवत करके हाथ जोड़कर बोले-आपने मेरी सारी इच्छायें पूरी की हैं।

मोहि लगि सहेउ सबहिं सन्तापू * बहुत भाँति दुख पावा आपू
अब गोसाँई मोहि देह रजाई * सेवौं अवध अवधि भरि जाई

मेरे लिए सबने कष्ट सहा और आपने भी बहुत कष्ट पाया। अतः हे स्वामी! अब मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे जाकर अवधि भर अयोध्या की सेवा करूँ।

दोहा—जेहि उपाय पुनि पाँय जनु, देखउँ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल ॥३१३॥

हे दीनदयालु ! हे कौशलाधीश कृपालु ! जिस उपाय से यह दास फिर आपके चरणों के दर्शन करे, अवधि भर के लिए वही शिक्षा दीजिए।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं * सब सुचि सरल सनेहँ सनाईं
राउर बदि भल भव दुख दाहू * प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू

हे स्वामी ! नगरवासी, कुटुम्बी व प्रजा सब आपके स्नेह से पवित्र तथा सरस हैं। आपके लिए जगत सम्बन्धी दुःख भी भला है, पर प्रभु के बिना मोक्ष का लाभ भी वृथा है।

स्वामि सुजान जानि सबही की * रुचि लालसा रहनि जन जीकी
प्रनतपाल पालहि सब काहू * देव दुहू दिसि ओर निबाहू

हे स्वामी ! आप चतुर हैं, सभी के हृदय और सेवक की रुचि, लालसा और स्थिति को जानकर, हे प्रणतपाल ! आप सबका पालन करते हैं। हे देव ! आप ही दोनों ओर का आदि से अन्त तक निर्वाह करेंगे।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो * किए बिचार न सोचु खरो सो
आरति मोर नाथ कर छोहू * दुहूँ मिलि कीन्ह ढीठि हठि मोहू

ऐसा मुझे सब प्रकार से भरोसा है। विचार करने पर भी कुछ भी सोच नहीं रहता। हे नाथ ! मेरे दुःख व आपकी कृपा दोनों ने मिलकर हठ से मुझे ढीठ बना दिया।

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी * तजि सँकोच सिखइअ अनुगामी
भरत बिनय गुन सबहिं प्रसंसी * खीर नीर बिबरन गति हंसी

हे प्रभु ! दोषों को दूर करके संकोच त्यागकर मुझ सेवक को शिक्षा दीजिये। भरतजी की विनती सुन सभी ने बड़ाई की, जो दूध व पानीको अलग २ करने में हंसिनी के समान थी।

दोहा—दीनबन्धु सुनि बन्धु के, बचन दीन छलहीन।
देसि काल अवसर सरिस, बोले रामु प्रवीन ॥३१४॥

दीनबन्धु, चतुर श्रीरघुनाथजी भाई (भरत) के दीन और निष्कपट वचन सुनकर देश-काल और अवसर के अनुसार वचन बोले—

तात तुम्हारि मोरि परिजन की * चिंता गुरहि नृपहिं घर बन की
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू * हमहि तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू

हे तात ! तुम्हारी, हमारी, कुटुम्बीजनों की, घर की और वन की चिन्ता तो-गुरुजी और महाराज जनकजी को है। जब सिर पर-गुरुजी, विश्वामित्र तथा मिथिलेश्वरजी हैं, तब तुम्हें और हमें स्वप्न में भी दुःख नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु * स्वारथ सुजसु धरमु परमारथु
पितु आयसु पालिहिं दुहुँ भाई * लोक बेद भल भूप भलाई

हमारा-तुम्हारा-परम पुरुषार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों ही

पिताजी की आज्ञा पालन करें। महाराज की भलाई से ही लोक और वेद में भला है।

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें * चलेहुँ कुमगु पगु परहि न खालें
अस बिचारि सब सोच बिहाई * पालहुँ अबध अबध भरि जाई

गुरु, पिता, माता व स्वामी की आज्ञा पालने से कुमार्ग में चलने पर पाँव गड्ढे में नहीं पड़ता। ऐसा विचार कर सब चिंता त्यागकर अवधि भर अयोध्या का पालन करो।

देसु कोषु परिजन परिवारू * गुरपद रजहिं लाग छर भारू
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी * पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी

देश, कोष, पुरवासी, कुटुम्ब आदि का भार तो गुरुजी की चरण-रज पर है। तुम तो मुनि माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर-पृथ्वी प्रजा और राजधानी की रक्षा करते रहना।

दोहा—मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥३१५॥

तुलसीदासजी कहते हैं—मुखिया को मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने को तो एक ही है, परन्तु विचार सब अङ्गों का पालन करता है।

राजधरम सरबसु एतनोई * जिमि मन माहि मनोरथ गोई
बन्धु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती * बिनु अधार मन तोषु न साँती

राज-धर्म का सार इतना ही है, जैसे मन में मनोरथ छिपे रहते हैं। श्रीरामजी ने भाई को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु बिना किसी आधार से उनके मनमें संतोष न हुआ न शांति।

भरत सील गुरु सचिव समाजू * सकुच सनेह बिबस रघुराजू
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं * सादर भरत सीस धरि लीन्हीं

इधर तो भरतका शील उधर गुरु, मन्त्री व समाज का संकोच, स्नेह से श्रीरामजी लाचार हो गये। तब प्रभु ने कृपा करके अपनी खड़ाऊं दीं, भरतजी ने उन्हें सादर मस्तक पर रख लिया।

चरनपीठ करुनानिधान के * जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के
सम्पुट भरत सनेह रतन के * आँखर जुग जनु जीव जतन के

कृपानिधान श्रीरामजी की दोनों खड़ाऊँ, मानो प्राणों के दो रक्षक हैं। भरतजी के स्नेह रूपी रत्न के लिए मानो दो डिब्बा हैं और जीव की रक्षा के लिए 'राम' नाम के दो अक्षर हैं।

कुल कपाट कर कुसल करम के * बिमल नयन सेवा सुधरम के
भरत मुदित अवलम्ब लहे तें * अस सुख जस सिय रामु रहे तें

वे कुलकी कुशल के लिए मानो दो किवाड़ हैं, अच्छे कर्म करने के लिए मानो दो हाथ हैं। सेवा और श्रेष्ठ धर्म करने के दो सुन्दर मित्र हैं, ऐसा आधार पाकर भरतजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें इस प्रकार बहुत सुख हुआ, जैसा कि श्रीसीता-रामजी के रहने से होता है।

दोहा—माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ ॥३१६॥

भरतजी ने प्रणाम करके विदा माँगी, तब श्रीरामजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। कुसमय पाकर कुचाली इन्द्र ने लोगों का उच्चाटन कर दिया।

सो कुचालि सबकहँ भइ नीको * अवधि आस सम जीवनि जीकी
नतरु लखन सिय राम बियोगा * हहरि मरन सब लोग कुरोगा

वह कुचाल सबके लिये भली हुईअवधि की आशा मन को संजीवनी के समान होगई, नहीं तो लक्ष्मण, सीता और श्रीरामजी के बियोगरूपी कुरोग से सब लोग घबड़ाकर मर जाते।

राम कृपा अवरेब सुधारी * बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो * राम प्रेम रस कहि न परत सो

श्रीरामजी की कृपा ने उलझन को सुलझा दिया। देवताओं की माया भी गुणदायक और रक्षक हो गई। श्रीरामजी—भुजाओं में भरकर भाई भरत से मिल रहे है। श्रीरामजी का यह प्रेम—रस कहते नहीं बनता।

तन मन वचन उमँग अनुरागा * धीर धुरन्धर धीरजु त्यागा
बारिज लोचन मोचत बारी * देखि दसा सुर सभा दुखारी

तन, मन, वचन से ऐसा प्रेम उमड़ा कि धीरधुरन्धर श्रीरामजी ने भी धीरज छोड़ दिया। कमल-नेत्रों से आँसू बहने लगे, यह दशा देखकर देवताओं की सभा दुःखी हो गई।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से * ग्यान अनल मन कसें कनक से
जे बिरञ्च निरलेप उपाए * पदुम पत्र जिन्ह जग जल जाए

मुनिगण, गुरु और जानकीजी के समान और धीरधुरन्धर जो ज्ञानरूपी अग्नि में अपने मनों को सोने के समान कस चुके थे। जो ब्रह्माजी ने निर्लेप रचे थे। तथा जो संसाररूपी जलमें कमल-पत्र की भाँति पैदा हुए थे।

दोहा—तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन तन मन बचन, सहित बिराग बिचार ॥३१७॥

वे भी श्रीरघुनाथजी और भरतजी की अनोखी तथा अपार प्रीति को देखकर ज्ञान-वैराग्य सहित तन, मन और वाणी से प्रेम में मग्न होगये।

जहाँ जनकगुर गतिमति भोरी * प्राकृति प्रीति कहत बड़ि खोरी
बरनत रघुबर भरत बियोगू * सुनि कठोर कबि जानहिं लोगू

जहाँ जनकजी और वशिष्ठजी की भी गति एवं मति भोरी होगई, उस प्रेम को सामान्य प्रेम कहने में बड़ा दोष है। श्रीरघुनाथजी और भरतजी का वियोग वर्णन करते सुनकर लोग कवि को कठोर हृदय जानेंगे।

सो सकोप रसु अकथ सुबानी * समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी
भेंटि भरत रघुबर समुझाए * पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए

वह संकोच-रस अकथनीय है,कवि की वाणी उस समयके प्रेमको स्मरणकर सकुचागई, श्रीराम जी ने [illegible] लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई * निज निज काज लगे सब जाई
सुनि दारुन दुख दुहूँ समाजा * लगे चलन के साजन्ह साजा

सेवक और मन्त्री भरतजी का रुख पाकर, सब जाकर अपने-अपने काम में लग गये। यह सुनकर दोनों समाजों को बड़ा दुःख हुआ और वे चलने की तैयारी करने लगे।

प्रभु पद पदुम बन्दि दोऊ भाई * चले सीस धरि राम रजाई
मुनि तापस बनदेव निहोरी * सब सनमानि बहोर बहोरी

भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई श्रीरामजी के चरणारविंदों की वन्दना कर, आज्ञा सिर पर रखकर चले। मुनि तपस्वी व वनके देवताओं की विनती कर बारम्बार उनका सम्मान किया।

दोहा—लखनहिं भेंट प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमङ्गल भूरि ॥३१८॥

लक्ष्मणजी से क्रमशः भेंट कर और प्रणाम करके, सीताजी के चरणों की रज सिर पर रखकर प्रेम सहित मङ्गलों की मूल आशीष सुनकर वे चले।

सानुज राम नृपहि सिर नाई * कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई
देव दया बस बड़ दुख पायउ * सहित समाज काननहिं आयउ

लक्ष्मण समेत श्रीरामजी ने जनकराज को सिर नवाकर उनकी बहुत भाँति से विनती और बड़ाई की कि हे देव! दया के वश आपने बड़ा दुःख पाया, जो समाज सहित वन में आये।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा * कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा
मुनि महिदेव साधु सनमाने * बिदा किए हरि हर सम जाने

अब आशीर्वाद देकर पुरी को पधारिये, यह सुन धैर्य धरकर राजा जनकजी ने प्रस्थान किया। फिर मुनि, ब्राह्मण और साधुजनों को हरि के समान जानकर सम्मान करके विदा किया।

सासु समीप गए दोउ भाई * फिरे बन्दि पग आसिष पाई
कौसिक बामदेव जावाली * गुरुजन परिजन सचिव सुचाली

फिर दोनों भाई सासु के पास गये और उनके चरणों में प्रणाम कर आशीष पाकर लौट आये तदनंतर विश्वामित्र, बामदेव, जावालि, कुटुम्बी, पुरवासी व शुभआचरण वाले मन्त्री लोग आदि

यथा जोगु करि विनय प्रनामा * बिदा किए सब सानुज रामा
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे * सब सनमानि कृपानिधि फेरे

उन सबको यथायोग्य विनती तथा प्रणाम करके लक्ष्मणजी सहित श्रीरामजी ने विदा किया। फिर कृपानिधान श्रीरामजी ने छोटी, मध्यम तथा बड़ी श्रेणी के स्त्री-पुरुषों का सम्मान करके उन्हें लौटाया।

दोहा—भरत मात पद बन्दि प्रभु, सुचि सनेहँ मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि ॥३१९॥

प्रभु श्रीरामजी ने भरत की माता कैकई के चरणों की वंदना कर, सच्चे स्नेह से मिल-भेंटकर

उनके सङ्कोच और सोच को दूर कर पालकी सजाकर विदा किया।

परिजन मातु पितहि मिलि सीता * फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता
करि प्रनाम भेंटी सब सासू * प्रीति कहत कवि हियँ न हुलासू

अपने कुटुम्बियों और माता पिता से मिलकर अपने प्राण-प्रिय से पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी लौट आईं, फिर सासुओं को प्रणाम कर मिलीं। उनकी प्रीति को कहते हुए कवि का चित्त प्रसन्न नहीं होता।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई * रही सीय दुहु प्रीति समाई
रघुपति पटु पालकी मँगाई * करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई

सीख सुन व इच्छित आशीर्वाद पाकर सीताजी-माता व सासु दोनों की प्रीति में समा गईं। तब श्रीरामजी ने सुन्दर पालकी मँगाईं और समझा-बुझाकर सब माताओं को उन पर चढ़ाया।

बार बार मिलिहहिं दुहूँ भाईं * सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं
साजि बाजि गज बाहन नाना * भरत भूप तब कीन्ह पयाना

दोनों भाइयों ने बारम्बार मिल भेंटकर समान स्नेह से सब माताओंको पहुँचाया। घोड़े, हाथी आदि नाना प्रकार की सवारियाँ सजाकर दोनों 'भरत-जनक' दलों ने कूँच किया।

हृदयँ राम सियँ लखन समेता * चले जाहिं सब लोग अचेता
बसहँ बाजि गज पसु हियँ हारें * चले जाहिं परबस मन मारें

हृदय में लक्ष्मणजी व सीताजी श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करते हुए सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं, बैल, हाथी आदि पशु हृदय में हारकर परवश चले जा रहे हैं।

दोहा–गुर गुरतिय पद बन्दि प्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित, आए परन निकेत ॥३२०॥

गुरुजी और गुरुपत्नी के चरणों की वन्दना करके प्रभु श्रीरामजी-सीताजी तथा लक्ष्मणजी सहित हर्ष और विषाद के साथ पर्णकुटी को लौट आये।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू * चले हृदयँ बड़ बिरह बिषादू
कोल किरात भिल्ल बनचारी * फिरे फिरे जोहारि जोहारी

फिर रामजीने निषाद को सम्मान सहित विदा किया। वह चला, पर उसके मनमें राम-वियोग का बड़ा दुःख था, फिर कोल, किरात, भील आदि को लौटाया, तो वे सब प्रणाम कर २ के लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं * प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं
भरत सनेह सुभाउ सुबानी * प्रिय अनुज सन कहत बखानी

श्रीरामजी, सीताजी व लक्ष्मणजी-वटकी छाँह में बैठकर प्रिय कुटुम्बियों के वियोग में बिलख रहे हैं। भरतजी के स्नेह-स्वभाव और मधुर वाणी को वे प्रिय-पत्नी और भाई से कहने लगे।

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी * श्री मुख राम प्रेम सब बरनी
तेहि अवसर खग मृग नरि मीना * चित्रकूट चर अचर मलीना

उनके मन, कर्म, वचन से प्रेम व विश्वास को श्रीरामजी ने प्रेम के विवश होकर अपने श्रीमुख से वर्णन किया। उस समय पक्षी, मृग, मनुष्य व मछली आदि चित्रकूट के चर-अचर सभी जीव उदास हो गये।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की * बरषि सुमन कहि गति घर घर की
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो * चले मुदित मन डर न खरोसो

देवताओं ने श्रीरामजी की दशा देखकर पुष्प बरसाये और अपने २ घरकी गति कही। तब प्रभु श्रीरामजी ने उन्हें प्रणाम करके भरोसा दिया, तो वे प्रसन्न होकर चलदिये, मनमें डर नहीं रहा।

दोहा–सानुज सीय समेत प्रभु, राजन परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरें शरीर ॥३२१॥

छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी समेत प्रभु पर्णकुटी में ऐसे विराज रहे हैं, मानो भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ही देह धारण किये सुशोभित हों।

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू * राम बिरहँ सब साजु बिहालू
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं * सब चुपचाप चले मग जाहीं

मुनि, ब्राह्मण, गुरु भरत और राजा जनक सब समाज सहित श्रीरामजी के वियोग से बेहाल हैं। श्रीरामजी के गुण समूह मन में विचारते हुए मार्ग में सब चुपचाप चले जा रहे हैं।

जमुना उतर पार सब भयऊ * सो बासरु बिनु भोजन गयऊ
उतरि देवसरि दूसरि बासू * राम सखा सब कीन्ह सुपासू

यमुना उतरकर सब पारहुए, यहदिन बिना भोजन कियेही बीत गया। दूसरे दिन गंगाजीके पार जाकर सबने वास किया, वहाँ श्रीरामजीके सखाने सबके लिए हर तरह की सुविधा करदी।

सई उतरि गोमती नहाए * चौथे दिवस अवधपुर आए
जनकु रहे पुर बासर चारी * राज काज सब साज सँवारी

सई उतर कर गोमती में स्नान किया और चौथे दिन अयोध्यापुरी में आ पहुँचे। राजा जनकजी चार दिन तक अयोध्यापुरी में रहे और राज-कार्य का सब साज सँभाल कर–

सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू * तेरहुति चले साज सब साजू
नगर नारि नर गुरु सिख मानी * बसे सुखेन राम रजधानी

मंत्री, गुरु, और भरतजी को राज्य सौंप कर सब साज सजाकर जनकपुरीको चले। नगरके नर-नारी गुरुजी की शिक्षा मानकर सुख से श्रीरामजी की राजधानी अयोध्या में रहने लगे।

दोहा–राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२२॥

श्रीरामजी के दर्शन के हेतु सब लोग नियम और व्रत करते हुए-भूषण, भोग सब प्रकार के सुखों को त्याग कर 'अवधि' की आशा से प्राण रखते हैं।

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे * निज निज काज पाइ सिख ओधे

पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई * सौंपी सकल मातु सेवकाई

भरतजी ने मंत्री और सच्चे सेवकों को समझाया, वे शिक्षा पाकर अपने २ कर्मों में लग गये। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओं की सेवा उन्हें सौंपदी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे * करि प्रनाम बड़ बिनय निहोरे

ऊँच नीच कारजु भल पोचू * आयसु देहु न करहु संकोचू

ब्राह्मणों को बुलाकर प्रणाम करके बहुत विनती की और कहा-आप ऊँच-नीच, अच्छा-बुरा जो भी काम हो, उसके लिए मुझे आज्ञा दीजिए-संकोच न कीजिएगा।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए * समाधान करि सुबस बसाए

सानुज गे गुर गेहँ बहोरी * करि दण्डवत कहत कर जोरी

फिर कुटुम्बी, प्रतिष्ठित लोगों व प्रजा को बुलाकर उनका समाधान करके उन्हें समझाया। तदन्तर छोटे भाई सहित गुरुजी के पास गये और हाथ जोड़कर दण्डवत करके बोले–

आयसु होय तो रहौं सनेमा * बोले मुनि तनु पुलकि सप्रेमा

समुझव कहब करब तुम्ह जोई * धरम सारु जग होइहि सोई

आज्ञा हो तो मैं नियम पूर्वक रहूँ। मुनि पुलकित शरीर होकर स्नेह सहित बोले–हे भरत! तुम जो समझोगे, कहोगे अथवा करोगे–वही जगत में धर्म का सार होगा।

दोहा–सुनि सिख पाइ असीष बड़ि, गनक बोलि दिनु साधु।

सिंहासनु प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

इस शिक्षा को सुनकर तथा आशीष पाकर, ज्योतिषी को बुलाकर और शुभ-मुहूर्त साध कर प्रभु की खड़ाऊँओं को निर्विघ्न सिंहासन पर स्थापित किया।

राम मातु गुरु पद सिरु नाई * प्रभु पद पीठ रजायसु पाई

नन्दिग्राम करि परन कुटीरा * कीन्ह निवासु धरम धुरि धीरा

श्रीरामजी की माता कौशल्याजी और गुरुजी के चरणों में सिर नवाकर व प्रभु की चरण-पादुकाओं की आज्ञा पाकर, पर्णकुटी बनाकर धर्म-धुरन्धर भरतजी नन्दि-ग्राम में रहने लगे।

जटाजूट सिर मुनिपट धारी * महि खनि कुश साँथरी सँवारी

असन बसन बासन ब्रत नेमा * करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा

भरतजी ने सिर पर जटाजूट बांधे और बल्कल-वस्त्र धारण किये, पृथ्वी को खोदकर उस पर कुश का आसन बनाया। भोजन, वस्त्र, बर्तन आदि के कठिन नियम और व्रत कर ऋषि-धर्म का प्रेम से पालन करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी * तन मन बचन तजे तिन तूरी

अवध राजु सुरराजु सिहाहीं * दशरथ धन लखि धनदु लजाहीं

भूषण-वस्त्र, अनेक भोग, सुख इनको तन, मन, वाणीसे तृण के समान त्यागदिया, अवधके राज्य

को देख इन्द्र भी प्रसन्न होता है, दशरथजी के धन को देख कुबेर भी लज्जित हो जाते हैं।

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा * चंचरीक जिमि चम्पक बागा
रमा बिलासु राम अनुरागी * तजत वमन जिमि जन बड़ भागी

उस अवधपुरी में वास करते हुए भरत ऐसे विरक्त थे, जैसे चम्पा के बाग में भौरा हो। श्रीरामजी के प्रेमी बड़भागी भक्त लक्ष्मणजी के भोग-विलास को वमन की भाँति त्याग देते हैं।

दोहा—राम प्रेम भाजन भरतु, बड़े न एहिं करतूति।
चातक हँस सराहिअत, टेंक बिबेक बिभूति ॥३२४॥

श्रीरामजी के प्रेम-पात्र भरतजी इस बात से कोई बड़े नहीं हुए। क्योंकि चातक टेक से और हंस क्षीर-नीर के ज्ञान से सराहे-जाते हैं।

देन दिनहुँ दिन दूबरि होई * घटइ न तेजु बलु मुख छबि सोई
नित नव राम प्रेमु पनु हीना * बढ़त धरम बलु मनु न मलीना

भरतजी का शरीर दिन-दिन दुबला होता जाता है, परन्तु तेज और बल नहीं घटता। मुख की कान्ति वैसी ही है। श्रीरामजी के प्रेम में नित्य-नया प्रण पुष्ट होता है। धर्म का बल बढ़ता है और मन कभी उदास नहीं होता।

जिमि जलु बिघटत सरद प्रकासे * बिलसत बेतस बनज बिकासे
सम दम संयम नियम उपासा * नखत भरत हिय बिमल अकासा

जैसे शरद्-ऋतु के प्रकाश से जल घटता है व फैलता है और कमल खिलते हैं। शम, दम, संयम, नियम और व्रत भरतजी के हृदयरूपी-निर्मल आकाश में नक्षत्र हैं।

ध्रुव विश्वास अवधि राकासी * स्वामि सुरति सुरबीथि अकासी
राम प्रेम बिधु अचल अदोषा * सहित समाज सोह नित चोखा

विश्वासही ध्रुव-तारा है, अवधि पूर्णिमा है,प्रभु श्रीरामजीकी स्मृति प्रकाशित आकाश-गंगा है,श्रीराम-प्रेम ही अचल एवं दोष रहित चंद्रमा है,वह अपने समाज सहित नित्य सुशोभित है।

भरत रहनि समुझनि करतूती * भगति बिरति गुन बिमल बिभूती
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं * सेष गनेस गिरा गमु नाहीं

भरतजी की स्थिति,समझ,करनी,भक्ति,वैराग्य,गुण और निर्मल संपत्ति का वर्णन करते हुए सब सुकवि सकुचाते हैं, क्योंकि वहाँ तो शेष, गनेश और सरस्वतीजी की भी पहुँच नहीं है।

दोहा—नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदयँ समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति ॥३२५॥

वे नित्यप्रति प्रभु की पादुकाओं का पूजन करते हैं, प्रीति हृदय में नहीं समाती। उन्हीं से आज्ञा माँग-माँग कर सब राज काज करते हैं।

पुलक गात हियँ सियँ रघुबीरू * जीहँ नामु जप लोचन नीरू

लखन राम सिय कानन बसहीं * भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं

देह पुलकित है, हृदयमें सीतारामजी हैं, जीभ नाम जप रही है, नेत्रों में जल भरा है। लक्ष्मण रामजी व सीताजी वनमें वासकर रहे हैं और भरतजी घरमें रहकर तपसे शरीर को कसरहे हैं।

दोउ दिसि समुझि करत सब लोगू * सब बिधि भरत सराहन जोगू
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं * देखि दसा मुनिराज लजाहीं

दोनों ओर की दशाको समझकर सब कहते हैं भरतजी सब प्रकारसे प्रशंसा के योग्य हैं। उनके व्रत व नियम को सुनकर साधु सकुचाते हैं और दशा देखकर मुनीश्वर लज्जित होते हैं।

परम पुनीत भरत आचरनू * मधुर मञ्जु मुद मङ्गल करनू
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू * महामोह निसि दलन दिनेसू

उनका आचरण परम पवित्र, मधुर, मनोहर और आनंदमंगल का करने वाला है। कलियुग के घोर पापों के क्लेशों को हरने वाला तथा मोहरूपी रात्रि के नष्ट करने को सूर्य के तुल्य है।

पाप पुञ्ज कुञ्जर मृगराजू * समन सकुल सन्ताप समाजू
जन रञ्जन भञ्जन भव भारू * राम सनेह सुधाकर सारू

पाप समूह रूपी हाथी जो सिंह के समान है और सब दुःखों के समूह का नाश करने वाला है। भक्तजनों को आनन्द देने वाला संसार का भार उतारने वाला तथा श्रीरामजी के स्नेहरूपी चन्द्रमा का सार है।

छन्द—सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दम्भ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सन्मुख करत को॥

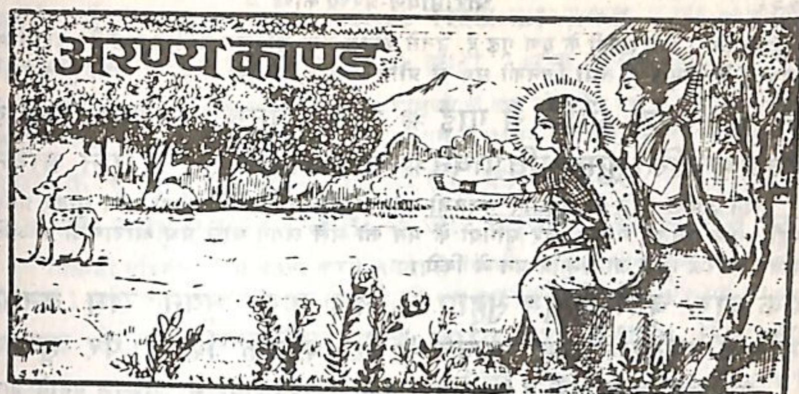
श्रीसीता-रामजी के प्रेमरूपी अमृत से पूर्ण भरतजी का जन्म न होता तो मुनियों के मन को भी दुर्लभ-संयम, शम, दम और कठिन व्रत का आचरण कौन करता? सुकीर्ति के बहाने से दुःख, जलन, दरिद्रता तथा दम्भ आदि दोषों को कौन हरता? कलियुग में तुलसीदास से शठों को हठ पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी के समक्ष कौन करता?

सो०—भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भव रस बिरति॥३२६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो लोग भरतजी के चरित्र को नियम पूर्वक आदर सहित सुनते हैं-उनका श्रीसीता-रामजी के चरणों में प्रेम और संसार के विषयरूपी रस से वैराग्य अवश्य होता है।

* मास पारायण—इक्कीसवाँ विश्राम *

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने द्वितीय सोपान समाप्तः॥
कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का यह दूसरा सोपान समाप्त हुआ॥



✱ अथ मङ्गलाचरणम् ✱

—::✱ श्लोक ✱::—

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं ।
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्ता पहंतापहम् ॥
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं ।
बन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीराम भूपप्रियम् ॥

धर्मरूपी वृक्ष के मूल, विवेकरूपी समुद्र को आनन्द देने वाले, पूर्ण-चन्द्र, वैराग्यरूपी कमल के लिये सूर्य निश्चय ही पापरूपी अन्धकार को मिटाने वाले, मोहरूपी मेघों के समूह को छिन्न-भिन्न करने में आकाश में उत्पन्न वायुरूप, ब्रह्ममूर्ति, कलंक-नाशक तथा श्रीरामचन्द्रजी के प्रिय-भगवान् शङ्करजी की मैं वन्दना करता हूँ।

सान्द्रानन्दपयोद सौभगतनुँ पीताम्बरं सुन्दरं ।
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ॥
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं ।
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामभिरामं भजे ॥

जो आनन्दरूप एवं जल-युक्त मेघ के समान सुन्दर श्याम शरीर वाले हैं तथा जो सुन्दर पीताम्बर धारण किये हैं, जिनके हाथों में धनुष-बाण हैं, कमर में तरकस शोभायमान हैं, नील-कमल के समान विशाल नेत्र हैं, सिर पर जटाजूट शोभित हैं, सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में जाते हुए उन परमआनन्द देने वाले श्रीरामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ।

सो०—उमा रामगुन गूढ़, पण्डित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥

हे पार्वती ! श्रीरामजी के गुण गूढ़ हैं, उनसे पंडित और मुनिजन वैराग्य पाते हैं। परन्तु जो भगवान् से विमुख हैं तथा जिनकी धर्म में प्रीति नहीं है, वे मूर्ख मोह को प्राप्त होते हैं।

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई * मति अनुरूप अनूप सुहाई
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन * करत जे बन सुर नर मुनि भावन

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार भरतजी और पुरवासियों की अनोखी तथा सुन्दर प्रीति कही। अब देवता, मनुष्य और मुनियों के मन को भले लगने वाले प्रभु श्रीरामजी के अति पवित्र चरित्र सुनो जो उन्होंने वन में किये।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए * निज कर भूषन राम बनाए
सीतहि पहिराए प्रभु सादर * बैठे फटिक शिला पर सुन्दर

एक बार श्रीरघुनाथजी ने सुन्दर पुष्प चुनकर अपने हाथों से आभूषण बनाये और स्फटिक-शिला पर सीताजी को प्रभु ने आदर सहित पहनाये।

सुरपति सुत धरि बायस बेषा * सठ चाहत रघुपति बल देखा
जिमि पिपीलिका सागर थाहा * महा मन्दमति पावन चाहा

देवताओं के स्वामी इन्द्र का मूर्ख-पुत्र 'जयन्त' कौए का रूप धारण कर श्रीरघुनाथजी का पराक्रम देखना चाहता है। जैसे कोई बहुत ही छोटी बुद्धि वाली चिउटी समुद्र की थाह पाने की इच्छा करती हो।

सीता चरण चोंच हति भागा * मूढ़ मन्दमति कारन कागा
चला रुधिर रघुनायक जाना * सींक धनुष सायक सन्धाना

वह मूर्ख कौआ मंद-बुद्धि होने के कारण सीताजी के कदमों में चोंच मारकर भागा। जब श्रीरघुनाथजी ने जाना कि रुधिर बह चला, तब धनुष पर सींक का बाण चढ़ाया।

दोहा—अति कृपालु रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु, मूरख अवगुन गेह ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी बड़े दयालु हैं, वे सदा दीनों पर स्नेह करते हैं। उनके साथ भी उस मूर्ख सब अवगुणों की खान जयन्त ने आकर कपट किया।

प्रेरित मन्त्र ब्रह्मसर धावा * चला भाजि बायस भय पावा
धरि निज रूप गयऊ पितु पाहीं * राम बिमुख राखा तेहिं नाहीं

मंत्र से प्रेरित वह ब्रह्म बाण दौड़ा तो कौआ डरकर भाग चला और अपना असली रूप धरकर अपने पिता इन्द्र के पास गया, परन्तु उसे श्रीरामजी का विरोधी जानकर उन्होंने नहीं रक्खा।

भा निरास उपजी अति त्रासा * जथा चक्र भय ऋषि दुर्बासा
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका * फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका

[illegible] । ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि सब लोकों में वह भागता फिरा और थककर भय व दुःख से दुःखी हो गया।

काहूँ बैठन कहा न ओही * राखि को सकइ राम कर द्रोही
मातु मृत्यु पितु समन समाना * सुधा सोइ बिष सुनु हरिजाना

उससे किसी ने बैठने तक को न कहा। श्रीरामजी के शत्रु को कौन रख सकता है। हे गरुड़! सुनो, राम-द्रोही को माता मृत्यु के समान, पिता यम के समान व अमृत विषके समान होजाते हैं।

मित्र करइ सतरिपु कै करनी * ता कहँ बिबुध नदी बैतरनी
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता * जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता

मित्र-सौ बैरियोंके तुल्य बर्ताव करने लगता है गंगाजी उसे वैतरणीके समान हो जाती हैं। हे भाई! सुनो, जो रामजीसे विमुख होता है, उसे सब जगत अग्नि से भी अधिक गर्म लगता है।

नारद देखा बिकल जयन्ता * लागि दया कोमल चित सन्ता
पठवा तुरत राम पहिं ताही * कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही

नारदजी ने जयन्त को व्याकुल देखा तो उन्हें दया आगई, क्योंकि सन्तों का हृदय बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे तुरन्त श्रीरामजी के पास भेज दिया। उसने पुकारकर कहा हे शरणागत के हितकारी! मेरी रक्षा करिये।

आतुर सभय गहेसि पद जाई * त्राहि त्राहि दयालु रघुराई
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई * मैं मतिमन्द जानि नहिं पाई

आतुर और भयभीत जयन्त ने श्रीरघुनाथजी के चरण पकड़ लिए और बोला-हे दीन-दयालु श्री रघुनाथजी! रक्षा करो, रक्षा करो। मैं मन्द-बुद्धि आपके अतुलित-बल और अपार महिमा को जान नहीं पाया।

निजकृत कर्म जनित फल पायउँ * अब प्रभु पाहिं सरन तकि आयउँ
सुनि कृपालु अति आरत बानी * एक नयन करि तजा भवानी

मैं अपने किये हुए कर्म का फल पा चुका हूँ। हे प्रभु! अब आपकी शरण तककर आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। हे भवानी! अति दीन वचन सुनकर दयालु प्रभु ने उसको एक आँख फोड़कर उसे छोड़ दिया।

सो०—कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाँड़ेउ करि छोह, को कृपालु रघुबीर सम॥ २॥

उसने अज्ञान वश द्रोह किया था। यद्यपि उसका वध ही उचित था, तो भी प्रभु ने कृपा करके छोड़ दिया, श्रीरघुनाथजी के समान दयालु कौन है?

रघुपति चित्रकूट बसि नाना * चरित किए श्रुति सुधा समाना
बहुरि राम अस मन अनुमाना * होइहि भीर सबहिं मोहि जाना

श्रीरघुनाथजी ने चित्रकूट में वास करके कानों को अमृत के समान सुख देने वाले अनेक चरित्र किये। फिर रघुनाथजी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि यहाँ भीड़ रहेगी, क्योंकि हमें सब जान गये हैं।

सकल मुनिन्ह सन विदा कराई * सीता सहित चले दोउ भाई
अत्रि के आश्रम प्रभु गयऊ * सुनत महामुनि हरषित भयऊ

तब मुनियों से विदा होकर सीता समेत दोनों भाई चल दिये। जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम पर पहुंचे तो यह सुनते ही महामुनि अत्रिजी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए * देखि रामु आतुर चलि आए
करत दण्डवत मुनि उर लाए * प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाए

पुलकित शरीर से अत्रि-मुनि उठ दौड़े, उनको आते देख श्रीरामजी भी जल्दी से आगे बढ़कर आये और दण्डवत की। दण्डवत करते ही मुनि ने श्रीरामजी को हृदय से लगा लिया, फिर दोनों भाइयों को प्रेमाश्रुओं के जल से स्नान कराया।

देखि राम छबि नयन जुड़ाने * सादर निज आश्रम तब आने
करि पूजा कहि बचन सुहाए * दिए मूल फल प्रभु मन भाए

श्रीरामजी की छवि देखकर अत्रिजी के नेत्र शीतल हो गये, तब आदर सहित उनको अपने आश्रम पर ले आये। फिर पूजा करके मधुर वचन कहकर मन को अच्छे लगने वाले कन्द-मूल फल प्रभु को दिये।

सो०—प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत॥ ३ ॥

आसन पर विराजमान प्रभु श्रीरघुनाथजी की शोभा नेत्र-भर देखकर परम चतुर मुनिश्वर अत्रिजी हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—

छन्द—नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥
भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं॥
निकाम श्याम सुन्दरं। भवाम्बुनाथ मन्दरं॥
प्रफुल्ल कञ्ज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥

हे भक्त वत्सल! हे कृपालु! हे कोमल स्वभाव वाले! मैं आपको नमस्कार करता हूं। हे निष्काम पुरुषों को अपना धाम देने वाले! आपके चरणारविन्दों को मैं भजता हूं। आप अति सुन्दर, श्याम, संसाररूपी समुद्र को मथने के लिए मंदराचल रूपी खिले हुए कमल के समान विशाल नेत्रों वाले तथा मद आदि दोषों को दूर करने वाले हैं।

प्रलम्ब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥
निषङ्ग चाप चायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥
दिनेश वंश मण्डनं। महेश चाप खण्डनं॥
मुनीन्द्र सन्त रंजनं। सुरारि वृन्द भंजनं॥

आपकी विशाल भुजाओं का पराक्रम एवं ऐश्वर्य अपरम्पार है। हे प्रभु! आप तरकस और धनुष-वाण धारण करने वाले, त्रिलोकीनाथ, सूर्यवंश के शिरोमणि, श्रीमहादेवजी के

धनुष को तोड़ने वाले, मुनीश्वरों और सन्तों को प्रसन्न करने वाले तथा राक्षसों के समूह का नाश करने वाले हैं।

मनोज बैरि वन्दितं। अजादि देव सेवितं ॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं ॥
नमामि इन्दिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची सती प्रियानुजं ॥

आप महादेवजी द्वारा वन्दित, ब्रह्मा आदि देवताओं से सेवित, शुद्ध ज्ञान-स्वरूप और सम्पूर्ण दोषों को हरने वाले हैं। हे लक्ष्मीपति ! सुख के निधान और सत्पुरुषों की एक मात्र-गति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे इन्द्र के छोटे भाई (वामनजी) ! श्रीजानकी जी और भाई लक्ष्मणजी सहित मैं आपका ध्यान करता हूँ।

स्वदॅघ्रि मूल ये नराः। भजन्ति हीन मत्सराः ॥
पतन्ति नो भवार्ण वे। वितर्क बीचि संकुले ॥
विविक्त वासिनः सदा। भजन्ति मुक्तये मुदा ॥
निरस्य इन्द्रियादिकं। प्रयान्ति ते गतिं स्वकं ॥

जो पुरुष ईर्षा छोड़कर आपके चरणों को भजते हैं, वे कुतर्करूपी लहरों से पूर्ण भव-सागर में नहीं गिरते। जो एकान्त-वासी अपनी मुक्ति के लिए प्रसन्नता पूर्वक अपना भजन करते हैं, वे आपकी गति को पाते हैं।

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं ॥
जगद्गुरु च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं ॥
भजामि भाव बल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं ॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं ॥

जो अद्वितीय, अद्भुत-स्वरूप, समर्थ, इच्छा-रहित, ईश्वर, सर्वव्यापक, जगद्गुरु, सनातन, तुरिय और केवल (एकमात्र) हैं तथा जो भाव-प्रिय, कुयोगियों को अति दुर्लभ, भक्तों के लिए कल्पवृक्ष, सम और सुखपूर्वक सेवा करने योग्य हैं, इन्हें मैं सर्वदा भजता हूँ।

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं ॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥
पठन्ति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं ॥
व्रजन्ति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः ॥

हे अनुपम रूप वाले राजा ! हे सीतापति ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न होइये, अपने चरणकमलों की भक्ति दीजिए, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जो

मनुष्य इस स्तुति को आदर सहित पढ़ते हैं, वे आपकी भक्ति से युक्त-होकर आपके परम पद को प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

दोहा—विनती करि मुनि नाइ सिरु, कह कर जोरि बहोरि ।
चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजे मति मोरि ॥ ४ ॥

स्तुति करके सिर नवाकर अत्रि मुनि ने हाथ जोड़कर कहा-हे नाथ ! मेरी बुद्धि आपके चरणारविन्दों को कभी न छोड़े ।

अनुसुइया के पद गहि सीता * मिली बहोरि सुसील बिनीता
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई * आसिष देइ निकट बैठाई

फिर परम सुशीलवती और नम्र सीताजी (अत्रि मुनि की स्त्री) अनुसुइयाजी के चरण छूकर उनसे मिलीं ! ऋषि-पत्नी के मन में अत्यन्त आनन्द हुआ और आशीर्वाद देकर उन्होंने सीताजी को अपने पास बैठा लिया ।

दिव्य बसन भूषन पहिराए * जे नित नूतन अमल सुहाए
कह रिषि बधू सरस मृदु बानी * नारि धर्म कछु ब्याज बखानी

फिर उन्हें स्वर्गीय वस्त्राभूषण पहिनाये, जो नित्य नये, सुन्दर और निर्मल बने रहते हैं । ऋषि पत्नी सीधी और कोमल वाणी से कुछ स्त्री धर्म का वर्णन करने लगीं—

मातु पिता भ्राता हितकारी * हितु प्रद सब सुनु राजकुमारी
अमित दान भर्ता बयदेही * अधम सो नारि जो सेव न तेही

हे राजकुमारी ! सुन-माता, पिता, भाई यह सब हितैषी हैं, परन्तु थोड़े ही समय तक सुख देने वाले हैं । सीता ! पति तो अपार सुख देने वाला है, वह स्त्री नीच है, जो पति सेवा नहीं करती ।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी * आपद काल परखिअहिं चारी
बृद्ध रोगवस जड़ धन हीना * अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना

धीरज, धर्म, मित्र और स्त्री—इन चारों की परीक्षा विपत्ति के समय में ही होती है । बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, बहिरा, क्रोधी और बहुत दुःखी—

एसेहु पति कर किएँ अपमाना * नारि पाव जमपुर दुख नाना
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा * कायँ बचन मन पतिपद प्रेमा

ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमलोक में अनेक दुःख पाती है । स्त्री का एक ही धर्म, एक ही व्रत और नियम यह है कि देह वाणी और मन से पति के चरणों में प्रेम करे ।

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं * बेद पुरान सन्त सब कहहीं
उत्तम के अस बस मन माहीं * सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं

वेद, पुराण और संत ऐसा कहते हैं कि संसार में पतिव्रता चार प्रकार की होती हैं उत्तम पतिव्रता के मन में ऐसा विचार रहता है कि स्वप्न में भी दूसरा पुरुष संसार में नहीं है ।

मध्यम परपति देखइ कैसें * भ्राता पिता पुत्र निज जैसें
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई * सो निकृष्ट त्रियश्रुति अस कहई

मध्यम-श्रेणी की पतिव्रता पराये पुरुष को कैसे देखती हैं—जैसे अपना भाई, पिता, और पुत्र हो जो धर्म विचारकर अपनी कुल मर्यादा को समझकर धर्म पर स्थिर रहती हैं, वे निकृष्ट पतिव्रता स्त्री हैं, ऐसा वेद कहते हैं।

बिनु अवसर भय तें रह जोई * जानेहु अधम नारि जग सोई
पतिबञ्चक परपति रति करई * रौरव नरक कल्प सत परई

जो स्त्री बिना समय पाये या डर से धर्म पर स्थिर है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना! जो पति को छोड़कर दूसरे पति से रति करती है, वह सौ कल्पों तक रौरव नरक में पड़ती है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी * दुख न समुझि तेहि सम को खोटी
बिनु श्रम नारि परम गति लहई * पतिब्रत धर्म छाँड़ि छल गहई

क्षणभर के सुख के लिए—सौ करोड़ जन्मों के दुःख को जो दुःख न समझे उनके समान दुष्ट कौन है? जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत-धर्म पर स्थिर रहती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति पाती है।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई * बिधवा होइ पाइ तरुनाई

जो स्त्री पति के विरुद्ध रहती है, वह जहां-जहां भी जाकर जन्मती है, वहां जवानी में ही विधवा हो जाती है।

सो०—सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभ गति लहइ।
जासु गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥५क॥

स्त्री स्वाभाविक ही अपवित्र है, पति की सेवा करने से उत्तम गति को प्राप्त हो जाती है। आज भी 'तुलसीदासजी' हरि भगवान को प्रिय हैं, चारों वेद उनका सुयश गाते हैं।

सुनि सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि परम प्रिय राम, कहिउँ कथा संसार हित ॥५ख॥

हे सीता! सुनो, तुम्हारा नाम स्मरण करके स्त्रियां पतिव्रत-धर्म पालन करेंगी। तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणों के समान प्यारे हैं, यह कथा तो मैंने संसार के निमित्त कही है।

सुनु जानकीं परम सुखु पावा * सादर तासु चरन सिरु नावा
तब मुनिसन कह कृपानिधाना * आयसु होइ जाउँ बन आना

यह सुनकर जानकीजी ने परम सुख पाया और आदर सहित प्रणाम किया। तब कृपानिधान श्रीरामजी ने मुनि से कहा-आज्ञा हो तो दूसरे वन जाऊं।

सन्तत मोपर कृपा करेहू * सेवक जानि तजेहु जनि नेहू
धर्म धुरन्धर प्रभु कै बानी * सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी

मुझ पर सदैव कृपा करते रहना, सेवक जानकर स्नेह न छोड़ना। धर्म-धुरन्धर प्रभु की

बाणी सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम पूर्वक बोले–

जासु कृपा अज शिव सनकादी * चहत सकल परमारथ वादी
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे * दीनबन्धु मृदु वचन उचारे

ब्रह्मा, शिव, सनकादिक सभी मोक्षवादी जिसकी कृपा चाहते हैं, हे राम ! ऐसे आप दीनबन्धु और निष्काम भक्तों के प्यारे हैं, जो कोमल वचन बोलते हैं ।

केहि विधि कहौं जाहु अब स्वामी * कहहु नाथ तुम अन्तर जामी
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा * लोचन जल बह पुलक सरीरा

हे स्वामी ! मैं किस प्रकार कहूँ कि आप जाइये ? हे नाथ ? आपही कहिये, आप अन्तर्यामी हैं । ऐसा कहकर धीर-मुनि ने प्रभु की ओर देखा, नेत्रों से जल बह रहा है, शरीर पुलकित है।

छन्द–तनु पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मनु ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ॥
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।
रघुवीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई ॥

मुनि का शरीर पुलकित और स्नेह से पूर्ण है । नेत्र भी श्रीरामजी के मुख-कमलकी ओर लगे हैं,विचार रहे हैं कि कौन-सा ऐसा जप-तप मैंने किया है, जो मन,बुद्धि, गुण और इन्द्रियों से परे प्रभु के दर्शन पाये हैं ? जप, योग तथा धर्म समूहों से मनुष्य अनुपम भक्ति पाते हैं । श्रीरघुनाथजी के पवित्र चरित्र तुलसीदासजी रात-दिन गाते हैं ।

दोहा–कलिमल समन दमन मन, राम सुजसु सुखमूल ।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर, राम रहहिं अनुकूल ॥ ६क ॥

श्रीरामजीका सुन्दर यश कलियुगी पापोंका नाश करने वाला, मनको दमन करने वाला एवं सुख का मूल है जो लोग आदर पूर्वक इसे सुनते हैं, उन पर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न रहते हैं ।

सो०–कठिन काल मल कोष, धर्म न ग्यान न जोग जप ।
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर ॥ ६ख ॥

यह कठिन कलिकाल पापों का भण्डार है, उसमें न धर्म है न ज्ञान है, और न योग-जप है, सबका भरोसा छोड़कर श्रीरामजी को भजते हैं-वे मनुष्य चतुर हैं ।

मुनि पदकमल नाइ करि सीसा * चले वनहिं सुर नर मुनि ईसा
आगें राम अनुज पुनि पाछें * मुनिवर वेष बने अति काछें

अत्रि-मुनि के चरणों में सिर नवाकर देवता और मुनियों के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी वन को चले । आगे श्रीरामजी हैं, उनके पीछे लक्ष्मणजी हैं । श्रेष्ठ मुनियों का-सा अति सुन्दर वेष धारण किये हैं ।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी * ब्रह्म जीव बिच माया जैसी

सरिता वन गिरि अवघट घाटा * पति पहिचानि देहिं दर बाटा

दोनों के बीच में सीताजी कैसी शोभायमान हैं, जैसे ब्रह्म तथा जीव के बीच में माया। नदी, वन, पर्वत, दुर्गमघाटी स्वामी को पहिचानकर सुन्दर मार्ग देते हैं।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया * करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया
मिला असुर बिराध मग जाता * आवतहीं रघुवीर निपाता

जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ मेघ आकाश में छाया करते हैं। मार्ग में जाते हुए 'विराध' राक्षस मिला, आते ही प्रभु ने उसे मार डाला।

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा * देखि दुखी निज धाम पठावा
पुनि आए जहँ मुनि सरभङ्गा * सुन्दर अनुज जानकी संगा

तुरन्त ही उसने उत्तम रूप पा लिया। उसे दुःखी देखकर श्रीरामजी ने अपने लोक को भेज दिया। फिर जहाँ सरभंग मुनि थे, वहाँ सुन्दर श्रीरामजी-लक्ष्मणजी व जानकी के साथ आये।

दोहा—देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृङ्ग।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म सरभङ्ग॥ ७॥

श्रीरामचन्द्रजी का मुख-कमल देखकर मुनिवर के नेत्र भौंरे के समान बड़े आदर के साथ रस-पान करने लगे। सरभङ्गजी का जन्म धन्य है।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला * शंकर मानस राजमराला
जात रहेउँ बिरञ्चि के धामा * सुनेउँ श्रवन वन ऐहहिं रामा

मुनि बोले-हे कृपालु श्रीरामजी ! हे शिवजी के मन रूपी मानसरोवर के राजहंस ! सुनिये ! मैं ब्रह्म-लोक को जा रहा था, इतने में ही कानों से सुना कि श्रीरामजी वन में आ रहे हैं।

चितवत पन्थ रहेउँ दिन राती * अब प्रभु देखि जुड़ावन छाती
नाथ सकल साधन मैं हीना * कीन्ही कृपा जानि जन दीना

मैं दिन-रात आपकी बाट देखता रहा हूँ, अतः अब प्रभु को देखकर छाती ठण्डी हुई है। हे नाथ ! मैं सब साधनों से हीन हूँ, मुझे दीन-जन जानकर आपने कृपा की है।

सो कछु देव न मोहि निहोरा * निज प्रन राखेउ जन मन चोरा
तब लगि रहहु दीनहित लागी * जबलगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी

सो हे भक्तजनों के चित-चोर देव ! इसमें मेरे ऊपर कोई अहसान नहीं, आपने अपना प्राण निबाहा है। तब तक आप इस दीन के लिए ठहरिये, तब तक मैं अपना देह त्यागकर आप में न मिल जाऊँ।

जोग जग्य जप तप व्रत कीन्हा * प्रभु कहँ देइ भगति वर लीन्हा
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभङ्गा * बैठे हृदयँ छाँड़ि सब सङ्गा

योग, यज्ञ, तप व व्रत जो भी मुनि ने किये थे, वह सब प्रभु श्रीरामजी को देखकर भक्ति का वरदान ले लिया। इस प्रकार सरभंग मुनि हृदय से मोह त्याग, चिता बनाकर बैठ गये।

दोहा—सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम ।
मन हियँ बसहु निरन्तर, सगुन रूप श्रीराम ॥ ८ ॥

हे नीलकमल के समान श्यामसुन्दर शरीर वाले श्रीरामजी ! सीताजी और लक्ष्मणजी सहित सगुण-रूप से आप सदैव मेरे हृदय में वास करिये ।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा * राम कृपाँ बैकुण्ठ सिधारा
रिषि निकाय मुनिवर गति देखी * सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी

ऐसा कहकर योगाग्नि से अपने शरीर को जला दिया, वे रामजी की कृपा से बैकुण्ठ को सिधारे । सब ऋषि-मुनिवर 'शरभङ्गजी' की यह गति देखकर अपने हृदय में बड़े सुखी हुए।

अस्तुति करहिं सकल मुनिवृन्दा * जयति प्रनत हित करुना कन्दा
पुनि रघुनाथ चले वन आगे * मुनिवर वृन्द विपुल सँग लागे

समस्त मुनिगण भगवान को स्तुति करते-दीन-हितकारी करुणानिधान प्रभु की जय हो। श्रीरघुनाथजी आगे वन में चले तो बहुत से मुनिवरों के समूह उनके साथ हो लिए ।

अस्ति समूह देखि रघुराया * पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया

हड्डियों का ढेर देखकर श्रीरघुनाथजी को अति-दया लगी तब उन्होंने मुनियों से पूछा-

जानत हूँ पूछिअ कस स्वामी * समदरसी तुम्ह अन्तरजामी
निसिचर निकर सकल मुनि खाए * सुनि रघुबीर नयन जल छाए

हे स्वामी ! आप सब जानते हुए भी कैसे पूछ रहे हैं ? आप समदर्शी और अन्तर्यामी हैं। राक्षसोंके समूह ने सब मुनियों को खाया है,यह सुनकर श्रीरघुनाथजी के नेत्रों में जलभरआया।

दोहा—निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ प्रन कीन्ह ।
सकलमुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ ९ ॥

उन्होंने भुजा उठाकर यह प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूंगा। फिर सब मुनियों के आश्रमों पर जा-जाकर सुख दिया ।

मुनि अगस्ति कर शिष्य सुजाना * नाम सुतीछन रति भगवाना
मन क्रम वचन रामपद सेवक * सपनेहुँ आन भरोस न देवक

अगस्त्य ऋषि के एक चतुर, शिष्य 'सुतीक्ष्ण' नामक थे, जिनकी भगवान में बड़ी प्रीति थी । वे मन, कर्म और वचन से श्रीरामजी के चरणों के सेवक थे, उन्हें स्वप्न में भी किसी और देवता का भरोसा नहीं था ।

प्रभु आगमनु श्रवन सुनि पावा * करत मनोरथ आतुर धावा
हे विधि दीनबन्धु रघुराया * मो से सठ पर करहहिं दाया

ज्यों ही प्रभु का आगमन कानों ने सुना त्यों ही बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए आतुरता से उठ दौड़े । हे विधाता ! श्रीरघुनाथजी—क्या मेरे जैसे शठ पर भी दया करेंगे।

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं * मिलिहहिं निज सेवक की नाईं

मोर जियँ भरोस दृढ़ नाहीं * भगति बिरति न ग्यान मन माहीं

क्या प्रभु श्रीरामजी, भाई लक्ष्मण सहित मुझसे अपने सेवक की भाँति मिलेंगे? मन में पक्का भरोसा नहीं है, क्योंकि मेरे मनमें न तो भक्ति है, न विशेष प्रीति है और न ज्ञान है।

नहिं सतसङ्ग जोग जप जागा * नहिं दृढ़ चरन करन अनुरागा
एक बानि करुना निधान की * सो प्रिय जाकें गति न आन की

मैंने न तो सत्संग, योग, जप और तप ही किये हैं और न रामजी के चरणों में मेरा दृढ़प्रेम ही है। करुणानिधान की एक टेक है, जिसे दूसरे का भरोसा नहीं-वह उन्हें प्रिय लगता है।

होइ हैं सुफल आजु मम लोचन * देखि बदन पंकज भव मोचन
निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी * कहि न जाइ सो दसा भवानी

आज भव-बंधन से छुड़ाने वाले प्रभुके मुखकमलका दर्शन करके नेत्र सफल होंगे। शिवजी कहते हैं-हे पार्वती! वे ज्ञानी मुनि प्रेम में पूर्ण मग्न हैं, उनकी दशा कही नहीं जा सकती।

दिसि अरु बिदिस पन्थ नहिं सूझा * को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई * कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई

मुनि को दिशा-विदिशाका ज्ञान नहींरहा और न कोई मार्ग सूझा। मैं कौन हूँ और कहाँ जारहा हूँ, यह भी नहीं जानते। कभी पीछे घूमकर आगे चलते और कभी गुणगा-गाकर नाचते हैं।

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई * प्रभु देखें तरु ओट लुकाई
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा * प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा

मुनिने प्रेमपूर्ण भक्ति पाली, प्रभु रामजी वृक्ष की आड़ में छिपकर देखने लगे। मुनि की अत्यन्त प्रीति देखकर संसार के दुख को हरने वाले भगवान मुनि के हृदय में प्रकट हो गये।

मुनि मगमाझ अचल होइ बैसा * पुलक शरीर पनस फल जैसा
तब रघुनाथ निकट चलि आए * देखि दसा निज जन मन भाए

मुनि मार्ग में अचल होकर बैठ गये, देह पुलकित होकर कटहल केफल के समान हो गयी। तब रामजी मुनि के पास चले आये और भक्तकी दशाको देख अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा * जाग न ध्यान जनित सुख पावा
भूप रूप तब राम दुरावा * हृदयँ चतुरभुज रूप देखावा

श्रीरामजी ने मुनि को बहुत जगाया, परन्तु वे नहीं जागे। क्योंकि मुनि को ध्यान का सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्रीरामजी ने अपने राजा-रूप को छिपा लिया और मुनि के हृदय में अपना चतुर्भुज रूप दिखाया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें * बिकल हीन मनि फनि बर जैसें
आगें देखि राम तनु श्यामा * सीता अनुज सहित सुखधामा

तब मुनि घबड़ाकर ऐसे उठे जैसे मणि के बिना नागराज घबड़ा जाता है। अपने आगे श्रीसीताजी व लक्ष्मणजी समेत सुख के धाम श्याम शरीर वाले श्रीरामजी को देखकर–

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी * प्रेम मगन मुनिवर बड़ भागी
भुज विसाल गहि लिए उठाई * परम प्रीति राखे उर लाई

बड़े भाग्यवान् मुनि प्रेम मग्न होकर लकुट की तरह श्रीरामजी के चरणों में गिर पड़े। श्रीरामजी ने अपनी विशाल भुजाओं से उन्हें उठा लिया और प्रेम सहित हृदय से लगा लिया।

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला * कनक तरुहि जनु भेंट तमाला
राम बदनु विलोकि मुनि ठाढ़ा * मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा

मुनि से मिलते हुए दयालु श्रीरामजी ऐसे सुशोभित हुए मानो सोनेके वृक्ष में तमाल भेंटता हो। श्रीरामजी के मुख को देखकर मुनि ऐसे रह गए, मानो चित्र में लिखकर बनाये गये हों।

दोहा–तब मुनि हृदयँ धीर धरि, गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनिकर, पूजा बिबिध प्रकार ॥ १० ॥

तब मुनि ने धैर्य धारण कर बारम्बार चरण छुए, फिर उनको आश्रम में लाकर अनेक भाँति से पूजा की।

कह मुनि प्रभु सुनु विनती मोरी * अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी
महिमा अमित मोरि मति थोरी * रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी

मुनि ने कहा–हे स्वामी ! मेरी विनय सुनिये, मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ। आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि थोड़ी है, जैसे सूर्य के सामने जुगनू का प्रकाश।

श्याम तामरस दाम सरीरं * जटा मुकुट परिधन मुनि चीरं
पाणि चाप शर कटि तूणीरं * नौमि निरन्तर श्रीरघुवीरं

नील कमल की माला के समान श्याम शरीर वाले जटा-मुकुट और मुनियों के वस्त्र धारण किये,धनुष-बाण हाथ में लिये,कमर में तरकस बाँधे रघुनाथजी को मैं नमस्कार करताहूँ।

मोह विपिन घन दहन कृसानुः * सन्त सरोरुह कानन भानुः
निसिचर करि बरूथ मृगराजः * त्रातु सदा नो भव खग बाजः

जो मोहरूपी सघन वन के जलाने को अग्नि हैं, संतरूपी कमल-वन को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य हैं, राक्षसरूपी हाथियों के झुण्ड को नाश करने के लिये सिंह के समान हैं और संसार रूपी पक्षी को नष्ट करने के लिये 'बाज' पक्षी के समान हैं, वे भगवान मेरी सदा रक्षा करें।

अरुण नयन राजीव सुवेशं * सीता नयन चकोर निशेशं
हर हृदि मानस बाल मरालं * नौमि राम उर बाहु विशालं

लाल कमल के समान नेत्र और सुन्दर वेष वाले, सीताजी के नेत्ररूपी चकोर को चन्द्रमा शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के हंस, विशाल वक्ष स्थल तथा भुजा वाले-श्रीरामजी ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

संसय सर्प ग्रसन उरगादः * शमन सुकर्कश तर्क विषादः
भव भञ्जन रञ्जन सुर यूथः * त्रातु सदा नो कृपा वरूथः

जो संशयरूपी सर्पों को ग्रसने के लिए गरुड़हैं,कठोर तर्क से उत्पन्न विषादका नाश करने वाले हैं संसार को छुड़ाने वाले और देवों के समूह जो आनंद देने वाले हैं,वे कृपानिधान मेरी रक्षा करें।

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं * ज्ञान गिरा गोतीत अनूपं
अमलमखिलमनवद्यमपारं * नौमि राम भञ्जन महि भारं

हे निर्गुण, सगुण, विषय समरूपी ! हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे देव ! अनुपम, निर्मल अखंड, दोष रहित, अनन्त और भूमि का भार उतारने वाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

भक्त कल्प पादप आरामः * तर्जन क्रोध लोभ मद कामः
अति नागर भवसागर सेतुः * त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः

जो भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के बगीचे हैं,क्रोध,लोभ,अहंकार व कामको डराने वाले हैं बहुत ही चतुर व संसाररूपी समुद्रकेपार उतारनेको सेतुरूपहैं वे सूर्यवंशके ध्वजारूप श्रीरामजी रक्षाकरें।

अतुलित भुज प्रताप बल धामः * कलिमल विपुल विभंजन नामः
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः * सन्तत शं तनोतु मम रामः

जिनकी भुजाओं का बल अतुलित है, जो बल के धाम हैं जिनका नाम कलियुग के असंख्य पापों को नष्ट करने वाला है, जिनके गुणों का समूह धर्म का रक्षक है और कल्याण करने वाला है वे श्रीरामजी मेरी रक्षा करें।

जदपि बिरजव्यापक अविनासी * सबके हृदय निरन्तर वासी
तदपि अनुज श्री सहित खरारी * बसहु मनसि मम कानन चारी

यद्यपि आप निर्मल, व्यापक अविनाशी तथा सबके हृदय में वास करने वाले हैं, तो भी हे खरारि ! लक्ष्मण व सीता सहित आप मेरे हृदयरूपी वन में वास कीजिये।

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी * सगुन अगुन उर अन्तरजामी
सो कोसलपति राजित नयना * करत सोराम हृदय मम अयना

हे प्रभु ! आपको जो सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी जानते हैं—वे जाना करें, परन्तु मेरे हृदय में अयोध्यापति श्रीरामजी ही निवास करें।

अस अभिमान जाइ जनु मोरें * मैं सेवक रघुपति पति तोरें
सुनि मुनि वचन राम मन भाए * बहुरि हरषि मुनिवर उर लाए

ऐसा अभिमान कभी न छूटे कि 'मैं सेवक हूँ' और श्रीरघुनाथजी ही मेरे स्वामी हैं।' मुनि ने यह मन को प्रिय लगने वाले वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर मुनिवर को हृदय से लगा लिया।

परम प्रसन्न जानि मुनि मोही * जो वर मागउँ देउँ सो तोही
मुनि कह मैं वर कबहुँ न जाँचा * रामुझि न परइ झूठ का साँचा

और बोले-हे मुनि ! अति प्रसन्न जानकर जो वर मांगो, वही मैं तुमको दूंगा। मुनि ने कहा-मैंने वरदान कभी नहीं मांगा अतः मुझे यह नहीं समझ पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है ?

तुम्हहि नीक लागै रघुराई * सो मोहि देहु दास सुखदाई

सो, हे भक्तों को सुख देने वाले—श्रीरामजी ! आपको जो अच्छा लगे, वही दीजिये।

अबिरल भगति बिरति बिग्याना * होहु सकल गुन ग्यान निधाना
प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा * अब सो देहु मोहि जो भावा

श्रीरामजी बोले-तुम अटल भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, समस्त गुण व ज्ञान से परिपूर्ण होजाओ। (तब मुनि बोले-) हे प्रभु ! जो वर आपने दिये-वह मैंने पाये,अब जो मुझे भला लगे-वह भी दो।

दोहा—अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धरि बाम।
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निह काम ॥ ११ ॥

हे प्रभु ! हे श्रीरामजी ! लक्ष्मणजी और जानकीजी समेत धनुष वाणधारी 'आप' स्थिर होकर मेरे हृदयरूपी आकाश में चन्द्रमा के समान सदैव निवास करें।

एवमस्तु कहि रमा निवासा * हरिष चले कुम्भज रिषि पासा
बहुत दिवस गुरु दरसनु पाएँ * भए मोहि एहिं आश्रम आएँ

तब लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजी 'एवमस्तु' कहकर प्रसन्न होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। तब सुतीक्षण बोले—गुरुदेव के दर्शन पाकर इस आश्रम पर आये मुझे बहुत दिन हो गये।

अब प्रभु सङ्ग जाउँ गुरु पाहीं * तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई * लिए सङ्ग बिहँसे द्वौ भाई

अब प्रभु के साथ गुरुदेव के पास जाऊँगा,हे नाथ ! इसमें आप पर मेरा कुछ अहसान नहीं है। कृपानिधान श्रीरामजी ने मुनि की चतुराई देख अपने संग ले लिया और दोनों भाई हँसने लगे।

पन्थ कहत निज भगति अनूपा * मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा
तुरत सुतीछन गुरु पहिं गयऊ * करि दण्डवत कहत अस भयऊ

मार्ग में अपनी सुन्दर भक्ति करते हुए देवाधिराज श्रीरामजी अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचे। सुतीक्षण जल्दी से गुरु के पास गये और साष्टांग प्रणाम कर उनसे ऐसा कहने लगे—

नाथ कौशलाधीस कुमारा * आए मिलन जगत आधारा
राम अनुज सहित बैदेही * निसिदिन देव जपत हहु जेही

हे नाथ ! कौशलाधीश के राजकुमार जगदाधार 'श्रीरामजी' छोटे भाई लक्ष्मणजी तथा सीताजी सहित आपसे मिलने आये हैं। हे देव ! जिनको आप रात-दिन जपते हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए * हरि बिलोकि लोचन जल छाए
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई * रिषि अति प्रीत लिए उर लाई

यह सुनते ही अगस्त्य तुरन्त उठ दौड़े, भगवान को देख नेत्रों में जल भर आया। मुनि के चरणों में दोनों भाई गिरे, तब ऋषि ने बड़े प्रेम से उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया।

सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी * आसन बर बैठारे आनी
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा * मोहि सम भगवन्त नहिं दूजा

ज्ञानी मुनि ने सादर कुशल पूछी और आसन लगाकर बैठाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके कहा कि मेरे समान भाग्यवान् कोई दूसरा नहीं है।

तहँ लगि रहे अपर मुनिवृन्दा * हरषे सब बिलोकि सुखकन्दा

वहाँ और जितने मुनिगण थे, वे सब भी सुख के मूल श्रीरामजी के दर्शन कर प्रसन्न हुए।

दोहा—मुनि समूह महँ बैठे, सनमुख सबकी ओर।
शरद इन्दु तनु चितवन, मानहुँ निकर चकोर॥ १२॥

मुनियों की मण्डली में श्रीरामजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं, मानो शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा को चकोरों का झुण्ड देख रहा है।

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं * तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ * ताते तात न कछु समझायउँ

तब श्रीरामजी ने मुनि से कहा—हे स्वामी! आपसे कुछ भी नहीं छिपा है, जिस कारण मैं आया हूँ—सो आप जानते हैं। हे तात! इसलिए मैंने समझाकर नहीं कहा।

अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही * जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी * पूछेहु नाथ मोहि का जानी

हे मुनि! अब आप मुझे वही सलाह दीजिये, जिससे कि मैं मुनियों के बैरी राक्षसों को मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर ऋषि मुस्कराये और कहने लगे—हे नाथ! आपने मुझसे क्या जानकर पूछा है?

तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी * जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी
ऊमरि तरु बिसाल तव माया * फल अनेक ब्रह्माण्ड निकाया

हे पाप नाशक प्रभु! आपके ही भजन के प्रताप से आपकी कुछ थोड़ी-सी महिमा जानता हूँ। आपकी माया विशाल गूलर के वृक्ष के समान हैं और अनेक ब्राह्मणों के समूह उनके फल हैं।

जीव चराचर जन्तु समाना * भीतर बसहिं न जानहिं आना
ते फल भच्छक कठिन कराला * तव भयँ डरत सदा सोइ काला

चराचर जीव उन फलों के अन्दर भिनगों के समान हैं, जो बाहर का कुछ भी हाल नहीं जानते। इन फलों का भक्षण करने वाला कठिन और भयंकर काल भी आपके भयसे डरता है।

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं * पूछेहु मोही मनुज की नाईं
यह बर मागउँ कृपानिकेता * बसहु हृदय श्री अनुज समेता

ऐसे संपूर्ण लोकपालों के स्वामी आपने मुझसे मनुष्य की तरह पूछा। हे कृपा के स्थान! मैं आपसे यह वरदान माँगता हूँ कि सीताजी और लक्ष्मणजी सहित आप मेरे हृदय में वास करें।

अबिरल भगति बिरति सतसङ्गा * चरन सरोरुह प्रीति अभङ्गा
जद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता * अनुभव गम्य भजहिं जेहि सन्ता

मुझे आपकी अटल-भक्ति, वैराग्य, सत्संग तथा चरण कमलों में अचल प्रीति दीजिए। यद्यपि

आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, अनुभव से जानने योग्य हैं, जिसको सन्त-जन भजते हैं।

अस तव रूप बखानउँ जानउँ * फिरिफिरि सगुन ब्रह्मरति मानउँ
सन्त दासन्ह देहु बड़ाई * तातें मोहि पूँछेहु रघुराई

मैं आपके रूप का वर्णन करता हूँ और जानता हूँ तो भी फिर२ कर मैं सगुण-ब्रह्म में प्रेम मानता हूँ। हे रामजी आप अपने दासों को सदा बड़ाई देते हैं, इसी से आपने मुझसे पूछा है।

हे प्रभु परम मनोहर ठाउँ * पावन पञ्चवटी तेहि नाउँ
दण्डक वन पुनीत प्रभु करहू * उग्र शाप मुनिवर कर हरहू

हे प्रभु! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम 'पंचवटी' है। हे प्रभु! आप दण्डक वन को पवित्र कीजिये और मुनिवर गौतमजी के कठिन शाप को दूर कीजिए।

वास करहु तहँ रघुकुल राया * कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया
चले राम मुनि आयसु पाई * तुरतहिं पञ्चवटी नियराई

हे रघुकुल के स्वामी! आप वहाँ जाकर वास कीजिये और सब मुनियों पर दया कीजिये। तब मुनि की आज्ञा पाकर श्रीरामजी चले और शीघ्र ही पंचवटी के निकट जा पहुँचे।

दोहा—गीधराज सैं भेंट भइ, बहु विधि प्रीति गढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाइ॥ १३॥

वहाँ गीधराज जटायु से भेंट हुई। उसके साथ सभी भाँति से प्रीति दृढ़ करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गोदावरी नदी के निकट पर्णकुटी बनाकर रहने लगे।

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा * सुखी भए मुनि बीती त्रासा
गिरि वन नदी ताल छबि छाए * दिनदिन प्रति अति होहिं सुहाए

श्रीरामजी ने जब से यहाँ वास किया, तब से मुनि लोग प्रसन्न हो गये और उनका डर दूर हो गया। पर्वत, वन, नदी, तालाब सब शोभायमान हो गये और वे दिनों-दिन बहुत ही सुहावने लगने लगे।

खग मृग बृन्द अनन्दित रहहीं * मधुर मधुर गुंजत छबि लहहीं
सो बन बरनि न सक अहिराजा * जहाँ प्रगट रघुवीर विराजा

पशु-पक्षियों के झुण्ड आनंद से रहते हैं और भौंरे मधुर गुञ्जार करते हुए सुशोभित हैं। उस वन की शोभा का वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते जहाँ साक्षात् श्रीरघुनाथजी विराजमान हैं।

एक बार प्रभु सुख आसीना * लछिमन वचन कहे छल हीना
सुर नर मुनि सचराचर साईं * मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं

एक बार श्रीरामजी सुख पूर्वक बैठे हुए थे उस समय लक्ष्मणजी ने कपट रहित वचन कहे-हे देव, मनुष्य, मुनि और चराचर के स्वामी! मैं अपने प्रभु के समान आपसे पूछता हूँ—

मोहि समुझाइ कहहु सोई देवा * सब तजि करौं चरन रज सेवा
कहहु ज्ञान विराग अरु माया * कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया

हे देव ! समझाकर मुझसे वही कहिये, जिससे कि मैं सब छोड़कर आप ही की चरण रज की सेवा करूँ । ज्ञान, वैराग्य और माया का निरूपण कीजिए और उस भक्ति को कहिये, जिससे कि आप भक्तों पर कृपा करते हैं ।

दोहा—ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहु समुझाय ।
जातें होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाय ॥ १४ ॥

हे प्रभु ! ईश्वर और जीव का सब भेद समझाकर कहिये, जिससे कि आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और दुःख, मोह तथा सन्देह दूर हो जाय ।

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई * सुनहु तात मति मन चित लाई
मैं अरु मोर तोर तें माया * जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया

(श्रीरामजी बोले—) हे तात ! मैं थोड़े ही में समझाकर कहता हूँ । तुम बुद्धि, मन और चित्त लगाकर सुनो—'मैं और मेरा, तू और तेरा' यही माया है, जिसने सब जीवों को वश में कर रक्खा है ।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई * सो सब माया जानेहु भाई
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ * बिद्या अपर अबिद्या दोऊ

इन्द्रियों के विषय तक और जहाँ तक मन जाता है, वहाँ तक सब माया जानना । उसके भी दो भेदों—एक 'विद्या' दूसरी 'अविद्या' को तुम सुनो—

एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा * जा बस जीव परा भव कूपा
एक रचइ जग गुन बस जाकें * प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें

एक (अविद्या) अत्यन्त दुष्ट और दुःखदायक है, इसी के वश होकर जीव संसाररूपी कुए में गिरता है और एक (विद्या) जगत् को रचती है, क्योंकि गुण उसके आधीन हैं । वह ईश्वर से प्रेरित है । उसमें अपना कुछ भी बल नहीं है ।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं * देखइ ब्रह्म समान सब माहीं
कहिअ तात सो परम बिरागी * तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी

ज्ञान वहाँ है—जहाँ मान आदि एक भी (दोष) नहीं है, और जो सब में समान रूप से ब्रह्म देखता है । हे तात ! उसे ही परम वैराग्यवान कहना चाहिए—सब सिद्धियों और तीनों गुणों को तृण के समान त्याग देता है ।

दोहा—माया ईस न आप कहुँ, जान कहिअ सो जीव ।
बन्ध मोक्षप्रद सर्ब पर, माया प्रेरक सीव ॥ १५ ॥

जो माया ईश्वर स्वयं को नहीं जानता, उसको जीव कहना चाहिए । जो बन्धन और मोक्ष देने वाला है, सबसे परे और माया-प्रेरक है—वही 'ईश्वर' है ।

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना * ग्यान मोक्षप्रद बेद बखाना
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई * सो मम भगति भगत सुखदाई

धर्म से वैराग्य व योगसे ज्ञान होता है और ज्ञान-मोक्ष का दाता है, ऐसा वेदों ने कहा है। हे भाई ! जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न हो जाऊँ वही मेरी भक्ति है, जो भक्तों को सुख देने वाली है।

सो सुतन्त्र अवलम्ब न जाना * तेहि आधीन ग्यान बिग्याना
भगति तात अनुपम सुख मला * मिलइ जो सन्त होई अनुकूला

वह भक्ति स्वतंत्र है,उसे दूसरे का सहारा नहीं,ज्ञान-विज्ञान उसके अधीन हैं। हे लक्ष्मण ! भक्ति उपमा रहित और सुख की जड़ है, वह तभी मिलती है-जब संतजन अनुकूल होते हैं।

भगति कि साधक कहउँ बखानी * सुगम पन्थ मोहि पावहिं प्रानी
प्रथमहिं विप्रचरन अति प्रीती * निज निज कर्म निरत श्रुति रीती

अब भक्ति के साधन वर्णन करता हूँ, जिससे प्राणी मुझे सहज ही पा जाते हैं। प्रथम तो ब्राह्मणों के चरणों में अधिक प्रीति हो और वेद की रीति से अपने धर्म में लगा हो।

एहिकर फलपुनि विषय बिरागा * तब मम धर्म उपज अनुरागा
श्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं * मम लीला रति अति मन माहीं

फिर इससे विषयों में वैराग्य होता है, तब मेरे धर्म में प्रेम उत्पन्न होता है श्रवण आदि नव भक्तियां दृढ़ हो जाती हैं और मन में मेरी लीलाओं के प्रति बड़ी प्रीति हो जाती है।

सन्त चरन पंकज अति प्रेमा * मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा * सब मोही कहँ जानै दृढ़ सेवा

जिनका सन्तजनों के चरणों में अधिक प्रेम हो और मन, कर्म, वचन से भजन करने का पक्का नियम हो। गुरु, माता, पिता, भाई, स्वामी तथा देवता सब कुछ मुझको ही जाने और दृढ़ता से मेरी सेवा करे।

मम गुन गावत पुलक सरीरा * गद्‌गद् गिरा नयन बह नीरा
काम आदि मद दम्भ न जाकें * तात निरन्तर बस मैं ताकें

मेरे गुण गाते हुए जिनका शरीर रोमाँचित होजाय,वाणी गद्‌गद् हो जाय, आँसू बहने लगें। काम, अभिमान, पाखंड आदि जिनके मन में न हों, हे तात ! मैं सदा उसके वश में रहता हूँ।

दोहा—वचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहिं निष्काम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करउँ सदा विश्राम ॥१६॥

जो वचन, कर्म और मन से मेरी शरण में आते हैं और निष्काम होकर मेरा ही भजन कहते हैं उनके कमलरूपी हृदय में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

भगति जोग सुनि अति सुख पावा * लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरनावा
एहि विधि गए कछुक दिन बीती * कहत बिराग ग्यान गुन नीती

लक्ष्मणजी ने इस 'भक्ति-योग' को सुनकर बहुत सुख पाया और प्रभु के चरणों में सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान व नीति के गुणों की चर्चा करते हुए कुछ दिन बीत गये।

सूपनखाँ रावन की बहिनी * दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी
पञ्चवटी सो गइ एक बारा * देखि विकल भई जुगल कुमारा

रावण की बहिन शूर्पणखां नाम की राक्षसी नागिन के समान दुष्ट हृदयवाली और भयावनी थी। एक बार वह पंचवटी में गई और दोनों राजकुमारों को देखकर व्याकुल हो गई।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी * पुरुष मनोहर निरखत नारी
होइ बिकल सक मनहि न रोकी * जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी

(कागभुशुण्डिजी कहते हैं–) हे गरुड़जी! भाई, पिता, पुत्र आदि क्यों न हों, मनोहर पुरुष को देखकर (शूर्पणखां जैसी) स्त्री व्याकुल हो जाती है। वह अपने मन को ऐसे नहीं रोक सकती–जैसे सूर्यकान्त-मणि सूर्य को देखकर पिघल जाती है।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं आई * बोली बचन बहुत मुसुकाई
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी * यह सँजोग बिधि रचा बिचारी

वह सुन्दर रूप धरकर श्रीरामजी के पास आई और बहुत मुस्कराकर यह वचन बोली-न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है,न मेरे समान कोई सुन्दरी है,विधाता ने संयोग विचारकर रचा है।

मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं * देखेउँ खोजि लोक तिहुँ माँही
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी * मनु माना कछु तुम्हहि निहारी

मेरे योग्य पुरुष संसार में नहीं है, मैंने तीनों लोकों में ढूंढ़कर देखा है। इसी से मैं अब तक कुमारी ही रही, अब तुमको देखकर मन कुछ माना है।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता * अहइ कुमार मोर लघु भ्राता
गइ लछिमन रिपुभगिनि जानी * प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी

सीताजी की ओर देखकर प्रभु ने कहा कि हमारा छोटा भाई कुमार है। यह सुनकर वह लक्ष्मणजी के पास गई, तब लक्ष्मणजी उसे शत्रु की बहिन जानकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की ओर देखकर कोमल वचन बोले–

सुन्दरि सुनु मैं उन कर दासा * पराधीन नहिं तोर सुपासा
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा * जो कछु करहिं उनहि सब साजा

हे सुन्दरी! सुनो मैं तो उनका सेवक हूँ, पराधीन के पास तुम्हें सुख प्राप्त नहीं होगा। प्रभु समर्थ हैं, अयोध्या के राजा हैं, वे कुछ करें–उन्हें सब शोभा देता है।

सेवक सुख चह मान भिखारी * ब्यसनी धन सुभगति ब्यभिचारी
लोभी जसु चह चार गुमानी * नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, दुराचारी धन चाहे और व्यभिचारी सद्गति चाहे, लालची यश चाहे, अभिमानी चारों फल चाहे, तो वे प्राणी आकाश से दूध दुहना चाहते हैं।

पुनि फिरि राम निकट सो आई * प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई
लछिमन कहा तोहि सो बरई * जो तृन तोरि लाज परिहरई

वह फिर श्रीरामचन्द्रजी के पास आई तो प्रभु ने उसे लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। तब लक्ष्मणजी ने कहा–तुझे तो वही वरेगा जो लाज को तिनके के समान तोड़ देगा।

तब खिसिआनि राम पहिं गई * रूप भयंकर प्रगटत भई

सीतहि सभय देखि रघुराई * कहा अनुज सन सयन बुझाई

तब वह खिसियाकर श्रीरामजी के पास गई और उसने भयंकर रूप धारण किया। तब सीताजी को भयभीत देखकर श्रीरघुनाथजी ने इशारे से लक्ष्मणजी को समझाया।

दोहा–लछिमन अति लाघवँ सो, नाक कान बिन्हु कीन्ह।
ताकें कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्ह ॥ १७ ॥

लक्ष्मणने बड़ी सफाईसे उसके नाक-कान काट लिए,मानो उसके हाथ रावणको चुनौती दीहो।

नाक कान बिनु भई बिकरारा * जनु स्रव सैल गेरु कै धारा
खरदूषन पहिं गइ बिलपाता * धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता

बिना नाक-कान के वह डरावनी होगई, मानो पहाड़ से गेरु की धारा बह रही हो वह रोती हुई खरदूषण के पास गई और बोली-हे भाइयो! तुम्हारे बल और पराक्रम को धिक्कार है।

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई * जातुधान सुनि सेन बनाई
धाए निसिचर निकर बरूथा * जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा

उन्होंने पूछा तब शूर्पणखा ने सबको समझाकर कहा। सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की, बहुत से राक्षसों के झुण्ड ऐसे दौड़े, मानो पंख वाले कज्जल-गिरि के समूह हों।

नाना बाहन नानाकारा * नानायुध धरि घोर अपारा
सूपनखा आगें करि लीन्ही * असुभ रूप श्रुति नासा हीनी

अनेकों सवारियों पर भाँति-भाँति के अनेकों रूप वाले अनेक राक्षस अनेक प्रकार के असंख्य अस्त्र-शस्त्र लिए हुए हैं। उन्होंने शूर्पणखा को आगे कर लिया, जो नाक-कान से हीन अशुभ रूप वाली है।

असगुन अमित होहिं भयकारी * गनहि न मृत्यु बिबस सब झारी
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं * देखि कटुक भट अति हरषाहीं

अनेकों भयंकर अपशकुन होते हैं, परन्तु वे सब मृत्यु के वश होने के कारण उनको कुछ नहीं गिनते। वे गर्जते, उछलते, कूदते व आकाश में उड़ते हैं, ऐसा देखकर योद्धा बहुत खुश होते हैं।

कोउ कह जिअत धरहु दोउ भाई * धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई
धूरि पूरि नभ मण्डल रहा * राम बोलाइ अनुज सन कहा

कोई कहता है–दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मारडालो व स्त्री को छीन लो। आकाश-मण्डल में धूल छागई, तब श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी को बुलाकर उनसे कहा–

लै जानकिहि जाहु गिरि कन्दर * आवा निसिचर कटुक भयंकर
रहेहु सजग सुनु प्रभु कै बानी * चले सहित श्री सरधनु पानी

तुम जानकीको पहाड़ की खोह में ले जाओ राक्षसों की भयंकर सेना आ गई। सावधान रहना प्रभु श्रीरामजी की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी हाथमें धनुष-बाण लेकर सीताजी को संगले चले।

देखि राम रिपुदल चलि आवा * बिहँसि कठिन को दण्ड चढ़ावा

श्रीरामजी ने देखा कि राक्षसों की सेना चली आ रही है, तब हँसकर अपने कठोर धनुष को चढ़ाया।

छन्द—कोदण्ड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सौं जुग भुजँग ज्यों॥
कटि कसि निसंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

कठोर धनुष चढ़ाकर मस्तक पर जटाजूट बाँधे, तब प्रभु कैसे शोभित हुए, मानो नील-मणि पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो साँप लड़ रहे हों। कमर में तरकस, लम्बी भुजाओं में धनुष लेकर वाण सुधार कर प्रभु श्रीरामजी राक्षसों की ओर इस प्रकार देख रहे हैं, मानो सिंह—हाथियों के झुण्ड की ओर ताक रहा हो।

सो०—आइ गए बगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल, बाल रबिहि घेरत दनुज॥ १८॥

बहुत से राक्षस-योद्धा एकत्रित होकर आगये और 'पकड़ो-पकड़ो' कहकर ऐसे दौड़े, जैसे सबेरे के सूर्य को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं।

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी * थकित भई रजनीचर भारी
सचिव बोलि बोले खरदूषन * यह कोउ नृप बालक नर भूषन

प्रभु श्रीरामजी के सुन्दर स्वरूप को देखकर राक्षस वाण नहीं छोड़ सके, सब राक्षस थकित हो गये। खरदूषण मंत्री को बुलाकर बोले—यह राज-पुत्र मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते * देखे सुने हते हम केते
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई * देखी नहिं असि सुन्दरताई

हमने जितने भी देवता, मनुष्य, नाग, असुर और मुनि देखे-सुने हैं और जितने भी अपने हाथों से मारे हैं। परन्तु हे भाइयो! सुनो हमने आज तक ऐसी सुन्दरता नहीं देखी।

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा * बध लायक नहिं पुरुष अनूपा
देहु तुरत निज नारि दुराई * जीअत भवन जाहु दोउ भाई

यद्यपि उन्होंने बहिन को कुरूप कर डाला है, तो भी वह अनुपम पुरुष मारने योग्य नहीं हैं। अपनी छिपाई हुई स्त्री हमको शीघ्र दे दो और दोनों भाई जीते हुए ही घर को लौट जाओ।

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु * तासु बचन सुनि आतुर आवहु
दूतन्ह कहा राम सन जाई * सुनत राम बोले मुसुकाई

मेरा यह वचन तुम उनसे जाकर कहो और उनका उत्तर सुनकर तुरन्त आओ। दूत ने जाकर श्रीरामजी से कहा, यह सुनते ही श्रीरामजी मुस्कराकर बोले—

हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं * तुम्ह से खलमृग खोजत फिरहीं
रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं * एक बार कालहु सन लरहीं

हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार खेलते हैं और तुम्हारे जैसे दुष्ट पशुओं को ढूँढ़ते फिरते हैं। हम बलवान शत्रु को देखकर भी नहीं डरते और एक बार काल से भी लड़ सकते हैं।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक * मुनि पालक खल सालक बालक
जौं न होइ बल घर फिर जाहू * समर बिमुख मैं हतउँ न काहू

यद्यपि हम मनुष्य हैं, तथापि राक्षस-कुल का नाश करने वाले और मुनियों का पालन करने वाले हैं, दुष्टों को दण्ड देने वाले ऐसे बालक हैं। यदि बल न हो तो घर को लौट जाओ। रण से विमुख होजाने पर मैं किसी को नहीं मारता।

रन चढ़ करिअ कपट चतुराई * रिपु पर दया परम कदराई
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेउँ * सुनि खरदूषन उर अति दहेउँ

रण मे चढ़ाई करके छल से चतुराई करना और शत्रु पर दया दिखाना-बड़ी ही भारी कायरता है तब दूतों ने जाकर तुरन्त सब बात कहीं, यह सुनकर खरदूषण के हृदय में अत्यन्त दाह उत्पन्न हुआ।

छन्द–उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर शक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भइ बधिर व्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

हृदय धधक उठा और बोले कि पकड़ लो। तब विकट राक्षस-बाण, बरछी,सांगी,शूल, तलवार, मुग्धर और फरसा धारण करके दौड़े। प्रभु श्रीरामजी ने पहले धनुष की कठोर, घोर और भयंकर टङ्कोर की। उसे सुनकर राक्षस बहरे होगये और घबड़ा गये, उस समय उनको कुछ भी ज्ञान नहीं रहा।

दोहा–सावधान होइ धाए, जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर, अस्त्र शस्त्र बहु भाँति॥१९क॥
तिन्हके आयुध तिलसम, करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि, पुनि छाँड़े निज तीर॥१९ख॥

फिर वे सावधान हो शत्रु को बलवान् जानकर दौड़े और श्रीरामजी पर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे। उनके हथियार श्रीरामजी ने तिनके के समान टुकड़े-टुकड़े कर डाले, फिर धनुष को कान तक खींचकर अपने बाण छोड़े।

छन्द–तब चले बान कराल। फुङ्करत जनु बहु व्याल
कोपेउ समर श्रीराम। चलें बिसिख निसित निकाम

तब वह भयकर बाण ऐसे चले–मानो बहुत से सांप फुङ्कारते हुए जा रहे हों।

श्रीरामजी युद्ध में क्रोधित हुए और बहुत से तीक्ष्ण वाण चले।

अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रण ते जाइ

बहुत से तीक्ष्ण वाणों को देखकर राक्षस लौट चले, तब तीनों भाई क्रोधित होकर बोले—जो युद्ध से भागकर जायगा—

तेहि बधव हम निज पानि। फिरें मरन मन महुँ ठानि
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार

उसे हम अपने हाथों से मार डालेंगे। तब वे मन में मरना ठानकर लौट पड़े और अनेक प्रकार के हथियार सामने चलाने लगे।

रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर सन्धानि
छाँड़े बिपल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच

शत्रु को बहुत क्रोधित जानकर प्रभु श्रीरामजी ने फिर धनुष चढ़ाकर बहुत से वाण छोड़े, जिनसे विकट राक्षस कटने लगे।

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि गिरन
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान

उनके हृदय, सिर, हाथ और पैर इधर-उधर पृथ्वी पर गिरने लगे। वाण लगने पर वे चिल्लाते हैं और पहाड़ के समान धड़ गिरते हैं।

भट कटत तन सतखण्ड। पुनि उठत करि पाखण्ड
नभ उड़त बहु भुज मुण्ड। बिनु मौलि धावत रुण्ड

शरीर के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। तो भी वे योद्धा माया करके फिर उठ भागते हैं। आकाश में बहुत-सी भुजा और मुण्ड उड़ रहे हैं तथा बिना सिर धड़ दौड़ रहे हैं।

खग कंक काल सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल

गीध, चील, पक्षी, कौए और सियार बहुत भयंकर रूप से कटकटाते हैं।

छन्द—कटकटहिं जम्बुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर सञ्चहीं।
बैताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिन नञ्चहीं॥
रघुवीर बान प्रचण्ड खण्डहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयंकर गिरा॥

सियार कटकटाते हैं और भूत, प्रेत, पिशाच अपना खप्पर सजा रहे हैं। बैतालगण वीरों की खोपड़ियों पर ताल बजा रहे हैं, योगनियां नाच रही हैं। श्रीरामजी के पैने वाण राक्षसों की

भुजा, छाती, और सिरों को काट रहे है। राक्षस गण इधर-उधर गिरकर फिर उठ-कर लड़ते और 'पकड़ो' 'पकड़ो' कहकर भयंकर शब्द कर रहे हैं।

अन्तावरीं गहि उड़त गीध पिशाच कर गहि धावहीं।
संग्रामपुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे विपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल विकट भट त्रिसिरादि खरदूषन फिरे॥

गीध आँतों को लेकर आकाश में उड़ते है, पिशाच उन्हीं को पकड़ कर ऐसे भागते हैं। मानो संग्राम-नगर के रहने वाले बहुत से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेक योद्धा मारे और पछाड़े गये, बहुत से बिदीर्ण-हृदय पड़े हुए कराह रहे हैं। अपनी सेना को व्याकुल देखकर खरदूषण और त्रिशिरा आदि श्रीरामजी की ओर फिरे।

सर शक्ति तोमर परसु सूल कृपानु एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुवीर पर अगनित निशाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माँझ मारे सकल निसिचर नायका॥

अनेक राक्षस क्रोध करके श्रीरामजी के ऊपर तीर, तोमर, बरछी, फरसा, त्रिशूल और तलवार एक साथ चलाने लगे। प्रभु ने पलभर में शत्रुओं के वाण काटकर, ललकार मार-कर राक्षस सेनापतियों के हृदय में दस-दस बाण मारे।

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अतिघनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत विलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करयौ।
देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ॥

योद्धा पृथ्वी पर गिरते हैं, फिर उठकर लड़ते हैं, परन्तु मरते नहीं और बहुत-सी माया रचते हैं। चौदह हजार राक्षस और अकेले श्रीरामचन्द्रजी को देखकर देवता डर गये। तब माया-पति प्रभु श्रीरामजी ने देवताओं और मुनियों को भयभीत देखकर ऐसी अद्भुत माया फैलाई कि सब राक्षस एक दूसरे को राम-रूप देखकर आपस में ही लड़ मरे।

दोहा—राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारेहु, छन महुँ कृपानिधान॥२०क॥
हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करिकरि सब चले, सोभित बिबिधविमान॥२०ख॥

सब राम-राम, कहकर शरीर छोडते हैं और मोक्षपद प्राप्त करते हैं। यह उपाय करके

कृपानिधान श्रीरघुनाथजी ने क्षणभर में सब शत्रुओं को मार डाला। देवता प्रसन्न होकर पुष्प बरसाने लगे और आकाश में नगाड़े बजने लगे, फिर वे स्तुति कर विमानों में सुशोभित होकर चले।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते * सुर नर मुनि सबके भय बीते
तब लछिमन सीतहि लै आए * प्रभु पद परत हरषित उर लाए

जब श्रीरघुनाथजी ने युद्ध में शत्रुओं को जीत लिया, तो देवता, मनुष्य और मुनि सबका भय दूर होगया। तब लक्ष्मणजी-सीताजी को ले आये और चरणों में पड़ते हुए उनको प्रभु ने प्रसन्नता पूर्वक हृदय से लगा लिया।

सीता चितव स्याम मृदु गाता * परम प्रेम लोचन न अघाता
पञ्चवटी बसि श्रीरघुनायक * करत चरित सुरमुनि सुखदायक

श्रीरामजी के सांवले और कोमल अंगों को अत्यन्त प्रेम से देखते हुए सीताजी के नेत्र नहीं अघाते। पंचवटी में रह श्रीरामजी-देवता और मुनियों को सुख देने वाले चरित्र करने लगे।

धुआँ देखि खरदूषन केरा * जाइ सूपनखाँ रावन प्रेरा
बोली बचन क्रोध करि भारी * देस कोष कै सुरति बिसारी
करसि पान सोवसि दिनु राती * सुधि नहिं तव सिर पर आराती

खरदूषण का विध्वंस हुआ देखकर शूर्पणखां ने रावण को उकसाया। वह बहुत क्रोध करके बोली-तूने देश व खजाने की सुधि ही भुला दी। मदिरा पीकर सो रहा है। तुझे खबर नहीं कि शत्रु सिर पर चढ़ आया है।

राम नीति बिनु धनु बिनु धर्मा * हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा
बिद्या बिनु बिवेक उपजाएँ * श्रम फल पढ़े किएँ अरु पाएँ

नीति के बिना राज्य व धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, हरि को समर्पण किये बिना शुभ-कर्म करने से, ज्ञान उत्पन्न हुए बिना विद्या पढ़ने से—परिणाम में केवल श्रम ही हाथ लगता है।

सङ्ग तें जाती कुमति ते राजा * मान ते ज्ञान पान ते लाजा
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी * नासहिं बेगि नीति अस सुनी

कुसंग से सन्यासी, बुरी सलाह से राजा, अभिमान से ज्ञान, मदिरा पीने से लाज, नम्रता के बिना प्रीति, अहंकार से गुण—यह तुरन्त नाश हो जाते हैं, ऐसी नीति सुनी है।

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोवन करन ॥२१क॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सांप को छोटा करके नहीं गिनना चाहिए। ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके शूर्पणखां रोने लगी।

दोहा—सभाँ माँझ परि ब्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।

तोहि जिअत दसकन्धर, मोहि कि अस गति होइ ॥२१ख॥

वह व्याकुल होकर सभा में गिरकर बहुत प्रकार से रोकर कहने लगी कि हे रावण! तेरे जीते-जी क्या मेरी ऐसी दुर्दशा होनी चाहिए ?

सुनत सभासद उठे अकुलाई * समुझाई गहि बाँह उठाई
कह लंकेस कहसि निज बाता * केइँ तव नासा कान निपाता

यह सुनकर सभा के लोग घबड़ा उठे और उसकी बाँह पकड़—उठाकर उसे समझाया। लंकापति रावण बोला—यह बता कि किसने तेरे नाक-कान काट लिए ?

अवध नृपति दशरथ के जाए * पुरुष सिंह वन खेलन आए
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी * रहित निसाचर करिहहिं धरनी

(वह बोली—) अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र जो पुरुषों में सिंह के समान हैं, दण्डक वन में शिकार खेलने आये हैं। उनकी करतूत से मुझे ऐसा समझ पड़ा है कि वे पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर देंगे।

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन * अभय होइ बिचरत मुनिकानन
देखत बालक काल समाना * परम धीर धन्वी गुन नाना

हे रावण! जिनकी भुजाओं के बल को पाकर मुनि लोग निडर हो वन में फिरते हैं देखने में वे बालक हैं, परन्तु काल के समान हैं। बड़े धीर, वीर, श्रेष्ठ धनुधारी और अनेक गुणों से युक्त हैं।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता * खलबध रत सुर मुनि सुखदाता
सोभाधाम राम अस नामा * तिन्ह के सँग इक नारि ललामा

वे दोनों भाई अतुल पराक्रमी हैं, वे दुष्टों को मारने में लगे रहते हैं, देव तथा मुनियों को सुख देते हैं। वे बहुत सुन्दर हैं, उनका नाम 'राम' ऐसा नाम है, उनके साथ एक सुन्दर स्त्री भी है।

रूप रासि बिधि नारि सँवारी * रति सत कोटि तासु बलिहारी
तासु अनुज काटे श्रुति नासा * सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा

ब्रह्माने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ-करोड़ रति भी उस पर न्यौछावर है। उसी के छोटे भाई लक्ष्मण ने मुझे तुम्हारी बहन सुन, हँसी से मेरे नाक-कान काट लिये।

खरदूषण सुनि लगे जुझारा * छन महुँ सकल कटक उन मारा
खरदूषन त्रिसरा कर घाता * सुनि दससीस जरे सब गाता

खरदूषण मेरी पुकार सुनकर उनसे युद्ध करने गये तो—उन्होंने सब सेना समेत क्षणभर में उन सबको मार डाला। खरदूषण त्रिशरा का मारा जाना सुन रावण के सब अंग मारे क्रोध के जल उठे।

दोहा—सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नींद परइ नहिं राति ॥ २२ ॥

शूर्पणखाँ को बहुत समझाकर अनेक प्रकार से अपने बल की बड़ाई करके वह अपने महल को चला गया, परन्तु मारे चिन्ता के उसे रात भर नींद नहीं आई।

सुर नर असुर नाग खग माहीं * मोरे अनुचर सम कोउ नाहीं
खरदूषन मोहि सम बलवन्ता * तिन्हहि को मारइ बिनु भगवन्ता

(रावण सोचने लगा-) देवता, मनुष्य राक्षस, नाग व पक्षियों में मेरे सेवकों के समान भी कोई नहीं है। खर-दूषण तो मेरे समान ही बलवान थे, उन्हें भगवान के बिना कौन मार सकता है।

सुर रञ्जन भञ्जन महि भारा * जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा
तौं मैं जाइ बयरु हठि करिहौं * प्रभु सर प्रान तजें भव तरिहौं

देवों के आनन्द-दाता और भूमि का भार उतारने वाले यदि प्रभु ने ही अवतार लिया, तो मैं जाकर हठपूर्वक उनसे बैर करूंगा और प्रभू के बाण से प्राण त्यागकर भवसागर से तर जाऊँगा।

होइहि भजनु न तामस देहा * मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ ऐहा
जौं नर रूप भूपसुत कोऊ * हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ

इस तामसी देह से भजन तो बनता नहीं, अतः मन, कर्म और वचन से निश्चय ही है जो वे मनुष्य-रूप में कोई राजपूत होंगे तो युद्ध में जीतकर उनकी स्त्री का हरण कर लाऊँगा।

चला अकेल जान चढ़ तहँवा * बस मारीच सिन्धु तट जहँवा
इह राम जस जुगुति बुनाई * सुनहु उमा सो कथा सुहाई

यह सोच रावण रथ पर अकेला ही वहाँ चला, जहाँ समुद्र के किनारे मारीच रहता था। (शिवजी बोले–) हे पार्वती ! यहाँ रामजी ने जैसी युक्ति रची, वह सुहावनी कथा सुनो–

दोहा—लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द।
जनकसुता सन बोलेउ, बिहँसि कृपा सुखवृन्द ॥ २३ ॥

जब लक्ष्मणजी वन में कन्द-मूल-फल लेने गये, तब कृपा और सुख के समूह श्रीरामजी जानकीजी से हँसकर कहने लगे–

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुशीला * मैं कछु करबि ललित नरलीला
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा * जौं लगि करौं निसाचर नासा

हे प्रिय ! सुन्दर पतिव्रत–धर्म का पालन करने वाली सुशीले ! मैं कुछ सुन्दर मनुष्य लीला करना चाहता हूँ। अतः जब तक राक्षसों का नाश करूँ, तब तुम अग्नि में वास करो।

जबहिं राम सब कथा बखानी * प्रभुपद धरि हियँ अनल समानी
निज प्रति बिम्ब राखि तहँ सीता * तैसेइ सील रूप सुबिनीता

जब श्रीरामजीने यह समझाकर कहा, तब प्रभुके चरणोंको अपने हृदयमें धरकर सीताजी अग्नि में समा गईं और वैसा ही शील, स्वभाव और नम्र-स्वभाव वाला प्रतिबिम्ब वहाँ रख दिया।

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना * जो कछु चरित रचा भगवाना
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा * नाइ माथ स्वारथ रत नीचा

जो कुछ चरित्र भगवान् ने रचा वह भेद लक्ष्मणजी भी नहीं जान पाये। स्वार्थी रावण

जहाँ मारीच था—वहाँ गया और उसको सिर नवाया।

नवनि नीच कै अति दुखदाई * जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई
भयदायक खल कें प्रिय बानी * जिमि अकाल के कुसुम भवानी

नीच का नवना भी बड़ा दुःखदाई होता है जैसे अंकुश, धनुष, साँप व बिल्ली का नवना। हे पार्वती! दुष्टों की प्रिय बात भी भयानक होती है, जैसे कुसमय के फूल।

दोहा—करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयउ तात॥ २४॥

तब मारीच ने रावण का सम्मान करके आदर के साथ यह बात पूछी कि हे तात! आपका मन इतना चिंतित क्यों हो रहा है और अकेले क्यों आये हैं?

दसमुख सकल कथा तेहि आगे * कही सहित अभिमान अभागे
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी * जेहि बिधि हर आनौं नृपनारी

तब उनके आगे अभागे रावण ने घमण्ड के साथ सब कथा कही और बोला—तुम छलकारी कपट-मृग बन जाओ, जिससे मैं राज-वधू को हर लाऊँ।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा * ते नर रूप चराचर ईसा
तासों तात बयरु नहिं कीजै * मारे मरिअ जिआए जीजै

मारीच ने कहा—हे रावण! सुनो, वे मनुष्य-रूपधारी चर और अचर के स्वामी हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिए। उनके मारने से मरना जिलाने से जीना चाहिए।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा * बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा
सत योजन आयउँ छन माहीं * तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये हुए कुमार श्रीरामजी ने बिना नोंक का बाण मेरे मारा था, जिससे क्षणभर में सौ योजन पर आ गिरा, उनसे वैर करने में भलाई नहीं है।

भइ मम कीट भृंग की नाई * जहँ तहँ मैं देखेउँ दोउ भाई
जौं नर तात तदपि अति सूरा * तिन्हहि बिरोध न पाइअ पूरा

मेरी दशा तो भौंरे के पकड़े हुए कीड़े की-सी हो रही है। अब मैं जहाँ-तहाँ उन दोनों भाइयों को देखता हूँ। हे तात! यद्यपि वे मनुष्य ही हों, तो भी बड़े शूरवीर हैं। अतः उनसे विरोध करोगे तो पार नहीं पाओगे।

दोहा—जेहिं ताड़का सुबाहु हति, खण्डेउ हर कोदण्ड।
खरदूषन त्रिसिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिबण्ड॥ २५॥

उन्होंने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ डाला तथा खरदूषण और त्रिशरा को मार डाला। क्या ऐसे बलवान भी मनुष्य हो सकते हैं?

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी * सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा * कहु जग मोहि समान को जोधा



S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRZA STREET, BOMBAY-3

35

S. S. BRIJBASI & SONS
32/1, PATERPURI DELHI-6.

आप अपने वंश की कुशल-विचारकर घर लौट जाइए। यह सुनकर रावण जल उठा और मारीच को बहुत सी गालियाँ दीं। वह बोला—अरे मूढ़! मुझे गुरु की भाँति उपदेश देता है, बता—संसार में मेरे समान योद्धा कौन है?

तब मारीच हृदयँ अनुमाना * नवहिं बिरोधें नहिं कल्याना
शस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी * बैद बन्दि कवि भानस गुनी

तब मारीच ने हृदय में विचार किया कि शस्त्रधारी, भेदिया, स्वामी, धनवान्, वैद्य, मूर्ख, भाट, कवि और पण्डित-इन नौ जनों से वैर करने में भलाई नहीं है।

उभय भाँति देखा निज मरना * तब ताकिसि रघुनायक सरना
उतरु देत मोहि बधब अभागें * कस न मरौं रघुपति सर लागें

मारीच ने जब दोनों प्रकार से अपना मरण देखा, तब श्रीरघुनाथजी की ही शरण ताकी और सोचा कि उत्तर देते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा—फिर श्रीरघुनाथजी के हाथ से ही क्यों न मरूँ?

अस जियँ जानि दसानन संगा * चला राम पद प्रेम अभंगा
मन अति हरष जनाव न तेही * आजु देखिहउँ परम सनेही

ऐसा विचारकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में पूर्ण स्नेह करके रावण के साथ चला। उसके मन में बड़ा आनन्द है कि आज मैं परम-स्नेही श्रीरामचन्द्रजी को देखूंगा, परन्तु उसने यह भेद रावण को नहीं बताया।

छन्द—निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जाकरि भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

अपने प्रियतम के दर्शन से नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा और सीता व लक्ष्मण सहित कृपा के धाम-श्रीरामजी के चरणों में अपने मन को लगाऊँगा। जिनका कि क्रोध भी मोक्ष देने वाला है और जिनकी भक्ति उन अवश (भगवान्) को भी वश में कर लेती है। वही सुख के समुद्र-श्रीहरि अपने हाथों से बाण चढ़ाकर मुझे मारेंगे।

दोहा—मम पाछें धर धावत, धरें सरासन बान।
फिरिफिरिप्रभुहिबिलोकिहउँ, धन्यनमो समआन॥ २६॥

धनुष-बाण धारण किए मेरे पीछे दौड़ते हुए प्रभु को मैं बारम्बार फिर-फिरकर देखूंगा। मेरे समान धन्य कोई नहीं है।

तेहि बन निकट दसानन गयऊ * तब मारीच कपट मृग भयऊ
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई * कनक देह मनि रचित बनाई

उस बन के निकट जब रावण पहुँचा, तब मारीच कपट-मृग बन गया। सुवर्ण की देह

मणियों से जड़कर ऐसी सुन्दर बनाई गई कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सीता परम रुचिर मृग देखा * अङ्ग अङ्ग सुमनोहर बेषा
सुनहु देव रघुबीर कृपाला * एहि मृग कर अति सुन्दर छाला

ऐसा परम सुन्दर मृग सीताजी ने देखा कि जिसका एक-एक अङ्ग मनोहर था। वह बोलीं--हे देव! हे कृपालु! इस मृग की बहुत सुन्दर मृग-छाला होगी।

सत्यसिन्धु प्रभु बधि कर एही * आनहु चर्म कहति बैदेही
तब रघुपति जानत सब कारन * उठे हरषि सुरकाज सँवारन

हे सत्य के समुद्र प्रभो! इसको मारकर इसका चर्म लाइये। तब श्रीरघुनाथजी सब कारण जानते हुए भी प्रसन्न होकर देवताओं का कार्य करने को उठे।

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा * करतल चाप रुचिर सर साँधा
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई * फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई

हिरण को देखकर, कमर में फेंटा बाँधा और हाथ में सुन्दर धनुष लेकर बाण चढ़ाया। प्रभु ने लक्ष्मणजी से समझाकर कहा-हे भाई! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं।

सीता केरि करेहु रखवारी * बुधि बिवेक बल समय बिचारी
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी * धाए रामु सरासन साजी

तुम अपनी बुद्धि और ज्ञान के बल और समय को विचार कर सीताजी की रखवाली करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला, पीछे से रामचन्द्रजी भी धनुष सँभालकर दौड़े।

निगम नेति शिव ध्यान न पावा * मायामृग पाछें सो धावा
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई * कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई

वेद जिसको 'नेति-नेति' कहते हैं और शिवजी जिसे ध्यान में नहीं पाते, वही प्रभु कपटी-मृग के पीछे भागे वह मृग। कभी पास आ जाता है, तो कभी फिर दूर भाग जाता है। कभी दिखाई देता है और कभी छिप जाता है।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी * एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी
तब तकि राम कठिन सर मारा * धरनि परेउ करि घोर चिकारा

इस प्रकार दिखाई देता और छिपता हुआ वह बहुत से छल करता हुआ प्रभु को दूर ले गया। तब श्रीरामजी ने तककर उसके एक पैना बाण मारा, उसके लगते ही वह जोर से चिल्लाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा * पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा
प्रान तजत प्रगटेसि निज देही * सुमिरेसि राम समेत सनेही

उसने पहले लक्ष्मणजी का नाम लेकर, पीछे मनमें श्रीरामजी का स्मरण किया। प्राण त्यागते समय मारीच ने अपना राक्षस-शरीर प्रकट किया और प्रेम के साथ श्रीरामजी को सुमिरा।

अन्तर प्रेम तासु पहिचाना * मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना

आंतरिक-प्रेम पहिचानकर सुजान श्रीरामजी ने जो गति मुनियों को दुर्लभ है, वह उसे दी।

दोहा—बिपुल सुमन सुर बरषहिं, गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ, दीनबन्धु रघुनाथ॥ २७॥

देवता बहुत प्रकार से फूल बरसाने लगे और प्रभु का गुणानुवाद गाने लगे कि कृपासिंधु श्रीरघुनाथजी ने राक्षस को भी अपना धाम दिया।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा * सोह चाप करि कटि तूनीरा
आरत गिरा सुनी जब सीता * कह लछिमन सन परम सभीता

दुष्ट मारीच को मारकर श्रीरामजी तुरन्त लौटे। हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभायमान था। सीताजी ने जब दुःखी भरी वाणी सुनी तब बहुत घबड़ाकर लक्ष्मणजी से कहने लगीं—

जाहु बेगि संकट अति भ्राता * लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता
भृकुटी बिलास सृष्टि लय होई * सपनेहुँ संकट परइ कि सोई

शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई पर संकट है। लक्ष्मणजी हँसकर बोले--हे माता! सुनो, जिसके भौंह के संकेत से सृष्टि का नाश होता है, उस पर क्या स्वप्न में भी सङ्कट पड़ सकता है?

मरम बचन सीता जब बोला * हरि प्रेरित लछिमन मन डोला
बन दिसि देव सौंपि सब काहू * चले जहाँ रावन ससि राहू

यह सुनकर सीताजी ने मर्म वचन कहे, तब भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का भी मन डोल गया। वे वन और दिशाओं के देवताओं आदि सबको सीताजी को सौंपकर वहाँ चले-जहाँ चन्द्रमारूपी रावण को ग्रसने के लिये राहुरूपी श्रीरघुनाथजी थे।

सून बीच दसकन्दर देखा * आवा निकट जती कें वेषा
जाके डर सुर असुर डराहीं * निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं

रावण उस बीच में सूना देखकर सन्यासी के रूप में सीताजी के पास आया। जिसके डर से देवता व राक्षस डरते हैं, रात को नींद भर नहीं सोते और दिन में अन्न नहीं खाते हैं।

सो दससीस स्वान की नाईं * इत उत चितइ चला भड़िहाईं
इमि कुपन्थ पग देत खगेसा * रह न तेज तनु बुधिबल लेसा

वही रावण कुत्ते की भाँति इधर-उधर ताकता हुआ चोरी करने चला (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! इस तरह के बुरे मार्ग में पाँव देते ही शरीर में तेज व बुद्धि नहीं रहती।

नाना बिधि कहि कथा सुहाई * राजनीति भय प्रीति देखाई
कह सीता सुनु जती गोसाईं * बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं

रावण ने अनेकों सुहावनी कथा कहकर सीताजी को राजनीति, भय और प्रीति दिखाई। तब सीताजी ने कहा—हे गोसाईं! सुनो, तुमने दुष्टों की भाँति वचन कहे हैं।

तब रावन निज रूप दिखावा * भाई सभय जब नाम सुनावा
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा * आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा

तब रावण ने अपना वास्तविक रूप दिखाया और जब अपना नाम सुनाया, तब सीताजी डर गईं और फिर बहुत धीरज धरकर कहा—रे दुष्ट ! खड़ा रह, प्रभु आ पहुँचे हैं।

जिमि हरबन्धुहि छुद्र सम चाहा * भएसि कालबस निसिचरनाहा
सुनत बचन दससीस रिसाना * मन महुँ चरन बन्दि सुखमाना

जिस प्रकार सिंहनी को तुच्छ खरहा लेना चाहे, इसी प्रकार हे राक्षसराज ! तू काल के वश हो गया है। यह सुनकर रावण क्रोधित हो गया, परन्तु मनमें जानकीजी के चरणों की बन्दना करके सुख माना।

दोहा—क्रोधवन्त तब रावन, लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ ॥ २८ ॥

तब क्रोधित होकर रावण ने सीताजी को रथ पर बैठा लिया और शीघ्रता पूर्वक आकाश-मार्ग से चला, परन्तु मारे डर के उससे रथ नहीं हाँका जाता।

हा जग एक बीर रघुराया * केहि अपराध बिसारेहु दाया
आरति हरन सरन सुखदायक * हा रघुकुल सरोज दिननायक

तब सीताजी विलाप करने लगीं-हा जगत के एक मात्र वीर श्रीरामजी ! आपने मेरे अपराध से दया भुलादी ! हा दुःखहारी,शरणागति को सुखदायक ! हा रघुकुलरूपी-कमल के सूर्य !

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोषा * सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोषा
बिबिध बिलाप करति बैदेही * भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही

हा लक्ष्मण ! तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, मैंने क्रोध किया उसका फल पाया। अनेक भाँति से जानकीजी विलाप कर रही हैं कि प्रभु की मुझ पर बड़ी कृपा है, परन्तु वे स्नेही दूर हैं।

बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा * पुरोडास चह रासभ खावा
सीता के बिलाप सुनि भारी * भए चराचर जीव दुखारी

मेरा दुःख प्रभु को कौन सुनावे ? यज्ञ के भाग को गधा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर चर अचर सभी दुःखित हो गये।

गीधराज सुनि आरत बानी * रघुकुल तिलक नारि पहिचानी
अधम निसाचर लीन्हें जाई * जिमि मलेच्छि बस कपिला गाई

गिद्धों में श्रेष्ठ जटायु ने दुःखभरी वाणी सुन रघुवंश-भूषण श्रीरामजी की पत्नी को पहिचान लिया ! जैसे कसाई के हाथ कपिला-गाय हो, वैसे ही सीताजी को नीच राक्षस लिए जाता है।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा * करिहउँ जातुधान कर नासा
धावा क्रोधवन्त खग कैसे * छूटइ पबि परबत कहुँ जैसे

जटायु बोला—हे पुत्री सीते ! अब भय मत कर, मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। यह कहकर क्रोधित हो जटायु कैसे झपटा, जैसे वज्र पर्वत पर गिरता है।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही * निर्भय चलेसि न जानेहि मोही

आवत देखि कृतान्त समाना * फिर दसकन्धर कर अनुमाना

वह बोला—हे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता है? बेधड़क चला जाता है, क्योंकि मुझे नहीं जानता? जटायु को काल के समान आते देख, रावण ने लौट कर अनुमान किया।

की मैंनाक कि खगपति होई * मन बल जान सहित पति सोई
जाना जरठ जटायू ऐहा * मम कर तीरथ छाँड़हि देहा

यह मैंनाक पर्वत है या गरुड़ है? पर वह तो अपने स्वामी, हरि समेत मेरे बल को जानता है। रावण ने जाना कि यह तो बूढ़ा जटायु है, जो मेरे हाथरूपी तीर्थ में अपना देह छोड़ेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा * कह सुनु रावन मोर सिखावा
तजि जानकिहि कुसल गृहजाहू * नाहिं तौ अस होइहि बहुबाहू

यह सुनते ही जटायु क्रोधित हो दौड़ा और बोला—हे रावण! मेरी शिक्षा सुनो, जानकी जी को यहीं छोड़कर, सकुशल घर लौट जाओ, नहीं तो बहुबाहु! तेरी ऐसी गति होगी कि—

राम रोष पावक अति घोरा * होइहि सकल सलभ कुल तोरा
उतरु न देत दसानन जोधा * तबहि गीध धावा करि क्रोधा

श्रीरामजी की क्रोधरूपी महाप्रचण्ड अग्नि से तेरा यह सब वंश पतंगे की तरह भस्म हो जायगा। योद्धा रावण ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब जटायु क्रोधित होकर दौड़ा।

धरि कच विरथ कीन्ह महि गिरा * सीतहि राखि गीध पुनि फिरा
चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही * दण्ड एक भइ मुरछा तेही

और रावण के बाल पकड़कर रथ पर से घसीट लिया, वह पृथ्वी पर आ गिरा। जटायु सीताजी को कुछ दूर बैठाकर फिर लौट आया और चोंच से रावण के शरीर को ऐसा छेद डाला कि उसे एक घरी को मूर्छा आ गई।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना * काढ़ेसि परम कराल कृपाना
काटेसि पंख गिरा खग धरनी * सुमिरि राम करअद्भुतकरनी

तब रावण खिसिया गया, उसने क्रोधित होकर बहुत पेनी तलवार निकाली और जटायु के पंख काट डाले। वह अद्भुत करनी करके श्रीरामजी को स्मरणकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सीतहि जानि चढ़ाइ बहोरी * चला उताइल त्रास न थोरी
करत विलाप जाति नभ सीता * ब्याध विबस जनु मृगी सभीता

सीताजी को रथ पर चढ़ाकर रावण जल्दी चला, उसके मनमें थोड़ा डर नहीं था, आकाश-मार्ग में विलाप करती सीता ऐसी जारही थी, मानो बहेलियाके बशमें पड़ी डरी हुई हिरनी जारहीहो

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी * कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ * वन असोक महँ राखत भयऊ

पर्वत पर बैठे हुए बानरों को देखकर राम का नाम लेकर सीताजी ने वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और अशोक वाटिका में जा रखा।

दोहा—हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ।
तब अशोक पादप तर, राखिसि जतन कराइ ॥२९क॥

दुष्ट रावण जब सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखाकर थक गया, तब अशोक-वृक्ष के नीचे बहुत यत्न कराकर रख दिया।

* नवान्ह पारायण—छठा विश्राम *

जेहि बिधि कपट कुरङ्ग सँग, धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहित हरिनाम ॥२९ख॥

जिस तरह रामजी माया-मृगके साथ दौड़ चलेथे, वही छवि हृदयमें रख देहरि-नाम रटती हैं।

रघुपति अनुजहि आवत देखी * बाहिज चिन्ता कीन्हि बिसेषी
जनक सुता परिहरहु अकेली * आयहु तात बचन मम पेली

श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणजी को आते देखकर ऊपर से बड़ी चिंता प्रकट करके बोले—हे भाई जानकीजी को अकेली छोड़कर, हमारे वचन को टाल कर तुम चले आये।

निसिचरनिकर फिरहिंबन माहीं * मम मन सीता आश्रम नाहीं
गहि पदकमल अनुज कर जोरी * कहेउ नाथ कछु मोरि न खोरी

राक्षसों के झुण्ड वन में फिर रहे हैं, मेरे मन में ऐसा है कि सीता आश्रम में नहीं है। लक्ष्मणजी ने चरण पकड़ कर हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है।

अनुज समेत गए प्रभु तहँवाँ * गोदावरि तट आश्रम जहँवाँ
आश्रम देखि जानकी हीना * भए बिकल जस प्राकृत दीना

प्रभु लक्ष्मणजी सहित वहाँ गये-जहाँ गोदावरी के किनारे आश्रम था। जानकी-विहीन आश्रम को देखकर श्रीरामजी ऐसे व्याकुल हुए, जैसे साधारण मनुष्य दीन हो जाता है।

हा गुन खानि जानकी सीता * रूप सील ब्रत नेम पुनीता
लछिमन समुझाए बहु भाँती * पूछत चले लता तरु पाँती

(श्रीरामजी विलाप करने लगे-) हा गुणों की खान जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियम में पवित्र सीते ! लक्ष्मणजी ने बहुत भाँति से समझाया, तो भी लता और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी * तुम्ह देखी सीता मृगनयनी
खञ्जन सुक कपोत मृग मीना * मधुप निकर कोकिला प्रबीना

हे मृगो ! हे भौंरों की पंक्ति ! तुमने कहीं मृग-नयनी सीता देखी है ? हे खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरों के झुण्ड और चतुर कोकिला—

कुन्दकली दाड़िम दामिनी * कमल सरद ससि अहिभामिनी
बरुन पास मनोज धनु हंसा * गज केहरि निज सुनत प्रसंसा

कुन्दकली, दाड़िम, दामिनी, कमल, शरद का चन्द्रमा, नागिन, वरुणपाश, कामदेवका धनुष, हंस, हाथी और सिंह-ये सब अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं।

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं * नेकु न शंक शकुच मन माहीं
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू * हरषे सकल पाइ जनु राजू

श्रीफल, सुवर्ण, केला-ये सब सुखी होते हैं, कुछ भी सन्देह तथा संकोच उनके मन में नहीं है। हे जानकी तुम्हारे विना आज वे सब ऐसे प्रसन्न हैं, मानो इन्हे राज्य मिल गया हो।

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं * प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं
एहि विधि खोजत बिलपत स्वामी * मनहुँ महा विरही अति कामी

हे प्रिये! यह स्पर्धा तुमसे कैसे सही जाय, तुम शीघ्र प्रकट क्यों नहीं होतीं? इस प्रकार स्वामी रामजी-सीताजी को खोजते हुए विलाप करते हैं, मानो कोई बड़ा ही विरही और महाकामी हो।

पूरन काम राम सुखरासी * मनुज चरितकर अज अविनासी
आगें परा गीधपति देखा * सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा

जो श्रीरामजी पूर्णकाम व सुख की राशि हैं, वे अजन्मा, अविनाशी प्रभु मनुष्य लीला कर रहे हैं। आगे चलकर गीधराज पड़ा देखा, जो प्रभु के चरणों का स्मरण कर रहा था-जिसमें रेखायें हैं।

दोहा—कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुवीर।
निरखि राम छविधाम मुख, विगत भई सब पीर॥ ३०॥

दयासागर श्रीरघुनाथजी ने जटायु के मस्तक पर अपना कर-कमल फेरा। शोभा के धाम श्रीरामजी के मुख को देखकर उसकी सब पीड़ा दूर हो गई।

तब कहि गीध बचन धरि धीरा * सुनहु राम भञ्जन भव पीरा
नाथ दसानन यह गति कीन्ही * तेहि खल जनक सुता हरि लीन्ही

तब जटायु धैर्य धरकर बोला-हे संसार के दुःखों को दूर करने वाले श्रीरामजी! सुनिये, हे स्वामी! रावण ने मेरी यह दशा की है और वही दुष्ट जानकीजी को हर लेगया है।

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं * बिलपति अति कुररी की नाईं
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना * चलन चहत अब कृपानिधाना

हे गोसाइं! ठिटहरी की भाँति बहुत विलाप करती हुई सीताजी को वह दक्षिण दिशा को ले गया है। हे प्रभु! आपके दर्शनार्थ ही मैंने अपने प्राण रोक रक्खे थे, हे कृपानिधान! अब यह निकलना चाहते हैं।

राम कहा तनु राखहु ताता * मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता
जाकर नाम मरत मुख आवा * अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा

श्रीरामजी ने कहा-हे तात! अपने शरीर को रक्खो, तब मुस्कराकर जटायु बोला-जिसका नाम मरते समय मुख से निकल जाये तो अधम भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेदों ने गाया है।

सो मम लोचन गोचर आगें * राखौं देह नाथ केहि लागें
जल भरि नयन कहहिं रघुराई * तात कर्म निज तें गति पाई

[illegible] देह को रक्खूं?

श्रीरघुनाथजी नेत्रों में आँसू भरकर बोले—हे तात ! तुमने अपने कर्मों से उत्तम गति पाई।

परिहित बस जिन्ह के मन माहीं * तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं
तनु तजि तात जाहु मम धामा * देउँ काह तुम्ह पूरन कामा

जिनके मन में पराया हित रहता है, उनको संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर मेरे धाम को जाओ। तुम्हें और क्या दूँ ? तुम पूर्ण-काम हो।

दोहा—सीता हरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम तौ कुल सहित, कहहि दसानन आइ ॥ ३१ ॥

हे तात ! बैकुण्ठ में जाकर पिताजी से 'सीता-हरण' की बात मत कहना। जो मैं 'राम' हूँ, तो अपने कुल समेत रावण स्वयं ही वहाँ आकर कहेगा।

गीध देह तजि धरि हरिरूपा * भूषन बहु पट पीत अनूपा
श्याम गात बिसाल भुज चारी * अस्तुति करत नयन भरि बारी

जटायु ने शरीर छोड़कर श्रीहरि का रूप धारण किया। बहुत से आभूषण और सुन्दर पीताम्बर पहने हैं, श्याम शरीर है विशाल चार भुजायें हैं और नेत्रों में जल भरकर वह स्तुति करने लगा।

छन्द—जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचण्ड खण्डन चण्ड सर मण्डन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपालु बाहु विसाल भव भय मोचनं॥

हे श्रीरामजी ! आपकी जय। आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण और सगुण तथा गुणों के प्रेरक है। रावण की प्रबल भुजाओं का खण्डन करने वाले, प्रचण्ड बाण धारण करने वाले, पृथ्वी के भूषण-रूप, मेघ के समान शरीर वाले, कमल के समान मुख और नील-कमल के समान विशाल नेत्र वाले, दयालु, विशाल भुजाओं वाले और संसार के भय को छुड़ाने वाले-श्रीरामजी को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं।
गोविन्द गोपर द्वन्द्वहर विज्ञानघन धरणी धरं॥
जे राम मन्त्र जपन्त सन्त अनन्त जन मन रञ्जनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खलदल गञ्जनं॥

आपका बल अपार है, आप अनादि, अजन्मा, अदृश्य, अगोचर, गोविन्द, द्वन्द्व-हर, विज्ञानघन, पृथ्वी को धारण करने वाले हैं। हे अनन्त ! जो 'राम' मंत्र का जाप करते हैं, आप उन भक्तों के मन को प्रसन्न करने वाले है। हे निष्काम भक्ति करने वालों के काम, क्रोध आदि दुष्टों के समूहों को नाश करने वाले श्रीरामजी ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ।

छन्द—जेहि श्रुति निरञ्जन ब्रह्म व्यापक बिरज अजि कहि गावहीं ।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रकट करुनाकन्द सोभा वृन्द अग जग मोहई ।
मम हृदय पंकज भृङ्ग अङ्ग अनङ्ग बहु छबि सोहई ॥

जिनको वेद निरन्तर, ब्रह्म, सर्वव्यापक, निर्विकार और जन्म रहित कहकर गाते हैं, जिनको अनेक मुनि ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि करके पाते हैं, वे ही आप करुणाकन्द, शोभा के समूह तथा जड़-चेतन को मोहित कर देने वाले प्रकट हुए हैं, सो, हे अनेकों कामदेवों से बढ़कर शोभा वाले 'आप' मेरे हृदय-कमल में भ्रमर के समान शोभायमान होवें ।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा ।
पस्यन्ति जग जोगी जतन करि करत मन गो बस मुदा ॥
सो राम रमानिवास सन्तत दास सब त्रिभुवन धनी ।
मम उर बसहु सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

जो अगम और सुगम हैं, निर्मल स्वभाव है, विषम और सम हैं तथा सदा शान्ति-स्वरूप हैं । जिनको योगीजन यत्न करके जब मन और इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं, तब देख पाते हैं । वे परमात्मारूपी राम, लक्ष्मीनिवास, निरन्तर भक्तजनों के वश में रहने वाले त्रिलोकीनाथ आप हैं । जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को हरने वाली है, ऐसे 'आप' मेरे हृदय में वास करें।

दोहा—अबिरल भगति माँग बर, गीध गयउ हरिधाम ।
तेहि को क्रिया यथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥ ३२ ॥

जटायु निर्मल भक्ति का वर माँगकर बैकुण्ठ को गया, तब श्रीरामजी ने अपने हाथ में उसकी अन्तिम-क्रिया यथा-विधि की ।

कोमल चित अति दीनदयाला * कारन बिनु रघुनाथ कृपाला
गीध अधम खग आमिष भोगी * गति दीन्ही जो जाचत जोगी

श्रीरघुनाथजी बड़े कोमल-चित्त व दीनदयालु हैं तथा बिना कारण ही कृपा करने वाले हैं। जो गीध नीच जाति का मांस खाने वाला था, उसे भी वह गति दी, जो योगीजन मागते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी * हरि तजि होहिं विषय अनुरागी
पुनि सीतहि खोजन द्वौ भाई * चले बिलोकत वन बहुताई

(शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती ! सुनो वे पुरुष अभागे हैं, जो हरि को छोड़कर सांसारिक विषयों में मन लगाते हैं । फिर दोनो भाई सीताजी को खोजते व सघन वन देखते हुए चले ।

संकुल लता बिटप घट कानन * बहु खग मृग तहँ गज पञ्चानन
आवत पन्थ कबन्ध निपाता * तेहिं सब कही शाप कै बाता

जहाँ घनी लताओं व वृक्षों से वन सघन था जहाँ बहुत से पक्षी मृग,हाथी और सिंह आदि रहते थे, वहीं मार्ग में आते हुए कबन्ध को श्रीरामजी ने मारा। तब उसके शाप की बात कही।

दुरबासा मोहि दीन्हो शापा * प्रभु पद देखि मिटा सो पापा
सुनु गन्धर्व कहउँ मैं तोही * मोहि न सोहाइ विप्रकुल द्रोही

मुझे दुर्वासाजी ने शाप दिया था, वह शाप आज प्रभु के चरणों के दर्शन से दूर होगया। यह सुन श्रीराम बोले-हे गन्धर्व ! मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ब्राह्मण-कुल-द्रोही मुझे नहीं सुहाता।

दोहा—मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरञ्चि शिव, बस ताके सब देव॥ ३३॥

मन, कर्म और वाणी से छल छोड़कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है मेरे सहित ब्रह्मा और शिव आदि देवता उसके वश में हो जाते हैं।

शापत ताड़त परुष कहन्ता * विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता
पूजिअ विप्र सील गुन हीना * सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना

शाप देता हुआ,ताड़ना करता हुआ तथा कठोर वचन कहता हुआ भी विप्र पूज्य है, ऐसा संत कहते हैं। ब्राह्मण शील, गुणहीन भी पूज्यनीय है और शूद्र गुणवान ज्ञानी भी पूज्यनीय नहीं।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा * निज पद प्रीति देखि मन भावा
रघुपति चरनकमल सिरु नाई * गयउ गगन आपनि गति पाई

श्रीरामजी ने अपना धर्म कहकर उसे समझाया और अपने चरणों में कबन्ध की प्रीति देखकर वह उनके मन को प्रिय लगने लगा। फिर कबन्ध श्रीरघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर अपनी गति पा आकाश द्वारा गन्धर्व-लोक को गया।

ताहि देइ गति राम उदारा * शबरी के आश्रम पगु धारा
शबरी देखि राम गृहँ आए * मुनि के वचन समुझि जियँ भाए

उदार श्रीरामजी उसको उत्तम गति देकर शबरी के आश्रम में पधारे श्रीरामजी को आये देखकर शबरी को मतङ्ग मुनि के वचन हृदय में भले लगे।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला * जटा मुकुट सिर उर वनमाला
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई * शबरी परी चरन लपटाई

कमल-नेत्र, विशाल भुजायें, मस्तक पर जटाओं का मुकुट, हृदय पर वनमाला धारण किये, साँवले और गोरे सुन्दर दोनों भाइयों को देखकर शबरी उनके चरणों में लिपट गई।

प्रेम मगन मुख वचन न आवा * पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा
सादर जल लै चरन पखारे * पुनि सुन्दर आसन बैठारे

वह प्रेम में ऐसी मग्न है कि उसके मुख से वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलों में सिर नवा रही है। जल लेकर आनन्द-पूर्वक चरण धोये और सुन्दर आसन पर बैठाया।

दोहा—कन्दमूल फल सरिस अति, दिए राम कहँ आनि।

प्रेम सहित प्रभु खाए, बारम्बार बखानि ॥ ३४ ॥

शबरी ने बहुत रसीले कन्द-मूल-फल लाकर श्रीरामजी को दिये। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने उनका स्वाद बार-बार बखान कर प्रेम से खाये।

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी * प्रभुहि बिलोक प्रीति अति बाढ़ी
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी * अधम जाति मैं जड़ मति भारी

वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गई और प्रभु को देख उसके हृदय में प्रेम उमड़ आया। वह बोली—मैं आपकी स्तुति कैसे करूँ ? मैं नीच-जाति की हूँ मेरी बुद्धि अति मन्द है।

अधम ते अधम अधम अति नारी * तिन्ह महँ मैं मतिमन्द गँवारी
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता * मानउँ एक भगति कर नाता

नीच से भी महानीच स्त्रियां हैं, उसमें भी मैं अत्यन्त मूर्ख गँवारी हूँ। श्रीरघुनाथजी बोले—हे भामिनी ! मैं तो केवल एक भक्ति का नाता मानता हूँ।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई * धन बल परिजन गुर चतुराई
भगतिहीन नर सोहइ कैसा * बिनु जल बारिद देखिअ जैसा

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़प्पन, धन, बल कुटुम्ब, गुण और चतुराई इन सबके रहते हुए भी भक्ति से रहित मनुष्य ऐसा लगता है, जैसे बिना जल का मेघ।

नवध भगति कहउँ तोहि पाहीं * सावधान सुनु धरु मन माहीं
प्रथम भगति सन्तन्ह कर सङ्गा * दूसरि रति मम कथा प्रसङ्गा

अब मैं तुमसे नवधा-भक्ति कहता हूँ, सावधान होकर सुनो और मन में स्मरण रक्खो। पहली भक्ति 'सत्सङ्ग' है, दूसरी भक्ति 'मेरे गुणानुवाद सुनने में प्रीति' है।

दोहा—गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथ भगति मम गुनगन, करइ कपट तजि गान ॥ ३५ ॥

'अहंकार को छोड़कर गुरु के चरणों की सेवा करना' तीसरी भक्ति है। चौथी भक्ति यह है कि 'कपट को त्यागकर मेरे गुणों का गुणगान करे।'

मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा * पंचम भजन सो वेद प्रकासा
छठ दम सील बिरति बहु करमा * निरत निरन्तर सज्जन धरमा

मुझमें दृढ़ विश्वास करके मंत्र का जप व भजन पाँचवी भक्ति है, जो वेदों में प्रकाशित है। 'इन्द्रियों को रखना, बहुत से कर्मों से विरक्त तथा सज्जनों के धर्म में प्रीति' छठी भक्ति है।

सप्तम सब मोहिमय जग देखा * मोतें अधिक सन्त करि लेखा
अष्टक जथा लाभ सन्तोषा * सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा

सातवी भक्ति यह है 'सब संसार को राममय' देखे और सन्त को मुझसे भी अधिक समझे। आठवीं यह है कि 'जो मिल जाय उसीमें सन्तोष करे और स्वप्न में भी पराये दोष न देखे।'

नवम सरल सब मन छलहीना * मम भरोस हियँ हरस न दीना
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई * नारि पुरुष सचराचर कोई

नवीं भक्ति है-सीधे स्वभाव से निष्कपट वर्ताव और मन में मेरा भरोसा रखना, कभी किसी प्रकार का आनन्द और दीनता का न होना। इन नौ भक्तियों में से जिसमें एक भी भक्ति हो, तो वह स्त्री-पुरुष, चर-अचर कोई भी हो–

सोइ अतिसय प्रिय भामिन मोरें * सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें
जोगि वृन्द दुर्लभ गति जोई * तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई

हे भामिनी ! वही मुझे प्यारा लगता है, इसमें तुम्हारी भक्ति तो सब प्रकार से दृढ़ है। जो गति योगीजन को भी दुर्लभ है, वही गति तुमको सहज ही में मिल गई।

मम दरसन फल परम अनूपा * जीव पाव निजि सहज सरूपा
जनकसुता कहँ सुधि भामिनी * जानहु तो कहु करिवर गामिनी

मेरे दर्शनों के फल बहुत अनुपम हैं, उनसे जीव अपने सहज स्वरूप को पा जाता है। हे भामिनी ! अब तुमको गजगामिनी-जानकीजी की खबर हो तो, बताओ ?

पम्पा सरहि जाहु रघुराई * तहँ होइहिं सुग्रीव मिताई
सो सब कहहि देव रघुवीरा * जानत हूँ पूछहु मतिधीरा

शवरी ने कहा–हे श्रीरघुनाथजी ! आप पम्पा सरोवर को जाइये, वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव ! वह आपसे सब समाचार कहेगा। आप तो ज्ञानवान हैं, सब कुछ जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं।

बार बार प्रभु पद सिरु नाई * प्रेम सहित सब कथा सुनाई

बार २ प्रभु श्रीरामजी के चरणों में मस्तक नवाकर प्रेम-पूर्वक उसने सब कथा सुनादी।

छन्द–कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पङ्कज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिधि कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
विश्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

सब कथा कहकर प्रभु के दर्शन कर, उनके चरणकमलों को अपने हृदय में रखकर और योगाग्नि द्वारा देह को छोड़ हरि के चरणों में लीन हो गई, जहाँ पहुँचकर जीव पुनः जन्म नहीं लेता। तुलसीदासजी कहते हैं–हे मनुष्यो ! तुम नाना प्रकार के पापकर्म और दुःखदाई बहुत से मतान्तरों के सब झंझटों को छोड़ दो और विश्वास करके श्रीरामजी के चरणों में प्रीति करो।

दोहा–जातिहीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ ३६॥

छोटी-जाति की व पापों की जन्म-भूमि ऐसी 'स्त्री' को जिन्होंने मुक्त किया, ऐसे प्रभु को

भुलाकर, अरे मूर्ख मन ! तू सुख चाहता है ।

चले राम त्यागा वन सोऊ * अतुलित बल नर केहरि दोऊ
विरही इव प्रभु करत विषादा * कहत कथा अनेक संवादा

उस वन को छोड़कर श्रीरामजी आगे चले । दोनों अतुल बल वाले, मनुष्यों में सिंह के समान हैं । प्रभु विरही की तरह दुःख करते और अनेक कथाओं के सम्वाद कहते जाते हैं ।

लछिमन देखु बिपिन कै सोभा * देखत केहि कर मन नहिं छोभा
नारि सहित सब खग मृगबृन्दा * मानहुँ मोरि करत हहिं निन्दा

हे लक्ष्मण ! वन की शोभा देखो, इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा ? यहां सब पशु-पक्षी जोड़े सहित निन्दा कर रहे हैं ।

हमहि देखि मृग निकर पराहीं * मृगी कहहिं तुम्हँ कहुँ भयनाहीं
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए * कञ्चन मृग खोजन ए आए

हमें देखकर हिरनों के झुण्ड भागते हैं तब हिरनियां कहती हैं कि तुमको इनसे कुछ भय नहीं । तुम सच्चे मृग हो, यह तो सुवर्ण के मृग ढूंढ़ने आये हैं ।

सङ्ग लाइ करिनी करि लेहीं * मानहुँ मोहि सिखावन देहीं
शास्त्र सुचिंतिति पुनि पुनि देखिअ * भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ

हाथी-हथनियों को साथ लगा लेते हैं, मानो मुझको शिक्षा दे रहे हैं, कि भलीभांति चिन्तन किये हुए शास्त्रों को बारम्बार देखते रहना चाहिए और उत्तम रीति से सेवा किये हुए राजा को भी अपने वश में नहीं समझना चाहिए ।

राखिअ नारि जदपि उर माहीं * जुवती शास्त्र नृपति बस नाहीं
देखहु तात बसन्त सुहावा * प्रियाहीन मोहि भय उपजावा

और स्त्री को चाहे हृदय से ही क्यों न लगाये रहे, तो भी 'स्त्री' शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते । हे भाई ! देखो—वसन्त ऋतु कैसी सुहावनी है, परन्तु प्रिया (जानकीजी) के बिना मुझे यह भी भय उपजाती है ।

दोहा—विरहबिकलबलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बग मेल ।।३७क।।

मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर वन के भौंरे तथा पक्षियों को साथ लेकर कामदेव ने मुझको आ दबाया है ।

देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूति सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटुक हटकि मनजात ।।३७ख।।

परन्तु उसका दूत यह देख गया है कि मैं भाई सहित हूं, तो उसकी बात सुनकर कामदेव ने अपनी सेना रोक कर मानो छावनी डाल दी है ।

विटप विशाल लता अरुझानी * विविध बितान दिए जनु तानी

कदलि ताड़ वर ध्वजा पताका * देखि न मोहि धीर मन जाका

विशाल वृक्षों पर लतायें उलझी हैं, मानो अनेक प्रकार के तम्बू तान दिये हैं। केले के व ताड़ के वृक्ष सुन्दर ध्वजा-पताका हैं, इन्हें देखकर जिनका मन मोहित न हो, उसी को धैर्यवान् जानना चाहिए।

विविध भाँति फूले तरु नाना * जनु बानैत बने बहु बाना
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाए * जनु भट बिलग होइ बिलछाए

अनेक प्रकार के वृक्ष फूल रहे हैं, मानो अनेक भाँति के बाने धारण किये हुए तीरन्दाज हैं, कहीं-कहीं ऐसे सुन्दर वृक्ष शोभायमान हैं, मानो योद्धा लोग छावनी डाले पड़े हों।

कूजति पिक मानहुँ गज माते * ढेक महोख ऊँट बिसराते
मोर चकोर कीर वर बाजी * पारावत मराल सम ताजी

कोयल ऐसे कूक रही हैं, मानो हाथी चिंघाड़ रहे हों। कुलंग और महोख पक्षी-मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो ताजी घोड़े हैं।

तीतुर लावक पदचर जूथा * बरनि न जाइ मनोज बरूथा
रथ गिरि सिला दुन्दुभी झरना * चातक बन्दी गुनगन बरना

तीतर और बटेर-मानो पैदल सिपाहियों के झुण्ड हैं, कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलायें-रथ और झरनों का शब्द—मानो 'नगाड़े' हैं तथा पपीहा ही मानो गुण-प्रशंसक 'बन्दी' हैं।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई * त्रिबिध बयारि बसीठीं आई
चतुरङ्गिनी सेन सँग लीन्हें * विचरत सबहि चुनौती दीन्हें

भौंरों का गुञ्जारना ही 'शहनाई' है, तीनों प्रकार की वायु ही मानो दूत बनकर आई है। इस प्रकार कामदेव अपनी चतुरंगिनी सेना साथ लिए सबको चुनौती दे रहा है।

लछिमन देखत काम अनीका * रहहिं धीर उन्ह कें जग लीका
एहि कें एक परम बल नारी * तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी

हे लक्ष्मण ! कामदेव की सेना को देखकर भी जो धीर बने रहते है, संसार में उनकी ही गिनती है। इसका बड़ा बल केवल 'स्त्री' है, इससे जो बचे वही बड़ा 'वीर' है।

दोहा—तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विग्यान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ ।।३८क।।

हे भाई ! काम, क्रोध और लोभ—यह तीन बड़े ही प्रबल दुष्ट हैं, यह बड़े-बड़े ज्ञानी मुनियों के मन को भी पलभर में डिगा देते हैं।

लोभ कें इच्छा दम्भ बल, काल कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष वचन बल, मुनिबर कहहिं विचारि ।।३८ख।।

लोभ का बल-'इच्छा' और 'पाखंड' है, काम का बल-केवल 'स्त्री' है और क्रोध का बल 'कठोर वचन' है, श्रेष्ठ मुनि विचार कर यह कहते हैं।

गुनातीत सचराचर स्वामी * उमा राम सब अन्तरजामी
कामिन्ह कै दीनता दिखाई * धीरन्ह कै मन बिरति दृढ़ाई

(महादेवजी कहते हैं–) हे पार्वती गुणों से परे, चराचर के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी सर्वान्तर्यामी हैं। यह तो उन्होंने कामीजनों की दीनता दिखाई है और धैर्यवानों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है।

क्रोध मनोज लोभ पद माया * छूटहिं सकल राम की दाया
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला * जापर होइ सो नट अनुकूला

क्रोध, काम, लोभ, अहंकार और माया–ये सब श्रीरामजी की कृपा से छूट जाते हैं। जिस पर वह नटराज प्रसन्न हो जाते हैं–वह मनुष्य इन्द्रजाल में नहीं फँसता।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना * सत हरिभजनु जगत सब सपना
पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा * पम्पा नाम सुभग गम्भीरा

हे पार्वती ! मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि भगवान का भजन सच्चा है, और जब जगत तो स्वप्नवत् है। तदनन्तर श्रीरामजी सुन्दर, गहरे पम्पा–सरोवर के किनारे गये।

सन्त हृदय जस निर्मल बारी * बाँधे घाट मनोहर चारी
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृगनीरा * जनु उदार गृह जाचक भीरा

जल सन्तों के हृदय जैसा निर्मल है मनोहर सुन्दर चार घाट हैं। जहां-तहां मृग जल पी रहे हैं, मानो दाता के घर मङ्गलों की भीड़ लगी हो।

दोहा–पुरइन सघन ओट बल, बेगि न पाइअ मर्म।
माया छिन्न न देखिए, जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥३९क॥

घनी पुरइनों की ओट में जल का पता जल्दी नहीं लगता जैसे माया से ढके रहने के कारण निर्गुण–ब्रह्म नहीं दीखता।

सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।
यथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं ॥३९ख॥

उसके बहुत गहरे जल में सब मछलियाँ सदैव एक-सी रहती हैं, जैसे धर्मशील मनुष्य के दिन सुख-पूर्वक बीतते हैं।

बिकसे सरसिज नाना रङ्गा * मधुर मुखर गुँजत बहु भृङ्गा
बोलत जलकुक्कुट कल हंसा * प्रभु बिलोक जनु करत प्रसंसा

बहुरंगे कमल खिल रहे हैं, मधुर स्वर से भौंरे गुञ्जार रहे हैं। जल-मुर्गे और हंस ऐसे बोल रहे हैं, मानो प्रभु को देखकर उनकी बड़ाई करते हैं।

चक्रबाक बक खग समुदाई * देखत बनइ बरनि नहिं जाई
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई * जात पथिक जनु लेत बुलाई

चकवा व बगुलों के समूह देखते ही बनते हैं, वर्णन नहीं किये जा सकते। सुन्दर पक्षी ऐसे

सुहावनी बोली बोल रहे हैं, मानो राहगीरों को बुलाते हैं।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए * चहुँ दिसि कानन विटप सुहाए
चम्पक बकुल कदम्ब तमाला * पाटल पनस परास रसाला

सरोवर के निकट मुनियों के घर छाये हुए हैं, उनके चारों ओर वन और वृक्ष सुशोभित हैं, चम्पा, मौलसरी, कदम्ब, तमाल, पानड़ी, कटहर, ढाक और आम आदि–

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना * चञ्चरीक पटली कर गाना
सीतल मन्द सुगन्ध सुभाउ * सन्तत बहइ मनोहर बाऊ
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं * सुनिरब सरस ध्यानमुनि टरहीं

अनेक वृक्षों में नये-नये पत्ते व फूल खिल रहे हैं भौंरों की मण्डली गुञ्जार रही हैं। वहाँ निरन्तर स्वाभाविक मन को हरने वाली शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बहती है। कोमल कुहू-कुहू की ध्वनि कर रही हैं, उसके रसीले शब्द को सुन मुनियों के भी ध्यान छूट जाते हैं।

दोहा–फल भारन नमि विटप सब, रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसम्पति पाइ ॥ ४० ॥

फलों के बोझ से वृक्ष झुक कर भूमि से लग गये हैं। जैसे परोपकारी पुरुष अच्छी सम्पत्ति पाकर विनम्र हो जाते हैं।

देखि राम अति रुचिर तलावा * मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा
देखि सुन्दर तरुवर छाया * बैठे अनुज सहित रघुराया

सुन्दर सरोवर को देखकर श्रीरामजी ने उसमें स्नान किया और बहुत सुख पाया। फिर एक उत्तम वृक्ष की सुन्दर छाया देखकर उसके नीचे लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी बैठे।

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए * अस्तुति करि निज धाम सिधाए
बैठे परम प्रसन्न कृपाला * कहत अनुज सन कथा रसाला

फिर वहां सब देवता तथा मुनि आये और स्तुति करके अपने २ धामों को चले गये। कृपालु श्रीरामजी अति प्रसन्न बैठे हुए लक्ष्मणजी से रसीली कथा कर रहे हैं।

बिरहवन्त भगवन्तहि देखी * नारद मन भा सोच विसेषी
मोर शाप करि अङ्गीकारा * सहत राम नाना दुख भारा

भगवान श्रीरामजी को विरह-युक्त देखकर नारदजी के मन में बड़ा सोच हुआ कि मेरे शाप को अङ्गीकार करके श्रीरामजी अनेकों प्रकार से दुःखों का भार सह रहे हैं।

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई * पुनि न बनिहि अस अवसरु आई
यह विचार नारद कर बीना * गए जहाँ प्रभु सुख आसीना

ऐसे प्रभु को जाकर देखूं, फिर ऐसा अवसर नहीं आवेगा। यह विचार कर हाथ में वीणा लेकर नारदजी वहां गये–जहाँ श्रीरामजी सुख-पूर्वक बैठे थे।

गावत रामचरित मृदु बानी ※ प्रेम सहित बहु भाँति बखानी
करत दण्डवत लिए उठाई ※ राखे बहुत भाँति उर लाई
स्वागत पूछि निकट बैठारे ※ लछिमन सादर चरन पखारे

वे श्रीरामजी के चरित्रों को प्रेम के साथ मधुर वाणी में बहुत भाँति से बखान कर गाते हुए आ रहे। दण्डवत करते ही श्रीरामजी ने उन्हें उठा लिया और बहुत देर तक छाती से लगाये रक्खा। फिर कुशल आगमन पूछकर पास बैठा लिया और लक्ष्मणजी ने आदर सहित चरण धोये।

दोहा—नाना विधि विनती करि, प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले वचन तब, जोरि सरोरुह पानि ॥४१॥

फिर नाना प्रकार से प्रार्थना करके प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर कमल के समान हाथों को जोड़कर नारदजी यह वचन बोले—

सुनहु उदार सहज रघुनायक ※ सुन्दर अगम सुगम बरदायक
देहु एक बर माँगउँ स्वामी ※ जद्यपि जानत अन्तरजामी

हे परम उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये-आप सुन्दर अगम और सुगम वर देने वाले हैं। हे स्वामी ! यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं और सब जानते हैं, तो भी मैं एक वर आपसे माँगता हूँ, वह आप दीजिए।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ ※ जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ
कवन वस्तु अस प्रिय मोहि लागी ※ जो मुनिवर न सकहु तुम्ह माँगी

श्रीरामजी बोले-हे मुनि! तुम मेरे स्वभाव को जानते हो, क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी छिपाव रखता हूँ। हे मुनिवर ! मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्यारी है, जिसे तुम नहीं माँग सकते ?

जन कहुँ कछु अदेह नहिं मोरें ※ अस विश्वास तजहुँ जनि भोरें
तब नारद बोले हरषाई ※ अस बर माँगउँ करउँ ढिठाई

भक्तों को अदेय मेरे पास कुछ भी नहीं है—ऐसा विश्वास भूलकर भी न त्यागना। तब नारदजी प्रसन्न होकर बोले—मैं ढिठाई करता हूँ, जो ऐसा वर माँगता हूँ।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका ※ श्रुति कह अधिक एक तें एका
राम सकल नामन्ह ते अधिका ※ होउ नाथ अघ खगगन बधिका

यद्यपि आपके नाम अनेक हैं और वेद कहते हैं कि एक से एक बढ़कर हैं। तो भी-हे नाथ ! 'राम' नाम सब नामों से बढ़कर पापरूपी पक्षियों को वेधने के लिए बहेलिया-रूप हो।

दोहा—राका रजनी भगति तब, राम नाम सोइ सोम।
अपरनाम उड्‌गन विमल, बसहु भगत उर व्योम ॥४२क॥

आपकी भक्तिरूपी पूर्णिमा की रात्रि में 'राम' नामरूप चन्द्रमा अन्य नामरूपी

तारागणों-सहित भक्तों के हृदय रूपी आकाश में वास करें।

एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिन्धु रघुनाथ।
तब नारद मन हरषि अति, प्रभुपद नायउ माथ ॥४२ख॥

कृपासिंधु श्रीरघुनाथजी ने मुनि से कहा कि 'ऐसा ही होगा' तब नारदजी ने बहुत ही प्रसन्न मन होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया।

अति प्रसन्न रघुनार्थाहं जानो * पुनि नारद बोलेउ मृदु बानी
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया * मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया

फिर नारदजी श्रीरघुनाथजी को बहुत प्रसन्न जानकर मधुर वाणी से बोले-हे श्रीरघुनाथजी! जब आपने अपनी माया को भेजकर मुझे मोहित किया था।

तब विवाह मैं चाहेउँ कीन्हा * प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा
सुनि मुनि तोहि कहउँ सहरोसा * भजहिंजेमोहि तजि सकलभरोसा

तब मैं विवाह करना चाहता था। सो हे प्रभो! आपने किस कारण से नहीं करने दिया? तब प्रभु ने कहा-हे मुनि! सुनो, मैं प्रसन्नता पूर्वक कहता हूँ-जो सब भरोसों को छोड़कर मुझे भजते हैं-

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी * जिमि बालक राखइ महतारी
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई * तहँ राखइ जननी अरगाई

उनकी मैं सदा रखवाली करता हूँ, जैसे माता-बालक की रक्षा करती है। छोटा बालक जब अग्नि या सर्प पकड़ने को भागता है, तो माता उसे अलग करके बचा लेती है।

प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता * प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी * बालक सुत सम दास अमानी

बड़ा होने पर बालक से माता प्रेम तो करती है, परन्तु बचपन जैसी बात नहीं रहती। 'ज्ञानी' मेरे बड़े बालक के समान हैं और 'मान-रहित भक्त' शिशु के समान हैं।

जनहि मोरबल निजबल ताही * दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही
यह बिचारि पण्डित मोहि भजहीं * पायहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं

सेवक को तो मेरा बल है और ज्ञानी को अपना बल है, काम, क्रोध, उन दोनों के शत्रु हैं। यह विचारकर पण्डितजन मुझे भजते हैं और ज्ञान पाकर भी मेरी भक्ति को नहीं छोड़ते।

दोहा—काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धार।
तिन्हुँ महँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ॥ ४३ ॥

काम, क्रोध, लोभ और अहंकार आदि यह मोह की प्रबल सेना है। इनमें सबसे अधिक कठिन दुःख देने वाली माया रूपिणी स्त्री है।

सुनि मुनि कह पुरान श्रुति सन्ता * मोह बिपिन कहुँ नारि बसन्ता
जप तप नेम जलासय भारी * होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी

हे मुनि ! सुनो-पुराण, वेद व सन्तजन कहते हैं कि मोहरूपी वन के लिए स्त्री बसन्त-ऋतु है। वह स्त्री-जप, तप, नियमरूपी जलाशयों को ग्रीष्म-ऋतु होकर सर्वथा सुख देती है।

काम क्रोध मद मत्सर भेका * इन्हहि हरषप्रद वरषा ऐका
दुर्वासना कुमुद समुदाई * तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई

काम, क्रोध, अहंकार और ईर्षारूपी मेढ़कों को स्त्री-वर्षा ऋतु के समान आनन्द देने वाली है। खोटी इच्छायें-मानो कुमुदनियों के समूह हैं, उनको स्त्री-सदा सुख देने वाली शरद् ऋतु के समान है।

धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा * सोइहिम तिन्हहि दहइसुख मन्दा
पुनि ममता जवास बहुताई * पलुहई नारि सिसिर ऋतु पाई

सब धर्म कमलों के समूह हैं, उनको स्त्री-हेमन्त ऋतु होकर सुख देती है। फिर ममता रूपी जवासा-स्त्री-रूपी शिशिर-ऋतु को पाकर हरा-भरा हो जाता है।

पाप उलूक निकर सुखकारी * नारि निबिड़ रजनी अंधियारी
बुधि बल सील सत्य सब मीना * बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना

पापरूपी उल्लुओं के समूह को सुख देने के लिए स्त्री महा अँधेरी रात्रि के समान है। बुद्धि-बल, शील व सत्य-ये सब मछली हैं,उनके लिए स्त्री-वंशी के समान है, ऐसा चतुर लोग कहते हैं।

दोहा—अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब सुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जियँ जानि ॥ ४४ ॥

दोषों की जड़, दुःख देने वाली स्त्री-सब दुःखों की खान है। हे मुनि ! मन में यह जानकर ही विवाह करने से मैंने आपको रोका था।

सुनु रघुपति के वचन सुहाए * मुनितनु पुलकि नयन भरि आए
कहहु कवनु प्रभु कै अस रीती * सेवक पर ममता अरु प्रीती

श्रीरघुनाथजी के सुहावने वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र भर आये। कहो,ऐसी रीति कौन-से स्वामी की है,जो अपने सेवक पर इतनी ममता और प्रीति रक्खें?

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी * ग्यान रंक नर मन्द अभागी
पुनि सादर बोले मुनि नारद * सुनहु राम बिग्यान बिसारद

जो भ्रम छोड़कर ऐसे प्रभु का भजन नहीं करते, वे मनुष्य ज्ञान के दरिद्र महामूर्ख और भाग्यहीन हैं। फिर नारदजी आदर सहित बोले—हे ज्ञान से परिपूर्ण श्रीरामचन्द्रजी ! सुनिये—

सन्तन्ह के लच्छन रघुबीरा * कहहुनाथ भव भञ्जन भीरा
सुनिमुनि सन्तन्ह के गुन कहऊँ * जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ

हे रघुनाथजी ! हे संसार के दुःखों का नाश करने वाले ! हे नाथ ! कृपा करके अब सन्तों के लक्षण कहिये। (श्रीरामजी ने कहा—) हे मुनि ! सुनो, मैं सन्तों के लक्षण कहता हूँ, जिनसे मैं उनके वश में रहता हूँ।

षट विकार जित अनघ अकामा * अचल अकिंचन सुचि सुखधामा
अमित बोध अनीह मित भोगी * सत्यसार कवि कौविद जोगी
सावधान मानद मदहीना * धीर धर्मगति परम प्रवीना

सन्त-जन छः विकारों को जीते हुए, पाप रहित, कामना रहित, स्थिरचित्त, अंकिचन, पवित्र, सुख के स्थान, भारी ज्ञानवान, इच्छा रहित, अल्पाहारी, सत्य-प्रतिज्ञ, कवि, पंडित, योगी, सावधान, सबको मान देने वाले, अभिमान रहित, धैर्यवान्, धर्माचरणों में प्रवीण–

दोहा–गुनागार संसार दुख, रहित विगत सन्देह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

गुणों के स्थान, संसार के दुःखों से दूर और सब सन्देहों से रहित रहते हैं। मेरे चरण-कमलों को छोड़कर उन्हें न अपनी देह प्यारी है और न घर आदि–

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं * पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती * सरल स्वभाव सबहि सन प्रीती

वे अपने गुणों को कानों से सुनते ही सकुचाते हैं और पराये गुणों को सुनने से बहुत प्रसन्न होते हैं, वे एक समान और शांत-स्वभाव होते हैं और नीति को नहीं त्यागते तथा स्वभाव से सीधे और सबसे प्रेम करते हैं ।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा * गुरु गोविन्द प्रिय पद प्रेमा
श्रद्धा क्षमा मयत्री दाया * मुदिता मम पद प्रीति अमाया

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम तथा नियम में रत रहते हैं और गुरु, गोविंद तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम करते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मित्रता, दया, मुदिता तथा मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है ।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना * बोध जथारथ बेद पुराना
दम्भ मान मद करहिं न काऊ * भूल न देहिं कुमारग पाऊ

वैराग्य, ज्ञान, नम्रता, विज्ञान और वेद-पुराणों का यथार्थ बोध होता है । वे पाखण्ड अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग में पाँव नहीं रखते ।

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला * हेतु रहित परहित रत सीला
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते * कहि न सकहिं सादर श्रुति तेते

वे सदैव मेरी लीलाओं को गाते और सुनते हैं और बिना स्वार्थ के ही दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं । मुनि ! सुनो, साधुओं के जितने गुण हैं, उनको सरस्वतीजी और वेद भी नहीं कह सकते ।

छन्द–कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पदपंकज गहे ।
अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥

सिर नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।
ते धन्य तुलसीदास आप बिहाइ जे हरिरँग रँग गए ।।

'सरस्वतीजी व शेषजी भी नहीं कह सकते' यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड़ लिए । दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने अपने भक्तों के गुण अपने ही मुख से वर्णन किये । नारदजी बारम्बार प्रभु के चरणों में प्रणामकर ब्रह्मलोक को चले गये । तुलसीदास जी कहते हैं कि वे प्राणी धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर श्रीहरि के रंग में रंग गये हैं ।

दोहा—रावनारि जसु पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग ।
राम भगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग ।।४६क।।

रावण के शत्रु 'श्रीरामचन्द्रजी' के पवित्र यश को जो लोग गावेंगे और सुनेंगे—वे बिना वैराग्य, जप तथा योग के निश्चय ही राम-भक्ति पावेंगे ।

दीप सिखासम जुबति तनु, मन जनि होसि पतङ्ग ।
भजहि रामतजि काममद, करहि सदा सत्सङ्ग ।।४६ख।।

रे मन ! स्त्रियों का शरीर 'दीपक की लौ' के समान है, उसमें तू 'पतङ्गा' मत बन काम, क्रोध और मद छोड़कर-श्रीरामजी का भजन कर और सदा सत्सङ्ग कर ।

* मास पारायण—बाईसवाँ विश्राम *

।। इति श्रीमद्रामचरितमानसेकलकलिकलुष विध्वंसे तृतीय सोपान समाप्तः ।।
कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का
यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ ।।

—::० ०::—

* इति अरण्य काण्ड समाप्त *



* अथ मङ्गलाचरणम् *

—::* श्लोक *::—

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ ।
शोभाढ्यौवरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ॥
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ ।
सीतान्वेषणतत्परौपथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ॥ १ ॥

कुन्द के पुष्प और नील-कमल के समान सुन्दर, गौर एवं श्याम-वर्ण, महाबली, विज्ञान के धाम शोभायुक्त, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदों द्वारा स्तुत्य, गौर और ब्राह्मणों के समूह के प्रेमी, माया से मनुष्य-रूप धारण करने वाले उत्तम धर्म के कवच, सबके हितकारी, सीताजी की खोज में लगे हुए, पथिक-रूप, रघुकुल के श्रेष्ठ-श्रीरामजी व लक्ष्मणजी हमें अवश्य भक्तिप्रद हों।

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं ।
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा ॥
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं ।
धन्यास्तेकृतिनः पिवन्तिसततं श्रीरामनामामृतम् ॥ २ ॥

वे पुण्यात्मा धन्य हैं—जो वेदरूपी समुद्र से प्रकट, कलियुग के पापों के नाशक, नाश-रहित भगवान् शंकर के परम सुन्दर चन्द्रमुख में सदैव शोभायमान, संसार-रोग की सुन्दर मीठी औषधी, सबको सुख देने वाले, श्रीजानकीजी के जीवन-मूल 'राम-नाम' रूपी अमृत का सदैव पान करते हैं।

सो०—मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥ १ ॥

मोक्ष की भूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करने वाली जानकर उस काशीपुरी का सेवन क्यों न किया जाय-जहाँ श्रीशिव-पार्वतीजी बसते हैं ?

जरत सकल सुरवृन्द, विषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मनमन्द, को कृपालु शंकर सरिस॥ २॥

सम्पूर्ण देवगण जिस हलाहल विष से जल रहे थे उसको जिन्होंने पान कर लिया। रे मूर्ख मन! तू उन्हें नहीं भजता ? शंकरजी के समान दयालु और कौन है ?

आगें चले बहुरि रघुराया * ऋष्यमूक पर्वत नियराया
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा * आवत देखि अतुल बल सींवा

फिर श्रीरघुनाथजी आगे चले, तो ऋष्यमूक-पर्वत निकट आ गया। जहाँ मंत्रियों सहित सुग्रीव रहते थे। अतुल-बल की सीमा-श्रीराम-लक्ष्मणजी को आते देखकर–

अति सभीत कह सुनु हनुमाना * पुरुष जुगल बल रूप निधाना
धरि बटु रूप देख तहँ जाई * कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई

अत्यन्त भयभीत होकर सुग्रीव ने कहा–हे हनुमान! सुनो, ये दोनों सुन्दर पुरुष–बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो और उनके हृदय की बात जानकर संकेत से कह देना।

पठए बालि होहिं मन मैला * भागौं तुरत तजौं यह सैला
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ * माथा नाय पूछत अस भयऊ

जो इन्हें मलिन-मन बालि ने भेजा हो, तो तुरन्त इस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ। ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमानजी वहाँ गये और प्रणाम करके इस प्रकार पूछने लगे–

को तुम्ह श्यामल गौर सरीरा * क्षत्रिय रूप फिरहु बन बीरा
कठिन भूमि कोमल पद गामी * कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी

हे वीर! साँवले और गोरे शरीर वाले आप कौन हैं, जो क्षत्रिय-रूप से वन में घूमते हैं। हे स्वामी! इस कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलने वाले आप दोनों किस कारण से वन में विचरण कर रहे हैं ?

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता * सहत दुसह बन आतप बाता
की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ * की नर नारायन तुम्ह दोऊ

कोमल, मनोहर व सुन्दर आपके अंग हैं, वन में कड़ी धूप व वायु को सह रहे हैं क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश-तीनों देवताओं में से कोई हैं, अथवा आप दोनों 'नर–नारायण' हैं ?

दोहा–जन कारन तारन भव, भञ्जन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार॥ १॥

अथवा आप सब लोकों के स्वामी, संसार के कारण रूप 'भगवान्' जिन्होंने पृथ्वी का दुःख दूर करने तथा भार उतारने के लिए मनुष्य-अवतार धारण किया है ?

कोसलेस दसरथ के जाए * हम पितु बचन मानि बन आए
नाम राम लछिमन दोउ भाई * सङ्ग नारि सुकुमारि सुहाई

(श्रीरामजी बोले) हम कौशलाधीश दशरथजी के पुत्र हैं और पिता का वचन मानकर वन में आये हैं। हम 'राम-लक्ष्मण' दोनों भाई हैं, हमारे साथ मेरी सुन्दर सुकुमारी स्त्री (सीताजी) भी थीं–

इहाँ हरी निसिचर बैदेही * बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही
आपन चरित कहा हम गाई * कहहु बिप्र निज कथा बुझाई

यहां जानकीजी को राक्षस चुरा ले गया है, हे विप्र ! हम उसी को ढूंढ़ते फिरते हैं। हमने अपना चरित्र तो कह सुनाया है, हे विप्र ! आप अपनी कथा समझाकर कहो।

प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना * सो सुख उमा जाइ नहिं बरना
पुलकित तनु मुख आव न वचना * देखत रुचिर वेष कै रचना

प्रभु को पहिचान कर हनुमानजी उनके चरणों में गिर पड़े। (शिवजी कहते हैं–) हे पार्वती ! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर रोमाँचित है, मुख से वचन नहीं निकलता। स्वरूप रचना देखते ही रह गये।

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्हीं * हरषि हृदयँ निज नाथहि चीन्हीं
मोर न्याउ मैं पूछा साईं * तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं

फिर स्वामी को पहिचानकर धीरज धर, प्रसन्न मन से प्रार्थना की, हे स्वामी ! मैंने पूछा–वह तो न्याय-युक्त है, परन्तु आप मनुष्य की तरह कैसे पूछ रहे हैं ?

तब माया बस फिरउँ भुलाना * ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना

मैं आपकी माया के वश में भूला फिरता हूं इसी से मैं प्रभु को नहीं पहिचान पाया।

दोहा–एकु मैं मन्द मोह बस, कुटिल हृदयँ अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान ॥ २ ॥

एक तो मैं मन्द-बुद्धि और मोह के वश हूं, दूसरे कठोर हृदय तथा अज्ञानी हूं। फिर हे दीनबन्धु भगवान् ! आपने भी मुझे भुला दिया।

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें * सेवक प्रभुहि परे जनि भोरें
नाथ जीव तब मायाँ मोहा * सो निस्तरहि तुम्हारेहिं छोहा

हे नाथ ! यद्यपि मुझमें अवगुण बहुत हैं, तो भी प्रभु सेवक को न भुलावें। हे नाथ ! जीव आपकी माया से मोहित है, उसका उद्धार तो आपकी कृपा से ही हो सकता है।

ता पर मैं रघुबीर दोहाई * जानउँ नहिं कछु भजन उपाई
सेवक सुत पितु मातु भरोसें * रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें

हे श्रीरघुनाथजी ! तिस पर भी मैं आपकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि भजन का उपाय कुछ नहीं जानता हूँ । सेवक-स्वामी के और पुत्र-माता के भरोसे बेखटके रहता है । स्वामी को पालते ही बनता है ।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई * निज तनु प्रगट प्रीति उर छाई
तब रघुपति उठाइ उर लावा * निज लोचन जल सींचि जुड़ावा

ऐसा कहकर और अकुलाकर अपना असली रूप प्रगट करके भगवान के चरणों में गिर पड़े और हृदय प्रेम से भर गया । तब प्रभु ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और नेत्रों के जल से सींच कर शीतल किया ।

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना * तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना
समदरसी मोहि कह सब कोऊ * सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ

हे कपि ! सुनो, मन में कुछ ग्लानि न लाना, तुम मुझे लक्ष्मण से अधिक प्रिय हो । मुझे सब कोई समदर्शी कहते हैं, परन्तु सेवक मुझे बहुत प्रिय लगता है, क्योंकि वह अनन्य-गति होता है ।

दोहा—सो अनन्य जाकें असि, मति न टरइ हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त ।। ३ ।।

हे हनुमान ! अनन्य वह है—जिसकी बुद्धि से यह बिचार न टले कि 'मैं सेवक हूँ' और वह चराचर जगत के स्वामी भगवान का रूप हैं ।

देखि पवनसुत पति अनुकूला * हृदयँ हरष बीती सब सूला
नाथ सैल पर कपिपति रहई * सो सुग्रीव दास तव अहई

पवन-सुत हनुमान ने स्वामी को अनुकूल देखा, तो हृदय में बड़े प्रसन्न हुए और सब दुःख दूर हो गया । बोले हे नाथ ! इस पर्वत पर बानर राज सुग्रीव रहता है, वह आपका दास है ।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजै * दीन जानि तेहि अभय करीजै
सो सीता करि खोज कराइहि * जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि

हे नाथ ! उससे आप मित्रता कीजिये और दुःखी जानकर उसे निर्भय कीजिये । वह करोड़ों बानरों को जहाँ-तहाँ भेजकर सीताजी का पता लगवा देगा ।

एहि बिधि सकल कथा समुझाई * लिए दोउ जन पीठि चढ़ाई
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा * अतिसय जन्म धन्य करि लेखा

इस प्रकार सब बात समझाकर दोनों भाइयों को कन्धे पर चढ़ा लिया । जब सुग्रीव ने श्रीरामजी को देखा तो अपने जन्म को बहुत ही धन्य समझा ।

सादर मिलेउ नाइ पद माथा * भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा
कपि कर मन बिचार एहि रीती * करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती

'चरणों में सिर नवाकर आदर सहित सुग्रीव मिले, लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी भी सुग्रीव से मिले । सुग्रीव के मन में ऐसा विचार उठा कि हे विधाता ! क्या यह मुझसे प्रीति करेंगे ?

दोहा—तब हनुमन्त उभय दिसि, की सब कथा सुनाय ।
पावक साखी देइ कर, जोरी प्रीति दृढ़ाय ॥ ४ ॥

तब हनुमानजी ने दोनों ओर की सब कथायें कहकर और अग्नि को साक्षी करके परस्पर दृढ़ प्रीति दी ।

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा * लछिमन रामचरित सब भाषा
कह सुग्रीव नयन भरि बारी * मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी

दोनों ने मित्रता की और कुछ भी अन्तर नहीं रक्खा । लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी का सारा इतिहास कहा, तब सुग्रीव ने नेत्रों में जल भरकर कहा—हे नाथ ! जानकीजी मिल जायगीं ।

मन्त्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा * बैठि रहेउँ मैं करत बिचारा
गगन पन्थ देखी मैं जाता * परबस परी बहुत बिलपाता

एक बार मन्त्रियों सहित मैं यहाँ बैठा हुआ कुछ विलाप कर रहा था । तब मैंने आकाश मार्ग से जाती हुई, पराये वश में पड़ी, बहुत बिलाप करती हुई (सीताजी) को देखा था ।

राम राम हा राम पुकारी * हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी
माँगा राम तुरत तेहिं दीन्हा * पट उर लाइ सोच अति कीन्हा

राम ! राम ! हा राम ! पुकार कर हमें देखकर वस्त्र गिरा दिया । वह रामजी ने माँगा तो तुरन्त ही सुग्रीव ने दिया । उस वस्त्र को छाती से लगाकर रामजी ने बहुत ही सोच किया ।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा * तजहु सोच मन आनहु धीरा
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई * जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई

तब सुग्रीव ने कहा—हे श्रीरघुनाथजी ! सुनिये, सोच त्याग दीजिए और मन में धीरज धरिये ! मैं आपकी सब प्रकार से सेवा करूँगा, जिस प्रकार से जानकीजी आ मिलें ।

दोहा—सखा बचन सुनि हरषे, कृपासिन्धु बलसींब ।
कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव ॥ ५ ॥

कृपासिन्धु और बल की सीमारूपी श्रीरामजी सखा के वचन सुनकर प्रसन्न हुए और बोले—हे सुग्रीव ! तुम किस कारण वन में रहते हो, सो मुझसे कहो ?

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई * प्रीति रही कछु बरनि न जाई
मयसुत मायावी तेहिं नाऊँ * आबा सो प्रभु हमरे गाऊँ

हे नाथ ! 'मैं' और 'बालि' दो भाई हैं, हममें ऐसी प्रीति थी-जो कही नहीं जाती । हे प्रभो ! एक समय मय दानव का पुत्र जिसका नाम मायावी था, वह हमारे गांव में आया ।

अर्ध रात्रि पुर द्वार पुकारा * बाली रिपु बल सहै न सारा
धावा बालि देखि सो भागा * मैं पुनि गयउ बन्धु संग लागा

उसने आधी रातको पुर के द्वार पर पुकारा, तब बालि से बैरी का बल न सहा गया । वह दौड़ा तो बालि को आता देखकर मायावी भागा, मैं भी भाई के संग चला गया ।

गिरिवर गुहाँ पैठि सो जाई * तब बाली मोहि कहा बुझाई
परिखेसु मोहि एक पखवारा * नहिं आवौं तब जानेसु मारा

वह दैत्य एक पहाड़ीकी खोह में घुस गया,तब बालिने मुझसे समझाकर कहा-तुम यहां पंद्रहदिन मेरी राह देखना। यदि इतने दिन बाद भी मैं न आऊँ, तो समझ लेना कि बालि मारा गया।

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी * निसरी रुधिर धार तहँ भारी
बाली हतेसि मोहि मारिहि आई * सिला देइ तहँ चलेउँ पराई

हे खरारि! मैं एक महीने तक वहां रहा, तब उस गुफा से बड़ी भारी रुधिर की धारा निकली। (मैंने समझा कि) बालि को उसने मार डाला, अब आकर मुझे भी मारेगा। तब एक सिला गुफा के द्वार पर लगाकर चला आया।

मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं * दीन्हेउ मोहि राजु बरिआईं
बालि ताहि मारि गृह आवा * देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा

मन्त्रियों ने नगर को बिना राजा के देखकर मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर लौटा तो उसने मुझे देखकर मन में भेद माना।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी * हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी
ताकें भय रघुबीर कृपाला * सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला

उसने बैरी के समान मुझे बहुत मारा और मेरा सब धन तथा स्त्री को छीन लिया। हे कृपालु श्रीरघुनाथजी! मैं उसके डर से सब लोकों में बड़ा व्याकुल होता फिरा।

इहाँ साप बस आवत नाहीं * तदपि सभीत रहउँ मन माहीं
सुनि सेवक दुख दीनदयाला * फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला

यहां शाप के कारण नहीं आता है, तो भी मनमें डरता हुआ यहां रहता हूं। अपने सेवक का ऐसा दुःख सुनकर दीनदयालु श्रीरामजी की दोनों भुजायें फड़क उठीं।

दोहा—सुनु सुग्रीव मैं मारिहउँ, बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागतहुँ, गएँ न उबरिहिं प्रान॥ ६॥

(वे बोले—) हे सुग्रीव! सुनो, मैं बालि को एक ही बाण में मार डालूंगा। उसके प्राण ब्रह्मा और महादेवजी की शरण में जाने पर भी नहीं बचेंगे।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी * तिन्हहि बिलोकत पातक भारी
निज दुख गिरि सम रज करि जाना * मित्रक दुख रज मेरु समाना

जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उनके देखने से भी बड़े भारी पाप होते हैं। अपने पहाड़ के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के रज के समान दुःख को भी सुमेरु पर्वत के समान जानो।

जिन्ह कें असि मति सहज न आई * ते सठ कत हठि करत मिताई
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा * गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा

जिनके स्वभाव से ही ऐसे विचार नहीं हैं, वे मूर्ख हठ करके मित्रता क्यों करते हैं। अपने मित्र को कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग पर लावे और उसकी बुराइयों को छिपाकर गुणों को प्रगट करें।

देत लेत मन संक न धरई * बल अनुसार सदा हित करई
बिपति काल कर सतगुन नेहा * श्रुति कह सन्त मित्र गुन ऐहा

देने-लेने में कभी शङ्का न करे और अपने बल के अनुसार सदा भलाई करता रहे। विपत्ती के समय सौ-गुना प्रेम करे-वेद कहते हैं कि सज्जन मित्र के यही गुण हैं।

आगे कह मृदु बचन बनाई * पाछें अनहित मन कुटिलाई
जाकर चित अहिगति सम भाई * अस कुमित्र परिहरेंहिं भलाई

और सामने तो मीठे २ वचन कहे, पीछे बुराई करे और मनमें कुटिलता रक्खे-हे भाई। जिनका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे बुरे मित्र को छोड़ देने में ही भलाई है।

सेवक सठ नृप कृपन कुमारी * कपटी मित्र सूल सम चारी
सखा सोच त्यागहु बल मोरें * सब बिधि करव काज मैं तोरें

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुटिल स्त्री तथा कपटी मित्र–ये चारों शूल के समान हैं। हे सखा ! तुम मेरे बल से सब सोच छोड़ दो, सब प्रकार से तुम्हारे काम करूँगा।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा * बालि महाबल अति रनधीरा
दुन्दुभि अस्ति ताल देखराए * बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए

सुग्रीव बोला–हे नाथ ! बालि बड़ा ही बलवान व रणधीर है। फिर सुग्रीव ने दुन्दुभि राक्षस की हड्डी एवं ताल के वृक्ष दिखाये, तो श्रीरघुनाथजी ने सहज ही में उन्हें गिरा दिया।

देखि अमित बल बाढ़हि प्रीती * बालि बधब इन्ह भइ परतीती
बार बार नावइ पद सीसा * प्रभुहि जान मन हरष कपीसा

ऐसे अपार बल को देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़गई और यह 'बालि को मारेंगे' ऐसा निश्चय होगया।वह बारम्बार चरणोंमें सिरनवानेलगा औरप्रभुको पहिचानकर मनमें बहुत प्रसन्न हुआ।

उपजा ग्यान बचन तब बोला * नाथ कृपा मन भयउ अडोला
सुख सम्पति परिवार बड़ाई * सब परिहरि करिहऊँ सेवकाई

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तो वह यह वचन बोला-हे नाथ ! अब आपकी कृपा-से मेरा मन स्थिर हो गया। मैं सुख, धन, कुटुम्ब तथा बड़ाई सबको छोड़कर आपकी सेवा करूंगा।

ए सब राम भगति के बाधक * कहहिं सन्त तव पद अवराधक
शत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं * माया कृत परमारथ नाहीं

क्योंकि आपके चरणों की सेवा करने वाले सन्त कहते हैं कि यह सब राम-भक्ति के विरोधी हैं। जगत में शत्रु-मित्र, सुख दु:ख सब माया रचित हैं, यह वास्तव में नहीं हैं।

बालि परमहित जासु प्रसादा * मिलेउ राम तुम्ह समन बिषादा

सपने जेहि सन होइ लराई * जागे समुझत मन सकुचाई

बालि तो मेरा परम हित् है, जिसकी कृपा से दुःखों का नाश करने वाले आपके दर्शन हुये, जिसे स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर समझने से मन में सङ्कोच होगा।

अब प्रभु कृपा करेहु एहि भाँती * सब तजि भजनु करौं दिनराती
सुनि बिराग संजुत कपि बानी * बोले बिहँसि रामु धनु धानी

हे नाथ ! अब आप ऐसी कृपा करिये, जिससे सब छोड़कर मैं दिन-रात आपका भजन करूं। सुग्रीव की वैराग्यपूर्ण बातें सुनकर धनुषधारी श्रीरामचन्द्रजी हँसकर बोले—

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई * सखा बचन मम मृषा न होई
नट मरकट इव सबहि नचावत * रामु खगेस बेद अस गावत

हे सखा ! तुम जो कहते हो वह सब ठीक है, परन्तु मेरा वचन कभी झूंठा नहीं हो सकता। हे गरुड़जी ! वेद ऐसा कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी नट के बन्दर की तरह सबको नचाते हैं।

लै सुग्रीव सङ्ग रघुनाथा * चले चापि सायक गहि हाथा
तब रघुपति सुग्रीव पठावा * गर्जेसि जाइ निकट बल पावा

सुग्रीव को साथ ले और धनुष-बाण धारण कर श्रीरामजी चल दिये। फिर सुग्रीव को भेजा, जब वह बल पाकर बालि के निकट आकर गरजा।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा * गहि कर चरन नारि समुझावा
सुनि पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा * ते द्वौ बन्धु तेज बल सींवा

सुनते ही बालि क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा, तब उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर समझाया कि हे पति ! सुनो, जिन दोनों भाइयों से सुग्रीव मिले हैं, वे तेज और बल की सीमा हैं।

कौसलेस सुत लछिमन रामा * कालहु जीति सकहिं संग्रामा

वे कौशलपति दशरथजी के पुत्र-राम व लक्ष्मण युद्ध में काल को भी जीत सकते हैं।

दोहा—कह बाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौं कदापि मोहि मारिहहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥ ७ ॥

बालि ने कहा—हे भीरु-प्रिये ! सुनो, श्रीरघुनाथजी समदर्शी हैं, यदि वे मुझको मारेंगे तो भी मैं सनाथ हो जाऊँगा।

अस कहि चला महा अभिमानी * तृन समान सुग्रीवहि जानी
भिरे उभौ बाली अति तर्जा * मुठिका मारि महाधुनि गर्जा

ऐसा कहकर वह महा अभिमानी-सुग्रीव को तिनके के तुल्य जानकर चला और दोनों भिड़ गये। बालि बड़े जोर से गरजा और घूंसा मारा।

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा * मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला * बन्धु न होइ मोर यह काला

वह घूंसा सुग्रीव के वज्रसमान लगा और व्याकुल हो भाग गया। फिर प्रभु के पास जाकर बोला-हे कृपालु श्रीरघुनाथजी! मैंने जो कहा था कि मेरा भाई नहीं, वरन काल है।

एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ * तेहि भ्रम में नहिं मारेउँ सोऊ
कर परसा सुग्रीव सरीरा * तनु भा कुलिस गई सब पीरा

तब श्रीरामजी बोले–तुम दोनों भाई एक ही रूप के हो, इसी भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा। फिर श्रीरामजी ने उसके शरीर पर हाथ फेरा जिससे सब पीड़ा जाती रही और शरीर वज्र के तुल्य पुष्ट हो गया।

मेली कण्ठ सुमन कै माला * पठवा पुनि बल देइ बिसाला
पुनि नाना विधि भई लराई * बिटप ओट देखहिं रघुराई

फिर सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाली और अधिक बल देकर भेजा। तब दोनों में अनेक प्रकार से युद्ध हुआ श्रीरघुनाथजी वृक्ष की आड़ से देखते रहे।

दोहा–बहु छल बल सुग्रीव कर, हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब, हृदयँ माँझ सर तानि॥ ८॥

सुग्रीव ने बहुत छल-बल किये, परन्तु वह भय मानकर निराश हो गया। तब श्रीरामचन्द्रजी ने बालि के हृदय में खींचकर बाण मारा।

परा विकल महि सर के लागें * पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें
श्याम गात सिर जटा बनाएँ * अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ

बाण लगते ही बालि पृथ्वी पर गिर पड़ा, परन्तु प्रभु को आगे देखकर फिर उठ बैठा। उनका श्याम शरीर है, सिर पर जटाजूट हैं, नेत्र लाल हैं और धनुष-बाण चढ़ाये हुए हैं।

पुनिपुनि चितइ चरन चित दीन्हा * सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा * बोला चितइ राम की ओरा

बालि ने बारम्बार प्रभु को देख चरणों में चित्त लगाकर प्रभु को पहचान अपने जन्म को सफल माना, उनके हृदय में प्रीति थी, परन्तु मुख में कठोर वचन थे। वह प्रभु की ओर देखकर ऐसे बोला–

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं * मारेहु मोहि व्याध की नाईं
मैं बैरी सुग्रीव पियारा * अवगुन कवन नाथ मोहि मारा

हे नाथ! आपने तो धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है, फिर मुझे व्याध की तरह क्यों मारा है? मैं बैरी और सुग्रीव प्यारा है आपने मुझे किस दोष से मारा?

अनुज बधू भगनी सुतनारी * सुनु सठ कन्या सम ए चारी
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई * ताहि बधें कछु पाप न होई

श्रीरामजी बोले–रे मूढ़! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र-वधू और कन्या–ये चारों समान हैं। इन्हें जो बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कोई पाप नहीं होता।

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना * नारि सिखावन करसि न काना
मम भुजबल आश्रित तेहि जानी * मारा चहसि अधम अभिमानी

रे मूर्ख ! तुझे बड़ा भारी अभिमान था तूने अपनी स्त्री की शिक्षा पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया। अरे अभिमानी ! तूने सुग्रीव को मेरी भुजाओं का बल पाया हुआ जानकर भी मारना चाहा।

दोहा—सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी, अन्तकाल गति तोरि॥ ९॥

(बालि से कहा—) हे श्रीरामजी ! सुनिये, स्वामी के सामने मेरी चतुरता नहीं चल सकती। हे प्रभु ! मृत्यु-काल में आपकी गति पाकर भी क्या मैं पापी ही रहा ?

सुनत राम अति कोमल बानी * बालि सीस परसेउ निज पानी
अचल करौं तनु राखहु प्राना * बालि कहा सुनु कृपानिधाना

श्रीरामजी ने बालि की ऐसी कोमल वाणी सुनकर उसके सिर पर अपना हाथ फेरा और बोले मैं तुम्हारे देह को अचल करदूं, तुम प्राणों को रक्खो। बालि ने कहा—हे दयासागर ! सुनिये—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं * अन्त राम मुख आवत नाहीं
जासु नाम बल शंकर कासी * देत सबहिं समगति अबिनासी

मुनिजन जन्म २ में यह यत्न करते हैं, परंतु अंत-समय में 'राम' नाम मुख से नहीं निकलता। जिसके नाम के बल से शंकरजी काशी में सबको-समान रूप से अविनाशी गति देते हैं—

मम लोचन गोचर सोइ आवा * बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा

वही 'राम' मेरे नेत्रों के सामने साक्षात विराजमान हैं। हे प्रभु ! क्या इससे उत्तम अवसर फिर कभी मिल सकता है ?

छन्द—सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिमि पवन मन गो निरसि कवि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमान बसु प्रभु रहेउ राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥

वही 'प्रभु' मेरे नेत्रों के आगे खड़े हैं, जिनके गुण वेद नित्य 'नेति—नेति' कहकर गाते हैं। और योगी, मुनिजन—प्राण, मन और इन्द्रियों को वश में कर जिन प्रभु को ध्यान में कभी-कभी देख पाते हैं। आपने मुझे अभिमानी जानकर शरीर रखने को कहा। परन्तु ऐसा कौन मूर्ख होगा—जो कल्पवृक्ष को काटकर, करील के वृक्ष की बाड़ बनायेगा ?

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।

गहि बाँह सुर नरनाह आपनु दास अङ्गद कीजिए ॥

हे नाथ! अब मेरी ओर दया दृष्टि से देखिये और जो वरदान मैं माँगूं, सो दीजिये। मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म पाऊँ, वहीं आपके चरणों में प्रीति करूँ। हे कल्याणकारी! यह मेरा पुत्र-अंगद जो कि विनय और बल में मेरे ही समान है इसे शरण में लीजिये और हे देवताओं तथा मुनियों के स्वामी! बांह पकड़ कर इसे अपना दास बनाइये।

दोहा—रामचरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कण्ठ ते, गिरत न जानइ नाग ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में अटल प्रीति करके बालि ने वैसे ही शरीर त्याग दिया जैसे हाथी गले से फूल की माला गिरते हुए नहीं जानता।

राम बालि निज धाम पठावा * नगर लोग सब व्याकुल धावा
नाना बिधि बिलाप करि तारा * छूटे केस न देह सँभारा

श्रीरामजी ने बालि को अपने धाम भेजा, तब नगर के सब लोग दुःखी होकर दौड़े और बालि की स्त्री (तारा) नाना प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं। और उसे शरीर की सुधि नहीं है।

तारा बिकल देखि रघुराया * दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया
छिति जल पावक गगन समीरा * पंच रचित अति अधम सरीरा

तारा को व्याकुल देखकर श्रीरघुनाथजी ने उसे ज्ञान दिया और माया हरली। पृथ्वी, जल, अग्नि—आकाश, वायु-इन पाँचों तत्वों से यह अधम शरीर बना है।

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा * जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा
उपजा ग्यान चरन तब लागी * लीन्हेंसि परम भगति वर मागी

वह शरीर तुम्हारे आगे सो रहा है और 'जीव' नित्य व अविनाशी है। फिर तुम किस लिए रोती हो? जब तारा के हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब चरणों में लग गई उसने परम भक्ति का बर माँग लिया।

उमा दारु जोषित की नाईं * सबहि नचावत राम गोसाईं
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा * मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा

(शिवजी बोले–) हे पार्वती! श्रीरामजी सारे संसार को कठपुतली की तरह नचाते हैं। तब श्रीरामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी और उसने विधिपूर्वक बालि का मृतक कर्म किया।

राम कहा अनुजहि समुझाई * राँजु देहु सुग्रीवहि जाई
रघुपति चरन नाइ कर माथा * चले सकल प्रेरित रघुनाथा

श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा कि सुग्रीव को जाकर राज्य दे दो। तब श्रीरघुनाथजी की आज्ञा पाकर सब उनके चरणों में मस्तक नवाकर चले।

दोहा—लछिमन तुरत बुलाए, पुरजन बिप्र समाज।



RAM HANUMAN MILAP 119

S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRZA STREET BOMBAY 3

& SONS
32/1, FATEHPURI DELHI-6

राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ, अङ्गद कहँ जुबराज ॥११॥

लक्ष्मणजी ने तुरन्त पुरवासियों तथा ब्राह्मणों को सभा में बुलाकर सुग्रीव को राज्य और अङ्गद को युवराज-पद दे दिया।

उमा राम सम हित जग माहीं * गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं
सुर नर मुनि सब कै यह रीती * स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती

हे पार्वती! रामजी के समान हितकारी संसार में–गुरु, पिता, माता, भाई स्वामी कोई नहीं है। देवता मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिये ही प्रीत करते हैं।

बालि त्रास व्याकुल दिन राती * तन बहु ब्रन चिंताँ जरि छाती
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ * अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ

जो सुग्रीव-बालि के भय से दिन-रात दुःखी रहता था, शरीर में अनेक घाव हो गये थे, चिंता से छाती जली जाती थी, उसी सुग्रीव को बानरों का राजा बना दिया। श्रीरघुनाथ जी का स्वभाव अत्यन्त कोमल है।

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं * काहे न बिपति जाल नर परहीं
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई * बहु प्रकार नृपनीति सिखाई

जो मनुष्य जान-बूझकर भी ऐसे प्रभु को छोड़ देते हैं, वे क्यों न विपत्ति के जाल में पड़ें? फिर श्रीरामजी ने सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से राजनीति सिखाई।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा * पुर न जाउँ दस चारि बरीसा
गत ग्रीषम बरषा रितु आई * रहिहउँ निकट सैल पर छाई

प्रभु ने कहा–हे बानरराज सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक नगर में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्म-ऋतु बीत कर, वर्षा ऋतु आ गई है, अतः मैं निकट ही इस पर्वत पर वास करूँगा।

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू * सन्तत हृदयँ धरेहु मम काजू
तब सुग्रीव भवन फिरि आए * रामु प्रबरषन गिरि पर छाए

तुम अंगद सहित राज्य करो, परन्तु मेरे काम का हृदय में ध्यान रखना। तब सुग्रीव घर लौट आये और श्रीरामजी प्रवर्षण-पर्वत पर रहने लगे।

दोहा–प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा, राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे आइ ॥१२॥

देवताओं ने पहले ही उस पर्वत की गुफा को सुन्दर बना रखा था कि कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी यहाँ आकर कुछ दिन वास करेंगे।

सुन्दर बन कुसुमित अति सोभा * गुञ्जत मधुप निकर मधु लोभा
कन्द मूल फल पत्र सुहाए * भए बहुत जब ते प्रभु आए

सुन्दर वन फूलों से अति शोभायमान है, भौंरों के झुण्ड मधु के लोभ से गुञ्जार कर रहे हैं। जब से प्रभु आये हैं–तब से कंद-मूल फल की बहुतायत हो गई है।

देखि मनोहर सैल अनूपा * रहे तहँ अनुज सहित सुर भूपा
मङ्गल रूप भयउ वन तब ते * कीन्ह निवास रमापति जब ते

मनोहर पर्वत देखकर लक्ष्मणजी सहित देवताओं के राजा श्रीरामजी यहां रहने लगे। जब से श्रीरामजी ने वहाँ निवास किया-तब से वह वन मंगलदायक हो गया।

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा * करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा
फटकि सिला अति सुभ्र सुहाई * सुख आसीन तहाँ दोउ भाई

देवता, सिद्ध, मुनि आदिक-भौंरा, पक्षी अथवा पशुओं का रूप धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे। स्फटिक मणि की एक चट्टान बड़ी ही शोभायमान है, उस पर दोनों भाई सुखपूर्वक विराज रहे हैं।

कहत अनुज सन कथा अनेका * भगति बिरति नृपनीति बिवेका
बरषा काल मेघ नभ छाए * गरजत लागत परम सुहाए

लक्ष्मण से श्रीरामजी अनेक प्रकार की भक्ति, वैराग्य, ज्ञान तथा नीति की कथायें कहते हैं वर्षाऋतु में आकाश में छाये हुए बादल गरजते हुए बड़े ही सुहावने लगते हैं।

दोहा—लछिमन देखु मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, बिष्नु भगत कहुँ देखि ॥१३॥

(श्रीरामजी बोले-) हे लक्ष्मण ! देखो, भौंरों के झुण्ड बादलों को देखकर नाच रहे हैं। जैसे गृहस्थी किसी हरि-भक्त को देख, वैराग्य में लीन होकर प्रसन्न होते हैं।

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा * प्रिया हीन डरपत मन मोरा
दामिनि दमक रहन घन माहीं * खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं

आकाश में मेघ घुमड़-घुमड़ कर गरज रहे हैं, सीताजो के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादलों में ऐसे नहीं रहती-जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती।

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ * जथा नवहि बुध विद्या पाएँ
बद अघात सहहिं गिरि कैसें * खल के वचन सन्त सह जैसें

बादल पृथ्वी के निकट आकर बरसते हैं, जैसे विद्वान लोग विद्या पाकर नम्र हो जाते हैं। बूँदों की चोट पहाड़ किस प्रकार सहते हैं।

छुद्र नदीं भरि चलीं तोरोई * जस थोरेहुँ धन खल बोराई
भूमि परत भा ढाबर पानी * जनु जीवहिं माया लपटानी

छोटी नदियाँ वर्षा का जल भरने से उमड़कर किनारे तोड़ती हुई चलीं, जैसे दुष्ट थोड़े से धन को पाकर इतराने लगते हैं। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी मैला हो जाता है, जैसे जीव माया में लिपट कर मलिन हो जाता है।

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा * जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई * होइ अचल जिमि जिव हरि पाई

पानी इकट्ठा होकर तालाबों में भर जाता है, जैसे सद्गुण सज्जनों के पास स्वयं ही

आ जाते हैं। नदियों का पानी समुद्र में जाकर इस प्रकार स्थिर हो जाता है—जैसे जीव हरि को पाकर शान्त हो जाता है।

दोहा—हरति भूमि तृन सकुल, समुझि परहिं नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद तें, गुप्त होहिं सद्ग्रन्थ ॥१४॥

पृथ्वी हरी-हरी घास से ढकी है, जिससे रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। जैसे पाखण्डी लोगों के विवाद से सद्ग्रन्थ लोप होजाते हैं।

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई * वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई
नव पल्लव भए बिटप अनेका * साधक मन जस मिलें बिबेका

चारों ओर मेढ़कों की बोली ऐसी सुहावनी लगती है, मानो ब्रह्मचारी वेद पढ़ रहे हों। बहुत से वृक्ष नये पत्तों के निकलने से ऐसे सुशोभित हो गये हैं, जैसे साधक का मन ज्ञान उत्पन्न करने से होता है।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ * जस सुराज खल उद्यम गयऊ
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी * करइ क्रोध जिमि धरमहिं दूरी

मदार और जवासा के पत्ते झड़ गये हैं, जैसे अच्छे राज्य में दुष्ट का उद्यम जाता रहता है। ढूँढ़ने से भी धूल नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म का नाश कर देता है।

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी * उपकारी कै सम्पति जैसी
निसि तम घन खद्योत बिराजा * जनु दम्भिन्ह कर मिला समाजा

खेती से भरी हुई पृथ्वी ऐसी शोभायमान हो रही है, जैसे परोपकारी मनुष्य की सम्पत्ति। अँधेरी रात में जुगनूँ ऐसे शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियों का समाज इकट्ठा हुआ हो।

महावृष्टि चलि फूटि किआरी * जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी
कृषी निरावहिं चतुर किसाना * जिमि बुध तजहिं मोह मद माना

अधिक वर्षा होने से खेतोंकी क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतंत्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेती निरा रहे हैं, जैसे सज्जन मोह, मद, अहंकार को दूर कर देते हैं।

देखिअ चक्रबाक खग नाहीं * कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा * जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा

चक्रवाक पक्षी दिखाई नहीं पड़ते, जिस प्रकार कलिकाल में धर्म चले जाते हैं। ऊसर में वर्षा होने पर घास तक नहीं जमती, जैसे सन्तों के हृदय में काम पैदा नहीं होता।

बिबिध जन्तु संकुल महि भ्राजा * प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना * जिमि इन्द्रिय गन उपजें ग्याना

नाना प्रकार के जीवों से पृथ्वी कैसी शोभित है, जैसे स्वराज्य में प्रजा बढ़ती है। जहाँ तहाँ अनेक राहगीर थककर ठहरे हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने से इन्द्रियाँ शिथिल होजाती हैं।

दोहा—कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।

जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥१५क॥

कभी तेज पवन चलती है, जिससे मेघ जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्र उत्पन्न होने से कुल श्रेष्ठ धर्माचरण नष्ट हो जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रकट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥१५ख॥

कभी बादलों से दिन में अंधेरा होजाता है, तो कभी सूर्य निकल आता है। जिस प्रकार बुरी सङ्गति को पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंगति को पाकर प्रकट हो जाता है।

बरषा बिगत सरद रितु आई * लछिमन देखहु परम सुहाई
फूलें कास सकल महि छाई * जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई

हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा ऋतु बीत गई और परम सुन्दर शरद-ऋतु आ गई। फूली हुई कांस सारी पृथ्वी पर छा गई है, मानो वर्षा ने अपना बुढ़ापा प्रकट किया है।

उदित अगस्ति पन्थ जल सोषा * जिमि लोभइ सोषइ सन्तोषा
सरिता सर निर्मल जल सोहा * सन्त हृदय जस गत मद मोहा

अगस्त के तारे ने उदय होकर मार्ग के जलको सोख लिया जैसे संतोष लोभ को दूर कर देता है। नदियों और तालाबों को जल ऐसे शोभित है, मानो माया से रहित संतों का हृदय हो।

रस रस सूख सरित सर पानी * ममता त्यागि करहिं जिमि ज्ञानी
जानि सरदु रितु खञ्जन आए * पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए

जैसे ज्ञानी पुरुष ममता को छोड़ देते हैं, वैसे ही नदियों व तालाबों का जल धीरे २ सूख रहा है। शरद-ऋतु जानकर खञ्जन-पक्षी आ गये, जैसे समय पाकर सुकर्म आ जाते हैं।

पङ्क न रेनु सोह अस धरनी * नीति निपुन नृप कै जसि करनी
जल संकोच बिकल भइँ मीना * अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना

बिना धूल व कीचड़ के पृथ्वी ऐसी शोभित है, जैसे नीति निपुण राजा की करनी। कहीं-कहीं जल के कम होने से मछलियाँ दुःखी हैं। जैसे मूर्ख कुटुम्बी धन-हीन होने से दुःखी होते हैं।

बिनु घन निर्मल सोह अकाशा * हरिजन इव परिहरि सब आसा
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी * कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी

बिन बादलों के आकाश ऐसा शोभित है—जैसे भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होता है। कहीं-कहीं शरद-ऋतु में थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो जाती है—जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ती पाते हैं।

दोहा—चले हरसि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥१६॥

राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी प्रसन्न होकर, नगर छोड़कर ऐसे चल दिये, जैसे हरि-भक्ति पाकर चारों आश्रमी साधन-रूपी 'श्रम' छोड़ देते हैं।

सुखी मीन जे नीर अगाधा * जिमि हर सरन न एकहु बाधा
फूलें कमल सोह नर कैसा * निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा

गहरे पानी की मछलियां ऐसे सुखी हैं जैसे भगवान की शरण में जाने पर एक भी बाधा नहीं होती। तालाब कमलों के फूलने से कैसी शोभा दे रहा है—जैसे निर्गुण-ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है।

गुञ्जत मधुकर मुखर अनूपा * सुन्दर खग रव नाना रूपा
चक्रबाक मन दुखु निसि पेखी * जिमि दुर्जन पर सम्पत्ति देखी

भौंरे अनुपम गुञ्जार कर रहे हैं तथा पक्षी नाना प्रकार की बोली बोल रहे हैं। चकवे रात्रि को देखकर मन में वैसे ही दुःखी हो रहे हैं, जैसे दुष्ट पराये धन को देखकर होते हैं।

चातक रटत तृषा अति ओही * जिमि सुख लहइ न शङ्कर द्रोही
सरदातप निसि ससि अपहरई * सन्त दरस जिमि पातक टरई

पपीहा मारे प्यास के रट लगाये हैं, जैसे शिवजी का द्रोही कभी सुख नहीं पाता। शरद् ऋतु की गर्मी को रात्रि का चन्द्रमा हर लेता है, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं।

देखि इन्दु चकोर समुदाई * चितवहिं जिमि हरिजन हरिपाई
मसक दन्स बीते हिम त्रासा * जिमि द्विज बैर किएँ कुलनासा

चकोरों के झुण्ड चंद्रमा की ओर टकटकी लगाये हैं, जैसे भक्त समुद्र के पार उनके दर्शन करते हैं, मच्छर व डाँस सर्दी के डर से नष्ट हो गये हैं, जैसे विप्र से बैर करने से कुलका नाश होता है।

दोहा—भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाय।
सदगुरु मिलें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाय ॥१७॥

जो जीव पृथ्वी पर भर गये थे, वे शरद-ऋतु के आने से नष्ट हो गये, जैसे सद्गुरु के मिलने से संशय और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं।

बरषा बिगत सरद रितु आई * सुधि न तात सीता कै पाई
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं * कालहु जीति निमिष महुँ आनौं

वर्षा बीतगई व निर्मल शरद् ऋतु आगई, परन्तु हे तात! अब भी सीताजीकी कोई खबर नहीं मिली, एक बार कैसेभी पता लगजाय, तो मैं काल को भी जीतकर सीताजी को पलभरमें ले आऊँ।

कतहुँ रहउ जौं जीवित होई * तात जतन करि आनउँ सोई
सुग्रीवहि सुधि मोरि बिसारी * पावा राज कोष पुर नारी

हे तात! वह कहीं भी हों, यदि जीवित हों तो, उसे उपाय करके अवश्य ले आऊंगा। सुग्रीव ने भी मेरी याद भुला दी, क्योंकि वह राज्य, खजाना और स्त्री पा गया है।

जेहिं सायक मारा मैं बाली * तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा * ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा

जिस बाण से मैंने बाली को मारा है, क्या उसी बाण से उस मूर्ख को भी कल मारूं? हे

पार्वती ! जिसकी कृपा से अहंकार व मोह छूट जाते हैं, क्या उसे स्वप्नमें भी क्रोध हो सकता है?

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी * जिन्ह रघुवीर चरन रति मानी
लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना * धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना

यह चरित्र ज्ञानी मुनि ही जानते हैं, जिन्होंने श्रीरामजी के चरणों में प्रीति करली है। तब लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी को क्रोधित जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथ में लिया।

दोहा—तब अनुजहि समुझावा, रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ॥१८॥

तब करुणा की सीमा श्रीरघुनाथजी ने लक्ष्मणजी को समझाया कि भाई ! मित्र सुग्रीव को केवल भय दिखलाकर यहां ले आओ।

इहाँ पवनसुत हृदयँ विचारा * राम काजु सुग्रीवँ बिसारा
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा * चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा

यहां (किष्किन्धा में) हनुमानजी ने मन में विचार किया कि सुग्रीव-श्रीरामजी के कार्य को भूल गये ; तब सुग्रीव के पास जाकर चरणों में शीश नवाया और चारों प्रकार (साम, दाम, दण्ड, भेद) से समझाया।

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना * बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना
अब मारुतसुत दूत समूहा * पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा

यह सुनकर सुग्रीव बहुत डरे और कहने लगे कि विषयों ने मेरा ज्ञान हर लिया। हे हनुमान ! अब जहां बानरों के जूथ रहते हैं, वहाँ दूतों के समूह भेजो।

कहहु पाख महँ आव न जोई * मोरे कर ताकर बध होई
तब हनुमन्त बोलाए दूता * सब कर करि सनमान बहूता

और कह देना कि जो पन्द्रह दिन के भीतर न आवेगा-वह मेरे हाथ से मारा जावेगा। तब हनुमानजी ने दूतों को बुलाया और बड़ा आदर दिया।

भय अरु प्रीति नीति देखराई * चले सकल चरनन्हि सिर नाई
एहि अवसर लछिमन पुर आए * क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए

फिर उनको भय, प्रीति व राजनीति दिखाई, सब दूत चरणों में सिर नवाकर चले। उसी समय लक्ष्मणजी नगर में आये, उन्हें क्रोधित देख कपिगण इधर-उधर भागने लगे।

दोहा—धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब, आयउ बालिकुमार ॥१९॥

तब लक्ष्मणजी ने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगर को जलाकर अभी भस्म कर दूंगा। तब पुरवासियों को व्याकुल देखकर बालि-पुत्र अंगद आये।

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही * लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही
क्रोधवन्त लछिमन सुनि काना * कह कपीस अति भयँ अकुलाना

उन्होंने लक्ष्मणजी के चरणों में प्रणाम किया, तब लक्ष्मणजी ने उन्हें अभय-दान दिया। लक्ष्मणजी को क्रोधित सुन बानरराज घबड़ा गये।

सुन हनुमन्त संग लै तारा * करि विनती समुझाउ कुमारा
तारा सहित गयउ हनुमाना * चरन बन्दि प्रभु सुजसु बखाना

और बोले-हे हनुमान! तुम तारा को साथ लेकर विनय करके राजकुमारको समझाओ। हनुमानजी ने तारासहित जाकर लक्ष्मणजी के चरणों में प्रणामकर प्रभु के यश का वर्णन किया।

करि बनती मन्दिर लै आए * चरन पखारि पलँग बैठाए
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा * गहि भुज लछिमन कण्ठ लगावा

और विनय करके लक्ष्मणजी को महल में ले आये, उनके चरण धोकर पलंग पर बैठाया। तब सुग्रीव ने आकर प्रणाम किया, लक्ष्मणजी ने उनकी बाँह पकड़कर उन्हें गले से लगा लिया।

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं * मुनि मन मोह करइ छन माहीं
सुनत विनीत बचन सुख पावा * लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा

(सुग्रीव ने कहा–) हे नाथ! विषय के समान दूसरा मद नहीं है, जो मुनियों के हृदय में भी क्षणभर में मोह उत्पन्न कर देता है। लक्ष्मणजी विनय भरे वचन सुनकर बड़े सुखी हुए और सुग्रीव को उन्होंने बहुत प्रकार से समझाया।

पवनतनय सब कथा सुनाई * जेहि विधि गए दूत समुदाई

तब हनुमानजी ने जिस प्रकार दूतों के समूह गये थे, वह सब कथा सुनाई।

दोहा–हरषि चले सुग्रीव तब, अङ्गदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि, आए जहँ रघुनाथ ॥ २० ॥

तब सुग्रीव बड़ी प्रसन्नता के साथ अंगद आदि बानरों को साथ लेकर तथा लक्ष्मणजी को आगे करके चले और जहाँ श्रीरघुनाथजी थे, वहाँ आये।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी * नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी
अति सय प्रबल देव तुम्ह माया * छूटइ राम करहुँ जौं दाया

श्रीरामजीके चरणों में सिर नवा,हाथ जोड़ सुग्रीव बोले-हे नाथ! इसमें मेरा कुछ दोष नहीं। हे देव! आपकी माया बड़ी प्रबल है, उससे मनुष्य तभी छूटता है, जब आप दया करते हैं।

विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी * मैं पाँवर पशु कवि अति कामी
नारि नयन सर जाहि न लागा * घोर क्रोध यम निसि जो जागा

हे स्वामी! सुर, नर, मुनि सभी विषयों में फँसे हैं, फिर मैं तो अज्ञानी पशु बन्दर और अत्यन्त कामी हूँ। जिसे स्त्री का नयन-बाण नहीं लगा, जो क्रोधरूपी महाघोर अँधेरी रात में जागता ही रहता है।

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया * सो नर तुम्ह समान रघुनाया
यह गुन साधन तें नहिं होई * तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई

और जिसने लोभरूपी फंदे में अपना गला नहीं फंसाया,हे नाथ ! वह पुरुष आपके समान है यह गुण किसी साधन से प्राप्त नहीं होते, आपकी दया से कोई २ मनुष्य ही इन्हें पाते हैं।

तब रघुपति बोले मुसुकाई * तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई
अब सोइ जतनु करहु मन लाई * जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई

तब श्रीरघुनाथजी हँसकर बोले–हे सुग्रीव ! तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही प्रयत्न करो–जिससे सीताजी की खबर मिले।

दोहा–एहि बिधि होत बतकही, आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि, देखिअ कीस बरूथ ॥२१॥

इस प्रकार बात-चीत हो रही थी कि बानरों के झुण्ड आ गये। नाना प्रकार के रंगों वाले बानर सब दिशाओं में दीख पड़े।

बानर कटुक उमा मैं देखा * सो मूरख जो करन चह लेखा
आइ राम पद नावहिं माथा * निरखि बदनु सब होहिं सनाथा

हे पार्वती ! बानरोंको वह सेना मैंने देखी थी। वह मूर्ख है,जो उनकी गिनती करना चाहे। सब बानर आकर श्रीरामजी के चरणों में माथा नवाते हैं और उनके दर्शन करके सनाथ होते हैं।

अस कपि एक न सेना माहीं * राम कुशल जेहि पूछी नाहीं
यह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई * बिश्वरूप ब्यापक रघुराई

ऐसा एक भी बन्दर सेना में नहीं था–जिससे श्रीरामजी ने कुशल न पूछी हो। यह प्रभु के लिए कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि वे विश्वरूप और सर्वव्यापक हैं।

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई * कह सुग्रीव सबहि समुझाई
राम काजु अरु मोर निहोरा * बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा

आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गये। तब सुग्रीव ने सबको समझाकर कहा कि हे भाइयो ! यह श्रीरामजी का कार्य है और मेरा अनुरोध है, इसलिए सब बानर-समूह चारों दिशाओ को जाओ।

जनकसुता कहुँ खोजहु जाई * मास दिवस महँ आयहु भाई
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ * आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ

हे भाइयो ! जानकीजी को जाकर ढूँढ़ो, परन्तु एक माह में लौट आना। जो कोई बिना खबर लिए समय बिताकर आवेगा, वह मुझे मरवाते ही बनेगा।

दोहा–बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरन्त।
तब सुग्रीवँ बोलाए, अंगद नल हनुमन्त ॥ २२ ॥

ऐसे वचन सुनकर सब बानर जहाँ-तहाँ उसी समय चल दिये। तब सुग्रीव ने अङ्गद नल और हनुमान आदि बानरों को बुलाया।

सुनहु नील अंगद हनुमाना * जामवन्त मतिधीर सुजाना

सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू * सीता सुधि पूँछहु सब काहू

और कहा—हे धीर-बुद्धि तथा सुजान-नील, अङ्गद, हनुमान, जामवन्त! तुम सब योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सबसे सीताजी का पता पूछना।

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु * रामचन्द्र कर काजु सँभारेहु

भानु पीठि सेइअ उर आगी * स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी

मन, कर्म, वचन से ही वही उपाय सोचना और श्रीरामचन्द्रजी का कार्य करना। सूर्य को पीठ से, अग्नि को हृदय से और स्वामी को सब छल त्याग कर सेवन करना चाहिए।

तजि माया सेइअ परलोका * मिटहि सकल भव सम्भव सोका

देह धरे कर यह फलु भाई * भजिअ राम सब काम बिहाई

माया को छोड़कर परलोक का सेवन करना चाहिए, जिससे संसार के शोक दूर हो जावें जन्म लेने का यही फल है कि सबको छोड़कर श्रीरामजी का भजन किया जाय।

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी * जो रघुबीर चरन अनुरागी

आयसु माँगु चरन सिरु नाई * चले हरषि सुमिरत रघुराई

इस संसार में वही गुणी और ज्ञानवान है, जो रघुनाथजी के चरणों का प्रेमी है। सब वानर आज्ञा पाकर चरणों में शीश नवाकर हृदय में प्रभु का ध्यान करते हुए चले।

पाछें पवन तनय सिरु नावा * जानि काजु प्रभु निकट बोलावा

परसा सीस सरोरुह पानी * कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी

सबसे पीछे हनुमानजी ने शीश नवाया। प्रभु ने कार्य का विचार करके उन्हें निकट बुलाया और अपना भक्त जानकर उनके शीश पर अपना कर-कमल रक्खा और अपने हाथ की अँगूठी उतार कर दी।

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु * कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु

हनुमत जन्म सुफल करि माना * चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता * राजनीति राखत सुरत्राता

फिर कहा कि तुम सीताजी को बहुत प्रकार से समझाना और मेरा विरह तथा बल समझाकर जल्दी लौट आना। हनुमानजी ने अपना जन्म सुफल जाना और हृदय में कृपा-निधान प्रभु को धारण करके चले।

दोहा—चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।

रामकाज लयलीन मन, बिसरा तनु कर छोह॥ २३॥

सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत तथा गुफाओं को खोजते हुए चले। वे श्रीरामजी के कार्य में लीन हैं, वह देह की सुध भी भूल गये।

कतहुँ होइ निसिचर सन भेटा * प्रान लेहिं एक एक चपेटा

बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं * कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं

कभी-कभी निशाचरों से भेंट हो जाती है, तो एक ही चपेट में उनके प्राण ले लेते हैं। अच्छी तरह से सब जंगल, पहाड़ आदि ढूंढ़ते हैं। कोई मुनि मिल जाता है, तो सब घेर लेते हैं।

लागि तृषा अतिशय अकुलाने * मिलइ न जल घन गहन भुलाने
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना * मरन चहत सब बिनु जलपाना

इतने में सबको प्यास लगी जिससे सब व्याकुल हो गये। जल नहीं मिला, घने जंगल में मार्ग भूल गये, तब हनुमानजी ने अनुमान किया कि बिना जल के सब मरना चाहते हैं।

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा * भूमि बिबर एक कौतुक देखा
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं * बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं

हनुमानजी ने एक पहाड़ पर चढ़कर चारों तरफ देखा तो पृथ्वी की एक गुफा में बड़ा आश्चर्य दिखाई दिया। बहुत से चक्रवाक, बगुला और हंस उड़ रहे थे, बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे थे।

गिरि ते उतरि पवन सुत आवा * सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा
आगें करि हनुमन्तहि लीन्हा * पैठे बिबर बिलम्ब न कीन्हा

हनुमानजी पहाड़ से उतर आये सबको ले जाकर वह गुफा दिखाई। तब सबने हनुमानजी को आगे कर लिया और उस बिल में तनिक भी विलम्ब न करके घुस गये।

दोहा–दीख जाइ उपवन बर, सर बिकसित बहु कुन्ज।
मन्दिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तप पुन्ज॥ २४॥

वहाँ जाकर एक सुन्दर बाग और तालाब देखा, जिसमें बहुत से कमल खिल रहे हैं। एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें एक तपस्विनी स्त्री बैठी है।

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा * पूछें निज बृत्तान्त सुनावा
तेहि तब कहा करहु जलपाना * खाहु सुरस सुन्दर फल नाना

दूर से ही उसे सबने शीश नवाया और पूछने पर अपना हाल कह सुनाया। तब उसने कहा-जलपान करो और सुन्दर रसीले फल खाओ।

मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए * तासु निकट पुनि सब चलि आए
तेहि सब आपनि कथा सुनाई * मैं अब जाव जहाँ रघुराई

तब सबने सरोवर में स्नान कर मीठे फल खाये और फिर सब उसके पास गये। उस स्त्री ने अपनी सारी कथा कह सुनाई और बोली–अब मैं वहां जाऊँगी-जहां श्रीरघुनाथजी हैं।

मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू * पैहहु सीतहि जनि पछिताहू
नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा * ठाढ़े सकल सिन्धु कें तीरा

तुम अपनी २ आंखें बंद करलो, इस बिल से बाहर पहुँच जाओगे। तुम्हें सीताजी का पता मिलेगा घबड़ाओ मत। नेत्र बंद कर खोलने पर क्या देखते हैं कि सब समुद्र के किनारे खड़े हैं।

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा * जाइ कमल पद नाएसि माथा

नाना भाँति विनय तेहि कीन्हीं * अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं

फिर वह स्त्री वहाँ गई जहाँ श्रीरघुनाथजी थे। जाकर उसने प्रभु के चरणों में सिर नवाया और नाना प्रकार से प्रभु की वन्दना की, तब प्रभु ने उसे अपनी अनन्य भक्ति दी।

दोहा—बदरीवन कहुँ सो गई, प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि रामचरन जुग, जे बन्दत अज ईस॥ २५॥

वह स्त्री फिर उन चरणों को जिनकी ब्रह्मादिक देवता वन्दना करते हैं, हृदय में धारण करके प्रभु की आज्ञा मान बद्रिकाश्रम को चली गई।

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं * बीती अवधि काजु कछु नाहीं
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता * बिनु सुधि लएँ करव का भ्राता

यहाँ वानर विचार कर रहे हैं कि समय तो व्यतीत होगया, परन्तु कार्य कुछ नहीं हुआ। सब मिलकर आपस में बात-चीत कर रहे हैं कि हे भाई! बिना सीताजी की खबर पाये। चलकर क्या करोगे?

कह अङ्गद लोचन भरि बारी * दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी
इहाँ न सुधि सीता कै पाई * उहाँ गएँ मारिहि कपिराई

अंगद नेत्रों में जल भरकर कहने लगा कि दोनों प्रकार से हमारा मरण है। यहाँ तो सीताजी की खबर नहीं मिली वहाँ जाने पर सुग्रीव मारेंगे।

पिता बधे पर मारत मोही * राखा राम निहोर न ओही
पुनि पुनि अङ्गद कह सब पाहीं * मरन भयउ कछु संसय नाहीं

पिता के मारे जाने पर सुग्रीव मुझे अवश्य मार डालते। परन्तु श्रीरामजी ने मुझे बचा लिया, इसमें सुग्रीव की कृपा नहीं है। अंगद बार-बार यही कहते हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

अङ्गद बचन सुनत कपि बीरा * बोलि न सकहिं नयन बह नीरा
छन एक सोच मगन होइ रहे * पुनि अस वचन कहत सब भए

अङ्गद के वचन सुन सब वानर चुप हैं, उनके नेत्रों से आँसू बह रहे हैं। एक क्षण-भर तो शोक मग्न रहे, और फिर सब लोग बोले—

हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना * नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना
अस कहि लवन सिंधुतट जाई * बैठे कपि सब दर्भ डसाई

हे चतुर युवराज! हम सीताजी की सुधि लिए बिना नहीं जायेंगे। ऐसा कह सब लवण सागर के किनारे कुछ बिछाकर बैठ गये।

जामवन्त अङ्गद दुख देखी * कहीं कथा उपदेश बिसेषी
तात राम कहुँ नर जनि मानहु * निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु

जामवन्त ने अङ्गद को दुखित देखकर विशेष उपदेश की कथा कही—हे तात! श्रीरामजी को मनुष्य मत समझो, उनको निराकार और परब्रह्म जानो।

हम सब सेवक अति बड़भागी * सन्तत सगुन ब्रह्म अनुरागी

हम सब सेवक बड़भागी हैं, जो सगुण ब्रह्म की सेवा में लगे हुए हैं।

दोहा—निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक सङ्ग तहँ, रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥२६॥

प्रभु अपनी इच्छा से देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अवतार लेते हैं। वहाँ वे सगुणोपासक मोक्ष त्यागकर उनकी सेवा में रहते हैं।

एहि विधि कथा कहहि बहु भाँती * गिरि कन्दरा सुनी सम्पाती
बाहेर होइ देखि बहु कीसा * मोहि अहार दीन्ह जगदीसा

बानर इस प्रकार नाना भाँति की कथा कह रहे हैं। उनकी बातें पहाड़ की खोह में सम्पाती ने सुनी। तब उसने बाहर आकर बहुत से बन्दर देखे और बोला—आज मुझे जगदीश्वर ने घर बैठे ही आहार भेज दिया।

आजु सबहिं कहँ भच्छन करऊँ * दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ
कबहुँ न मिलि भरि उदर अहारा * आजु दीन्ह विधि एकहिं बारा

आज सबको खा जाऊँगा बहुत दिन होगये बिना भोजन के मर रहा था। मुझे कभी पेट भर भोजन नहीं मिलता, सो आज विधाता ने एक ही बार में दे दिया।

डरपे गीध बचन सुनि काना * अब भा मरन सत्य हम जाना
कपि सब उठे गीध कहँ देखी * जामवन्त मन सोच विशेषी

गीध के ऐसे वचन कानों से सुन सब बानर डरे कि अब सचमुच ही मरना हुआ। सब बानर उस गीध को देखकर उठ खड़े हुए, परन्तु जामवन्त के मन में विशेष सोच था।

कह अङ्गद बिचारि मन माहीं * धन्य जटायू सम कोउ नाहीं
राम काजु कारन तनु त्यागी * हरिपुर गयउ परम बड़भागी

तब अंगद मन में विचार कर बोला—जटायु के समान धन्य कोई नहीं हुआ। श्रीरामजी के कार्य के निमित्त शरीर त्याग कर वह बड़ भागी बैकुण्ठ को गया।

सुनि खग हरष सोक जुत बानी * आवा निकट कपिन्ह भय मानी
तिन्हहि अभय कर पूछेसि जाई * कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई

सम्पाती ऐसी हर्ष और शोक युक्त वार्ता सुनकर निकट आया, सब बानर डर गये। उसने उनका डर दूर करके उनसे सब हाल पूछा, तब उन्होंने सारा वृतान्त उसे सुनाया।

सुनि सम्पाति बन्धु कै करनी * रघुपति महिमा बहु विधि बरनी

सम्पाती ने अपने भाई जटायु की ऐसी करनी सुनकर बहुत प्रकार से श्रीरघुनाथजी की महिमा वर्णन की। (और बोला—)

दोहा—मोहि लै जाहु सिंधु तट, देउँ तिलाञ्जलि ताहि।
बचन सहाय करिव मैं, पैहहु खोजहु जाहि ॥ २७ ॥

मुझे समुद्र के किनारे ले चलो मैं [illegible] तिलांजलि दूँ मैं [illegible] तुम्हारी

सहायता करूँगा तो तुम उन्हें पा जाओगे-जिन्हें ढूंढ़ रहे हो ।

अनुज क्रिया करि सागर तीरा * कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा
हम द्वौ बन्धु प्रथम तरुनाई * गगन गए रवि निकट उड़ाई

समुद्र के किनारे भाई को तिलांजलि देकर वह अपनी कथा कहने लगा—हे वीर वानरों सुनो, हम दोनों भाई अपनी जवानी में उड़ते हुए सूर्य के निकट पहुँचे ।

तेज न सहि सक सो फिरि आवा * मैं अभिमानी रवि निअरावा
जरे पंख अति तेज अपारा * परेउँ भूमि करि घोर चिकारा

जटायु तो तेज नहीं सह सका, इस कारण लौट आया, परन्तु मैं घमण्डी सूर्य के निकट जाने लगा । सूर्य के प्रचण्ड तेज से पंख जल गये, तब मैं बहुत चिल्लाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

मुनि एक नाम चन्द्रमा ओही * लागी दया देखि करि मोही
बहु प्रकार तेंहि ग्यान सुनावा * देहि जनित अभिमान छुड़ावा

वहाँ 'चन्द्रमा' नाम के एक मुनि थे, मुझे देखकर उन्हें दया लगी तो उन्होंने मुझे बहुत प्रकार से ज्ञान सुनाया और देह-जनित अभिमान को छुड़ा दिया ।

त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही * तासु नारि निसिचर पति हरिही
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता * तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता

मुनि ने मुझे बताया कि त्रेतायुग में भगवान मनुष्य-रूप में अवतार लेंगे । उनकी स्त्री को राक्षसराज हर ले जायगा, तब उन्हें ढूंढ़ने के लिए प्रभु दूतों को भेजेंगे, उनसे मिलकर तुम पवित्र हो जाओगे ।

जमिहहि पंख करसि जनि चिंता * तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता
मुनि कह गिरा सत्य भइ आजू * सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू

तुम्हारे पंख फिर जमेंगे, चिंता मत करो । उन दूतों को तुम सीताजी का पता बतला देना। आज उन मुनि की बात सत्य हुई तुम हमारी बात सुनकर अपने स्वामी का कार्य करो ।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका * तहँ रह रावन सहज असंका
तहँ असोक उपवन जहँ रहई * सीता बैठि सोच रत अहई

त्रिकूट पर्वत समुद्र के उस पार है, उस पर लंका बसी हुई है वहाँ स्वभाव से ही निडर रावण रहता है । वहाँ एक अशोक-वाटिका है, जहाँ पर सीताजी बैठी हुई सोच कर रही हैं ।

दोहा—मैं देखउँ तुम्ह नाहीं, गीधहि दृष्टि अपार ।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार ।। २८ ।।

मैं देख रहा हूँ, परन्तु तुम नहीं देख सकते । क्योंकि गिद्ध की दृष्टि अपार होती है । मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ, नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता करता ।

जो नाघइ सत जोजन सागर * करइ सो रामकाज मति आगर
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा * राम कृपाँ कस भयउ शरीरा

जो सौ योजन समुद्र लाँघ सकेगा, वही चतुर श्रीरामजी का कार्य करेगा। मुझे देखकर मन में धीरज धरो। देखो–श्रीरामजी की कृपा से मेरा शरीर कैसा होगया ?

पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं * अति अगाध भवसागर तरहीं
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई * राम हृदयँ धरि करहु उपाई

पापी भी जिनका नाम स्मरण करते हैं, वे अत्यन्त अपार भवसागर को पार कर जाते हैं। उनके दूत (तुम) कायरता छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में धारणकर उपाय करो।

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ * तिन्हकें मन अति बिस्मय भयऊ
निज निज बल सब काहू भाषा * पार जाइ कर संसय राखा

हे गरुड़जी ! ऐसे कहकर जब गीधराज (संपाती) चला गया। तब उन बानरों के मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी ने अपना-अपना बल कहा, परन्तु पार जाने में सन्देह प्रकट किया।

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा * नहिं तनु रहा प्रथम बल लेसा
जबहि त्रिविक्रम भए खरारी * तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी

ऋक्षराज जामवंत कहने लगे कि अब बूढ़ा होगया हूँ पहला-सा बल शरीर में लेशमात्र भी नहीं रहा। भगवान खरारी 'वामन' बने थे, तब मैं जवान और महा बलवान था।

* क्षेपक–वानरों का बल *

दोहा–घेरि अङ्गदहि कहा सब, अब कछु करहु उपाय।
है कोउ सुभट प्रवीन अस, जलधि लाँघ जो जाय॥ १ ॥

तब अङ्गद को घेरकर सब किसी ने कहा कि अब कुछ उपाय करो और बोले कि कोई ऐसा चतुर योद्धा भी है–जो समुद्र को लाँघ जाय ?

बोले बिकट सुनहु युवराजू * जो जन तीस उलाघेहुँ आजू
नील कहा चालीस मैं जाऊँ * आगे परत मोर नहिं पाऊँ

विकट बानर बोला-हे युवराज ! सुनो, मैं आज ही तीस योजन लाँघ सकता हूँ। नील ने कहा–मैं चालीस योजन जा सकता हूँ, परन्तु आगे मेरा पैर नहीं पड़ेगा।

नील वचन सुनि दुर्धर कहई * पञ्चासन जोजन बल अहई
बोल्यौ नल दोउ भुजा उठाई * जोजन साठ मोर गति भाई

नील के वचन सुनकर दुर्धर ने कहा–मेरी गति पचास योजन की है। तब नील ने दोनों भुजा उठाकर कहा–हे भाई ! मेरी गति साठ योजन की है।

निरखि सकल मुख कह रिच्छेसा * नहिं बल रहा प्रथम लवलेसा
वृद्ध भएँ बल ऐसा भाई * लाँघत पल मैं जलधिहि धाई

सबके मुख देखकर जामवन्त बोले–अब पहले-जैसा बल लेशमात्र भी मुझ में न रहा। हे भाई ! बुढ़ापे में भी ऐसा बल था कि मैं पलभर में ही समुद्र को लाँघ जाता।

एक दिन बद्रिका आश्रम गयऊ * विपिन विलोकि महासुख भयऊ
ब्रह्मज्ञानि एक विप्र सुजाना * बैठीं आधारित श्रीभगवाना

एक दिन बद्रिकाश्रम को गया, उस वन को देखकर मुझे बड़ा सुख हुआ। वहां एक विद्वान (ब्रह्मज्ञान) ब्राह्मण भगवान की आराधना कर रहा था।

ताहि बधन इक दानव आबा * देखा नयन क्रोध मोहि छावा
मुनि भय देखि गयउँ तेहि सामू * तेहि द्रुतगति कीन्ह अस कामू

उसे मारने के लिए एक दानव आया, उसे आंखों से देखकर मुझे बड़ा क्रोध हुआ। मुनि को भयभीत देखकर मैं उसके सामने गया, परन्तु उसने अत्यन्त शीघ्रता से यह काम किया—

त्रिस जोजन कर सैल उठाई * मारेसि मोर गौड़ में आई
लागत गिरि तनु सहा अपारा * भयो क्रोध ताहि अवनि पछारा

तीस योजन का एक पर्वत उठाया और उसे मेरे घुटनों में दे मारा। शरीर में वह गिरि-प्रहार लगते ही मैंने उसे सहकर और क्रोध करके उसको पृथ्वी पर पछाड़ दिया।

चीरे दोउ चरन करि कीसा * सुख पायो द्विज दीन्ह असीसा
सो बल नहिं अब तुम्हहिं बखानू * सुनत बात सब अचरज मानू

क्रोध करके मैंने उसके दोनों पैर पकड़ कर चीर डाला। तब ब्राह्मण ने सुख पाकर मुझे आशीष दी। वह बल मैं तुमसे नहीं कहता, क्योंकि तुम सुनकर आश्चर्य मानोगे।

सैल प्रहार लगेउ मम पाऊँ * जोजन नव पाँच मैं जाऊँ

मेरे पैर में पहाड़ की चोट लग गई, परन्तु तो भी पंचानवें योजन जा सकता हूँ।

* इति क्षेपक *

दोहा—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय धरी महँ दीन्ह मैं, सात प्रदिच्छन धाइ॥ २९॥

बलि को बांधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता परन्तु फिर भी मैंने दो घड़ी में दौड़कर उनकी सात परिक्रमा करली थी।

अङ्गद कहइ जाउँ मैं पारा * जियँ संसय कछु फिरती बारा
जामवन्त कह तुम्ह सब लायक * पठइअ किमि सबही कर नायक

अङ्गद ने कहा—मैं पार तो जा सकता हूँ, परन्तु लौटने में कुछ सन्देह होता है। जामवन्त ने कहा-तुम सब लायक हो, परन्तु सबके प्रधान हो। अतः तुम्हें कैसे भेजा जाय ?

कहई रीछपति सुनहु हनुमाना * का चुप साध रहेहु बलवाना
पवन तनय बल पवन समाना * बुधि बिबेक बिग्यान निधाना

ऋक्षराज जामवन्त कहने लगे—हे बलवान हनुमानजी ! सुनो, क्यों चुप साध रक्खी है ? आप पवन के पुत्र हो, तुम्हारा बल पवन के समान है, अतः तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान के निधान हो।

कवन सो काज कठिन जग माहीं * जो नहिं होय तात तुम्ह पाहीं

हे तात ! संसार में ऐसा कौन सा काम है, जो तुमसे नहीं हो सकता ?

* अथ क्षेपक महावीरजी के जन्म की कथा *

तब उत्पति अब कहौं सहेता * सुनहु सकल बैठे इहि रेता

हे महावीरजी ! अब मैं कारण सहित तुम्हारे जन्म की कथा कहता हूँ। सब लोग यहाँ रेती में बैठकर सुनो–

हिमचल इक पर्वत के पासा * कश्यप ऋषि तप तेज प्रकासा
दिग्गज इक ऐरावत के सम * आबा ऋषि सन्मुख दुर्धर यम

हिमालय पर्वत के पास तप के तेज से प्रकाशित हुय कश्यप ऋषि रहते थे। ऐरावत के समान एक हाथी-मानो कठिन यमराज ही हो ऋषि के सन्मुख दौड़ा।

निरखि ताहि ऋषि सकल डराने * चले न चरण सिथिल भयमाने
तात तोर तेहि वन कर राजा * केशरि नाम तेज बल छाजा

उसको देखकर सारे ऋषि डर गये, उनके पैर डर के कारण शिथिल होगये। चल नहीं सके। हे तात ! बड़े तेजस्वी 'केसरी' नामक तुम्हारे पिता उस बन के राजा थे।

सो गज देखि मुनीस निहोरा * हे कपि सकल शरण हैं तोरा
ऋषि दुख देखि दया मन माहीं * धायो तुरत तात बल बाहीं

उस हाथी को देखकर सब मुनि पुकार उठे-कपिराज ! हम सब आपकी शरण हैं। ऋषियों का दुःख देखकर उन्हें मन में दया आई और वे तुरन्त बड़े वेग से वहाँ जा पहुँचे।

भिर्‌यो ताहि इक मुष्टिक मारा * उभय दसन गहि भूमि पछारा
पर्‌यो धरनिकरि घोर चिकारा * तब मुनि होय प्रसन्न विचारा

केशरी ने उससे भिड़कर एक घूंसा मारा और दोनों दाँत पकड़कर भूमि पर पछाड़ दिया। वह घोर चीत्कार कर पृथ्वी पर गिर पड़ा सब मुनि ने प्रसन्न होकर विचार किया।

दोहा–तव पितु बहुबल देखि मन, मुनिवर दीन्ह असीस।
माँगु माँगु वर भाव मन, हे द्विजपाल कपीस॥ १॥

मन में तुम्हारे पिता का अधिक बल देखकर मुनि ने आशीर्वाद देकर कहा–हे द्विज बालक कपिराज ! जो मन में भावे, सो वर मांगो।

सानुकूल तपसी कहँ जानी * बोलत भयउ जोरि जुग पानी
जो प्रसन्न मो पर भगवाना * पुत्र देहु बल मरुत समाना

ऋषि को प्रसन्न जानकर तुम्हारे पिता दोनों हाथ जोड़कर बोले–हे भगवान ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हों तो मरुत के समान बली पुत्र दीजिए।

एवमस्तु कहि तब ऋषि गयऊ * आगिल चरित सुनहु जस भयऊ

माता तोरि अञ्जनी सती * रूप अपार हियँ नहिं रती

'एवमस्तु' कहकर ऋषि चले गये। अब आगे का वृत्तान्त जैसे हुआ, सो सुनो-तुम्हारी माता 'अंजनी' थी उनका रूप रति से भी सुन्दर था।

नव सत साजि शृङ्गार बनाई * बैठी शिखर शैल पर आई
त्रिविध समीर बहुत सुखदाई * निरखत वन शोभा अधिकाई

वे सोलह शृंगार करके पर्वत शिखर पर आ बैठी। उस समय शीतल, मन्द सुगन्धित पवन चल रही थी, वन की शोभा देखकर प्रसन्नता होती थी।

चीर उड़ावत पवन सुवरसा * भुजा दीर्घ करि चाहत परसा
देखि हेतु तब क्रोध करेही * लागी शाप देन पुनि तेही

पवनदेव ने उसे देखकर मोहित होकर पति की तरह चीर उड़ाकर और लम्बी भुजा करके उसे स्पर्श करना चाहा। यह देखकर तुम्हारी माता को क्रोध हुआ और वे शाप देने लगीं।

मारुत मधुरे बचन जु कहेऊ * शाप न देउ बचन सुन लेऊ
तव पति ऋषिसन सुत वर माँगा * ताते परसि अङ्ग तव लागा

तब पवनदेव ने मधुर वचन कहे—शाप मत दो, पहले बात सुनो। तुम्हारे पति ने ऋषि से पुत्र का वर मांगा, इसी कारण—मैं तुम्हारे को छूने लगा था।

निज काया धरि मिल्येउँ न तोही * काहे शाप देत तुम्ह मोही
अस कहि पवन गुप्त ह्वै रह्यऊ * सो तव मात पति सन कह्यऊ

मैं अपने शरीर से तुमसे नहीं मिला हूं, मुझे शाप क्यों देती हो? ऐसा कहकर पवन-देव अन्तर्ध्यान हो गये। तब तुम्हारी माता ने वे सब बातें अपने पति से कहीं।

अब तब जन्म कहब सुख मानी * सुनहु सकल कुलदीपक जानी
शुभ नक्षत्र शुभ घरी सुहाई * जन्मत भयउ देव बल पाई

अब सुख मानकर तुम्हारा जन्म कहता हूं। कुल का प्रकाशरूप जानकर उसे सब सुनो। शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी में देव-बल पाकर तुमने जन्म लिया। (जन्म-तिथि-कार्तिक बदी चौदश, सोमवार थी)।

पुनि वरदान पवन कर दरसा * वीरज तोही पिता कर परसा
उदित भए दम्पति सुख माने * करहिं केलि वन में मन माने

फिर पवनदेव ने वरदान दिया, हाथ से स्पर्श किया और कहा कि तुम मेरे समान बली होगे। तुम्हारे उत्पन्न होने से दम्पति सुख मानकर वन में मन-माना विहार करते थे।

एक दिवस माता की गोदा * करत रहेउ पय पान बिनोदा
देखेउ अरुण भानु छबि लाला * तरकि अकास गयेउ तत्काला

एक समय तुम माता की गोद में दूध पीते हुए खेल रहे थे, तब प्रातःकाल के लालवर्ण के सूर्य की शोभा को देखकर तुम किलकारी मार शीघ्रता से आकाश में उछल गये।

सूर्य ग्रहन गहँ भुजा पसारा * क्रोधित इन्द्र वज्र तव मारा

सूर्य को पकड़ने के लिये भुजा फैलाकर दौड़े, तब इन्द्र ने क्रोधित हो वज्र मारा।

दोहा—लागत वज्र महा कठिन, मूर्छित भे तुम्ह तात।
पवनदेव तब क्रोध करि, रोकी सिगरी बात॥ २॥

हे तात महावीरजी! अत्यन्त कठोर वज्र के लगने से तुम मूर्छित होगये तब पवनदेव ने क्रोधित होकर सब वायु रोक ली।

क्रोधित पवन वायु गति रोकी * व्याकुल तुरत भई तिरलोकी
अस्तुति सुरन्ह कीन्ह निज हेता * बोले शिव गुण ग्यान निकेता

क्रोधित होकर पवनदेव ने वायुकी गति रोक ली, तो तुरन्त ही तीनों लोक व्याकुल होगये। तब देवताओं ने अपने स्वार्थ के लिए विनती की, तव गुण और ज्ञान के भंडार शिवजी बोले—

धीर धरहु जनि होहु उदासा * सब मिलि चलहु पवन के पासा
शिव विरञ्चि सुर इन्द्र समेता * वायु के ढिंग चले सचेता

धैर्य धरो उदास मत होओ, सब मिलकर पवनदेव के पास चलो। तब शिव, ब्रह्मा इन्द्रादि सब देवता पवनदेव के पास आये।

तव सुत गन सूर्य गहि लीन्हा * स्वाँस समीर रोकि दुख दीन्हा
तजहु पवन रहे प्राण भलाई * तुमको सुयस होय जग भाई

वे बोले—तुम्हारे पुत्र ने आकाश में सूर्य को पकड़ लिया है और ऊपर से तुमने वायु को रोककर सबको दुःख दिया है। हे भाई! वायु को छोड़ दो, तो सबके प्राण रहें, इससे तुम्हारा भी संसार में सुयश होगा।

जो मन भाव लेहु वरदाना * तजहु समीर होइ कल्याना
देव गिरा सुनि सुन्दर बानी * बोलेउ तात जोरि जग पानी

जो मन को अच्छा लगे, वही वरदान माँग लो। तुरन्त पवन को छोड़ दो, जिससे सबका हित हो देवताओं की सुन्दर वाणी सुनकर पवनदेव दोनों हाथ जोड़कर बोले—

अमर अजीत सकल बलसागर * सुतहि देहु वर देव गुनागर
राम भक्त अरु निकट निवासी * यह वरदान देव बलरासी

हे देवताओ! मेरे पुत्र को अमर, अजय, बल का समुद्र और चतुर होने का वर दो और यह वरदान दो कि मेरा पुत्र श्रीराम का भक्त और उनके निकट रहने वाला हो।

एवमस्तु सब देवन्ह कीन्हा * पवन समीर छाँड़ि तब दीन्हा
दै वरदान देव सब गयऊ * बिचरे वनहिं महासुख भयऊ

देवताओं ने कहा—'ऐसा ही होगा।' तब पवनदेव ने वायु को छोड़ दिया। सब देवता वरदान देकर चले गये। (ब्रह्माजी ने वज्राङ्गी और अपनी शक्ति न व्यापने का वर दिया और अग्नि ने अग्नि से, इन्द्र ने वज्र से, शिवजी ने त्रिशूल से, वरुण ने जल और देवी ने वचन से उन्हें निर्भय कर दिया)। तब परम सुखी होकर हनुमानजी वन में विचरने लगे।

जब जब जायँ मुनिन्ह के तीरा * डारें फोर कमण्डल नीरा
विटप तोरि गिरि शिखर ढहावै * बल अति भूरि सङ्ग धुनि लावै

जब-जब मुनियों के निकट जायें, तो कमण्डल फोड़कर जल बहा दें। वृक्षों को तोड़, पर्वत के शिखर ढहा दें और महाबल के कारण शरीर को धुनें।

ऋषिन्ह शाप तब दीन्ह विचारी * भूलि जाहु निज पौरुष भारी
जब जब कोउ सुरति कराई * तब तब तुम्हरे बल व्है जाई

तब विचार कर ऋषियों ने शाप दिया कि तुम अपने प्रबल बल को भूल जाओगे और जब-जब तुम्हें कोई स्मरण करावेगा तब-तब तुम्हें बल हो आवेगा।

तात मातु कर प्राण समाना * इन्द्रजु हनी नाम हनुमाना
सो मैं तुम्हहिं सुनायउँ सबही * बोले महावीर सुनि तबही

तुम अपने माता-पिता को प्राणों के समान प्यारे हो। इन्द्र ने वज्र मारा तो ठोढ़ी-टेढ़ी होगए—इससे तुम्हारा नाम हनुमान हुआ। वह सब कथा मैंने तुम्हें सुना दी। यह सुनकर महावीरजी बोले—

तजहु सोक आनहु मतिधीरा * मोहि निश्चय सेवक रघुवीरा
हनुमत बचन सुनत सब कामा * जय जय जय सब करहिं बखाना

शोक का त्याग करो और मन में धीरज धारण करो, मैं निचश्य ही श्रीरघुनाथजी का सेवक हूँ। हनुमानजी के वचन सुनकर सब कोई जय-जयकार करने लगे।

होइ हैं सिद्ध राम कर राजा * अति सुख लहेउ हिये युवराजा
जामवन्त औरौ नल नीला * अङ्गद आदि सुभट बलशीला

अब श्रीरामजी का कार्य सिद्ध होगा, यह जानकर अङ्गदजी ने मनमें बहुत सुख पाया। जामवन्त, नल, नील तथा अङ्गद आदि जो बलवान योद्धा थे—

मिले सबै हनुमन्तहि धाई * राम काज लगि जानेसु भाई
कह हनुमन्त सिन्धु तनु देखी * करिहौं रघुपति काज विसेषी

सबने दौड़कर हनुमानजी से मिलकर कहा-श्रीरामजीका कार्य तुम करोगे। तब हनुमानजी ने समुद्र की ओर देखकर कहा कि मैं निश्चय ही श्रीरघुनाथजी का कार्य विशेष रूप से करूंगा।

तब ऋच्छेस अस बचन उचारा * सादर सुनहु समीर कुमारा

तब जामवन्त ऐसे वचन बोले—हे पवन पुत्र! आदर-पूर्वक सुनो— ॥ इति क्षेपक ॥

रामकाज लगि तब अवतारा * सुनतहिं भयउ पर्वताकारा

श्रीरामचन्द्रजी के कार्य के लिए ही तुम्हारा अवतार हुआ है। यह वचन सुनते ही हनुमानजी पर्वत के बराबर हो गये।

कनक बरनु तनु तेज विराजा * मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा
सिंहनाद करि बारहिं बारा * लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा

उनके स्वर्ण के समान रङ्ग वाले शरीर में ऐसा तेज आ गया, मानो दूसरा पर्वत का राजा सुमेरु पर्वत हो। बारम्बार सिंहनाद करके हनुमानजी बोले कि कहो तो खेल ही में इस खारे समुद्र को लाँघ जाऊँ।

सहित सहाय रावनहि मारी * आनेउँ इहाँ त्रिकूट उपारी
जामवन्द मैं पूँछउँ तोही * उचित सिखावन दीजहु मोही

और सेना सहित रावण को मारकर त्रिकूट-पर्वत को उखाड़ कर यहां ले आऊँ। हे जामवन्तजी! मैं तुमसे पूछता हूँ, मुझे उचित शिक्षा दीजिए।

एतना करहु तात तुम्ह जाई * सीतहिं देखि कहहु सुधि आई
तब निज भुजबल राजिव नैना * कौतुक लागि कपि संग सैना

(जामवन्त बोले-)हे तात! तुम जाकर इतना ही करो कि सीताजी को देखकर उनकी सुधि आकर कह दो, फिर कमल-नयन प्रभु अपने बाहुबल से खेल के लिए बानर-सेना साथ लेंगे।

छन्द—कपिसेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनि हैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानि हैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर नावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

बानरों की सेना साथमें ले, राक्षसों को मारकर श्रीरामजी-सीताजी को लावेंगे। त्रिलोकी को पवित्र करने वाले सुन्दर यश को देवता तथा नारदादि मुनि वर्णन करेंगे। जो मनुष्य श्रीरघुनाथजी के इस सुन्दर यश को सुनते, गाते, कहते और समझते हैं—वे परम पद पाते हैं। उसी सुयश को श्रीरघुनाथजी के चरणों का भ्रमण (तुलसीदास) गाता है।

दोहा—भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥३०क॥

श्रीरघुनाथजी का यश संसार-रूपी रोग की औषधि है। जो स्त्री-पुरुष इसे सुनेंगे, उनके सब मनोरथ त्रिसरारि (श्रीरामजी) सिद्ध करेंगे।

सो०—नीलोत्पल तनु श्याम, काम कोटि शोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक॥३०ख॥

जिनका नील-नमल के समान श्वाम-वर्ण है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है। जिनका नाम पापरूपी पक्षियों को बहेलिया के समान है, उनके गुण-समूह अवश्य सुनने चाहिये।

* मास पारायण—तेईसवाँ विश्राम *

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसेकलकलिकलुष विध्वंसे चतुर्थ सोपान समाप्तः ॥

कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का यह चतुर्थ सोपान समाप्त हुआ॥

* श्रीरामचन्द्राय नमः *



* अथ मङ्गलाचरणम् *

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं ।
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं ।
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूणामणिम् ।। १ ।।

जो शान्तः नित्य, प्रमाणों से परे, मोक्षरूपी शांति के दायक, ब्रह्मा, शिव और शेषजी से निरतन्तर सेवित वेदान्त से जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओं के प्रधान, माया से मनुष्य रूपधारी, कृपानिधान, रघुवंश में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि-राम 'राम' नामधारी जगदीश्वर हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं ।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये ।
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे ।
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।। २ ।।

हे श्रीरघुनाथजी ! मैं सत्य कहता हूं, इस पर भी आप तो अन्तर्यामी हैं । मेरे हृदय में कोई अभिलाषा नहीं है, मुझे अपनी पूर्ण भक्ति दीजिये और मन को काम आदि दोषों से रहित कर दीजिये ।

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं ।
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।।

सकल गुणनिधानं बानराणामधीशं।
रघुपति प्रियभक्त वातजातं नमामि॥ ३ ॥

अतुल बल के स्थान, सुमेरु पर्वत के समान देदीप्यमान, दिव्य देह वाले, राक्षसरूपी वन को अग्नि के समान, ज्ञानियों के अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों की खान, बानरों के स्वामी, श्रीरघुनाथजी के प्रिय-भक्त, पवन-पुत्र ऐसे हनुमानजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

जामवन्त के बचन सुहाए * सुनि हनुमन्त हृदय अति भाए
तबलगि मोहि पर खेहु तुम्ह भाई * सहि दुख कन्दमूल फल खाई

जामवन्त के वचन हनुमानजी के मन को बहुत प्रिय लगे और वे बोले—हे भाइयो! तुम सब दुःख सहकर और कन्द-मूल फल खाकर तब तक मेरी राह देखना—

जब लगि आवौं सीतहि देखी * होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी
यह कह नाइ सबन्हि कहुँ माथा * चले हरषि हियँ धरि रघुनाथा

जब तक मैं सीताजी को देखकर लौट न आऊँ। कार्य सिद्ध होगा, क्योंकि मुझे विशेष आनन्द हो रहा है। ऐसा कहकर सबको मस्तक नवाकर प्रसन्नतापूर्वक श्रीरघुनाथजी का हृदय में ध्यान करके हनुमानजी चले।

सिन्धु तीर एक भूधर सुन्दर * कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर
बार बार रघुबीर सँभारी * तरकेउ पवनतनय बल भारी

समुद्र के तट पर एक सुन्दर पर्वत था, उस पर खेल में ही कूदकर हनुमानजी चढ़ गये। महा बलवान हनुमानजी बारम्बार श्रीरघुनाथजी का स्मरण कर बड़े वेग से उछले।

जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता * चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना * एहि भाँति चलेउ हनुमाना
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी * कह मैनाक होहु श्रमहारी

जिस पर्वतपर पाँव रखकर हनुमानजी कूदे, वह तुरन्त पातालमें चला गया। जैसे-श्रीरघुनाथजी का अमोघ बाण छूटता है, वैसे ही हनुमानजी चले। समुद्र ने हनुमानजी को श्रीरघुनाथजी का दूत जानकर मैनाक से कहा—तुम इनकी थकावट को दूर करने वाले बन जाओ।

इन्द्र बज्र जा दिन कर लीन्हा * पर्बत सबै पंख बिनु कीन्हा
ता दिन मारुत कीन्ह सहाई * तासु तनय लंका को जाई

इन्द्र ने जिस दिन हाथ में वज्र लेकर सब पर्वतों के पंख काट डाले थे, उस दिन पवन देव ने तुम्हारी सहायता की थी, (तुम्हें उड़ाकर जिसने छिपा दिया)। अब उन्हीं के पुत्र लंका को जाते हैं, अतः उनकी सहायता करनी चाहिए।

सो०—सिन्धु बचन उर आनि, तुरत उठे मैनाक तब।
कपि कहँ कीन्ह प्रनाम, बार बार कर जोरि कें॥ १ ॥

सागर के वचन हृदय में मानकर मैनाक-पर्वत तुरन्त उठे और हनुमानजी को हाथ जोड़कर बारम्बार प्रणाम करके कहा कि विश्राम कीजिये।

दोहा—हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हे बिना, मोहि कहाँ बिश्राम ॥ १ ॥

हनुमानजी ने हाथ से छूकर उसे प्रणाम किया और बोले—हे भाई! श्रीरामचन्द्रजी का कार्य किये बिना मुझे विश्राम कहां ?

जात पवनसुत देवन्ह देखा * जाना चहैं बल बुद्धि बिसेषा
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता * पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता

देवताओं ने हनुमानजी को जाते हुए देखा तो उनके विशेष बल एवं बुद्धि को जानने के लिए 'सुरसा' नामक सांपों की माता को भेजा, उसने हनुमानजी के पास आकर यह बात कही—

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा * सुनत बचन कह पवनकुमारा
राम काजु करि फिर मैं आवौं * सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं

आज देवताओं ने मुझे अच्छा भोजन दिया है। यह सुनकर हनुमानजी हँसकर बोले—श्रीरामजी का कार्य करके लौट आऊँ और सीताजी की खबर प्रभु को सुना दूं।

तब तव बदन पैठिहउँ आई * सत्य कहउँ मोहि जान दे माई
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना * ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना

तब आदर तुम्हारे मुख में बैठूंगा। हे माता! सच कहता हूँ, मुझे जाने दो। जब किसी भी उपाय से न जाने दिया, तब हनुमानजी ने कहा-अच्छा तो मुझे खा क्यों नही लेतीं ?

जोजन भरि तेहि बदनु पसारा * कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ * तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ

जब उसने योजन भर का मुख फैलाया, तब हनुमानजी ने अपने शरीर को दुगुना कर लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया, तो हनुमानजी तुरन्त बत्तीस योजन होगये।

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा * तासु दुगुन कपि रूप देखावा
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा * अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा

सुरसा ने जैसे-जैसे वदन बढ़ाया, उससे दूना रूप हनुमानजी ने दिखाया। जब सुरसा ने सौ योजन का मुख किया, तब हनुमानजी ने बहुत छोटा-सा रूप धारण कर लिया।

बदन पैठि पुनि बाहेर आवा * मागी बिदा ताहि सिरु नावा
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा * बुधि बल मरमु तोर मैं पावा

और सुरसा के मुख में घुसकर फिर तुरन्त बाहर आ गये और सिर नवाकर विदा माँगी। तब सुरसा बोली—मुझे देवताओं ने जिस लिए भेजा था, सो मैंने तुम्हारी बुद्धि और बल का भेद जान लिया।

दोहा–राम काजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देई गई सो, हरषि चलेउ हनुमान॥ २॥

तुम बड़े बलवान् और बुद्धिमान हो, श्रीरामचन्द्रजी के सब कार्य करोगे। यह आशीर्वाद देकर वह चली गई, तब हनुमानजी प्रसन्न होकर चले।

निसिचर एक सिंधु महुँ रहई * करि माया नभु के खग गहई
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं * जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं

समुद्र में एक राक्षसी रहती थी, वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। जीव-जन्तु आकाश में उड़ते थे, उनकी परछाईं जल में देखकर–

गहइ छाँह सक सो न उड़ाई * एहि बिधि सदा गगन चर खाई
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा * तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा

वह माया से पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे, ऐसे वह सदैव आकाशचारियों को खाया करती थी। वही कपट हनुमानजी से किया, तो हनुमानजी ने उसे पहचान लिया।

ताहि मारि मारुतसुत बीरा * बारिधि पार गयउ मतिधीरा
तहाँ जाइ देखी बन सोभा * गुञ्जत चञ्चरीक मधु लोभा

और उसे मार कर पवन-पुत्र धीर-बुद्धि हनुमानजी समुद्र के पार जा पहुँचे। वहाँ जाकर वन की शोभा देखी-शहद के लोभ से भौंरे गुञ्जार रहे हैं।

नाना तरु फल फूल सुहाए * खग मृग वृन्द देखि मन भाए
सैल बिसाल देखि एक आगें * तापर कूदि चढ़ेउ भय त्यागें

नाना भाँति के वृक्ष फल-फूलों से सुशोभित हैं, पक्षी व पशुओं के झुण्ड देखकर हनुमानजी के मन को सुहावने लगे। आगे बड़ा भारी पर्वत देखकर उस पर हनुमानजी कूदकर चढ़ गये।

उमा न कछु कपि कै अधिकाई * प्रभु प्रताप जो कालहि खाई
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी * कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी

हे पार्वती! इसमें हनुमानजी की कुछ बड़ाई नहीं है, यह सब प्रभु का प्रताप है-जो काल को भी खा लेता है। पर्वत पर चढ़कर हनुमानजी ने लंका देखी, बहुत बड़े किले का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा * कनक कोटि कर परम प्रकासा

वह कोट बहुत ऊँचा है, चारों ओर समुद्र है, सोने के किले के कँगूरे बहुत चमकीले हैं।

छन्द–कनक कोटि बिचित्र मनि कृत सुन्दरायत अति घना।
चहुँ हट्ट ठट्ठ सुभट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरुथन्हि को गनै।
बहु रूप निसिचर जूथ अति बल सेन बरनत नहिं बनै॥

सोने का परकोट रंग-बिरंगी मणियों से जड़ा हुआ है, घर बहुत सुन्दर हैं। चौराहे, बाजार, अच्छी सड़कें और गलियों से सुशोभित नगर बहुत उत्तम रीति से बसा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरों के झुण्ड तथा पैदल और रथों को कौन गिन सकता है? बहुत प्रकार के रूप वाले महाबली राक्षसों की सेना का वर्णन करते नहीं बनता।

वन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अति बल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥

वन, बाग, बगीचे, फुलवाड़ी, तालाब कुएँ और बावड़ी शोभायमान हैं। मनुष्य, नाग और गन्धर्व-कन्यायें अपने रूप से मुनियों के चित्त को मोह लेती हैं। कहीं पर्वत के समान देह वाले महा बलवान् मल्ल गरज रहे हैं और अनेक अखाड़ों में बहुत भाँति से लड़ रहे हैं तथा एक दूसरे को ललकार रहे हैं,

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँदिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्हकी कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥

भयंकर देह वाले योद्धाओं के दल बड़ी सावधानी से नगर के चारों ओर पहरा दे रहे हैं। कहीं राक्षस-भैंसें, मनुष्य, गायें, गधे और बकरे भक्षण कर रहे हैं। तुलसीदासजीने इनकी कथा बहुत थोड़ी सी कही है, क्योंकि, यह श्रीरामजी के बाणरूपी तीर्थ में देह छोड़ अवश्य मोक्ष पावेंगे।

दोहा—पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पइसार॥ ३॥

बहुत से पहरेदारों को देखकर हनुमानजी ने मनमें विचारा कि बहुत छोटा-सा रूप धारण कर रात्रि के समय नगर में प्रवेश करूँ।

मसक समान रूप कपि धारी * लंकहि चलेउ सुमिरि नरहारी
नाम लंकिनी एक निसिचरी * सो कह चलेसि मोहि निन्दरी

हनुमानजी मच्छर के समान रूप धारण कर मनुष्यों में सिंहरूप श्रीरामजी का स्मरण करके लंका में चले। वहाँ लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी, वह बोली—तू मेरा निरादर करके कहाँ जाता है?

जानेसि नहीं मरमु सठ मोरा * मोर अहार जहाँ लगि चोरा
मुठिका एक महा कपि हनी * रुधिर बमत धरनी ढनमनी

रे शठ तू! मेरा भेद जानता है कि सब चोर ही मेरे आहार हैं। कपि ने उसके एक घूँसा

मारा, जिससे वह रुधिर-वमन करती हुई लुढ़क गई।

पुनि सम्भारि उठी सो लंका * जोरि पान कर बिनय ससंका
जब रावनहिं ब्रह्मा बर दीन्हा * चलत बिरञ्चि कहा मोहि चीन्हा

फिर सँभलकर लङ्किनी उठी और हाथ जोड़ शंका सहित प्रार्थना करने लगी-रावण को जब ब्रह्माजी ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे यह पहिचान बतलाई थी कि-

बिकल होसि तैं कपि के मारे * तब जानेसु निसिचर संघारे
तात मोर अति पुन्य बहूता * देखेउँ नयन राम कर दूता

जब तू बन्दर की मार से विकल हो जाय, तो जान लेना कि अब राक्षसों का संहार होने वाला है। हे तात! मेरे बड़े पुण्य-भाग्य हैं मैं नेत्रों से श्रीरामजी के दूत को देख पाई।

दोहा–तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तुल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥ ४ ॥

हे तात! स्वर्ग व मोक्ष का सुख तराजू के पलड़े में रखा जाय और जो पलभर के सत्संग का सुख है वह दूसरे पलड़े में रखा जाय, तो सब मिलकर भी सत्संग के बराबर नहीं होते।

प्रबिसि नगर सब कीजै काजा * हृदयँ राखि कौसलपुर राजा
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई * गोपद सिंधु अनल सितलाई

हृदय में श्रीरामजी का स्मरण कर नगर में प्रवेश कर सब कार्य कीजिए। उसको विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करता है, समुद्र गौ के समान हो जाता है, आग ठण्डी हो जाती है।

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताहीं * राम कृपा करि चितवा जाही
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना * पैठा नगर सुमिरि भगवाना

हे गरुड़! सुमेरु पर्वत उनको धूल के समान हो जाता है जिसको श्रीराम कृपादृष्टि से देखते हैं। बहुत छोटा रूप धारण कर हनुमानजी भगवान् का स्मरण कर नगर में घुसे।

मन्दिर मन्दिर प्रति कर सोधा * देखे जहँ तहँ अगनित जोधा
गयउ दसानन मन्दिर माहीं * अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं

उन्होंने प्रत्येक घर ढूँढ़ा, तो जहाँ-तहाँ अगणित योद्धा देखे, फिर रावण के महल में गये। वह बहुत ही विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सयन किए देखा कपि तेही * मन्दिर महुँ न दीख बैदेही
भवन एक पुनि दीख सुहावा * हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा

हनुमानजी ने रावण को सोते देखा, परन्तु महल में जानकीजी दिखाई नहीं पड़ीं। फिर एक सुन्दर भवन देखा, वहाँ भगवान का मन्दिर अलग बना हुआ था।

दोहा–रामायुद्ध अंकित गृह, शोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ, देखि देखि हरष कपिराइ ॥ ५ ॥

श्रीरामजी के धनुष-बाण से अंकित उस सुन्दर मन्दिर की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ तुलसी के नवीन वृक्ष समूहों को देखकर हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुए।

लङ्का निसिचर निकर निवासा * इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा
मन महुँ तरक करैं कपि लागा * तेहीं समय बिभीषनु जागा

परन्तु लंका में तो राक्षस-समूहों का निवास है, यहाँ सज्जन का वास कहाँ ? इस प्रकार मन में हनुमानजी तर्क करने लगे, उसी समय विभीषण जागे।

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा * हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी * साधु ते होइ न कारज हानी

उन्होंने 'राम-राम' स्मरण किया, सुनते ही हनुमानजी प्रसन्न हुए और उन्हें सज्जन जाना। (उन्होंने सोचा कि) इनसे हठ करके परिचय करूँगा, साधुजन से कार्य की हानि नहीं होती।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए * सुनत बिभीषन उठि तहँ आए
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई * बिप्र कहहु निज कथा बुझाई

ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमानजी ने वचन सुनाया, सुनते ही विभीषण उठकर वहां आये। प्रणाम करके कुशल पूछी और कहा-हे विप्र ! अपनी कथा समझाकर कहिये।

की तुम्ह हरि दासन्ह महुँ कोई * मोरें हृदय प्रीति अति होई
की तुम्ह राम चरन अनुरागी * आयहु मोहि करन बड़भागी

आप क्या हरिभक्तों में से कोई हैं ? क्योंकि मेरे हृदय में बहुत प्रीति उत्पन्न होरही है। अथवा श्रीरामजी के चरणों के कोई प्रेमी हैं-जो मुझे बड़भागी करने आये हैं।

दोहा–तब हनुमन्त कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम॥ ६॥

तब हनुमानजी ने सब राम-कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित होगये और श्रीरामजी के गुण-समूह स्मरण कर दोनों के मन प्रेम-मग्न हो गये।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी * जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा * करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा

(विभीषण बोले-) हे पवन पुत्र हनुमानजी ! सुनो, यहाँ हमारा रहना ऐसा है जैसे दाँतोंमें बेचारी जीभ रहती है। हे तात! मुझे अनाथ जानकर क्या कभी श्रीरामजी मुझ पर कृपा करेंगे?

तामस तनु कछु साधन नाहीं * प्रीति न पद सरोज मन माहीं
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता * बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता

मेरा तमोगुणी (राक्षस) शरीर है, साधन भी नहीं है, मनमें श्रीरामजी के चरणों में प्रीतिभी नहीं है, परन्तु हे हनुमानजी! अब मुझे विश्वास हुआ कि श्रीहरिकी कृपा के बिना संत नहीं मिलते।

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा * तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा

सुनहुँ बिभीषन प्रभु कै रीती * करहिं सदा सेवक पर प्रीती

जब श्रीरामजी की कृपाहै,तभी तो आपने हठ करके मुझे दर्शन दिये हैं। यह सुनकर हनुमानजी ने कहा-हे विभीषण!सुनो,प्रभु रामजीकी यही रीति है कि वे अपने भक्त पर सदा प्रीति करतेहैं।

कहहु कवन मैं परम कुलीना * कपि चञ्चल सबही बिधि हीना
प्रात लेइ जो नाम हमारा * तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा

कहो तो-मैं ही कौन-सा बड़ा कुलीन हूँ ? जाति का चंचल बन्दर सब प्रकार से हीन हूँ। प्रातःकाल जो मेरा नाम लेवे तो उसे भोजन भी न मिले।

दोहा—अस मैं अधम सखा सुनु, मोह पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ॥ ७ ॥

हे मित्र ! सुनो, ऐसा तो अधम हूँ, किन्तु मुझ पर भी श्रीरघुनाथजी ने कृपा की है। प्रभु के गुणों को स्मरण कर दोनों की आँखों में आँसू भर आये।

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी * फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी
एहि बिधि कहत राम गुनग्रामा * पावा अनिबाच्यि बिश्रामा

जो जान-बूझकर ऐसे स्वामी को भूल जाते हैं, वे मनुष्य दुःखी क्यों न हों ? इस भाँति श्रीरामचन्द्रजी के गुणों को कहते हुए दोनों ने अनिर्वचनीय विश्राम पाया।

पुनि सब कथा बिभीषन कही * जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता * देखी चहउँ जानकी माता

फिर विभीषण ने वह कथा कही-जिस प्रकार जानकीजी वहाँ रहती थीं ! तब हनुमान जी ने कहा-हे भाई ! सुनो, मैं माता जानकी को देखना चाहता हूँ।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई * चलेउ पवनसुत बिदा कराई
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवाँ * बन असोक सीता रह जहवाँ

विभीषण ने सब युक्ति सुनाई, तब हनुमानजी विदा माँगकर चले, फिर वही रूप धर-कर वहाँ गये-जहाँ अशोक-वन में सीताजी रहती थीं।

देखि मनहिं मन कीन्ह प्रनामा * बैठेहिं बीति जात निसि जामा
कृस तनु सीस जटा एक बेनी * जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी

हनुमानजी नेसीताजी को देख-मन ही मन प्रणाम किया। वहाँ बैठे२ रात बीती जाती है, देह दुर्बल होरही है,सिर पर जटाओं की बेनी है, हृदय में श्रीरामजी के गुणों को जप रही हैं।

दोहा—निज पद नयन दिएँ मन, राम पदकमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

सीताजी अपने चरणों की ओर टकटकी लगाकर देख रही हैं और मन श्रीरामजी के चरणों में लगा हुआ है। जानकीजी को दीन देखकर हनुमान बहुत दुःखी हुए।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई * करइ बिचारि करौं का भाई
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा * सङ्ग नारि बहु किएँ बनावा

हनुमानजी वृक्ष के पत्तों में छिपे रहे और विचार करने कि लगे भाई! अब क्या करना चाहिये? उस समय रावण आ पहुँचा, उसके साथ शृंगार किये बहुत-सी स्त्रियां थीं।

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा * साम दाम भय भेद दिखावा
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी * मन्दोदरी आदि सब रानी

उस दुष्ट ने सीताजी को बहुत भांति से समझाकर साम, दाम, भय और भेद दिखलाया। रावण बोला-हे चतुर सुन्दरी! सुनो, मन्दोदरी आदि सब रानियों को-

तव अनुचरी करउँ पन मोरा * एक बार बिलोकु मम ओरा
तृन धरि ओट कहति बैदेही * सुमिरि अवधिपति परम सनेही

मैं तुम्हारी दासी बनाऊँगा-यह मेरी प्रतिज्ञा है, तुम एक बार मेरी ओर देख लो। तब सीताजी परम स्नेही श्रीरामजी का स्मरण कर, तिनके की आड़ में रखकर बोलीं-

सुनु दसमुख खद्योत प्रकाशा * कबहुँ कि नलिनी करइ बिकाशा
अस मन समुझि कहति जानकी * खल सुधि नहिं रघुबीर बानकी

रे दशमुख! सुन-क्या जुगनूं के प्रकाश से कमलिनी कभी खिलती है? तू ऐसा ही मन में समझ ले। फिर जानकीजी बोलीं-रे दुष्ट! क्या तुझे श्रीरघुनाथजी के बाण की सुधि नहीं?

सठ सूनें हरि आनेहि मोही * अधम निलज्ज लाज नहिं तोही

रे मूर्ख! तू मुझे सूने में हर लाया है, रे अधर्म निर्लज्ज! तुझे लाज नहीं आती?

दोहा—आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसिआन॥ ९॥

अपने को 'जुगनू' के समान और श्रीरामचन्द्रजी को 'सूर्य' के समान सुनकर तथा कठोर वचन सुन रावण बहुत खिसिया कर क्रोध में तलवार निकाल कर बोला-

सीता तैं मम कृत अपमाना * कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना
नाहिं त सपदि मानु मम बानी * सुमुखि होति न जीवन हानी

हे सीते! तूने-मेरा अपमान किया है, इसलिए तेरा सिर इस पैनी तलवार से काटता हूँ, नहीं तो जल्दी से मेरी बात मान ले। हे सुमुखी! नहीं मानेगी तो जीवन की हानि होगी।

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर * प्रभु भुज करि कर सम दसकन्धर
सो भुज कण्ठ कि तव असि घोरा * सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा

(सीताजी बोलीं) रे मूर्ख! सुन, प्रभु की भुजा-जो नील-कमल की माला के समान व हाथी की सूँड़ के समान सुन्दर हैं, या तो वह भुजा ही मेरे कंठ में पड़ेगी या तेरी कठोर तलवार ही पड़ेगी-मेरा दृढ़ निश्चय है।

चन्द्रहास हरु मम परितापं * रघुपति बिरह अनल संतापं
सीतल निसित बहसि बर धारा * कह सीता हरु मम दुख भारा

हे चन्द्रहास ! श्रीरामजी के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरे दुःख को तू हर ले। तेरी श्रेष्ठ धार रात्रि-रूप है, अतः तू मेरे दुःख के भार को हर ले।

सुनत बचन पुनि मारन धावा * मयतनयाँ कहि नीति बुझावा
कहेसि सकल निसिचरहि बोलाई * सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई
मास दिवस महुँ कहा न माना * तौ मैं मारबि काढि कृपाना

सीताजी के ऐसे वचन सुन वह मारने दौड़ा, तब मन्दोदरी ने नीति-युक्त वचन कहकर उसे समझाया। रावण सब निसाचरों को बुलाकर बोला कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखाओ। यदि वह एक महीनेमें मेरा कहना नहीं मानेगी, तो उसे तलवारसे मारडालूँगा।

दोहा—भवन गयउ दसकन्धर, इहाँ पिसाचिनि बृन्द।
सीतहि त्रास दिखावहिं, धरहिं रूप बहु मन्द ॥१०॥

ऐसा कहकर रावण तो घर चला गया और यहां राक्षसियां नाना प्रकार से भयंकर रूपधारण करके सीताजी को डर दिखाने लगीं।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका * राम चरन रति निपुन बिबेका
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना * सीतहि सेइ करहु हित अपना

उसमें त्रिजटा नाम की राक्षसी ज्ञान में चतुर और श्रीरामजी के चरणों की प्रेमी थी। सबको बुलाकर उसने अपना स्वप्न सुनाया और कहा-सीताजीकी सेवा करके अपना भलाकरलो।

सपनें बानर लंका जारी * जातुधान सेना सब मारी
खर आरूढ़ नगन दससीसा * मुण्डित सिर खण्डित भुजबीसा

सपने में (मैंने देखा कि) बानर ने लंका जलादी और निसाचरों की सेना को मार डाला। रावण नंगे शरीर गधे पर सवार था, उसके सिर मुड़े हुए और बीसों भुजायें कटी हुई थीं।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई * लङ्का मनहुँ बिभीषन पाई
नगर फिरी रघुबीर दोहाई * तब प्रभु सीता बोलि पठाई

इस प्रकार वह दक्षिण-दिशा को जा रहा था और लंका मानो विभीषण को मिलगई। नगर भर में श्रीरघुनाथजी की दुहाई फिर गई, तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी * होइहि सत्य गएँ दिन चारी
तासु बचन सुनि ते सब डरीं * जनकसुता के चरनन्हि परीं

मैं पुकारकर (निश्चय पूर्वक) कहती हूं कि चार दिन के बाद यह सब सत्य हो जायगा। उसके वचन सुनकर सब राक्षसियां डर गईं और जानकीजी के चरणों में गिर पड़ीं।

दोहा—जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।

मास दिवस बीतें मोहि, मारिहि निसचर पोच ॥११॥

सब इधर-उधर चली गईं, तब सीताजी मन में चिन्ता करने लगीं कि एक महीने बाद नीच राक्षस मुझे मार डालेगा।

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी ❋ मातु बिपति सङ्गिनि तैं मोरी
तजौं देह कर बेगि उपाई ❋ दुसह बिरह अब नहिं सहि जाई

सीताजी त्रिजटा से हाथ जोड़कर बोलीं-हे माता! विपत्तिमें मेरा साथ देने वाली तुम्ही हो, कोई ऐसा उपाय शीघ्र करो,जिससे मैं अपना शरीर छोड़ दूँ। दुःसह विरह अब सहा नहीं जाता।

आनि काठि रचि चिता बनाई ❋ मातु अनल पुनि देह लगाई
सत्य करहि मम प्रीति सयानी ❋ सुनै को श्रवन सूल सम बानी

हे माता ! तुम लकड़ी लगाकर चिता बना दो और फिर उसमें आग लगादो। हे सयानी ! तुम मेरी प्रीति को सत्य करदो। अब इन कानों से शूल के समान वचन कौन सुने ?

सुनत वचन पदगहि समुझाएसि ❋ प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि
निसि अनल मिलि सुनुसुकुमारी ❋ असि कहि सो निज भवन सिधारी

त्रिजटा ने वचन सुनकर चरण पकड़कर उन्हें समझाया और श्रीरामजी का बल,प्रताप और सुयश सुनाया। (वह बोली–) हे राजकुमारी ! सुनो, रात्रि में अग्नि नहीं मिलेगी, ऐसा कहकर वह अपने घर को चली गई।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला ❋ मिलहि न पावक मिटहि न सूला
देखियत प्रकट गगन अंगारा ❋ अवनि न आवत एकउ तारा

सीताजी मनमें कहने लगीं-देव ही मेरे प्रतिकूल होगया,न तो अग्नि ही मिलती है,न दुःखही दूर होता है। आकाश में अँगारे दिखाई दे रहे हैं, परन्तु पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं गिरता।

पावकमय ससि स्त्रवत न आगी ❋ मानहुँ मोहि जानि हत भागी
सुनिहि बिनय मम बिटप असोका ❋ सत्य नाम करु हरु मम सोका

चन्द्रमा भी अग्निमय है, परन्तु मुझे भाग्यहीन जानकर यह भी अग्नि नहीं बरसाता। हे अशोक वृक्ष ! मेरी विनय सुन, मेरा शोक दूर कर और अपने नाम को सत्य कर।

नूतन किसलय अनल समाना ❋ देहु अगिन जगि करहु निदाना
देखि परम बिरहाकुल सीता ❋ सो छन कपिहि कल्प समबीता

तेरे नवीन पत्ते आग के समान लाल हैं। अग्नि दे, विरह की सीता को न जला। सीता को विरह से अत्यन्त व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमानजी को कल्प के समान बीता।

सो०–कपि करि हृदयँ बिचारि, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥१२॥

तब हनुमानजी ने हृदय में विचार कर अँगूठी डाल दी, मानो अशोक ने अँगारा दे दिया। सीताजी ने प्रसन्न होकर उसे उठा लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर * राम नाम अंकित अति सुन्दर
चकित चितव मुदरी पहिचानी * हरष विषाद हृदयँ अकुलानी

तब सीताजी ने 'राम' नाम से अंकित मनोहर मुद्रिका देखा। सीताजी चकित होकर उसे देखने लगीं और पहचानकर हर्ष एवं शोक से हृदय में व्याकुल हो गई।

जीति को सकइ अजय रघुराई * माया तें असि रची नहिं जाई
सीता मन बिचार कर नाना * मधुर बचन बोले हनुमाना

(वे सोचने लगीं-) श्रीरघुनाथजी तो अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? और माया से भी ऐसी मुद्रिका नहीं बन सकती। सीताजी मन में नाना प्रकार के विचार कर रही थीं, उसी समय हनुमानजी मधुर वचन बोले—

रामचन्द्र गुन बरनै लागा * सुनतहिं सीता कर दुख भागा
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई * आदिहु तें सब कथा सुनाई

वे श्रीरामजी के गुणों का गान करने लगे, जिन्हें सुनते ही सीताजी के दुःख दूर हो गये। वह मन और कान लगाकर सुनने लगीं, तब हनुमानजी ने शुरु से सब कथा सुनाई।

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई * कही सो प्रकट होत किन भाई
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ * फिरि बैठी मन बिसमय भयऊ

(सीताजी बोलीं-) जिसने कानोंको अमृतरूपी यह कथा कहीहै, हे भाई! वह सामने क्यों नहीं आता? हनुमानजो निकट गये तो उन्हें देख सीताजीने मुँह फेरलिया, उनके मनमें आश्चर्य हुआ

रामदूत मैं मातु जानकी * सत्य सपथ करुना निधान की
यह मुद्रिका मातु मैं आनी * दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी
नर बानरहिं सङ्ग कहु कैसें * कही कथा भई संगति जैसें

(हनुमानजीने कहा-) हे माता सीताजी! करुणामय की सच्ची सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं श्रीरामजी का ही दूत हूँ और यह मुद्रिका मैं ही लाया हूँ। श्रीरामजी ने पहिचान के लिये यह तुमको चिन्ह-रूप में दी है। (सीताजी ने पूछा-) मनुष्य और बन्दरों का साथ कैसे हुआ? तब वह कथा हनुमानजी ने कहकर सुनाई कि इस प्रकार साथ हुआ।

दोहा—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मनविश्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥१३॥

हनुमानजी के ऐसे प्रेम भरे वचन सुनकर सीताजी के हृदय में विश्वास हो गया। उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन, कर्म, से कृपासिंधु श्रीरामजी का सेवक है।

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी * सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना * भयहु तात मो कहुँ जल जाना

हरि-भक्त जानकर मनमें बड़ी प्रीति हुई, नेत्रोंमें जलभर आया और शरीर पुलकित हो गया।

(सीताजी बोलीं-) हे हनुमान ! वियोगरूपी समुद्र में गोते खाती मुझको तुम नावरूप होगये।

अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी * अनुज सहित सुख भवन खरारी
कोमल चित कृपालु रघुराई * कपि केहि हेतु धरी निठुराई

अब सुखधाम प्रभु की कुशल कहो, मैं बलिहारी जाऊँ-भाई सहित खर के शत्रु श्रीरामजी तो कोमल हृदय और दयालु हैं। हे तात ! फिर किस कारण से यह निष्ठुरता धारण करली है ?

सहज बानि सेवक सुखदायक * कबहुँक सुरति करत रघुनायक
कबहुँ नयन मम सीतल ताता * होइहहिं निरखि श्याम मृदु गाता

अपने सेवक को सुख देना तो उनको स्वाभाविक आदत है। क्या वे कभी मेरी याद भी करते हैं ? हे तात ! क्या कभी उनके कोमल श्याम शरीर को देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ?

वचनु न आव नयन धरे बारी * अहह नाथ हौं निपट बिसारी
देखि परम विरहाकुल सीता * बोला कपि मृदु वचन विनीता

मुख से वचन नहीं आता, नेत्रों में जल भर आया। हा नाथ ! आपने मुझे बिल्कुल ही भुला दिया। सीताजी को विरह से व्याकुल देखकर हनुमानजी सुन्दर और विनययुक्त बचन बोले-

मातु कुशल प्रभु अनुज समेता * तब दुख दुखी सुकृपा निकेता
जनि जननी मानहुँ जियँ ऊना * तुम्ह ते प्रेम राम कें दूना

हे माता ! कृपानिधान प्रभु लक्ष्मणजी सहित कुशल से हैं परन्तु वे आपके वियोग में बड़े दुःखी हैं। हे माता ! मन को छोटा न करिये, उनके हृदय में आपसे दूना प्रेम है।

दोहा—रघुपति कर सन्देसु अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद् गद् भयउ, भरे बिलोचन नीर ॥ १४ ॥

हे माता ! अब श्रीरघुनाथजी का सन्देश धैर्य पूर्वक सुनिये। ऐसा कहकर हनुमानजी गद्‌गद् होगये और उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भर आये।

कहेउ राम वियोग तब सीता * मो कहुँ सकल भए विपरीता
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू * कालनिसा सम निसि ससि भानू

(हनुमानजी बोले-) श्रीरामजी ने कहा है कि हे सीते ! तुम्हारे वियोग में मुझे सब वस्तुएं विपरीत हो गई हैं। वृक्षों के नये पत्ते अग्नि के समान, रात्रि काल के समान, और चन्द्रमा सूर्य के समान तथा-

कुबलय बिपिन कुन्त वन सरिसा * बारिद तृसत तेल जनु बरिसा
जे हित रहे करत तेइ पीरा * उरग स्वाँस सम त्रिबिध समीरा

कमल-वन भालों के वन के समान होगये हैं। बादल मानो गर्म तेल बरसाते हैं और जो हितैषी थे, वे पीड़ा देने वाले होगये हैं, त्रिविध-वायु साँप की फुसकार के समान होगई है।

कहेहू तें कछु दुखु घटि होई * काहि कहौं यह जान न कोई
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा * जानत प्रिया एक मन मोरा

कहने से दुःख कुछ कम हो जाता है, परन्तु किससे कहूँ ? यह दुःख कोई जान नहीं सकता। मेरे और तुम्हारे प्रेम का तत्व केवल एक मेरा मन ही जानता है।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं * जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं
प्रभु सन्देह सुनत बैदेही * मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही

सो वह मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है, मेरे प्रेम का सार इतने ही में जाने लेना। श्रीरामचन्द्रजी का संदेश सुन सीताजी प्रेम में मग्न होगईं, उन्हें शरीर की भी सुधि न रही।

कहि कपि हृदय धीर धरु माता * सुमिरि राम सेवक सुखदाता
उर आनहु रघुपति प्रभुताई * सुनि मम बचन तजहु कदराई

हनुमानजी कहने लगे—हे माता! सेवक को सुख देने वाले श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके हृदय में धैर्य धरो। उनकी प्रभुता को हृदय में रख मेरे वचनों को सुन व्याकुलता छोड़ दो।

दोहा—निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु, जरे निसाचर जानु ॥१५॥

राक्षसों के समूह पतङ्गों के तुल्य हैं और श्रीरघुनाथजी के वाण अग्नि के समान हैं। अतः हे माता! राक्षसों को भस्म हुआ जानकर हृदय में धीरज धरो।

जौं रघुबीर होति सुधि पाई * करते नहिं बिलम्बु रघुराई
राम बान रबि उएँ जानकी * तम बरूथ कहँ जातुधान की

हे माता! यदि श्रीरघुनाथजी ने खबर पाई होती तो-वे कदापि देर नहीं करते। रामरूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेनारूपी अन्धकार कहाँ रह सकता है?

अबहि मातु मैं जाउँ लिवाई * प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई
कछुक दिवस जननी धरु धीरा * कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं * तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं

हे माता? मैं आपको अभी लिवा ले चलूं, परन्तु प्रभु की शपथ है कि उनकी ऐसी आज्ञा नहीं है। अतः हे माता कुछ दिन और धैर्य धरो, बानरों के सहित श्रीरघुनाथजी यहाँ आवेंगे और राक्षसों को मारकर आपको ले जावेंगे। उनका यश नारद आदि तीनों लोकों में गावेंगे।

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना * जातुधान अति भट बलवाना
मोरें हृदयँ परम सन्देहा * सुनि कपि प्रकट कीन्ह निज देहा

सीताजी बोलीं-हे पुत्र! सब बन्दर तुम्हारे ही समान छोटे होंगे और राक्षस तो बड़े ही बलवान् हैं। अतः मेरे मन में बड़ी शंका है। यह सुन हनुमानजी ने अपना स्वरूप प्रकट किया।

कनक भूधराकार शरीरा * समर भयंकर अति बलबीरा
सीता मन भरोस तब भयऊ * पुनि लघुरूप पवनसुत लयऊ

सुमेरु-पर्वत के आकार का युद्ध में बड़ा ही डरावना और बलवान् शरीर था। तब सीताजी

के मन में भरोसा हुआ। हनुमानजी ने फिर वही छोटा रूप धारण कर लिया और बोले-

दोहा—सुनु माता साखा मृग, नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि, खाय परम लघु ब्याल ॥१६॥

हे माता! सुनो, बंदरों में बुद्धि-बल अधिक नहीं होता है, परन्तु प्रभु के प्रतापसे छोटा-सा साँप भी गरुड़ को खा सकता है।

मन सन्तोष सुनत कपि बानी * भगति प्रताप तेज बल सानी
आसिष दीन्ह राम प्रिय जाना * होहु तात बल सील निधाना

भक्ति, प्रताप, तेज और बल से भरे वचन सुनकर सीताजी के मन में सन्तोष हुआ। हनुमानजी को श्रीरामचन्द्रजी का प्रिय जानकर सीताजी ने आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल एवं बुद्धि के भण्डार होओ।

अजर अमर गुननिधि सुत होहू * करहिं बहुत रघुनायक छोहू
करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना * निर्भर प्रेम मगन हनुमाना

तुम्हें बुढ़ापा न आये तथा अमर और गुणनिधान होओ श्रीरघुनाथजी तुम पर सदा कृपा करें। 'श्रीरामजी सदा कृपा करें' ऐसा कानों से सुनकर हनुमानजी प्रेम में मग्न होगये।

बार बार नाएसि पद सीसा * बोला बचन जोरि कर सीसा
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता * आसिष तब अमोघ बिख्याता

बारम्बार सीताजी के चरणों में सिर नवाकर कपि हाथ जोड़कर बोले—हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया हूँ, आपका आशीर्वाद अटल है-यह बात प्रसिद्ध है।

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा * लागि देखि सुन्दर फल रूखा
सुनि सुत करहिं बिपिन रखवारी * परम सुभट रजनीचर भारी
तिन्हकर भय माता मोहि नाहीं * जौं तुम्ह सुख मानहुँ मन माहीं

हे माता! सुनो, वृक्षों में सुन्दर फल लगे देख-मुझे बड़ी भूख लगी है। (सीताजी बोलीं-) हे पुत्र! इस बगीचे की रक्षा बड़े ही बलवान् राक्षस-योद्धा करते हैं। (हनुमानजी ने कहा-) हे माता! यदि मन में सुख मानें तो—मुझे उनका भी डर नहीं है।

दोहा—देखि बुद्धिबल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि, तात मधुर फल खाहु ॥१७॥

जानकीजी ने हनुमानजी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर कहा—हे तात! जाओ, श्रीरघुनाथजी के चरणों को हृदय में रख मीठे फल खाओ।

चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा * फल खाएसि तरु तोरैं लागा
रहे तहाँ बहु भट रखवारे * कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे

वे सीताजी को सिर नवाकर बाग में घुसे और फलों को खाकर वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ बहुत से योद्धा रक्षक थे। उनमें से कुछ तो मार डाले कुछों ने रावण के पास जाकर पुकार की।

नाथ एक आवा कपि भारी * तेहि अशोक बाटिका उजारी
खाएसि फल अरु बिटप उजारे * रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे

हे नाथ! एक एक बड़ा भारी बन्दर आया है, उसने अशोक-वाटिका उजाड़ दी है। फलों को खाकर, पेड़ों को उखाड़ दिया है और रखवालों को मार-मारकर पृथ्वी पर डाल दिया है।

सुनि रावण पठए भट नाना * तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना
सब रजनीचर कपि संघारे * गए पुकारत कछु अधमारे

यह सुनकर रावण ने बहुत से योद्धा भेजे, जिन्हें देखकर हनुमानजी गरजे। कपि ने सब राक्षसों को मार डाला, जो कुछ अधमरे थे, उन्होंने जाकर पुकार की।

पुनि पठयउ तेहि अच्छकुमारा * चला सङ्ग लै सुभट अपारा
आवत देखि बिटप गहि तर्जा * ताहि निपाति महाधुनि गर्जा

फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा, तो वह असंख्य बड़े २ योद्धा लेकर चला। उसको आते देखकर हनुमानजी ने एक वृक्ष उखाड़कर ललकारा और उसे मारकर बड़े जोरसे गरजे।

दोहा—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाय पुकारेसि, प्रभु मर्कट बल भूरि ॥१८॥

कुछ मार डाले, कुछ मसल डाले, कुछ धूल में मिला दिये और कुछ भाग कर रावण से जाकर पुकारे हे नाथ! बन्दर बड़ा बलवान है।

सुन सुत बध लंकेस रिसाना * पठएसि मेघनाद बलवाना
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही * देखिअ कपिहि कहाँ कर आही

पुत्र का बध सुनकर रावण बड़ा क्रोधित हुआ और उसने बलवान मेघनाद को भेजा और कहा—हे पुत्र! उसको मारना नहीं, बाँधकर ले आना। जिससे यह देखा जाय कि वह बन्दर कहाँ का आया है?

चला इन्द्रजित अतुलित जोधा * बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा
कपि देखा दारुन भट आवा * कटकटाइ गर्जा अरु धावा

इन्द्र को जीतने वाला महायोद्धा मेघनाद चला। भाई का मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया। हनुमानजी ने देखा कि यह महान योद्धा है, तो वे बड़े जोर से गरजे और दौड़े।

अति विशाल तरु एक ऊखारा * बिरथ कीन्ह लंकेश कुमारा
रहे महाभट ताके संगा * गहि गहि कपि मर्दहि निज अंगा

एक भारी वृक्ष उखाड़कर मेघनाद के ऊपर प्रहारकर उसका रथ तोड़ उसे रथ से हीनकर दिया। उसके साथ जो बड़े-बड़े वीर योद्धा थे, उन्हें पकड़कर अपने शरीर से मसलने लगे।

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा * भिरे जुगल मानहुँ गजराजा
मुठिका मारि चढ़े तरु जाई * ताहि एक छन मुरछा आई

उनको मारकर हनुमानजी मेघनाद से लड़ने लगे, मानो दो गजराज भिड़ गये हों। उसे एक

घूंसा मारकर हनुमानजी पेड़ पर जा चढ़े और उसे क्षण भर के लिए मूर्छा आ गई।

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया * जीति न जाइ प्रभञ्जन जाया

फिर उठकर उसने बहुत-सी माया रची, परन्तु फिर भी पवन-पुत्र हनुमानजी जीते नहीं जाते।

दोहा—ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा, कपि मन कीन्ह विचार।
जौं न ब्रह्म सर मानउँ, महिमा मिटइ अपार ॥१९॥

तब उसने ब्रह्मास्त्र लिया। हनुमानजी ने मन में विचार किया कि यदि इस ब्रह्म-अस्त्र को निष्फल करता हूं तो इसकी अपार महिमा घट जायगी।

ब्रह्मबान कपि कहुं तेहि मारा * परतिहु बार कटकु संघारा
तेहि देखा कपि मुरछित भयऊ * नागपाश बाँधेसि ले गयऊ

उसने हनुमानजी को ब्रह्मास्त्र मारा, परन्तु गिरते समय भी बहुत-सी सेना का नाशकर दिया। जब उसने जाना कि हनुमानजी मूर्छित होगये, तब इन्हें नागपास में बांधकर ले गया।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी * भव बन्धन काटहिं नर ज्ञानी
तासु दूत कि बँधि तर आवा * प्रभु कारजु लगि कपिहि बँधावा

हे पार्वती! सुनो, जिसका नाम जपकर ज्ञानी मनुष्य संसारके बंधनसे छूट जाते हैं, उनका दूत भी कहीं बँध सकता है? किन्तु स्वामी के कार्य के लिए हनुमान ने अपने को बँधा लिया?

कपि बन्धन सुनु निसिचर धाए * कोतुक लागि सभा सब आए
दसमुख सभा देखि कपि जाई * कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई

बन्दर का बांधा जाना सुन राक्षस दौड़े और कौतुक के हेतु सभा में आये। हनुमानजी ने रावण की सभा देखी, उसके ऐश्वर्य का वर्णन कुछ किया नहीं जाता।

कर जोरें सुर दिसिप विनीता * भृकुटि विलोकत सकल सभीता
देखि प्रताप न कपि मन संका * जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका

दिग्पाल हाथ जोड़े हुए नम्र-भाव से खड़े हैं और डरते हुए सब रावण की भृकुटी देख रहे हैं। ऐसे वैभव को देखकर भी हनुमानजी के हृदय में तनिक भी शंका न हुई, जैसे सर्पों में गरुण निशंक रहता है।

दोहा—कपिहि बिलोकि दसानन, विहँसा कहि दुर्बाद।
सुत वध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदयँ विषाद ॥ २० ॥

हनुमानजी को देखकर रावण दुर्वचन कहकर खूब हंसा। परन्तु फिर पुत्र का बध याद करके उसके हृदय में बहुत दुःख हुआ।

कह लंकेश कवन तैं कीसा * केहि कें बल घालेसि वन खीसा
को धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही * देखउँ अति असंक सठ तोही

रावणने कहा—रे बंदर! तू कौन है? किसके बल से तूने मेरी वाटिका का नाश किया है? क्या तूने मेरा नाम कभी कानों से नहीं सुना? रे मूर्ख! तू बड़ा निडर दिखाई देता है।

मारे निसिचर केहि अपराधा * कहु सठतोहि न प्रान कइ बाधा
सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया * पाइ जासु बल बिरचित माया

तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा ? रे मूर्ख ! क्या तुझे प्राणों का भय नहीं ? (हनुमानजी बोले-) हे रावण ! सुन, जिस परब्रह्म के बल से माया अनेक ब्रह्माण्डों की रचना कर डालती है-

जाकें बल बिरञ्चि हरि ईसा * पालत सृजत हरत दससीसा
जा बल सीस धरत सहसानन * अण्डकोष समेत गिरि कानन

जिसके बल से ब्रह्मा, विष्णु और महादेव-तीनों संसार को रचते-पालते और नाश करते हैं और जिसके बल से शेषजी जंगलों और पर्वतों सहित पृथ्वी को सिर पर धारण किये हैं।

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता * तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता
हर को दण्ड कठिन जेहि भञ्जा * तेहि समेत नृप दल मद गञ्जा
खरदूषन त्रिशिरा अरु बाली * बधे सकल अतुलित बलसाली

जिस ईश्वरने देवताओं की रक्षा ले लिए और तुम्हारे जैसे दुष्टों को दंड देने के लिए नाना प्रकार के रूप धारण किये,जिसने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ा और सब राजाओं के घमंड का नाश कर दिया और जिसने खरदूषण, त्रिशिरा, बालि आदि बड़े २ योद्धाओं का बध कर डाला।

दोहा—जाके बल लवलेस तें, जितहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जासु तुम्ह, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥२१॥

जिसके बल के लेश-मात्र से तूने सब चराचर (विश्व) को जीत लिया, जिसकी प्यारी स्त्री को तू चुरा लाया है, मैं उन्हीं का दूत हूँ।

जानउँ मैं तुम्हार प्रभुताई * सहसबाहु सन परी लराई
समर बालि सन करि जस पावा * सुनि कपि बचन बिहँसि बिहरावा

तुम्हारी प्रभुताको मैं जानता हूँ। तुम सहस्त्रबाहु से लड़े थे और बालि के साथ युद्ध करके तो तुम्हें बड़ा यश प्राप्त हुआ था। हनुमानजी के ऐसे वचन सुनकर रावण ने हँसकर टाल दिया।

खायउँ फल प्रभु लागी भूखा * कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा
सब कें देह परम प्रिय स्वामी * मारेहु मोरि कुमारग गामी

हे स्वामी ! मुझे भूख लगी थी, इसलिए फल मैंने खाये और बानरी-स्वभाव से वृक्षों को तोड़ा। हे दैत्यराज ! अपना शरीर सबको प्रिय है, कुमार्गी राक्षस मुझे मारने लगे।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे * तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा * कीन्ह चहउँ निजप्रभु कर काजा

जिन राक्षसों ने मुझे मारा-उनको मैंने भी मारा, इस पर भी तुम्हारा पुत्र मेघनाद मुझे बाँध लाया। मुझको अपने बाँधे जाने की लाज नहीं है, मैं अपने प्रभु का कार्य करना चाहता हूँ।

बिनती करउँ जोरि कर रावन * सुनहु मान तजि मोर सिखावन

देखउ तुम्ह निज कुलहि विचारी * भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी

हे रावण ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ कि अभिमान को छोड़कर मेरी शिक्षा को सुनो । तुम अपने कुल को विचार कर देखो और भक्त-भयहारी को भजो ।

जाकें डर अति काल डेराई * जो सुन असुर चराचर खाई
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै * मोरे कहें जानकी दीजै

जो देवता, दानव और संसार के सब चराचर को खा जाता है, वह काल भी जिसके डर से डरता है, उससे कभी शत्रुता न करो और मेरे कहने से जानकीजी को लौटा दो ।

दोहा—प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि ।
गएँ शरन प्रभु राखि है, सब अपराध बिसारि ॥ २२ ॥

खर के शत्रु-श्रीरामजी प्रणतपाल तथा दया के समुद्र हैं । शरण में जाने पर तुम्हारे अपराध को भूलकर तुमको अपनी शरण में लेंगे ।

राम चरन पङ्कज उर धरहू * लंका अचल राजु तुम्ह करहू
ऋषि पुलस्ति जसु विमल मयङ्का * तेहि ससि महुँ जनि होहु कलङ्का

तुम श्रीरामजी के चरण-कमलों को हृदय में धारण करो और लंका में अटल राज्य करो । पुलस्त्य-ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा है, उसमें तुम कलंक मत बनो ।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा * देखु विचारि त्यागि मद मोहा
बसन हीन नहिं सोह सुरारी * सब भूषन भूषित वर नारी

अहंकार व अज्ञान को छोड़कर हृदय में विचार कर देखो कि बिना-राम के वाणी शोभा नहीं पाती । हे देव शत्रु ! सुन्दर स्त्री अनेक आभूषणों से सुसज्जित होने पर भी बिना वस्त्रों के शोभा नहीं पाती ।

राम बिमुख सम्पति प्रभुताई * जाइ रही पाई बिनु पाई
सजल सूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं * बरसि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं

श्रीरामजीसे विमुख होकर यश ऐश्वर्य और संपत्ति पाई हुई भी जाती रहेगी और न पाने के समान है । जिन नदियों में सोता नहीं होता, उनका जल वर्षा होने के पश्चात् सूख जाता है ।

सुनु दसकण्ठ कहउँ पन रोपी * विमुख राम त्राता नहिं कोपी
शंकर सहस विष्नु अज तोही * सकहिं न राखि राम कर द्रोही

हे रावण ! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि श्रीरामजी से विमुख मनुष्य का रक्षक कोई नहीं है ! हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्माजी भी श्रीरामचन्द्रजी के शत्रु-तुम्हारी रक्षा न कर सकेंगे ।

दोहा—मोह मूल बहु सूलप्रद, त्यागहु तुम्ह अभिमान ।
भजहु राम रघुनाथ कहि, कृपासिंधु भगवान ॥२३॥

जो अभिमान-मोह की जड़ और बहुत से दुःखों को देने वाला है, उसे तुम त्याग दो । और कृपासिंधु रघुकुल के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो ।

जदपि कही कपि अति हित बानी * भगति विवेक बिरत नय सानी
बोला बिहँसि महा अभिमानी * मिला हमहि कपि गुरु बड़ ग्यानी

यद्यपि हनुमानजी ने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से भरी हुए भलाई की बात कही, तो भी अभिमानी रावण हँसकर कहने लगा कि यह बंदर तो मुझे बड़ा ज्ञानी गुरू मिला है।

मृत्यु निकट आई खल तोही * लागेसि अधम सिखावन मोही
उल्टा होइहि कह हनुमाना * मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना

रे दुष्ट ! तेरी मृत्यु निकट आगई और तू उपदेश देने चला है। (हनुमानजी बोले-) उसका उल्टा होगा, (अर्थात्-तेरी मौत निकट आ गई है) तुझे मति-भ्रम होगया, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञात होता है।

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना * हरहु न बेगि मूढ़ कर प्राना
सुनत निसाचर मारन धाए * सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए

हनुमानजी के वचन सुन रावण बहुत क्रोधित होकर बोला-इस मूर्ख के प्राण ही क्यों नहीं ले लेते ? यह सुनकर राक्षस मारने दौड़े उसी समय मन्त्रियों सहित विभीषण आगये।

नाइ सीस करि विनय बहूता * नीति विरोध न मारिअ दूता
आन दण्ड कछु करिअ गोसाँई * सबहीं कहा मन्त्र भल भाई

शीश नवाकर और बहुत विनय करके विभीषण ने रावण से कहा-हे महाराज ! दूत को मारना उचित नहीं। यह नीति के विरुद्ध है, अतः इसे कोई और दण्ड दीजिये। सबने कहा-हे भाई ! यह सलाह ठीक है।

सुनत बिहँसि बोला दसकन्धर * अंग भंग कर पठइअ बन्दर

यह सुनकर रावण हँसकर कहने लगा-अच्छा इस बानर को अंग-भंग करके भेज दो।

दोहा—कपि कें ममता पूँछ पर, सबहि कहउँ समुझाय।
तेल बोरि पट बाँधि पुन, पावक देहु लगाय ॥ २४ ॥

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बन्दर की ममता पूँछ पर अधिक रहती है। अतः उसी को तेल में डुबोकर, कपड़ा बाँधकर आग लगा दो।

पूँछहीन बन्दर तहँ जाइहि * तब सठ निज नाथहिं लै आइहि
जिन्हके कीन्हिसि बहुत बड़ाई * देखेउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई

यह पूँछ-हीन होकर वहाँ जायगा, तब यह मूर्ख अपने स्वामी को लेकर आवेगा। जिनकी इसने बहुत ही बढ़ाई की है, मैं उनकी प्रभुता देखना चाहता हूँ।

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना * भइ सहाय सारद मैं जाना
जातुधान सुनि रावन वचना * लागे रचै मूढ़ सोइ रचना

यह वचन सुनकर हनुमानजी मन में मुस्कराये कि मुझे ज्ञात होता है-सरस्वतीजी ने सहायता की है। रावण के वचन सुन मूर्ख निशाचर वही तैयारी करने लगे।

रहा न नगर वसन घृत तेला * बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला

कौतुक कहँ आए पुरवासी * मारहिं लात करहिं बहु हाँसी

लंका में वस्त्र, घी और तेल नहीं रहा और हनुमानजी ने यह खेल किया पूंछ बढ़ा ली। नगर के लोग तमाशा देखने आये, वे हनुमानजी को लात मारते और हँसी करते हैं।

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी * नगर फेरि पुनि पूँछ पजारी
पावक जरत देखि हनुमन्ता * भयउ परम लघु रूप तुरन्ता
निबुक चढ़ेउ कपि कनक अटारी * भईं सभीत निसाचर नारी

ढोल बज रहे हैं, सब तालियां पीट रहे हैं। हनुमानजी को सारी लंका में घुमाकर पूंछ में आग लगा दी। आग लगी देखकर हनुमानजी ने तुरन्त ही बहुत छोटा शरीर कर लिया और कूदकर सोने की अटारियों पर चढ़ गये। देखकर निसाचरों की स्त्रियां डर गईं।

दोहा—हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास॥ २५॥

भगवान की प्रेरणा से उस समय उन्नचासों पवन चलने लगे। तब हनुमानजी अट्ठहास करके गरजे और बढ़कर आकाश से जा लगे।

देह बिसाल परम हरुआई * मन्दिर तें मन्दिर चढ़ि धाई
जरइ नगर भा लोग बिहाला * झपट लपट बहु कोटि कराला

शरीर बहुत बड़ा था, परन्तु हलका था। वे एक भवन से दूसरे पर दौड़कर चढ़ जाते हैं। लंका जल रही है, उसमें करोड़ों कराल लपटें निकल रही हैं, जिससे लोग बेहाल हो गये।

तातु मातु हा सुनिय पुकारा * एहिं अवसर को हमहि उबारा
हम जो कहा यह कपि नहिं होई * बानर रूप धरें सुर कोई

हा बाप! हा माता! पुकार रहे हैं, इस समय हमें कौन बचावेगा? हमने पहले ही कहा था कि यह बन्दर नहीं है, कोई देवता है—बन्दर का रूप धरकर आया है।

साधु अवग्या कर फलु ऐसा * जरइ नगर अनाथ कर जैसा
जारा नगरु निमिष एक माहीं * एक बिभीषन कर गृह नाहीं

महात्माओं का अपमान करने का फल ऐसा ही होता है। अनाथ के नगर के समान नगर जल रहा है। महावीरजी ने एक क्षण में सारे नगर को जला दिया, केवल एक विभीषण का घर नहीं जला।

ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा * जरा न सो तेहि कारन गिरिजा
उलटि पलटि लंका सब जारी * कूदि परा पुनि सिंधु मझारी

(शिवजी कहते हैं—) हे पार्वती! हनुमानजी तो उन्हीं के दूत हैं, जिन्होंने अग्नि को बनाया है—इसी कारण वे जले नहीं। हनुमानजी ने सारी लंका को उलट-पलट कर जलाया और फिर समुद्र में कूद पड़े।

दोहा—पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥ २६॥

फिर हनुमानजी पूंछ बुझाकर थकावट दूर करके और छोटा-सा रूप बनाकर जानकीजी के आगे हाथ जोड़कर जा खड़े हुए।

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा * जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा
चूड़ामणि उतार तब दयऊ * हरष समेत पवनसुत लयऊ

और बोले-हे माता ! मुझे कुछ चिन्ह दीजिए, जैसे रघुनाथजी ने मुझे (मुद्रिका) दी थी। तब सीताजी ने चूणामणि उतार कर दी तो हनुमानजी ने उसे प्रसन्नता पूर्वक ले लिया।

कहेउ तात अस मोर प्रनामा * सब प्रकार प्रभु पूरन कामा
दीनदयालु बिरिदु सम्भारी * हरहु नाथ मम संकट भारी

(सीताजी बोलीं–) हे तात ! प्रभु से मेरा प्रणाम कहकर, ऐसा कहना कि हे प्रभु ! आप तो सब प्रकार से पूर्णकाम हैं। अतः आप अपने दीनदयालु होने के यश को याद करके मेरे भारी संकट को दूर करिये।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु * बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु
मास दिवस महुँ नाथ न आवा * तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा

हे तात ! इन्द्र के पुत्र जयन्त की कथा सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप स्मरण कराना। हे नाथ ! आप महीने भर न आवेंगे, तो मुझे जीवित न पावेंगे।

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना * तुम्हहूँ तात कहत अब जाना
तोहि देखि सीतलि भइ छाती * पुनि मोकहुँ सोइ दिन सोइ राती

हे कपि ! कहो मैं किस तरह अपने प्राण रक्खूँ ? तुम भी तो अब जाने के लिए कहते हो। तुम्हें देखकर कुछ छाती ठण्डी हुई थी, अब फिर मेरे लिए वही दिन और वही रात होगी।

* क्षेपक–श्रीजानकीजी का विरह वर्णन *

दोहा–जिमि मनि बिनु व्याकुल भुजँग, जल बिनु व्याकुल मीन।
तिमि देखे रघुनाथ बिनु, तलफत हौं मैं दीन॥ १॥

जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल रहता है और जल के बिना मछली व्याकुल रहती है वैसे ही श्रीरघुनाथजी को देखे बिना में दुःखी हूँ।

कब धौं बिधि पहुँचाइ हैं, फिर कोसलपुर तात।
भरत शत्रुघ्न लोग सब, कब लइहैं मुद मात॥ २॥

हे तात हनुमानजी ! न जाने विधाता हमें अयोध्या फिर कब पहुँचावेगा। सब माताओं सहित भरत, शत्रुघ्न और अन्य सभी लोग कब आनन्द पावेंगे ?

होइहि मङ्गल काजु सब, पुजि हैं याचक काम।
नखसिख कब अवलोकिहौं, रघुपति छबि अभिराम॥ ३॥

कब मङ्गल मंगल कार्य सिद्ध होंगे और याचकों की इच्छायें पूर्ण होंगी। मैं श्रीरामजी

को नख से शिख तक मनोहर छवि कब देखूंगी ?

शीशमुकुट मणि जटित, श्रवनन कुण्डल लोल।
जगमगात कब देखिहौं, टोपी दिए अमोल ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी को मणियों से जड़ित मुकुट शिर पर धरे, कानों में सुन्दर कुण्डल पहिने और अनमोल जगमगाती टोपी धारण किये मैं कब देखूंगी ?

अलकें सींची अतर सो, निकट कपोलन मुक्त।
भरि लोचन कब देखिहौं, कुसुम कलिन संयुक्त ॥ ५ ॥

इत्र से सींची कपोलों के निकट लहराती हुई तथा जिनमें कुसुम-कलियां लगी हुई हैं। ऐसी अलकों को कब नेत्र भरकर देखूंगी ?

भाल तिलक भाषित सुभग, भृकुटि धन अनुहारि।
भूरि भाग्य कब देखिहौं, नयनन्हि पलंक बिसारि ॥ ६ ॥

मस्तक पर सुन्दर तिलक किये, धनुष के समान भौंह वाले उन प्रभु को मैं बड़भागिनी कब नेत्रों के पलक बिसार कर देखूंगी ?

चञ्चल चारू बिसाल मुख, लोचन मोचन मान।
चितवनु दिसि कब देखिहौं, मन सों कर कुरबान ॥ ७ ॥

विशाल, सुन्दर, चंचल, सुखप्रद और मान को दूर करने वाले, मेरी ओर देखते हुए प्रभु के नेत्रों से अपना मन बलिहारी करके कब देखूंगी ?

करि तुण्ड सम नासिका, लटकन की छवि भूरि।
कब चकोर सम देखिहौं, मुख मयंक तृन तूरि ॥ ८ ॥

तोते के समान नासिका और उसमें लटकन अत्यन्त शोभा से युक्त चन्द्रमा के तुल्य मुख को चकोर के समान तृण तोड़कर कब देखूंगी ?

अरुण अधिर दाड़िम दसन, रसन चारु मृदु हास।
हे हरि कब अवलोकि हौं, ससि करि सरिस प्रकास ॥ ९ ॥

हे कपि ! जिनके अधर लाल, दांत दाड़िम के समान, रसना सुन्दर और हास्य मृदु है उन चन्द्रमा के समान प्रकाशयुक्त स्वामी का मैं कब दर्शन करूंगी ?

मधुर बचन जन मन हरन, कब सुनिहौं निज काम।
चिबुक चारु कब देखिहौं, चितवन अमिय समान ॥१०॥

भक्तों के मन को हरने वाले वचन मैं अपने कानों से कब सुनूंगी ? वह सुन्दर ठोड़ी और अमृत के समान चितवन मैं कब देखूंगी ?

दोहा—कम्बु कण्ठ तुलसी सुभग, मणि मोतिन की माल।
उर विशाल अवलोकि हौं, कब त्रिबली सुख जाल ॥ ११ ॥

शंख के समान कण्ठ, जिसमें सुन्दर तुलसी और मणियों की माला पहिने हैं, विशाल वक्ष-स्थल और सुख की तीन रेखाओं को मैं कब देखूँगी ?

भुज विशाल करि करि सरिस, करतल कमल समान।
सहित विभूषन देखि हौं, कब लीन्हें धनु बान ॥ १२ ॥

हाथी की सूँड़ के समान विशाल भुजाओं तथा कमल के समान हाथों को—जो कि आभूषणों से युक्त हैं, धनुष-वाण लिए मैं कब देखूँगी ?

झीग झगा पहिरें ललित, ता ऊपर पटपीत।
कब निज नयन सिराहि हौं, देखि उदर उपवीत ॥ १३ ॥

सुन्दर महीन झवला पहिने उस पर पीताम्बर डाले, यज्ञोपवीत से युक्त प्रभु के उदर का दर्शन मैं अपने नेत्रों से कब करूँगी ?

* इति क्षेपक *

दोहा—जनकसुतहि समुझाइ कर, बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरनकमल सिरु नाइ कपि, गवन राम पहिं कीन्ह ॥ २७ ॥

हनुमानजी ने सीताजी को बहुत प्रकार से समझाकर धीरज दिया और उनके चरण कमलों में सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी के पास चल दिये।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी * गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी
नाँघि सिंधु एहि पारसि आवा * सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा

चलते समय बड़े जोर की गर्जना की, जिसे सुनकर निशाचरों की स्त्रियों के गर्भ गिर गये। समुद्र के इस पार आये, तब बानरों ने आनन्द-ध्वनि सुनाई।

हरषे सब बिलोकि हनुमाना * नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा * कीन्हेहि रामचन्द्र कर काजा

हनुमानजी को देखकर सब बहुत प्रसन्न हुए और अपना नया जन्म समझा। हनुमानजी का मुख प्रसन्न था और शरीर में तेज विराजमान था। उसे देखकर वे जान गये कि यह श्रीरामचन्द्रजी का कार्य कर आये हैं।

मिले सकल अति भए सुखारी * तलफत मीन पाव जिमि वारी
चले हरिष रघुनायक पासा * पूँछत कहत नबल इतिहासा

सब बड़ी प्रसन्नता से सुखी होकर मिले, जैसे तड़पती हुई मछली को पानी मिलजावे। सब बानर प्रसन्न हो नई-२ कथायें कहते और नवीन इतिहास पूछते हुए रघुनाथजी के पास चले।

तब मधुवन भीतर सब आए * अङ्गद सम्मत मधु फल खाए

रखवारे जब बरजन लागे * मुष्ठि प्रहार हनत सब भागे

तब बानर मधुवन के भीतर आये और अङ्गद की सम्मति से मीठे फल खाये। जब रखवाले मना करने लगे तो मारे मुक्कों के उन्हें भगा दिया।

दोहा—जाइ पुकारे ते सब, वन उजार जुवराज।
सुनि सुग्रीव हरषि कपि, करि आए प्रभु काज ॥ २८ ॥

उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अङ्गद ने वन उजाड़ डाला। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि बानर प्रभु का कार्य कर आये हैं।

जौं न होति सीता सुधि पाई * मधुवन के फल सकहिं कि खाई
एहि विधि मन विचार कर राजा * आए गए कपि सहित समाजा

यदि सीताजी की खबर न मिली होती, तो वे मधुवन के फल कैसे खा सकते थे ? राजा सुग्रीव इस प्रकार मनमें विचार कर ही रहे थे कि सब वानरों का समाज वहाँ आगया।

आए सबन्हि नावा पद सीसा * मिलेउ सबन्हि अति प्रेम करीसा
पूँछि कुसल कुसल पद देखी * राम कृपा भा काजु बिसेषी

सबने आकर चरणों में शीश नवाया, तब वानरराज सबसे बड़े प्रेम से मिले। सुग्रीव ने कुशल पूछी तो बानरों ने कहा—आपके चरणों के दर्शन से ही कुशल है, श्रीरामजी की कृपा से विशेष कार्य बना है।

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना * राखे सकल कपिन्ह के प्राना
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ * कपिन्ह समेत रघुपति पहिं चलेऊ

हे नाथ ! हनुमानजी ने कार्य पूरा किया और सब बानरों के प्राण बचाये। यह सुनकर सुग्रीव फिर हनुमानजी से मिले और सब बानरों सहित श्रीरघुनाथजी के पास चले।

राम कपिन्ह जब आवत देखा * किएँ काजु मन हरष बिसेषा
फटकि सिला बैठे द्वौ भाई * परे सकल कपि चरनन्हि जाई

श्रीरामचन्द्रजी ने जब वानरों को आते देखा, जो कार्य पूर्ण होने से बड़े प्रसन्न-चित्त थे। दोनों भाई स्फटिक-शिला पर बैठे हुए थे तब बानर जाकर उनके चरणों में गिर गये।

दोहा—प्रीति सहित सब भेंट, रघुपति करुना पुञ्ज।
पूँछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद कञ्ज ॥ २६ ॥

करुनानिधान श्रीरघुनाथजी सब बानरों से प्रीति पूर्वक मिले और कुशल पूछी। तब (वानरों ने कहा—) हे नाथ आपके चरणकमलों को देखने से सब कुशल है।

जामवन्त कह सुनु रघुराया * जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया
ताहि सदा शुभ कुशल निरन्तर * सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर

जामवन्त ने कहा-हे श्रीरघुनाथजी सुनिये, जिस पर आप कृपा करते हैं उसका सदा भला होता है और सदा कुशल बनी रहती है। सुर, नर, मुनि सब उस पर प्रसन्न रहते हैं।

जासु त्रिजयी त्रिनयी गुनसागर * तासु सुजसु त्रैलोक उजागर
प्रभु की कृपा भयउ सबु काजू * जन्म हमार सुफल भा आजू

वही विजयी-विनयी और वही गुणों का समुद्र है, उसीका उज्जवल यश तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। हे नाथ! आपकी कृपा से सब काम पूर्ण हो गया और हमारा जन्म सफल हो गया।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी * सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी
पवन तनय के चरित सुहाए * जामवन्त रघुपतिहि सुनाए

हे नाथ! हनुमानजी ने जो कार्य किया है, वह हजारों मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। जामवन्त ने हनुमानजी के मनोहर चरित्र श्री रघुनाथजी को सुनाये।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए * पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए
कहत तात केहि भाँति जानकी * रहित करित रक्षा स्वप्रान की

सुनकर कृपासिन्धु के मनको वे बहुत प्रिय लगे और उन्होंने हनुमानजीको प्रसन्न हो फिर हृदय से लगा लिया और बोले—हे तात जानकीजी किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?

दोहा—नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित, जाहिं प्रान केहि बाट ॥३०॥

(हनुमानजी बोले—) आपका 'नाम' अहिनिस रक्षक है, आपका 'ध्यान' ही किवाड़ हैं, नेत्रों में आपके 'चरणरूपी' ताले पड़े हैं, फिर यह प्राण किस मार्ग से जावें?

चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही * रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही
नाथ जुगल लोचन भरि बारी * बचन कहे कछु जनक कुमारी

चलते समय मुझे यह चूणामणि दी है। जिसे लेकर श्रीरघुनाथजी ने हृदय से लगा लिया, हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जानकीजी ने कुछ वचन कहे हैं—

अनुज समेत गहेउ प्रभु चरना * दीनबन्धु प्रनतारित हरना
मन क्रम वचन चरन अनुगामी * केहि अपराध नाथ हौं त्यागी

भाई लक्ष्मण सहित प्रभु के चरण पकड़कर विनय करना कि आप दीनबन्धु व शरणागत के दुःख दूर करने वाले हैं। फिर मैं तो मन, कर्म, और वचन से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ, फिर किस अपराध से प्रभु ने मुझे त्याग दिया?

अवगुन एक मोरि मैं जाना * बिछुरन प्रान न कीन्ह पयाना
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा * निसरत प्रान करहि हठि बाधा

हां एक अपराध मैं स्वीकार करती हूँ कि आपके बिछुड़ते ही मेरे प्राण नहीं चले गये। हे नाथ! यह अपराध तो नेत्रों का है, जो प्राणों के निकलने में हठ करके बाधा करते हैं।

बिरह अगिनि तनु सूल समीरा * स्वास जरइ छन माँहि सरीरा
नयनस्रवहिं जलु निज हित लागी * जरैं न पाव देह बिरहागी

वियोग अग्नि है, शरीर रुई है श्वांस वायु है, क्षण भरमें शरोर जल सकता है, पर नेत्र अपने हितार्थ आपके दर्शन की आशा से जल बरसाते हैं। जिससे विरहाग्नि से भी शरीर जल नहीं पाता।

सीता कै अति बिपति बिसाला * बिनहिं कहें भल दीनदयाला

सीताजी की विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु ! उसका न कहना ही भला है।

दोहा—निमिष निमिष करुनानिधि, जाहि कलप सम बीति।
बेगि चलहु प्रभु आनिअ, भुजबल खलदल जीति ॥३१॥

हे करुणानिधान ! सीताजी का एक २ क्षण एक कल्प के समान बीत रहा है। हे प्रभु ! आप जल्दी चलकर अपनी भुजाओं के बल से इन दुष्टों के बल का नाश करके सीताजी को ले आइये।

सुनु सीता दुख प्रभु सुख अयना * भरि आए जल राजिव नयना
बचन कायँ मन मम गति जाही * सपनेहुँ होइहिं बिपति कि ताहीं

सीताजी का दुःख सुनकर सुखके धाम श्रीरामजीके कमल-नेत्रोंमें जल भर आया। (वे बोले-) मन, कर्म, वचन से जिन्हें मेरा ही भरोसा है, क्या उन्हें स्वप्न में भी दुःख हो सकता है ?

कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई * जब तव सुमिरन भजन न होई
केतिक बात प्रभु जातुधान की * रिपुहि जीति आनिबी जानकी

हनुमानजी ने कहा-हे नाथ ! विपत्ति तब ही है, जब आपके भजन का स्मरण न हो। राक्षसों की क्या चिन्ता है ? शत्रु को जीतकर जानकीजी को ले आइये।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी * नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी
प्रति उपकार करौं का तोरा * सन्मुख होइ न सकहि मन मोरा

(श्रीरामजी बोले—) हे हनुमान ! सुनो तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मुनि मनुष्य कोई भी देहधारी नहीं है। इसके बदले में तुम्हारा क्या उपकार करूँ ? मेरा मन भी तुम्हारे सामने नहीं हो सकता !

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं * देखेउँ करि बिचारि मन माहीं
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता * लोचन नीर पुलक अति गाता

हे पुत्र ! सुनो, मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता, मैंने मनमें विचार कर देख लिया है। श्रीरामजी बारम्बार हनुमानजी की ओर देख रहे हैं, नेत्रों में प्रेमाश्रु हैं, और देह पुलकित है।

दोहा—सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ॥३२॥

प्रभु के वचन सुनकर और उनका मुख तथा पुलकित अंग देखकर हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुए और 'हे भगवान ! मेरी रक्षा करो' कहते हुए चरणों में गिर पड़े।

बार बार प्रभु चहइ उठावा * प्रेम मगन तेहि उठब न भावा
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा * सुमिर सो दसा मगन गौरीसा

प्रभु बार-बार उनको उठाना चाहते हैं, परन्तु प्रेम-मगन उनको उठना भला नहीं लगता।

प्रभु के कर-कमल हनुमानजी के सिर पर हैं, उस दशा को स्मरण कर शिवजी प्रेम-मग्न होगये।

सावधान मन करि पुनि शंकर * लागे कहन कथा अति सुन्दर
कपि उठाइ पुनि हृदयँ लगावा * कर गहि परम निकट बैठावा

फिर शिवजी मन को सावधान कर अति सुन्दर कथा कहने लगे। प्रभु ने हनुमानजी को उठाकर हृदय से लगा लिया और हाथ पकड़ कर निकट बैठाया।

कहु कपि रावन पालित लंका * केहि बिधि दहेउ दुर्ग अतिबंका
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना * बोला बचन बिगत अभिमाना

वे बोले-हे हनुमान! यह तो बताओ कि रावण से रक्षित लङ्का के उस सुदृढ़ किले को तुमने किस प्रकार जलाया? प्रभु को प्रसन्न जानकर हनुमानजी अभिमान रहित वचन बोले-

साखा मृग कै बड़ि मनुसाई * साखा तें साखा सर जाई
नाँघि सिन्धु हाटक पर जारा * निसिचरगन बिधि बिपिन उजारा
सो सब तव प्रताप रघुराई * नाथ न कछू मोरि प्रभुताई

हे नाथ! बन्दरों में केवल इतना ही बल होता है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर कूद सकें, मैंने जो समुद्र लांघकर स्वर्ण का नगर जला था और निशाचरों को मारकर अशोक-वाटिका उजाड़ दी। हे श्रीरघुनाथजी! यह आपका ही प्रताप है, इसमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं है।

दोहा—ताकहुँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रताप बड़वानलहिं, जारि सकइ खलु तूल॥ ३३॥

हे नाथ! जिस पर आप प्रसन्न हों। उसके लिए कुछ भी नहीं है। आपके प्रताप से रुई भी अग्नि को भस्म कर सकती है।

नाथ भगति अति सुख दायनी * देहु कृपा करि अनपायनी
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी * एवमस्तु तब कहेउ भवानी

हे नाथ! सब सुखों को देने वाली निश्चल-भक्ति मुझे कृपा करके दीजिए। हे पार्वती! हनुमानजी की अत्यन्त सरल वाणी सुनकर प्रभु ने एवमस्तु कहा।

उमा राम सुभाउ जेहि जाना * ताहि भजनु तजि भाव न आना
यह संवाद जासु उर आवा * रघुपति चरन भगति सोइ पावा

हे पार्वती! जिन्होंने श्रीरामजी का स्वभाव जान लिया, उन्हें भजन छोड़कर दूसरी कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती। यह कथा जिसके हृदय में आ गई, वह श्रीरघुनाथजी के चरणों की भक्ति पागया।

सुनि प्रभु वचन कहहिं कपिवृन्दा * जय जय जय कृपाल सुखकन्दा
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा * कहा चलैं कर करहु बनावा

प्रभु के वचन सुन वानरों के समूह कहने लगे-दयालु आनन्दकन्द श्रीरामजी की जय हो जय हो। तब श्रीरघुनाथजी ने सुग्रीव को बुलाया और कहा कि अब चलने की तैयारी करो।

अब बिलम्बु केहि कारन कीजै * तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजै
कौतिक देखि सुमन बहु बरषी * नभ ते भवन चले सुर हरषी

अब देर किसलिये करते हो ? शीघ्र ही वानरों को आज्ञा दो। यह लीला देख देवता लोग आकाश से पुष्प बरसाकर प्रसन्न हो अपने-अपने घर चले।

दोहा—कपिपति बेगि बोलाए, आयसु जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ ॥ ३४ ॥

सुग्रीव ने शीघ्र ही वानरों को बुलाया, सेनापतियों के झुण्ड आ गये। वानर-भालुओं में नाना प्रकार के रङ्ग और उनका बल अतुलित है।

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा * गर्जहिं भालु महाबल कीसा
देखी राम सकल कपि सेना * चितइ कृपा करि राजिव नैना

वे वानर श्रीरामजी के चरणकमलों में शीश नवाते हैं। महा बलवान रीछ-वानर गरज रहे हैं। श्रीरामजी ने वानरों की सेना देखी और कमल-नेत्रों से कृपावृष्टि उन पर डाली।

राम कृपा बल पाइ कपिन्दा * भए पच्छजुत मनहुँ गिरिन्दा
हरषि राम तब कीन्ह पयाना * सगुन भए सुभ सुन्दर नाना

श्रीराम-कृपा का बल पाकर वानर मानो पंखों वाले बड़े पहाड़ हो गये। श्रीरामजी ने प्रसन्न होकर गमन किया तो अनेक सुन्दर शुभ-शकुन हुए।

जासु सकल मङ्गलमय कीती * तासु पयान सगुन यह नीती
प्रभु पयान जाना बैदेहीं * फरकि बाम अंग जनु कहि देहीं

जिनकी कीर्ति मङ्गलमय है, उनके गमन पर शकुन होना लीला-मात्र है। सीताजी ने भी प्रभु का प्रस्थान जान लिया, मानो बाम-अङ्ग फड़क कर कह देते हैं।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई * असगुन भयउ रावनहि सोई
चला कटुक को बरनैं पारा * गर्जहिं बानर भालु अपारा

जो-जो शकुन जानकीजी को हुए, वही अपशकुन रावण को हुए। सेना चली, कोई उनकी सीमा को नहीं पा सकता। अपार वानर-भालू गर्जना कर रहे हैं।

नख आयुध गिरि पादपधारी * चले गगन महि इच्छाचारी
केहरि नाद भालु कपि करहीं * डगमगाइ दिग्गज चिक्करहीं

नख ही उनके हथियार हैं, कोई वृक्ष, कोई पर्वत धारण किये हुए पृथ्वी अथवा आकाश में इच्छानुसार जारहे हैं। वे सिंहनाद करते हैं, दिशाओं के हाथी डगमगा कर चिंघाड़ते हैं।

छन्द—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिर लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गन्धर्ब सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे ॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।

जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं ॥

पृथ्वी काँपने लगी, दिग्गज चिंघाड़ने लगे, पहाड़ कांप उठे और समुद्र में खलबली मच गई। गन्धर्व, देवता-मुनि, नाग तथा किन्नर बड़े प्रसन्न हुए और सब दुःखों से छूट गये। करोड़ों बलवान् बन्दर इधर-उधर गर्जना करते हुए भागने लगे। वे सब, हे प्रबल प्रताप वाले कौशलाधीश श्रीरामजी! आपकी जय हो, ऐसा कहकर गुणानुवाद गाने लगे।

सहि सक न भार अपार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गहि दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी ॥

शेषनागजी उस अपार भार को सह नहीं सकते, इसी कारण बार-बार मोहित होजाते हैं और इसी कारण वे कछुए की कठोर पीठ को बार-बार अपने दांतों से पकड़ते हैं। ऐसा करते हुए वे ऐसी शोभा देते हैं, मानो श्रीरामजी के गमन को परम सुन्दर जानकर सर्पराज उनकी अटल एवं पावन कथा को कछुए की पीठ पर अपने दांतों से खोद रहे हैं।

दोहा—एहि बिधि जाय कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपिबीर ॥ ३५ ॥

इस प्रकार कृपासिंधु श्रीरामजी जाकर समुद्र के किनारे उतरे और बलवान् वानर व रीछ योद्धा इधर-उधर फल खाने लगे।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका * जब तें जारि गयउ कपि लंका
निजनिज गृह सब करहिं बिचारा * नहिं निसिचर कुलकेरि उबारा

वहां (लङ्का में) जब हनुमानजी लङ्का जलाकर गये, तब से निशाचर बड़े भयभीत रहने लगे। सब अपने-अपने घरों में बैठकर यही विचार करते हैं कि अब निशाचर-वंश के बचने का कोई उपाय नहीं है।

जासु दूत बल बरनि न जाई * तेहि आएँ पुर कवन भलाई
दूतन्ह सन सुनि पुरजन बानी * मन्दोदरी अधिक अकुलानी

जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता उसके आने पर नगर की क्या भलाई होगी। दूतों द्वारा नगरवासियों के वचन सुनकर मन्दोदरी अत्यन्त व्याकुल हो गई।

रहसि जोरि कर पति पग लागी * बोली बचन नीति रस पागी
कन्त करष हरि सन परिहरहू * मोर कहा अति हित हियँ धरहू

एकान्त में मन्दोदरी पति के चरण छू, हाथ जोड़कर नीतियुक्त वचन बोली—हे नाथ! श्रीरामजी से बैर छोड़ दो और मेरे अति हितकारी वचनों को हृदय में धारण करो।

समुझत जासु दूत कइ करनी * स्रवहिं गर्भ रजनीचर धरनी
तासु नारि निज सचिव बोलाई * पठवहु कन्त जो चहहु भलाई

जिनके दूत के कार्य का स्मरण करने से निशाचरियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे नाथ ! यदि अपनी भलाई चाहो तो मन्त्री को बुलाकर उनकी स्त्री को लौटा दो।

तब कुलकमल बिपिन दुखदाई * सीता सीत निसा सम आई
सुनहुँ नाथ सीता बिनु दीन्हें * हित न तुम्हार सम्भु अज कीन्हें

हे नाथ ! आपके कमलरूपी कुल के लिये सीता दुखदाई शीतकाल की रात्रि के समान आई है। अतः हे नाथ ! सुनो बिना सीता को लौटाये-महादेवजी व ब्रह्माजी के हित करने पर भी आपकी भलाई नहीं होगी।

दोहा—राम बान अहि गन सरिस, निकरु निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसित न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक ॥ ३६ ॥

श्रीरामजी के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और निशाचरों के समूह मेंढकों के समान हैं, जब तक वे इन्हें ग्रस न लें, तब तक ही हठ छोड़कर इसका उपाय कर लीजिये।

श्रवन सुनी सठता करि बानी * बिहँसा जगत विदित अभिमानी
सभय सुभाउ नारि कर साँचा * मङ्गल महुँ भय मन अति काँचा

उसकी वाणी कानों से सुनकर संसार में प्रसिद्ध अभिमानी रावण हँसा और कहने लगा-सचमुच स्त्रियों का स्वभाव बड़ा डरपोक होता है। मंगल के समय डरती हो, तुम्हारा मन अत्यन्त ही दुर्बल है।

जौं आवइ मर्कट कटकाई * जिअहिं बिचारे निसिचर खाई
कम्पहिं लोकप जाकीं त्रासा * तासु नारि सभीत बड़ि हासा

यदि यहां वानरों की सेना भी आवे तो बेचारे निशाचर उसे खाकर अपना पेट पालेंगे। तिसके डर से दिग्पाल भी कांपते हैं, उसकी स्त्री डरे—यह बड़ी हँसी की बात है।

अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई * चलेउ सभाँ ममता अधिकाई
मन्दोदरी हृदयँ कर चिन्ता * भयउ कन्त पर विधि बिपरीता

रावण ने ऐसा कह उसको हँसकर हृदय से लगा लिया और अत्यन्त प्रेम दर्शाकर सभा को चला गया। मन्दोदरी हृदय में चिता करने लगी कि पति पर विधाता विपरीत होगया।

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई * सिंधु पार सेना सब आई
बूझेउ सचिव उचित मत कहहू * ते सब हँसे मष्ट करि रहहू

सभा में आकर बैठते ही ऐसी खबर मिली कि बन्दरों की सेना समुद्र के उस पार आगई है। तब वह मंत्रियों से पूछने लगा कि उचित सलाह कहिये। तब वे हँसे और बोले चुप ही रहिये।

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं * नर बानर केहि लेखे माहीं

जब आपने देवताओं और दैत्यों को जीता था, तब ही आपको कुछ परिश्रम नहीं हुआ, तो फिर यह मनुष्य और बन्दर किस गिनती में हैं ?

दोहा—सचिव बैद गुरु तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म धन तीनि कर, होइ बेगिही नास ॥ ३७ ॥

मन्त्री, वैद्य, गुरु यदि ये तीनों भय अथवा लोभ से ठकुर-सुहाती कहें तो राज्य, शरीर और धर्म—इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है ।

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई * अस्तुत करहिं सुनाइ सुनाई
अवसर जानि बिभीषनु आवा * भ्राता चरन सीस तेहिं नावा

वही (ठकुर-सुहाती) रावण के यहां सहायता कर रही है । मन्त्री सुना-सुनाकर स्तुति करते हैं । अवसर जानकर विभीषण वहाँ आये, उन्होंने भाई के चरणों में सिर नवाया ।

पुनि सिरु नाइ बैठि निज आसन * बोला बचन पाइ अनुसासन
जौं कृपालु पूँछिउँ मोहि बाता * मति अनुरूप कहउँ हित ताता

विभीषण सिर नवाकर अपने आसन पर बैठ गये और आज्ञा पाकर यह वचन कहे—हे दयालु ! जो आप मुझसे पूछते हैं, तो—हे तात ! अपनी बुद्धि के अनुसार हित की बात कहता हूँ ।

जो आपन चाहहु कल्याना * सुजस सुमति सुभगति सुखनाना
सो परनारि लिलार गोसाईं * तजउ चौथ चन्दा कै नाईं

जो आप अपना कल्याण, सुयश, शुभ-गति व नाना प्रकार के सुख चाहें तो पराई स्त्री के सुख को चौथ के चन्द्रमा के समान त्याग दीजिये ।

चौदह भुवन एक पति होई * भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई
गुन सागर नागर नर जोऊ * अलप लोभ भल कहइ न कोऊ

चाहे चौदह-भुवनों का स्वामी हो परन्तु प्राणीमात्र से बैर करके वह ठहर नहीं सकता । जो मनुष्य बड़ा ही गुणी व चतुर हो, पर यदि वह थोड़ा लाभ करे तो उसे कोई अच्छा नहीं कहता ।

दोहा—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पन्थ ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहिं सन्त ॥ ३८ ॥

हे नाथ ! काम, क्रोध, मद, लोभ- ये सब नर्क के मार्ग हैं । इन्हें छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को भजिये, जिन्हें सन्त-जन भजते हैं ।

तात राम नहिं नर भूपाला * भुवनेश्वर कालहु कर काला
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता * व्यापक अजित अनादि अनन्ता

हे तात ! श्रीरामजी मनुष्यों के ही राजा नहीं, वे तो संसार के स्वामी और काल के भी काल हैं । वे परब्रह्म रोग-रहित, जन्म-मरण से परे, सर्वव्यापक, अजेय, आदि और अनन्त है ।

गौ द्विज धेनु देव हितकारी * कृपासिन्धु मानुष तनुधारी
जन रञ्जन भञ्जन खल ब्राता * बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता

वे गौ, ब्राह्मण, पृथ्वी तथा देवताओं के हितकारी, दया के समुद्र, मनुष्य, रूपधारी, भक्तों को आनन्द देने वाले, दुष्टों के दल का नाश करने वाले, वेद व धर्म के रक्षक तथा देवताओं का उद्धार करने वाले हैं ।

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा * प्रनतारित भञ्जन रघुनाथा
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही * भजहु राम बिनु हेतु सनेही

बैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइये,वे शरणागत के दुख का नाश करने वाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु को सीताजी लौटा दीजिए और बिना कारण ही दया करने वाले श्रीरामजी को भजिये।

सरन गएँ प्रभु ताहि न त्यागा * बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा
जासु नाम त्रय ताप नसावन * सोइ प्रभु प्रगट समुझ जियँ रावन

शरण में जाने पर प्रभु उनको भी नहीं त्यागते–जिनको सारे संसार से बैर करने का पाप लगा हो। जिनका 'नाम' तीनों पापों का नाशक है, हे रावण! वही प्रभु प्रकट हुए हैं- ऐसा मन में समझो।

दोहा–बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कौसलाधीस ॥३९क॥

हे भाई रावण! बारम्बार चरण लगकर विनय करता हूँ कि मान-प्रतिष्ठा मोह और अहंकार को त्यागकर श्रीरामजी का भजन करो।

मुनि पुलस्त्य निज शिष्य सन, कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसर तात ॥३९ख॥

मुनि पुलस्त्यजी ने अपने शिष्य द्वारा यह बात कहला भेजी है, सो-हे तात! शुभ अवसर पाकर मैंने तुरन्त ही स्वामी को कह सुनाई।

माल्यवन्त अति सचिव सयाना * तासु बचन सुनि अति सुख माना
तात अनुज तव नीति विभूषन * सो उर धरहु जो कहत बिभीषन

माल्यवन्त नामक बड़ा बुद्धिमान मंत्री था, उसने विभीषण के वचन सुन बहुत सुख माना और कहा-हे तात! आपके भाई नीति शिरोमणि हैं, वह जो कहते हैं उसे हृदय में धारण करिये।

रिपु उतकरष सकल सठ दोउ * दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ
माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी * कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी

(रावण बोला) दोनों मूर्ख शत्रु की बड़ाई कर रहे हैं, यहाँ कोई है तो इन्हें दूर करवे। तब माल्यवन्त तो अपने घर चला गया और विभीषण फिर हाथ जोड़कर कहने लगे–

सुमति कुमति सबकें उर रहहीं * नाथ पुरान निगम अस कहहीं
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना * जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना

हे नाथ! वेद-पुराण ऐसा कहते हैं कि सुमति-कुमति सबके हृदय में रहती है,पर जहाँ सुमति है, वहाँ नाना प्रकार की सम्पत्ति रहती है एवं जहाँ कुमति है, वहाँ अन्त में विपत्ति ही आती है।

तव उर कुमति बसी बिपरीता * हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता
कालराति निसिचर कुल केरी * तेहि सीता पर प्रीत घनेरी

आपके हृदय में तो उल्टी कुमति बसी है, जिसके कारण आप हित को अहित व शत्रु को मित्र समझते हैं। जो सीता निशाचर-वंश के लिए काल-रात्रि है, उस पर आपकी घनी प्रीति है।

दोहा–तात चरन गहि माँगउँ, राखहु मोर दुलार।

सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ॥ ४० ॥

हे तात ! मैं चरण पकड़कर आपसे माँगता हूँ, आप मेरा दुलार रखिये और सीताजी को श्रीरामजी के लिए लौटा दीजिये, जिससे आपका अहित न हो ।

बुध पुरान श्रुति सम्मत बानी * कही बिभीषणु नीति बखानी
सुनत दसानन उठा रिसाई * खल तोहि निकट मृत्यु अब आई

यद्यपि विभीषण ने वेद, पुराण और पण्डितों से सम्मत नीति कही, परन्तु सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और बोला—रे मूर्ख ! तेरी मृत्यु समीप आगई है ।

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा * रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा
कहसि न खल अस को जग माहीं * भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं

रे मूर्ख ! तू सदा मेरे जिलाये जीता है और तुझे बैरी का पक्ष अच्छा लगता है । रे दुष्ट ! यह क्यों नहीं कहता कि संसार में ऐसा कौन है, जिनको मैंने अपनी भुजाओंके बलसे नहीं जीता?

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती * सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा * अनुज गहे पद बारहिं बारा

रे मूर्ख ! तू मेरे नगर में रहकर तपस्वियों से प्रीति रखता है, उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति सिखा ! ऐसा कहकर रावण ने लात मारी, परन्तु विभीषण ने बार २ चरण पकड़े।

उमा सन्त कै इहइ बड़ाई * मन्द करत जो करइ भलाई
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा * राम भजें हित होइ तुम्हारा
सचिव सङ्ग लै नभ पथ भयऊ * सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ

हे पार्वती ! सन्तों की यही बड़ाई है कि बुराई करने पर भी भलाई ही करते हैं। (विभीषण ने कहा-) हे तात ! आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा सो भला ही किया, परन्तु श्रीरामजी के भजन से ही आपका भला है । विभीषण अपने मन्त्री को साथ लेकर आकाश मार्ग में गये और सबको सुनाकर ऐसा कहने लगे—

दोहा—राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालवस तोरि ।
मैं रघुवीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥ ४१ ॥

श्रीरामजी सत्य-प्रतिज्ञ प्रभु हैं और तुम्हारी सभा काल के वश है । मैं अब श्रीरघुनाथजी की शरण में जाता हूँ, मुझे दोष न देना ।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं * आयुहीन भए सब तबहीं
साधु अवग्या तुरत भवानी * नर कल्यान अखिल कै हानी

ऐसा कह जैसे ही विभीषणजी चले, वैसे ही सारे निशाचर आयुहीन होगये । हे पार्वती ! साधु-पुरुषों का अनादर सब कल्याण का नाश करता है ।

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा * भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं * करत मनोरथ बहु मन माहीं

जिस समय रावण ने विभीषण को त्यागा, उसी क्षण वह अभागा तेज हीन होगया। विभीषण प्रसन्न होकर मन में नाना प्रकार के मनोरथ करते हुए श्रीरामजी के पास चले।

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता * अरुन मृदुल सेवक सुखदाता
जे पद परसि तरी रिषिनारी * दण्डक कानन पावनकारी

मैं जाकर उन चरणकमलों को देखूंगा, जो लाल-वर्ण के कोमल और भक्तों को सुख देने वाले हैं। जिनका स्पर्श करके ऋषि-पत्नी अहिल्या तर गई और जो दण्डक-वन को पवित्र करने वाले हैं।

जे पद जनकसुता उर लाए * कपट कुरङ्ग सङ्ग धरि धाए
हर उर सर सरोज पद जेई * अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई

जिन चरणों को जानकीजी हृदय में धारण करती हैं, जो कपट-मृग के साथ भागे थे और जो शिवजी के हृदयरूपी सरोवर के कमल हैं, मेरा अहो भाग्य है कि आज मैं उन्हीं को देखूंगा।

दोहा—जिन्ह चरनन्ह की पादुका, भरत रहे मन लाय।
ते पद आजु बिलोकि हौं, इन नयनन्हि अब जाय ॥ ४२ ॥

जिन चरणोंकी खड़ाऊँओं में भरतजीने मन लगा रक्खा है, आज मैं इन नेत्रोंसे उन्हींकोदेखूंगा।

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा * आयउ सपदि सिंधु एहि पारा
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा * जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा

इस प्रकार वे प्रेम सहित विचार करते हुए शीघ्र ही इस पार आगये। बन्दरों ने विभीषण को आता देखकर जाना कि वैरी का कोई विशेष दूत है।

ताहि राखि कपीस पहिं आए * समाचार तब ताहि सुनाए
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई * आवा मिलन दसानन भाई

बानर उसे वहीं ठहरा कर सुग्रीव के पास गये और उसको सब समाचार कह सुनाया। तब सुग्रीव (श्रीराम के पास जाकर) कहने लगे—हे श्रीरघुनाथजी ! सुनिये, रावण का भाई आपसे मिलने आया है।

कह प्रभु सखा बूझिए काहा * कहइ कपीस सुनहु नरनाहा
जानि न जाइ निसाचर माया * कामरूप केहि कारन आया

प्रभु ने कहा-हे मित्र ! क्या राय है ? सुग्रीवने कहा-हे नाथ ! सुनिये, निशाचरों की माया कुछ जानी नहीं जाती न जाने यह इच्छानुसार रूप धारण करने वाला किस कारणसे आया है ?

भेद हमार लेन सठ आवा * राखिअ बाँधि मोहि अस भावा
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी * मम पन सरनागत भयहारी

यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया, इस प्रकार मुझे तो यह अच्छा लगता है कि उसे बाँध रक्खा जाय। (श्रीरामजी बोले-) हे मित्र ! तुमने नीति तो ठीक विचारी है, परन्तु मेरा तो प्रण ही शरणागतों का दुःख दूर करना है।

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना * सरनागत बच्छल भगवाना

प्रभु के वचन सुनकर हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुए कि भगवान् कैसे शरणागत-वत्सल हैं।

दोहा—सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥ ४३ ॥

श्रीरामजी बोले जो अपने हित को विचार कर शरणागत को त्याग देते हैं, वे नीच मनुष्य पापरूप हैं, उनको देखने से भी पाप लगता है।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू * आएँ सरन तजहुँ नहिं ताहू
सन्मुख होइ जीव मोहि जबही * जन्म कोटि अघ नासहिं तबही

जिनको करोड़ों ब्रह्म-हत्याओं का पाप लगा हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। ज्योंही जीव मेरे सन्मुख आते हैं, त्योंही उनके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होजाते हैं।

पापवन्त कर सहज सुभाऊ * भजनु मोर तेहि भाव न काऊ
जौं पै दुष्ट हृदय सोई होई * मोरे सन्मुख आव कि सोई

पापी का यह सहज स्वभाव होता है कि उसको मेरा भजन प्रिय नहीं लगता। यदि वह दुष्ट हृदय होता तो क्या वह मेरे सन्मुख आ सकता था ?

निर्मल मन जन सो मोहि पावा * मोहि कपट छल छिद्र न भावा
भेद लेन पठवा दससीसा * तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा

जो मनुष्य शुद्ध तथा सच्चे हृदय के हैं, वे ही मुझे प्रिय हैं, कपट और द्वेष भले नहीं लगते। हे सुग्रीव ! यदि रावण ने उसे भेद लेने भी भेजा है, तो कुछ भय व हानि नहीं है।

जग महुँ सखा निसाचर जेते * लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते
जौं सभीत आवा सरनाई * राखिहउँ ताहि प्रान की नाईं

क्योंकि संसार में जितने राक्षस हैं, लक्ष्मणजी उन्हें पलभर में मार सकते हैं और यदि वह डर के कारण मेरी शरण में आया है, तो मैं उसे प्राणों के समान रक्खूंगा।

दोहा—उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अङ्गद हनू समेत ॥ ४४ ॥

कृपा के धाम श्रीरामजी ने हँसकर कहा-दोनों ही स्थिति में उसे ले आओ। तब अङ्गद व हनुमान सहित सब बानर कृपालु श्रीरामजी की जय कहते हुए चले।

सादर तेहि आगें करि बानर * चले जहाँ रघुपति करुनाकर
दूरहि ते देखे द्वौ भ्राता * नयनानन्द दान के दाता

सब बन्दर उसे आदर सहित आगे करके वहाँ चले, जहाँ दयासागर श्रीरघुनाथजी थे। उन्होंने दूर से ही नेत्रों को आनन्द का दान देने वाले दोनों भाइयों को देखा।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी * रहे ठटुकि एकटक पल रोकी

भुज प्रलम्ब कञ्जारुन लोचन * श्यामल गात प्रनत भय मोचन

फिर शोभा के धाम श्रीरामचन्द्रजी को देखकर वे पलक मारना रोककर ठिठककर एक-टक देखते ही रह गये। उनकी लम्बी भुजायें हैं, लाल कमल के समान नेत्र हैं और श्याम शरीर शरणागत के भय को दूर करने वाला है।

सिंह कन्ध आयत उर सोहा * जानत अमित मदन मन मोहा
नयन नीर पुलकित अति गाता * मन धरि धीर कही मृदु बाता

सिंहकेसमान कन्धे एवंविशाल हृदयहै, मुखकी अपारशोभा असंख्य कामदेवों को मोहित करती है,ऐसी मूर्तिको देखकर विभीषण रोमांचित होगये, नेत्रोंमें जल भरआया धीरज धरकर वे बोले-

नाथ दसानन कर मैं भ्राता * निसिचर वंश जनम सुरत्राता
सहज पापप्रिय तामस देहा * जथा उलूकहि तम पर नेहा

हे देवताओं के रक्षक स्वामी ! मेरा जन्म निशाचर वंश में हुआ है और मैं रावण का भाई हूँ। इस राक्षसी शरीर को स्वभाव से ही पाप प्यारा है, जिस प्रकार उल्लू को अँधेरा प्रिय होता है।

दोहा—श्रवन सुजसु सुनु आयउँ, प्रभु भञ्जन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, शरन सुखद रघुबीर ॥ ३५ ॥

हे संसार का दुःख दूर करने वाले ! मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ। हे शरणागत को सुख देने वाले और दुःखहारी श्रीरघुनाथजी ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।

अस कहि करत दण्डवत देखा * तुरत उठे प्रभु हरष विशेषा
दीन वचन सुन प्रभु मन भावा * भुज विशाल गहि हृदयँ लगावा

उसे ऐसाकहकर दंडवत्‌करते हुएदेख श्रीरामजी अत्यन्त हर्षसे तुरन्तउठे, विभीषणके दीनवचन प्रभु के मन को प्रिय लगे। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से उन्हें हृदय से लगा लिया।

अनुज सहित मिल ढिग बैठारी * बोले बचन भगत भय हारी
कहु लंकेश सहित परिवारा * कुशल कुठाहर बास तुम्हारा

भाई लक्ष्मण सहितमिलकर विभीषणको पास बैठाकर भक्तोंके भयको दूरकरने वाले श्रीरामजी बोले हे लंकेश ! परिवार सहित अपनी कुशल कहो, तुम्हारा निवास बुरे स्थान पर है।

खल मण्डली-बसहु दिन राती * सखा धरम निबहइ केहि भाँती
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती * अति नयनिपुन न भाव अनीती

हे तात ! तुम दुष्टों के साथ निवास करते हो, तुम्हारे धर्म का निर्वाह कैसे होता है ? मैं तुम्हारी सब रीति जानता हूँ। तुम नीति चतुर हो तुम्हारा भाव अन्याय का नहीं है।

बरु भल बास नरक कह ताता * दुष्ट सङ्ग जनि देइ विधाता
अब पद देखि कुशल रघुराया * जौं तुम्ह कीन्ह जानि जनदाया

हे मित्र ! नर्क का रहना भला है, परन्तु विधाता कभी दुष्ट का साथ न दे, (विभीषण बोले-)

हे नाथ ! अब आपके चरणों के दर्शन से कुशल है, जो आपने दास जानकर मुझ पर दया की ।

दोहा—तब लगि कुशल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ॥४६॥

तब तक जीव को कुशल और स्वप्न में भी आराम नहीं है, जब तक वह शोक के घर को छोड़कर आप (श्रीरामजी) को नहीं भजता ।

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना * लोभ मोह मच्छर मद माना
जब लगि उर न बसत रघुनाथा * धरें चाप सायक कटि भाथा

उसी समय तक लोभ, मोह, अभिमान और मान आदि दुष्ट हृदय में निवास करते हैं, जब तक आप धनुष-बाण और कमर में तर्कस धारण किये हुए हृदय में वास नहीं करते ।

ममता तरुन तमी अँधियारी * राम द्रूेष उलूक सुखकारी
तब लगि बसिति जीव मन माहीं * जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं

ममता घोर अँधेरी रात्रि है, जो राग-द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है । वह तभी तक हृदय में बसती है-जब तक आपका प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता ।

अब मैं कुशल मिटे भय भारे * देखि राम पद कमल निहारे
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला * ताहि न व्याप त्रिबिध भव सूला

हे नाथ ! अब आपके कमलरूपी चरणों को देखने से कुशल है, मेरे भारी भय दूर होगये । आप जिसके ऊपर दया करते हैं उसे तीनों भव-शूल (दैहिक, दैविक, भौतिकताप) नहीं सताते ।

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ * सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा * तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा

मैं निशाचर हूँ मेरा स्वभाव बड़ा ही नीच है मैंने कभी शुभ कर्म नहीं किया । परन्तु जिन प्रभु का रूप मुनियों के ध्यान में नहीं आया, उनने प्रेम पूर्वक मुझे हृदय से लगाया ।

दोहा—अहो भाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुञ्ज ।
देखउँ नयन बिरञ्चि सिव, सेव्य जुगल पद कञ्ज ॥४७॥

हे कृपा और सुख की राशि श्रीरघुनाथजी ! मेरा असीम सौभाग्य है जो मैंने ब्रह्मा व महादेवजी द्वारा सेवित आपके युगल चरणों को नेत्रों से देखा ।

सुनहुँ सखा निज कहउँ सुभाऊ * जानि भुसुण्डि सम्भु गिरिजाऊ
जौं नर होइ चराचर द्रोही * आवै सभय सरन तकि मोही

(श्रीरामजी बोले–) हे मित्र ! सुनो, मैं अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे कागभुशुण्डिजी और श्रीमहादेवजी व पार्वतीजी भी मानते हैं । कोई मनुष्य प्राणी मात्र का बैरी हो, यदि वह डरकर मेरी शरण में आवे ।

तजि मद मोह कपट छल नाना * करउँ सद्य तेहि साधु समाना
जननी जनक बन्धु सुत दारा * तनु धनु भवन सुहृद परिवारा

और मद, मोह तथा बल को त्याग दे तो मैं उसे साधु के समान शुद्ध कर देता हूँ। माता-पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र व परिवार—

सब कै ममता ताग बटोरी * मम पद मनहिं बाँधि बट डोरी
समदरसी इच्छा कछु नाहीं * हरष सोक भय नहिं मन माहीं

इन सभी ममता-रूपी धागोंको बटकर रस्सी बनावे और उससे मेरे चरणों-में अपने मनको बाँध दे। जो समदर्शी हैं जिनके हृदय में इच्छा, हर्ष, शोक और भय कुछ भी नहीं है।

अस सज्जन मम उर बस कैसें * लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें
तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरें * धरउँ देह नहिं आन निहोरें

ऐसे सज्जन मेरे हृदय में किस प्रकार वास करते हैं, जैसे लोभी के हृदय में धन बसता है। तुम्हारे समान सन्त ही प्रिय हैं, मैं और किसी के लिए देह धारण नहीं करता।

दोहा—सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्हकें द्विज पद प्रेम ॥ ४८ ॥

जो सगुण के उपासक हैं, पराये हित में लगे हैं, नीति में चतुर और नियम में दृढ़ हैं और जिनका ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं।

सुनु लंकेश सकल गुन तोरें * तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें
राम बचन सुनि बानर जूथा * सकल कहहिं जय कृपा बरूथा

हे लंकेश! सुनो, तुम्हारे अन्दर उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हैं, इससे तुम बहुत प्रिय हो। श्रीरामजी के यह वचन सुनकर सब बानर-गण कहने लगे--कृपासिंधु श्रीरामजी की जय हो।

सुनत विभीषन प्रभु कै बानी * नहिं अघात श्रवनामृत जानी
पद अम्बुज गहि बारहिं बारा * हृदयँ समात न प्रेमु अपारा

विभीषण प्रभु की वाणी को-जो कानों को अमृत के समान है, सुनकर तृप्त नहीं हुए। वे बारम्बार चरणकमलों को पकड़ते हैं, अपार प्रेम हृदय में नहीं समाता।

सुनहुं देव सचराचर स्वामी * प्रनतपाल उर अन्तरजामी
उर कछु प्रथम बासना रही * प्रभु पद प्रीति सरितसो बही

हे चराचर के स्वामी! हे शरणागत-रक्षक! हे अन्तर्यामी! सुनिये, मेरे हृदय में पहले कुछ इच्छा थी, सो आपके चरणों की प्रीतिरूपी नदी में बह गई।

अब कृपालु निज भगति पावनी * देहु सदा सिव मनहि भावनी
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा * माँगा तुरन्त सिंधु कर नीरा

हे कृपालु! अब आप अपनी पवित्र भक्ति जो शिवजी के मन को सदैव भली लगती है, मुझे दीजिये। प्रभु ने 'एवमस्तु' कहकर समुद्र का जल मँगवाया।

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं * मोर दरस अमोघ जग माहीं
अस कहि राम तिलक तेहि सारा * सुमन बृष्टि नभ भई अपारा

और कहा–हे मित्र ! यद्यपि तुम्हें इच्छा नहीं है, परन्तु मेरा दर्शन संसार में निष्फल नहीं होता, ऐसा कहकर श्रीरामजी ने विभीषण को राजतिलक कर दिया। तब आकाश से अपार पुष्प वृष्टि हुई ।

दोहा–रावन क्रोध अनल निज, श्वाँस समीर प्रचण्ड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखण्ड ॥४९क॥

रावण की क्रोध रूपी अग्नि में जलते हुए विभीषण को अपनी श्वाँसरूपी प्रचण्ड वायु से बचाकर श्रीरामजी ने अटल राज्य दिया ।

जो सम्पति शिव रावनहि, दीन्ह दिए दस माथ।
सोइ सम्पदा बिभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥४९ख॥

जो सम्पदा शिवजी ने रावण को दसों सिरों का बलिदान देने पर दी थी, वही सम्पदा श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को संकोच के साथ दी ।

अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना * ते नर पशु बिन पूँछ बिसाना
निज जन जानि ताहि अपनावा * प्रभु सुभाव कपिकुल मन भावा

ऐसे दयालु प्रभुको छोड़ जो दूसरोंका भजन करते हैं वे बिना पूँछके सींगके पशुहैं। विभीषण को अपना भक्त जानकर श्रीरामजीने अपना लिया, इनका स्वभाव बानर-कुलको बहुत भाया।

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी * सर्बरूप सब रहित उदासी
बोले बचन नीति प्रति पालक * कारन मनुज दनुज कुलघालक

फिर सर्वज्ञ,सबके हृदय में बसने वाले,सर्वरूप सबसे रहित,उदासीन,राक्षस कुलका नाश करने के लिये मनुष्य-रूप धारण करने वाले श्रीरामचन्द्रजी नीति का पालन करने वाले वचन बोले–

सुनु कपीस लङ्कापति बीरा * केहि बिधि तरिय जलधि गम्भीरा
संकुल मकर उरग झष जाती * अति अगाध दुस्तर सब भाँती

हे सुग्रीव ! हे विभीषण ! सुनो, यह अथाह समुद्र किस प्रकार से पार किया जाय ? सर्प, मगर और नाना प्रकार की मछलियों से भरा हुआ यह अथाह समुद्र सब प्रकार से दुस्तर है।

कह लंकेष सुनहु रघुनायक * कोटि सिन्धु सोषक तब सायक
जद्यपि तदपि नीति अस गाई * बिनय करिय सागर सन जाई

तब विभीषण ने कहा–हे श्रीरघुनाथजी ! यद्यपि आपके वाण करोड़ों समुद्रों को सोखने वाले हैं, तो भी नीति में ऐसा कहा है कि पहले समुद्र से विनय की जाय ।

दोहा–प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरहि, सकल भालु कपि धार ॥ ५० ॥

हे नाथ ! समुद्र आपका कुलगुरु है, यह विचार कर उपाय बतावेगा तब बिना परिश्रम के ही सब रीछ बानरों की सेना समुद्र के पार उतर जायगी ।

सखा कही तुम्ह नीक उपाई * करिन दैव जौं होइ सहाई
मन्त्र न यह लछिमन मन भावा * राम बचन सुनि अति दुख पावा

(रामजी बोले-)हे मित्र तुमने ! ठीक उपाय बताया,यदि ईश्वर सहायता करे तो सफल होगा। परन्तु यह सलाह लक्ष्मणजीको भली नहीं लगी,वह श्रीरामजीके यहवचन सुनकर बड़ेदुखी हुए।

नाथ दैव कर कवन भरोसा * सोषिअ सिन्धु करिन मन रोसा
कादर मन कहुँ एक अधारा * दैव दैव आलसी पुकारा

वे बोले—हे नाथ ! ईश्वर का कौन भरोसा है ? मनमें क्रोधकर समुद्र को सुखा दीजिए। ईश्वर तो कायर मनुष्यों का एक सहारा है, आलसी ही सदा दैव-दैव पुकारा करते हैं ।

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा * ऐसेहि करब धरहु मन धीरा
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई * सिन्धु समीप गए रघुराई

यह वचन सुन श्रीरघुनाथजी हँसकर बोले—ऐसा ही करेंगे, मन में धीरज रक्खो । ऐसा कहकर और भाई को समझाकर श्रीरघुनाथजी समुद्र के पास गये ।

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई * बैठे पुनि तट दर्भ ठसाई
जबहिं विभीषन प्रभु पहिं आए * पाछें रावन दूत पठाए

पहले प्रभु ने जाकर सिर नवाकर प्रणाम किया, फिर किनारे पर कुछ बिछाकर बैठ गये । ज्यों ही विभीषण प्रभु श्रीरामजी के पास आये, त्यों ही पीछे से रावण ने दूत भेजे ।

दोहा—सकल चरित तिन्ह देखे, धरें कपट कपि देह ।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं, सरनागत पर नेह ।। ५१ ।।

उन्होंने आकर कपट से बानरों का शरीर धारण कर सब कुछ देखा, वे शरणागत पर स्नेह देखकर श्रीरामजी के गुणों की मन ही मन प्रशंसा करने लगे ।

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ * अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने * सकल बाँधि कपीस पहिं आने

फिर रामजीका गुणानुवाद स्पष्ट रूपसे करने लगे,वे प्रेममें कपट-वेश को भूलगये। बानरों ने उन्हें पहचान लिया कि यह शत्रु के दूत हैं और उन्हें बाँधकर सुग्रीव के पास ले आये ।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर * अङ्ग भङ्ग कर पठवहु निसिचर
सुनि सुग्रीव वचन कपि धाए * बाँधि कटक चहुँ ओर फिराए

सुग्रीव बोले—हे बानरो इन निशाचरों के अंग-भंग करके भेजो । ऐसा कहकर बानर दौड़े और उन्हें बांधकर सेना के चारों ओर घुमाया ।

बहु प्रकार मारन कपि लागे * दीन पुकारति तदपि न त्यागे
जो हमार हर नासा काना * तेहि कौसलाधीश कै आना

उन्हें बन्दर बहुत प्रकार से मारने लगे वे दीन-वाणी से चिल्लाते थे परन्तु बानर उन्हें नहीं छोड़ते । अन्त में बोले-जो-जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे श्रीरघुनाथजी की सौगन्ध है ।

सुनि लछिमन सब निकट बुलाए * दया लागि हँसि तुरत छुड़ाए
रावन कर दीजहु यह पाती * लछिमन बचन बाँचु कुलघाती

लक्ष्मणजी ने यह सुनकर सबको बुलाया, उन्हें दया आई तो तुरन्त हँसकर उन्हें छुड़ा दिया ।

और कहा-यह चिट्ठी रावण को देकर,उस-कुल-नाशकसे कहना किलक्ष्मणके शब्दों को बाँचो।

दोहा—कहेउ मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देसु उदार।
सीतहि देइ मिलहु नत, आवा कालु तुम्हार ॥ ५२ ॥

और उस मूर्ख से मेरा यह सन्देस मुँह से कहना कि 'सीताजी को देकर' प्रभु से जा मिल नहीं तो तेरी मृत्यु निकट आ गई है।

तुरत नाइ लछिमन पद माथा * चले दूत बरनत गुन गाथा
कहत राम जसु लंका आए * रावन चरन सीस तिन्ह नाए

दूत शीघ्रही लक्ष्मणजीके चरणोंमें सिर नवाकर श्रीरामजीके गुणानुवाद गाते हुए चल दिये। श्रीरामजी का यश बखानते हुए वे लंका में आये और रावण के चरणों में सिर नवाया।

बिहसि दसानन पूँछी बाता * कहसि न सुक आपनि कुसलाता
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी * जाहि मृत्यु आई अति नेरी

तब हँसकर रावण ने पूछा—रे शुक् ! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता ? विभीषण का हाल कहो, जिसकी मौत अब निकट आ गई है।

करत राज लङ्का सठ त्यागी * होइहि जब कर कीट अभागी
पुनि कहु भालु कीस कटकाई * कठिन काल प्रेरित चलि आई

उस मूर्ख ने राज करते हुए लंका को छोड़ दिया, वह अभागा जौ का घुन होगा। फिर उस रीछ बानर की सेना का हाल कहो। जो कठिन काल भेजने से यहाँ चली आई है।

जिन्ह के जीवन कर रखवारा * भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा
कहुँ तपसिन्ह कै बात बहोरी * जिन्हके हृदयँ त्रास अति मोरी

और जिनके प्राणों का रक्षक दयालु समुद्र है। फिर उन तपस्वियों का हाल कहो—जिनके हृदय में मेरा भारी डर है।

दोहा—की भइ भेंट कि फिर गए, श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपुदल तेजबल, बहुत चकित चित चोर ॥ ४३ ॥

उनसे भेंट हुई, अथवा वे मेरा सुयश सुनकर लौट गये। बैरी की सेना का बल तथा तेज बताता क्यों नहीं ? तेरा चित्त चकित-सा क्यों है ?

नाथ कृपा करि पूँछेउ जैसे * मानहुँ कहा क्रोध तजि तैसे
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा * जातहिं राम तिलक तेहि सारा

(दूत बोला—) हे नाथ ! जैसे आप मुझसे पूछते हैं, आप क्रोध को त्यागकर मेरा कहा मानिये। जब आपका छोटा भाई जाकर उनसे मिला, उसी समय रघुनाथजी ने तिलक कर दिया।

रावन दूत हमहि सुनि काना * कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना
श्रवन नासिका काटन लागे * राम सपथ दीन्हें हम त्यागे

बन्दरों ने हमें रावण का दूत सुनकर, बांधकर नाना प्रकार के कष्ट दिये। वे हमारे नाक-कान

काटने लगे, तब श्रीरामजी को सौगन्ध देने पर हमें छोड़ा ।

पूँछहु नाथ राम कटकाई * बदन कोटि सत बरनि न जाई
नाना बरन भालु कपि धारी * बिकटानन बिसाल भयकारी

हे नाथ ! श्रीरामजी की सेना पूछते हैं, सो वह करोड़ों मुख से भी नहीं कही जा सकती । अनेकों रंग के रीछ एवं वानर हैं, जो विकट मुख वाले हैं, विशाल तथा भयानक हैं ।

जेहि पुरदहेउ हतेउ सुत तोरा * सकल कपिन्ह महँ तेहि बल थोरा
अमित नाम भट कठिन कराला * अमित नाग बल बिपुल बिसाला

जिसने लंका जलाई और अक्षयकुमार को मारा, उसका बल तो सबसे थोड़ा है । बड़े-बड़े नामी योद्धा हैं, उनमें असंख्य हाथियों का बल है तथा वे विशाल शरीर वाले हैं ।

दोहा—द्विविद मयन्द नील नल, अंगद भट विकटासि ।
दधिमुख केहरि कुमुद गवं, जामवन्त बल रासि ॥ ५४ ॥

द्विविद, मयन्द, नल-नील, अंगद, विकटाक्ष, दधिमुख, केहरि, कुमुद, गवं तथा बल की राशि जामवन्त इत्यादि—

ए कपि सब सुग्रीव समाना * इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना
रामकृपाँ अतुलित बल तिन्हही * तृन समान त्रैलोकहि गनहीं

सब बन्दर सुग्रीव के समान ही बलवान हैं इनके समान और भी करोड़ों बन्दर हैं उन अनेकों को कौन गिने ?

अस मैं सुना श्रवन दसकन्धर * पदुम अठारह जूथप बन्दर
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं * जो न तुम्हहिं जीतै रन माहीं

हे नाथ ! मैंने कानों से सुना है कि अठारह पदम तो बन्दरों के सेनापति हैं । उस सेना में ऐसा कोई भी बन्दर नहीं है, जो आपको युद्ध में न जीत सके ।

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा * आयसु पै न देहिं रघुनाथा
सोषहिं सिंधु सहित झस ब्याला * पूरहिं नत भरि कुधर बिसाला

वे सब मारे क्रोध के हाथ मल रहे हैं, परन्तु श्रीरघुनाथजी आज्ञा नहीं देते । वे समुद्र को सांपों तथा मछलियों सहित सुखा सकते हैं, या विशाल पर्वतों से भरकर उसे पाट देंगे ।

मर्दि गर्द मिलवहिं दस सीसा * ऐसेइ वचन कहहिं सब कोसा
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका * मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लङ्का

सब बानर ऐसा कहते हैं कि रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे । स्वाभाविक ही निडर बानर गर्जना करते हैं, तो ऐसा मालूम होता है, मानो लंका ग्रसना चाहते हैं ।

दोहा—सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभु राम ।
रावन काल कोटि कहुँ, जीति सकहिं संग्राम ॥५५॥

सब बन्दर-भालू सहज ही रणधीर हैं फिर उनके सहायक श्रीरामजी हैं । वे तो—हे रावण !

करोड़ों कालों को भी जीत सकते हैं।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई * सेष सहस सत सकहिं न गाई
सक सर एक सोषि सत सागर * तब भ्रातहि पूँछेउ नय नागर

श्रीरामजी के तेज,बल व बुद्धि की बड़ाई को लाखों शेषजी भी वर्णन नहीं कर सकते। एक ही वाण से सैंकड़ों समुद्र सूख सकते हैं,परन्तु नीति में चतुर उन्होंने आपके भाई से सलाह पूछी।

तासु बचन सुन सागर पाहीं * मागत पन्थ कृपा तन माहीं
सुनत बचन बिहसा दससीसा * जौं असि मति सहाय कृत कीसा

उनके वचन सुनकर वे समुद्र से रास्ता माँग रहे हैं,उनके मन में दया है। दूतके ऐसे वचन सुन रावण बहुत हँसा और कहने लगा—जब ऐसी बुद्धि है, तब तो वानरों को सहायक बनाया!

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई * सागर सन ठानी मचलाई
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई * रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई

स्वाभाविक डरपोक विभीषण के वचन मानकर समुद्र से बालकों की-सी हठठानी है। अरे मूर्ख! तू व्यर्थ बड़ाई क्यों करता है? शत्रु की बुद्धि-बल की थाह मैंने पाली।

सचिव सभीत विभीषन जाकें * बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी * समय विचारि पत्रिका काढ़ी

जिसके विभीषण सरीके डरपोक मन्त्री हैं, उसको विजय और यश कहाँ है? दुष्ट के ऐसे वचन सुनकर दूत को बड़ा क्रोध आया, तब उसने अवसर जानकर चिट्ठी निकाली।

रामानुज दीन्ही यह पाती * नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती
बिहँसि बामकर लीन्ही रावन * सचिव बोल सठलागि बचावन

और कहा—हे नाथ! श्रीरामजी के छोटे भाई ने यह चिट्ठी दी है,इसे पढ़कर आप छाती ठण्डी कीजिये। रावणने हँसकर पत्र बांये हाथ में लेलिया और मन्त्री को बुलाकर उसे पढ़वाने लगा।

दोहा—बातन मनहि रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम विरोध न उबरसि, सरन बिष्नु अज ईस ॥५६क॥

(पत्र में लिखाथा) हे मूर्ख तू बातोंसे अपने मनको प्रसन्न करके कुलका नाश न कर। रामजी से विरोध करने पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शरण में जाने पर भी तू नहीं बच सकता।

की तजि मानु अनुज इव, प्रभु पद पंकज भृङ्ग।
होहि कि राम सरानल, खब कुल सहित पतंग ॥५६ख॥

या तो अभिमान छोड़कर अपने भाई विभीषण की तरह प्रभु के चरणकमलों का भ्रमर (प्रेमी) होजा या-हे दुष्ट! श्रीरामजी के वाणरूपी अग्नि में अपने कुल सहित पतंगा होजा।

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई * कहत दसानन सबहि सुनाई
भूमि परा गहत आकासा * लघु तापस कर बानि बिलासा

पत्र सुनकर रावण मनमें डरा,परन्तु हँसकर सबको सुनाकर बोला-जैसे कोई मनुष्य भूमि पर पड़ा हुआ आकाश को छूने की आशा करे, वैसे ही इस छोटे तपस्वी के वचन की बातें हैं।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी * समझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा * नाथ राम सन तजहु बिरोधा

तब शुक कहने लगा—हे नाथ ! पुत्र की बातें सत्य हैं । अपने अभिमानी स्वभाव को छोड़कर विचार कीजिये । क्रोध को त्याग कर मेरा वचन सुनिये, हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रजी से विरोध छोड़ दीजिये ।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ * जद्यपि अखिल लोक कर राऊ
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करही * उर अपराध न एकउ धरही

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी सब लोकों के स्वामी हैं, तो भी उनका स्वभाव बहुत ही कोमल है । वे मिलते ही तुम्हारे ऊपर बड़ी कृपा करेंगे और अपराध को अपने हृदय में नहीं रक्खेंगे ।

जनकसुता रघुनाथहि दीजै * एतना कहा मोर प्रभु कीजै
जब तेहिं कहा देन बैदेही * चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही

अतः हे नाथ ! आप मेरा इतना कहा मानिये कि जानकीजी को श्रीरघुनाथजी को लौटा दीजिए । जब शुक ने जानकी को लौटा देने की बात कही तो रावण ने उसको लात मारी ।

नाइ चरन सिरु चला सो तहँवा * कृपासिन्धु रघुनायक जहँवा
करि प्रनामु निज कथा सुनाई * राम कृपाँ आपनि गति पाई

वह भी उसे प्रणामकर वहाँ चला, जहाँ कृपासिंधु श्रीरघुनाथजी थे । प्रभु को प्रणाम कर उसने अपनी समस्त कथा सुनाई और श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से अपनी गति को प्राप्त हुआ ।

रिषि अगस्ति कें साप भवानी * राक्षस भयउ रहा मुनि ग्यानी
बन्दि राम पद बारहिं बारा * मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा

(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी ! वह ज्ञानी मुनि था, परन्तु अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था । वह मुनि श्रीरामजी के चरणों में बार २ सिर नवाकर अपने आश्रम को चला गया ।

दोहा—बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ५७ ॥

तीन दिन बीत गये, परन्तु मूर्ख समुद्र विनय नहीं मानता । तब श्रीरामजी क्रोध पूर्वक बोले—बिना भय के प्रीति नहीं होती ।

लछिमन बान सरासन आनू * सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू
सठसन बिनय कुटिलसन प्रीती * सहज कृपन सन सुन्दर नीती

हे लक्ष्मण ! धनुष-बाण लाओ, मैं समुद्र को अग्नि-बाण से सुखा दूंगा । मूर्ख से विनय, छली से प्रीति, स्वभाव से ही कंजूस से सुन्दर नीति वर्णन तथा—

ममता रत सन ग्यान कहानी * अति लोभी सन बिरति बखानी
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा * ऊसर बीज बएँ फल जथा

मोह में फँसे हुए मनुष्य को ज्ञान की कथा, अत्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शांति का पाठ और कामी से हरि-कथा, इन सबका वैसा ही फल है—जैसे ऊसर में बीज बोना ।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा * यह मत लछिमन के मन भावा
सन्धानेउ प्रभु बिसिख कराला * उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी ने धनुष चढ़ाया तो यह मत लक्ष्मणजी के मन को भाया। प्रभु ने धनुष पर कठिन वाण रख संधान किया, जिससे समुद्र के हृदय में ज्वाला प्रकट हुई।

मकर उरग झष गन अकुलाने * जरत जन्तु जलनिधि जब जाने
कनक थार भरि मनिगन नाना * बिप्र रूप आयउ तजि माना

मगर, साँप, मछलियाँ इत्यादि घबड़ाने लगे। जब समुद्र ने जीवों को जलते हुए जाना, तो सोने के थालों में अनेक मणियाँ लेकर, अभिमान त्यागकर, ब्राह्मण के रूप में आया।

दोहा—काटेहिं पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटेहिं पइ नव नीच ॥ ५८ ॥

(कागभुशुण्डिजी बोले—) हे गरुड़जी! चाहे कोई करोड़ों यत्न करके सींचे, परन्तु केला काटने पर ही फलता है। (ऐसे ही) नीच डाँटने से ही नवता है, विनय से नहीं।

सभय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे * छमहु नाथ सब अवगुन मेरे
गगन समीर अनल जल धरनी * इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी

समुद्र ने भय के साथ प्रभु के चरण पकड़ कर विनती की—हे नाथ! मेरे सब अवगुण क्षमा करिये। आकाश, अग्नि, पवन, जल, पृथ्वी—इनके काम तो स्वभावतः ही जड़ हैं।

तव प्रेरित मायाँ उपजाए * सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गाए
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई * सो तेहि भाँति रहें सुख लहई

हे नाथ! सब ग्रन्थों ने ऐसा कहा है कि आपकी प्रेरणा से ही यह वस्तुयें माया ने सृष्टि के हेतु उत्पन्न की हैं। हे प्रभु! जिसको आपकी जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकार रहने में सुख पाता है।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही * मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी * सकल ताड़ना के अधिकारी

प्रभु ने मुझे शिक्षा दी—सो अच्छा किया, परन्तु मर्यादा भी आपकी ही बाँधी हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री—ये सब दण्ड के अधिकारी हैं।

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई * उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई * करौं सो बेगि जो तुम्हहिं सोहाई

प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार हो जाय तो मेरी मर्यादा जाती रहेगी। वेदों ने कहा है कि आपकी आज्ञा अपेल है। अतः जो आपको अच्छा लगे, सो मैं शीघ्र करूँ।

दोहा—सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपालु मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ ॥ ५९ ॥

अति विनीत वचन सुनकर कृपालु प्रभु ने हँसकर कहा—हे तात! जिस प्रकार वानरों की सेना पार हो जाय, वही उपाय कहो।

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई * लरिकाईं रिषि आसिष पाई
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे * तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे

(समुद्र बोला—) हे नाथ! नल व नील दो वानर भाई हैं, उन्होंने बचपन में ऋषि से यह आशीर्वाद पाया था। उनके छूने से भारी पर्वत भी आपके प्रताप से समुद्र में तैरने लगेंगे।

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई * करिहउँ बल अनुमान सहाई
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ * जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ

मैं भी आपके प्रताप को हृदय में रखकर अपने बल के अनुसार सहायता करूंगा। हे नाथ! इस प्रकार आप समुद्र को बँधाइये, जिससे आपकी सुकीर्ति तीनों लोकों में गाई जाय।

एहिं सर मम उत्तर तट बासी * हतहु नाथ खल नर अघ रासी
सुनि कृपालु सागर मन पीरा * तुरतहिं हरी राम रनधीरा

इस बाणसे आप मेरे उत्तर-तट के पाप-राशि दुष्टों का संहार कीजिए। कृपालु श्रीरामजी ने यह सुनकर समुद्र के हृदय की पीड़ा दूर करदी।

देखि राम बल पौरुष भारी * हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा * चरन बन्दि पाथोधि सिधावा

समुद्र श्रीरामजी के ऐसे अतुल पराक्रम को देखकर प्रसन्न होकर सुखी हुआ, फिर सब हाल प्रभु को सुनाकर और उनके चरणों की वन्दना करके समुद्र चला गया।

छन्द—निज भवन गवनेहु सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि सन्तत सठ मना॥

समुद्र अपने घर चला गया। श्रीरामजी को यह मत अच्छा लगा। यह चरित्र कलि-काल के पापों को हरने वाला है, जैसा कि तुलसीदासजी ने गाया है, श्रीरघुनाथजी गुण-समूह और सुख के धाम और संशय व दुःख के नाशक हैं। रे मूर्ख मन! तू अब आशा और भरोसा छोड़कर इन्हीं को गा और सुन।

दोहा—सकल सुमङ्गल दायक, रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जल जान॥६०॥

श्रीरामजी का गुणानुवाद सब सुन्दर मङ्गलों को देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनते हैं, वे भवसागर से बिना नौका के पार हो जाते हैं।

* मास पारायण—चौबीसवाँ विश्राम *

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसेकलकलिकलुष विध्वंसे पंचम सोपान समाप्तः ॥

कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का यह पाँचवां सोपान समाप्त हुआ॥

* रामचन्द्रजी की आरती *

श्रीराम-वन्दना

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम् ।
नव कञ्ज लोचन कञ्च मुख कर कञ्ज पद कञ्जारुणम् ॥
कन्दर्प अगणित अमित छबि नव नील नीरज सुन्दरम् ।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरम् ॥
भजु दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्य वंश निकन्दनम् ।
रघुनन्द आनन्दकन्द कौशलचन्द्र दशरथ नन्दनम् ॥
सिर क्रीट कुण्डल तिलक चारु उदार अङ्ग विभूषणम् ।
आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खरदूषणम् ॥
इति वदति 'तुलसीदास' शंकर शेष मुनि मन रंजनम् ।
मम हृदय कञ्ज निवास करु कामादि खल दल गञ्जनम् ॥

* सियावर रामचन्द्र की जय *

——:: * ::——

* श्रीरामचन्द्राय नमः *



* अथ मङ्गलाचरणम् *

—: श्लोक :—

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं,
योगीन्द्रंज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेश्वरं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं,
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥

कामदेव के शत्रु—श्रीमहादेवजी द्वारा सेवित, संसार के भय को दूर करने वाले, कालरूपी मतवाले हाथी के लिए सिंहरूप, योगियों के ईश्वर, ज्ञान के द्वारा जानने योग्य, सर्व गुण-निधान, अजय निर्गुण, बिकार रहित, माया से परे, देवताओं के स्वामी, दुष्टों को मारने में तत्पर, ब्राह्मण-मण्डली के पूज्य देवता, जल-पूर्ण श्याम मेघ के समान सुन्दर, कमल के समाम नेत्र वाले, पृथ्वी-पति के रूप में—स्वामी श्रीरामचन्द्रजी की मैं बन्दना करता हूँ।

शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं,
कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशांकप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमम्
नौमीढ्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम्॥

शंख और चन्द्रमा की-सी कान्ति से बहुत ही सुन्दर शरीर वाले, पीताम्बरधारी, काले भयानक साँपों का भूषण धारण करने वाले, गंगा और चन्द्रमा के प्रेमी, काशीपति, कलि-युग के पाप-समूहों को दूर करने वाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, पार्वतीजी के पति, गुणों की खान, कामदेव को भस्म करने वाले, बन्दनीय शंकरजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

यो ददाति सतां संभुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
खलानां दण्डकृद्योऽसौं शंकरः शं तनोतु मे ॥

जो सज्जनों को अति दुर्लभ-कैवल्य-मुक्ति तक देते हैं और दुर्जनों को दण्ड देते हैं। वे श्रीशङ्करजी सारे कल्याणों का विस्तार करें।

दोहा—लव निमेष परमानु जुग, बरष कलप सर चण्ड ।
भजसि नमन तेहि राम को, कालु जासु कोदण्ड ॥

अरे मन ! तू उन श्रीरामजी को क्यों नहीं भजता, जिनके लव-निमेष से लेकर वर्ष युग और कल्प तक प्रचण्ड बाण हैं, और काल ही जिनका धनुष है।

सो०—सिन्धु वचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अस बिलम्ब केहि काम, करहु सेतु उतरै कटुक ॥ १ ॥

समुद्र के वचन सुनकर स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने मन्त्रियों को बुलाकर ऐसा कहा-अब देर करने का क्या काम है ? सेतु तैयार करो तो सेना पार उतरे।

सुनहु भानुकुल केतु, जामवन्त कर जोरि कहि ।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिं ॥ २ ॥

जामवन्त हाथ जोड़कर बोले—हे सूर्यवंश में श्रेष्ठ श्रीरामजी ! हे नाथ ! सुनिये—आपका तो नाम ही सेतु है, जिस पर चढ़कर मनुष्य भवसागर से तर जाते हैं।

यह लघु जलधि तरत कति बारा * अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा
प्रभु प्रताप बढ़वानल भारी * सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी

इस छोटे से समुद्र के तरने में कितनी देर लगेगी ? ऐसा सुन पवनसुत हनुमानजी बोले-हे प्रभु ! आपके प्रताप से भारी बड़बानल ने समुद्र के जल को पहले ही सुखा डाला था।

तब रिपु नारि रुदन जल धारा * भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी * हरषे कपि रघुनाथ तन हेरी

परन्तु शत्रुओं की स्त्रियों के आँसुओं की धारा से यह फिर भर गया, इसी से यह खारी हो गया है। हनुमानजी की अत्युक्ति सुनकर बानर श्रीरघुनाथजी की ओर देखकर हंसे।

जामवन्त बोले दोउ भाई * नल नीलहि सब कथा सुनाई
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं * करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं

जामवन्त ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर सब कथा सुनाई और कहा—श्रीराम जी का प्रताप स्मरण कर सेतु तैयार करो, इसमें तुम्हें कुछ भी परिश्रम नहीं होगा।

बोलि लिए कपि निकर बहोरी * सकल सुनहु विनती कछु मोरी
राम चरन पंकज उर धरहू * कौतुक एक भालु कपि करहू

फिर बानरों के झुण्ड बुला लिए और कहा—तुम सब मेरी कुछ विनती सुनो। श्रीरामजी

के चरण-कमल हृदय में धारण कर सब रीछ और बानर कौतुक करो।

धावहु मर्कट बिकट बरूथा * आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा
सुनि कपि भालु चले कपि हूहा * जय रघुबीर प्रताप समूहा

सब बानर और रीछोंके झुण्ड दौड़े जाओ और वृक्षों पर्वतों को उखाड़ लाओ। जामवन्त की यह आज्ञा सुनकर रीछ-वानर 'हू-हा' करके 'महाप्रताप श्रीरामजी की जय' बोलते हुए चले।

दोहा—अति उतङ्ग गिरि पादप, लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि, रचहिं ते सेतु बनाइ॥ १ ॥

वे बड़े ऊँचे वृक्ष और पर्वतों को खेल ही में उठा लेते हैं और लाकर नल-नील को देते हैं वे उन्हें भली-भाँति सुधारकर सेतु बाँधते हैं।

सैल बिशाल आनि कपि देहीं * कन्दुक इव नल नील ते लेहीं
देखि सेतु अति सुन्दर रचना * बिहँसि कृपानिधि बोले वचना

जो बड़े-बड़े पर्वत वानर लाकर देते हैं, उन्हें नल-नील गेंद की तरह लेते हैं। सेतु की सुन्दर रचना देख कृपानिधान श्रीरामजी प्रसन्न होकर बोले—

परम रम्य उत्तम यह धरनी * महिमा अमित जाइ नहिं बरनी
करिहउँ इहाँ शम्भु स्थापना * मोरे हृदयँ परम कलपना

यह भूमि अति रमणीक और श्रेष्ठ है इसकी अपार महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा, यह मेरा हृदय में पूर्ण संकल्प है।

सुनि कपीस बहु दूत पठाए * मुनिवर सकल बोलि लै आए
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा * शिव समान प्रिय मोहि न दूजा

यह सुनकर सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे, वे मुनिवरों को लाये, तब श्रीरामजी ने शिव-लिंग की स्थापना करके विधि पूर्वक पूजा की और बोले—शिवजी के समान मुझे कोई भी दूसरा प्रिय नहीं है।

शिव द्रोही मम भगत कहावा * सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा
शंकर बिमुख भगति चह मोरी * सो नारकी मूढ़ मति थोरी

जो शिव-द्रोही मेरा भक्त कहलाता है, वह स्वप्न में भी मुझे नहीं भाता, शंकरजी से विमुख होकर जो मेरी भक्ति चाहे—वह नारकी, मूर्ख और अल्प-बुद्धि है।

दोहा—शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महुँ वास॥ २ ॥

जो शंकरजी के प्रेमी और मेरे द्रोही हों, अथवा शिवजी के द्रोही और मेरे भक्त हों, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में वास करते हैं।

जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं * ते तनु तजि मम धाम सिधारिहहिं

जो गङ्गाजलु आनि चढ़ाइहि * सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि

जो रामेश्वरजी के दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे धामको जायेंगे और जो इन पर गङ्गा-जल आकर चढ़ावेगा, वह भक्त सायुज-मोक्ष पावेगा।

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि * भगति मोरि तेहि शंकर देइहि
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही * सो बिनु श्रम भवसागर तरिही

जो निष्काम हो, कपट त्यागकर रामेश्वरजी की सेवा करेगा, उसे शंकरजी मेरी भक्ति देंगे। जो मेरे बनाये इस सेतु के दर्शन करेंगे, वे बिना परिश्रम हो भवसागर से पार हो जायेंगे।

राम बचन सबके जियँ भाए * मुनिबर निज निज आश्रम आए
गिरिजा रघुपति कै यह नीती * सन्तत करहिं प्रनत पर प्रीती

श्रीरामजीके वह वचन सबके मनको प्रिय लगे, तब मुनिवर अपने २ आश्रमों को चले गये। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती ! श्रीरामजी की यह रीति है शरणागत पर प्रीति करते हैं।

बाँधा सेतु नील नल सागर * राम कृपाँ जसु भयउ उजागर
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई * भए उपल बोहित सम तेई
महिमा यह न जलधि कर बरनी * पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी

चतुर नल और नील ने सेतु बांधा, श्रीरामजी की कृपा से उनका यश फैल गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरों को भी डुबा देते हैं वे नाव के समान होगये। यह न समुद्र की महिमा कही गई है, न पत्थरों का गुण है और न बानरों की करतूत है।

दोहा—श्रीरघुवीर प्रताप ते, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजी के प्रताप से समुद्र में पत्थर तैरने लगे। वे लोग मन्द-बुद्धि हैं, जो ऐसे प्रभु श्रीरामजी को छोड़कर दूसरे स्वामी का भजन जाकर करते हैं।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा * देखि कृपानिधि के मन भावा
चली सेन कछु बरनि न जाई * गर्जहिं मर्कट भट समुदाई

सेतु बांधकर बहुत ही पक्का बना दिया देखने पर वह कृपानिधान श्रीरामजीके मन भाया। बानरों की सेना चली, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वीर-बानरों के समूह गरजने लगे।

सेतुबन्ध ढ़िग चढ़ि रघुराई * चितव कृपालु सिन्धु बहुताई
देखन कहँ प्रभु करुनाकन्दा * प्रकट भए सब जलचर बृन्दा

सेतुबन्ध के तट पर चढ़कर कृपालु श्रीरघुनाथजी समुद्र का विस्तार देखने लगे। तब करुणानिधान प्रभु के दर्शन के लिए जलचरों के झुण्ड प्रकट होगये।

मकर नक्र नाना षस व्याला * सत जोजन तन परम बिसाला
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं * एकन्ह कें डर तेहि डेराहीं

अनेक प्रकार के मगर, घड़ियाल, मछलियाँ और साँप थे, जिनके शरीर सौ २ योजन के थे, उनमें कुछ ऐसे जीव भी थे, जो एक को एक पकड़कर खा जायें। किंतु वह भी किसी से डरते रहते थे।

प्रभुहि बिलोकति टरहिं न टारे * मन हरषित सब भए सुखारे
तिन्ह की ओट न देखिअ बारी * मगन भए हरि रूप निहारी
चला कटुकु प्रभु आयसु पाई * को कहि सक कपिदल बिपुलाई

वे सब प्रभु का दर्शन कर रहे हैं, हटाते नहीं हटते, सब मन में प्रसन्न और सुखी हुए। उनकी आड़ में जल नहीं दीख पड़ता, भगवान का रूप देखकर सब मग्न हो गये। प्रभु की आज्ञा पाकर सेना चली। बानर-सेना का विस्तार कौन कह सकता है?

दोहा—सेतुबन्धु भइ भीर अति, कपि नभ पन्थ उड़ाहिं।
अपर जल चरन्हि ऊपर, चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं॥ ४॥

सेतुबन्ध पर बड़ी भीड़ हुई। तब कुछ बानर आकाश मार्ग में उड़कर चले। बहुतेरे जलचर जीवों पर चढ़कर जाने लगे।

अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई * बिहँसि चले कृपाल रघुराई
सेन सहित उतरे रघुबीरा * कहि न जाइ कपि जूथप भीरा

दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसे। तब कृपालु रामचन्द्रजी चले, सेना समेत श्रीरघुनाथजी पार जा उतरे। बानर सेनापतियों की इतनी भीड़ थी कि कही नहीं जा सकती।

सिन्धु पार प्रभु डेरा कीन्हा * सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा
खाहु जाइ फल मूल सुहाए * सकल भालु कपि जहँ तहँ धाए

समुद्र के पार प्रभु ने डेरा किया और सब वानरों को आज्ञा दी कि तुम सब जाकर फल-फूल खाओ। सुनते ही रीछ-बानर इधर-उधर दौड़ गये।

सब तरु फले राम हित लागी * रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी
खाहिं मधुर फल बिटप हिलावहिं * लंका सन्मुख सिखर चलावहिं

श्रीरामजी के हित के लिए सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु का विचार छोड़कर फूल उठे, तब रीछ-बानर मीठे-मीठे फल खाकर वृक्षों को हिलाने लगे। पहाड़ों के शिखर उखाड़ कर लङ्का की ओर फेंकने लगे।

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं * घेरि सकल बहु नाच नचावहिं
दाँतिन्ह काटि नासिका काना * कहि प्रभु सुयसु देहिं तब जाना

घूमते हुए जहाँ कहीं राक्षसों को पाते तो सब घेरकर खूब नचाते। दाँतों से उनके नाक-कान काट लेते, फिर जब वह श्रीरामचन्द्रजी का सुयश कहना-तब जाने देते।

जिन्ह कर नासा कान निपाता * तिन्ह रावनहि कही सब बाता
सुनत श्रवन बारिधि बन्धाना * दसमुख बोलि उठा अकुलाना

जिन राक्षसों के नाक-कान काट लिए, उन्होंने जाकर रावण से सब बातें कहीं। समुद्र पर सेतु

बँध गया, यह बात कानों से सुनते ही रावण घबड़ाकर दसों मुखों से बोल उठा–

दोहा–बाँध्यो वननिधि नीरनिधि, जलधि सिन्धु बारीस।
सत्य तोय निधि कम्पित, उदधि पयोधि नदीस ॥ ५ ॥

क्या सचमुच ही वन-निधि, नीर-निधि, जल-निधि, सिन्धु, वारीश, तोय-निधि, पंक-निधि, उदधि, पयोधि, नदीश को बांध लिया ?

निज बिकलता बिचारि बहोरी ✻ बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी
मन्दोदरी सुन्यो प्रभु आयो ✻ कौतुकही पाथोधि बँधायो

फिर अपनी घबराहट को समझकर, हँसता हुआ भय को भुलाकर महल को चला गया। मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु खेल ही में समुद्र पर पुल बांधकर आगये हैं।

करगहि पतिहि भवन निजआनी ✻ बोली परम मनोहर बानी
चरन नाइ सिर अञ्जलु रोपा ✻ सुनहु बचन प्रिय परिहरि कोपा

तब पति का हाथ पकड़कर अपने भवन में ले आई और परम मधुर वाणी बोली। चरणों में मस्तक नवाया और आँचल फैलाकर कहा–हे प्रियतम ! क्रोध को त्यागकर मेरे वचन सुनो–

नाथ बयरु कीजैं ताही सों ✻ बुधिबल सकिय जीति जाही सों
तुम्हहि रघुपतिहि अन्तर कैसा ✻ खलु खद्योत दिनकरहि जैसा

हे नाथ ! बैर उसी से करना उचित है, जिसको अपनी बुद्धि और बल से जीत सके। आप में और श्रीरामजी में निश्चय ही उतना अन्तर है, जितना कि मूर्ख जुगनू और सूर्य में।

अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे ✻ महाबीर दिति सुत संघारे
जेहिं बल बाँधि सहज भुज भारा ✻ सोइ अवतरेउ हरनि महि भारा
तासु विरोध न कीजिअ नाथा ✻ काल करम जिव जाकें हाथा

जिन्होंने अत्यन्त बलवान् मधु-कैटभ को मारा और महावीर हिरण्यकशयपु व हिरण्याक्ष का संहार किया। जिन्होंने बलि को बाँधा, सहस्त्राबाहु को मारा, वही भगवान भूमि का भार उतारने के लिए प्रगट हुए हैं। हे नाथ ! उनसे वैर न कीजिये, क्योंकि काल, कर्म और जीव उनके आधीन हैं।

दोहा–रामहिं सौंपि जानकी, नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि वन, जाइ भजिअ रघुनाथ ॥ ६ ॥

श्रीरामजी के चरण-कमलों में मस्तक नवाकर उन्हें जानकीजी सौंप दीजिए और पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर श्रीरघुनाथजी का भजन करिये।

नाथ दीनदयाल रघुराई ✻ बाघउ सन्मुख गएँ न खाई
चाहिय करन सो सब करि बीते ✻ तुम्ह सुर असुर चराचर जीते

हे नाथ श्रीरघुनाथजी दीनों पर दया करने वाले हैं सन्मुख जाने पर तो बाघ भी नहीं खाता। आपकी जो करने की इच्छा थी, सो सब कर चुके ! देवता असुर और सब चर-अचर आपने जीत लिये।

सन्त कहहिं अस नीति दसानन * चौथेपन जाइहि नृप कानन
तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता * जो कर्ता पालक संहर्ता

हे दशमुख ! सन्त जन ऐसी नीति कहते हैं कि राजा चौथेपन में वन को जावे। हे स्वामी ! वन को जाकर भजन करिये, जो संसार को उत्पन्न, पालन और संहार करने वाले हैं।

सोइ रघुवीर प्रनत अनुरागी * भजहु नाथ ममता सब त्यागी
मुनिवर जतनु करहिं जेहि लागी * भूप राजु तजि होहिं बिरागी

वही श्रीरामजी शरणागत पर प्रेम करने वाले हैं। हे नाथ ! सब ममता छोड़कर उन्हीं को भजिये जिनके लिए श्रेष्ठ मुनिलोग अनेकों यत्न करते हैं, राजा राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं।

सोइ कोसलाधीस रघुराया * आयउ करन तोहि पर दाया
जौं प्रिय मानहु मोर सिखावन * सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन

वही कौशलनाथ श्रीरामजी, आप पर कृपा करने आये हैं। हे प्रियतम ! जो आप मेरी इस शिक्षा को मानो तो तीनों लोकों में आपका उत्तम यश फैल जायगा।

दोहा—अस कहि नयन नीर भर, गहि पद कम्पित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि, अचल होइ अहिवात ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर आँखों में जल भरकर काँपते हुए शरीर से चरण पकड़ लिए। हे नाथ ! प्रभु का भजन करिये जिससे मेरा सुहाग अचल हो जायेगा।

तब रावन मयसुता उठाई * कहै लाग खल निज प्रभुताई
सुनु तैं प्रिया वृथा भय माना * जग जोधा को मोहि समाना

तब रावण ने मन्दोदरी को उठाया और वह दुष्ट अपनी प्रभुता कहने लगा—हे प्रिये ! सुनो, तुम व्यर्थ ही डर मान रही हो संसार में मेरे समान योद्धा कौन है ?

बरुन कुबेर पवन जम काला * भुजबल जितेउ सकल महिपाला
देव दनुज नर बस सब मोरें * कवन हेतु भय उपजा तोरें

मैंने अपनी भुजाओं के बलसे वरुण, कुबेर, यम, काल और सब दिग्गजों को जीत लिया है। देवता, दैत्य, मनुष्य सब मेरे वश में हैं। फिर किस कारण तुम्हें ऐसा भय उत्पन्न हुआ ?

नाना विधि तेहि कहेसि बुझाई * सभाँ बहोरि बैठि सो जाई
मन्दोदरी हृदयँ अस जाना * काल बस्य उपजा अभिमाना

अनेक प्रकार से मन्दोदरी को समझाकर रावण अपनी सभा में जाकर बैठ गया। मन्दोदरी ने अपने हृदय में जान लिया कि काल के वश में होने से अभिमान हो गया है।

सभा आय मन्त्रिय तेहि बूझा * करब कवन बिधि रिपु सन जूझा
कहहिं सचिव सुनु निसिचरनाहा * बार बार प्रभु पूँछहु काहा
कहहु कवन भय करिअ बिचारा * नर कपि भालु अहार हमारा

सभा में जाकर रावण ने अपने मन्त्रियों से पूछा-शत्रु से किस तरह लड़ाई करनी चाहिए? मन्त्री कहने लगे–हे निशाचरनाथ ! सुनिये, आप बार-बार क्या पूछ रहे हैं ? कहिये, ऐसा कौनसा डर है जिस पर विचार किया जाय ? मनुष्य, बानर, रीछ तो हमारे आहार हैं।

दोहा–सबके बचन श्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु, मन्त्रिन्ह मति अति थोरि ॥ ८ ॥

कानों से सबकी बात सुनकर प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा–हे प्रभु ! नीति के विरुद्ध कुछ न कीजिये। मन्त्रियों में तो बहुत थोड़ी बुद्धि है।

कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती * नाथ न पूर पाव एहि भाँती
बारिधि नाँघ एक कपि आवा * तासु चरित मन महुँ सब गावा

यह सब मन्त्री मुँह देखी बात करते हैं। हे नाथ ! इस भाँति से पूरा नहीं पड़ेगा। समुद्र लाँघकर एक बानर आया था उसकी करनी को सब राक्षस मन ही मन गाते हैं।

क्षुधा न रही तुम्हहि तब काहू * जारत नगरु न कीस धरि खाहू
सुनत नीक आगें दुख पावा * सचिवन्ह अस मति प्रभुहि सुनावा

तब उस समय तुममें से किसी को भूख न थी। नगर जलते समय उसे पकड़कर क्यों न खा गये ? इन मन्त्रियों ने ऐसा मत आपको सुनाया है, जो इस समय सुनने में अच्छा है पर आगे दुःख होगा।

जेहिं बारीस बँधायउ हेला * उतरेउ सेन समेत सुबेला
सो जनु मनुज खाव हम भाई * बचन कहहिं सब गाल फुलाई

जिन्होंने समुद्र सहज ही में बाँध लिया और जो सेना समेत सुबेल पर्वत पर आ उतरे हैं, वे क्या मनुष्य हैं, जो तुम सब भाई गाल फुलाकर बात कर रहे हो कि हम खा जायेंगे।

तात बचन मम सुनु अति आदर * जनि मन गुनहु मोहि करि कादर
प्रिय बानी जे सुनहिं न करहीं * ऐसे नर निकाय जग अहहीं

हे पिताजी मेरी बात बड़े आदर के साथ सुनिये, मन में मुझे कायर मत समझना। जो प्यारे वचन सुनते हैं ऐसे मनुष्य संसार में बहुत हैं।

बचन परम हित सुनत कठोरे * सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे
प्रथम बसीठ पठय सुनु नीती * सीता देइ करहु पुनि प्रीती

हे प्रभो ! परिणाम में बहुत हितकारी व सुनने में कठोर वचन जो कहते व सुनते हैं, वे मनुष्य संसार में थोड़े हैं। सुनिये, नीति तो यह है–पहले दूत भेजिये, फिर सीताजी को देकर प्रीति कर लीजिये।

दोहा–नारि पाइ फिरि जाहिं जौं, तो न बढ़ाइअ रारि।
नाहि त सन्मुख समर महि, तात करिअ हठ मारि ॥ ९ ॥

हे नाथ ! जो स्त्री को पाकर वे लौट जायें तो झगड़ा न बढ़ाइये नहीं लौटें तो समर में सन्मुख हठ करके युद्ध कीजिये।

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा ※ उभय प्रकार सुजसु जग तोरा
सुत सन कह दसकंठ रिसाई ※ अति मतिसठि केहि तोहि सिखाई

हे प्रभो! यह जो मेरा मत आप माने तो संसार में दोनों प्रकार से सुयश होगा। यह सुनते ही रावण क्रोधित होकर पुत्र से कहने लगा-रे शठ! तुझे ऐसी मति किसने सिखाई?

अबहीं ते उर संसय होई ※ बेनुमूल सुत भयउ घमोई
सुनि पितु गिरा पुरुष अतिघोरा ※ चला भवन कहि वचन कठोरा

तेरे मन में अभी से सन्देह होने लगा। रे लड़के! तू बांस की जड़ में कांटेदार पौधे की तरह उत्पन्न हुआ है। पिता के ऐसे कड़े और तीखे वचन सुनकर प्रहस्त कठोर वचन कहता हुआ घर को चला।

हित मति तोहि न लागहिं कैसें ※ काल बिबस कहुँ भेषज जैसें
सन्ध्या समय जानि दससीसा ※ भवन चलेउ निरखत भुजबीसा

हितकारी बातें भी तुम्हें इस प्रकार अच्छी नहीं लगतीं, जिस प्रकार मरने वाले को औषधि नहीं सुहाती। संध्या का समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओं को निहारता हुआ महल की ओर चला।

लंका शिखर उपर आगारा ※ अति विचित्र तहँ होइ अखारा
बैठि जाइ तेहि मन्दिर रावन ※ लागे किन्नर गुन गन गावन
बाजहिं ताल पखावज बीना ※ नृत्य करहिं अपछरा प्रवीना

लंका की चोटी पर एक स्थान विचित्र था, वहाँ अखाड़ा था। वहां जाकर रावण बैठा और किन्नर उसके गुणानुवाद गाने लगे। ताल, पखावज और वीणा आदि बाजे बज रहे हैं, चतुर अप्सरायें नाच रही हैं।

दोहा—सुनासीर सत सरिस सो, सन्तत करइ विलास।
परम प्रवल रिपु सीस पर, तद्यपि सोच न त्रास ॥ १० ॥

वह सदैव सौ इन्द्रों के समान आनन्द करता है, यद्यपि सिर पर बड़ा प्रबल शत्रु चढ़ आया है तथापि उसके मन में कोई डर नहीं है।

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा ※ उतरे सेन सहित अतिभीरा
शखर एक उतंग अति देखी ※ परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी

यहाँ सुवेल पर्वत पर श्रीरामजी सेना की बड़ी भारी भीड़ सहित उतरे। उस पर्वत पर एक सुन्दर बहुत ऊँचा, स्वच्छ और समतल शिखर देखकर—

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए ※ लछिमन रचि निज हाथ डसाए
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला ※ तेहिं आसन आसीन कृपाला

वहाँ वृक्षों के कोमल पत्ते और फूल लक्ष्मणजी ने हाथों से बिछाये फिर उस पर सुन्दर कोमल मृगछाला बिछाई। उसी आसन पर कृपालु श्रीरामजी विराजमान हुए।

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा ※ बाम दाहिनी दिसि चाप निषंगा

दुहुँ कर कमल सुधारत बाना * कह लंकेस मन्त्र लगि काना

प्रभु रामजी अपना सिर सुग्रीव की गोद में रक्खे हैं,बाँयें और दाहिने ओर धनुष-वाण रक्खे दोनों कर कमलोंसे बाण सुधार रहे हैं। विभीषण कानों से लगकर प्रभुसे कुछ सम्मति कर रहेहैं।

बड़भागी अङ्गद हनुमाना * चरन कमल चापन बिधि नाना
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन * कटि निसङ्ग कर बान सरासन

बड़े भाग्यवान् अंगद और हनुमान अनेक प्रकारसे चरणकमल दवा रहेहैं,प्रभु के पीछे लक्ष्मणजी वीरासन जमाये कमर में तरकस और हाथों में धनुष-वाण धारण किए विराजमान हैं।

दोहा--एहि विधि कृपा रूप गुन, धाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यानजे, रहत सदा लवलीन ॥११क॥

इस भाँति कृपा और गुणों के धाम श्रीरामजी विराजमान हैं वे पुरुष धन्य है जो इस प्रकार के ध्यान में सदैव मग्न रहते हैं।

पूरब दिसा विलोकि प्रभु, देखेउ उदित मयंक।
कहत सबहि देखेहु ससिहि, मृगपति सरिस असंक ॥११ख॥

श्रीरामजी ने पूर्व की ओर दृष्टि की तो चन्द्रमा को उदय हुआ देखा। वे कहने लगे चन्द्रमा को तो देखो सिंह के समान निशंक है।

पूरब दिस गिरि गुहा निवासी * परम प्रताप तेज बल रासी
मत्त नाग तम कुम्भ बिदारी * ससि केसरी गगन बन चारी

पूर्व दिशा रूपी गुफा में रहने वाला अत्यन्त, प्रताप, तेज और बल की राशि यह चन्द्रमा रूपी सिंह अन्धकार रूपी मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके आकाश रूपी वन में विचर रहा है।

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा * निसि सुन्दरी केर सिङ्गारा
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई * कहहु काह निज निज मतिभाई

आकाशमें जो तारे छिटक रहे हैं,मानो गजमुक्ता हैं,जो रात्रिरूपी सुन्दर स्त्रीके शृंगार है,प्रभु ने कहा-हे भाइयो। चन्द्रमामें जो श्यामलता है सो क्या है? सब अपनी २ बुद्धि के अनुसार कहो।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई * ससि महुँ प्रकट भूमि कै छाँई
मारेउ राहु ससिहि कह कोई * उर महँ परी स्यामता सोई

सुग्रीव ने कहा—हे रघुनाथजी ! सुनिये, चन्द्रमा में पृथ्वी की परछाई दीख पड़ती है। कोई बोले—राहु ने चन्द्रमा को मारा था, उसी चोट का दाग हृदय में पड़ गया है।

कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा * सार भाग ससि कर हरि लीन्हा
छिद्र सो प्रकट इन्दु उर माहीं * तेहि महँ देखिअ नभ परछाहीं

कोई बोले-जब ब्रह्माजी ने रति का मुख बनाया तो चन्द्रमा का सार निकाल लिया था। वही छिद्र चन्द्रमा के हृदय में दीख पड़ता है, उसी में आकाश की परछाइं दीख पड़ती है।

प्रभु कह गरल बन्धु ससि केरा * अति प्रिय निज उर दीन बसेरा
विष संजुत कर निकरपसारी * जारत बिरहवन्त नर नारी

प्रभु ने कहा-'विष' चन्द्रमा का बहुत प्यारा भाई है, उसे चन्द्रमा ने अपने हृदय में ही बसा लिया है। विषयुक्त किरणों के समूह को फैलाकर यह विरही नर-नारियों को जलाता है।

दोहा—कह हनुमन्त सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तब मूरत बिधुउरबसंति, सोइ स्यामता अभास ॥१२क॥

हनुमानजी ने कहा—हे प्रभु ! सुनिये, चन्द्रमा आपका प्यारा सेवक है, उसके हृदय में आपकी मूर्ति बसती है। वही श्यामलता झलक रही है।

* नवान्ह पारायण—सातवाँ विश्राम *

पवन तनय के वचन सुन, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिनदिसिअवलोकिप्रभु, बोले कृपानिधान ॥१२ख॥

हनुमानजी के वचन सुनकर चतुर रामजी हँसे और दक्षिण की ओर देखकर कृपानिधान बोले-

देखु विभीषन दच्छिन पासा * घन घमण्ड दामिनी बिलासा
मधुर मधुर गरजइ घनघोरा * होई बृष्ट जनि उपल कठोरा

हे विभीषण ! दक्षिण दिशा की ओर देखो। बादल उमड़ रहे हैं, मधुर-मधुर ध्वनि से घने बादल ऐसे गरज रहे हैं, मानो कठोर ओलों की वर्षा होना चाहती है।

कहत विभीषन सुनहु कृपाला * होइ न तड़ित न बारिद माला
लंका सिखर ऊपर आगारा * तहँ दसकन्धर देख अखारा

विभीषण ने कहा—हे कृपालु ! सुनिये, यह न तो बिजली है न बादलों की घटा है। यह लंका के शिखर पर एक महल है, वहाँ रावण अखाड़ा देख रहा है।

छत्र मेघडम्बर सिर धारी * सोइ जनु जलद घटा अतिकारी
मन्दोदरी श्रवन ताटंका * सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका

रावण के सिर पर मेघडम्बर छत्र है, वही मेघ के समान जान पड़ता है। और हे प्रभु ! मन्दोदरी के कानों में जो कर्णफूल हैं, वह बिजली तुल्य चमक रहे हैं।

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा * सोई रव मधुर सुनहु सुरभूपा
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना * चाप चढ़ाइ बान सन्धाना

हे देवोत्तम ! सुनिये, यह जो मनोहर ताल-मृदंग बज रहे हैं, उन्हीं का शब्द सुनाई दे रहा है। रावण का अभिमान समझकर रामजी मुस्कराये, और धनुष चढ़ाकर बाण संधान किया।

दोहा—छत्र मुकुट ताटंक सब * हते एक ही बान।
सबके देखत महि परे, मरम न कोउ जान ॥१३क॥

दोहा–अस कौतुक करि राम सर, प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब, देखि महारस भंग ॥१३ख॥

छत्र, मुकुट, कर्णफूल सब एक ही बाण से काटकर सबके देखते २ पृथ्वी पर गिरा दिये, उनके गिरने का भेद किसी ने नहीं जाना। ऐसा चमत्कार करके श्रीरामचन्द्रजी का बाण आकर तर्कस में प्रवेश कर गया। महा रसभङ्ग देखकर सभा भयभीत हो गई।

कम्प न भूमि न मरुत बिसेषा * अस्त्र शस्त्र कछु नयन न देखा
सोचहिं सब निज हृदय बिचारी * असगुन भयउ भयंकर भारी

न पृथ्वी हिली-न जोर से हवा चली, न कोई अस्त्र शस्त्र ही आँखों से देखा सब मन में सोच रहे हैं कि बड़ा भयंकर असगुन हो गया।

दसमुख देखि सभा भय पाई * बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई
सिरउ गिरे सन्तत शुभ जाही * मुकुट परे कसि असगुन ताही

रावण सभा को भयभीत देखकर हँसा और युक्ति से बात बनाकर कहने लगा-जिसके सिर गिरने से भी सदा मङ्गल होता है। उसके मुकुट गिरने से असगुन कैसा।

सयन करहु निज निज गृह जाई * गवने भवन सकल सिर नाई
मन्दोदरी सोच उर बसेऊ * जब तें श्रवनपूर महि खसेऊ

अपने-अपने घर जाकर सोओ। यह सुनकर सब रावण को सिर नवाकर घर गए। मन्दोदरी के हृदय में तब ही चिन्ता बस गई जब से कर्णफूल पृथ्वी पर गिरे थे।

सजल नयन कहि जुगकर जोरी * सुनहु प्राणपति बिनती मोरी
कन्त राम बिरोध परिहरहू * जानि मनुज जनि हठ मनधरहू

वह आँखों में आँसू भर दोनों हाथ जोड़कर रावण से बोली-हे प्राणपति ! प्रार्थना सुनो-हे स्वामी ! श्रीरामजी से बैर छोड़ दो, उनको मनुष्य जानकर हट मत करो।

दोहा–विश्वरूप रघुवंस मनि, करहु वचन विश्वासु।
लोक कल्पना वेद कर, अंग अंग प्रति जासु ॥ १४ ॥

वे श्रीरामजी विश्वरूप हैं, मेरी इस बात पर विश्वास कीजिये। वेदों ने उनके अंग-अंग में ब्रह्माण्डों की कल्पना की है।

पद पाताल सीस अज धामा * अपर लोक अँग अँग विश्रामा
भृकुटि बिशाल भयंकर काला * नयन दिवाकर कच घन माला

उनके चरण पाताल, मस्तक ब्रह्मलोक और अन्य जितने लोक हैं वे अंग-अंग में स्थित हैं। उनकी भृकुटि विशाल ही भयंकर काल है, नेत्र सूर्य हैं, और केस मेघों के समूह हैं।

जासु घ्रान अश्विनी कुमारा * निसिअरु दिवस निमेष अपारा
श्रवन दिसा दस वेद बखानी * मारुत स्वाँस निगम निज बानी

उनकी नासिका अश्वनीकुमार हैं, असंख्य रात-दिन पलकों की गति हैं कान ही दसों दिशायें हैं, यह वेदों ने कहा है। उनका श्वांस पवन और वेद उनकी वाणी है।

अधर लोभ जम दसन कराला * माया हास बाहु दिगपाला
आनन अनल अम्बुपति जीहा * उत्पति पालन प्रलय समीहा

लोभ उनके होठ हैं, यमराज भयंकर दांत हैं, माया हंसी है, दिग्पाल भुजायें हैं, अग्नि मुख है, वरुण जीभ है, उत्पत्ति, पालन और प्रलय उनकी चेष्टा है।

रोम राजि अष्टादस भारा * अस्थि सैल सरिता नस जारा
उदर उदधि अधगो जातना * जगमय प्रभु का बहुत कल्पना

अठारह प्रकार की वनस्पतियां ही उनकी रोमावलि हैं, पर्वत हड्डियां हैं, समस्त नदियां नसें हैं, उदर समुद्र है और नर्क नीचे की इन्द्रियां हैं। इस प्रकार प्रभु 'विश्व-रूप' हैं। अधिक कल्पना क्या की जाय।

दोहा—अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥१५क॥

जिनका अहंकार महादेव हैं, बुद्धि ब्रह्माजी हैं, चन्द्रमा मन है, महत्व चित्त है, उन्हीं चराचर रूप भगवान श्रीरामचन्द्रजी ने मनुष्य रूप में निवास किया है।

अस विचारि सुनु प्राणपति, प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुवीर पद, मम अहिबात न जाइ ॥१५ख॥

हे प्राणपति! सुनो ऐसा विचारकर श्रीरामचन्द्रजी से वैर छोड़ कर उनके चरणों में प्रीति करो, जिससे मेरा सुहाग न जाय।

बिहँसा नारि वचन सुनि काना * अहो मोह महिमा बलवाना
नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं * अवगुन आठ सदा उर रहहीं

स्त्री की बात कानों से सुनकर रावण हंसा और बोला—अहो! मोह की महिमा प्रबल है। कवि स्त्रियों का स्वभाव ठीक कहते हैं कि उनके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं।

साहस अनृत चपलता माया * भय अबिबेक असोच अदाया
रिपुकर रूप सकल तें गावा * अति बिसाल भय मोहि सुनावा

साहस, झूंठ, चंचलता, माया, भय, अज्ञान, अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का भय सब प्रकार से कहा और मुझे भी बड़ा भय सुनाया।

सो सब प्रिया सहज बस मोरें * समुझि परा प्रसाद अब तोरें
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई * एहि विधि कहहु मोरि प्रभुताई

हे प्रिये! यह सब सहज ही मेरे वश में हैं, अब तुम्हारी कृपा से मुझे समझ पड़ा है। हे प्रिय! तुम्हारी चतुराई मैंने जान ली, इसी बहाने से तुमने मेरी प्रभुता कही है।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि * समुझत सुखद सुनत भय मोचनि

मन्दोदरि मन महुँ अस ठयऊ * पियहि कालवश मति भ्रम भयऊ

हे मृगनयनी ! तेरी सुन्दर बातें बड़ी गूढ़ हैं, जो समझने में सुख देने वाली और सुनने से भय को दूर करने वाली हैं। मन्दोदरी ने मन में निश्चय कर लिया कि मृत्यु के वश पति को भ्रम हो गया है।

दोहा–एहि बिधि करत विनोद बहु, प्रात प्रगट दसकन्ध।
सहज असंक लङ्कपति, सभाँ गयउ मद अन्ध ॥१६क॥

बहुत प्रकार से विनोद करते हुए सबेरा हो गया। तब स्वभाव से ही निडर लंकापति मदान्ध रावण अपनी सभा में गया।

सो०–फूलइ फलइ न बेत, जदपि सुधा बरषहि जलद।
मूरख हृदयँ न चेत, जौं गुरु मिलहि विरञ्चि सम ॥१६ख॥

बेंत फूलता फलता नहीं, चाहे मेघ अमृत ही क्यों न बरसावे। इसी प्रकार मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता, चाहे ब्रह्मा के समान गुरु ही क्यों न मिले।

दोहा–मन्त्रिन्ह सहित दशानन, चढ्यौं सृङ्ग गिरि जाय।
सारन कह तब राज सन, देखहु कपि समुदाय ॥ १ ॥

वहाँ रावण अपने मन्त्रियों को साथ लेकर अत्यन्त उच्च शिखर पर जा चढ़ा। तब शुक-सारण बोले–हे राजन् ! बानरों के समूह तो देखो।

यह जो सिंहनाद किलकरहीं * सप्त ताल उन्नति उच्चरहीं
सहस कोटि अतुलित बलवाना * इनके सँग बानर परिनामा

यह जो सिंहनाद करके किलकारी मारते हैं और सात ताड़ के वृक्षों के बराबर ऊँचे हैं तथा सहस्र करोड़ अतुलित बल वाले बानर इनके साथ हैं।

रन अजीत यह सहज असङ्का * नाद सुने काँपै गढ़ लङ्का
नभ निरखहु इनके लंगूरे * जनु ऋतु पावस युग धनु पूरे

यह युद्ध में अजय और स्वभाव से ही निडर हैं, जिनकी गर्जना सुनकर लंकागढ़ काँपता है आकाश में पूंछों को देखो, मानो वर्षा ऋतु में दो धनुष निकल आये हों।

विश्वकर्मा के सुत अभिमानी * इन परसे पत शिलउ तरानी
रहव ताम्रगिरि कन्दर माहीं * गोदावरी विमल जल पाहीं

वे विश्वकर्मा के अहंकारी पुत्र हैं, इन्हीं के छूने से शिलायें जल के ऊपर तैरती थीं। वे ताम्र-गिरी की कन्दरा में रहते हैं और गोदावरी का निर्मल जल पीते हैं।

अति बल आगे धावहिं बीरा * इन पर कृपा करहिं रघुबीरा
करहिं समर कर संगर लीला * [illegible]

जो अत्यन्त बलशाली वीर आगे चलते हैं, इन पर श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त कृपा है। जो युद्ध में यम को भी ढीला कर सकते हैं, ये नल और नील नामक दो वानर हैं।

दोहा—पद्म अठारह निज कटक, चल इनकी भुज छाँह।
निज कर सुरभी सुमन लै, रघुपति पूजी बाँह॥ २॥

बानरों की अठारह पद्म सेना इनकी भुजाओं की छाया में चलती है। अपने हाथ से मनोहर सुगन्धित पुष्प लेकर श्रीरघुनाथजी ने इनकी भुजाओं का पूजन किया है।

यह जो आवत अचल समाना * चोदह ताड़ उच्च परिमाना
बास पुलिन्दा के तट करई * अम्बुद निकर निरखि करधरई

यह जो पर्वत के समान चला आता है, जिसकी ऊँचाई चौदह ताड़ के वृक्षों के बराबर है, जो पुलिन्दा नदी के तट पर रहता है और बादलों के समूह को देखते ही पकड़ लेता है।

रक्त कमल दल सम सब देहा * जनु विकसेउ सन्ध्या कर मेहा
हते मेदिनी पूँछ भँवाई * लङ्का सौंह चितव जनु खाई

इसकी देह लाल कमल के समान है, मानो संध्या का मेघ उदय हुआ हो। पूँछ घुमाकर मारे तो पृथ्वी फट जाय, लंका की ओर ऐसे देखता है, मानो खा जायगा।

तारा सुतन बालि को जायो * अति जुझार रघुपति मन भायो
हृदयँ गगन इहि के प्रभु भानू * पंच पद्म इन कर परिमानू

बालि से उत्पन्न यह तारा का पुत्र बड़ा ही वीर है और श्रीरामजी को बहुत ही प्रिय है उसके हृदयाकाश में प्रभु सूर्य के समान बसते हैं, इसके साथ पाँच पदम वानर हैं।

करै वज्र बासव कर भंगा * उदयाचल कहँ लेइ उचंगा
परम चतुर सेनप इहि लागी * रघुपति कृपा परम बड़भागी

यह इन्द्र के वज्र को भी तोड़ सकता है, उदयाचल को गोदी में उठा सकता है। यह सेनापति परम चतुर है और श्रीरघुनाथजी की कृपा से परम भाग्यवान है।

दोहा—पाउँ धरा धरि चापै, पन्नग होइ अकाज।
सेन अग्रसर देखहु, यह अंगद युवराज॥ ३॥

जो पृथ्वी पर चरण रखकर दबा दे, तो शेषनाग व्याकुल हो जायें। देखो सेना के आगे चलने वाला वही युवराज अंगद है।

ये देखहु जो चहुदिशि घुमड़े * मनहुँ लङ्क सावन घन उमड़े
आगे पीछे दश दिशि धावहि * शिला भृङ्ग तरु तोरन आवहि

अब इन वानरों को देखो, जो चारों ओर घुमड़ते हुए हैं, मानो लंका में सावन के मेघ उमड़ आये हों। यह आगे-पीछे दशों दिशाओं में दौड़ते हैं और शिला, पर्वत व वृक्ष तोड़ते हैं।

सहस नागबल सबहि समाना * सप्त पद्म इन कर परिमाना

कासीपुरी बास इन्ह केरा * समर कबहुँ जिन्ह पीठ न फेरा

इनमें से प्रत्येक में एक हजार हाथी का बल है, इनकी संख्या सात पद्म है, इनका वास काशीपुरी में है, जिन्होंने युद्ध में कभी पीठ नहीं फेरी।

तीक्षण दन्त नखायुध धारी * द्वन्द युद्ध यह जानहिं भारी
धूमकेतु यूथन्ह इन्ह केरा * लङ्का निकट कीन्ह जेहि डेरा

तीक्ष्ण नख और दाँतरूपी अस्त्र धारण करने वाले ये भारी द्वन्द्व-युद्ध जानते हैं। इनका सेनापति धूम्रकेतु है, जिसने लंका के निकट डेरा किया है।

इहि कर जेठ बन्धु जामबन्ता * तेहि के बल कर पाव को अन्ता
देव दनुज को जूझैं ताही * धरा होइ कर कन्दुक जाही

इसका बड़ा भाई जामवन्त है। उसके बल का अन्त कौन पा सकता है? देवता और राक्षस उनसे कौन जूझे, जो पृथ्वी को गेंद के समान उठा सकता है।

बसे असंक नर्मदा तीरा * कुलिस समान अभेद्य सरीरा

यह निर्भय हो नर्बदा के किनारे रहता है और उसका शरीर वज्र के समान अभेद्य है।

दोहा—सचिव सुकण्ठ चरन रज, रघुबर कर प्रिय दास।
सो जड़मति जो याहि रण, चह जीतन की आस ॥ ४ ॥

यह (जामवन्त) सुग्रीव का मन्त्री और श्रीरघुनाथजी का प्रिय दास है। वह मूर्ख है जो इनको युद्ध में जीतना चाहता हो।

अब देखहु यह यूथ अपारा * पीत वरण होइ गयउ पहारा
बाल भानु अरुणि जस फूटी * निशिचर निकर तमी छह छुटी

अब इस अपार सेना को देखो, जिसके रंग से पहाड़ पीला हो गया है। जैसे बाल-सूर्य की किरण फूटकर राक्षसरूपी अंधकार का नाश करना चाहती हो।

चौबीस अर्बुद इन्ह कर जूहा * सहस बूँद सम कोटि समूहा
शिला सैल जे आगे परहीं * पायन्ह मर्दि गर्द सम करहीं

इसका समूह चौबीस अरब का है। हजार बूँदों के समान इनका करोड़ों का समूह है। जो शिला अथवा पर्वत आते हैं, उन्हें ये पावों से मसलकर धूल के समान कर देते हैं।

कञ्चन गिरि कन्दर के बासी * इन्ह कर यूथनाथ अविनासी
अति बल बासनकर हितकारी * सखा सुकण्ठ केर सुखकारी

ये सुमेरु पर्वत की गुफाओं के निवासी हैं इनका सेनापति अविनाशी है। वह अत्यन्त बलशाली, इन्द्र का हितकारी और सुग्रीव का सुखदाई मित्र है।

पान करे गङ्गा कर नीरा * पर्वत सृङ्ग समान सरीरा
छिन छिन सिंहनाद जो होई * [illegible] है सुनि सोई

यह गंगा का जल पीता है और पर्वत के शिखर के समान इसका शरीर है। क्षण-क्षण में जो सिंहनाद होता है, सो वही बानर गर्जता चला आता है।

दोहा–यश त्रिलोक मंगल दलित, बल कर नाहिन अन्त।
यह कपि राजा केशरी, सुवन जासु हनुमन्त ॥ ५ ॥

तीनों लोकों में जिसका यश फैल रहा है, जिसने अनेकों हाथी मारे हैं, जिसके बल का अन्त नहीं है, यह वही वानरों का राजा 'केशरी' है जिसका पुत्र–'हनुमान' है।

यह जो कुमुद पत्र सम देहा * जस कैलास शरद कर मेहा
लोचन मधु पिंगल अति लौने * कामरूप चितवत चहुँ कौने

यह जो कुमुद के समान देह वाला, जैसे कैलाश-पर्वत के ऊपर शरद का मेघ होता है। जिसके नेत्र भूरे और सुन्दर हैं तथा जो इच्छानुसार देह धारण करने वाला और चारों कोनों को देखता है।

लंका सौंह लँगूर फिराई * गर्जत प्रलयमेघ की नाँई
सुरपति साथ युद्ध महँ गयऊ * तब ते कामरूप व्है भयऊ

लङ्का की ओर पूंछ फिराता हुआ प्रलय के बादलों के समान गरजता है, यह इन्द्र के साथ युद्ध में गया था, तबसे इच्छानुसार देह धारण करने वाला हो गया है।

मघवा इहि सन कीन्ह मिताई * करत सदा यह देव सहाई
सहस कोटि कपि इहि के संगा * राते पीत श्वेत बहु रंगा

इन्द्र ने इससे मित्रता करली, यह सदा देवताओं की सहायता करता है। इसके साथ एक हजार करोड़ बानर हैं, जो लाल, पीले, सफेद और अनेकों अन्य रंगों के हैं।

वचन मृषा मम प्रभु यह नाहीं * ऊपर बालि जानहुँ मन माहीं
दर्दुर शैल सदन यहि केरा * मन बच कर्म राम कर चेरा

हे प्रभु! मेरा यह वचन झूठा नहीं, आप इसे अपने मन में दूसरा बालि ही समझिये। इसका निवास दर्दुर पर्वत है और यह मन, वचन, कर्म से श्रीरामजी का दास है।

दोहा–गिरिवर लाँघत आवत, चलत उड़ावहु रेणु।
तरुण तेज इन्हँ रूँधिआ, तारा तनय सुषेणु ॥ ६ ॥

बड़े-बड़े पर्वतों को लांघता आता है, जिसके चलने से धूल उड़ती है और जिसने सूर्य के तेज को भी मन्द कर दिया है, उसका नाम सुषेण है और तारा इसकी बेटी है।

यह कपि लखत मनहुँ गिरि गेरू * दिन मुख छबि जस लहत सुमेरू
सोइ कपि प्रथम लंक जेहि जारी * प्रभु केहि लगि आवत इहि बारी

यह वानर देखो जो गेरू के पर्वत के समान शोभित है, जिससे प्रातःकाल सुमेरु-पर्वत की शोभा होती है। यह वही बानर है जिसने लङ्का जलाई थी। हे प्रभु! अब यह न जाने क्यों आता है।

अञ्जनि गर्भ जन्म जब भयऊ * क्षुधित जननि सन अतिरिस ठयऊ

तेहि कहि सुपक अरुध फल खाहू * सुनत जितव इत उत चित चाहू

जब यह माता अंजनी के गर्भ से पैदा हुआ तो क्षुधित हो पूछने लगा। उन्होंने कहा कि पके हुए लाल फल खाओ। यह सुनकर, यह इधर-उधर मन-चाही वस्तु देखने लगा।

बालभान लखि गगन उड़ाना * ग्रसत रविहि बासव तब जाना
मारेउ बज्र चिबुक भइ टेढ़ी * कोपि पवन समीर सब बेढ़ी

तब प्रातः के लाल-सूर्य को देख यह आकाश में उड़ गया, तो इन्द्र ने यह जानकर यह सूर्य को निगल जायगा, बज्र मारा, तो ठोढ़ी टेढ़ी हो गई। तब पवन ने क्रोधित होकर वायु रोक दी।

देव विकल होइ अस्तुति कीन्हा * कुलिस होइ तनु अस बर दीन्हा
पवन वायु ने तब तजि दीन्हा * जय जय धुनि सब देवन्ह कीन्हा

तब देवताओं ने विकल होकर स्तुति की और यह वर दिया कि इसका शरीर वज्र तुल्य हो जायगा। तब पवनदेव ने वायु को छोड़ दिया और देवताओं ने जय-जयकार की।

विद्या पढ़त भानु के पाहीं * उल्टी गति रवि आगे जाहीं
बारिधि लाँघेउ गो पद जैसे * इति कपीस सन जूझव कैसे

इसने सूर्य से विद्या पढ़ी है, उल्टी गति होने के कारण सूर्य के सन्मुख चला था। इसने समुद्र गौ-पद की भांति लांघ लिया था। अब आप इस कपि से कैसे युद्ध करेंगे ?

दोहा—अम्बुक पीत बाल रबि, बदन तेज अति राज।
पवन ते बेग अधिक तनु, अनल नितम्बु सुभ्राज ॥ ७ ॥

इसके शरीर का तेज प्रातःकाल के सूर्य के समान अत्यन्त शोभित है, आँखें पीली हैं। गति पवन से भी अधिक है, अग्नि के समान नितम्ब शोभित हैं, इससे आप कैसे लड़ोगे ?

अलसी कुसुम श्याम तनु रेखा * पुरुष पुराण धरें नर वेषा
मत्त गजेन्द्र शुण्ड भुजदण्डा * धनुष वाण असि धरे प्रचण्डा

अलसी के पुष्प के समान श्याम वर्ण जिनका शरीर है, जो पुराण-पुरुष मनुष्य रूपधारी हैं। जिनकी भुजा मस्त गजेन्द्र की सूंड के समान है, जो कठिन धनुष-वाण और तलवार धारण किये हैं।

उर विशाल अति उन्नत कन्धर * कम्बु कण्ठ रेखा प्रसन्न वर
सुख छबि की उपमा कवि जोहे * शशि सरोज सज कहे न सौहे

जिनका वक्षःस्थल विशाल है, कन्धे ऊँचे हैं, शंख की सी गर्दन में रेखा पड़ी हुई है, प्रसन्न मुख है। जिनके मुख की उपमा कवि-चन्द्रमा और कमल से करें, तो शोभा नहीं देता।

दशन पाँति की कांति कहे को * ललचत मन पटतरित लहै को
देखन अधरन की अरुणाई * बिम्बाफल कन्दुक लजाई

जिनकी दन्तावलि की कान्ति की शोभा कौन कह सकता है ? उपमा देने को मन ललचाता है, किन्तु उपमा किससे दें ? जिनके होठों की लाली को देखकर कन्दूरी और

गुल-दुपहरिया के पुष्प भी लजाते हैं।

सुक तुण्डहिं नासिका लजावै * थके सुकवि नहिं पटतर आवै
शीश जटा के मुकुट बनाये * भाल विशाल तिलक अति भाये

जिनकी नासिका से तोते की नाक लजाती है, श्रेष्ठ कवि थक गये कोई उपमा नहीं लगती। सिर के ऊपर जटाओं का मुकुट बनाये हैं, विशाल मस्तक पर तिलक अति सुशोभित है।

दक्षिण दिसि लछिमन बलवीरा * राम बाहु सम अति रणधीरा

जिनकी दाहिनी ओर लक्ष्मणजी बैठे हैं और श्रीरघुनाथजी की भुजाओं के समान बड़े रणधीर हैं। हे नाथ! तुम उन्हीं श्रीरामजी के दर्शन करो,

दोहा—बाम विभीषन सोहहीं, सिर अभिषेका राज।
बीज मन्त्र सब जानहिं, अकसर करहिं सुकाज॥ ८॥

जिनकी बांयी ओर विभीषण हैं और जिनके मस्तक पर राज-तिलक शोभित है। वह बीज-मन्त्र जानता है, अतः निश्चय ही श्रेष्ठ प्रभु (श्रीरघुनाथजी) का कार्य करेगा।

अब देखहु यह सेन सुहाई * भादों मेघ घटा जनु छाई
कन्या एक ब्रह्म उपजाई * नयन चारु अरु रूप लुभाई

अब इस सुहावनी सेना को देखो जो मानो भादों के मेघों की घटा छा रही हो। एक कन्या ब्रह्माजी ने उत्पन्न की थी, जिनके नेत्र सुन्दर और मनमोहक था।

बाल माहिं दिनकर बल दीन्हा * ऋतु जानी बासव रति कीन्हा
जातक यमल वीर दोउ जाए * देव अंश बानर तन पाए

उसके बालों पर सूर्य का वीर गिरा और ऋतु जानकर इन्द्र ने उससे सम्भोग किया। उन्हीं के वीर्य से दो पुत्र उत्पन्न हुए। देवताओं के अंश से उन्होंने बानरों के शरीर पाये।

किष्किन्धा पर इन्हकर थाना * देव सरिस मधुवन उद्याना
ऋष्यमूक इन्ह कर विश्रामा * चातुर्मास बसे जहँ रामा

इनका निवास किष्किन्धा पर है, जहां का 'मधु-वन' देवताओं के 'नन्दन-वन' से भी सुन्दर है। इनका विश्राम ऋष्यमूक-पर्वत पर है, जहां श्रीरामजी चार महीने रहे थे।

बाली ज्येष्ठ राम रण मारा * यहि कहँ राजतिलक प्रभु सारा
तारा तासु भई पटरानी * जेहि कर सुत अंगद अति ग्यानी

इनके बड़े भाई 'बालि' को श्रीरामजी ने युद्ध में मार दिया और इस सुग्रीव को राज-तिलक कर दिया। तारा इसकी पटरानी हुई है, जिसका पुत्र अंगद बहुत ज्ञानी है।

सहस कोटि कर अर्बुद केका * अर्बुद सहसक बिन्दु विवेका
सहस बिन्दु गथगन मन माना * महा पद्म तेहि कर परिमाना

सहस्र करोड़ का एक अरब, सहस्र अरब का एक बिन्दु और सहस्र बिन्दु का एक पद्म ज्योतिषियों ने कहा है।

ऐसे पद्म अठारह साजा * विग्रह बढ़ेउ राम के काजा
बीर बेष असु नयन विशाला * कम्बु कण्ठ मोतिन की माला

ऐसी अठारह पद्म सेना श्रीरामजी के कार्य के निमित्त तुमसे लड़ने को तैयार है। बीर वेषधारी, विशाल नेत्रवाला, शंख के समान गर्दन में मोतियों की माला पहने–

दोहा–हस्ती साठि सहस्त्र बल, सदा धर्म को सींव।
श्वेत छत्र सिर शोभित, यह राजा सुग्रीव ॥ ९ ॥

जिसमें साठ हजार हाथियों का बल है, सदा धर्म की सीमा है, श्वेत-छत्र जिसके सिर पर शोभित है, ऐसा राजा सुग्रीव है।

एहि विधि सकल दिखाये, सारन कपिदल जूह।
गहे न रावण काल वश, अतिशय गर्व समूह ॥१०॥

इस प्रकार सारण ने कपि-दल के समस्त समूह दिखाये परन्तु अभिमानी रावण काल के वश होकर उन्हें कुछ नहीं गिनता।

* इति क्षेपक *

इहाँ प्रात जागे रघुराई * पूछा मत सब सचिव बुलाई
कहहु बेगि का करिअ उपाई * जामवन्त कह पद सिरु नाई

यहाँ प्रातःकाल श्रीरामजी जागे और सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि जल्दी कहो क्या उपाय करना चाहिए? यह सुनकर जामवन्त ने चरणों में सिर नवाकर कहा–

सुनु सर्बग्य सकल उर बासी * बुधि बल तेज धर्म गुन रासी
मन्त्र कहउँ निज मति अनुसारा * दूत पठाइअ बालिकुमारा

हे सर्वज्ञ! सबके हृदय में वास करने वाले! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म व गुणों की राशि सुनो, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ बालि-पुत्र अंगद को दूत बनाकर भेजिये।

नीक मन्त्र सबके मन माना * अङ्गद सन कह कृपानिधाना
बालितनय बुधि बल गुन धामा * लङ्का जाहु तात मम कामा

यह उचित सलाह सबके मन को अच्छी लगी, तब कृपानिधान श्रीरामजी ने अंगद से कहा–हे बुद्धि, बल और गुणों के निधान अंगद! हे तात! मेरे काम के लिए लङ्का जाओ।

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहउँ * परम चतुर मैं जानत अहऊँ
काजु हमार तासु हित होई * रिपुसन करेहु बतकही सोई

तुम्हें बहुत समझाकर क्या कहूँ? तुम परम चतुर हो–यह मैं जानता हूँ। तुम शत्रु से वैसी ही बात करना–जिससे हमारा काम हो और उसकी भलाई हो।

सो०–प्रभु आज्ञा धरि सीस, चरन बन्दि अंगद कहेउ।
सोइ गुनसागर ईस, राम कृपा जापर करउ ॥१७क॥

प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर व चरणों में प्रणाम कर अङ्गदजी बोले—हे भगवन् ! हे श्रीरामजी ! वही गुणनिधान है, जिस पर आप कृपा करते हैं।

स्वयं सिद्ध सब काज, नाथ मोहि आदर दियउ ।
अस बिचारि जुबराज, तनु पुलकित हरषित हियउ ॥१७ख॥

कार्य तो सब आप ही सिद्ध हैं, परन्तु प्रभु ने मुझे आदर दिया है। ऐसा विचार कर युवराज का हृदय प्रसन्न और शरीर पुलकित हो गया।

बन्दि चरन उर धरि प्रभुताई * अङ्गद चलेउ सबहि सिरु नाई
प्रभु प्रताप उर सहज असंका * रन बाँकुरा बालिसुत बंका

प्रभु के चरणों की वंदना कर और उनकी प्रभुता हृदय में धरकर सबको सिर नवा अंगदजी चले। प्रभु के प्रताप से हृदय में रण-बाँकुरे वीर बालि-पुत्र अंगदजी सहज ही निर्भय हैं।

पुर पैठत रावन कर बेटा * खेलत रहा सो होइ गै भेटा
बातहिं बात करष बढ़ि आई * जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई

लंका में घुसते ही रावण-पुत्र से भेंट हो गई, जो वहाँ खेल रहा था। तब बात ही बात में दोनों को क्रोध बढ़ आया, बड़े बलवान युवा थे।

तेहि अङ्गद कहुँ लात उठाई * गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई
निसिचर निकर देखि भट भारी * जहँ तहँ चलेउ न सकहिं पुकारी

उसने अंगद पर लात उठाई तो वह पैर पकड़कर अंगद ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया। राक्षस-समूह ऐसे भारी योद्धा को देख इधर-उधर चले गये, पुकार नहीं मचा सके।

एक एक सन मरमु न कहहीं * समुझि तासु बध चुप करि रहहीं
भयउ कोलाहल नगर मझारी * आवा कपि लङ्का जेहिं जारी

एक दूसरे से भेद नहीं कहते, रावण-पुत्र का मरण जानकर सब चुप रह जाते हैं। नगर भर में बड़ा शोर मच गया कि वही वानर आया है जिसने लङ्का जलाई थी।

अब धौं कहा करिहि करतारा * अति सभीत सब करहिं बिचारा
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई * जेहि बिलोकि सोइ जाइ सुखाई

अब न जाने विधाता क्या करने वाला है ? सब डरकर बहुत सोच-विचार करने लगे। अङ्गद के बिना पूछे ही रास्ता बतलाने लगे, जिसे वे देखते-वही डर के मारे सूख जाता था।

दोहा—गयउ सभा दरबार तब, सुमिरि राम पद कञ्ज ।
सिंह ठवनि इत उत चितव, धीर बीर बल पुञ्ज ॥१८॥

तब श्रीरामजी के चरणारविंदों का स्मरण कर, सिंह की चाल से इधर-उधर निहारते हुए महाबली अङ्गदजी सभा के द्वार पर गये।

तुरत निसाचर एक पठावा * समाचार रावनहि जनावा
सुनत बिहँसि बोला दससीसा * आनहु बोलि कहाँ करि कीसा

तुरन्त एक राक्षस को भेजा और उसने सभा में जाकर रावण को समाचार सुनाया। सुनते ही वह हँसकर बोला-बुला लाओ, कहाँ बन्दर है ?

आयसु पाइ दूत बहु धाए * कपि कुञ्जरहि बोलि लै आए
अंगद दीख दसानन बैसें * सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें

आज्ञा पा बहुत से दूत दौड़े और बानरों में हाथी के समान-अंगद को बुला लाये। अंगद ने रावण को ऐसे बैठा हुआ देखा, जैसे सजीव कज्जल का पहाड़ हो।

भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना * रोमावली लता जनु नाना
मुख नासिका नयन अरु काना * गिरि कन्दरा खोह अनुमाना

भुजायें वृक्षों के समान और सिर पर्वत की चोटियों के तुल्य हैं। रोमावली मानो अनेक बेल हैं और मुख, नाक, आँख व कान-ये मानो पर्वत की गुफायें हैं।

गयउ सभा मन नेकु न मूरा * बालि तनय अति बल बाँकुरा
उठे सभासद कपि कहुँ देखी * रावन उर भा क्रोध बिसेषी

बड़े बाँके बलवान् अंगदजी सभा में गये मन में जरा भी नहीं डरे। अंगद को देखते ही सभासद उठ खड़े हुए, यह देखकर रावण के मन में बड़ा क्रोध हुआ।

दोहा–जथा मत्त गज जूथ महुँ, पञ्चानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन, बैठि सभाँ सिरु नाइ ॥१८॥

जैसे मतवाले हाथियों के झुण्ड में सिंह चला जाता है। वैसे ही श्रीरामजी का प्रताप स्मरण कर, सिर नवाकर सभा में बैठ गये।

कह दसकण्ठ कवन तै बन्दर * मैं रघुबीर दूत दसकन्धर
मम जनकहि तोहि रही मिताई * तब हित कारन आयउँ भाई

रावण ने पूछा-रे बंदर! तू कौन है ? (अंगदजीने कहा)हे रावण! मैं श्रीरघुनाथजी का दूत हूँ मेरे पिता से तुम्हारी मित्रता थी। इसलिए, हे भाई! मैं तुम्हारी भलाई के लिए आया हूँ।

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती * शिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती
बर पायउ कीन्हेहु सब काजा * जीतेहु लोकपाल सब राजा

तुम्हारा कुल उत्तम है, तुम पुलस्त्यजी के पौत्र हो, तुमने शिवजी और ब्रह्माजी का पूजन भी बहुत भाँति से किया। वरदान पाकर सब काम सिद्ध किये हैं। लोकपाल और इन्द्र को भी जीता है।

नृप अभिमान मोह बस किम्बा * हरि आनेहु सीता जगदम्बा
अब शुभ कहा सुनहुँ तुम्ह मोरा * सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा

राज-मद अथवा मोह के वश होकर तुम जगत्माता सीताजी को लाये हो। अब तुम

मेरे शुभ वचन सुनो-प्रभु श्रीरामजी तुम्हारे अपराध को क्षमा कर देंगे।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी * परिजन सहित संग निज नारी
सादर जनकसुता करि आगे * एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे

दांतों में तिनका दाबो, गले में कुल्हाड़ी डालो और अपने कुटुम्बी जनों तथा स्त्री को साथ लेकर आदर सहित जानकी को आगे करके, इस प्रकार सब भय त्यागकर चलो।

दोहा—प्रनतपाल रघुबंसमनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करिंगे तोहि ॥ २० ॥

'हे शरणागत-रक्षक रघुवंशमणि! अब मेरी रक्षा कीजिए। रक्षा कीजिए।' ऐसे दीन वचन सुनते ही प्रभु श्रीरामजी तुमको अभय कर देंगे।

रे कपि पोच बोलु सम्भारी * मूढ़ न जानेहिं मोहि सुरारी
कहु निज नाम जनक कर भाई * केहि नाते मानिये मिताई

(रावण बोला-) अरे अधम बन्दर! सँभाल कर बोल! रे मूर्ख! क्या मुझ देवताओं के शत्रु को नहीं जानता? अरे भाई! अपना और अपने बाप का नाम तो बात, किस नाते से मित्रता मानता है।

अंगद नाम बालि कर बेटा * तासों कबहुं भई ही भेंटा
अंगद बचन सुनत सकुचाना * रहा बालि बानर मैं जाना

मेरा नाम अंगद है और मैं बालि पुत्र हूं, उनसे कभी तुम्हारी मित्रता हुई? अंगदजीकी बात सुनते ही रावण सकुचाया और बोला-हाँ, 'बालि' नामक एक बन्दर था, उसे जानता हूँ।

अंगद तुही बालि कर बालक * उपजेउ बंश अनल कुल घालक
गर्भ न गयउ व्यर्थ तुम्ह जायउ * निज मुख तापस दूत कहायउ

रे अंगद! बालिका बेटा? तू अपने वंश में अग्नि के समान कुल-नाशक उत्पन्न हुआ। गर्भ में ही क्यों न नष्ट होगया? तू व्यर्थ पैदा हुआ, जो अपने मुखसे ही तपस्वियों का दूत कहलाया।

अब कहु कुशल बालि कहँ अहई * बिहँसि बचन तब अंगद कहई
दिन दस गयें बालि पहिं जाई * बूझेउ कुशल सखा उर लाई

अब कुशल कहो, बालि कहाँ है? तब अंगद ने हँसकर कहा—दस दिन बीतने पर स्वयं बालि के पास जाकर मित्र को छाती से लगाकर कुशल पूछ लेना।

राम बिरोध कुशल जसि होई * सो अब तोहि सुनाइहि सोई
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें * श्रीरघुबीर हृदयँ नहिं जाकें

श्रीरामजी से विरोध करने से जैसी कुशल होती है, वह सब तुम्हें वही सुनावेंगे। रे मूर्ख! सुन, भेद तो उसी के मन में पड़ सकता है, जिसके हृदय में श्रीरघुनाथजी न हों।

दोहा—हम कुल घालक सत्य तुम्ह, कुल पालक दससीस।
अन्धउ बधिर न अस कहहिं, नयन कान तव बीस ॥ २१ ॥

हे रावण ! मैं तो कुल-नाशक हूँ और तुम सच्चे कुल-पालक हो। ऐसा अन्धे-बहिरे भी नहीं कहते, फिर तुम्हारे तो कान, आँख और भुजा बीस-बीस हैं।

सिव बिरञ्चि सुर मुनि समुदाई ※ चाहत जासु चरन सेवकाई
तासु दूत होइ हम कुल बोरा ※ अइसिहुँ मति उर बिदरि न तोरा

शिव, ब्रह्मा आदि सब देव और मुनिगण जिनके चरणों की सेवा करना चाहते हैं उन प्रभु का दूत होकर मैंने कुल को डुबोया, ऐसी मति होने से तुम्हारा हृदय विदीर्ण नहीं हो जाता।

सुनि कठोर बानी कपि केरी ※ कहत दशानन नयन तरेरी
खल तब कठिन वचन सब सहऊँ ※ नीति धर्म मैं जानत अहऊँ

अंगदजी के कड़े वचन सुनकर रावण भौंह चढ़ाकर बोला—रे दुष्ट ! तेरे कडुवे वचन मैं इस कारण सह रहा हूँ कि मैं नीति धर्म जानता हूँ।

यह कपि धर्म सीलता तोरी ※ हमहुँ सुनी कृत परत्रिय चोरी
देखी नयन दूत रखवारी ※ बूढ़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी

अङ्गद बोले-तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है कि तुमने पराई स्त्री की चोरी की है और आँखों से दूत की रक्षा भी देख ली। ऐसे धर्म-व्रतधारी तुम चुल्लूभर पानी में डूब क्यों नहीं मरते ?

नाक कान बिनु भगति निहारी ※ क्षमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी
धर्मसीलता तव जग जागी ※ पाव दरसु हमहुँ बड़भागी

फिर नाक-कान कटी अपनी बहिन शूर्पणखा को देखकर धर्म विचारकर ही तुमने क्षमा कर दिया था। तुम्हारी धर्मशीलता संसार में प्रसिद्ध है, मैं भी बड़ा भाग्यशाली हूँ, जो तुम्हारा दर्शन पाया।

दोहा—जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु ॥२२क॥

रावण बोला—रे मूर्ख पशु, बन्दर ! बकबाद मत कर, मेरी भुजाओं को देख, जो महाबली के बलरूपी चन्द्रमाओं को ग्रसने के लिए राहु के समान हैं।

पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलन्हि पर करि बास।
सोभित भयउ मराल इव, शम्भु सहित कैलास ॥२२ख॥

फिर आकाश रूपी तालाब में मेरे हाथ रूपी कमलों के ऊपर ठहर कर शिवजी समेत कैलाश-पर्वत-हंस के समान सुशोभित हुआ।

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद ※ मोसन भिरिहि कवन जोधा बद
तब प्रभु नारि बिरहँ बलहीना ※ अनुज तासु दुख दुखी मलीना

हे अंगद ! सुनो, तुम्हारी सेना में मुझसे लड़ने योग्य कहो, कौन-सा योद्धा है ? तुम्हारा प्रभु तो स्त्री के वियोग से बलहीन है और उसका भाई उसी के दुःख से दुःखी और निर्बल है।

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ ※ अनुज हमार भीरु अति सोऊ

जामवन्त मन्त्री अति बूढ़ा * सो कि हो अब समरारूढ़ा

तुम और सुग्रीव दोनों नदी किनारे के वृक्ष हो और जो मेरा भाई विभीषण है, वह भी बड़ा डरपोक है। मन्त्री जामवन्त बहुत बूढ़ा है, वह समर में क्या डट सकता है ?

सिलिप कर्म जानहिं नल नीला * है कपि एक महा बलसीला
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा * सुनत वचन कह बालिकुमारा

नल-नील तो शिल्प काम जानते हैं। परन्तु एक वानर बड़ा बलवान् है, जो पहले यहाँ आकर नगर जला गया था। यह सुनकर अङ्गदजी बोले–

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा * साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा
रावन नगर अल्प कपि दहई * सुनि अस वचन सत्य को कहई

हे राक्षसराज ! सच बात कहो, क्यों सचमुच उस बानर ने लंका को जला दिया ? रावण के नगर को छोटा-सा वानर जला दे, ऐसी बात सुनकर उसे कौन सत्य कहेगा ?

जो अति सुभट सराहेहु रावन * सो सुग्रीव केर लघु धावन
चलइ बहुत सो बीर न कोई * पठवा खबरि लेन हम सोई

हे रावण ! जिसे तुमने बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीव का एक छोटा सा दूत है। जो बहुत चलता है, यह योद्धा नहीं होता, उसे तो हम लोगों ने खबर लेने के लिए भेजा था।

दोहा–सत्य नगरु कपि जारेहु, बिन प्रभु आयसु पाइ।
फिर न गयउ सुग्रीव पहिं, तेहिं भय रहा लुकाइ ॥२३क॥

क्या सचमुच उस बानर ने प्रभु की आज्ञा पाये बिना नगर को जला दिया ? इसी से वह अभी तक लौटकर सुग्रीव के पास नहीं गया, उनके डर से छिप गया है।

सत्य कहइ दसकण्ठ सब, मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमरें कटक अस, तो सन लरत जो सोह ॥२३ख॥

हे रावण ! तुमने सच कहा, सुनकर मुझे कुछ क्रोध नहीं होता। हमारी सेना में ऐसा कोई भी नहीं, जो तुमसे लड़ते हुए शोभा पावे।

प्रीति बिरोध समान सन, करिअ नीति अस आहि।
जौं मृगपति बध मेंडुकहि, भलइ कहइ कोउ ताहि ॥२३ग॥

प्रीति और विरोध बराबर वालों से ही करना चाहिए, नीति ऐसी ही है। यदि सिंह लोमड़ी को मारे, तो क्या कोई उसे भला कहेगा ?

जद्यपि लघुता राम कहुँ, तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु, छत्र जाति कर रोष ॥२२घ॥

यद्यपि तुमको मारने से श्रीरामजी की लघुता और बड़ा दोष है, तो हे रावण ! सुनो,

क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है ।

दोहा–बक्र उक्ति धनु बचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ, काढ़त भट दससीस ।।२३ङ।।

अंगद ने वक्रोक्ति रूपी धनुष से वचन रूपी बाण मारकर शत्रु का हृदय जला दिया। उन बाणों को योद्धा रावण मानो प्रत्युत्तर रूपी सँड़ासी से निकालता है ।

दोहा–हँसि बोलेउ दस मौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक ।
जो प्रतिपालइ तासु हित, करइ उपाउ अनेक ।।२३च।।

तब रावण हँसकर बोला–वानरों में एक बड़ा गुण होता है कि जो उन्हें पालता है, उसकी भलाई के लिए वे अनेक उपाय करते हैं ।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा * जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा
नाच कूद करि लोग रिझाई * पति हित करइ धर्म निपुनाई

वानर धन्य हैं, जो अपने स्वामी के कार्य के लिए जहाँ-तहाँ लाज छोड़कर नाचते हैं। नाच-कूदकर, लोगों को रिझाकर स्वामी का हित करते हैं, यह उनकी धर्म-निपुणता है ।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती * प्रभुगुन कस न कहसि एहि भाँती
मैं गुन गाहक परम सुजाना * तव कटु रटनि करउँ नहिं काना

हे अङ्गद ! तेरी जाति स्वामी-भक्त है, फिर तू अपने स्वामी के गुण इस प्रकार क्यों न कहेगा । मैं गुण-ग्राहक व बड़ा चतुर हूँ, इससे तुम्हारे कठोर वचनों पर ध्यान नहीं देता।

कह कपि तव गुन गाहक ताई * सत्य पवनसुत मोहि सुनाई
बन बिध्वंसि सुत बधि पुर जारा * तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा

अंगद बोले-तुम्हारी सच्ची गुण-ग्राहकता हनुमान ने मुझे सुनाई थी। उसने तुम्हारी अशोक-वाटिका उजाड़ी, पुत्र को मारा, नगर को जलाया, तो भी तुमने उसका कुछ न बिगाड़ा।

सोइ बिचारि तव प्रकृति सोहाई * दसकन्धर मैं कीन्हि ढिठाई
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा * तुम्हरें लाज न रोष न माखा

इसी तुम्हारे सीधे स्वभाव को विचार कर, हे रावण ! मैंने ढिठाई की है। जो कुछ हनुमान ने कहा था–वही मैंने आकर देखा। तुम्हें न लाज है, न रोष है, न क्रोध है ।

जौं असि मति पितु खाए कीसा * कहि अस बचन हंसा दससीसा
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही * अबहीं समुझि परा कछु मोही

वह बोला-हे बानर ! तेरी बुद्धि ऐसी है, तभी तो तूने अपने पिता को खालिया। ऐसा बचन कहकर रावण हँसा, तब अंगद बोले-पिता को खाकर अब तुझे भी खा जाता, परन्तु मुझे अब कुछ समझ में आ गया।

बालि बिमल जस भाजन जानी * हतउँ न तोहि अधम अभिमानी
कहु रावन रावन जग केते * मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते

बालि के निर्मल यश का पात्र जानकर, रे अधम अभिमानी ! मैं तुझे नहीं मारता । हे रावण ! यह तो बता-संसार में कितने रावण हैं ? मैंने कानों से जितने सुने हैं, उन्हें सुन—

बलिहि जितन एक गयउ पताला * राखेहु बाँधि सिसुन्ह हयशाला
खेलहिं बालक मारहिं जाई * दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई

एक रावण बलि को जीतने पाताल में गया, वहाँ उसे बालकों ने घुड़साल में बांध रक्खा। बालक खेलते-खेलते उसे मारते थे, तब बलि को दया आई तो उसको छुड़वा दिया ।

एक बहोरि सहस भुज देखा * धाइ धरा जिमि जन्तु बिशेषा
कौतुक लागि भवन लै आवा * सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा

फिर एक रावण को सहस्त्रबाहु ने देखा और दौड़कर उसे अद्भुत जीव की तरह पकड़ लिया व तमाशे के लिए उसे अपने घर ले आया, उसको पुलस्त्य मुनि ने जाकर छुड़वाया ।

दोहा—एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख ।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन, सत्य बदहि तजि माँख ।।२४।।

एक रावण को कहते हुए मुझे संकोच आता कि वह बालि की काँख में रहा था। इनमें से तुम कौन से रावण हो ? क्रोध त्यागकर सत्य कहो ।

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला * हरिगिरि जानु जासु भुजलीला
जानु उमापति जासु सराई * पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई

रावण बोला-सुन, मूर्ख!मैंवहीप्रतापी रावण हूँ, जिसकी भुजाओंकी लीला कैलाश-पर्वत जानता है । जिसकी कीर्ति को शिवजी जानते हैं, जिनकी पूजा मैंने मस्तकरूपी पुष्प चढ़ा कर की है ।

सिर सरोज निज करन्हि उतारी * पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी
भुज बिक्रम जानहिं दिग्पाला * सठ अजहूँ जिन्हकें उर साला

सिररूपी कमलों को अपने हाथों से काट २ कर अनेकों बार शिवजी का पूजन किया है। रे शठ ! मेरी भुजाओं के प्रताप को दिग्पाल जानते हैं, जिनके हृदय में यह आज भी चुभता है ।

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई * जब जब भिरउँ जाइ बरिआई
जिन्हके दसन कराल न फूटे * उर लागत मूलक इव टूटे

दिग्गज मेरे हृदय की कठोरता को जानते हैं, जिनके कठोर दांत जब-जब मैं जबर्दस्ती उनसे जाकर भिड़ा, मेरी छाती में कभी नहीं फूटे, बल्कि वे मेरी छाती से लग कर मूली की तरह टूट गये ।

जासु चलत डोलति इमि धरनी * चढ़त मत्तगज जिमि लघुतरनी
सोइ रावन जग विदित प्रतापी * सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी

जिसके चलने से पृथ्वी ऐसे हिलने लगती है, जैसे मतवाले हाथी के चढ़ने से छोटी नाव। वही प्रतापी रावण मैं संसार में प्रसिद्ध हूँ। अरे मिथ्या बकवादी ! क्या तूने नहीं सुना ?

दोहा—तेहि रावन कहँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान ।

रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ग्यान ॥ २५ ॥

ऐसे रावण को तू छोटा कहता है और मनुष्य का बखान करता है। रे बकवादी, तुच्छ दुष्ट वानर ! मैंने तेरा ज्ञान जान लिया।

सुनि अंगद सकोप कह बानी * बोलु सँभारि अधम अभिमानी
सहसबाहु भुज गहन अपारा * दहन अनल सम जासु कुठारा

यह सुनकर अंगद क्रोधित हो बोले-रे नीच, अभिमानी ! सँभालकर बोल। सहस्रबाहु की सघन वन के समान भुजाओं को जलाने के लिए जिनका कुठार अग्नि के समान था।

जासु परसु सागर खर धारा * बुढ़े नृप अगनित बहु बारा
तासु गर्व जेहि देखत भागा * सो नर क्यों दससीस अभागा

जिनके कुठाररूपी समुद्र की तीक्ष्ण धार में असंख्य राजा अनेकों बार डूब गये, उन परशुराम जी का अहंकार जिन्हें देखते ही भाग गया, रे अभागे ! वे श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य कैसे हैं ?

राम मनुज कस रे सठ बंगा * धन्वी कामु नदी पुनि गङ्गा
पशु सुरधेनु कल्पतरु रूखा * अन्न दान अरु रस पियूषा

रे मूर्ख उद्दण्ड ! क्या रामजी मनुष्य हैं, कामदेव क्या धनुषधारी है, गंगाजी क्या साधारण नदी हैं ? कामधेनु क्या पशु है, कल्पवृक्ष क्या पेड़ है, अन्नदान क्या दान है, अमृत क्या रस है ?

बैनतेय खग अहि सहसानन * चिन्तामनि पुनि उपल दसानन
सुनु मतिमन्द लोक बैकुण्ठा * लाभ कि रघुपति भगति अकुण्ठा

गरुड़जी क्या पक्षी हैं ? शेषजी क्या सर्प हैं ? हे रावण ! चिन्तामणि क्या पत्थर है ? हे मन्द-मति रावण ! क्या बैकुण्ठ भी लोक है और श्रीरघुनाथजी की अविचल भक्ति क्या कोई साधारण लाभ है ?

दोहा—सेन सहित तव मानिमथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि ॥ २६ ॥

जो सेना समेत तेरा मान मर्दन कर, अशोक-वाटिका को उजाड़ कर, नगर को जला कर एवं तेरे पुत्र को मार कर चले गये, रे शठ ! वे हनुमानजी क्या वानर हैं ?

सुनु रावन परिहरि चतुराई * भजसि न कृपासिन्धु रघुराई
जौं खल भएसि राम कर द्रोही * ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही

हे रावण ! सुन, कपट छोड़कर दया के समुद्र श्रीरघुनाथजी का भजन क्यों नहीं करता ? रे दुष्ट ! जो तू श्रीरामजी का वैरी हुआ तो ब्रह्मा और शिवजी भी तेरी रक्षा नहीं कर सकते।

मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला * रात बयरु अस होइहि हाला
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें * परिहहिं धरनि राम सर लागें

रे खल ! व्यर्थ गाल मत बजा, श्रीरामजी से बैर करने से तेरा ऐसा हाल होगा कि उनके बाण लगने से तेरे सिर बानरों के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे।

ते तब सिर कन्दुक सम नाना * खेलहहिं भालु कीस चौगाना
जबहिं समर कोपिह रघुनायक * छुटहहिं अति कराल बहु सायक

और तेरे उन सिरों से गेंदों के समान रीछ-वानर चौगान खेलेंगे। जिस समय संग्राम में श्रीरामजी क्रोध करेंगे तब अत्यन्त पैने बाण छूटेंगे।

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा * अस बिचारि भजु राम उदारा
सुनत बचन रावन परजरा * जरत महानल जनु घृत परा

उस समय क्या तेरा ऐसा गाल चलेगा? ऐसा विचार कर उदार श्रीरामजीको भज। यह वचन सुनते ही रावण मारे क्रोध के भभक उठा मानो प्रज्वलित अग्नि में घी पड़ गया हो।

दोहा—कुम्भकरन अस बन्धु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोरि पराक्रम नहिं सुनेहि, जितेउँ चराचर झारि॥ २७॥

(वह बोला—) कुम्भकरण सरीखा मेरा भाई, इन्द्र का शत्रु विख्यात मेघनाद मेरा पुत्र है और मेरे पराक्रम को तूने नहीं सुना कि सब चराचर जगत को मैं जीत चुका हूँ।

सठ साखामृग जोरि सहाई * बाँधा सिन्धु इहइ प्रभुताई
नाघहिं खग अनेक बारीसा * सूर न होहिं ते सुनि सब कीसा

रे मूर्ख! बन्दरों की सेना जोड़कर समुद्र लांघ लिया, यही बहादुरी है। अनेक पक्षी समुद्र लाँघ जाते हैं, पर वे शूर नहीं होते।

मम भुज सागर बल जल पूरा * जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा
बीस पयोधि अगाध अपारा * को अस बीर जो पाइहि पारा

मेरी भुजायें समुद्र हैं, उनमें बलरूपी जल भरा है, जिसमें बहुत से देवता और मनुष्य डूब गये। कौन ऐसा वीर है, जो इन गम्भीर और अपार बीस समुद्रों का पार पावे।

दिगपालन्ह मैं नीर भरावा * भूप सुजस खल मोहि सुनावा
जौं पै समर सुभट तव नाथा * पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा

मैंने दिग्पालोंको जल भराया है और रे दुष्ट! तू मुझे एक राजा की बड़ाई सुना रहा है, जो तेरे स्वामी समर में अच्छे योद्धा हैं, जिनके गुणों का तू बारम्बार बखान कर रहा है,

तौ बसीठ पठवत केहि काजा * रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू * पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू

तो उन्होंने दूत क्यों भेजा? वैरी से सन्धि करने में लाज नहीं आती? रे शठ बन्दर! कैलाश-पर्वत को मथने वाली मेरी भुजाओं को देख, फिर अपने प्रभु की बड़ाई करना।

दोहा—सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु, बार साखि गौरीस॥ २८॥

मुझ रावण के समान शूरवीर कौन है जिसने अपने हाथों से प्रसन्नता पूर्वक अपने सिरों

काटकर अग्नि में बहुत बार हवन कर दिये, शिवजी इसके साक्षी हैं।

जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला * बिधि के लिखे अंक निज भाला
नर कें कर आपन बध बाँची * हँसेउ जानि बिधि गिरा असाँची

जलते समय अपने कपाल पर ब्रह्माजी के लिखे हुए अक्षर देखे। मनुष्य के हाथ से अपना मरण बाँचकर, ब्रह्मा की बात झूठी जानकर मैं हँसा।

सो मन समुझि त्रास नहिं मोरें * लिखा बिरन्चि जरठ मति भोरें
आन बीर बल सठ मम आगें * पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें

उस बात को समझकर भी मुझे डर नहीं है, क्योंकि बुढ्ढे ब्रह्मा ने बुद्धि-भ्रम के कारण ऐसा लिखा है। रे मूर्ख ! लाज छोड़कर बारम्बार तू दूसरे योद्धा को बखान रहा है।

कह अङ्गद सलज्ज जग माहीं * रावन तोहि समान कोउ नाहीं
लाजवन्त तव सहज सुभाऊ * निज मुख निज गुन कहसि न काऊ

अङ्गद ने कहा–हे रावण ! संसार में तेरे समान लज्जावान कोई नहीं है। लज्जा तो तेरा स्वाभाविक स्वभाव है ! तू अपने मुख से अपना गुण कभी नहीं कहता।

सिर अरु सैल कथा चित रही * ताते बार बीस तें कही
सो भुजबल राखेउ उर घाली * जीतेहु सहसबाहु बलि बाली

सिर काटने और कैलाश को उठाने की कथा तेरे चित्त में बस रही है, इसी से तूने बीसों बार कही। भुजाओं के बल को क्यों हृदय में छुपा रक्खा है, जिससे सहस्राबाहु, बलि और बालि को जीता था।

सुनि मतिमन्द देह अब पूरा * काटें सीस कि होइअ सूरा
इन्द्रजाल कहुँ कहिअ न बीरा * काटे निज कर सकल सरीरा

रे बुद्धि-हीन ! सुन अब बस कर, सिर काटने से कोई शूरवीर नहीं होता, बाजीगर को कोई शूरवीर नहीं कहता, जो अपने हाथों से सारे शरीर को काट डालता है।

दोहा–जरहिं पतङ्ग मोह बस, भार बहहिं खर वृन्द।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देख मति मन्द ॥ २९ ॥

अज्ञान के वश होकर पतंगे दीपक में जलते रहते हैं, गदहे बहुत बोझ लेकर चलते हैं। रे मन्द बुद्धि ! मन में समझकर देख, वे शूर नहीं कहलाते हैं।

अब जनि बतबढ़ाव खल करही * सुनु मम बचन मान परिहरही
दसमुख मैं न बसीठी आयउँ * अस बिचारि रघुबीर पठायउँ

रे दुष्ट ! अब बहुत बकवास मत कर और अभिमान को छोड़कर मेरा वचन सुन ! हे रावण ! मैं दूत बनकर नहीं आया, मुझे श्रीरामचन्द्रजी ने ऐसा विचार कर भेजा है–

बार बार अस कहेउ कृपाला * नहिं गजारि जस बधें सृकाला
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे * सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे

बारम्बार श्रीरामजी ने ऐसा कहा कि सिंह को गीदड़ के मारने से कुछ यश नहीं मिलता। प्रभु श्रीरामजी के यह वचन मन में समझकर, रे शठ ! मैंने तेरा कठोर वचन सहा है।

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा * लै जातेउँ सीतहि बरजोरा
जानेउँ तवबल अधम सुरारी * सूनेंहि हरि आनिहि परनारी

नहीं तो मैं तेरे मुँह को तोड़कर सीताजी को जबर्दस्ती ले जाता। रे अधम राक्षस ! मैं तेरे बल को जानता हूँ कि तू सूने में पराई स्त्री को चुरा लाया है।

तैं निसिचरपति गर्ब बहूता * मैं रघुपति सेवक कर दूता
जौं न राम अपमानहिं डरउँ * तोहि देखत अस कौतुक करउँ

तू राक्षसों का स्वामी और बड़ा घमण्डी हैं और मैं श्रीरामजी के सेवक (सुग्रीव) का दूत हूँ। जो मैं श्रीरामजी के अपमान से डरूँ, तो मैं तेरे देखते-देखते ऐसे खेल करूँ—

दोहा—तोहिं पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाऊँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ, जनकसुतहि लै जाऊँ ॥ ३० ॥

कि तुझे भूमि पर पटक तेरी सेना को मारकर, तेरे नगर को चौपट करके, रे मूर्ख ! तेरी स्त्रियों सहित जानकीजी को ले जाऊँ।

जौं अस करौं तदपि न बड़ाई * मुएहि बधें नहिं कछु मनसाई
कौल कामबस कृपनि विमूढ़ा * अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा

जो ऐसा करूँ, तो इसमें कोई बड़ाई नहीं है, क्योंकि मरे हुए को मारने से कुछ पुरुषत्व नहीं होता। क्योंकि बामभागी, कामी, कंजूस, वज्र-मूर्ख, अत्यन्त दरिद्री, बदनाम, बहुत बूढ़ा।

सदा रोगबस सन्तत क्रोधी * बिष्नु विमुख श्रुति संत विरोधी
तनु पोषक निन्दक अघ खानी * जीवत शव सम चौदह प्रानी

सदैव का रोगी और सदा क्रोध करने वाला हरि का द्रोही, वेद और सत्पुरुषों का विरोधी, अपने ही शरीर को पालने वाला दूसरों की निन्दा करने वाला और पापी—ये चौदह प्राणी जिवित ही मुर्दे के समान हैं।

अस विचारि खल बधउँ न तोही * अब जनि रिस उपजावसि मोही
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा * अधर दसन दसि मीजत हाथा

ऐसा विचारकर, अरे दुष्ट ! मैं तुझे नहीं मारता, परन्तु अब तू मुझे रिस मत दिला। यह सुनकर क्रोधित हो रावण दाँतों से होठों को दबाता और हाथ मलता हुआ बोला—

रे कपि अधम मरन अब चहसी * छोटे बदन बात बड़ि कहसी
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके * बल प्रताप बुधि तेज न ताके

रे नीच बन्दर ! अब तू मरना चाहता है, इसी से छोटे मुँह बड़ी बात कह रहा है। रे मूर्ख बन्दर ! जिसके बलसे तू कड़ुवे वचन बोल रहा है, उनमें बुद्धि, तेज प्रताप कुछ भी नहीं है।

दोहा—अगुन अमान जानि तेहि, दीन्ह पिता बनबास।

सो दुख अरु जुवती बिरह, पुनि निसदिन मम त्रास ॥३१क॥

उसे गुण हीन प्रतिष्ठा हीन समझ कर पिता ने वनवास दे दिया। वह दुखी और स्त्री के वियोग से दुखी, इस पर भी उसे रात-दिन मेरा डर रहता है।

दोहा—जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि, अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि, मूढ़ समुझि तजि टेक ॥३१ख॥

जिनके बल का तुझे घमण्ड है, ऐसे मनुष्य संसार में बहुतसे हैं, जिन्हें राक्षस रात-दिन भक्षण किया करते हैं। रे मूर्ख! हठ छोड़कर मन में समझ ले।

जब तेहिं कीन्ह राम कै निन्दा * क्रोधवन्त अति भयउ कपिन्दा
हरि हर निन्दा सुनइ जो काना * होइ पाप गोघात समाना

रावण ने श्रीरामजी की निन्दा की तो अङ्गद बहुत क्रोधित हुए, क्योंकि भगवान हरि और महादेवजी की निन्दा जो कानों से सुनता है, उसे गौ हत्या के समान पाप होता है;

कटकटान कपि कुञ्जर भारी * दुहु भुज दण्ड तमकि महि मारी
डोलत धरनि सभासद खसे * चले भाजि भय मारुत ग्रसे

कपि श्रेष्ठ अङ्गद कटकटाये और दोनों भुजायें पृथ्वी पर दे मारीं। पृथ्वी डगमगाने लगी। और सभासद औंधे गिर पड़े, वे भय रूपी भूत से ग्रसित होकर भाग चले।

गिरत सँभारि उठा दसकन्धर * भूतल परे मुकुट अति सुन्दर
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँभारे * कछु अङ्गद प्रभु पास पवारे

रावण गिरते-गिरते सम्हलकर उठा, परन्तु उसके मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ को तो उसने अपने सिरों पर रख लिया और कुछ अङ्गद ने प्रभु श्रीरामजी के पास फेंक दिये।

आवत मुकुट देखि कपि भागे * दिनहीं लूक परन बिधि लागे
की रावन करि कोप चलाए * कुलिस चारि आवत अति धाए

मुकुट आते देखकर बन्दर भागे और बोले हे विधाता! क्या दिन में तारे टूटने लगे, अथवा रावण ने क्रोध करके फेंका है, जो यह चार वज्र बड़े वेग से दौड़ते हुए आ रहे हैं।

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू * लूक न असनि केतु नहिं राहू
ए किरीट दसकन्धर केरे * आवत बालि तनय के प्रेरे

प्रभु ने हँसकर कहा—जी में डरो मत ये न उल्का हैं न वज्र हैं, न केतु हैं, और न राहु हैं, यह रावण के मुकुट अङ्गद के फेंके हुए हैं।

दोहा—तरकि पवनसुत कर गहे, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिनकर सरिस प्रकास ॥ ३२ ॥

कूद कर हनुमानजी ने उनको हाथ से पकड़ लिया और प्रभु के पास लाकर रख दिये। रीछ, बानर उनका तमाशा देखने लगे। उनका प्रकाश सूर्य के समान था।

उहाँ कहत दसकन्ध रिसाई * धरि मारहु कपि भागि न जाई
एहि विधि वेगि सुभट सब धावहु * खाहु भाल कपि जहँ तहँ पावहु

वहाँ रावण ने क्रोध करके कहा—इस बन्दर को मार डालो, भागने न पावे। इस प्रकार सब जल्दी दौड़ों और जहाँ-तहाँ रीछ-वानरों को पाओ खा जाओ।

मर्कट हीन करहु महि जाई * जिअत धरहु तापस द्वौ भाई
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा * गाल बजावत तोहि न लाजा

तब जाकर पृथ्वी को बन्दरों से सूनी करदो और दोनों तपस्वी भाइयों को जीवित ही पकड़ लो। तब कोप करके अङ्गदजी बोले—तुझे गाल बजाते हुए लाज नहीं आती।

मरु गर काटि निलज कुलघाती * बल बिलोकि बिहरत नहिं छाती
रे त्रिय चोर कुमारग गामी * खल मल रासि मन्दमति कामी

रे निलज्ज कुलनाशक! तू गला काटकर मरजा, मेरा पराक्रम देखकर भी तेरी छाती नहीं फटती। स्त्री चोर, कुमार्गी, महापापी, मन्द-बुद्धि और कामी!

सन्यपात जल्पसि दुर्बासा * भयसि कालबस खल मनुजादा
याको फल पावहिगो आगें * बानर भालु चपेटन्हि लागें

तू सन्निपात में व्यर्थ बक-बक करता है। रे दुष्ट नर-भक्षी! अब तू काल के वश होगया है। इस राम निन्दा का फल तो आगे पावेगा, जब बानर रीछों की चपेट लगेगी।

राम मनुज बोलत अस बानी * गिरहिं न तव रसना अभिमानी
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं * सिरन्हि समेत समर महि माहीं

रे अभिमानी! ऐसी बात कहते तेरी जीभें भी नहीं गिरतीं। तेरी जीभें सिरों के सहित रणभूमि में गिरेंगी, इसमें सन्देह नहीं है।

सो०—सो नर क्यों दसकन्द, बालिबध्यो जेहिं एक सर।
बीसहुँ लोचन अन्ध, धिक तव जन्म कुजाति जड़ ॥३३क॥
तब सौनित की प्यास, तुषित राम सायक निकर।
तजहुँ तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पक निसिचर अधम ॥३३ख॥

रे रावण! वे मनुष्य कैसे हैं, जिन्होंने बालि को एक ही बाण में मार दिया? तेरे बीसों नेत्र अन्धे हैं, रे नीच अज्ञानी! तेरे जन्म को धिक्कार है। श्रीरामजी के बाण समूह तेरे रक्त के प्यासे हैं, रे कठोर बकवादी नीच निसाचर! इसी डर से तुझे छोड़ता हूँ।

मैं तव दसन तोरिवे लायक * आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं * लङ्का गहि समुद्र महँ बोरौं

मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ, परन्तु मुझे श्रीरामजी ने आज्ञा दी। क्रोध तो ऐसा आता है कि तेरे दसों मुख तोड़ दूँ और लंका को (उखाड़ कर) समुद्र में डुबा दूँ।

गूलरि फल समान तव लङ्का * बसहु मध्य तुम्ह जन्तु असङ्का
मैं बानर फल खात न बारा * आयसु दीन्ह न राम उदारा

तेरी लंका गूलर के फल के समान है। तुम सब कीड़े उसमें निशंक रहते हो मैं बानर हूँ, फल खाते मुझे देर नहीं लगती, पर क्या करूँ ? उदार श्रीरामजी ने मुझे आज्ञा नहीं दी।

जुगति सुनत रावन मुसुकाई * मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई
बालि न कबहूँ गालअस मारा * मिलितपसिन्हतैं भएसि लबारा

ऐसी युक्ति को सुनकर रावण मुस्कराया (और बोला) रे मूर्ख ! बहुत झूँठ बोलना तूने कहाँसे सीखा ? बालिने तो कभी गाल नहीं बजाये, तू तपस्वियों से मिलकर बकवादी हो गयाहै।

साँचेहुँ मैं लवार भुज बीहा * जौं न उपारिउँ तव दस जीहा
समुझिराम प्रताप कहि कोपा * सभा माँझ पन करि पद रोपा

अङ्गद बोला—रे बीस भुजा वाले ! मैं सचमुच बकवादी हूँ, जो मैं तेरी दसों जीभों को न उखाड़ डालूँ फिर श्रीरामजी के प्रताप को स्मरण कर अङ्गदजी ने कोप कर सभा में प्रण करके पैर जमा दिया।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी * फिरहिं रामु सीता मैं हारी
सुनहु सुभट सब कह दससीसा * पद गहि धरनि पछारहु कीसा

(और बोले-) रे शठ ! यदि मेरा पैर तू हठा सके, तो श्रीरामजी लौट जायेंगे और मैं सीताजी को हार जाऊँगा। रावण बोला—सुनो, सब योद्धा मिलकर इस बानर का पैर पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़ दो।

इन्द्रजीत आदिक बलवाना * हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना
झपटहिं कहि बल बिपुल उपाई * पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई

मेघनाद आदि अनेक बलवान योद्धा प्रसन्न होकर जहाँ-तहाँ उठे वे झपटे और बहुत बल करके अनेक उपाय करते हैं। परन्तु पाँव उठाये नहीं उठता, तब सिर झुकाकर बैठ जाते हैं।

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती * टरइ न कीस चरन एहि भाँती
पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी * मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी

फिर उठकर राक्षस झपटते हैं, परन्तु अङ्गद का चरण ऐसे नहीं टलता। जैसे—हे गरुड़ ! कुयोगी पुरुष मोहरूपी वृक्ष को नहीं उखाड़ता।

दोहा—भूमि न छाँड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि विघ्न ते सन्त कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥ ३४ ॥

जैसे अनेक विघ्न होने पर भी सन्त का मन नीति नहीं छोड़ता, वैसे ही अङ्गद का पैर नहीं उठता। यह देखकर शत्रु का घमण्ड जाता रहा।

कपि बल देखि सकल हिय हारे * उठा आपु कपि कें परचारे

गहत चरन कह बालि कुमारा * मम पद गहे न तोर उबारा

अङ्गद का पराक्रम देख सब हृदय में हार गये, तब अङ्गद के कहने से रावण आप ही उठा। जब वह अङ्गद का चरण पकड़ने लगा तो बालिकुमार ने कहा—मेरा चरण पकड़ने से तेरा उद्धार नहीं होगा।

गहसि न राम चरन सठ जाई * सुनत फिरा मन अति सकुचाई
भयउ तेजहत श्री सब गई * मध्य दिवस जिमि ससि सोहई

रे शठ! जाकर रामजी के चरण क्यों नहीं पकड़ता? कहते ही मनमें बहुत सकुचाकर लौट पड़ा उसका सब तेज जाता रहा छवि क्षीण हो गई, जैसे दोपहर में चन्द्रमा हो जाता है।

सिंहासन बैठेउ सिर नाई * मानहुँ सम्पति सकल गँवाई
जगदात्मा प्रानपति रामा * तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा

वह सिंहासन पर सिर झुकाकर जा बैठा मानो सारी संपत्ति गँवा दी हो। जगत् के आत्मा और प्राणों के स्वामी श्रीरामजी से द्रोह करने वाले को क्या आराम मिल सकता है?

उमा राम की भृकुटि बिलासा * होइ बिश्व पुनि पावइ नासा
तृन के कुलिस कुलिस तृन करई * तासु दूत पन कहु किमि टरई

हे उमा! श्रीरामजी के भ्रू-विलास से संसार उत्पन्न होता है और नाश हो जाता है। जो तृण को वज्र और वज्र को तृण कर देते हैं, उनके दूत का प्रण कैसे टल सकता है?

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना * मान न ताहि कालु निअराना
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनाये * यह कहि चल्यो बालि नृपजाये

फिर अङ्गद ने अनेक प्रकार से नीति कही, परन्तु उसने एक न मानी, क्योंकि उसका काल समीप आ गया था। शत्रु के घमण्ड को चूर कर प्रभु का सुयश सुनाया और ऐसा कहकर अंगदजी चले—

हतौं न खेत खेलाइ खेलाई * तोहि अबहिं का करौं बड़ाई
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा * सो सुनि रावन भयउ दुखारा
जातुधान अङ्गद पन देखी * भय ब्याकुल सब भए बिसेषी

रण में तुम्हें खिला-खिलाकर न मारूँ, तब तक—अभी अपनी क्या बड़ाई करूँ? अंगद ने पहले ही उसके पुत्र को मार दिया था, यह सुनकर रावण को बहुत दुःख हुआ। अंगद का बल देखकर सब राक्षस मारे डर के व्याकुल हुए।

दोहा—रिपुबल धरषि हरषि कपि, बालि तनय बल पुञ्ज।
पुलकि सरीर नयन जल, गहे राम पद कञ्ज ॥३५क॥

बालि के पुत्र—महाबली अंगद ने शत्रु का बल मर्दन कर श्रीरामजी के चरणकमल हृदय में लिये। उसका शरीर पुलकित है और नेत्रों में जल है।

साँझ जानि दसकन्धर, भवन गयउ बिलखाइ।
मन्दोदरी रावनहिं, बहुरि कहा समुझाइ ॥३५ख॥

तब रावण सायंकाल जानकर दुःखी होकर अपने महल में गया। रावण को समझाकर मन्दोदरी फिर कहने लगी—

कन्त समुझि मन तजहु कुमतिही * सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही
रामानुज लघु रेख खचाई * सोउ नहिं नाघेहु अस मनुसाई

हे पति! मनमें समझ कुबुद्धि छोड़दो, आपको रामजीसे युद्ध करते शोभा नहीं देता। आपकी ऐसी तो बहादुरी है कि लक्ष्मणजी ने धनुष रेखा खींचदी थी, वह भी आपसे नहीं लाँघी गई!

प्रिय तुम्ह ताहि जितव संग्रामा * जाके दूत केरि यह कामा
कौतुक सिन्धु नाघि तव लङ्का * आयउ कपि केहरी असंका

हे प्रिय! क्या आप उसे युद्धमें जीत सकोगे, जिनके दूतों के ऐसे काम हैं कि खेल ही में समुद्र को लाँघ सिंह के समान एक बहादुर बानर आपकी लंका में निधड़क चला आया।

रखवारे हति बिपिन उजारा * देखत मोहि अच्छ तेहिं मारा
जारि सकलपुर कीन्हेसि छारा * कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा

उसने रखवालों को मार,वाटिका को उजाड़ दिया और आपके देखते २ उसने अक्षयकुमार को मार डाला। उसने सब लंका को भस्म कर दिया, तब आपका बल और घमंड कहाँ गया?

अब पति मृषा गाल जनि मारहु * मोर कहा कछु हृदयं बिचारहु
पति रघुपतिहि नृपत जनि मानहु * अग जग नाथ अतुल बल जानहु

हे पति! झूंठे गाल मत बजाओ, मेरा कहा कुछ हृदय में विचारो। हे स्वामी! रामजी को केवल राजा ही मत मानो, उन्हें चराचर जगत् के स्वामी और महा पराक्रमी जानो।

बान प्रताप जान मारीचा * तासु कहा नहिं मानेहि नीचा
जनक सभा अगनित भूपाला * रहें तुम्हउ बल अतुल बिसाला

उनके बाण के प्रताप को मारीच ने जाना था, उनका कहा आपने अपनी खोटाई से नहीं माना राजा जनक की सभा में असंख्यों राजा थे, वहाँ विशालबल गर्व वाले आप भी थे।

भञ्जि धनुष जानकी बिआही * तब संग्राम जितेहु किन ताही
सुरपति सुन जानइ बल थोरा * राखा जिअत आँखि गहि फोरा

श्रीरामजीने धनुषको तोड़ जानकी को ब्याहा, तब उनको संग्राम में क्यों नहीं जीता? देवराज इन्द्र के पुत्र जयन्त ने जाना कि इसमें बल थोड़ा है, तो श्रीरामजी ने उसे जीवित रखकर उसकी एक आंख फोड़ दी।

सूर्पनखा कै गति तुम्ह देखी * तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी

शूर्पणखा की दशा तो आपने देखी ही है, तो भी हृदय में लाज नहीं आती।

दोहा—बधि बिराध खरदूषनहिं, लीलाँ हत्यो कबन्ध।
बालि एक सर मार्‌यो, तेहि जानहु दसकन्ध॥ ३६॥

जिसने विराध और खरदूषण को मार कर, लीला से ही कबन्ध को मार डाला और बालि को एक ही बाण से मार दिया। हे नाथ! उनको जानो।

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला * उतरे प्रभु दल सहित सुबेला
कारुनीक दिनकर कुल केतू * दूत पठायउ तव हित हेतू

जिन्होंने खिलवाड़ में समुद्र पर सेतु बांध लिया और जो बानर-सेना समेत सुबेल पर आ उतरे हैं, उन्हीं दयावान, सूर्यवंश में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने तुम्हारे हित के लिए दूत भेजा है।

सभा माँझ जेहिं तव बल मथा * करि बरूथ महुँ मृगपति जथा
अंगद हनुमत अनुचर जाके * रन बाँकुरे बीर अति जाँके

जिसने सभा में आकर तुम्हारे बल को ऐसे मथ डाला, जैसे हाथियों के झुंड में सिंह। जिनके अंगद व हनुमान जैसे रण-शूर बड़े बाँके वीर सेवक हैं।

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू * बृथा मान ममता मद बहहू
अहह कन्त कृत राम बिरोधा * काल बिबस मन उपजन बोधा

हे पति ! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मद का भार सहन कर रहे हैं। हे स्वामी ! आपने श्रीरामजी से वैर किया है। काल के वश हो जाने से आपके मन में ज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

काल दण्ड गहि काहु न मारा * हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा
निकट काल जेहि आवत साईं * तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहिं नाईं

काल दंड लेकर किसी को नहीं मारता, वह उसके धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है। हे स्वामी ! जिसका काल निकट आ जाता है, उसे आपके समान ही भ्रम हो जाता है।

दोहा—दुइ सुत मरे दहेउ पुर, अजहुँ पूर प्रिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि, नाथ बिमल जस लेहु ॥ ३७ ॥

आपके दो पुत्र मारे गये, नगर जल गया। हे पति ! अब भी (भूल की पूर्ति कर दीजिये) कृपासिंधु श्रीरघुनाथजी का भजन कर अपने यश को निर्मल कर लीजिए।

नारि बचन सुनि बिसिख समाना * सभाँ गयउ उठि होत बिहाना
बैठि जाइ सिंहासन फूली * अति अभिमान त्रास सब भूली

मन्दोदरी के तीर समान वचन सुनकर सवेरा होते ही रावण उठकर अपनी सभा को गया और भय भुलाकर अभिमान के साथ सिंहासन पर बैठ गया।

इहाँ राम अंगदहि बोलावा * आइ चरन पंकज सिरु नावा
अति आदर समीप बैठारी * बोले बिहँसि कृपालु खरारी

यहां पर श्रीरामजी ने अंगदजी को बुलाया, अंगद ने आकर चरणारविन्दों में सिर नवाया। बड़े आदर के साथ अपने पास बैठाकर और हँसकर कृपालु श्रीरामजी बोले—

बालि तनय कौतुक अति मोही * तात सत्य कहु पूछउँ तोही
रावन जातुधान कुल टीका * भुजबल अतुल जासु जग लीका

हे अङ्गद ! मुझे बड़ा अचरज है, हे तात ! सत्य कहो, मैं तुमसे पूछता हूँ । रावण सब राक्षसों का सिरमौर है, जिसकी भुजाओं के अतुल पराक्रम की संसार में धाक है ।

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए * कहहु तात कवनी बिधि पाए
सुनु सर्वज्ञ प्रनत सुखकारी * मुकुट न होंय भूप गुन चारी

उसके चार मुकुट तुमने फेंके । हे तात ! कहो, वे मुकुट कहाँ से पाये ? यह सुनकर अङ्गदजी बोले-हे सर्वज्ञ ! शरणागत को सुख देने वाले । सुनिये-वे मुकुट नहीं, वरन् राजा के चार गुण हैं।

साम दाम अरु दण्ड विभेदा * नृप उर बसहिं नाथ कहि वेदा
नीति धर्म के चरन सुहाए * अस जियँ जानि नाथ पहिं आए

हे नाथ ! साम,दाम,दंड और भेद-ये चार गुण राजाओं के हृदयमें बसते हैं, यह वेदों में कहा है । यही चार नीति-धर्म के सुन्दर चरण हैं, हे नाथ ! ऐसा जानकर ये आपके पास आये हैं ।

दोहा–धर्महीन प्रभु पद बिमुख, काल बिबस दससीस ।
तेहि परिहर गुन आए, सुनहुँ कोसला धीस ॥३८क॥
परम चतुरता श्रवन सुनि, बिहँसे राम उदार ।
समाचार पुनि सब कहे, गढ़ के बालि कुमार ॥३८ख॥

धर्म से हीन और प्रभु से विमुख रावण काल के वेश में है । हे कौशलाधीश ! सुनिये, गुण उसे छोड़कर आपकी शरण में आये हैं । उदार श्रीरामजी-अङ्गदजी की परम चतुराई कानों से सुनकर हँसे । तदन्तर बालि-पुत्र ने लंका के समाचार कहे ।

रिपु के समाचार जब पाए * राम सचिब सब निकट बोलाए
लङ्का बाँके चारि दुआरा * केहि बिधि लागिय करहु विचारा

श्रीरामजी ने जब शत्रु के सब समाचार,पाये, तब सब मन्त्रियों को पास बुलाकर कहा-लंका के चार विकट दरवाजे हैं, उनमें किस प्रकार प्रवेश करना चाहिए ?

तब कपीस रिच्छेसि बिभीषन * सुमिरि हृदयँ दिनकर कुलभूषन
करि विचार तिन्ह मन्त्र दृढ़ावा * चारि अनी कपि कटुक बनावा

तब सुग्रीव, जामवन्त और विभीषण ने हृदय में श्रीरामजी का स्मरण कर आपस में पक्का विचार किया । बानर-सेना की टोलियाँ बनाई ।

जथा जोग सेनापति कीन्हे * जूथप सकल बोलि तब लीन्हे
प्रभु प्रताप कहि सब समझाए * सुनि कपि सिंहनाद करि धाए

और उनके लिए यथोचित सेनापति बनाये । सब सेनापतियों को बुला लिया और सबको प्रभु का प्रताप कहकर समझाया । जिसे सुन सब बानर सिंह के समान गर्जना करके दौड़े।

हरषित राम चरन सिर नावहिं * गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा * जय रघुबीर कोसलाधीसा

वे प्रसन्न होकर श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाते हैं और पर्वतों के शिखर लेकर दौड़ते हैं। 'राजा रामचन्द्र की जय' कहकर रीछ-बानर गर्जते, ललकारते हैं।

जानत परम दुर्ग अति लंका * प्रभु प्रताप कपि चले असंका
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी * मुखहिं निसान बजावहिं भेरी

यद्यपि बानर जानते थे कि लंकागढ़ बड़ा दुर्गम है, तथापि वे प्रभु के प्रताप से निडर होकर चले। घटाघटि बादलों के समान चारों ओर से वे घेरकर मुँह से ही नगाड़े और तुरही बजाने लगे।

दोहा—जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद कपि, भालु महा बल सीव॥ ३९॥

'श्रीरामजी की जय' 'लक्ष्मणजी की जय' 'कपिराज की जय'! कहकर महा बलवान बानर और रीछ गरजने लगे।

लंका भयउ कोलाहल भारी * सुना दसानन अति अहँकारी
देखउ बन्दर केरि ढिठाई * बिहँसि निसाचर सेन बोलाई

लंका में बड़ा हल्ला मच गया। जब अत्यन्त अहङ्कारी रावण ने सुना, तो बोला—इन बानरों की ढीठता तो देखो। यह कहकर हँसा और अपनी सेना बुलाई।

आए कीस काल के प्रेरे * छुधावन्त सब निसिचर मेरे
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा * गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा

बानर काल के भेजे यहाँ आये हैं और मेरे राक्षस भी भूखे हैं। ऐसा कहकर मूर्ख रावण अट्टहासकर के हँसा कि ब्रह्मा ने घर बैठे भोजन दिया है।

सुभट सकल चारहुँ दिसि जाहू * धरि धरि भालु कीस सब खाहू
उमा रावनहि अस अभिमाना * जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना

हे वीरों! चारों दिशाओं में तुम जाओ और पकड़ २ कर सब रीछ-बानरों को खाओ। हे पार्वती! रावण को ऐसा अभिमान था, जैसा कि उलटा सोने वाली टिटहरी को होता है।

चले निसाचर आयसु माँगी * गहि कर भिंडपाल बर साँगी
तोमर मुगदर परसु प्रचंडा * सूल कृपान परिघि गिरिखण्डा

सब राक्षस आज्ञा माँगकर और हाथों में सुन्दर गो-फन, सांगी, बरछी, मुग्दर, मूसल, त्रिशूल, तलवार, फरसा और पर्वत की शिला लेकर चले।

जिमि अरुनोपल निकर निहारी * धावहिं सठ खग माँस अहारी
चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा * तिमि धाए मनुजाद अबूझा

जैसे लाल रंग के बहुत से पत्थरों को देखकर मांसाहारी मूर्ख पक्षी उन पर दौड़ते हैं, और चोंच टूटने का दुःख उन्हें नहीं सूझ पड़ता, इसी प्रकार राक्षस दौड़े।

दोहा—नानायुद्ध सर चाप धर, जातुधान दलबीर।

कोटि कँगूरन्हि चढ़ गए, कोटि कोटि रनधीर ॥४०॥

नाना प्रकार के हथियार और धनुष-बाण लिये, करोड़ों उत्तम वीर रणधीर राक्षस लंका के कंगूरों पर चढ़ गये।

कोटि कँगूरन्हि सोहहिं कैसे * मेरुके सृंगनि जनु घन बैसे
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ * सुनि धुनिहोइ भटन्हिमन चाऊ

कंगूरों पर वे कैसे शोभायमान हो रहे हैं, जैसे सुमेरु-पर्वत के शिखर पर बादल बैठे हों। ढोल, नगाड़े और जुझाऊ बाजे बज रहे हैं, उन्हें सुनकर योद्धाओं के मन में उत्साह बढ़ रहा है।

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा * सुनि कादर उर जाहिं दरारा
देखन्हि जाइ कपिन्ह के ठट्टा * अति बिशाल तनु भानु सुभट्टा

बहुत-सी तुरही और नफीरियाँ बज रहीं हैं, उन्हे सुनकर कायरों की छाती फटती है। उन्होंने जाकर बानरों के ठट्ट देखे, बड़े विशाल शरीर वाले रीछ बड़े कट्टर योद्धा हैं।

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा * पर्वत फोरि करहिं गहि बाटा
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं * दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं

रीछ-बानर दौड़ते हुए विकट घाटियों को नहीं गिनते हैं। वह पहाड़ों को फोड़ कर मार्ग बना लेते हैं। करोड़ों वीर दांत कटकटाते और गरजते हैं, तथा दाँतों से ओठों को काट कर ललकारते हैं।

उत रावन इत राम दोहाई * जयति जयति जय परी लराई
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं * कूद धरहिं कपि फेरि चलावहिं

उधर रावण की व इधर श्रीरामजी की दुहाई दी जारही है। जय-जयकार करके दोनों ओर से लड़ाई होने लगी। राक्षस लोग ऊपर से पहाड़ फेंकते हैं और बानर उन्हें पकड़कर फिर राक्षसों पर ही फेंक देते हैं।

छन्द—धरि कुधर खण्ड प्रचण्ड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मन्दिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए॥

पहाड़ों के टुकड़ों को लेकर बानर और रीछ गढ़ के ऊपर फेंकते हैं! झपटकर राक्षसों को पाँव पकड़कर भूमि पर पटक कर भाग जाते हैं, फिर ललकारते हैं। बड़े फुर्तीले व प्रतापी बानर-भालू तमककर चढ़ गये और महलों पर चढ़कर जहाँ-तहाँ श्रीरामजी का यश गाने लगे।

दोहा—एकु एकु निसिचर गहि, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपु हेठ भट, गिरहिं धरनि पर आइ ॥४१॥

फिर बानर एक-एक राक्षस को पकड़कर भाग चले। ऊपर आप और नीचे राक्षसों

को कर पृथ्वी पर आ गिरते हैं।

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा * मर्दहिं निसिचर सुभग बरूथा
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर * जय रघुवीर प्रताप दिवाकर

श्रीरामजी के प्रताप से बानरों के झुण्ड, राक्षसों के समूह का मर्दन करने लगे, फिर बानर गढ़ पर चढ़ गये और जहाँ-तहाँ सूर्य के समान प्रतापमय-श्रीरामजी की जय बोलने लगे।

चले निसाचर निकर पराई * प्रबल पवन जिमि घन समुदाई
हाहाकार भयउ पुर भारी * रोवहिं बालक आतुर नारी

राक्षसों के झुण्ड ऐसे भाग चले, जैसे प्रचंड वायु के वेग से बादलों के समूह तितर-बितर हो जाते हैं लंकापुरी में बड़ा हा-हाकार मच गया, बालक, अपाहिज और स्त्रियां रोने लगीं।

सब मिलि देहिं रावनहि गारी * राज करत एहिं मृत्यु हंकारी
निज दल बिचल सुना तेहि काना * फेरि सुभट लंकेश रिसाना

सब मिलकर रावण को गारी देने लगे कि राज्य करते हुए मौत को बुलाया। रावण ने जब कानों से सेना का भागना सुना, सब योद्धाओं को लौटाकर वह क्रोधित होकर बोला-

जो रन बिमुख सुना मैं काना * सो मैं हतब कराल कृपाना
सर्बसु खाइ भोग करि नाना * समर भूमि भए बल्लभ प्राना

मैं जिसे युद्ध में मुख छिपाकर लौटा हुआ सुनूंगा, उसे मैं अपनी तलवार से मारूँगा। मेरा सर्वस्व खाया, अनेकों सुख भोग किये और रण-भूमि में प्राण प्यारे होगये।

उग्र बचन सुनि सकल डेराने * चले क्रोध करि सुभट लजाने
सन्मुख मरन वीर कै सोभा * तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा

रावण के कड़े वचन सुनकर वीर डर गये और लजाकर क्रोध करके लौट पड़े। सामने लड़कर मरना ही वीरों को शोभा देता है, यह सोचकर उन्होंने अपने प्राणों का मोह छोड़ दिया।

दोहा—बहु आयुध धरि सुभट सब, भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि, परिघ त्रिशूलन्हि मारि ॥४२॥

बहुत से अस्त्र-शस्त्र धारण कर सब बड़े योद्धा ललकार मारकर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलों से मार २ कर रीछ-बानरों को ध्याकुल कर दिया।

भय आतुर कपि भागन लागे * जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे
कोउ कहाँ अंगद हनुमन्ता * कहँ नलनील द्विबिद बलवन्ता

(महादेवजी कहते हैं-) हे पार्वती! डर के मारे बानर भागने लगे, यद्यपि आगे वे ही युद्ध में जीतेंगे। कोई बानर कहने लगे—अंगद और हनुमान कहाँ हैं, बलवान नल, नील और द्विविद कहाँ हैं?

निज दल बिकल सुना हनुमाना * पच्छिम द्वार रहा बलवाना
मेघनाद तहँ करइ लराई * टूटि न द्वार परम कठिनाई

हनुमानजी ने अपने दल को व्याकुल होते सुना, उस समय वे बलवान् पश्चिम-द्वार पर थे। वहाँ मेघनाथ युद्ध कर रहा था, बड़ी कठिनाई हो रही थी।

पवन तनय मन भा अति क्रोधा * गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा
कूद लंकगढ़ ऊपर आवा * गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा

वीर हनुमानजी के मन में बहुत क्रोध हुआ, वे प्रबल योद्धा काल के समान गरजे और कूद कर लंका के ऊपर चढ़ गये और हाथ में पर्वत लेकर मेघनाथ की ओर दौड़े।

भञ्जेउ रथ सारथी निपाता * ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता
दूसर सूत बिकल तेहि जाना * स्यन्दन घाल तुरत गृह आना

रथको तोड़कर सारथी को मार डाला और उसकी छातीमें एक लात मारी। दूसरे सारथी ने जब मेघनाथ को व्याकुल जाना, तव रथ पर चढ़कर तुरन्त ही राजमहल को ले आया।

दोहा—अंगद सुना पवनसुत, गढ़ पर गयउ अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत, तरकि चढ़ेउ कपि केल ॥ ४३ ॥

जब अङ्गदजी ने सुना कि हनुमानजी गढ़ पर अकेले ही गये हैं, तब समर में बांके वीर अङ्गदजी सहज ही उछल कर किले पर चढ़ गये।

युद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बन्दर * राम प्रताप सुमिरि उर अन्तर
रावन भवन चढ़े दोउ धाई * करहिं कौसलाधीस दोहाई

युद्ध में शत्रुओं के विरुद्ध दोनों बन्दर क्रोधित हुए और श्रीरामजी के प्रताप को स्मरण कर दोनों दौड़कर रावण के महल पर चढ़े और श्रीरामजी की दुहाई देने लगे।

कलस सहित गहि भवनु ढहावा * देखि निसाचर पति भय पावा
नारि बृन्द कर पीटहिं छाती * अब दुइ कपि आए उत्पाती

उन्होंने कलशों सहित महलको पकड़कर गिरा दिया। यह देखकर राक्षसपति रावण डर गया। सब स्त्रियाँ हाथों से छाती पीटने लगीं कि अब दोनों उत्पाती बानर आ पहुँचे हैं।

कपिलीला करि तिन्हहिं डेरावहिं * रामचन्द्र करि सुजसु सुनावहिं
पुनि कर गहि कञ्चन के खम्भा * कहेन्हि करिअ उत्पात अरम्भा

वे बानर-लीला करके उन्हें डराने और श्रीरामचन्द्रजी का सुयश सुनाने लगे, फिर हाथों से सोने के खम्भों को उखाड़ कर कहा कि अब उपद्रव आरम्भ किया जाय।

गर्जि परे रिपु कटक मझारी * लागे मर्दै भुज बल भारी
आहहि लात चपटन्हि केहू * भजहु न रामहि सो फल लेहू

गर्जकर शत्रु-सेना में कूद पड़े और अपनी विशाल भुजाओं से शत्रुओं को मारने लगे। किसी को लातों से, किसी को चपेटों से मारते हैं और कहते हैं कि श्रीरामजी का भजन नहीं किया-उसका वह फल लो।

दोहा—एक एक सो मर्दहिं, तोरि चलावहिं मुण्ड।

रावन आगें परहिं ते, जनु फूटहिं दधि कुण्ड ॥ ४४ ॥

एक दूसरे को मसल देते हैं। सिरों को तोड़ कर फेंकते हैं, तो वे सिर रावण के आगे जा गिरते हैं मानो दही के मटके फूटते हैं।

महा महा मुखिया जे पावहिं * ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा * देहिं राम तिन्हहु निज धामा

जिन बड़े-बड़े सरदारों को पाते हैं, उनके पैर पकड़कर प्रभु के पास फेंक देते हैं। विभीषण उनके नाम बतलाते और श्रीरामजी उनको अपना धाम देते हैं।

खलु मनुजाद द्विजामिष भोगी * पावहिं गति जो नाचत जोगी
उमा राम मृदु चित करुनाकर * बैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर

जो दुष्ट-राक्षस-ब्राह्मणों का मांस खाने वाले हैं, वे उस गति को प्राप्त हुए—जो योगी चाहते हैं। हे पार्वती ! श्रीरामजी बड़े कोमल-चित्त व दयालु हैं। (वे सोचते हैं कि) राक्षस चाहे बैर से सही-मुझे भजते तो हैं।

देहिं परम गति सो जियँ जानी * अस कृपालु को कहहु भवानी
अस प्रभु भजहिं न जे भ्रम त्यागी * नर मतिमन्द ते परम अभागी

इस प्रकार अपने जी में जानकर उन्हें परमगति देते हैं। हे भवानी ! ऐसे दयालु कौन हैं, जो ऐसे प्रभु को अपना भ्रम छोड़कर नहीं भजते, वे मनुष्य मन्द-बुद्धि व भाग्यहीन हैं।

अंगद अरु हनुमन्त प्रबेसा * कीन्ह दुर्ग अस कहि अवधेसा
लंका दोउ कपि सोहहिं कैसें * मथहिं सिन्धु दुइ मन्दरु जैसें

अंगदजी और हनुमानजी गढ में घुस गये, तब श्रीरामजी ने सबसे कहा—लंका में दोनों बानर कैसे शोभायमान हैं, मानो दो मन्दराचल समुद्र को मथ रहे हों।

दोहा—भुजबल रिपुदल दलि मलि, देखि दिवस कर अन्त।
कूदे जुगल बिगत श्रम, आए जहँ भगवन्त ॥ ४५ ॥

अपनी भुजाओं के बल से शत्रु की सेना का मान-मर्दन कर, दिन को अस्त होते देखकर दोनों ही बिना परिश्रम ही कूद पड़े और जहाँ रामचन्द्रजी थे, वहाँ आ पहुँचे।

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए * देखि सुभट रघुपति मन भाए
राम कृपा करि जुगल निहारे * भए बिगत श्रम परम सुखारे

उन्होंने प्रभु के चरणकमलों में मस्तक नवाया। दोनों योद्धाओंको देखकर रघुनाथजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों को कृपादृष्टि से देखा तो वे दोनों श्रम रहित और सुखी होगये।

गए जानि अङ्गद हनुमाना * फिरे भालु मर्कट भट नाना
जातुधान प्रदोष बल पाई * धाए करि दससीस दोहाई

अंगद और हनुमानजी लौट गये यह जानकर सब रीछ और बानर योद्धा भी लौट चले। राक्षस सायंकाल का बल पाकर रावण की दुहाई देते हुए बानरों के पीछे दौड़े।

निसिचरअनी देखि कपि फिरे * जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी * लरत सुभट नहिं मानहिं हारी

तब वे राक्षस-सेना को देखकर लौट पड़े और जहाँ-तहाँ किटकिटाकर भिड़ गये। दोनों प्रबल सेनायें ललकार २ कर भिड़गईं, लड़ते हुए योद्धा हार नहीं मानते हैं।

महाबीर निसिचर सब कारे * नाना बरन बलीमुख भारे
सकल जुगल दल सम बल जोधा * कौतुक करत लरत करि क्रोधा

वीर राक्षस काले थे और बानर भी विशाल-काय और रंग-बिरंगे थे। दोनों दल-बलवान थे और समान बली योद्धा थे, वे क्रोध करके लड़ने लगे और खेल दिखाने लगे।

प्राबिट सरद पयोद घनेरे * लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे
अनपि अकम्पन अरु अतिकाया * बिचलित सेन कीन्ह इन्ह माया

मानो वर्षा और शरद्-ऋतु के मेघ वायु के झंकोरों से उड़-उड़कर लड़ रहे हैं। सेनापति अकम्पन और अतिकाय राक्षसों ने अपनी सेना को विचलित देखकर राक्षसी माया रची।

भयउ निमिष महँ अति अँधियारा * बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा

पलभर में अँधेरा होगया। रुधिर, पत्थर और आग की वर्षा होने लगी।

दोहा—देखि निबिड़तम दसहुँ दिशि, कपिदल भयउ खभार।
एकहि एक न देखहीं, जहँ तहँ करहिं पुकार ॥४६॥

दसों दिशाओं में घना अन्धकार देखकर बानर-दल में खलबली मच गयी। एक को एक नहीं देखते, सब जहाँ-तहाँ पुकारने लगे।

सकल मरमु रघुनायक जाना * लिए बोलि अंगद हनुमाना
समाचार सब केहि समुझाए * सुनत कोपि कपि कुञ्जर धाए

यह सब रहस्य श्रीरघुनाथजी जान गये, तब अंगद और हनुमानजी को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही दोनों वीर मत्त हाथी की तरह क्रोध कर दौड़े।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा * पावक सायक सपदि चलावा
भयउ प्रकाश कतहुँ तम नाहीं * ग्यान उदउँ जिमि संसय जाहीं

फिर कृपानिधान श्रीरामजी ने धनुष चढ़ाया और शीघ्र ही अग्नि-बाण चलाया, जिससे प्रकाश होगया, कहीं अन्धेरा नहीं रहा। जैसे ज्ञान होने से सब संशय दूर हो जाता है।

भालु बलीमुख पाइ प्रकाशा * धाए हरष बिगत श्रम त्रासा
हनुमान अङ्गद रन गाजे * हाँक सुनत रजनीचर भाजे

रीछ और बानर उजाला पाकर क्रोध करके दौड़े। उनकी थकावट तथा डर जाता रहा। हनुमान और अंगद रण में गरजे, उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भागे।

भागत भट पटकहिं धरि धरनी * करहिं भालु कपि अदभुत करनी

गहि पद डारहिं सागर माहीं * मकर उरग झष धरि धरि खाहीं

भागते हुए राक्षसों को पृथ्वी पर पटक देते । रीछ-वानर अद्‌भुत करनी करते हैं और पकड़कर उन्हें समुद्र में फेंक देते हैं । उन्हें मगर, घड़ियाल, साँप और मछलियाँ खाते है ।

दोहा—कछु मारे कछु घायल, कछु गढ़ चले पराइ ।
गर्जहिं भालु बलीमुख, रिपुदल बल बिचलाइ ॥ ४७ ॥

कुछ मारे गये, कुछ घायल हो गये और कुछ गढ़ की ओर भाग गये । शत्रु-सेना को तितर-बितर करके वानर-रीछ गरजने लगे ।

निसा जानि कपि चारिउँ अनी * आये जहाँ कोसला धनी
राम कृपा करि चितवा सबही * भये बिगतश्रम बानर तबही

रात हुई जानकर चारों सेनाओं के वानर वहाँ आये-जहाँ श्रीरामजी थे । ज्यों ही श्रीरामजी ने कृपा-दृष्टि से उनकी ओर देखा, त्यों ही सब वानरों की थकावट दूर हो गई ।

जहाँ दसानन सचिव हँकारे * सब सन कहेसि सुभट जे मारे
आधा कटकु कपिन्ह संहारा * कहहु बेगि का करिअ बिचारा

वहाँ (लंका में) रावण ने मंत्रियों को बुलाया और जितने योद्धा मारे गये थे, उनके नाम सबको बतलाये और कहा—वानरों ने आधी सेना मार डाली । अब बताओ, क्या विचार किया जाय ?

माल्यवन्त अति जरट निसाचर * रावन मातु पिता मन्त्री बर
बोला बचन नीति अति पावन * सुनहु तात कछु मोर सिखावन

माल्यवन्त नाम का एक बूढ़ा राक्षस था, वह रावण का नाना और श्रेष्ठ मन्त्री था । वह नीति के अति पवित्र वचन बोला—हे तात ! मेरी कुछ शिक्षा सुनो—

जब ते तुम्ह सीता हरि आनी * असगुन होहिं न जाहिं बखानी
बेद पुरान जासु जसु गायो * राम बिमुख काहुँ न सुख पायो

जब से तुम सीताजी को हर लाये हो, तब से इतने अशकुन होते हैं कि कहे नहीं जाते । वेद-पुराण जिनका यश गाते हैं, उनसे विरोध करने पर किसी ने सुख नहीं पाया ।

दोहा—हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान ।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिंधु भगवान ॥४८क॥

हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष और महाबली मधु-कैटभ को जिन प्रभु ने मारा था । उन्हीं कृपासिंधु भगवान ने अवतार धारण किया है ।

* मास पारायण—पच्चीसवाँ विश्राम *

काल रूप खल बन दहन, गुनागार घन बोध ।
सिव बिरंचि जेहिं सेवहिं, तासों कवन बिरोध ॥४८ख॥

वे दुष्ट राक्षस रूपी वन को जलाने के लिए कालाग्नि के समान हैं, गुणों के भण्डार तथा पूर्ण ज्ञानवान् हैं। शिवजी और ब्रह्माजी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे बैर करना कैसा ?

परिहरि बयरु देहु बैदेही * भजहु कृपानिधि परम सनेही
ताके बचन बान सम लागे * करिआ मुँह करि जाहु अभागे

अतः बैर छोड़कर, सीताजी को दे दो और परम स्नेही श्रीरामजी का भजन करो। उनके वचन रावण को वाण के समान लगे, वह बोला–रे अभागे ! यहाँ से काला मुँह करजा।

बूढ़ भएसि नत मरतेउँ तोही * अब जनि नयन दिखावसि मोही
तेंहिं अपने मन अस अनुमाना * बध्यो चहत एहि कृपानिधाना

तू बूढ़ा हो गया है, नहीं तो मैं तुझे अभी मार डालता। अब तू मुझे अपना मुँह मत दिखा। माल्यवन्त ने अपने मन में अनुमान कर लिया कि इसे कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी मारना चाहते हैं।

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा * तब सकोप बोलेउ घननादा
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा * करिहउँ बहुत कहौं का थोरा

वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठ गया, तब मेघनाद क्रोध करके बोला–प्रातःकाल मेरा कौतुक देखना। बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ।

सुनि सुत बचन भरोसा आवा * प्रीति समेत गोद बैठावा
करत विचार भयउ भिनुसारा * लागे कपिपुनि चहूँ दुआरा

पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा हुआ, तब उसे प्रेम से गोद में बैठाया। रात भर विचार करते-करते सवेरा हो गया रीछ-बानर चारों दरवाजों पर आ जुटे।

कोपि कपिन्ह दुर्गम गढ़ घेरा * नगर कोलाहलु भयउ घनेरा
बिबिधायुध धर निसिचर धाए * गढ़ ते पर्वत शिखर ढहाए

बानरों ने क्रोधित हो कठिन किले को घेर लिया, तब नगर में बड़ी भारी हलचल मची। अनेकों प्रकार के हथियार लेकर राक्षस दौड़े और ऊपर से पहाड़ों के शिखर लुढ़काने लगे।

छन्द–ढाये महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत लटत तनु जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

पर्वतों के बहुत से शिखर लुढ़काये और बहुत से गोले चलाये, वे ऐसे घड़घड़ाते हैं, मानो प्रलयकाल के मेघ हों। विकट बानर भिड़ते हैं, काटते हैं और हारते नहीं, उनके शरीर लोहू-लुहान होगये। वे पर्वत लेकर गढ़ पर ऐसे चलाते हैं कि राक्षस जहाँ के तहाँ मर जाते हैं।

दोहा–मेघनाद सुनि श्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आय।
उतर्यौ बीर दुर्ग तें, सन्मुख चल्यो बजाय॥४८॥

मेघनाद ने कानों से यह सुना कि बानरों ने फिर गढ़ घेर लिया है, तब वह वीर किले से उतर कर धौंसा बजाता हुआ सामने चला ।

कहँ कौसलाधीस द्वौ भ्राता * धन्वी सकल लोक विख्याता
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा * अङ्गद हनूमन्त बल सींवा

(मेघनाद ने कहा—) अयोध्या के राजा, सब लोकों में प्रसिद्ध धनुषधारी दोनों भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं नल-नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान कहाँ है ?

कहाँ विभीषनु भ्राता द्रोही * आजु सबहि हठि मारेउँ ओही
अस कहि कठिन बाल सन्धाने * अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने

भाई से बैर करने वाला विभीषण कहाँ है ? आज सबको हठपूर्वक मारूँगा । ऐसा कहकर उसने अपने धनुष पर कठिन वाण संधान किये और बड़े कोध मे कानों तक धनुष ताना ।

सर समूह सो छाँड़न लागा * जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा
जहँ तहँ परत देखि अहिं बानर * सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर

वह वाण समूह छोड़ने लगा, मानो पंखों वाले बहुत से सर्प दौड़ रहे हैं । जहाँ-तहाँ बानर गिरते देख पड़ते थे, उस समय उसके सामने कोई नहीं ठहर सकता था ।

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा * बिसरी सबहिं युद्ध की ईछा
सो करि भालु न रन महँ देखा * कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा

बानर, रीछ जहाँ-तहाँ भागे, सबको युद्ध की सुधि भूल गई । ऐसा बानर या रीछ रण में कोई नहीं दीख पड़ा, जिसके प्राण अवशेष न कर दिये हों ।

दोहा—दस दस सर मारेसि, परे भूमि कपि वीर ।
सिंहनाद करि गर्जा, मेघनाद बलवीर ॥ ५० ॥

दस-दस वाण उसने सबके मारे, जिससे वीर बानर पृथ्वी पर गिर पड़े । तब रणधीर मेघनाद सिंह के समान गर्जने लगा ।

देखि पवनसुत कटुक बिहाला * क्रोधवन्त जनु धायउ काला
महा सैल एक तुरत उपारा * अति रिस मेघनाद पर डारा

हनुमानजी वानर सेना को व्याकुल देखकर क्रोध करके दौड़े, मानो काल ही दौड़ा हो । उन्होंने तुरन्त एक भारी पर्वत उखाड़ लिया और क्रोधित हो मेघनाद पर डाला ।

आवत देखि गयउ नभ सोई * रथ सारथी तुरत सब खोई
बार बार पचारे हनुमाना * निकट न आव मरमु सो जाना

पर्वत को आते देखकर वह आकाश में उड़ गया । रथ, सारथी और घोड़े नष्ट हो गये । हनुमानजी ने उसे बारम्बार ललकारा, परन्तु वह निकट नहीं आया, क्योंकि वह उनके बल का भेद जानता था ।

रघुपति निकट गयउ घननादा * नाना भाँति कहेसि दुर्बादा

अस्त्र शस्त्र आयुध सब डारे * कौतुक हीं प्रभु काटि निवारे

फिर मेघनाथ भी श्रीरामजी के पास गया और अनेक दुर्वचन कहे। बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाये, परन्तु प्रभु ने उन्हें सहज ही में काट दिया।

देखि प्रताप मूढ़ खिसियाना * करै लाग माया बिधि नाना

जिमि कोउकरै गरुड़सन खेला * डरपावहिं गहि स्वल्प सपेला

प्रभु के प्रताप को देखकर वह मूर्ख बहुत खिसियाया और भाँति-भाँति की माया करने लगा जैसे-कोई गरुड़ के साथ खेल करे और सर्प का छोटा-बच्चा हाथ में लेकर डराना चाहे।

दोहा—जासु प्रबल माया बस, शिव बिरञ्चि बड़ छोट।
ताहि दिखावहि निसिचर, निज माया मति खोट ॥५१॥

शिव, ब्रह्मा और सब छोटे-बड़े जिसकी प्रबल माया के वश में हैं, नीच बुद्धि राक्षस उनको अपनी माया दिखलाता है।

नभ चढ़ि बरष बिपुल अङ्गारा * महि ते प्रगट होहिं जलधारा

नाना भाँति पिशाच पिशाची * मारु काटु धुनि बोलहिं नाची

वह आकाश में जाकर बहुत-से अंगारे बरसाने लगा, भूमि से जल-धारायें प्रकट होने लगीं। नाना भाँति के पिशाच और पिशाचिनी 'मारो-काटो' की ध्वनि करके नाचने लगे।

बिष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा * बरषइ कबहुँ उपल बहु छाँड़ा

बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा * सूझ न आपन हाथ पसारा

कभी वह विष्ठा,पीव,रक्त, केश और हाड़ बरसाता था, कभी बहुत से पत्थर फेंकता था। उसने धूल बरषाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि पसारा हुआ हाथ भी नहीं दीखता था।

कपि अकुलाने माया देखें * सब कर मरन बना एहि लेखें

कौतुक देखि राम मुसुकाने * भय सभीत सकल कपि जाने

राक्षसी-माया देखकर बानर घबड़ा गये कि सबका मरना इसी बहाने से होगा। यह देखकर श्रीरामजी मुस्कराये और जाना कि सब बानर डर गये।

एक बान काटी सब माया * जिमिदिनकरहरतिमिरनिकाया

कृपादृष्टि करि भालु बिलोके * भए प्रबल रन रहहिं न रोके

तब उन्होंने एक बाण से सब माया दूर करदी, जैसे-सूर्य के प्रकाश से अँधेरा दूर हो जाता है। फिर कृपादृष्टि से सब बानर रीछों को देखा, तो सब ऐसे प्रसन्न होगये कि युद्ध में रोकने पर भी नहीं रुकते थे।

दोहा—आयसु माँगि राम पहिं, अङ्गदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान सरासन हाथ ॥ ५२ ॥

श्रीरामजी से आज्ञा लेकर अंगद आदि बानरों को साथ ले लक्ष्मणजी क्रोध करके धनुष-बाण हाथ में लेकर चले।

छतज नयन उर बाहु बिसाला * हिमगिरि सम तनु कछु एक लाला
उहाँ दसानन सुभट पठाए * नाना अस्त्र शस्त्र गहि धाए

उनके नेत्र कमल के समान, छाती चौड़ी, भुजायें लम्बी और हिमालयके समान, गौर-वर्ण,कुछ लाली लिए शरीर है। उधर रावण ने योद्धा भेजे, जो अनेक हथियार लेकर दौड़े।

भूधर नख बिटपायुध धारी * धाए कपि जय राम पुकारी
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी * इत उत जय इच्छा नहिं थोरी

पर्वत, नख, वृक्ष ही जिनके हथियार हैं, वे वानर 'श्रीरामजी की जय' पुकारते हुए दौड़े। सब अपनी २ जोड़ी से भिड़ गये, दोनों और जीतने की इच्छा थोड़ी नहीं है।

मुठिकन्ह लातन्ह दाँतन्ह काटहिं * कहि जय सील मारि पुनि डाटहिं
मारु मारु धरु धरु धरु मारू * सीस तोरि गहि भुजा उखारू

राक्षसों को वानर लात घूंसों से मारते हैं, दांतों से काटते हैं, विजयी-वानर उन्हें मारकर डाटते भी हैं। 'मारो,पकड़ो,पकड़कर मार डालो सिर तोड़ दो और भुजा पकड़कर उखाड़लो।'

अस धुनि पूरि रही नव खंडा * धावहिं जहँ तहँ रुण्ड प्रचंडा
देखहिं कौतुक नभ सुर वृन्दा * कबहुँक बिसमय कबहुँ अनन्दा

ऐसी ध्वनि नवों खण्डों में भर रही है, प्रचण्ड रुण्ड जहां-तहां दौड़ रहे हैं। आकाश से देवतागण यह कौतुक देख रहे हैं, उन्हें कभी विस्मय कभी आनन्द हो रहा है।

दोहा—रुधिर गाढ़ भरि भरि जम्यो, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अँगार रासिन्ह पर, मृतक धूलि रही छाइ॥ ५३॥

रुधिर गड्ढों में भरकर जम गया है और ऊपर से धूल छा गई है। जैसे-अंगारों पर मुर्दे की राख छा जाती है।

घायल बीर विराजहिं कैसे * कुसुमित किंसुक के तरु जैसे
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा * भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा

घायल योद्धा कैसे सुशोभित हैं, जैसे-फूले हुए कपास के पेड़। लक्ष्मणजी और मेघनाद दोनों योद्धा एक दूसरे से बड़े क्रोध के साथ भिड़ते हैं।

एकहिं एक सकइ नहिं जीती * निसिचर छल बल करइ अनीती
क्रोधवन्त तब भयउ अनन्ता * भञ्जेउ रथ सारथी तुरन्ता

परन्तु एक-दूसरे को जीत नहीं सकते। मेघनाद छल-बल और अनीति करता था। तब अनन्त (लक्ष्मणजी) ने अत्यन्त क्रोधित हुए और मेघनाद के रथ को तोड़ डाला तथा शीघ्र ही सारथी को मार दिया।

नाना बिधि प्रहार कर शेषा * राक्षस भयउ प्रान अवशेषा
रावन सुत निज मन अनुमाना * संकट भयउ हरिहि मम प्राना

शेषजी ने अनेक भांति प्रहार किये, तब राक्षस के प्राणमात्र अवशेष रह गये। राक्षस

पुत्र मेघनाद ने मन में अनुमान किया कि अब बड़ा सङ्कट हुआ, मेरे प्राण हर लेंगे।

बीर घातिनी छाँड़िसी साँगी * तेजपुञ्ज लछिमन उर लागी
मुरछा भई शक्ति कें लागें * तब चलि गयउ निकट भय त्यागें

उसने बीर-घातिनी शक्ति छोड़ी, वह तेज पूर्ण शक्ति लक्ष्मणजी की छाती में लगी। शक्ति के लगने से उन्हें मूर्छा आगई, तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास आया।

दोहा—मेघनाद सम कोटि सत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि, उठै चले खिसिआइ ॥ ५४ ॥

मेघनाद के समान सौ करोड़ योद्धा मिलकर उन्हें उठा रहे हैं, परन्तु जगत के आधार शेषजी कैसे उठ सकते? जब वे न उठे, तब खिसियाकर चल दिये।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू * जारब भुवन चारिदास आसू
सक संग्राम जीति को ताही * सेवहिं सुर नर अग जग जाही

हे पार्वती! सुनो, जिनकी क्रोधाग्नि चौदहों भुवनों को तुरन्त जला देती है और जिनकी देवता, मनुष्य तथा चराचर जगत् सेवा करता है, उनको युद्ध में कौन जीत सकता है?

यह कौतूहल जानइ सोई * जा पर कृपा राम कै होई
संध्या भइ फिरीं द्वौ बाहनी * लगे सँभारन निज निज अनी

इस कौतुक को वही जानता है, जिस पर श्रीरामजी की कृपा हो। जब सन्ध्या हुई तो दोनों सेनायें लौट पड़ीं, तब सेनापति अपनी-अपनी सेना सँभालने लगे।

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर * लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर
तब लगि लै आयउ हनुमाना * अनुज देखि प्रभु अति दुख माना

सर्वव्यापक, ब्रह्म, अजेय, भुवनों के स्वामी और करुणानिधान श्रीरामजी ने पूछा-लक्ष्मण कहाँ हैं? तब तक हनुमानजी उन्हें ले आये, छोटे भाई को देखकर प्रभु ने बहुत दुःख माना।

जामवन्त कह बैद सुषेना * लङ्का रहइ सो पठइअ लेना
धरि लघु रूप गयउ हनुमन्ता * आनेउ भवन समेत तुरन्ता

जामवन्त ने कहा—लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे लेने को किसी को भेजिये। हनुमानजी छोटा रूप धारणकर लंका में गये और सुषेण को तुरन्त घर समेत ही ले आये।

दोहा—राम पदारबिन्दु सिर, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधि, जाहु पवन सुत लेन ॥ ५५ ॥

सुषेण ने आकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में मस्तक नवाया, फिर उसने पर्वत और औषधि का नाम बतलाकर कहा—हे हनुमानजी! आप उसे लेने जाओ।

राम चरन सरसिज उर राखी * चला प्रभञ्जन सुत बल भाखी
उहाँ दूत एक मरमु जनावा * रावन कालनेमि गृह आवा

श्रीरामजी के चरणकमलों को हृदय में रखकर व बल बखान कर हनुमानजी चले उधर एक दूत ने सब भेद बतलाया, तब रावण कालनेमि के घर आया।

दशमुख कहा मरमु तेहिं सुना * पुनि पुनि कालनेमि सिर धुना
देखत तुम्हहि नगर जेहिं जारा * तासु पन्थ को रोकनहारा

रावण ने सारा भेद कहा, उसने सुना और बारम्बार सिर धुना। उसने कहा—तुम्हारे देखते २ जिसने नगर को जला दिया, उसके मार्ग को रोकने वाला कौन है ?

भजि रघुपतिहि करहु हित अपना * छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना
नील कञ्ज तनु सुन्दर श्यामा * हृदयँ राखु लोचन अभिरामा

हे नाथ ! श्रीरघुनाथजी का भजन कर अपना हित-साधन करो और वृथा की बकवास छोड़ दो। नेत्रों को आनन्ददायक कमल के समान सुन्दर श्याम शरीर को अपने हृदय में धारण करो।

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू * महा मोह निसि सोवत जागू
काल व्याल कर भच्छक जोई * सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई

मैं, तू और अपनत्व के भाव की मूढ़ताको त्याग दो। महा मोहरूपी रात्रि में सोते हुए जग उठो। जो कालरूपी सर्प का भक्षक है क्या स्वप्न में भी समर में उसे कोई जीत सकता है ?

दोहा—सुनि दस कण्ठ रिसान अति, तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु, यह खल रत मल भार ॥५६॥

यह सुनकर रावण बहुत क्रोधित हुआ है। तब कालनेमि ने मन में विचार किया कि श्रीरामजी के दूत के हाथ से मरना अच्छा है। यह दुष्ट तो पाप समूह में रत है।

अस कहि चला रचिसि मग माया * सर मन्दिर बर बाग बनाया
मारुत सुत देखा सुभ आश्रम * मुनिहि बूझ जल पियौं जाइ श्रम

ऐसा अपने मन में कहकर कालनेमि चला और मार्ग में-सरोवर, मन्दिर और सुन्दर बाग माया से बनाया है। हनुमानजी ने शुभ-आश्रम देखकर सोचा कि मुनि से पूछ कर जल पी लूं जिससे थकावट दूर हो जाय।

राक्षस कपट वेष तहँ सोहा * मायापति दूतहि चह मोहा
जाइ पवन सुत नायउ माथा * लगा सो कहन राम गुन गाथा

वहाँ राक्षस-कपट वेष बनाकर बैठा था, वह माया से उन माया-पति दूतको मोहित करना चाहता था। पास जाकर हनुमानजी ने मस्तक नवाया, तब वह श्रीरामजी के गुण गाने लगा।

होत महारनु रावनु रामहिं * जितिहहिं राम न संसय या महिं
इहाँ रहे मैं देखउँ भाई * ग्यान दृष्टि बल मोहि अधिकाई

रावण और श्रीरामजी में घोर संग्राम हो रहा है, परन्तु श्रीरामजी जीतेंगे, इसमें संदेह नहीं, हे भाई ! मैं यहां रहकर ही सब देख रहा हूं, क्योंकि ज्ञानदृष्टि का बल मुझमें अधिक है।

माँगा जल तेहि दीन्ह कमण्डल * कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल

सर मज्जन कर आतुर आबहु * दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु

कपि ने जल माँगा, तब उसने कमण्डल दे दिया। कपि ने कहा–थोड़े जल से मैं तृप्त नहीं होऊँगा। मुनि ने कहा–सरोवर में स्नान कर शीघ्र लौट आओ, मैं दीक्षा दूँगा, जिससे तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा।

दोहा–सर पैठत कपि पद गहा, मगरी तब अकुलान।
मारी सो धरि दिव्य तनु, चली गगन चढ़ि जान॥ ५७॥

सरोवरमें घुसते ही एक मगरी ने अकुलाकर हनुमानजी का पैर पकड़ लिया, हनुमानजीने उसे मार डाला, तब वह दिव्य देह पाकर विमान पर चढ़कर आकाश को गई और कहने लगी–

कपि तब दरस भयउँ निष्पापा * मिटा तात मुनिवर कर शापा
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा * मानहु सत्य वचन कपि मोरा

हे कपि तुम्हारे दर्शन से मैं पाप रहित हो गई। हे तात! मुनिश्वर का शाप मिट गया। हे कपि! यह मुनि नहीं है, घोर राक्षस है। मेरा वचन सत्य मानिये।

अस कहि गई अपछरा जबही * निसिचर निकट गयउ कपितबही
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू * पाछें हमहिं मन्त्र तुम देहू

ऐसे कहकर जब वह अप्सरा चली गई, तब हनुमानजी निशाचर के पास गये। उन्होंने कहा–हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा ले लो, फिर हमें तुम मन्त्र वेना।

सिर लंगूर लपेटि पछारा * निज तनु प्रगटेसि मरती बारा
राम राम कहि छाँड़ेसि प्राना * सुन मन हरिष चलेउ हनुमाना

कपि ने उसका सिर पूंछ में लपेट कर पृथ्वी पर पटक विया, तब उसने मरते समय अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और 'राम-राम' कह कर प्राण छोड़ दिया। यह देख मन में प्रसन्न होकर हनुमानजी चले।

देखा सैल न औषधि चीन्हा * सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा
गहि गिरि नभ निसि धावत भयऊ * अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ

उन्होंने पर्वत को देखा, परंतु औषधि नहीं पहिचान सके, तब एक दम पर्वत को उखाड़ लिया। पर्वत को हाथ में लेकर रात्रि में ही आकाश मार्ग से दौड़े और अयोध्या के ऊपर जा पहुँचे।

दोहा–देखा भरत विशाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप श्रवन लगि तानि॥५८॥

आकाश में भरतजी ने विशाल रूप देख और मन में राक्षस समझकर धनुष को कान तक खींचकर बिना फल का वाण मारा।

परेउ मूर्छि महि लागत सायक * सुमिरत राम राम रघुनायक
सुनि प्रिय वचन भरत तब धाए * कपि समीप अति आतुर आए

वाण लगते ही मूर्छित हो भूमि पर 'हे राम, हे रघुनाथजी!' उच्चारण करते हुए हनुमानजी गिर पड़े। प्रिय वचन सुनकर भरतजी उठ दौड़े और तुरन्त हनुमानजी के पास आये।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा * जागत नहिं बहु भाँति जगावा
मुख मलीन मन भए दुखारी * कहत बचन भरि लोचन बारी

हनुमानजी को व्याकुल देखकर छाती से लगा लिया। अनेक प्रकार से जगाया, पर वे चैतन्य न हुए। भरतजी उदास होगये, मनमें बहुत दुखी हुए और आंखों में आंसू भरकर बोले-

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा * तेहि पुनि यह दारुन दुख दीन्हा
जौं मोरें मन बच अरु काया * प्रीति राम पद कमल अमाया

जिस विधाता ने मुझे श्रीरामजी से विमुख किया, उसी ने फिर कठिन दुःख दिया है। जो मन, वचन और शरीर से श्रीरामजी के चरणारविन्दों में मेरी निष्कपट प्रीति हो।

तो कपि होइ बिगत श्रम सूला * जौं मो पर रघुपति अनुकूला
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा * कहि जय जयति कौसलाधीशा

जो मुझ पर श्रीरामजी प्रसन्न हों तो यह कपि थकावट और पीड़ा से छूट जाय। यह वचन सुनते ही हनुमानजी 'कौशलाधीश श्रीरामजी की जय हो' कहते हुए उठ बैठे।

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाय, पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदयँ समाइ, सुमिरि राम रघुकुल तिलक ॥५९॥

भरतजी ने बानर को हृदय से लगा लिया, शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों में जल भर आया। श्रीरामजी का स्मरण करके प्रीति हृदय में नहीं समाती।

तात कुशल कहु सुखनिधान की * सहित अनुज अरु मातु जानकी
कपि सब चरित समास बखाने * भए दुखी मन महुँ पछिताने

हे तात! छोटे भाई लक्ष्मण और माता जानकीजी सहित सुख-निधान श्रीरामजी की कुशल कहो। हनुमानजी ने सब चरित्र संक्षेपमें कहे, जिसे सुनकर भरतजी दुखी हुए और पछताने लगे।

अहह दैव मैं कत जग जायउँ * प्रभु के एकहु काज न आयउँ
जानि कुअवसर मन धरि धीरा * सुनु कपि सन बोले बलबीरा

हा देव! संसार में मैंने क्यों जन्म लिया, जो प्रभु के एक भी काम न आया? फिर भरतजी-हनुमानजी से कुसमय जानकर मन में धीरज धरकर बोले—

तात गहरु होइहि तोहि जाता * काजु नसाइहि होत प्रभाता
चढु मम सायक सैल समेता * पठवौं तोहि जहँ कृपा निकेता

हे तात! तुम्हें पहुँचने में देर होगी और सवेरा होते ही सब काम बिगड़ जायगा। इसलिए पर्वत समेत मेरे बाण पर बैठ जाओ तो मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूं, जहाँ कृपानिधान श्रीरामजी हैं।

सुनु कपि मन उपजा अभिमाना * मोरें भार चलिहि किमि बाना
राम प्रभाव बिचारि बहोरी * बन्दि चरन कह कपि करजोरी

यह सुनकर हनुमानजी के मनमें अहंकार प्रकट हुआ कि मेरे बोझसे बाण कैसे चलेगा फिर राम

के स्वभाव को विचार कर भरतजी के चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़कर हनुमानजी बोले–

दोहा–तव प्रताप उर राखि प्रभु, जइहउँ नाथ तुरन्त।
अस कहि आयसु पाइ पद, बन्दि चलेउ हनुमन्त ॥६०क॥

हे स्वामी ! आपका प्रताप हृदय में रखकर तुरन्त चला जाऊँगा। तब आज्ञा पाकर और चरणों की वन्दना करके हनुमानजी चले।

भरत बाहुबल सील गुन, प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जाय सराहत, पुनि पुनि पवनकुमार ॥६०ख॥

हनुमानजी–भरतजी के शील, गुण और प्रभु के चरणों में अथाह प्रेम की मन ही मन बारम्बार सराहना करते हुए जा रहे हैं।

उहाँ राम लछिमनहि निहारी * बोले बचन मनुज अनुसारी
अर्ध रात्रि गइ कपि नहिं आयउ * राम उठाइ अनुज उर लायउ

श्रीरामजी–लक्ष्मणजी को देखकर मनुष्यों के अनुसार वचन बोले-आधी रात बीत गई, पर हनुमानजी नहीं आये। यह कहकर श्रीरामजी ने भाई को उठाकर हृदय से लगा लिया।

सकउ न दुखित देखि मोहि काऊ * बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ
मम हित लागि तजेउ पितु माता * सहेउ बिपिन हित आतप बाता

और बोले–हे भाई ! तुम तो मुझे कभी दुखित नहीं देख सकते थे, तुम्हारा स्वभाव तो सदा से ही बहुत कोमल था। तुमने मेरे हित के लिए माता-पिता को भी छोड़ दिया और बन में ठण्ड, धूप और वायु को सहा।

सो अनुराग कहाँ अब भाई * उठउ न सुनि मम बच बिकलाई
जौं जनतेहु बन बन्धु बिछोहु * पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू

हे भाई ! वह प्रेम अब कहाँ है ? मेरे व्याकुल वचन सुनकर क्यों नहीं उठते ? जो मैं जानता कि वन में भाई का वियोग होगा, तो पिताजी के उन वचनों को कभी नहीं मानता।

सुत बित नारि भवन परिवारा * होहिं जाहिं जग बारहिं बारा
अस बिचारि जियँ जागहु ताता * मिलहि न जगत सहोदर भ्राता

पुत्र, धन, स्त्री, घर और कुटुम्बी संसार में बारम्बार मिलते और बिछुड़ते हैं। हे तात ! हृदय में ऐसा विचार कर जागो कि संसार में (सगा भाई) दुबारा नहीं मिलता।

जथा पंख बिनु खग अति दीना * मनि बिनु फनि करिबर कर हीना
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही * जौं जड़ दैव जिआवै मोही

जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प, सूँड़ के बिना हाथी दीन हो जाता है, वैसे ही-हे भाई ! यदि कहीं कठोर विधाता मुझे जीवित रखे, तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।

जइहउँ अवध कवन मुँह लाई * नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई
बरु अपजसु सहतेऊँ जग माहीं * नारि हानि बिशेष क्षति नाहीं

स्त्री के लिये प्यारे भाई को खोकर मैं अयोध्या में कौन-सा मुंह लेकर जाऊँगा ? मैं संसार में अपयश भले ही सह लेता, क्योंकि स्त्री की हानि से कुछ विशेष हानि नहीं है ।

अब अपलोकु शोकु सुत तोरा * सहहि निठुर कठोर उर मोरा
निज जननी के एक कुमारा * तासु तात तुम्ह प्रान अधारा

अब तो, हे पुत्र ! लोक-निंदा और तुम्हारा शोक दोनों ही ये मेरा कठोर और निष्ठुर हृदय सहन करेगा। हे तात ! अपनी माता के तुम एक ही पुत्र हो, इससे तुम उनके प्राणधार हो।

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी * सब विधि सुखद परमहित जानी
उतरु कहा देहउँ तेहि जाई * उठि किन मोहि सिखावहु भाई

सब प्रकार से सुख देने वाला और हितकारी जानकर तुम्हारी माता ने हाथ पकड़कर तुम्हें मुझे सौंपा था। अब मैं उन्हें जाकर क्या उत्तर दूंगा ? हे भाई उठकर मुझे क्यों नही समझाते ?

बहु विधि सोचत सोच विमोचन * स्रवतसलिल राजिवदल लोचन
उमा एक अखण्ड रघुराई * नर गति भगति कृपालु देखाई

सोच को दूर करने वाले श्रीरामजी—बहुत प्रकार से सोच कर रहे हैं, कमल नेत्रों से आँसू बहा रहे हैं। हे उमा ! अखण्ड, दयालु श्रीरामजी ने एक और भी, मनुष्य की-सी दशा दिखाई।

सो०—प्रभु प्रलाप सुनि कान, बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ बीर रस ॥६१॥

प्रभु के प्रताप को कानों से सुनकर बानर व्याकुल होगये। उसी समय हनुमानजी आ गये, जैसे—करुणा-रस में वीर-रस आ गया हो।

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना * अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई * उठि बैठे लछिमन हरषाई

प्रसन्न होकर श्रीरामजी—हनुमानजी से मिले। प्रभु किये हुए उपकार को मानने वाले और चतुर हैं। सुषेन वैद्य ने तुरन्त उपाय किया, जिससे लक्ष्मणजी आनन्दपूर्वक उठ बैठे।

हृदय लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता * हरषे सकल भालु कपि ब्राता
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा * जेहिं विधि तबहिं ताहि लै आवा

प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले, सब रीछ-वानरों की सेना आनन्दित हुई। फिर हनुमानजी ने वैद्य को जहां का तहाँ जिस प्रकार उसे लाये थे, वैसे ही पहुँचा दिया।

* क्षेपक कथा *

हरि दिन धूम्रअक्ष बलवाना * चढ़ि कीन्हो अति समर महाना
महावीर तेहि कियौ निपाता * चढ़यौ अकम्पन पुनि दुखदाता

एकादशी के दिन बलवान धूम्राक्ष ने चढ़ाई की और बड़ा भयङ्कर संग्राम किया। महावीर ने उसे मार दिया, तब फिर दुख देने वाला अकम्पन चढ़कर आया।

समर कीन्ह तानें अति भारी * मार्‌यौ तेहि युवराज प्रचारी
पुनि प्रहस्त क्रोधातुर आवा * नील माहि तेहि धरनि गिरावा

उसने बड़ी भारी लड़ाई की। उसे युवराज अंगद ने ललकार कर मार डाला। फिर क्रोधित होकर प्रहस्त चढ़ दौड़ा। उसे नील ने मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

चल्यो महोदर करि अतिक्रोधा * महावीर मार्‌यो सो योधा
पुनि अतिकाय भिर्‌यो रिसियाई * मर्‌यो आठ दिन लीन्ह लराई

फिर महोदर अत्यन्त क्रोध करके चला, उस योद्धा को हनुमानजी ने मार डाला, फिर अतिकाय क्रोधित होकर भिड़ गया और आठ दिन लड़ाई करके मर गया।

कुम्भ निकुम्भ आइ रन ठाना * मरे पाँच दिन करि मैदाना
पुनि मकराक्ष महाभट आवा * लछिमन ते अति युद्ध मचावा

फिर कुम्भकर्ण के बेटे कुम्भ और निकुम्भ ने आकर रण ठाना। वे पाँच दिन युद्ध करके मर गये। तब महा योद्धा मकराक्ष आया, उसने लक्ष्मणजी से बड़ा युद्ध किया।

दोहा—तब लछिमन ने क्रोध करि, ताको डारो मारि।
कपि दल में आनन्द छयो, जय जयकारि पुकारि॥ १॥

तब लक्ष्मणजी ने क्रोध करके उसको मार डाला। तब बानरों के दल में आनन्द छा गया और वे पुकार-पुकार कर जय-जयकार करने लगे।

* इति क्षेपक *

यह वृत्तान्त दसानन सुनेउ * अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ
व्याकुल कुम्भकरन पहिं आवा * बिबिध जतन करि ताहि जगावा

यह समाचार जब रावण ने सुना, तब उसने बहुत दुःखी हो बारम्बार अपना सिर पीटा। फिर घबड़ाकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत से उपाय करके उसे जगाया।

जागा निसिचर देखिअ कैसा * मानहुँ काल देह धरि बैसा
कुम्भकरन बूझा कहु भाई * काहे तव मुख रहे सुखाई

कुम्भकर्ण जाग उठा, वह कैसा देख पड़ता था, मानो देह धारण किये हुए साक्षात काल हो। कुम्भकर्ण ने पूछा—हे भाई! कहो, तुम्हारा मुख क्यों मुरझा रहा है?

कथा कही सब तेहिं अभिमानी * जेहि प्रकार सीता हरि आनी
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे * महा महा जोधा संघारे

तब घमण्डी रावण ने सब कथा कही, जिस प्रकार वह सीता को हर लाया था। फिर बोला—हे भाई! बानरों ने हमारे सब बड़े-बड़े राक्षस वीर मार डाले हैं।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी * भट अतिकाय अकम्पन भारी
अपर महोदर आदिक बीरा * परे समर महिं सब रनधीरा

देवताओं के वैरी, मनुष्य-भक्षी, योद्धा-दुर्मुख, अतिकाय, अकम्पन और महोदर आदि रणधीर वीर समर में मारे गये।

दोहा—सुनि दसकन्धर वचन तब, कुम्भकरन बिलखान।
जगदम्बा हरि आनि अब, सठ चाहत कल्यान ॥ ६२ ॥

रावण के वचन सुनकर कुम्भकरण बिलख कर बोला—हे मूर्ख जगदम्बा सीताजी को हरकर अब अपना भला चाहता है।

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा * अब मोहि आव जगाएहि काहा
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना * भजहु राम होइहि कल्याना

हे राक्षसराज ! तूने भला नहीं किया, अब आकर मुझे क्यों जगाया ? हे भाई ! अब भी घमण्ड को त्यागकर श्रीरामजी को भजो, तो भला होगा।

हैं दससीस मनुज रघुनायक * जाके हनूमान से सायक
अहह बन्धु तैं कीन्ह खोटाई * प्रथमहि मोहि न जगाएसि आई

हे रावण ! क्या वे रामजी मनुष्य हैं, जिनके हनुमानजी सरीखे सेवक हैं ? हा भाई ! तूने यह बुरा किया, जो पहले से आकर मुझे नहीं जगाया।

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक * सिव बिरंचि सुर जाके सेवक
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा * कहतेउँ तोहि समय निरबहा

तुमने उस परम देवता से बैर लिया है, जिसके शिव, ब्रह्मादि देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने जो ज्ञान मुझसे कहा था, वह तुमसे कहता, परन्तु अब तो समय ही जाता रहा।

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई * लोचन सुफल करौं मैं जाई
श्याम गात सरोरुह लोचन * देखौं जाइ ताप त्रय मोचन

हे भाई ! अब मुझसे गोद भरकर मिल लो, जिससे मैं जाकर अपने नेत्रों को सफल करूँ। श्याम शरीर, कमल-नयन, तीनों पापों से छुड़ाने वाले श्रीरामजी के जाकर दर्शन करूँ।

दोहा—राम रूप गुन सुमिरत, मगन भयउ छन एक।
रावन माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ॥ ६३ ॥

श्रीरामजी के रूप और गुणों को मन में स्मरण करके वह एक क्षण के लिए मन में मग्न हो गया, फिर रावण से अनेक घड़े मदिरा और भैंसे माँगे।

महिष खाइ करि मदिरा पाना * गर्जा बज्रघात समाना
कुम्भकरन दुर्मद रन रङ्गा * चला दुर्ग तजि सेन न सङ्गा

भैंसे खाकर व मदिरा पीकर वह वज्र के समान गरजा। फिर मद-मत्त और लड़ाई के रंग में रंगा हुआ कुम्भकरण गढ़ छोड़कर अकेला ही चला, साथ में सेना भी नहीं ली।

देखि बिभीषन आगे आयउ * परेउ चरन निज नाम सुनायउ

अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो * रघुपति भगत जान मन भायो

उसे देखकर विभीषण सामने आया और उसने चरण पकड़कर अपना नाम बताया। तब भाई को उठाकर उसने अपनी छाती से लगा लिया और श्रीरघुनाथजी का भक्त जान कर वह उसे बहुत प्यारा लगा।

तात लात रावन मोहि मारा * कहत परम हित मन्त्र बिचारा
तेहिं ग्लानि रघुपति पहिं आयउँ * देखि दीन प्रभु कें मन भायउँ

हे तात ! हितकारी विचार करते हुए भी रावण ने मुझे लात मारी, उसी ग्लानि के मारे मैं श्रीरामजी के पास चला आया। दीन देखकर प्रभु के मन में अत्यन्त प्रिय लगा।

सुनु सुत भयउ कालबस रावन * सो कि मान अब परम सिखावन
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन * भयउ तात निसिचर कुल भूषन
बन्धु बंस तैं कीन्ह उजागर * भजेहु राम सोभा सुखसागर

(कुम्भकर्ण बोला–) हे पुत्र ! सुन, रावण काल के वश हो गय. है। वह उत्तम सीख को कैसे माने ? हे विभीषण ! तुम धन्य ो, हे तात ! तुम राक्षस-वंश के भूषण होगये। हे भाई ! तुमने वंश को उजागर कर दिया, जो शोभा और सुख के निधान श्रीरामजी का भजन किया।

दोहा–बचन कर्म मन कपट तजि, भजहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि, भयउँ कालबस बीर॥ ६४॥

मन,कर्म और वाणीसे कपटको त्यागकर रणबाँकुरे श्रीरामजी का भजन करना। हे भाई ! अब तुम जाओ क्योंकि इस समय मुझे अपना-पराया नहीं सूझता, मैं मृत्यु के अधीन हो रहा हूँ।

बन्धु बचन सुनि चला विभीषन * आयहु जहँ त्रैलोक विभूषन
नाथ भूधराकार शरीरा * कुम्भकरन आवत रनधीरा

भाई के वचन सुनकर विभीषण लौट चले और जहाँ त्रिलोकीनाथ श्रीरामजी थे, वहाँ आकर बोले–हे नाथ ! पर्वत के समान शरीर वाला रणधीर कुम्भकरण आ रहा है।

इतना कपिन्ह सुना जब काना * किलकिलाइ धाए बलवाना
लिये उठाई विटप अरु भूधर * कटकटाइ डारहिं तेहिं ऊपर

जब बानरों ने कानों से यह सुना, तब वे बलवान् किल-किलाकर दौड़े। वृक्ष और पर्वत उखाड़कर कट-कटाकर उसके ऊपर डालने लगे।

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा * करहिं भालु कपि एकहिं बारा
मरयो न मन तनु टरयो न टारयो * जिमि गज अर्क फलनि को मारयो

अनेकों पर्वतों के शिखरों का प्रहार रीछ-वानर एक ही बार करते है, परन्तु न उसका मन ही विचलित हुआ और न शरीर ही हिला, जैसे हाथी मदार के फूलों के लगने से नहीं हटता।

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो * परयो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमन्ता * घुर्मित भूतल परेउ तुरन्ता

तब हनुमानजी ने उसकी छाती में एक घूंसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर धुनने लगा। फिर उसने उठकर हनुमानजी को मारा, जिससे वे चकरा कर पृथ्वी पर गिर पड़े।

पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि * जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि
चली बलीमुख सेन पराई * अति भय त्रसित न कोउ समुहाई

फिर उसने नल-नील को पछाड़ा और जहाँ-तहाँ पटक-पटक कर वीरों को मारा। बानरों की सेना भाग चली, मारे डर के कोई सामने नहीं आता।

दोहा—अङ्गदादि कपि मुरछित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ, चला अमित बलसींव ॥ ६५ ॥

अङ्गदादि बानरों को सुग्रीव सहित मूर्छित कर, सुग्रीव को बगल में दबाकर अपार बल की सीमा कुम्भकरण लौट चला।

उमा करत रघुपति नर लीला * खेल गरुड़ जिमि अहिगन मीला
भृकुटि भंग जो कालहि खाई * ताहि कि सोहइ ऐसि लराई

(शिवजी कहते हैं—) हे पार्वती ! श्रीरामजी नर-लीला कर रहे हैं, जैसे साँपों के समूह में मिलकर गरुड़जी खिलवाड़ करते हों। जो भौंह को चढ़ाने मात्र से काल को खा जाता है, उसे क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है ?

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं * गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं
मुरछा गइ मारुतसुत जागा * सुग्रीवहि तब खोजन लागा

प्रभु संसार को पवित्र करने वाली कीर्ति को फैलाते हैं, जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागर से पार हो जायेंगे। जब हनुमानजी की मूर्छा दूर हो गई, तो वे सुग्रीव को ढूंढ़ने लगे।

सुग्रीवहु कै मुरछा बीती * निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती
काटेसि दसन नासिका काना * गरजि अकास चलेउ तेहि जाना

सुग्रीव की मूर्छा दूर हुई तब वे बगल से निकल आये। कुम्भकरण ने उनको मरा जाना, कुम्भकरण के नाक-कान दाँतों से काटकर सुग्रीव आकाश में उछले, तब कुम्भकरण ने जाना।

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा * अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना * जयति जयति जय कृपानिधाना

उसने पैर पकड़ सुग्रीव को भूमि पर पछाड़ दिया, तब बहुत जल्दी उठकर सुग्रीव ने उसे मारा। तत्पश्चात् प्रभु के पास बलवान सुग्रीव आकर बोले-हे कृपानिधान ! आपकी जय हो।

नाक कान काटे जियँ जानी * फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा * देखत कपिदल उपजी त्रासा

नाक-कान काटे गये, यह जानकर वह क्रोध करके फिर लौटा, परन्तु इनके मन में ग्लानि हुई। एक तो वह वैसे ही भयंकर था, दूसरे बिना नाक-कान का और भी भयानक होगया। बानरों की सेना में यह भय देखकर बड़ा भय उत्पन्न हुआ।

दोहा—जय जय जय रघुबंस मनि, धाए कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर, छांड़ेन्हि गिरि तरु जूह ॥६६॥

'रघुकुल-भूषण की जय हो' जय हो, ऐसा कहते हुए हू-हू करके बानर दौड़े और उसके ऊपर एक साथ पर्वत और वृक्षों के समूह छोड़े।

कुम्भकरन रण रङ्ग बिरुद्धा * सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई * जनु टीढ़ी गिरि गुहाँ समाई

रण के रंग में बिरुद्ध हुआ कुम्भकरण सामने ऐसे चला, मानो क्रोधित काल आ रहा हो। वह बानरों को पकड़-पकड़ कर खाने लगा, मानो टीढ़ियाँ पहाड़ की गुफा में घुस रही हैं।

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा * कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा
मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा * निसरि पराहि भालु कपि ठाटा

करोड़ों बानरों को पकड़कर शरीरसे मसल डाला और करोड़ोंको हाथों से मसल कर धूल में मिला दिया। मुख, नाक और कानों के मार्ग से निकल कर रीछ-बानरों के ठट्ट के ठट्ट भागने लगे।

रन मद मत्त निसाचर दर्पा * विश्व ग्रसहि जनु एहि विधि अर्पा
मरे सुभट सब फिरहिं न फेरे * सूज न नयन सुनहिं नहिं टेरे

रण के मद में मतवाला कुम्भकरण ऐसा गर्वित हुआ, मानो विधाता ने इसी को सारा विश्व अर्पित कर दिया है और यह उसे खा जायेगा। योद्धा भागे, वे लौटाने से भी नहीं लौटते, वे आँखों से नहीं देखते और पुकारने पर नहीं सुनते।

कुम्भकरन कपि सेन बिडारी * सुनि धाए रजनीचर भारी
देखि राम बिकल कटकाई * रिपु अनीक नाना विधि आई

कुम्भकरण ने बानर सेना को तितर-बितर कर दिया, यह सुनकर राक्षस दौड़ आये। श्री रामजी ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल हो रही है और शत्रु की सेना बहुत भाँति से आगई है।

दोहा—सुनु सुग्रीव विभीषन, अनुज सँभारेउ सेन।
मैं देखउँ खल बल दलहिं, बोले राजिव नैन ॥ ६७ ॥

तब कमल-नयन श्रीरामजी बोले—हे सुग्रीव, विभीषण और लक्ष्मण ! सुनो, तुम सेना को सँभालो और मैं इस दुष्ट के पराक्रम और सेना को देखता हूँ।

कर सारङ्ग साजि कटि भाथा * अरि दल दलन चले रघुनाथा
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टँकोरा * रिपुदल बधिर भयउ सुनि सोरा

हाथों में धनुष और कमर में तर्कस बाँधकर शत्रु-सेना को विध्वंस करने को श्रीरघुनाथजी चले। प्रभु ने पहले धनुष की टंकोर की, जिसका घोर शब्द सुनकर शत्रु-सेना बहरी होगयी।

सत्यसिंधु छाँड़े सर लच्छा * काल सर्प जनु चले सपच्छा
जहँ तहँ चले विपुल नाराचा * लगे कटक भट बिकट पिशाचा

सत्य-प्रतिज्ञ प्रभु ने एक लाख-बाण छोड़,वे ऐसे चले मानो पंख वाले काले सांप चले हों जहां-तहां वाण समूह चले, जिससे भयंकर योद्धा राक्षस कटने लगे।

कटहिं चरन उर सिर भुजदण्डा * बहुतक बीर होहिं सत खण्डा
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं * उठि सँभार सुभट पुनि लरहीं

उनकेपैर, सिर, उदय, भुजायें कटने लगे। बहुत से वीरों के सौ-सौ टुकड़े होने लगे। घायल राक्षस चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिरते है। अच्छे योद्धा संभलकर उठते और फिर लड़ते हैं।

लागतबान जलद जिमि गार्जहिं * बहुतकदेखि कठिन सर भार्जहिं
रुण्ड प्रचण्ड मुण्ड बिनु धावत * धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं

वाण लगते ही वे मेघ केसमान गर्जते हैं, बहुत से कठिन बाणों को देखकर भाग जाते हैं। बहुत से वीरों के प्रचण्ड रुण्ड बिना सिर के दौड़ते हैं और पकड़ो-पकड़ो मारो-मारो चिल्लाते हैं।

दोहा—छन महुँ प्रभु सायकन्हि, काटे बिकट पिशाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुँ, प्रबिसे सब नाराज ॥ ६८ ॥

क्षण भर में प्रभु के बाणों ने भयंकर राक्षसों को काट डाला। फिर रघुनाथजी के तर्कस में बाण आकर घुस गये।

कुम्भकरक मन दीख बिचारी * हति छन माँझ निसाचर भारी
भा अति क्रुद्ध महा बलवीरा * कियो मृगनायक शब्द गँभीरा

कुम्भकर्ण ने मन विचार कर देखा कि क्षणभर में ही श्रीरामजीने सब राक्षस मार डाले,तब वह महाबली योद्धा बहुत क्रोधित हुआ और उसने सिंह के समान गम्भीर शब्द किया।

कोपि महीधर लेइ उपारी * डारइ जहँ मर्कट भट भारी
आवत देखि सैल प्रभु भारे * सरन्हि काटि रज सम करि डारे

फिर कोप करके पर्वतों को उखाड़कर उन्हें जहां भारी योद्धा होते हैं,वहां डाल देता है। उनको आते देखकर प्रभु बाणों से काट २ कर उन्हें धूल के समान करके डाल देते हैं।

पुनि धनु तानि कोप रघुनायक * छाँड़े अति कराल बहु सायक
तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं * जिमि दामिनि घन माँझ समाहीं

फिर क्रोध करके धनुष खींचकर श्रीरघुनाथजी ने बहुत से कठोर बाण छोड़े। वे बाण कुम्भकरण के शरीर में घुसकर ऐसे पार हो जाते हैं, जैसे बिजली मेघों में समा जाती है।

सोनित स्रवत सोह तनु कारे * जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे
बिकल बिलोकि भालु कपि धाये * बिहँसा जबहिं निकट कपि आए

उसके काले शरीर से लहू बहता हुआ ऐसा सोहाता है,मानो काजल के पहाड़ से गेरू के पनाले बह रहे हैं। उसे विकल देख रीछ-बानर दौड़े वे ज्योंही निकट आये, त्योंही वह हँसा।

दोहा—महानाद करि गर्जा, कोटि कोटि गहि कीस।

महि पटकइ गजराज इव, सपथ करइ दससीस ॥ ६९ ॥

फिर गरजता हुआ बहुत से बानरों को पकड़-पकड़कर मतवाले हाथी की तरह भूमि पर पटकता हुआ रावण की दुहाई देने लगा ।

भागे भालु बलीमुख जूथा * बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा
चले भागि कपि भालु भवानी * बिकल पुकारत आरत बानी

उसे देख रीछ-बानरों के झुण्ड ऐसे भागे, जैसे भेड़िया को देखकर भेड़ों के झुण्ड भागते हों। शिवजी कहते हैं—हे भवानी ! रीछ-बानर घबड़ाकर आर्तवाणी से पुकारते हुए भाग चले ।

यह निसिचर दुकाल सम अहई * कपिकुल देस परन अब चहई
कृपा बारिधर राम खरारी * पाहि पाहि प्रनतारति हारी

यह राक्षस अकाल के समान है, जो बानर-कुलरूपी देश में पड़ना चाहता है । हे शरणागत के दुःख हरने वाले खरारि श्रीरामजी ! आप कृपारूपी मेघों से जल बरसाकर रक्षा करिये, रक्षा करिये ।

सकरुन बचन सुनत भगवाना * चले सुधारि सरासन बाना
राम सेन निज पाछैं घाली * चले सकोप महा बलसाली

ऐसे दीन वचन सुनते ही भगवान् धनुष-बाण सँभाल कर चले । सेना पीछे कर, क्रोध सहित बड़े ही पराक्रमी श्रीरामजी आगे चले ।

खैंचि धनुष सर सत सन्धाने * छूटे तीर सरीर समाने
लागत सर धावा रिस भरा * कुधर डगमगत डोलत धरा

और धनुष खींचकर सौ बाण चलाये । वे तीर छूटे और कुम्भकरण के शरीर में घुस गये । बाण लगते ही वह क्रोध में भरकर दौड़ा, जिससे पर्वत डगमगा गये और पृथ्वी हिल गई ।

लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी * रघुकुल तिलक भुजा सोइ काटी
धावा बाम बाहु गिरिधारी * प्रभु सोइ भुजा काटि महि पारी

उसने एक पर्वत उखाड़ लिया; श्रीरामजी ने वह भुजा काट डाली । तब वह बांयें हाथ में उस पहाड़ को लेकर दौड़ा । प्रभु ने वह भुजा भी काटकर भूमि पर गिरा दी ।

काटें भुजा सोह खल कैसा * पच्छहीन मन्दर गिरि जैसा
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका * ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका

भुजाओं के कट जाने से वह कैसा लगता है, जैसे पंखों के बिना मन्दराचल । फिर टेढ़ी दृष्टि से प्रभु की ओर देखने लगा, मानो तीनों लोकों को निगलना चाहता है ।

दोहा—करि चिक्कारि घोर अति, धावा बदनु पसारि ।
गगन सिद्ध सुर त्रसित, हा हा हेति पुकारि ॥ ७० ॥

वह बड़े-बड़े भयंकर शब्द से चिंघाड़ करके मुंह फैलाकर दौड़ा । आकाश में सिद्ध और देवता मारे डर के हा-हाकार मचाने लगे ।

सभय देव करुणानिधि जान्यो * श्रवण प्रजंत सरासनु तान्यो
विसिखनिकरिनिसिचरमुखभरेउ * तदपि महाबलि भूम न परेउ

करुनानिधान प्रभु ने देवताओं को भयभीत जाना। तब कान तक धनुष खींचकर बाणों से राक्षस का मुंह भर दिया, तो भी वह महाबली भूमि पर नहीं गिरा।

सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा * काल त्रोन सजीव जनु आवा
तब प्रभु कोप तीव्र सर लीन्हा * धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा

बाणों से भरे मुख से वह सामने दौड़ा, मानो कालरूपी तर्कस शरीर धारण करके आया हो। तब प्रभु ने कोप कर पैना बाण लिया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

सो सिर परेउ दसानन आगें * बिकलभयउजिमिफनिमनित्यागें
धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा * तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खण्डा

वह सिर रावण के आगे जा गिरा। उसे देख रावण ऐसे व्याकुल हुआ, जैसे मणि खो जाने से सांप। कुम्भकर्ण का धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धसकने लगी। तब उसे काटकर प्रभु ने उसके दो टुकड़े कर दिये।

परे भूमि जिमि नभ तें भूधर * हेठ दावि कपि भालु निसाचर
तासु तेज प्रभु बदन समाना * सुरि मुनि सर्बाहिं अचम्भा माना

वे दोनों खंड अपने नीचे वानर, रीछ और निशाचरों को दबाते हुए भूमि पर ऐसे पड़े, मानो आकाश से दो पहाड़ गिरे हों। कुम्भकर्ण का तेज प्रभु के मुख में समा गया, यह देख देवता, मुनि आदि सबने अचम्भा माना।

सुर दुन्दुभी बजावहिं हरषहिं * अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं
करि बिनती सुर सकल सिधाए * तेही समय देवरिषि आए

देवतागण आकाश में नगाड़े बजाते, प्रसन्न होते तथा स्तुति करते हुए फूल बरसाने लगे। जब विनती करके सब देवता चले गये, तब देवर्षि नारदजी आये।

गगनोपरि हरि गुन गन गाए * रुचिर बीर रस प्रभु मन भाए
वेगि हतहु खल कहि मुनि गए * राम समर महि सोभित भए

श्रीहरि के सुन्दर वीररस युक्त गुण समूह आकाश पर से ही नारदजी ने गाये, जो प्रभु के मन को बहुत भाये। दुष्ट रावण को जल्दी मारिये, यह कहकर मुनि चले गये और श्रीरामजी समर-भूमि में शोभित हुए।

छन्द—संग्राम भूमि विराज रघुवर अतुलबल कोसल धनी।
श्रम बिन्दु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँ दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छवि सेष जेहि आनन घने॥

अतुलनीय बलवान् श्रीरामजी समर-भूमि में शोभित हैं। मुख पर पसीने की बूंदें हैं। कमल के समान लाल नेत्र हैं, शरीर पर लोहू की बूंदें हैं, दोनों हाथ धनुष और वाणों पर फेर रहे हैं, चारों ओर रीछ-बानर हैं। तुलसीदासजी कहते हैं। कि बहुत से मुख वाले शेषजी भी उस समय की शोभा नहीं कह सकते।

दोहा–निसिचर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरजा ते नर मन्दमति, जे न भजहिं श्रीराम॥ ७१॥

(शिवजी कहते हैं–) हे पार्वती ! राक्षस नीच और पापी था, उसे भी अपना धाम दिया, ऐसे श्रीरामजी का जो भजन नहीं करते–वे मन्द बुद्धि हैं।

दिन के अन्त फिरीं द्वौ अनी * समर भइ सुभटन्ह श्रम घनी
राम कृपा कपिदल बल बाढ़ा * जिमि तृन पाइ लगि अति डाढ़ा

दिन का अन्त होने पर दोनों सेनायें लौटीं, योद्धाओं का बड़ा श्रम हुआ। श्रीरामजी की कृपा से बानर-सेना का बल बढ़ गया, जैसे घास पाकर अग्नि प्रचण्ड हो जाती है।

छीजहिं निसिचर दिन अरु राती * निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँति
बहु बिलाप दसकन्धर करई * बन्धु सीस पुनि पुनि उर धरई

राक्षस-रात-दिन ऐसे घटते हैं, जैसे अपने मुख से कहने से पुण्य क्षीण हो जाते हैं। रावण भाई के सिर को हृदय से बारम्बार लगाकर बहुत विलाप करता है।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी * जासु तेज बल बिपुल बखानी
मेघनाद तेहि अवसर आयउ * कहि बहु कथा पिता समुझायउ

स्त्रियां हाथों से छाती पीटकर कुम्भकरण के तेज और पराक्रम को बहुत बखान कर रो रही हैं। उसी समय मेघनाद वहाँ आया और बहुत-सी कथायें कहकर पिता को समझाया।

देखेउ काल मोरि मनुसाई * अबहिं बहुत का करौं बड़ाई
इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ * सो बल तात न तोहि देखायउँ

कल मेरी वीरता देखना। अभी से मैं बहुत बड़ाई क्या करूं ? मैंने शिवजी से जो बल और रथ पाया है, उसे आपको नहीं दिखाया।

एहि बिधि जलपत भयउ बिहाना * चहुँ दुआर लागे कपि नाना
इति कपि भालु काल सम वीरा * उत रजनीचर अति रनधीरा
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू * बरनि न जाइ समर खग केतू

इस प्रकार बकवाद करते हुए सबेरा होगया, चारों द्वारों पर हजारों रीछ बानर आ डटे। इधर कालके समान रीछ-बानर हैं और उधर रणधीर निशाचर हैं। हे पक्षीराज ! दोनों ओर के योद्धा अपनी-अपनी जीत के लिए लड़ने लगे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दोहा–मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकास।

गर्जेउ अट्टहास करि, भइ कपि कटकहिं त्रास ॥७२॥

मेघनाद मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में गया और अट्टहास करके गर्जा, जिससे बानरों की सेना में भय उत्पन्न हुआ।

सक्ति सूल तरवारि कृपाना * अस्त्र शस्त्र कुलिसायुधि नाना
डारइ परसु परिघ पाषाना * लागेउ वृष्टि करै बहु नाना

वह शक्ति, शुल, बाण, तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र और फरसा आदि हथियार चलाने तथा वज्र, पारिघ और पत्थर डालने एवं बहुत से बाणों की वर्षा करने लगा।

दस दिसि रहे बान नभ छाई * मानहुँ मघा मेघ झरि लाई
धरुधरुमारु सुनिअ धुनि काना * जो मारइ तेहि कोउ न जाना

दसों दिशाओं में बाण छा गए, मानो नक्षत्र में मेघों ने झड़ी लगादी हो। 'पकड़ो-पकड़ो' मारो-मारो, यह शब्द कानों से सुनाई पड़ते हैं, पर जो मरता है, उसे कोई नहीं जान पाता।

गहिगिरितरुआकाशकपिधावहिं * देखहिंतेहिंनदुखितफिरिआवहिं
अवघट घाट बाट गिरि कन्दर * माया बल कीन्हेसि सर पिंजर

पहाड़ और वृक्ष लेकर बानर आकाश में दौड़ आते हैं, परन्तु उसे न देखकर दुःखी हो लौट आते हैं। दुर्गम घाटी, रास्ते और कन्दराओं को माया के बल से मेघनाद ने बाणों के पिंजड़े बना दिये।

जाहिं कहाँ व्याकुल भए बन्दर * सुरपति बन्दि परे जनु मन्दर
मारुतसुत अङ्गद नल नीला * कीन्हेसि बिकलआदि बलसीला

बानर घबड़ा गये कि कहाँ जायें ? वे ऐसे व्याकुल हुए मानो पर्वत इन्द्र की कंद में पड़े हों ! हनुमानजी, अङ्गद, नल, नील आदि सब बलवानों को मेघनाद ने व्याकुल कर दिया।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन * सरन्हिमारिकीन्हेसि जर्जरतन
पुनि रघुपति सन जूझन लागा * सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा

फिर लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण के शरीर उसने बाणों के मारि जर्जर कर दिये फिर श्रीरघुनाथजी से लड़ने लगा। उसके बाण साँप बनकर लगते हैं।

ब्याल पास बस भए खरारी * स्वबस अनन्त एक अबिकारी
नट इव कपटचरित कर नाना * सदा स्वतन्त्र एक भगवाना
रन शोभा लगि प्रभुहि बँधायौ * नागपास देवन्ह भय पायौ

जो स्वतन्त्र, अनन्त, अद्वितीय और विकार रहित हैं, वे खरारि श्रीरामजी नागपाश के बश होगये। श्रीरामजी सदैव स्वतन्त्र भगवान हैं, वे नट की भाँति अनेक खेल करते हैं। रण शोभा के लिए प्रभु बँध गये, परन्तु उससे देवता बहुत डर गये।

दोहा—गिरजा जासु नाम जपि, मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बन्ध तर आवइ, व्यापक बिश्व निवास ॥ ७३ ॥

हे पार्वती! जिसका नाम जपकर मुनि भव-बन्धन से छूट जाते हैं, वे सर्वव्यापक, जगदाधार प्रभु क्या बन्धन में आ सकते हैं?

चरित राम के सगुन भवानी * तर्कि न जाहिं बुद्धि बलवानी
अस बिचार जे तग्य बिरागी * रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी

हे भवानी! श्रीरामजी के सगुण-चरित्र बुद्धि, मन और वाणी से तर्क करने में नहीं आते। विचार कर जो तत्वज्ञानी और विरक्त हैं, वे सब तर्कों को छोड़कर प्रभु का ही भजन करते हैं।

ब्याकुल कटुक कीन्ह घननादा * पुनि भा प्रकट कहत दुर्बादा
जामवन्त कह खल रहु ठाढ़ा * सुनिकर ताहि क्रोध अति बाढ़ा

मेघनाद ने सेना को बेसुध कर दिया और दुर्वचन करता हुआ वह प्रकट होगया। उसे जामवन्त ने ललकारा-रे दुष्ट खड़ा रह! यह सुनकर मेघनाद का क्रोध बढ़ा।

बूढ़ि जानि सठ छाड़ेउँ तोही * लागेसि अधम पचारै मोही
कस कहि तरल त्रिशूल चलायो * जामवन्त कर गहि सोइ धायो

रे मूर्ख! तुझे बूढ़ा समझकर छोड़ दिया था। रे नीच! मुझको तू ललकारने लगा। ऐसा कहकर पैना त्रिशूल चलाया। जामवन्त उसे बीच में ही पकड़कर दौड़े।

मारिसि मेघनाद कै छाती * परा भूमि घुर्मित सुरघाती
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो * महि पछारि निज बल देखरायो

और वह त्रिशूल मेघनाद की छाती में मारा। वह देव घाती चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ा फिर गुस्से से उसके पांव को पकड़कर घुमाया व भूमि पर पटककर अपना पराक्रम दिखाया।

बर प्रसाद सो मरइ न मारा * तब गहि पद लंका पर डारा
हाँ देवरिषि गरुड़ पठायो * राम समीप सपदि सो आयो

बरदानके प्रभाव से मेघनाद मारनेसे नहीं मरता। तब जामवन्तने उसका पैर पकड़कर लंका में फेंक दिया। यहाँ बानर-सेनामें नारदजीने गरुड़जीको भेजा,वे तुरन्त ही रामजीके पास आये।

दोहा—खगपति सब धरि खाए, माया नाग बरूथ।
माया बिगत भए सब, हरषे बानर जूथ ॥७४क॥

पक्षिराज गरुड़जी ने सब मायामय सर्पों के समूह खा डाले, तब माया से रहित होकर बानरगण प्रसन्न हो गये।

गहि गिरि पादप उपल नख,धाए कीस रिसाय।
चले तमीचर बिकल तर, गढ़ पर चढ़े पराय ॥७४ख॥

फिर बानर क्रोध करके पर्वत, वृक्ष, शिला और नख लेकर दौड़े। तब राक्षस विकल होकर भागकर गये।

मेघनाद कै मुरछा जागी * पितहि बिलोकि लाज अति लागी

तुरत गयउ गिरिबर कन्दरा * करौं अजय मख अस मन धरा

मेघनाद की मूर्छा दूर हुई, तब पिता को देखकर उसे बहुत लज्जा आई। वह तुरन्त एक सुन्दर पर्वत की खोह में गया और निश्चय किया कि अजेय यज्ञ करूँगा।

इहाँ बिभीषन मन्त्र बिचारा * सुनहु नाथ बल अतुल उदारा
मेघनाद मख करइ अपावन * खल मायावी देव सतावन

यहाँ विभीषण ने यह विचार किया और कहा—हे अतुलनीय बलशाली उदार प्रभो! सुनिये—यह दुष्ट, मायावी, देवताओं को सताने वाला—मेघनाद अपवित्र-यज्ञ कर रहा है।

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पावहिं * नाथ बेगि पुनि जीति न जावहि
सुनि रघुपति अतिसय सुखमाना * बोले अङ्गदादि कपि नाना

हे स्वामिन्! जो यज्ञ सिद्ध होगया तो शत्रु शीघ्र ही नहीं जीता जा सकेगा। यह सुनकर श्रीरघुनाथजी बहुत प्रसन्न हुए और अङ्गदादि अनेक बानरों को बुलाकर बोले—

लछिमन संग जाहु सब भाई * करहु बिध्वंस जग्य कर जाई
तुम लछिमन मारेहु रन ओही * देखि सभय सुर दुख अति मोही

हे भाइयो! लक्ष्मण के साथ जाओ और यज्ञ-विध्वंस करो। हे लक्ष्मण! तुम रण में उसे मार डालो, क्योंकि देवताओं को भयभीत देखकर मुझे बहुत दुःख होता है।

मारेउ तेहि बल बुद्धि उपाई * जेहिं छीजहिं निसिचर सुनु भाई
जामवन्त सुग्रीव बिभीषन * सेन समेत रहेहु तीनिउ जन

हे भाई! सुनो उसे बल और बुद्धि के उपाय से मारना, जिससे राक्षस नष्ट हो जाँय। हे जामवन्त, सुग्रीव और विभीषण! तुम तीनों सेना समेत रहना।

जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन * कटि निषंग कसि साजि सरासन
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा * बोले घन इव गिरा गँभीरा

जब रघुनाथजी ने आज्ञा दी, तब कमर में तर्कस कस और धनुष संभालकर, प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण कर, लक्ष्मणजी मेघ के समान गम्भीर वाणी बोले—

जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं * तौ रघुपति सेवक न कहावौं
जौं सत शंकर करहिं सहाई * तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई

जो आज उसको बिना मारे आऊँ तो श्रीरघुनाथजी का सेवक न कहाऊँ। सैकड़ों शंकर भी यदि उसकी सहायता करें तो भी मेघनादको मार डालूँगा, मुझे श्रीरघुनाथजी की सौगन्ध है।

दोहा—रघुपति चरन नाइ सिरु, चलेउ तुरन्त अनन्त।
अङ्गद नील मयन्द नल, संग सुभट हनुमन्त ॥ ७५ ॥

श्रीरघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर लक्ष्मणजी तुरन्त चले। अङ्गद, नील, मयन्द नल और हनुमान आदि योद्धा साथ में है

जाइ कपिन्ह जो देखा बैसा * आहुति देत रुधिर अरु भैंसा
कीन्ह कपिन्ह तब जग्य बिध्वंसा * जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा

बानरों ने जाकर देखा कि वह बैठा हुआ रुधिर व भैंसों की आहुति दे रहा है। तब बानरों ने यज्ञ-विध्वंस कर दिया। जब भी वह न उठा तब उसकी बड़ाई करने लगे।

तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई * लातहि हति हति चले पराई
लै त्रिशूल धावा कपि भागे * आए जहँ रामानुज आगे

तो भी वह न उठा, तब जाकर उसके बाल पकड़े और लातों से मार २ कर वे भागने लगे, वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, उसे देखकर बानर भागे और लक्ष्मणजी के आगे जाखड़े हुए।

आवा परम क्रोध कर मारा * गर्ज घोर रव बारहिं बारा
कोपि पवनसुत अङ्गद धाए * हति त्रिशूल उर धरनि गिराए

बड़े क्रोध का मारा मेघनाद वहाँ पर आया और बारम्बार गर्जना कर घोर शब्द करने लगा। तब क्रोधित हो हनुमान अङ्गद दौड़े। छाती में त्रिशूल मारकर उसने पृथ्वी पर गिरा दिया।

प्रभु कहँ छाँड़ेसि शूल प्रचण्डा * सर हति कृत अनन्त जुग खण्डा
उठि बहोरि मारुति जुबराजा * हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा

फिर उसने लक्ष्मणजी पर पैना त्रिशूल छोड़ा। श्रीलक्ष्मणजी ने बाण से काटकर उसके दो खण्ड कर दिये। फिर हनुमानजी और अङ्गदजी क्रोध कर उसे मारने लगे, परन्तु उसके चोट नहीं लगती।

फिरे बीर रिपु मरइ न मारा * तब धावा करि घोर चिकारा
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला * लछिमन छाँडे बिसिख कराला

तब बीर लौट पड़े, क्योंकि शत्रु मारने से नहीं मरता। तब वह भारी शब्द करता हुआ दौड़ा, उस क्रोधवन्त को काल के समान आता हुआ देखकर लक्ष्मणजी ने तीव्र बाण छोड़े।

देखेसि आवत पवि सम बाना * तुरत भयउ खल अन्तर धाना
बिबिध बेष धरि करइ लराई * कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई

उन वज्र के समान बाणों को आता देखकर वह दुष्ट तुरन्त अन्तर्ध्यान हो गया और भाँति२के वेष बनाकर युद्ध करने लगा। वह कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

देखि अजय रिपु डरपे कीसा * परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा
लछिमन मन यह मन्त्र दृढ़ावा * एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा

शत्रु को पराजित न हुआ देखकर बानर डरे तब लक्ष्मणजी को बहुत गुस्सा हुआ। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि इस पापी को मैंने बहुत खिला लिया।

सुमिरि कोसलाधीश प्रतापा * सर सन्धान कीन्ह करि दापा
छोड़ा बान माँझ उर लागा * मरती बार कपट्ट सब त्यागा

कौशलपति श्रीरामजी के प्रताप को स्मरण कर लक्ष्मणजी ने बाण चढ़ाया। बाण छूटते

ही मेघनाद की छाती में लगा, तब मरते समय उसने सब कपट छोड़ दिया।

दोहा—रामानुज कहँ राम कहँ, अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी, कह अंगद हनुमान॥ ७६॥

लक्ष्मणजी कहाँ हैं ? रामचन्द्रजी कहाँ हैं ? ऐसा कहकर उसने प्राण छोड़ दिये। अंगद और हनुमानजी कहने लगे-तेरी माता को धन्य है।

बिनु प्रयास हनुमान उठायो * लंका द्वार राखि पुनि आयो
तासु मरन सुनि सुर गन्धर्वा * चढ़ि बिमान आए नभ सर्वा

बिना परिश्रम के हनुमानजी ने मेघनाद को उठा लिया और लंका के द्वार पर रखकर लौट आये। मेघनाद का मरना सुनकर देवता, गन्धर्व विमानों पर चढ़कर आकाश में आये।

बरषि सुमन दुन्दुभी बजावहिं * श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं
जय अनन्त जय जगदाधारा * तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा

और फूल बरसाकर, नगाड़े बजाने तथा श्रीरघुनाथजी का निर्मल यश गाने लगे। हे अनन्त ! हे जगदीश्वर ! आपकी जय हो। आपने सब देवताओं का उद्धार कर दिया।

अस्तुति कर सुर सिद्ध सिधाए * लछिमन कृपासिंधु पहिं आए

स्तुति करके देवता और सिद्ध चले गये, तब लक्ष्मणजी-कृपासिंधु श्रीरामचन्द्रजी के पास आये।

* क्षेपक कथा सुलोचना की सती होने की कथा। *

धरेउ शीश आनि प्रभु आगे * बानर भालु बिलोकन लागे
प्रभु कौतुक निरखि सोइ शीशा * राखन कहेउ कौशलाधीशा

मेघनाद का सिर श्रीरामजी के आगे लाकर रक्खा, तब उसे बानर और रीछ देखने लगे। लीलामय प्रभु ने उस सिर को देखकर कहा—इसे यत्नपूर्वक रक्खो।

अब सो सुनहु भुजा तेहि केरी * खग जिमि गई लंकेश्वर प्रेरी
मेघनाथ आँगन महँ परी * बाणबिद्ध शोणित सनु भरी

अब वह कथा सुनो कि जिस प्रकार बाण से प्रेरित होकर उसकी भुजा पक्षी की तरह लंका में गई। वह बाण से विद्ध और रक्त से सनी हुई मेघनाद के आँगन में जा पड़ी।

राजति तहाँ सुलोचनि बैसी * रति ते सुचित रूप गुण जैसी
नाग सुता दसकन्ध पतोहू * वासव रिपु तिय छवि खनिजोहू

वहाँ रती से अधिक सुन्दर रूप व गुण वाली सुलोचना बैठी हुई सुशोभित थी। वह वासुकी नाग की कन्या, रावण की पुत्र-वधू, मेघनाद की स्त्री थी, जो सुन्दरता की खान थी।

हेम सिंहासन सोहित बाला * सेवक विद्याधर त्रय काला
पूजत बिबिध बिनय करि ताही * सुख प्रमोद को सकत सराही

स्वर्ण-सिंहासन पर वह रमणी शोभित थी, तीनों काल में विद्याधरों की स्त्रियाँ उसकी सेवा

करती व अनेक प्रकार से विनय करके पूछती थी। उसका सुख व आनन्द और कह सकता है?

तहँ पति भुजा परी एहि भाँती * मनहुँ सकल सुख तरु की काँती

वहाँ उसके पति की भुजा गिरी, मानो सुखों के वृक्ष की कान्ति हो।

दोहा–तब निज दासिन देखि तहँ, शोणित सब भुजदण्ड।
भयउ समर आश्चर्यमय, मानहुँ खण्ड अखण्ड॥ १॥

तब उसकी दासियों ने रक्त चुचाती हुई भुजा को देखा और बोलीं–आश्चर्यमय समर हुआ है, जिससे अखण्ड का खण्ड हुआ दीखता है।

सुनि कर सकलसखीमुख बैना * तजि सिंहासन उठी सुनैना
प्रेम सुभाय धुकधुकी धरकी * सूचक अशुभ दहिन भुजफरकी

सब सखियों के मुख से यह वचन सुन सुलोचना सिंहासन छोड़कर उठ बैठी। प्रेम के कारण उसकी धुकधुकी धड़कने लगी और अशुभ-सूचक दाहिनी भुजा फड़कने लगी।

होत महारण रावन रामहि * वीर धुरीण मोर पिय ता महि
सकल सुरासुर सकहिं न जूझी * विधि बामता परत नहिं बूझी

रावण और श्रीरामजी में महायुद्ध हो रहा है, मेरे वीर-शिरोमणि स्वामी भी उसी में हैं। यद्यपि समस्त सुर-असुर उनसे लड़ नहीं सकते तो भी विपरीत विधाता की गति जानी नहीं जाती है।

इतना कहत गइ चलि आपू * पतिभुज लगिकर कोटि विलापू
कंकड़ मणिगण भूषण सोई * महा विटप सम आन न होई

इतना कहकर वह आप स्वयं भी चली आई और पति की भुजा देखकर करोड़ों विलाप करने लगी। कंकण और मणियों से जड़ित महावृक्ष के समान यह दूसरे की भुजा नहीं है।

देखत मनहिं न आवत तेही * तासु प्रभाव सुरा पहिले ही
नींद नारि भोजन परिहरई * बारह वर्ष तासु कर मरई

परन्तु देखकर भी उसके मन में विश्वास नहीं होता क्योंकि वह उसके प्रभाव को जानती थी। जो नींद, स्त्री, भोजन को बारह वर्ष तक छोड़ देगा, उसी के हाथ से मेघनाथ मरेगा।

दोहा–करि बिचार मन टेक दै, मैं पतिदेवत नारि।
भुज लिखि मेटेहु दुचितइ, सुनि कर दीन्ह पसारि॥ २॥

तब विचारकर मन में यह दृढ़ विश्वास किया कि यदि मैं पतिव्रता स्त्री हूँ तो यह भुजा लिखकर मेरी द्विविधा मिटा देगी! यह सुनकर भुजा ने हाथ फैला दिया।

लगि रुख तास सखी उठि धाई * सो तेहि खोजि खरी लै आई
दीन्ह हाथ मणिमय अँगनाई * लिखी लषण कीरति रुचिराई

उसका रुख देखकर एक सखी [illegible] या हाथ में दे दी, तब वह भुजा मणि-जटित और आँगन में लक्ष्मणजी की सुन्दर कीर्ति लिखने लगी-

नींद नारि भोजन सत कोटी * तजत तासु महिमा अति छोटी
अछय अखंड अलख अविनासी * अकुल अमित घट घटके वासी

जो नींद, स्त्री और भोजन को सौ करोड़ वर्ष तक त्याग दें तो भी उसकी महिमा अत्यन्त छोटी है। वे अक्षय, अखण्ड, अलख, अविनाशी, अप्रमेय और अन्तर्यामी हैं।

प्रकटहिं पालहि पुनि संहरहीं * त्रिगुण रूप त्रय मूरति धरहीं
जो कालहु कर काल भयंकर * बरनत सेष सारदा संकर

वे ही उत्पन्न करते, पालन करते और संहार करते हैं। वे ही त्रिगुण रूप से तीन मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश का रूप धारण करते हैं। जो काल के काल हैं, उन्हें शेष, शारदा और शंकर भी बखानते हैं।

लीला तनु सुर सेवक हेतू * तासु नाम भवसागर सेतू
मुनि मन पुण्डरीक जाको घर * वचन बिबेक बिचारि बुद्धिवर

जो देवता और भक्तों के हेतु लीला से शरीर धारण करते हैं, जिनका नाम भवसागर का सेतु है कमलरूपी मुनियों का हृदय ही जिनका घर है, जो ज्ञान, विचार और बुद्धि में श्रेष्ठ हैं।

दोहा—कोटि कल्प बरनत निगम, अगम जासु गुन गाथ।
तमशरीर जड़ जीव बिनु, किमि बरनइ लिखिहाथ ॥ ३ ॥

जिनके गुणों की कथा करोड़ों कल्प तक वर्णन करके शास्त्रों में अगम्य हैं, उनके गुण यह तामसी जड़ शरीर प्राण बिना केवल हाथ से लिखकर कैसे वर्णन कर सकता है।

मम सिर गयो दरस रघुराई * तव प्रतीति लगि भुजा पठाई
इहि बिधि लिखेउ सकल भुज बाती * परी भूमि तब अति बिकलाती

मेरा सिर तो रघुनाथजी के दर्शन को गया है और तेरे विश्वास के लिए भुजा भेजी है इस प्रकार भुजा ने सब बातें लिखीं। तब यह अति व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़ी।

बाँचि सकल भुज लिखित यथारथ * लछिमन राम नाम परमारथ
नारि स्वभाव तदपि बहु भाँती * विलपहिं मिलि सखियन की पाँती

भुजा द्वारा लिखी हुई श्रीराम-लक्ष्मणजी के नाम की यथार्थता पढ़कर भी वह स्त्रियों के स्वाभाविक धर्म से अनेक सखियों के बीच विलाप करने लगी।

गुन गन साहस सील नाह को * कहि रोवति बल विपुल बाँह को
जेहि भुजबल सुरनाथ बिगोवा * सो भुज आजु समर महि सोवा

वह अपने पति के गुण समूह, साहस, शील और विशेष बाहुबल का बखान करके रोने लगी-हाय ! जिस भुजा के बल से इन्द्र भी भाग गया था, वही आज रणभूमि में पड़ी है।

मनिगन भूषन बसन विसारति * महि लोटत करतल सिरमारति
मगन सोक सरि तनु सुधि नाहीं * दारुन विपति कहिअ केहि पाहीं

सुलोचना मणियों के समूह, गहने और वस्त्र उतारने लगी तथा हाथों से सिर पीटने लगी। वह

शोक रूपी नदी में डूब गई, शरीर की सुधि न रही, दारुण विपत्ति किससे कहें ?

छिनक प्रबोध सखी कोउ करई * बहुरि शोक दावानल जरई
छन छन उठत परत धरनी तल * पुनि रोवहि सराहि पतिकरबल

थोड़ी देर को कोई सखी सांत्वना देती है, परन्तु फिर वह शोक की आग में जलने लगती है। क्षण २ में पृथ्वी पर गिरती है, फिर पति का बल बखान कर रोती है।

दोहा—तिन्ह में सखी सयानि एक, कहि समुझाई बैन।
सोक छाँड़ि पति देवता, सुमित करौ मति ऐन ॥ ४ ॥

उनमें से एक चतुर सखी ने समझाकर यह बात कही-हे पतिव्रते ! शोक छोड़ दो और उचित कार्य करो, क्योंकि तुम तो बुद्धिमती हो।

मुनि कह सहसानन तिय जाता * सत्य कहत तुम सखी सुमाता
विधि निर्मित मो कहुँ दुख दाहू * सुख भरि पूर भवन सब काहू

यह सुनकर नाग-कन्या बोली-हे अच्छी माता सखी ! तुम सत्य कहती हो। विधाता ने ही मुझे यह दुःख दिया है अन्यथा मेरा सब घर सुखों और वस्तुओं से भरपूर है।

इतना कह मन्दिर महँ जाई * देखत मनि गन धन बहुताई
देखत विभव न मन अनुरागा * पति पद प्रेम निपुन मन पागा

इतना कहकर वह भवन में आई और बहुत-सी मणियाँ व धन के ढेर देखे। वह वैभव देखकर भी उसका मन नहीं लुभाया और उसका चतुर मन पति के चरणों में ही लगा।

मनिमय शिविका रचेउ सुहाई * भुज चढ़ाइ पहिराय बनाई
आपनि चढ़त भई पुनि आई * सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई

सुन्दर मणि-जटित पालकी बनाई, उस पर भुजा को सजाकर चढ़ाया फिर आप भी उस पर जा चढ़ी और देवताओं को भी दुर्लभ, सुखदायक भवन त्याग दिया।

प्रजा लोग गृह तजि सँग लागे * प्रेम उमँगि लोचन जल पागे
देखि जुहारि नाग पति कन्या * सती सिरोमनि त्रिभुवन धन्या

प्रजा-जन भी घर त्यागकर साथ हो लिए। प्रेम के मारे नेत्रों में जल भर आया, तीनों लोकों में अन्य सतियों में शिरोमणि, नागराज की कन्या को देखकर सबने जुहार की।

दोहा—द्वारपाल दसकन्ध कहँ, खबरि जनाई जाय।
भयउ रजायसु बेगि तब, करुना बचन सुनाय ॥ ५ ॥

द्वारपाल ने जाकर रावण को खबर दी, तब रावण की आज्ञा हुई कि शीघ्र बुला लाओ। तब सुनकर वहाँ आकर दुःख भरे वचन बोली—

तुम्हहिं अछत असि दसा हमारी * सुख तजि भइ सोक अधिकारी
नभ मग होइ भुज मम गृह परी * वाण बिद्ध शोणित तन भरी

आपके रहते मेरी यह दशा हुई कि मैं सुख छोड़कर, आज दुःख की अधिकारिणी हुई हूं। आकाश मार्ग से यह भुजा मेरे भवन में बाण से विद्ध और रक्त सनी हुई आ पड़ी।

देखि भुजा मन में अति डरी * संसय जानि दीन्ह कर खरी
लिखि राम लक्ष्मण महिमा इन * क्रम क्रम सो सब कथा कही तिन

भुजा को देखकर मैं मनमें अत्यन्त डरी और सन्देह जानकर इसके हाथ में मैंने खड़िया दी। तब इस भुजा ने श्रीराम-लक्ष्मणजी की महिमा लिखी और क्रम से सारी कथा कही।

ठगिसी रही राम गुन गाथा * जरहुँ संग जो पावहुँ माथा
रन कबन्ध भुज मम गृह आई * सिर जहँ गयउ जहाँ रघुराई

उस गुण गाथा को पढ़कर मैं ठगी-सी रह गई। यदि मैं इनका सिर पाऊं, तो साथ ही जल जाऊं। धड़ रणभूमि में है, भुजा मेरे भवन में आगई व सिर वहाँ गया है, जहाँ श्रीरामजी हैं।

करहु सो जतन मिलइ सोइ सीसा * तुम समर्थ निसिचर कुल ईसा
सुनत कुलिस सम गिरा बधू की * जीवन आस दसानन मूकी

हे राक्षसराज! वह यत्न कीजिए, जिससे मुझे शीश मिल जाय। क्योंकि आप सामर्थ्य-वान् हैं। पतोहू की वज्र के समान वाणी सुनकर रावण ने जीवन की आशा छोड़ दी।

तदपि धीर धरि कहत प्रबोधा * कहु को मोहि समान जग जोधा

तो भी वह धीरज धरकर समझाता है कि कहो, संसार में मेरे समान योद्धा कौन है?

दोहा—राम लखन सुग्रीव नल, नील द्विविद हनुमन्त।
तात विभीषण ऋषभ कर, आनव मारि तुरन्त ॥ ६ ॥

राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, नल, नील, द्विविद, हनुमान, विभीषण और ऋषभ को मारकर मैं शीघ्र ही शीश ले आऊँगा।

अब लगि रहेउ भरोसा भारी * कुम्भकरन घननाद सुरारी
महूँ आजु लगि कीन्ह न जूझा * इन सब कर पुरुषारथ बूझा

अभी तक मुझे कुम्भकर्ण और देवताओं के शत्रु-मेघनाद का भरोसा था, इसी से मैंने आज तक युद्ध नहीं किया, अब मैं इनका बल जान गया।

मरे सो नर बानर के मारे * बात सुनत अति लाज हमारे
गिनती कवन वीर में तिनकी * अति दुर्दसा कीन्ह कपि जिनकी

वे मनुष्य और वानरों के मारने से मर गये। यह बात सुनने में मुझे बड़ी लज्जा लगती है। क्योंकि उनकी वीरों में क्या गिनती है, जिनकी बानरों ने बड़ी दुर्दशा की?

तजहु सोक कुल बधू पतोहू * उन समान जनि मानसि मोहू
पुत्र बिलम्ब करौ घड़ि चारी * देखहु मोर पराक्रम भारी

हे कुलबधू, पतोहू! शोक को छोड़ दो, मुझे उनके समान न समझना। हे पुत्री चार घड़ी

और बिलम्ब करो, फिर भयङ्कर युद्ध को देखना।

आनि सीस तव शत्रुन केरा * बिनु प्रयास नहिं लागहिं बेरा
भोगत जन्तु पराकृत भोगा * नतु कस निसिचर बनचर जोगा

तुम्हारे शत्रुओं के शीश में बिना परिश्रम के ही ले आऊँगा, देर नहीं करूँगा। जीव पूर्व जन्मों के कर्मों को भोगता है, नहीं तो बानरों और निशाचरों का क्या संयोग है।

दोहा—मेरु उखारन हार जे, धरी धरनि कर बीच।
ते भट खाए मशक सिसु, काल कुटिलता नीच ॥ ७ ॥

जो सुमेरु पर्वत को उखाड़ने वाले और हाथ के बीच पृथ्वी को धारण करने वाले राक्षस थे, उन्हें मच्छरों के समान बानरों ने खा लिया। यह नीच काल की कुटिलता है।

क्रोधावेश घोर रव बोलहिं * हृदय सोकतरु अचल न डोलहिं
समाधान नहिं मानत सोई * सुनि प्रताप परितोष न होई

सुलोचना क्रोधावेश में विचारकर बोली-उसके हृदय में शोक है और मन स्थिर है। वह रावण के समझाने को नहीं मानती और उसे उसके बल का बखान सुनकर सन्तोष नहीं होता।

नर बानर पुरुषारथ देखत * बड़ो प्रभाव छोट करि लेखत
लाँघ सिन्धु कपि लङ्का जारी * लघु करि मानत ताहि सुरारी

मनुष्यों और बानरों का भारी बल देखकर भी आप छोटा करके मानते हैं। हे देव-शत्रु रावण! समुद्र को लाँघकर जिस बानर ने लंका जलादी, उसे आप भी छोटा करके मानते हैं।

कुम्भकरन अतिकाय महोदर * मम पति गिरेउ समेत सहोदर
ते रिपु चहत दसानन जीती * देखहु महा मोह कै रीती

कुम्भकर्ण, अतिकाय, महोदर और भाइयों सहित मेरे पति जिनसे युद्ध करके मारे गये उन्हें आप जीतना चाहते हैं। अहा! महा अज्ञान की रीति को देखो।

उतर देउँ तौ पातक होई * अब बिबाद करि सर्वस खोई
फिरहि राज्य कछु मोहि न काजू * बिनु पिय सकल नरक कर राजू

आपको उत्तर दूँ तो पाप होगा, फिर सर्वस्व खोकर विवाद करने से क्या लाभ? राज्य लौटाने से भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि बिना पति के सब नरक के समान है।

दोहा—तुरतहि उठी सुलोचना, गई मयतनया पास।
पद गहि रोवत सकल कहि, प्रकट सोक इतिहास ॥ ८ ॥

सुलोचना तुरन्त उठी और मन्दोदरी के पास आई। शोक की समस्त कथा को कह कर उसके पैर पकड़कर रोने लगी।

आदिहिं ते सब कथा बखानी * सुनि सुनि रोवित रावन रानी
कर निज पति भुज लिखनि बहोरी * राम लखन महिमा नहिं थोरी

उसने आरम्भ से ही सब कथा कही, सुन-सुनकर रावण की रानी रो रही हैं, फिर उसने अपने पति की भुजा द्वारा लिखी हुई—श्रीराम-लक्ष्मण की महिमा को कहा।

कहेउ बहुरि दसकन्धर क्रोधा * मुए बिडम्बन कीन्हेसि बोधा
सुनि निज पुत्रबधू की बानी * बोली दुखित मन्दोदरि रानी

फिर रावण का क्रोध करना ओर मृतकों की निन्दा करके सान्त्वना देना कहा। अपनी पुत्र-बधू की वाणी सुनकर मन्दोदरी दुःखी होकर कहने लगी—

कहाँ सो मानहुँ सत्य सयानी * सुनी जो नारद मुनि की बानी
पाछिल बात भई सब साँची * अनुभव कीन्ह न एकहु बाँची

हे सयानी ! मैंने नारद-मुनि की वाणी सुनी है, उसे कहती हूँ सो सत्य मानना। पिछली सभी बातें सत्य हुईं, मैंने अनुभव किया है, एक भी नहीं बची।

अगली कथा समास समेता * सुनहु पुत्रि ऋषि बर्णेउ जेता
अब पुत्री परिहर सब सोका * पति सँग बेगि साथ परलोक

हे पुत्री ! आगे की कथा जैसे ऋषि ने वर्णन की है, जो सब संक्षेप में सुनो। अब समस्त शोक को छोड़कर, पति के साथ जल कर परलोक को सुधार लो।

जाहु राम पहि पतिसिर लागी * तजि सकोच आनि सिर माँगी
आजु न होय लाज तब भूषन * समय हीन गुन गनिअ न दूषन

तुम पति के सिर के लिए श्रीरामजी के पास जाओ। संकोच छोड़कर, उसे माँग क्यों नहीं लातीं ? आज तुम्हें लाज का भूषण नहीं है, क्योंकि कुसमय में गुण व दोष नहीं गिने जाते हैं।

है पुनि श्वसुर विभीषन तोरा * बालि तनय बालक सम मोरा
एक नारिब्रत रघुनाथ केरा * लषन सुजस तुम सुनेउ घनेरा

फिर वहां तुम्हारे श्वसुर विभीषण हैं, अंगद मेरे पुत्र के समान है और श्रीरघुनाथजी एक नारी व्रती हैं तथा लक्ष्मणजी की सुन्दर कीर्ति तो तुमने सुनली।

जामवन्त मन्त्री सुग्रीवा * द्विविद मयन्द महाबल सीवा
जानहुँ ब्रह्मचर्य हनुमन्ता * शिव स्वरूप भवहर भगवन्ता

जामवन्त, सुग्रीव, द्विविद, मयन्द ये सब मन्त्री हैं और बल की सीमा हैं। हनुमानजी ब्रह्मचारी हैं, शिव-स्वरूप और संसार से छुड़ाने वाले भगवान जानो।

सदा नीति रस राम नरेशा * तहाँ जात कहु कवन कलेशा

महाराज श्रीरामचन्द्रजी सदैव नीतिज्ञ हैं। फिर कहो, वहां जाने में कौन-सा क्लेश है ?

दोहा—बिदित तोर पति भुज लिखित, लछिमन राम प्रभाव।
मैं हूँ ऋषि भाषित कहेउँ, अब बिलम्ब जनि लाव ॥ ९ ॥

अपने पति की भुजा द्वारा लिखा श्रीराम-लक्ष्मण का प्रभाव तुम्हें मालूम ही है। मैंने

भी ऋषि की कही हुई कथा कही है, अब देर मत लगाओ।

सुनत सासु सुख ते हित बानी * जाहूँ राम पहिं अस जियँ जानी
बार बार चरनन्ह सिर नाई * चलो जहाँ लक्ष्मण रघुराई

सासु के मुख से हित की बात सुनकर सुलोचना ने बिचारा कि मैं श्रीरामजी के पास जाऊँ। बारम्बार मन्दोदरी के चरणों में सिर नवाकर वह श्रीराम-लक्ष्मणजी के पास चली।

देखा कटुक भालु कपि केरा * सिन्धु सुबेल महीधर घेरा
उमँगे मनहुँ महोदधि दूसर * हरित पीत कपि धूसर भूसर

उसने रीछ-बानरों की सेना को देखा कि समुद्र और सुबेल-पर्वत को ऐसे घेरे हुए हैं, मानो दूसरा समुद्र उमड़ आया हो। सेना में हरे, पीले, धूसर और भूरे बानर हैं।

पैठत कटकु अतिहि सकुचाई * नव नारी जनु पर घर आई
आगे जाइ देखि रघुबीरा * छबिमय श्याम गौर सरीरा

वह सेना में घुसते हुए अत्यन्त सकुचाती है मानो नई स्त्री दूसरे घर आई हो। उसने आगे जाकर शोभायुक्त, श्याम और गौर वर्ण वाले श्रीराम-लक्ष्मणजी को देखा।

सभा मध्य सोहत अघ मोचन * कीन्हेउ सफल निरखि निज लोचन
करत दण्डवत सिर धरि धरिणी * तिहि कर चरित बिभीषण बरणी

पापों के नाशक श्रीरामजी सभा में सुशोभित हैं, इन्हें देखकर अपने नेत्र सफल किये। वह पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रणाम कर रही थी, तब उसका चरित्र विभीषण ने कहा कि—

पुत्रबधू दसकन्धर केरी * बड़ि पतिब्रता जानि प्रभु हेरी
मेघनाद की नारि सुशीला * अस गति तव विरोध प्रणशीला

यह रावण की पतोहू है। बड़ी पतिब्रता जानकर उसे प्रभु ने देखा—यह मेघनाद की सुशील स्त्री है। हे प्रणतपाल श्रीरामजी! आपके विरोध के कारण इसकी यह दशा हुई है।

करत प्रनाम प्रेम नहिं थोरे * करुणा बचन करत कर जोरे

सुलोचना बड़े प्रेम से प्रणाम कर रही है, वह हाथ जोड़कर करुण वचन बोली—

दोहा—मृतक जानि पति भुजहिं तब, लिखि समुझाई मोहि।
महाराज रघुवंश मनि, माँगन आइ कछु तोहि ॥१०॥

जब मैंने पति को मृतक जाना तो उनकी भुजा ने मुझे आपकी सारी महिमा लिख कर समझायी। हे रघुवंश-मणि श्रीरामजी! मैं आपसे कुछ माँगने आई हूँ।

छन्द—परसे चरन कर प्रेम पूरन प्रनतपाल खरारि के।
जेहि भजत शंकर सेष सुर मुनि धरनि भंजन भार के ॥
प्रभु जानि सो विनती सुलोचनि कहत करि विनती घनी।
जय सोक हरन कृपालु जय जय जयति जय रघुकुल मनी ॥

पृथ्वी का भार उतारने वाले, कृपा के समुद्र खर के शत्रु श्रीरामजी के चरण सुलोचना ने प्रेम पूर्ण होकर स्पर्श किये। जिनको शङ्करजी, शेषजी तथा मुनिगण प्रणाम करते हैं, उन प्रभु को पहिचान सुलोचना विनती करने लगी कि–हे शोक दूर करने वाले दयालु रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरामजी! आपकी जय हो।

छन्द–तब शरणहिं आई अन सुखदाई रघुराई करूणा सागर।
मति मस्तक पाऊँ सँग जरि जाऊँ सिर पाऊँ सुख शोभा आगर॥
ममपति तनु त्यागी अति बड़ भागी अनुरागी जिन्न मुक्ति लही।
ममता किमि बरनूँ तासु जासु जसु अचल जग पंक्ति रही॥

हे दया के समुद्र, भक्तों को आनन्द देने वाले श्रीरघुनाथजी! मैं आपकी शरण में आई हूं। हे शोभा के धाम! जो पति का मस्तक मुझे मिल जाय तो मैं उसके साथ ही जल जाऊँ। इससे मुझे शीश दे दिया जाय। मेरे पति ने शरीर त्याग दिया, वे भाग्यशाली व प्रेमी थे, जिन्होंने मुक्ति पाई। उनके प्रेम को किस प्रकार वर्णन करूँ, जिनकी अचल कीर्ति संसार में व्याप्त है।

यह विधि पद पंकज सेब्य रमा अज शिर निमि दोउ कर जोर रही।
सुनि पंकज लोचन बचन सुलोचन लोचनते जलधार बही॥

इस प्रकार लक्ष्मी व ब्रह्मा द्वारा सेवित श्रीरघुनाथजी के चरणकमलों में सिर नवाकर और हाथ जोड़कर सुलोचना खड़ी रह गई। तब उसके वचन सुनकर कमल-नयन श्रीरामचन्द्रजी के नेत्रों से जल की धार बहने लगी।

दोहा–अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारन रहित दयाल।
तुलसीदास सठ ताहि भजु, छाँड़ि कपट जन्जाल॥११॥

ऐसे स्वामी रामजी दीनों के हितैषी और बिना कारण ही दयालु हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि रे शठ! कपट को छोड़कर उन्हें भज।

तुम अन्तरयामी भगवाना * नहिं तव आदि मध्य अन्त अवसाना
करुणा बचन सुनत रघुबीरा * पुलक रोम भय सिथिल सरीरा

सुलोचना बोली-हे भगवान्! आप अन्तर्यामी हैं। आपका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। ऐसे दुःख भरे वचन सुन श्रीरघुनाथजी पुलकित होकर रोमांचित होगये और शरीर शिथिल होगया।

देहुँ जियाइ तोर पति आजू * करु बसि लंक कल्प सत राजू
छाँड़ि सोच अब मन हर्षाहू * तुरत भवन अपने फिर जाहू

वे बोले–मैं आज तुम्हारे पति को जिला दूँ। तुम सैकड़ों कल्पों तक लंका का राज्य करो, शोक को छोड़कर मन में प्रसन्न होओ और तुरन्त ही घर को लौट जाओ।

सुनि अस कृपासिंधु की बानी * मनमहुँ बनचर अति भय मानी
कहि न सकत कछु प्रभु रुख देखी * कहा करब करतार विसेषी

सत्य-प्रतिज्ञ प्रभु की वाणी सुनकर बानरों ने मन में बड़ा भय माना। वे प्रभु का रुख देखकर कुछ कह नहीं सकते, (विचार करते हैं कि) देखें विधाता क्या कौतुक करता है?

सब देवन्ह कर सोच न जाई * जौं करि कृपा राम इहि ज्याई

यदि श्रीरामजी कृपा करके इसे जिला देंगे तो सब देवताओं का सोच नहीं जायगा।

दोहा—राज्य विभीषण लङ्क करि, केहि विधि करिहहिं जाय।
समुझि बैर घननाद जब, गहहि सरासन धाय ॥१२॥

विभीषण जाकर लंका का राज्य किस भाँति से करेंगे? जब कि बैर को स्मरण कर मेघनाद धनुष लेकर दौड़ेगा?

प्रभु रुख देखि कपिन्ह भय माना * प्रनतपाल भगवन्त सुजाना
देखि बहुत रघुवर कर छोहू * विनय करत दसकन्ध पतोहू

प्रभु की कृपालु मुद्रा को देखकर बानरों ने भय माना, क्योंकि सुजान भगवान शरणागत के रक्षक हैं। श्रीरघुनाथजी की अत्यन्त दया देखकर रावण की पुत्र-बधू सुलोचना विनय करने लगी—

तुम उदार सब दैबे लायक * करुनामय देखे रघुनायक
हमहुँ विचारि दीख मन माहीं * जीवन ते अस मरन सराहीं

हे रघुनाथजी! आप उदार और सब कुछ देने में समर्थ हैं, मैंने आपको दयानिधान देखा है। मैंने भी मन में विचार कर देख लिया है कि ऐसे जीने से मरना भला है।

भुजबल जीति लोक बस कीन्हे * चौदह भुवन भोग करि लीन्हे
रण तीरथ याचक बड़ चीन्हा * प्राण सुधन लक्ष्मण कहँ दीन्हा

भुजाओं के बल से जीतकर सब लोकों को वश में कर लिया और चौदह भुवनों के सुख को भोगकर युद्धरूपी तीर्थ में महान याचक लक्ष्मणजी को पहिचान कर प्राणरूपी उत्तम धन दान में दिया।

अब न उचित पति दै उपहारा * तेहि पर अधिक सो दरसु तुम्हारा
हमहूँ जाइ मरब सत साधी * मिलब तुमहिं जस मिलत समाधी

अब यह उचित नहीं कि पुरस्कार में पति को फेर लूँ, क्योंकि सबसे अधिक लाभ तो आपका दर्शन ही है। मैं जाकर अब सत्य साधन करके मरूँगी और आपसे उसी प्रकार मिलूंगी, जिस प्रकार योगीजन मिलते हैं।

दोहा—निर्मल गति अबसर भयउ, सुनहु सत्य रघुबीर।
तुमहिं मिलत नहिं होय भव, यथासिंधु गत नीर ॥ १३ ॥

हे रघुनाथजी! यह सत्य सुनिये कि मोक्ष का समय प्राप्त हुआ है। आप में मिलने से फिर जन्म नहीं होता, जैसे समुद्र में गया हुआ जल नहीं लौटता।

मन की जाननिहार सुदेवा * भव सागर तारहु यह खेवा

लीन्हेउ राम कपीस बुलाई * मेघनाद सिर दीन्ह मँगाई

हे देवोत्तम! आप मन की दशा जानने वाले हैं। भवसागर की नैया को पार लगाइये। तब श्रीरामजी ने सुग्रीव को बुला लिया और मेघनाद का सिर मँगा दिया।

पाय कृतारथ मानेउ आपू * पिया विरह सम्भव परितापू
अंचल पोंछत मुख की धूरी * करि मम प्राण सँजीवनि मूरी

उसे पाकर सुलोचना ने स्वयं को कृतार्थ माना। पति के विरह से उत्पन्न दुख उसे फिर हुआ। हे मेरे प्राणों की संजीवनी मूल! ऐसा कहकर वह आँचल से मुख की धूल पोंछती है।

देखि सन्देह कहत सुग्रीवा *भुजमहि लिखा सो मोहि नहिं सीवा
हँसहहि बदन तो होइ है साँची * नातरु निसचर माया काँची

यह देख सुग्रीव सन्देह करते हैं कि बिना प्राण और शीश के भुजा खड़िया लेकर कैसे लिख सकती है? यह मुख हँस जाय तो यह बात सच्ची है, अन्यथा निशाचरों की झूठी माया है।

कत अस ज्ञान मृतक भुज गावा * जो मुनिवर साधन नहिं पावा
प्रभु अस कहेउ हँसब वह सीसा * करत कुतर्क न उचित कपीसा

श्रेष्ठ मुनि जिस ज्ञान को साधन करके नहीं पाते, इसे इस मृतक-भुजा ने कहाँ से पाया है? तब प्रभु ने कहा—हे बानराज! कुतर्क करना उचित नहीं है, यह सिर अभी हँसेगा।

दोहा—सिर सों कहत सुलोचना, हँसहु बेगि मम नाथ।
ना तरु सत्य नहिं मानिहैं, लिखा जो तुम्हरे हाथ ॥ १४ ॥

तब सुलोचना सिर से कहने लगी—हे स्वामी! शीघ्र हँसिये, अन्यथा आपकी भुजा ने जो कुछ लिखा है, उसे सब सत्य नहीं मानेंगे।

क्षणक बिलम्बु कीन्ह नहिं बोला * मृतक बदन मूँदत नहिं खोला
पुनि पुनि कहति सो नागकुमारी * श्रमित भयउ रणमहँ कटिमारी

उस सिर ने एक क्षण की देरी की और वह मृतक-शीश बन्द ही रहा, खुला नहीं। नागसुता बारम्बार कहती है कि युद्ध में मार-काट करके आप थक गये हैं।

लगे लषन शर क्षोभ बढ़ावा * प्रभु समीप कस मोहि लजावा
जौं मन वचन कर्म यह देही * पति देवता न आन सनेही

लक्ष्मणजी का बाण लगने से आपने मेरे क्षोभ (दुःख) को बढ़ाया है। अब प्रभु श्रीरामजी के सामने मुझे क्यों लज्जित करते हो? यदि मन, वचन और कर्म से यह शरीर पति को देवता मानता हो, अन्य किसी का प्रेमी न हो—

तौ प्रभु सभा बीच सिर बोलै * रहहि छाय जग सुयश अमोलै
जौं जानति तव यह गति साँई * बोलि पठावति पितहि सहाई

तो प्रभु श्रीरामजी की सभा के बीच यह शीश बोले, जिससे अनमोल उत्तम यश छा जाय। हे स्वामी! यदि मैं आपकी इस गति को जानती तो सहायता के लिए अपने पिता को बुला लेती।

सुनि तिय बचन हँसेउ तब सीसा * चौंके चकित भालु भट कीसा
हँसेउ ठठाय बचन सब देखा * विस्मय भयउ सकल जिहि लेखा

तब स्त्रीके वचन सुनकर शीश हँस उठा,आश्चर्य चकित होकर रीछ-बानर योद्धा चौंक पड़े। सबने देखा कि सिर ठठाकर हँसा,जिसे देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। (सुलोचना की पिता को सहायतार्थ बुलाने की बात पर सिर हँस पड़ा कि कहीं नागराज भी भगवान को जीत सकते हैं?)

कुलिश समान सुना नहिं जाई * रहा सो बदन बहुरि अरगाई
सकुचि कपीशहिं तोषेउ नारी * बड़ आश्चर्य भयो बनचारी

वज्र के समान वह शब्द सुना नहीं जाता। फिर वह चुप हो गया। सुग्रीव को बड़ा सङ्कोच हुआ और उन्होंने उस रमणी की बहुत प्रशंसा की, बानरों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

पूछत कपि पति पद सिर नाई * कारण कौन हँसा सिर साँई
प्रभु कह सुनु सुग्रीव कपीसा * शीश हँसे कर सुनहु अहीसा

तब बानर-राज रामजी के चरणों में सिर नवाकर बोले-हे स्वामी ! सिर क्यों हँसा सो कहिये ? प्रभु ने कहा–हे कपिराज सुग्रीव ! हे लक्ष्मण! शीश के हँसने का कारण सुनो–

मन क्रम वचन पतिहि सेवकाई * तिय हित इहि सम अस न उपाई
अस जिय जानि करइ पति सेवा * तिहि पर सानुकूल मुनि देवा

मन,कर्म, वचन से पतिकी सेवा करना, इसके समान स्त्रीके हित के लिए दूसरा उपाय नहीं है। यह मन में जानकर जो स्त्री पति की सेवा करती है, उस पर देवता और मुनि प्रसन्न रहते हैं,

यह सतवति अहिराज कुमारी * तेहि सत ते हँसि शीश सुरारी
सुनि प्रभु वचन कपि न सुख माना * पुनि पुनि चरण गहेउ हनुमाना

यह नागराज की कन्या सत्यवती है, उसी के सत से देव-शत्रु मेघनाथ का शीश हँसा है प्रभु के वचन सुनकर बानरों ने सुख माना और हनुमान ने बारम्बार उनके चरण पकड़े।

सुनु गिरिजा असि प्रभुताई * केवल भक्तहिं देत बड़ाई
जासु दृष्टि जग उपजत नासा * अस कौतुक कर केतिक आसा

(शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती ! प्रभु की महिमा ऐसी है कि केवल भक्तों को ही बड़ाई देते हैं। जिसके दृष्टिपात से संसार उत्पन्न व नष्ट हो जाता है, उनके लिए यह ऐसी कौन-सी आश्चर्य की बात है ?

दोहा–शीश पाइ प्रभु चरन गहि, बहु विधि विनय सुनाय।
आजु के दिन रण परिहरहु, मम हित कौशलराय ॥१५॥

शीश को पाकर प्रभु के चरण पकड़कर सुलोचना ने अनेक प्रकार से विनती की–हे कौशलराज ! आज के दिन मेरे लिए युद्ध को छोड़ दीजिए।

बहुरि विभीषण पगन परी सो * रघुपति चरन दिए मन पुनि सो
तुम पितु सम दसकन्दर भाई * इहि कुल की तोहि लाज बड़ाई

फिर वह विभीषण के चरणों में गिरी तो श्रीरघुनाथजी के चरणों में मन लग गया। वह बोली—हे रावण के भाई ! आप मेरे पिता के समान हैं। इस कुल की लाज और बड़ाई आपके ही हाथ है।

मुनि पुलस्त्य परिवार के दीपा * पायउ फल रघुवीर समीपा
महा मोह वश अनभल माना * ज्ञान भयो तब गुण पहिचाना

आप पुलस्त्य मुनि के वंश के दीपक हैं, आपने श्रीरामजी के सामीप्य रूपी फल को पाया है। अज्ञान के वश मैंने आपसे बुरा माना।

युग युग करहु अकण्टक राजू * सहित सुयश अरु सुकृत समाजू
सुमिरत तुमहिं सुजनगति पावा * रघुपति चरित संग करि गावा

उत्तम यश और पुण्य-कर्मोंके समाज सहित आप युग-युगतक निष्कंटक, राज्यकरिये। आपको स्मरण करने से सज्जन मोक्ष पावेंगे, श्रीरघुनाथजी के चरित्र के साथ आप भी गाये जावेंगे।

सुनत विभीषण मन करुणा भर * प्रगट न कहत समय विरहाकर
काल कर्म गति कहि समुझाई * चली तुरन्त गुरु आयसु पाई

यह सुनकर विभीषण के मन में करुणा भर आई, परन्तु वह अपने विरह को प्रकट नहीं करते। काल और कर्म की गति समझाई तो आज्ञा पाकर सुलोचना चली।

दोहा—बाहरि करि कपि कट कते, फिरेउ विभीषण आप।
विसरेउ दसमुख बैरही, हृदय अधिक सन्ताप॥ १६॥

उसे वानर-सेना के बाहर पहुँचा कर विभीषण स्वयं लौटे। उस समय रावण का बैर भूल गया और हृदय में अत्यन्त दुःख हुआ।

सिर चढ़ाय पालकी चढ़ी सो * रघुपति कृपा प्रभाव बढ़ी सो
हृदय राखि मूरति घनश्यामा * रसना रटत निरन्तर नामा

सुलोचना सिर को चढ़ाकर पालकी पर चली। रामजी की कृपा से उसका प्रभाव बढ़ गया, हृदय में श्याम मूर्ति रखकर उसकी जीभ निरन्तर राम-राम रटती है।

सरित सिंधु सङ्गत जहँ पावन * अस सुधि पाय गयो तहँ रावन
सङ्ग मन्दोदरि सब रनिवासू * मनहु शोक रवि कीन्ह प्रकासू

जहाँ नदी और समुद्र का पवित्र सङ्गम था-वह वहाँ गई, ऐसी खबर पाकर रावण भी वहाँ गया। साथ में मन्दोदरी एवं सब रनिवास था, मानो शोकरूपी सूर्य ने प्रकाश किया था।

पाय रजायसु सेवक धाए * चन्दन अगर सुगन्ध बहु लाए
रचि दृढ़ि दारुण चिता बनाई * जनु सुरलोक निसेनी लाई

आज्ञा से उत्तम सेवक दौड़े और बहुत-सा चन्दन, अगर और सुगन्ध लाये। सजाकर दृढ़ कठोर चिता बनाई, मानो स्वर्ग-लोक की सीढ़ी लगाई हो।

करि प्रणाम सब जन परितोषी * धीरज धरेसि तासु मति पोची

शिर भुज धरि बैठिकर आसन * भइ जनु जोग सिद्ध कर बासन

सब लोगों को प्रणाम करके सन्तुष्ट किया, सबने यह कह उसकी बुद्धि की पुष्टि की कि धीरज धरो। तब शीश और भुजा रखकर वह आसन लगाकर बैठ गई, मानो योग के सिद्ध होने की पात्र हो गई हो।

दोहा—देत अनल ज्वाला बढ़ी, लपट गगन लगि धाय।
लखी न काहू जात तेहि, सुरपुर पहुँची जाय॥ १७॥

अग्नि देते ही ज्वाला की लपटें बढ़कर आकाश में जा लगीं, परन्तु उसको जाते किसी ने नहीं देखा। इस प्रकार सुलोचना स्वर्ग में जा पहुँची।

* इति क्षेपक सुलोचना सती की कथा *

सुत बध सुना दसानन जबहीं * मुरछित भयउ परेउ महि तबहीं

रावण ने ज्योंही पुत्र का मरण सुना, त्योंही वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मन्दोदरी रुदन कर भारी * उर ताड़न बहु भाँति पुकारी
नगर लोग सब व्याकुल सोचा * सकल कहहिं दसकन्धर पोचा

मन्दोदरी बहुत रोकर छाती पीटती हुई, बहुत प्रकार से पुकार कर विलाप करने लगी। तब नगर के सब लोग व्याकुल होगये, सभी रावण को नीच कहने लगे।

दोहा—तब दसकण्ठ बिबिध बिधि, समुझाईं सब नारि।
नश्वर रूप जगत सब, देखहु हृदयँ बिचारि॥ ७७॥

तब रावण ने सब स्त्रियों को अनेक प्रकार समझाया कि यह सब संसार नाशवान है, हृदय में विचार कर देखो।

तिन्हहि ज्ञान उपदेशा रावन * आपनु मन्द कथा शुभ पावन
पर उपदेश कुशल बहुतेरे * जे आचरहिं ते नर न घनेरे

रावण ने उन्हें ज्ञान का उपदेश दिया। वह स्वयं तो कुबुद्धि है, परन्तु इसकी बातें शुभ और पवित्र हैं। दूसरों को उपदेश देने में बहुत लोग चतुर होते हैं, परन्तु जो उपदेश के अनुसार चलें, ऐसे लोग बहुत नहीं होते।

* अथ अहिरावण की कथा क्षेपक *

दण्ड चारि तब तहँ निसि बीती * सन्ध्या बन्दन कीन्ह सप्रीती
लागेउ करन ध्यान दससीसा * बहुरि हर्षि जोरेउ कर बीसा

तब वहां चार घड़ी रात बीत गई। उसने प्रेम पूर्वक सन्ध्या बन्दन किया और बीसों हाथों को जोड़कर (शिवजी) ध्यान करने लगा।

शिव सेवक मन क्रम अनुरागी * सुनु खगेस तेहि ते बड़भागी
मन्त्राकर्षक जप दसभाला * अहिरावण चित डोल पताला

हे गरुड़! सुनो, वह शिवजी का मन तथा कर्म से सेवक है। अतः अत्यन्त भाग्यवान है।

रावण ने आकर्षण-मन्त्र का जप किया, जिससे पाताल में अहिरावण का मन डोल गया।

लगेउ करन सो मन अनुमाना * केहि कारन दसमुख अकुलाना
निसिचर नाइ भुवन बस जाके * जीतन कहुँ न बीर कोउ ताके

वह अपने मन में अनुमान करने लगा कि रावण क्यों व्याकुल है ? जिसने तीनों लोकों को अपने वश में किया है तथा जिसको जीतने के लिए कोई वीर नहीं है।

मनक्रम बचन आन नहिं सेवी * धरेउ ध्यान उर कामद देवी
चलेहु बहुरि आथहु सो तहँवा * सिव मण्डप दसमुख रह जहँवा

मन, कर्म, वचन से जो दूसरे का भक्त नहीं था, उसने कामद-देवी का ध्यान किया। वह शीघ्र ही चलकर वहाँ आया, जहाँ शिव-मण्डप में रावण बैठा था।

निसिचरपतिकहँ तेहि सिरनायउ * कर गहि निज आसन बैठायउ

उसने राक्षसराज को सिर नवाया तो रावण ने उसे हाथ पकड़कर अपने आसन पर बैठाया।

दोहा—अहिरावन तब रावनहि, पूछेउ सकल सप्रीत।
प्रथम कही तेही सब कथा, भगिनी कीन्ह अनीति ॥ १ ॥

तब अहिरावण ने रावण से सप्रेम कुशल पूछी। तब उसने पहले वह कथा कही कि बहिन (शूर्पणखाँ) ने जो अनीति की थी।

बध खरदूषन जिमि सुधिपाई * पुनि मरीच की कथा सुनाई
कहेसि बहुरि सीताकर हरना * पवनतनय बल लङ्का दहना

फिर खरदूषण के बध के जैसे समाचार पाये थे—वह और मारीच की कथा कही। फिर सीता-हरण, पवन-पुत्र के बल और लंका-दहन को कहा।

सेतु बाँधि जिमि प्रभु चलि आयउ * बालितनय सम्वाद सुनायउ
अवनि अकम्पन अरु अतिकाया * मरे समर महँ सुनि अहिराया

प्रभु सेतु बाँधकर जिस प्रकार चले—वह और अङ्गद का सम्वाद सुनाया। (रावण बोला—) हे शेष-लोक के राजा ! सुनो—अवनि, अकम्पन और अतिकाय रण में मारे गये।

तात कुशल अब आय सिरानी * कटक निसाचर सकल नसानी
कुम्भकरन घननादउ मारे * राम लषन ते मनुज बिचारे

हे तात ! अब आकर तुमने कुशल पूछी है, जब सारी राक्षसी-सेना मारी गई। कुम्भकर्ण तथा मेघनाद भी जिन्होंने मार डाले, वे राम-लक्ष्मण मनुष्य समझ रक्खे हैं।

आनेउँ बोलि तोहि निज पासा * कहु जे जतन होइ रिपु नासा
सुनत बचन कह केतिक बाता * हरि लै जैहौं दोनों भ्राता

अब तुम्हें अपने पास बुलाया है। वह उपाय कहो—जिससे शत्रुओं का नाश हो। यह कहकर वह बोला—यह कितनी-सी बात है ? मैं दोनों भाइयों को हर ले जाऊँगा।

लै पाताल देबिहिं बलि दैहौं * जस पूरन निसिचर कुल लैहौं
लै जाऊँ जानहु तुम तबहीं * रवि सम तेज होइ निसि जबहीं

लेजाकर पाताल-देवी की बलि दूंगा और राक्षस कुल में पूर्ण यश लूंगा। जब रात्रि में सूर्य के समान प्रकाश हो, तब तुम जान लेना कि मैं उन्हें ले जाता हूं।

दोहा—कहि अस बचन प्रबोध तिहि, सीस नाय बल भाखि।
आयउ रघुपति कटक महँ, निज देवी उर राखि ॥ २ ॥

ऐसा कहकर, सिर नवाकर, अपना बल बखान कर और अपनी इष्टदेवी को हृदय में रखकर वह श्रीरामजी की सेना में आया।

सूझ न परत निसि अति अँधियारी * मर्कट भट जागहिं तहँ भारी
कहहिं जयति जय जयति कृपाला * अतहि अगम निसिनहिं गतिकाला

अत्यन्त अंधियारी रात्रि में सूझ नहीं पड़ता। भारी वीर बानर वहां जाग रहे हैं और 'कृपालु श्रीरामजी की जय हो' जय हो, कहते हैं। रात्रि अत्यन्त अगम है, उसमें काल की भी गति नहीं है।

तहँ मारुत सुत रचा उपाई * निज लँगूर की कोटि बनाई
सो शोभा कछु बरनि न जाई * जनु भुजङ्गपति रह तहँ छाई

वहीं पवन-पुत्र हनुमानजी ने उपाय रचा-अपनी पूंछ की परिधि बनाई। उनकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती, मानो सर्पों के राजा हों।

अरु जिमि देखिय सैल समाना * द्वार बिराजत श्रीहनुमाना
देखि हृदय अहिरावन हारा * जिमि रवि उदय न तिमिर प्रसारा

और द्वार पर हनुमानजी विराजमान हैं, वे पर्वताकार दिखाई देते हैं। यह देखकर अहिरावण हृदय में हार गया, जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नहीं फैल सकता।

युक्ति एकहूँ मन न ठहरानी * कपट बेष तेहिं कीन्ह भवानी
बेष बिभीषण कर अनुहारी * पवन तनय पहँ गो छलकारी

उसके मन में एक भी युक्ति नहीं जमती। हे भवानी ! तब उसने कपट-वेष बनाया। विभीषण के समान वेष बनाकर वह छली हनुमानजी के पास गया।

दोहा—सहज प्रतापी पवन सुत, पुनि सुरपति प्रियदास।
तिनहिं निदरि चलेउ राम पहँ, मूढ़ हृदयँ नहिं त्रास ॥ ३ ॥

श्रीहनुमानजी सहज प्रतापी हैं, फिर देवताओं के स्वामी के प्रिय दास हैं, उनका निरादर करके वह श्रीरामजी के पास चला। मूर्ख के हृदय में भय नहीं है।

मर्म न जानेउ कछु सुत पवना * बेष बिभीषण कै सो गगना
ठाढ़ होइ बोलेउ सुनु भ्राता * चलेउँ जहाँ कृपालु जन त्राता

पवन-पुत्र ने कुछ भेद नहीं जाना, वह विभीषण का भेष बनाकर गया, खड़ा होकर वह बोला-

हे भाई ! सुनो-मैं वहां जाता हूँ, जहाँ कृपालु दीनबन्धु हैं ।

मैं रघुपति सन आयसु पाई * सन्ध्या करन गयउँ सुनु भाई
तेहि ते तुरत चलेउँ प्रभु पाहीं * भइ बिलम्ब जनि राम रिसाहीं

मैं रघुनाथजी से आज्ञा पाकर सन्ध्या-वन्दन को गया । देर हो जाने के कारण श्रीरामजी क्रोधित न हों, इसलिए शीघ्र ही पास जाता हूँ ।

सत्य बचन कपि निज मन माना * सुनु खगेश भावी बलवाना
कपट चतुर गति जानि न पाई * पर मन हरै हरै धन भाई

हनुमानजी ने वचन सत्य समझे । हे गरुड़जी ! सुनो, भावी बलवान् होती है । हे भाई ! कपटी की चतुर चाल जानी नहीं जाती । वह दूसरे के मन और धन को हर लेती है ।

आयसु पाइ गयउ सो तहँवा * फनिपति प्रभु दोनों रह जहँवा
कपिपति जामवन्त नल नीला * बालितनय सुषेन बलसीला

वह आज्ञा पाकर वहाँ गया, जहाँ श्रीशेषजी तथा प्रभु दोनों थे और बानर-राज सुग्रीव जामवन्त, नल-नील, अङ्गद और सुषेण आदि बलवान थे ।

दोहा—द्विविद मयन्द कपोस गन, गव गवाक्ष कपि वीर ।
सहित विभीषण अपर भट, सोए सब रनधीर ॥ ४ ॥

द्विविद, मयन्द, गव-गवाक्ष आदि रणधीर बानर और अनेक योद्धाओं के साथ वीर विभीषण सोये हुए थे ।

तिन्हहिं मध्य रावन ससि राहू * एक सङ्ग सोवत फनिनाहू
दच्छिन दिसि सोवत रघुनाथा * अनुज बाम दिसि तेहि पर हाथा

उनके मध्य में रावणरूपी चन्द्रमा को राहु के समान श्रीरामजी तथा शेषपति श्रीलक्ष्मणजी एक साथ सोये हुए थे । दायीं ओर श्रीरघुनाथजी सोये हुए थे और बायीं ओर श्रीलक्ष्मणजी सोये थे, जिन पर प्रभु का हाथ रखा था ।

प्रभु कर उर पर राजत कैसे * रजतरूप पर फनिपति जैसे
कपि सब हैं जनु सागर क्षीरा * तहँ सोहे मानहुँ दोउ बीरा

उनके वक्षस्थल पर प्रभु का हाथ कैसे शोभित है, मानो सोने पर सर्पराज । वे सब बानर मानो क्षीरसागर हैं, वहाँ दोनों वीर शयन करते हैं ।

सुभग बान धनु धरे बनाई * लछिमन सहित नियर रघुराई
अहिरावन मन कीन्ह प्रनामा * देखि राम घन सुन्दर श्यामा

लक्ष्मणजी के साथ सुन्दर-बाण श्रीरघुनाथजी के पास रखे हैं । मेघश्याम श्रीराम को देखकर अहिरावण ने मन ही मन प्रणाम किया ।

ब्रह्मादिक जेहि ग्यान न पावहिं * सुनि महेस पूजा मन लावहिं

करहिं बिबिधबिधिजोगबिरागी * रटहिं निरन्तर निसिदिन जागी

ब्रह्मा आदि जिनको ध्यान में भी नहीं पाते, मुनि तथा शिवजी पूजा में जिन्हें अपने हृदय में धारण करते हैं। वैरागी जिनके लिए विभिन्न जप व योग करते हैं तथा दिन-रात निरन्तर जागकर जिन्हें रटते हैं।

सोप्रभु तेहि देखेउ भरि लोचन * कृपासिंधु सेवक भय मोचन
बहुरि हृदयँ तेहि कीन्ह विचारा * रावन काज करौं अनुसारा
पुनि निज माया कृत गुन आई * कवनी भाँति जायँ दोउ भाई

उन कृपासिंधु, सेवकों के भय को दूर करने वाले प्रभु को उसने नेत्र भरकर देखा और फिर मन में विचार किया कि रावण का कार्य करूँ। तब अपनी माया से उत्पन्न प्रभाव का स्मरण किया कि किस प्रकार यह दोनों भाई जायं।

दोहा—मोहनि तें मोहे सकल, मन्त्रह ते मुख मूँदि।
भयउ अदृश्य उठाइ करि, प्रभुहिं चलेउ लै कूदि॥ ५॥

उसने मोहिनी से सबको अचेत कर दिया और मन्त्रों से सबके मुख बन्द कर दिये। प्रभु को उठाकर अदृश्य हो, कूदकर ले चला।

एहिबिधि प्रभुहिं गयउ लै सोई * नभ मारग प्रकाश अति होई
सो प्रकाश जब रावन देखा * बचन प्रमान तासु करि लेखा

इस प्रकार वह प्रभु को ले गया। उस समय आकाश मार्ग में अत्यन्त प्रकाश हुआ। वह प्रकाश जब रावण ने देखा तो उसका वचन सत्य माना।

मन महँ हर्ष करै अति भारी * अहिरावन लै गा असुरारी
लै निज लोक गयउ जिन माहीं * शोर भयउ तब कपिदल माहीं

वह मन में अत्यन्त हर्ष करने लगा कि अहिरावण असुरों के शत्रुओं को ले गया। अहिरावण क्षणमात्र में अपने लोक को चला गया, तब बानर-दल में शोर हुआ।

जागे बानर श्रीहत झारी * देखिय जिमि सरिता बिनु वारी
अरु देखिय जिमिदिन बिन्दु इन्दू * तेजहीन बासर जिमि चन्दू

बानर शोभाहीन होकर जागे। वे ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे बिना पानी के नदी, बिना चन्द्रमा के रात्रि और दिन में चन्द्रमा।

रवि बिनु दिवस जीव बिनु देहा * जिमि दीपक बिनु देखिअ गेहा
एकहि एक लाग तब पूछन * कहाँ गए त्रैलोक्य विभूषन

जैसे सूर्य के बिना दिन, जीव के बिना देह और दीपक के बिना घर दिखाई देता है। तब वे एक दूसरे से परस्पर पूछने लगे कि त्रैलोक्य भूषण श्रीरामजी कहाँ गये।

दोहा—सोधा सब मिलि कटक तिन्ह, नहिं पाये दोउ वीर।
भे व्याकुल सब भालु कपि, जिमि जलचर बिनु नीर॥ ६॥

सबने मिलकर सेना में खोज की, परन्तु दोनों भाई नहीं मिले। सब भालू और बानर ऐसे व्याकुल हो गये, जैसे बिना पानी के जलचर जीव।

सकल कहहिं बिधि का यह कीन्हा * रघुपति बिना प्रान चह लीन्हा
सोकग्रसित धरि सकहिं न धीरा * कहाँ राम लछिमन दोउ बीरा

सब कहते हैं कि विधाता ने यह क्या किया ? श्रीरामजी के बिना यह प्राण लेना चाहता है ! राम-लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं ? शोक के मारे वे धैर्य धारण नहीं कर सकते।

करुना करैं कपीस अपारा * बनी बात बिधि कहा बिगारा
कटकट निसाचर सकल संहारी * रहा एक रिपु रावन भारी

कपीस सुग्रीव अत्यन्त दुख करते हैं—बनी हुई बात विधाता ने बिगाड़ दी। राक्षसों की सम्पूर्ण सेना का संहार हो गया, केवल एक प्रबल शत्रु रावण ही रह गया है।

सोउ न रहत राम शर लागे * भाइहु हम सम कोउ न अभागे
कबहूँ जो दससिर अरि जीतहिं * उत्तर कवन देब हम सीतहिं

वह भी श्रीरामजी के बाण लगने पर नहीं रहता। हे भाइयो ! हमारे समान अभागा कोई नहीं है। यदि हम कहीं रावण शत्रु को जीत भी लें तो हम सीताजी को क्या उत्तर देंगे ?

यहि कहि बिकल मूर्छित महि परेऊ * लागे बज्र सैल जिमि गिरेऊ
कहि न बिभीषन की गति जाई * फिरइ बत्स जिमि धेनु लवाई

यह कहकर वे व्याकुल हो मूर्छित होकर गिर पड़े, मानो वज्र लगने से पर्वत गिरा हो। विभीषण की गति कही नहीं जाती, लावनी की गाय जैसे बछड़े के लिए फिरती हो।

दोहा—सहित पवनसुत ऋक्षिपति, दुख मन भा बहु भाँति।
खगपति सूझ न कतहुँ कछु, तन अपार तेहि राति॥ ७॥

हनुमानजी तथा जामवन्त सहित सबको बहुत भाँति से दुःख हुआ। हे गरुड़जी ! रात्रि के अपार अन्धकार में किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता था।

पवनतनय पुनि कहि सब पाहीं * बिसमय होइ एक मन माहीं
कोउ इक आव बिभीषण वेषा * प्रभु के निकट जात मैं देखा

फिर हनुमानजी सबसे बोले—मनमें एक विस्मय होता है। कोई व्यक्ति विभीषण के वेष में आया था मैंने उसे प्रभु के निकट जाते हुए देखा था।

पूछत बचन कहेहि अति नीका * कपट न जानौं निसिचर जियका
वचन सुनत बोलेउ लंकेसा * अहिरावन लै गा अवधेसा

पूछने पर उसने अति सुन्दर वचन कहे। मैंने राक्षस के हृदय का कपट नहीं जाना। यह सुनकर विभीषण बोले—प्रभु को अहिरावण ले गया।

पन्नग लोक बसतु है सोई * सम तनु बेष अपर नहिं कोई

महावली जानै बहु माया * निश्चय वह दससीस पठाया

वह नागलोक में रहता है। मेरे शरीर जैसे वेष का दूसरा कोई नहीं है। वह महाबली बहुत माया जानता है निश्चय ही रावण ने उसे भेजा था।

जेहि बल होइ बहाँ सो जाई * ताहि जीति आनै दोउ भाई
कहहि भालुपति सुनु हनुमाना * तब बल तात सकल जग जाना
बेगि सो जतन बिचारहु ताता * कृपासिंधु आनहु दोउ भ्राता

जिसमें बल हो वह वहाँ जाय और उसे जीतकर दोनों भाइयों को लावे। भालुपति जामवन्त बोले—हे हनुमानजी ! सुनो, आपके बल को समस्त जगत् जानता है। हे तात ! यह उपाय शीघ्र विचारो, जिससे वह कृपा के समुद्र दोनों भाई आवें।

दोहा—बिलखि कहेउ कपिपति बहुरि, मारुतसुत सुनु तात।
बिनु रघुपति धिकधिक जनम, पलुजुग सरिस बिहात॥ ८॥

फिर बानर-राज सुग्रीव ने विलख कर कहा—हे तात पवनसुत ! सुनो, बिना श्रीरामजी के जन्म को धिक्कार है। एक-एक पल युगों के समान बीत रहा है।

तृषित होइ बिनु बारि दुखारी * तैसे हम सब बिना खरारी
रवि बिनु पंकज होइ मलाना * तैसेहि हम सब हैं हनुमाना

प्यासा बिना पानी के जैसे दुःखी होता है वैसे ही हम श्रीरामजी के बिना हैं। हे हनुमान ! सब ऐसे मलिन हैं, जैसे बिना सूर्य के कमल।

सीता सुधि जिमि औषधि आनी * तेहि प्रकार लावहु गुनखानी
यह सुनि बहुरि पवनसुत बोला * चित्त करहु थिर सेन न डोला

जिस प्रकार सीताजी की खबर और औषधि लाये थे, उसी प्रकार से गुणों के खान श्रीरामचन्द्रजी को लाओ। यह सुनकर पवनसुत हनुमानजी बोले-आप चित्त स्थिर करिये। जिससे सेना विचलित न हो।

भुवन चारिदास तीनहुँ लोका * आनहु प्रभुहि तजहु तुम सोका
अबते सजग रहेउ सब भाई * लरेहु काल सौं जो चढ़ि आई

चौदहों भुवनों और तीनों लोकों में से प्रभु को ले आऊँगा। आप शोक त्याग दीजिए, अब से सब भाई सजग रहें और यदि काल भी चढ़ आवे तो उससे लड़ें।

यह कहि गर्जि चलेउ हनुमाना * प्रलयकाल के मेघ समाना
चले जात इक तरुवरु गयऊ * गृद्धनि गृद्ध कहत अस भयऊ

यह कहकर गर्जना करके हनुमानजी प्रलयकाल के समान चले। चलते-चलते वे एक वृक्ष के नीचे गये। (वहाँ) एक गीधनी-गीध से इस प्रकार कह रही थी।

दोहा—गृद्ध नारि ही गर्भिनी, बोली पति सौं बैन।
आनहु आमिष मनुज करि, खाँउ होव जिय चैन॥ ९॥

गोधनी गर्भिणी थी । वह अपने पति से बोली—मनुष्य का मांस लाओ । मैं उसे खाऊँ तो जी चैन हो ।

तासु वचन सुनि खग अस कहेऊ * अहिरावण रामहि लै गयऊ
देइ बलि देवहिं सौं जाई * बड़े भाग्य आमिष सो पाई

उसका वचन सुनकर पक्षी ने कहा—अहिरावण राम को ले गया है । वह जाकर देवी की बलि देगा । बड़े भाग्य हैं कि वह मांस मिलेगा ।

कबनिहु जतन देव मैं आनी * अस कहि गृद्ध नारि सनमानी
जबहिं पवनसुत यह सुधि पाई * चले हृदयँ सुमिरत रघुराई

किसी भी उपाय से मैं तुम्हें मांस ला दूंगा । ऐसा कहकर उसने मादा का आदर किया । हनुमानजी ने जब यह समाचार पाया तो हृदय में श्रीरघुनाथजी का स्मरण करते हुए चले ।

तुरत पतालहिं तेहि छन गयऊ * अहिरावन पर प्रविसत भयऊ
द्वारपाल मकरध्वज कीसा * कपि सन डाटि कहत वह रीसा

वे उसी क्षण पाताल को गये और नगर में प्रवेश किया । (वहाँ) मकरध्वज नाम का बानर द्वारपाल था । कपि (हनुमान) को डाटकर क्रोध से बोला—

निदरहि सोहि तोरि डर नाहीं * जिमि दीपक न पतङ्ग डराहीं
मारुतसुत कर हौं मैं बालक * स्वामि भक्त भंजन मुख कालक

तू मेरा निरादर करता है, तुझे डर नहीं है ! जैसे पतंगे को दीपक का डर नहीं होता, मैं पवन-पुत्र का बालक हूँ और काल का भी मुख-भञ्जन करने वाला स्वामी-भक्त हूँ ।

सो०—सुनत बचन हनुमान, विसमय अस बोलत भये ।
अरे मूढ़ अज्ञान, मोरें सुत सपनेहुँ नहीं ।।१०।।

यह सुनकर हनुमानजी आश्चर्य से बोले—अरे मूर्ख अज्ञानी ! मेरे तो स्वप्न में भी पुत्र नहीं है ।

कहत वचन सठ तोही न खोरी * काम बिवस कब मति भै मोरी
मम सुत होसि मूढ़ केहि काजा * इतना कहत तोहि नहिं लाजा

रे शठ ! यह कहते तुझे डर नहीं लगता ? मेरी बुद्धि काम के बस कब हुई थी ? रे मूढ़ मेरा पुत्र किस प्रकार बनता है ? ऐसे कहते तुझे लाज नहीं आती ?

किहि प्रकार तैं मम सुत भइसी * निज उतपत्ति मोसन किन कहसी
सुनत कहहि मकरध्वज बचना * कीन्ह तात जब लंका दहन

तू मेरा पुत्र किस प्रकार हुआ ? अपनी उत्पत्ति की कथा मुझसे क्यों नहीं कहता वह बोला—हे तात ! जब आपने लङ्का-दहन किया ।

जब आयउ चली उदधि समीपा * भयउ प्रस्वेद तुम्हहि कपि दीप
छूटि प्रस्वेद सागर महँ गयऊ * सो झस पियत तहाँ मैं भयः

जब आप चलकर समुद्र के समीप आये तब, हे श्रेष्ठ कपि ! आपको पसीना आया हुआ था। पसीना छूटकर समुद्र में गया, तब एक मछली ने उसे पी लिया और तब मैं उत्पन्न हुआ था।

इहि प्रकार मैं तव सुत ताता * गोपहुँ नहिं निज पिता न माता
अहिरावन सेवा मैं करिहौं * प्रभु आयसु इहि द्वारे रहिहौं

हे तात ! इस प्रकार मैं आपका पुत्र हूँ, अपने माता-पिता को छिपाता नहीं हूँ। मैं अहिरावण की सेवा करता हूँ और स्वामी की आज्ञा से द्वार पर रहता हूँ।

दोहा—सत्य वचन हनुमान कहि, पुनि पूछी सब बात।
आनेउ लछिमन राम कहँ, कहा करत है तात ॥ ११ ॥

हनुमानजी बोले—तेरा वचन सत्य है। फिर सब बात पूछी-हे तात ! वह श्रीराम-लक्ष्मणजी को लाकर क्या करता है ?

कहहु तात तेहि थल को नाऊँ * जान चहौं मैं निज प्रभु ठाऊँ
यह वृत्तान्त न जानउँ ताता * अस मैं श्रवन सुनी कछु बाता

हे तात ! उस स्थान का नाम कहो ? मैं अपने स्वामी के स्थान को जाना चाहता हूँ। मकरध्वज बोला—हे तात ! मैं यह वृत्तान्त नहीं जानता हूँ, मैंने ऐसी बात कुछ सुनी है कि-

सीतापति अरु फनपति साथा * सो लै आयउ निसिचर नाथा
करत सो अहैं होम धौं आजू * देवहि बलि देहहि अहिराजू

राक्षसराज-सीतापति श्रीरामजी और शेषपति लक्ष्मणजी को साथ ले आया है। वह आज तक होम करता है और उन्हें देवी की बलि देगा।

जो कछु निज श्रवन सुनि पायउँ * तात सकल मैं तुम्हहि सुनायउँ
निज प्रभु काजु लागि दुख सहऊ * तुम सन सत्य मरमु मैं कहऊ

जो कुछ अपने कानों से सुनपाया है, हे तात ! वह सब आपको मैंने सुना दिया। मैं अपने स्वामी के कार्य के लिए दुःख सहूँगा, तुमसे स्पष्ट भेद कहता हूँ।

जान कहौ पर जान न देऊँ * प्रभु आज्ञा तजि अजसु न लेऊँ
सुनि अस पेलि चलेउ हनुमाना * भयउ क्रोध मकरध्वज जाना

आप यदि जाने के लिए कहें तो मैं जाने नहीं दूंगा, स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करके अपयश न लूंगा। ऐसे सुनकर हनुमानजी उसे ढकेल कर चले। यह जानकर मकर-ध्वज को क्रोध हो आया।

दोहा—कपि कहँ हनेसि मुष्टिका, कपि पुनि मारा ताहि।
इकहि एक हनेउ तब, बल सम घटि कोउ नाहिं ॥ १२ ॥

उसने कपि को मुक्का मारा, फिर कपि ने उसको मुक्का मारा। वे एक दूसरे को मारते हैं, परन्तु दोनों का बल समान है, किसी का घटकर नहीं है।

एकहि एक सकै नहिं टारी * मारुतसुत सुत दोउ भट भारी

सुतहि पूँछ ते बाँधि भवानी * चलेउ बहोरि बिलम्ब बड़िजानी

एक दूसरे को हरा नहीं सकते । मारुत और (उनके) पुत्र दोनों भारी योद्धा हैं, हे भवानी ! अधिक विलम्ब हुआ जानकर वे पुत्र को उसी की पूँछ में बांधकर चले ।

धरि लघु रूप होम गृह देखा * जीव सजीव परैं नहिं लेखा
तहँ देवी कर मण्डप रहई * शोनित घट बहु को कहि सकई

सूक्ष्म रूप रखकर उन्होंने यज्ञशाला देखी, वहाँ जीव और प्राणियों की गिनती नहीं । वहाँ देवी का मण्डप है और बहुत से रक्त भरे घड़ों का वर्णन कौन कर सकता है ?

विविध भाँति मेवा पकवाना * धरे आनि देवी अस्थाना
मालिन तहाँ सुमन लै आई * सुमन मध्य प्रविसे कपिराई

विभिन्न भाँति के मेवा और पकवान देवी के स्थान पर रखे गये हैं। एक मालिन वहाँ पुष्प लेकर आई तो कपिराज एक पुष्प में प्रवेश कर गये ।

सुमनहु ते अधिकृत हलुकाई * सो लै सुमन मण्डपहि आई
सुमन सकल देवी पर चढ़ेऊ * विकट रूप तव तहँ कपि बढ़ेऊ

वे पुष्प से भी अधिक हल्के हो गये । यह पुष्प लेकर मण्डप में आई, सारे पुष्प देवी पर चढ़ गये, तब कपि का विशाल रूप बढ़ा ।

दोहा—छुअत चरन देवी तबै, धरनी गई समाय।
मुख पसारि ठाढ़े भयऊ, कपिछबि वरनि न जाय ।। १३ ।।

हनुमानजी का चरण स्पर्श करके देवी पृथ्वी में समा गई, तब हनुमानजी मुँह फाड़कर खड़े हो गये । वह शोभा वर्णन नहीं की जाती ।

रूप देखि भा आनँद भारी * करहिं विचार निसाचर झारी
कहहिं कि देव प्रकट भई आजू * बड़भागी भा निसिचर राजू

निशाचरों को वह रूप देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ और वे विचार करके कहने लगे कि आज देवी प्रकट होकर प्रसन्न हुई है । राक्षसराज बड़भागी हो गये ।

करि प्रनाम पुनि पूजा करहीं * जो कछु आव सो कपिमुख भरहीं
रहीं जो सकल वस्तु समुदाई * बची न एकउ कपि सब खाई

फिर वे प्रणाम करके पूजन करने लगे । जो कुछ आता है, सो कपि के मुख में भर देते हैं । वहाँ जो सारी वस्तुओं के ढेर थे, वे एक भी न बचे, कपि ने सब खा लिये ।

कपि खिलार कोतुक विस्तारा * भा यह निसिचर कुल संहारा
अहिरावन उर भा सुख कैसे * चढ़े काँध पर बलि पशु जैसे

कपि के खेल से कौतुक का विस्तार होता गया । राक्षस कुल का नाश होनाही चाहता है । अहिरावण के हृदय में कैसा सुख हुआ, जैसे कन्धे पर चढ़ने से बलि के पशु को होता है ।

जब ही होम सिद्ध तिन्ह जाना * लछिमन राम तुरत तहँ आना
ठाढ़ कीन्ह तहँ प्रभु कह आनी * निसिचर बहु आयुधि धर पानी
धरे गदा कोउ अरु धनु बाना * शक्ति शूल तरवारि कृपाना

जब उसने यज्ञ को सिद्ध (सफल) जाना तो तुरन्त ही राम-लक्ष्मण को वहाँ लाया और लाकर प्रभु को खड़ा किया। राक्षस अनेक हथियार हाथ में लिये हैं, कोई गदा लिए है, कोई धनुष-वाण, शक्ति, तलवार और कृपाण लिए हैं।

दोहा–तोमर मुगदर परसु असि, पासि फाँसि अरु बेत।
करनि खड्ग सर धनु गहहिं, देखत रहहिं न चेत ॥१४॥

वे तोमर, मुग्दर, परशु, तलवार, पाशु, फाँसी, बेंत, बरछी और धनुष-वाण लिए हैं। देखते रहने पर भी उन्हें होश नहीं है।

माया बल ते सकल बिचक्षन * अति बिकराल मूर्ख दुरलक्षन
एहि विधि सकल बोर तहँ रहहीं * अहिरावन आज्ञा अनुसरहीं

वे माया बल के पण्डित हैं, परन्तु अत्यन्त विकराल, मूर्ख और कुलक्षणों से युक्त हैं। इस प्रकार सारे वीर जहाँ रहते हैं अहिरावण की आज्ञा का अनुसरण करते हैं।

आयसु पाइ खड्ग तिन्ह काढ़े * मारन कहँ प्रभु पर भे ठाढ़े
कोउ कह राजनीति अनुसरहू * तीनि दण्ड बिलम्ब अब करहू

आज्ञा पाकर उन्होंने तलवार निकाली और मारने के लिए प्रभु के समीप खड़े हुए। किसी ने कहा-राजनीति का पालन करो, अभी तीन पल की देर करो।

सुनि अस वचन मूढ़ि इमि कहई * सुमिरो जो तुम्हरे कोउ अहई
नाहित काल आय नियराई * निसि सपना सम लखि दोउ भाई
कहहि मूढ़ प्रभु कहँ इमि बानी * कहत सकुच मोहि अतिहि भवानी

यह सुनकर मूर्ख (अहिरावण) बोला–तुम्हारे जो कोई हो उसका स्मरण करलो। नहीं तो स्वप्न की रात्रि के समान दोनों भाइयों को काल आकर देखेगा। वह मूर्ख प्रभु से ऐसी बात कहता है, हे भगवान ! मुझे कहने में संकोच होता है।

दोहा–फनिपति चितवहिं रामकहँ, राम चितव अहिराज।
प्रभु कर कौतुक कहिय किमि, सुनहुँ गरुड़ खगराज ॥१५॥

शेषपति लक्ष्मणजी-श्रीरामजी की ओर देखते हैं और श्रीरामजी लक्ष्मणजी की ओर। हे पक्षीराज गरुड़ ! प्रभु की लीला किस प्रकार कही जाय ?

पुनि प्रभु मनमहँ कीन्ह विचारा * जपहि सकल जब नाम हमारा
यहि अवसर सुमिरिय हनुमाना * निकटहिं अहहिं बीर बलबाना

फिर प्रभु ने मन में विचार किया कि समस्त संसार हमारा नाम जपता है, इस अवसर पर

हम हनुमानजी का सुमिरण करें, वे बलवान् वीर निकट ही हैं।

यह विचार प्रभु सुमिरन कीन्हा * होइहि सो जो विधि लिखदीन्हा
तब मारन कहँ उद्यत भयऊ * घन समान कपि गर्जत भयऊ

यह विचार कर प्रभु ने हनुमानजी का स्मरण किया विधाता ने जो लिखा है, वही होगा। जब वह मारने को तैयार हुआ, तब मेघ के समान कपि गरजे।

निसिचर सकल त्रसित भे भारी * कहहिं वचन निज हृदयँ बिचारी
अहिरावनु भल कीन्ह न काजू * आनेउ कपट वेष सुरराजू

सारे राक्षस भयभीत होगये। वे अपने हृदय में विचार कर कहने लगे—अहिरावण ने भला कार्य नहीं किया कि कपट वेष में देवताओं के स्वामी को हर लाया।

तेहि ते देवि क्रुद्ध भइ आजू * अब भा सब कर परम अकाजू
सभय भए सब निसिचर झारी * दुसरें कपि गर्जेउ अति भारी

इसी से देवी आज क्रुद्ध होगई है, अब सबका परम अहित होगया। दूसरी बार कपि ने अत्यन्त घोर गर्जना की तो सब राक्षस व्याकुल होंगये।

दोहा—प्रगट रूप करि पवनसुत, अट्टहास गम्भीर।
अति भय त्रसित निसाचर, सुनहु उमा मतिधीर ॥ १६ ॥

अपना स्वरूप प्रकट करके हनुमानजी ने गम्भीर अट्टहास किया। हे धीर-बुद्धि उमा ! सुनो, निशाचर अत्यन्त डर गये।

डगमग भे निसिचर अभिमानी * मारुत बह जिमि सागर पानी
तेहि छिन कपि लीन्हे दोउ भाई * हते लागि निसिचर समुदाई

अभिमानी राक्षस विचलित हो गये, जैसे पवन के बहने से समुद्र का पानी चंचल हो जाता है उसी क्षण कपि ने दोनों भाइयोंको उठा लिया और वे राक्षस-समुदाय को मारने लगे।

खड्ग छुड़ाय लीन्ह हनुमाना * काटै लाग भुजा सिर नाना
काहुहि नाक कान बिनु कीन्हा * धरि पद डारि अनलमहुँ दीन्हा

हनुमानजी ने खड्ग छुड़ाली और अनेकों भुजा तथा सिर काटने लगे। किसी को बिना नाक का कर दिया, किसी को पकड़ कर पैर से रौंद कर अग्नि में फेंक दिया।

निज लँगूर की कोटि बनाई * जेहि ते कोउ भागि नहिं जाई
इहि विधि सब निसिचर संहारे * अहिरावण तब बचन उचारे

अपनी पूंछ का घेरा बना दिया, जिससे कोई भाग न जाय। इस प्रकार सब राक्षस मार डाले, तब अहिरावण बोला—

रे कपि ढीठ त्रास नहिं तोही * अहिरावन मैं जान न मोही
जम्बुमालि कहँ जिमि तुम मारा * अरु रावनसुत हतेउ विचारा

रे ढीठ बन्दर ! तुझे डर नहीं है । मैं अहिरावण हूँ, तू मुझे नहीं जानता ? जम्बू-माली को और बेचारे रावण-पुत्र को तूने मार डाला है ।

दोहा—कालनेमि सम मैं नहीं, सुनहु वचन हनुमान ।
असकहि खड़ग प्रहार किय, कपि तनु वज्र समान ।।१७।।

रे हनुमान ! सुन, मैं कालनेमि के समान नहीं हूँ । ऐसा कहकर कपि के शरीर पर तलवार से प्रहार किया, किन्तु हनुमानजी का शरीर तो वज्र के समान है ।

लै असि ताहि पवनसुत मारा * काटा सीस अनल महँ डारा
पूर्णाहुति करि तब ता सीसा * पुनि प्रभु को लै गयउ कपीसा

पवन-पुत्र ने तलवार छीनकर उसे मार डाला सिर काट कर अग्नि में डाल दिया । उस सिर को पूर्णाहुति करते कपिराज प्रभु को ले चले ।

मकरध्वज तब विनती कीन्हा * बन्धन छोरि राजु तेहि दीन्हा
इहँ कर राजु करहु तुम ताता * भजेउ सदा मम प्रभु दोउ भ्राता

तब मकरध्वज ने विनती की । उन्होंने उसको बन्धन से मुक्त करके राज्य दिया और कहा—हे तात ! यहां का राज्य करो और मेरे प्रभु दोनों भाइयों का सदैव भजन करो ।

अस कहि कपि निज दल महँ आवा * हरषेउ कटक समर सुख पावा
मृतक सरीर प्रान फिर आवा * गइ मनि फनिक मनहुँ फिर पावा

ऐसा कहकर कपिराज अपने दल में आये । सेना युद्ध में सुख पाकर हर्षित हुई, जैसे मृतक शरीर में पुनः प्राण लौट आयें हों और सर्प मानो खोई मणि पा जाय ।

बिछुरा मिलै बहुरि जिमि आई * तिमि सब भए निरखि दोउ भाई
मिलेउ कपीस चरन धरि माथा * पुनि पद परेउ निसाचर नाथा

जैसे बिछुड़ा हुआ (प्रेमी) फिर आकर मिल जाय, वैसे ही सब दोनों भाइयों को देख कर सुखी हुए । सुग्रीव भी उनके चरणों में मस्तक रखकर मिले, फिर विभीषण ने भी चरणों पर मस्तक रखा ।

दोहा—जामवन्त अङ्गद सहित, मिले भालु अरु कीस ।
सनमाने प्रिय वचन कहि, लषन कौसलाधीस ।।१८।।

जामवन्त और अङ्गद सहित सब भालू और बानर मिले । तब श्रीरामजी-लक्ष्मणजी ने प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया ।

बहुरि सबन्हि भेंटे हनुमाना * कहहि तात तुम राखेउ प्राना
देवन्ह सुमन वृष्टि तब कीन्ही * प्रमुदित हृदय दुन्दुभी दीन्ही

फिर सबने हनुमानजी से भेंट की । वे कहते हैं—हे तात ! तुमने प्राणों की रक्षा की । तब देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की और प्रसन्न हो दुन्दुभी बजाई ।

कटक सहित हरषे दोउ भाई * तेहि अवसर सुख कहि किमि जाई

वहाँ दसानन सब सुधि पाई * दूतन्ह कही खबर सब जाई

सेना सहित दोनों भाई हर्षित हुए। उस अवसर का आनन्द किस प्रकार कहा जाय? वहाँ रावण ने सब समाचार पाये। दूतों ने जाकर खबर सुनादी।

अहिरावन कर बध सुनि काना * भयउ तेजहित अति दुख माना
बचन बान सम लागेउ ताहीं * संभ्रम मूछित परेउ महि माहीं
मुख सुखात लोचन जल बहई * बचन न आव पुनि पुनि सिर धुनई

अहिरावण का वध कानों से सुनकर तेजहीन होकर उसने अत्यन्त दुःख माना। वे समाचार उसे बाण के समान लगे। वह चकराकर मूछित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुंह सूख गया नेत्रों से जल बहने लगा। उसका बोल नहीं आता और बारम्बार सिर धुनता है।

दोहा—मयतनया तब आइ करि, बहु प्रकार समझाय।
मानत मूढ़ न कालबस, परम क्रोध कहँ पाय ॥१९॥

तब मन्दोदरी ने आकर उसे अनेक प्रकार से समझाया, परन्तु वह मूढ़ काल बश नहीं माना और अत्यन्त क्रोधित हुआ।

॥ इति-क्षेपक अहिरावण की कथा ॥

* अथ—क्षेपक नारान्तक की कथा *

नारि बचन सुन तेहि रिस बाढ़ी * उठि बैठेउ धरि धीरज गाढ़ी
तेहि अवसर मन्त्री इक आवा * करि आदर दसमुख बैठावा

स्त्री के वचन सुनकर उसको क्रोध बढ़ा और अत्यन्त धैर्य धरकर उठ बैठा। उस समय एक मन्त्री आया। रावण ने आदर पूर्वक उसे बैठाया।

सिन्धुरनाद नाम बलवाना * वृद्ध ज्ञानमय परम सुजाना
सदा बिभीषण कर सँग ठयऊ * कबहुँ दसमुख सभा न गयऊ

उस मन्त्री का नाम 'सिंधुरनाद' था। वह बलवान, वृद्ध, परम ज्ञानी और चतुर था। वह सदा विभीषण के साथ रहता था और रावण की सभा में कभी नहीं गया था।

आवा सो भल अवसर पाई * कहेसि नीति रावणहि बुझाई
ज्ञान कथा दसमुख न सुहानी * तब बहिराइ बात कहि आनी

वह अच्छा अवसर जानकर आया और रावण को समझाकर नीति कहने लगा। रावण को ज्ञान-कथा अच्छी न लगी तो वह बहलाकर दूसरी बात कहने लगा—

अक्षादिक सुतन बल दूना * कस सुरारि मन मानहुँ ऊना
सचिव बचन सुनि दसमुख कहई * अब हमरे कुल को भट अहई

हे देव-शत्रु! मन में ग्लानि क्यों मानते हो? अभी तो अक्षय आदि पुत्रों से दूने बलवान पुत्र बाकी हैं। मंत्री का वचन सुनकर रावण बोला—अब हमारे कुल में कौन से योद्धा शेष हैं।

अपने मन महँ करेहुँ विचारा * है नारान्तक तनय तुम्हारा
मूल अभुक्त माहिं भा जोई * दियो बहाय मरा नहिं सोई

मन्त्री बोला–अपने मन में विचार करो । तुम्हारा पुत्र नारान्तक है, जो अभुक्त मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ था, जिसे तुमने बहा दिया था, वह मरा नहीं है ।

शम्भु प्रसाद ताहि कछु भयऊ * पुनि विहवाबल नृपति हयऊ
कोटि बहत्तर एक प्रभाऊ * राजा प्रजा भेद नहिं काऊ

जिसके ऊपर शिवजी की कुछ कृपा हुई है । वह विहवावलपुर में राज्य करता है । वहाँ बहत्तर करोड़ राक्षस एक ही प्रभाव के हैं, राजा-प्रजा में कुछ भेद नहीं ।

दोहा–तासु मन्त्र सुनि दसवदन, हृदय प्रमोद प्रमान ।
धूम्रकेतु कहँ बोलि ढिग, समुझावत सनमान ॥ १ ॥

रावण ने उसके वचन सुनकर अति प्रसन्न होकर धूम्रकेतु दूत को अपने पास बुलाया और आदर पूर्वक समझाकर भेजा ।

नारान्तक उत्पत्ति यथा विधि * पुर विहवाबल गा कवनी सिधि
अति सुन्दर शुचि यह सम्वादू * चित थिर करि सुनिऐ उरगादू

नारान्तक की उत्पत्ति कैसे हुई ? वह विहवावलपुर में कैसे गया ? यह सम्वाद अत्यन्त पवित्र और सुन्दर है । हे गरुड़जी ! उसे चित्त स्थिर करके सुनिये–

पुर महँ उपजे खल इक भाथा * तव सुनि हर्ष निसाचर नाथा
निज गुरु बोलि चरणसिर नाई * बूझा मुदित सो कलश धराई

वे सब दुष्ट (बहत्तर करोड़) लङ्का में एक साथ पैदा हुए । यह सुनकर रावण बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने अपने गुरु शुक्राचार्य को बुलाकर चरणों में सिर नवाकर लग्न मुहूर्त पूछा ।

भृगुनन्दन तब तेहि सन कहेऊ * आजु बाल सब मूलहिं भयऊ
सत्य कहत दसमुख तुम पाहीं * भए आजु ते तब पुर माहीं

तब शुक्राचार्यजी ने उनसे कहा–आज सब बालक मूल नक्षत्र में हुए हैं । हे रावण ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ आज जितने बालक तुम्हारे नगर में उत्पन्न हुए हैं ।

वे सुत सब निजनिज पितु घाती * सुख देखत सुनु सुर आराती
घर राखे धन सहित विनाशा * होइ अवशि नहिं उबरन आशा

वे सभी बालक अपने-अपने पिता के नाशक हैं । हे देव-शत्रु ! सुनो, उनका मुख देखते ही और घर में रखते ही धन सहित विनाश हो जायगा, फिर उबरने की आशा नहीं है ।

दोहा–सपदि करहु सब काज यह, लावहु बाल बटोरि ।
राखे होइहि हानि अति, कह दश वदनु बहोरि ॥ २ ॥

तब रावण ने कहा—सब लोग वह काम जल्दी करो कि सब बालकों को बटोर लाओ, उनके रखने में अत्यन्त हानि होगी।

सेवक दशमुख आयसु पाई * धाए तुरत चरण सिर नाई
रावण आयसु नगर पुकारी * सुनहु सकल पुर नर अरु नारी

रावण की आज्ञा पाकर सेवक तुरन्त उनके चरणों में सिर नवाकर दौड़े। रावण की आज्ञा सारे नगर में फैला दी और कहा—हे नगर के पुरुष और स्त्रियो! सुनो—

आजु अभुक्त मूल भए बालक * डारहु सागर सब कुल घालक
बोरे सबनि बाल इक ठाईं * भावी वश मधुमाखी नाईं

आज अभुक्त मूल में सब बालक हुए हैं, उन सब कुल-नाशकों को समुद्र में डाल दो। होनहार-वश सबने बालकों को एक ही जगह मधु-मक्खियों की तरह डाल दिया।

पाप अधार बृक्ष बट बोरा * पीवन लागे क्षीर चहुं ओरा
पीवत क्षीर शब्द भर साती * पुष्ट भए खल निसिचर जाती

वे सब पाप के मूल बट के पत्तों से चिपटकर दूध पीते रहे। सात वर्ष तक दूध पीकर दुष्ट निशाचरों के बालक पुष्ट होगये।

पुनि सब एक सङ्ग तहँ जाई * सुरसरि सङ्गम भा जेहि ठाँई
तहँ शिव मन्दिर परम सुहावा * सबनि बिलोकि मुदित सिरनावा

फिर वे सब वहाँ गये, जहाँ गङ्गाजी का सङ्गम था। वहाँ अत्यन्त सुहावना शिवजी का मन्दिर था, उसे देखकर सबने प्रसन्न होकर सिर नवाया।

दोहा—जानति नहिं उत्पत्ति निज, मन महँ कहत विचार।
ते गहि ढिंग जाकर विदित, रवि ते छठवाँ बार॥ ३॥

वे अपनी उत्पत्ति नहीं जानते हैं और मन में विचार करते हैं। वे उनके पास गये, जिनका रविवार से छटवाँ वार विदित है। अर्थात् शुक्राचार्य के पास गये।

हरि अरिगुरु निज शिष्यन्ह चीन्हा * करत प्रणाम आशिषा दीन्हा
कह निज नाम सबनि समुझावा * कुलगुरु जानि सुविनय सुनावा

दैत्यों के गुरु ने अपने शिष्यों को पहिचान लिया और प्रणाम करने पर आशिष दिया। शुक्राचार्यजी ने अपना नाम कहकर सबको समझाया। उन्होंने कुलगुरु जान सुन्दर विनती की।

निज उत्पत्ति बूझी शिर नाई * भृगुनन्दन सो सकल सुनाई
मुनि आपन वृत्तान्त लजाने * लखि रुख भृगुनायक सनमाने

उन्होंने सिर नवाकर अपनी उत्पत्ति पूछी तो शुक्राचार्यजी ने सब कथा कह सुनाई। वे अपना वृत्तांत सुनकर लज्जित होगये। उनकी चेष्टा देखकर शुक्राचार्य ने उनका सम्मान किया।

करि परितोष मन्त्र गुरु दीन्हा * शिक्षा पाइ गमन तिन्ह कीन्हा

ज्ञान लहेउ सब संसय त्यागी * भए विरंचि पद तब अनुरागी

उनको सन्तोषित करके गुरु ने मन्त्र दिया । शिक्षा पाकर वे चले गये । सबने सन्देह त्यागकर ज्ञान प्राप्त किया, तब ब्रह्माजी के चरणों के प्रेमी हुए ।

निराहार बैठे एक आसन * वर्ष सहस तप किय उरगासन
श्वास धारि कृत बरष हजारा * रहे ऊर्ध्व मुख बिना अहारा

वे एक आसन से निराधार बैठे रहे । इस भाँति हजार वर्ष तप किया फिर केवल स्वाँस धारण करके बिना भोजन किये हजार वर्ष तक ऊर्ध्व मुख से खड़े रहे ।

दोहा—एक पाद पुहुमी दिए, अपर अंग अनयास ।
सकल पुष्ट तनु मनु हरष, सपनेहुँ भूख न प्यास ॥ ४ ॥

एक पैर पृथ्वी पर रक्खे, अन्य सभी अंग आधार रहित, सभी शरीरों से पुष्ट और मन में प्रसन्न हैं । उन्हें स्वप्न में भी प्यास नहीं है ।

तप अति उग्र विचार विधाता * तिन्ह ढिग गमने मन मुसुकाता
हंसारूढ़ कमण्डलु हाथे * श्वेत मुकुट शुचि चारिउ माथे

उनके तप को अत्यन्त उग्र विचारकर ब्रह्माजी मन में मुस्कराते हुए उनके निकट गये । वे हंस पर चढ़े, कमंडल हाथ में लिये, चारों माथों पर पवित्र श्वेत मुकुट धारण किये हैं ।

आनन चारि नयन बस नीके * चारिउ भाल भस्म शुभ टीके
महिमाकिमिप्रभु सबजगअयना * भाष्यो दयासदन तब वयना

ब्रह्माजी के चार मुख, सुन्दर आठ नेत्र, चारों मस्तक पर भस्म के श्वेत टीके हैं । जगत के निवास स्थान को क्या उपमा दी जाय ? तब दयानिधान यह वचन बोले—

मागहुँ वर जो सब मन भावा * सुनउ सबनिविधिपद सिरनावा
नाथ चहत हम यह वरदाना * हमहिं न कोउ जीतै मैदाना

जो सबके मन भाये, यह वर माँगो । यह सुनकर सबने ब्रह्माजी के चरणों में सिर नवाये, वे बोले—हे नाथ ! हम यह वरदान चाहते हैं कि हमें कोई भी संग्राम में न जीते ।

एवमस्तु विधि कहेब बिचारी * आनिपाणि नहिं मृत्यु तुम्हारी
हरिसुत है तुम्हार गुरु भाई * तेहि सन करेउ न कबहुँ लराई

ब्रह्माजी ने विचारकर कहा—ऐसा ही होगा, किसी के हाथ से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी । केवल सुग्रीव के पुत्र से मत लड़ना, क्योंकि वह तुम्हारा गुरु भाई है ।

दोहा—जौं तेहि सन करिहौ समर, मरिहौ वचन प्रमान ।
एकहि कहँ वरदान दै, यह कह कृपानिधान ॥ ५ ॥

उससे यदि तुम युद्ध करोगे तो मारे जाओगे, मेरा यह वचन सत्य है । एक नारान्तक को यह वरदान देकर कृपानिधान ब्रह्माजी ने कहा—

दियउ नारान्तक कहँ बरदाना * रहे अपर जे धरि उर ध्याना
तिन्ह सन बरंब्रूहि विधि कहेऊ * सुनत प्रमोद सबनि उर लहेऊ

वह वरदान नारान्तक को दिया। अन्य जो हृदय में ध्यान धर रहे थे, उनसे ब्रह्माजी ने कहा कि वर माँगो। सुनकर वे सब मनमें आनन्दित हुए।

सुनि विधि गिरा सबनि कह स्वामी * देहु एक बर अन्तरयामी
देवासुर संग्रामहि माँहा * जीतहिं हम यह बर सुरनाँहा

ब्रह्माजी की वाणी सुनकर सबने यही कहा कि हे स्वामी! आप अन्तर्यामी हैं, यह एक वर दीजिए कि देवासुर संग्राम में हमारी विजय हो। हम आपसे यह वरदान माँगते हैं।

अस कहि रहे दनुज सिर नाई * तिन्ह सन कहेउ बिरंचि बुझाई
तुम्ह अजीत सब सन सब भाँती * बानर भालु त्यागि दुइ जाती

ऐसा कहकर वे राक्षस सिर नवाकर खड़े रह गये। ब्रह्माजी ने समझाकर उनसे कहा बानर और भालू, दो जातियों को छोड़कर तुम सबसे अजित रहोगे।

यह बिधि सब कहँ दै बरदाना * ब्रह्मलोक गे ब्रह्म सुजाना
शिव प्रसाद नारान्तक पावा * अन्तरिक्ष पर सपदि बसावा

इस प्रकार वरदान देकर सुजानी ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को चले गये। तब शिवजी की कृपा से नारान्तक ने आकाश में शीघ्र ही नगर (विहवावलपुर) को बसाया।

दोहा—ऋतु रवि गुने कोटि सत, भवन बसे इक ठौर।
जात रूपमय नग जटित, अति शोभित चहुँ ओर॥ ६॥

एक ही स्थानपर बहत्तर करोड़ सोने तथा मणि-जड़ित घर बने हुए चारों ओर शोभा दे रहेहैं।

हरि प्रेरित तेहि काल महुँ, दधिवल पहुँचा आय।
पुर बिहवावल निरखि सो, कछु दिन रहा लुभाय॥ ७॥

भगवान की इच्छा से उस समय वहाँ दधिवल नामक बानर आया। विहवावलपुर को देखकर मोहित होकर कुछ दिन वहाँ रहा।

भावीबस निसिचर सँग कीशा * वर्ष एक पढ़ सुनहुँ मुनीशा
गुरु इक बार कहेउ रिसियाई * हतिहसि तें आपन गुरु भाई

हे मुनिराज! सुनिये होनहार वश वह बानर राक्षसों के साथ एक वर्ष तक पढ़ता रहा। एक बार गुरु ने क्रोधित होकर कहा—रे मूर्ख! तू अपने गुरु-भाई को मारने वाला होगा।

बिनु अघ सुनि दधिबल गुरुशापा * बिदा माँगि गमना करि दापा
मारग मिले देवऋषि तेही * गहेउ सुकण्ठ सुमन पग नेही

बिना अपराध के गुरु का श्राप सुनकर दधिवल बिदा माँगकर अभिमान सहित वहाँ से चला आया। मार्ग में उसे नारदजी मिले। सुग्रीव ने प्रेम सहित उनके चरण पकड़े।

लखि आशिष दै बूझा तेही * दधिबल कवन काज गे जेही
तव नारान्तर पुर प्रभुताई * दधिबल नारद मुनिहि सुनाई

उसे देखकर मुनि ने आशीर्वाद देकर पूछा-दधिबल इस समय किस काम से, कहाँ गये थे ? तब दधिबल ने मुनि को नारान्तक का ऐश्वर्य सुनाया ।

सुनी निसाचर सम्पत्ति भारी * रहे ब्रह्मसुत हृदयँ बिचारी
क्षणिक देवऋषि किय अनुमाना * बार बार सुमिरे भगवाना

राक्षस की अधिक सम्पत्ति सुनकर नारदजी हृदय में विचार करने लगे । एक क्षण तक विचार कर मुनि ने बारम्बार भगवान का स्मरण किया ।

दोहा—दधिबल ते नारद कहेउ, सुनहु तात चितलाइ ।
तनु धरि जे हरिभक्त नहिं, जन्म बाद जग जाइ ॥ ८ ॥

दधिबल से नारदजी बोले-हे तात ! मन लगा कर सुनो । जो शरीर पाकर भगवान के भक्त नहीं हुए उनके जन्म जगत में वृथा हो गये ।

यह विचारि भजु रामहि ताता * उपजेउ ज्ञान सुनत मुनि बाता
ऋषि पद परसि आशिषा पाई * कपिपति सुत गमनेउ हरषाई

हे तात ! यह विचाकर श्रीरामजीको भजो । मुनिकी बात सुनकर दधिबलको ज्ञान उत्पन्न हुआ । तब वह ऋषि के चरणों को स्पर्श करके और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न होता हुआ चला ।

सपदि कीस तब पहुँचा तहँवा * पयनिधि मध्य रुचिरगिरि जहँवा
धवलगिरि तेहि नाम सुनावा * सुभग देखि कपिवर मन भावा

शीघ्र ही वह बानर वहाँ पहुँचा, जहाँ सागर के बीच में सुन्दर पर्वत था । धवलगिरि नामक मनोहर पर्वत को देखकर श्रेष्ठ कपि मन में बड़ा प्रसन्न हुआ ।

गौरि गिरीस सुमरि रघुराई * कीन्ह निवास मनहि हर्षाई
नारद ताहि देइ उपदेशा * गए विरंचि धाम खग ईशा

श्रीशिव-पार्वती तथा श्रीरघुनाथजी का स्मरण करके वह मनमें प्रसन्न होकर वहाँ पर रहने लगा । नारदजी उसे उपदेश देकर ब्रह्मलोक चले गये ।

उत दशमुख सुत विद्या पाई * जहाँ तहाँ कर विविध लराई
रावन दूत सभा को देखी * मन महँ चकित भयो विसेषी

उधर रावण का पुत्र नारान्तक विद्या पाकर जहाँ-तहाँ लड़ाई करने लगा । रावण का दूत (वहाँ आया और) सभा देखकर चकित हुआ ।

याम दिवस गत अवसर पावा * नारान्तक कहँ शीश नवावा
दीन्ह पत्रिका पद सिर नाई * कुशल तासु बूझेउ हर्षाई

एक पहर दिन बीतने पर अवसर पाकर उसने नारान्तकको शीश नवाया । चरणोंमें सिरनवा-

कर रावण को पत्रिका दी और प्रसन्न होकर सबकी कुशल पूछी।

दोहा—नारान्तक निज कुशल करि, बूझा दसमुख हेतु।
समाचार गढ़ लङ्क कर, बरणेउ दूत सचेतु॥ ९॥

नारान्तक ने अपनी कुशल कहकर, रावण की कुशल पूछी। दूत ने सचेत होकर लंका गढ़ के समाचार वर्णन किये।

कहेउ बजाहु निसान घन, सजहु सेन चतुरङ्ग।
जन्म भूमि जावा चहहुँ, पितु चारन के सङ्ग॥ १०॥

तब उसने कहा—घमासान नगाड़े बजाओ और चारों प्रकार की सेना सजाओ। मैं पिता के दूत के साथ जन्म-भूमि को जाना चाहता हूँ।

आयसु दीन्ह नारान्तक राजा * लगे निसाचर साजन साजा
सुभग बाज गज उष्ट्र नाना * रथ खच्चर खेचर बहु याना

राजा नारान्तक की आज्ञा पाकर राक्षस अपने साज सजाने लगे। सुन्दर घोड़े, हाथी ऊँट, रथ, खच्चर और बहुत से आकाश विमान।

नाना अस्त्र शस्त्र गहि पानी * निसिचर अनी न जाइ बखानी
ते सब संजुग साज सजाई * बिबिध निशान हने हर्षाई

तथा नाना प्रकार के शस्त्र हाथ में लिए राक्षसों की सेना वखानी नहीं जाती। उन्होंने एकत्रित होकर साज सजाकर प्रसन्न होते हुए अनेक निशान बजाये।

कन्त जात निश्चय जियँ जानी * विन्दुमती निज चित अनुमानी
राम विरोध न यह कल्याना * महूँ संग अब करहुँ पयाना

स्वामी का जाना निश्चय जानकर उसकी स्त्री विन्दुमती ने मनमें विचारा कि श्रीरामजी से विरोध करने में इनका भला नहीं है। अतः अब मैं भी स्वामी के साथ चलूंगी।

भूषन बसन सुअंग बनाई * कन्त चरन गहि विनय सुनाई
सास श्वसुर दर्शन हित नाथा * हमहूँ चलव प्राणपति साथा

सुन्दर अंगों में वस्त्राभूषण सजाकर उसने पति के चरण पकड़कर विनती की—हे प्राण-नाथ! सुनो, सास-श्वसुर के दर्शनों के लिए मैं भी आपके साथ चलूंगी।

दोहा—दशमुख सुत सुन तिय वचन, हृदय हरषि सुख मानि।
कहेउ चलहु सब सखिन सह, प्रमुदित छाँड़ि ग्लानि॥ ११॥

रावण-पुत्र ने पत्नी की बात सुनकर हृदय में अत्यन्त सुख माना और कहा—सब संकोच छोड़कर सखियों सहित प्रसन्न होकर हमारे साथ चलो।

नारान्तक लङ्का तुरत, दल समेत नियरान।

दिग योजन दल जब रहेउ, सुनि मुनीश सुज्ञान ॥ १२ ॥

इस प्रकार नारान्तक तुरन्त ही अपने दल सहित लंका के निकट आया । हे ज्ञानीमुनि ! जब चालीस कोस दल रह गया, तब जो कुछ हुआ सो सुनो ।

यहाँ कृपालु रमेश खरारी * असित जलद सम सैन निहारी
प्रभु सर्वग्य नीति हित हेतू * सचिव बोलि कह रघुकुल केतू

यहाँ लक्ष्मीपति कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ने काले बादलों के समान सेना को आते देखा । प्रभु सर्वज्ञ हैं, तथापि नीति का पालन करने के लिए मन्त्रियों को बुलाकर बोले–

सखा विलोकहु दक्षिण ओरा * गर्जत घन आवत नहिं थोरा
उमा राम सब अन्तरयामी * चरित हेतु पूछा अस स्वामी

हे सखा ! दक्षिण की ओर देखो, बहुत से बादल गर्जते हुए आ रहे हैं । हे उमा ! श्री रघुनाथजी अन्तर्यामी हैं, किन्तु यह बात कौतुक के हेतु स्वामी ने पूछी ।

राम वचन सुनि दसमुख भ्राता * कह हँसि गहि प्रभु पद जलजाता
देव देव नहिं दल जलवाहा * अहहिं नारान्तक निसिचर नाहा

श्रीरामजी के वचन सुनकर विभीषण हँसकर और प्रभु के चरण कमल पकड़कर बोले– हे स्वामी ! यह बादलों का दल नहीं है, वरन् राक्षसों का राजा नारान्तक है ।

विहवाबलपुर बसत गुसाँई * पठवा तेहि दसकन्ध बुलाई
आवत धूम्रकेतु चर संगा * करत कुलाहल नाद उतंगा

हे गोसाँई ! यह बिहवाबलपुर में रहता है, इसे रावण ने बुला भेजा है । यह धुम्रकेतु दूत के साथ अत्यन्त कोलाहल और उच्च शब्द करता हुआ आता है ।

दोहा–तेहि सँग गुणी अनेक प्रभु, गावत हनन निशान ।
सेन सँग चतुरँग खल, डोलत बिबिध दिसान ॥ १३ ॥

हे प्रभु ! इसके साथ अनेक गुणी भी है जो गाते और नगाड़े बजाते हैं । वे दुष्ट चतुरंगिनी सेना (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल) लिए चारों दिशाओं में फिरते हैं ।

उत नारान्तक सेन समेता * गयउ जहाँ दसकन्ध निकेता
सुतहि सुरारि मिला पुलकाई * कुशल बूझि पैठेउ हर्षाई

उधर नारान्तक सेना सहित रावण के महल को गया । रावण, पुत्र से पुलकित होकर मिला और कुशल पूछकर बड़ी प्रसन्नता से बैठाया ।

देखि नारान्तक की समुदाई * दसमुख शठ सब सोच दुराई
जेहि विधि हरि लावा जगमाता * ताहि आदि कृत कृत बिख्याता

नारान्तक की सेना और ऐश्वर्य देखकर मूर्ख रावण ने सब सोच भूला दिया और जिस प्रकार से जगत-जननी जानकीजी को हर लाया था, वह वृतान्त आरम्भ से सुनाया ।

कुम्भकरण घननाद निपाता * कहि बिलखा अहिरावन घाता
पितु मुख मलिन नारान्तक देखा * बोला खल तब गर्व विसेषा

कुम्भकर्ण मेघनाथ और अहिरावण का वध कहते हुए वह व्याकुल हो गया। नारान्तक ने पिता का मुख मलिन देखा तो यह दुष्ट बड़े गर्व से बोला–

तजहु सकल संसय बिबुधारी * करिहउँ प्रात समर अति भारी
चमू कीश बिनु क्षिति कर ताता * धरिहौं तापस होत प्रभाता

हे देव-शत्रु ! समस्त संदेह को त्याग दो, प्रातःकाल मैं बड़ा भारी युद्ध करूँगा। प्रातःकाल होते ही पृथ्वी को बानरों से रहित करके दोनों तपस्वियों को पकड़ लाऊँगा।

दोहा–सुनत बीसभुज सुत बचन, बार बार उर लाइ।
काग करावत नृत्य जड़, गुणी समूह बोलाइ ॥ १४ ॥

पुत्र के बचन सुनते ही रावण ने उसे बारम्बार हृदय से लगाया। वह मूर्ख गुणियों को बुलाकर नृत्य कराने लगा।

सयन करहु कहि सुतहि निशाचर * उठा आप मतिमन्द अघाकर
सो रजनी गत भयउ प्रभाता * जागे रघुवर त्रय जग त्राता

फिर वह मूर्ख, पापों का घर, राक्षस, रावण-पुत्र से 'तुम भी जाकर शयन करो' यह कहकर स्वयं उठा। जब रात्रि बीत जाने पर भोर हुआ तो तीनों लोकों के रक्षक श्रीरघुनाथजी जागे।

कपि घेरा गढ़ यह सुनि काना * रावन सुत तब निपट रिसाना
साजि विपुल दल हनत निसाना * गढ़ ते चला निकर बलवाना

तब बानरों ने लंका को घेर लिया, यह सुनकर नारान्तक बड़ा क्रोधित हुआ, वह महाबली अपनी अपार सेना सजाकर नगाड़े बजाकर लंका से निकला।

चारि द्वार करि कठिन लराई * विशिख बरषि कपिदल बिचिलाई
निकरे निसिचर गढ़ ते जैसे * शलभ समूह शैल ते जैसे

चारों द्वारों पर संग्राम करके बाणों की वर्षा करके उसने बानर सेना को विचलित कर दिया। राक्षस लंका से इस प्रकार निकले, जैसे पर्वत से टीढ़ी-दल निकलता हो।

मारुतसुत देखा कपि भाजे * कटकटाइ अति विक्रम गाजे
कपि लँगूर चहुँ ओर घुमाई * रोके खल निसिचर समुदाई

हनुमानजी ने देखा कि बानर भागने लगे तो वे कटकटा कर अमित बल से गर्जे। चारों ओर अपनी पूँछ घुमाकर दुष्ट राक्षसों को निकलने से रोका।

पटकत महि निसिचर फल बेलू * केतिक देत विदिस दिसि मेलू
इक दिसि इमि हर कृत संग्रामा * दिसि दूजी अंगद बलधामा

बेलके फलोंके समान राक्षसों को पृथ्वी पर पटकने लगे कितनोंको दिशा-विदिशा में फेंक दिया

एक दिशा में हनुमानजी इस प्रकार लड़ते हैं और दूसरी दिशा में बलधाम अंगदजी हैं।

दोहा—निसिचर सेना उदधि सम, मन्दर इव दोउ कीश।
मथत देखि जय रतन लगि, हँसे सकल सुर ईश ॥१५॥

राक्षसों की सेना समुद्र के समान और दोनों बानर-योद्धा मंदराचल के समान हैं। जो सेना-रूपी सागर को जयरूपी रत्न निकालने के लिए मथते हैं। यह देखकर श्रीरामजी हँसे।

छन्द—इमि निरखि पराक्रम करत कीश। भा क्रोध परम रजनीचरीश
करि प्रलय क्रन्द सम घोर शोर। धरि कुधरि शस्त्र धाये कठोर

इस प्रकार बानरों को बड़ा पराक्रम करते देखकर नारान्तक को बड़ा क्रोध हुआ। प्रलयकाल के समान और बड़ा भयंकर शब्द किया और राक्षस कठोर शिला व शस्त्र लेकर दौड़े।

इक बार मारकर सर समूह। किये विकल अस्त्र नहनि कीश जूह
कोउ देत दुहाई लषण राम। कोउ कहत विधाता भयो बाम

उसने एक ही बार में बाणों के समूह मारकर और अस्त्र प्रहार करके बानरों के झुण्ड व्याकुल कर दिये। वे कोई तो श्रीराम-लक्ष्मण को दुहाई देने लगे व कोई कहने लगे कि विधाता विपरीत हो गया है।

यहि बीच नारान्तक कर प्रधान। तेहि धाय गहेउ युवराज पान
बहु भट लपटाने अंग अंग। सब संग उड़ेउ अंगद उतंग

इसी बीच में नारान्तक के मन्त्री ने दौड़कर अंगद का पैर पकड़ लिया तथा और भी अनेक योद्धा उनके अंगों से लिपट गये। तब अंगदजी सबके साथ आकाश में जा उड़े।

नभ कीश कीन्ह कौतुक अभूत। रवि मंडल पहुँचे बालिपूत
अंगारे जारे तापन आँच। पुनि आयउ जहँ संग्राम राँच

आकाश में बालि-पुत्र ने विचित्र कौतुक किया कि सूर्य के निकट जा पहुँचे, जिससे तप कर उनके अंग जलने लगे (और वे नीचे गिर पड़े) तब अंगदजी युद्ध-भूमि में आये।

यह निरखि अपर यूथप पिशाच। फिर आइ गयउ सेना समाच
लै विषम शूल मारेसि प्रचण्ड। उर लाग आन अति कठिन दण्ड

यह देखकर राक्षसों का दूसरा सेनापति पिशाचों की सेना सहित वहाँ आ गया और एक बड़ा तीक्ष्ण त्रिशूल मारा। वह कठिन दण्ड उनकी छाती में आ लगा।

महि परेउ तनय तारा तुरन्त। लखि दौरि परेउ हनुमंत सन्त
सोइ शूल खैंचि मारेउ प्रचण्ड। उर लागि यूथपति सहस खण्ड

अंगदजी तुरन्त ही पृथ्वी पर गिर पड़े यह देखकर साधु हनुमानजी दौड़े और कठिन त्रिशूल खींचकर उसी को मारा, उसके छाती में लगते ही सेनापति के हजारों टुकड़े हो गये।

सब चरित सुनेउ रघुकुल दिनेश । कह जाहु बेगि अहिराज शेष
चले नाथ माथ शंकर मनाइ । धनुषवाण बाँधि बिकराल लाइ

यह समाचार सुनकर रघुनाथजी बोले-हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्र जाओ । लक्ष्मणजी मस्तक नवाकर, विकराल धनुष-बाण धारण करके और शिवजी को मनाकर चले ।

दोहा—विगत भई मूर्छा तुरत, बहुरि चले युवराज ।
लक्ष्मण चापिटँकोरि सुनि, फिरा कीशदल साज ॥ १६ ॥

जैसे ही मूर्छा दूर हुई कि तुरन्त अंगदजी फिर युद्ध करने चले लक्ष्मणजी के धनुष की टंकोर सुनकर बानरों का समाज लौटा ।

सुनत टँकोर सरासन निसिचर * बधिर भए नहिं सुनत शब्द पर
वर्षा बिसिख कीन्ह अहिनाथा * काटे पाणि पाँय बहु माथा

धनुष की टंकोर सुनकर निशाचर बहरे हो गये । दूसरा शब्द सुनाई नहीं देता था । लक्ष्मणजी ने बहुत से बाणों की वर्षा करदी । अनेकों हाथ-पैर और सिर काट डाले ।

इत कपि भालु विजय अभिलाषे * उतहि निसाचर जय हित राखे
मारुत सुत अङ्गद बलवीरा * समर बाँकुरे अति रणधीरा

इधर भालू और बन्दर विजय चाहते हैं, उधर राक्षस अपनी जीत के हेतु लड़ते हैं । श्री महावीरजी और अंगदजी बलवान, युद्ध में बाँके और रण में धैर्य धारण करने वाले हैं ।

सिंहनाद कीन्हा कपि दोऊ * भाजे कपि रण गाजे सोऊ
बहुतन्ह के सिर तोरि चलावही * निज भुजबल रावणहि जनावहीं

दोनों बानरों ने सिंहनाद किया, तब भागे हुए बानर भी युद्ध करने लगे । वे अनेकों के सिर तोड़कर फेंक देते हैं और रावण को अपना भुजबल दिखाते हैं ।

मरे निशाचर अमित निहारी * रावन सुवन कोप भा भारी
रथ समेत ऊपर नभ जाई * भयउ अदृश्य अस्त्र झरि लाई

अनेक निशाचरों को मरे देखकर नारान्तक को बड़ा क्रोध हुआ । वह रथ समेत आकाश में जाकर अदृश्य हो गया और अस्त्रों की झड़ी लगा दी ।

क्षण महँ करि मूर्छित कपि सयना * पुनि सठ गाजइ राजिव नयना
गर्जि सो मनहुँ मेघ समुदाई * कहन लागि कटु वचन रिसाई

क्षणमात्र में बानर-सेना को मूर्छित कर वह मूर्ख श्रीरामजी के पास गया और मेघों के समान गरज कर क्रोध से कड़ुवे वचन कहने लगा—

होउ सजग निसिचर कुलद्रोही * बंधु बैर लगि मारहुँ तोही

हे राक्षस-कुल-द्रोही ! सावधान हो, आज मैं भाई के बैर के कारण तुझे मार डालूंगा

दोहा—शूल एक तेहि छाँड़ेऊ, सो कर गहि ऋच्छेश।
धाइ तासु उर मारेऊ, भाँखि जयति अवधेश ॥१७॥

उसने एक त्रिशूल छोड़ा। उसे जामवन्त ने बीच में ही हाथ से पकड़ लिया और रघुनाथजी की जय कहकर दौड़कर उसकी छाती में मार दिया।

लागत शूल सो मूर्छित भयऊ * जामवन्त तब करि गहि लयऊ
बार अमित महि माँहि पछारा * बाँधि गाढ़ि बारू महँ डारा

त्रिशूल लगते ही वह मूर्छित होगया, तब जामवन्त ने उसे हाथ से पकड़कर अनेक बार पृथ्वी पर पछाड़ा और बाँधकर बालू में गाड़ दिया।

जागे सकल बलीमुख ऋच्छा * लगे करन रण निज निज इच्छा
जामवन्त यह हृदय विचारा * मरै नहीं यह खल मम मारा

उसी समय समस्त बानर भालू जागे और अपनी-अपनी इच्छानुसार युद्ध करने लगे। जामवन्त ने मन में विचार किया कि यह दुष्ट मारने से नहीं मरता।

विधि इच्छा पुनि ताहि उखारी * मुष्टि चारि उर माहि प्रचारी
गहि पद संचारा गढ़ माँहा * सपदि परा जहँ निसिचर नाँहा

विधाता की इच्छा से उसको उखाड़ लिया और ललकार कर चार मुक्के उसकी छाती में मारे और पांव पकड़कर लंका में फेंक दिया वहाँ वह रावण के सामने जाकर गिरा।

दसमुख तब हा हा करि धावा * नारान्तकहि हृदय निज लावा
निरखि निसाचर नहिं समुदाई * गढ़ महँ जे सब व्याकुल धाई

तब रावण 'हाय-हाय' करके दौड़ा और नारान्तक को हृदय से लगाया। उसको युद्ध में न देखकर राक्षसों के समूह घबड़ाकर किले के भीतर भागे।

दोहा—कपिगण समय प्रदोष लख, राम चरण धर माथ।
ठाढ़ भये सब तनु चितइ, दया दृष्टि रघुनाथ ॥१८॥

सन्ध्या समय देखकर बानर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में मस्तक नवाकर खड़े हुए, तब श्रीरघुनाथजी ने उन्हें दया-दृष्टि से देखा।

बिनु श्रम कीन्ह सब्रन्ह जगदीशा * गए स्ववास भालु अरु कीसा
होत प्रभात नारान्तक जागा * पितु विलोकि लज्जा रस पागा

श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें श्रम रहित कर दिया, तब रीछ-वानर अपने २ स्थानों को गये। प्रातःकाल होते ही नारान्तक जागा और रावण को देखकर लज्जित हुआ।

रथ चढ़ि तुरत इकाकी धावा * नभ पथ समर भूमि महँ आवा
कीस कटक यह मर्म न जाना * होय लोप कीन्हेसि झरि बाना

तुरन्त वह अकेला ही रथ पर चढ़कर दौड़ा और आकाश-मार्ग से युद्ध भूमि में आया। बानर सेना ने यह भेद नहीं जाना और अदृश्य होकर बाणों की झड़ी लगादी।

बाण एक सत वज्र समाना * छाँड़ेसि शठ जहँ कृपा निधाना
लागत विपुल कीस मुरझाने * बहुतक कायर देखि पराने

उस मूर्ख ने वज्र के समान सौ बाण, जहाँ श्रीरघुनाथजी थे, वहाँ छोड़े । बाण लगते ही बहुत से बानर मुरझा गये और बहुत से कायर देखते ही भागने लगे ।

ले सब वीर हाँक दै धावहिं * नभ महँ खोजत ताहि न पावहिं
तब सब वीर एक मति ठाना * लै गिरि तरु किए लङ्क पयाना

तब वे सब वानर-योद्धा ललकार कर आकाश में दौड़ते हैं, किंतु उसे वहाँ खोजने से भी नहीं पाते । तब सब वीरों ने एक सलाह की और वृक्ष व पर्वत लेकर लंका में गये ।

दस मुख भवन तासु कँगूरा * बैठे कपि पसारि लंगूरा
कर ते डारि देहिं पाषाना * बहुत दनुज भे चूर्ण समाना

रावण के महल के कंगूरों पर पूंछ फैलाकर बैठ गये । वे हाथों से पत्थर डाल देते हैं, उनसे बहुत से राक्षस चूर्ण हो गये ।

छन्द—भे चूर्ण निसिचर यूथ । गईं निसिचरीभय गूथ ।।
मुख बोन आरत दीन । भईं भवन रावन लीन ।।

राक्षसों के समूह चूर्ण हो गये, भय के मारे राक्षसियां भाग गईं, मुख से दुःख का आर्तनाद करती हुईं वे रावण के घर में घुस गईं ।

रिपु कीन कर पद हीन अगणित दीन बचन पुकारहीं ।
गढ़ ते निकरि निसिचरअखिलतख विपिन बाट सिधारहीं ।।
पीपर परण सम धरणि लङ्का कम्प षट कीशन करी ।
ताते कपाट निपाट अरि तिय केश खैंचत गहि परी ।।

अनेक शत्रुओं के हाथ पाँव तोड़ डाले । वे दीन वचन पुकारते हैं और दुष्ट रावण के गढ़ से निकलकर वन को भाग जाते हैं । उन छः बानरों ने लंका को पीपल के पत्तों के समान कम्पित कर दिया । घरों के किवाड़ तोड़ डाले और शत्रुओं की स्त्रियों के बाल पकड़ हाथों से खींचकर घसीटने लग गये ।

दोहा—भयउ कोलाहल लङ्क अति, नारान्तक सुनि कान ।
नभ ते स्यन्दन सहित शठ, प्रकट परम रिसियान ।।१६।।

लंका में अत्यन्त शोर हुआ । तब दुष्ट नारान्तक कानों से यह सुनकर आकाश से रथ सहित अत्यन्त क्रोध करके उतरकर प्रकट हुआ ।

निरखि दशा निज नारिनकेरी * कहन लगा कटु गिरा घनेरी
सठ आयउ संग्राम बिहाई * लरत तियन सँग लाज न आई

अपनी स्त्रियों की यह दशा देखकर वह अत्यन्त कड़ुवी वाणी से कहने लगा-मूर्खों संग्राम छोड़-

कर कहाँ चले, स्त्रियों के साथ लड़ने में तुम्हें लाज नहीं आती ?

सुनि मर्कट निभयउ सुख भारी * तजी निसाचरि दीन पुकारी
शिल प्रहार हय स्यंदन भञ्जा * आयुध तोरि सारथी गञ्जा

यह सुनकर बानरों को अत्यन्त सुख हुआ, उन्होंने आर्तनाद करती हुई राक्षसियों को छोड़ दिया। शिलाओं के प्रहार से उनके रथ और घोड़े चूर-चूर कर दिये तथा हथियारों को तोड़कर सारथी को मार डाला।

धरि पछारि रावण दृग देखा * व्याकुल कीशन्ह कीन्ह विषेखा
लागे पद गहि लखन फिरावन * नार्चाहं गाव रामयश पावन

रावण के देखते २ ही नारान्तक को पछाड़ दिया और बहुत व्याकुल कर दिया। वे राक्षसों के पैर पकड़कर फिराने लगे और श्रीरघुनाथजी का पवित्र यश गाने तथा नाचने लगे।

अस्ताचल रवि कीन्ह प्रवेशा * बन्दे चरण जात अवधेशा
भये विगत श्रम बानर भालू * अनुज सहित मनमुदित कृपालू

सूर्यदेव ने अस्ताचल में प्रवेश किया तो बानरों ने कौशलपति के चरणों में शीश नवाया। रीछ-बानर श्रम-रहित हो गये और लक्ष्मण सहित कृपालु श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए।

याम तीन यामिनि गति जबही * उत नारान्तक जागेउ तबहीं
शोक विवश मींजत दोउ हाथा * लज्जित हृदयँ निशाचर नाथा

जब तीन पहर रात्रि बीत गई तो उधर नारान्तक जागा। शोच के कारण राक्षसराज नारान्तक दोनों हाथ मींजता है और मन में लजाता है।

छन्द—लज्जि कै रथै सँभारि बाजि साजि हृष्ट पुष्ट।
शंक छाँड़ि शस्त्र माँड़ि गाढ़ वीर सङ्ग दुष्ट॥
भेरि दुन्दुभी गजि निशान गान काढ़ खैत कर्त।
धीर वीर अग्र गौन गाजि गाजि शब्द भर्त॥

लज्जित होकर, रथको सँभालकर, उसमें हृष्ट-पुष्ट घोड़े जोतकर, सब संदेह छोड़कर शस्त्रादि बाँधकर व अनेक वीरों को रथ के साथ लेकर वह दुष्ट चला। भेरि, दुन्दुभी, नगाड़े बजते हैं और कड़खा-गान गाते हैं। धीरजवान् वीर सेना के आगे चलते हैं और गर्ज-गर्जकर शब्द करते हैं।

जीव आश त्रास नाश बाजि मोह छण्ड छण्ड।
बंक शूर शंक दूर वीरता सपूर चण्ड॥
बाजि नाग शोर घोर पूरन दशों दिशान।
धूरि पूरि मेघ ओघ शोध ना परा अपान॥

जीवन की आशा, भय, घोड़ों के नष्ट होने का मोह छोड़ दिया, वीरता से पूर्ण, प्रचण्ड बाँके शूरोंने संदेह को दूर कर दिया। हाथी-घोड़ों का दशों दिशाओं में शोर भर गया। धूल से आकाश

मेघों के समूह की भाँति होगया, जिसमें अपना-पराया मालूम नहीं पड़ता ।

दोहा—प्रलय मनहुँ चाहत करन, अनो तमोचर चण्ड ।
सुनु खगेश मर्कट विकट, जिमि धाये बरिबण्ड ॥ २० ॥

मानो निशाचरों की प्रचण्ड सेना प्रलय करना ही चाहती है । हे गरुड़जी ! जिस प्रकार प्रलय बानर उस समय दौड़े, सो सुनो ।

छन्द—निहारि हर्ष कीश ऋक्ष फूलि शैल भे ।
बजाइ कटकटाइ हूहू एक बार कै अभे ॥
उपारि भूधरा अपार वृक्ष अश्म शृङ्गहूँ ।
मरे निशाचर रुण्ड झुण्ड मुण्ड भङ्गहूँ ॥

निशाचरों को देखकर हर्षित होकर बानर-भालु फूल-फूलकर पर्वताकार हो गये और अभय होकर एक साथ कट-कटाकर और 'हू-हू' करके दौड़े । उन्होंने अनेक वृक्ष, पहाड़ और पर्वत के शिखरों को उखाड़ लिया । तब निशाचरों के झुण्डों के रुण्ड हो गये और सिर फूटने लगे ।

रदी रही मृगामती सवार उष्ट्र मण्डहू ।
मनो विचित्र वाहिनी दई मनोज खण्डहू ॥
हलै धरा बलै विचारि भारि धारि को सकै ।
सुनु पुकार जयति राम शत्रु से नहीं डरै ॥

जैसे सिंह मृगों के झुण्डों को मार डालता है । (वैसे ही वानरों ने राक्षस मारे) सवार, ऊँट और घोड़े ऐसे लगते हैं, मानो कामदेव ने सेना को खण्ड-खण्ड कर दिया हो । बानरों के बल को बिचार कर पृथ्वी हिलती है कि इनके भार को कौन सहन कर सकता है ? 'श्रीरामचन्द्रजी की जय हो' यह पुकार सुनाई पड़ती है बानर शत्रु से डरते नहीं हैं ।

सो०—शब्द करत अति घोर, इमि पहुँच्यौ दल भालु कपि ।
आयुध झरि अतिजोर, परै लागि घन प्रलय सम ॥

अत्यन्त घोर शब्द करता हुआ बानरों का दल इस प्रकार आ पहुँचा और अस्त्रों की वर्षा अत्यन्त जोर से होने लगी, जैसे प्रलय-काल के बादल बरस रहे हों ।

सजग होन कपि भालु न पाए * अतिसय निकट तमीचर आए
असित निसाचर अति अँधियारी * तापर करहिं शरन्ह कै मारी

बानर-भालू सावधान होने भी न पाये थे कि राक्षस अत्यन्त निकट आ गये । एक तो काले राक्षस, दूसरे घोर अन्धकार, तिस पर भी शत्रु बाणों से मारने लगे ।

सूझहिं कपिन्ह न हाथ पसारे * जहँ तहँ एकन्ह एक पुकारे

सन्मुख कोउ करत न लड़ाई * कपिन्ह मारि रणभूमि सोबाई

बानरों को पसारा हुआ हाथ भी नहीं दीखता, जहाँ-तहाँ एक दूसरे को पुकारते हैं। कोई राक्षस सामने आकर नहीं लड़ता।

गए अनेक भजि सिन्धु समीपा * सेन विकल लखि रघुकुल दीपा
सजि सारङ्ग तजा एक बाना * भा प्रकाश दिन तरुण समाना

अनेक बानर भागकर समुद्र तट पर आ पहुँचे। श्रीरघुनाथजी ने सेना को व्याकुल देखकर धनुष चढ़ाकर एक बाण छोड़ा तो सूर्योदय के समान प्रकाश हो गया।

लखि तम बिगत भालु कपि हरषे * कटकटाय धाय रिपु घरषे
भिरे एक सन एक प्रचारी * लागे करन युद्ध अति भारी

अन्धकार को दूर हुआ देखकर रीछ-बानर प्रसन्न हुए और कटकटाकर दौड़कर शत्रुओं को मारने लगे। वे एक दूसरे को ललकार कर भिड़ गये और भारी युद्ध करने लगे।

दोहा—कोटि बयालीस तमीचर, नारान्तक कर घात।
राम कृपा बल हति खलन्ह, कपिन्ह बिताई रात॥ २२॥

श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से नारान्तक की सेना के ब्यालीस करोड़ राक्षसों का बल क्षीण करके बानरों ने वह रात बिताई।

प्रभु तुरीण महँ धरि शर तबहीं * कीन्ह प्रवेश उदय रवि जबहीं
देखि कटक निज परम बिहाला * नारान्तक भट कोटि कराला

सूर्यदेव उदय हुए, तब प्रभु श्रीरामजी के प्रकाशयुक्त बाण तरकस में लौटे। करोड़ों विकराल योद्धाओं की सेना को व्याकुल देखकर नारान्तक ने—

शर अस्तम्भन विपुल सँवारे * भए अचल कपि टरहिं न टारे
लै लै पास निशाचर धाए * बाँधत जिमि चुङ्गल शुक पाये

अनेक स्तम्भन(गति रोकने वाले)बाणों को चलाया,तो बानर अचल होगये, वे टालने से भी नहीं टलते। बन्धन ले-लेकर राक्षस दौड़े, मानो चोंगलीपर तोतों को पाकर बाँधने लगे हों।

जे कपि लखें बिपुल बलबंका * तेइ मूर्छित फेंके गढ़ लंका
रावण देखि तनय की करनी * बन्दीजन जिमि भुजबल बरनी

नारान्तक जिन बानरों को बड़े बलवान् देखता है, उन मूर्छितों को लंका में फेंक देता है। रावण ने अपने पुत्रों की करनी देखकर भाटों की तरह उसका बल वर्णन किया।

अंगद हनुमान जब जागे * नारान्तक संग जूझन लागे
क्षण एक कोश न पायउ लरई * पुनि शर हत मूर्छावश करई

अंगद व हनुमानजी जब जागे तो नारान्तक से फिर लड़ने लगे। एक क्षण भी ये दोनों लड़ने न पाये थे कि उसने बाण मारकर उन्हें मूर्छित कर दिया।

याम युगल तेहि कर वरदाना * राखेउ तेहि कारण भगवाना
रिपुहि खिलावत रघुकुल केतू * पालक विधि वाणी श्रुति सेतू

दोपहर का उसको वरदान था, इस कारण भगवान ने रक्खा। श्रीरघुनाथजी शत्रु को खिला रहे हैं, क्योंकि वह देवताओं की वाणी के पालक और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं।

सो युग याम गये जब बीती * तब रघुवीर सजो जय रीती
हाँकि देइ कपि भालु जगाये * भए विगत मूर्छा सब धाये

जब दोपहर बीत गया तो श्रीरघुनाथजी ने विजय का साज सजाया। हाँक मारकर वानर-भालुओं को जगाया तो वे मूर्छा दूर होने पर उठ दौड़े।

हनूमान अंगद जब जागे * राम लखन चरनन्ह अनुरागे
प्रभु पद सीस रहे धरि कीसा * तब हँसि बोले श्री जगदीसा

जब हनुमानजी और अंगदजी जागे-तो वे श्रीराम-लक्ष्मणजी के चरणों में अनुरक्त हुए ! वे प्रभु के चरणों में ही सिर रखे रहे, तब श्रीरामचन्द्रजी हँसकर बोले—

सो०—विधि वाचा लगि आज, तात तुम्हहि मूर्छा भई।
　　पुनि कह प्रभु रघुराज, अब श्रम सपनेहुँ होत नहिं ॥ २३ ॥

हे तात ! ब्रह्माजी की वाणी के कारण आज तुम्हें मूर्छा हुई। प्रभु श्रीरघुनाथजी ने पुनः कहा कि अब तुम्हें स्वप्न में भी श्रम नहीं होगा।

सकल कपिन्ह कै मूर्छा बीती * तोरि पाश भजि राम सप्रीती
पवन तनय युवराज निहारी * हरषे कहि जय जयति खरारी

समस्त वानरों की मूर्छा बीत गई, तब उन्होंने श्रीरामजी का स्मरण करके बन्धन तोड़ डाले। पवन-पुत्र और अंगद को देखकर वे 'श्रीरामजी की जय हो' कहकर प्रसन्न हुए।

दीन्ह नाथ अनुजहि अनुशासन * उठे तुरत गहि विसिख शरासन
लखन कहेउ रह तिष्ठ क्षण एका * तैं कीन्हे रण खेल अनेका

तब प्रभु ने छोटे भाई को आज्ञा दी, तो प्रणाम करके धनुष वाण लेकर तुरन्त उठे। लक्ष्मणजी ने नारान्तक से कहा-एक क्षण खड़ा रह ! तूने युद्ध में अनेक खेल किये हैं।

हनेउ लखन उर पवि सम सायक * लगत गिरे रण महि अहिनायक
पुनि खलदल भा प्रबल अपारा * भक्षण करैं भालु कपि धारा

उसने वज्र के समान एक बाण लक्ष्मणजी के हृदय में मारा, जिसके लगते ही ये पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर दुष्ट-दल अति प्रबल हो गया और वानर सेना को खाने लगा।

चले पराय कीश भयभीता * अब न बचब करि काल प्रतीता
निसिचर धरि भालू कपि बेषा * लागे खान कपिन्ह अस देखा

वानर भयभीत होकर भाग चले, उन्होंने ऐसा विश्वास कर लिया कि अब नहीं बचेंगे।

राक्षस-बानर भालुओं का-सा भेष रखकर बानरों को खाने लगे-यह बानरों ने देखा।

दोहा—तेहि अवसर जागे लखन, देख सेन्य विनाश।
नारान्तक छल पवनसुत, समुझत उड़ा अकाश ॥ २४ ॥

उसी समय लक्ष्मणजी जागे तो सेना का नाश होते देखा। पवन-पुत्र कपटी नारान्तक का छल समझकर आकाश में जा उड़े।

गर्जेउ जाय भयंकर भारी * फटेउ हृदय सुनि निसिचर झारी
मायाहर शर लखन पँवारा * उघरे कपट कपाट अपारा

वे जाकर बड़े जोर से गरजे, उसे सुनकर कपटी राक्षसों के हृदय फट गये। लक्ष्मणजी ने माया हरने वाले बाण को छोड़ा तो कपटरूपी किवाड़ खुल गये।

नारान्तक कै माया बीती * भयउ यज्ञशाला अति प्रीती
खोजसि सकल सामग्री ताकी * कीन्ह अरम्भ विजय निजताकी

नारान्तक की माया समाप्त होगई, तब वह प्रेम से यज्ञशाला में गया। यज्ञ की सारी सामिग्री ढूँढ़ी और अपनी विजय के हेतु यज्ञ आरम्भ किया।

यज्ञ आसुरी तेहिं तब ठाना * पशु समूह वलि कारण आना
भये निशामुख श्रमवश सैना * फिरै सुमरि सब राजिव नैना

तब उसने तामसी यज्ञ का अनुष्ठान किया और बलि के लिए पशु-समूहों को लाया। सन्ध्या होने पर जब सेना थक गई तब श्रीरामजी का स्मरण करके लौटे।

तुरत अहीस राम पहँ आए * सहित अनी प्रभु पद शिर नाए
कृपानयन निरखे मृग शाखा * प्रभु श्रम छीन दीन अभिलाषा

लक्ष्मणजी तुरन्त ही श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और सेना समेत प्रभु के चरण-कमलों में सिर नवाया। दीनदयाल प्रभुने बानरों को कृपादृष्टि से देखा और उन्हें श्रम रहित कर दिया।

दोहा—टिकहु धरनि सब सन कहा, सुखसागर रघुनाथ।
पाय रजायसु भालु कपि, चले सुमिरि श्रीनाथ ॥ २५ ॥

सुख समुद्र श्रीरघुनाथजी ने सबसे कहा कि अपने-अपने स्थानों पर टिको। आज्ञा पाकर बानर भालू श्रीरघुनाथजी का स्मरण कर चले।

कहत सुनत इतिहास शुचि, निशि बीती युग याम।
खगपति आए देव ऋषि, जहँ शोभित श्रीराम ॥ २६ ॥

(कागभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी ! पवित्र इतिहास कहते और सुनते दो पहर रात्रि बीत गई। तब देवर्षि नारदजी वहाँ आये—जहाँ श्रीरामजी सुशोभित थे।

शीश नाइ प्रभु आसन दीन्हा * आशिष पाइ हर्षित हित कीन्हा
मुनि नीके हरि रूप विलोका * यथा इन्दु लखि सुख लह कोका

प्रभु ने प्रणाम कर उन्हें आसन दिया और आशीर्वाद पाकर अपना हित किया। मुनि ने भली प्रकार प्रभु का रूप निहारा, जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर प्रसन्न होता है।

पुलकि गात तब कह ऋषिराजा * सुनहुँ नाथ आयहु जेहि काजा
चतुरानन पठवाँ मोहि स्वामी * जदपि कृपानिधि अन्तर्यामी

तब पुलकित होकर ऋषिराज नारदजी बोले-हे नाथ ! मैं जिस कारण से आया हूँ, सो सुनिये। हे स्वामी ! मुझे ब्रह्माजी ने भेजा है, यद्यपि आप कृपानिधान और अन्तर्यामी हैं।

सदा अनाथ नाथ भगवाना * बिनय विरञ्चिकरि अपरिमाना
तब लगि होन प्रभात न पावहि * तबलगि हरिहरि सुत लै आवहि

हे भगवन् ! आप सदा ही अनाथों के रक्षक हैं। अतः ब्रह्माजी के वचनों को प्रमाणित कीजिए जब तक सवेरा न हो, तब तक वानर सुग्रीव के पुत्र (दधिबल) को ले आये।

नारान्तक वध है तेहि हाथा * दधिबल नाम भक्त तव नाथा
नाथ बहुत इहि खेलहिं खिलावा * रण विलोकि देवन्ह दुख पावा

उसी के हाथों नारान्तक का बध होगा। हे नाथ ! दधिबल नामक बानर आपका भक्त है। हे नाथ ! आपने इस दुष्ट को बहुत खेल खिलाया अब युद्ध देखकर देवता दुःख पाते हैं।

सबिनय नाइ शीश वर भाखी * गवने मुनि प्रभु छवि उर राखी
नारद गये जबहिं विधि लोका * मारुत सुत तन राम बिलोका

श्रेष्ठ वचन कहकर और विनय पूर्वक शीश नवाकर मुनि प्रभु की छवि हृदय में रखकर चले गये। जब नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये, तब प्रभु ने महावीर की ओर देखा।

तातु तुरत तुम्ह गवनेहुँ तहँवाँ * बारिधि महुँ धौलागिरि जहँवा
तहँ दधिबल रह ध्यान लगाये * बहुत दिवस चलि गए सुभाये

और बोले हे-तात शीघ्र ही वहाँ जाओ जहाँ समुद्र के बीच धवलगिरि है। वहाँ ध्यान लगाकर दधिबल को उत्तम भाव से रहते हुए बहुत दिन बीत गये।

दोहा—अहै तपोबल तेजसी, तात तासु ढिग जाइ।
मन प्रसन्न कर चतुराई, आनहु वेगि बुलाइ ॥ २७ ॥

वह तपोबल से तेजस्वी है। हे तात ! उसके पास जाकर चतुरता से मन प्रसन्न करके उसे शीघ्र बुला लाओ।

पवनकुमार पाइ अनुसासन * चले बन्दि पद हाँस उदासन
वेगवन्त धावा कपि कैसे * वर नाराच धनुष तें जैसे

आज्ञा पाकर पवन-पुत्र प्रसन्न हो चरणों की वन्दना करके चले। वे उदास नहीं हैं—कपि कैसे वेग से दौड़े, जैसे धनुष से उत्तम वाण चलता हो।

लोक अर्द्ध घटिका तेहि ठामा * पहुँचे वायुपुत्र बलधामा

देखि तरणि सम तासु प्रकाशा * ठाढ़ भयउ कपि मन्दिर पासा

बल के धाम पवन-पुत्र साढ़े तीन घड़ी में वहाँ पहुँचे। उसके भवन का सूर्य के समान प्रकाश देखकर कपिराज उसके पास खड़े हो गये।

क्षण एक कपि मन कीन्ह विचारा * प्रभु पहँ चलिये कवन प्रकारा
जो गृह सहित जाउँ लै ऐही * नहिं अस आयसु भक्त सनेही

एक क्षण हनुमानजी ने मन में विचार किया कि प्रभु के पास कैसे चला जाय ? जो इसको घर समेत ले चलूं, तो भक्त-प्रेमी की आज्ञा ऐसी नहीं है।

अचल ध्यान करि तासु प्रमाना * तजि प्रवीनता भजि भगवाना
विधि प्रेरित दधिबल लघुलङ्का * करन उठेउ देखा भट बंका

दधिबलके अचल ध्यान को महावीरजी ने जाना तो चतुराई छोड़कर भगवान को स्मरण करने लगे। देव-इच्छा से दधिवल लघुशंका करने को उठा तो उसने बाँके वीर को देखा।

जय श्रीराम वायुसुत बोला * सुन दधिबल निज लोचन खोला
पुनि हनुमान कहेउ सुनु भ्राता * चलहु विलोचन त्रिभुवन त्राता

पवनपुत्रने 'जय श्रीराम' कहा, यह सुनकर दधिबल ने अपने नेत्र खोले। तब हनुमानजी ने कहा-हे भाई सुनो, तीनों लोकों के रक्षक-श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन को चलो।

दोहा—धूरजटी हृद मानसर, बसत हंस इव जोइ।
सादर तुम्ह कहुँ लैन हित, पठवा मोहि प्रभु सोइ ॥ २८ ॥

जो शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर में हंस की तरह बसते हैं, उन्हीं प्रभु ने आदर सहित लेने को मुझे भेजा है।

सुन शुभ वचन सुकण्ठ कुमारा * हरि पहँ हरि सँग तुरत सिधारा
आए नाथ निकट मृग शाखा * देखे पद जे हर हियँ राखा

पवित्र वचन सुनकर सुग्रीव-पुत्र (दधिबल) कपि के साथ तुरन्त प्रभु के पास चल दिया। दोनों वानर प्रभु के पास आये और वे चरण देखे-जों शिवजी ने हृदय में धारण कर रक्खे हैं।

रहेउ चरण गहि प्रीति समेता * दधिबल निरखेउ कृपानिकेता
सानुज हरषि मिले सुखपुञ्जा * तासु पानि गहि निज कर कुञ्जा

दधिबल प्रीति सहित चरण पकड़े हुए रह गया। तब कृपा के धाम प्रभु ने उसे देखा। और अपने कर कमलों से उसकी बाँह पकड़कर प्रभु लक्ष्मणजी सहित मिले।

बैठे ताहि निकट बैठावा * तेहि अवसर सुकण्ठ तहँ आवा
निरख तनय कपिपति हरषाना * मिलत प्रेम नहिं जाय बखाना

वे बैठे और उसे भी अपने पास बैठाया। उस समय सुग्रीव वहाँ आये तो पुत्र को देख कर वानर-राज बड़े प्रसन्न हुए, मिलने का प्रेम बखाना नहीं जाता।

गइ मणि पन्नग जनु पुनि पाई * देही देह मीन जल जाई
सुख सुग्रीव सहेउ प्रभु भेंटे * अवगुण तीन ताहि क्षण मेंटे

खोई हुई मणि मानो साँप ने पाली हो और मानो जीव को देह तथा मछली को पानी मिल गया हो। प्रभु के मिलने से सुग्रीव को सुख प्राप्त हुआ और तीनों ताप उसी क्षण मिटगये।

दोहा—दधिबल बालिकुमार, मिले परस्पर हरष हिय।
भयउ आय भिनुसार, न्हाइ सबन्ह प्रभु पद गहे॥ २९॥

दधिबल और अंगद हृदय में प्रसन्न होकर परस्पर मिले। जब सबेरा हुआ तो स्नान कर प्रभु के चरण पकड़े।

जहँ तहँ समर करन बनचारी * चले कहत जय लखन खरारी
वहाँ नारान्तक प्रात प्रबोधा * रथ चढ़ि चलेउ भयंकर योद्धा

'श्रीरामजी व लक्ष्मणजी की जय' कहते हुए वानर जहाँ-तहाँ युद्ध करने को चले। उधर नारान्तक प्रातःकाल होने पर उठा और वह भयंकर योद्धा रथ पर चढ़कर चला।

निसिचर हठी सुभट सँग ताके * आयुध अखिल भयानक बाँके
महि संग्राम निसाचर ठाढ़े * असित मेघ सम अति रिसबाढ़े

उसके साथ हठीले राक्षस योद्धा हैं, जिनके हथियार तीक्ष्ण और भयंकर हैं। रणभूमि में राक्षस काले मेघों के समान खड़े हैं और उनमें बड़ा क्रोध भरा है।

करि माया तेहि गात छिपाता * भयउ प्रगट जब प्रभु ढिग आवा
दधिबल लखा सखा चलि आयउ * भुजा पसारि हरषि उठि धायउ

नारान्तक ने माया करके अपना शरीर छिपा लिया और प्रभु के समीप आकर प्रकट हुआ। दधिबल ने मित्र को आते देखा तो भुजा फैलाकर हर्षित होकर दौड़ा।

नारान्तक दीख गुरु भाई * मुदित मिलेउ उर उभय अघाई
भेंट सप्रेम बूझि कुशलाता * निज निज दशा कीन्ह विख्याता

नारान्तक ने भी गुरु-भाई को देखा तो दोनों प्रसन्न हो अघाकर मिले। प्रेम सहित मिलकर कुशल पूछी तो-दोनों ने अपनी-अपनी दशा वर्णन की।

दोहा—हरिपति पूत प्रवीन अति, सुन तेहि मुख विख्यात।
लगे बुझावन मित्र कहुँ, सुनहुँ बीयपति तात॥ ३०॥

हे पक्षिराज गरुड़जी! सुनिये, सुग्रीव-पुत्र बहुत चतुर हैं उनके मुख से बड़ाई सुनकर वह मित्र को समझाने लगा।

सुनहु वचन गुरु भ्राता केरा * नारान्तक भा क्रुद्ध घनेरा
कहत लाग खल ताहि कुभाँती * सहज सभीत कीस दिन राती

गुरु-भाई के वचन सुनकर उसको भारी क्रोध हुआ, वह दुष्ट उससे कटु वचन कहने लगा

कि बानर तों स्वभाव से ही निशिदिन डरपोक होता है।

बालिहि हतेउ जौन तपधारी * भा अङ्गद तिन्ह आज्ञाकारी
दधिबल यह बानर कुल रीती * हमरें करहिं न अरि सन प्रीती

जिस तपस्वी ने बालि को मार डाला, अंगद उसी का आज्ञाकारी हुआ। हे दधिबल ! हमारे कुल में शत्रु से मेल नहीं करते, यह तो बानर-कुल की ही रीति है।

यह कह प्रभु सम्मुख सो धावा * दधिबल लूम लपेट टिकावा
नारान्तक कह रे शठ बानर * तव मनु नहीं मोर डर कादर

यह कहकर वह प्रभु के सम्मुख दौड़ा, तो दधिबल ने उसे पूंछ में लपेट कर वहीं ठहरा दिया। नारान्तक ने कहा-रे मूर्ख कायर बन्दर ! क्या तेरे मन में मेरा डर नहीं ?

छाँड़ेउ मूढ़ समुझि गुरु भाई * अस कहि पेलि चला कठिनाई
तब सुकण्ठ सुत क्रोधित भयऊ * सपदि जाति आगे गहि लहेऊ

रे मूर्ख ! तुझे गुरुभाई समझकर छोड़ देता हूँ, यह कहकर जोर से धक्का देकर चला। तब तो सुग्रीव-पुत्र को क्रोध हो आया और शीघ्र ही आगे जाकर उसे पकड़ लिया।

दोहा—नारान्तक दधिबल भिरे, निरखि भालु अरु कीश।
लगे लरन संग निशिचर, कहि जय श्री जगदीश ॥ ३१ ॥

नारान्तक और दधिबल भिड़ गये। यह देखकर बानर भालू 'श्रीरामजी की जय हो' यह कहकर राक्षसों के साथ लड़ने लगे।

जामवन्त सन वचन मृदु, कहेउ सुकण्ठ पुकारि।
कहउ तात दधिबल कबहिं, जनुजहिं डारहि मारि ॥ ३२ ॥

तब सुग्रीव ने जामवन्त से पुकार कर कोमल वचन कहे-हे तात ! दधिबल राक्षस को कब तक मार डालेगा, सो कहो ?

समर करत लागी अति बारा * यह सुनि बोले ऋक्ष भुवारा
क्षणक हृदय धरु धीर कपीसा * दधिबल गुरुसन लही अशीसा

क्योंकि युद्ध करते हुए, बड़ी देर हो गई है। यह सुनकर भालुपति बोले-हे बानरराज ! क्षणभर हृदय में और धैर्य धरिये दधिबल ने गुरू से आशीर्वाद पाया है।

सो अवसर अब आनि तुलाना * एक पलट महँ मरिहि अजाना
सुनि हरीश मन महँ अति हरषे * तबहीं बिबुध सुमन्न बहु बरषे

वह अवसर अब आ चुका है, अज्ञानी नारान्तक एक क्षण में मर जायगा। यह सुनकर सुग्रीव मन से अत्यन्त प्रसन्न हुए, उस समय देवताओं ने बहुत पुष्प बरसाये।

दधिबल धनि भुज बल तोरा * रण कौतूहल कीन्ह न थोरा
हरिअस्तुति सुनि हरिसुत कोपा * कपिहिं सहित खलभयउ अलोपा

और कहा-हे दधिबल ! भुजाओं के बल को धन्य है। तूने युद्ध में अत्यन्त कौशल किया है। वानरों की प्रशंसा सुनकर नारान्तक क्रोधित हुआ और दधिबल के साथ अदृश्य होगया।

योजन अयुत अष्ट नभ जाई * दधिबल सुमिरि हृदय रघुराई
गहि मनुजाद भूमि पर डाला * करि चिकार तेहि मरती बारा

अस्सी हजार योजन आकाश में जाकर दधिबल ने हृदय में श्रीरघुनाथजी का स्मरण करके राक्षस को पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया। मरते समय उसने तीक्ष्ण नाद किया।

छन्द—मरती समय अति शब्द करि दसमुख तनय हरिहर कही।
तजि अधम तनु धरि सुभग बपु द्विजनाथ मुनि गति सो लही॥
जेहि हेतु सुर मुनि सिद्ध नाना भाँति जलपत मख किये।
श्री राम करुनानिधि सो फल सहज ही दनुजहि दिये॥

मरते समय रावण-पुत्र ने अत्यन्त शब्द करके 'श्रीराम-शिव' उच्चारण किया और तामसी देह छोड़कर उत्तम शरीर धारण किया। हे भरद्वाज मुनि ! उसने वह गति पाई जिसके लिए मुनि, सिद्ध और देवता अनेक प्रकार के जप, तप और यज्ञ करते हैं। उसी फल को दयासागर प्रभु रामचन्द्रजी ने राक्षस को सहज में प्रदान कर दिया।

दोहा—देखि तासु गति बिबुधगण, अभय भये खगराइ।
प्रमुदित बरषे कुसुम झरि, राम चरन चित लाइ॥ ३३॥

हे गरुड़जी ! उसकी गति को देखकर देवता लोग निर्भय होगये और उन्होंने श्रीरामजी के चरणों में मन लगाकर प्रसन्नता से फूल बरसाये।

मरा नारान्तक दधिबल जाना * तोरितासि सिर गहि निज पाना
रुण्ड तासु महि लंक सँचारी * आपु चले जहँ नाथ खरारी

दधिबल ने नारान्तक को मरा जाना तो उसका सिर तोड़कर अपने हाथों में ले लिया। और रुण्ड को लंका में फेंक दिया। स्वयं वहाँ चला, जहाँ स्वामी श्रीरघुनाथजी थे।

आयउ दधिबल प्रभु के पासा * देखि हर्ष उठि रमा निवासा
सानुज राम मिले अति प्रीती * भए प्रसन्न नाथ निति रीती

दधिबल प्रभु के पास आया तो उसे देखकर लक्ष्मीपति श्रीरामजी उठे और लक्ष्मणजी सहित अत्यन्त प्रेम से मिलकर प्रसन्न हुए। प्रभु की यह रीति है।

देखन कोतुक रिपुसुत शीशा * सुनहु सुकण्ठ कह्यो जगदीशा
नारान्तक कर शीश धरावहु * यतन समेत न सैत चलावहु

लीलामय प्रभु ने नारान्तक का सिर जानकर कहा-हे सुग्रीव ! सुनो, नारान्तक का सिर यत्नपूर्वक रख लो, यह व्यर्थ न जाय।

नाथ रजाय पाय कपिराई * राखेउ सो सिर यतन कराई

पुनि दधिबल हरि कीन्ह बड़ाई * श्रीपति श्रीमुख बहु विधि गाई

प्रभु की आज्ञा पाकर सुग्रीव ने वह शो[illegible] यतनपूर्वक रख लिया। फिर प्रभू ने दधिबल की बड़ाई की और अपने श्रीमुख से अनेक भाँति उसका वर्णन किया।

जासु बड़ाई किय बड़ ईसा * सखहि सराहत सो जगदीसा
दधिवल प्रभु अनुकूल विलोकी * सफल जन्म लखि भयउ विसोकी

जिनकी बड़ाई करने से समर्थजन बड़े हुए हैं, वे जगदीश्वर अपने सखा की सराहना करते हैं। प्रभु को अपने अनुकूल वेखकर व अपना जन्म सफल समझकर दधिबल शोक रहित होगया।

प्रेम बारि लोचन करि जोरी * बोलेउ गिरा भक्ति रस बोरी
जगदात्मा तुम्हार यह बाना * सन्तत करहु दीन मन माना

नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर, हाथ जोड़कर और वाणी को भक्ति-रस में डुबोकर वे बोले-हे जगदात्मा प्रभु आपका तो यह स्वभाव ही है कि आप सदैव दीनों के मन की बात कहते हैं।

दोहा—बनचर पामर सहज जड़, बुद्धि विषम अज्ञान।
बिरद स्वभाव कृपाल प्रभु, सेवक सुयश बखान ॥३४॥

मैं पापी बानर स्वभाव से ही मूर्ख, खोटी बुद्धि वाला और अज्ञानी हूँ। तो भी कृपालु प्रभु ने अपने यशस्वी स्वभाव के कारण ही सेवक के सुयश को बखाना है।

तब यश विमल विदित अवधेशा * कहत न पार पाव श्रुति शेषा
सो मैं प्रभु कहि सकहुँ न कैसे * पर्ण बणिक गजमणि गुण जैसे

हे अवध नरेश! आपका निर्मल यश प्रगट है, उसे कहते हुए वेद और शेषजीभी पार नहीं पाते, हे प्रभु! उसे मैं कैसे नहीं कह सकता, जैसे कि कुँजड़ा गजमुक्ता के गुणों को नहीं कह सकता।

अस कहि हरि हरिपद लपटाने * देखि प्रेम कपि बिबुध सिहाने
बिनु अभिमान ताहि प्रभु जाना * दीनदयाल बहुरि सनमाना

यह कहकर दधिबल, प्रभु के चरणों में लिपट गया। उसका प्रेम देखकर बानर और देवता सिहाने लगे। उसे अभिमान रहित देखकर प्रभु ने अत्यन्त आदर किया।

माँगु बत्स जो वर मन भावा * सुनि दधिबल करि विनय सुनावा
नाम तुम्हार रूप गुण नामा * करहिं निरन्तर मम उर धामा

और कहा—हे तात! जो मन में आवे, वही वर मांगो। यह सुनकर दधिबल ने विनती करके कहा—हे तात! आपके रूप, गुण और नाम सदैव मेरे हृदय में घर बनावें।

होहिं मोहि पद पंकज कैसे * कामिहि बाम सूम धन जैसे
एवमस्तु तुम्ह कहँ वर एहूँ * मम इच्छा कछु औरउ लेहूँ

हे प्रभु! आपके चरणकमल मुझे ऐसे प्रिय हों जैसे कामी पुरुष को स्त्री और कृपण को धन होता है। श्रीरामजी बोले—ऐसा ही होगा। तुम यह वरदान लो और मेरी तरफ से कुछ और भी लो।

सो०—विहवाबलपुर　राज, करहु तात तुम मुदित मन ।
छाँड़ि और सब काज, सिवा शम्भु पद भक्ति दृढ़ ॥३५॥

हे तात ! तुम प्रसन्न मन से विहवाबलपुर का राज्य करो और सब काम छोड़कर श्रीशिव-पार्वती के चरणों में दृढ़ भक्ति करो।

दोहा—पाइ भक्ति वर राज्य बर, प्रभु चरनन्ह सिर नाइ ।
दधिबल पठयउ तुरत हठि, सुनहु ऋषय सुभाइ ॥३६॥

भक्ति और राज्य के उत्तम वरदान पाकर दधिबल प्रभु के चरणों में सिर नवाकर चला। हे ऋषि ! सुनो, उसे श्रीरामजी ने हट करके उत्तम भाव से तुरन्त ही विदा किया।

उतहिं जहाँ बैठा दसभाला * बिनु सिर बपु सो परा विशाला
देखि बिकल आपुहि उठि धावा * पहिचानत तेहि अति दुख पावा

उधर जहाँ रावण बैठा था, वहाँ नारान्तक का बिना सिर का विशाल देह जाकर गिरा। उसे देखकर रावण स्वयं ही उठ दौड़ा और उसे पहिचान कर अत्यन्त दुःखी हुआ।

शोक जलधि लङ्का लघु तरुणी * चढ़ीं सकल निसिचर की घरणी
बिन्दुमती कर गहि बैठाई * नाग सुता को कथा सुनाई

शोकरूपी सागर में लङ्कारूपी नाव पड़ी है, उसमें रावण की सारी स्त्रियाँ चढ़ी हैं। मन्दोदरी ने बिन्दुमती का हाथ पकड़कर बैठाया और उसे सुलोचना की कथा सुनाई।

सबनि बुझाय सासु पग लागी * तजि धन धाम स्वामि अनुरागी
सुनु सुत बधू न आन उपाऊ * जाहु जहाँ राजयँ रघुराऊ

वह उसे सुनकर और सबको समझा-बुझाकर सासु के पैरों पड़ी और धन-धाम छोड़कर पति में प्रेम किया। (तब मन्दोदरी बोली–) हे पतोहू ! दूसरा उपाय नहीं है। तुम वहीं जाओ, जहाँ श्रीरघुनाथजी विराज रहे हैं।

सासु बचन सुनि जानि प्रभाता * उठि निसिचर तिय पुलकित गाता
जातरूप मय यान मँगाई * निज कर गहि पति देहु चढ़ाई

सासु के वचन सुनकर और प्रातःकाल हुआ जानकर बिन्दुमति पुलकित शरीर से उठी और स्वर्ण विमान मँगाकर उसमें अपने हाथों से पति का देह चढ़ाया।

चली अकेलि यान चढ़ि जबहीं * तासु सखी इक आई तबहीं
नाम चित्ररेखा अस तासू * गुण गन सुभग बसै तनु बासू

ज्योंही वह अकेली विमान पर चढ़कर चली, त्योंही उसकी सौत आई, उसका नाम चित्ररेखा था। जिसकी देह में उत्तम गुण बसते थे।

सो करि विनय चढ़ी तेहि संगा * कीन्ह पयान रंगी सतिरंगा

वह विनय करके उसके साथ चढ़ी और सतीत्व के रंग में रंगकर दोनों ने प्रस्थान किया।

दोहा—पाहि पाहि रघुवंशमणि, हतहु न विरद प्रतीति ।

प्रीतम प्रीति न करत उर, तुम्ह कहँ नाथ अनीति ॥३७॥

हे रघुकुल में श्रेष्ठ रामजी ! रक्षा करिये, आपके यश में हमारे विश्वास को नष्ट न करिये। आप हमारे पति-प्रेम (सतीत्व) का डर नहीं मानते। सो, हे नाथ ! यह आपकी अनीति है।

सती विनाश विनय सुनि बानी * पुलके दीन दयालु भवानी
दुहुँन लीन्ह निज निकट बुलाई * परीं युगल प्रभु पदतर आई

हे भवानी ! उन सतियों की निराशा-जनक विनययुक्त वाणी सुनकर दीनदयालु पुलकित हो गये। उन दोनों को निकट बुलाया, तब वे दोनों प्रभु के चरणों में जाकर गिर पड़ीं।

तिन्हें उठाय राम बैठावा * जगदीश्वर मृदु वचन सुनावा
विन्दुमती तें परम सयानी * पति पद रत दृढ़ हृदय समानी

श्रीरामजी ने उन्हें उठाकर बैठाया और मधुर वचन कहे कि हे विन्दुमती तुम परम चतुर हो, क्योंकि तुम्हारे हृदय में पति चरणों में दृढ़ प्रेम है।

बहुत करहुँ का तव गुन गाना * माँगु बेरि बर जो मन माना
सुनत वचन लोचन जल बाढ़ी * जोरि जुगल कर दोउ भई ठाढ़ी

मैं तुम्हारे गुणों का अधिक वर्णन क्या करूँ ? जो मन में आवे वही वरदान शीघ्र माँगलो। यह वचन सुनकर विन्दुमति के नेत्रों में जल भर आया और दोनों हाथ जोड़कर खड़ी होगईं।

प्रभु तुम दानि देव तरुवर से * पग जल जात देखि सुरसरि से
देहुकन्त सिर सपदि मँगाई * दयासील सागर रघुराई

हे प्रभु ! आप कल्प वृक्ष के समान दानी हैं, आपके चरणकमल गङ्गाजी के समान पवित्र हैं। हे दया और शील के समुद्र श्रीरघुनाथजी ! मेरे स्वामी का सिर शीघ्र मंगा दीजिये।

दोहा–नारान्तक कर सीस तब, दीन्ह मँगाइ रमेश।
पाइ स्वामि सिर भइँ पुलक, बोलीं दोउ उरगेश ॥३८॥

तब लक्ष्मीपति प्रभु ने नारान्तक का शीश मंगा दिया। स्वामी का सिर पाकर वे प्रसन्न हो गईं। हे गरुड़जी ! तब वे दोनों बोलीं–

नाथ विनय एक औरौ करहीं * दारु बिना हम केहि विधि जरहीं
सुखसागर सुनि वचन प्रमाना * हनुमन्त अंगदादि भट नाना

हे नाथ ! हम एक विनती और करते हैं कि लकड़ियों के बिना हम कैसे जलेंगी ? उनके प्रमाणिक वचन सुनकर सुख के समुद्र प्रभु हनुमान व अङ्गदादि योद्धाओं से बोले–

कहा सखा लंका महँ धावहु * चन्दन अगर भार बहु लावहु
पाइ राम अनुसासन धाए * लंकागढ़ गृह गृह सबु पाए

हे सखाओं ! लङ्का में जाओ और चन्दन व अगर के अनेक बोझ ले आओ। श्रीरामजी की आज्ञा पाकर वे दौड़े और लंका में ढूंढ़ने लगे।

कपिन्ह सोधि चन्दन बहु भारा * लाए जहँ श्री नाथ उदारा
कह रघुवीर सुनहु लंकेशा * तात यह बड़ हितकर उपदेशा

वानर चन्दन के अनेक बोझ ढूंढ़कर वहाँ लाये, जहाँ उदार श्रीरामचन्द्रजी थे। तब श्रीरघुनाथजी बोले—हे विभीषण ! सुनो, यह बड़ा हितकारी उपदेश है।

विन्दुमती जहँ चाहत ठाँऊ * दारुभार संग तुम तहँ जाऊ
दसकन्ध कर बैर बिहाई * चिता चारु सुचि देहु बनाई

विन्दुमती जहाँ जाना चाहती है, वहाँ लकड़ियों के बोझों के साथ तुम जाओ। रावण के बैर को छोड़कर, एक सुन्दर पवित्र चिता बना देना।

दोहा—रघुवर आज्ञा सीस धरि, उठे दशानन भाइ।
आयुत भार चन्दन अगरु, तेहि संग चले लिवाइ ॥ ३९ ॥

विभीषण-श्रीरघुनाथजी की आज्ञा सिर पर धारण करके उठे और उसके साथ चन्दन और अगर के अनेक भार लिवा ले चले।

दशमुख तियन सहित गा तहँवा * विन्दुमती चितरेखा जहँवा
देखत अति बिलख बिबुधारी * करुना करत निशाचर भारी

रावण भी स्त्रियों सहित वहाँ गया, जहाँ विन्दुमति और चित्ररेखा थीं। उन्हें देखकर देवताओं का शत्रु 'रावण' अत्यन्त दुखी हुआ। सभी राक्षसों की स्त्रियाँ विलाप कर रही हैं।

जथा जोग्य बैठीं सब तैसें * पति गृह रहत रहीं नित जैसें
अग्नि दीन्हि ज्वाला अति धाई * पहुँची सुरपुर सब तिय जाई

तब सब नारान्तक की स्त्रियाँ ऐसी बैठीं, जैसे नित्य पति के घर रहती थीं। अग्नि देने पर लपटें अत्यन्त बढ़ीं और सभी स्त्रियाँ स्वर्गलोक को गयीं।

देखि दशा तिन्ह की सुर रवनी * तिन्हहि सराहि भवन निज गवनी
रावन सहित जुबति निज गेहा * गयउ भवन सोचति सन्देहा

उनकी दशा देखकर देवताओं की स्त्रियाँ उनकी सराहना करके अपने घरों को गयीं। रावण भी अपनी स्त्रियों सहित सन्देह व डर से भरा हुआ अपने महल को गया।

उमा चरित यह सुभग सुहावा * नाथ कृपा मैं तुमहिं सुनावा
अपर चरित गिरिराज कुमारी * सुनहु कहउँ तव प्रीति निहारी

शिवजी बोले—हे उमा ! श्रीरामजी की कृपा से यह सुन्दर सुहावना चरित्र मैंने तुमको सुनाया। हे पार्वती अब दूसरे चरित्र सुनो, मैं तुम्हारी प्रीति को देखकर कहता हूँ।

दोहा—राम विरोधहि जस उचित, तस दिन पहुँचा आइ।
सो विचरि करि लंक गढ़, उतरी विपति बजाइ ॥ ४० ॥

श्रीरामजी के वैर से जैसा उचित था, वैसा ही दिन आ पहुँचा । उसी को विचार कर विपत्ति का डंका बजाकर लङ्का में आ उतरी ।

॥ इति क्षेपक—नारान्तक की कथा ॥

निसा सरनि भयउ भिनुसारा * लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा
सुभट बोलाई दसानन बोला * रन सन्मुख जाकर मन डोला
सो अबहीं बरु जाउ पराई * सजुग विमुख भएँ न भलाई

रात्रि बीत गई और सबेरा हुआ तो रीछ बानर चारों द्वारों पर आडटे । तब योद्धाओं को बुलाकर रावण बोला—रण के सम्मुख जाने से जिसका मत घबड़ाता हो, वह अभी भाग जाय, युद्ध में से भागने पर भलाई नहीं होगी ।

निज भुजबल मैं बयरु बढ़ावा * देहउ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा
अस कहि मरुत बेग रथ साजा * बाजे सकल जुझाऊ बाजा

मैंने अपनी भुजाओं के बल पर वैर बढ़ाया है, जो शत्रु चढ़आया है, उसे इन्हीं भुजाओं से उत्तर दूँगा । ऐसा कहकर उसने वायु वेग वाला रथ सजवाया, उ : समय युद्ध के जुझाऊ बाजे बजने लगे ।

चले वीरसब अतुलित बली * जनु कज्जल कै आँधी चली
असगुन अमित होहिं तेहि काला * गनइ न भुजबल गर्व विशाला

सब बड़े ही बलवान योद्धा चले, मानो काजल की आँधी चली हो उस समय बहुत से असगुन होने लगे परन्तु वे अपनी भुजाओं के बल के घमण्ड में उनको नहीं गिनते ।

छन्द—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते ।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते ॥
गोमाय गीध कराल खर रव स्वाँन बोलहिं अति घने ।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने ॥

अत्यन्त घमण्ड के मारे सगुन-असगुन नहीं गिनते, हाथ से हथियार छूट जाते हैं, योद्धा रथसे गिरते हैं, घोड़े-हाथी बड़े चिघाड़ते हुए साथ से भाग जाते हे । गीदड़, गीध, कुत्ते और गधे बड़े भयङ्कर शब्द बोलते हैं और कालदूतों के समान उल्लू बड़ी भयानक बोली बोलते हैं ।

दोहा—ताहि कि सम्पति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन बिश्राम ।
भूत द्रोह रत मोह बस, राम विमुख रति काम ॥ ७८ ।

ऐश्वर्य, शुभ-शकुन और मन में शान्ति क्या उसे स्वपन में भी हो सकती हैं जो जीव वैरी, अज्ञान के वश श्रीरामजी से विमुख तथा कामी हो ।

चलेउ निशाचर कटकु अपारा * चतुरंगिनी अनी बहु धारा
विविध भाँति वाहन रथ जाना * बिपुल बरन पताक ध्वज नाना

राक्षसों की अपार सेना चली, चतुरंगिनी सेना में बहुत से दल हैं । अनेक सवारियाँ—

रथ विमान आदि हैं, जिन पर अनेक रंगों की ध्वजा-पताकायें फहरा रही हैं।

चले मत्त गज जूथ घनेरे * प्राविट जलद मरुत जनु प्रेरे
बरन बर बिरदैत निकाया * समर सूर जानहिं बहु माया

बहुत मतवाले हाथियों के झुण्ड चले, मानो वायु से उड़ाये हुए वर्षा के बादल चले हों। भाँति भाँति के राक्षसों के समूह हैं, जो लड़ाई में शूरवीर और बहुत प्रकार माया जानने वाले हैं।

अति विचित्र बाहनी बिराजी * बीर बसन्त सेन जनु साजी
चलत कटक दिग सिंधुर डगहि * छुभित पयोधि कुधर डगमगहि

ऐसी विचित्र सेना शोभायमान हुई, मानो वीर बसन्त ऋतु की सेना सजी हो। सेना चलते ही दिग्गज डगमगाने लगे, समुद्र उछलने लगा तथा पर्वत डगमगाने लगे।

उड़ी रेनु रबि गयउ छिपाई * मरुत थकित बसुधा अकुलाई
पवन निसान घोर रव बाजहिं * प्रबल समय के घन जनु गाजहिं

ऐसी धुल उड़ी कि सूर्य छिप गया, वायु स्थिर हो गई, पृथ्वी अकुला गई। ढोल और नगाड़े बड़े घोर शब्द से बज रहे हैं, मानो महाप्रलय के बादल गरज रहे हों।

भेरि नफीरी बाजि सहनाई * मारू राग सुभग सुखदाई
केहरि नाद बीर सब करहीं * निज निज बल पौरुष उच्चरहीं

तुरही, नफीरी और शहनाई बज रही है तथा योद्धाओं को सुख देने वाला मारू राग बज रहा है। वीर योद्धा सिंहनाद कर रहे हैं अपना पराक्रम बखान रहे हैं।

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा * मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्ठा
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई * अस कहि सन्मुख फौज चलाई
यह सुधि सक कपिन्ह जब पाई * धाए करि रघुबीर दोहाई

रावण कहने लगा—सुनो, वीर योद्धाओ! रीछ-बानर के झुण्डों को मसल डालो। मैं दोनों राजकुमार भाइयों को मारूँगा। ऐसा कहकर सामने अपनी सेना चला दी। यह समाचार जब बानरों को मिला, तब श्रीरघुनाथजी की दुहाई देते हुए वे सब दौड़े।

छन्द—धाए विशाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाइ भूधर वृन्द नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रु मायुध सबल संक न मानहीं।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुयसु बखानहीं॥

वे बड़े भयंकर काल के समान रीछ-बानर दौड़े, मानो पंखों सहित पर्वत के समूह अनेक बाण लगने से उड़े जा रहे हों। नाखून, दाँत, पर्वत और विशाल वृक्ष ही उनके हथियार हैं, वे महाबली किसी का डर नहीं मानते। वे रावणरूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह के समान श्रीरामचन्द्रजी की जय बोलते हुए उनके यश का वर्णन कर रहे हैं।

दोहा—दुहुँ दिसि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि, उत रावनहि बखानि॥ ७९॥

दोनों ओर जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जानकर और इधर श्रीरामजी का और उधर रावण का सुयश बखान कर भिड़ गये।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा * देखि बिभीषण भयउ अधीरा
अधिक प्रति मन भा सन्देहा * बन्दि चरन कह सहित सनेहा

रावण को रथ पर और श्रीरामजी को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर होगये। अधिक प्रेम के कारण मन में सन्देह हुआ, तब चरणों में प्रणाम करके सप्रेम बोले—

नाथ न रथ नहिं तनु पद त्राना * केहि बिधि जितब बीर बलवाना
सुनहु सखा कह कृपा निधाना * जेहिं जय होय सो स्यन्दन आना

हे नाथ! आप पर न रथ है, न कवच है, और न पादुका है, फिर ऐसे बलवान रावण को कैसे जीतेंगे? यह सुनकर कृपानिधान बोले-हे सखा! सुन, जिससे 'जय' होती है वह रथ और हीहै।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका * सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका
बल बिबेक दम परहित घोरे * क्षमा कृपा समता रजु जोरे

'शूरता और धीरज' यह दोनों रथ के पहिये है, 'सत्य और शील' दृढ़ ध्वजा-पताका है। बल, विवेक,संयम,परोपकार, वह चारों उसके घोड़े हैं,जो क्षमा दया व समतारूपी रस्सियोंसे बँधे है।

ईस भजनु सारथी सुजाना * बिरति चर्म संतोष कृपाना
दान परसु बुद्धि सक्ति प्रचण्डा * वर बिग्यान कठिन को दण्डा

'ईश्वर का भजन' बड़ा चतुर सारथी है, बैराग्य, ढाल और सन्तोष, तलवार हैं। दान, फरसा और बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है तथा श्रेष्ठ ज्ञान ही कठोर धनुष है।

अमल अचल मन त्रोन समाना * सम जम नियम सिलीमुख नाना
कवच अभेद्य बिप्र गुरु पूजा * एहि सम बिजय उपाय न दूजा
सखा धर्ममय अस रथ जाकें * जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें

संयम और नियम ही बाण हैं, 'निर्मल और अचल मन' ही तर्कस है। 'ब्राह्मण और गुरु की पूजा ही अभेद्य कवच है इसके बराबर विजय का दूसरा कोई उपाय नहीं है। हे सखा! जिसके पास 'धर्ममय' रथ हो उसको जीतने वाला कोई नहीं है।

दोहा—अहा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर॥८०क॥

हे धीर-बुद्धि सखा! सुनो, 'वीर' संसार रूपी अजय, प्रबल शत्रु को भी जीत सकता है, जिसके पास ऐसा 'दृढ़' रथ हो।

सुनि प्रभु वचन बिभीषण, हरषि गहे पद कञ्ज।

एहि मिसि मोहि उपदेसेहु, राम कृपा सुख पुञ्ज ॥८०ख॥

प्रभु के वचन सुनते ही विभीषण ने प्रसन्न होकर चरण पकड़कर कहा—हे कृपा और सुख के समूह श्रीरामजी ! आपने इसी बहाने से मुझे उपदेश दिया।

उत पचार दसकन्धर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन ॥८०ग॥

उधर से रावण ने इधर से अङ्गद और हनुमानजी ने ललकारा। राक्षस और रीछ बानर अपने-अपने स्वामी की दुहाई देते हुए लड़ने लगे।

सुर ब्रह्मादि सिद्धि मुनि नाना * देखत रथ नभ चढ़े बिमाना
हमहू उमा रहे तेहि संगा * देखत राम चरित गण रंगा

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्धि और मुनि विमानों पर चढ़े आकाश से युद्ध देख रहे हैं। हे पार्वती ! हम भी उनके साथ श्रीरामजी के चरित्र और युद्ध देखते थे।

सुभट समर रस दुहुँ दिसि माते * कपि जयसील रामबल ताते
एक एक सन भिरहिं पछारहिं * एकन्ह एक मर्दि महि मारहिं

लड़ाई के रस से दोनों ओर के योद्धा मस्त हो रहे थे, परन्तु श्रीरामजी के बल से बानर विजयी थे। एक को एक ललकार कर तथा एक को एक मसल कर फेंक देता था।

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं * सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं * गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं

वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ते हैं तथा सिरों से सिर मारते हैं। पेट फाड़ते और भुजा उखाड़ते व पैर पकड़कर योद्धाओं को पृथ्वी पर पटक देते हैं।

निसचर भट महि गाड़हिं भालू * ऊपर डारि देहिं बहु बालू
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे * देखियत बिपुल काल जनु क्रुद्धे

राक्षस योद्धाओं को रीछ धरती में गाड़ देते हैं और ऊपर से बहुत सी बालू डाल देते हैं। युद्ध विरुद्ध हुए बानर ऐसे दीख पड़ते हैं मानो बहुत से काल क्रोधित हों।

छन्द—क्रुद्धे कृतान्त समान कपि मनु स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवन्त घन जिमि गाजहीं॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दाँतन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छलबल करहिं खल जेहिं छीजहीं॥

क्रोधित काल के समान बानरों के शरीर में बहता हुआ रुधिर सुशोभित है। बलवान राक्षसों की सेना के योद्धाओं को मसलते और बादलों के समान गरजते हैं। चपेटों से मारते काटते, दांतों से काटते और लातों से मींजते हैं। रीछ बानर किलकारते और इस प्रकार छल-बल करते हैं कि दुष्ट राक्षस नष्ट हों।

छन्द–धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं अन्तावरि गल मेलहीं ।
प्रहलादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अङ्गन खेलहीं ॥
धरु मारु काटि पछारि घोर गिरा गगन महि भरि रही ।
जय राम जो तृन ते कुलिस करि कुलिसते करि तृन सही ॥

वे राक्षस को पकड़कर उनके गाल फाड़ डालते हैं, छाती फाड़कर आँतें निकाल गले में पहिन लेते हैं, मानो नृसिंह भगवान अनेक रूप धारण कर समरांगण में खेल रहे हों । पृथ्वी आकाश तक 'पकड़ो मारो, काटो पकड़ो' यह भयंकर गूंज गूंज रही है । 'श्रीरामजी की जय हो' जो तिनके को वज्र और वज्र को तिनका कर देते हैं ।

दोहा–निजदल बिचलित देखेसि, बीस भुजा दस चाप ।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप ॥८१॥

तब अपनी सेना को व्याकुल देखकर बीस भुजाओं में दस धनुष-बाण लेकर रावण कोप करके और गर्व सहित लौटो-लौटो कहकर चला ।

धायउ परम क्रुद्ध दसकन्धर * सन्मुख चले हूह दै बन्दर
गहि कर पादप उपल पहारा * डारेसि तापर एकहिं बारा

रावण बहुत क्रोधित होकर दौड़ा तब बानर 'हू-हू' करके सामने चले । हाथों से वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर उस पर एक ही साथ डालते हैं ।

लागहिं सैल बज्र तनु तासू * खण्ड खण्ड होइ फूलहिं जासू
चला न अचल रहा रथ रोपी * रन दुर्मद रावन अति कोपी

वे पहाड़ रावण के वज्र समान शरीर पर लगते ही टुकड़े-टुकड़े होकर फूट जाते हैं । बड़ा घमण्डी और अत्यन्त क्रोधी रावण अपने स्थान से नहीं हटा और अपना रथ रोके हुए वहीं अचल खड़ा रहा ।

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा * मर्दै लागि भयउ अति क्रोधा
चले पराइ भालु कपि जाना * त्राहि त्राहि अङ्गद हनुमाना

बहुत क्रोध करके रावण इधर-उधर वीर बानरों को डाटकर झपटते हुए मारने लगा । अनेक रीछ-बानर भाग चले और पुकारने लगे-हे अंगद ! हे हनुमान ! रक्षा करो ।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं * यह खल खाय काल की नाईं
तेहिं देखे कपि सकल पराने * दसहूँ चाप सायक सन्धाने

हे स्वामी श्रीरघुनाथजी ! रक्षा करो, रक्षा करो ! यह दुष्ट तो काल की तरह खाये जाता है । रावणने जब बानर भागते हुए देखे, तब उसने दसों धनुषों पर बाण चढ़ाये ।

छन्द–सन्धानि धनु सर निकर छाँड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं ।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिस कहँ कपि भागहीं ॥

भयो अति कोलाहल विकल कपिदल भालु बोलहिं आतुरे ।
रघुबीर करुनानिधान आरत बन्धु जन रच्छक-हरे ॥

धनुष चढ़ाकर रावण ने बाणों के समह छोड़े । वे समूह शरीर में ऐसे लगते हैं, जैसे उड़कर साँप लिपट जाते हैं । पृथ्वी आकाश, विशा-विविशा सब जगह बाण छा गये, बन्दर कहाँ भागें ? बड़ा हुल्लड़ मच गया, तब राम-सेना घबड़ाकर पुकारने लगी कि हे रघुवीर, हे वयासिंधु, भक्त-रक्षक भगवान् ! हमारी रक्षा करो ।

दोहा—निजदल विकल देखि कटि, कसि निषंग धनु हाथ ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, नाइ रामपद माथ ॥८२॥

अपनी सेना को व्याकुल वेखकर कमर में तर्कस कसकर, धनुष हाथ में लेकर लक्ष्मण जी श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाकर क्रोध सहित चले ।

रे खल का मारेसि कपि भालू * मोहि बिलोकि तोर मैं कालू
खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती * आजु निपाति जुड़ावउँ छाती

(लक्ष्मणजीने कहा-) रे दुष्ट ! बानर-रीछों को क्या मारता है । मुझे वेख, मैं तेरा काल हूँ । रावण बोला—रे पुत्रघाती ! मैं तुझे ही ढूँढ़ रहा था, आज तुझे मारकर छाती ठण्डी करूँगा ।

अस कहि छाँड़ेसि बान प्रचण्डा * लछिमन किए सकल सतखण्डा
कोटिन्ह आयुध रावन डारे * तृन समान करि काटि निवारे

ऐसा कहकर रावण ने तीक्ष्ण वाण छोड़े, लक्ष्मणजी ने सबके सौ टुकड़े कर दिये तब रावण ने अनेक हथियार चलाये, लक्ष्मणजी ने उनके तिनकों के समान टुकड़े कर डाले ।

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा * स्यन्दनु भंजि सारथी मारा
सत सत सर मारे दस भाला * गिरिशृंगन प्रविसहिं जनु व्याला

फिर अपने वाणों से प्रहार किया । रथ को तोड़ कर सारथी को मार डाला, दसों मस्तकों में सौ-सौ वाण मारे, ये ऐसे घुस गये, जैसे पर्वतों के शिखरों में सर्प घुसे हों ।

पुनि सत सर मारे उर माहीं * परेउ धरनि तलसुधि कछु नाहीं
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी * छाँड़ेसि ब्रह्म दीन्ह जो साँगी

फिर सौ वाण रावण के हृदय में मारे, जिससे वह भूमि पर पड़ा । देह की कुछ भी सुधि न रही । मूर्छा दूर होने पर महाबली फिर उठा और उसने ब्रह्मा की दी हुई शक्ति छोड़ी ।

छन्द—सो ब्रह्म दत्त प्रचण्ड सक्ति अनंत उर लागी सही ।
पर्यो वीर विकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही ॥
ब्रह्माण्ड भवन विराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी ।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी ॥

ब्रह्माजी की दी हुई शक्ति लक्ष्मणजी के ठीक हृदय में लगी तो बीर लक्ष्मणजी विकल होकर गिर पड़े। रावण उन्हें उठाने लगा, परन्तु उसके बल की महिमा योंही रह गई। जिनके एक ही सर पर समस्त ब्रह्माण्ड रज-कण के समान रक्खा है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है। वह तीनों लोकों के स्वामी को नहीं भजता।

दोहा—देखि पवनसुत धायउ, बोलत बचन कठोर।
आवत कपिह हन्यो जेहिं, मुष्ट प्रहार प्रघोर॥ ८३॥

यह देखते ही हनुमानजी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। उन्हें आते देखकर रावण ने भयङ्कर घूंसे का प्रहार किया।

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा * उठा सँभारि बहुत रिस भरा
मुठिका इक ताहि कपि मारा * परेउ सैल जनु वज्र प्रहारा

हनुमानजी घुटने टेक कर रह गये पृथ्वी पर नहीं गिरे फिर क्रोधित हो सँभलकर उठे और रावण के एक घूंसा मारा। वह ऐसा गिरा, जैसे वज्र के लगने से पर्वत गिरा हो।

मुरछा गै बहोरि सो जागा * कपि बल विपुल सराहन लागा
धिगधिग मम पोरुष धिग मोही * जौं तैं जियत रहेसि सुरद्रोही

मूर्छा दूर होने पर रावण जागा और हनुमानजी के बल की सराहना करने लगा। हनुमानजी बोले-रे देव शत्रु, मेरे पराक्रम और मुझको धिक्कार है, जो तू जीता ही रह गया।

असकहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो * देखि दसानन विसमय पायो
कह रघुबीर समुझि जियँ भ्राता * तुम्ह कृतान्त भच्छक सुरत्राता

ऐसा कहकर हनुमानजी-लक्ष्मणजी को ले आये, यह देखकर रावण को बड़ा अचम्भा हुआ। श्रीरघुनाथजी ने लक्ष्मणजी से कहा-हे भाई! हृदय में समझो कि तुम काल के भी भक्षक तथा देवताओं के भी रक्षक हो।

सुनत वचन उठि बैठि कृपाला * गई गगन सो सकति कराला
पुनि कोदण्ड बान गहि धाए * रिपु सन्मुख अति चातुर आए

यह वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे और वह कराल शक्ति आकाश में चलीगई। तब लक्ष्मणजी फिर हाथ में धनुष वाण लेकर दौड़े और शीघ्र ही शत्रु के सामने आये।

छन्द—आतुर बहोरि विभंजि स्यंदन सूत हति व्याकुल कियो।
गिर्‌यो धरनि दसकन्धर विकल तनु बान बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लङ्का लै गयो।
रघुवर बन्धु प्रताप पुञ्ज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥

फिर उन्होंने शीघ्रता से रावण के रथ को तोड़ कर सारथी को मारकर उसे व्याकुल कर दिया। रावण के हृदय में सौ बाण मारे, जिससे वह व्याकुल होकर भूमि पर गिर

पड़ा। तब दूसरा सारथी उसे रथ पर डालकर तुरन्त लंका में ले गया। प्रताप के समूह श्रीरामचन्द्रजी के भाई लक्ष्मणजी ने आकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया।

दोहा—उहाँ दसानन जागि करि, करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह, सठ हठ बस अति अग्य ॥८४॥

वहाँ रावण मूर्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगा। महामूर्ख हठ करके श्रीरामजी से वैर होने पर भी अपनी जीत चाहता है।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई * सपदि जाइ रघुपति सुनाई
नाथ करइ रावन एक जागा * सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा

यहाँ विभीषण ने खबर पाई तो तुरन्त श्रीरघुनाथजी को जा सुनाई—हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। सिद्ध हो जाने पर वह अभागा नहीं मरेगा।

पठवहु नाथ बेगि भट बन्दर * करहिं विध्वंस आव दशकन्धर
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए * हनुमदादि अंगद सब धाए

हे नाथ! वीर बानरों को शीघ्र भेजिये, यह विध्वंस करेंगे तो रावण युद्ध करने के लिए आवेगा। सबेरा होते ही प्रभुने योद्धाओं को भेजा तो अंगद, हनुमान आदि सब वीर दौड़ पड़े।

कौतुक कूदि चढ़े कपि लङ्का * पठये रावन भवन असङ्का
जग्य करत जबहीं सो देखा * सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा

बानर सहज ही में उछल लंका पर चढ़ गये और रावण के महल में बेधड़क ही घुस गये। उसे यज्ञ करते हुए देखकर उन्हें बहुत क्रोध हुआ।

रन ते निलज भाजि गृह आवा * इहाँ आइ बक ध्यान लगावा
अस कहि अङ्गद मारी लाता * चितव न सठ स्वारथ मन राता

(वे बोले-) रे निर्लज्ज! रणभूमि से भागकर घर चला आया और यहाँ आकर बगुले का-सा ध्यान लगाये बैठा है ऐसा कहकर अंगद ने लात मारी, परन्तु उस मूर्ख ने नहीं देखा। क्योंकि वह अपने स्वार्थ में रत था।

छन्द—नहिं चितव जब करि कोप गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बहोरि तेऽति दीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतान्त सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह विध्वंश कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

जब नहीं देखा तो बानर बहुत क्रोधित होकर उसे दाँतोंसे काटने और लातों से मारने लगे, फिर स्त्रियों को चोटी पकड़कर बाहर निकाल लाये। वे अति दीन होकर चिल्लाने लगीं, तब रावण काल के समान क्रोध में भरकर उठा और वानरों को [illegible] पटकने

लगा। इसी बीच में बानरों ने यज्ञ-विध्वंस कर दिया। यह देख रावण मन में हार गया।

दोहा—जग्य बिध्वंस कुशल कपि, आए रघुपति पास।
चले निसाचर क्रुद्ध होइ, त्यागि जिअन कै आस ॥ ८५ ॥

यज्ञ को विध्वंस कर सब बानर सकुशल श्रीरघुनाथजी के पास आये। तब रावण क्रोधित होकर जीने की आशा छोड़कर लङ्का से चला।

चलत होहिं अति अशुभ भयंकर * बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर
भयउ कालबस कहा न माना * कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना

चलते ही भयंकर असगुन होने लगे—गीध सिरों पर उड़ते हैं। काल के बश वह दुष्ट किसी का कहना नहीं मानता और बोला कि युद्ध के बाजे बजाओ।

चली तमीचर अनी अपारा * बहु गज रथ पदाति असवारा
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें * सुलभ समूह अनल कहँ जैसें

राक्षसों की अपार सेना चली, जिसमें बहुत से हाथी, रथ, पैदल और घुड़सवार थे। प्रभु के सामने वह दुष्ट कैसे दौड़े-जैसे पतङ्गों के झुण्ड अग्नि की ओर दौड़ते हैं।

इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही * दारुन बिपति हमहिं एहिं दीन्ही
अब जनि राम खेलावहु एही * अतिसय दुखित होति बैदेही

यहाँ देवताओं ने प्रार्थना की इसने हमको बहुत दुःख दिया है। हे श्रीरामजी! अब इसे मत खिलाइये, क्योंकि जानकीजी दुखित होती हैं।

देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना * उठि रघुबीर सुधारे बाना
जटा जूट दृढ़ बाँधे माथे * सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे

देवताओं की प्रार्थना सुनकर प्रभु मुस्कराये और रघुनाथजी ने उठ कर बाण सुधारे। जटाओं का जूड़ा माथे पर बाँधा, जिसके बीच-बीच में फूलों के गुच्छे सुशोभित हैं।

अरुन नयन बारिद तनु श्यामा * अखिल लोक लोचन अभिरामा
कटि तट परिकर कस्यो निषंगा * कर कोदण्ड कठिन सरंगा

लाल नेत्र, मेघ के समान श्याम शरीर, सब लोकों के नेत्रों को आनन्द देने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने कमर में तरकस कसा और हाथ में कठोर धनुष लिया।

छन्द—सारंग कर सुन्दर निसङ्ग सिली मुखाकर कटि कस्यो।
भुजदण्ड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो ॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्माण्ड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे ॥

हाथ में सारंग और कमर में तरकस कसा हुआ। दृढ़ मनोहर लम्बी भुजायें और चौड़ी छाती पर भृगु-चिन्ह शोभायमान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु हाथ में धनुष-बाण लेकर

घुमाने लगे, तब ब्रह्माण्ड, दिग्गज, कच्छप, शेष, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत डोलने लगे।

दोहा—सोभा देखि हरषि सुर, बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुणानिधि, छबि बल गुन आगार ॥ ८६ ॥

शोभा देखकर प्रसन्न होकर अपार फूल वर्षा करने लगे। दया के समुद्र तथा शोभा, गुण और बल के धाम प्रभु की जय-जयकार करने लगे।

एहीं बीच निसाचर अनी * कसमसात आई अति घनी
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा * प्रलय काल के जनु घन घट्टा

इतने ही में राक्षसों की सेना बहुत घनी होने के कारण कसमसाती हुई आई। उसे देख कर बानर वीर सामने चले, मानो प्रलयकाल के बादलों की घटायें उमड़ चली हों।

बहु कृपान तरवारि चमक्कहिं * जनुदहँ दिसि दामिनीं दमक्कहिं
गज रथ तुरँग चिकारकठोरा * गर्जहिं महुँ बलाहकु घोरा

कृपाण, शूल, तलवार चमक रही हैं, मानो दशों दिशाओं में बिजलियाँ चमक रही हों। हाथी, रथ, घोड़ों के कठोर शब्द मानो भयंकर मेघ गरज रहे हों।

कपि लँगूर बिपुल नभ छाए * मनहुँ इन्द्रधनु उएउँ सुहाए
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा * बान बुन्द भै बृष्टि अपारा

बानरों की बहुत-सी पूँछें आकाश में छा गई हैं, मानो सुन्दर इन्द्र-धनुष उत्पन्न हुए हों। धूलि उड़ती है, मानो जल की धार हो, बाणों की ऐसी शोभा हुई, मानो बहुत वर्षा हो रही हो।

दुहुँ दिसि पर्वत करहिं प्रहारा * बज्रपात जनु बारहिं बारा
रघुपति कोपि बान झरि लाई * घायल भए निसिचर समुदाई

दोनों ओर से योद्धा पर्वतों की वर्षा कर रहे हैं, मानो बारम्बार वज्रपात हो रहा है श्रीरघुनाथजी ने क्रोध करके बाणों की झड़ी लगा दी, जिनसे बहुत से राक्षस घायल हो गये।

लागत बान बीर चिक्करहीं * घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं
स्त्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी * सोनित सरि कादर भयकारी

बाण लगते ही वीर चीख मारकर चक्कर खाकर जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं। रुधिर की नदी ऐसी जान पड़ती है, मानो पहाड़ों से पानी के झरने बह रहे हों। वह नदी कायरों को भय देने वाली है।

छन्द—कायर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
काउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी ॥
जलजन्तु गज पदचर तुरंग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने ॥

कायरों को भर देने वाली बहुत ही अपवित्र रुधिर की नदी बह चली। दोनों सेनायें ही उसके दो किनारे हैं, रथ बालू है। पहिये भँवर हैं, वह भयानक रूप से बह रही है। उसमें हाथी, घोड़े, पैदल, गधे और भाँति-भाँति के बानर 'जय-जीव हैं' उनकी गणना कौर करे ? बाण, बर्छी, बल्लम-'सर्प' और धनुष ही उसकी तरंगें हैं तथा ढालें ही बहुत-से कछुए हैं।

दोहा—बीर परहिं जनु बट तरु, मज्जा बहु वह फैन।
कायर देखि डरहिं तहँ, सुभटन्ह के मन चैन ॥ ८७ ॥

योद्धा मानो वट के वृक्षों की भाँति गिरते हैं। बहुत-सी चर्बी मानो 'फेन' वह रही है। उसे देखकर कायर डरते हैं और योद्धाओं के मन प्रसन्न होते हैं।

मज्जहिं भूत पिशाच वेताला * प्रथम महा झोटिंग करांला
काक कङ्क लै भुजा उड़ाहीं * एक ते एक छीनि ले खाहीं

इसमें भूत-प्रेत, बेताल और विकट झोटिंग प्रथम स्नान करते हैं। कौवे व गीध भुजायें लेकर दौड़ते हैं और एक-दूसरे से छीन २ कर खाते हैं।

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई * सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई
कहँ रत भट घायल तट गिरे * जहँ तहँ मनहुँ अँध जल परे

कोई कहते हैं अरे मूर्खो ! ऐसी अधिकता होने पर भी तुम्हारा दरिद्र नहीं जाता। योद्धा तट पर पड़े हुए ऐसे कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अन्धे जल में पड़े हों।

खैंचहिं गीध आंत तट भए * जनु बंसी खेलत चित दए
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं * जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं

तट पर बैठे हुए गीध आँतें खींच रहे हैं, मानो मन लगाकर वंशी खेल रहे हैं। बहुत से योद्धा रुधिर में बहे जाते हैं तथा उनके ऊपर पक्षी बैठ जाते हैं, मानो नदी में नावरि खेल रहे हैं।

जोगिनि सरि भरि खप्पर संचहिं * भूत पिशाच बधू नभ नंचहिं
भट कपाल करताल बजावहिं * चामुण्डा नाना विधि गावहिं

योगनियाँ अपने २ खप्पर भरती हैं। आकाश में भूत-पिशाचों की स्त्रियाँ नाच रही हैं। योद्धाओं की खोपड़ियों की करताल बजाती हुई चामुण्डायें अनेक तरह से गाती हैं।

जम्बुक निकर कटक्कट कट्टहिं * खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं
कोटिह रुण्ड मुण्ड बिनु डोलहिं * सीस परे महि जय जय बोलहिं

गीदड़ों के झुण्डों के झुण्ड कटकटाते हैं। वे खाते और हुँआ-हुँआ करते हुए झपटते हैं। बहुत से धड़ बिना सिर के घूम रहे हैं, उनके सिर पृथ्वी पर पड़े हुए जय-जय बोल रहे हैं।

छन्द—बोलहिं सो जय जय मुण्ड रुण्ड प्रचण्ड सिर बिनु धावहीं।
खप्परन्हि खग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्हि ढहावहीं ॥

बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए ।
संग्राम अङ्गन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए ॥

मुण्ड 'जय-जय' बोलते हैं और प्रचण्ड धड़ बिना सिर के दौड़ते हैं । पक्षी खोपड़ियों में झगड़कर लड़ते मरते हैं, वीर एक दूसरे के वीरों को गिराते हैं । श्रीरामजी के तेज दर्पित बानर राक्षस समूह को मसल डालते हैं । समरांगण में श्रीरामजी के बाण-समूहों से भरे हुए योद्धा सो रहे हैं ।

दोहा—रावन हृदयँ विचारा, भा निसिचर संहार ।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौं अपार ॥ ८८ ॥

रावण ने मन में विचारा कि राक्षसों का तो नाश हो गया, मैं अकेला हूँ और बानर रीछ बहुत हैं, इसलिए अब मैं अपार माया रचूँ ।

देवन्ह प्रभु पयादें देखा * उपजा उर अति छोभ बिसेषा
सुरपति निज रथ तुरत पठावा * हरष सहित मातलि लै आवा

देवताओं को प्रभु ने पैदल देखा तो जी में बहुत क्षोभ हुआ । देवराज ने अपना रथ तुरन्त भेज दिया, जिसे मातलि सहर्ष ले आया ।

तेज पुञ्ज रथ दिव्य अनूपा * हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा
चञ्चल तुरग मनोहर चारी * अजर अमर मन सम गतिकारी

उस तेजपूर्ण अनुपम रथ पर कौशलपुर के स्वामी श्रीरघुनाथजी हँसकर चढ़े । उस रथमें चंचल और मनोहर घोड़े जुते हैं, जो अजर-अमर तथा मन के समान चंचल गति वाले हैं ।

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी * धाए कपि बलु पाइ बिसेषी
सही न जाय कपिन्ह कै मारी * तब रावन माया विस्तारी

श्रीरामजी को रथ पर देखकर बानर विशेष बल पाकर दौड़े, जब बानरों की मार सही नहीं गई, तब रावण ने माया फैलाई ।

सो माया रघुबीरहि बाँची * लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची
देखि कपिन्ह निसाचर अनी * अनुज सहित बहु कौसलधनी

वह माया श्रीरामजी के सिवाय लक्ष्मणजी तथा बानरों आदि ने सही मानली । निशाचरों की सेना में लक्ष्मण सहित बहुत से रामों को देखा ।

छन्द—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे ।
जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे ॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सरचाप सजि कोसल धनी ।
माया हरी हरि निमिष महँ हरषी सकल मर्कट अनी ॥

बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर बानर रीछ मन में बहुत डर गये । लक्ष्मण समेत वे सब

लिखे के समान जहाँ के तहाँ खड़े रह गये। अपनी सेना को अचम्भे में खड़ी देख हँसकर धनुष-बाण चढ़ाकर कौशलपति भगवान हरि ने पल भर में माया हरली। तब बानर सेना प्रसन्न हुई।

दोहा—बहुरि राम सब तन चितइ, बोले बचन गम्भीर।
द्वन्द युद्ध देखहु सकल, श्रमित भए अति बीर॥ ८८॥

फिर श्रीरामजी सबकी ओर देखकर गम्भीर वचन बोले-हे वीरो! अब द्वन्द-युद्ध देखो, क्योंकि तुम सब बहुत थक गये हो।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा * बिप्र चरन पङ्कज सिरु नावा
तब लंकेश क्रोध उर छावा * गर्जत तर्जत सन्मुख धावा

ऐसा कहकर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के चरण-कमलों में सिर नवाकर रथ चला दिया। तब रावण के हृदय में क्रोध छा गया, वह गर्जता और ललकारता हुआ सामने आया।

जीतेहु जे भट संजुग माहीं * सुन तापस मैं तिन्ह सम नाहीं
रावन नाम जगत जस जाना * लोकप जाकें बन्दीखाना

सुन, तपस्वी! तूने जितने योद्धा संग्राम में जीते हैं, उनके समान मैं नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरे यश को संसार जानता है, लोकपाल तक जिसके बन्दीखाने में रहे हैं।

खरदूषन बिराध तुम्ह मारा * बधेउ व्याध इव बालि बिचारा
निसिचर निकट सुभट संघारेहु * कुम्भकरण मेघनाथहि मारेहु

खरदूषण और कबन्ध को तूने मारा। बेचारे बाली को बहेलिया की नाईं मारा, राक्षसों के समूह को मारा और कुम्भकरण, मेघनाद को भी मारा।

आजु बयरु सब लेहुँ निवाही * जौं रन भूमि भाजि नहिं जाही
आजु करहुँ खलु काल हवाले * परेहु कठिन रावन के पाले

यदि तुम रण-भूमि से भाग नहीं जाओ तो आज मैं सबका बैर चुका लूंगा। आज तुम्हें काल के हवाले अवश्य कर दूंगा, क्योंकि आज तुम कट्टर रावण के पाले पड़े हो।

सुनि दुर्बचन कालबस जाना * बिहँसि बचन कह कृपानिधाना
सत्य सत्य सब तब प्रभुताई * जल्पसि जान देखाउ मनुसाई

रावण के दुर्वचन सुनकर उसे काल के अधीन जाना कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी हँसकर वचन बोले-तुम्हारी सब प्रभुता सत्य है, परन्तु व्यर्थ बात मत करो, अपनी बहादुरी दिखाओ।

छन्द—जनि कल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करि छमा।
संसार महँ नर त्रिबिधि पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

वृथा बकवाद करके उत्तम यश का नाश मत करो। क्षमा रखकर नीति को सुनो, संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं-पाल, आम और कटल के समान। इनमें एक केवल फूल देते हैं, दूसरे फल-फूल दोनों देते हैं और तीसरे केवल फल देते हैं। इस प्रकार एक कहते हैं करते नहीं। दूसरे कहते भी हैं और करते भी हैं, तीसरे करते हैं कहते नहीं।

दोहा—राम बचन सुनि बिहँसा, मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे, अब लागे प्रिय प्रान॥ ९०॥

श्रीरामजी के वचन सुनकर रावण ने हँसकर कहा-मुझे ज्ञान सिखाते हो, तब वैर करते नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लगते हैं।

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकन्धर * कुलिस समान लाग छाँड़े सर
नानाकार सिलीमुख धाए * दिसि अरु बिदिस गगन महि छाए

रावण दुर्वचन कहकर क्रोध करके वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेक प्रकार के बाण छोड़े, दिशा—विदिशा, आकाश और पृथ्वी में छा गये।

पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा * छन महुँ जरे निसाचर तीरा
छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई * बान संग प्रभु फेरि चलाई

तब रामजी ने अग्नि बाण छोड़ा, जिससे रावण के सब बाण क्षणमात्र में भस्म होगये। तब उसने खिसिया कर बहुत पैनी शक्ति छोड़ी, प्रभु ने उसे बाण के साथ लौटा दिया।

कोटिन्ह चक्र त्रिशूल पवारै * बिनु प्रायस प्रभु कटि निवारै
बिफल होहिं रावन सर कैसे * खल के सकल मनोरथ जैसे

रावण ने अनेकों चक्र व त्रिशूल चलाये, परन्तु प्रभु ने उन्हें बिना परिश्रम ही काटकर डाल दिया। रावण के बाण कैसे निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य के सब मनोरथ।

तब सत बान सारथी मारेसि * परेउ भूमि जय राम पुकारेसि
राम कृपा करि सूत उठावा * तब प्रभु परम क्रोध कहँ पावा

फिर उसने श्रीरामजी के सारथी को सौ बाण मारे, वह श्रीरामजी की जय पुकारता हुआ भूमि पर गिर पड़ा, तो श्रीरामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया। तब प्रभु के हृदय में अत्यन्त क्रोध हुआ।

छन्द—भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कस मसे।
कोदण्ड धुनि अति चण्ड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मन्दोदरी उर कम्प कम्पित कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

युद्ध में विरुद्ध हुए श्रीरामजी बड़े कोधित हुए, तर्कस में बाण खड़खड़ाने लगे। धनुष का शब्द सुनकर सब राक्षस भयरूपी वायु से ग्रसित होगये, मन्दोदरी का हृदय कांप उठा।

कच्छप, पृथ्वी और पहाड़ डर गये। दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दाँतों से पकड़ कर चिघाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

दोहा—तानेउ चाप श्रवन लगि, छाँड़े विसिख कराल।
राम मारगन गन चले, लहलहात जनु व्याल॥ ९१॥

श्रीरामचन्द्रजी ने कान तक धनुष तान कर कराल वाण छोड़े रामवाण ऐसे चले, मानो लपलपाते हुए साँप जा रहे हों।

चले वान सपच्छ जनु उरगा * प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा
रथ विभञ्जिहति केतु पताका * गर्जा अति अन्तर बल थाका

पंख वाले साँप के समान वाण चले, उन्होंने पहले सारथी और घोड़ों को मारा, फिर रथ को तोड़कर ध्वजा-पता उड़ा दी। तब रावण बड़े जोर से गरजा, परन्तु उसका बल भीतर से घट गया।

तव रावन दस शूल चढ़ावा * बाजि चारि महि मारि गिरावा
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक * खैंचि सरासन छाँड़े सायक

तब रावण ने दश शूल चलाये, जिन्होंने चारों घोड़े भूमि में गिरा दिये। तब घोड़ोंको उठाकर श्रीरामजी ने क्रोध करके धनुष तानकर वाण छोड़े।

तीस तीर रघुबीर पँवारे * भुजन्हि समेत सीस महि पारे
काटत ही पुनि भए नवीने * राम बहोरि भुजा सिर छीने

तब तीस वाण रामजी ने छोड़े, जिन्होंने बीसों भुजाओं सहित दसों सिर काट भूमि पर डाल दिये। कटते ही फिर नये प्रकट होगये, श्रीरामजी ने फिर भुजा व सिर काट डाले।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा * अति कौतुकी कोसलाधीसा
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू * मानहु अमित केतु अरु राहू

कौशलनाथ बड़े खिलाड़ी हैं, वे रावण की भुजाओं और सिरों को बार २ काटते हैं। वे काटे हुए सिर आकाश में कैसे छा रहे हैं, मानो बहुत से केतु और राहु हों।

छन्द—जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्त्रवत सोनित धावहीं।
रघुवीर तीर प्रचण्ड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुन्तुद पोहहीं॥

मानो अनेक राहु-केतु रुधिर टपकाते हुए आकाश-मार्ग में दौड़ रहे हैं, उनमें श्रीरामजी के तीखे बाण ऐसे लग रहे हैं कि पृथ्वी पर नहीं गिरने पाते, एक-एक बाण ने बहुत से सिरों को छेद डाला। वे आकाश में उड़ते हुए ऐसे शोभित हैं, मानो क्रोधित होकर सूर्य से अपनी किरणों के समूहों को जहाँ-तहाँ राहू पिरो दिये हों।

दोहा—जिमि जिमि प्रभु हरता सु सिर, तिमि तिमि होंहि अपार ।
सेवत विषय बिबिध जिमि, नित नित नूतन मार ॥६२॥

प्रभु ज्यों २ उसके सिर काटते हैं त्यों २ वे बढ़ते हैं जैसे विषयों का सेवन करने से कामदेव नित-नित नवीन होता है ।

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी * बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी * धायउ दसहु सरासन तानी

अपने सिरों की बाढ़ देखकर रावण अपना मरण भूल गया अधिक क्रोधित हुआ । वह अत्यन्त अहंकारी मूर्ख गर्जा और दसों धनुषों को तानकर दौड़ा ।

समर भूमि दसकन्धर कोप्यो * बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो
दण्ड एक रथ देखि न परेऊ * जनु निहार महुँ दिनकर दूरेऊ

रणभूमि में रावण क्रोधित हुआ और बाण बरसा कर रामजी का रथ ढक दिया । एक घड़ी तक रथ नहीं दीख पड़ा, वह छिप गया जैसे कुहरे में सूर्य छिप जाता है ।

हाहाकर सुरन्ह जब कीन्हा * तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा
सर निवारि रिपु के सिर काटे * ते दिसि बिदिस गगन महि पाटे

जब देवताओं ने हा-हाकार किया तब प्रभु ने कोप करके धनुष हाथ में लिया और शत्रु के काटे हुए सिर आकाश में भागते हुए जय-जय ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं ।

काटे सिर नभ मारग धावहीं * जय जय धुनि करि भय उपजावहिं
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा * कहँ रघुबीर कौसलाधीसा

बाणों को काटकर उसके सिर काटे, वे दिशा-विदिशा आकाश और पृथ्वी में गये लक्ष्मण, हनुमान और सुग्रीव कहाँ हैं ? अयोध्यापति रघुवीर कहाँ हैं ।

छन्द—कहँ राम कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले ।
संधानि धनु रघुबंस मनि हँसि सिरहिं सिर वेधे भले ॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृन्द बृन्दन्हि बहु मिलीं ।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं ॥

'राम कहाँ है ?' ऐसा कहकर बहुत से सिर दौड़े उन्हें देखकर बानर भाग चले । तब श्रीरामचन्द्रजी ने हँसकर अपना धनुष तानकर बाणों से उन सिरों को भली भाँति वेध दिया । मुण्ड मालाओं को लेकर बहुत सी कलिकायें झुण्ड की झुण्ड मिलीं जैसे रुधिर की नदी में स्नानकर संग्रामरूपी वट वृक्ष को पूजने जाती हों ।

दोहा—पुनि दसकन्धर क्रुद्ध होइ, छाँड़िउ सक्ति प्रचण्ड ।
चली बिभीषन सन्मुख, मनहुँ काल कर दण्ड ॥६३॥

फिर रावण ने क्रोधित होकर तीव्र शक्ति छोड़ी, वह विभीषण के सामने ऐसी चली, मानो काल (यमराज का दण्ड) हो।

आवत देखि सक्ति अति घोरा * प्रनतारित भञ्जन पन मोरा
तुरत विभीषन पाछें मेला * सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला

भारी शक्ति को आते देखकर प्रभुने अपने शरणागत के दुःख को दूर करने के सुयश को स्मरण करके विभीषण तुरन्त पीछे कर दिया और स्वयं सामने जाकर उसको सह लिया।

लागि सक्ति मुरछा कछु भई * प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई
देखि विभीषन प्रभु श्रम पायो * गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो

उस शक्ति के लगने से कुछ मूर्छा-सी हुई। प्रभु ने तो खेल किया पर देवताओं को घबराहट होगई। विभीषण ने प्रभु को श्रम पाये देखकर हाथ में गदा लेकर क्रोध करके धावा किया।

रे कुभाग्य सठ मन्द कुबद्धे * तै सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे
सादर शिव कहुँ सीस चढ़ाए * एक एक के कोटिन्ह पाए

वे बोले-रे अभागे, मूर्ख, नीच, कुबुद्धि तूने देवता, मनुष्य, मुनि और नाग सभी से वैर किया। आदर सहित शिवजी को सिर चढ़ाकर एक-एक के बदले में करोड़ों सिर पाये हैं।

तेहि कारण खल अब तक बाच्यो * अब तक काल सीस पर नाच्यो
राम विमुख शठ चहसि सम्पदा * अस कहि हनेसि माझ उरगदा

रे दुष्ट, इसी से अब तक तू बचा है, अब काल तेरे सिर परनाच रहा है। रे मूर्ख, श्रीराम से विमुख होकर सम्पत्ति चाहता है। ऐसा कहकर रावण की छाती के बीचों-बीच गदामारी।

छन्द—उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो।
दस बदन सोनित स्त्रवत पुनि सम्भारि धायोरिस भर्‌यो ॥
द्वौ भिरे अति बल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित विभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै ॥

छाती में गदा की भारी चोट लगते ही वह धरती पर गिर पड़ा और दसों मुखों से रुधिर बहने लगा फिर सँभला और क्रोध में भरकर दौड़ा, बड़े बली कुस्ती लड़ने लगे और विरुद्ध होकर एक दूसरेको मारने लगे। श्रीरामजीके बल से गर्वित विभीषण मारको कुछ नहीं गिनता।

दोहा—उमा विभीषनु रावनहि, सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों, श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥९४॥

(शिवजी कहते हैं—) हे पार्वती! विभीषण क्या कभी रावण के सामने आँख उठाकर भी देख सकता था। परन्तु अब वही काल के समान उससे युद्ध कर रहा है, यह भी प्रभु श्रीरघुनाथजी का ही प्रताप है।

देखा श्रमित विभीषनु भारी * धायउ हनूमान गिरधारी

रथ तुरङ्ग सारथी निपाता * हृदय माझ तेहि मारेसि लाता

विभीषण को थका जानकर हनुमानजी पर्वत लेकर दौड़े, उन्होंने रावण के सारथी और घोड़ो समेत रथ को चकनाचूर कर दिया। फिर रावण की छाती में लात मारी।

ठाढ़ रहा अति कम्पित गाता * गयउ विभीषन जहँ जनत्राता
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी * चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी

रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर थरथरा गया, विभीषण वहाँ गये, जहाँ जनार्दन भगवान थे, फिर रावण ने ललकार कर हनुमानजी को मारा, तब वे पूँछ फैलाकर आकाश में चले।

गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना * पुनि फिरि फिरेउ प्रबल हनुमाना
लरत अकास जुगल सम जोधा * एकहि एकु हनत करि क्रोधा

उसने पूँछ पकड़ली, हनुमानजी उसे भी साथ ले उड़े फिर आकाश में महाबली हनुमान जी उससे भिड़ गये। दोनों समान योद्धा आकाश में लड़ते हुए एक दूसरे को क्रोध करके मारने लगे।

सोहहि नभ छलबल बहु करहीं * कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं
बुधि बल निसिचर परइ न पार्‌यो * तब मारुत सुत प्रभुहि सँभार्‌यो

आकाश में बहुत छल-बल करते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो कज्जलगिरि और सुमेरु-पर्वत लड़ रहे हों। बुद्धि और बल से रावण हराये नहीं हारता, तब हनुमानजी ने प्रभु को स्मरण किया।

छन्द—सम्भारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावन हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल जय जय जय भन्यो॥
हनुमन्त सङ्कट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचण्ड भुजबल दलमले

वीर हनुमानजी ने रघुनाथजी को स्मरण करके रावण को ललकार कर मारा, वह भूमि पर गिरकर फिर उठकर लड़ने लगा, यह देखकर देवताओं ने दोनों की जय-जयकार की। हनुमानजी को संकट में देखकर रीछ-वानर क्रोधित हो दौड़े, किन्तु रण में मतवाले रावणने अपनी प्रचण्ड भुजाओं के पराक्रम से सब बानरों को मसल डाला।

दोहा—तब रघुबीर पचारे, धाए कीस प्रचण्ड।
कपिबल प्रबल देखि तेहिं, कीन्ह प्रगट पाखण्ड॥ ९५॥

तब श्रीरघुनाथजी ने ललकारा तो प्रचण्ड बानर दौड़े। बानरों के प्रबल दल को देख कर रावण ने माया प्रकट की।

अन्तरध्यान भयउ छन एका * पुनि प्रगटे लख रूप अनेका
रघुपति कटक भालु कपि जेते * जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते

क्षण भर के लिए वह अन्तर्ध्यान हो गया, फिर वह दुष्ट अनेक रूप होकर प्रकट हुआ। राम-सेना में जितने रीछ बानर थे, उतने ही रावण प्रकट हो गये।

देखि कपिन्ह अमित दससीसा * जहँ तहँ भजे भालु अरु कोसा
भागे बानर धरहिं न धीरा * त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा

बानरों ने अगणित रावण देखे। भालू और बानर जहाँ-तहाँ भागे। वीर वानर धीरज नहीं धरते। हे लक्ष्मणजी! हे रामजी! रक्षा करो।

दस दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन * गर्जहिं घोर कठोर भयावन
डरे सकल पुर चले पराई * जय कै आस तजहु अब भाई

दशों दिशाओं में अनेकों रावण दौड़े और महाघोर और भयंकर शब्दसे गरजने लगे। सब देवता डर गये और यह कहते हुए भाग चले कि भाइयो! अब विजय की आशा छोड़ दो।

सब सुर जिते एक दसकन्दर * अब बहु भए तकहु गिरिकन्दर
रहे बिरंचि सम्भु मुनि ज्ञानी * जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी

सब देवों को एक ही रावण ने जीत लिया-अबतो बहुत से रावण हो गये, इससे अब कन्दराओं को ढूँढ़ो। ब्रह्मा, महादेव और ज्ञानी मुनि निर्भय रहे, जिन लोगों ने प्रभु की महिमा जानी थी।

छन्द—जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे॥
हनुमन्त अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि-कोटिहि कपट भू भट अंकुरे॥

जो प्रभु के प्रताप को जानते थे वे निर्भय रहे, बानरों ने शत्रु सच्चे मारे, इससे बानर-रीछ घबड़ाकर भाग चले और मारे डरके पुकारने लगे, हेदयालु रक्षा करो! हनुमान, अंगद, नील, नल आदि महाबली योद्धा मायावी रावण को जो छलसे उत्पन्न हुए थे, मसल २ कर मारने लगे।

दोहा—सुर बानर देखे बिकल, हँस्यो कोसलाधीश।
सजि सारङ्ग एक सर, हते सकल दससीस॥ ९६॥

देवता और बानरों को विकल देखकर श्रीरामजी हंसे और अपना धनुष संभालकर एक बाण से पल भर में सब रावणों का नाश कर दिया।

प्रभु छन महुँ माया सब काटी * जिमि रबिउएँ जाहि तम फाटी
रावन एकु देखि सुर हरषे * फिर बहु सुमन प्रभु पर बरषे

प्रभुने क्षणभर में सब राक्षसी माया हरली, जैसे सूर्य के उगने से अन्धकार दूर होता है। जब एक रावण रहा तब उसे देख देवता प्रसन्न हुए और लौटे, फिर प्रभु पर बहुतसे फूल बरसाये।

भुज उठाय रघुपति कपि फेरे * फिरे एक एकन्ह तब टेरे
प्रभु बल पाइ भालु कपि धाये * तरल तमिक संजुग महि आये

रघुनाथजी ने अपनी भुजा उठाकर बानरों को लौटाया। तब वे बानर एक दूसरे को पुकार कर सब फिरे। प्रभु का बल पाकर रीछ बानर दौड़े और वेग से लपककर संग्राम में आये।

अस्तुति करत देवतन्ह देखे * भयउँ एक मैं इन्ह के लेखे
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल * अस कहि क्रोध गगन पर धायल

वह देवताओं को श्रीरामजी की स्तुति करते देखकर अपने मनमें विचार करने लगाकि इनकी समझ में मैं अकेला हो गया। रे मूर्खो ! तुम सदा से ही मेरी मार खाते आये हो ऐसे कहकर क्रोध करके आकाश में दौड़ा।

हा हा कार करत सुर भागे * खलहु जाहु कहँ मोरें आगे
देखि बिकल सुर अंगद धायौ * कूदि चरन गहि धरनि गिरायौ

तब हा-हाकार करते हुए देवता भागे। रावण कहने लगा—अरे दुष्टों ! मेरे सामने से भागकर कहाँ जाओगे ? देवताओं को व्याकुल देखकर अङ्गदजी दौड़े और कूदकर रावण का पैर पकड़कर भूमि पर गिरा दिया।

छन्द—गहि भूमि पार्‌यौ लात मार्‌यौ बालिसुत प्रभु पहिं गयौ।
सम्भारि उठि दसकन्धर शब्द कठोर रव गर्जत भयौ॥
करि दापि चापि चढ़ाइ दस सन्धानि सर बहु बरषही।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषही॥

पैर पकड़कर भूमि पर गिरा दिया और लात मारकर अङ्गदजी प्रभु के पास गये। रावण सँभलकर उठा और बड़े भयङ्कर शब्द से गर्जने लगा। फिर घमंड के साथ दसों धनुष चढ़ाकर उनमें बाण संधानकर बहुत से बाणों की वर्षा करने लगा। सब योद्धाओं को उसने घायल कर दिया और अपने बल को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

दोहा—तब रघुपति रावन के, सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़ पुनि, जिमि तीरथ कर पाप॥ ९७॥

तब श्रीरघुनाथजी ने रावण के सिर, भुजा व धनुष-बाण काट डाले, तब वे फिर नये ऐसे प्रकट होगये, जैसे तीर्थ में किये हुए पाप बढ़ते हैं।

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी * भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा * धाए कोटि भालु भट कीसा

शत्रु के सिर व भुजाओं को बढ़ते देख रीछ-बानरों को क्रोध हो आया और वे बोले—यह मूर्ख, भुजा और शीश कटने पर भी नहीं मरता। तब रीछ-बानर फिर क्रोध करके दौड़े।

बालि तनय मारुत नल नीला * बानरराज द्विबिध बलसीला
बिटप महीधर करहिं प्रहारा * सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा

अङ्गद, हनुमान, नल-नील, द्विविद व मयन्द-ये महा बलवान् बानर वृक्ष और पहाड़ का प्रहार करते हैं। रावण उन्हीं वृक्ष और पहाड़ों को पकड़कर बानरों पर मारता है।

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी * भागि चलहि एक लातन्ह मारी
तब नल नील सिरन्ह चढ़ि गयऊ * नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ

कोई रावण के शरीर को विदीर्ण कर भाग जाते हैं तो कोई लातोंसे मारते हैं,तब नल और नील उसके शरीर पर चढ़ गये और उन्होंने अपने नखों से रावण के कपालों को पकड़ डाला।

रुधिर देखि विषाद उर भारी * तिन्हहि धरनि कहुँ भुजा पसारी
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं * जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं

रुधिर देखकर क्रोधित हो उस देव शत्रुने उनको पकड़ने के लिये भुजा फैलाई,पर वे पकड़ने में नहीं आते। वे उसकी भुजाओं के ऊपर फिरते हैं,मानो वो भौंरे कमलों के वनमें फिर रहे हों।

कोप कूद द्वौ धरेसि बहोरी * महि पटकत भजे भुजा मरोरी
पुनि सँकोचि दस धनु कर लीन्हे * सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे

फिर रावण ने क्रोधपूर्वक कूदकर दोनों को पकड़ लिया। पृथ्वी पर पटकते समय वे उसकी भुजा मरोड़कर भाग गये तब उसने क्रोधित होकर दसों हाथों में दस धनुष लिए और बाण मारकर बानरों को घायल कर दिया।

हनुमतादि मूरछित करि बन्दर * पाइ प्रदोष हरसि दसकन्धर
मुरछित देखि सकल कपि बीरा * जामवन्त धायउ रनधीरा

हनुमान आदि सब बानरों को मूर्छित कर सन्ध्या समय जानकर रावण प्रसन्न हुआ। सब बानरों को मूर्छित देखकर जामवन्त दौड़े।

सङ्ग भालु भूधर तरु धारी * मारन लगे पचारि पचारी
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना * गहि पद मोहि पटकत भट नाना
देखि भालुपति निजदल घाता * कोप माझ उर मारेसि लाता

साथ में जो भालू थे, वे पर्वत और वृक्ष लिए ललकार २ कर उसे मारने लगे। बलवान् रावण बहुत क्रोधित हुआ और अनेक योद्धाओं को पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटकने लगा। जामवन्त ने अपने दल का संहार होते देखकर कोप करके रावण के हृदय में लात मारी।

छन्द—उर लात घात प्रचण्ड लागत विकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहु कर मनहूँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरछित बिलोकि बहोरि पद हित भालुपति प्रभु पहिं गयो।
निसि जानि स्यनन्दन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो॥

हृदय में लात की भारी चोट लगते ही रावण व्याकुल होकर रथ से भूमि पर गिर पड़ा। बीसों हाथों से रीछों को पकड़ते हुए ऐसा लगता है, मानो रात्रि में भौंरे कमलों में बसे हों। जामवन्त उसे मूर्छित देखकर फिर लात मारकर प्रभु के पास आये। रात्रि जानकर सारथी रथ में रावण को रखकर चैतन्य करने का उपाय करने लगा।

दोहा—मुरछा विगत भालु कपि, सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि, घेरि रहे अति त्रास॥ ९८॥

मूर्छा दूर हो जाने पर रीछ-वानर प्रभु के पास आये लङ्का में सब निशाचर बहुत भयभीत होकर रावण को घेरकर जा बैठे।

* मास पारायण—छब्बीसवाँ विश्राम *

तेहि निसि सीता पहिं जाई * त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपुकेरी * सीता उर भइ त्रास घनेरी

उसी रात को सीताजी के पास जाकर त्रिजटा ने सब कथा कही। शत्रु के सिर और भुजाओं का बढ़ना सुनकर सीताजी के हृदय में अत्यन्त भय हुआ।

मुख मलीन उपजी मन चिन्ता * त्रिजटा सन बोली तब सीता
होइहि कहा कहसि किन माता * केहि बिधि मरिहि बिस्वदुखदाता

मुंह पर उदासी छा गई और मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गई। तब सीताजी त्रिजटा से बोलीं—हे माता! क्या होगा, सो क्यों नहीं कहती? यह संसार को दुःख देने वाला राक्षस किस प्रकार मरेगा?

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई * बिधि बिपरीत चरित सब करई
मोर अभाग्य जियावत ओही * जेहिं हौं हरिपद कमल बिछोही

रघुनाथजी के बाणों से सिर कटने पर भी वह नहीं मरता। विधाता सब उल्टे चरित्र कर रहा है। मेरा अभाग्यही उसे जिला रहाहै। जिसने मुझे भगवानके चरणकमलों से अलगकर बियाहै।

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा * अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए * लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए

जिसने कपट युक्त सोने का मृग बनाया, वही विधाता अब भी मुझ पर रूठा है। जिस विधाता ने मुझे असह्य दुःख सहाये और लक्ष्मण को कठोर वचन कहलवाये।

रघुपति बिरह बिसिख सर भारी * तकि तकि मार बार बहु मारी
ऐसेहु दुख जो राख मम प्राना * सोइ बिधि ताहि जिआव न आना

जिसने रघुनाथजी के बिछोह रूपी बाणों से तक २ कर बार-बार मुझे मारा है, ऐसे दुःख में भी जो मेरे प्राणों को रख रहा, वही विधाता उसको जिला रहा है, दूसरा नहीं।

बहु बिधि कर बिलाप जानकी * करि करि सुरति कृपानिधान की
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी * उर सर लागत मरइ सुरारी
प्रभु ताते उर हतइ न तेही * एहि के हृदयँ बसति बैदेही

कृपानिधान श्रीरामजी को याद करके जानकीजी बहुत से विलाप कर रही हैं। त्रिजटा बोली—हे राजकुमारी! सुनो, हृदय में बाण लगने से ही रावण मरेगा। परन्तु प्रभु इस कारण इसके हृदय में बाण नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकीजी बसती हैं।

छन्द—एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥

सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा ।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहु सुन्दरि तजहु संसय महा ।।

इसके हृदय में जानकीजी का वास है, जानकी के हृदय में मेरा वास है तथा मेरे हृदय में अनेक लोक है, अतः बाण लगते ही सबका नाश हो जायगा । यह सुनकर सीताजी के हृदय में बहुत आनन्द और दुःख हुआ । यह देखकर त्रिजटा ने फिर कहा—हे सुन्दरी ! अब भारी सन्देह को दूर करके सुनो, शत्रु इस तरह मरेगा कि—

दोहा—काटत सिर होइहि बिकल, छूटि जाइहि तब ध्यान ।
तब रावनहि हृदयँ महुँ, मारहिं राम सुजान ।।९९।।

सिर कटते समय जब रावण व्याकुल हो जायगा और उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जायगा, तब चतुर श्रीरामजी रावण के हृदय में बाण मारेंगे ।

अस कहि बहुत भाँति समुझाई * पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही * उपजी बिरह ब्यथा अति तेही

ऐसा कहकर सीताजी को बहुत भाँति से समझाया फिर त्रिजटा अपने घर को चली गई। श्रीरामचन्द्रजी के स्वभाव को स्मरण कर सीताजी के हृदय में भारी विरह-व्यथा उत्पन्न हुई।

निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती * जुग सम भई सिराति न राती
करति बिलाप मनहिं मन भारी * राम बिरहँ जानकी दुखारी

वे रात्रिकी और चन्द्रमा की बहुत भाँतिसे निंदाकर रही हैं कि रात युगके बराबर होगई। काटे नहीं कटती । श्रीरामजी के विरह से दुःखित जानकीजी मन में बहुत विलाप करने लगीं।

अब अति भयउ बिरह उर दाहू * फरकेउ बाम नयन अरु बाहू
सगुन बिचारि धरिउ मन धीरा * अब मिलिहहि कृपालु रघुबीरा

जब विरह से हृदय में बहुत जलन हुई, तब बाँई आँख और भुजा फड़कने लगीं । यह शकुन विचार कर सीताजी ने मन में धीरज धारण किया कि अब कृपालु श्रीरघुनाथजी मिलेंगे ।

इहाँ अर्ध निसि रावन जागा * निज सारथि सन खीझन लागा
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही * धिग धिग अधम मन्दमति तोही

यहाँ आधी रात को रावण मूर्छा से जागा, और अपने सारथी से झुझलाने लगा—रे मूर्ख ! तूने मुझे रण भूमि से हटा दिया । रे नीच, मन्द-बुद्धि ! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है ।

तेहि पद गहि बहु बिधि समुझावा * भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि आवा
सुनि आगमन दशानन केरा * कपिदल खरभर भयउ घनेरा
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी * धाए कटकटाइ भट भारी

सारथी ने चरण पकड़कर बहुत भाँति से समझाया । तब भोर होने पर रावण रथपर चढ़ फिर दौड़ा । रावण का आना सुनकर बानरों की सेना में बड़ी खल्बली मच गई ।

योद्धा जहाँ-तहाँ से पर्वत और वृक्ष उखाड़कर कटकटाते हुए दौड़े।

छन्द—धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चलेरज नीचरा॥
बिचलाइ दल बलवन्त कीसन्ह घेर पुनि रावन लियौ।
चहुँदिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु व्याकुल कियौ॥

विकट भयंकर बानर और रीछ हाथों में पहाड़ लेकर दौड़े और सकोप प्रहार करने लगे, उनके मारने से राक्षस भाग चले। बलवान बानरों ने राक्षसी-सेना को विचलित कर रावण को घेर लिया। चारों ओर से चपेटों से मार-मारकर और नखों से खसोट-खसोट कर उसे व्याकुल कर दिया।

दोहा—देखि महा मर्कट प्रबल, रावन कीन्ह बिचारि।
अन्तरहित होइ निमिष महुँ, कृत माया बिस्तार॥१००॥

बानरों को महा प्रबल देखकर रावण ने अपने मन में विचार किया और अन्तर्ध्यान होकर पलभर में राक्षसी माया फैला दी।

छन्द—जब कीन्ह तेहिं पाषण्ड। भए प्रगट जंतु प्रचंड
बेताल भूत पिशाच। कर धरें धनु नाराच

जब रावण ने माया रची, तब भयंकर जीव उत्पन्न हुए, बैताल, भूत, पिशाच हाथ में धनुष-वाण धारण किये दिखाई दिये।

जोगिन गहें कर बाल। एक हाथ मनुज कपाल
कर सद्य सोनित पान। नार्चाहं करहिं बहु गान

योगनियाँ हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिए ताजा रुधिर पान करके बहुत प्रकार से नाचने और गाने लगीं।

धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर
मुख बाहु धावहिं खान। तब लगे कीस परान

तथा 'पकड़ो, मारो' यह कहकर बोली बोलने लगीं, यह ध्वनि चारों ओर फैल गई। वे खाने को दौड़ती हैं, तब बानर भागने लगे।

जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि
भये बिकल बानर भालु। पुनि लागि बरषन बालु

जहाँ बानर भागकर जाते हैं, वहाँ ही आग जलती देखते हैं। तब बानर घबड़ा गये, फिर बालू बरसने लगी।

जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस

लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत

जहाँ-तहाँ वानरों को थकाकर रावण फिर गरजा, तब लक्ष्मणजी और सुग्रीव आदि सब वीर अचेत हो गये।

हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ
एहि विधि सकल बलतोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि

'हा राम! हा रघुनाथ!' ऐसा कहकर श्रेष्ठ योद्धा हाथ मलते हैं। इस प्रकार सबका बल तोड़कर उसने फिर कपट किया।

प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाइ गहे पाषान
तिन्ह राम घेरे जाय। चहुँ दिसि बरूथ बनाय

तब बहुत से हनुमान प्रकट होगये, वे पत्थर ले-लेकर दौड़े और उन्होंने झुण्ड बनाकर चारों ओर से जाकर श्रीरामजी को घेर लिया।

मारहु धरहु जनि धाइ। कटकटाहिं पूँछ उठाइ
चहुँ दिसि लँगूर बिराज। तेहि मध्य कोसलराज

'मारो, पकड़ो, जाने न पावे' ऐसा कहकर पूंछ उठाकर कटकटाने लगे। दसों दिशाओं में पूंछ सुशोभित है, उनके बीच में अयोध्या पति हैं।

छन्द—तेहि मध्य कोसलराज सुन्दर श्याम तनु सोभा लही।
जनु इन्द्र धनु अनेक की वर वारि तुङ्ग तमालही॥
प्रभु देख हरष विषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥

उनके बीच में कौशलराज श्रीरामजी के श्यामसुन्दर शरीर ने ऐसी शोभा पाई कि मानो अनेक इन्द्र-धनुषों का ऊंचे तमाल के वृक्ष के चारों ओर सुन्दर बाड़ा बना हो। प्रभु को देखकर देवता आनन्द और शोक से मुक्त होकर 'जय-जय' बोलने लगे। तब श्रीरामजी ने क्रोध करके एक ही बाण से पलभर में सब राक्षसी माया हरली।

माया विगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाँड़े राम रावनु बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावनु समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कवि तेउ तदपि पार न पावहीं॥

माया दूर हो जाने पर वानर-रीछ बहुत प्रसन्न हुए और पर्वत व वृक्ष ले-लेकर सब लौट पड़े। श्रीरामजी ने बाण समूह छोड़े, जिससे रावण के भुजा और सिर कट-कटकर भूमि पर गिर पड़े। श्रीरामजी और रावण के युद्ध का चरित्र यदि अनेक कल्पों तक सैकड़ों शेष व शारदा और कवि गावें तो भी पार नहीं पा सकते।

दोहा—ताके गुन गन कछु कहे, जड़मति तुलसीदास।
जिमि निजबल अनुरूप ते, माछी उड़त अकास ॥१०१क॥

उस युद्ध-चरित्र के कुछ गुण-समूह जड़-बुद्धि तुलसीदास ने ऐसे कहे हैं, जैसे मक्खी अपनी शक्ति के अनुसार आकाश को उड़ती है।

काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि, व्याकुल देखि कलेस ॥१०१ख॥

अनेकों बार सिर व भुजा काटने पर भी लङ्कापति योद्धा रावण नहीं मरता। प्रभु तो लीला कर रहे हैं, परन्तु सिद्ध, मुनि और देवता, क्लेश देखकर व्याकुल हो रहे हैं।

काटत बढ़हिं सीस समुदाई * जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई
मरत न रिपुश्रम भयउँ विसेषा * राम विभीषन तनु तब देखा

काटते ही सिरों का समूह बढ़ता है, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। अधिक परिश्रम होने पर भी शत्रु नहीं मरता। तब श्रीरामजी ने विभीषण की ओर देखा।

उमा काल मर जाकी ईच्छा * सो प्रभु जनकर प्रीति परीच्छा
सुनु सर्बग्य चराचर नायक * प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक

हे पार्वती! जिसकी इच्छा से काल भी मर जाता है, वही प्रभु भक्त की प्रीति की परीक्षा ले रहे। विभीषण ने कहा-हे सर्वज्ञ! हे चराचर के स्वामी! सुनिये, आप शरणागत रक्षक और मुनियों को सुख देने वाले हैं।

नाभिकुण्ड पियूष बस जाकें * नाथ जिअत रावनु बल ताकें
सुनत विभीषन बचन कृपाला * हरषि गहे कर बान कराला

हे नाथ! इसके नाभिकुण्ड में अमृत का वास है, उसी के बल से रावण जीवित रहता है। विभीषण के यह वचन सुनते ही कृपालु श्रीरामजी ने प्रसन्न होकर कराल बाण हाथ में लिये।

अशुभ होन लागे तब नाना * रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना
बोलहिं खग जग आरत हेतू * प्रगट भए जहँ तहँ नभ केतू

तब अनेक अशकुन होने लगे। बहुत से सियार, गधे व कुत्ते रोने लगे। पक्षी अत्यंत संसार के दुख के कारण बोलने लगे और आकाश में जहाँ-तहाँ पुच्छल-तारे दिखाई देने लगे।

दसदिसि दाह होन अति लागा * भयउ परव बिनु रवि उपरागा
मन्दोदरि उर कम्पति भारी * प्रतिमा स्त्रवहिं नयन मग वारी

दसों दिशाओं में दाह होने लगा। बिना पर्व के सूर्य-ग्रहण-सा होने लगा। मन्दोदरी का हृदय बहुत थरथराने लगा। मूर्तियाँ नेत्रों के मार्ग से जल बहाने लगीं।

छन्द—प्रतिमा रुदहिं पबि पात नभ अति बात बह डोलति मही ।
वरषहिं बलाकहिं रुधिर कच रज असुभ अति सक कही ॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए ।
सुर समय जानि कृपालु रघुपति चाप सर जोरत भए ॥

मूर्तियां रोने लगीं, आकाश में वज्रपात होने लगा, प्रचण्ड पवन चलने लगी पृथ्वी डोलने लगी ! बादलों से रुधिर, बालू और धूल की वर्षा होने लगी । ऐसे बहुत अशकुन हुए उन्हें कौन कह सकता है ? बहुत से उपद्रव देखकर आकाश से देवता व्याकुल होकर जय-जय बोलने लगे । देवताओं को व्याकुल जानकर दयालु श्रीरामजी ने धनुष पर वाण चढ़ाया।

दोहा—खैंचि सरासन श्रवन लगि, छाँड़े सर इकतीस ।
रघुनायक सायक चले, मानहुँ काल फनीस ॥१०२॥

और कान तक धनुष खींचकर इकत्तीस वाण छोड़े । श्रीरघुनाथजी के वाण ऐसे चले, मानो कालरूपी साँप हों ।

सायक एक नाभि सर सोषा * अपर लगे भुज सिर करिरोषा
लै सिर बाहु चले नाराचा * सिर भुज हीन रुण्ड महि नाचा

एक वाण से नाभि-कुण्ड के अमृत को सुखा डाला । बाकी तीस वाण क्रोध पूर्वक सिरों और भुजाओं में जा लगे । वाण सिरों व भुजाओं को ले चले । बिना सिर और भुजाओं का धण्ड पृथ्वी पर नाचने लगा ।

धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा * तब सरहति प्रभु कृत दुइ खण्डा
गर्जेउ मरत घोर रव भारी * कहाँ राम रन हतौं पचारी

धड़की प्रचंड दौड़ से पृथ्वी धसकने लगी तब प्रभुने वाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। मरते समय वह घोर शब्द से गर्जकर बोला-राम कहाँ है ? मैं ललकार कर उनको रण में मारूँगा।

डोली भूमि गिरत दसकन्धर * छुभित सिंधु सिर दिग्गज भूधर
धरनि परेउ द्वौ खण्ड बड़ाई * चापि भालु मर्कट समुदाई

रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई, समुद्र, नदी, दिग्गज व पर्वत हिल गये । रावण अपने धड़ के दोनों खण्डों को फैलाकर रीछ बानरों के समूह को दबाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

मन्दोदरि आगें भुज सीसा * धरि सर चले जहाँ जगदीसा
प्रविसे सब निषङ्ग महुँ जाई * देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई

मन्दोदरी के आगे भुजा और सिर रखकर राम-वाण वहाँ चले-जहाँ जगत्पिता श्रीरामजी थे । सब आकर श्रीरामजी के तर्कस में प्रवेश कर गये, यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाये ।

तासु तेज समान प्रभु आनन * हरषे देखि शम्भु चतुरानन
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मण्डा * जब रघुबीर प्रबल भुजदण्डा

बरषहिं सुमन देव मुनि बृन्दा * जय कृपाल जय जयति मुकन्दा

रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया, यह देखकर महादेवजी और ब्रह्माजी प्रसन्न हुए। जय-जय की ध्वनि ब्रह्मांड भरमें छा गई-प्रबल भुजाओं वाले श्रीरघुनाथजी की जय हो। देवता और मुनिगण फूल बरसाते हैं और कहते हैं-हे दयालु, हे मुकन्द ! आपकी जय हो, जय हो !

छन्द—जय कृपानन्द मुकुन्द द्वन्द हरन सरन सुखप्रद प्रभो ।
खलदल विदारन परम कारन कारुनीक सदा विभो ॥
सुर सुमन बरसहिं हरष संकुल बाज दुन्दुभि गहगही ।
संग्राम अङ्गद राम अङ्ग अनङ्ग बहु शोभा लही ॥

हे कृपानिधान मुकुन्द ! हे दुःखों के हरने वाले, शरणागत को सुख देने वाले स्वामिन । आपकी जय हो । देवता, सिद्ध, मुनि और गन्धर्व प्रसन्न होकर धूमधाम से नगाड़े बजा रहे हैं। हे दुष्ट समूह का नाश करने वाले, सबके आदि कारण, दयावान और सर्वव्यापक विभो ! संग्राम-भूमि में श्रीरामचन्द्रजी के अंगों से अनेकों कामदेवों की शोभा प्राप्त की।

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उड्‌डगन भाजहीं ॥
भुजदण्ड सर कोदण्ड फेरत रुचिर कनकत अति बने ।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं विपुल सुख आपने ॥

सिर पर जटाओं के मुकुट के बीच में फूल अत्यन्त शोभित हैं। मानो नील पर्वत पर बिजलियों के समूह सहित तारागण चमक रहे हों ! वे भुजदण्डों को धनुष बाण पर फेर रहे हैं। शरीर पर रक्त की बूंदें बहुत ही शोभित हैं। मानो बहुत-सी लाल मुनियां तमाल वृक्ष पर मग्न बैठी हों।

दोहा—कृपादृष्टि कर वृष्टि प्रभु, अभय किए सुरवृन्द ।
भालु कीस सब हरषे, जय सुखधाम मुकुन्द ॥१०३॥

प्रभु ने कृपादृष्टि की वर्षा करके देवगणों को निर्भय कर दिया । बानर-रीछ प्रसन्न हुए और बोले—सुखनिधान मुकुन्द की जय हो ।

पति सिर देखत मन्दोदरी * मुरछित विकलधरनिखसिपरी
जुवति वृन्द रोवत उठि धाईं * तेहि उठाइ रावन पहिं आईं

पति के सिर को देखते ही मन्दोदरी व्याकुल और मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, स्त्रियां रोती हुई उठ दौड़ीं और मन्दोदरी को उठाकर रावण के पास ले आईं।

पति गति देखि ते करहिं पुकारा * छूटे कच नहिं बपुष सम्भारा
उर ताड़ना करहिं विधि नाना * रोवत करहिं प्रताप बखाना

पति की दशा देखकर ये पुकारने और रोने लगीं, सिरों के बाल खुल गये, देह की सुधि न रही

छाती पीट-पीटकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगीं और रोती हुई रावण के प्रताप का बखान करने लगीं।

तव बल नाथ डोल नित धरनी * तेजहीन पावक ससि तरनी
सेष कमठ सहि सकहि न मारा * सो तनु भूमि परेउ भरि छारा

हे नाथ! तुम्हारे बल से पृथ्वी नित्य काँपती थी, अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिनका बोझ नहीं सह सके, वह शरीर आज धूल से भरा पड़ा है।

बरुन कुबेर सुरेस समीरा * रन सन्मुख धरि काहु न धीरा
भुजबल जितेहु काल सम साईं * आज परेहु अनाथ की नाईं

रण में तुम्हारे सामने वरुण, इन्द्र और मरुत इनमें से किसी ने धीरज धारण नहीं किया। हे स्वामी! तुमने भुजाओं के बल से काल और यम को भी जीत लिया। वही आप आज अनाथ के समान पड़े हो।

जगत बिदित तुम्हार प्रभुताई * सुत परिजन बल बरनि न जाई
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा * रहा न कोउ कुल रोवनिहारा

तुम्हारी प्रभुता संसार में प्रगट है, तुम्हारे पुत्र और कुटुम्बियों का भी बर्णन नहीं किया जा सका। प्रभु से विरोध करने के कारण ऐसा हुआ कि वंश में कोई रोने वाला भी न रहा।

काल बिबस पति कहा न माना * अग जग नाथु मनुज करि जाना

हे पति! काल के वश होने के कारण तुमने किसी का कहना नहीं माना और चराचर के स्वामी को मनुष्य करके जाना।

छन्द—जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघ मय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

साक्षात् श्रीहरि को मनुष्य करके जाना। राक्षसरूपी वन को भस्म करने के लिए जो अग्नि के समान हैं। जिन्हें शिव आदि देवता मस्तक नवाते हैं, हे प्रियतमे! ऐसे दयामय परमेश्वर को तुमने नहीं भजा। तुम्हारा यह पापों के समूह से युक्त शरीर जन्म से ही दूसरे से बैर करने में लगा रहा। ऐसे तुमको भी जिन्होंने अपना धाम दिया, उन निर्विकार ब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करती हूँ।

दोहा—अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिन्धु नहिं आन।
जोगिवृन्द दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान॥१०४॥

अहह, हे नाथ! श्रीरामजी के समान दयासागर दूसरा कौन है? जो गति मुनियों को भी दुर्लभ है, वह उत्तम गति भगवान ने तुम्हें दी है।

मन्दोदरी बचन सुनि काना * सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना

आज महेश नारद सनकादी * जे मुनिवर परमारथ बादी

मन्दोदरी के वचन कानों से सुन देवता, मुनि, सिद्ध सबने सुख माना। ब्रह्मा, महादेव, नारद और सनकादि जो परमार्थ वादी श्रेष्ठ मुनि हैं।

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी * प्रेम मगन सब भये सुखारी
रुदन करत देखीं सब नारी * गयउ विभीषन मन दुख भारी

वे सब टकटकी लगाकर श्रीरामजी का दर्शन करते हुए प्रेम में मगन होकर सुखी हो गये विभीषण ने सब स्त्रियों को रोते देखा तो उनके मनमें बहुत दुख हुआ और वे उनके समीप गये।

बन्धु दसा विलोकि दुख दीन्हा * तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा
लछिमन तेहि बहु बिधि समझायो * बहुरि बिभीषनु प्रभु पहिं आयो

उन्होंने भाई की दशा देखकर बहुत दुःख किया, तब प्रभु ने लक्ष्मणजी को आज्ञा दी। लक्ष्मणजी ने विभीषण को बहुत भांति समझाया, फिर विभीषण प्रभु के पास आये।

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका * करहु क्रिया परिहरि सब सोका
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी * बिधिबत देसकाल जियँ जानी

प्रभु ने विभीषण को कृपादृष्टि से देखा और कहा—सब दुखों को दूर कर रावण की क्रिया करो। विभीषण ने प्रभु की आज्ञा मानकर देश और काल को मन में जानकर विधि पूर्वक अन्त्येष्ठि क्रिया की।

दोहा—मन्दोदरी आदि सब, देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन, गन बरनत मन माँहि ॥१०५॥

मन्दोदरी आदि सब रानियां रावण को तिलांजलि देकर मन में श्रीरामजी के गुणगान करती हुई महल को चली गईं।

आइ विभीषन पुनि सिर नायो * कृपासिन्धु तब अनुज पठायो
तुम्ह कपीस अङ्गद नल नीला * जामबन्त मारुत नयसीला
सब मिल जाहु विभीषन साथा * सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा
पिता बचन मैं नगर न आवउँ * आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ

फिर विभीषण ने आकर प्रणाम किया, तब दयासागर श्रीरामजी ने भाई लक्ष्मण को बुलाकर कहा कि तुम, सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जामवन्त और नीतिज्ञ हनुमान सब मिल कर विभीषण के साथ जाओ और राजतिलक करो। मैं पिताजी की आज्ञा के कारण नगर में नहीं जा सकता, पर अपने ही समान बानरों और भाई लक्ष्मण को भेजता हूँ।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना * कीन्ही जाइ तिलक की रचना
सादर सिंहासन बैठारी * तिलक सारि अस्तुति अनुसारी

प्रभु के वचन सुनकर बानर तुरन्त चले और जाकर तिलक की व्यवस्था की। आदर पूर्वक सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया और विनती की।

जोरि पानि सबहीं सिर नाए * सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए
तब रघुवीर बोलि कपि लीन्हे * कहि प्रिय वचन सुखी सब कीन्हे

सबने हाथ जोड़कर सिर नवाये फिर विभीषण समेत प्रभु के पास आये। तब श्रीरघुनाथजी ने बानरों को बुला लिया और मधुर वचन सुनाकर सबको सुखी किया।

छन्द—किए सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हन्यो।
पायौ विभीषन राज तिहुँपर जसु तुम्हारौ नित नयो॥
मोहि सहित शुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइ हैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइ हैं॥

प्रभु ने अमृत के समान यह मधुर वचन कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही बल से शत्रु मारा और विभीषण ने राज्य पाया। तुम्हारा यश तीनों लोकों में बना रहेगा जो मेरे साथ तुम्हारी सुन्दर कीर्ति परम प्रीति से गावेंगे, वे मनुष्य बिना परिश्रम ही अपार संसार सागर से पार हो जावेंगे।

दोहा—प्रभु के वचन श्रवनसुनि, नहिं अघाहिं कहि पुञ्ज।
बार बार सिर नावहिं, गहहिं सकल पद कंज॥१०६॥

प्रभु के वचन कानों से सुनकर बानरगण तृप्त नहीं होते। वे श्रीरामजी के चरणकमल पकड़कर बारम्बार सिर नवाते हैं।

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना * लङ्का जाहु कहेउ भगवाना
समाचार जानकिहि सुनावहु * तासु कुसल लै तुम्ह चलिआवहु

प्रभु ने हनुमानजी को बुलाया और कहा—तुम लंका में जाओ सीताजी को सब समाचार सुनाओ और उनकी कुशल लेकर लौट आओ।

तव हनुमन्त नगर महँ आए * सुनि निसिचरी निसाचर धाए
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही * जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही

तब हनुमानजी लङ्कापुरी में आये। यह सुनकर राक्षस और राक्षसी दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमानजी का सत्कार किया और जानकीजी को दिखा दिया।

दूरहि ते प्रनाम कपि कीन्हा * रघुपति दूत जानकी चीन्हा
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता * कुशल अनुज कपि सेन समेता

हनुमानजी ने दूर ही से प्रणाम किया! श्रीरघुनाथजी के दूत हनुमानजी को जानकीजी ने पहचान लिया। वे बोलीं—हे तात! कृपानिधान प्रभु, भाई लक्ष्मण और बानरों की सेना सहित कुशल से तो हैं?

सब बिधि कुशल कोसलाधीसा * मातु समर जीत्यौ दससीसा
अबिचल राजु विभीषनु पायो * सुनि कपिबचन हरष उर छायो

वे बोले-हे माता ! कौशलाधीश प्रभु सब प्रकार से कुशल हैं। उन्होंने युद्ध में रावणको जीत लिया है, विभीषण ने अचल राज्य पाया है। कपि के वचन सुन हृदय में आनन्द छा गया।

छन्द—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा ।।
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसय ।
रन जीति रिपु दल बन्धु जुत पश्यामि राम मनामयं ।।

जानकीजी के मन में बड़ा आनन्द हुआ । शरीर पुलकित होगया आँखों में आनन्द के आँसू भर आये और वे बार-बार हनुमानजी से कहने लगीं—हे हनुमान ! मैं तुम्हें क्या दूं ? तीनों लोकों में इस वाणी के समान कुछ नहीं है । वे बोले—हे माता ! सुनिये, आज मैं निःसन्देह सम्पूर्ण जगत का राज्य पा गया, जो मैं रण में शत्रु की सेना को जीत कर भाई सहित प्रभु को सकुशल देखता हूं ।

दोहा—सुनु सुत सद्गुन सकल तव, हृदयँ बसहिं हनुमन्त ।
सानुकूल कोसलपति, रहहुँ समेत अनन्त ।।१०७।।

सीताजी बोलीं—हे पुत्र ! सुनो, सब सद्गुण तुम्हारे हृदय में बसें और लक्ष्मणजी समेत श्रीरामजी सदा तुम्हारे अनुकूल रहें ।

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता * देखौं नयन श्याम मृदु गाता
तब हनुमान राम पहिं जाई * जनकसुता कै कुशल सुनाई

हे तात ! तुम अब वही उपाय करो, जिससे मैं प्रभु के कोमल श्याम शरीर के नेत्रों से दर्शन करूं । तब हनुमानजी ने श्रीरामजी के पास जाकर सीताजी की कुशल सुनाई ।

सुनि सन्देसु भानुकुल भूषन * बोलि लिये जुवराज विभीषन
मारुतसुत के सङ्ग सिधावहु * सादर जनकसुतहि लै आवहु

सूर्यवंश के शिरोमणि श्रीरामजी ने सीताजी का सन्देश सुनकर अंगद और विभीषण को बुलाया और कहा—हनुमानजी के साथ जाओ और आदर सहित जानकीजी को ले आओ ।

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता * सेवहिं सब निसिचरीं विनीता
बेगि विभीषन तिन्हहिं सिखायो * तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो

सुनते ही तुरन्त वहां गये, जहाँ सीताजी थीं,सब राक्षसियाँ नम्रता से उनकी सेवा कर रही थीं । विभीषण ने तुरन्त सबको समझा दिया व उन्होंने आदर से सीताजी को स्नान कराया ।

बहु प्रकार भूषन पहिराए * सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए
ता पर हरषि चढ़ि बैदेही * सुमिरि राम सुखधाम सनेही

और बहुत तरह से गहने पहनाये, फिर वे सुन्दर पालकी सजाकर ले आये । सीताजी प्रसन्न होकर उस पर सुख के धाम, स्नेही श्रीरामजी को स्मरण करके बैठ गईं ।

बेतपानि रक्षक चहुँ पासा * चले सकल मन परम हुलासा

देखन भालु कीस सब आए * रच्छक कोपि निवारन धाए

हाथ छड़ी लिए रक्षक चारों ओर चले, सब मनमें प्रसन्न हैं। सब रीछ व बानर दर्शन करने आये, तब रक्षक क्रोध करके उन्हें रोकने दौड़े।

कह रघुबीर कहा मम मानहुँ * सीतहि सखा पयादेहिं आनहुँ
देखहिं कपि जननी की नाईं * बिहसि कहा रघुवीर गोसाईं

तब श्रीरामजी ने कहा-हे सखा ! मेरा कहना मानकर सीताजी को पैदल ले आओ, जिससे सब बानर माता की तरह उनका दर्शन करें, गोस्वामी श्रीरघुनाथजी ने हँसकर यह कहा।

सुनिप्रभु बचनभालु कपि हरषे * नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे
सीता प्रथम अनल महँ राखी * प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी

प्रभु के वचन सुनकर रीछ-बानर प्रसन्न हुए। देवताओं ने आकाश से फूल बरसाये। सीताजी को पहले अग्नि में प्रवेश करा दिया था, इसलिए अन्तःकरण के साक्षी भगवान उनको प्रकट करना चाहते हैं।

दोहा—तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब, लागी करन बिषाद ॥१०८॥

इसी कारण कृपानिधान श्रीरामजी ने कुछ दुर्वचन कहे, जिन्हें सुनते ही सब रानियां विषाद करने लगीं।

प्रभु के बचन सीस धरि सीता * बोली मन क्रम बचन पुनीता
लछिमन होहु धरम के नेगी * पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी

प्रभु के वचनों को सिर पर चढ़ाकर मन, कर्म और वचन से पवित्र सीताजी बोलीं-हे लक्ष्मण ! धर्म के नेगी बनकर शीघ्र ही अग्नि को प्रकट करो।

सुनि लछमन सीता कै बानी * बिरह बिवेकधरत नीति सानी
लोचन सजल जोरि कर दोऊ * प्रभुसन कछु कहसकत न कोऊ

सीताजी की विरह विवेक, धर्म और नीति से भरी हुई वाणी सुनकर हनुमानजी नेत्रों में जल भरकर दोनों हाथ जोड़कर खड़े रह गये, वे प्रभु से कुछ कह नहीं सकते।

देखि राम रुख लछिमन आए * पावक प्रगटि काठ बहु लाए
पावक प्रबल देखि बैदेही * हृदय हरष नहिं कछु भय तेही

श्रीरामजी का रुख देख लक्ष्मण शीघ्रता से गये और बहुत सी लकड़ियां लाकर अग्नि को प्रज्वलित किया, प्रबल अग्नि देख सीताजी के मनमें हर्ष हुआ, उन्हें कुछ भय नहीं था।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं * तजि रघुबीर आनि गति नाहीं
तौ कृसानु सब कै गत जाना * ता कहुँ सो श्री खण्ड समाना

(सीताजी ने कहा—) जो मन, कर्म, वचन से मेरे हृदय में श्रीरघुनाथजी को छोड़कर दूसरी गति नहीं है, तो अग्निदेव,जो सबके मन की जानते हैं मेरे लिए चंदन के समान शीतल हो जायें।

छन्द—श्रीखण्ड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जय कोसलेस महेश बन्दित चरन रति अति निर्मली ॥
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलङ्क प्रचण्ड पावक महुँ जरे ।
प्रभुचरित काहु न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥

प्रभु को स्मरण करके, जिनके चरण शिवजी द्वारा वन्दित हैं तथा जिनमें सीताजी की अत्यन्त निर्मल प्रीति है, उन कौशलपति की जय बोलकर जानकीजी ने चन्दन के समान शीतल अग्नि में प्रवेश किया । सब प्रतिबिम्ब व सांसारिक दोष प्रचंड अग्नि में जल गये । प्रभु के चरित्र को किसी ने नहीं जाना, यद्यपि देवता, सिद्ध मुनि आकाश में खड़े देख रहे हैं ।

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो ।
जिमि क्षीरसागर इन्दिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥
सो राम बाम विभाग राजति रुचिर अति शोभा भली ।
नव नल नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज कली ॥

तब अग्नि ने रूप धारण करके वेदों में तथा जगत में प्रसिद्ध साक्षात् लक्ष्मी का हाथ पकड़कर श्रीरामजी को वैसे ही सौंप दिया जैसे—क्षीरसागर ने 'लक्ष्मी' श्रीहरि भगवान को दी थीं सीताजी श्रीरामजी के बायीं ओर विराजमान हैं, उनकी शोभा अत्यन्त सुन्दर है, मानो नवीन नील-कमल के पास सोने की कली खिली हो ।

दोहा—बरषहिं सुमन हरषि सुर, बाजहिं गगन निसान ।
गावहिं किन्नर सुर बधू, नाचहिं चढ़ी बिमान ॥१०९क॥

देवता प्रसन्न होकर फूल बरसाने लगे । आकाश में नगाड़े बज रहे हैं, किन्नर गानकर रहे हैं, देवागनायें विमानों पर चढ़कर नाच रही हैं ।

जनक समेत प्रभु, सोभा अमित अपार ।
देखि भालु कपि हरषे, जय रघुपति सुखसार ॥१०९ख॥

श्रीजानकीजी समेत प्रभु श्रीरामजी की अपार शोभा को देखकर रीछ व बानर बहुत प्रसन्न हुए और सुख के समुद्र आनन्द श्रीरघुनाथजी की जय बोलने लगे ।

तब रघुपति अनुसासन पाई * मातलि चलेउ चरन सिर नाई
आए देव सदा स्वारथी * वचन कहहिं जनु परमारथी

तदन्तर श्रीरामजी की आज्ञा पाकर मातलि सारथी प्रभु के चरणों में सिर नवाकर चला गया । फिर सदा के स्वार्थी देवता आये और ऐसे वचन कहने लगे, मानो बड़े ही परमार्थी हैं ।

दीनबन्धु दयाल रघुराया * देव कीन्ह देवन्ह पर दाया

विश्व द्रोह रत यह खल कामी * निज अघ गयउ कुमारग गामी

हे दीनबन्धु दयालु रघुनाथजी ! हे देव ! आपने देवताओं पर बड़ी कृपा की संसार के बैरी, कामी और खोटे मार्ग पर चलने वाला रावण अपने पापों से आप ही नष्ट हो गया ।

तुम्ह सम रूप ब्रह्म अबिनासी * सदा एक रस सहज उदासी
अकल अगुन अज अनघ अनामय * अजित अमोघ शक्ति करुनामय

आप सत्यरूप, ब्रह्म, अविनाशी, सदा एक रस, स्वभाव से ही उदासीन, अखंड, अगुण, सुन्दर, निर्दोष और करुणामय हैं ।

मीन कमठ सूकर नरहरी * बामन परशुराम बपु धरी
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायौ * नाना तनु धरि तुम्हहि नसायो

आपने मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम अवतार धारण किये। हे नाथ ! जब २ देवताओं ने दुःख पाया, तब तब आपने देह धारण कर हमारे दुःखों को दूर किया

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही * काम लोभ मद रत अति कोही
अधम सिरोमनि तव पद पावा * यह हमरें मन बिसमय आवा

यह दुष्ट, कलुषित, देवताओं से महा बैर करने वाला, लोभी, अभिमानी तथा महाक्रोधी था । यह अधम-शिरोमणि भी आपके धाम को गया, यह हमारे मनमें बड़ा ही विस्मय है ।

हम देवता परम अधिकारी * स्वारथ रतप्रभु भगति बिसारी
भव प्रवाहँ सन्तत हम परे * अब प्रभु पाइ सरन अनुसरे

हम देवता परम अधिकारी हैं, परन्तु हम स्वार्थ में लीन होकर आपकी भक्ति को भूल गये हैं, इससे संसार के प्रवाह में पड़े हैं । हे प्रभु ! हम आपकी शरण हैं, हमारी रक्षा कीजिए ।

दोहा—करि बिनती सुर सिद्ध सब, रहे जहँ तहँ करजोरि ।
अति सप्रेम तनु पुलकि विधि, स्तुति करत बहोरि ॥११०॥

सब देवता और सिद्धगण विनती करके जहाँ के तहाँ हाथ जोड़कर खड़े रहे, फिर बड़े प्रेम से पुलकित शरीर होकर ब्रह्माजी स्तुति करने लगे ।

छन्द—जय राम सदा सुखधाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे
भव बारद दारन सिंह प्रभो । गुन सागर नागर नाथ विभो

हे सुख के धाम श्रीहरि ! आपकी जय हो आप रघुवंश में श्रेष्ठ और धनुषधारी हैं । हे प्रभु ! आप संसाररूपी हाथी का नाश करने के लिए सिंह रूप हैं । हे नाथ ! आप गुणों के समूह, चतुर और समर्थ हैं ।

तन काम अनेक अनूप छबी । गुन गावत सिद्ध मुनीन्द्र कबी
जसु पावन रावन नाग महा । खगनाथ जथा करि कोप गहा

आपके शरीर में अनेक कामदेवों के समान अनुपम शोभा है । सिद्ध, मुनीश्वर व कवि आपके गुण गाते हैं । आपका यश निर्मल है, आपने गरुण की तरह रावणरूपी सांप को पकड़ लिया ।

जन रंजन भंजन सोक भयं। गत क्रोध सदा प्रभु बोध मयं
अवतार उदार अपार गुनं। महिभार विभंजन ग्यान घनं

आप भक्तों को सुखी करने वाले, शोक और भय को दूर करने वाले क्रोध रहित और सदा ज्ञान स्वरूप हैं। आपका अवतार उदार, अपार गुण वाला, भूमि का भार हरने वाला तथा ज्ञान का समूह है।

अजव्यापकमेकमनादिसदा। करुनाकर रामि नमामि मुदा
रघुवंश बिभूषन दूषन हा। कृत धूप विभीषन दीन रहा

किन्तु आप अजन्मा, व्यापक और अनादि तथा सनातन हैं। करुणानिधान श्रीरामजी! मैं सहर्ष आपको नमस्कार करता हूँ। हे रघुवंश भूषण! हे दूषन संहारक! जो विभीषण दीन था, उसे आपने राजा बना दिया।

गुनग्याननिधानअमानअजं। नित राम नमामि विभुं विरजं
भुजदण्ड प्रचण्ड प्रतापबलं। खलवृन्द निकन्द महाकुसलं

हे गुण और ज्ञान के स्थान, मान रहित, अजन्मा और माया रहित स्वामी श्रीरामजी! आपको नित्य प्रणाम करता हूँ। आपकी भुजाओं का प्रताप और बल प्रचण्ड है। आप दुष्ट समूह का नाश करने में बड़े प्रवीण हैं।

बिनु कारन दीनदयालहितं। छबिधाम नमामि राम सहितं
भव तारन कारन काजपरं। मन सम्भव दारुन दोष हरं

आप बिना कारण ही दीनों पर दया और हित करने वाले हैं और हे शोभा के धाम! श्रीलक्ष्मणजी समेत मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप संसार से तारने में कारण हैं और कार्य से परे तथा कार्यरूप हैं तथा मनसे उत्पन्न पापों को हरने वाले हैं।

सर चाप मनोहर त्रोनधरं। जल जारुन लोचन भूपवरं
सुखमन्दिर सुन्दर श्रीरमनं। मद मार मुदा ममता समनं

आप सुन्दर धनुष-बाण और तर्कशधारी हैं, कमल के समान लाल नेत्रों वाले हैं। राजाओं में श्रेष्ठ और सुख के स्थान, लक्ष्मणजी से बिहार करने वाले हैं, अहंकार, काम और भारी मोह के नाशक हैं।

अनवद्य अखण्डअगोचरगो। सब रूप सदा सब होइ न गो
इति बेद बदन्तिन दन्तकथा। रवि आतप भिन्नअभिन्न जथा

आप दोष रहित, अखण्ड तथा इन्द्रियों से नहीं जाने जाते हैं। आप सदैव सर्वरूप होकर भी वह नहीं हैं, ऐसा वेद कहते हैं। यह कहावत नहीं है। जैसे सूर्य से धूप अलग है और अलग भी नहीं है, वैसे ही आप भी संसार से भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही हैं।

कृतकृत्य विभो सब बानरए। निरखन्ति तवानन सादर ए

धिग जीवन देवशरीरहरे। तव भक्ति बिना भवकूप परे

हे विभो ! यह सब बानर कृतार्थ हुए, जो सादर आपके श्रीमुख का दर्शन कर रहे हैं। हे श्रीहरि ! देवताओं के शरीर और जीवन को धिक्कार है, जो भूलकर आपकी भक्ति के बिना संसार में पड़े हैं।

अब दीनदयाल दया करिये। मति मोरि विभेद करी हरिये
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिए। दुख सो सुख मानि सुखी चरिए

हे दीनदयालु ! अब दया कीजिए और मेरी इस भेद मानने वाली बुद्धि को हर लीजिये, जिससे मैं उल्टे काम कर रहा हूँ और दुःखों को मानकर सुखी हुआ फिरता हूँ।

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पङ्कज सेवित शम्भु उमा
नृपनायक दे वरदान मिदं। चरनाम्बुज प्रेम सदा सुभदं

आप दुष्टों का नाश करने वाले और पृथ्वी के सुन्दर भूषण हैं। आपके चरणारविन्द श्रीशिव-पार्वतीजी द्वारा सेवित हैं। हे महाराज ! आप मुझे वरदान दीजिये कि आपके चरण कमलों में मेरा कल्याणदायक प्रेम सदा बना रहे।

दोहा—विनय कीन्ह चतुरानन, प्रेम पुलक अति गात।
सोभा सिंधु बिलोकत, लोचन नहीं अघात ॥१११॥

प्रेम से प्रफुल्लित देह होकर ब्रह्माजी ने स्तुति की। शोभा के समुद्र श्रीरामजी के दर्शन करते हुए उनके नेत्र तृप्त नहीं होते।

तेहि अवसर दशरथ तहँ आए * तनय बिलोकि नयन जल छाए
अनुज सहित प्रभु वन्दन कीन्हा * आसिरवाद पिताँ तब दीन्हा

उसी समय दशरथजी वहां आये, पुत्र को देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया। लक्ष्मण सहित प्रभु ने प्रणाम किया, तब पिता ने आशीर्वाद दिया।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ * जीत्यौ अजय निसाचर राऊ
सुनि सुत वचन प्रीति अति बाढ़ी * नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी

(श्रीरामजी कहने लगे) हे पिताजी ! आपके समस्त पुण्यों के प्रभाव से अजेय राक्षस रावण को जीत लिया। पुत्र के वचन सुनकर प्रीति बढ़ी, नेत्रों में जल भर आया और शरीर के रोम खड़े होगये।

रघुकुल प्रथम प्रेम अनुमाना * चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो * दशरथ भेद भगति मन लगायो

श्रीरामजी ने पहले स्नेह का अनुमान कर पिता की ओर देखकर ही उन्हें दृढ़ ज्ञान दिया। हे पार्वती ! दशरथजी ने भेद-भक्ति में मन लगाया था, अतः मोक्ष नहीं पाई।

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं * तिन्ह कहँ राम भगति निज देहीं

बार बार कहि प्रभुहि प्रनामा * दशरथ हरष गए सुरधामा

सगुण ब्रह्म की उपासना करने वाले मोक्ष नहीं लेते। उनको श्रीरामजी अपनी भक्ति देते हैं। प्रभु को बारम्बार प्रणाम करके दशरथजी आनन्द सहित देवलोक को गये।

दोहा—अनुज जानकी सहित प्रभु, कुशल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन, अस्तुति कर सुर ईस ॥११२॥

लक्ष्मण व जानकीजी सहित कुशल प्रभु कौशलराज की शोभा को निहार कर मन में बहुत प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र स्तुति करने लगे—

छन्द—जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत विश्राम॥
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदण्ड प्रबल प्रताप॥

हे शोभा के स्थान, शरणागत को शान्ति देने वाले, सुन्दर तर्कश और धनुष-बाण धारण किये, लम्बी भुजाओं के प्रताप वाले श्रीरामजी! आपकी जय हो।

जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकलसनाथ॥

हे खरदूषण के शत्रु और राक्षस समूह का मान मर्दन करने वाले, आपकी जय हो। हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा, जिससे देवता सनाथ हो गये।

जय हरन धरन भार। महिमा उदार अपार॥
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान विहाल॥

हे भूमि के भार उतारने वाले आपकी जय हो। आपकी महिमा उदार और अपार है। हे रावण के शत्रु! आपकी जय हो, आपने राक्षसों को वेहाल कर दिया।

लंकेस अति बल गर्व। किए बस्य सुर गन्धर्व॥
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पन्थ सबकै लाग॥

लंकापति रावण को अपने बल का घमण्ड था, उसने देवता और गन्धर्वों को अपने वश में कर लिया था। मुनि, सिद्ध, पक्षी, मनुष्य और नाग इन सबके मार्ग में हठ करके बाधा पहूँचाता था।

पर द्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फल पापिष्ट॥
अब सुनहु दीनदयाल। राजिव नयन विसाल॥

दूसरों के साथ बैर करने में लगे रहने वाले अति दुष्ट पापी ने जैसा किया, वैसा ही फल पाया। अब, हे दीनबन्धु कमल के समान नेत्रों वाले! सुनिए—

मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोह समान॥
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज॥

मुझे बड़ा घमण्ड था कि मेरे बराबर कोई नहीं है। अब, हे प्रभु ! आपके चरणारविंदों का दर्शन करके दुःख देने वाला घमण्ड दूर होगया है।

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप

कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करता है, जिनको वेद अदृश्य कहते हैं। परन्तु मुझे तो हे रामजी ! आपका सगुण स्वरूप ही अच्छा लगता है।

बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत
मोहि जानिए निज दास। दे भक्ति रमा निवास

श्रीजानकीजी और लक्ष्मणजी सहित मेरे हृदय में वास कीजिये और हे रमानिवास ! मुझे अपना दास जानकर अपनी भक्ति दीजिए।

छन्द—दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं।
सुखधाम राम नमामि काम अनेक छवि रघुनायकं॥
सुर बृन्द रंजन द्वन्द भंजन मनुज तनु अतुलित बलं।
ब्रह्मादि शंकर सेव्य राम नमामि करुना कोमलं॥

हे लक्ष्मीनिवास ! मुझे अपनी भक्ति दीजिए। आप शरणागत के भय को दूर करके सुख देने वाले हैं। हे सुख के धाम ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप अनेकों कामदेवों के समान शोभा वाले, देवगणों को आनन्द देने वाले तथा द्वन्दों को दूर करने वाले हैं। मनुष्य शरीरधारी, अतुल बली, ब्रह्मा एवं शंकर द्वारा सेवित हैं। हे करुणा से कोमल श्रीरामजी ! मैं आपकों नमस्कार करता हूँ।

दोहा—अब करि कृपा बिलोकि मोहि, आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन, बोले दीनदयाल॥११३॥

हे कृपालु ! अब आप कृपादृष्टि से देखकर मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ? इन्द्र के प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु बोले—

सुन सुरपति कपि भालु हमारे * परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना * सकल जिआउ सुरेश सुजाना

सुनो, देवराज इन्द्र ! हमारे रीछ बानर राक्षसों के द्वारा मारे हुए भूमि पर पड़े हैं। मेरे हित के लिए इन्होंने प्राण दिये हैं, सो हे चतुर इन्द्र ! इन सबको जीवित कर दो।

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी * अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई * केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई

(कागभुशुण्डिजी कहते हैं-)सुनो, गरुणजी ! प्रभु की यह वाणी बड़ी गूढ़ है। ज्ञानी मुनि ही

इसे जानते हैं। प्रभु त्रिलोकी को मारकर जिला सकते हैं, यहाँ तो केवलइन्द्र को बड़ाई दी है।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए * हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए
सुधा बृष्टि भै दुहु दल ऊपर * जिये भालु कपि नहीं रजनीचर

इन्द्र ने अमृत बरसाकर बानर व रीछोंको जिला दिया, वे प्रसन्न होकर उठे और प्रभु के पास आये। अमृत की वर्षा दोनों सेनाओं पर हुई परन्तु रीछ-बानर जी उठे, राक्षस नहीं जिए।

रामाकार भए तिन्ह के मन * मुक्त भए छूटे भव बन्धन
सुर अँसकि सब कपि अरु रीछा * जिए सकल रघुपति की ईछा

क्योंकि उनके मन राम-रूप होगये थे। अतः वे संसार के बन्धन से छूटकर मुक्त होगये। किन्तु बानर और रीछ देवताओं के अंश थे, उस कारण वे सब श्रीरघुनाथजी की कृपा से जी उठे।

राम सरिस को दीन हितकारी * कीन्हें मुकुत निसाचर झारी
खल मलधाम काम रत रावन * गति पाई जो मुनिबर पाव न

श्रीरामजी के समान दीनों का हितकारी कौन है, जिन्होने सब राक्षसों को संसार के बन्धन से छुड़ा दिया। नीच, महापापी और महाकामी रावण ने वह गति पाई, जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते।

दोहा—सुमन बरषि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं, आयसु सम्भु सुजान॥११४क॥

सब देवता फूलों की वर्षा करके विमानों पर चढ़कर चले, तब अच्छा समय देखकर शिवजी वहाँ आये।

परम प्रीति कर जोरि जुग, नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तनु गद्गद् गिराँ, बिनय करत त्रिपुरारि॥११४ख॥

त्रिपुरारी शंकरजी बड़ी प्रीति से दोनों हाथ जोडकर कमल के समान नेत्रों में जल भर कर पुलकित और गद्गद् वाणी से स्तुति करने लगे।

छन्द—मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक
मोहि महाघन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन

हे रघुकुलमणि प्रभु ! सुन्दर हाथों में श्रेष्ठ धनुष-बाण धारण किये हुए आप मेरी रक्षा कीजिए। आप मोहरूपी घने बादलों के समूह के लिए वायुरूप हैं, संसार रूपी वन के लिए अग्नि तथा देवताओं को आनन्द देने वाले हैं।

अगुन सगुन गुन मंदिर सुन्दर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर
काम क्रोध मद गजपंचानन। बसहुँ निरन्तर जन मन कानन

आप सगुण-निर्गुण गुणों के भंडार, भ्रमरूपी अंधकार को मिटाने के लिए प्रबल प्रतापी सूर्य

हैं। काम,क्रोध और मदरूपी हाथियोंके लियेसिंहके समान आप इस भक्तके हृदयमें वासकरिये।

विषय मनोरथ पुंज कंजनवन। प्रबल तुषार उदार पार मन
भव बारिधिमन्दर परमंदर। बारय तारय संसृति दुस्तर

अनेक विषयों के मनोरथ रूपी कमल वन को सुखाने के लिये आप प्रबल पाला हैं। आप बड़े उदार और मन से परे हैं। आप संसार-सागर के लिए मन्दराचल हैं। आप हमारे परम भय को दूर कीजिए और दुस्तर संसार से तारिये।

श्याम गात राजीव बिलोचन। दीनबन्धु प्रनतारित मोचन
अनुजजानकीसहितनिरन्तर। बसहु राम नृप मम उर अन्तर
मनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन

हे दीनबन्धु, श्याम शरीर,कमल-नयन,शरणागत के दुःखों को दूर करने वाले,लक्ष्मण और जानकीजी समेत राजा रामचन्द्रजी! आप मेरे हृदय-मन्दिर में वास करिये। आप मुनियों को आनन्द देने वाले, भूमण्डल के भूषण, तुलसीदासजी के प्रभु और भय को दूर करने वाले हैं।

दोहा—नाथ जबहिं कोसलपुरीं, होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब, देखन चरित उदार॥११५॥

हे नाथ! अयोध्यापुरी में जब आपका राजतिलक होगा तब—हे कृपासिन्धु मैं आपके उत्तम चरित्र देखने के लिए वहाँ आऊँगा।

करि बिनती जब शम्भु सिधाए * तब प्रभु निकट बिभीषनु आए
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी * विनय सुनहु प्रभु सारँग पानी

जब शिवजी विनती करके चले गये, तब प्रभु के पास विभीषण आये और चरणों में मस्तक नवाकर कोमल वाणी से कहने लगे-हे शारङ्ग-धनुषधारी प्रभो! मेरी विनती सुनो।

सकुल सदल तुम्ह रावन मारयो * पावन जस त्रिभुवन बिस्तारयो
दीन मलीन हीन मति जाती * मो पर कृपा कीन्ह बहु भाँती

आपने कुटुम्ब और सेना सहित रावणको मारा अपना निर्मल यश तीनों लोकोंमें फैलाया। और मुझ दीन, मलीन, बुद्धिहीन तथा जाति-हीन वाले पर आपने बहुत भाँति से कृपा की।

अब जन गृह पुनित प्रभु कीजै * मज्जनु करिअ समर श्रम छीजै
देखि कोस मन्दिर सम्पदा * देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा

हे स्वामी! अब अपने दासके घरको पवित्र कीजिये और चलकर स्नान कीजिए,जिससे युद्ध की थकावट जाती रहे,हे कृपालु! धन,धाम व संपत्ति को देखकर आनन्द से बानरों को बाँट दो।

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ * पुनि मोहि सहि अवधपुरजाइअ
सुनत बचन मृदु दीनदयाला * सजल भए द्वौ नयन बिसाला

हे नाथ ! आप सब भाँति से मुझे अपना लीजिये और फिर मुझे साथ लेकर अयोध्या-पुरी को सिधारिये। विभीषण के कोमल वचन सुनकर दीनदयालु प्रभु के दोनों विशाल नेत्र सजल होगये।

दोहा—तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि, निमिष कलप सम जात ॥११६क॥

वे बोले-हे भाई ! सुनो, तुम्हारा धन-धाम सब मेरा दिया है, यह बात ठीक है, परन्तु मैं सत्य कहता हूँ कि मुझे भरतकी दशा को स्मरण करके एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है।

तापस बेष गात कृष, जपत निरन्तर मोहि।
देखों बेगि सो जतनु करि, सखा निहारेउँ तोहि ॥११६ख॥

तपस्वी के वेष में दुबले शरीर से वे सदैव मेरा ही ध्यान कर रहे हैं। हे सखा ! वही उपाय करो, जिससे मैं उन्हें जल्दी देखूं। मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ।

बीते अवधि जाउँ जौं, जियत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीत प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर ॥११६ग॥

मैं अवधि बीत जाने पर जाऊँगा तो भाई को जीता न पाऊँगा। भरत की प्रीति को स्मरण कर प्रभु बारम्बार पुलकित हुए।

करहु कल्प भरि राजु तुम्ह, मोहि सुमिरेहु मन माहि।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहाँ सन्त सब जाहिं ॥११६घ॥

अब तुम कल्प भर राज्य करना और मेरा स्मरण करते रहना। फिर तुम मेरे धाम को सिधारोगे, जहाँ सब सन्तजन जाते हैं।

सुनत बिभीषन बचन राम के * हरषि गहे पद कृपानिधान के
बानर भालु सकल हरषाने * गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने

श्रीरामजी के वचन सुनते ही विभीषण ने प्रसन्न होकर कृपानिधान के चरण पकड़ लिये। सब बानर और रीछ प्रसन्न हुए और प्रभु के चरण पकड़कर निर्मल गुण बखान करने लगे।

बहुरि बिभीषन भवन सिधायो * मनि गन बसन बिमान भरायो
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा * हँसि करि कृपासिंधु तब भाखा

फिर बिभीषण महल को गये और वहाँ जाकर बहुत-सी मणियों और वस्त्रों से विमान को भरवाया। उस पुष्पक-विमान को लाकर श्रीरामचन्द्रजी के आगे रक्खा, तब कृपानिधान भगवान हँसकर बोले—

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन * गगन जाइ बरषहु पट भूषन
नभ पर जाइ बिभीषन तबही * बरषि दिए मनि अम्बर सबही

हे सखा विभीषण ! इस विमान पर बैठकर आकाश में जाकर वस्त्राभूषण बरषादो। आज्ञा

सुनकर तुरन्त विभीषण आकाश में गये और वहाँ से सम्पूर्ण मणि और वस्त्र बरसा दिये।

जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं * मनि मुख मेल डालि कपि देहीं
हँसे राम श्री अनुज समेता * परम कौतुकी कृपा निकेता

जो जिसके मन में भाता है, वह लेता है। बानरगण मणि को मुख में रखकर फिर उगल देते हैं। श्रीरामजी, सीताजी व लक्ष्मण समेत हँस रहे हैं,क्योंकि कृपानिधान तो बड़े कौतुकी हैं।

दोहा—मुनि जेहि ध्यान न पावहिं, नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक बिनोद ॥११७क॥

मुनिराज जिनको ध्यान में नहीं पाते, वेद जिसके लिए 'नेति-नेति' कहते हैं, वे ही श्रीरामजी बानरों के साथ अनेक प्रकार के खेल खेल रहे हैं।

उमा जोग जप दान तप, नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निषकेवल प्रेम ॥११७ख॥

(शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती ! योग, जप, दान, तप, अनेक प्रकार के व्रत, यज्ञ और नेम से श्रीरामजी ऐसी कृपा नहीं करते जैसी निष्कपट प्रेम से।

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए * पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए
नाना जिनस देखि सब कीसा * पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा

रीछ-बानरों ने वस्त्र-आभूषण पाये। उन्हें पहिन २ कर वे रघुनाथजी के पास आये। प्रभु कौशलाधीश बानरों को अनेक रङ्ग बिरंगे वस्त्र पहिने देखकर बार-बार हँसने लगे।

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया * बोले मृदुल बचन रघुराया
तुम्हरे बल मैं रावन मारयो * तिलक विभीषन कहँ पुनिसारयो

श्रीरामजी ने उन सबकी ओर देखकर दया की। वे कोमल वचन बोले—तुम्हारे ही सहारे मैंने रावण को मारा और विभीषण को राज्य दिया।

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू * सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर * जोरि पानि बोले सब सादर

अब तुम अपने २ घर को जाओ, मुझे स्मरण करते रहना और किसी से नहीं डरना। यह वचन सुनते ही वानर मारे स्नेह के घबरा गये और हाथ जोड़कर आदर पूर्वक बोले—

प्रभु जो कहहु तुम्हहि सब सोहा * हमरें होत बचन सुनि मोहा
दीन जानि कपि किए सनाथा * तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा

हे प्रभु ! आप जो कहें वह सब आपको शोभा देता है, परन्तु यह वचन सुनकर हमको मोह होता है। आपने दीन जानकर हम बानरों को सनाथ किया है। हे रघुनाथजी ! आप त्रिलोकी के स्वामी हैं।

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं * मसक कहूँ खगपति हित करहीं

देखि राम रुख बानर रीछा * प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा

हे प्रभो ! आपके बचन सुनकर हम लाज के मारे मरते हैं। क्या मच्छर भी कभी गरुड़ का हित कर सकता है ? श्रीरामजी का रुख देखकर बानर और रीछ प्रेम में डूब गये। किसी को घर जाने की इच्छा नहीं है ।

दोहा—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले, बिनय बिबिधि बिधि भाखि॥११८क॥

प्रभु की आज्ञा से सब रीछ-बानर श्रीरामजी के स्वरूप को हृदय में रखकर हर्ष और विषाद सहित विनती कर चले ।

कपिपति नील रीछपति, अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान॥११८ख॥
कहि न सकहि कछु प्रेमबश, भरि भरि लोचन बारि।
सनमुख चितवहिं राम तनु, नयन निमेष निबारि॥११८ग॥

जामवन्त, सुग्रीव, नील, नल, अंगद तथा हनुमान और विभीषण सहित जो बड़े बलवान सेनापति हैं, वे सब प्रेम के वश कुछ कह नहीं सकते । परन्तु आंखों में जल भर-भरकर और एकटक हो श्रीरामजी के मुख की ओर देखते हैं ।

अतिसय प्रीति देखि रघुराई * लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई
मन महुँ बिप्र चरन सिर नायो * उत्तर दिसहि बिमान चलायो

उनकी अधिक प्रीति देखकर श्रीरघुनाथजी ने सबको विमान पर बैठा लिया और मन ही मन ब्राह्मणों के चरणों में सिर नवाकर उत्तर दिशा की ओर विमान चला दिया ।

चलत बिमान कोलाहल होई * जय रघुबीर करहिं सब कोई
सिंहासन अति उच्च मनोहर * श्री समेत प्रभु बैठे ता पर

विमान चलते ही भारी शब्द हुआ, सब लोग श्रीरामजी की जय बोलने लगे। विमान में जो बहुत ऊँचा व मनोहर सिंहासन था, उसपर सीताजी सहित प्रभु श्रीरघुनाथजी विराजमान हुए।

राजत रामु सहित भामिनी * मेरु सृङ्ग सम जनु घन दामिनी
रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर * कीन्ही सुमन वृष्टि हरषे सुर

श्रीरामचन्द्रजी के साथ सीताजी ऐसी सुशोभित हुई मानो सुमेरु पर्वत के शिखर पर बालक के साथ बिजली हो। वह सुन्दर विमान बड़ी शीघ्रता से चला तो देवताओं ने प्रसन्न हो उस पर फूलों की वर्षा की।

परम सुखद चलि त्रिविध बयारी * सागर सर सरि निर्मल बारी
सगुन होहिं सुन्दर चहुँ पासा * मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा

सुन्दर सुख देने वाली शीतल, मन्द सुगन्ध पवन चलने लगी । समुद्र, सरोवर और

जल निर्मल होगया और चारों ओर सुन्दर शकुन होने लगे ! सबके प्रसन्न मन हैं और आकाश व दिशायें निर्मल हैं।

कह रघुबीर देखु रन सीता * लछिमन इहाँ हत्यौ इन्द्रजीता
हनूमान अङ्गद के मारे * रन महि परे निसाचर भारे
कुम्भकरन रावन द्वौ भाई * इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई

श्रीरामजी ने कहा—हे सीता ! रण-भूमि देखो, यहां लक्ष्मण ने मेघनाद को मारा था। यहां हनुमान और अंगद के मारे हुए बड़े-बड़े राक्षस रण-भूमिमें पड़े हैं। देवता एवं मुनियों को दुःख देने वाले कुम्भकर्ण और रावण दोनों भाई यहां मारे गये।

दोहा—इहाँ सेतु बाँध्यौ अरु, थापेउँ शिव सुखधाम।
सीता सहित कृपानिधि, शम्भुहि कीन्ह प्रनाम ।।११९क।।

देखो यह सुन्दर सेतु है, यहां मैंने सुख के धाम शिवजी की स्थापना की थी। यह कहकर सीताजी सहित प्रभु ने शिवजी को प्रणाम किया।

जहँ जहँ कृपासिन्धु बन, कीन्ह बास बिश्राम।
सकल दिखाए जानकिहि, कहे सबन्हि के नाम ।।११९ख।।

जहाँ-जहाँ कृपासिंधु श्रीरामजी ने वन में विश्राम किया था, उन सबके नाम कह-कहकर जानकीजी को वे स्थान दिखाये।

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा * दण्डक बन जहँ परम सुहावा
कुम्भजादि मुनिनायक नाना * गए रामु सब कें अस्थाना

फिर विमान शीघ्र ही चलकर वहाँ आया-जहाँ दण्डक-वन था और जहाँ अगस्त्य आदि अनेक मुनीश्वर थे। उन सबके आश्रमों पर श्रीरामजी गये।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा * चित्रकूट आए जगदीसा
तहँ करि मुनिन्ह केरि सन्तोषा * चला बिमान तहाँ ते चोखा

सम्पूर्ण ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर चित्रकूट आये। वहाँ मुनियों को संतुष्ट किया और शीघ्रगामी विमान वहाँ से चला।

बहुरि राम जानकिहि देखाई * जमुना कलिमल हरनि सुहाई
पुनि देखी सुरसरी पुनीता * राम कहा प्रनामु करु सीता

फिर श्रीरामजी ने जानकीजी को कलियुग के पापों का नाश करने वाली सुहावनी यमुनाजी के दर्शन कराये, फिर पवित्र गङ्गाजी के दर्शन किये। श्रीरामजी बोले—हे सीते ! गङ्गाजी को प्रणाम करो।

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा * निरखत जन्म कोटि अघ भागा
देखि परम पावनि पुनि बेनी * हरनि सोक परलोक निसेनी

पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि * त्रिविध ताप भव रोग नसावनि

फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिनके दर्शन करते ही सब पाप भाग जाते हैं, फिर परम पवित्र त्रिवेणी के दर्शन करो, जो शोक हरने वाली और देवलोक की सीढ़ी है। तदन्तर अवधपुरी को देखो, जो तीनों प्रकार के ताप और संसाररूपी रोग का नाश करने वाली है।

दोहा—सीता सहित अवध कहुँ, कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तनु पुलकित, पुनि पुनि हरषित राम ॥१२०क॥

फिर सीताजी सहित कृपालु प्रभु ने अवधपुरी को प्रणाम किया। (उस समय) सजल-नेत्र और पुलकित शरीर होकर श्रीरामजी अत्यन्त हर्षित हुए।

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी, हरषित मज्जन कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ, दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥१२०ख॥

फिर त्रिवेणी पर आकर प्रभु ने वानरों समेत प्रसन्न होकर स्नान किया और ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये।

प्रभु हनुमन्त कहा बुझाई * धरि बटु रूप अवधपुर जाई
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु * समाचार लै तुम्ह चलि आएहु

तदन्तर प्रभु ने हनुमानजी को समझाकर कहा—तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके अयोध्या को जाओ और वहाँ जाकर भरतजी को हमारी कुशल सुनाओ और फिर उनके समाचार लेकर जल्दी लौट आओ।

तुरत पवनसुत गवनत भयउ * तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही * अस्तुति करि पुनि आशिष दीन्ही

हनुमानजी तुरन्त चल दिये, तब प्रभु भरद्वाजजी के पास आये। मुनि ने नाना प्रकार से पूजा की, फिर स्तुति करके आशीर्वाद दिया।

मुनि पद बन्दि जुगल करजोरी * चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए * नाव नाव कहँ लोग पठाए

दोनों हाथ जोड़कर मुनि के चरणों में प्रणामकर विमान पर चढ़कर प्रभु चले। वहाँ निषाद ने जब सुना कि प्रभु आगये, तब, 'नाव कहाँ है' कहकर लोगों को बुलाया।

सुरसरि नाँघि जान तब आयो * उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो
तब सीता पूजी सुरसरी * बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी

गङ्गाजी को लाँघकर विमान पार आया और प्रभु की आज्ञा पाकर किनारे पर उतरा। तब सीताजी ने बहुत प्रकार से गङ्गाजी की पूजा की और फिर उनके पांव पर पड़ीं।

दीन्ह असीष हरषि मन गङ्गा * सुन्दरि तव अहिवात अभङ्गा
सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल * आयउ निकट परम सुख संकुल

तब प्रसन्न मनसे गंगाजी ने आशर्वाद दिया-हे सुन्दरि तुम्हारा सुहाग अटल रहे। निषादराज

मुह प्रभुका आना सुनते ही विह्वल होकर दौड़ा और परम आनन्दमें मग्नहो प्रभुके पास आया।

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही * परेउ अबनि तनु सुधि नहिं तेही
प्रीति परम बिलोकि रघुराई * हरषि उठाइ लियो उर लाई

सीताजी समेत प्रभु को देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे शरीर की सुधि नहीं रही। तब रघुनाथजी ने उसकी परम प्रीति देखकर प्रसन्नता पूर्वक उठाकर उसे हृदय से लगा लिया।

छन्द—लियो हृदयँ लाइ कृपानिधान सुजान रायँ रमापती।
बैठारि राम समीप बूझी कुसल सो करि बीनती॥
अब कुशल पद पङ्कज बिलोकि बिरञ्चि शङ्कर सेव्य जे।
सुखधाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते॥

दया के स्थान, सुजान, लक्ष्मीकान्त श्रीरामचन्द्रजी ने गुह को अपने हृदय से लगा लिया और बहुत ही पास बठाकर कुशल पूछी। तब वह विनती करके बोला—जो ब्रह्माजी और शिवजी से सेवित हैं, ऐसे आपके चरणारविन्दों के दर्शन करने से अब सब कुशल है। हे सुख के धाम, पूर्ण काम श्रीरामजी! आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

दोहा—समर विजय रघुबीर के, चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित, तिन्हहिं देहिं भगवान॥१२१क॥

जो चतुर मनुष्य श्रीरघुनाथजी के 'समर-विजय' सम्बन्धी चरित्रों को सुनते हैं, उन्हें भगवान विजय, ज्ञान और ऐश्वर्य देते हैं।

यह कलिकाल मलायतन, मन कर देखि विचारि।
श्रीरघुनाथ नाम तजि, नाहिंन आन अधारि॥१२१ख॥

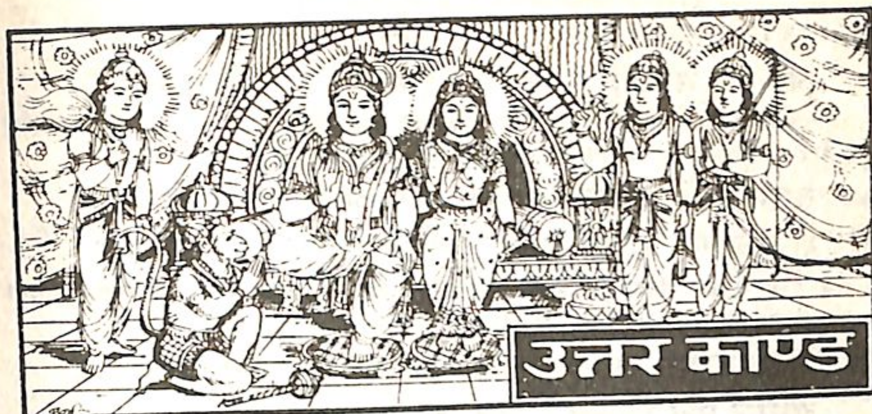
अरे मन! विचार कर देख कि यह कलि-काल पापों का घर है जिसमें श्रीरघुनाथजी के नाम को छोड़कर, अन्य काई अधार नहीं है।

* मास पारायण—सत्ताईसवाँ विश्राम *

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे कलकलिकलुष विध्वंसे षष्ठम सोपान समाप्तमः।
कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का
यह छटवाँ सोपान समाप्त हुआ॥

* इति लङ्का काण्ड समाप्त *

—:*:—



* अथ मङ्गलाचरणम् *

—: श्लोक :—

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरबिलस द्विप्रपादाब्जचिन्हं ।
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ॥
पाणौनाराचचापंकपिनिकर युक्तं बन्धुनासेव्यमानं ।
नौमीडयं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढ़रामम् ॥

मोर-कंठ की काँति के समान नीलवर्ण देवों में श्रेष्ठ, ब्राह्मण के चरणकमल के चिन्हों से शोभित, शोभा से परिपूर्ण पीताम्बर धारण किये, कमल-नेत्र, सदा प्रसन्न मुख, हाथों में बाण और धनुष धारण किये, बानर समूह समेत, भाई लक्ष्मण से सेवित, ऐसे जानकीजी के पति, रघुकुल में श्रेष्ठ, पुष्पक-विमान पर विराजित श्रीरघुनाथजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

कौशलेन्द्र पदकञ्ज मंजुलौ कोमलावज महेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौचिन्तकस्यमनभृङ्गिसङ्गिनौ ॥

ब्रह्मा ओर महादेवजी से वन्दित कोमल और जानकीजी के कर-कमलों से दुलरे हुए कौशलाधीश श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर चरण-कमलों में ध्यान करने वाले भक्तजनों के मनरूपी भौंरे बसे हैं ।

कुन्दइन्दुगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
कारुणीककलकज्जलोचनं नौमिशङ्करमनंगमोचनम् ॥

कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान सुन्दर गौर वर्ण वाले, इच्छा के अनुसार सिद्धि के दाता, दयालु सुन्दर, कमल-नयन कामदेव को भस्म करने वाले, ऐसे पार्वतीजी के पति श्रीशङ्करजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

दोहा—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृस तनु राम बियोग॥

श्रीरामजी के बनवास की अवधि का एक दिन रह गया है। नगर-निवासी बहुत ही आतुर हैं। श्रीरामजी के वियोग में जहाँ-तहाँ बैठे हुए सोच रहे हैं।

सगुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
शुभ आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर॥

तब सुन्दर-सुन्दर शकुन हुए, सबके मन प्रसन्न हुए और नगर चारों ओर से सुहावना होगया। मानो यह तीनों बातें प्रभु के आगमन की सूचना दे रही हों।

कौसल्यादि मातु सब, मन अनन्द अस होइ।
आयउ प्रभु श्रीअनुज जुत, कहन चहत अब कोइ॥

कौशल्या आदि सब माताओं का मन ऐसा आनन्दित हुआ कि सीता और लक्ष्मण सहित रामजी आरहे हैं—ऐसा समाचार कोई कहना चाहता है।

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरषअति, लागे करन बिचार॥

भरतजी की दाहिनी आंख और दाहिनी भुजा फड़कने लगी। शुभ शकुन जानकर भरतजी बहुत प्रसन्न होकर विचार करने लगे—

रहेउ एक दिन अबधि अधारा * समुझत मन दुख भयउ अपारा
कारन कवन नाथ नहिं आयउ *जानिकुटिलकिधौंमोहिबिसरायउ

अवधि का एक दिन रह गया है, यह समझते ही भरतजी को बड़ा दुःख हुआ। किस कारण श्रीरघुनाथजी नहीं आये? क्या मुझे कुटिल जानकर प्रभु ने मेरी सुधि भुला दी?

अहह धन्य लछिमन बड़भागी * राम पदारविन्दु अनुरागी
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा * ताते नाथ सङ्ग नहिं लीन्हा

अहा! वे लक्ष्मण धन्य हैं, जो रामचन्द्रजी के चरणारविन्दों के प्रेमी हैं। प्रभु ने मुझे कपटी और खोटा समझा, इसी से प्रभु ने साथ नहीं लिया।

जौं करनी समुझें प्रभु मोरी * नहिं निस्तार कल्प सत कोरी
जन अवगुन प्रभु मान न काउ * दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ

जो प्रभु मेरी करतूत को समझें तो करोड़ों कल्पों तक मेरा निस्तार नहीं हो सकेगा। परन्तु प्रभु अपने सेवक के दोष नहीं मानते, वे दीनबन्धु भगवान बड़े कोमल स्वभाव के हैं।

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई * मिलिहहिं राम सगुन शुभ होई
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना * अधम कवन जग मोहि समाना

मेरे मन में पक्का भरोसा है कि रामजी अवश्य मिलेंगे, शकुन अच्छे हो रहे हैं । जो अवधि बीतने पर प्राण रह जाँय तो जगत में मेरे समान नीच और कौन होगा ?

दोहा—राम बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत ।
बिप्र रूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत ॥ १क ॥

श्रीरामजी के वियोगरूपी समुद्र में भरतजी का मन डूबा जा रहा था कि इतने में पवन-पुत्र हनुमानजी ब्राह्मण का रूप धारण कर ऐसे आगये, जैसे जल में डूबते हुए को नाव मिल जाय ।

बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात ।
राम राम रघुपति जपत, स्त्रवत नयन जल जात ॥ १ख ॥

हनुमानजी ने देखा कि कुशा के आसन पर भरतजी बैठे हैं और जटाओं का मुकुट सिर पर है, शरीर दुबला हो रहा है । 'राम-राम' रघुनाथ जप रहे हैं और कमलके समान नेत्रों से जल बह रहा है ।

देखत हनूमान अति हरषेउ * पुलक गात लोचन जल बरषेउ
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी * बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी

देखते ही हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुए, देह के रोम खड़े हो गये नेत्रों से जल बहने लगा । मन में बहुत भाँति से सुख मानकर कानों को अमृत के समान वाणी बोले—

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती * रटहु निरन्तर गुन गन पाँती
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता * आयउ कुशल देव मुनि त्राता

जिन प्रभु के वियोग में सोचते हुए दिन-रात दुःखी रहते हो और जिनके गुणगणों के समूह को सदैव रटते हो । वही रघुकुल-तिलक, सज्जनों को सुख देने वाले, देवताओं और मुनियों के रक्षक-श्रीरामजी कुशल पूर्वक आ रहे हैं ।

रिपु रनजीत सुयस सुर गाबत * सीता सहित अनुज प्रभु आवत
सुनतहि बचन बिसरे सब दूखा * तृषावन्त जिमि पाइ पियूषा

जिनके सुन्दर यश को देवता गाते हैं,वे प्रभु शत्रु को युद्ध में जीतकर सीता व लक्ष्मण समेत आरहे हैं । यह वचन सुनतेही भरतजीके सब दुख दूर होगये मानो प्यासेको अमृत मिल गयाहो ।

को तुम्ह तात कहाँ ते आए * मोहि परम प्रिय बचन सुनाए
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना * नामु मोर सुनु कृपानिधाना

हे तात ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? जो मुझे बहुत प्रिय वचन सुनाये । हनुमानजी ने कहा—हे कृपानिधान ! सुनिये, मैं पवन का पुत्र, बानर जाति हूँ, मेरा नाम हनुमान है ।

दीनबन्धु रघुपति कर किङ्कर * सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता * नयनस्त्रवत जल पुलकित गाता

मैं दीनबन्धु श्रीरघुनाथजी का दास हूँ, यह सुनकर भरतजी सादर उठकर मिले । मिलते समय प्रेम [illegible] में नहीं समाता, उनकी आँखों से आँसू बहने लगे [illegible] पुलकित होगया ।

कपि तव दरस सकल दुख बीते * मिले आजु मोहि राम पिरीते
बार बार बूझी कुसलाता * तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता

हे हनुमानजी ! तुम्हारे दर्शन से सब दुःख दूर होगये मानो आज मुझे प्यारे श्रीरामजी मिल गये, फिर बारम्बार कुशल पूछी । भरतजी बोले-हे भाई ! इस समय मैं आपको क्या दूं ।

एहि सन्देश सरिस जग माहीं * करि विचारि देखउँ कछु नाहीं
नाहिन तात उरिन मैं तोही * अब प्रभु चरित सुनावहु मोही

संसार में इस संदेश के बराबर कुछ भी अच्छा नहीं है, यह मैंने विचारकर देखा है । हे तात ! मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता । अब मुझे श्रीरघुनाथजी के चरित्र सुनाओ ।

तब हनुमन्त नाइ पद माथा * कहे सकल रघुपति गुन गाथा
कहु कपि कबहुँ कृपालु गोसाईं * सुमिरहि मोहि दास की नाईं

तब भरतजी के चरणों में मस्तक नवाकर हनुमानजी ने रघुनाथजी के सम्पूर्ण गुणों की गाथा कही । (भरतजी ने पूछा–) हे हनुमानजी ! कहो, दयालु श्रीरामजी क्या कभी मुझे अपने दासकी तरह स्मरण करते हैं ?

छन्द–निज दास ज्यों रघुवंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यौ ।
सुनि भरत वचन विनीत अति कपि पुलकित तनु चरनन्हि पर्‌यौ ॥
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ सो ।
काहे न होई विनीत परम पुनीत सद्‌गुन सिन्धु सो ॥

रघुवंश-भूषण श्रीरामजी ने क्या मुझे अपने दास के समान समझकर स्मरण किया ? भरतजी के ऐसे बहुत ही दीन वचन सुनकर हनुमानजी रोमाँचित होकर चरणों में गिर पड़े । (और सोचने लगे–) जो श्रीरामजी चराचर के स्वामी हैं, जिनके गुणगान स्वयं अपने श्रीमुख से वर्णन करते हैं, वे भरत ऐसे विनय युक्त, बहुत ही पवित्र और सद्‌गुण के समुद्र क्यों न हों ?

दोहा–राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह, सत्य वचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदयँ समात ॥ २क ॥

(हनुमानजी बोले–) हे नाथ ! श्रीरघुनाथजी को तुम प्राणों के समान प्रिय हो । हे तात ! मेरा यह वचन सत्य है । यह सुनकर भरतजी को मिलते हुए हर्ष मन में नहीं समाता ।

सो०–भरत चरन सिरु नाइ, तुरत गयउ कपि राम पहिं ।
कही कुशल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु यान चढ़ि ॥ २ख ॥

फिर भरतजी के चरणों में सिर नवाकर हनुमानजी तुरन्त श्रीरामजी के पास गये और सब कुशल कही तब प्रसन्न होकर प्रभु विमान पर चढ़कर चले ।

हरषि भरत कोशलपुर आए * समाचार सब गुरुहि सुनाए
पुनि मन्दिर महँ बात जनाई * आवत नगर कुशल रघुराई

भरतजी प्रसन्न होकर अयोध्यापुरी में आये और सब समाचार गुरुदेव को सुनाये। फिर राजमहल में खबर कराई कि श्रीरघुनाथजी कुशल पूर्वक नगर में आ रहे हैं।

सुनत सकल जननीं उठि धाईं * कहि प्रभु कुशल भरत समुझाईं
समाचार पुरबासिन्ह पाए * नर अरु नारि हरषि सब धाए

समाचार के सुनते ही सब मातायें दौड़ीं, तब भरतजी ने प्रभु की कुशल कहकर समझाया। अयोध्या-वासियों ने जब (श्रीरघुनाथजी के आगमन के) समाचार पाये, तब सब नर-नारी प्रसन्न होते हुए दौड़े।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला * नव तुलसिदल मङ्गल मूला
भरि भरि हेम थार भामिनी * गावत चलिं सिन्धुर गामिनी

दूध, दही, गोरोचन, फल-फूल और मंगल की जड़ (नवीन तुलसीदल) आदि सोने के थालों में भर-भरकर गजगामिनी स्त्रियां गाती हुई चलीं।

जो जैसेहि तैसेहिं उठि धावहिं * बाल बृद्ध कहँ सङ्ग न लावहिं
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई * तुम्ह देखे दयालु रघुराई

जो जैसे बैठे थे, वैसे ही उठ दौड़े। बालक व बूढ़ों को कोई साथ नहीं लेते और एक दूसरे से पूछते हैं कि तुमने दयालु श्रीरामजी को देखा है।

अवध पुरी प्रभु आवत जानी * भई सकल शोभा कै खानी
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा * भइ सरजू अति निर्मल नीरा

अवधपुरी प्रभु को आते हुए जानकर, शोभा की खान हो गई। सरयू का जल बहुत निर्मल हो गया और तीनों प्रकार की सुहावनी पवन चलने लगी।

दोहा—हर्षित गुरु परिजन अनुज, भूसुर बृन्द समेत।
चले भरत मन प्रेम अति, सन्मुख कृपानिकेत ॥ ३क ॥

गुरु वशिष्ठजी, कुटुम्बी, शत्रुघ्न और ब्राह्मण-मण्डली के साथ भरतजी अत्यन्त प्रेम भरे मन से कृपानिधान श्रीरघुनाथजी के पास चले।

बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर स्वर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥ ३ख ॥

बहुत-सी स्त्रियां अटारियों पर चढ़ी हुई आकाश में विमान को देखती हैं और उसे देखकर, प्रसन्न हो मधुर स्वर से सुन्दर मंगल-गीत गाती हैं।

राका शशि रघुपति पुर, सिन्धु देखि हरषान।
बढ़ह्यो कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान ॥ ३ग ॥

श्रीरामजी-रूपी पूर्णचन्द्र को देखकर, मानो-अयोध्या-रूपी समुद्र हर्षित होकर कोलाहल करते हुए उमड़ चला हो और स्त्रियां उसकी तरंगों की तरह हैं।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर, कपिन्ह देखावत नगर मनोहर

सुनु कपीस अंगद लंकेसा * पावन पुरी रुचिर यह देसा

इधर सूर्यवंशरूपी कमल के सूर्य श्रीरामजी बानरों को नगर दिखाने लगे। (श्रीरामजी बोले-) हे सुग्रीव, अङ्गद और विभीषण ! सुनो, यह पवित्र पुरी और सुन्दर देश है।

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना * बेद पुरान बिदित जगु जाना
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ * यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ

यद्यपि सब बैकुण्ठ की बड़ाई करते हैं, वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है और संसार जानता है। परन्तु वह भी मुझे अयोध्या के समान प्रिय नहीं है। यह बात कोई-कोई ही जानते हैं।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि * उत्तर दिसि बह सरजू पावनि
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा * मम समीप नर पावहिं बासा

यह सुन्दर पुरी मेरी जन्म-भूमि है, इसके उत्तर में निर्मल और पवित्र सरयू बह रही है। जिसमें स्नान करने से बिना परिश्रम ही लोग मेरे समीप वास पा जाते हैं।

अति प्रिय मोहि यहाँ के बासी * मम धामदा पुरी सुखरासी
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी * धन्य अवध जो राम बखानी

यहाँ के निवासी मुझे बहुत प्रिय हैं, अयोध्यापुरी मेरे धाम को पहुँचाने वाली और सुखों की राशि है। प्रभु की वाणी सुनकर सब बानर प्रसन्न हुए। 'अवधपुरी' जिसकी बड़ाई स्वयं श्रीरामजी ने अपने श्रीमुख से की है, वह धन्य है।

दोहा—आवत देखि लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान ॥४क॥

कृपासिंधु भगवान श्रीरामजी ने जब सब लोगों को आते देखा, तब नगर के निकट प्रभु की प्रेरणा से पुष्पक विमान पृथ्वी पर उतरा।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरषु बिरह अति ताहु ॥४ख॥

प्रभु ने पुष्पक विमान से उतरकर कहा कि तुम कुबेर के पास जाओ। श्रीरामजी की प्रेरणा से वह चला, तब उसे स्वामी के पास जाने का हर्ष तथा प्रभु से अलग होने का दुःख हुआ।

आए भरत संग सब लोगा * कृस तनु श्री रघुबीर बियोगा
बामदेव बशिष्ठ मुनि नायक * देखे प्रभु महि धरि धनु सायक

भरतजी के साथमें सबलोग आये, श्रीरामजी के वियोग से उन सबके शरीर दुर्बलहोगये हैं। प्रभु ने मुनियों में श्रेष्ठ वामदेव व वशिष्ठजी को देखा, तब धनुष-बाण पृथ्वी पर रख दिये।

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह * अनुज सहित अति पुलक तनोरुह
भेंटि कुशल बूझी मुनिराया * हमरें कुशल तुम्हारिहिं दाया

लक्ष्मण सहित दौड़कर गुरुजी के चरणकमल पकड़ लिए, दोनों के शरीर के रोमांच खड़े

हो गये। मुनि ने मिलकर कुशल पूछी, तब श्रीरघुनाथजी ने कहा कि आप ही की दया से हम लोग कुशल हैं।

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा * धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज * नमत जिन्हहि सुर मुनि शंकर अज

फिर धर्म-धुरन्धर रघुकुल के स्वामी श्रीरघुनाथजी ने सब ब्राह्मणों से मिल कर उन्हें मस्तक नवाया, फिर भरतजी ने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरण पकड़ लिए। जिन चरणार-विन्दों को देवता, मुनि, शङ्करजी और ब्रह्माजी नमस्कार करते हैं।

परे भूमि नहिं उठत उठाए * बल कर कृपासिंधु उर लाए
श्यामल गात रोम भये ठाढ़े * नव राजीव नयन जल बाढ़े

भरतजी साष्टाङ्ग दण्डवत करते हुए पृथ्वी पर गिरकर पड़े रहे, वे उठाने से भी नहीं उठते। तब कृपासिंधु श्रीरामजी ने बल पूर्वक उठा कर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। उनके सांवले शरीर में रोम खड़े होगये, नवीन कमल के समान नेत्रों में आँसू बहने लगे।

छन्द—राजीव लोचनस्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोहि मोपहि जात नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु शृङ्गार तनु धरि मिले वर सुषमा लही॥

कमल के समान नेत्रों से आँसू बह रहे हैं, सुन्दर शरीर में रोम खड़े होगये हैं। त्रिलोकी-नाथ बड़े स्नेह से भाई भरत को हृदय से लगाकर मिले। प्रभु भाई से मिलते समय ऐसे शोभायमान हुए कि उनकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती। मानो प्रेम और शृंगार रस ही शरीर धारण कर परस्पर मिलते हुए विशेष शोभा को प्राप्त हुए हों।

बूझत कृपानिधि कुशल भरतहि बचन वेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख वचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुशल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियौ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियौ॥

दयानिधान श्रीरामजी-भरतजी से कुशल पूछते हैं, परन्तु भरतजी के मुख से जल्दी वचन नहीं निकलते। (शिवजी कहते हैं—) हे पार्वती! सुनो, वह सुख वचन और मन से परे हैं, उसे वही जानता है—जो पाता है। (भरतजी बोले—) हे कौशलनाथ! आपने दुखी जानकर दास को दर्शन दिये तो—अब सब कुशल है। हे कृपानिधान! आपने मुझे वियोग-रूपी समुद्र में डूबते हुए हाथ पकड़ कर बचा लिया—

दोहा—पुनि प्रभु हरषि शत्रुहन, भेंटे हृदयँ लगाइ।
लछिमन भरत मिले सब, परम प्रेम दोउ भाइ॥ ५॥

फिर प्रभु प्रसन्नता पूर्वक शत्रुघ्नजी को हृदय से लगाकर मिले, तत्पश्चात् भरतजी और लक्ष्मणजी से प्रेम पूर्वक मिले ।

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे * दुसह बिरह सम्भव दुख मेंटे
सीता चरन भरत सिरु नावा * अनुज समेत परम सुख पावा

फिर शत्रुघ्नजी-लक्ष्मणजी से मिले और कठिन वियोग से उत्पन्न दुःख को मिटाया, फिर शत्रुघ्नजी समेत भरतजी ने सीताजी के चरणों में सिर नवाकर बहुत सुख पाया ।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी * जनित बियोग बिपति सब नासी
प्रेमातुर सब लोग निहारी * कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी

प्रभु के दर्शन से सब प्रसन्न हुए और वियोग से उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गये । सब लोगों को स्नेह से व्याकुल देखकर कृपालु प्रभु ने यह कौतुक किया कि–

अमित रूप प्रगटे तेहि काला * जथाजोग मिले सबहि कृपाला
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी * किए सकल नर नारि बिसोकी

उस समय कृपालु रामजी ने असंख्य रूप प्रकट किये और यथायोग्य सबसे मिले । दया की दृष्टि से श्रीरघुनाथजी ने सब नर-नारियों की ओर देखकर उन्हें शोक रहित कर दिया ।

छन महिं सबहि मिले भगवाना * उमा मरमु यह काहुँ न जाना
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा * आगें चले सील गुन धामा
कौसल्यादि मातु सब धाईं * निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं

क्षणभर में भगवान सबसे मिल लिये । परन्तु हे पार्वती ! यह भेद किसी ने नहीं जाना इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्रीरामजी सबको सुखी कर आगे चले । तब सब मातायें ऐसे दौड़ीं-जैसे हाल की ब्याही हुई गायें बछड़े को चाहती हैं ।

छन्द–जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं ।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन हुँकार करि धावत भईं ॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहुबिधि कहे ।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे ॥

मानो गायें अपने छोटे बछड़ों को घर में छोड़, परवश चरने को वन में गई हों और दिन के अन्त में नगर की ओर थनों से दूध चुआती और हुँकार करती हुई दौड़ी आ रही हों । प्रभु बड़े स्नेह के साथ सब माताओं से मिले और बहुत भाँति से मधुर वचन कहे । जिससे वियोग से उत्पन्न हुई सब कठिन विपत्ति दूर होगईं और उन्होंने प्रसन्न होकर बहुत सुख पाया ।

दोहा–भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि ।
रामहि मिलत कैकई, हृदयँ बहुत सकुचानि ॥ ६क ॥

श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के प्रेमी जानकर पुत्र लक्ष्मणजी से माता सुमित्राजी मिलीं । श्रीरामचन्द्रजी से मिलती हुई कैकई हृदय में बहुत लज्जित हुई ।

दोहा—लछिमन सब मातन्हि मिलि, हरषे आषिस पाइ ।
कैकई कहँ पुनि पुनि मिले, मन कर छोभु न जाइ ॥ ६ख ॥

लक्ष्मणजी सब माताओं से मिले और आशीर्वाद पाकर बहुत प्रसन्न हुए, फिर कैकई से बारम्बार मिले, परन्तु उनके मन का क्षोभ नहीं जाता।

सासुन्ह सबनि मिलो बैदेही * चरनन्हि लागि हरषु अति तेही
देहिं असीस बूझि कुशलाता * होइ अचल तुम्हार अहि बाता

सीताजी सब सासुओं से मिलीं और चरण लगकर बहुत ही आनन्द हुआ। सब सासुयें कुशल पूछकर, आशीर्वाद वेती हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

सब रघुपतिमुखकमलबिलोकहिं * मंगल जानि नयन जल रोकहिं
कनक थार आरती उतारहिं * बार बार प्रभु गात निहारहिं

सब रघुनाथजी के मुखारविंद को देख रही हैं और मंगल-समय जानकर नेत्रों के जल को रोकती हैं। सोने के थाल से आरती और बारम्बार प्रभु के अङ्गों को निहारती हैं।

नाना भाँति निछावर करहीं * परमानन्द हरषि उर भरहीं
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि * चितवति कृपासिन्धु रनधीरहि

वे नाना प्रकार से न्यौछावर करती हैं और हृदय को आनन्द से परिपूर्ण करती हैं। कौशल्याजी दया के समुद्र रणधीर श्रीरघुनाथजी को बार-बार देखती हैं।

हृदयँ बिचारत बारहिं बारा * कवन भाँति लंकापति मारा
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे * निसिचर सुभट महाबल भारे

और बारम्बार अपने हृदय में विचार करने लगीं कि इन्होंने लंकापति (रावण) को कैसे मारा। यह मेरे दोनों बालक बहुत ही सुकुमार हैं और राक्षस तो भारी योद्धा और बड़े ही बलवान थे।

दोहा—लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहि बिलोकत मातु ।
परमानन्द मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गातु ॥ ७ ॥

लक्ष्मण और सीता सहित प्रभु श्रीरामजी को देखकर माताओं के मन परमानन्द में मग्न हैं और उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे हैं।

लंकापति कपीस नल नीला * जामवन्त अंगद शुभसीला
हनुमदादि सब बानर बीरा * धरे मनोहर मनुज सरीरा

लंकापति विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, जामवन्त, अङ्गद और हनुमानजी आदि उत्तम स्वभाव वाले सब वीर-वानर मनोहर मनुष्य शरीर धारण किये हैं।

भरत सनेह सील ब्रत नेमा * सादर सब बरनहिं अति प्रेमा
देखि नगरबासिन्ह कै रीती * सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती

सब आदर सहित बड़े प्रेम से भरतजीके शील, स्नेह, व्रत और नियम का वर्णन करने लगे, नगर

निवासियों की रीति और प्रभु के चरणों में उनका प्रेम देखकर उनकी बड़ाई करने लगे।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए * मुनि पद लागहु सकल सिखाए
गुरु बशिष्ठ कुल पूज्य हमारे * इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे

फिर श्रीरामजी ने सखाओं को बुलाकर शिक्षा दी कि मुनि के चरणों को छुओ। ये हमारे पूज्य कुल-गुरु वशिष्ठजी हैं, इन्हीं की कृपा से राक्षस रण में मारे गये हैं।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे * भए समर सागर कहँ बेरे
मम हित लागि जन्म इन हारे * भरतहु ते मोहि अधिक पियारे
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए * निमिष निमिष उपजत सुखनए

(श्रीरामजी गुरुजी से बोले-) हे मुनि! यह सब मेरे सखा हैं, जो युद्ध रूपी समुद्र में मुझे जहाज के समान हुए हैं। मेरे हित के लिए यह अपने जन्म तक हार गये हैं, ये मुझे भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। प्रभु के यह वचन सुनकर सब प्रेम-मग्न हो गये, पल-पल से उन्हें नये सुखों का अनुभव होता है।

दोहा—कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥८क॥

फिर उन सखाओं ने कौशल्याजी के चरणों में माथा नवाया, तब कौशल्याजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और कहा-तुम मुझे रघुनाथजी के समान प्यारे हो।

सुमन बृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकन्द।
चढ़ीं अटारिन्ह देखहि, नगर नारि नर बृन्द ॥८ख॥

आनन्दकन्द श्रीरामजी महल को चले, तब पुष्प-वृष्टि से आकाश भर गया। नगर के स्त्री-पुरुषों के झुण्ड अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन करते हैं।

कंचन कलस बिचित्र सँवारे * सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे
बन्दनबार पताका केतू * सबन्हि बनाए मङ्गल हेतू

सोने के कलश बहुत भाँति से सजाकर अपने-अपने द्वारों पर रक्खे। सभी ने मंगल के लिए बन्दनवार, ध्वजा और पताका लगायीं।

बीथीं सकल सुगन्ध सिंचाई * गजमनि रचि बहु चौक पुराई
नाना भाँति सुमङ्गल साजे * हरषि नगर निसान बहु बाजे

सब गलियाँ सुगन्धित जल से छिड़कवाई गयीं और गज-मुक्ताओं से रचकर बहुत-सी चौकें पुराई गयीं। नाना प्रकार के सुन्दर साज सजाये गये और प्रसन्नता पूर्वक नगर में बहुत से आनन्द के बाजे बजाये गये।

जहँ तहँ नारि निछावर करहीं * देहिं असीष हरष उर भरहीं
कंचन थार आरती नाना * जुवतीं सजें करहिं सुभ गाना

जहाँ-तहाँ स्त्रियाँ न्यौछावर कर रही हैं और हृदय में आनन्दित होकर आशीर्वाद दे रही

हैं। सोने के अनेक थालों में आरती सजाकर स्त्रियां मनोहर गीत गा रही हैं।

करहिं आरती आरतिहर कें * रघुकुल कमल बिपिन दिनकरकें
पुर शोभा सम्पति कल्याना * निगम शेष सारदा बखाना
तेउ यह चरित देखि ठग रहहीं * उमा तासु गुन किमि नर कहहीं

वे रघुवंशरूपी कमल-वन के सूर्य तथा दुःख को हरने वाले श्रीरामजी की आरती कर रही हैं। अयोध्यापुरी की शोभा सम्पत्ति और आनन्द को वेद, शेष और सरस्वती वर्णन करते हैं। परन्तु यह चरित्र देखकर वे भी ठगे से रह जाते हैं। हे पार्वती! तब उसके गुणों को मनुष्य कैसे कह सकते हैं?

दोहा—नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिकसित भई, निरखि राम राकेस ॥९क॥

स्त्रियां-रूपी कुमुदिनी अयोध्यारूपी सरोवर में श्रीरामजी के वियोग रूप सूर्य के अस्त हो जाने से श्रीरामजी रूपी चन्द्रमा को देखकर खिल उठीं।

होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि, बाजहिं गगन निशान।
पुर नर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान ॥९ख॥

नाना प्रकार के शकुन होने लगे, आकाश में नगाड़े बजने लगे, नगर के सब पुरुष और स्त्रियों को सनाथ करके श्रीरामचन्द्रजी राज-भवन को चले।

प्रभु जानी कैकई लजानी * प्रथम तासु गृह गए भवानी
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा * पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा

(महादेवजी बोले—) हे पार्वती! प्रभु ने जाना कि माता कैकई लज्जित हैं तो पहले उन्हीं के महल में गये और उन्हें समझाकर बहुत सुख दिया, फिर प्रभु अपने महल में गये।

कृपासिन्धु जब मन्दिर गए * पुर नर नारि सुखी सब भए
गुरु वशिष्ठ द्विज लिए बोलाई * आजु सुघरी सुदिन समुदाई

कृपासिंधु रामजी जब अपने भवन में गये तब नगर के सब नर-नारी सुखी हुए। गुरुवशिष्ठ जी ने ब्राह्मणों को बुलवा लिया कहा-आज शुभ घड़ी और सुख देने वाला सुन्दर दिन है।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन * रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन
मुनि बसिष्ठ के वचन सोहाए * सुनत सकल बिप्रन्ह प्रति मन भाए

आप सब ब्राह्मण आनन्द पूर्वक आज्ञा दीजिए कि श्रीरामजी सिंहासन पर विराजमान हों। मुनि के वचन सुनते ही ब्राह्मणों को बहुत आनन्द हुआ।

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका * जग अभिराम राम अभिषेका
अब मुनिवर बिलम्ब नहिं कीजै * महाराज कहँ तिलक करीजै

तब अनेक ब्राह्मण मधुर वचनों से बोले-श्रीरामजी का अभिषेक संसार को आनन्द देने वाला है। हे मुनीश्वर! अब आप विलंब न कीजिए और महाराज को राजतिलक कर दीजिए।

दोहा—तब मुनि कहेउ सुमन्त सन, सुनत चलेउ हर्षाइ ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारे जाइ ।।१०क।।

तब मुनि ने सुमन्त से कहा तो वे सुनते ही हर्षित होकर चले । उन्होंने अनेक रथ, हाथी और घोड़े तुरन्त सजवाये ।

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रव्य मँगाइ ।
हरष समेत बशिष्ठ पद, पुनि सिरु नायउ आइ ।।१०ख।।

फिर जहाँ-तहाँ दूतों को भेजकर मंगल-द्रव्य मँगाकर, आदर पूर्वक आकर वशिष्ठजी के चरणों में सिर नवाया ।

* नवान्ह पारायण—आठवाँ विश्राम *

अवधपुरी अति रुचिर बनाई * देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई
राम कहा सेवकन्ह बुलाई * प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई

अयोध्या को बहुत सुन्दर सजाया । देवताओं ने फूलों की वर्षा की झड़ी लगादी । श्रीरामजी ने सेवकों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम जाकर पहले हमारे सखाओं को स्नान कराओ ।

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए * सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे * निज कर राम जटा निरुआरे

यह सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दौड़े और तुरन्त ही सुग्रीव आदि सखाओं को स्नान कराया । फिर दयालु श्रीरामजी ने भरतजी को बुलाया और अपने हाथों से उनकी जटाओं को सुलझाया ।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई * भगत बछल कृपालु रघुराई
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई * सेष कोटि सत सकहिं न गाई

फिर भक्त-वत्सल कृपालु श्रीरघुनाथजी ने तीनों भाइयों को स्नान कराया । भरतजी के भाग्य और प्रभु की कोमलता का वर्णन सौ करोड़ शेषजी भी नहीं कर सकते ।

पुनि निज जटा राम बिबराये * गुरु अनुसासन माँगि नहाये
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे * अंग अनंग देखि सत लाजे

फिर श्रीरामजी ने अपनी जटायें खोलीं और गुरुदेव की आज्ञा पाकर स्नान किया । स्नान करके प्रभु ने आभूषण धारण किये उन अंगों की शोभा देखकर सैकड़ों कामदेव लजा गये ।

दोहा—सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ ।
दिब्य बसन बर भूषन, अँग अँग सजे बनाइ ।।११क।।

सासुओं ने आदर पूर्वक जानकीजी को तुरन्त ही स्नान कराया और उत्तम वस्त्र तथा दिव्य गहनों से अंग-प्रत्यंग सजा दिये ।

राम बाम दिसि शोभित, रमा रूप गुन खानि ।

देखि मातु सब हरषीं, जन्म सुफल निज जानि ॥११ख॥

श्रीरामजी के बायीं ओर लक्ष्मी रूप, गुणों की खान श्रीजानकी जो शोभायमान हैं। उन्हें देखकर सब मातायें अपना जन्म सफल मानकर प्रसन्न हुईं।

सुनि खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा शिव मुनिबृन्द।
चढ़ि बिमान आए सकल, सुर देखन सुखकन्द ॥११ग॥

काकभुशुण्डिजी बोले-हे गरुड़जी ! उस समय ब्रह्माजी, शिवजी, और मुनिगण तथा सब देवता विमानों पर चढ़कर आनन्दकन्द प्रभु के दर्शन करने के लिए आये।

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा * तुरत दिव्य सिंहासन माँगा
रवि सम तेज सो बरनि न जाई * बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई

प्रभुको देख मुनिके मनमें प्रेमभर आया। उन्होंने उसी समय सुन्दर सिंहासन मँगाया, जिसका तेज सूर्यके समान था। जो वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीरामजी द्विजोंको प्रणाम करके बैठे।

जनक सुता समेत रघुराई * देखि प्रहरषे मुनि समुदाई
बेद मंत्र तब द्विजन उचारे * नभसुर मुनि जय जयति पुकारे

श्रीजानकी जी सहित श्रीरामजी को सिंहासन पर विराजमान देखकर मुनिगण बहुत ही प्रसन्न हुए। उस समय ब्राह्मणों ने वेद-मन्त्र उच्चारण किये, आकाश में देवता और मुनि जय-जयकार करने लगे।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा * पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा
सुत बिलोकि हरषीं महतारी * बार बार आरती उतारी

सर्व प्रथम वशिष्ठ मुनि ने तिलक किया, फिर सब ब्राह्मणों को तिलक करने की आज्ञा दी। पुत्र को राज-सिंहान पर विराजमान देखकर सब मातायें बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने बारम्बार आरती उतारी।

बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे * जाचक सकल अजाचक कीन्हे
सिंहासन पर त्रिभुवन साईं * देखि सुरन्ह दुन्दुभीं बजाईं

ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये और सब याचकों को सन्तुष्ट कर दिया। त्रिलोकीनाथ को सिंहासन पर देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाये।

छन्द—नभ दुन्दुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृन्द परमानन्द सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनाङ्गद हनुमानादि समेत ते।
गहें छत्र चँमर व्यजन धनु असि चर्मशक्ति बिराजते॥

आकाशमें बहुत प्रकार से नगाड़े बजने लगे, गन्धर्व और किन्नर गाने लगे,अप्सरायें नाचने लगीं। देवता और मुनि परमानन्द को प्राप्त करते हुए भरत आदि छोटे भाई विभीषण, अंगद हनुमान आदि सब छत्र, चँवर, पंखा, तलवार, ढाल और शक्ति आदि लिए सुशोभित हैं।

छन्द—श्री सहित दिनकर बंशभूषन काम बहु छबि सोहईं ।
नव अम्बुधर बर गात अम्बर पीत सुर मन मोहईं ॥
मुकुटाङ्गदादि बिचित्र भूषन अङ्ग अङ्गनि प्रति सजे ।
अम्भोज नयन विशाल उर भुज धन्य नर निरखन्ति जे ॥

श्रीसीताजी सहित सूर्यवंश के भूषण श्रीरामजी अनेक कामदेवों की शोभा से शोभित हैं। नवीन मेघ के समान सुन्दर साँवले शरीर पर पीताम्बर मुनियों के मन को मोहित कर रहा है। मुकुट, भुजदण्ड और विचित्र आभूषण अंग अंग में सजे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं चौड़ी छाती, लम्बी भुजायें हैं। जो दर्शन करते हैं, वे धन्य हैं।

दोहा—वह शोभा समाज सुख, कहत न बनइ खगेस ।
बरनहिं सारद सेष श्रुति, सो रस जान महेस ॥१२क॥

हे पक्षिराज! वह शोभा, वह समाज और वह सुख कहते नहीं बनता। सरस्वती, शेषजी और वेद निरन्तर उनका वर्णन करते हैं, उसका रस शिवजी ही जानते हैं।

भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गए सुर निज निज धाम ।
बन्दी वेष वेद तब, आए जहँ श्रीराम ॥१२ख॥

सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने स्थान को चले गये, तब भाटों का वेष धारण कर चारों वेद वहाँ आये, जहाँ श्रीरामजी थे।

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति, आदर कृपानिधान ।
लगे न काहूँ मरम कछु, लगे करन गुनगान ॥१२ग॥

कृपानिधान सर्वज्ञ प्रभु ने उनका आदर किया, यह भेद किसी ने भी नहीं समझ पाया। वेद गुणगान करने लगे—

छन्द—जय सगुन निर्गुन राम रूप अनूप भूप सिरोमने ।
दसकन्धरादि प्रचण्ड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने ॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे ।
जय प्रनतपाल दयालु प्रभु संयुक्ति सक्ति नमामहे ॥

हे सगुण और निर्गुण रूप अनुपम सौन्दर्य युक्त राज-शिरोमणि श्रीरामजी! आपकी जय हो आपने रावण आदि प्रचण्ड बलवान और दुष्ट राक्षसों को अपनी भुजाओं के बल से मारा है। आपने मनुष्य अवतार लेकर संसार का भार दूर कर, सबके कठिन दुःख दूर कर दिये। हे शरणागत पालक, दयालु प्रभु! आपकी जय हो। हम शक्ति रहित आपको नमस्कार करते हैं।

* यजुर्वेद उवाच *

छन्द—तव विषम माया वश सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।

भव पन्थ भ्रमित अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे ॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुख ते निरबहे ।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे ॥

हे श्रीहरि ! आपकी कठिन माया के वश में होने के कारण देवता, असुर, नाग और मनुष्य जड़-चेतन सभी संसार मार्ग (आवागमन) में कर्म और गुणों से भरे हुए दिन-रात भटक रहे हैं । उनमें से, हे नाथ ! जिन्हें आपने दयादृष्टि से देख लिया है, वे ही तीनों प्रकार के दुःखों से छूट गये । हे संसार सम्बन्धी दुःख दूर करने में समर्थ श्रीरामजी ! आप हमारी रक्षा करें, हम आपको नमस्कार करते हैं ।

जे ग्यान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥
विश्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे ॥

हे हरि भगवान् ! जो प्राणी अपने ज्ञान के अभिमान से मतवाले होकर संसार से छुड़ाने वाली आपकी भक्ति का आदर नहीं करते, वे देव-दुर्लभ पद पाकर भी नीचे गिरते हैं । जो आपका विश्वास करके सब आशाओं को छोड़कर, आपके दास होकर रहते हैं, वे आपके नाम को जपकर बिना परिश्रम ही संसार से तर जाते हैं । हे नाथ ! हम आपको नमस्कार करते हैं ।

जे चरन शिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतनी तरी ।
नख निर्गता मुनि वन्दिता त्रैलोक पावनि सुरसरी ॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत बन फिरत कंटक किन लहे ।
पद कञ्ज द्वन्द मुकन्द राम रमेश नित्य भजामहे ॥

जो चरण शिवजी और ब्रह्माजी द्वारा सेवित हैं, जिन चरणों की पवित्र रज को छूते ही गौतम ऋषि की पत्नी (अहिल्या) तर गई । जिन चरणों के नखों से मुनियों द्वारा वन्दित और तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गङ्गाजी निकली हैं और जो ध्वजा, वज्र अंकुश व कमल-इन चिन्हों से अंकित है । जिन चरणों में वन में फिरते समय काँटोंके गढ्ढे पड़ गये हैं । हे मुकुन्द ! हे राम हे रमापति ! हम उन्हीं चरणारविंदों का नित्य भजन करते हैं ।

अव्यक्त मूल मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कन्ध साखा पञ्च बीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रति रहे ।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे ॥

वेद-शास्त्रों ने कहा है कि जिनकी जड़ अदृश्य माया है, जो अनादि हैं, जिनके छः तने, पच्चीस शाखायें,अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं, जिनके दो प्रकार के कड़वे और मीठे फल हैं। जिस पर उसी के आश्रत वेलि है और जिनके नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं, ऐसे संसाररूपी वृक्ष आपको नमस्कार करते हैं।

छन्द—जे ब्रह्म अजमद्वैत अनुभव गम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जसु नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सद्‌गुना कर देव यह वर माँगहीं।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरण हम अनुरागहीं॥

जो मनुष्य 'ब्रह्म' को अजन्मा, अद्वैत, अनुभव से जानने योग्य और मन से परे जानकर उसका ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें। परन्तु हे नाथ! हम तो आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे कृपानिधान! हे उत्तम गुणों के स्थान प्रभो, हे देव! हम यही वर माँगते हैं कि मन, कर्म, वचन से विकारों को छोड़कर आपके चरणों में हमारा प्रेम हो।

दोहा—सब कें देखत वेदन्ह, बिनती कीन्हि उदार।
अन्तर्ध्यान भए पुनि, गए ब्रह्म आगार॥१३क॥

सब लोगों को देखते हुए वेदों ने श्रीरामचन्द्रजी की यह श्रेष्ठ स्तुति की। फिर वे अन्तर्ध्यान होकर ब्रह्मलोक को चले गये।

बैनतेय सुनु शम्भु तब, आये जहँ रघुबीर।
विनय करत गद्‌गद् गिरा, पूरित पुलकि शरीर॥१३ख॥

हे गरुड़जी! सुनो, तब शिवजी वहाँ आये, जहाँ श्रीरघुनाथजी थे और पुलकित शरीर होकर गद्‌गद् वाणी से स्तुति करने लगे।

छन्द—जय राम रमा रमनं समनं। भव ताप भयाकुल पाहि जनं
अवधेश सुरेश रमेश बिभो। सरनागत माँगत पाहि प्रभो
दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महाभय भूरि रुजा
रजनीचर वृन्द पतङ्ग रहे। सर पावक तेज प्रचण्ड दहे

हे रमा-रमण श्रीरामजी! आपकी जय हो! आप संसार के पापों को दूर करने वाले और भय से व्याकुल जीवों के रक्षक हैं। हे अवधपति! हे देवाधिपति! हे लक्ष्मीनाथ! हे समर्थ प्रभो! मैं शरणागत यही माँगता हूँ कि मेरी रक्षा कीजिए। आपने दश शीश और बीस भुजा वाले रावण को मारकर पृथ्वी के भारी भय-रोग को दूर कर दिया। राक्षसरूपी पतंगे आपके बाणरूपी प्रचण्ड अग्नि के तेज से जलकर भस्म हो गये।

महि मण्डल मण्डन चारु तरं। धृत सायकं चाप निषङ्ग वरं

मद मोह महाममता रजनी। तम पुञ्ज दिवाकर तेज अनी

मन जात किरात निपात किए। मृग लोक कुभोग सरे न हिए

हतिनाथ अनाथनि पाहिहरे। विषयावन पाँवर भूलि परे

आप भूमण्डल के अत्यन्त सुन्दर आभूषण हैं। उत्तम धनुषवाण और तर्कस धारण किये हैं। मद, मोह और ममतारूपी भारी अन्धेरी रात के अंधकार समूह को दूर करने के लिए आप महा प्रकाशमय सूर्य हैं। कामदेव-रूपी बहेलिया ने मनुष्यरूपी मृगों के हृदय में कुभोग-रूपी बाण मारकर उसको गिरा दिया है। हे नाथ! आप उसे नष्ट करके उन अनाथों की रक्षा कीजिए, जो विषयरूपी वन में भूले पड़े हैं।

बहु रोग वियोगन्हि लोगहए। भव दंघ्रि निरादर के फल ए

भवसिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते

अतिदीन मलीन दुखीतिनहीं। जिन्हके पद पंकज प्रीति नहीं

अवलम्ब भवंतकथा जिन्हकें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्हकें

लोग बहुत-से रोगों और वियोगों से मारे हुए हैं, ये आपके चरणों के निरादर के फल हैं। और जो लोग आपके चारणारविंदों में प्रेम नहीं करते, वे अगाध संसार-सागर में पड़े हैं वे लोग नित्य ही अत्यन्त दीन, मलीन और दुखी रहते हैं, जो आपके चारणारविंदों में प्रीति नहीं करते। जिनको आपकी कथा का ही आश्रय है, उनको सन्त व भगवान सदा प्यार करते हैं।

नहिं राग न लोभ न मान मदा। तिन्हकें सम वैभव वा विपदा

एहि ते सब सेवक होत मुदा। मुनित्यागत जोगभरोस सदा

करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ। पद पंकज सेवत शुद्ध हिएँ

सम मानि निरादर नाद रही। सब संत सुखी बिचरंति मही

उनको न रोग है, न लोभ है, न घमण्ड है और न मद है। ऐश्वर्य अथवा विपत्ति एक समान हैं। इसी से मुनिजन सदा योग का भरोसा छोड़ देते हैं और प्रसन्नतापूर्वक आपके सेवक हो जाते हैं। जो निरन्तर नियम पूर्वक प्रेम करके शुद्ध हृदय से आपके चरणारविंदों की सेवा करते हैं तथा आदर और निरादर को समान मानते हैं, ऐसे सब सन्त सुखी होकर पृथ्वी पर विचरते हैं।

मुनि मानस पंकज भृङ्ग भजे। रघुवीर महा रनधीर अजे

तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महा मद मान अरी

गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरन्तर श्री रमनं

रघुनन्द निकन्द द्वन्द्व घनं। महिपाल बिलोकय दीनजनं

ऐसे मुनियों के मनरूपी कमलों के भौरे ! हे महा रणधीर और अजेय श्रीरघुनाथजी ! मैं आपका नाम जपता हूँ और नमस्कार करता हूँ। आप संसाररूपी रोग को महा औषधि और अभिमान के शत्रु हैं। आप गुण, शील और कृपा के स्थान हैं, हे रमारमण ! मैं आपको सर्वव नमस्कार करता हूँ। हे रघुनन्दन ! घोर द्वन्द्व का नाश कीजिए। हे पृथ्वीनाथ ! मुझ दीन-जन की ओर देखिये।

दोहा—बार बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायिनी, भगति सदा सत्संग ॥१४क॥

हे श्रीरङ्ग ! बारम्बार मैं यही वर माँगता हूँ, सो प्रसन्न होकर दीजिए कि आपके चरणारविंदों में अटल भक्ति और सत्सङ्ग मुझे सदैव प्राप्त हो।

बरनि उमापति राम गुन, हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए, सब बिधि सुखप्रद बास ॥१४ख॥

शिवजी जब श्रीरामजी के गुण वर्णन करके आनन्द पूर्वक कैलाश पर्वत को चले गये, तब प्रभु ने बानरों को सब प्रकार से सुख देने वाले घर दिलवाये।

सुनु खगपति यह कथा पावनी * त्रिबिध ताप भवभय दावनी
महाराज कर शुभ अभिषेका * सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका

हे गरुड़जी ! सुनिए, यह कथा पवित्र करने वाली और तीनों तापों तथा भव-भय का नाश करने वाली है। महाराज श्रीरामचन्द्रजी के मङ्गलदायक राज्याभिषेक की कथा सुनते ही मनुष्य वैराग्य ज्ञान को प्राप्त होंगे।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं * सुख सम्पदा नाना बिधि पावहिं
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं * अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं

जो मनुष्य कुछ इच्छा रखकर इसे सुनेंगे और गावेंगे, वे अनेक प्रकार के सुख और सम्पत्ति पावेंगे। वे संसार में देव दुर्लभ सुखों को भोग कर अन्त में वैकुण्ठ को पधारेंगे।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई * लहहिं भगति गति सम्पति नई
खगपति रामकथा मैं बरनी * स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी

जो जीवनमुक्त, ज्ञानी और विषयी सुनेंगे, वे भी क्रमशः भक्ति, मोक्ष और सम्पत्ति पावेंगे। हे गरुड़जी ! यह कथा मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन की है, जो भय तथा दुःख को दूर करने वाली है।

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी * मोहनदी कहँ सुन्दर तरनी
नित नव मङ्गल कोसलपुरी * हरषित रहहिं लोग सब कुरी

वैराग्य, ज्ञान और भक्ति को दृढ़ करने वाली यह कथा मोहरूपी नदी को पार करने के लिए सुन्दर नौका है। नित्य-नये मङ्गल अयोध्यापुरी में होते हैं, सब जातियों के लोग आनन्द से रहते हैं।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज * जिन्हहिं नमत सिव सुर मुनि अज

मंगल बहु प्रकार पहिराए * द्विजन्ह दान नाना विधि पाए

श्रीरामजी के चरणों में नित्य नयी प्रीति है, जिन चरणों की सेवा-शिवजी, देवता, मुनि और ब्रह्माजी भी करते हैं। याचकों को बहुत प्रकार से वस्त्र पहिनाये गये और ब्राह्मणों ने अनेक दान पाये।

दोहा—ब्रह्मानन्द मगन कपि, सबके प्रभुपद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गए मास षट बीति ॥ १५ ॥

सब बानर परम आनन्द में मग्न हैं, प्रभु के चरणों में सबकी प्रीति है। दिन-रात-जाते हुए किसी ने नहीं जाने, छः महीने बीत गए।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं * जिमि परद्रोह संत मन माहीं
तब रघुपति सब सखा बोलाए * आइ सबन्हि सादर सिरु नाए

सब अपने २ घरों की सुधि भूल गये स्वप्न में भी किसी को घर की याद नहीं आई। जैसे-सन्तों के मन में दूसरों से द्रोह करने का विचार नहीं आता। तब श्रीरामजी ने सब सखाओं को बुलाया और सबने आकर सिर नवाया।

परम प्रीति समीप बैठारे * भगत सुखद मृदु बचन उचारे
तुम्ह अति कीन्ह मोरि सेवकाई * मुखपर केहि विधि करों बड़ाई

तब श्रीरामजी ने प्रेम पूर्वक सबको अपने पास बैठाया और भक्तों को सुख देने वाले कोमल वचन कहे—तुम सबने मेरी बड़ी सेवा की है, मैं मुंह पर किस प्रकार बड़ाई करूँ ?

ताते तुम्ह मोहि अति प्रिय लागे * ममहित लागि भवन सुख त्यागे
अनुज राम सम्पति बैदेही * देह गेह परिवार स्नेही

तुमने मेरे हित के लिए घर के सब सुख छोड़ दिए, इस कारण तुम सब मुझे बहुत प्यारे लगे हो। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, देह, घर, परिवार और मित्र—

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना * मृषा न कहउँ मोर यह आना
सबकें प्रिय सेवक यह नीती * मोरें अधिक दास पर प्रीती

ये सब भी मुझे तुम्हारे समान प्रिय नहीं है। मैं झूंठ नहीं कहता, यह मेरी आन है। यद्यपि सेवक सबको प्यारे होते हैं। तथापि मुझे तो दास पर विशेष प्रीति है।

दोहा—अब गृह जाहु सखा सब, भजेहुँ मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित, जानि करेउ अति प्रेम ॥ १६ ॥

हे सखाओ ! अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ। वहाँ दृढ़ नियम से मेरा भजन करना और मुझे सर्व-व्यापक, सर्व-हितकारी समझकर अधिक स्नेह करना।

सुनु प्रभु बचन मगन सब भए * को हम कहाँ बिसरि तनु गए
एकटक रहे जोरि कर आगे * सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे

प्रभु के वचन सुनकर सब प्रेम मग्न होगए, हम कौन हैं ? देह की सुधि भी भूल गये और हाथ जोड़कर सामने खड़े टकटकी लगाये देखते रह गए। अत्यन्त स्नेहके कारण कुछ कह न सके।

परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा * कहा बिबिध बिधि ग्यान बिसेषा
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पावहिं * पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं

प्रभु ने उनका अत्यन्त प्रेम देखा, तब नाना प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सामने कुछ कह नहीं सकते, बारम्बार चरणकमलों की ओर देखते हैं।

तब प्रभु भूषन बसन मँगाए * नाना रंग अनूप सुहाए
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराए * बसन भरत निज हाथ बनाए

तब प्रभु ने रंग-बिरंगे अनोखे सुन्दर आभूषण और वस्त्र मँगाये। पहले सुग्रीव को भरतजी के हाथ से वस्त्र-आभूषण पहिनाये।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए * लंकापति रघुपति मन भाए
अङ्गद बैठि रहा नहिं डोला * प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला

प्रभु की आज्ञा से लक्ष्मणजी ने विभीषण को वस्त्र-आभूषण पहिनाये, जो रघुनाथजी के मन को प्रिय लगे। अंगदजी बैठे रहे, और अपने स्थान से नहीं उठे तो उनकी प्रीति देखकर प्रभु ने भी उन्हें नहीं बुलाया।

दोहा—जामवन्त नीलादि सब, पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब, चले नाइ पद माथ ॥१७क॥

जामवन्त और नील आदि सबको श्रीरघुनाथजी ने वस्त्र-आभूषण पहिनाये। वे सब श्रीरामजी के स्वरूप को अपने हृदय में धारण करके चरणकमलों में मस्तक नवाकर चले।

तब अङ्गद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेमरस बोरि ॥१७ख॥

तब अंगदजी उठे और सिर नवाकर, आँखों में आँसू भर, हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्र तथा मानो प्रेम-रस में डुबोये हुए वचन बोले—

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिन्धो * दीन दयाकर आरत बन्धो
मरती बार नाथ मोहि बाली * गयउ तुम्हारेहि कोछें घाली

हे सर्वज्ञ! हे दया और सुख के समुद्र, दीनों पर दया करने वाले, शरणागत-रक्षक! हे नाथ! सुनिये, मरते समय मेरे पिता (बालि) मुझे आप ही की गोद में डाल गये थे।

असरन सरन बिरदु सम्भारी * मोहि जनि तजहु भगत हितकारी
मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता * जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता

आप अपना अशरण-शरण यश विचारकर, हे भक्त-हितकारी! मुझे न छोड़िये। मेरे तो गुरु, पिता और माता सब आप ही हैं। आपके चरणकमलों को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ?

तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा * प्रभु तजि भवन काज मम काहा
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना * राखहु सरन नाथ जन दीना

हे महाराज! आप ही विचारकर कहिये कि प्रभु को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है?

मैं बालक, बुद्धि, ज्ञान और बल से हीन हूँ, मुझे दीन जानकर अपनी शरण में रखिए।

नीच टहल गृह कै सब करिहौं * पद पङ्कज बिलोकि भव तरिहौं
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाहीं * अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं

मैं घर की सब छोटी २ सेवायें करूँगा और आपके चरणों के दर्शन करके भवसागर से तर जाऊँगा। ऐसे कहकर अङ्गदजी प्रभु के चरणों में गिर पड़े और बोले–हे नाथ! अब घर जाने को न कहियेगा।

दोहा–अङ्गद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुनासींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ, कमल नयन राजीव ॥१८क॥

अङ्गद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा भगवान ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और उनके कमल-नेत्रों में जल भर आया।

निज उर माल बसन मनि, बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब, बहु प्रकार समझाइ ॥१८ख॥

तब भगवान ने गले की माला, वस्त्र और आभूषण अङ्गदजी को पहिनाकर बहुत प्रकार से समझाया और उनको विदा किया।

भरत अनुज सौमित्र समेता * पठवन चले भगत कृत चेता
अङ्गद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा * फिरफिर चितव रामकीं ओरा

भक्त की करनी को याद करके भरतजी, शत्रुघ्नजी व लक्ष्मणजी सहित इनको पहुँचाने चले। अङ्गदजी के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है वे फिर २ कर प्रभु की ओर देखते हैं।

बार बार करि दण्ड प्रनामा * मनुअस रहन कहहिं मोहि रामा
राम बिलोकनि बोलनि चलनी * सुमिरिसुमिरिसोचतहँसिमिलनी

और बारम्बार दंड-प्रणाम करते हैं, मनमें यह विचार है कि श्रीरामजी मुझे रहने को कह दें। वे श्रीरामजी की चितवन, बोल-चाल और हँसकर मिलने को याद करके सोचते हैं।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी * चलेउ हृदयँ पद पङ्कज राखी
अति आदर सब कपि पहुँचाए * भाइन्ह सहित भरत पुनि आए

किन्तु प्रभु का रुख देखकर बहुत से विनम्र वचन कहकर अपने हृदय में भगवान के चरणकमलों को रखकर वे चले। बड़े आदर से सब बानरों को पहुँचाकर भाइयों सहित भरतजी लौट आये।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना * भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना
दिन दस करि रघुपति पद सेवा * पुनि तब चरन देखिहउँ देवा

तब हनुमानजी ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक भाँति से विनय की और बोले–हे देव! दस दिन श्रीरघुनाथजी की सेवा करके आपके चरणों के दर्शन करूँगा।

पुन्य पुञ्ज तुम्ह पवनकुमारा * सेवहु जाइ कृपा आगारा
अस कहि कपि सब चले तुरन्ता * अङ्गद कहइ सुनहु हनुमन्ता

हे पवनपुत्र ! तुम पुण्यों की राशि हो। जाकर कृपानिधान श्रीरामजी की सेवा करो। ऐसे कहकर सुग्रीव तुरन्त चल दिये, तब अङ्गद ने कहा—हे हनुमानजी ! सुनो—

दोहा—कहेउ दण्डवत प्रभुसन, तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि, सुरति कराएहु मोरि ॥१९क॥

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि प्रभु से मेरी दण्डवत कहना और श्रीरघुनाथजी को बार-बार मेरी याद दिलाते रहना।

अस कहि चलेउ बालिसुत, फिर आयउ हनुमन्त।
तासु प्रीति प्रभुसन कही, मगन भयउ भगवन्त ॥१९ख॥

ऐसे कहकर अङ्गदजी चले। हनुमानजी लौट आये और आकर अङ्गद की प्रीति प्रभु से कही। उसे सुनकर भगवान प्रेम में मग्न हो गये।

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर, समुझि परइ कहु काहि ॥१९ग॥

हे गरुड़जी ! श्रीरामजी का हृदय वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल है। तब कहो—वह किसकी समझ में आ सकता है।

पुनि कृपालु लियो बोलि निषादा * दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू * मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू

फिर दयालु श्रीरामजी ने निषादराज को बुला लिया और प्रसादरूप आभूषण तथा वस्त्र दिये (और बोले—) अब तुम घर जाओ, परन्तु मेरा स्मरण करते रहना और मन, कर्म वचन से धर्म के अनुसार बर्ताव करना।

तुम्ह मम सखा भरतसम भ्राता * सदा रहेहु पर आवत जाता
बचन सुनत उपजा सुख भारी * परेउ चरन भरि लोचन बारी

तुम मेरे सखा एवं भरत के समान भाई हो, अयोध्या में सदैव आते जाते रहना। यह वचन सुनते ही निषादराज बहुत सुखी हुआ, वह आँखों में जल भरकर चरणों में गिर पड़ा।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा * प्रभु सुभाउ परिजन्हि सुनावा
रघुपति चरित देख पुरबासी * पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी

फिर प्रभु के चरणकमलों को हृदय में धारण कर आया और प्रभु का स्वभाव अपने कुटुम्बियों को सुनाया। श्रीरघुनाथजी के यह चरित्र देखकर अयोध्यावासी बारम्बार कहते हैं कि सुखों की राशि प्रभु धन्य हैं।

राम राज बैठे त्रैलोका * हरषित भए गए सब सोका
बयरु न कर काहू सन कोई * राम प्रताप बिषमता खोई

श्रीरामजीके राजसिंहासन पर बैठते ही तीनों लोक प्रसन्न होगये। उनके सब दुख दूर होगये। कोई किसी से बैर नहीं करता। श्रीरामजी के प्रताप से सबके मन की विषमता दूर हो गई।

दोहा—बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग ॥२०॥

सदा लोग अपने २ वर्ण और आश्रम के अनुकूल-धर्म से रत हैं, वेद मार्ग पर चलते हैं। और सदा सुख पाते हैं। किसी को भय, शोक और रोग नहीं हैं।

दैहिक दैविक भौतिक तापा * राम राज नहिं काहुहि व्यापा
सब नर करहिं परस्पर प्रीती * चलहि स्वधर्म निरतिश्रुतिनीती

राम-राज्य में किसी को दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं व्यापता। सब लोग आपस में प्रेम करते और वेद की रीति से अपने-धर्म में मन लगाकर चलते हैं।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं * पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं
राम भगति रत नर अरु नारी * सकल परम गति के अधिकारी

संसार में धर्म के चारों चरण पूर्णरूप से विद्यमान हैं, पाप तो स्वप्न में नहीं हैं। सब नर-नारी श्रीरामजी की भक्ति मन से करते हैं और सब ही मुक्ति के अधिकारी हैं।

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा * सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना * नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना

न तो अकाल-मृत्यु ही होती है और न कोई पीड़ा ही होती है। सब लोग सुन्दर और अरोग्य शरीर वाले हैं न कोई दरिद्री है, न कोई दीन-दुखी है। न कोई अज्ञानी है और न कोई शुभ लक्षणों से हीन ही है।

सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी * नर अरु नारि चतुर सब गुनी
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी * सब कृतग्य नहिं कपट सयानी

सभी पाखण्ड रहित, धर्म में रत व पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री-सभी चतुर और सुकर्मी हैं। सभी गुणी, पण्डित, ज्ञानी तथा कृतज्ञ हैं, कपट और मूर्खता किसी में भी नहीं है।

दोहा—रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥२१॥

हे गरुड़जी ! सुनो, संसार में राम-राज्य में काल, कर्म, स्वभाव तथा गुणों से उत्पन्न दुःख कभी किसी को नहीं होता।

भूमि सप्त सागर मेखला * एक भूप रघुपति कोसला
भुवन अनेक रोम प्रति जासू * यह प्रभुता कछु बहुत न तासू

सात समुद्रों की मेखला वाली पृथ्वी पर अयोध्यापति महाराज श्रीरामचन्द्रजी एक ही राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेक लोक हैं, उनकी प्रभुता कुछ नहीं है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी * यह बरनत दीनता घनेरी
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी * फिरि एहिं चरित तिन्हहूँ रति मानी

बल्कि प्रभु की उस महिमा को जानकर इनके वर्णन में बड़ी दीनता है। हे गरुड़जी! जिन्होंने यह महिमा जानी है, वे भी चरित्र में बड़ी प्रीति मानते हैं।

सोइ जाने कर फल यह लीला * कहहिं महा मुनिवर दमसीला
राम राज कर सुख सम्पदा * बरनि न सकहिं फनीस सारदा

अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाले महामुनि कहते हैं कि इस रामचरित-मानस में प्रीति होना ही उसके जानने का फल है। राम-राज्य के सुख और सम्पत्ति को शेषजी तथा सरस्वती भी नहीं कह सकते।

सब उदार सब पर उपकारी * बिप्र चरन सेवक नरनारी
एक नारि ब्रत रत सब झारी * ते मन बच क्रम पति हितकारी

सब उदार और परोपकारी हैं, सब नर-नारी ब्राह्मणों के सेवक हैं। सब पुरुष एक नारी-व्रती हैं। स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से अपने पतियों का हित करने वाली हैं।

दोहा—दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस, रामचन्द्र कें राज ॥२२॥

श्रीरामजी के राज्य में दण्ड केवल सन्यासियों के हाथ में है और भेद नृत्य-समाज में रह गया है। 'जी' शब्द तो केवल मनको जीतने के लिए है, ऐसा राम-राज्य में सुनाई देता है।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन * रहहिं एक सँग गज पञ्चानन
खग मृग सहज बयरु बिसराई * सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई

वन में वृक्ष सदा फूलते-फलते हैं और हाथी तथा सिंह एक साथ रहते हैं। पशु-पक्षी स्वाभाविक बैर भूल गये और सभी ने आपस में प्रीति बढ़ाली है।

कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा * अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा * गुञ्जत अलि लै चलि मकरन्दा

अनेक भाँति के पशु-पक्षियों के झुण्ड शब्द करते हैं और वन में निर्भय घूमते हुए बिहार करते हैं। शीतल, सुगन्धित पवन चला करती हैं, भौंरे पुष्पों का रस लेकर गुँजारते हैं।

लता बिटप माँगे मधु चवहीं * मन भावतो धेनु पय स्रवहीं
कृषि सम्पन्न सदा रह धरनी * त्रेताँ भइ सतयुग कै करनी

लता और वृक्ष माँगने से ही मधु टपका देते हैं, गायें मन-चाहा दूध देती हैं। पृथ्वी सदैव खेती से हरी-भरी रहती हैं। उस समय सतयुग की सब बातें त्रेता में हो गईं।

प्रगटीगिरिन्हिबिबिधिमनिखानी* जगदातमा भूप जग जानी
सरिता सकल बहहिं बर बारी * सीतल अमल स्वाद सुखकारी

जगत के आत्मा-भगवान को संसार का राजा समझकर पर्वतों में अनेक प्रकार की मणियों की खान प्रगट हो गईं। सब नदियों में शीतल निर्मल, मीठा, स्वादिष्ट और सुख-प्रद जल बहने लगा।

सागर निज मरजादाँ रहहीं * डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं
सरसिज संकुल सकल तड़ागा * अति प्रसन्न दस दिसि बिभागा

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं, वे अपने किनारों पर रत्न डाल देते हैं, उन्हें मनुष्य ले लेते हैं। सब तालाब कमलों से भरे हैं, दसों दिशाओं के विभाग बहुत ही प्रसन्न हैं।

दोहा—बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जितनेहि काज।
माँगें बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज ॥२३॥

श्रीरामजी के राज्य में चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से पृथ्वी को परिपूर्ण रखता है। सूर्य उतना ही तपता है, जितने से काम बनता है और मेघ माँगने पर जल बरषा देते हैं।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे * दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे
श्रुति पथ पालक धर्म धुरन्धर * गुनातीत अरु भोग पुरन्दर

प्रभु श्रीरामजी ने करोड़ों अश्वमेध-यज्ञ किये व ब्राह्मणों को असंख्य दान दिय। श्रीरामजी वेद की मर्यादा के पालक, धर्मधुरन्धर, गुणों से परे और भोगों में इन्द्र के समान थे।

पति अनुकुल सदा रह सीता * सोभा खानि सुसील बिनीता
जानति कृपासिन्धु प्रभुताई * सेवति चरनकमल मन लाई

शोभा की खान, सुशील, विनम्र सीताजी सदा पति के अनुकूल हैं। कृपासिंधु श्रीरामजी की प्रभुता को जानती हुई सीताजी मन लगाकर उनके चरणारविन्दों की सेवा करती हैं।

जद्यपि गृहँ बहु सेवक सेवकिनी * बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी
निज कर ग्रह परिचरचा करई * रामचन्द्र आयसु अनुसरई

यद्यपि महलों में बहुत से दास और दासियाँ हैं तथा वे सेवा करने में चतुर हैं। तो भी सीताजी अपने हाथों से घर की टहल करती हैं और श्रीरामजी की आज्ञानुसार चलती हैं।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुखमानहिं * सोइ कर श्रीसेवा बिधि जानहिं
कोसल्यादि सासु गृह माहीं * सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं
उमा रमा ब्रह्मादि बन्दिता * जगदम्बा सन्तत मनिन्दिता

कृपासिंधु श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकार से सुख मानें-सीताजी वही करती हैं, क्योंकि वे सेवा की विधि को जानती हैं। वे घर में कौशल्यादि सासुओं की सेवा करती हैं, मान और मन उनमें नहीं है। हे पार्वती! जगदम्बा सीताजी-ब्रह्मा आदि देवताओं से वन्दित और सदा आनन्दित हैं।

दोहा—जासु कृपा कटाक्ष सुर, चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिन्दु रति, करत सुभावहि खोइ ॥२४॥

जिनके कृपा-कटाक्ष को देवता चाहते हैं, परन्तु जो उनकी ओर देखता नहीं। वही श्रीसीताजी अपने स्वभाव को छोड़कर श्रीरामजी के चरणों में प्रेम करती हैं।

सेवहिं सानुकूल सब भाई * रामचरन रति अति अधिकाई
प्रभुमुख कमल बिलोकत रहहीं * कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं

सब भाई अनुकूल रहकर सेवा करते हैं। उनका श्रीरामजी के चरणों में बहुत प्रेम है। वे प्रभु के मुख-कमल की ओर निहारते हैं कि कृपालु कभी हमको कुछ आज्ञा दें।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती * नाना भाँति सिखावहिं नीती
हरषित रहहिं नगर के लोगा * करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा

श्रीरामजी भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और अनेक प्रकार से नीति सिखाते हैं। नगर के लोग प्रसन्न होकर रहते हैं और देव-दुर्लभ सुख भोगते हैं।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं * श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं
दुइ सुत सुन्दर सीताँ जाए * लव कुश वेद पुरानन्ह गाए

वे दिन-रात विधाता को मनाते रहते हैं और श्रीरामजी के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीताजी के दो सुन्दर पुत्र 'लव' और 'कुश' उत्पन्न हुए, जिनकी कीर्ति वेद-पुराणों ने गाई है।

दोउ विजयी विनयी गुनमन्दिर * हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अतिसुन्दर
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे * भए रूप गुन शील घनेरे

वे दोनों ही विजयी, विनम्र व गुणों के स्थान हैं और बहुत सुन्दर है, मानो श्रीहरि के ही पुत्र हों। दो-दो पुत्र सब भाइयों के भी हुए, वे सब रूपवान और बड़े शीलवान हुए।

दोहा—ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोई सच्चिदानन्द घन, कर नर चरित उदार ॥२५॥

जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे हैं, और मन, माया व गुणों से भी परे हैं, वे ही सच्चिदानन्द उदार प्रभु मनुष्य लीला कर रहे हैं।

प्रातकाल सरजू करि मज्जन * बैठहिं सभाँ सँग द्विज सज्जन
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं * सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं

श्रीरामजी प्रातःकाल सरयू में स्नान करके सभा में ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ बैठते हैं। वशिष्ठजी-वेद पुराण की कथा कहते हैं और वे सुनते हैं, यद्यपि वे सब कुछ जानते हैं।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं * देखि सकल जननी सुख भरहीं
भरत शत्रुहन दोनउ भाई * सहित पवनसुत उपवन जाई

वे भाइयों के साथ भोजन करते हैं, तब उन्हें देखकर सब मातायें सुख में भर जाती हैं। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई हनुमानजी के साथ बगीचे में जाकर—

बूझहिं बैठि राम गुनगाहा * कह हनुमान सुमति अबगाहा
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहीं * बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहीं

यहाँ बैठकर श्रीरामजी के गुणों की कथा पूछते हैं और हनुमानजी अपनी सुन्दर बुद्धि को उसमें गोता लगाकर कहते हैं। वे उन निर्मल गुणों को सुनते हुए बहुत सुख पाते और बारम्बार विनती करके कहलवाते हैं।

सबके गृह गृह होहिं पुराना * राम चरित पावन बिधि नाना
नर अरु नारि राम गुन गावहिं * करहिंदिवस निसि जातनजानहिं

सबके घरों में पुराणों और पवित्र रामचरित्र की कथायें अनेक भाँति से होती हैं। स्त्री पुरुष श्रीरामजी का गुण-गान करते हैं, जिससे दिन रात जाते हुए मालूम नहीं होते।

दोहा—अवधपुरी बासिन्ह कर, सुख सम्पदा समाज।
सहस्र सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज ॥२६॥

जहाँ श्रीरामचन्द्रजी स्वयं राजा हैं, उस अयोध्यापुरी में निवास करने वालों के सुख सम्पत्ति के समुदाय को हजारों शेषजी वर्णन नहीं कर सकते।

नारदादि सनकादि मुनीसा * दरसन लागि कोसलाधीसा
दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं * देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं

नारद और सनकादिक मुनीश्वर कोशलाधीश श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन के लिए प्रतिदिन अयोध्यापुरी में आते हैं और नगर को देखकर वैराग्य भुला देते हैं।

जात रूप मनि रचित अटारी * नाना रङ्ग रुचिर गज ढारी
पर चहुँ पास कोटि अति सुन्दर * रचे कँगूरा रङ्ग रङ्ग बर

स्वर्ण और मणियों की बनी हुई अटारियाँ हैं, उनमें अनेक रंगों को डालकर सुन्दर फर्श बिछे हैं। पुरी के चारों ओर सुन्दर रङ्ग-बिरंगे कँगूरे हैं।

नव ग्रह निकर अनीक बनाई * जनु घेरी अमरावति आई
महि बहु रङ्ग रचितगज काँचा * जो बिलोकि मुनिवर मन नाचा

मानो नव-ग्रहों ने सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी पर अनेक भाँति के रङ्ग-बिरंगे काँच (रत्नों) के फर्श बिछे हुए हैं, जिन्हें देखकर श्रेष्ठ मुनियों के मन भी नाच उठते हैं।

धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत * कलसमनहुँ रविससिदुतिनिन्दत
बहु मनिरचित झरोखा भ्राजहिं * गृह गृह प्रति मनिदीप बिराजहिं

स्वच्छ महल ऊपर आकाश को चूम रहे हैं, उनके कलश मानो चन्द्रमा और सूर्य की कान्ति की निन्दा करते हैं। बहुत-सी मणियों से जड़ी हुई खिड़कियाँ शोभित हैं और घर-घर में मणियों के दीपक शोभायमान हैं।

छन्द—मनिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रचीं।
मनि खम्भ भीति बिरञ्चि बिरची कनक मनि मरकत खचीं॥
सुन्दर मनोहर मन्दिरायत अजिर रुचिर फटकि रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

महलोंमें मणियों के दीपक सुशोभित होरहे हैं, मूंगोंकी बनी हुई देहलियाँ चमक रहीं हैं और

मणियों से जड़े हुए खम्भे हैं। मर्कत-मणियों से जड़ी हुई सोने की दीवालें-मानो ब्रह्माजी ने बनाई हैं। मन्दिर सुन्दर, लम्बे-चौड़े व मनोहर हैं। उनके आँगन स्फटिक मणियों के बने हैं और द्वार-द्वार पर सोने के किवाड़ हैं, जिनमें बहुत से हीरे जड़े हैं।

दोहा—चारु चित्रशाला गृह, गृह प्रति लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरखि मुनि, ते मन लेहिं चुराइ ॥२७॥

मनोहर चित्र शालायें घर-घर में हैं, जिनमें श्रीरामजी के चरित्र बड़ी सुन्दरता से अंकित हैं, जो देखते ही मन को हर लेते हैं।

सुमन बाटिका सबहिं लाईं * बिबिध भाँति कर जतन बनाईं
लता ललित बहु जाति सुहाईं * फूलहिं सदा बसन्त की नाईं

सभी ने फूलों की बगीचियां अनेक प्रकार से यत्न करके बनाई हैं, जिनमें बहुत भाँति की सुन्दर, सुहावनी बेलें सर्वदा बसन्त ऋतु की भाँति फूलती हैं।

गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर * मारुत त्रिविध सदा बहु सुन्दर
नाना खग बालकन्हि जिआए * बोलत मधुर उड़ात सुहाए

जिन पर भौंरे मधुर गुञ्जार करते हैं, तीनों प्रकार की सुन्दर वायु सदैव बहती है। अनेक प्रकार के पक्षी जो बालकों ने पाले हैं, वे मीठी बोली बोलते और उड़ते हुए सुन्दर लगते हैं।

मोर हंस सारस पारावत * भवननि पर सोभा अति पावत
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं * बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं

मोर, हंस, सारस और कबूतर महलों पर बैठे हुए शोभा पाते हैं। जहाँ-तहाँ अपनी परछाहीं देखकर बहुत-सी बोली बोलते और नाचते हैं।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक * करहु राम रघुपति जन पालक
राज दुआर सकल बिधि चारू * बीथीं चौहट रुचिर बजारू

बालक-तोता और मैना को पढ़ाते हैं कि कहो-राम ! रघुनाथ, भक्त-जन पालक ! राज-द्वार सभी प्रकार से सुन्दर हैं। गलियां, चौराहे और बाजार सब सुन्दर हैं।

छन्द—बाजार रुचिर न बनई बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की सम्पदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ ते॥

बाजार की सुन्दरता कही नहीं जाती, यहाँ बिना मोल किये वस्तुयें मिलती हैं, जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की सम्पत्ति कैसे कही जा सकती है ? अनेक बजाज, सराफ आदि बणिक ऐसे बैठे हैं, मानो कुबेर ही हों। स्त्री, पुरुष, बालक, बूढ़े-सदाचारी, सुखी और सुन्दर हैं।

दोहा—उत्तर दिसि सरजू बह, निर्मल जल गम्भीर।

बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर ॥ २८ ॥

पुरी के उत्तर में निर्मल जल वाली गहरी नदी 'सरयू' बह रही है। मनोहर घाट बने हुए हैं, किनारे पर तनिक भी कीचड़ नहीं है।

दूर फराक रुचिर सो घाटा * जहँ जल पिअहिं बाजिगज ठाटा
पनिघट परम मनोहर नाना * तहँ न पुरुष करहिं अस्नाना

कुछ दूर पर सुन्दर घाट हैं, जहाँ घोड़े और हाथियों के झुण्ड पानी पीते हैं। जल भरने के लिये बहुत ही मनोहर घाट बने हैं, वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते।

राजघाट सब बिधि सुन्दर बर * मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर
तीर तीर देवन्ह के मन्दिर * चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुन्दर

राज-घाट सब भाँति से सुन्दर व श्रेष्ठ है, जहाँ चारों वर्णों के मनुष्य स्नान करते हैं। सब घाटों के तट पर देवताओं के मन्दिर हैं, जिनके चारों ओर सुन्दर बगीचे हैं।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी * बसहिं ज्ञान रत मुनि सन्यासी
तीर तीर तुलसिका सुहाई * बृन्द बृन्द बहु मुनिन्ह लगाई

कहीं २ नदी के किनारे विरक्त, ज्ञानी, मुनि व सन्यासी निवास करते हैं। जहाँ-तहाँ उन सब मुनियों के लगाये हुए बहुत भांति के सुहावने तुलसी के वृक्ष शोभायमान हैं।

पुर शोभा कछु बरनि न जाई * बाहेर नगर परम रुचिराई
देखत पुरी अखिल अघ भागा * वन उपवन बापिका तड़ागा

पुरी की शोभा कुछ वर्णन नहीं की जाती, नगर के बाहर भी शोभा है। पुरी के दर्शन करते ही सब पाप भाग जाते हैं। वहाँ वन, उपवन, बावलियाँ और तालाब सुशोभित हैं।

छन्द—बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रङ्ग कञ्ज अनेक खग कूजहिं मधुप गुञ्जारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रब जनु पथिक हुँकारहीं॥

बहुत सुन्दर और विशाल बावली, तालाब और कुएँ शोभा दे रहे हैं। उनकी सुन्दर सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनि भी मोहित हो जाते हैं। तालाबों में अनेक रङ्गों के कोमल फूल खिल रहे हैं, भांति-भाँति के पक्षी गूँज रहे हैं और भौंरे गुंजार रहे हैं। सुन्दर बगीचों में कोयल आदि पक्षी मानो पथिकों को बुला रहे हैं।

दोहा—रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख सम्पदा, रहीं अवध सब छाइ॥ २९॥

जहाँ लक्ष्मीपति भगवान राजा हों, क्या उस नगर का वर्णन भी किया जा सकता है ?

अणमादिक सिद्धियां और सुख-सम्पत्ति पुरी में जा रही हैं।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं * बैठे परस्पर इहइ सिखावहिं
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि * सोभा सील रूप गुन धामहि

जहाँ-तहाँ मनुष्य बैठे हुए श्रीरघुनाथजी के गुण गा रहे हैं और परस्पर यही सिखला रहे हैं कि शरणागत-रक्षक व शोभा, शील,रूप और गुणों के धाम श्रीरामजी का भजन करो।

जलज विलोचन श्यामल गातहि * पलक नयन इव सेवक त्रातहि
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि * सन्त कंज बनरवि रनधीरहि

कमल-नेत्र और श्याम शरीर वाले को भजो। 'नेत्रों को पलकों के समान' अपने भक्त की रक्षा करने वाले प्रभु को भजो। सुन्दर धनुष-बाण और तर्कस धारण करने वाले, सन्त-रूपी कमल-वन के सूर्य रणधीर श्रीरामजी को भजो।

काल कराल व्याल खगराजहि * नमत राम अकाम ममताजहि
लोभ मोह मृग जूथ किरातहि * मनसिजकरि हरिजन सुखदातहि

कालरूपी भयङ्कर सर्प के लिए गरुड़ के समान श्रीरामजी को सब कामना और ममता को त्यागकर नमस्कार करो। लोभ और मोहरूपी मृगों के समूह के लिए किरातरूप एवं कामदेव रूपी हाथी के लिए सिंह के समान भक्त-सुखदाता श्रीरामजी को भजो।

संसय सोक निबड़ तम भानुहि * दनुज गहन घन दहन कृसानुहि
जनकसुता समेत रघुबीरहि * कस न भजहु भंजन भवभीरहि

निस्सन्देह दुःखरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान और राक्षसी घने बन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान श्रीरघुनाथजी को भजो। जानकीजी सहित श्रीरघुनाथजी को जो भव-भय को दूर करने वाले हैं, भजन क्यों नहीं करते?

बहु बासना मसक हिम रासहि * सदा एक रस अज अबिनासहि
मुनि रंजन भंजन महि भारहि * तुलसीदास के प्रभुहि उदारहि

अनेक प्रकार की चाहना-रूपी मच्छरों के लिए तुषार की राशि के समान और सदा एक रस, अजन्मा, अविनाशी- श्रीरामजी को भजो! मुनिजनों को आनन्द देने वाले और भूमि का भार उतारने वाले-तुलसीदास के उदार प्रभु श्रीरामजी को भजो।

दोहा–एहि बिधि नगर नारिनर, करहिं राम गुनगान।
सानुकूल सब पर रहहिं, सन्तत कृपानिधान ॥३०॥

इस प्रकार अयोध्यापुरी के स्त्री-पुरुष श्रीरामगुन-गान करते रहते हैं और कृपानिधान श्रीरामजी सब प्रकार दया-भाव रखते हैं।

जब ते राम प्रताप खगेसा * उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा
पुनि प्रकाश रहेउ तिहुँ लोका * बहुतेहिं सुख बहुतन्ह मन सोका

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं–) हे गरुड़! जब से श्रीरामजी के प्रतापरूपी अति प्रबल

सूर्य का उदय हुआ है, तबसे तीनों लोकों में प्रकाश छारहा है। परन्तु, उससे बहुतों को सुख और बहुतों को शोक हुआ।

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी * प्रथम अविद्या निसा नसानी
अघ उलूक जहाँ तहाँ लुकाने * काम क्रोध कैरव सकुचाने

जिन्हें दुःख हुआ उनका मैं वर्णन करता हूँ। पहले तो अविद्यारूपी रात्रि नष्ट हो गई, फिर पाप रूपी उल्लू जहाँ-तहां छिप गये और काम-क्रोधरूपी कुमुद मुरझा गये।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ * ए चकोर सुख लहहिं न काऊ
मत्सर मान मोह मद चोरा * इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा

अनेक कर्म, गुण, काल और स्वभाव ये चकोर हैं, जो कभी सुख नहीं पाते। डाह, अभिमान, मोह और मदरूपी जो चोर हैं—उनका हुनर किसी ओर नहीं चलता।

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना * ए पंकज बिकसे बिधि नाना
सुख सन्तोष बिराग बिवेका * बिगत सोक ए कोक अनेका

धर्मरूपी तालाब में ज्ञान-विज्ञान रूपी अनेक तरह के कमल खिल उठे तथा सुख-संतोष और ज्ञान वैराग्य रूपी चकवों का शोक दूर हो गया।

दोहा—यह प्रताप रबि जाके, उर जब करइ प्रकास।
पिछले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास॥३१॥

यह राम-प्रताप सूर्य जिनके हृदय में जब प्रकाश करता है तो पिछले वर्णित गुण बढ़ते हैं और पहले वर्णित दोष नाश को प्राप्त होते हैं।

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा * संग परम प्रिय पवनकुमारा
सुन्दर उपवन देखन्ह गए * सब तरु कुसुमित पल्लव नए

एक बार श्रीरामजी भाइयों सहित परम प्रिय हनुमानजी को साथ लेकर सुन्दर बगीचे देखने गये। वहां सब वृक्ष फल-फूल और नये पत्तों से युक्त थे।

जानि समय सनकादिक आए * तेज पुंज गुन सील सुहाए
ब्रह्मानन्द सदा लयलीना * देखत बालक बहु कालीना

शुभ समय जानकर वहाँ सनकादिक मुनि आये, जो बड़े तेजस्वी, गुणवान्, शीलवान् तथा सदा ब्रह्मानन्द में लवलीन रहते हैं। वे देखने में तो बालक हैं, परन्तु हैं—अति प्राचीन।

रूप धरें जनु चारिउ वेदा * समदरसी मुनि बिगत बिभेदा
आसा बसन ब्यसन यह तिनहीं * रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं

मानो चारों वेद ही शरीर धारण किये हैं। वे समदर्शी और भेद रहित हैं, दिशायें ही उनके वस्त्र हैं उनको एक ही व्यसन है कि जहाँ श्रीराम-चरित्र की कथा होती है वहां ही जाकर वे उसे सुनते हैं।

तहाँ रहे सनकादि भवानी * जहँ घट सम्भव मुनिवर ग्यानी

रामकथा मुनिवर बहु बरनी * ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी

हे भवानी ! जहाँ ज्ञानी मुनिवर अगस्त्यजी थे, सनकादिक मुनि वहाँ गये । श्रेष्ठ मुनि ने वहाँ बहुत-सी श्रीराम-कथायें वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करने में वैसे ही समर्थ है, जैसे अग्नि को उत्पन्न करने के लिए अरणी ।

दोहा—देखि राम मुनि आवत, हरषि दण्डवत कीन्ह ।
स्वागत पूँछि पीतपट, प्रभु बैठन कहँह दीन्ह ।। ३२ ।।

सनकादिक मुनियों को आते देखकर श्रीरामजी ने प्रसन्न होकर दण्डवत की और कुशल पूछकर प्रभु ने बैठने के लिए अपना पीताम्बर बिछा दिया ।

कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई * सहित पवनसुत सुख अधिकाई
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी * भए मगन मन सके न रोकी

फिर तीनों भाइयों ने हनुमानजी सहित दण्डवत की तो सब बहुत प्रसन्न हुए । श्रीरघुनाथजी की अपार शोभा को देखकर मुनि उसी मे मग्न होगये और वे मन को रोक न सके ।

श्यामल गात सरोरुह लोचन * सुन्दर मंदिर भव फंद बिमोचन
इकटक रहे निमेष न लावहिं * प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं

वे श्याम शरीर, कमल-नेत्र, सुन्दरताके स्थान व संसार के बन्धनके छुड़ाने वाले रूप को एकटक होकर देख रहे हैं पलक नहीं लगाते और प्रभु दोनों हाथ जोड़े मस्तक नवा रहे हैं ।

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा * स्रवत नयन जल पुलक सरीरा
करि गहि प्रभु मुनिबर बैठारे * परम मनोहर बचन उचारे

श्रीरघुनाथजी ने उसकी जब यह दशा देखी कि नेत्रों से जल बह रहा है और शरीर पुलकित है । तब प्रभु ने हाथ पकड़ कर मुनियों को बैठाया और अत्यन्त मनोहर वचन बोले—

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा * तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा
बड़े भाग्य पायइ सतसंगा * बिनहि प्रयास होहिं भव भंगा

हे मुनिश्वरो ! सुनिये आज मैं धन्य हूँ । आपके दर्शनों से पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर सत्संग तो बड़े ही भाग्य से मिलता है । जिससे बिना परिश्रम ही संसार (जन्म-मरण) के चक्र नष्ट हो जाते हैं ।

दोहा—सन्त संग अपबर्ग कर, कामी भव कर पन्थ ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुरान सदग्रन्थ ।। ३३ ।।

'सत्सङ्ग' मोक्ष का, और 'कामी का संग' आवागमन का मार्ग है—ऐसा सन्त, कवि, पंडित, वेद-पुराण और सद्ग्रन्थ कहते हैं ।

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी * पुलकित तन अस्तुति अनुसारी
जय भगवन्त अनन्त अनामय * अनघ अनेक एक करुनामय

प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि प्रसन्न होकर पुलकित शरीर से स्तुति करने लगे

हे भगवान् ! आप अनन्त और विकार रहित हैं। आपकी जय हो ! आप निर्दोष, अनेक रूप एक (अद्वितीय) तथा दया से पूर्ण हैं।

जय निर्गुन जय जय गुनसागर * सुख मन्दिर सुन्दर अति नागर
जय इन्दिरा रमन जय भूधर * अनुपम अज अनादि शोभाकर

हे निर्गुण ! आपकी जय हो। हे गुणों के समुद्र, सुख के मन्दिर, सुन्दर एवं परम चतुर ! आपकी जय हो। हे लक्ष्मीपति ! आपकी जय हो। हे भूमि को धारण करने वाले, अनुपम, अजन्मा, अनादि और शोभा की खान, आपकी जय हो।

ग्यान निधान अमान मानप्रद * पावन सुजसु पुरान बेद बद
तग्य कृतज्ञ अग्यता भञ्जन * नाम अनेक अनाम निरञ्जन

आप ज्ञान-निधान, मान रहित और प्रतिष्ठा देने वाले हैं। आपके पवित्र यशको पुराण और वेद वर्णन करते हैं। आप तत्व के जानने वाले, कृतग्य और अज्ञान को दूर करने वाले हैं। आपके नाम अनेक हैं, तो भी आप नाम और माया से रहित हैं।

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय * बसहि सदा हमकहुँ परिपालय
द्वन्द विपति भवफन्द विभंजय * हृदि बसि राम काममद गंजय

आप सर्वरूप, सब में व्याप्त और सबके हृदय में बास करते हैं, अतः आप सदा हमारा पालन कीजिए आप द्वन्द, विपत्ति और संसार के बन्धन को काटिए। हे श्रीरामजी ! आप हमारे हृदय में बसकर काम और मद को दूर कीजिए।

दोहा—परमानन्द कृपायतन, मनि परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनुपायनी, देहु हमहि श्रीराम ॥३४॥

हे परमानन्द ! हे कृपा के स्थान ! हे मन की कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीरामजी ! आप हमको अपनी निर्मल प्रेम-भक्ति दीजिए।

देहु भगति रघुपति अति पावनि * त्रिविध ताप भव दोषनसावनि
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु * होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु

हे श्रीरघुनाथजी ! आप हमको अपनी अति पवित्र, तीनों प्रकार के पापों और संसार के क्लेशों का नाश करने वाली भक्ति दीजिए। हे शरणागतकी कामना को पूर्ण करने को कामधेनु और कल्पवृक्ष रूप प्रभु ! आप प्रसन्न होकर यही वरदान दीजिए।

भव बारिधि कुम्भज रघुनायक * सेवत सुलभ सकल सुखदायक
मन सम्भव दारुन दुख दारय * दीनबंधु समता विस्तारय

हे श्रीरघुनाथजी ! आप संसाररूपी समुद्र को सुखाने के लिए अगस्त्य ऋषि के समान हैं। आप सेवा से सुलभ और सुखदायक हैं, अतः मानस जन्म के दुःखों को दूर कीजिए। हे दीनबन्धु ! हमें समदृष्टि दीजिए।

आस त्रास इरिषादि निवारक * बिनय बिबेक बिरति विस्तारक

भूप मौलिमनि मण्डन धरनी * देहि भगति संसृति सरि तरनी

आप आशा, भय और ईर्षा आदि से छुड़ाने वाले तथा विनय, विचार और वैराग्य फैलाने वाले हैं। हे राज-शिरोमणि! हे पृथ्वी के भूषण! संसार रूपी नदी के लिए नौका-रूपी अपनी भक्ति दीजिए।

मुनि मन मानस हंस निरन्तर * चरन कमल वन्दित अज शंकर
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक * काल करम सुभाउ गुन भच्छक
तारन तरन हरन सब दूषन * तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन

हे मुनियों के मनरूपी मानसरोवर के हंस! ब्रह्मा और महादेवजी आपके चरणकमलों की वन्दना करते हैं। आप रघुवंश की ध्वजा हैं, वेद की मर्यादा के रक्षक तथा काल, कर्म, स्वभाव और गुण के रक्षक हैं। आप तरन-तारन और सब दोषों के हरने वाले हैं। हे तीनों लोकों के भूषण! आप ही तुलसीदास के प्रभु है।

दोहा—बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाइ ॥३५॥

प्रेम सहित सिर नवाकर बारम्बार स्तुति करके अत्यन्त मन चाहा वरदान पाकर सनकादिक मुनि ब्रह्मलोक को चले गये।

सनकादिक बिधि लोक सिधाए * भ्रातन्ह रामचरन सिरु नाए
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं * चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं

सनकादिक मुनि ब्रह्मलोक को चले गये, तब तीनों भाइयों ने श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाये। वे प्रभुसे पूछते हुए सकुचाते हैं, इस कारण सब हनुमानजी की ओर देख रहे हैं।

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी * जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी
अन्तरयामी प्रभु सब जाना * बूझत कहेहु काह हनुमाना

वे प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते हैं, जिसके सुनने से सब भ्रम दूर हो जाते हैं। अन्तर्यामी प्रभु ने सब बात जान ली और बोले—कहो हनुमानजी! क्या बात है?

जोरि पानि तब कह हनुमन्ता * सुनहु दीनदयाल भगवन्ता
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं * प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं

तब हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा-हे दीनदयाल भगवन्! सुनिये, हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, प्रश्न करते हुए सकुचाते हैं।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ * भरतहि मोहि कछु अन्तरकाऊ
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना * सुनहु नाथ प्रनतारित हरना

तब प्रभु बोले-हे हनुमान! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो कि भरत के और मेरे बीच में कभी कुछ अन्तर नहीं है। प्रभु के ऐसे वचन सुनकर भरतजी ने चरण पकड़ लिए और कहा--हे शरणागतों को सुख देने वाले नाथ सुनिये—

दोहा—नाथ न मोहि सन्देह कछु, सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि, कृपानन्द सन्दोह ॥३६॥

हे स्वामी ! मुझे स्वप्न में भी कुछ सन्देह,दुःख और मोह नहीं है । हे कृपा और आनन्द के समूह प्रभो ! यह केवल आपकी कृपा है ।

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई ※ मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई
सन्तन्ह कै महिमा रघुराई ※ बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई

हे दयानिधान ! मैं सेवक हूँ और आप सेवक-सुखदाता हैं, इस कारण मैं एक ढिठाई करता हूँ । हे रघुनाथजी ! सन्तों की महिमा बहुत वेद और पुराणों ने गाई है ।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्ह बड़ाई ※ तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन ※ कृपासिन्धु गुन ज्ञान बिचच्छन

और आपने भी अपने श्रीमुखसे उनकी बड़ाई की है तथा उन पर आपकी प्रीति भी बहुत है । हे प्रभो ! उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ । हे दयासिंधु ! आप गुण व ज्ञान में निपुण हैं ।

सन्त असन्त भेद बिलगाई ※ प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई
सन्तन्ह के लच्छन सुनु भ्राता ※ अगनित श्रुति पुरान बिख्याता

हे शरणागत पालक ! सन्त और असन्त दोनों के भेद अलग २ समझाकर मुझसे कहिये श्रीरामजी बोले हे भाई ! सुनो संतों के लक्षण असंख्य हैं, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं ।

सन्त असन्तन्हि कै असि करनी ※ जिमि कुठार चन्दन आचरनी
काटत परसु मलय सुनु भाई ※ निज गुन देइ सुगंध बसाई

सन्त और असन्तों की करनी ऐसी है, जैसे चन्दन और कुल्हाड़ी की होती है । हे भाई ! सुनो कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है तो चन्दन उसे अपना गुण देकर सुगन्धित कर देता है ।

दोहा—ताते सुर सीसहिं चढ़त, जग बल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दण्ड ॥३७॥

इसी से चन्दन देवताओं के मस्तक पर चढ़ता है और जगत को प्यारा है तथा कुल्हाड़ी का मुख अग्नि में तपाकर घन से पीटा जाता है, उसे दण्ड मिलता है ।

बिषय अलम्पट सील गुनाकर ※ पर दुख दुख सुख सुख देखे पर
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी ※ लोभी मरष हरष भय त्यागी

सन्तजन विषयों से दूर और शील तथा गुणों की खान होते हैं । वे पराये दुख को देख दुःखी और पराये सुख को देख सुखी होते हैं । वे समतर रहते हैं, इसीसे उनका कोई शत्रु नहीं होता । वे घमंड रहित व विरक्त होते हैं और लालच, आनन्द तथा भयको त्याग देते हैं ।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया ※ मन बच क्रम मम भगत अमाया
सबहिं मानप्रद आपु अमानी ※ भरत प्रान सम मम ते प्रानी

जिनका चित्त कोमल होता है,व दीनों पर दया करते हैं व मन, वचन,कर्मसे भक्त होते हैं। वे सबको मान देते हैं और स्वयं मान रहित होते हैं । हे भरत ! वे मुझे प्राण के तुल्य प्रिय हैं।

बिगत काम मम नाम परायन * शाँति बिरति बिनीत मुदितायन
सीतलता सरलता मयत्री * द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री

जो कामनाओं से रहित होकर मेरा नाम जपते हैं, वे शान्ति, वैराग्य, नम्रता तथा प्रसन्नता के घर होते हैं । उनमें शीतलता, सरलता-मित्रता और ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम होता है जो धर्म को उत्पन्न करने वाला है ।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर * जानेहु तात सन्त सन्तत फुर
समदम नियम नीति नहिं डोलहिं * परुष वचन कबहुँ नहिं बोलहिं

हे भाई! ये सब लक्षण जिनके हृदय में बसते हैं,उनकोसदैव सच्चा संत जानो। जो सम,दम, नियम और नीति से चलायमान नहीं होते हैं और मुख से कड़वे वचन नहीं बोलते ।

दोहा–निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता ममपद कञ्ज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमंदिर सुख पुञ्ज ।। ३८ ।।

जिनको निन्दा और स्तुति दोनों समान हैं और चरणकमलों में जिनका प्रेम है, वे गुणों के मन्दिर और सुख के समूह सन्त मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं ।

सुनहु असन्तन्ह केर सुभाऊ * भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ
तिन्ह कर संग सदा सुखदाई * जिमि कपिलहि घालइहरहाई

अब असन्तों का स्वभाव सुनो,उनकी संगति कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिए । उनकी संगति सदा दुख देने वाली है,जैसे कपिला-गाय को हरिया-गाय संगति से नष्ट कर डालती है।

खलन्हहृदयँ अति ताप विसेषी * जरहिं सदा पर सम्पति देखी
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई * हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई

दुष्ट मनुष्यों के मन में बड़ी जलन होती है, वे सदैव पराई सम्पदा देखकर जला करते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरों की निंदा सुनते हैं, वहाँ ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो पड़ी सम्पत्ति पाई हो।

काम क्रोध मद लोभ परायन * निर्दय कपटी कुटिल मलायन
वयरु अकारन सब काहू सों * जो कर हित अनिहित ताहू सों

वे काम,क्रोध, मद व लोभ में लिप्त तथा निर्दयी, कपटी, खोटे और मन में मैले होते है। बिना कारण ही सबसे बैर करते हैं, जो भलाई करता है, वे उसके साथ भी बुराई करते हैं।

झूँठइ लेना झूँठइ देना * झूँठइ भोजन झूँठ चबैना
बोलहिं मधुर वचन जिमि मोरा * खाइ महा अहि हृदयँ कठोरा

उनका झूंठा ही लेना,झूंठा ही देना, खाना और झूंठा ही चबैना होता है। (ऊपर से तो) वे ऐसे मीठे वचन बोलते हैं, जैसे मोर मीठे स्वर से कुहकता है, परन्तु उनका हृदय ऐसा कठोर

होता है कि वह अत्यन्त विषैले सांप को भी खा जाता है।

दोहा—परद्रोही परनारि रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरें मनुजाद॥ ३९॥

जो दूसरों से द्रोह करते हैं तथा पराई स्त्री, पराये धन और पराई निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे नीच, पापी देह धारण किए हुए राक्षस ही हैं।

लोभय ओढ़न लोभय डासन * सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई * स्वाँस लेहिं जनु जूड़ी आई

लालच ही उनका ओढ़ना और बिछौना है, वे मैथुन और उदर-पूर्ति की चिन्ता में ही लगे रहते हैं, उनको यमपुरी का भय नहीं होता। यदि वे किसी की प्रशंसा सुन पाते हैं तो ऐसे श्वांस लेते हैं, मानो जूड़ी आ गई हो।

जब काहू कै देखहिं बिपती * सुखी भए मानहुँ जग नृपती
स्वारथ रत परिवार विरोधी * लम्पट काम लोभ अति क्रोधी

वे जब किसी पर विपत्ति देखते हैं तो सुखी होते हैं कि मानो जगत् के राजा हो गये हों। वे अपने स्वार्थ में लीन कुटुम्ब विरोधी, ठग, कामी, लोभी और क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं * आपु गए अरु घालहिं आनहिं
करहिं मोह बस द्रोह परावा * सन्त संग हरिकथा न भावा

माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हैं ही, दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोह के वश दूसरे से द्रोह करते हैं, सन्तजनों की संगति और भगवत् कथा उन्हें अच्छी नहीं लगती।

अवगुन सिन्धु मन्दमति कामी * वेद बिदूषक परधन स्वामी
विप्रद्रोह परद्रोह बिसेषा * दम्भ कपट जियँ धरें सुबेषा

वे अवगुणों के समुद्र, मंद-बुद्धि, कामी, वेदों के निन्दक और पराये धन के स्वामी बन जाते हैं। वे विशेष करके ब्राह्मणों में और देवताओं से द्वेष करने वाले, पाखण्ड और कपट हृदय में भरे हुए तथा ऊपर से अच्छा भेष बनाये रहते हैं।

दोहा—ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृन्द बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं॥ ४०॥

ऐसे नीच और खोटे मनुष्य सतयुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े से होंगे और कलियुग में झुण्ड के झुण्ड होंगे।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई * पर पीड़ा सम नहिं अधमाई
निर्नय सकल पुरान वेद कर * कहेउँ तात जानहिं कोबिदनर

हे भाई! दूसरों के उपकारके बराबर धर्म नहीं है, दूसरोंको कष्ट देनेके बराबर नीचता नहीं

है। हे तात ! सब पुराण तथा वेदों का यह निर्णय मैंने तुमसे कहा, संत जन इसको जानते हैं।

नर शरीर धरि जे पर पीरा * करहिं ते सहहिं महाभव भीरा
करहिं मोह बस नर अघ नाना * स्वारथ रत परलोक नसाना

मनुष्य देह धारण कर जो दूसरों को क्लेश देते हैं, वे जगत में बड़े कष्ट भोगते हैं। जो मनुष्य स्वार्थ में लीन और मोह के वश होकर अनेक पाप करते हैं, उनका परलोक नष्ट हो जाता है।

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता * सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता
अस बिचार जे परम सयाने * भजहिं मोहि संसृति दुख जाने

हे भाई ! उन दुष्टों के लिए मैं कालरूप हूं और उनके कर्मों के अनुसार भले-बुरे फलका देने वाला हूं। ऐसा समझकर जो परम चतुर हैं, वे संसार को दुखमय समझकर मेरा भजन करते हैं।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक * भजहिं मोहि सुरनर मुनिनायक
सन्त असन्तन्ह के गुन भाखे * ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे

शुभ और अशुभ फल देने वाले कर्मों को त्याग कर वे देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी 'मुझको' भजते हैं। यह सन्त-असन्तों के लक्षण मैंने कहे, इनको जिन्होंने समझ रक्खा है, वह संसार रूपी बन्धन में नहीं फँसते।

दोहा—सुनहु तात मायाकृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं, देखिअ सो अबिबेक॥ ४१॥

हे भाई ! सुनो, माया के बनाये हुए गुण और दोष बहुत हैं। गुण इसी में हैं कि दोनों को ही न देखा जाय, इन्हें देखना ही अज्ञान है।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई * हरषे प्रेम न हृदयँ समाई
करहिं बिनय अति बारहिं बारा * हनूमान हियँ हरष अपारा

प्रभुके श्रीमुखसे यह वचन सुनते ही भरत आदि सब भाई प्रसन्न होगये, उनके हृदय में प्रेम नहीं समाता, वे बार २ बहुत ही विनती करते हैं, तब हनुमानजी के हृदय में अति हर्ष हुआ।

पुनि रघुपति निज मन्दिर गए * एहि बिधि चरित करत नित नए
बार बार नारद मुनि आवहिं * चरित पुनीत राम के गावहिं

फिर वहां से श्रीरघुनाथजी अपने महल में गये। इस तरह से नित्य-नये चरित्र करते हैं। नारद मुनि बार-बार आते हैं और श्रीरामचन्द्रजी के पवित्र चरित्र गाते हैं।

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं * ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं * पुनि पुनि तात करहु गुनगानहिं

मुनि नित्य-नये चरित्र देख जाते हैं और सब कथा ब्रह्मलोक में जाकर कहते हैं। उसे सुनकर ब्रह्माजी बहुत सुख पाते हैं। हे तात ! बारम्बार राम-गुण-गान करो।

सनकादिक नारदहि सराहहिं * जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं
सुनि गुनिगान समाधि बिसारी * सादर सुनहिं परम अधिकारी

सनकादि मुनि यद्यपि ब्रह्मज्ञानी हैं, परन्तु वे भी नारदजी की सराहना करते हैं और गुण गान सुनकर समाधि को भुला देते हैं और उसे आदर से सुनते हैं, वे श्रेष्ठ अधिकारी हैं।

दोहा—जीवनमुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान ॥४२॥

जीवनमुक्त और ब्रह्मपरायण सनकादि जैसे मुनि भी ब्रह्म-ध्यान छोड़कर श्रीरामजी के चरित्र सुनते हैं। ऐसी श्रीहरि-कथा में जो प्रीति नहीं करते, उनके हृदय पत्थर के तुल्य हैं।

एक बार रघुनाथ बोलाए * गुरु द्विज पुरवासी सब आए
बैठे गुरु द्विज अरु मुनि सज्जन * बोले बचन भगत भय भञ्जन

एक बार श्रीरघुनाथजी ने गुरु, ब्राह्मण व नगरनिवासियों को बुलाया, वे सब सभा में आये। जब गुरु, ब्राह्मण, मुनि व सज्जन सब बैठ गये, तब भक्तों के भय को दूर करने वाले प्रभु बोले-

सुनहु सकल पुरजन मम बानी * कहउँ न कछु ममता अरु आनी
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई * सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई

हे सब नगर निवासियो! मेरी बात सुनो, मैं हृदय में कुछ ममता लाकर यह नहीं कहता, इसमें न अनीति है, न कुछ प्रभुता ही है। मेरी बात सुन लो, फिर तुम्हें जो अच्छा लगे, सो करना।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई * मम अनुसासन मानै जोई
जौं अनीति कछु भाषौं भाई * तौ मोहि बरजहु भय बिसराई

वही मेरा भक्त है और वही मेरा प्रिय है, जो मेरी आज्ञा माने। यदि मैं कुछ अनीति-पूर्ण बात कहूँ, तो—हे भाई! भय त्यागकर मुझे रोक देना।

बड़े भाग्य मानुष तन पावा * सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा * पाइ न जेहिं परलोक सँवारा

बड़े भाग्य से मनुष्य शरीर मिलता है, यह देवताओं को भी दुर्लभ है और सब ग्रन्थों ने भी ऐसा ही कहा है। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने अपना परलोक नहीं सुधारा।

दोहा—सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥४३॥

वह परलोक में दुःख पाता है और काल, कर्म व ईश्वर को झूठा दोष लगाकर सिर धुन-धुनकर पछताता है।

एहि तनु कर फल बिषय न भाई * स्वर्गउ स्वल्प अन्तहु दुखदाई
नर तनु पाय बिषयँ मन देहीं * पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं

हे भाई! इस शरीर का फल विषय-भोग नहीं है। स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है। और अन्त में दुःखदाई है। मनुष्य-शरीर पाकर जो विषयों में मन लगाते हैं। वे मूर्ख अमृत के बदले विष लेते हैं।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई * गुञ्जा ग्रहइ परसि मनि खोई
आकर चारि लच्छ चौरासी * जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी

उसे कोई भी भला नहीं कहता, जो पारस-मणि को त्यागकर बदले में घुँघची ले लेता है। अविनाशी जीव चार खानों और चौरासी लाख योनियों में घूमता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा * काल कर्म सुभाव गुन घेरा
कबहुँक करि करुना नर देही * देत ईस बिनु हेतु सनेही

और सदा माया-वश, काल स्वभाव व गुणों से घिरा हुआ घूमा करता है। कभी कृपा करके, बिना ही हेतु स्नेह करने वाला परमात्मा उसे मनुष्य-देह दे देता है।

नर तनु भव बारिध कहु बेरो * सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो
करनधार सद्गुर दृढ़ नावा * दुर्लभ साज सुलभ करि पावा

इस संसार सागर में मनुष्य शरीर जहाज के तुल्य है और मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस दृढ़ नाव का केवट है। इस प्रकार यह जीव दुर्लभ साधन सहज ही पा जाता है।

दोहा—जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मन्दमति, आत्माहन गति जाइ ॥ ४४ ॥

ऐसे साधन को पाकर भी जो मनुष्य इस भवसागर से पार नहीं जाता, वह मन्द-बुद्धि, कृतघ्न, आत्म हत्या करने वाले की गति को पाता है।

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू * सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ रहहू
सुलभ सुखद मारग यह भाई * भगति मोरि पुरान श्रुति गाई

यदि परलोक व इस लोक में सुख चाहते हो तो मेरे वचन सुनकर हृदय में दृढ़ता रक्खो, हे भाइयो! पुराण और वेदों में मेरी भक्ति को सहज और सुखदायक मार्ग कहा गया है।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका * साधन कठिन न मन कहुँ टेका
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ * भगतिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ

ज्ञान अगम है, उसकी प्राप्ति में अनेक विघ्न हैं। उनका साधन भी कठिन है, क्योंकि उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है। यदि बहुत कष्ट उठाकर कोई उसे पा भी लेता है, तो बिना भक्ति के वह भी मुझे प्रिय नहीं लगता।

भगति सुतन्त्र सकल सुखखानी * बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता * सत्संगति संसृति कर अन्ता

भक्ति स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है, परन्तु बिना सत्संग के प्राणी उसे पा नहीं सकते। और संतजन बहुत से पुण्यों के बिना नहीं मिलते। सत्संग ही आवागमन का अन्त करता है।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा * मन क्रम बचन बिप्रपद पूजा
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा * जो तजि कपट करइ द्विज सेवा

संसार में पुण्य एक ही है, दूसरा नहीं। वह यह है कि मन, कर्म और वचनों से ब्राह्मणों की पूजा करे। उन पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते है, जो कपट त्यागकर ब्राह्मणों के सेवक हैं।

दोहा—औरउ एक गुपत मत, सबहिं करउँ कर जोरि।
शङ्कर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि ॥ ४५ ॥

और भी एक गुप्त मत है, उसे हाथ जोड़कर आप सबको सुनाता हूँ कि शिवजी के भजन के बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा * जोग न मख जप तप उपवासा
सरल सुभाव न मन कुटिलाई * जथा लाभ सन्तोष सदाई

कहिये, भक्ति-मार्ग में कौन-सा परिश्रम है ? इसमें न योग है, न यज्ञ है, न जप है, न तप है और न व्रत है। सरल स्वभाव रक्खे, मन में कुटिलता न रक्खे और जो कुछ मिल जाय, उसी में सदा सन्तोष रक्खे।

मोर दास कहाइ नर आसा * करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई * एहि आचरन बस्य मैं भाई

जो मनुष्य मेरा भक्त होकर दूसरों की आशा करे, तो फिर उसका विश्वास ही क्या हुआ ? अधिक बात बढ़ाकर क्या कहूँ ? हे भाइयो ! मैं तो उस आचरण के वश में हूँ।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा * सुखमय ताहि सदा सब आसा
अनारम्भ अनिकेत अमानी * अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी

किसी का किसी से बैर, झगड़ा, आशा डर नहीं है, उसके लिए सदा सब दिशायें सुखदाई हैं। जो कोई (फल की इच्छा से) काम नहीं करता, जिसके घर, मान व क्रोध नहीं है, जो चतुर और ज्ञानवान् हैं।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा * तृन सम बिषय स्वर्ग अपवर्गा
भगति पच्छहठ नहिं सठताई * दुष्ट तर्क सब दूरि भगाई

जो सत्संग से सदा प्रीति रखता है जो सांसारिक सुख, स्वर्ग और मोक्ष को भी तिनके के समान समझता है, जो भक्ति-रस में हठ करता है और मूर्खता नहीं करता, सब कुतर्कों को जिसने दूर भगा दिया है।

दोहा—मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ, परमानन्द सन्दोह ॥ ४६ ॥

जो मेरे गुण-समूह और नाम में रत है और जो ममता, मद और मोह से रहित है, उसके सुख को वही जानता है, जो परमानन्द में मग्न है।

सुनत सुधा सम बचन राम के * गहे सबनि पद कृपा धाम के
जननि जनक गुरु बन्धु हमारे * कृपानिधान प्रान ते प्यारे

श्रीरामजी के अमृत-तुल्य वचन सुनते ही सबने कृपानिधान के चरण पकड़ लिए और कहा—हे दयानिधान ! आप हमारे माता-पिता, गुरु व बन्धु हैं तथा प्राणों से अधिक प्रिय हैं।

तनु धनु धाम राम हितकारी * सब बिधि तुम्ह प्रनतारतिहारी
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ * मातु पिता स्वारथ रत ओऊ

हे श्रीरामजी ! हमारे शरीर, धन, घर और सब प्रकार से हित करने वाले आप ही हैं। आप शरणागतों के दुःख हरने वाले हैं, आपके सिवाय हमको ऐसी सीख कोई नहीं दे सकता। माता-पिता भी स्वार्थी हैं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी * तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी
स्वारथ मीत सकल जग माहीं * सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं

हे असुरों के शत्रु ! आप और आपके भक्त बिना प्रयोजन के संसार का उपकार करते हैं। जगत में भी सभी स्वार्थ के मित्र हैं, हे प्रभु ! परमार्थ तो स्वप्न में नहीं है।

सबके बचन प्रेम रस साने * सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने
निज निज गृह गए आयसु पाई * बरनत प्रभु बतकही सुहाई

सबके प्रेम-रस में भरे वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी हर्षित हुए। सब आज्ञा पाकर प्रभु के सुहावने उपदेश वर्णन करते हुए अपने-अपने घरों को गये।

दोहा—उमा अवधबासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, रघुनायक जहँ भूप ॥ ४७ ॥

हे उमा ! यहाँ सब अयोध्या-वासी स्त्री-पुरुष पुण्यरूप हैं, जहाँ स्वयं परब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीरघुनाथजी राजा हैं।

एक बार बसिष्ठ मुनि आए * जहाँ राम सुखधाम सुहाए
अति आदर रघुनायक कीन्हा * पद पखारि पादोदक लीन्हा

एक दिन जहाँ सुख के धाम श्रीरामचन्द्रजी थे, वहाँ वशिष्ठ-मुनि आये। श्रीरघुनाथजी ने उनका बड़ा आदर किया और चरणामृत लिया।

राम सुनहुँ मुनि कह कर जोरी * कृपासिन्धु बिनती कछु मोरी
देखि देखि आचरन तुम्हारा * होत मोह मम हृदयँ अपारा

तब मुनि हाथ जोड़कर बोले—हे कृपासिंधु श्रीरामजी ! मेरी कुछ विनय सुनिये। आपके आचरण देख-देखकर मेरे मन में अपार मोह होता है।

महिमा अमित बेद नहिं जाना * मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना
उपरोहित्य कर्म अति मन्दा * बेद पुरान स्मृति कर निन्दा

हे भगवान ! आपकी महिमा अपार है, उसे वेद भी नहीं जानते, फिर मैं किस प्रकार से उसे कह सकता हूँ ? पुरोहित-कर्म बहुत ही नीच है वेद-पुराण और स्मृतियों ने भी इसकी निन्दा की है।

जब न लेउँ तब बिधि कर मोही * कहा लाभ आगे सुत तोही

परमात्मा ब्रह्म नर रूपा * होइहि रघुकुल भूषन भूपा

जब मैं इसे लेना न चाहता था, तब ब्रह्माजी ने मुझसे कहा-हे पुत्र ! आगे तुमको इस कार्यसे लाभ होगा । स्वयं परब्रह्म परमात्मा मनुष्य रूप धारण कर रघुकुल के भूषण राजा होंगे।

दोहा—तब मैं हृदयँ बिचारा, जोग जग्य ब्रत दान ।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ, धर्म न एहि सम आन ॥ ४८ ॥

इस समय मैंने हृदय में सोचा कि जिसके निमित्त योग, यज्ञ, जप, व्रत, दान किये जाते हैं उसे मैं पाऊँगा । तब तो इसके बराबर और दूसरा धर्म नहीं है ।

जप तप नियम जोग निज धर्मा * श्रुति सम्भव नाना सुभ कर्मा
ग्यान दया सम तीरथ मज्जन * जहँलगि धर्म कहत श्रुति सज्जन

जप, तप, नियम, योग, व्रत, स्वधर्म, वेदों से उत्पन्न अनेकों शुभ-कर्म, ज्ञान, दया, संयम तीर्थ, स्नान जिन धर्मों को वेद और सज्जनों ने जहां तक कहा है ।

आगम निगम पुरान अनेका * पढ़े सुने कर फल प्रभु एका
तव पद पङ्कज प्रीति निरन्तर * सब साधन कर फल यह सुन्दर

अनेकों शास्त्र और वेद-पुराणों के पढ़ने तथा सुनने का—हे प्रभु ! यही एक फल है कि आपके चरणारविंदों में सदा प्रेम रहे और सम्पूर्ण साधनों का भी यही उत्तम-फल है ।

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ * घृतकि पाव कोइ बारि बिलोएँ
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई * अभिअन्तर मल कबहुँ न जाई

क्या मैल के धोने पर मैल छूटता है और पानी को मथने से क्या कोई घी प्राप्त कर सकता है ? श्रीरामजी ! प्रेमपूर्ण भक्तिरूपी जल के बिना हृदय का मैल कभी नहीं जा सकता ।

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पण्डित * सोइ गुनगृह बिग्यान अखण्डित
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई * जाकें पद सरोज रति होई

वही सर्वज्ञ, वही तत्वज्ञानी, वही गुणवान और वही पूर्ण विज्ञानी है वही परम प्रवीण और वही सर्वगुण सम्पन्न है, जिनका आपके चरणकमलों में प्रेम हो ।

दोहा—नाथ एक बर माँगउँ, राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥ ४९ ॥

हे नाथ ! मैं आपसे एक वरदान मांगता हूँ, सो—हे श्रीरामजी ! कृपा करके दीजिए। हे प्रभु ! आपके चरणकमलों में जन्म-जन्मान्तर मेरा स्नेह कभी कम न हो ।

अस कहि मुनि वशिष्ठ गृह आये * कृपासिन्धु के मन अति भाये
हनूमान भरतादिक भ्राता * सङ्ग लिए सेवक सुखदाता

ऐसा कहकर वशिष्ठमुनि अपने घर आये । वे दयासिंधु रामजी के मनको बहुत प्रिय लगे, फिर सेवकों को सुख देने वाले श्रीरामजी ने हनुमान और भरत आदि भाइयों को साथ लिया ।

पुनि कृपालु पुर बाहेर गए * गज रथ तुरंग मँगावत भए
देखि कृपा करि सकल सराहे * दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे

फिर कृपालु श्रीरामजी पुर के बाहर गये, वहाँ पहुँचकर हाथी, रथ, घोड़े मँगवाये उन्हें देख दया करके प्रभु ने सबकी बड़ाई की, फिर उचित रीति से जिसने जो चाहा, उसे वही दिया।

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई * गए जहाँ सीतल अँवराई
भरत दीन्ह निज बसन डसाई * बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई

संसार के सम्पूर्ण श्रमको हरने वाले प्रभु श्रमपाकर वहाँ गये, जहाँ शीतल अँवराई थी। भरतजी ने वहाँ अपना वस्त्र बिछा दिया, प्रभु उस पर बैठ गये, तब सब भाई उनकी सेवा करने लगे।

मारुतसुत तब मारुत करई * पुलक गात लोचन जल भरई
हनूमान सम नहिं बड़भागी * नहिं कोउ राम चरन अनुरागी
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई * बार-बार प्रभु निज मुख गाई

तब हनुमानजी पुलकित देह से आँखों में जल भरकर हवा करने लगे। हनुमानजी के बराबर न तो कोई बड़भागी है और न श्रीरामजी के चरणों का प्रेमी ही है। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! जिनकी प्रीति और सेवा बारम्बार प्रभु ने अपने मुख से सराही है।

दोहा—तेहिं अवसर मुनि नारद, आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल, कीरति सदा नवीन ॥ ५० ॥

उस समय वीणा हाथ में लिये हुए नारद मुनि वहाँ आये और वे श्रीरामजी की सुन्दर तथा नित्य-नवीन सुकीर्ति गाने लगे—

मामवलोकय पङ्कज लोचन * कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन
नील तामरस स्याम काम अरि * हृदय कंज मकरन्द मधुप हरि

हे कृपादृष्टि से शोक को छुड़ाने वाले कमल-नयन! मेरी ओर निहारिये। हे श्रीहरि! आप नील-कमल के समान श्याम-वर्ण तथा कामदेव के शत्रु और शिवजी के हृदय-कमल के मकरन्द को पान करने वाले भ्रमर हैं।

जातुधान बरूथ बल भंजन * मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन
भूसुर ससि नव बृन्द बलाहक * असरन सरन दीनजन गाहक

आप राक्षस सेना के बल का नाश करने वाले, मुनि और सज्जनों को आनन्द देने वाले तथा पापों को नष्ट करने वाले, ब्राह्मण-रूपी खेती के लिए आप मेघ समूह हैं और अशरण को शरण देने वाले तथा दीनजनों को ग्रहण करने वाले हैं।

भुजबल बिपुल भार महि खण्डित * खरदूषण बिराध बध पंडित
रावनारि सुखरूप भूपवर * जय दशरथ कुल कुमुद सुधाकर

अपने बाहु-बल से पृथ्वी का भार उतारने वाले, खरदूषण और त्रिशिरा को मारने में प्रवीण, रावण के शत्रु, सुखरूप, राजाओं में श्रेष्ठ तथा दशरथ-कुलरूपी कुमुदिनी के चन्द्रमा 'श्रीरामजी' आपकी जय हो।

सुजस पुरान बिदित निगमागम * गावत सुर मुनि सन्त समागम
कारुनीक ब्यलीक मद खण्डन * सब बिधि कुसल कोसलामण्डन
कलिमल मथन नाम ममताहन * तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन

आपका सुन्दर यश पुराणों और वेद-शास्त्रों में प्रसिद्ध है। देवता, मुनि और सन्तजन उसे गाते हैं। हे करुणानिधान ! आप मिथ्या अभिमान को दूर करने वाले, सब प्रकार से कुशल और अयोध्या के भूषण हैं। आपका नाम कलियुग के पापों को मथने वाला और ममता को मारने वाला है। हे तुलसीदास के प्रभु ! मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए।

दोहा—प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभा सिन्धु हृदयँ धरि, गए जहाँ बिधि धाम ॥५१॥

नारदजी प्रेम सहित श्रीरघुनाथजी के गुण समूह वर्णन करके और शोभा के समुद्र प्रभु को हृदय में रखकर जहाँ ब्रह्मलोक है—वहाँ चले गये।

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा * मैं सब कही मोरि मति जथा
राम चरित सत कोटि अपारा * श्रुति सारदा न बरनै पारा

हे पार्वती ! सुनो, यह मनोहर राम-कथा, जैसी मेरी बुद्धि थी वैसी मैंने पूरी कही। श्रीरामजी के सौ करोड़ अपार चरित्र हैं, जिन्हें वेद और सरस्वतीजी भी कहकर पार नहीं पा सकते।

राम अनन्त अनन्त गुनानी * जन्म कर्म अनन्त नामानी
जलसीकर महि रज गनि जाहीं * रघुपति चरित न बरनि सिराहीं

श्रीरामजी अनन्त हैं, उनके गुण अनंत हैं, उनके जन्म-कर्म और नाम अनन्त हैं। जलकी बूँदे और पृथ्वीकी रेणु चाहे गिनी जासकती है, परन्तु रामजीके चरित्र वर्णन करनेसे समाप्त नहीं होते।

बिमल कथा हरि पद दायनी * भगति होइ सुनि अनपायनी
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई * जो भुशुण्डि खगपतिहि सुनाई

यह पवित्र राम-कथा-हरि-पद देने वाली है, इसे सुनकर अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा ! मैंने यह सब सुन्दर कथा कही, जो काकभुशुण्डिजी ने गरुड़को सुनाई थी।

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी * अब का कहौं सो कहहु भवानी
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी * बोली अति बिनीत मृदु बानी
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी * सुनेउँ राम गुन भव भय हारी

मैंने कुछ राम-गुण बखान कर कहे हैं, हे भवानी ! अब क्या सुनाऊँ सो कहो ? पार्वतीजी पवित्र राम-कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और बहुत विनम्र एवं कोमल वाणी बोलीं-हे शिवजी ! मैं बारम्बार धन्य हूँ, जो संसार के भय को दूर करने वाले श्रीरामचन्द्रजी के गुण मैंने सुने!

दोहा—तुम्हारी कृपाँ कृपायतन, अब कृत कृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु, चिदानन्द सन्दोह ॥५२क॥

हे कृपाधाम ! मैं आपकी कृपा से कृत्य-कृत्य हो गई । मेरा मोह जाता रहा और हे प्रभु ! सच्चिदानन्दघन श्रीरामजी का प्रताप मैंने जान लिया ।

दोहा—नाथ तपानन ससि स्त्रवत, कथा सुधा रघुबीर ।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि, नहिं अघात मति धीर ।।५२ख।।

हे नाथ ! हे धीर-बुद्धि ! आपका मुखरूपी चन्द्रमा राम-कथा रूपी अमृत टपकाता है । कर्णपुटी से उसे पान करके भी मेरा मन नहीं अघाता ।

रामचरित जे सुनत अघाहीं * रस बिसेषि जाना तिन्ह नाहीं
जीवन मुक्त महामुनि जेऊ * हरि गुन सुनहि निरन्तर तेऊ

श्रीरामजी का चरित्र सुनकर जो अघा जाते हैं, उन्होंने राम-कथा का विशेष रस जाना ही नहीं । जो जीवनमुक्त महामुनि हैं, वे ही सदैव मन लगाकर भगवान के गुण सुनते हैं ।

भवसागर चह पार जो पावा * रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा
विषइन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा * श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा

जो प्राणी भवसागर से पार जाना चाहे,उसके लिए राम-कथा दृढ़ नौका है । विषयी लोगों को भी यह राम-गुण समूह कानों को सुख देने वाला और मन को विश्राम देने वाला है ।

श्रवनवन्त अस को जग माहीं * जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं
ते जड़ जीव निजात्मक घाती * जिन्हहि न रघुपति कथा सुहाती

ऐसे कान वाले कौन हैं, जिन्हें श्रीरघुनाथजी के चरित्र अच्छे नहीं लगते ? वे प्राणी मूर्ख हैं और अपनी आत्मा के घातक हैं, जिन्हें श्रीरघुनाथजी की कथा नहीं सुहाती है ।

रामचरित मानस तुम्ह गावा * सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई * कागभुशुण्डि गरुड़ प्रति गाई

आपने रामचरित-मानस का गान किया, उसे सुनकर,हे नाथ! मैंने बहुत ही सुख पावा । यह जो आपने कहा कि मनोहर कथा काकभुशुण्डिजी ने गरुड़जी से कही थी ।

दोहा—बिरति ज्ञान विज्ञान दृढ़, रामचरन अति नेह ।
वायस तनु रघुपति भगति, मोहि परम सन्देह ।। ५३ ।।

जो वैराग्य और ज्ञान-विज्ञान में दृढ़ तथा रामजी के चरणों में जिनका बड़ा स्नेह है,ऐसे कागभशुण्डिजी का शरीर है और श्रीराम-भक्ति भी उन्हें प्राप्त है मुझे बड़ा संदेह है ।

नर सहस्त्र महँ सुनहुँ पुरारी * कोउ एक होइ धर्मब्रत धारी
धर्मसील कोटिन्ह महँ कोऊ * विषय बिमुख बिराग रत होऊ

हे त्रिपुरारी ! सुनिये, हजारों मनुष्यों में से कोई एक ही धर्म-व्रत धारण करने वाला होता है हजारों धर्मशीलों में विषयी-त्यागी और वैरागी कोई बिरला ही होता है ।

कोटि विरक्त मध्यश्रुति कहई * सम्यक ज्ञान सुकृत कोउ लहई

ज्ञानवन्त कोटिन्ह महँ कोऊ * जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ

वेदों में कहा है कि करोड़ों विरक्तों में से पूर्ण ज्ञान कोई एक ही पाता है और करोड़ों ज्ञानवानों में कोई एक ही जीवनमुक्त होता है, जगत में कोई बिरला ही ऐसा है... ।

तिन्ह सस्त्र महुँ सब सुखखानी * दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी

धर्मशील बिरक्त अरु ज्ञानी * जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी

हजारों जीवनमुक्तों में सुख की खान, ब्रह्म में लीन ज्ञानी-पुरुष और भी दुर्लभ है। धर्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवनमुक्त और ब्रह्मलीन–ये सब एक से एक बढ़कर हैं।

सब ते सो दुर्लभ सुरराया * राम भगति रत गत मद माया

सो हरिभगति काग किमि पाई * विश्वनाथ मोहि कहहु बुझाई

हे देवोत्तम ! जो मद व माया से रहित हो राम-भक्ति में प्रीति करता है, वह इन सबसे दुर्लभ है। ऐसी हरि-भक्ति कागभुशुण्डिजीने कैसे पाई ? विश्वनाथ ! वह मुझे समझाकर कहिये।

दोहा–राम परायन ग्यान रत, गुनागार मति धीर ।

नाथ कहहु केहि कारन, पायउ काग सरीर ।। ५४ ।।

हे नाथ ! श्रीरामजी के भक्त, ज्ञान के भण्डार-गुणनिधान, धीर-बुद्धि प्राणी ने कोए की देह किस कारण पाई सो कहिए ?

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा * कहहु कृपाल काग कहँ पावा

तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी * कहहु मोहि अति कौतुक भारी

प्रभु श्रीरामजी का यह पवित्र सुन्दर-चरित्र कोए ने कैसे पाया ? हे कृपालु ! यह मुझसे कहिए और हे कामदेव के शत्रु ! आपने किस भांति से सुना, सो कहिये ! यह मुझे बड़ा सन्देह है।

गरुड़ महाग्यानी गुनरासी * हरि सेवक अति निकट निवासी

तेहिं केहि हेतु काग सन जाई * सुनी कथा मुनि निकर बिहाई

गरुड़जी तो महाज्ञानी, गुनवान्, हरि के सेवक और बहुत ही समीप रहने वाले हैं, फिर किस कारण से उन्होंने मुनियों के समाज को छोड़कर कोए से जाकर कथा सुनी।

कहहु कवन बिधि भा [illegible]बादा * दोउ हरि भगत काग उरगादा

गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई * बोले सिव सादर सुख पाई

कागभुशुण्डिजी और गरुड़ इन दोनों भक्तों का संवाद किस भांति से हुआ सो कहिए ? पार्वतीजी की सीधी औरसुहावनी वाणी को सुनकर शिवजी प्रसन्न होकर आदर सहित बोले–

धन्य सती पावन मति तोरी * रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी

सुनत सकल पुनीत इतिहासा * जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा

उपजइ रामचरन विश्वासा * भवनिधि तरनर बिनहिं प्रयासा

हे सती ! तुम धन्य हो, तुम्हारी बुद्धि निर्मल है। श्रीरामजी के चरणों में तुम्हारी बहुत

प्रीति है। अब वह अति पवित्र इतिहास सुनो जिसे सुनकर सब सन्देह दूर होजाता है, रामजी के चरणों में विश्वास होता है और बिना प्रयास के ही मनुष्य संसार सागर से पार हो जाता है।

दोहा—ऐसेउ प्रश्न बिहङ्गपति, कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहउँ मैं, सुनहु उमा मन लाइ ॥ ५५ ॥

ऐसे ही प्रश्न काकभुशुण्डिजी से गरुड़जी ने जाकर पूछा था। वह सब आदरपूर्वक कहता हूँ। हे पार्वती ! मन लगाकर सुनो।

मैं जिमि कथा सुनी भवमोचनि * सो प्रसङ्ग सुनु सुमुखि सुलोचनि
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा * सती नाम तब रहा तुम्हारा

हे सुमुखी ! हे सुलोचनी ! संसार से छुड़ाने वाली कथा जिस तरह से मैंने सुनी, वह प्रसङ्ग सुनो ! पहले दक्ष के घर तुम्हारा नाम 'सती' था।

दच्छ जग्य तव भा अपमाना * तब अति क्रोध तजे तुम्ह प्राना
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा * जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा

दक्ष-यज्ञ में जब तुम्हारा अपमान हुआ, तब बहुत क्रोध करके तुमने प्राण त्याग दिये थे और मेरे गणों ने यज्ञ-विध्वंश कर डाला था। वह सब प्रसङ्ग तुम जानती ही हो।

तब अति सोच भयउ मन मोरें * दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें
सुन्दर बन गिरि सरित तड़ागा * कौतुक देखत फिरउँ बँरागा

उस समय मेरे जी में अत्यन्त शोक हुआ और हे प्रिय ! तुम्हारे विछोह से मैं दुखी हो गया। मैं विरक्त होकर सुन्दर बन, पर्वत, नदी और तालाबों के कौतुक देखता फिरता था।

गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी * नील सैल एक सुन्दर भूरी
तासु कनकमय सिखर सुहाए * चारि चारु मोरे मन भाए

सुमेरु-पर्वत के उत्तर में दूर, अति मनोहर एक नील-पर्वत है। उसके चार सुन्दर स्वर्ण-मय शिखर हैं। वे मेरे मन को बहुत अच्छे लगे।

तिन्ह पर एकएक बिटप बिसाला * बट पीपर पाकरी रसाला
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा * मनि सोपान देखि मन मोहा

उन शिखरों पर एक-एक वृक्ष बड़ पीपल, पाकर व आम के हैं। पर्वत के ऊपर एक मनोहर तालाब सुशोभित है, सीढ़ियों में मणि जड़ी देखकर मेरा मन मोहित होगया।

दोहा—सीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहु रंग।
कूजत कलरव हंस गन, गुञ्जत मञ्जुल भृङ्ग ॥ ५६ ॥

उसका ठन्डा, निर्मल, मीठा जल था, उसमें रङ्ग-बिरंगे कमल खिले थे। हंस मधुर शब्द कर रहे थे और भौंरे गुञ्जार रहे थे।

तेहि गिरि बसइ रुचिर खग सोई * तासु नाम कल्पान्त न होई

माया कृत गुन दोष अनेका * मोह मनोज आदि अविवेका

उस पर्वत पर वह पक्षी बसता है, उसका नाश, कल्पान्त में भी नहीं होता। मायाकृत अनेक गुण, दोष और मोह व काम आदि कुविचार–

रहे व्यापि समस्त जग माहीं * तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं
तहँ बसि हरिहिं भजइ जिमि कागा * सो सुनु उमा सहित अनुरागा

जो संसार में फैल रहे हैं, वे उस पर्वत के निकट भी नहीं जाते। वहाँ रहकर वह काग जैसे श्रीहरि को भजता है, सो-हे उमा प्रेम से उसे सुनो।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई * जाप जग्य पाकरि तर करई
आँव छाँह कर मानस पूजा * तजि हरि भजन काजु नहिं दूजा

वह पीपल के नीचे ध्यान लगाता है, पाकर के नीचे यज्ञ करता है और आम की छाया में मानसिक पूजा करता है। श्रीहरि-भजन को छोड़कर, उसको दूसरा काम नहीं।

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा * आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा
रामचरित बिचित्र बिधि नाना * प्रेम सहित कर सादर गाना

बरगद के नीचे श्रीहरि की कथा का प्रसङ्ग कहता है। अनेक पक्षी वहाँ आते और कथा सुनते हैं। श्रीरामचरित्र के विविध साधनों को वह प्रेमपूर्वक आदर सहित गान करता है।

सुनहिं सकल मति बिमल मराला * बसहिं निरन्तर जे तेहिं ताला
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा * उर उपजा आनन्द बिसेषा

निर्मल बुद्धि वाले सब हंस, जो सदैव उस तालाब पर बसते हैं-उसे सुनते हैं। जब वहाँ पहुँचकर मैंने यह कौतुक देखा तो मेरे हृदय में विशेष आनन्द हुआ।

दोहा—तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलास ॥ ५७ ॥

तब मैंने हंस की देह धरकर कुछ समय तक वहाँ वास किया और आदर पूर्वक श्रीरघुनाथजी के चरित्र सुनकर कैलाश को लौट आया।

गिरिजा कहेउँ सो इतिहासा * मैं जेहि समय गयउँ खग पासा
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू * गयउ काग पहिं खगकुल केतू

हे पार्वती! जिस समय मैं उस पक्षी के पास गया, सो सब कथा तो मैंने कही। अब जिस कारण गरुड़जी काकभुशुण्डिजी के समीप गये, सो कथा सुनो–

जब रघुनाथ कीन्ह रन क्रीड़ा * समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा
इन्द्रजीत कर आपु बँधायो * तब नारद मुनि गरुड़ पठायो

जिस समय श्रीरामचन्द्रजी ने युद्ध-लीला की, उस लीला का स्मरण करते हुए मुझे लाज लगती है कि मेघनाद के द्वारा नाग-पाश में जब आप बँध गये, तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा।

बन्धन काटि गयउ उरगादा * उपजा हृदयँ प्रचण्ड बिषादा
प्रभु बन्धन समुझत बहु भाँती * करत विचार उरग आराती

नागपाश का बन्धन काटकर जब गरुड़जी घर लौट गये,तब उनके हृदय में बड़ा विषाद हुआ। प्रभु के बन्धन को स्मरण कर गरुड़जी मन में बहुत भांति से विचार करने लगे–

व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा * माया मोह पार परमीसा
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं * देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं

जो सर्व-व्यापक विकार रहित, वाणी के स्वामी, माया-मोह से परे परमेश्वर हैं,उनका जगत में अवतार मैंने सुना था, सो कुछ प्रभाव नहीं देखा।

दोहा–भव बन्धन ते छूटहिं, नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ, नाग पाश सोइ राम ॥ ५८ ॥

जिसका नाम जपकर मनुष्य संसार के बन्धन से छूट जाते हैं, उन श्रीरामजी को तुच्छ राक्षस ने नागपाश में बांध लिया।

नाना भाँति मनहि समुझावा * प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई * भयउ मोहवश तुम्हरिहि नाई

नाना प्रकार से गरुड़जी ने अपने मन को समझाया,परन्तु बोध नहीं हुआ,हृदय में भ्रम छा गया। उस खेद से मन में दुःखी हो, तर्क बढ़ाकर गरुड़जी तुम्हारी ही भाँति मोहके वश होगये।

व्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं * कहेसि जो संसय निज मनमाहीं
सुनि नारदहि लागिअतिदाया * सुनु खग प्रबल राम कै माया

तब व्याकुल होकर वे नारदजी के पास गये औरजो संदेह अपने मन में था सो उनसे कहा। उसे सुनकर नारदजी को बड़ी दया लगी, वे बोले-सुनो, गरुड़जी! रामजी की माया बड़ी प्रबल है।

जो ज्ञानिन्ह कर चितअपहरई * बरिआई बिमोह मन करई
जेहि बहु बार नचावा मोही * सोइ व्यापी बिहङ्गपति तोही

जो ज्ञानियों के चित्त को भी हर लेती है और जबर्दस्ती विशेष मोह के वश कर देती है। जिसने मुझे भी अनेकों बार नचाया है, हे गरुड़! वही माया व्याप गई है।

महा मोह उपजा उर तोरें * मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा * सोइ करेहु जेहि होइ दिनेसा

तुम्हारे मनमें बड़ा भारी मोह प्रकट होगया है। हे गरुड़जी! मेरे कहने से यह शीघ्र नहीं मिटेगा। इस कारण,हे पक्षीराज! ब्रह्माजी के पास जाओ, उनकी आज्ञा हो,तुम वही करना।

दोहा–अस कहि चले देवरिषि, करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान ॥ ५९ ॥

इस प्रकार कह चतुर देवर्षि नारद श्रीरामचन्द्रजीके गुणगान करते हुए और हरि-माया का

बल बारम्बार वर्णन करते हुए चले।

तब खगपति बिरञ्चपहिं गयऊ * निज सन्देह सुनावत भयऊ
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा * समुझि प्रताप प्रेम अति छावा

तब गरुड़जी ब्रह्माजी के पास गये और अपना संदेह उन्हें सुनाना। उसे सुन ब्रह्माजी ने श्रीरामजी को सिर नवाया और उनके प्रताप को समझकर उनके हृदय में प्रेम छा गया।

मन महुँ करहु बिचार विधाता * माया बश कबि कोबिद ज्ञाता
हरिमाया कर अमित प्रभावा * बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा

ब्रह्माजी मन में विचार करने लगे कि कवि पंडित और ज्ञानी सब ही माया के आधीन हैं। श्रीहरि की माया का बड़ा भारी प्रभाव है, जिसने मुझे भी अनेकों बार चक्कर में डाला है।

अग जगमय जग मम उपराजा * नहिं आचरज मोह खगराजा
तब बोले बिधि गिरा सुहाई * जान महेस राम प्रभुताई

यह चराचर जगत मेरा ही रचा हुआ है। मैं ही जब माया मोहित हो जाता हूँ तो पक्षीराज को मोह होना कोई आश्चर्य नहीं हैं। तब ब्रह्माजी सुन्दर बाणी बोले—श्रीरामजी की प्रभुता को महादेवजी ही जानते हैं।

बैनतेय शंकर पहिं जाहू * तात अनत पूछत जनि काहू
तहँ होइहि सब संसय हानी * चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी

हे गरुड़जी! तुम शंकरजी के पास जाओ। हे तात! और कहीं किसी से मत पूछना। वहीं तुम्हारा सब सन्देह दूर होगा। ब्रह्माजी की वाणी सुनते ही गरुड़जी शिवजी के पास चले।

दोहा—परमातुर बिहङ्गपति, आयउ तब मो पास।
जात रहेउ कुबेर गृह, रहिहु उमा कैलास ॥ ६० ॥

तब गरुड़जी बहुत ही आतुर होकर मेरे पास आये, मैं उस समय कुबेर के घर जारहा था। हे पार्वती! तुम कैलाश पर ही थीं।

तेहिं मम पद सादर सिरु नावा * पुनि आपनु सन्देह सुनावा
सुनि ताकिर बिनती मृदु बानी * प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी

गरुड़जी ने आदर पूर्वक मेरे चरणों में सिर नवाया और फिर अपना सन्देह सुनाया। गरुड़जी की विनम्र और मधुर वाणी सुनकर, हे भवानी! मैंने प्रेम सहित यह कहा—

मिले गरुड़ मारग महँ मोही * कवन भाँति समुझावौं तोही
तबहिं होइ सब संसय भंगा * जब बहु काल करिअ सतसंगा

हे गरुड़! तुम मुझे मार्ग में मिले हो अतः मैं तुम्हें किस तरह समझाऊँ? तभी तुम्हारा संशय दूर होगा, जब बहुत समय तक सत्सङ्ग किया जाय।

सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई * नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना * प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना

और वहां सुन्दर हरि-कथा सुनी जाय, जो अनेक प्रकार से मुनियों ने गाई है और जिसके आदि, मध्य और अन्त में प्रभु श्रीरामजी का ही निरूपण है।

नित हरिकथा होइ जहँ भाई * पठवउँ तहाँ सुनहुँ तुम्ह जाई
जाइहि सुनत सकल सन्देहा * रामचरन होइहि अति नेहा

हे भाई! जहाँ नित्य हरि-कथा होती है, वहीं मैं तुम्हें भेजता हूँ-तुम जाकर सुनो। कथा सुनते ही सब संसय दूर हो जायगा और श्रीरामजी के चरणों में दृढ़ प्रेम हो जायगा।

दोहा—बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोहि न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥६१॥

सत्संग के बिना हरि कथा नहीं मिलती, बिना कथा के मोह नहीं भागता और मोह के दूर हुए बिना श्रीरामजी के चरणों में स्नेह नहीं होता।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा * किए जोग जप ग्यान बिरागा
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला * तहँ रह काग भुशुण्डि सुशीला

बिना प्रेम के योग, जप, ज्ञान और वैराग्य करने पर भी श्रीरघुनाथजी नहीं मिलते। उत्तर दिशा में एक सुन्दर नील-पर्वत है, वहां पर परम सुशील काकभुशुण्डिजी रहते हैं।

राम भगति पथ परम प्रबीना * ग्यानी गुनगृह बहु कालीना
रामकथा सो कहइ निरन्तर * सादर सुनहिं विविध बिहंगवर

वे राम-भक्ति के मार्ग में बड़े चतुर व गुणनिधान हैं और बहुत ही प्राचीन हैं। वे राम कथा सदैव कहा करते हैं, जिसे अनेकों प्रकार के श्रेष्ठ पक्षी आदर के साथ सुनते हैं।

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी * होइहिं मोह जनित दुख दूरी
मैं जब तेहि सब कथा बुझाई * चलेउ हरष मम पद सिरु नाई

वहाँ जाकर श्रीहरि के गुण समूहों को सुनो, जिससे मोह से उत्पन्न हुआ तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा। इस प्रकार जब मैंने गरुड़जी से हाल समझाकर कहा, तब वे प्रसन्न हो मेरे चरणों में प्रणाम करके चले गये।

ताते उमा न मैं समुझावा * रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना * सो खोवन चह कृपानिधाना

हे पार्वती! मैंने इस कारण गरुड़ को नहीं समझाया कि श्रीरामजी की कृपा से मैंने सब भेद जानलिया था। उसने कभी अभिमान किया होगा, जिसको कृपानिधान दूर करना चाहते हैं।

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा * समुझत खग खग ही कै भाषा
प्रभु माया बलवन्त भवानी * जाहि न मोह कवन अस ग्यानी

फिर कुछ इस कारण मैंने उसको नहीं रोका कि पक्षी-पक्षी की ही भाषा समझते हैं। हे

पार्वती ! प्रभुकी माया बड़ी प्रबल है । ऐसा ज्ञानवान कौन है, जिसे वह मोहित नहीं करती ?

दोहा—ग्यानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवनपति कर जान ।
ताहि मोह माया नर, पावँर करहिं गुमान ॥६२क॥

जो ज्ञानी भक्तों में श्रेष्ठ हैं और त्रिलोकी नाथ के वाहन हैं, उन गरुड़ को भी माया ने मोह लिया । तब भी नीच मनुष्य अभिमान करते हैं ।

* मास पारायण—अट्ठाईसवाँ विश्राम *

दोहा—सिव बिरञ्चि कहुँ मोहइ, को है बापुरी आन ।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान ॥६२ख॥

जब यह माया शिवजी और ब्रह्माजीको भी मोहित कर देती है तब भला और कोई बेचारा किस गिनती में है ? ऐसा अपने जी में समझकर मुनि माया के स्वामी का भजन करते हैं ।

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुण्डा * मति अकुण्ठ हरिभगति अखण्डा
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ * माया मोह सोच सब गयऊ

जहाँ निर्बोध बुद्धि तथा पूर्ण-भक्त काकभुशुण्डिजी रहते थे, वहाँ गरुड़जी गये, उस पर्वतको देखकर गरुड़जी का चित्त प्रसन्न हो गया और माया-मोह से उत्पन्न हुआ सब दुःख दूर होगया ।

करि तड़ाग मज्जन जलपाना * बट तर गयउ हृदयँ हरषाना
बृद्ध बृद्ध बिहङ्ग तहँ आए * सुनै राम के चरित सुहाए

तालाब में स्नान और जलपान करके मन में प्रसन्न हो वे वट-वृक्ष के नीचे गये, बड़े वृद्ध, पक्षी वहाँ श्रीरामजी के सुहावने चरित्रों को सुनने के लिए आये थे ।

कथा अरम्भ करै सोइ चाहा * तेहि समय गयउ खगनाहा
आवत देखि सकल खगसाजा * हरषेउ बायस सहित समाजा

वे कथा आरम्भ करना ही चाहते थे कि उसी समय गरुड़जी जा पहुँचे । गरुड़जी को देखकर काकभुशुण्डिजी समाज सहित प्रसन्न हुए ।

अति आदर खगपति कर कीन्हा * स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा
करि पूजा समेत अनुरागा * मधुर बचन बोलेउ तब कागा

उन्होंने गरुड़जी का बहुत आदर किया और कुशल पूछकर उत्तम आसन दिया । फिर प्रेम सहित पूजा करके काकभुशुण्डिजी मधुर वचन बोले—

दोहा—नाथ कृतारथ भयउँ मैं, तब दर्शन खगराज ।
आयसु देहु सो करौं अब, प्रभु आयहु केहि काज ॥६३क॥

हे नाथ, पक्षीराज ! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ, अब आप जो आज्ञा दें—मैं वही करूँ ! हे प्रभो ! आप किस कार्य के निमित्त आये हैं ।

सदा कृतारथ रूप तुम्ह, कह मृदुबचन खगेस ।
जेहि कै अस्तुति सादर, निज मुखकीन्हि महेस ॥६३ख॥

गरुड़जी कोमल वाणी से वचन बोले—आप तो सर्वव ही कृतार्थ-रूप हैं। शिवजी ने आवर सहित अपने श्रीमुख से जिनकी बड़ाई की है।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ * सो सब भयउ दरस तव पायउँ
देखि परम पावन तव आश्रम * गयउ मोह संसय नाना भ्रम

हे तात! सुनिये,जिस कारणसे मैं यहाँ आया हूँ, वह सब आपके दर्शन पातेही पूरा हो गया। आपके इस अत्यन्त पवित्र आश्रम को देखकर मेरा मोह, संशय और अनेकों भ्रम जाते रहे।

अब श्रीरामकथा अति पावनि * सदा सुखद दुखपुञ्ज नसावनि
सादर तात सुनावहु मोही * बार बार बिनवउँ प्रभु तोही

अब श्रीरामजी अत्यन्त पवित्र,सवा सुख देने वाली एवं दुःखके समूहको नाश करने वाली कथा-हे तात ! मुझे आदर सहित सुनाइये। हे प्रभो ! मैं आपसे बार २ यही विनती करता हूँ।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता * सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता
भयउ तासु मन परम उछाहा * लाग कहैं रघुपति गुन गाहा

गरुड़जी की विनम्र,सीधी, प्रेम भरी, सुखदायक और अत्यन्त पवित्र वाणी सुनते ही काक भुशुण्डिजी के मनमें परम उत्साह हुआ और वे श्रीरघुनाथजी के गुणों की कथा कहने लगे—

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी * रामचरित सर कहेसि बखानी
पुनि नारद कर मोह अपारा * कहेसि बहुरि रावन अवतारा
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई * तब सिसुचरित कहेसि मनलाई

हे भवानी ! उन्होंने प्रथम तो बड़े प्रेम से रामचरित-मानस का रूपक कहा,फिर नारदजी का अपार मोह और फिर रावण का अवतार कहा। फिर प्रभु के अवतार की कथा कही। तदन्तर मन लगाकर श्रीरामजी के बाल चरित्र कहे।

दोहा—बालचरित कहि बिबिध बिधि, मन महँ परम उछाह ।
रिषि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह ॥६४॥

अनेकों बाल, चरित्र कहकर मनमें बहुत आनन्द हुआ, फिर विश्वामित्रजी का आगमन कहकर श्रीरघुनाथजी का विवाह वर्णन किया।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा * पुनि नृप बचन राज रस भंगा
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा * कहेसि राम लछिमन सम्बादा

फिर श्रीरामजी के राजतिलक का प्रसंग, फिर राजा दशरथ के वचनों से राजतिलक का न होना, नगर वासियों की विरह-व्यथा और श्रीराम-लक्ष्मण का सम्वाद कहा।

बिपिन गवन केवट अनुरागा * सुरसरि उतरि निवास प्रयागा

बाल्मीकि प्रभु मिलन बखाना * चित्रकूट जिमि बसे भगवाना

श्रीरामजी का वन-गमन, केवट की प्रीति गङ्गाजी से पार उतरकर प्रयाग में निवास, बाल्मीकि से प्रभु का मिलाप और जैसे भगवान–चित्रकूट में बसे, वह सब कहा।

सचिवागमन नगर नृप मरना * भरतागवन प्रेम बहु बरना
करि नृप क्रिया संग पुरवासी * भरत गएँ जहँ प्रभु सुखरासी

मंत्री का पुरीमें लौटना, राजा का मरण, भरतजी का आना और उनका अत्यन्त स्नेह वर्णन किया, फिर राजाकी क्रियाकरके नगरवासियों के साथ भरतजीजहाँ सुखनिधान प्रभुथे, वहाँ गये।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए * लै पादुका अवधपुर आए
भरत रहनि सुरपतिसुत करनी * प्रभु अरु अत्रि भेंटि पुनि बरनी

फिर रामजीने उनको बहुत भाँतिसे समझाया, जिससे वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्यापुरी लौटआये फिर भरतजीके निवास की विधि, इन्द्रपुत्र जयन्त की नीचकरनी और अत्रि-भेंटका हाल कहा।

दोहा–कहि बिराध बध जेहि बिधि, देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि, प्रभु अगस्त सतसंग ।।६५।।

बिराध का बध और जैसे शरभंग ने देह छोड़ी थी वह कथा कही, फिर सुतीक्षणका प्रेम तथा प्रभु और अगस्त्य का सत्संग वर्णन किया।

कहि दण्डक बन पावनताई * गीध मयत्री पुनि तेहिं गाई
पुनि प्रभु पंचवटी कृत बासा * भञ्जी सकल मुनिन्ह की त्रासा

दण्डक-वन का पवित्र करना कहकर, गीधराज की मित्रता कही, फिर प्रभु ने पंचवटी में बास किया और सब मुनियों के भय को दूर किया।

पुनि लछिमन उपदेश अनूपा * सूपनखाँ जिमि कीन्हि कुरूपा
खरदूषन बध बहुरि बखाना * जिमि सब मरमु दसानन जाना

फिर जैसे लक्ष्मणजीको अनुपम उपदेश किया और सूर्पणखाको कुरूप किया, वह सब कहा। फिर खरदूषण का बध और जिस प्रकार रावणने समाचार जाना, वह सब समाचार कहा।

दसकन्धर मारीच बतकही * जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही
पुनि माया सीता कर हरना * श्री रघुबीर बिरह कछु बरना

फिर जिस प्रकार रावण व मारीच में बात-चीत हुई, सो सब उन्होंने कही। तदन्तर माया की सीता का हरण और श्रीरघुनाथजी के विरह का कुछ हाल वर्णन किया।

पुनिप्रभु गीधक्रिया जिमिकीन्ही * बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा * जेहि बिधि गए सरोवर तीरा

फिर जैसे जटायु की क्रिया प्रभुने की और कबन्ध का बध करके शबरी को गति दी तथा श्रीराम बिरह का दुःख कहते हुए जिस तरह से पम्पा सरोवर के किनारे गये, सो सब कहा।

दोहा–प्रभु नारद सम्बाद कहि, मारुति मिलन प्रसङ्ग ।
पुनि सुग्रीव मिताई, बालि प्रान कर भङ्ग ॥६६क॥

प्रभु और नारदजी का सम्वाद कहकर हनुमानजी से मिलने का प्रसंग कहा फिर सुग्रीव की मित्रता कहकर बालि का मरण कह सुनाया ।

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत, सैल प्रबरषन बास ।
बरनत बर्षा सरद अरु, राम रोष कपि त्रास ॥६६ख॥

सुग्रीव को राजतिलक करके प्रभु ने प्रवर्षण-पर्वत पर वास किया और वहाँ वर्षा व शरद् ऋतु का वर्णन करके, श्रीरामजी का क्रोध और सुग्रीव आदि के भय-प्रसंग कहे ।

जेहि विधि कपिपति कीस पठाए * सीता खोज सकल दिखि धाए
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती * कपिन्ह बहोरि मिला सम्पाती

फिर जिस प्रकार सुग्रीवने सब बानरों को भेजा, वे सीताजी की खोजमें सब ओर गये, जिस भाँति बानरों ने गुफा में प्रवेश किया और उन्हें सम्पाती मिला, वह सब कथा कही ।

सुनि सब कथा समीर कुमारा * नाँघत भयउ पयोधि अपारा
लङ्का कपि प्रवेश जिमि कीन्हा * पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा

सम्पाती से सब कथा सुनकर हनुमानजी अपार समुद्र को लाँघ गये और लङ्का में हनुमानजी ने जिस प्रकार प्रवेश किया, फिर जैसे सीताजी को धैर्य दिया, वह सब कथा कही ।

बन उचारि रावनहि प्रबोधी * पुनि दहि नांघेउ बहुरि पयोधी
आए कपि सब जहँ रघुराई * बैदेही की कुशल सुनाई

फिर अशोक-वाटिका को उजाड़कर रावण को समझाकर लङ्का-दहन करके, फिर समुद्रको लाँघकर आना कहा, फिर सब वहाँ आये,जहाँ रामजीथेउन्हें सीताजीके कुशलसमाचार सुनाये।

सेन समेत जथा रघुबीरा * उतरे जाइ बारिनिधि तीरा
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई * सागर निग्रह कथा सुनाई

फिर जिस प्रकार श्रीरामजी सेना समेत समुद्र के किनारे उतरे, जिस प्रकार विभीषण आकर मिले-वह और समुद्र के बाँधने की कथा सुनाई ।

दोहा–सेतु बाँधि कपिसेन जिमि, उतरी सागर पार ।
गयउ बसीठी बीरबर, जेहि बिधि बालिकुमार ॥६७क॥

पुल बांधकर जिस प्रकार सेना पार उतरी और जिस तरह बालि-पुत्र वीर श्रेष्ठ अंगद दूत बनकर लंका में गये–वह कथा कही ।

निसिचर कीस लराई, बरनिसि बिबिध प्रकार ।
कुम्भकरन घननाद कर, बल पौरुष संहार ॥६७ख॥

राक्षसों और वानरों की लड़ाई विविध प्रकार से वर्णन की। फिर कुम्भकर्ण और मेघनाथ का बल, पराक्रम और संहार वर्णन किया।

निसिचर निकर मरन बिधि नाना * रघुपति रावन समर बखाना
रावन बध मन्दोदरि सोका * राज बिभीषन देव असोका

फिर अनेक राक्षसों के समूह का मरण और राम-रावण युद्ध वर्णन किया। रावण बध, मंदोदरी का शोक, विभीषण राजतिलक और देवताओं का दुःखसे छूट जाना यह वर्णन किया।

सीता रघुपति मिलन बहोरी * सुरन्ह कीन्ह अस्तुति करजोरी
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता * अवध चले प्रभु कृपानिकेता

फिर सीता-रामजी का मिलन कहा। जिस प्रकार देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की और फिर पुष्पक विमान पर सीता सहित चढ़कर कृपा के धाम प्रभु अयोध्या को चले यह कहा।

जेहि बिधि राम नगर निज आए * बायस बिसद चरित सब गाए
कहेसि बहोरि राम अभिषेका * पुर बरनत नृपनीति अनेका

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अपने नगर में आये, वे सब चरित्र काकभुशुण्डिजी ने विस्तार से कहे। फिर श्रीरामचन्द्रजी का राज्यभिषेक कहा, अयोध्यापुरी का वर्णन करके अनेक भांति की राजनीति कही।

कथा समस्त भुशुण्डि बखानी * जो मैं तुम्ह सन कही भवानी
सुनि सब रामकथा खग नाहा * कहत वचन मन परम उछाहा

हे भवानी! जो सब कथा काकभुशुण्डिजी ने गरुड़से कही थीं, वही मैंने तुमसे कही हैं। गरुड़जी सम्पूर्ण राम-कथा सुनकर मनमें बहुत प्रसन्न होकर बोले—

सो०—गयउ मोर सन्देह, सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ रामपद नेह, तव प्रसाद बायस तिलक ॥६८क॥

हे काकभुशुण्डिजी! सम्पूर्ण रामचरित्र मैंने सुना, जिससे मेरा सन्देह जाता रहा। आपकी कृपा से श्रीरामजी के चरणों में प्रेम हो गया।

मोहि भयउ अति मोह, प्रभु बन्धन रनमहुँ निरखि।
चिदानन्द सन्दोह, राम विकल कारन कवन ॥६८ख॥

रण-क्षेत्र में प्रभु को नागपाश में बँधा देखकर मुझे बहुत ही मोह हुआ था कि सच्चिदानन्द श्रीरामचन्द्रजी विकल हुए इसका क्या कारण?

देखि चरित अति नर अनुसारी * भयउ हृदयँ मम संसय भारी
सोइ भ्रम अब हियकरि मैं माना * कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना

अत्यन्तही साधारण मनुष्यों के से चरित्रदेख मेरे मनमें भारी संदेह हुआ था, उसी भ्रमको अब मैंने अपना हितकारी समझा है, क्योंकि इसी बहाने से दयानिधान प्रभु ने मुझपर कृपा की है।

जो अति आतप ब्याकुल होई * तरु छाया सुख जानइ सोई

जौं नहिं होत मोह अति मोही * मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही

जो प्राणी धूप में व्याकुल होता है, वही वृक्ष की छाया के सुखको चाहता है। जो मुझे मोह न होता तो—हे तात! मैं आप से किस प्रकार मिलता?

सुनतेउँ किमि हरिकथा सुहाई * अति बिचित्र बहुबिधि तुम्ह गाई
निगमागम पुरान मत ऐहा * कहहिं सिद्ध मुनि नहिं सन्देहा

और कैसे यह सुहावनी हरि-कथा सुनता, जिसको बहुत विधि से आपने गाया है? शास्त्र, वेद व पुराणों का यही मत है और यही सिद्ध मुनिजन भी कहते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि—

सन्त बिशुद्ध मिलहिं पर तेही * चितवहिं राम कृपा करि जेही
राम कृपा तब दरसन भयऊ * तव प्रसाद सब संसय गयऊ

निर्मल सन्त उसी को मिलते हैं, जिसे श्रीरामजी कृपादृष्टि से देखते हैं। श्रीरामजी की कृपा से ही आपके दर्शन हुए और आपकी कृपा से मेरा सब सन्देह जाता रहा।

दोहा—सुनि बिहंगपति बानी, सहित बिनय अनुराग।
पुलकगात लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग ॥६९क॥

पक्षिराज गरुड़जी की विनय और प्रीति युक्त वाणी सुन काकभुशुण्डिजी बहुत प्रसन्न हुए, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया।

श्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्य मपि, सज्जन करहिं प्रकास ॥६९ख॥

हे पार्वती! अच्छी बुद्धि वाले, सुशील पवित्र, कथा प्रेमी और हरि भक्त श्रोता को पाकर सज्जन अत्यन्त गोपनीय रहस्य को भी प्रकट कर देते हैं।

बोलेउ कागभुशुण्डि बहोरी * नभग नाथ पर प्रीति न थोरी
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे * कृपापात्र रघुनायक केरे

फिर कागभुशुण्डिजी—जिनकी गरुड़जी पर विशेष प्रीति थी, बोले—हे नाथ! आप सब तरह से मेरे पूज्य हैं और श्रीरघुनाथजी के कृपा-पात्र हैं।

तुम्हहिं न संसय मोह न माया * मो पर नाथ कीन्ह तुम्ह दाया
पठइ मोह मिस खगपति तोही * रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही

आपको सन्देह, मोह व माया कुछ नहीं है। हे नाथ! मुझ पर आपने दया की है। हे पक्षिराज! मोह के बहाने से आपको भेजकर श्रीरघुनाथजी ने मुझे बड़ाई दी है।

तुम्ह निज मोह कहा खग साईं * सो नहिं कछु आचरज गोसाईं
नारद भव बिरञ्चि सनकादी * जे मुनिनायक आतमबादी

हे पक्षियों के स्वामी! आपने जो अपना मोह कहा सो-हे स्वामी! यह कुछ आश्चर्य नहीं है, नारदजी, महादेवजी, ब्रह्माजी और सनकादि मुनिश्वर जो आत्मज्ञान का वर्णन करते रहते हैं,

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही * को जग काम नचाव न जेही
तृष्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा * केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा

उनमें से किस-किसको मोह ने अन्धा नहीं किया ? संसार में ऐसा कौन है, जिसे कामदेव ने नहीं नचाया ? तृष्णा ने किसे मतवाला नहीं बनाया और क्रोध ने किसे नहीं जलाया ?

दोहा—ग्यानी तापस सूर कबि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडम्बना, कीन्हि न एहिं संसार ॥७०क॥

इस संसार में कितने ऐसे तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित और गुण निधान हैं जिनकी लोभ ने बिडम्बना नहीं की ?

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर, को अस लाग न जाहि ॥७०ख॥

लक्ष्मी के मद ने किसे टेढ़ा और प्रभुता ने किसे बहरा नहीं कर दिया ? ऐसा कौन है—जिसे मृग-नयनी स्त्री के नयन-बाण नहीं लगे।

गुन कृत सन्यपात नहिं केहीं * कोउ न मान मद तजेउ निबेही
जोबन ज्वर केहि नहिं बहकावा * ममता केहि कर जस न नसावा

गुणों का किया सन्निपात किसे नहीं हुआ ? ऐसा कौन हैं, जिसे मान और मद नहीं व्यापा ? यौवन के ज्वर ने किसे नहीं बहकाया और ममता ने किसके यश का नाश नहीं किया ?

मत्सर काहि कलङ्क न आवा * काहि न सोक समीर डोलावा
चिन्ता साँपनि को नहिं खाया * को जग जाहि न ब्यापी माया

मत्सरने किसे कलंक नहीं लगाया ? शोकरूपी वायुने किसे डाँवाडोल नहीं किया ? चितारूपी नागिन ने किसे नहीं डसा। संसार में ऐसा कौन है, जिसे मायाने अपने वश में नहीं किया ?

कीट मनोरथ दारु सरीरा * जेहि न लाग घुन को अस धीरा
सुत बित लोक ईषना तीनी * केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी

ऐसा धैर्यवान कौन है, जिसके शरीर रूपी काठ में मनोरथ रूपी कीड़ा न लगा हो ? पुत्र, धन और स्त्री की वासनाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं किया ?

यह सब माया कर परिवारा * प्रबल अमित को बरनै पारा
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं * अपर जीव केहि लेखे माहीं

यह माया का बाजार बड़ा प्रबल है और अपार है। इसे कौन वर्णन कर सकता है ? महादेवजी और ब्रह्माजी भी जिससे डरते हैं तो दूसरे जीव किस लेखे में हैं ?

दोहा—ब्यापि रहेउ संसार महुँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड ॥७१क॥

मायारूपी प्रबल सेना संसार में फैली हुई है। उसके सेनापति काम आदि हैं और योद्धा दम्भ, कपट और पाखण्ड हैं।

सो दासी रघुबीर कै, समझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि ॥७१ख॥

वह श्रीरामजी की चेरी है। यद्यपि बिचारने पर वह मिथ्या ही है, तो भी-हे नाथ ! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि राम के बिना वह नहीं छूटती।

जो माया सब जगत नचावा * जासु चरित लखि काहुँ न पावा
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा * नाच नटी इव सहित समाजा

जिस माया ने सब जगत को नचाया है और जिसका चरित्र कोई नहीं देख पाया। हे गरुड़ ! वही माया प्रभु के भृकुटि के इशारे से अपने समाज सहित नटी के समान नाचती है।

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा * अज विज्ञान रूप बलधामा
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता * अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता

भगवान सर्वव्यापक, पूर्ण, अनन्त, सम्पूर्ण, अमोघ, शक्तिमय, सच्चिदानन्द घन, प्राकृत, विज्ञान-स्वरूप और गुणनिधान हैं।

अगुन अगम्य गिरा गोतीता * समदरसी अनवद्य अजीता
निर्मम निराकार निरमोहा * नित्य निरञ्जन सुख सन्दोहा

वे निर्गुण, महान वाणी और इन्द्रियों से परे, समदर्शी, अनित्य अजेय, निर्मल, निराकार, मोह रहित, नित्य, माया रहित और सुख की राशि हैं।

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी * ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी
इहाँ मोह कर कारन नाहीं * रवि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं

प्रभु प्रकृति से परे अन्तर्यामी, ब्रह्म, इच्छा-रहित, निर्विकार और अविनाशी हैं। जहाँ मोह का कारण नहीं है। अन्धकार क्या सूर्य के सामने जा सकता है ?

दोहा—भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किएँ चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥७२क॥

भगवान प्रभु श्रीरामजी ने अपने भक्तों के निमित्त राजा का शरीर धारणकर मनुष्यों के से बहुत पवित्र चरित्र किये हैं।

जथा अनेक बेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव दिखावइ, आपुन होइ न सोइ ॥७२ख॥

जैसे कोई नट अनेकों वेश धारणकर नृत्य करता है और वही भाव दिखलाता है, परन्तु वह स्वयं वही नहीं हो पाता।

अस रघुपति लीला उरगारी * दनुज बिमोहनि जन सुखकारी

जे मति मलिन विषय बस कामी * प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी

हे गरुड़ ! श्रीराम-लीला राक्षस-मोहक और भक्त सुखकारी है । हे स्वामी ! जो मलिन बुद्धि, विषयी तथा कामी हैं, वे प्रभु पर आरोप करते हैं ।

नयन दोष जा कहँ जब होई * पीत बरन ससि कहुँ कह सोई
तब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा * सो कह पच्छिम उदउ दिनेसा

हे गरुड़ ! जब जिसे नेत्र-रोग और दिशा भ्रम हो जाता है, तो वह क्रमशः चन्द्रमा को पीले रंग का और सूर्य को पश्चिम में उदय हुआ कहता है ।

नौकारूढ़ चलत जग देखा * अचल मोह बस आपुन देखा
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी * कहहिं परस्पर मिथ्यावादी

नौकारूढ़ जगत को चलता देखकर मोहवश अपने को अचल समझता है । बालक घूमते हैं, घर आदि नहीं । पर वे आपस में झूठ कहते हैं ।

हरि विषयक अस मोह बिहङ्गा * सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसङ्गा
मायाबस मतिमन्द अभागी * हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी
ते सठ हठ बस संसय करहीं * निज अग्यान राम पर धरहीं

हे गरुड़ ! हरि के विषय में ऐसा ही मोह है । भगवान में अज्ञान तो स्वप्न में भी नहीं है, किन्तु जो मायावश, मन्दबुद्धि, अभागे हैं, और जिनके हृदय पर अनेक परदे पड़े हैं, वे मूर्ख हठ के वश सन्देह करते हैं, और अज्ञान श्रीरामजी पर घटित करते हैं ।

दोहा—काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप ।
ते किमि जानहिं रघुपति, मूढ़ परे तम कूप ।।७३क।।

जो काम, क्रोध, मद व लोभ में फँसे हैं और दुःखरूपी घर में आसक्त हैं, वे श्रीरघुनाथ-जी को कैसे जान सकते हैं ? वे मूर्ख अन्धकाररूपी कूप में पड़े हैं ।

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ ।।७३ख।।

निर्गुण-रूप अत्यन्त सुलभ है, परन्तु सगुण को कोई नहीं जानता है । सुगम और अगम अनेक चरित्रों को सुनकर मुनियों के मन में भी भ्रम हो जाता है ।

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई * कहउँ जथामति कथा सुहाई
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही * सोउ सब कथा सुनावउँ तोही

हे पक्षिराज ! सुनिये, श्रीरामजी की प्रभुता की मनोहर कथा मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ । हे प्रभो ! जिस तरह से मुझे मोह हुआ, वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ ।

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता * हरिगुन प्रीति मोहि सुखदाता
ताते नहिं कछु तुम्हहिं दुरावउँ * परम रहस्य मनोहर गावउँ

हे तात ! आप श्रीरघुनाथजी के कृपा-पात्र हैं । श्रीहरि के गुणानुवादों में आपकी प्रीति है, जो मुझे सुखदाई है । इसलिए मैं आपसे छिपाता नहीं हूँ, बहुत ही गूढ़ और मनोहर चरित्र कहता हूँ ।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ * जन अभिमान न राखहिं काऊ
संसृति मूल शूलप्रद नाना * सकल सोक दायक अभिमाना

सुनिये, रामजी का सहज स्वभाव है कि वे अपने भक्तों के घमण्ड को कभी नहीं रखते । अभिमान संसार में जन्म-मरण का कारण और नाना प्रकार के कष्टों को देने वाला है ।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी * सेवक पर ममता अति भूरी
जिमि सिसु तनु होइ गोसाँई * मातु चिराव कठिन की नाईं

इसलिए कृपासिंधु उसे दूर कर देते हैं,क्योंकि उनका भक्तों पर बहुत ही प्रेम है । हे स्वामी ! जैसे बालक के हृदय में फोड़ा हो जाता है तो माता कड़ा हृदय करके उसे चिरवा देती है ।

दोहा—जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवइ बाल अधीर ।
ब्याधि नास हित जननी, गिनत न सो सिसु पीर ॥७४क॥

यद्यपि बालक पहले दुःख पाता है और अधीर होकर रोने लगता है, तो भी व्याधि दूर होने के लिए माता बालक की पीड़ा को नहीं गिनती ।

तिमि रघुपति निज दास कर, हरहिं मान हित लागि ।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि, कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥७४ख॥

ऐसे ही श्रीरघुनाथजी अपने भक्त के लिए उसके घमण्ड को हर लेते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—भ्रम छोड़कर ऐसे स्वामी को क्यों नहीं भजते ?

राम कृपा आपनि जड़ताई * कहहुँ खगेस सुनहु मन लाई
जब जब राम मनुज तनु धरहीं * भगत हेतु लीला बहु करहीं

हे गरुड़जी ! मन लगाकर सुनिये, मैं श्रीरामजी की कृपा और अपनी मूर्खता की बात कहता हूँ । श्रीरामजी जब २ मनुष्य देह धारण करते हैं और भक्तों के लिए अनेक चरित्र करते हैं ।

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ * बालचरित बिलोकि हरषाऊँ
जन्म महोत्सव देखउँ मैं जाई * बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई

तब-तब मैं अयोध्या को जाता हूँ और प्रभु के बाल चरित्र देखकर प्रसन्न होता हूँ । जन्मोत्सव देखता हूँ और लुभाकर पाँच वर्ष वहीं रहता हूँ ।

इष्टदेव मम बालक रामा * सोभा बपुस कोटि सत कामा
निज प्रभु बदन निहारि निहारी * लोचन सुलभ करउँ उरगारी
लघु बायस बपु धरि हरि सङ्गा * देखउँ बालचरित बहु रङ्गा

बालक रूप श्रीरामजी मेरे इष्टदेव हैं, जिनमें अरबों कामदेवों की शोभा है । हे गरुड़जी ।

अपने प्रभु का मुख देखकर मैं नेत्रों को सफल करता हूँ। मैं छोटे कौए का रूप धरकर प्रभु के साथ अनेक बाल लीलायें देखा करता हूँ।

दोहा—लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ सङ्ग उड़ाउँ।
जूठन परइ अजिर महँ, सो उठाइ करि खाउँ ॥७५क॥

लड़कपन में वे जहाँ-जहाँ घूमते, वहाँ-वहाँ मैं उनके साथ उड़ता हूँ और आँगन में जो जूठन पड़ती है, उसे उठाकर खा लेता हूँ।

एक बार अतिसय सब, चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर ॥७५ख॥

एक बार श्रीरघुनाथजी ने सब बाल-चरित्र अत्याधिक किये, उन चरित्रों को स्मरण करने से भुशुण्डिजी का शरीर पुलकित हो गया।

कहइ भुशुण्डि सुनहु खगनायक * रामचरित सेवक सुखदायक
नृप मन्दिर सुन्दर सब भाँती * खचित कनक मनि नाना जाती

हे पक्षिराज ! श्रीरामजी के भक्त सुखकारी चरित्र सुनिये। राज मन्दिर सब भाँति से सुन्दर है, वहाँ अनेक मणियाँ सोने से जड़ी हुई हैं।

बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई * जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई
बाल बिनोद करत रघुराई * बिचरत अजिर जननि सुखदाई

सुन्दर आँगन का वर्णन नहीं किया जाता, वहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। श्रीरघुनाथजी माताओं को सुख देने वाली बाल-लीला करते हुए वहाँ विचरते हैं।

मरकत मृदुल कलेवर श्यामा * अङ्ग अङ्ग प्रति छबि बहु कामा
नव राजीव अरुन मृदु चरना * पदज रुचिर नख ससि दुतिहरना

मरकत मणियों के तुल्य साँवला शरीर है, अंग अंग में अनेकों कामदेवों की शोभा है। नवीन लाल कमल के समान कोमल चरण हैं, अँगुलियाँ बहुत सुन्दर और चन्द्रमा की कान्ति को हरने वाली हैं।

ललित अङ्क कुलसादिक चारी * नूपुर चारु मधुर रवकारी
चारु पुरट मनि रचित बनाई * कटि किंकिन कल मुखर सुहाई

वज्रादिक के सुन्दर चार चिन्ह हैं, सुन्दर मधुर ध्वनि से बजने वाले नूपुर हैं। सुन्दर मणियों से जड़ी सोने की करधनी की सुरीली ध्वनि सुहावनी लगती है।

दोहा—रेखा त्रय सुन्दर उदर, नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत विविध, बाल बिभूषन चीर ॥ ७६ ॥

सुन्दर उदर पर तीन रेखायें हैं, नाभि मनोहर और गहरी है, विशाल वक्षस्थल पर बालकों के अनेक आभूषण और वस्त्र शोभित हैं।

अरुन पानि नख करज मनोहर * बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर

कन्ध बाल केहरि दर ग्रीवा * चारु चिबुक आनन छबि सींवा

उनकी लाल हथेलियां, उंगलियां और नख मनोहर हैं। लम्बी भुजाओं पर सुन्दर आभूषण हैं बाल-सिंह के समान कन्धे व शंख के तुल्य गर्दन है। मनोहर ठोढ़ी और मुख तो मानो शोभा की सीमा ही हैं।

कलबल बचन अधर अरुनारे * दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे
ललित कपोल मनोहर नासा * सकल सुखद ससि कर सम हासा

तोतले वचन, लाल-लाल सुन्दर-सुन्दर होठ, छोटे-छोटे उज्ज्वल दो-दो दांत हैं। सुन्दर गाल-मनोहर नासिका और चन्द्रमा की किरणों के समान सबको सुख देने वाली मुस्कान है।

नील कन्ज लोचन भव मोचन * भ्राजत भाल तिलक गोरोचन
विकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए * कुञ्चित कच मेचक छवि छाए

नीलकमल के समान नेत्र भय से छुड़ाने वाले हैं, गोरोचन का तिलक माथे पर शोभायमान है। भौंहें टेढ़ी हैं और कान सुन्दर व सुहावने हैं, घने काले घुंघराले बाल शोभा दे रहे हैं।

पीत झीनि झिगुली तनु सोही * किलकनि चितवनि भावति मोही
रूपरासि नृप अजिर बिहारी * नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी

पीले रंग की बारीक झुंगली शरीर पर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बड़ी प्रिय है। राजा दशरथ के आँगन में बिहार करने वाले रूप की राशि भगवान अपनी परछाँही देखकर नाचते हैं।

मोहिसन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा * बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा
किलकत मोहि धरन जब धावहिं * चलेउँ भाग तब पूप देखावहिं

मेरे साथ अनेक प्रकार के ऐसे खेल करते हैं, जिन चरित्रों को वर्णन करते हुए मुझे बड़ी लज्जा आती है। जब किलकारते हुए मुझे पकड़ने को दौड़ते हैं और मैं भाग जाता हूँ, तब मुझे पूआ दिखाते हैं।

दोहा–आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिर चितव पराहिं ॥७७क॥

मेरे निकट आने पर वे हंसते हैं और भागने पर रोते हैं। जब मैं पांव छूने उनके पास जाता हूँ तो वे फिर-फिर कर मेरी ओर देखते हुए भाग जाते हैं।

प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित करत प्रभु, चिदानन्द सन्दोह ॥७७ख॥

साधारण बालक के समान चरित्र देखकर मुझे मोह हुआ कि सच्चिदानन्द भगवान यह क्या लीला कर रहे हैं?

एतना मन आनत खगराया * रघुबर प्रेरित ब्यापी माया
सो माया न दुखित मोहि काहीं * आन जीव इव संसृत नाहीं

हे गरुड़जी ! इतनी शंका मन में लाते ही श्रीरामजी द्वारा प्रेरित माया मुझे व्याप गई, परन्तु वह माया मुझे न तो दुखदाई हुई और न अन्य जीवों के समान उसने मुझे संसार के चक्कर में ही डाला ।

नाथ इहाँ कछु कारन आना * सुनहु सो सावधान हरिजाना
ग्यान अखण्ड एक सीतावर * माया बस सब जीव चराचर

हे स्वामी ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है, उसे सावधान होकर सुनिये-एक सीतापति श्रीरामचन्द्रजी ही पूर्ण ज्ञानवान् हैं और सब चराचर जीव माया के वश में हैं ।

जौं सबकें रह ग्यान एक रस * ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस
माया बस्य जीव अभिमानी * ईस बस्य माया गुनखानी

जो सबको एक ही ज्ञान हो तो कहो ईश्वर और जीव में भेद कैसा ? अभिमानी जीव माया के वश में हैं और वह तीनों गुणों की खान-माया ईश्वर के आधीन है-

परबस जीव स्वबस भगवन्ता * जीव अनेक एक श्रीकन्ता
मुधा भेद जद्यपि कृत माया * बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया

जीव पराधीन है,ईश्वर स्वाधीन है । जीव अनेक हैं । ईश्वर एक है । यह भेद यद्यपि माया के किये हुए हैं, तो भी ईश्वर की कृपा के बिना करोड़ों उपाय करने पर भी वह नहीं मिटते ।

दोहा—रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान ।
ग्यानवन्त अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ बिषान ।।७८क।।

जो श्रीरामचन्द्रजी के भजन के बिना मोक्ष-पद चाहे, यह मनुष्य बहुत ज्ञानवान होने पर भी बिना सींग और पूँछ का पशु है ।

राकापति षोड़स उअहिं, तारागन समुदाय ।
सकल गिरिन्ह दव लाइव, बिनु रवि रति न जाय ।।७८ख।।

चाहे सब तारों के साथ चन्द्रमा सोलह कलाओं से उदय हो और सब पर्वतों में आग लगादी जाय, परन्तु सूर्य के उदय हुए बिना रात नहीं जाती ।

ऐसेहिं बिनु हरिभजन खगेसा * मिटइ न जीवन केर कलेसा
हरिसेवकहिं न व्यापि अविद्या * प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या

हे गरुड़जी ! ऐसे ही बिना हरि भजन के जीवों का क्लेश नहीं मिटता । हरि-भक्त को अविद्या नहीं व्यापती बल्कि प्रभु की प्रेरणा से विद्या ही व्यापती है ।

ताते नास न होइ दास कर * भेद भगति बाढ़इ बिहङ्गवर
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा * बिहँसे सो सुनु चरित विसेषा

इसी से दास का नाश नहीं होता और हे पक्षिश्रेष्ठ ! भेद-भक्ति बढ़ती है । जब श्रीरामजी ने मुझे भ्रम से चकित देखा, तब हँसे । वह विशेष चरित्र सुनिये-

तेहि कौतुक कर मरम न काहूँ * जाना अनुज न मात पिताहूँ

जानु पानि धाए मोहि धरना * श्यामल गात अरुन कर चरना

उस खेल का भेद किसी ने नहीं जान पाया, भाइयों और माता-पिता आदि ने भी नहीं जाना, श्याम शरीर और लाल २ हाथ पाँव वाले प्रभु घुटनों और हाथों से चलकर मुझे पकड़ने दौड़े।

जब मैं भागि चलेउँ उरगारी * राम गहन कहँ भुजा पसारी
जिमि जिमि दूर उड़ाउँ अकासा * तहँ हरि भुज देखउँ निज पासा

हे गरुड़जी ! जब मैं उड़ चला, तब श्रीरामजी ने मुझे पकड़ने को भुजा फैलाई। ज्यों ज्यों मैं आकाश में उड़कर दूर होता था, त्यों-त्यों हरि की भुजा को अपने पास देखता था।

दोहा—ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहि मोहि तात ॥७९क॥

मैं पीछे को देखता और उड़ता हुआ ब्रह्मलोक तक गया, परन्तु हे भाई ! श्रीरामचन्द्रजी की भुजा और मुझमें दो अंगुल का अन्तर रहा।

सप्तावरन भेद करि, जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, व्याकुल भयउँ बहोरि ॥७९ख॥

सातों आवरणों को भेदकर जहाँ तक मेरी गति थी—वहाँ तक गया, परन्तु वहाँ भी प्रभु की भुजा को देखकर मैं घबड़ा गया।

मूदेउँ नयन त्रसित जब भयउँ * पुनि चितवत कोसलपुर गयउँ
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं * बिहँसत तुरत गयउ मुख माहीं

जब मैं घबड़ा गया, तब मैंने आँखें बन्द करलीं। फिर आँखें खोलकर देखा कि मैं पुनः अयोध्या में पहुँच गया हूँ। तब मुझे देखकर श्रीरामजी मुस्कराने लगे और उनके हँसते ही मैं उनके मुख में चला गया।

उदर माँझ सुनु अण्डज राया * देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया
अति विचित्र तहँ लोक अनेका * रचना अधिक एक तें ऐका

हे पक्षिराज ! सुनो, उनके पेट में मैंने बहुत से ब्रह्माण्डों के समूह देखे। वहाँ अनेकों अति विचित्र लोक थे, उनकी रचना एक से एक बढ़कर थी।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा * अगनित उडुगन रबि रजनीसा
अगनित लोकपाल जम काला * अगनित भूतल भूमि बिसाला

करोड़ों ब्रह्मा व शिवजी, अगणित नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा, लोकपाल, यम, काल, पर्वत व भूमि

सागर सरि सर बिपिन अपारा * नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर * चारि प्रकार जीव सचराचर

अनेक समुद्र, नदी, वन और सृष्टि का विस्तार देखा। देव, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर और चारों प्रकार के जड़ चेतन जीव देखे।

दोहा—जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहुँ न समाइ।

सो सब अद्भुत देखउँ, बरनि कवन बिधि जाइ ।।८०क।।

जो न कभी देखा था न सुना था और मन में भी नहीं समाता था, वह सब आश्चर्य मैंने देखा । तब किस भांति से उसका वर्णन किया जाय ?

दोहा—एक एक ब्रह्माण्ड महुँ, रहेउँ बरष सत एक ।
एहि बिधि देखत फिरेउँ मैं, अण्ड कटाह अनेक ।।८०ख।।

मैं एक-एक सौ वर्ष एक-एक ब्रह्माण्ड में रहा इस भांति मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा ।

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता * भिन्न विष्णु सिव मनु दिसि त्राता
नर गन्धर्व भूत बैताला * किन्नर निसिचर पशु खग ब्याला

प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु और दिग्पाल, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, बैताल, किन्नर, दैत्य, पशु-पक्षी और नाग थे ।

देव दनुज गन नाना जाती * सकल जीव तहँ आनहिं भाँती
महि सरि सागर सर गिरि नाना * सब प्रपञ्च तहँ आनइ आना

अनेक जाति के देवता और दैत्य थे, सब जीव वहां और ही प्रकार के थे । भूमि, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत और सृष्टि वहां दूसरी ही प्रकार की थी ।

अण्डकोष प्रति प्रति निज रूपा * देखेउँ जिनस अनेक अनूपा
अवधपुरी प्रति भवन निहारी * सरजू भिन्न भिन्न नर नारी

हर एक ब्रह्माण्डों में मैंने अपना रूप देखा और बहुत-सी अनोखी वस्तुयें देखीं तथा प्रत्येक ब्रह्माण्डों में अवधपुरी और सरयू नदी एवं भिन्न-भिन्न स्त्री-पुरुष देखे ।

दशरथ कौशल्या सुनु ताता * विविध रूप भरतादिक भ्राता
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा * देखउँ बाल बिनोद अपारा

दशरथजी, कौशल्याजी तथा भरत आदि भाई भिन्न-भिन्न रूप के थे । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामावतार और अपार बाल चरित्र देखा ।

दोहा—भिन्न-भिन्न मैं दीख सबु, अति विचित्र हरि जान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखउँ आन ।।८१क।।

हे हरि वाहन ! वहां मैंने सभी को भिन्न-भिन्न तथा अत्यन्त विचित्र देखा । मैं अगणित ब्रह्माण्डों में फिरा, परन्तु प्रभु श्रीरामजी को दूसरे रूप में नहीं देखा ।

सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपालु रघुबीर ।
भुवन भुवन देखत फिरेउँ, प्रेरित मोह समीर ।।८१ख।।

मोहरूपी पवन की प्रेरणा से मैं वही बाल-लीला, वही शोभा और उन्हीं दयालु श्री-रघुनाथजी को लोक-लोक में देखता फिरता ।

भ्रमत मोहि ब्रह्माण्ड अनेका * बीते मनहुँ कल्प सत एका
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ * तहँ रह पुनि कछु काल गँवायउँ

अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते २ मानो मुझे सौ कल्प बीत गये। फिरते २ अपने आश्रम में लौट आया, तब फिर वहाँ रहकर कुछ समय बिताया।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ * निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ
देखेउँ जन्म महोत्सव जाई * जेहि विधि प्रथम कहा मैं गाई

जब अपने प्रभु का जन्म अयोध्यापुरी में सुन पाया, तब मैं प्रेम में मग्न हो सानन्द उठ दौड़ा। वहाँ जाकर जन्मोत्सव देखा, जैसा कि मैं पहले गा चुका हूँ।

राम उदर देखेउँ जग जाना * देखत बनइ न जाइ बखाना
तहँ पुनि देखउँ राम सुजाना * मायापति कृपाल भगवाना

श्रीराम के पेट में बहुत से जगत देखे। वे देखते ही बनते थे, कहते नहीं बनते फिर वहाँ माया के स्वामी दयालु भगवान श्रीरामजी को देखा।

करउँ विचार बहोरि बहोरी * मोह कलित व्यापति मति मोरी
उभय घरी महँ मैं सब देखा * भयउ भ्रमित मन मोह विसेखा

मैं बारम्बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोह की कीचड़ में व्याप्त थी, यह सब मैंने दो ही घड़ी में देखा। मन में अधिक मोह से मैं थक गया।

दोहा—देखि कृपाल विकल मोहि, बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसत ही मुख बाहेर, आयउँ सुनु मतिधीर ॥८२क॥

जब कृपालु श्रीरघुनाथजी ने मुझे व्याकुल देखा तो वे हँस दिये। हे धीर-बुद्धि गरुड़जी! उनके हँसते ही मैं बाहर आ गया।

सोइ लरिकाई मो सन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउँ, मनु न लहइ विश्राम ॥८२ख॥

फिर श्रीरामजी मेरे साथ वही बाल-लीला करने लगे, मैं करोड़ों भाँति से अपने मन को समझाता था, परन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली।

देखि चरित यह सो प्रभुताई * समुझत देह दसा बिसराई
धरनि परेउँ मुख आव न बाता * त्राहि त्राहि आरत जनत्राता

यह चरित्र देखकर और उस महिमा को समझते ही मुझे देह की सुधि भूल गई। हे दीन-भक्तों के रक्षक! मेरी रक्षा कीजिए, यह कहता हुआ धरती पर गिर पड़ा, मुख से बात नहीं निकलती थी।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि विलोकी * निज माया प्रभुता तब रोकी
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ * दीनदयाल सकल दुख हरेऊ

तब प्रभु ने मुझे प्रेम-विह्वल देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोक लिया और अपना

हस्त-कमल मेरे सिर पर रखकर दीनदयालु ने मेरा सब दुःख दूर कर दिया।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा * सेवक सुखद कृपा सन्दोहा
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी * मन महँ होइ हरष अति भारी

सेवकों को सुख देने वाले, कृपा के समूह श्रीरामचन्द्रजी ने मुझको मोह रहित कर दिया। तब जो महिमा पहले देखी थी, उसे बिचार कर मेरे मन में बड़ा भारी आनन्द हुआ।

भगत बछलता प्रभु कै देखी * उपजी मम उर प्रीति बिसेषी
सजल नयन पुलकित करजोरी * कीन्हिउँ बहुबिधि बिनय बहोरी

प्रभु की भक्त-वत्सलता देखकर मेरे मन में अत्यन्त प्रीति प्रकट हुई। सजल-नेत्र, पुलकित शरीर होकर हाथ जोड़कर मैंने बहुत बिनती की।

दोहा–सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गम्भीर मृदु, बोले रमा निवास ॥८३क॥

प्रेम सहित मेरी वाणी सुनकर और अपने भक्तको दीन देखकर लक्ष्मी-निवास श्रीरामजी सुखदायक, गम्भीर और मधुर वाणी बोले–

कागभुशुण्डि माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि, मोच्छ सकल सुख खानि ॥८३ख॥

हे कागभुशुण्डिजी ! मुझे अति प्रसन्न जानकर अणिमादिक आठों सिद्धि, नवों निधि एवं सब सुखों की खान मोक्ष आदि का वर माँग लो।

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना * मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना
आजु देउँ सब संसय नाहीं * मागु जो तोहि भाव मन माहीं

ज्ञान, विवेक, वैराग्य और वे अनेक गुण जो संसार में मुनियों को भी दुर्लभ हैं, आज वह सब तुम्हें दूँगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम्हारे मन में अच्छा लगे, सो माँगलो।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ * मन अनुमान करन तब लागेउँ
प्रभु कह देन सकल सुख सही * भगति आपनी देन न कही

प्रभुके वचन सुनकर मैं अत्यन्त प्रेममें मग्न होगया, तब अपने मनमें विचार करने लगाकि प्रभु ने मुझे सम्पूर्ण सुख देने को कहे, यह तो सत्य है। परन्तु अपनी भक्ति देने के लिए नहीं कहा।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे * लवन बिना बहु व्यञ्जन जैसे
भगति हीन सुख कवने काजा * अस बिचार बोलेउँ खगराजा

बिना भक्ति के सब गुण और सुख कैसे हैं। जैसे नमक के बिना बहुत से भोजन पदार्थ। हे पक्षिराज ! बिना भक्ति के सुख किस काम के हैं ? इस प्रकार मन में विचार करके मैं बोला–

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू * मो पर करहु कृपा अरु नेहू
मन भावत बर मागउँ स्वामी * तुम उदार उर अन्तरजामी

हे प्रभु ! जो आप मुझ पर प्रसन्न होकर वर देते हैं और मुझ पर दया व स्नेह करते हैं, तो हे स्वामी ! मैं अपना मन-चाहा वर माँगता हूँ । आप उदार हैं और सबके हृदय की जानते हैं ।

दोहा—अबिरल भगति बिशुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥८४क॥

आपकी जिस अटल और पवित्र भक्ति को वेद तथा पुराणों ने गाया है, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और आपकी कृपा से कोई-कोई पाते हैं ।

भरत कल्पतरु प्रनत हित, कृपासिन्धु सुखधाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥८४ख॥

हे भक्तों के कल्पवृक्ष ! दीन हितकारी ! हे दया के समुद्र और सुख स्थान श्रीरामजी ! दया करके वही अपनी भक्ति मुझे दीजिए ।

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक * बोले बचन परम सुखदायक
सुनु बायस तैं सहज सयाना * काहे न माँगसि अस बरदाना

रघुवंश के स्वामी 'एवमस्तु' कहकर अतिसुखदायक वचन बोले—हे काग ! सुनो, तुम सहज ही चतुर हो, फिर ऐसा वरदान क्यों न माँगोगे ।

सब सुखखानि भगति तैं माँगी * नहिं जग कोउ तो सम बड़भागी
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं * जे जप जोग अनल तनु दहहीं

तुमने सब सुखों की खान भक्ति माँग ली । संसार में तुम्हारे समान बड़भागी कोई नहीं है । वे मुनि-जो जप और योग की अग्नि से अपने शरीर को सुखा डालते हैं और करोड़ों उपायों से भी जिसको प्राप्त नहीं कर पाते ।

रीझेउ देखि तोरि चतुराई * माँगेहु भगति मोहि अति भाई
सुनु बिहङ्ग प्रसाद अब मोरें * सब शुभ गुन बसिहहिं उर तोरें

तुम्हारी चतुराई देखकर मैं रीझ गया । तुमने भक्ति माँगी, सो मुझे बहुत ही अच्छी लगी । हे पक्षीराज ! सुनो, अब मेरे प्रसाद से तुम्हारे हृदय में सब अच्छे गुण बसेंगे ।

भगति ग्यान बिज्ञान बिरागा * जोगु चरित्र रहस्य बिभागा
जानब तैं सब ही कर भेदा * मम प्रसाद नहिं साधन खेदा

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य योग, चरित्र और उनके रहस्य के भेदों को तुम जानोगे । मेरी कृपा से तुम्हें साधन का कष्ट नहीं होगा ।

दोहा—माया सम्भव भ्रम सब, अब न ब्यापहहिं तोहि ।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ॥८५क॥

अब तुम्हें माया से उत्पन्न भ्रम नहीं सतावेंगे । मुझे ब्रह्म, अनादि, अजन्मा, निर्गुण और गुणों की खान जानना ।

मोहि भगत प्रिय सन्तत, अस बिचारि सुनु काग ।

काँग बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग ।।८५ख।।

सुनो, काग ! मुझे अपने भक्त सदैव प्यारे लगते हैं। ऐसा समझकर शरीर, वचन और मन से मेरे चरणों में निश्चल प्रेम करना।

अब सुनु परम बिमल मम बानी * सत्य सुगम निगमादि बखानी
निज सिद्धान्त सुनावउ तोही * सुनि मन धर सब तजि भजु मोही

अब मेरी, सन्त, सहज, वेदादि में वर्णित परम वाणी सुनो-मैं "निज सिद्धान्त" सुनाता हूँ, उसे मन में रक्खो और सब छोड़कर मुझको भजो।

मम माया सम्भव संसारा * जीव चराचर बिबिध प्रकारा
सब मम प्रिय सब मम उपजाए * सबते अधिक मनुज मोहि भाए

संसार मेरी माया से उत्पन्न है। भाँति-भाँति के जो चराचर जीव हैं, वे सभी मेरे ही उत्पन्न किये हुए हैं। किन्तु मनुष्य मुझको अधिक प्यारे हैं।

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी * तिन्ह महुँ निगम धर्म अनुसारी
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त सुनिग्यानी * ग्याननिहु ते अति प्रिय बिज्ञानी

मनुष्य में भी ब्राह्मण, ब्राह्मणों में वेद-ज्ञाता, इनमें भी वेदोक्त आचरणी वाले, उनमें भी विरक्त मुझे प्रिय हैं। फिर विरक्तों में ज्ञानी और ज्ञानी से भी अधिक प्रिय विज्ञानी हैं।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा * जेहि गत मोरि न दूसरि आसा
पुनि पुनि सत्य कहेउँ तोहि पाहीं * मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं

विज्ञानियों से भी अधिक मुझे दास प्रिय हैं जिसे मेरी ही गति है, कोई दूसरी आशा नहीं। मैं बारम्बार तुमसे सच कहता हूँ कि मुझको भक्त के समान प्यारा दूसरा कोई नहीं।

भगति हीन बिरञ्चि किन होई * सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई
भगतिवन्त अति नीचहिं प्रानी * मोहि प्रानप्रिय अस मम बानी

भक्ति-हीन चाहे ब्रह्मा ही क्यों न हो मुझे सब जीवों के समान ही प्यारा है। परन्तु भक्ति करने वाला अति नीच भी मुझको प्राणों के समान प्यारा है, ऐसी मेरी घोषणा है।

दोहा—सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कहँ नीति अस, सावधान सुनु काग ।। ८६ ।।

पवित्र, सुशील और बुद्धिमान सेवक—कहो, किसे प्यारा नहीं लगता ? वेद-पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं। हे काग ! तुम मन लगाकर सुनो।

एक पिता के बिपुल कुमारा * होंहि प्रथक गुन सील अचारा
कोउ पण्डित कोउ तापस ग्याता * कोउ धनुवन्त सूर कोउ दाता

एक पिता के अनेक पुत्र अलग-अलग गुण, शील और आचरण वाले होते हैं। कोई विद्वान, कोई तपस्वी, कोई धनी, कोई योद्धा और कोई दानी होता है।

कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई * सब पर पितहि प्रीति सम होई
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा * सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा

कोई सर्वज्ञ व कोई धर्मात्मा होता है, परन्तु पिता की सब पर एक समान प्रीति होती है, किंतु उनमें जो कोई मन, क्रम, वचन से पिता का भक्त हो, स्वप्न में भी दूसरा धर्म न जानता हो-

जो सुत प्रिय पितु प्रान समाना * जद्यपि सो सब भाँति सयाना
एहि बिधि जीव चराचर जेते * त्रिजग देव नर असुर समेते

वह पुत्र पिता को प्राण-प्रिय होता है, चाहे वह सब प्रकार से मुर्ख ही हो। ऐसे ही त्रिलोकी में देवता, मनुष्य व असुरों समेत जितने भी जड़ और चेतन प्राणी हैं-

अखिल विश्व यह मोर उपाया * सब पर मोहि बराबरि दाया
तिन्ह महँ जो परि हरिमद माया * भजै मोहि मन बच अरु काया

यह समस्त विश्व मेरा ही उत्पन्न किया हुआ है और मेरी दया सब पर एक समान है। इनमें जो मद और माया को त्याग कर मन, वाणी और देह से मुझे भजते हैं।

दोहा—पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ ॥८७क॥

पुरुष, नपुंसक स्त्री अथवा चराचर जीव कोई हो, सब प्रकार से छल छोड़कर जो मेरा भजन करे, वही मुझको बहुत प्यारा है।

सो०—सत्य कहउ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस विचार भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब ॥८७ख॥

हे पक्षिराज! मैं तुमसे सच कहता हूँ कि सच्चा भक्त मुझे प्राण-प्रिय है, ऐसा समझ कर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझको भजो।

कबहुँ काल नहिं व्यापहि तोहि * सुमिरेसु भजेसु निरन्तर मोही
प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ * तन पुलकित मन अति हर्षाउँ

तुम्हें कभी काल नहीं व्यापेगा, निरन्तर मेरा स्मरण और भजन करते रहना। प्रभु के वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था, पुलकित शरीर से मैं मन में बहुत ही प्रसन्न था।

सो सुख जानइ मन अरु काना * नहिं रसना पहिं जाइ बखाना
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना * किमि कहि सकहिं तिनहि नहिं बयना

वह सुख मन और कान ही जानते हैं। जिव्हा से कहा नहीं जा सकता, प्रभू की सुन्दरता का सुख नेत्र ही जानते हैं। वे उसे कैसे कह सकते हैं—उनके जीभ तो है ही नहीं।

बहु बिधि मोहि प्रबोध सुख देई * लगे करन सिसु कौतुक तेई
सजल नयन कछु मुख करि रूखा * चितइ मातु लागी अति भूखा

बहुत भाँतिसे मुझे समझाकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बाल-लीला करने लगे। सजल

नेत्रों से मुख रूखा करके माता की ओर देखने लगे कि भूख लगी है।

देखि मातु आतुर उठि धाई * कहि मृदु वचन लिए उर लाई
गोद राखि कराव पय पाना * रघुपति चरित ललित करगाना

यह देखकर माता तुरन्त उठ दौड़ी और मधुर वचन कहकर हृदय से लगा लिया। वे गोद में लेकर रघुनाथजी का चरित्र गाती हुई दूध पिलाने लगीं।

सो०—जे सुख लागि पुरारि, असुभ वेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि, तेइ सुख महुँ सन्तत मगन ॥८८क॥

जिस सुख के लिए सुखदाता पुरारि शिवजी ने अमङ्गल वेष धारण किया है, अवधपुरी के नर-नारी सदैव उसी सुख में मग्न रहते हैं।

सोई सुख लवलेस, जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस, ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति ॥८८ख॥

हे गरुड़जी! उसका कुछ अंश स्वप्न में भी जिन्होंने पा लिया है, वे उत्तम-बुद्धि वाले सत्पुरुष ब्रह्मानन्द को भी कुछ नहीं समझते।

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला * देखेउँ बाल विनोद रसाला
राम प्रसाद भगति वर पायउँ * प्रभु पद बन्दि निजाश्रम आयउँ

फिर मैं अवधपुरी में कुछ दिन तक निवास करके प्रभु के बाल-चरित्र देखता रहा। श्रीरामचन्द्रजी की कृपा भक्ति का वर पाकर प्रभु के चरणकमलों में प्रणाम कर मैं अपने आश्रम को लौट आया।

तब ते मोहि न व्यापी माया * जब ते रघुनायक अपनाया
यह सब गुप्त चरित्र मैं गावा * हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा

जब से श्रीरघुनाथजी ने मुझे अपनाया तब से मुझे माया नहीं व्यापी। श्रीहरि की माया ने मुझे जैसे नचाया, यह सब गुप्त चरित्र मैंने कह सुनाया।

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा * बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा
राम कृपा बिनु सुनु खगराई * जानि न जाइ राम प्रभुताई

हे गरुड़जी! अब मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि बिना-हरि भजन किये क्लेश दूर नहीं होते। हे पक्षिराज! सुनो, राम की कृपा के बिना श्रीरामजी की महिमा नहीं जानी जाती।

जानें बिनु न होइ परतीती * बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई * जिमि खगपति जल कै चिकनाई

बिना महिमा जाने विश्वास नहीं होता, बिना बिश्वास के प्रीति नहीं होती और बिना प्रीति के भक्ति नहीं होती, जैसे जल की चिकनाई नहीं ठहरती।

सो०—बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होउ विराग बिनु।

गावहिं वेद पुरान सुख कि, लहिअ हरि भगति बिनु ॥८९क॥

गुरु के बिना क्या ज्ञान और ज्ञान के बिना क्या वैराग्य हो सकता है? वेद व पुराण कहते हैं कि श्रीहरि-भक्ति के बिना क्या सुख मिलता है?

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटियन पचिपचिमरिअ ॥८९ख॥

हे तात ! स्वाभाविक सन्तोष के बिना क्या कोई विश्राम पा सकता है? करोड़ों उपाय करके पच-पच मरिये, परन्तु फिर भी क्या बिना जल के नाव चल सकती है।

बिनु सन्तोष न काम नसाहीं * काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा * थल बिहीन तरुकबहुँ कि जामा

सन्तोष के बिना कामना नष्ट नहीं होती और कामनाओं के रहते हुए स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। श्रीरामजी के भजन बिना क्या कामनायें मिट सकती हैं? क्या पृथ्वी के बिना वृक्ष कभी जमा है।

बिनु विज्ञान कि समता आवइ * कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई * बिनु महि गन्ध न पावइ कोई

विज्ञान के बिना क्या-भाव आता है? आकाश के बिना क्या कोई अवकाश (पोल) पा सकता है। श्रद्धा के बिना धर्म-कार्य नहीं हो सकते, क्या पृथ्वी तत्व के बिना कोई गंध पा सकता है?

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा * जल बिनु रस कि होइ संसारा
सील कि मिलु बिनु बुध सेवकाई * जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई

बिना तप के क्या तेज फैल सकता है? बिना जल के संसार में क्या रस हो सकता है? बुद्धिमान की सेवा बिना क्या शील मिल सकता है? हे स्वामी ! जैसे तेज के बिना रूप नहीं मिलता।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा * परस कि होइ बिहीन समीरा
कवनिउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा * बिनु हरि भजन न भवभय नासा

आत्म-सुख के बिना क्या मन स्थिर रह सकता है? वायु के बिना क्या स्पर्श हो सकता है? विश्वास के बिना क्या कोई सिद्धि मिल सकती है? हरि-भजन के बिना संसार रूपी यश का नाश नहीं हो सकता है।

दोहा—बिनु विश्वास भगत नहिं, तेहिं बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहूँ, जीव न लह विश्रामु ॥९०क॥

विश्वास के बिना भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना श्रीरामजी दया नहीं करते श्रीरामजी कृपा के बिना जीव स्वप्न में भी विश्राम नहीं पा सकता।

सो०—अस विचारि मति धीर, तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुन्दर सुखद ॥९०ख॥

हे धीर-बुद्धि ! ऐसा विचार कर सब कुतर्क और सन्देहों को छोड़कर करुणानिधान और

सुन्दर सुख देने वाले श्रीरघुनाथजी का भजन करो।

निज मति सरिस नाथ मैं गाई * प्रभु प्रताप महिमा खगराई
कहेउँ न कछु करि जुगति बिसेषी * यह सब मैं निज नयनन्हि देखी

हे स्वामी ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप की महिमा गाई है, मैंने इसमें कुछ बात युक्तियों से बढ़ाकर नहीं कही। यह सब मैंने अपनी आँखों से देखी कही है।

महिमा नाम रूप गुन गाथा * सकल अमित अनन्त रघुनाथा
निजमति मुनिहरि गुन गावहिं * निगम सेष शिव पार न पावहिं

श्रीरघुनाथजी की महिमा-नाम, रूप व गुणों की कथा अगणित और अनन्त हैं। मुनिजन अपनी बुद्धि के अनुसार हरि-गुण गाते हैं। वेद, शेष और महादेवजी भी उनका पार नहीं पाते।

तुम्हहि आदि खगमसक प्रजन्ता * नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अन्ता
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा * तात कबहुँ कोउ पावकि थाहा

आप से लेकर मच्छर तक आकाश में उड़ते हैं, परन्तु उसका अन्त नहीं पाते। हे तात! इसी प्रकार श्रीरघुनाथजी की महिमा अपरम्पार है। उसकी थाह क्या कभी कोई पा सकता है ?

राम काम सत कोटि सुभग तन * दुर्गा कोटि अमित और मर्दन
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा * नभ सत कोटि अमित अवकासा

श्रीरामचन्द्रजी अरबों कामदेवों के समान सुन्दर देह वाले हैं और अनन्त कोटि दुर्गाओं के समान शत्रु-नाशक हैं। अरबों इन्द्रों के समान उनका ऐश्वर्य है और अरबों आकाशों के समान वे आकाश विस्तार वाले हैं।

दोहा—मरुत कोटि सत विपुलबल, रबि सतकोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास ॥९१क॥

वे अरबों पवनों से भी बढ़कर बलवान हैं, अरबों सूर्यों के समान प्रकाशवान हैं, अरबों चन्द्रमाओं के समान शीतल और संसार के दुःखों का नाश करने वाले हैं।

काल कोटि सम सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूम्रकेतु सतकोटि सम, दुराधरष भगवन्त ॥९१ख॥

वे अरबों काल के समान अति कठिन, दुरन्त व दुर्गम हैं वे अरबों धूम्रकेतुओंके तुल्य प्रबलहैं।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला * समन कोटि सत सरिस कराला
तीरथ अमित कोटिसम पावन * नाम अखिल अघ पूग नसावन

अरबों पातालोंके समान अथाहहैं और अरबों यमों के समान भयंकर हैं। वे करोड़ों तीर्थोंके समान पवित्र करने वाले हैं। प्रभु का नाम समस्त पातकोंके समूह को नाश करने वाला है।

हिमगिर कोटि अचल रघुबीरा * सिंधु कोटि सत सम गम्भीरा
कामधेनु सत कोटि समाना * सकल काम दायक भगवाना

करोड़ों हिमालय के समान श्रीरघुनाथजी स्थिर हैं और अरबों समुद्रों के समान गहरे हैं।

भगवान अरबों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं को देने वाले हैं ।

सारद कोटि अमित चतुराई * बिधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई
बिष्णु कोटि सम पालन कर्ता * रुद्र कोटि सम सत संहर्ता

उनमें करोड़ों सरस्वती के समान चतुराई है, अरबों ब्रह्माओं के समान सृष्टि रचनेकी निपुणता है। अरबों विष्णुओं के समान पालन-कर्ता और करोड़ों रुद्रों के समान संहार-कर्ता हैं।

धनद कोटि सत सम धनवाना * माया कोटि प्रपञ्च निधाना
भार धरन सत कोटि अहीसा * निरबधि निरुपम प्रभु जगदीसा

वे अरबों कुबेरों के समान धनवान और करोड़ों मायाओं के समान प्रपंच रचने वाले हैं। भार उठाने में अरबों शेषनागों के समान हैं। सीमा और उपमा से रहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जगदीश्वर हैं।

छन्द-निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहैं ।
जिमि कोटिसत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहैं ॥
एहि भाँति निजनिज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं ।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं ॥

श्रीरामचन्द्रजी उपमा रहित हैं, उनकी उपमा नहीं है। वेद कहते हैं कि श्रीरामजी के समान श्रीरामजी ही हैं। जैसे अरबों जुगनुओं को सूर्य के समान कहने में बहुत ही छोटापन लगता है, इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मुनिश्वर श्रीहरि का गान करते हैं। प्रभु तो भाव-मात्र के ग्राहक और बहुत दयालु हैं, प्रेम से सुनकर सुख मानते हैं।

दोहा-रामु अमित गुनसागर, थाह कि पावइ कोइ ।
सन्तंह सनजसि कछु सुनेउँ, तुम्हहिं सुनायउँ सोइ ॥९२क॥

श्रीरामचन्द्रजी तो अपार गुणों के समुद्र हैं, क्या कोई उनकी थाह पा सकता है? मैंने सन्तजनों से जैसा कुछ सुना था, वैसा ही आपको सुनाया।

सो०-भाव बस्य भगवान, सुख निधान करुना भवन ।
तजि ममता मद मान, भजिअ सदा सीता रमन ॥९२ख॥

सुख के समुद्र, करुणानिधान भगवान भाव के वश में हैं। इसलिए ममता, मद और मान को छोड़कर सदैव सीतापति श्रीरामजी का भजन करना ही उचित है।

सुनि भुशुण्डि के बचन सुहाए * हरषित खगपति पंख फूलाए
नयन नीर मन अति हरषाना * श्रीरघुपति प्रताप उर आना

कागभुशुण्डिजी के मनोहर वचन सुनकर गरुड़जी ने प्रसन्न होकर अपने पंख फैला दिये, उन्होंने श्रीरघुनाथजी का प्रताप हृदय में धारण किया। उनकी आँखों में जल आगया और मन बहुत प्रसन्न हुआ।

पाछिल मोह समुझि पछिताना * ब्रह्म अनादि मनुज करि माना

पुनि पुनि काग चरन सिर नावा * जानि राम सम प्रेम बढ़ावा

पिछले मोह को याद करके गरुड़जी बहुत पछताये कि मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य करके माना। गरुड़जी ने कागभुशुण्डिजी के चरणों में शीश नवाया और उन्हें श्रीरामजी के ही समान स्नेह जानकर बढ़ाया।

गुरु बिनु भव निधि तरहि न कोई * जौं बिरञ्चि शंकर सम होई
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता * दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता

बिना गुरु के कोई भवसागर से तर नहीं सकता, चाहे वह ब्रह्मा और शिवजी के समान हो क्यों न हो। वे बोले—हे तात! मुझे संशयरूपी सर्प ने डस लिया था और वहां कुतर्करूपी बहुत सी दुःख देने वाली लहरें आ रहीं थीं।

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक * मोहि जिआयउ जन सुखदायक
तब प्रसाद मम मोह नसाना * राम रहस्य अनूपम जाना

भक्तों को सुख देने वाले श्रीरघुनाथजी की कृपा से आपका स्वरूप मुझे गारुड़ी हुआ। आपके द्वारा प्रभु ने मुझे जिला लिया। आपकी कृपा से मेरा मोह जाता रहा और मैंने भी श्रीरामजी का अनुपम गूढ़ रहस्य जान लिया।

दोहा—ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि, सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥९३क॥

उनकी विविध प्रकार से प्रशंसा करके मस्तक नवाकर और हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक विनती भरे कोमल बचन गरुड़जी पुनः बोले—

प्रभु अपने अबिबेक ते, बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु, जानि दास निज मोहि ॥९३ख॥

हे प्रभो! हे स्वामी! अपने अज्ञान के वश मैं आपसे पूछता हूं, हे कृपासिंधु! मुझे सेवक जानकर आदर सहित मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

तुम सर्बग्य तग्य तम पारा * सुमति सुसील सरल आचारा
ग्यान बिरति बिग्यान निबासा * रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा

आप सब कुछ जानने वाले, तत्व-ज्ञानी, मोह से परे, बुद्धिमान्, सुशील, सरल आचरण वाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के संस्थान हैं। आप श्रीरघुनाथजी के प्यारे भक्त हैं।

कारन कवन देह यह पाई * तात सकल मोहि कहहु बुझाई
रामचरित सर सुन्दर स्वामी * पायहु कहाँ कहहु नभगामी

आपने यह कौए की देह किस कारण पाई? हे तात! सब बात मुझे समझाकर कहिये, हे स्वामी! यह सुन्दर 'रामचरित-मानस' आपने कहाँ से पाया? हे आकाशगामी! सो कहिए।

नाथ सुना मैं अस सिब पाहीं * महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं
मुधा बचन नहिं ईश्वर कहई * सोउ मोरे मन संसय अहई

हे स्वामी ! शिवजी से मैंने ऐसा सुना है कि महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता। शंकरजी असत्य वचन नहीं कहते, यह मेरे मन में संशय है ।

अग जग जीव नाग नर देवा * नाथ सकल जगु काल कलेवा
अण्ड कटाह अमित लयकारी * कालु सदा दुरतिक्रम भारी

हे नाथ ! चराचर जीव, नाग, मनुष्य और देवता आदि सभी इस संसार में काल के कलेवा हैं । असंख्य ब्रह्माण्डों का नाश अनिवार्य है ।

सो०—तुम्हहिं न ब्यापत काल, अति करालकारन कवन ।
मोहि सो कहहु कृपाल, ग्यान प्रभाव कि जोग बल ।।९४क।।

यह भयंकर काल जिस कारण आपको नहीं व्यापता है, हे कृपालु ! वह मुझसे कहिये। यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल है ?

दोहा—प्रभु तव आश्रम आएँ, मोर मोह भ्रम भाग ।
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग ।।९४ख।।

हे प्रभो ! आपको आश्रम में आते ही सारा मोह भ्रम भाग गया । हे नाथ ! इसका क्या कारण है ? वह सब प्रेम सहित कहिये ।

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा * बोलेउ उमा परम अनुरागा
धन्य धन्य तव मति उरगारी * प्रश्न तुम्हारि मोहि अतिप्यारी

हे उमा ! गरुड़जी की वाणी सुनकर कागभुशुण्डिजी प्रसन्न हुए और सप्रेम बोले-हे गरुड़जी ! आपकी बुद्धि बड़ी धन्य है । आपके प्रश्न मुझे बहुत प्यारे लगे ।

सुनि तव प्रश्न सप्रेम सुहाई * बहुत जन्म कै सुधि मोहि आई
सब निज कथा कहउँ मैं गाई * तात सुनहु सादर मन लाई

तुम्हारे प्रेम भरे सुन्दर प्रश्न सुनकर मुझे अनेकों जन्मों की सुधि आगई । हे तात ! मैं अपनी कथा का वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो ।

जप तप मख सम दम ब्रत नाना * बिरति बिबेक जोग बिग्याना
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा * तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा

जप, तप, यज्ञ, संयम, दम, व्रत, दान, वैराग्य, योग, विज्ञान आदि इन सबका फल श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम होना है । इसके बिना कोई कल्याण नहीं पाता ।

एहि तनु रामभगति मैं पाई * ताते मोहि ममता अधिकाई
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई * तेहि पर ममता कर सब कोई

इस शरीर से मैंने श्रीरामजी की भक्ति पाई है, अतः इस देह पर मुझे अधिक प्रेम है । जिससे अपना कुछ स्वार्थ हो, उस पर सभी लोग प्रेम करते हैं ।

सो०—पन्नगारि असि नीति, श्रुति सम्मत सज्जन कहहिं ।

अति नीचहु सन प्रीति, करिअ जानि निज परम हित ॥९५क॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी ! वेद-मत सत्पुरुष ऐसी नीति कहते हैं कि अपना परम हित जानकर महानीच से भी प्रीति करनी चाहिए।

पाट कीट तें होइ, तेहि तें पाटम्बर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ, परम अपावन प्रान सम ॥९५ख॥

रेशम कीड़े से होता है, उससे रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसी से परम अपवित्र कीड़े को भी सब लोग अपने प्राणों की भाँति पालते हैं।

स्वारथ साँच जीव कहुँ ऐहा * मन क्रम बचन राम पद नेहा
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा * जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा

जीवन का सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, कर्म और वाणी से श्रीरामजी के चरणों में स्नेह हो। वही शरीर पवित्र और सुन्दर है, जिस शरीर को पाकर कि श्रीरघुनाथजी का भजन किया जाय।

राम बिमुख लहि बिधि सम देही * कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही
रामभगति एहिं तनु उर जामी * ताते मोहि परम प्रिय स्वामी

जो श्रीरामजी से विमुख है, वह चाहे ब्रह्मा के समान देह पा जाय, तो भी चतुर विद्वान् उसकी प्रशंसा नहीं करते। हे स्वामी ! इस शरीर से श्रीरामजी की भक्ति मेरे हृदय में उत्पन्न हुई, इसी से यह शरीर मुझे परम प्रिय है।

तजहूँ तनु निज इच्छा मरना * तनु बिनु बेद भजन नहिं बरना
प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा * राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा

अपनी इच्छा से मरण होने पर भी मैं इस संसार को नहीं छोड़ता। क्योंकि वेदों में कहा है कि बिना शरीर के भजन नहीं होता। पहले मुझे भी मोह ने बहुत सताया था। श्रीरामजी से विमुख होकर मैं सुख से भी नहीं सोया।

नाना जन्म कर्म पुनि नाना * किए जोग जप तप मख दाना
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं * मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं

अनेक जन्म लेकर नाना प्रकार के कर्म, योग, भय, तप, यज्ञ, दान आदि किये। हे पक्षिराज ! संसार में ऐसी कौन सी यौनि है, जिसमें घूम-घूमकर मैं नहीं जन्मा ?

दोहा—प्रथम जन्म के चरित अब, कहउँ सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ, जातें मिटहिं कलेस ॥९६क॥

हे पक्षीराज ! सुनिये-अब मैं अपने पूर्व-जन्म के चरित्र कहता हूँ। उन्हें सुनकर प्रभु के चरणों में स्नेह उत्पन्न होगा, जिससे कलेश मिट जावेंगे।

पूरुब कल्प एक प्रभु, जुग कलिजुगमल मूल।

नर अरु नारि अधर्म रत, सकल निगम प्रतिकूल ॥९६ख॥

हे प्रभो ! पहले कल्प में पहिला कलियुग पाप की जड़ था। पुरुष और स्त्री सभी अधर्मी और वेद के विरोधी थे।

तेहिं कलजुग कोसलपुर जाई * जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी * आन देव निन्दक अभिमानी

उसी कलियुग में अवधपुरी में जाकर मैं शुद्र का शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, कर्म और वचन से शिवजी का भक्त था, परन्तु अन्य देवताओं का निन्दक और घमण्डी था।

धन मद मत्त परम बाचाला * उग्र बुद्धि उर दम्भ बिसाला
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी * तदपि न कछु महिमा तब जानी

धन के घमंड में मस्त रहता हुआ मैं बड़ा बकवादी था मेरी बुद्धि तीव्र थी और मैं पाखंडी था। यद्यपि मैं रामजी की राजधानी में रहता था, तो भी मैंने तब उनकी महिमा कुछ नहीं जानी।

अब मैं जाना अवध प्रभावा * निगमागम पुरान अस गावा
कबनेहुँ जन्म अवध बस जोई * राम परायण सो परि होई

अवधपुरी का प्रभाव मैंने जाना। वेद, शास्त्र और पुराणों में ऐसा कहा है कि कोई किसी भी जन्म में अवधपुरी में वास करे तो वह अन्त समय श्रीराम का भक्त हो जायगा।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी * जब उर बसहिं रामु धनुपानी
सो कलिकाल कठिन उरगारी * पाप परायण सब नर नारी

अयोध्या के प्रभावको प्राणी तभी जानता है, जब श्रीरामजी धनुषबाण हाथमें लिए उसके हृदय में वास करें। हे गरुड़जी ! यह कलियुग बड़ा कठिन था, क्योंकि सब नरनारी पाप में लिप्त थे।

दोहा—कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सद्ग्रन्थ।
दम्भिन्ह निजमति कल्पि करि, प्रकट किए बहु पन्थ ॥९७क॥

कलि-काल में पापों ने सब धर्मों को दबा लिया, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये। पाखण्डियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना करके अनेक ग्रन्थ प्रकट कर दिये।

भए लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे शुभ कर्म।
सुनि हरिजान ग्यान निधि, कहउँ कछुक कलिधर्म ॥९७ख॥

सब लोग मोह के वश हो गये, लोभ ने शुभ कर्मों को ग्रस लिया। हे ज्ञानवान् गरुड़जी। अब कलियुग के कुछ धर्म कहता हूँ, सो सुनिये—

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी * श्रुति विरोध रत सब नर नारी
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन * कोउ नहिं मान निगम अनुसासन

कलियुग में वर्ण, धर्म और चारों आश्रम नहीं रहते। सब नर-नारी वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण-वेदों के बेचने वाले, राजा-प्रजा को खा जाने वाले होते हैं, वेद की आज्ञा को कोई नहीं मानता।

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा * पण्डित सोइ जो गाल बजावा
मिथ्यारंभ दम्भ रत जोई * ता कहुँ सन्त कहई सब कोई

जिसको जो अच्छा लगे, वही मार्ग है और वही पण्डित है—जो डींग मारता है, झूंठी बातें करता है और पाखण्ड में लगा है, उसी को सब लोग सन्त कहते हैं।

सोइ सयान जो परधन हारी * जो कर दम्भ सो बड़ आचारी
जो कह झूँठ मसखरी जाना * कलियुग सोइ गुनवन्त बखाना

जो पराया धन हर लेता है-वही चतुर है, जो बहुत पाखण्ड करता है-वह बड़ा आचारी है। जो झूंठ बोलना और हँसी करना जानता है-कलियुग में वही गुणवान कहलाता है।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी * कलियुग सोइ ग्यानी सो बैरागी
जाकें नख अरु जटा बिसाला * सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला

जो आचार-भ्रष्ट और वेद-मार्ग को त्यागे हुए है—वही कलियुग में ज्ञानी और वैरागी है जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी जटायें हैं—कलियुग में वही प्रसिद्ध तपस्वी है।

दोहा—अशुभ वेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं ॥९८क॥

जो अमङ्गल-वेष और अमङ्गल भूषण धारण किये हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य सब खा लेते हैं, कलियुग में वही योगी, सिद्ध और वही पूज्य हैं।

सो०—जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लवार, तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥९८ख॥

जो पराया अहित करते हैं, उन्हीं को गौरव मिलता है और वे ही धन्य हैं। जो मन, कर्म और वचन से लवार हैं—वे ही कलियुग में वक्ता कहलाते हैं।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं * नाचहिं नट मर्कट की नाईं
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना * मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना

हे गोसाईं! सब पुरुष-स्त्री के वश में हैं और वे नट के बन्दर की भाँति नाचते हैं। ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और यज्ञोपवीत गले में डालकर कुदान लेते हैं।

सब नर काम लोभ रत क्रोधी * देव बिप्र श्रुति सन्त बिरोधी
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी * भजहिं नारि पर पुरुष अभागी

सब लोग काम, लोभ, और क्रोध में रत हैं देवता, ब्राह्मण, वेद और सन्तजनों से विरोध करते हैं। गुणवान सुन्दर पति को छोड़कर अभागिनी स्त्रियाँ पर-पुरुषों से प्रीति करती हैं।

सौभागिनीं बिभूषन हीना * बिधवन्ह के सिङ्गार नबीना
गुरु सिष बधिर अन्धका लेखा * एक न सुनइ एक नहिं देखा

सुहागिनी-स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित हैं और विधवाओं के नित्य-नये शृंगार होते

हैं। गुरु और शिष्य का अन्धे और बहरे का सा वर्ताव होता है। एक (शिष्य) सुनता नहीं और एक (गुरु) देखता नहीं।

हरइ शिष्य धन सोक न हरई * सो गुरु घोर नरक महुँ परई
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं * उदर भरे सोइ धर्म सिखावहिं

जो गुरु-शिष्य के धन को हरे, परन्तु उसका अज्ञान दूर नहीं करे तो वह गुरु घोर नरक में गिरता है। माता-पिता अपने बालक को जिससे पेट भरे, वही धर्म सिखाते हैं।

दोहा—ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं बिप्र गुरु घात ॥९९क॥

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवाय दूसरी बात नहीं करते वे लोभ के वश थोड़े से ही धन के लिए ब्राह्मण और गुरु को मार डालते हैं।

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि ॥९९ख॥

शूद्र ब्राह्मणों से वाद-विवाद करते हैं कि 'हम' तुमसे क्या कम हैं ? जो ब्रह्म को जाने वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। ऐसे डपट कर आँख दिखाते हैं।

पर त्रिय लम्पट कपट सयाने * मोह द्रोह ममता लपटाने
ते अभेदवादी ग्यानी नर * देखा मैं चरित्र कलियुग कर

जो पराई स्त्री में आसक्त, ठगने में चतुर और मोह, द्वेष तथा ममता में फँसे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (अद्वैतवादी) ज्ञानी कहलाते हैं। मैंने कलियुग में ऐसे चरित्र देखे।

आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं * जे कहुँ सत मारग प्रति पालहिं
कल्प कल्प भरि एक एक नरका * परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका

स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, परन्तु जो कोई सद्मार्ग पर चलते हैं, उनको भी नष्ट कर देते हैं। जो तर्क करके वेद को दोष लगाते हैं, वे एक कल्प भर एक २ नरक में पड़े रहते हैं।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा * स्वपच किरात कोल कलवारा
नारि मुई गृह सम्पति नासी * मूढ़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी

तेली, कुम्हार, चाण्डाल, किरात, कोल, कलवार, आदि जो नीच हैं, वे स्त्री के मरने पर और घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुड़ाकर सन्यासी वन जाते हैं।

ते बिप्रन्ह सन पाँय पुजावहिं * उभय लोक निज हाथ नसावहिं
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी * निराचार सठ बृषली स्वामी

वे ब्राह्मणों से अपने पाँव पुजाते हैं और अपने हाथों अपने दोनों लोक बिगाड़ लेते हैं। ब्राह्मण, मूर्ख, लोभी, कामी आचार हीन, मूर्ख और नीच जाति की स्त्री के स्वामी होते हैं।

दोहा—भए बरनशंकर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।

करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक वियोग ॥१००क॥

सब लोग कलियुग में वर्णशंकर और मर्यादा से च्युत हो गये। वे पाप करके दुःख, भय, रोग, शोक और वियोग पाते हैं।

श्रुति सम्मति हरि भगति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पन्थ अनेक ॥१००ख॥

जो वेद-समस्त और वैराग्य तथा ज्ञान से युक्त श्रीहरि-भक्ति का मार्ग है, उस पर तो लोग चलते नहीं और अज्ञान के वश में अनेक नये पन्थों की कल्पना कर लेते हैं।

बहु दाम सँवारहिं धाम जती। विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही

सन्यासी बहुत-सा धन लगाकर आश्रम सजाते हैं, वैराग्य उनमें नहीं रहा, उन्हें विषयों ने हर लिया। तपस्वी धनवान और गृहस्थी दरिद्री हैं। हे तात! कलियुग का कौतुक कुछ नहीं जाना जाता।

कुलवन्ति निकारहि नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं

पुरुष कुलवन्ती और पतिव्रता स्त्री को घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल को छोड़ कर दासी को घर में रखते हैं। लड़के माता-पिता को तब तक ही मानते हैं—जब तक कि वे स्त्री का मुँह नहीं देखते।

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपु रूप कुटुम्ब भए तब तें
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दण्ड बिडम्ब प्रजा नितहीं

जब से ससुराल प्यारी लगने लगी, तब से कुटुम्बी शत्रु होगये। राजा पाप में लग गये उनमें धर्म नहीं रहा। वे नित्य ही प्रजा को दण्ड देकर सताते हैं।

धनवन्त कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी
नहिं मान पुरान न वेदहिं जो। हरि सेवक सन्त सही कलि सो

नीच जाति का होने पर भी 'धनवान्' कुलीन कहलाता है। जनेऊ मात्र ही ब्राह्मणों का चिन्ह हो गया है और नंगे शरीर रहना ही तपस्वी का रूप है। जो पुराण और वेदों को नहीं मानते-कलियुग में वे ही 'हरि-भक्त' और 'साधु' कहलाते हैं।

कबिबृन्द उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै

कवि तो बहुत हैं, परन्तु संसार में कोई उदार पुरुष सुनने में नहीं आते। गुणों में दोष लगाने वाले हैं, परन्तु गुणी कोई नहीं है। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ता है, सब लोग अन्न के बिना दुखी हो मरते हैं।

दोहा—सुनु खगेसि कलि कपट हठ, दम्भ द्वेष पाखण्ड।

मान मोह मारदि मद, व्यापि रहे ब्रह्माण्ड ॥१०१क॥

हे पक्षीराज गरुड़जी ! सुनो—कलियुग में छल, हठ, दम्भ, ईर्षा, पाखण्ड, काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार संसार भर में फैल रहे हैं।

तामस धर्म करहिं नर, जपतप व्रत मखदान।
देव न बरषहिं धरनि जल, बए न जामहिं धान ॥१०१ख॥

मनुष्य जप, तप, व्रत और दान-तामसी-भाव से करते हैं। देवता पृथ्वी पर वर्षा नहीं करते और बोया हुआ अन्न उपजता नहीं।

छन्द—अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीं दुखी ममता बहुधा
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता

स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं, उनको भूख बहुत लगती है। धनहीन और अधिक ममता होने के कारण वे दुखी रहती हैं। कलियुग में वे भी मूर्ख सुख तो चाहती हैं, परन्तु धर्म में प्रीति नहीं करतीं। उनकी बुद्धि थोड़ी और कठोर है, उसमें कोमलता नहीं होती।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकार नहीं
लघु जीवन सम्बत पञ्चदशा। कल्पाँत न नास गुमानु असा

मनुष्य रोग से पीड़ित हैं, उन्हें सुख नहीं मिलता। बिना कारण ही लोग अभिमान और विरोध करते हैं। दस पाँच वर्ष की थोड़ी आयु होने पर भी ऐसा घमण्ड है कि मानो कल्पों तक भी नाश नहीं होगा।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मँगता

कलियुग ने मनुष्यों को बेहाल कर डाला। कोई बहिन-बेटी को भी नहीं मानता। न सन्तोष है, न विचार है, न शान्ति है, सब जाति-कुजाति मंगता बन गये हैं।

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरिपूर रही समता बिगता
सब लोग बियोग बिसोक हुए। बरनाश्रम धर्म आचार गए

डाह, कठोरता, छल, लालच हो रहे हैं, समता जाती रही। सब लोग वियोग व अधिक दुःख से मरे पड़े हैं। वर्णाश्रम, धर्म, और विचार जाता रहा है।

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर बंचनताति घनी
तनु पोसक नारि नरा सगरे। परनिन्दक जे जुग मो बगरे

इन्द्रियों को जीतना, दान, दया, और समझदारी किसी में नहीं। मूर्खता और ठगाई बहुत दृढ़ हुई है। सब स्त्री-पुरुष अपने शरीर को पुष्ट करने वाले हैं। पराये निन्दक संसार में बहुत पैदा हो गये हैं।

दोहा—सुनु ब्यालारि कराल कलि, मल अवगुन आगार।

गुनउ बहुत कलिकाल कर, बिनु प्रयास निस्तार ॥१०२क॥

हे गरुड़जी ! सुनिये, कलियुग यद्यपि पाप और दोषों का भण्डार है, तो भी इसमें एक विशेष गुण है कि इसमें बिना परिश्रम ही उद्धार हो जाता है।

दोहा—कृतजुग त्रेताँ द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलिकाल, हरि नाम ते पावहिं लोग ॥१०२ख॥

सतयुग, त्रेता और द्वापर में पूजा, यज्ञ और योग से जो गति मिलती है, वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान के नाम से ही पा जाते हैं।

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी * करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं * प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं

सतयुग में सब योगी और ज्ञानी होकर श्रीहरि का ध्यान करते हैं। तब भवसागर से पार हो पाते हैं। त्रेतायुग में लोग अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और सब कर्मों को भगवान के अर्पण करके संसार से पार हो जाते हैं।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा * नर भव तरहिं उपाय न दूजा
कलियुग केवल हरिगुन गाहा * गावत नर पावहिं भव थाहा

द्वापर में श्रीरामजी के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तरते हैं, दूसरा उपाय नहीं है परन्तु कलियुग में मनुष्य केवल हरि-गुण गाकर ही भवसागर की थाह पा जाते हैं।

कलियुग जोग न जग्य न ग्याना * एक अधार राम गुन गाना
सब भरोस तजि जो भज रामहि * प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि

कलियुग में योग, यज्ञ व ज्ञान नहीं है केवल रामगुण-गान ही एक आधार है। जो सब भरोसों को त्यागकर श्रीरामजी का भजन करते हैं और प्रेम सहित उनके गुण-समूहों को गाते हैं।

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं * राम प्रताप प्रगट कलि माहीं
कलि कर इक पुनीत प्रतापा * मानस पुन्य होहिं नहिं पापा

वही भवसागर से तरते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं। कलियुग में नाम का प्रताप प्रत्यक्ष है। कलियुग का एक और पवित्र प्रताप है कि मन किया पुण्य तो होता है, परन्तु पाप नहीं होता।

दोहा—कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥१०३क॥

कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है। जो मनुष्य विश्वास रखकर श्रीरामजी के चरित्रों का गान करे तो बिना ही प्रयास संसार से तर जावे।

प्रगट चारि पद धर्म के, कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें, दान करइ कल्यान ॥१०३ख॥

धर्म के चार चरण प्रसिद्ध हैं, उनमें से कलियुग में एक ही मुख्य है। किसी भी विधि से दिया गया दान कल्याण ही करता है।

नित जुग धर्म होहिं सब केरे * हृदयँ राम माया के प्रेरे
शुद्ध सत्व समता बिग्याना * कृत प्रभाव प्रसन्न मत जाना

युगों के धर्म सबके हृदय में श्रीरामजी को प्रेरणा से नित्य उत्पन्न हुआ करते हैं। शुभ सत्वगुण, समता, विज्ञान और मन का प्रसन्न होना, सतयुग का प्रभाव जानो।

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा * सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस * द्वापर धर्म हरष भए मानस

सत्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेता का धर्म है। रजोगुण अधिक हो, सत्वगुण बहुत थोड़ा हो, कुछ तमोगुण भी हो, वन में आनन्द और भय हो—द्वापर का धर्म है।

तामस बहुत रजोगुण थोरा * कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा
बुध जग धर्म जानि मन माहीं * तजि अधर्म रति धर्म कराहीं

तमोगुण अधिक हो, रजोगुण कम हो, चारों ओर विरोध हो—यह कलियुग का प्रभाव हैं। वृद्धजन युगों के धर्म जानकर अधर्म छोड़कर धर्म में प्रीति करते हैं।

काल धर्म नहिं व्यापहि ताही * रघुपति चरन प्रीति अतिजाही
नट कृत बिकट कपट खगराया * नव सेवकहि न व्यापइ माया

श्रीरघुनाथजी के चरणोंमें जिनकी अति प्रीति है, उसे काल-धर्म नहीं व्यापते। हे पक्षीराज! जैसे नट का किया हुआ विकट कपट और उसकी माया नट के सेवक को नहीं व्यापती।

दोहा—हरिमाया कृत दोष गुन, बिनु हरिभजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब, अस बिचारि मन माहिं ॥१०४क॥

श्रीहरि की माया के किये हुए दोष गुण हरि-भजन के बिना नहीं जाते। मन में ऐसा विचारकर सब कामनाओं को त्यागकर श्रीरामजी का भजन करना चाहिए।

तेहिं कलिकाल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहँगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस, तब मैं गयउँ बिदेस ॥१०४ख॥

हे पक्षिराज! उस कलियुग में मैं बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब विपत्ति के कारण मैं परदेश चला गया।

गयउँ उजैनी सुनु उरगारी * दीन मलीन दरिद्र दुखारी
गएँ काल कछुक सम्पति पाई * तहँ पुनि करउँ शम्भु सेवकाई

हे गरुड़जी! मैं दीन, मलीन, दरिद्री और दुखी होकर उज्जैन गया। कुछ समय बीतने पर थोड़ा सा धन पाकर मैंने वहाँ शिवजी का पूजन किया।

बिप्र एक बैदिक शिव पूजा * करइ सदा तेहि काजु न दूजा
परम साधु परमारथ बिन्दक * शंभु उपासक नहिं हरि निन्दक

वहाँ एक वेद ज्ञाता ब्राह्मण सर्वदा शिव-पूजन किया करता था, उसे कोई दूसरा काम न था। वह परम साधु परमार्थ का जानने वाला शिवजी का उपासक था, परन्तु श्रीहरि निन्दक न था।

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता * द्विज दयाल अति नीति निकेता
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं * बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं

मैं उसकी सेवा कपट से करता था, वह बड़ा दयालु और नीतिवान् था। हे स्वामी! ऊपर से नम्र देखकर ब्राह्मण ने मुझे पुत्र के समान पढ़ाया।

सम्भु मन्त्र मोहि द्विजबर दीन्हा * सुभ उपदेश बिबिध बिधि कीन्हा
जपउँ मन्त्र सिव मन्दिर जाई * हृदयँ दम्भ अहमित अधिकाई

फिर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे शिवजी का मंत्र दिया और अनेक प्रकार का उपदेश दिया। मैं शिवालय में जाकर शिव-मन्त्र जपता था, मेरे हृदय में पाखण्ड और अहङ्कार बस गया।

दोहा—मैं खल मल संकुल मति, नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखे जरउँ, करउँ बिष्णु कर द्रोह ॥१०५क॥

मैं दुष्ट, मलिन-बुद्धि, नीच जाति का मोह वश ब्राह्मण और भक्तों को देखते ही जल जाता था और श्रीहरि से द्रोह करता था।

सो०—गुर नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजाइ अति क्रोध, दम्भिहि नीति कि भावई ॥१०५ख॥

गुरुदेव मुझे नित्य समझाते और आचरणों को देख दुःखी होते थे, पर मुझे बहुत क्रोध आता था। दम्भी को क्या नीति भली लगती है?

एक बार गुरु लीन्ह बोलाई * मोहि नीति बहु भाँति सिखाई
सिव सेवा कर फल सुत सोई * अबिरल भगति राम पद होई

एक दिन गुरुजी से मुझे बुलाकर बहुत प्रकार से नीति की शिक्षा दी कि हे पुत्र! शिवजी की पूजा का यह फल है कि श्रीरामजी के चरणों में भक्ति हो।

रामहि भजहिं तात सिव धाता * नर पाँवर कै केतिक बाता
जासु चरन अज सिव अनुरागी * तासु द्रोह सुख चहसि अभागी

हे तात! महादेवजी और ब्रह्माजी भी श्रीरामचन्द्रजी का भजन करते हैं, तुच्छ मनुष्य की तो बात ही कितनी है? शिवजी और ब्रह्माजी जिनके चरणों में प्रीति करते हैं, उनसे द्रोह करके, रे अभागे! तू सुख चाहता है।

हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ * सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ
अधम जाति मैं बिद्या पाए * भयउ जथा अहि दूध पिआए
मानि कुटिल कुभाग्य कुजाती * गुर कर द्रोह करउ दिनराती

गुरुजी ने शिवजी को 'हरि-गुरु-सेवक' कहा, यह सुनकर हे गरुड़जी। मेरा हृदय जल उठा। मैं अधम-जाति का विद्या पाकर ऐसे हो गया, जैसे दूध पिलाने से साँप। अत्यन्त मानी, टेढ़ा

भाग्य-हीन और जाति का नीच मैं गुरुजी से रात-दिन द्रोह करने लगा ।

अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा * पुनिपुनि मोहि सिखाव सुबोधा
मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई * गुरु हित कहइ न मोहि सोहाई

गुरुजी बड़े दयालु थे,वे क्रोध नहीं करते थे,मुझे बारम्बार अच्छे ज्ञानकी शिक्षा देतेथे । मैं दुष्ट था, हृदय में कपट और कुटिलता थी गुरुदेव ने मेरी भलाई की बात कही, पर मुझे न सुनाई ।

दोहा—एक बार हर मन्दिर, जपत रहेउँ सिव नाम ।
गुरु आयउ अभिमान तें, उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ।।१०६क।।

मैं एक बार शिवालय में शिवजी का नाम जप रहा था, उसी समय वहाँ गुरुजी आये । परन्तु मैंने घमण्ड के मारे प्रणाम नहीं किया ।

सो दयालु नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेष ।
अति अघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सके महेश ।।१०६ख।।

गुरुजी तो दयालु थे उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, उनके मनमें कुछ भी क्रोध न था । परन्तु गुरुजी के अपमान से महापाप हुआ, अतः शिवजी उसे सह न सके ।

मन्दिर माँझ भइ नभ बानी * रे हत भाग्य अग्य अभिमानी
जद्यपि तव गुरु कें नहिं क्रोधा * अति कृपाल चित सम्यक बोधा

मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि अरे अभागे, अज्ञानी ! यद्यपि तेरे गुरु के हृदय में क्रोध नहीं है । वे बड़े दयालु हैं, उनके हृदय में पूर्ण ज्ञान है ।

तदपि शाप सठ दैहउँ तोही * नीति बिरोध सोहाइ न मोही
जौं नहिं दण्ड करौं खल तोरा * भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा

तो भी रे दुष्ट ! मैं तुझे शाप दूंगा, क्योंकि नीति का विरोध मुझे नहीं सुहाता । अरे नीच ! यदि मैं तुझे दण्ड न दूंगा तो मेरी मर्यादा नष्ट हो जायगी ।

जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं * रौरव नरक कोटि जुग परहीं
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा * अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा

जो मूर्ख गुरु से द्वेष करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं । फिर तिर्यग-योनि में जन्म पाकर दस हजार जन्मों तक दुःख पाते हैं ।

बैठि रहेसि अजगर इव पापी * सर्प होहि खल मलमति व्यापी
महा बिटप कोटर महुँ जाई * रहु अधमाधम अधगति पाई

रे पापी नीच ! अपने गुरु को देख तू अजगर की भाँति बैठा रहा । तुझे पाप-बुद्धि ने घेर लिया है तू सर्प हो जा । रे नीच ! तू अधम गति को पाकर बड़े वृक्ष के खोखले में जाकर रह ।

दोहा—हाहाकार कीन्ह गुरु, दारुन सुनि सिव शाप ।
कम्पित मोहि बिलोकि अति, उर उपजा परिताप ।।१०७क।।

महादेवजी का शाप सुनकर गुरुजी ने हा-हाकार किया । मुझे काँपते देखकर उनको बहुत दुःख हुआ ।

दोहा—करि दण्डवत सप्रेम द्विज, शिव सन्मुख कर जोरि ।
बिनय करत गद्‌गद् गिरा, समुझि घोर अति मोरि ।।१०७ख।।

तब मेरी भयङ्कर गति समझकर वे ब्राह्मण प्रेम सहित शिवजी के सामने हाथ जोड़कर दण्डवत करके गद्‌गद् वाणी से स्तुति करने लगे—

नमामीशमशान निर्वाण रूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूपं
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं

हे ईशान दिशा के ईश्वर, मोक्षस्वरूप, विभू, व्यापक, ब्रह्म और वेद-स्वरूप ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । स्वतन्त्र, निर्गुण, एक रस, इच्छा रहित, सूक्ष्म और स्थूल, आकाश में वास करने वाले आपका मैं भजन करता हूँ ।

निराकार ओंकारं मूलं तुरीयं । निराग्यान गोतीतमीशं गिरीमं
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसार पारं नतोऽहं

निराकार, ओंकार की जड़, समाधि पूर्ण, वाणी और इन्द्रियों से परे, कैलाशपति, महा काल के भी काल दयालु, गुणों के भण्डार, संसार से परे मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गँभीरं । मनोभूत कोटिप्रभा श्रीशरीरं
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनीचारुगंगा । लसद भाल बालेन्दु कंठेभुजङ्गा

जो हिमालय के समान गौर-वर्ण और गम्भीर हैं, करोड़ों कामदेवों के समान कान्ति, मान शरीर वाले हैं, जिनके मस्तक पर सुन्दर गंगाजी विराजमान हैं, जिनके भाल पर दौज का चन्द्रमा तथा गले में सर्प शोभायमान हैं ।

चलत्कुन्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं । प्रसन्नाननं नीलकंठ दयालं
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रिय शङ्करं सर्वनाथं भजामि

जिनके कानों में चंचल कुण्डल हैं, सुन्दर भृकुटी और विशाल नेत्र हैं, जो प्रसन्न मुख नील-कण्ठ और दयालु हैं । जो बाघम्बर धारण किये हैं तथा मुण्ड-मालाधारी हैं, उन सब के स्वामी शिवजी को भजता हूँ ।

प्रचन्ड प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखण्डं अजं भानुकोटि प्रकाशं
त्रयःशूल निर्मूलनं शूल पाणिं । भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं

तेज पूर्ण, श्रेष्ठ, सामर्थ्यवान, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान, तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करने वाले, हाथ में त्रिशूल लिए हुए, भाव से प्राप्त होने वाले-पार्वतीजी के पति को भजता हूँ ।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी । सदा सज्जनान्द दाता पुरारी

चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी

कलाओं से परे, कल्याणदाता, कल्प का अन्त करने वाले, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले सच्चिदानन्दघन, अज्ञान को हरने वाले, कामदेव के शत्रु, हे प्रभो ! प्रसन्न हूजिए–प्रसन्न हूजिए।

न यावद् उमानाथ पदारविन्द। भजंतीह लोके परे बानराणाँ
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनासं। प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवासं

हे उमानाथ ! जब तक मनुष्य आपके चरणारविन्दों को नहीं भजते, तब तक उन्हें इस लोक में अथवा परलोक में सुख-शान्ति नहीं मिलती और न दुःख का नाश होता है। अतः सब जीवों में वास करने वाले प्रभो ! प्रसन्न हूजिए।

न जानामि योगं जपं नैव पूजाँ। नजोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुम्यं
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्मामीश शम्भो

हे शम्भू ! मैं न तो योग जानता हूँ, और न जप व पूजा ही। मैं तो सदैव आपको ही प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो ! बुढ़ापे और जन्म के दुःखों से क्लेशित मुझ दुःखी की दुःख से रक्षा कीजिये। हे ईश्वर ! हे शिवजी ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

श्लोक–रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषाँ शम्भुः प्रसीदति॥

यह रुद्राष्टक ब्राह्मण द्वारा शिवजी की प्रसन्नता के लिए कहा गया। इसको जो भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं, उन पर शङ्करजी प्रसन्न होते हैं।

दोहा–सुनि बिनती सर्वग्य सिव, देखि बिप्र अनुराग।
पुनि मन्दिर नभ बानी, भइ द्विजवर वर माँगु॥१०८क॥

जब सर्वज्ञ शिवजी ने ब्राह्मण की विनती सुनी और प्रेम को देखा, तब मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वर मांगो।

जौं प्रसन्न प्रभु मो पर, नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु, पुनि दूसर वर देहु॥१०८ख॥

ब्राह्मण बोला–हे प्रभो ! हे नाथ ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं और स्नेह रखते हैं, तो अपने चरणों की भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिये।

तब माया बस जीव जड़, सन्तत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु, कृपासिंधु भगवान॥१०८ग॥

आपकी माया के वश यह जड़ जीव निरन्तर भूला फिरता है। हे कृपा के समुद्र भगवान इस पर क्रोध न कीजिये।

शङ्कर दीनदयालु अब, एहि पर होहु कृपाल।

शाप अनुग्रह होइ जेहिं, नाथ थोरेहिं काल ॥१०८घ॥

हे दीनदयालु शंकरजी ! अब इस पर दयालु हो जाइये। जिससे-हे नाथ ! थोड़े ही समय में आपके श्राप से छुटकारा हो जाय।

एहि कर होइ परम कल्याना * सोइ करहु अब कृपानिधाना
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी * एवमस्तु इति भइ नभ बानी

हे कृपानिधान ! अब यही कीजिए जिससे इसका परम कल्याण हो। ब्राह्मण की परमार्थ से भरी हुई वाणी सुनकर यह आकाशवाणी हुई-'एवमस्तु !'

जदपि कीन्ह एहि दारुन पापा * मैं पुनि दीन्ह कोपि कर शापा
तदपि तुम्हारि साधुता देखी * करिहउँ एहि हर कृपा बिशेषी

यद्यपि इसने घोर पाप किया है और मैंने भी क्रोध करके श्राप दिया है, तो भी तुम्हारी सज्जनता देखकर इस पर मैं विशेष कृपा करूँगा।

क्षमाशील जे पर उपकारी * तेद्विज मोहि प्रिय जथा खरारी
मोर श्राप द्विज व्यर्थ न जाइहि * जन्म सहस्त्र अवसि यह पावहि

हे विप्र जो क्षमावान और परोपकारी हैं, वे मुझे ऐसे प्यारे हैं, जैसे रामजी ! मेरा श्राप व्यर्थ नहीं जायगा, अतः यह हजार जन्म अवश्य पावेगा।

जनमत मरत दुसह दुख होई * एहि स्वल्पउ नहिं व्यापहि सोई
कवन जन्म मिटहि नहिं ग्याना * सुनहु सूद्र मम बचन प्रमाना

परन्तु जन्म लेने और मरने में जो कठिन दुःख होता है, यह दुःख इसे कुछ नहीं व्यापेगा। और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नष्ट नहीं होगा। हे शूद्र ! मेरा प्रामाणिक वचन सुन-

रघुपति पुरीं जन्म तव भयऊ * पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें * राम भगति उपजहि उर तोरें

श्रीरघुनाथजी की पुरी में तेरा जन्म हुआ, फिर मेरी सेवा में तूने मन लगाया। अब पुरी के प्रभाव से और मेरी कृपा से तेरे हृदय में राम-भक्ति उत्पन्न होगी।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई * परितोषन ब्रत द्विज सेवकाई
अब जनि करसि बिप्र अपमाना * जानेसु सन्त अनन्त समाना

हे भाई ! अब तू मेरा सत्य वचन सुन-ब्राह्मण सेवा श्रीहरि को प्रसन्न करने वाला व्रत है। अब कभी ब्राह्मण का अपमान मत करना और सन्तों को सदैव भगवान के समान ही जानना।

इन्द्र कुलिस मम सूल बिशाला * काल दण्ड हरि चक्र कराला
जौं इन्ह कर मारा नहिं मरई * बिप्र द्रोह पावक सो जरई

इन्द्र के वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, [illegible] भी जो नहीं

मरता, वह ब्राह्मण-द्रोह रूपी अग्नि से भस्म हो जाता है।

अस बिवेक राखहु मन माहीं * तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं
औरउ एक आसिषा मोरी * अप्रतिहत गति होइहि तोरी

ऐसा विवेक मन में रखो, फिर तुम्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। मेरा एक और आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र अबोध गति होगी।

दोहा—सुनि सिव बचन हरषिगुरु, एवमस्तु इति भाषि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह, शम्भुचरन उर राखि ॥१०९क॥

महादेवजी के वचन सुनकर गुरुजी प्रसन्न हुए और 'एवमस्तु' कहकर, मुझे समझाकर व शिवजी के चरणों को हृदय में रखकर घर गये।

प्रेरित काल बिंध्य गिरि, जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउँ गएँ कछु काल ॥१०९ख॥

समय की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल में जाकर सर्प हुआ। फिर वह शरीर कुछ समय बीतने पर मैंने बिना कष्ट के ही छोड़ दिया।

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि, अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परि हरइ पुरान ॥१०९ग॥

हे गरुड़जी! मैं जो शरीर धारण करता, उसे बिना परिश्रम के ही छोड़ देता था। जैसे मनुष्य नये वस्त्र पहिनकर पुराने वस्त्रों को छोड़ देता है।

सिव राखी श्रुतिनीति अरु, मैं नहिं पावा क्लेश।
एहिबिधिधरे उँबिबिधतनु, ग्यान न गयउ खगेश ॥१०९घ॥

हे गरुड़जी! शिवजी ने वेद की मर्यादा रक्खी और मैंने भी क्लेश नहीं पाया। मैंने अनेक शरीर धारण किये, पर मेरा ज्ञान नहीं गया।

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ * तहँ तहँ रामभजन अनुसरऊँ
एक सूल मोहि बिसर न काऊँ * गुर कर कोमल सील सुभाऊँ

पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य जो शरीर धारण करता, वहां श्रीरामजी का भजन जारी रखता, परन्तु एक दुःख मुझे बना रहा, गुरुजी का कोमल, शील-स्वभाव मुझे कभी नहीं भूला।

अन्त देह द्विज कै मैं पाई * सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई
खेलउँ तहँ बालकन्ह मोला * करउँ कल रघुनायक लीला

मैंने अन्त में ब्राह्मण का देह पाया, जो देवताओं को भी दुर्लभ है, ऐसा पुराण और वेदों में कहा है। वहां मैं बालकों में मिलकर खेलता और सदैव श्रीरघुनाथजी की लीलायें किया करता।

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा * समुझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा

मन ते सकल बासना भागी * केवल राम चरन लय लागी

बड़ा होने पर पिता ने मुझे पढ़ाया। मैंने समझा, सुना, विचार किया, पर पढ़ना मुझे अच्छा नहीं लगा। मनसे सब इच्छायें दूर हो गईं, केवल श्रीरामजी के चरणों में लगन लग गई।

कहु खगेस अस कवन अभागी * खरी सेव सुरधेनुहिं त्यागी
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई * हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई

हे गरुड़जी ! कहिये, कौन ऐसा अभागा होगा, जो कामधेनुको छोड़कर गधीकी सेवा करेगा? प्रेम में मग्न रहने के कारण मुझे कुछ नहीं सुहाता था। पिता पढ़ा-पढ़ाकर हार गये।

भए कालबस जब पितु माता * मैं बन गयउँ भजन जनत्राता
जहँ जहँ बिपिन मुनिश्वर पावउँ * आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ

जब माता पिता मर गये, तब मैं भक्त-वत्सल प्रभु का भजन करनेके लिए वन को चला गया। बनमें जहां-जहां मै मुनीश्वरों को पाता था, वहां-वहां उनके आश्रम में जाकर सिर नवाता।

बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा * कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा
सुनत फिरउँ हरिगुन अनुबादा * अव्याहत गति शम्भु प्रसादा

मैं उनसे राम-गुण गाथा पूछता और वे कहते। हे गरुड़जी ! मैं प्रसन्न होकर सुनता, इस तरह मैं हरि का गुणानुवाद सुनता फिरता था। शिवजी की कृपा से मेरी सब जगह अगाध गति थी।

छूटी त्रिबिध ईषना गाढ़ी * एक लालसा उर अति बाढ़ी
रामचरन बारिज जब देखौं * तब निजजन्म सुफल कर लेखौं

मेरी तीनों प्रकार (धन, पुत्र, मान) की प्रबल इच्छायें जाती रहीं। हृदयमें यही एक लालसा अत्यन्त बढ़ी कि श्रीरामजी के चरणारविंदों के दर्शन करूं, तब अपना जन्म सफल समझूं।

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई * ईश्वर सर्ब भूतमय अहई
निर्गुन मति नहिं मोहि सोहाई * सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई

जिस मुनि से पूछता, वह यही कहते हैं कि ईश्वर सर्व-भूतमय है। परन्तु यह निर्गुण-मुझे नहीं सुहाता था और सगुण-ब्रह्म में मेरी प्रीति बढ़ रही थी।

दोहा—गुरु के बचन सुरति करि, रामचरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ, छन-छन नव अनुराग ॥११०क॥

गुरु वचनों को स्मरण करते ही मेरा मन श्रीरामजी के चरणों में लग गया। मैं क्षण-क्षण में नये प्रेम से रघुनाथजी का यश गाता फिरता था।

मेरु सिखर बट छायाँ, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरू नायउँ, बचन कहेउँ अति दीन ॥११०ख॥

सुमेरु-पर्वत की चोटी पर वट की छाया में लोमश-ऋषि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणों में शीश नवाया और बहुत ही दीन वचन कहे।

दोहा—सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूँछत भए, द्विज आयहु केहि काज ॥११०ग॥

हे गरुड़जी! मेरे नम्रतापूर्वक मधुर वचन सुनकर दयालु मुनि मुझसे आदर के साथ पूछने लगे—हे विप्र! आप किस कार्य से यहाँ आये हैं?

तब मैं कहा कृपा निधान, तुम्ह सर्बज्ञ सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन, मोहि कहहु भगवान ॥११०घ॥

तब मैंने कहा—कृपानिधान! आप सर्वज्ञ हैं और परम चतुर हैं, हे भगवन्! सगुण-ब्रह्म की आराधना (की प्रतिक्रिया) आप मुझसे कहिये।

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा * कहे कछुक सादर खगनाथा
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी * मोहि परम अधिकारी जानी

हे गरुड़जी! तब ऋषि ने श्रीरघुनाथजी के गुणों की कुछ कथायें आदर के साथ कहीं फिर वे ब्रह्म-ज्ञान में लीन मुझे उत्तम अधिकारी जानकर—

लागे करन ब्रह्म उपदेसा * अज अद्वैत अगुन हृदयेसा
सकल अनीह अनाम अरुपा * अनुभव गम्य अखण्ड अनूपा

'ब्रह्म' का उपदेश करने लगे कि ब्रह्म अजन्मा, निर्गुण है और हृदयका स्वामी है। वह कलाओं से परे इच्छा रहित, नाम रहित, रूप रहित अनुभव जानने योग्य, अखण्ड और उपमा रहित है।

मन गोतीत अमल अबिनासी * निर्बिकार निरवधि सुखरासी
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा * बारि बीचि इव गावहिं बेदा

वह मन व इन्द्रियों से परे, निर्दोष नाश रहित, निर्विकार, निस्सीम तथा सुखों की राशि है, वह ब्रह्म तू है। जल और तरंग की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है, ऐसा वेद कहते हैं।

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा * निर्गुन मत मम हृदय न आवा
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा * सगुन उपासन कहहु मुनीसा

मुनि ने मुझे बहुत भाँति से समझाया, परन्तु निर्गुणमत मेरे मनमें नहीं बैठा। मैंने फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर कहा-हे मुनीश्वर! मुझे सगुण-ब्रह्म की उपासना बतलाइए।

राम भगति जल मम मन मीना * किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना
सोइ उपदेस कहहु करि दाया * निज नयनन्हि देखौं रघुराया

राम भक्तिरूपी जल में मेरा मन मछली हो रहा है। हे मुनीश्वर! वह उससे अलग कैसे रह सकता है? आप दया करके मुझे वही उपदेश दीजिए कि मैं अपने नेत्रों से श्रीरघुनाथजी का दर्शन करूँ।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा * तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा * खण्ड सगुन मत अगुन निरूपा

अयोध्यापति श्रीरामजी को नेत्र भरकर देख लूँ तब निर्गुण का उपदेश मैं सुनूंगा। मुनिने

बारम्बार अनुपम कथा कहकर सगुण-मत का खण्डन कर, निर्गुण-मत का निरूपण किया।

तब मैं निर्गुन मत कर दूरी * सगुन निरुपऊँ करि हठ भूरी
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा * मुनि तनु भए क्रोध के चीन्हा

तब मैं निर्गुण मत का खण्डन करके हठ पूर्वक सगुण का निरूपण करने लगा। मैंने वाद-विवाद किया तो मुनि के हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ।

सुनि प्रभु बहुत अवज्ञा किएँ * उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ
अतिसय रगर करै जौं कोई * अनल प्रकट चन्दन ते होई

हे प्रभो! सुनिये, बहुत अपमान किये जाने से ज्ञानी के हृदय में भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है: कोई चन्दन की लकड़ी को बहुत रगड़े तो उसमें भी अग्नि प्रकट हो जायगी।

दोहा—बारम्बार सकोप मुनि, करइ निरूपन ग्यान।
मैं अपने मन बैठ तब, करउँ बिबिध अनुमान ॥१११क॥

ऋषि क्रोध सहित बारम्बार ज्ञान का निरूपण करने लगे। तब मैं बैठा-बैठा अपने मन में अनेक प्रकार के विचार करने लगा।

क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनुअग्यान।
माया बस परिछिन जड़, जीव कि ईस समान ॥१११ख॥

द्वैत-बुद्धि के बिना क्रोध कैसा, और द्वैत-बुद्धि क्या बिना अज्ञान के हो सकती है? माया के वश में रहने वाला परिछिन्न छोड़-जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है?

कबहुँ कि दुख सबकर हितताकें * तेहि कि दरिद्र परसमनि जाकें
परद्रोही कि होहिं निसंका * कामी नर कि रहहिं अकलङ्का

जो सबका हितकारी है, उसे क्या कभी दुःख हो सकता? जिसके पास पारस-मणि है, उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है? परद्रोही क्या निर्भय रह सकता है? कामी क्या कलङ्क से बच सकता है?

बंश कि रह द्विज अनहित कीन्हें * कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें
काहू सुमति कि खल सँग जामी * सुभगति पावकि परत्रिय गामी

ब्राह्मण के साथ बुराई करने पर क्या वंश रह सकता है? स्वरूप की पहिचान होने पर क्या कर्म हो सकते हैं। बुरी संगति से क्या किसी को सुबुद्धि उपजती है? पराई स्त्री गामी क्या कभी अच्छी गति पा सकता है?

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक * सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक
राजु कि रहइ नीति बिनु जाने * अघकि रहहिंहरि चरित्र बखाने

ईश्वर को जाननेवाले क्या संसारमें पड़ सकते हैं? हरि-निंदक क्या कभी सुखी रह सकते हैं? नीति के जाने बिना क्या राज्य हो सकता है? हरि गुण गान करने से क्या पाप रह सकते हैं?

पावन जस कि पुन्य बिनु होई * बिनुअघ अजस कि पावइ कोई
लाभ कि कछु हरि भगति समाना * जेहि गावहिं श्रुति सन्त पुराना

बिना पुण्यके क्या पवित्र यश मिल सकताहै और क्या पाप किये बिना कोई अपयश पा सकता है। हरि-भक्तिके समान कोई दूसरा लाभ भी है, जिसकी महिमा वेद, संत और पुराण गाते हैं?

हानि कि जग एहि सम कछु भाई * भजइ न रामहि नर तनु पाई
अघ कि पिसुनता सम कछु आना * धर्म कि दया सरिस हरिजाना

हे भाई ! संसार में क्या इसके बराबर भी कोई हानि है कि मनुष्य-देह पाकर भी श्रीरामजी का भजन न किया जाय ? चुगली के बराबर क्या कोई दूसरा पाप है और हे गरुड़जी ! दया के समान कोई दूसरा धर्म है ?

एहि बिधि अमित जुगति मन गुनेऊँ * मुनि उपदेश न सादर सुनेऊँ
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा * तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा

इस प्रकार मैं अनेकों युक्तियाँ मन में सोचता और मुनि का उपदेश सादर नहीं सुनता था बारम्बार मैंने सगुण का समर्थन किया, तब मुनि क्रोध से भरे वचन बोले—

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि * उत्तर प्रत्युत्तर बहु आनसि
सत्य बचन विश्वास न करहीं * बायस इव सबही ते डरही

रे मूढ़ ! मैं तुझे उत्तम शिक्षा देता हूँ, उसे तू नहीं मानता और बहुत से उत्तर-प्रत्युत्तर करता है। सत्य वचन का विश्वास नहीं करता और कौए की भांति सभी से डरता है।

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला * सपदि होहि पच्छी चण्डाला
लीन्ह शाप मैं सीस चढ़ाई * नहिं कछु भय न दीनता आई

रे शठ ! तेरे हृदय में बहुत पक्षपात है, अतः तू इसी समय चाण्डाल हो जा। मुनि का शाप मैंने अपने सिर पर चढ़ा लिया, परन्तु मुझे न तो डर लगा और न दीनता ही आई।

दोहा—तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिर नाय।
सुमिरि राम रघुवंसमनि, हरषित चलेउँ उड़ाय।।११२क।।

मैं तुरन्त कौआ हो गया। तब मुनि के चरणों में सिर नवाकर और रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके आनन्दपूर्वक उड़ चला।

उमा जे चरन रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभु मय देखहि जगत, केहि सन करहिं बिरोध।।११२ख।।

(शिवजी बोले-) हे पार्वती ! जो श्रीरामजी के चरणों के प्रेमी हैं, वे काम, मद और क्रोध से रहित होकर सब संसार को अपने स्वामी के रूप में देखते हैं, फिर वे किससे विरोध करें ?

सुनु खगेस नहिं कछु ऋषि दूषन * उर प्रेरक रघुवंश बिभूषन
कृपासिन्धु मुनि मत कर भोरी * लीन्ही प्रेम परीक्षा मोरी

(कागभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी ! ऋषि का इसमें कोई दोष नहीं था। सबके हृदय में प्रेरणा करने वाले रघुकुल शिरोमणि श्रीरामजी हैं। कृपासिंधु ने मुनि की बुद्धि को भोली करके मेरे प्रेम की परीक्षा ली।

मनबच क्रम मोहि निज जन जाना * मुनि मति पुनि फेरी भगवाना
ऋषि मम सहज सीलता देखी * रामचरन बिस्वास बिसेषी

मन, कर्म वचन से मुझको अपना दास जानकर भगवान् ने फिर मुनि की बुद्धि पलट दी। ऋषि ने मेरी सहनशीलता देखी और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में विश्वास देखा।

अति बिस्मय पुनि पुनि पछताई * सादर मुनि मोहि लीन्ह बुलाई
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा * हरषित राम मन्त्र तब दीन्हा

तब मुनिने बड़े आश्चर्य के साथ बार-बार पछता करके मुझे-आदर पूर्वक बुला लिया। उन्होंने अनेक भाँति से मेरा सन्तोष किया, फिर प्रसन्न होकर मुझको राम-मन्त्र दिया।

बालक रूप राम कर ध्याना * कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना
सुन्दर सुखद मोहि अति भावा * सो प्रथम मैं तुम्हहिं सुनावा

कृपानिधान मुनिने मुझको-बालस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान बतलाया। सुन्दर सुख देने वाला मुझको बहुत ही अच्छा लगा। वह मैं आपको पहले ही सुना चुका हूं।

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा * रामचरित मानस तब भाषा
सादर मोहि यह कथा सुनाई * पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई

मुनि ने मुझको कुछ समय तक वहाँ रक्खा, तब श्रीरामचरित-मानस का वर्णन किया। आदर सहित मुझे यह कथा सुनाकर मुनि सुन्दर वाणी बोले-

रामचरित सर गुप्त सुहावा * शम्भु प्रसाद तात मैं पावा
तोहि निज भगत राम कर जानी * ताते मैं सब कहेउँ बखानी

हे तात! यह गूढ़ और सुन्दर रामचरित-मानस मैंने शिवजी की कृपा से पाया था। तुम्हें रामचन्द्रजी का निज-भक्त जाना, इसीसे मैंने सब चरित्र तुमसे कहा।

रामभगति जिन्ह कें उर नाहीं * कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं
मुनि मोहि बिबिध भाँति समुझावा * मैं सप्रेम मुनिपद सिरु नावा

हे तात! जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति नहीं,उनके आगे यहकथा कभी नहीं कहनी चाहिए। मुनि ने मुझे बहुत भाँति से समझाया, तब मैंने प्रेम से मुनिके चरणों में सिर नवाया।

निज कर कमल परसि मम सीसा * हरषित आसिष दीन्ह मुनिसा
रामभगति अबिरल उर तोरें * बसहि सदा प्रसाद अब मोरें

मुनीश्वर ने अपने कर-कमलों से मेरा शीश स्पर्श करके आनन्द पूर्वक आशीर्वाद दिया कि अब मेरे प्रसाद से तुम्हारे हृदय में अटल राम-भक्ति बसेगी।

दोहा—सदा रामप्रिय होय तुम्ह, शुभ गुन भवन अमान।

काम रूप इच्छा मरन, ज्ञान बिराग निधान ॥११३क॥

तुम सदैव श्रीरामजी के प्रिय उत्तम गुणों के स्थान, अहङ्कार रहित, कामरूप, इच्छा से मृत्यु के अधीन एवं ज्ञान और वैराग्य के निधान होओ ।

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि, सुमिरत श्रीभगवन्त ।
ब्यापिहि तहँ न अविद्या, जोजन एक प्रजन्त ॥११३ख॥

फिर जिस आश्रम में तुम श्रीभगवान् का स्मरण करते हुए बसोगे, वहां एक योजन तक (अविद्या) नहीं व्यापेगी ।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ * कछु दुख तुम्हहिं व्यापिह काऊ
राम रहस्य ललित बिधि नाना * गुप्त प्रकट इतिहास पुराना

काल,कर्म,गुण,दोष स्वभाव आदि से उत्पन्न दुःख तुम्हें कभी नहीं व्यापेगा। श्रीरामजी को गुप्त और प्रगट जितनी सुन्दर कथायें, जो इतिहास और पुराणों में गाई हैं–

बिनु श्रम तुम्ह जानव सब सोऊ * नित नव नेह राम पद होऊ
जो इच्छा करिहहु मन माहीं * हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं

वे सब तुम बिना परिश्रम ही जान जाओगे । श्रीरामजी के चरणों में तुम्हारा नित्य-नया अनुराग होगा । तुम मन से जो कुछ करोगे, वह भगवान् की कृपा से कुछ दुर्लभ नहीं होगा।

सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा * ब्रह्म गिरा भइ गगन गंभीरा
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी * यह मम भगत कर्म मन बानी

हे धीर-बुद्धि गरुड़जी ! सुनिये, मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश से गम्भीर ब्रह्म-वाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि ! तुम्हारा वचन ऐसा ही हो । यह मन, कर्म और वाणी से मेरा भक्त है ।

सुनि नभ गिरा हरष मोहि भयऊ * प्रेम मगन सब संसय गयऊ
करि बिनती मुनि आयसु पाई * पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ । मैं मनमें मग्न हो गया और सब सन्देह जाता रहा तब बिनती करके मुनि की आज्ञा पाकर उनके चरणों में बारम्बार सिर नवाकर–

हरष सहित एहि आश्रम आयउँ * प्रभु प्रसाद दुर्लभ वर पायउँ
इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा * बीते कलप सात अरु बीसा

मैं हर्ष पूर्वक इस आश्रम में आया । प्रभु के प्रसाद से मैंने दुर्लभ वर पाया था । हे पक्षिराज ! सुनो यहां बसते हुए सत्ताईस कल्प बीत गये ।

करउँ सदा रघुपति गुनगाना * सादर सुनहिं बिहङ्ग सुजाना
जब जब अवधपुरी रघुबीरा * धरहिं भगत हित मनुज सरीरा

मैं यहां सदैव राम-गुण गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसे आदर से सुनते हैं। श्रीरामजी जब-जब भक्तों के हित के लिए अयोध्या में शरीर धारण करते हैं–

तब तब जाइ रामपुर रहऊँ * सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा * निज आश्रम आवउँ खगभूपा

तब-तब अयोध्या जाकर रहता हूँ और बाल-लीला देखकर सुख पाता हूँ। फिर हे गरुड़जी ! श्रीरामजी का बालस्वरूप अपने हृदय में रखकर आश्रम में आ जाता हूँ।

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई * काग देह जेहिं कारन पाई
कहेउँ तात सब प्रश्न तुम्हारी * राम भगति महिमा अति भारी

जिस कारण मैंने कौए की देह पाई, वह सब कथा मैंने आपको सुनाई। हे तात ! मैंने आपके सब प्रश्नों का उत्तर दिया। अहा ! श्रीराम-भक्ति की बड़ी भारी महिमा है।

दोहा—ताते यह तनु मोहि प्रिय, भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पालउँ, गयउ सकल सन्देह ॥११४क॥

यह 'काग शरीर' मुझे इसीसे प्रिय है कि इससे श्रीरामजी के चरणों में प्रेम हुआ। प्रभु के दर्शन पाये और सब सन्देह जाता रहा।

* मास पारायण—उन्तीसवाँ विश्राम *

दोहा—भगति पच्छ हठ करि रहेउ, दीन्हि महाऋषि शाप।
निज दुर्लभ बर पायउँ, देखउ भजन प्रताप ॥११४ख॥

मैं भक्ति-पक्ष पर ही हठ पूर्वक अड़ा रहा, जिससे महर्षि ने मुझे शाप दिया। भजन का प्रताप तो देखिये कि फिर भी मैंने दुर्लभ वर पाया।

जे अस भगति जानि परहरहीं * केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं
जे जड़ कामधेनु गृह त्यागी * खोजत आकु फिरहिं पयलागी

ऐसी भक्ति को जान-बूझकर छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिए परिश्रम करते हैं, वे मूर्ख अपने घर की कामधेनु को छोड़कर, दूध के लिए अकौए के वृक्ष खोजते फिरते हैं।

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई * जे सुख चाहहिं आन उपाई
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी * तैर पार चाहहिं जड़ करनी

हे पक्षिराज ! सुनिये, जो लोग भगवद्भक्ति को छोड़कर दूसरे उपाय से सुख चाहते हैं, वे मूर्ख महासागर को बिना नौका के ही अपनी जड़ करनी पर तैर कर पार करना चाहते हैं।

सुनु भुशुण्डि के वचन भवानी * बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं * संसय सोक मोह भ्रम नाहीं

(शिवजी बोले-) हे भवानी ! भुशुण्डिजी के वचन सुनकर गरुड़जी आनन्दित होकर मधुर वाणी से बोले-हे प्रभो आपकी कृपा से मेरे हृदय में संशय दुःख, मोह और भ्रम नहीं रहा।

सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा * तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा

एक बात प्रभु पूछउँ तोही * कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही

मैंने आपकी कृपा से पवित्र चरित्र सुने और शान्ति पाई। हे प्रभो! अब मैं आपसे एक बात पूछता हूँ, समझाकर कहिए।

कहहिं सन्त मुनि वेद पुराना * नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना
सोइ मुनि तुम्हसन कहेउ गुसाईं * नहिं आदरेहु भगति की नाईं

संत,मुनि,वेद और पुराणों का कथन है कि ज्ञानके बराबर कुछ दुर्लभ नहीं है, वह ज्ञान आपसे लोमश ऋषि ने कहा। परन्तु, हे गोसाइं! आपने भक्ति के बराबर उसका आदर नहीं किया।

ग्यानहि भगतिहि अन्तर केता * सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता
सुनि उरगारि बचन सुख माना * सादर बोलेउ काग सुजाना

हे कृपा के धाम प्रभो! ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है? सो अब मुझसे कहिए। गरुड़जी के वचन सुन सुख मानकर चतुर कागभुशुण्डिजी बोले–

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा * उभय हरहिं भव सम्भव खेदा
तात मुनीस कहहिं कछु अन्तर * सावधान सोउ सुनु बिहङ्गवर

ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं है, दोनों ही संसार-जनित दुःखों को हर लेते हैं। हे तात! इसमें मुनीश्वर कुछ अन्तर बतलाते हैं। हे पक्षीश्रेष्ठ! उसे सावधान होकर सुनिये।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना * ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती * अबला अबल सहज जड़ जाती

हे गरुड़जी! सुनो–ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान-ये सब पुरुष हैं। पुरुषों का प्रताप सब तरह से प्रबल होता है और स्त्रियां-स्वभाव से ही बलहीन और जड़-प्रकृति की होती हैं।

दोहा–पुरुष त्यागि सकनारिहि, जो बिरक्ति मति धीर।
न तु कामी बिषया बस, बिमुख जो पद रघुबीर ॥११५क॥

जो पुरुष विरक्त और धीर बुद्धि हैं, वे ही स्त्री को त्याग सकते हैं, न कि वे जो कामी और विषयों में फँसे हुए, श्रीरघुनाथजी के चरणों से विमुख हैं–

सो०–सोउ मुनि ग्याननिधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होहिं हरिजान, नारि बिष्णु माया प्रकट ॥११५ख॥

ज्ञान-निधान मुनि भी मृग-नयनी स्त्री के चन्द्रमुख को देखकर विवश हो जाते हैं। हे गरुड़जी! श्रीहरि की माया ही स्त्री-रूप से प्रकट है।

इहाँ न पक्षपात कछु राखउँ * वेद पुरान सन्त मति भाषहुँ
मोहि न नारि नारि कें रूपा * पन्नगारि यह रीति अनूपा

मैं यहां कुछ पक्षपात नहीं रखता, वेद-पुराण और सन्तों का मत ही कहता हूँ, हे गरुड़जी! स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नहीं होती, यह विलक्षण रीति है।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ * नारि वर्ग जानइ सब कोऊ
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी * माया खलु नर्तकी बिचारी

सुनिये, माया और भक्ति—ये दोनों स्त्री-जाति हैं, यह सब कोई जानते हैं फिर भक्ति तो श्रीरघुनाथजी को अति प्यारी है और दुष्ट माया बेचारी तो सदा नाचती रहती है।

भगतिहि सानुकूल रघुराया * ताते तेहि डरपति अति माया
रामभगति निरुपम निरुपाधी * बसहि जासु उर सदा अबाधी

श्रीरघुनाथजी भक्तिके अति अनुकूल हैं, इस कारण भक्ति से माया बहुत डरती है। उपमा और उपाधि रहित राम-भक्ति जिसके हृदय में सदैव बिना बाधा के वास करती है।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई * करि न सकइ कछु निज प्रभुताई
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी * जाचहिं भगति सकल गुनखानी

उसे देखकर माया लज्जित होती है, अपनी प्रभुता उस पर कुछ नहीं कर सकती। ऐसा विचार कर ही जो ज्ञानी मुनि हैं, वे सब गुणों की खान भक्ति को ही माँगते हैं।

दोहा—यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा, सपनेहुँ मोह न होइ ॥११६क॥

श्रीरघुनाथजी के इस गूढ़ मर्म को कोई शीघ्र नहीं जान पाया। श्रीरघुनाथजी की कृपा से जो इसे जान लेता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता।

औरउ ग्यान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ रामपद, प्रीति सदा अबिछीन ॥११६ख॥

हे चतुर गरुड़जी ! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिये, जिसे सुनकर श्रीरामजी के चरणों में सदा अविछिन्न प्रेम हो जाता है।

सुनहु तात यह अकथ कहानी * समुझत बनइ न जाइ बखानी
ईश्वर अंश जीव अविनासी * चेतन अमल सहज सुखरासी

हे तात ! यह अकथनीय कथा सुनिये, जो समझने में आती है, पर कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वर का अंश है और अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखकी राशि (आनन्दमय) है।

सो माया बस भयउ गोसाईं * बँध्यो कीर मर्कट की नाईं
जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई * जदपि मृषा छूटत कठिनई

हे स्वामी ! यह माया के वशहोकर तोते और बन्दर की भाँति फँस गया है। ऐसे जड़ (माया) व चेतन (जीव) में गाँठ पड़ गई है। यद्यपि वह मिथ्या है, तथापि उसके छूटने में कठिनाई है।

तब ते जीव भयउ संसारी * छूटि न ग्रन्थि न होइ सुखारी
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई * छूटि न अधिक अधिक अरुझाई

तभी से यह जीव संसारी होगया है, न तो गाँठ छूटती और न यह सुखी होता है। वेदपुराणों ने बहुत से उपाय कहे हैं, परन्तु वह गाँठ नहीं छूटती, अधिकाधिक उलझती ही जाती है।

जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी * ग्रन्थि छूट किमि परइ न देखी
अस संयोग ईस जब करई * तबहुँ कदाचित सो सिरु अरई

जीव के हृदयमें अज्ञानरूपी अन्धकार विशेषरूपसे छा रहा है, इससे यह गांठ दीख नहीं पड़ती फिर वह कैसे छूटे ? जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग करे, तब ही वह कदाचित छूट पाती है।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई * जौं हरिकृपा हृदयँ बस आई
जप तप ब्रत जम नियम अपारा * जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा

ईश्वर की कृपा से सात्विक श्रद्धारूपी कामधेनु यदि जीव के हृदय में आकर बसे और जप, तप, व्रत, नियम आदि उत्तम धर्म और आचरण जो वेदों में कहे हैं ।

तेइ तृन हरित चरै जब गाई * भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा * निर्मल मन अहीर निज दासा

उस (धर्माचार-रूपी) घास को गाय चरे और शुद्ध भावरूपी बछड़े को पाकर पन्हाए । निवृत्ति (विषयों में हटना) रस्सी है, विश्वास बर्तन है, और स्वयं अपने वश में रहने वाला शुद्ध मन अहीर है ।

परम धर्ममय पय दुहि भाई * अवटै अनल अकाम बनाई
तोष मरुत तब छमा जुड़ावैं * धृति सम जावनु देइ जमावै

हे भाई ! ऐसे धर्मरूपी दूध को दुहे, फिर निष्काम भावनारूपी अग्नि से उसे ओटावे, तब सन्तोष और क्षमारूपी वायु से ठण्डा करके संयम तथा धर्मरूपी जामन देकर उसे जमावे ।

मुदिताँ मथै बिचार मथानी * दम अधार रजु सत्य सुबानी
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता * बिमल बिराग सुभग सुपुनीता

फिर प्रसन्नतारूपी मटकी में विचाररूपी मथनी को दम्भरूपी खम्भे में अटका कर सत्य और मीठी वाणीरूपी डोरी लगाकर उसे मथे और निर्मल एवं अत्यन्त पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन उसमें से निकाल ले ।

दोहा—जोग अगिनि करि प्रगट तब, कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ ॥११७क॥

फिर योगरूपी अग्नि प्रकट करके अच्छे-बुरे कर्मरूपी ईंधन लगा दे । जब ममतारूपी मल जल जाय तो उस शुद्ध ज्ञानरूपी घी को बुद्धिरूपी वायु से शीतल करे ।

तब बिग्यान रूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ ॥११७ख॥

तब विज्ञान का निरूपण करने वाला बुद्धिरूपी घी पाकर उसे चित्तरूपी दीपक में भर कर, समदृष्टिरूपी ममता का दीवट बनाकर उस पर धरे ।

तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास तें काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥११७ग॥

फिर तीनों अवस्थायें (जाग्रत,स्वप्न,सुषुप्ति और तीनों गुण-सत्य,रज,तम) रूपी कपास से तुरीयावस्था-रूपी रुई को निकाल कर भली-भाँति सँभालकर उसकी कड़ी बत्ती बनावे।

सो०—एहि विधि लेसै दीप, तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥११७घ॥

इस भांति तेजपुञ्ज विज्ञानमय दीपक को जलावे, जिससे पास जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जायें।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखण्डा * दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा * तब भव मूल भेद भ्रम नासा

'सोहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूं,), यह जो अखण्ड विचार है, वही उस दीपक की बड़ी तीक्ष्ण ज्योति है। जब आत्मानुभव के सुख का प्रकाश अन्दर फैलता है, तब संसार के कारण रूप भेद का नाश हो जाता है।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा * मोह आदि तम मिटइ अपारा
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा * उर गृहँ बैठि ग्रन्थि निरुआरा

और महाबली अविद्या के परिवार-मोह आदि का घोर अन्धकार दूर होता जाता है। तब वही विज्ञान का निरूपण करने वाली बुद्धि उजाला पाकर हृदय-रूपी घर में बैठकर उस जड़-चेतन की गाँठ को खोलती है।

छोरन ग्रन्थि पाव जौं सोई * तब यह जीव कृतारथ होई
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया * बिघ्न अनेक करइ तब माया

वह बुद्धि उस गाँठ को खोल सके, तब वह जीव कृतार्थ हो। हे पक्षिराज ! गाँठ खोलते हुए जानकर माया अनेकों बाधायें करती है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई * बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई
छलबल करि चलि जाहि समीपा * अञ्चल बात बुझावहिं दीपा

हे भाई ! वह बहुत-सी ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है, जो आकर बुद्धि को लालच दिखाती हैं। वे दाव-पेच और छल-बल करके दीपक के पास पहुँचकर अंचल की वायु से उसे बुझा देती हैं।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी * तिन्ह तनु चितवन अनहित जानी
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधो * तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी

यदि बुद्धि बहुत ही चतुर हुई तो उनको शत्रु जानकर उनकी ओर नहीं देखती। यदि इन विघ्नों में बुद्धि न फँसे तो फिर देवता बाधा करते हैं।

इन्द्री द्वार झरोखा नाना * जहँ तहँ सुर बैठे करि थाना
आवत देखहिं बिषय बयारी * ते हठि देहिं कपाट उघारी

इन्द्रियों के द्वार अनेक झरोखे हैं, उन प्रत्येक द्वारों पर देवता अड्डा जमाये बैठे हैं। जब वे विषयरूपी वायु को आता देखते हैं, तो हठ करके किवाड़ खोल देते हैं।

सब सो प्रभञ्जन उर गृहँ जाई * तबहि दीप बिग्यान बुझाई
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा * बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा

ज्यों ही विषयरूपी वायु हृदयरूपी घर में पहुँचती है, त्योंही वह विज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है। गाँठ भी न छूटी ओर उजाला मिट गया। विषयरूपी वायु से बुद्धि व्याकुल होगई।

इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई * बिषय भोग पर प्रीति सदाई
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी * तेहि बिधि दीप कि बार बहोरी

इंद्रियों के देवताओं को ज्ञान नहीं सुहाता, क्योंकि उनकी प्रीति सदाही विषय-भोगोंपर रहती है। जब विषयरूपी पवनने बुद्धि को भुला दिया, तो फिर उसी विधि से दीपक को कौन जलावे।

दोहा—तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहँगेस ॥११८क॥

तब जीव लौटकर फिर अनेक प्रकार के सांसारिक-क्लेशों को पाता है। हे पक्षीराज! प्रभु की माया बहुत बलवान है, वह सहज ही पार नहीं की जाती।

कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥११८क॥

'विवेक'—कहने में कठिन, समझने में कठिन और साधन में—भी कठिन है। जो संयोग वश सिद्ध भी हो जाय, तो फिर अनेक विघ्न हैं।

ग्यान पन्थ कृपान कै धारा * परत खगेस होइ नहिं बारा
जो निर्बिघ्न पन्थ निर्बहई * सो कैवल्य परम पद लहई

हे पक्षिराज! ज्ञान का मार्ग-कृपाण की धार है, इसमें गिरते बेर नहीं लगती। जो ज्ञानी बिना बाधाओं के इस मार्ग को निवाह ले जाता है, वही कैवल्यरूपी परम (मोक्ष) पाता है।

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद * सन्त पुरान निगम अगम बद
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं * अनइच्छित आवत बरिआईं

संत, पुराण, वेद और शास्त्र कहते हैं कि कैवल्यरूपी परमपद अति दुर्लभ है। किंतु हे गोसाईं। वही मुक्ति श्रीरामजी के भजन से बिना इच्छा किये ही जबर्दस्ती आ जाती है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई * कोटि भाँति कोउ करै उपाई
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई * रहि न सकइ हरिभगति बिहाई

जैसे बिना पृथ्वी के जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों उपाय करे। वैसे ही—हे पक्षिराज! हरि-भक्ति को छोड़कर मोक्ष नहीं रह सकता।

अस बिचारि हरिभगत सयाने * मुक्ति निरादरि भगति लुभाने
भगति करत बिनु जतन प्रयासा * संसृति मूल अबिद्या नासा

ऐसा विचारकर चतुर हरि-भक्त मुक्ति का आदर न करके, भक्तिपर लुभा जाते हैं। भक्ति करने से बिना उपाय और परिश्रम किये ही संसार की मूल अविद्या का नाश वैसे ही हो जाता है।

भोजन करिअ तृप्ति हित लागी * जिमि सो असन पचवै जठरागी
असि हरि भगति सुगम सुखदाई * को अस मूढ़ न जाहि सुहाई

जैसे तृप्ति के लिए भोजन किया जाता, परन्तु उस भोजन को जठराग्नि अपने आप पचा देती है। जिसे सुगम और सुख देने वाली हरि-भक्ति न सुहाये, ऐसा मूर्ख कौन होगा ?

दोहा—सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पङ्कज, अस सिद्धान्त बिचारि ॥११९क॥

हे गरुड़जी ! 'सेवक' सेवा भाव के बिना संसार से तर नहीं सकते। ऐसा सिद्धान्त समझ कर श्रीरामजी के चरणकमलों को भजिये।

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि मरइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि, भजहिं जीव ते धन्य॥११९ख॥

जो चेतन को जड़ कर देते हैं और जड़ को चेतन कर देते हैं, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजी को जो प्राणी भजते हैं। वे धन्य हैं।

कहेउँ ग्यान सिद्धान्त बुझाई * सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई
राम भगति चिन्तामनि सुन्दर * बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर

मैंने यह ज्ञान का सिद्धान्त समझाकर कहा, अब मणिरूपी भक्ति की प्रभुता सुनिये। हे गरुड़जी ! जिसके हृदय में यह बसती है—

परम प्रकाश रूप दिन राती * नहिं कछु चहिअ दिया घृतबाती
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा * लोभ बात नहिं ताहि बुझावा

वह दिन-रात अत्यन्त प्रकाशित रहता है, उसे दिया, घी, बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। मोहरूपी दरिद्र उसके पास नहीं आता और लोभरूपी वायु उसे बुझा नहीं सकती।

प्रबल अबिद्या तम मिट जाई * हारहि सकल सलभ समुदाई
खल कामादि निकट नहिं जाहीं * बसइ भगति जाके उर माहीं

अविद्या-रूपी अन्धकार मिट जाता है और मदादि-रूपी पतंगों के समूह हार जाते हैं। काम आदि दुष्ट उसके पास भी नहीं जाते—जिसके हृदय में भक्ति बसती है।

गरल सुधा सम अरि हित होई * तेहि मनि बिनु सुखपाव न कोई
ब्यापहिं मानस रोग न भारी * जिन्ह के बस सब जीव दुखारी

उनके लिए विष अमृत के तुल्य और शत्रु मित्र हो जाते हैं। उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। जिसके वश हो सब जीव दुखी रहते हैं, वे बड़े २ मानस-रोग उसको नहीं व्यापते।

रामभगति मनि उर बस जाकें * दुख लवलेश न सपनेहुँ ताकें
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं * जे मनि लागि सुजतन कराहीं

श्रीराम-भक्तिरूपी मणि जिसके हृदय में बसती है, उसे स्वप्न में भी दुःख नहीं होता। संसार में वे ही लोग परम चतुर हैं, जो भक्तिरूपी मणि के लिए उत्तम प्रयत्न करते हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई * रामकृपा बिनु कोउ नहिं लहई
सुगम उपाय पाइबे केरे * नर हतभाग्य देहिं भट भेरे

यद्यपि यह मणि जगत-प्रत्यक्ष है, तो श्रीरामजी की कृपा के बिना कोई उसे ले नहीं सकता। उसके पाने के उपाय सहज हैं, परन्तु अभागे मनुष्य उसे ठुकरा देते हैं।

पावन पर्वत बेद पुराना * रामकथा रुचिराकर खाना
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी * ग्यान बिराग नैन उरगारी

वेद-पुराण पवित्र हैं, श्रीराम-कथायें उनमें सुन्दर खानें हैं, सन्त-जन मर्मी हैं। सुन्दर बुद्धि कुदाल हैं—ज्ञान-वैराग्य दो नेत्र हैं।

भाव सहित खोजइ जो प्रानी * पाव भगति मनि सब सुखखानी
मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा * राम ते अधिक रामकर दासा

जो प्रेम सहित खोजता है, वही सब सुखों की खान 'भक्तिरूपी-मणि' को पाता है। हे प्रभो! मेरे मन में ऐसा विश्वास है कि राम-भक्त श्रीरामजी से भी बढ़कर हैं।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा * चन्दन तरु हरि सन्त समीरा
सब कर फल हरि भगति सुहाई * सो बिनु सन्त न काहूँ पाई
अस बिचारि जोइ कर सतसङ्गा * राम भगति तेहि सुलभ बिहङ्गा

श्रीरामजी समुद्र हैं तो धीर-सज्जन मेघ हैं, श्रीहरि चन्दन के वृक्ष हैं तो सन्त-वायु हैं, और सबका फल सुन्दर हरि-भक्ति है। उसे सन्तों के बिना किसी ने नहीं पाया। हे गरुड़जी! ऐसा विचार कर जो सत्संग करता है, उसे श्रीराम-भक्ति सुलभ हो जाती है।

दोहा—ब्रह्म पयोनिधि मन्दर, ग्यान सन्त सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहिं ॥१२०क॥

ब्रह्म समुद्र है, ज्ञान मन्द्राचल है और सन्त देवता हैं, जो उस समुद्र को मथकर कथा रूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्तिरूपी मधुरता बसती है।

बिरति चर्म असि ग्यान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि ॥१२०ख॥

हे गरुड़जी! विचार कर देखिए, वैराग्यरूपी ढाल और ज्ञानरूपी तलवार से जो लाभ मोहरूपी शत्रुओं को मारकर विजय पाती है। वही हरि-भक्ति है।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ * जौं कृपालु मोहि ऊपर भाऊ
नाथ मोहि निज सेवक जानी * सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी

फिर पक्षिराज गरुड़ सप्रेम बोले—हे कृपालु! जो आपका मुझ पर स्नेह है तो मुझे सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों का उत्तर बखान कर कहिये।

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा * सबते दुर्लभ कवन सरीरा
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी * सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी

हे धीर-बुद्धि! हे नाथ! प्रथम तो यह बतलाइये कि सबसे दुर्लभ शरीर कौनसा? सबसे

बड़ा दुःख और सबसे बड़ा सुख कौन सा है ? सो थोड़े ही में विचार कर कहिए।

सन्त असन्त मर्म तुम्ह जानहु * तिन्हकर सहज सुभाउ बखानहु
कवन पुण्य श्रुति विदित बिसाला * कहहु कवन अघ परम कराला

सन्त और असन्तों का भेद आप जानते हैं, उनका सहज स्वभाव कहिये। हे कृपालु ! वेदों में प्रसिद्ध महान पुण्य और घोर पाप कौनसा है ? सो कहिये।

मानस रोग कहहु समुझाई * तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई
तात सुनहु सादर अति प्रीती * मैं संक्षेप कहउँ यह नीती

फिर मानस-रोगोंको समझाकर कहिये,आप सर्वज्ञ हैं,मुझपर आपकी विशेष कृपा है।(भुशुण्डि-जी बोले–) हे तात ! अति आदर और प्रेम के साथ सुनिये, मैं यह नीति संक्षेप में कहता हूँ–

नर तन सम नहिं कवनउँ देही * जीव चराचर जाचत तेही
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी * ग्यान बिराग भगति सुख देनी

मनुष्य-देह के बराबर कोई देह नहीं, चर-अचर सभी जीव जिसकी चाहना करते हैं, वह मानस-देह नर्क, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है और ज्ञान, वैराग्य व भक्ति सुखको देने वाले हैं।

सो तनु धरि हरि भजहि न जे नर * होहिं विषय रत मन्द मन्दतर
काँच किरिच बदलें ते लेहीं * कर ते डारि परसमनि देहीं

ऐसा शरीर पाकर भी जो हरि-भजन नहीं करते और विषयों में प्रीति करते हैं,वे मूर्ख से भी बढ़कर मूर्ख हैं। वे हाथ से पारस-मणि को फेंककर, उसके बदले में कांच का टुकड़ा ले लेते हैं।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं * सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं
पर उपकार बचन मन काया * सन्त सहज सुभाउ खगराया

जगत् में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है और संत मिलन के बराबर जगत में सुख नहीं है। हे गरुड़जी ! वचन, मन और शरीर से परोपकार करना, यह सन्तों का सहज स्वभाव है।

सन्त सहहिं दुख परहित लागी * पर दुख हेतु असन्त अभागी
भूर्ज तरु सम सन्त कृपाला * पर हित नित सह बिपति बिसाला

दूसरों की भलाई के लिए सन्त दुःख सहते हैं और अभागे असन्त दूसरों को दुःख देने के लिए। दयालु सन्त भोज-पत्र के वृक्ष के समान पराये हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं।

सन इव खल पर बन्धन करई * खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी * अहि मूषक इव सुनु उरगारी

किन्तु दुष्टजन सबके तुल्य दूसरों को बांधते हैं अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मरते हैं। हे गरुड़जी ! सुनो, दुष्ट अकारण ही दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, जैसे सांप और चूहे–

पर सम्पदा बिनासि नसाहीं * जिमि कृषि हति हिमउपल बिलाहीं
दुष्ट उदय जग आरति हेतू * जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू

वे पराई संपदाको नष्ट करके आपभी मिट जाते हैं जैसे खेती को नष्ट करके ओले गल जाते हैं दुष्टजनों का उदय प्रसिद्ध अधम-ग्रह 'केतु' की भाँति जगत को कष्ट देने के लिए होता है।

सन्त उदय सन्तत सुखकारी * विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा * परनिन्दा सम अघ न गरीसा

संतों का उदय सदा सुखकर होता है, जैसे चंद्रमा और सूर्य का उदय संसार भर को सुखदायक है। अहिंसा को वेदों ने सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है और पराई निंदा के समान बड़ा पाप नहीं है।

हर गुरु निन्दक दादुर होई * जन्म सहस्र पाव तन सोई
द्विज निंदक बहु नरक भोगकरि * जग जनमइ बायस सरीर धरि

शङ्करजी और गुरु की निंदा करने वाला मेढ़क होता है और हजार जन्मों तक यही देह पाता है। ब्राह्मण-निंदक बहुत से नरक भोगकर भी कौए की देह धारण कर जन्म लेता है।

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी * रौरव नरक परहिं ते प्रानी
होहिं उलूक सदा निन्दा रत * मोह निसाप्रिय ग्यान भानुगत

जो घमंडी व वेदों के निंदक हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं, साधु-निंदक उल्लू होते हैं, उन्हे ज्ञान रूपी सूर्य अस्त होने पर मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है। सबके निंदक चमगादड़ होकर जन्मते हैं।

सुनहु तात अब मानस रोगा * जिन्ह तें दुख पावहिं सब लोगा
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला * तिन्ह तें पुनि उपजहिं बहु सूला

हे तात! अब वे मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुःख पाते हैं। सब रोगों की जड़ मोह है उससे फिर बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

काम बात कफ लोभ अपारा * क्रोध पित्त नित छाती जारा
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई * उपजत सन्यपात दुखदाई

काम वायु है, अत्यन्त लोभ कफ है और क्रोध पित्त है, जो नित्य छाती जलाता है। यदि ये तीनों भाई प्रीति कर लें तो दुखदाई सन्निपात रोग हो जाता है।

विषय मनोरथ दुर्गम नाना * ते सब सूल नाम को जाना
ममता दादु कण्डु इरषाई * हरष विषाद गरह बहुताई

विषयों के मनोरथ अनेक शूल हैं, उन सबके नाम कौन जान सकता है? ममता दाद है, ईर्षा खाज है और शोक—गलगण्ड रोगों की अधिकता है।

पर सुख देखि जरनि सोइ छई * कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई
अहंकार अति दुखद डमरुआ * दम्भ कपट मद मान नेहरुआ

पराये सुख को देखकर हृदय में दाह होना ही क्षय है, दुष्टता और मनकी खोटापन ही कोढ़ है। अहंकार महा दुखदाई, गांठ (डोरू) का रोग है। दंभ, कपट, मद और मान-ये नेहरूआ रोग हैं।

तृष्णा उदर बृद्धि अति भारी * त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी
जुगबिधि ज्वर मत्सर अबिबेका * कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका

तृष्णा बड़ा भारी जलोदर रोग है, तीनों प्रकार की ईच्छा (स्त्री, पुत्र, धन) बलवती तिजारी है मत्सर तथा अविवेक दो ज्वर हैं। अनेकों बुरे रोग हैं, कहाँ तक कहूँ?

दोहा—एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं सन्तत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि ॥१२१क॥

एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये बहुत असाध्य रोग हैं। ये जीव को सदैव क्लेश देते हैं, फिर वह शान्ति कैसे पावे ?

नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं, रोग जाहिं हरि जान ॥१२१ख॥

हे गरुड़जी ! नियम, धर्म, आचार, तपस्या, ज्ञान, जप, तप, और दान आदि करोड़ों औषधियाँ हैं। परन्तु इनसे ये रोग नहीं जाते।

एहि विधि सकल जीव जग रोगी * सोक हरष भय प्रीति बियोगी
मानस रोग कछुक मैं गाए * हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाए

इस भाँति जगत में सब रोगी हैं, जो दुःख, भय प्रीति और वियोग से दुःखी हैं। थोड़े से मानस-रोग मैंने कहे हैं, ये होते तो सबको हैं, किन्तु थोड़े ही लोगों ने इन्हें जान पाया है।

जाने ते छीजहिं कछु पापी * नास न पावहिं जन परितापी
विषय कुपथ्य पाई अंकुरे * मुनिन्ह हृदयँ का नर बापुरे

जानने से ये पापी कुछ कम हो जाते हैं, परन्तु वे मनुष्यों को क्लेश देने वाले नष्ट नहीं होते। विषयरूपी कुपथ्य पाकर ये मुनियों के हृदय में भी पैदा हो जाते हैं बेचारे मनुष्य किस गति में हैं।

रामकृपाँ नासहिं सब रोगा * जौं एहि भाँति बनै संजोगा
सदगुरु बैद बचन विश्वासा * संजम यह न विषय कै आसा

श्रीराम-कृपा से सब रोग नष्ट हो जाँय, यदि संयोग वश सद्गुरु रूपी वैद्यों के वचनों पर विश्वास हो और विषयों की आशा न करे यही संयम है।

रघुपति भगति सँजीवन मूरी * अनूपान श्रद्धा मति पूरी
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं * नाहिं त कोटि जतन नहिं जाहीं

राम-भक्ति संजीवनी बूटी है श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान है। इस प्रकार से भले ही बुरे रोग नष्ट हो जांय, नहीं तो यह करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते।

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई * जब उर बल बिराग अधिकाई
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई * विषय आस दुर्बलता गई

हे गुसाईं ! तब ही मन को निरोगी समझना चाहिये, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाय। सुबुद्धि-रूपी भूख दिन-दिन बढ़ती रहे और विषयों की आशारूपी दुर्बलता जाती रहे।

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई * तब रह राम भगति उर छाई
सिव अज शुक सनकादिक नारद * जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद
सब कर मत खगनायक ऐहा * करिअ राम पद पंकज नेहा

जब शुद्ध ज्ञानरूपी जलसे मनुष्य स्नान करेगा,तब मनमें राम-भक्ति छा जावेगी। महादेवजी

ब्रह्माजी, शुकदेवजी, सनकादिक, नारदादि और जो ब्रह्मज्ञान में चतुर मुनि हैं। हे गरुड़जी ! उन सबका मत यही है कि श्रीरघुनाथजी के चरणकमलों में प्रीति करनी चाहिए।

श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं * रघुपति भगति बिना सुख नाहीं
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा * बन्ध्या सुत बर काहुहि मारा

वेद-पुराण और सब ग्रन्थों में कहा है कि श्रीराम-भक्ति के बिना सुख नहीं है। कछुए की पीठ पर भले ही बाल उग आवें और बाँझ का पुत्र भले ही किसी को मार डाले।

फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला * जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला
तृषा जाइ बरु मृग जल पाना * बरु जामहिं सस सीस बिषाना

आकाश में चाहे भाँति २ के फूल फलने लगें, परन्तु श्रीहरि के विरोधी को सुख नहीं मिलता। चाहे मृग-तृष्णा का जल पीनेसे प्यास जातीरहे और खरगोशके सिर पर भले ही सींग हो जायें।

अन्धकार बरु रबिहि नसावै * राम बिमुख न जीव सुख पावै
हिम ते अनल प्रकट बरु होई * राम बिमुख सुख पाव न कोई

अँधेरा चाहे सूर्य का नाश करदे और चाहे बर्फ से अग्नि प्रगट होजाय, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी से विमुख कोई सुख नहीं पा सकता।

दोहा—बारि मथें घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल ॥१२२क॥

पानी के मथने से घी और बालू से तेल भले ही निकल आवे, परन्तु श्रीरामजी के भजन बिना भवसागर से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है।

मसकहि करइ बिरञ्चि प्रभु, अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय, रामहिं भजहिं प्रबीन ॥१२२ख॥

प्रभु मच्छर को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा समझ सन्देह त्यागकर चतुर लोग श्रीरामजी को ही भजते हैं।

श्लोक—विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति ते येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥१२२ग॥

मैं आप से निश्चय की हुई बात कहता हूँ—मेरा वचन अन्यथा नहीं है। जो मनुष्य श्रीहरि का भजन करते हैं, वे इस संसार से तर जाते हैं।

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा * ब्यास समास स्वमति अनुरूपा
श्रुति सिद्धान्त ऐसेइ उरगारी * राम भजिअ सब काज बिसारी

हे नाथ ! मैंने हरिके अनेक चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार विस्तार से और कहीं संक्षेप में कहे हैं ! हे गरुड़जी ! वेदोंका सिद्धान्त है कि सब कामको भुलाकर रामजीको ही भजना चाहिए।

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही * मोहि से सठ पर ममता जाही
तुम्ह बिज्ञानरूप नहिं मोहा * नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा

प्रभु रघुनाथजी को छोड़कर किसकी आराधना की जाय,मुझ सरीखे मूर्ख पर भी जिनका स्नेह है ? हे नाथ आप विज्ञानरूप हैं आपको मोह नहीं है आपने तो मुझ पर बड़ी कृपा की है।

पूँछिहि रामकथा अति पावनि * शुकसनकादिशम्भु मनभावनि
सतसंगति दुर्लभ संसारा * निमिष दण्ड भरि एकउ बारा

आपने मुझसे अति पवित्र राम-कथा पूछी, जो शुकदेवजी, सनकादिक और महादेवजी के मन को प्रिय है। संसार में पलभर अथवा घड़ी भर एक बार सत्सङ्ग भी दुर्लभ है।

देखि गरुड़ निज हृदयँ बिचारी * मैं रघुबीर भजन अधिकारी
शकुनाधम सब भाँति अपावन * प्रभुमोहिकीन्ह बिदित जगपावन

हे गरुड़जी ! अपने मन में विचार कर देखिये कि क्या मैं भी श्रीरघुनाथजी के भजन का अधिकारी हूँ ? पक्षियों में अधम और सब प्रकार से अपवित्र हूँ, परन्तु प्रभु ने मुझे भी संसार को पवित्र करने वाला कर दिया।

दोहा—आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब विधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि, सन्त समागम दीन ॥१२३क॥

यद्यपि मैं सब प्रकार से नीच हूँ, तथापि आज मैं अत्यन्त धन्य हूँ। जो श्रीरामजी ने मुझे अपना दास जानकर सन्त समागम दिया।

नाथ जथामति भाषेउँ, राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिन्धु रघुनायक, थाह कि पावइ कोइ ॥१२३ख॥

हे नाथ ! मैंने अपनी मति के अनुसार सब कह सुनाया, कुछ भी छिपाया नहीं। श्रीरघुनाथजी के चरित्ररूपी समुद्र की थाह क्या कोई पा सकता है।

सुमिरि राम के गुनगन नाना * पुनि पुनि हरष भुशुण्डि सुजाना
महिमा निगम नेतिकर गाई * अतुलित बल प्रताप प्रभुताई

श्रीरामजी अनेक गुणगणों को स्मरण करके काकभुशुण्डिजी बारम्बार आनन्दित हुए। जिसकी महिमा, अतुलित बल, प्रताप और प्रभुता वेदों ने 'नेति-नेति' कहकर गाई है।

सिव अज पूज्य चरन रघुराई * मो पर कृपा परम मृदुलाई
अस सुभाय कहुँ सुनेउँ न देखउँ * केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ

महादेवजी और ब्रह्माजी भी जिन श्रीरघुनाथजी की चरण-सेवा करते हैं, मुझ पर कृपा होना उनकी परम कोमलता है। ऐसा स्वभाव न किसी का सुनता हूँ और न देखता हूँ, तो फिर-हे गरुड़जी ! श्रीरघुनाथजी के समान किसे समझूँ।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी * कबि कोविद कृतग्य सन्यासी
जोगी सूर सुतापस ग्यानी * धर्म निरत पण्डित बिग्यानी

साधक, सिद्ध, जीवनमुक्त उदासीन, कवि, विद्वान, तत्व-ज्ञाता, सन्यासी, योगी, तपस्वी ज्ञानी, धर्मात्मा, पण्डित और विज्ञानी आदि—

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी * राम नमामि नमामि नमामी
सरन गएँ मोरे अघ रासी * होहिं शुद्ध नमामि अबिनासी

ये मेरे स्वामीरामजीकी सेवा किये बिना नहीं तर सकते। ऐसे रामजीकोमैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जिनकी शरण जाने से मुझसे पापी भी शुद्ध हो जाते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ।

दोहा—जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपालु मोहि तो पर, सदा रहहिं अनुकूल ॥१२४क॥

जिनका नाम संसार रोग की औषधि है और तीनों तापों को हरने वाला है, वे कृपालु प्रभु मेरे और आपके ऊपर सदैव प्रसन्न रहें।

सुनि भुसुण्डि के वचन शुभ, देखि राम पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा, गरुण बिगत सन्देह ॥१२४ख॥

कागभुशुण्डिजी के सुन्दर वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में उनका प्रेम देखकर सन्देह रहित होकर गरुड़जी प्रेम पूर्वक बोले—

मैं कृतकृत्य भयउँ तब बानी * सुनि रघुबीर भगति रस सानी
रामचरन नूतन रति भई * माया जनित बिपति सब गई

श्रीराम-भक्ति के रस से सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य होगया। श्रीरामजी के चरणों में मेरी नूतन प्रीति और माया से उत्पन्न विपत्ति चली गई।

मोह जलधि बोहित तुम्ह भए * मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए
मो पहिं होइ न प्रीति उपकारा * बन्दउँ तब पद बारहिं बारा

मोहरूपी समुद्र में डूबते हुए मुझको आप नौका हुए। हे नाथ! आपने मुझे अति सुख दिया। मुझको आपका प्रत्युपकार नहीं होगा, मैं तो बारम्बार आपके चरणों की वन्दना करता हूँ।

पूरन काम राम अनुरागी * तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी
सन्त बिटप सरिता गिरिधरनी * परहित हेतु सबन्हि कै करनी

हे तात! आप पूर्णकाम हैं, श्रीरामजी के प्रेमी हैं और आपके समान बड़भागी कोई नहीं है। सन्त, वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी-इन सबकी करनी दूसरों की भलाई के लिए ही होती हैं।

सन्त हृदय नवनीत समाना * कहा कबिन्ह पर कहै न जाना
निज परिताप द्रवइ नवनीता * पर दुख द्रवहि सन्त सुपुनीता

संतका हृदय मक्खन के समान कवियोंने कहा है, परन्तु उनसे कहते नहीं बना, क्योंकि मक्खन तो स्वयं को ताप पाकर पिघलता है और पवित्रसन्त पराये दुःख को देखकर ही पिघल जाते हैं।

जीवन जन्म सुफल मम भयऊ * तव प्रसाद संसय सब गयऊ
जानेहु सदा मोहि निज किंकर * पुनि पुनि उमा कहइ बिहङ्गबर

मेरा जीवन और जन्म सफल होगया और आपकी कृपा से सब संदेह जाता रहा। शिवजी बोले-हे पार्वती! पक्षी श्रेष्ठ गरुडजी बारम्बार कहरहे हैं कि मुझे सदैव अपना सेवक जानियेगा।

दोहा—तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर ॥१२५क॥

तब काकभुशुण्डिजी के चरणों में प्रीति पूर्वक मस्तक नवाकर धीर-बुद्धि गरुड़जी श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में रखकर बैकुण्ठ को चले गये।

गिरजा सन्त समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरिकृपा न होइ सो, गावहिं वेद पुरान ॥१२५ख॥

हे पार्वती ! सन्त समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है, परन्तु यह लाभ श्रीहरि की कृपा के बिना नहीं होता, यह वेद-पुराण कहते हैं।

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा * सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा
प्रनत कल्पतरु करुना पुञ्जा * उपजइ प्रीति राम पद कञ्जा

मैंने यह परम इतिहास कहा, इसको कानों से सुनते ही संसार के बन्धन छूट जाते हैं और दीन-भक्तों को कल्पवृक्ष के समान-दया के मूल श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों में प्रेम उत्पन्न होता है।

मन क्रम वचन जनित अघ जाई * सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई
तीर्थाटन साधन समुदाई * जोग बिराग ग्यान निपुनाई

जो यह राम-कथा कानों से मन लगाकर सुनते हैं, उनके मन, कर्म और वाणी से उत्पन्न पाप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थ यात्रा आदि साधन, योग, वैराग्य और ज्ञान की चतुरता आदि—

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना * संजम दम जप तप मख नाना
भूत दया द्विज गुन सेवकाई * विद्या बिनय बिवेक बड़ाई

अनेक कर्म, धर्म, ब्रत, दान तथा अनेक संयम, नियम, यज्ञ, जप व जीवों पर दया, ब्राह्मण और गुरु की सेवा, विद्या, विवेक, बड़प्पन तथा—

जहँ लगि साधन वेद बखानी * सबकर फल हरि भगति भवानी
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई * राम कृपाँ काहूँ एक पाई

हे भवानी ! वेदों में जितने साधन कहे हैं, उन सबका फल श्रीहरि-भक्ति ही है। वह श्रीराम-भक्ति जो वेदों में गाई गई है, उसे श्रीरामजी की कृपा से विरले ने ही पाई है।

दोहा—मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहिं विनय प्रयास।
जे हरि कथा निरन्तर, सुनहिं मानि विश्वास ॥१२६॥

जो लोग इस कथा को विश्वास मानकर सदैव सुनते हैं, वे बिना परिश्रम ही 'श्रीहरि-भक्ति' को पा जाते हैं, जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

सोइ सर्बग्य गुनी सो ग्याता * सोइ महि मण्डित पण्डित दाता
धर्म परायन सोइ कुल त्राता * रामचरन जाकर मन राता

वही सर्वज्ञ, गुणी, ज्ञानी, पृथ्वी का भूषण, पण्डित, दाता, धर्मात्मा और कुलका रक्षक है। जिसका मन श्रीरामजी के चरणों में लगा है।

नीतिनिपुन सोइ परम सयाना * श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिं जाना
सोइ कबिकोबिद सोइ रनधीरा * जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा

यह नीतिज्ञ, परम चतुर, वेद-सिद्धान्तों का ज्ञाता, कवि, पण्डित और रणधीर है, जो कपट छोड़कर श्रीरघुनाथजी को भजता है ।

धन्य सो देस जहाँ सुरसरी * धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी
धन्य सो भूप नीति जो करई * धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई

वही देश धन्य है-जहाँ गङ्गाजी हैं, वही स्त्री धन्य है-जो पतिव्रत धर्म का पालन करती है,वही राजा धन्य है-जो नीतिके अनुसार चलता है वही ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता ।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी * धन्य पुण्य रत मति सोइ पाकी
धन्य घरी सोइ जहँ सतसंगा * धन्य जन्म द्विज भगत अभंगा

वही धन धन्य है जिसकी प्रथमगति (दान) हो, वही बुद्धि धन्य व परिपक्व है-जो पुन्य में रत हो । वही घड़ी धन्य है-जहाँ सत्सङ्ग हो और वही जन्म धन्य है-जिसमें अखंड ब्राह्मण भक्ति हो ।

दोहा—सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुनाथ पारायन, जेहिं जन उपज बिनीत ॥१२७॥

हे उमा ! सुनो, वही वंश धन्य है जो जगत-पूज्य तथा परम पवित्र हो और जिसमें श्रीरघुवीर-परायण विनीत पुरुष का जन्म हो ।

मति अनुरूप कथा मैं भाषी * जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी
तव मन प्रीति देखि अधिकाई * तब मैं रघुपति कथा सुनाई

अपनी मति के अनुसार यह कथा मैंने कही, यद्यपि पहिले इसे छिपा रक्खा था । जब मैंने तुम्हारे मन में अधिक प्रेम देखा, तब यह कथा कही है ।

यह न कहिअ सठही हठ सीलहि * जो मन लाइ न सुनि हरिलीलहि
कहिअ न लोभिहि क्रोधहि कामहि * जो न भजइ सचराचर स्वामिहि

यह उसे नहीं सुनानी चाहिए-जो शठ व हठी हो, जो हरि-चरितों को मन लगाकर न सुनता हो, लोभी, कामी हो और जो चराचर के प्रभु श्रीरामजी को नहीं भजता हो ।

द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ * सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ
रामकथा के तेइ अधिकारी * जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी

ब्राह्मण-द्रोही को यह कथा कभी न सुनावे, चाहे इन्द्र के समान राजा ही क्यों न हो । राम कथा सुनने के अधिकारी वे ही पुरुष हैं,जिनको सज्जनों की सङ्गति अत्यन्त प्रिय लगती हो ।

गुरु पद प्रीति नीति रत जेई * द्विज सेवक अधिकारी तेई
ता कहँ यह बिशेष सुखदाई * जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई

गुरु के चरणों में जिनकी प्रीति है, जो प्रीति-परायण हैं, ब्राह्मणों के सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं । उसीको यह राम-कथा सुख देने वाली है, जिसको श्रीरघुनाथजी प्राणप्रिय हैं।

दोहा—रामचरन रति जो चहैं, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित सो यह कथा, करहिं श्रवन पुट पान ॥१२८॥

जो श्रीरामजी के चरणों में स्नेह चाहे अथवा मोक्ष चाहे वह इस कथारूपी अमृत को प्रेम सहित कान-रूपी-अधरों से पान करे।

रामकथा गिरजा मैं बरनी * कलिमल समनि मनोमल हरनी
संसृति रोग सँजीवन मूरी * रामकथा गावहिं श्रुति सूरी

हे पार्वती ! मैंने वह राम-कथा वर्णन की,जो कलियुग के पाप और मनकी मलीनता हरने वाली है। यह राम-कथा संसाररूपी रोग के लिए संजीवनी है, वेद और पण्डित ऐसा कहते हैं।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना * रघुपति भगति केर पन्थाना
अति हरि कृपा जाहि हर होई * पाउँ देइ एहि मारग सोई

इसमें जो सात सोपान हैं, वे ही श्रीराम-भक्ति के मार्ग हैं। जिस पर श्रीहरि की परम कृपा होगी-वही इस मार्ग में पाँव धरेगा।

मन कामना सिद्धि नर पावा * जे यह कथा कपट तजि गावा
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं * ते गोपद इव भवनिधि तरहीं

जो कपट छोड़कर यह कथा गावेगा,वह अपनी सब कामनाओं की सिद्धि पावेगा। जो इस कथा को कहते-सुनते व अनुमोदन करते हैं, वे संसार सागर को गोपद की भाँति पार कर जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई * गिरजा बोली गिरा सुहाई
नाथ कृपाँ मम गत सन्देहा * रामचरन उपजेउ नव नेहा

सब कथा सुनकर पार्वतीजी के हृदयको बहुत प्रिय लगी,तबवे सुहावनी वाणी बोलीं-हे नाथ ! आपकी कृपा से मेरा सन्देह जाता रहा और श्रीराम के चरणों में नया अनुराग उत्पन्न हुआ।

दोहा—मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद विश्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़, बीते सकल कलेस ॥१२९॥

हे विश्वनाथ ! मैं आपकी कृपा से कृतार्थ हुई, अब मन में श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति दृढ़ हो गई और सब क्लेश दूर हो गये।

यह शुभ शम्भु उमा सम्बादा * सुख सम्पादन समन विषादा
भव भञ्जन गञ्जन सन्देहा * जन रंजन सज्जन प्रिय ऐहा

श्रीशिव-पार्वतीजी का यह सम्वाद सुख को उत्पन्न और दुःखों को दूर करने वाला है। आवागमन से छुड़ाने वाला, सन्देहों को मिटाने वाला और सज्जनों को प्रिय है।

राम उपासक जे जग माहीं * एहि सम प्रिय तिन्हके कछु नाहीं
रघुपति कृपाँ जथामति गावा * मैं यह पावन चरित सुहावा

संसार में जो रामोपासक हैं-उनको इसके समान कुछ भी प्यारा नहीं है 'राम-कृपा' से यह सुन्दर चरित्र मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है।

एहि कलिकाल न साधन दूजा * जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा
रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहि * संतत सुनिय राम गुन ग्रामहि

इस कलियुग में कोई दूसरा साधन, योग, यज्ञ, तप, ब्रत, पूजा आदि नहीं है। अतः श्रीरामजी का स्मरण करना, श्रीरामजी के ही गुण गाना और श्रीरामजी के ही गुणगानों को निरन्तर सुनना चाहिए।

जासु पतित पावन बड़ बाना * गावहिं कवि श्रुति सन्त पुराना
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई * राम भजें गति केहिं नहिं पाई

पतितोंकाउद्धार करना ही जिनका महान् बाना (प्राण) है, कवि, वेद, संत व पुराणऐसाकहते है। हे मन! कपट त्याग कर तू उन्हीं प्रभु को भज! श्रीरामजी को भजने से किसने मुक्ति नहीं पाई?

छन्द–पाइँ न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेहि पावन होहिं राम नमामि ते॥

रे मूर्ख मन! श्रीरामजी को भजकर किसने गति नहीं पाई? वेश्या, अजामिल, व्याध, गीध, गजेन्द्र आदि अनेकों पापी उन्होंने तार दिये। अहिर, यवन, किरात, खल, चाण्डाल आदि महापापी भी एक बार ही जिनका नाम लेकर पवित्र होगये, उन राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

रघुवंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमलि मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबीर हरै॥

रघुवंश-भूषण श्रीरामचन्द्रजी का यह चरित्र जो मनुष्य कहेंगे, सुनेंगे एवं गावेंगे, वे बिना परिश्रम के ही कलियुग के पाप और मन के दोषरूपी मैलको धोकर श्रीरामजी के धाम को चले जावेंगे। जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयों को मनोहर जानकर हृदय में धारण करेंगे, उनकी भी पाँचों इन्द्रियों से उत्पन्न अविद्या को श्रीरघुनाथजी हर लेंगे।

सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथ परि करि प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्वानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमन्द तुलसीदास हूँ।
पायौ परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

जो सुन्दर, चतुर, कृपानिधान, अनाथों पर स्नेह करने वाले हैं, ऐसे एक श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। बिना कारण ही हित करने वाले श्रीरामजी के समान मोक्ष देने वाला कौन है? जिनकी थोड़ी ही कृपा से मुझ मन्द-मति तुलसीदास ने परम विश्राम पाया, ऐसे श्रीरघुनाथ जी के समान प्रभु कहीं भी नहीं।

दोहा—मो सम दीन न दीनहित, तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिषम भवपीर ॥१३०क॥

हे रघुनाथजी ! मेरे समान दीन और आपके समान दीनबन्धु और कौन होगा ? ऐसा विचार कर, हे रघुवंशमणि ! संसार की विषम पीड़ा को हर लीजिए।

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥१३०ख॥

कामी को स्त्री और लोभी को धन जैसे प्यारा लगता है, वैसे ही—हे श्रीरघुनाथजी ! हे रामजी आप मुझे सदा प्रिय लगें।

श्लोक—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्।
श्रीमद्राम पदाब्ज भक्तिमनिशं प्राप्त्यैतु रामायणम् ॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥

पहले जिस दुर्गम रामायण को श्रेष्ठ कवि भगवान शंकर ने श्रीरामजी के चरण-कमलों में निरन्तर भक्ति प्राप्त होने के लिए रचा था, इसी मानस (रामायण) को श्रीरामजी के नाम में लीन 'तुजसीदाजी' ने अपने हृदय के अन्धकार को दूर करने के लिए इसे 'मानस' रूप में भाषा-बद्ध किया है।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदम्।
मोह मलापहँ सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ॥
श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्तयाव गाहन्ति ये।
ते संसारपतङ्ग घोरकिरणै र्दह्यन्ति नो मानवा ॥

यह 'राम-चरित-मानस' पुण्यरूप, पापाहारी, सदैव मंगलकारी, विज्ञान और भक्तिदायक माया, मोह व क्लेश का नाश करने वाला, परम निर्मल, प्रेमरूपी जल से पूर्ण तथा मंगलमय है। जो लोग इस 'मानस-सरोवर' में भक्ति-पूर्वक स्नान करते हैं, वे संसाररूपी प्रचण्ड सूर्य की उग्र किरणों से सन्तप्त नहीं होते।

* मास परायण—तीसवाँ विश्राम *

* नवान्ह पारायण—नवाँ विश्राम *

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे कलकलिकलुष विध्वंसे सप्तम सोपान समाप्तम: ॥
कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का
यह सातवाँ सोपान समाप्त हुआ ॥

—: * :—

* श्रीगणेशाय नमः *

* श्रीगणपति–वन्दना *

गणपति की सेवा मङ्गल मेवा, से सेवा सब विघ्न टरें ॥ टेक ॥
तीन लोक तेतीस कोटि सर, द्वार खड़े सब अरज करें ॥
ऋद्धिसिद्धि दक्षिण वाम विराजें, आन-बान सो चमर करें ।
धूप दीप अरु लिए आरती, भक्त खड़े जय जयकार करें॥गण०॥
गुरु के मोदक भोग लगत हैं, मूषक वाहन चढ़ा करें ।
सोम्य रूप सेवा गणपति की, विघ्न भगें जा दूर परें ॥गण०॥
भादों मास की शुक्ल चतुर्दशी, दिन दोपहरा पूर्ण करें ।
लियौ जन्म गणपति प्रभुजी ने, दुर्गा मन आनन्द भरें ॥गण०॥
अद्भुत बाजे बजे इन्द्र के, देव-वधू गुनगान करें ।
श्रीशङ्कर के आनंद उपज्यौ, नाम सुनत सब बिघ्न टरें ॥गण०॥
आय विधाता बैठे आसन, इन्द्र-अप्सरा नृत्य करें ।
देखि 'वेद' ब्रह्माजी जाकौ, 'वघ्न-विनायक' नाम धरें ॥गण०॥
एक-दन्त गज-बदन विनायक, त्रिनयन रूप अनूप धरें ।
पग थम्भा-सा उदर पुष्टि है, देखि चन्द्रमा हास्य करें ॥गण०॥
देय शाप श्रीचन्द्रदेव को, कलाहीन तत्काल करें ।
चौदह लोक में फिरे गणपती, तीन लोक में राज्य करें ॥गण०॥
गणपति की पूजा करने से, काम सभी निर्विघ्न करें ।
श्रीप्रताप श्रीगणपतिजी की, हाथ जोरि स्तुति करें ॥गण०॥

—: * :—



* अथ मङ्गलाचरणम् *

श्लोक

शौर्य प्रसिद्धं कमनीय गात्रं महानुभावं रघुवंश केतुम् ।
स्वयं प्रभुःसद्विनयादि सिंधुःसीतासुबामं प्रणमामि रामम् ॥

वीरता में प्रसिद्ध, कोमल शरीर वाले, परम उदार, रघुवंश की ध्वजा-रूप-स्वयं प्रभु विनय आदि के समुद्र और वाम भाग में श्रीसीताजी सहित सुशोभित श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

प्रफुल्लनालीत्पललोचनं बिधुप्रतिद्वेषमुखाम्बुज द्युतिम् ।
शिरसिपुष्प प्रभु कोमलाच्छबि नमामिरासं ह्यमेध कृत्परम् ॥

जिनका प्रफुल्लित देह और नील-कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं, चन्द्रमा जिनके मुखारबिन्द की कान्ति से द्वेष मानता है । जिनके कोमल अंगों की छवि शिरस के पुष्प के समान है तथा जो अश्वमेघ करने में श्रेष्ठ हैं, ऐसे रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

दोहा—रघुपति कथा पुनीत अति, सुनि पुलके हरियान ।
बोले दोउ कर जोरि पुनि, सुनिये कृपानिधान ॥ १ ॥

अति पवित्र श्रीराम-कथा सुनकर गरुड़जी प्रफुल्लित हो गये फिर दोनों हाथ जोड़कर बोले—हे कृपानिधान सुनिये—

सुरसरि सम पावन भयो, नाथ हृदय अब मोर ।
जन्म जन्म छूटै नहीं, नाथ पदाम्बुज तोर ॥ २ ॥

हे नाथ ! अब मेरा हृदय-देवनदी (गंगाजी) के समान पवित्र होगया । हे स्वामी ! आपके चरणकमलों का प्रेम मुझसे जन्म-जन्मान्तर न छूटे ।

सुनेहु सकल गुनन प्रभु केरे * पूरे नाथ अनुग्रह मेरे
तव प्रसाद बायस कुल नाथा * हृदय बसी अब प्रभु गुनगाथा

प्रभु के सम्पूर्ण गुण-समूह सुनकर मेरे मनोरथ पूर्ण हो गये। हे काग श्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरे हृदय में अब प्रभु के गुणों की कथा बसी है।

मन सन्तोष न हृदय अघाहीं * यथा उदधि सरिता जब जाहीं
पशु पक्षी जड़ जङ्गम जाती * सचराचर बरनत बहु भाँती

मेरे मन में सन्तोष है, परन्तु हृदय नहीं अघाता, जैसे सब नदियों के मिलने से भी समुद्र नहीं भरता। पशु, पक्षी, स्थावर, जंगम और चर-अचर जीव जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

जे जन अवध बसहिं सुखधामा * लिये संग सादर श्रीरामा
तजि निज अवध गए सह देहा * यह सुन नाथ परम सन्देहा

जो मनुष्य सुखधाम अयोध्या में वास करते थे, उनको श्रीरामजी सादर साथ लेकर अयोध्या को छोड़कर, सदेह स्वर्गलोक को गये सो हे नाथ ! यह मुझे बड़ा भारी संदेह है।

अब प्रभु मोहि कहहु समुझाई * जान पिता मैं करौं ढिठाई
यह इतिहास पुनीत कृपाला * जिममख कीन्ह राम महिपाला

हे नाथ ! मैं आपको पिता के समान जानकर ढिठाई करके कहता हूँ कि अब आप मुझे वह पवित्र कथा सुनाइए, जैसे कि कृपालु-पृथ्वीपति श्रीरामजी ने अश्वमेध-यज्ञ किया।

दोहा—अस कहि गद्‌गद् कण्ठ मृदु, पुलकावली शरीर।
सुनि सप्रेम हर्षेउ बिहँग, बायस अति मति धीर॥ ३॥

ऐसा कहकर गरुड़जी का कण्ठ गद्‌गद् और शरीर पुलकित होगया। यह सुनकर धैर्य-वान कागभुशुण्डिजी प्रसन्न होकर बोले—

राम कृपाँ तुम्हरे मन माहीं * संसय सोक मोह भ्रम नाहीं
धन्य धन्य तुम्ह धनि खगराय * कीन्ही अमित मोहि पर दाया

हे गरुड़जी ! श्रीरामजी की कृपा से आपके हृदय में संशय, शोक, मोह, भ्रम कुछ भी नहीं है। आप बारम्बार धन्य हैं। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की।

अतिप्रिय वचन रसग्य तुम्हारे * लागत नाथ मोहि अति प्यारे
तब तनु प्रीति देखि खगराया * मिटहि अमंगल कोटि अमाया

हे नाथ ! आपके रसीले व मीठे वचन मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। आपके हृदय की प्रीति देखकर बहुत से अमंगल नाश हो जाते हैं।

सुनु अब राम रहस्य अनूप * चरित अनूप अवधपुर भूपा
अज अद्वैत अमल अविनासी * रहित सकल कलिमल भव फाँसी

अब आप अवध-नरेश श्रीरामजी के गूढ़ एवं अनुपम चरित्र सुनिये। वे अजन्मा, अद्वैत अविनाशी हैं और कलियुग के पाप तथा भव-बन्धन से रहित हैं।

रुद्र सहस्त्र वर्ष खग ईसा * कीन्ह चरित रति रहि जगदीशा
सो सब बिसद कथा बिस्तारी * कहौं सुनौं जग हित उरगारी

हे गरुड़जी ! श्रीरामजी ने ग्यारह हजार वर्ष रहकर जो चरित्र किये हैं । यह सब संसार के उपकार के हेतु विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सो सुनिये।

दोहा—विधि वर वचन सँभारि उर, राजत करुनाऐन ।
जुगल जोरि शोभा निरखि, लजति कोटिरत नैन ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी के वचनों को मानकर करुणासागर प्रभु विराजमान रहे युगल जोड़ी की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित होते हैं ।

अनुज सचिव प्रभु प्रजा बुलाए * गुरु गृह सादर मुनि सँग आए
मकर मास रवि पर्व सुहावा * बिदा माँगि गुरुपद सिरुनावा

श्रीरामजी एक समय छोटे भाई, मंत्री, प्रजा आदि को बुलाकर बड़े आदर से गुरुजीके घर आये । मकर-मास में सूर्य-पर्व जानकर सबने गुरुजी से बिदा माँगकर चरणों में सिर नवाया ।

काशी क्षेत्र धर्ममय जाना * चले सकल सजि वाहन नाना
चतुरङ्गिनी अनी सब साथा * एहि विधि गवनकीन्ह रघुनाथा

काशी—क्षेत्र को धार्मिक जानकर सब अनेक सवारियाँ सजाकर चले । चतुरंगिनी सेना साथ में लेकर श्रीरघुनाथजी ने गमन किया ।

बीच बास करि शिवपुर आए * सादर पुरिहि सीस सब नाए
आइ सुरसरिहि कीन्ह प्रनामा * अभय अनन्त पाइ विश्रामा

बीच में ठहर कर काशी आये और सबने पुरी को प्रणाम किया । आकर गंगाजी को प्रणाम किया और अत्यन्त सुख पाकर प्रसन्न हुए ।

महिसुर दण्ड यती सन्यासी * पूजे कृपासिंधु सुखरासी
दीन्ह दान कछु बरनि न जाई * धनद कुवेर सुरेस लजाई

कृपा के समुद्र, सुख की राशि-प्रभु ने ब्राह्मणों, दण्डियों, यतियों, और सन्यासियों का पूजन किया और इतना दान दिया—जिसका वर्णन नहीं हो सकता । जिसे देखकर धनपति कुवेर और देवराज इन्द्र भी लज्जित होगये ।

दोहा—तहाँ रहे प्रभु अमित दिन, सुखी किये मुनिवृन्द ।
आँए पुनि निज नगर महँ, हरषित करुनाकन्द ॥ ५ ॥

इस प्रकार प्रभु ने वहां बहुत दिन रहकर मुनियों को सुखी किया । फिर करुणासागर प्रभु प्रसन्न हो अपने नगर में आये ।

प्रतिदिन अबध अनन्द उछाहू * दान देहिं प्रतिदिन नहनाहू
दुख परिपंच सोक नहिं काहू * कुवचन कबहुँ न सुन खगराहू

अयोध्या में नित-नये आनन्द होते हैं और महाराज नित्य दान देते हैं । हे पक्षिराज !

सुनिहिं जहँ तहँ वेद पुराना * दूसर धर्म न काहू जाना
दिन दिन प्रीति देखि भगवाना * अति आनन्द सकल सुर जाना

लोग जहाँ-तहाँ वेद-पुराण सुनते हैं, कोई दूसरा धर्म नहीं जानते । लोग प्रभु की कृपा देखकर बड़े ही प्रसन्न हैं ।

शिव सम्वत परमान हमारा * भए सोच बस राम उदारा
अश्वमेघ मख करौं सोहाई * गाय तरहिं नर भव समुदाई

फिर उदार श्रीरामजी ऐसा विचार कर सोच के वश होगये कि मुझे यहाँ केवल १०० वर्ष ही रहना है । अतः एक अश्वमेघ-यज्ञ करूँ, जिसे गाकर संसारी-मनुष्य भवसागर से तर जायँ ।

पुनि तुरत निज धाम सिधावौं * बिधि वर वचन न चूक लगावौं
प्रात जाइ गुरु भवन सप्रीती * हौं करिहौं सब सुन्दर रीती

फिर तुरन्त अपने धाम को जाऊँ और ब्रह्माजी के वचन में कोई चूक न करूँ । प्रातःकाल ही सप्रेम गुरुजी के घर जाकर उनकी आज्ञा से नीति सहित सुन्दर यज्ञ करूँगा ।

दोहा—अस विचार उर राखिकर, कृपासिन्धु मतिधीर ।
किये चरित नाना अमित, हरन शोक भवभीर ।। ६ ।।

कृपासिंधु, धीर-बुद्धि प्रभु ने हृदय में ऐसा विचार करके अनेकों अनौखे चरित्र किये, जो शोक और भव-भय को दूर करने वाले हैं ।

रघुवर राज विराज अति, सकल अवनि अघ भाग ।
बिचरहिं मुनि कानन विपुल, बसहिं सहित अनुराग ।। ७ ।।

राम-राज्य के होने से पृथ्वी का सब पाप दूर हो गया । मुनिजन प्रीति और स्नेह के साथ निर्जन-वन में निर्भय हो विचरने लगे ।

अवनि सुहावनि कानन चारू * खगमृग इक सँग करहिं बिहारू
बैं न सुनिअ राम के राजा * रहैं बैर बिनु सब खगराजा

हे पक्षिराज ! पृथ्वी और वन शोभायमान थे, पशु और पक्षी एक साथ विहार करते थे । राम-राज्य में बैर तो सुनाई भी नहीं देता था । सब प्रेम से रहते थे ।

नाना ग्रन्थ स्मृति समुदाई * गाय न सकहिं राम प्रभुताई
सादर चतुरानन गौरीसा * कोटि कोटि अगनित अहिईसा

अनेकों ग्रन्थ व स्मृतियों के समुदाय भी श्रीरामजी की प्रभुता नहीं गा सकते । सरस्वती, ब्रह्मा, महादेव और करोड़ों शेषनाग तथा—

कवि कोविद जहँ लगि जगमाहीं * राम राजु गुन सकहिं न गाहीं
असित आदि कज्जलगिरि भूरी * पयनिधि पात्र सारिता रूरी

संसार में जहां तक कवि व पण्डित हैं, वे सब मिलकर भी राम-राज्य के गुण वर्णन नहीं कर सकते। कज्जल-गिरि की स्याही बनाई जाय और समुद्र की दवात बनाई जाय—

करहिं लेखनी सुरतरु डारी * सप्तद्वीप महिपत्र बिचारी
बाणो हरिहर बिधि समुदाई * सहस कल्पसत लिखहिं बनाई

कल्पवृक्ष की कलम बनाकर, सातों द्वीपों का पृथ्वी-पत्र (कागज) बनाया जाय और सरस्वती, ब्रह्मा, श्रीहरि और शङ्करजी समूह बनाकर सात हजार कल्पों तक लिखें—

सो०—तदपि न पावहि पार, राम राजु कौतुक अमित।
सुनु अब चरित अपार, जस खगपति आगे भयउ॥ १॥

तो भी राम-राज्य की लीलाओं का पार नहीं पा सकते। हे गुरुजी ! अब जो अपार चरित्र आगे हुए, उन्हें सुनिये—

राजत रामसभाँ सब भ्राता * तहँ आयो इक द्विज बिलखाता
कटुक कहत मुख करत पुकारा * हंस वंश बूढ़यौ संसारा

जब भाई राज-सभा में बिराजमान थे, वहां एक ब्राह्मण बिलखता हुआ आया, वह मुख से यह कटु-वचन पुकारकर कहता था कि 'संसार में सूर्य-वंश के रहते हुए' संसार डूब गया।

रघुदिलीप शिवि सगर नरेशा * अमित प्रभाव भए अवधेशा
पितु जीवत सुत त्यागेउ प्राना * प्रभु अन्तर्यामी सुनि काना

रघु, दिलीप, शिवि, सगर आदि बड़े प्रतापी अयोध्या के राजा हुए परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ कि पिता के रहते हुए-पुत्र प्राण त्याग दे। अन्तर्यामी प्रभु यह बातें कानों से सुनकर—

नर लीला करि राम कृपाला * लगे बिचार करन तत्काला
कारण कवन मृतक सुत भयऊ * द्विजदुख देखि दुखित प्रभु भयऊ

'नर-लीला के हेतु' कृपालु श्रीरामजी विचार करने लगे किस कारण से ब्राह्मण का पुत्र मर गया ? ब्राह्मण को देख प्रभु दुखित होगये।

प्रभुचित देखि गगन भइ बानी * शूद्र तपै सुनु सारङ्ग पानी
विन्ध्याचल गँभोर वन माहा * द्विज सुत हेतु मरण नरनाहा

प्रभुको विचार-मग्न देख आकाशवाणी हुई कि हे शारंगपणि! आपके राज्य में विंध्याचल पर्वत के गम्भीर वन में शूद्र तप कर रहा है, इसी कारण से इस ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई है।

छन्द—एहि भाँति द्विज सुत मृतक सुनि रथ साजि प्रभु आतुर चले।
द्वै परम सैल बिलोकि पावन मुदित चित सन्मुख भले॥
पुनि क्रोध संयुत विशिख छाँड़ै माथ लै सुरपुर गयो।
वर भक्ति आरति जान तेहि दै आपु तीरथ व्रत कियो॥

इस भांति ब्राह्मण-पुत्र का मरना सुनकर प्रभु शीघ्र ही रथ सजाकर चले और सामने दो सुन्दर पर्वतों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। फिर क्रोध पूर्वक प्रभु ने एक बाण मारा, जो उस शूद्र के मस्तक को लेकर देवलोक को चला गया। प्रभु ने उसे दुखी देखकर अपनी सुन्दर भक्ति दी और स्वयं प्रभु ने वहाँ तीर्थ एवं व्रत किया।

दोहा–द्विजवर बालक मृतक जो, उठि बैठेउ हरषाय।
आये पुर रघुपति भगत, भय भञ्जन सुखदाय ॥ ८ ॥

उसी समय ब्राह्मण का मरा हुआ पुत्र प्रसन्न होकर उठ बैठा, तब भक्त-भयहारी, सुखदायक श्रीरघुनाथजी नगर में आये।

उठि मध्यान्ह कीन्ह रघुनन्दन * पूजिपुरारि भक्त उर चन्दन
भोजन शयन जगतपति कीन्हा * निज निज धाम सबन्हि पग दीन्हा

श्रीरघुनाथजी ने उठकर मध्यान्ह-संध्याको और भक्त-सुखदायक शिवजी की पूजाकी। तब जगदीश्वर प्रभु ने भोजन करके शयन की, तो सब लोग अपने २ स्थानों को चले गये।

रहा दिवस जब घटिका चारी * जुरी सभा तब आय खरारी
सुनि पुराण प्रभु अनुज समेता * दिए दान शुभ दया निकेता

जब चार घड़ी दिन शेष रह गया, तो श्रीरामचन्द्रजी की सभा जुड़ी। प्रभुने सब भाइयों समेत पुराण सुने और दया के धाम प्रभु ने शुभ-दान दिये।

सबही सन्ध्या वन्दन कीन्हा * भवन चले प्रभु आयसु दीन्हा
नित्य कोटि चर अवध सिधावहिं * साँझ समय सब खबर सुनावहिं
पृथक पृथक सुनि चरवर वानी * बोला न एकु सो सुनहु भवानी

फिर सन्ध्या-वन्दन आदि करके प्रभु से आज्ञा पाकर सब अपने २ घर चले गये। नित्य अनेकों दूत अयोध्या में जाते और संध्या समय आकर प्रभु को सब समाचार सुनाते थे। अलग-अलग दूतों की वाणी प्रभु ने सुनी। हे पार्वती! सुनो, उनमें से एक दूत नहीं बोला।

छन्द–कछु कही नहिं सो पूछि सादर बचन वेगि न आवहीं।
एक रजक पत्निहिं कहत डाटत व्यङ्ग बचन सुनावहीं ॥
सुनि बचन कृपानिधान चर के मध्य उर राखे हरी।
निशि स्वप्न देखत जगतपति पुनिजागि दारुण दुख करी ॥

जब उस दूत ने कुछ न कहा, तब श्रीरामजी ने उससे आदर के साथ पूछा। परन्तु उससे शीघ्र ही बचन न कहते बना। वह बोला–हे प्रभु एक धोबी अपनी स्त्री को डाटकर व्यङ्ग-वचन कह रहा था। दूत के वचन सुनकर कृपानिधान श्रीहरि ने हृदय में रख लिए। रात्रि को स्वप्न में भी ऐसा ही देखा तो जागकर बड़े दुखी हुए।

दोहा–बीती अवधि प्रमाण युग, कीन्ह बिचार कृपाल।
एक सहस्त्र पितु राजु को, भोगौं मैं यहि काल ॥ ९ ॥

जब एक युग राज्य करते बीत गया तब कृपालु प्रभु ने विचार किया कि अभी एक हजार वर्ष तक पिता का राज्य मैं और भोगूं।

त्यागौं जनकसुता बन माहीं * राखौं श्रुतिपथ धर्म न जाहीं
दै मन ठीक सिया पहँ आए * सादर बोले बचन सुहाए

सीताजी को वन में भेज दूं, जिससे वेद-मार्ग रहे और धर्म न जाय ऐसा मन में दृढ़ निश्चय करके सीताजी के पास आये और सुन्दर वचन बोले—

निज छाँया महि राखि बिनीता * रहौ जाय निज धाम पुनीता
प्रभु पद बन्दि गई नभ सोई * जीव चराचर लखी न कोई

हे सीते। तुम अपना प्रतिबिम्ब पृथ्वी पर छोड़कर अपने पवित्र धाममें जाकर रहो। प्रभु के चरणों की बंदना करके सीताजी आकाशको चली गई इसे किसी चराचर प्राणी ने नहीं जाना।

तासन प्रभु अस कहा बुझाई * मन भावत मागहु वर जाई
नाथ साथ मुनिधाम सुहाई * आई तजि गृह मन सकुचाई

तब उस (छाया) से प्रभूने समझाकर कहा-जो मनको भावे,सो वरमाँगो। सीताजी बोलीं हे नाथ!आपके साथ मुनिजनों के सुन्दर स्थान छोड़कर मैं घर आई हूँ,इससे मनमें बड़ा संकोच है।

मुनितिय भूषन सकल सुहाए * पहिराए प्रभु जो मन भाए
हँसि कहि कृपानिकेत सकारे * पूजहिं मन अभिलाष तुम्हारे

तब प्रभु ने मुनियों को स्त्रियों के-से वस्त्राभूषण उनकी रुचि के अनुसार पहिनाये, फिर कृपा के धाम प्रभु ने हँसकर कहा प्रातःकाल तुम्हारे मन की अभिलाषा पूर्ण होगी।

दोहा—प्रात होत जब जगतपति, जागे रमा निवास।
जाचक गावत मुदित मन, लखि मुखकञ्जप्रकास ॥ १० ॥

प्रातःकाल जगत्पति, लक्ष्मी-निवास श्रीरामचन्द्रजी जागे तो याचक उनके कमल-समान प्रकाशमान मुख को देख हर्षित होकर गुण गाने लगे।

भरत शेष रिपुदमन समेता * आए जहँ प्रभु कृपानिकेता
कीन्ह प्रनाम माथ महि लाई * बोले नहिं कछु श्रीरघुराई

भरतजी, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जहाँ कृपा के धाम प्रभु थे वहाँ आये और पृथ्वी पर सिर नवाकर प्रणाम किया, श्रीरघुनाथजी कुछ नहीं बोले।

बदन बिलोकि ससङ्कित अंगा * श्रीहत देखि बपुष कर रंगा
थर थर काँपत तीनों भाई * जानि न जाइ चरित रघुराई

प्रभु का कान्तिहीन-मुख, शङ्कित-शरीर और मलिन-रङ्ग देखकर तीनों भाई थर-थर काँपने लगे। श्रीरघुनाथजी का चरित्र जाना नहीं जाता।

लेइ स्वांस अरु कुसमय जानी * बोले गूढ़ मनोहर बानी
बचन मोर उर राखहु भ्राता * लै बन जाहु जानकी ताता

सांस लेकर और कुसमय जानकर श्रीरामजी मनोहर गूढ़ वाणी बोले–हे तात ! मेरे वचन हृदय में रखकर जानकी को वन में ले जाओ ।

सूखि सहम सुनि बचन कराला * जरे गात उर उपजी ज्वाला
हँसत कि सत्य कहत रघुराया * असमञ्जस उर सुनि खगराया

ऐसे कठोर वचन सुनकर सहमकर सूखगये । शरीर जलने लगे और हृदय में दाह उत्पन्न हुआ । सब इस दुविधा में पड़ गये कि प्रभु यह सत्य कह रहे हैं अथवा, हंसी कर रहे हैं ?

दोहा–भरतआदि व्याकुल अनुज, नहिं आवत कहि बैन ।
जोरि जुग कर शत्रुहन, कहत नीर भरि नैन ॥ ११ ॥

भरत आदि सब भाई व्याकुल थे, किसी के मुख से वचन नही निकलते । तब दोनों हाथ जोड़कर शत्रुघ्नजी ने नेत्रों में जल भरकर कहा–

सुनि प्रभु बचन हृदय बिलखाना * जगतमातु सिय सब जग जाना
जगतपिता प्रभु सब उर बासी * सत चेतन घन आनँद रासी।

हेप्रभु! आपके वचन सुनकर हृदयमें बड़ी व्याकुलता होरही है सीताजी जगतकी माता हैं, इसे सारा संसार जानता है और आप जगत के पिता, अन्तर्यामी और सच्चिदानन्द की राशि हैं ।

कारन कवन जानकी त्यागी * मन क्रम बच तव पद अनुरागी
सुनु सर्वग्य सगर्भिणी जानी * रिस परिहास कि सत्य सुबानी

जिस कारण से आपने जानकीजी त्याग दीं ? वे तो मन, कर्म, वचन से आपके चरणों की प्रेमिका हैं । हे सर्वज्ञ ! वे गर्भिणी सुनी हैं, आपने वह वचन क्रोध में हँसी में या सत्य कहे हैं ?

पंकज नयन नीर भरि आये * कहि प्रियबचन अनुज समझाये
आयसु मोर टरहिं जो ताता * रहहिं न प्रान तात मम गाता

यह सुनकर श्रीरामजी के कमल-नेत्रों में जल भर आया । उन्होंने प्रिय वचन कहकर सब भाइयों को समझाया–हे तात ! यदि मेरी आज्ञा टलेगी तो मेरे प्राण शरीर में न रहेंगे ।

हरि इच्छा भावी बलवाना * तुम्ह कहँ तात सदा कल्याना
यह मम बचन पालि लघु भाई * तात जानकिहि जाहु लिवाई

ईश्वर की इच्छा और होनहार बलवान है । हे तात ! तुम्हारे लिए सर्वदा कल्याण है । हे छोटे भाई ! मेरे इन वचनों को मानकर जानकीजी को वन में लिवा ले जाओ ।

सो०–सुनि प्रभु बचन कठोर, भरत कहेउ जुग जोरि कर ।
नाथ मोहि मति थोरि, सुनु बिनती सर्वग्य प्रभु ॥ २ ॥

प्रभु के कठोर वचन सुनकर भरतजी ने हाथ जोड़कर कहा–हे नाथ ! मेरी मति तो थोड़ी है और आप सर्वज्ञ प्रभु हैं अतः मेरी सुनिये ।

हंस बंश जग में बिख्याता * दशरथ पितु कोसल्या माता

त्रिभुवन पति प्रभु सब जग जाना * गावहिं जेहि श्रुति वेद पुराना

सूर्यवंश संसार में प्रसिद्ध है। दशरथजी हमारे पिता और कौशल्याजी माता हैं। तीनों लोकों के स्वामी आपको संसार जानता है, जिनका यश वेद पुराण गाते हैं।

सत्य शक्ति तव प्रकट गुसाँई * बरनि न सकहिं बेद अहिराई
शोभा खानि जानकी माता * रहित अमंगल मंगल दाता

वे आपकी सत्य-शक्ति प्रत्यक्ष हैं, जिनका वेद और शेषजी भी वर्णन नहीं कर सकते। वे जानकीजी शोभा की खान और मङ्गल को देने वाली हैं।

छाया जेहि तिय पतिव्रत धरहीं * ते नारी भवकूप न परहीं
जलबिनु मीन कि जियहि कृपाला * कृषी कि रह बिनु बारिद माला

उनकी छाँया के भी अनुसार पतिव्रत-धर्म रखने से स्त्रियाँ संसार के भय से बच जाती हैं। हे कृपालु! मछली क्या बिना जल के जी सकती है? खेती क्या बिना मेघ के हो सकती है?

अस तुम बिनु छिनु जियै कि सोता * ज्ञानवन्ति अति निपुण विनीता
सुनि करुणामय बचन सप्रीती * कही भरत तुम सुन्दर नीती

इसी प्रकार बिना आपके क्या ज्ञानवान्, चतुर सीताजी क्षण मात्र भी जी सकती हैं? रामजी भरतजी के प्रेम से करुणा भरे वचन सुनकर बोले-हे भरत! तुमने सुन्दर नीति कही है।

दोहा—तदपि नृपहि चाहिअ सदा, राजनीति धन धर्म।
बसुधा पालहि सोच तजि, वचन नीति शुभ कर्म॥ १२॥

तो भी राजा को सदा नीति, धन और धर्म की रक्षा, सोच छोड़कर नीति युक्त वाणी और पवित्र कर्मों से पृथ्वी का पालन करना चाहिए।

दूत चरित जस सुन्यौ सो कहेऊ * कुल कलंक यह दारुण भयेऊ
तरणि वंश नृप भये अनेका * एक एक तें निपुण विवेका

दूत से जो चरित्र सुना था, सो कह सुनाया। और बोले-कुल में यह भारी कलंक लगा। सूर्यवंश में अनेक राजा एक से एक ज्ञानी हुए हैं।

रघु दिलीप स्वायम्भुव जाना * सगर भगीरथ बेद बखाना
दशरथ विदित जान जग नीके * बचन न टारेउ लालच जी के

राजा रघु, दिलीप, स्वयाम्भु-मनु, सगर, भागीरथ आदि जिनका यश वेदों ने गाया है। महाराज दशरथ तो संसार में भली-भाँति विदित हैं, जिन्होंने प्राणोंके मोहसे भी वचन न छोड़ा।

तेहि कुल रञ्चक सुनिय कलंकू * रहै जीव जग अधम असंकू
सुनु सर्वग्य सकल भयहारी * रहित कलंक विदेह कुमारी

उसी कुल में थोड़ा भी कलङ्क सुनने पर यदि प्राण रहे तो वे बड़े अधम हैं। भरतजी बोले–हे सम्पूर्ण भय का नाश करने वाले! सुनिये, सीताजी कलङ्क रहित हैं।

बिधि हरिहर देव देखि सुहाई * पावक अविटि कनक समगाई
जे सुर नर मुनि सपनेहुँ नाहीं * यह चरित्र जग लखि अनखाहीं

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं ने श्रीसीताजी को आग में तपाये हुए शुद्ध स्वर्ण के समान कहकर प्रशंसा की है। सुर, नर, मुनि कोई ऐसा नहीं है, जो इस चरित्र को देखकर स्वप्न में भी अनखता हो।

दोहा—ते शठ रौरव नरक महुँ, कोटि कलप करि वास।
रहहिं कोटि सत रोगवश, भोगहिं नरक निवास ॥ १३ ॥

वे मूर्ख अवश्य ही करोड़ों रौरव-नरकों में निवास करेंगे और रोग के वश रहकर नरक भोगेंगे (जो सीताजी को कलङ्कित कहेंगे)।

रिस रुख देखि नयन करि तीछे * आए भरत लखन के पीछे
सुनि सौमित्र छाँड़ि हठि सोचू * जग भल कहै कहो किन पोचू

श्रीरामजी के क्रोधित रुख और तिरछे नेत्र देखकर भरतजी लक्ष्मणजी के पीछे चले गये। श्रीरामजी बोले-हे सौमित्र ! हठ और सोच छोड़कर सुनो, संसार चाहे भला कहे या बुरा।

तजि आज्ञा प्रत्युत्तर करिहौ * मोहि बिनु सोच जन्म भर मरिहौ
जनकसुतहि रथ तुरत चढ़ाई * गङ्ग समीप फिरहु पहुँचाई

यदि तुम मेरी आज्ञा को टालकर उत्तर दोगे तो मेरे बिना शोक में जन्म भर पछिताओगे। अतः जानकी को तुरन्त रथ पर चढ़ाकर गङ्गाजी के समीप पहुँचाकर लौट आओ।

अति गहवर वन जहाँ न कोई * छाँड़हु तात यतन कर सोई
फेरहु तुम मति वचन उदासा * मरण ठान करि चले निरासा

अत्यन्त गम्भीर वन में जहाँ कोई न हो, हे तात ! वहीं सीता को छोड़ आना। उदास होकर मेरे वचनों को मत फेरो। तब लक्ष्मणजी अपना मरण मन में जानकर चले।

सुभग विमान सीय बैठाई * पद भूषन भरि धरे बनाई
अति अनन्द मन चली जानकी * अतिसय प्रिय करुनानिधान की

सुन्दर विमान में सीताजी को बैठाकर, वस्त्र और भोजन रक्खे। श्रीरामजी की प्रियतमा सीताजी मन में प्रसन्न होकर चलीं।

दोहा—विवरणलखन निहारिसिय, चकित विकल भइ बाल।
हृदय विचारि न कहि सकत, मणि बिनु व्याकुल व्याल॥ १४ ॥

सीताजी-लक्ष्मणजी को व्याकुल देखकर विस्मित होकर ऐसी घबड़ाईं, जैसे मणि के बिना साँप ! वे हृदय के विचार कह नहीं सकतीं।

उतरि देवसरि यान सोहावा * अति उद्यान देखि भय पावा
कारण अपर जानि भयभीता * बोली वचन मनोहर सीता

गङ्गाजी के किनारे विमान से उतरकर घना जङ्गल देखकर वे डरीं। कुछ रहस्य जानकर भयभीत सीताजी मनोहर वचन बोलीं—

दिखियत नहीं मुनिन के धामा * जात कहाँ प्रिय अनुज सकामा
खगमृग जीवबिविधभरिब्याला * करि केहरि बृक बाघ श्रृगाला

हे देवर ! यहाँ मुनियों के आश्रम दिखाई नहीं देते, तुम कहाँ जा रहे हो ? यहाँ पक्षी हिरन, सिंह, साँप, हाथी, बाघ, भेड़िया स्यार भरे हैं ।

कोउ मुनि मिलतन आवत जाता * निकसत प्राण तात मम गाता
सीय विकल लखि मनहि अहीसा * कहन लगे कहा कीन्ह विधीसा

कोई मुनि आते-जाते भी नहीं मिलते । मेरे शरीर से प्रान निकले जाते हैं । सीताजी को व्याकुल देखकर लक्ष्मणजी कहने लगे कि ब्रह्मा ने यह क्या किया ?

मूर्छित रथ ते भे बिकरारा * भूमि गिरत तब आप सँभारा
सिय बिलोकि मन धीरज आना * जीवनु बिनु अब निकसत प्राना

सीताजी रथ में मूर्छित होगई, परन्तु पृथ्वी पर गिरते हुए लक्ष्मणजी ने सम्हाल लीं । सीता को व्याकुल देख मन में कहने लगे कि अब बिना जीवन के प्राण निकले जाते हैं ।

दोहा—धरणिसुता व्याकुल निरख, प्राण कण्ठगत जान ।
तजन चहत तनु शेष तब, धिकधिक जीवन प्रान ।। १५ ।।

जानकीजी की व्याकुलता देख और उनके प्राण कण्ठगत जानकर वे भी अपने जीवन को धिक्कारते हुए शरीर छोड़ने को उद्यत हो गये ।

प्राण बिना लक्ष्मण कहँ देखी * गगन गिरा तब भई विसेषी
सुनु सौमित्र जाहु सिय त्यागी * जनकि पुत्रिका जियहि सुभागी

लक्ष्मणजी को निष्प्राण देखकर आकाशवाणी हुई—हे लक्ष्मण ! तुम सीता को त्यागकर चले जाओ, सौभाग्यवती सीताजी जीती रहेगीं ।

गगन गिरा सुनि धीरजु कीन्हा * हाथ जोड़ि परिदक्षिण दीन्हा
लै रथ चरन बन्दि सिय केरे * चले अवध उर त्रास घनेरे

आकाशवाणी सुन लक्ष्मण को धैर्य हुआ और हाथ जोड़कर परिक्रमा की । रथ लेकर सीताजी के चरणों की वन्दना करके वे मन में बड़े दुःखी हो अयोध्यापुरी को लौट दिये ।

जागी सिय सकल दिसि देखा * नहिं रथ अश्व नहीं तहँ शेषा
सहि दुख प्रथम रहे हैं प्राना * पुनि सोइ चहत न करत पयाना

सीताजी ने मूर्छा से जागकर चारों-ओर देखा, परन्तु उनको कहीं रथ, घोड़े और लक्ष्मणजी न दीख पड़े । वे बोलीं—मेरे प्राणों ने पहले भी दुःख सहा है, अतः ये अब भी नहीं निकलना चाहते ।

करुणा करत बिपिन अति भारी * बाल्मीकि आए बनचारी
सीता बाल्मीकि मुनि जाना * वन आवन निज चरित बखाना

सीताजी वनमें अत्यन्त विलाप कर रही थीं, इतने ही-में बाल्मीक मुनि घूमते हुए उधर आ

निकले, सीताजी ने बाल्मीकि मुनि को पहिचानकर अपना वन जाने का सब हाल वर्णन किया।

दोहा–मुनि पुत्री मैं जनक की, राम प्रिया जग जान।
त्यागन हेतु न जान कछु, विधिगति अति बलवान ॥ १६ ॥

हे मुनि ! मैं राजा जनक की पुत्री और श्रीरामजी की स्त्री हूँ, यह जगत जानता है। मैं अपने त्यागे जाने का कारण कुछ नहीं जानती, ब्रह्मा की गति बड़ी प्रबल है।

देवर लषण गए पहुँचाई * हेतु न कछु जानौं मुनिराई
सुनु कन्या मिथिलापति मोरा * परमशिष्य सब विधि पितु तोरा

देवर लक्ष्मण मुझे यहाँ पहुँचा गये हैं, परन्तु-हे मुनिवर ! मैं इसका कारण कुछ नहीं जानती। तब बाल्मीकिजी बोले-हे पुत्री ! सुनो तुम्हारे पिता मिथलापति जनक मेरे परम शिष्य हैं।

चिन्ता अब जनि करु सुकुमारी * मिलि हैं तोहि शेष हितकारी
सादर पर्णकुटी सिय आनी * करि मज्जनु पुनि सब गति ज़ानी

हे सुकुमारी ! अब तुम चिन्ता न करो, अन्त में तुम्हें हितकारी श्रीरामजी फिर मिलेंगे। आदर सहित सीताजी को पर्णकुटी में लाये और स्वयं स्नान कर : सब स्थिति सुनी।

बिबिध भाँति मुनि धीरज दीन्हा * सिय तब सुरसरि मज्जन कीन्हा
सुमिरि राम मूरति उर राखी * दीन्हे फल मुनि आशिष भाखी

मुनिने बहुत भाँति से धैर्य दिया, तब सीताजी ने गंगाजी में स्नान किया फिर श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर उनकी मूर्ति हृदय में धारण की। मुनि ने आशीर्वाद कहकर फल दिये।

मुनिवर कथा अनेक प्रसंगा * कहहिं सुनहिं सिय संग बिहंगा
ज्ञान अनेक प्रकार पढ़ाये * लक्ष्मण अवध सुनौ तब आये

मुनि अनेक कथायें कहते हैं और सीताजी के साथ पक्षीगण सुनते हैं। मन में बहुत से ज्ञान धारण करते हुए लक्ष्मणजी अयोध्या में आये।

छन्द–आए जो लछिमन त्यागि सीतहि विकल निज आश्रम गए।
बहु भाँति रोदनि मातु सम कहि सीय दारुन दुख दए॥
मुनि सहम मूर्छित मातु वाणी विकल जिमि फनि मनि गए।
रोदति केहि भाँति को कह विपति दारुन दुख भए॥

लक्ष्मणजी-सीताजी को त्याग कर आये और व्याकुल होकर अपने भवन में गये। वे माता से सीताजी को दारुण दुःख देने का हाल रोकर कहने लगे। सुनकर माता मूर्छित हो गई, जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल हो जाता है। सब रो-रोकर कहती हैं कि इस दारुण दुःख को कौन सह सकता है।

सुनि शोक राउरि सहित लछिमन प्रभु निज मन्दिर गए।
निज ज्ञान दै समझाय तेहि तब खुले पट अन्तर नए॥

वर चाहि सोइ सोइ दिये माँगत मातु करुणाकर तबै ।
तनु शोधि करि शुभ योग अपनी जाति भई सादर सबै ॥

शोक सुनकर श्रीरामजी, लक्ष्मण सहित अपने भवन में गये और अपने ज्ञान से माताओं को समझाया, तब उनके हृदय-पट खुल गये । जो २ वरदान माताओं ने चाहे-वही २ करुणा सागर ने उनको दिये । तब उन्होंने योगाग्नि से शुद्ध करके अपने-अपने शरीरों को त्याग दिया ।

दोहा—योग अग्नि तनु भस्म करि, सकल गईं पतिधाम ।
भरत शत्रु सूदन लषण, शोक मगन भए राम ॥ १७ ॥

योगाग्नि से शरीरों को भस्म कर सब पति धाम को गईं, तब श्रीरामजी, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी शोक में मग्न होगये ।

बिधिवत किये कर्म श्रुति गाये * प्रभु ते गुरु सादर करवाये
दीन्ह दान पुनि कोटि प्रकारा * को अस कवि जो वरणे पारा

श्रीरामजी से विधि पूर्वक, वेद के अनुकूल कर्म-गुरु ने आदर से करवाये । अनेक भांति से दान दिया । ऐसा कवि जगत में कौन है, जो उसका वर्णन कर पार पा सके ।

एक बार गुरु गृह सुखदाई * लै सँग अनुज सचिव रघुराई
कीन्ह दण्डवत कहि सिर नाई * बैठे प्रभु वर आसिष पाई

एक बार सुखदाई श्रीरामजी गुरु के घर मन्त्री और छोटे भाइयों के साथ गए । पृथ्वी पर मस्तक टेक कर प्रणाम किया और श्रेष्ठ आशीर्वाद पाकर बैठ गये ।

तब प्रसाद जप यज्ञ अनेका * कीन्हे अमित एक ते एका
नाथ सकल पुरजन मन माहीं * देखा अश्वमेध प्रभु चाहीं

वे बोले-आपकी कृपा से मैंने अनेकों एक से एक उत्तम यज्ञ किए हैं । परन्तु, हे नाथ ! सारे पुरवासियों के हृदय में एक अश्वमेध-यज्ञ देखने की इच्छा है ।

जस कछु आयसु दीजै नाथा * सो मैं करब नाय पद माथा
सुनि पुलके मुनि बचन सप्रीती * कस न कहौ तुम्ह सुन्दर नीती

हे नाथ ! आप यदि आज्ञा दें तो उसे मैं आपके चरणों में मस्तक नवाकर करूं ऐसे प्रीति युक्त वचन सुनकर मुनि बड़े प्रसन्न हुए और बोले-आप ऐसे नीति से युक्त वचन क्यों न कहेंगे ?

पूजहि मन अभिलाष तुम्हारी * उठहु भरत अब करहु तँयारी
सुनि मुनि वचन भरत रिपुदवनू * हरषि सचिव लछिमन गृहगवनू

ब्रह्माजी आपका मनोरथ पूर्ण करें । हे भरत ! उठो, और उचित प्रबन्ध करो । मुनि के वचन सुनकर भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणजी प्रसन्न होकर घर गए ।

दोहा—सेवक पुरजन सचिव सब, सादर तुरत बुलाय ।
हाट बाट पुर द्वार गृह, रचहु बितान बनाय ॥ १८ ॥

सेवक, प्रजा मन्त्रियों को आदर से बुलाकर कहा—बाजार, गली, नगर, घर और द्वारा को मण्डप बनाकर सजाओ।

गुरु समेत प्रभु अवधहिं आए * देखि बनाव बहुत सुख पाए
मिथिलापुर चर तुरत सिधाए * देश देश के नृपति बुलाए

गुरुजी के साथ प्रभु अयोध्या में आये और सजावट देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त ही जनकपुर को दूत भेजे और अनेक राजा बुलाये।

जामवन्त सुग्रीव विभीषण * अरु नल नील द्विविद कुलभूषण
आये सब जहाँ राम कृपाला * बरुण कुवेर इन्द्र यम काला

जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, नल, नील, द्विविद आदि अपने कुल में उत्तम व्यक्तियों को बुलाया। बरुण, कुवेर, यम, काल आदि सब वहाँ आये, जहाँ पर कृपालु श्रीरामचन्द्रजी थे।

चढ़ि विमान सुरत्रिया सुहाई * करत गान कलकण्ठ लजाई
आवहिं मुनिगण यूथ घनेरे * देहिं कृपानिधि सुन्दर डेरे

विमान पर चढ़कर सुन्दर देवांगनायें कोयल के कंठ को भी लज्जित करती हुई गा रही हैं। मुनियों के अनेक समूह आते हैं, जिन्हें कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर डेरे देते हैं।

शशिरबिहरिहरविधिसनकादी * आए सुर जे परम अनादी
विश्वामित्र संग मुनि झारी * सहस सात ऋषि इच्छाचारी

चन्द्रमा, सूर्य, हरि, महादेव, ब्रह्मा, सनकादिक मुनि आदि परम अनादि देवताभी आये। विश्वामित्र के साथ सात हजार अपनी इच्छानुसार विचरने वाले मुनिगण आए।

दोहा—पाराशर भृगु अंगिरा, नारद व्यास अगस्त्य।
आये यूथप सकल मुनि, देवल सहित पुलस्त्य ॥ १९ ॥

फिर पाराशर, भृगु, अंगिरा, नारद, व्यास, अगस्त्य और देवता सहित पुलस्त्यजी आदि सब मुनियों के झुण्ड आये।

मख स्थल अति देखि सुहावा * नाना भाँति देख सुख पावा
मिथिलापुर जो दूत सिधाये * तन मन पुलकि नयन जल छाए

आगन्तुकों ने यज्ञ का सुन्दर और नाना प्रकार से सुशोभित स्थान देखकर सुख पाया। जो दूत जनकपुर गये थे, उन्हें देखकर जनकपुर-वासियों को बड़ा सुख हुआ।

द्वारपाल मन खबर जनाई * अवध नगर ते पत्री आई
सुनि बिदेह सहसा उठि धाए * तन मन पुलकि नयन जल छाए

दूतों ने द्वारपाल द्वारा यह समाचार भेजा कि अयोध्या से पत्री आई है। अचानक यह सुन जनकजी उठ दौड़े। उनका मन और शरीर पुलकित था तथा नेत्रों से जल छाया हुआ था।

भयो भूप मन आनँद जेता * कहि न सकें शारद अहि तेता
शिथिल अंग नृप द्वारे आये * देखि दूत अतिशय सुख पाए



MAHARSHI BALMIKI

कहहु कुशल रघुपति सब भाई * गद्गद् कण्ठ न कछु कहि जाई

राजा के मनमें जितना आनन्द हुआ उसको सरस्वती और शेषनाग भी नहीं वर्णनकर सकते। शिथिल अङ्गों से महाराज द्वार पर आये और दूतों को देखकर बड़े सुखी हुए। वे बोले—श्रीरामचन्द्रजी और भाइयों की कुशल कहो। गद्-गद् कंठ से उनसे कुछ कहा नहीं जाता।

दोहा—भूप प्रेम तेहि समय जस, कहि न सकहिं मतिधीर।
तुलसी भयउ उछाह बस, जय जय शब्द गँभीर ॥२०॥

उस समय राजा का जैसा प्रेम था, उसे कोई धैर्यवान भी नहीं कह सकता। तुलसीदास जी कहते हैं—उस समय मारे आनन्द के गम्भीर जय-जयकार हुआ।

पूजे बिबिध प्रकार नृप, सादर दूत हँकारि।
गुरु गृह गवने मुकुटमणि, पाय पदारथ चारि ॥२१॥

राजा ने आदर सहित दूतों को बुलाकर सम्मान किया! तब राजा मानो चारों पदार्थ पाकर गुरु के घर गये।

सकल कथा महिपाल सुनाई * शतानन्द आनँद अधिकाई
चलहु नृपति मख देखिअ आई * साजहु जाय सकल कटिकाई

राजा जनक ने सारी कथा कह सुनाई, तब शतानन्दजी के मन में बड़ा भारी आनन्द हुआ। वे कहने लगे—हे राजन्! चलें, जाकर यज्ञ देखें अपनी सारी सेना को जाकर सजाओ।

करि बिनती नृप मन्दिर आए * सादर सेवक सकल बुलाए
साज सेन चतुरंग सुहाई * भवन गए सबही समुझाई

विनती करके राजा राज-महल में आये और आदर सहित सेवकों को बुलाकर कहा—चतुरङ्गिनी सेना सजाओ। सबको समझाकर वे गये।

पत्री सहित नारि गृह आए * बाँचि नृपति पुनि सकल सुनाए
आनँद सब रनिवास बुलाई * दिए दान महि देवन आई

वे पत्रिका के साथ अन्तःपुर आये और उसे पढ़कर सबको सुनाया। मारे आनन्द के सारे रनिवास ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत-सा दान दिया।

बाँचत प्रेम न हृदयँ समाता * चरवर बोलि कही हँसि बाता
नगर गाँव पुर मंगल साजहु * अमित अपार बाजने बाजहु

पत्री पढ़ते समय स्नेह हृदय में नहीं समाता। अपने दूतों को बुलाकर वे हँसकर बोले-नगर, ग्राम और घरों में मङ्गल सजाओ और नाना प्रकार के बाजे बजाओ।

दोहा—चलेउ राउ मुनिगण सहित, विपुल बजाय निशान।
प्रात तीसरे पहर सोइ, अवध नगर नियरान ॥ २२ ॥

इस प्रकार राजा जनक मुनि के सहित बाजे बजाकर चले। और दूसरे दिन तीसरे पहर

को अयोध्यापुरी के निकट पहुँचे ।

पुरि बाहर सरयू शुचि तीरा * बास दीन्ह हरषित रघुबीरा
सौंपि अनुज कहँ राज समाजू * आए प्रभु जहँ नृप मनि राजू

श्रीरामजी ने प्रसन्न होकर नगर के बाहर पवित्र सरयू के किनारे उन्हें ठहराया, फिर छोटे भाइयों को राज-समाज सौंपकर प्रभु वहाँ आये, जहाँ नृप-श्रेष्ठ महाराज जनकजी थे।

मिलि पुनि नृपति निकट बैठारे * गद्‌गद ब्है मृदु बचन उचारे
बदन मयंक निरखि सब गाता * आनँद मगन न हृदय समाता

तब राजा ने मिलकर उन्हें निकट बैठाया, फिर गद्‌गद होकर मधुर वचन कहे। चन्द्र-मुख व सारा शरीर देखकर राजा का हृदय आनन्द में नहीं समाता था।

प्रभु विनती करि सब सेवकाई * सचिव भरत पुनि लिए बुलाई
नृप सेवा सब भरत सँवारी * सुनु खगपति आनँद उर भारी

प्रभु ने विनययुक्त सब सेवा करके भरत और मन्त्री को बुला लिया। राजा जनकजी की सेवा का सारा भार भरतजी ने सँभाला। हे पक्षिराज सुनो उनके हृदय में बड़ा ही आनंद था।

आइ गुरुहि सादर सिरु नाई * मन भावति बर आषिस पाई
पुनि प्रभु सकल देव गुरु बन्दे * अभिमत आशिष पाइ अनन्दे

फिर गुरुजी को सादर सिर नवाया और मन-चाहा आशर्वाद पाया। फिर प्रभु ने सारे देवता और गुरुजनों को प्रणाम किया तथा मनोवांछित आशीष पाकर प्रसन्न हुए।

दोहा—दस सहस्र मुनिवर सहित, आए प्रभु सुख धाम।
बोले बचन बिनीत गुरु, मन्त्र सुनहु मन राम ॥ २३ ॥

दस हजार श्रेष्ठ मुनियों सहित प्रभु श्रीरामजी यज्ञशाला में आये। तब वशिष्ठजी ने विनम्र वचन कहे—हे राम! मेरा विचार सुनो—

धर्म सकल जेहिं वेद बखाने * सन्त पुराण लोक सब जाने
बिनु प्रिय सफल न होइ खरारी * अब चाहिय मिथलेश कुमारी

सब धर्म जिनका वेदों ने बखान किया है और जो सन्त, पुराण और संसार को विदित हैं, वे बिना स्त्री के सफल नहीं होते। इसलिए हे खरारि! अब मिथलेशकुमारी जानकीजी चाहिए।

सुनि मुनि वचन मौन गहि रहेऊ * सत्य असत्य न एकउ कहेऊ
मम प्रण विरद जान मुनिराया * रहे सुकृति जेहि करहु सो दाया

मुनि के वचन सुनकर श्रीरामजी चुप रह गये, सत्य-असत्य कुछ न बोले। फिर कहने लगे—हे मुनिराज! मेरे प्रण के यश को समझकर दया करके वही करिये जिससे सुकृत (पुण्य) रहें।

दोउ गुरु मिलि नारद सनकादी * बचन कहेउ सुनु परम अनादी
कनक जटित मनि सुन्दर बाला * रचि सीय रूप सुशील बिसाला

दोनों ओर के गुरु, नारद व सनकादिक मुनियों ने यह वचन कहा—हे अनादि पुरुष ! सुनिये, सोने की सुन्दर मणियों से जड़ित परम शीलवान सीताजी के रूप की एक सुन्दर स्त्री (प्रतिमा) बनाइये।

अङ्ग अङ्ग सब भूषन साजे * तासु रूप लखि रतिपति लाजे
सहसा लखिन सकहिं नरनारी * सिय देखहिं सब अचरज भारी

उसके अंग-अंगमें सब भूषण सजाये गये,उसके रूपको देखकर कामदेवभी लज्जित होता था। स्त्री-पुरुष जो अचानक पहिचान नहीं सके, सीताजी को देखकर सबको भारी आश्चर्य हुआ।

दोहा—तेहि अवसर शोभा अमित, को कवि बरनै पार।
जगदाधार कृपालु प्रभु, कीन्हे चरित अपार॥ २४॥

उस समय की अपार शोभा का वर्णन करके कौन कवि पार पा सकता है ? जगत के आधार कृपालु प्रभु ने अपार चरित्र किया।

युग सहस्त्र जे विप्रबर, सुन्दर परम प्रवीन।
जानहिं श्रुतिकरमतिसकल, रहिमख सङ्ग अधीन॥ २५॥

दो हजार श्रेष्ठ और चतुर ब्राह्मण जो वेद-मत को भली-भांति जानते थे, उस यज्ञ के आधीन (निमित्त) नियुक्त किये गये।

मकर मास ऋतु शिशिर सुहाई * मख मण्डल बैठे रघुराई
तब बोले गुरु बचन सुहाये * आनहुँ बाजि जो वेद बताये

माघ की सुन्दर शिशिर ऋतु-में श्रीरघुनाथजी यज्ञशाल में बैठे। तब गुरुजी बोले—जैसा वेद में कहा है, वैसा घोड़ा लाओ।

लछिमन सुनि गुरु वचन अनन्दे * बार बार पद पङ्कज बन्दे
हयशाला सादर चलि आये * बिबिध विभूषण तेहि पहिराये

लक्ष्मणजी गुरु के ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न हुए। वे बार २ उनके चरण-कमलों की वन्दना करके आदर सहित घुड़साल में आये और उस घोड़े को अनेकों भांति आभूषण पहनाये।

श्वेतवर्ण सुन्दर श्रुति कारे * रवि हय लजित मनोज सँवारे
जीन जड़ाउ न जाय बखाना * रवि रथ चढ़िआवत जगजाना
माथे मोरपंख मणि लागे * सोउ नभ नयन देखि अनुरागे

उस घोड़े का श्वेत-वर्ण था, कान काले थे, जो सूर्यदेव के घोड़ों को भी लज्जित करता था, मानो कामदेव ने अपने हाथों से ही बनाया हो। उसके ऊपर जड़ाऊ जीन रक्खी थी, ऐसा ज्ञान होता था, मानो सूर्यदेव ही चले आ रहे हों। माथे पर मोरपंख और मणि लगी थीं, मानो आकाश में तारे खिल रहे हों।

दोहा—षष्ठि सहस दस वीर वर, रामानुज रणधीर।
मध्य ताहि आनेहु तहाँ, जहाँ राम रघुवीर॥ २६॥

उसके संग साठ हजार श्रेष्ठ वीरों को लिये लक्ष्मणजी उसे वहाँ ले आये, जहाँ श्रीरघुनाथजी थे।

पूजेउ प्रभु हय जग जय हेतू * जस कछु कहा गाधिकुलकेतू
दीन्ह बिबिध विधि दान अनेका * लिखा पत्र सोइ कर अभिषेका

प्रभु ने विश्व-विजय के निमित्त घोड़े का पुजन किया और जो कुछ विश्वामित्र ने कहा—वही किया। अनेक भाँति से बहुत-सा दान दिया व उनका अभिषेक करके एक पत्र लिखा—

एक बीर कोसलपुर माहीं * अरिदल दमन सुरेश सकाहीं
जेहि बल होय गहौ सोइ बाजी * दण्ड देहु वन जाहु कि भाजी

कौशलपुर में एक वीर शत्रु-दल का नाश करने वाला है, जिससे इन्द्र भी डरते हैं। जिसमें बल हो—वह घोड़े को पकड़ बाँधे, नहीं तो दण्ड दे, अथवा अपने प्राण लेकर वन को भाग जाय।

लिखि बाँध्यौं हय शीश सँवारी * यह सुनि चरितआव मुनिचारी
भार्गव आदि सकल मुनि संगा * आये जहँ रघुवंश पतंगा

ऐसा लिखकर घोड़े के सिर पर उसे सँभालकर बाँध दिया। यह सुनकर बहुत से मुनि वहाँ पर आये। भृगु आदि सब मुनि वहाँ आये, जहाँ रघुकुल के सूर्य श्रीरघुनाथजी थे।

कथा सकल लवणासुर केरी * मुनिन्ह त्रास जिन्ह दीन्हि घनेरी
सुनि मुनि वचन नयन जल छाये * बहुरि राम निज त्रोण मँगाये

तब मुनियों ने लवणासुर की सब कथा कही, जिसने मुनियों को भारी दुःख दिया था। मुनियों के ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी के नेत्रों में जल भर आया, फिर उन्होंने अपना तरकस मँगाया।

दोहा—दीन्हे रिपुसूदनहि सो, बाण अमोघ कराल।
मंत्र मोरि पढ़ताहि हति, जीतहु सकल भुआल॥ २७॥

एक कराल और अमोघ बाण निकालकर शत्रुघ्नजी को दिया और कहा—मेरा मन्त्र पढ़कर इसको मारकर सब राजाओं को जीतो।

बहुरि विभीषण राम बुलाये * सादर आय माथ तिन्य नाये
लबणासुर के चरित अपारा * पूछे दिनमणि वंश उदारा

फिर श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण को बुलाया। उन्होंने आकर सादर प्रणाम किया, तब रघुवंश-मणि श्रीरामचन्द्रजी ने लवणासुर के अपार चरित्र पूछे।

कर युग जोरि निसाचर नाहा * सत्य कहौं अब सुनु अवगाहा
भगिनि विमात्र नाथ सो मेरी * कुम्भीनिसि तेहि नाम बहोरी

विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो! सुनिये, मैं सत्य कहता हूँ। मेरी एक सौतेली बहिन थी, जिसका नाम 'कुम्भनिसि' था।

मधु दानव कहँ रावण दीन्ही * बहु बिनती करि तब तेहि लीन्ही
तनय तासु लवणासुर भयऊ * शिव सेवा सादर जेहि कियऊ

अगम तासु तप शङ्कर जाना * दीन्ह सूल सुन कृपानिधाना

उसे रावण ने मधु-दानव को दिया था। उसने बहुत विनय से उसे लिया, उसी का पुत्र लवणासुर हुआ, जिसने सादर शिवजी की सेवा की। हे कृपानिधान! उसका कठिन तप जानकर शंकरजी ने उसे एक त्रिशूल दिया।

दोहा—तेहि बल प्रभु सो नहिं गनइ, अमर दनुज नर नाग।
जीति सकल निज वश किये, प[illegible] सबही के लाग ॥२८॥

प्रभु! वह इसी के बल से देवता, मनुष्य, नाग किसी को नहीं गिनता। सबको जीतकर वश में कर लिया और सबके पीछे पड़ा रहता है।

तासु चरित सुनि मन मुसुकाने * रिपुहन्तहि बल दै सनमाने
सैन सङ्ग चतुरङ्ग बनाई * लिए साथ दोउ तनय सोहाई

उसका हाल सुनकर श्रीरघुनाथजी मन में हँसे और शत्रुघ्नजी को अपना बल देकर सम्मान किया। उन्होंने सेना और दोनों सुन्दर पुत्रों को साथ लिया।

सुनि प्रभु बचन निशान अपारा * तीन सहस्र हने एकहि बारा
धसकै बसुधा कुञ्जर गाजे * दस सहस्र रथ रविरथ लाजे

प्रभु के वचन सुनते ही तीन हजार नगाड़े एक साथ बजे। हाथियों के गरजने से पृथ्वी धसकने लगी। दस हजार रथ सूर्य के रथ को लज्जित करते हैं।

पूर्यौ शंख चले दल साजी * अमित प्रकाश दुन्दुभी बाजी
चमू चपल अति सुभट जुझारा * घेर्यो नगर बीर बरियारा

शंख बजाते हुए सेना सजकर चली। आकाश में अनेक दुन्दुभियां बजीं। जुझाऊं वीर योद्धाओं को चपल सेना ने लवणासुर का नगर घेर लिया।

विपुल निसान हने तेहि काला * सुनि निसचरपति गर्ब विशाला
सुभट प्रचारत गर्जत आवा * देखि कटक निजअतिसुख पावा

उस समय अनेक नगाड़े बजे, जिन्हें सुनकर लवणासुर को बड़ा अभिमान हुआ। वह योद्धाओं को ललकारता हुआ आया और अपनी सेना को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

मारु शब्द सुनहि भट गार्जाहिं * विपुलबाजनेदोउ दिसिबाजाहिं
निज प्रभु कहि जय जोरी जानी * हर्षि भिरे भट हठ मन ठानी

मारूका शब्द सुनकर वीर प्रसन्न होने लगे, दोनों ओर अनेकों बाजे बजने लगे। अपने-अपने स्वामी की जय बोलकर और अपनी २ जोड़ी जानकर हठ ठानकर योद्धा प्रसन्नता से भिड़गये।

दोहा—बिचलित अनी बिलोकि निज, लवणासुर बरबण्ड।
सङ्ग तनय मातङ्ग भट, दसर केतु अखण्ड ॥ २९ ॥

बरबण्ड लवणासुर अपनी सेना को विचलित होते देख अपने दोनों पुत्रों मातङ्ग और केतु

को लेकर आगे बढ़ा ।

प्रभु सुत ज्येष्ठ सुबाहु विशाला * भिर्यौ मतङ्गहि जनु दुइ काला
यूपकेतु अरु केतु प्रचारी * लरहिं सुखेन न मानहिं हारी

शत्रुघ्नजी के बड़े पुत्र महान बलशाली सुबाहु,मतांग के साथ भिड़ गये, मानो दो काल हों। यूपकेतु भी केतु की ललकार सुन सुख पूर्वक भिड़गये, दोनों लड़ते हैं परन्तु हार नहीं मानते।

यूपकेतु करि कोप अपारा * हरि रिपुकेतु खण्ड महि डारा
उहाँ सुबाहु मतङ्गहि मारी * कर पद काटि अवनि महँ डारी

यूपकेतु ने क्रोध पूर्वक केतु को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया, उधर सुबाहु ने मतांग को मार उसके हाथ-पैरकर काटकर पृथ्वी पर डाल दिया ।

करि छल प्रगटेसि बिबिध बरूथा * अस्त्र शस्त्र गहि सब सुरयूथा
धरु धरु मारु मारु सुर करहीं * लरहि न भट विस्मय व्है रहहीं

लवणासुर ने माया करके अनेक देवताओं के झुण्ड पैदा कर दिये, जो हाथ में अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे और 'पकड़ो-पकड़ो' 'मारो-मारो' कह रहे थे । यह माया देखकर शत्रुघ्नजी के योद्धा विस्मित होकर लड़ते नहीं थे ।

रिपुसूदन प्रभु विशिख सँभारी * जोरेउ धनुष सुमिरि त्रिपुरारी
जिमि तम अचतरणि गा सोई * समर अमर नहिं दीखे कोई

शत्रुघ्नजी के प्रभु श्रीरामजीका बाण शिवजीको स्मरण करके सँभालकर धनुषपर चढ़ाया,तब जैसे सूर्य अपने पास गये अन्धकार का नाश कर देता है वैसे ही कोई देवता रण में नहीं दीखा ।

सुर समाज कतहुँ नहिं देखा * चल्यौ सुबाहु काल जनु वेषा
खल सँभारु गहु सूल विचारी * अस कहि गदा कोप उर मारी

देवताओं के झुण्ड कहीं न देखकर सुबाहु काल के समान वेग से चले,सन्मुख जाकर लवणासुर से बोले-रे दुष्ट ! अपना त्रिशूल सँभाल कर ले, ऐसा कह बड़े क्रोध से उनके हृदय में गदा मारी।

सहि न सक्यौ सो तेज अपारा * मूर्छित अवनि पर्यौ विकरारा
कैटभ नाम वीर बलवाना * मूर्छित लवणासुर मन जाना
तब खिसियान सूल लै धावा * यूपकेतु के सन्मुख आवा

वह राक्षस उस अपार तेज को न सह सका और व्याकुल हो मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, कैटभ नामक एक बलवान दैत्य ने जब लवणासुर को मन में मूर्छित जाना तो वह दैत्य खिसियाकर त्रिशूल लेकर दौड़ा और यूपकेतु के सामने आया ।

सो०—मारेसि हृदयँ सँभारि, गिरे जपत करुणा अयन ।
मूर्छित होत पुकारि, रामचन्द्र दिनमणि तिलक ।। ३ ।।

और यूपकेतु के हृदय में तककर मारा, वे करुणासागर को जपते हुए गिर पड़े । मूर्छित

होते समय वे पुकारे कि हे रघुकुल में श्रेष्ठ रामजी !

मूर्छित बन्धु सुबाहु बिलोकी * भइ रिस अमित रहत नहिं रोकी
कठिन बाण करि क्रोध अपारा * छाँड़ेउ तीन कोटि एक बारा

सुबाहु ने भाई को मूर्छित देखा तो उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ। वे रोकने से भी न रुके और उन्होंने क्रोधित हो तीन करोड़ कराल बाण छोड़े।

ताहि विकल करि अनुज समीपा * आतुर आयो रघुकुल दीपा
लागे बाण तास तनु माहीं * पर्यौ अवनि निल सुधि कछु नाहीं

उस राक्षस को व्याकुल करके रघुकुल-मणि सुबाहु शीघ्र ही भाई के निकट आये। यूपकेतु के शरीर में बाण लगे थे उन्हें कुछ होश न था और वे अचेत हुए भूमि पर पड़े थे।

ऐंचि साँस तनु बाहर कीन्हा * राम नाम वर औषधि दीन्हा
उठि शुठि अंग मनुज के संगा * लीन्ह बिहँसि धनुषवाण निषंगा

सुबाहु ने श्वांस को शरीर से खींचकर बाहर कर दिया और राम-नाम की श्रेष्ठ औषधि उन्हें दी। उसे सुनते ही वे भाई के साथ उठे और उनका अंग सुन्दर होगया। तब यूपकेतु ने हँसकर फिर धनुष-बाण लिया।

जाग्यौ निसिचर देखि लराई * चल्यौ कुमक लै संग निज भाई
सुर बैरी तेहि काल सकाई * हार समर महुँ सुनु खगराई

कैटभराक्षस मूर्छासे जागातो उसने युद्ध होते देखा,तब वह अपने भाई जाम्यकसे सहायता लेने आया। हे गरुड़ ! सुनो, उस देव शत्रु से काल भी डरता था, वह भी युद्ध में हार गया।

नायेउ माथ आनि कर जोरी * तात समर रुचि पूजी मोरी
रावण रिपु लघु भ्राता जानू * तनय तासु बल शील निधानू

उसने आकर मस्तक नवाया और कहा—हे तात ! आज युद्ध में मेरी इच्छा पूर्ण हुई है। रावण के शत्रु श्रीरामजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी के पुत्र-बल और शील के निधान हैं।

कोटिन्ह सूर समर हम मारे * बालक नृपति निरखि हिय हारे
रिपु बल सुनि कर हृदय कलापू * पठयसि मोहि जानि निज आपू
रवि तनया गहि सेना डारौं * तनय समेत अनुज रिपु मारौं

करोड़ों योद्धा हमने युद्ध में मारे हैं, परन्तु राज-पुत्रों को देखकर हम हृदय में हार गये हैं। स्वामी ने बैरी का बल सुन हृदय में दुःख मानकर हमें भेजा है। (लवणासुर बोला—) मैं सब सेना को यमुना में डुबा दूँगा और पुत्रों सहित भाई के शत्रु को मारूंगा।

दोहा—भिरे समर सारोष अति, फिरे सामने क्रूर।
लागे लोहा लेन हठ, समर वीर बलपूर ॥ ३० ॥

योद्धा रण में क्रोधित हो भिड़ गये और कायर जी चुराकर भागे। लोहा बजने लगा, रण में बली और योद्धा हठ करके रह गये।

साजि बाजि गज वाहिनी, गहि गहि हने निशान।
माया समर सकोप अति, लवणासुर बलवान ॥३१॥

घोड़े, हाथी की सेना सजाकर व नगाड़े बजाता हुआ क्रोधित हो लवणासुर रण में आया।

सुमिरि अवधपति चरण युग, छाँड़ेउ तीब्र नराच।
परयौ धरनितल खिन्न व्हे, व्याकुल निपट पिशाच ॥३२॥

शत्रुघ्नजी ने श्रीरामजी के चरणों का स्मरण कर कराल बाण छोड़ा, जिसके लगते ही वह कटकर पृथ्वी पर व्याकुल होकर गिर पड़ा।

तासु मरण सुनि जब्र सुरयूथा * चढ़ि विमान नभ देव बरूथा
बार्जाहं दुन्दुभि वरर्षाहं फूला * आजु नाथ बीते सब सूला

निसाचर का मरना देखकर सब देवता आकाश में बिमानों पर चढ़कर आये और दुन्दुभी बजाकर फूल बरसाकर बोले—हे नाथ ! आज सब दुख दूर होगया।

तहँ युग नगर रचे अति रूरे * राखे तनय युगल बल पूरे
मथुरा नाम जगत यश जाना * दूसर विदित जो वेद बखाना

शत्रुघ्नजी ने दो सुन्दर नगर रचकर दोनों पुत्रों को वहाँ का राज्य दे दिया। 'मथुरा' नगर का नाम और यश संसार जानता है और दूसरे 'विदित' नगर का महिमा वेदों ने गाई है।

ज्येष्ठ तनय बल बुद्धि विशाला * नाम सुबाहु बिदित महिपाला
राख्यौ यमुना तट बल भूरो * विदित नगर पश्चिम बहु दूरी

बल-बुद्धि में महान बड़े पुत्र सुबाहु को यमुना के किनारे मथुरा का राजा बनाया और दूसरे पुत्र यूपकेतु को विदित नगर का राजा बनाया, जो पश्चिम में बहुत दूर था।

चिरञ्जीव कहि हने निशाना * दक्षिण अश्व चला जब जाना
सचिव तनय राखे सुत सङ्गा * उतरे सब दल यमुन तरङ्गा

पुत्रों को आशीर्वाद देकर नगाड़ा बजाया, शत्रुघ्नजी ने जब घोड़े को दक्षिण दिशा को चलता हुआ जाना तो मन्त्री के पुत्रों को अपने कुमारों के निकट रखकर सब सेना साथ ले यमुना के जल में उतरे।

दोहा—रवितनया पद वन्दि कें, चलो सेन हय सङ्ग।
हर्षहि सुर वर्षहिं सुमन, निरखि सेन चतुरङ्ग ॥ ३३ ॥

यमुनाजी के चरणों की वन्दना करके सब सेना घोड़े के साथ चली। देवता चतुरंगिणी सेना को देखकर प्रसन्न हो पुष्पों की वर्षा करने लगे।

बाल्मीकि थल बाजि समेता * कानन सघन मुनीश निकेता
सिय सुत युगल वीर बरबण्डा * भुजबल बिपुल दिनेश प्रचण्डा

सब सेना घोड़े सहित वहाँ पहुँची, जहाँ सघनवनों में बाल्मीकिजी का आश्रम था, वहाँ सीताजी

दोनों बलवान पुत्र रहते थे, जिनकी भुजाओं का प्रताप सूर्य के समान प्रचण्ड था ।

बीर बली हय देखव आई * बाँध्यौ बाँचि सुपत्र बनाई
सूर सहस्त्र सहायक साथा * आइ गए जहँ रघुकुल नाथा

उन बलवानों ने आकर उस घोड़े को देखा और पत्र को पढ़कर घोड़े को बाँध लिया । एक हजार सहायक बीर उस स्थान पर गये, जहां दोनों राजकुमार बैठे थे ।

तरुवर बाँध्यौ बाजि बिलोकी * बालक जानि सकल रिसरोकी
देहु तुरत घर जाहु सुहाए * धन्य मातु पितु जिन्ह तुम्हजाए
माँगहु भीख समर चढ़ि भाई * क्षत्रिय कुलहिं कलंक लगाई

घोड़े को पेड़के तले बँधादेखकर,बालक जानकर सबने क्रोध रोकलिया वे बोले--हे बालको तुम घोड़े को हमें देकर घर जाओ । तुम्हारे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने तुम्हें पैदा किया है । (वे बोले–) हे भाई युद्ध में जाकर क्षत्रिय-कुल में कलंक लगाकर भीख माँगते हो ।

छन्द—जनि क्षत्रि कुलहिं कलंक लगावहुँ समर सूर सुहावने ।
बलहीन तुरंग प्रवीन छाँड़हु न तु गृह आपने ।।
सुनि वचन कठिन कठोर बालक जानि भट धावत भये ।
सर तानि एकहिं बान लव हँसि हने तनु जर्जर किये ।।

क्षत्रिय कुल में कलंक न लगाओ, बीर युद्ध में ही शोभा पाते हैं । यदि तुम बलहीन हो तो घोड़े को छोड़ दो और अपने घर लौट जाओ । ऐसे तीव्र वचन सुनकर योद्धा उन्हें बालक जानकर भी दौड़ पड़े । तब लव ने एक वाण छोड़कर उन सबके शरीर जर्जर कर दिये ।

सो०—सुनि मुनि बाल मराल, देहु अश्व निज कोप तजि ।
पूजि तुम्हहिं तत्काल, करहिं जन्म निज सफल प्रभु ।। ४ ।।

तब शत्रुघ्नजी बोले—हे हंस के समान मुनि बालको ! अपना क्रोध त्यागकर घोड़ा लौटा दो तो प्रभु तुम्हारी पूजा करके अपना जन्म सफल करेंगे ।

कोन नाम नृप केहि पुर बासू * फिरहु विपिन निज सेन प्रकासू
छाँड़ेहुँ बाजि हेतु केहि ताता * लिख्यौ पत्र बाँध्यौ यह गाता

यह सुनकर उन दोनों ने कहा--हे राजन् !आपका नाम क्या है ? किस नगर में रहते हो ? अपनी सेना को लिए जंगल में क्यों फिरते हो ? हे तात ! आपने यह घोड़ा क्यों छोड़ा है और इस पत्र में क्या लिखा है ?

नहिं तव तनु बल पौरुष भाई * छाँड़हुं पत्र बाजि गृह जाई
सुनि रिपुहन कटु गिरा लजाने * गहहु अस्त्र अस कहि मुसुकाने

हे [illegible] ओ ।

ऐसे कटु वचनसुनकर शत्रुघ्नजी लज्जित होगये और 'अस्त्र-पकडों' ऐसा कहकर मुस्कराये ।

हमहिं प्रचारत नृप बल भारी * डरपहिं सिंह बजाये तारी
अस कहि धनुष बान कर लीन्हे * मुनिवर चरन विनय चितदीन्हें
मार्यो रथ सारथी तुरङ्गा * कोठिन्ह बान हने सब अंगा

लव बोले--बलवान राजा हमें ललकार रहे हैं क्या ताली बजाने से सिंह डर सकता है। ऐसा कहकर हाथ में धनुष बाण लेकर मुनि के चरणों का ध्यान किया। फिर रथ, सारथी तथा घोड़े मार डाले और सब अंगों में करोड़ों बाण मारे।

दोहा–एकहिं एक प्रचार करि, हने सकल रण शूर।
आए सब रघुबीर पहँ, कायर करनी कूर ॥ ३४ ॥

दोनों कुमारों ने एक-एक शूर को रण में ललकार कर मार डाला। जो क्रूर-करनी वाले कायर थे, वे सब भागकर श्रीरामजी के पास आये।

पूँछेउ सकल भानुकुल नाथा * रिपु के सकल कहें गुन गाथा
लछिमन संग जाहु सब भाई * मुनि बालक बँधेउ बरिआई

सबसे रघुनाथजी ने पूछा तो उन्होंने शत्रु के गुणों की सारी कथा कह सुनाई। वे बोले--तुम सब लक्ष्मण के साथ जाओ और मुनि बालकों को बांधलो।

मारेउ जनि आनेउ पुर माहीं * रिषिसुत बधव उचित फलनाहीं
चली शेष संग सैन अपारा * नाए तुरत समर जहँ भारा

उन्हें मारना मत,नगरमें ले आना,क्योंकि ऋषि-पुत्रोंको मारना उचित नहीं होता लक्ष्मणजी के साथ अपार सेना चली और शीघ्र ही उस स्थान पर आये, जहाँ भारी युद्ध हुआ था।

लै घर जीव जाहु मुनि बालक * दिनकर वंश देव द्विज पालक
आँखिन्ह ओट होहु तुम्ह ताता * आवत क्रोध बढ़त मम गाता

लक्ष्मणजी बोले-हे मुनि-बालको ! अपने प्राण लेकर घर जाओ,सूर्यवंश देवता और ब्राह्मणों का रक्षक है। तुम आँखों की ओट में होजाओ, क्योंकि मेरे शरीर में क्रोध बढ़ता आरहा है।

दोहा–सुनि लछिमन के बचन वर, बिहँसे बालक वीर।
अनुज विलोकत जायहु, सुनहु महा रनधीर ॥ ३५ ॥

लक्ष्मणजी के उत्तम वचन सुनकर दोनों वीर बालक हँसे और कहने लगे--हे रणधीर ! आप अपने भाई की दशा देखते हुए घर लौट जाइये।

निज सहाय सठ आनि बुलाई * केवल तोहि न हतै भलाई
सुनु कुश कठिन बाण सन्धाना * कांपी पुहुमि शेष अकुलाना

लक्ष्मणजी ने कहा--रे मूर्ख ! अपने सहायकों को बुला ला, केवल तुझे मारने से कुछ भलाई नहीं है। ऐसे वचन सुन कुश ने बड़ा कठिन बाण ताना, जिससे पृथ्वी काँपने लगी और शेषजी घबड़ा गये।

काटहिं विशिख विशिख सुनजाई * कौतुक करहिं बिबिध खगराई

मल्लयुद्ध दोउ भिरे प्रचारी * लरहिं सुखेन न मानहिं हारी

हे गरुड़जी ! बाणों को बाण काटते हैं और अनेक कौतुक होते हैं । दोनों वीर युद्ध करते हैं और प्रसन्नता से लड़ते हैं, हार नहीं मानते ।

मुष्टिक एक बज्र सम मारी * विकल लषण मन मानहि हारी
सुमिर कोशलाधीश खरारी * मार्‌यो बाण बिकल लव डारी

तब लवने वज्रके समानएक घूंसा लक्ष्मणजी को मारा उन्होंने व्याकुल हो मन में हारमान ली, फिर लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी का स्मरण करके बाणसे सबको व्याकुल करके गिरा दिया ।

सुमिरि सिया मन चरण सुहाये * गत मूर्छा लव आतुर आये
शक्रजीत अरि जे शर मारे * ते सब बाल काठ महि डारे

सीताजी और मुनि के चरणों का स्मरणकर लव मूर्छा से जागकर जल्दी दौड़े । । जिन बाणों ने मेघनाद आदि शत्रुओं को मारा था, उन सबको बालकों ने काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया ।

दोहा—रामानुज विस्मय विकल, देखि सकल आराति ।
सिया त्यागि उर शोक बढ़, प्राण देहुँ केहि भाँति ॥ ३६ ॥

लक्ष्मणजी बलवान शत्रु को देखकर बड़े व्याकुल और विस्मित हुए । हृदय में सीताजी के त्याग का बड़ा शोक है । वे सोचते हैं कि किस भाँति से प्राण त्यागूं ।

कुशकरि क्रोध विशिखसो लीन्हा * मन्त्र प्रेरि मुनिवर जो दीन्हा
नाक रसातल भूतल माहीं * तेहि शर छुटै बचे कोउ नाहीं

तब लवने क्रोध करके उस बाण को लिया जो मुनि बाल्मीकिजी ने मन्त्र पढ़कर दिया था । पृथ्वी, आकाश और पाताल में कोई जीव उस बाण के छूटने से नहीं बच सकता था ।

मार्‌यो ताकि शेष उर माहीं * पर्‌योधरनितल सुधि कछु नाहीं
चली भाजि सब अनी अपारा * कोसलपुर महँ परी पुकारा

कुशने बाण को तानकर लक्ष्मणजी के हृदय में मारा । वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, उन्हें कुछ सुधि न रही । तब सारी सेना भागचली और अयोध्या में जाकर पुकार की ।

बरनी सकल युद्ध कै करनी * लछिमन वीर परे जिमि धरनी
जेहिं विधि सकल कटक संहारा * निज लोचन हम नाथ निहारा

उन्होंने युद्ध का वह सारा हाल कहा, जिस तरह से वीर लक्ष्मणजी भूमि पर गिरे थे । वह बोले—हे नाथ ! जिस प्रकार उन्होंने सारी सेना को मारा वह सब अपनी आँखों से देखा है ।

दोहा—भरत जोरि कर कहेउ तब, बचन अमित बिलखाइ ।
सीय त्यागि फल दीन्ह विधि, तब बोलेउ रघुराइ ॥ ३७ ॥

तब भरतजी ने हाथ जोड़कर अत्यन्त दुखी होकर कहा कि वह सीताजी को त्यागे जाने का फल ब्रह्मा ने दिया है । तब श्रीरामजी बोले—

अनुज समर महँ तुम हियँ हारे * साजहु हय गज रथ मतवारे
रहउ जग्य रीपु देखहुँ जाई * बालक रावण सम दुखदाई

हे भाई ! क्या तुम्हारा हृदय युद्धसे हार गया है ? मस्त हाथी, घोड़े और रथ आदि सजाओ। तुम यज्ञ के समीप रहो, मैं जाकर देखता हूँ ये बालक रावण के समान दुःखदाई हैं।

तीव्र वचन सुनि भरत लजाने * बहुत भाँति रघुपति सनमाने
प्रथम सखा सब लेहु बुलाई * हनुमदादि अङ्गद समुदाई

ऐसे तीखे बचन सुनकर भरतजी लज्जित होगये। तब श्रीरघुनाथजी ने बहुत भाँति से उनका सम्मान किया और कहा पहले सब सखा-हनुमान, अंगद आदि को बुलाओ।

जामवन्त कपिराज विभीषण * द्विविद मयन्द नील कुलभूषण
रिपुहि मारि कै समर भगाई * तात अनुज दोउ आनहु भाई

जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, द्विविद, मयन्द और नील जो कुल के भूषण हैं, उन्हें साथ लेकर शत्रुओं को मारकर अथवा रण से भगाकर, हे तात! उन दोनों भाइयों को साथ ले आऊँगा।

दोहा—समर सीयसुत वीर दोउ, आइ गये बलवान।
देखि डरे सब भालु कपि, तब आयउ हनुमान ॥ ३८ ॥

उस समय सीताजी के दोनों बलबान पुत्र आगये, जिन्हे देखकर सारे रीछ तथा बानर डर गये। तब हनुमानजी वहाँ आये।

विषम युद्ध दोउ बन्धु करि, जीते कपि संग्राम।
आये पुनि तहँ नृप भरत, सुमिरि विधाता बाम ॥ ३९ ॥

दोनों भाइयों ने कठिन युद्ध करके बानरों को युद्ध में जीत लिया, फिर भरतजी-ब्रह्मा को विपरीत जानकर रण भूमि में आये।

व्याकुल भालु कपि सब आवहिं * बाण त्रास सब अति दुख पावहिं
जामवन्त कपिराज बुलाई * अङ्गद हनुमान सुखदाई

सब भालू बन्दर व्याकुल हैं, बाणों से दुःख पा रहे हैं। उन्होंने जामवन्त, सुग्रीव, अंगद, हनुमान आदि सहायक बानरों को बुलाया।

सब मिलि सहित निसाचर राजा * धरि आनहु दोउ बाल समाजा
जाइ जुरे कपि भालु भवानी * तिन्ह कछु प्रभु महिमा नहिं जानी

और कहा--तुम सब मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन दोनों बालकों को पकड़ लाओ। हे पार्वती ! रीछ और बानर आकर एकत्रित होगए, उन्होंने प्रभु श्रीरामजी की महिमा को कुछ नहीं जाना।

बोले कुश सुनु बालिकुमारा * तव बल विदित र कल संसारा
पितहि मराय मातु पर हेली * सकल लाज आए तुम पेली

[illegible] बोले--अङ्गद ! सुनो तुम्हारा बल संसार को विदित है। पिता का बध कराकर,

माता को दूसरे के घर रखकर, लज्जा को दूर करके तुम आये हो।

सो फल लेहु समर महँ आजू * त्यागहू सकल कलंक समाजू
सुनत क्रोध अङ्गद उर छावा * गहि गिरि एक ताहि पर धावा

उसका फल आज युद्ध में लो और सारे कलंक को दूर करो। यह सुनकर अंगद के हृदय में बड़ा क्रोध छा गया और वे एक पहाड़ लेकर दोड़े

दोहा—आवत शैल विशाल लखि, तिल सम सर हति कीन्ह।
अङ्गद गर्व अपार अति, तसफल रघुपति कीन्ह ॥ ४० ॥

विशाल पर्वत को आते देखकर कुश ने उसे बाण से काटकर तिल समान कर दिया। जैसा अङ्गद को अपार अभिमान था वैसा ही प्रभु ने फल दिया।

तमकि ताहि कुश बाण चलावा * अङ्गद नील आकाश उड़ावा
आवत जानि पुहुमि अति भारी * मारा बाण प्रचारि प्रचारी

क्रोधित हो प्रभु ने तककर बाण मारा और अङ्गद व नील को आकाश में उड़ा दिया जब उन्हें फिर पृथ्वी पर गिरते देखा तो बार-बार ललकार कर बाण मारे।

छिन आकाश छिन भूतल माहीं * बोले शरण शरण प्रभु पाहीं
रहेउ गर्व हम कहँ भगवाना * अग जग नाथ न हम पहिचाना

वे कभी आकाश में और कभी धरती पर गिरते हैं। वे बोले-हे प्रभु! हम आपकी शरण हैं। हमें अपने बल का बड़ा अभिमान था, हे संसार के स्वामी! हमने आपको नहीं पहिचाना।

पाँच बाँण बेधे कपि दोऊ * दीन जानि त्यागेउ हँसि सोऊ
जामवन्त हनुमान कपीसा * धाबत गिरि तरु लै बहु कीसा

तब कुश ने पाँच बाणों से दोनों बन्दरों को बेध, दीन समझकर हँसकर छोड़ दिया। जामवन्त, हनुमान आदि बानर गण वृक्ष व पर्वत लेकर दौड़े।

खैंचि धनुष गुण छाँड़ेउ सायक * कपिपति आदि हने कपिनायक
देखि भरत सब सेना निपाती * कोपि बाण मारेउ लव छाती

धनुष खींचकर बाण छोड़े, उनस सुग्रीव आदि सेनापति मार गिराये। भरतजी ने सारी सेना का नाश देख क्रोधित हो लव की छाती में बाण मारा।

परयौ मूर्छित कुश देखि रिसाना * चाप चढ़ाय बाण सन्धाना
श्रवण प्रयन्त खैंचि धनु वीरा * भरत हृदय मारेउ सत तीरा

लव मूर्छित होकर गिर पड़े यह देख कुश बहुत क्रोधित हुए और धनुष-बाण चढ़ा लिया। कान तक धनुष खींचकर उस वीर ने भरतजी के हृदय में सौ तीर मारे।

दोहा—समर भूमि सोये भरत, लवहिं लीन्ह उर लाइ।
सुमिरि मातु गुरु चरण युग, रहे समर जय पाइ ॥ ४१ ॥

भरतजी मूर्छित होकर युद्ध में गिर पड़े, तब कुश ने लव को हृदय से लगा लिया। गुरु व माता के चरणों का स्मरण करके दोनों युद्ध में जीत रहे हैं।

आये खबर लेन चर चारी ※ भरत सैन तिन सकल निहारी
शोणित सरिता देखि डराने ※ हय गज बहे जात रथ जाने

चार दूत खबर लेने आये, उन्होंने भरतजी की सेना देखी। वे खून की नदी देखकर डरे, जिसमें हाथी और रथ बह रहे हैं।

फिरे दूत कोसलपुर आये ※ समाचार सब बरनि सुनाये
चरवर बचन सुनतदुख पावा ※ त्यागेउ मख निजकटक बनावा

दूत लौटकर अयोध्या में आये और सब समाचार वर्णन किया। दूतों के वचन सुनकर श्रीरामजी ने दुःख पाया और यज्ञ छोड़कर सेना एकत्र की।

चले सकोप कृपालु उदारा ※ आये जहाँ कटुक संहारा
मुनि बालक वर देखि सुहाये ※ सिर नवाय प्रभु निकट बुलाये

उदार श्रीरामजी कोप करके चले और जहाँ सेना मरी पड़ी थी–वहाँ आये। सुन्दर मुनि-बालकों को सिर नवाकर उन्हें पास बुलाया।

दोहा–पूछेउ बाल बुलाय दोउ, कहहुँ मातु पितु नाम।
देश ग्राम सब कहउ अब, बड़ जीते संग्राम ॥ ४२ ॥

और दोनों से पूछा–तुम अपने माता-पिता का नाम कहो अपने देश और ग्राम का नाम कहो, क्योंकि तुमने भारी संग्राम जीता है।

गहहु अस्त्र जनि कहहु कहानी ※ पूछत स्वर्ग लोक अस जानी
बंश नाम बिनु पूछें ताता ※ हतौं न बाण मनोहर गाता

वे बोले-शस्त्र पकड़ों, बहुत कहानी न कहो-स्वर्ग में जाकर यह जान लेना। तब श्रीरामजी बोले-बिना नाम और वंश जाने हुए मैं आपके मनोहर शरीर में बाण नहीं मारूँगा।

माता सीय जनक की जाता ※ बाल्मीक मुनि पाल्यौ ताता
पिता वंश नहिं जानहिं आजू ※ लब कुश नाम सुनहु रघुराजू

तब कुमार कहनेलगे हमारी माता का नाम सीता है और वे जनकजी की पुत्री हैं तथा–हे तात ! हमें बाल्मीकि ने पाला है। हम पिता का वंश नहीं जानते, हे रामजी। नाम लवकुश है।

सुनि सब कथा राखि मन माहीं ※ बाल बिलोक बधव भल नाहीं
आवत सुभट समूह हमारे ※ लरिहहिं तुम्ह सन समर सुखारे
अस कहि अङ्गद नील पठावा ※ जामबन्त कपि पतिहि बुलावा

यह सुन मन में विचार कर श्रीरामजी ने कहा-इन्हें मारना उचित नहीं है वे बोले–हमारी सेना के योद्धा आते हैं वे ही तुमसे सुख पूर्वक युद्ध करेंगे। ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने अंगद, नील, जामवन्त और सुग्रीव आदि सेनापतियों को बुलाकर भेजा।

दोहा—सावधान धनु बाण लै, धायउ लव बलवान ।
सनमुख आइ विभीषन, बोलेउ बहुरि रिसान ॥ ४३ ॥

तब बलवान लव सावधान हो, धनुष बाण लेकर दौड़े और विभीषण के सामने आकर क्रोधित होकर बोले—

सुनु सठ बन्धुहि समर जुझाई * शत्रुहि मिल्यौ परम कदराई
पिता समान बन्धु बड़ तोरा * त्रिया तासु लै घर बरजोरा

रे मूर्ख सुन, तू भाई को रण में लड़ाकर अत्यन्त डरकर शत्रु से जा मिला। तेरा बड़ा भाई पिता के समान पूज्य था, उसकी स्त्री को बरजोरी अपने घर में रख लिया।

पापी मातु कही कै बारा * सो पत्नी तेइ धर्म तुम्हारा
बूढ़ि मरहु सागर महँ जाई * मरु गर काटि अधम अन्याई

रे पापी ! तूने उसे कितनी ही बार माता कहकर पुकारा होगा, उसीको तूने स्त्री बनाया क्या यही तेरा धर्म है ? अधर्म अन्यायी समुद्र में जाकर डूब मर या गला काटकर मरजा।

समर भूमि मम सन्मुख आवा * लाज होत नहिं गाल बजावा
आँखिन आगे ते टरि जाई * नाहिं मृत्यु निकट खल आई

रण-भूमि में मेरे सामने आकर गाल बजाते हुए तुझे लाज नहीं आती ? मेरी आँखों के आगे से हट जा नहीं तेरी मृत्यु निकट आ चुकी है।

सुनि खिसियानि गदा कर लीन्ही * सर हति खण्ड खण्ड लव कीन्ही
गिरत कोप करि सूल चलावा * लव तनु तड़ित समान समावा

यह सुनकर विभीषण ने खिसिया कर हाथ में गदा लेली, तब लव ने उसे बाणों से काटकर खण्ड-खण्ड कर डाला। विभीषण ने गिरते समय क्रोध करके त्रिशूल फेंका, जो लव के शरीर में बिजली के समान घुस गया।

दोहा—दूरि शूल करि बन्धु दोउ, सर मारेउ पुनि दाप ।
जामवन्त कपिराज नल, अङ्गद करहिं प्रलाप ॥ ४४ ॥

तब दोनों भाइयों ने त्रिशूल को निकाल कर फिर दमक कर बाण मारे, जिससे जामवन्त, सुग्रीव, नल, अंगद आदि विलाप करने लगे।

जो गिरि तरु कपि डारहिं जाई * रज सम करि तेहि देहिं उड़ाई
निज बाणन्ह कपि घायल कीन्हे * जो जस उचित सो तसफल दीन्हे

जो वृक्ष, पर्वत बानर लाकर डालते हैं, उन्हें वे बाणों से धूल के समान उड़ा देते हैं उन्होंने अपने बाणों से बानरों को घायल कर दिया और जैसा जिसको उचित था, वैसा ही फल दिया।

हृदय तानि लव मार्‌यौ सायक * योजन सात गयौ कपिनायक
धाये भालु कपि कोप बढ़ाई * मल्लयुद्ध कुश कीन्ह बनाई
निज बल भालुहि अवनि पछारा * दोउ कर चरण गहि दिकरारा

लव ने हृदय में कसकर बाण मारा तो सुग्रीव सात योजन पर जा गिरे। तब जामवन्त क्रोध बढ़ाकर दौड़े तो कुश ने मल्लयुद्ध किया। तब कुश ने अपने बल से जामवन्त को पछाड़ कर उसके दोनों हाथ पैर बाँध दिये।

हनुमन्तहिं बाँध्यौ पुनि जाई * राख्यो निकट अश्व थल आई
रखवारी लव छाँड़यो बीरा * आपु चले रघुनायक तीरा

फिर जाकर हनुमानजी को बांध लिया और घोड़े के निकट आकर रक्खा तथा लव को रखवारी के लिए छोड़कर आप श्रीरघुनाथजी के पास चले।

देखे रथ पर श्रीपति सोये * फिरेउ वीर निज लाज बिगोये
सुभट अस्त्र पट भूषण नाना * चले अश्व धरि लै हनुमाना

और देखा कि लक्ष्मीपति श्रीरामजी रथ पर सो रहे हैं, तो कुछ लज्जित होकर लौट आये। वे सुन्दर अस्त्र और वस्त्राभूषण घोड़े पर रखकर हनुमानजी को ले चले।

छन्द–शुभ वस्त्र भूषण भालु कपि सँग अश्व लै सादर चले।
सिय निकट नायौ माथ दोउ सुत भेंट भूषण जे भले॥
पहिचान कपि दोउ निरखि भूषण सहमि सुनि सिय अतिडरी।
एहि बीच मुनिवर सहमि आये सिया उठि विनती करी॥

हनुमान और जामवन्त के साथ सुन्दर वस्त्राभूषण व घोड़े को लेकर और सीताजी के पास आकर मस्तक नवाया। दोनों पुत्रों ने भेट भली-भाँति आगे रक्खी तो दोनों वानरों को पहिचान कर व आभूषणों को देखकर सीताजी सहमकर बहुत डरीं। उसी समय मुनि वाल्मीकिजी भी घबड़ाकर वहाँ आ गये, तब सीताजी ने उठकर विनती की।

हनुमान भालुहिं छोरि बन्धन त्यागि बहु समुझायउ।
रिपुदवन लछिमन सहित भरतहि राम रण पौढ़ायउ॥
सुत कीन्ह कर्म कलंक कुल महँ मोरि बिधि विधवा करी।
तजि सोक चन्दन मुनि अगरु आनहुँ जाउँ पिय सँग अब जरी॥

हनुमान और जामवन्त के बन्धन खोलकर उन्हें बहुत प्रकार से समझाया और कहा–श्रीरामजी, लक्ष्मणजी, भरत व शत्रुघ्न इन सबको रण में सुला दिया। हे पुत्र! तुमने कुल में यह कलंक का काम किया है और हाय! मुझे तो ब्रह्मा ने विधवा ही कर डाला। सब शोक त्यागकर चन्दन और अगर लाओ, जिससे मैं अपने पति के साथ जल जाऊँ।

मुनि धरि दीन्हौं तनय लीन्हौ सङ्ग ले सादर चले।
रण देखि बालक चरित आनँद बिहँसि मुनिवर अति भले॥
रथ देखि हय पहिचान प्रभु के जाय मुनि चरनन परे।

उठि बैठि कोसलनाथ आरत तनय तव आगे खरे।

मुनिने जानकीजी को धैर्य दिया और पुत्रोंको साथ लेकर आदर के साथ चले। युद्धमें बालकों के चरित्र देखकर मुनि प्रसन्न हुए। श्रीरामजी का रथ, घोड़ों को पहिचान कर प्रभु के चरणों पर गिरे और बोले—हे कोशलनाथ! उठ बैठिये, आपके दुःखी पुत्र आगे खड़े हैं।

सो०—पुनि सुनि मुनिवर बैन, जागे रघुपति भय हरन।
बिहँसि उघारे नैन, लीन्हे हृदय लगाय मुनि॥ ५॥

फिर मुनि की कोमल वाणी सुनकर भयहारी श्रीरघुनाथजी जागे। उन्होंने हँसकर नेत्र खोले और मुनि को हृदय से लगा लिया।

जेहि विधि शेष सीय वन आनो * मुनिवर सो सब कथा बखानो
लवकुश कथा सकल मुनि भाषी * शिवविरंचि सूरज करिसाखी

जिस प्रकार लक्ष्मणजी-सीताजी को वन में ले आये थे, मुनि ने वह सब कथा वर्णन की, फिर बाल्मीकिजी ने शिवजी, ब्रह्माजी एवं सूर्य को साक्षी करके लवकुश की सारी कथा वर्णन की।

मिले तनय दोऊ हृदय लगाई * सुधा वरषि सुर सैन्य जिआई
भरत आदि जागे सब भ्राता * लछिमन चले जहाँ सियमाता

तब श्रीरामजी दोनों पुत्रों को हृदय से लगाकर मिले। देवताओं ने अमृत बरसाकर सब सेना जिला दी। भरत आदि सब भाई जागे और लक्ष्मणजी माता सीताजी के पास चले।

बहुरि राम लछिमनहिं बुलाई * सुनहु तात मम वचन सुहाई
तात वचन मम मानहु भाई * सिय सन दिव्य लेहु तुम जाई

फिर श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी को बुलाया और कहा—हे तात! तुम मेरा सुन्दर वचन सुनो। हे भाई! मेरे वचनों को मानकर तुम सीताजी से जाकर शपथ लो।

लछिमन जाइ सीस पद नावा * कुशल कही बहु बिधि समुझावा
हरि इच्छा सिय मन अस आवा * सेष सहस फनि आन देखावा

लक्ष्मणजी ने जाकर सीताजी के चरणों में शीश नवाकर कुशल कही और उन्हें बहुत भाँति से समझाया। भगवान की प्रेरणा से सीताजी के मनमें भी ऐसा ध्यान आगया, तब शेषजी ने आकर सहस फन दिखाये।

दोहा—जटित मणिन सिंहासन, सादर सीय चढ़ाय।
भयो अलोप पताल महँ, महिमा किमि कहिजाय॥४५॥

मणि-जड़ित सिंहासन पर बड़े आदर से सीताजी को बैठाकर वे (शेषनाग) पाताल में लुप्त हो गये। यह महिमा किस प्रकार कही जाय।

लछिमन चरित्र देखि सब ठाढ़े * नयन प्रवाह चले अति गाढ़े
सकल चरित सुनि कृपानिधाना * चलन हमार सीय मन जाना

लक्ष्मणजी ने खड़े-खड़े सब चरित्र देखे, उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। श्री रामजी ने यह चरित सुनकर मनमें विचार किया कि सीताजी ने हमारा चलना जान लिया।

तनय सहित प्रभु निज पुर आये * बिदा किये मुनिवृन्द बुलाये
जनकहि पूजि बिदा प्रभु कीन्हा * दोउ गुरु पूजि पदोदक लीन्हा

पुत्रों सहित प्रभु अयोध्या में आये और बुलाये हुए मुनिवृन्दों को विदा किया। जनकजी का पूजन करके उन्हें विदा किया और दोनों गुरुओं का पूजन करके चरणोदक लिया।

एहिबिधि विपुलकालचलि गयऊ * निजपुर गमन सुअवसर भयऊ
बीती अवधि ब्रह्म जब जानी * नारद मुनि सन कहा बखानी

इस भाँति बहुत समय व्यतीत हो गया और अपने धाम पधारने का सुन्दर अवसर आया। जब ब्रह्माजी ने जाना कि अब अवधि पूर्ण होगई है, तब नारदमुनि से समझाकर कहा—

निजपुर आवन चहत खरारी * धर्मराज कह कहहु हँकारी
बिनती बहु विरंचि तब भाखी * चलेउ धर्म रघुपति उर राखी

श्रीरघुनाथजी अपने धाम को जाना चाहते हैं, धर्मराज को बुलाकर कहो। धर्मराज के आने पर ब्रह्माजी ने बहुत विनती की। तब वे श्रीरघुनाथजी को हृदय में धारण करके चले।

दोहा—आये यम रघुवीर पुर, मुनिवर वेष बनाय।
तेज पुञ्च सुन्दर तरुण, कटि मृगचर्म सुहाय ॥४६॥

यमराज सुन्दर, तेजवान और तरुण मुनि का रूप धारण कर अयोध्यापुरी में आये। उनकी कमर में सुन्दर मृगछाला शोभायमान थी।

तुरत शेष सो खबर जनाई * सुनत बचन आये रघुराई
मुनिहि निरखि प्रभु कीन्ह प्रनामा * सादर उचित कहेउ विश्रामा

लक्ष्मणजी ने शीघ्र ही उनके आने का समाचार प्रभु से कहा। सुनते ही श्रीरघुनाथजी द्वार पर आये। मुनि को देखकर श्रीरामजी ने प्रणाम किया और बड़े आदर से बैठने को उचित आसन दिया।

अर्घ्य दीन्ह आसन बैठारी * मुनि सादर पुनि गिरा उचारी
सुनु सर्वग्य कृपाल दिनेसा * आयउँ मैं मुनिवर के वेषा

फिर अर्घ्य देकर सुन्दर आसन पर बैठाया। तब मुनि ने आदर सहित कहा—हे सर्वज्ञ! हे कृपालु! हे सूर्यकुल के स्वामी! सुनिये, मैं यहाँ मुनि के वेष में आया हूँ।

मैं तुम्ह रहउँ और नहिं कोई * तिसरें सुनत नाश तेहि होई
सुनिहि बचन तेहि देहउँ शापू * शिवि विधि हरि जो आवहिं आपू

इस स्थान पर मैं और आप दोनों ही रह जावें, तीसरे के सुनते ही उसका नाश हो जायगा। यदि स्वयं महादेव, ब्रह्मा और हरि भी मेरी बात सुनेंगे तो मैं उन्हें भी शाप दे दूंगा।

सुनहु लषन बैठहु चल द्वारे * नहिं कोउ आव न गिरा उचारे
इतनेहु पर आवहु पुनि कोई * मरिहहि सत्व मृषा नहिं होई

तब रामजी ने कहा—हे लक्ष्मण ! तुम चलकर द्वारे पर बैठो, न तो कोई आये और न बात-चीत ही करे ! इतने पर जो आवेगा, वह निश्चय ही मरेगा, यह असत्य नहीं है ।

दोहा—बोलेउ तापस बचन मृदु, पाहि पाहि रघुनाथ ।
कहेउ सकल इतिहास मुनि, कहि पुनिनायउ माथ ।।४७।।

जब वह तपस्वी मधुर वचन बोले—हे श्रीरघुनाथजी ! रक्षा करो । फिर परम-धाम चलने का सारा इतिहास कहकर मस्तक नवाया ।

प्रभु इच्छा भावी बलवाना * दुर्वासा मुनि आय तुलाना
मुनिहिं देखि लछिमन चल आगे * गये निकट विनती अनुरागे

ईश्वर की इच्छा और होनहार बलवान है । उस समय दुर्वासा मुनि आये । मुनि को देख लक्ष्मणजी आगे जाकर मिले और प्रेम से विनती की ।

पूछत मुनि कहँ रघुकुल ईसा * तहाँ जाव मैं सुनहुँ अहीसा
जो प्रति उत्तर करिहौ आजू * भस्म करउँ तव घर पुर राजू

मुनि ने पूछा—श्रीरघुनाथजी कहाँ हैं ? हे लक्ष्मण सुनो, मैं उनके पास जाना चाहता हूँ । यदि तुम आज प्रत्युत्तर दोगे तो मैं तुम्हारे घर, नगर और राज्य को भस्म कर दूंगा ।

काँपे लखन सुनत मुनि बानी * निज बध जानेसु चले भवानी
दोउँ कर जोरि कहा प्रभु पाहीं * दुर्वासा मुनि आवत चाहीं

लक्ष्मणजी मुनि के वचन सुनकर काँप उठे । हे पार्वती ! वे अपना मरण जानकर चले, और दोनों हाथ जोड़कर प्रभु से कहा हे प्रभु ! दुर्वासा मुनि आना चाहते हैं ।

तात कीन्ह तुम्ह अवगुन भारी * काल कर्म गति टरहि न टारी
कहेउ बचन दिनकर कुल केतू * सुनु खग अपार कथा कर हेतू

हे तात ! तुमने भारी अपराध किया है, काल और कर्म की गति टाले नहीं टलती है । इस प्रकार श्रीरघुनाथजी ने कहा—हे गरुड़जी ! अब आगे की कथा-प्रसङ्ग सुनो—

दोहा—तुरत कहेउ मुनि आवहु, सादर कृपानिधान ।
चलहु बेगि मुनि बोल अब, कहा राम भगवान ।।४८।।

कृपानिधान प्रभु ने कहा—मुनि को शीघ्र ही आदर सहित ले आओ (लक्ष्मणजी ने जान कर कहा—) हे मुनि आप शीघ्र पधारें, श्रीरामजी ने बुलाया है ।

छन्द—अति तेज पुञ्ज विलोकि आवत उचित उठि आसन दिए ।
जल आनि सादर चरन धोये सुभग पादोदक लिए ।।
जन जानि आयसु देहु मुनिवर वेगि मैं सादर करौ ।
बहु काल क्षुधित कृपायतन बिनु असन दिनमनि मैं मरौ ।।

श्रीरामजी परम तेजस्वी मुनि को आते देखकर उठे और उचित आसन दिया । जल लाकर आदरपूर्वक चरण धोये और चरणामृत लिया । प्रभु बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! सेवक जान कर आज्ञा दीजिये, जिसे मैं आदर सहित करूँ तब मुनि ने कहा—हे दयासागर ! मैं बहुत समय से (व्रत के कारण) भूख से मर रहा हूँ ।

मन भाव भोजन दीन्ह रघुपति बहुत बिधि बिनती करी ।
सन्तोष पाय मुनीश स्तुति विनय करि आशिष भरी ।।
करि विदा मुनिवर देखि लछिमन हृदय दारुन दुख भए ।
भरतादि अनुज समेत पुरजन नाहि छिन देखन गए ।।

श्रीरघुनाथजी ने मुनि को मन-भावसे भोजन कराकर बहुत भाँति से विनती की, तब मुनि ने सन्तुष्ट हो, आशीर्वाद देकर स्तुति की । फिर मुनि को विदा कर, लक्ष्मणजी की ओर देखकर श्रीरामजी को भारी दुःख हुआ । उस समय भरत आदि भाई पुरवासियों के सहित उन्हें देखने को गये ।

पद बन्दि ठाढ़े जोरि कर दोउ बदन लखि अति काँपहीं ।
भरि नयन पङ्कज नीर आरत भरत सो प्रभु भाषहीं ।।
अब गुरुहि आनहु बेगि सादर दुखित अति आतुर चले ।
सब कथा गुरुहि सुनाय आरत यान चढ़ि आवत भले ।।

सब चरणों की वन्दना करके दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये और भगवान का मुख देखकर भय से काँपने लगे । प्रभु ने कमलरूपी नेत्रों में जलभर दुःखी भरतजी से कहा अब गुरुजी को शीघ्र ही आदर सहित बुला लाओ । भरतजी दुःखी मन से शीघ्र चले और गुरुजी को सब समाचार सुनाया, जिसे सुनकर गुरुजी विमान पर चढ़कर चले ।

आए वशिष्ठ विलोकि रघुपति सकल उठि चरनन्हि परे ।
सम्बाद सुनि मुनि समय जान्यौ त्यागि हैं अब तनु हरे ।।
सुनि वचन सेष विचारि निज उर राम बिनु धिक जीवनो ।
गहि चरन सरजू तीर आए देखि जल शुभ पावनो ।।

गुरुजी वशिष्ठजी को आया देखकर श्रीरघुनाथजी तथा और सब उठकर गुरुजी के चरणों पर आ गिरे । सारी कथा सुनकर मुनि ने जान लिया कि अब श्रीहरि शरीर त्यागेंगे, लक्ष्मणजी ने ऐसा वचन सुन अपने हृदय में विचार किया कि श्रीरामचन्द्रजी के बिना जीवन वृथा है वे चरण छूकर सरयू के किनारे आये और कल्याणकारी पवित्र जल को देखा ।

दोहा—कटि पर्यन्त मध्य जल, कीन्हों ध्यान अखण्ड ।
योग यज्ञ करि राम जहै, फोरयौ निज ब्रह्मण्ड ।।४६।।

फिर कमर तक जल में खड़े होकर अखंड ध्यान किया । योग क्रिया से श्रीरामजी का

ध्यान करके अपना ब्रह्माण्ड फोड़ लिया।

राम धाम पहुँचे लषण, तुरत चतुर्थम भाग।
सुनि व्याकुल रघुपति भरत, मिटे सकल अनुराग ॥५०॥

श्रीरामजी के चतुर्थांश लक्ष्मणजी शीघ्र ही श्रीरामजी के धाम को पधारे। यह सुनकर रघुनाथजी और भरतजी बहुत व्याकुल हुए और उनकी सारी प्रसन्नता मिट गई।

मैं नहिं तजा तजा मोहि ताता * करु सो यतन जो देखौ भ्राता
करहु भरत पुर राज्य सुखारी * सुनत गिरे महि व्याकुल भारी

(प्रभु दुःखी होकर बोले-) मैंने भाई को नहीं त्यागा था, परन्तु भाई ने मुझे त्याग दिया। अब ऐसा प्रयत्न करो जिससे मैं भाई को देखूं। हे भरत ! तुम सुख पूर्वक राज्य करो। यह सुनते ही भरत व्याकुल होकर गिर पड़े।

चहत चलन अब प्राण गोसाँई * क्षण लक्ष्मण बिनु रहि न सकाई
तात चलहु कहि तनय बुलाए * कीन्ह तिलक बहुनीति सिखाए

(फिर बोले-) हे नाथ ! अब प्राण निकलना चाहते हैं, क्योंकि वे बिना लक्ष्मण के क्षण भर भी नहीं रह सकते। 'हे तात ! चलो' ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने पुत्रों को बुलाकर राजतिलक करके उन्हें नीति सिखाई।

सब कहँ सब बिधि धीरज दीन्हा * आपु गमन सरयू तट कीन्हा
दक्षिण भरत बाम रिपुदवनू * पुरबासी सब निज कुल गमनू

सबको इस प्रकार धैर्य देकर आप सरयू के तट पर चले। दाहिनी ओर भरत और बाईं ओर शत्रुघ्नजी थे। पीछे नगर-वासी व कुटुम्बी चले।

चढ़ि विमान निज धाम सिधाए * सकल अमरपति कहँ सकुचाए
सुमन वृष्टि नभ होइ अपारा * होइ नाद विधि वेद उचारा

विमानों पर चढ़कर सब श्रीरामजी के धाम को जाने लगे तो सबने अपने ऐश्वर्यसे इन्द्र को भी लज्जित कर दिया। आकाश से अपार पुष्प-वृष्टि होने लगी और स्वर से वेद-ध्वनि होने लगी।

छन्द—उच्चरत वेद प्रसन्न भरत कृपालु हँसि सादर लयो।
जल परसि कर रिपुदवन सादर पदम बन राजत भयो॥
कपि आदि यूथप सखा प्रभु के सकल निज लोकन गये।
सुग्रीव प्रभु पद बन्दि बारहिं बार रवि मण्डल गये॥

वेदों का उच्चारण करते हुए आनन्दित हो भरतजी को श्रीरामजी ने हंसकर अपने स्वरूप में मिला लिया। शत्रुघ्नजी जल स्पर्श करके पवन-रूप से शोभित हुए। वानर आदि प्रभु के सब सेनापति सखा भी अपने लोकों को गये। सुग्रीव बार-बार प्रभु के चरणों की वन्दना करके सूर्य-लोक

सुर सहित दिनकर वंश भूषण आनि जल आश्रित रहे ।
तेहि समय बोलि अनादि प्रभु जो वचन पापनमय कहे ॥
इक मास रहि सरि तोर तुम्ह मम पुरी जीव जे आवहीं ।
तेहि सुभट देहु बिमान पद निर्वाण सो मम पावहीं ॥

फिर देवताओं सहित सूर्यकुल-भूषण श्रीरामजी ने जल में खड़े होकर ब्रह्माजी को बुलाकर पवित्र वचन कहे-तुम एक महीने तक सरयूके किनारे वास करो और मेरी पुरीमें जो जीव आवें उन्हें सुन्दर विमान देकर मेरे पास भेज दो ताकि वे निर्वाण-पद पाकर मुझे प्राप्त करें ।

कह बचन अन्तर्ध्यान प्रभु ज्यौं दामिनी घन सों लह्यो ।
नभ जयति जय जयकार जय प्रभु जयति सुर कह्यो ॥
एहि भाँति रघुपति जग चराचर सकल लै निज धाम को ।
सो कह्यौ उमहि कृपायतन उर राखि सादर राम को ॥

ऐसे वचन कहकर प्रभु इस भाँति अन्तर्ध्यान होगये, जैसे बादलों में बिजली लय हो जाती है। आकाश में देवताओं ने जय-जयकार की ध्वनि की । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी संसार के चराचर जीवों को साथ लेकर निज-धाम को पधारे । यह कथा कृपा के धाम महादेवजी ने आदर सहित श्रीरघुनाथजी को हृदय में धारण करके पार्वतीजी से कही ।

दोहा—गिरिजा सन्त समागम, सम न लाभ कछु आन ।
बिन हरि कृपा न होइसो, गावहिं वेद पुरान ॥५१॥

हे पार्वती ! सन्त-समागम के समान अन्य कुछ लाभ नहीं है और वह भी बिना भगवान की कृपा के नहीं होता, ऐसा वेद कहते हैं ।

मुनि दुर्लभ हरि भक्तिवर, पावहिं विनहि प्रयास ।
जो यह कथा निरन्तर, सुनहिं मान विश्वास ॥५२॥

वह श्रेष्ठ भगवद्भक्ति जो मुनियों को भी दुर्लभ है, मनुष्य बिना ही परिश्रम किये पा जाता है, जो इस कथा को प्रेम से विश्वासपूर्वक सुनता है ।

एहि विधि सकल कथा सुनि, हृदय राखि रघुबीर ।
तासु चरण सिर नाय करि, गयउ गरुड़ मति धीर ॥५३॥

इस प्रकार सम्पूर्ण कथा सुनकर, श्रीरघुनाथजी को हृदय में धारण करके और भुशुण्डिजी के चरणों में सिर नवाकर गरुड़जी बैकुण्ठ को चले गये ।

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे कलकलिकलुष विध्वंसे अष्टम सोपान समाप्तमः ।

कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का
यह आठवाँ सोपान समाप्त हुआ ॥

❀ प्रासंगिक–अन्तर्कथायें ❀

✳ महर्षि बाल्मीकिजी ✳

श्रीमद्रामचरित-मानस के आदि रचियता महर्षि बाल्मीकिजी पहले व्याध का काम करते थे, वे जंगल में अनेक जीवों को मारा करते थे और उनका धन हरण कर लेते थे। एक दिन जंगल में देवर्षि नारदजी से उनकी भेंट हुई तो वे उन्हें भी मारने को उद्यत होगये। तब नारदजी ने उनसे पूछा कि 'तू पाप किसके लिए कर रहा है ?' व्याध वे कहा-'घर वालों के लिये।, तब नारदजी ने पूछा कि 'वे इस पाप में तेरे साथी हैं कि नहीं ?–यह तुम उनसे पूछो।' जब व्याध पूछने लगा तो–'माता, पिता, भाई, पत्नी सभी ने कहा कि हम तो कमाई के साझी-दार हैं–पाप के नहीं।' तब व्याध की आँखें खुलीं और उसने नारदजी को छोड़ दिया तथा उसने अपनी मुक्ति का उपाय पूछा। नारदजी के बताने पर 'मरा-मरा' कहकर 'राम-राम' जपने के कारण वे महर्षि बाल्मीकिजी होकर 'आदि-कवि' हुए और रामायण की रचना की।

✳ देवर्षि नारदजी ✳

जब वेदव्यासजी पुराणों को लिख चुके तो भी उन्हें सन्तोष न हुआ। तब उन्होंने वह पुराण नारदजी को सुनाये। नारदजी बोले कि मैं पहले दासी पुत्र था, मेरी माता जिनके यहाँ काम करती थी, वह साधु-प्रेमी थे। उनके यहाँ जो नित्य साधु आते थे, उनकी जूठन मैं खाया करता था। अन्त में शरीर त्याग कर मैं इस गति को पहुँचा कि ब्रह्मा का पुत्र हुआ। यह सत्सङ्गति का प्रभाव है, इससे तुम श्रीमद्भागवत कहो तो तुम्हें सन्तोष प्राप्त हो जायगा। तब वेदव्यासजी ने 'श्रीमद्भागवत' की रचना की।

✳ अगस्त्यजी की कथा ✳

अगस्त्यजी के पिता मित्रावरुण एक बार तप कर रहे थे, उस समय आकाश में उर्वशी नामक अप्सरा शृङ्गार करके जा रही थी। उस पर दृष्टि पड़ते ही जब काम उत्पन्न हुआ तो मित्रावरुण ने अपना वीर्य एक घड़े में भरकर रख दिया। उसीसे 'कुम्भज' नामक बालक की उत्पत्ति हुई। ऐसी निकृष्टि बुद्धि और निकृष्ट स्थान पर जन्म होने पर भी वे सत्संगति के कारण परम ज्ञानी हुए और महादेवजी का समागम प्राप्त हुआ।

✳ अजामिल की कथा ✳

अजामिल अत्यन्त पापी था। एक दिन उसकी अनुपस्थित में उनके घर साधू आगये, उसकी स्त्री ने उनकी बड़ी सेवा की। चलते समय साधू ने स्त्री को गर्भवती देखकर कहा कि पुत्र जन्म होने पर उसका नाम 'नारायण' रखना। उसने ऐसा ही किया।

अजामिल अपने पुत्र को बड़ा प्यार करता था मरते समय उसने यमदूतों से डरकर अपने पुत्र "नारायण" को पुकारा तो भगवान् बिष्णु ने उसे लेने को अपने दूत भेज दिये। इस प्रकार केवल नाम लेने के कारण ही वह महापापी तर गया।

✳ गणपति की कथा ✳

पिङ्गला वेश्या आधी रात तक शृङ्गार किये बैठी रही, परन्तु कोई भी पुरुष उसके पास न आया। सोते समय उसने विचारा कि पुरुषों के ध्यान में इतनी देर बैठी रही, इतना समय

यदि भगवान के स्मरण से बिताती तो मेरा उद्धार हो जाता। इतना विचारते ही उसकी वृत्ति बदल गई, बाद में दत्तात्रेय के दर्शन से उसे ज्ञान प्राप्त हुआ।

* रावण की जन्म कथा *

पुलस्त्यजी के पुत्र महाज्ञानी विश्रुवा हुए। भारद्वाजजी की कन्या से उनके पुत्र कुबेरजी हुए, जिनके तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन्हें निधिपति बनाया और रहने को सोने की लङ्का दी। एक समय सुमाली राक्षस ने अपनी कन्या कैकई से कहा कि तू विश्रुवा को वर ले। कैकई विश्रुवा के पास गई ऋषि ने उससे कहा—तू सन्ध्या समय पुत्र की इच्छा से आई है अतः तेरे राक्षस पुत्र होंगे। उसने कहा कि आपके वीर्य से ही होंगे। तब ऋषि बोले कि एक पुत्र महात्मा होगा अतः उससे रावण, कुम्भकर्ण और सूर्पणखा तथा दूसरी स्त्री से विभीषण उत्पन्न हुए।

एक समय विश्रुवा जप-तप करके अपनी पत्नी से कुछ बातें करने लगे तो उसने कहा—हे महाराज! आपने तप किया, इतने में तो मेरे दस पुत्र हो जाते। तब ऋषि ने कहा कि मैं तुम्हें एक ऐसा पुत्र दूंगा तो दस पुत्रों के बराबर बलवान् होगा। तभी दस सिर और बीस भुजा वाला रावण उत्पन्न हुआ।

* गणपति की कथा *

देवताओं की सभा में यह प्रश्न उठा कि प्रथम पूज्य-पद के योग्य कौन है? देवताओं में परस्पर विवाद होने लगा। ब्रह्माजी बोले कि तुम में से जो कोई पृथ्वी की परिक्रमा करके सर्वप्रथम आवेगा, उसे ही मैं प्रथम पूज्य-पद दूंगा। यह सुन सब देवता अपने २ वाहनों पर चढ़कर दौड़े। मूषक वाहन होने के कारण गणेशजी सबसे पीछे रह गये, और व्याकुल होने लगे। तब नारदजी ने उनसे कहा कि तुम पृथ्वी पर राम-राम लिखकर उनकी परिक्रमा करके ब्रह्माजी के पास चले जाओ, गणेशजी ने ऐसा किया। तब सबने श्रीराम-नाम की अपार महिमा को समझकर उन्हें प्रथम-पद दिया।

* अहिल्या की कथा *

एक समय ब्रह्माजी ने एक परम सुन्दर 'अहिल्या' नामक कन्या उत्पन्न की और गौतम ऋषि के पास धरोहर में रखदी इन्द्र आदि देवता इस प्रतीक्षा में थे कि वह कन्या उन्हें मिलेगी। थोड़े ही दिन बाद ब्रह्माजी अहिल्या को देखने गये तो उसे ज्यों का त्यों पाकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने वह कन्या गौतम ऋषि को ब्याह दी तब एक दिन इन्द्र ने गौतम-ऋषि का रूप रखकर ऋषि की अनुपस्थित में उससे बिहार किया इतने में गौतम ऋषि आगये और उन्होंने इन्द्र को यह शाप दिया कि तेरे समस्त शरीर में गुप्तांग के चिन्ह हो जावेंगे।' फिर उन्होंने अहिल्या को शाप देकर पत्थर की शिला कर दिया और कहा कि श्रीरामचन्द्रजी के अवतार लेने पर उनकी चरण-रज के स्पर्श से तेरा उद्धार होगा।

* हनुमानजी के मिलन की कथा *

यह कथा श्रीरामचन्द्रजी के बाल्य-काल की है। एक दिन राजा दशरथ के द्वार पर एक मदारी आया। उसके बन्दर नचाने पर श्रीराम बन्दर लेने के लिए मचल गये। राजा ने उन्हें चुप करने का बहुत प्रयत्न किया और कई बन्दर भी दिये, लेकिन वे चुप न हुए। तब वशिष्ठजी हँसकर बोले कि हे राजन्! किष्किन्धा में बानर-राज सुग्रीव के पास एक बन्दर

'महावीर' नाम का है, आप उसे बुलाइये। तब राजा ने सुग्रीव के पास दूत भेजे, वे सुग्रीव के पास आये और सब समाचार कह सुनाया। तब सुग्रीव ने प्रसन्न हो श्रीमहावीरजी को अयोध्या भेज दिया। श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें देखकर प्रसन्न हो हृदय से लगा लिया।

* गङ्गावतरण की कथा *

यह कथा मुनि विश्वामित्र ने श्रीराम-लक्ष्मणजी को जनकपुर जाते समय सुनाई थी। वे बोले-हे रामजी ! सुनिये, आपके ही वंश में सगर नामक एक बड़े प्रतापी राजा हुए। भृगुजी की कृपा से उनकी दो स्त्रियां 'सुमति' और 'केशनी' गर्भवती हुईं। केशनी के असमंजस नामक पुत्र हुआ, जो प्रजा को बड़ा दुःख देने वाला हुआ। सुमति के साठ हजार पुत्र, जो बड़े प्रतापी और इन्द्र के समान बली थे। उनमें अंशुमान नाम के पुत्र को राजा सगर बड़ा प्यार करते थे। वृद्धावस्था में राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया और एक अत्यन्त चपल घोड़ा छोड़ा। इन्द्र ने उसे पकड़ लिया और भय खाकर वह उसे कपिल मुनि के आश्रम में बांध आया। घोड़ा खोजने के लिए सगर के साठ हजार पुत्र चले, खोजते २ उन्होंने सारी पृथ्वी खोद डाली और चारों दिग्गजों को आकर प्रणाम किया। अन्त में कपिल मुनि के आश्रम में उन्हें अपना घोड़ा मिला, तब अनेक कटु वचन कहने पर कपिल मुनि ने इन्हें भस्म कर दिया। तब सगर ने अंशुमान को घोड़ा व भाइयों को खोजने भेजा तब मार्ग में गरुड़जी ने अंशुमान को सारी कथा कह सुनाई और कपिल मुनि ने अनेक विनय करने पर उन्हें घोड़ा दे दिया।

गरुड़जी ने अंशुमान से कहा कि हे पुत्र ! तुम वही उपाय करो, जिससे गङ्गाजी पृथ्वी पर आ जायें और उनसे तुम्हारे भाइयों का उद्धार हो। अंशुमान के घर आने पर सगर वन को चले गये। वृद्ध होने पर अंशुमान भी अपने पुत्र दिलीप को राज्य देकर तप करने वन को चले गये। दिलीप के पुत्र भागीरथ हुए, दिलीप भी उन्हें राज्य देकर तप के हेतु वन को गये। पुनः भागीरथ भी अपने पुत्र काकुत्स्थ को राज्य देकर तप करने को चल दिये। वे एक पांव से दोनों भुजा उठाकर एक हजार वर्ष तक खड़े रहे। तब ब्रह्माजी उन पर प्रसन्न हुए और वर मांगने को कहा। तब भागीरथजी ने उनसे गङ्गाजी को पृथ्वी पर लाने का वरदान मांगा। ब्रह्माजी बोले हे पुत्र ! गङ्गाजी पृथ्वी पर आते ही, रसातल को चली जावेंगे। शिवजी के शिवाय उनके वेग को रोकने वाला कोई नहीं है, अतः तुम शिवजी को प्रसन्न करो। तब भागीरथ ने ब्रह्माजी के कहने पर एक वर्ष तक पैर के एक अंगूठे पर खड़े होकर तप किया और दयालु शिवजी को प्रसन्न किया। शिवजी बोले-मैं गङ्गाजी को अवश्य धारण करूंगा। शिवजी ने अपने सिर पर अगम जटायें बनायीं और उन्होंने ब्रह्माजी द्वारा छोड़ी हुई गङ्गाजी को अपने सिर पर जटाओं में ही समा लिया। एक वर्ष तक गङ्गाजी जटाओं में ही समाई रहीं। यह कौतुक देखकर देवताओं ने पुष्प बरसाये। तदन्तर भागीरथ के विनती करने पर शिवजी ने जटाओं में से गङ्गाजी की एक बूंद पृथ्वी पर छोड़ी, तब उसके तीन भाग हुए। एक धारा आकाश में जाकर 'मन्दाकिनी' नाम से प्रसिद्ध हुई। दूसरी पाताल में जाकर 'प्रभावती' नाम से जानी गई और तीसरी धारा 'गङ्गाजी' अथवा 'भागीरथी' नाम से परम तीर्थ 'हरिद्वार, प्रयाग और काशी' होती हुई समुद्र में जा मिली। जहां पर उसने राजा सगर के पुत्रों को तार दिया। यह संगम 'गंगासागर' के नाम से पतितों को मोक्ष देते वाला है। इतनी कथा विश्वामित्रजी से सुनकर श्रीरामजी ने मुनि के चरणों में सिर नवाया।

अथ हनुमान-चालीसा प्रारम्भ

दोहा—श्री गुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधार ।
वरणौं रघुवर विमल जस, जो दायक फल चार ।।
बुद्धिहीन तनु जानिकैं, सुमिरौं पवनकुमार ।
बल बुद्धि विद्या देहु मोहि, हरहु कलेश विकार ।।

जय हनुमान ज्ञान गुण सागर * जय कपीस तिहुँलोक उजागर
रामदूत अतुलित बल धामा * अंजनी पुत्र पवनसुत नामा
महावीर विक्रम बजरंगी * कुमति निवार सुमति के संगी
कंचन वरण विराज सुवेशा * कानन कुण्डल कुञ्चित केशा
हाथ वज्र अरु ध्वजा विराजै * काँधे मूँज जनेऊ साजै
शङ्कर सुवन केशरी नन्दन * तेज प्रताप महा जगबन्दन
विद्यावान गुणी अति चातुर * रामकाज करिवे को आतुर
प्रभु चरित्र सुनिवे को रसिया * राम लखन सीता मन बसिया
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा * विकट रूप धरि लंक जरावा
भीम रूप धरि असुर संघारे * रामचन्द्र के काज संवारे
लाय सँजीवनि लषण जियाये * श्रीरघुवीर हरषि उर लाये
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई * तुम मम प्रिय भरत सम भाई
सहस बदन तुम्हरो यश गावै * अस कहि श्रीपति कण्ठ लगावै
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा * नारद सारद सहित अहीसा
यम कुबेर दिगपाल जहाँ ते * कवि कोविद कहि सकें कहाँ ते
तुम उपकार सुग्रीवहि कीन्हा * राम मिलाय राज पद दीन्हा
तुम्हरो मन्त्र विभीषण माना * लंकेश्वर भये सब जग जाना
युग सहस्र योजन पर भानू * लोल्यो ताहि मधुर फल जानू
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं * जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं
दुर्गम काज जगत के जेते * सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते
राम दुलारे तुम रखवारे * होत न आज्ञा बिनु पैसारे
सब सुख लहैं तुम्हारी सरना * तुम रक्षक काहू को डरना

आपन तेज सम्हारौं आपै * तीनहुँ लोक हाँकते काँपै
भूत पिशाच निकट नहिं आवै * महावीर जब नाम सुनावै
नाशै रोग हरै सब पीरा * जपत निरन्तर हनुमत वीरा
सङ्कट से हनुमान छुड़ावै * मन क्रम वचन ध्यान जो लावै
सब पर राम तपस्वी राजा * तिनके काज सकल तुम साजा
और मनोरथ जो कोई लावै * तासु अमित जीवन फल पावै
चारों युग परताप तुम्हारा * है परसिद्ध जगत उजियारा
साधु सन्त के तुम रखवारे * असुर निकन्दन राम दुलारे
अष्टसिद्ध नवनिधि के दाता * अस बर दीन्ह जानकी माता
राम रसायन तुम्हरे पासा * सदा रहो रघुपति के दासा
तुम्हरे भजन राम को भावें * जन्म जन्म के दुख बिसरावें
अन्तकाल रघुवर पुर जाई * जहाँ जन्म हरिभक्त कहाई
और देवता चित्त न धरई * हनुमत सेय सर्व सुख करई
संकट कटै मिटै सब पीरा * जो सुमिरै हनुमत बलवीरा
जै जै जै हनुमान गोसाईं * कृपा करो गुरुदेव की नाईं
यह शत बार पाठ कर जोई * छूटहिं बन्दि महासुख होई
जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा * होय सिद्धि साखी गौरीसा
तुलसीदास सदा हरि चेरा * कीजै नाथ हृदय महँ डेरा
दोहा—पवन तनय संकट हरण, मंगल मंजुल रूप ।
राम लषण सीता सहित, हृदय बसहु सुरभूप ॥

॥ इति हनुमान चालीसा समाप्तम् ॥

* आरती हनुमान जी की *

आरती कीजै हनुमानलला की * दुष्ट दलन रघुनाथ कला की
जाके बल सों गिरवर काँपै * रोग दोष जाके निकट न झाँकै
अंजनि पुत्र महा बलदाई * सन्तन के प्रभु सदा सहाई
दे बीरा रघुनाथ पठाये * लंका जारि सिया सुधि लाये
लंका सी कोटि समुद्र सी खाई * जात पवनसुत बार न लाई

लंका जारि असुर सब मारे * सियाराम के काज सँवारे

लक्ष्मण मूर्छित परे धरणी पर * लाइ सँजीवनि प्राण उबारे
पैठि पाताल तोरि यम तारे * अहिरावण के भुजा उखारे
बायीं भुजा सब असुर सँहारे * दाहिनी भुजा सब सन्त उबारे
सुर नर मुनि आरती उतारें * जै जै जै हनुमानजी उचारें
कञ्चन थार कपूर की लो धाई * आरती करत अंजनी माई
जो हनुमानजी की आरती गावै * बसि बैकुण्ठ अमरपद पावै
लंक विध्वंस कियौ रघुराई * तुलसीदास स्वामी कीरति गाई

* आरती श्री रामायणजी की *

आरती श्रीरामायणजी की । कीरति कलित ललित सिय-पिय की ।।
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद । बाल्मीकि विज्ञान विशारद ।।
शुक सनकादि शेष अरु शारद । बरनि पवनसुत कीरति नीकी ।।
गावत वेद पुराण अष्ट दस । छहों शास्त्र सब ग्रन्थन को रस ।।
मुनिजन धन सन्तन को सरबस । सार अंश सम्मत सब ही की ।।
गावत सन्तत शम्भु भवानी । अरु घट सम्भव मुनि विग्यानी ।।
व्यास आदि कवि वर्ज बखानी । कागभुशुण्डि गरुड़ के हिय की ।।
कलिमल हरनि विषय-रस फीकी । सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की ।।
दलन रोग भव मूरि अमी की । तात मात सब विधि तुलसी की ।।

* आरती श्रीशङ्करजी की *

जयशिव ओंकारा,ओ३म् जयशिव ओंकारा । ब्रह्माविष्णु सदाशिव अर्द्धाङ्गीधारा।।ओ३म्।। एकानन चतुरानन पंचानन राजे । हंसानन गरुणासन वृषवाहन साजे ।।ओ३म्।। दो भुज चार चतुर्भुज दसभुज ते सोहै । तीनों रूप निरखता त्रिभुवन जन मोहै ।।ओ३म्।। अक्षमाला बनमाला मुण्डमाला धारी । चन्दन मृग-मद लेपन भाले शशिधारी ।।ओ३म्।। श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अंगे ; सनकादिक भूतादिक प्रेतादिक संगे ।।ओ३म्।। करमें वण्ड कमण्डल चक्र त्रिशूल धरता । जग रचता दुख हरता जग पालन करता ।।ओ३म्।। लक्ष्मी वर सावित्री पार्वती संगे । अर्धाङ्गे शिव संगे जटा बहति गंगे ।।ओ३म्।। कामारी गजकारी भक्तन हितकारी । शुद्ध स्वरूप तुम्हारो तुम्हरी गति न्यारी ।।ओ३म्।। ब्रह्माविष्णु सदाशिव जानत अविवेका । प्रणवाक्षर के मध्ये ये तीनों एका ।।ओ३म्।। त्रिगुणात्मक की आरति जो कोई नर गावें । कहत शिवानन्द स्वामी फल मनवाँछित पावें ।।ओ३म्।।

* आरती श्रीराधेश्यामजी की *

मैं तो आरती उतारूँ, राधेश्याम की रे । राधेश्याम की रे, मुक्ति-धामकी रे ।।मैं तो०।। हृदय के कपाट खोल, भक्ति के तले हिंडोल, मधुर नाम बोल, मैं तो चरन-छवि निहारूँ, राधेश्याम की रे ।।मैं तो०।। लाल के चरण पखार लली के बसन सँवार, नमन करूँ बार-बार । युगल मूर्ति मैं सजाऊँ राधेश्याम की रे ।।मैं तो०।।

* आरती श्री दुर्गाजी की *

जय अम्बे गौरी, मैया जय मंगल मूरति, मैया जय आनन्द करनी । तुमको निशदिन ध्यावत, हरि ब्रह्मा शिवजी ।।टेक।। मांग सिंदूर विराजत, टीको मृग-मन्द को उज्ज्वल से दोउ नैना, चन्द्र बदन नीको ।।जय०।। कनक समान कलेवर, रक्ताम्बर राजै । रक्त-पुष्प गल माला, कण्ठ की छाजै ।।जय०।। केहरि वाहन राजत, खड्ग खप्पर धारी । सुर नर मुनि-जन सेवक, तिनके दुखहारी ।।जय०।। कानन कुण्डल शोभित, नासा गज-मोती । कोटिक चन्द्र दिवाकर, राजत सम ज्योती ।।जय०।। शुम्भ-निशुम्भ विदारे, महिषा सुर घाती । धूम्र विलोचन नैना, निशदिन मन-माती ।।जय०।। चौसठि योगिनी मंगल गावत, नृत्य करत भैरू । बाजत ताल मृदङ्गा और बाजत डमरू ।।जय०।। भुजा चार अमिय शोभित, खड्ग खप्पर धारी । मन-वांछित फल पावत, सेवत नर नारी ।।जय०।। कंचन थाल विराजत कपूर अगर बाती । श्री मालकेतु में राजत, कोटि रतन ज्योती ।।जय०।। या अम्बे की आरती जो कोई नर गावै । कहत शिवानन्द स्वामी, सुख सम्पति पावै ।।जय अम्बे०।।

* आरती श्री तुलसीजी की *

जय जय तुलसी माता, सब जग की सुखदाता, वरदाता ।।जय-जय०।। सब योगों के ऊपर सब रोगों के ऊपर, दुःख से रक्षा करके भव-त्राता ।।जय-जय०।। बहु पक्षी हे श्यामा, सुर बल्लभी हे ग्राम्या, हे विष्णु प्रिये ! जो तुमको सेवे, सो नर तर जाता ।।जय-जय०।। हरि के शीश विराजत, त्रिभुवन से ही वन्दित ! पतित-जनों की तरणी, तुम हो विख्याता ।।जय-जय०।। लेकर जन्म बिजन में आई दिव्य भवन में, मानव-लोक तुम्ही से, सुख सम्पति पाता ।।जय-जय०।। हरि को तुम अति प्यारी, श्याम वरण सुकुमारी । प्रेम अजब है उसका तुमसे कैसा नाता ।।जय-जय०।।

* श्रीरामचन्द्रजी के चतुर्दश वर्ष के वनवास का तिथि-पत्र *

सम्पूर्ण आनन्द-मङ्गलों के देने वाले श्रीसीता-रामजी के शुभ-चरणों का स्मरण करके मैं अग्निवेष के मतानुसार श्रीराम-वनवास की तिथि का वर्णन करता हूँ ।

चैत्र शुक्ला नवमी के दिन श्रीरामजी ने जन्म लिया । चौदह वर्ष तक चारों भाइयों ने आनन्द-दायक बाल-लीलायें की । पन्द्रह वर्ष की अवस्था में विश्वामित्रजी बुलाने आये, तब श्रीराम-लक्ष्मण जी मुनि के साथ वन को गये और उनका कार्य किया । फिर गौतम-पत्नी अहिल्या को तारकर मिथिलापुरी में पधारे और पन्द्रह दिन वहाँ रहे । सुहावनी अगहन शुक्ला पंचमी को मीन लग्न (वृश्चिक से सूर्य) में कृपानिधान श्रीरघुनाथजी का बिवाह हुआ । उस समय जानकीजी छः वर्ष की थीं, यह जगत जानता है । प्रभु विवाह करके घर आये और बारह वर्ष तक आनन्दपूर्वक अयोध्या में वास किया ।

जिस समय प्रभु ने वन को प्रस्थान किया, उस समय रघुनाथ जी सत्ताईस वर्ष के और जानकीजी अठारह वर्ष की थीं, यह जगत् जानता है। अयोध्या से चलने के पश्चात् तीन दिन बाद श्रीराम लक्ष्मण और सीताजी ने शृङ्गवेरपुर में जाकर कुछ फल खाये। पाँचवें दिन कृपानिधान गंगाजी के पार उतर कर चले, वहाँ मुनिवर भारद्वाजजी के आश्रम में एक दिन रहे और मुनि बाल्मीकिजी से मिलकर चित्रकूट में जाकर पर्ण-कुटी बनाकर रहने लगे। वहाँ जयंत को शिक्षा देकर लक्ष्मीपति प्रभु ने कुछ समय तक निवास किया।

फिर चित्रकूट से चलकर प्रभु ने शरभंग एवं सुतीक्षण से भेंट की और महर्षि अगस्त्यजी को बड़ा सुख दिया। इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत करके प्रभु पंचवटी में आये। तेरहवें वर्ष के प्रारम्भ में लक्ष्मणजी ने सूर्पणखां की नाक काटी और श्रीरामजी ने खरदूषण का बध किया। माघ शुक्ला पंचमी को रावण—मामा मारीच के कपट से महारानी जानकीजी को हरण कर लंका में ले गया। तब रघुनाथजी बड़े व्याकुल हुए और मार्ग में पड़े जटायु की क्रिया कर दुष्ट कबन्ध राक्षस को मारा। तत्पश्चात् शबरी को गति दी और आषाढ़ मास में आनन्द पूर्वक सुग्रीव से मित्रता की। बालि को मोक्ष देकर श्रीरामजी ने चार महीने प्रवर्षण-गिरि पर वर्षाऋतु बिताई। फिर जानकीजी को ढूँढ़ने के लिए बड़े बुद्धिमान बानर चले।

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को महावीरजी लंका के लिए सागर को लाँघ कर गये। तेरस के दिन हनुमानजी ने सीताजी को ढूँढ़ा और उन्हें मुद्रिका दी। चौदस को अशोक-बाटिका उजाड़कर अक्षय कुमार को मारा, फिर लंका-दहन करके जानकीजी के पास आये और उनसे सुन्दर चूड़ामणि लेकर चले और फिर समुद्र लाँघकर अपनी सेना में आये। यह समाचार सुनकर सबने सुख पाया, सब बानर पाँच दिन का मार्ग तय करके अगहन शुक्ला छठ को किष्किन्धा

में आये। शुक्रवार सप्तमी को प्रभु ने सीताजी की खबर पाई। अष्टमी के दिन स्वाति नक्षत्र में प्रभु ने लंका को प्रस्थान किया। समुद्र-तट तक पहुँचने में सात दिन लगे और पूर्णिमा को तट पर पहुँचे। पौष कृष्णा एकम से तीज-तक प्रभु ने वहाँ विचार किया और चौथ को विभीषण शरण में आये। अष्टमी तक प्रभु ने समुद्र से विनती की और फिर रोष प्रकट किया, तब नौमी को समुद्र प्रभु की शरण में आया। दशवीं के दिन दस योजन पुल बाँधा, एकादशी को बीस योजन द्वादशी को तीस योजन और तेरस को नील ने चालीस योजन लम्बा पुल बाँधा। इस प्रकार बानरों ने दस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा पुल बाँध दिया।

पौष शुक्ला चौदस तक बानर-सेना सागर से पार उतरी और दस दिन में दशमी तक लंका को घेर लिया। पौष सुदी एकादशी को शुक-सारण ने रावण को बानर सेना दिखाई। द्वादशी को प्रभु ने विचार करके बानर-सेना के चार भागकर दिये और रावण के छत्र मुकुट भी काटकर गिरा दिये। फिर तीन दिन के भीतर रावण-सेना तैयार हुई। माघकृष्णा प्रतिपदा के दिन 'अंगद' रावण की सभा में गये और उसका गर्व चूर्ण करके लौटे। माघकृष्ण दौज से नौमी तक दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। मेघनाद ने नागपाश चलाया जिसे दशमी के दिन गरुणजी आकर काट गये। धूम्रलोचन द्वादशी को मारा गया, तेरस को कुम्भकर्ण व मेघनाद और चौदस को अहिरावण मारा गया। अमावस्या तक बानर-सेना ने अनेक धैर्यवान राक्षस मार दिये। फाल्गुनबदी पंचमी तक रघुनाथजी ने महाबली नारांतक का बध किया। तेरस तक कुम्भ आदि अनेक दानव मारे गये और फाल्गुन बदी चौदस तक जम्बुक दैत्य मारा गया।

फाल्गुन शुदी पूर्णिमा को रावण लड़ने चला और चैत कृष्णा अष्टमी तक उसके सब सेनापति मारे गये। नौमी के दिन रावण ने लक्ष्मणजी को शक्ति मारी, उसी दिन हनुमानजी संजीवनी लाये और

लक्ष्मणजी को जिलाया 'यह दूसरी शक्ति थी'। दशमी के दिन बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। एकादशी को मातलि रामजी के लिए देव-रथ लाया। द्वादशी से लेकर अठारह दिन रावण से बड़ा भारी युद्ध हुआ चैत्र शुक्ला चौदस को रावण का वध हुआ, पूर्णिमा को उसका संस्कार हुआ। वैसाख सुदी प्रतिपदा को इन्द्र ने अमृत-वर्षा करके बानर सेना जीवित की। दौज को प्रभु ने विभीषण को राज्य दिया और तीज के दिन सीताजी अग्नि में प्रवेश करके सुख पूर्वक बाहर निकल आईं यह देखकर बानर आश्चर्य करने लगे। चौदह मास और दस दिन श्रीसीताजी ने लंका मे दुख पाया। चौथ को प्रभु ने पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या को प्रस्थान किया। पंचमी के दिन प्रयागराज में स्नान किया और छट को भरतजी से प्रेम पूर्वक मिले। वैशाख कृष्णा सप्तमी को सबका मनोरथ सफल करके प्रभु अयोध्या में आये।

वनवास लौटने पर कृपानिधान रामजी इकतालीस वर्ष और सीताजी बत्तीस वर्ष की थीं। सप्तमी को ही रघुनाथजी सिंहासन पर विराजमान हुए और राजतिलक हुआ यह जगत जानता है। भादों बदी नौमी को सीताजी गर्भवती हुईं। चैत्रशुक्ला द्वादशी के दिन लक्ष्मणजी—श्रीरामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्हें अत्यंत दुःखी मन से बाल्मीकिजी के आश्रम के निकट छोड़ आये। वहाँ उन्हें मुनि-वर ने पुत्री के समान पाला और आषाढ़ मास की नौमी के दिन सुन्दर 'लव' और 'कुश' ने जन्म लिया।

तपस्विनी के वेष में सीताजी वन में दुःखी रहीं और श्रीरामजी ने ग्यारह हजार वर्ष तक धर्म पूर्वक राज्य किया। फिर लव-कुश को राज्य देकर भगवान अपने साकेत-धाम को प्रस्थान कर गये।

अग्निवेष ऋषि ने रामायण का सार लेकर यह वनवास की तिथि का पत्र वर्णन किया। इसे सुनने से भ्रम—जाल का नाश हो जाता है और सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं।

॥ इति श्रीरामचरित-मानस वनवास-तिथि-पत्र सहित आठों काण्ड समाप्त ॥